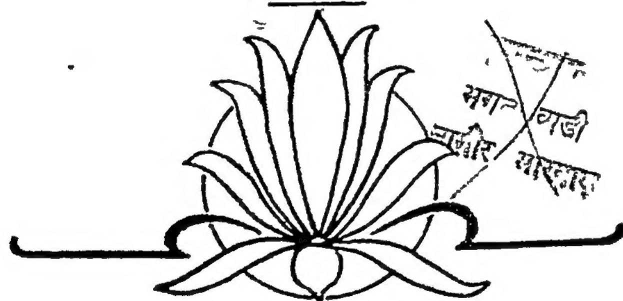
ओ३म्

कृष्ण-गोपाल ग्रन्थमाला का प्रथम रत्न

रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह

प्रथम खण्ड



प्रकाशक:-

कृष्ण-गोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधा

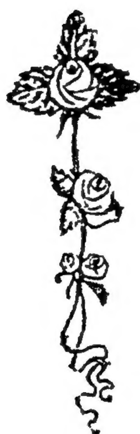
पो० कालेडा-बोगला, (ज़ि० अजमेर)

संस्करण पञ्चम प्रति २५०० सन् १९४७ ई०

मूल्य अजिल्द रु० ७)

मूल्य सजिल्द रु० ८)

प्रथमसंस्करण १९३२ ई०
द्वितीय संस्करण जुलाई १९३८ ई०
तृतीय संस्करण अप्रेल १९४२ ई०
चतुर्थ संस्करण मार्च १९४५ ई०
पञ्चम सस्करण जनवरी १९४७ ई०



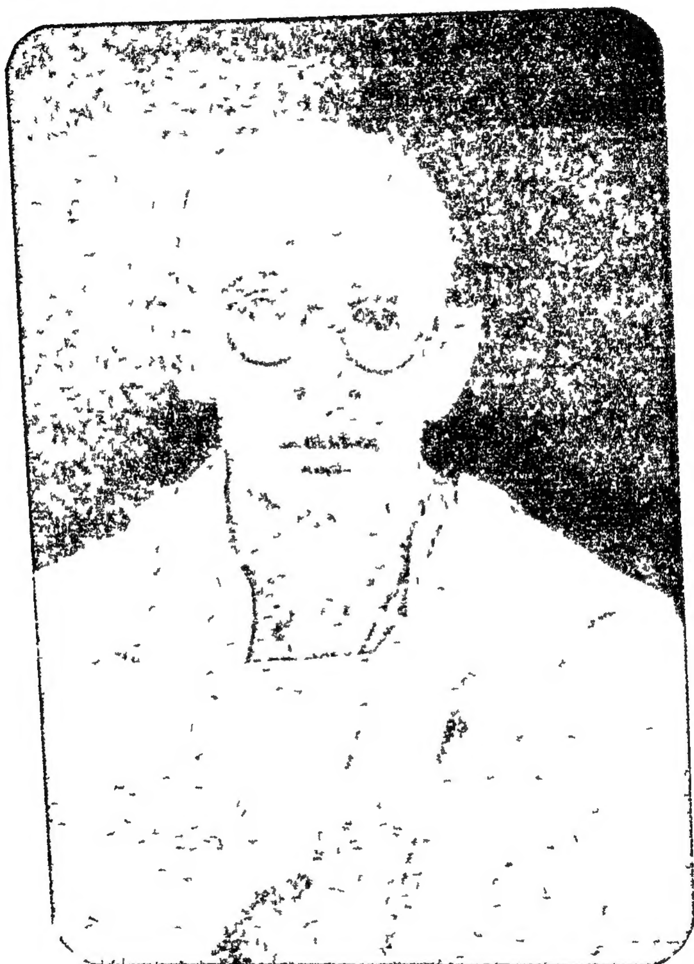
मुद्रक
पं० सत्यपाल शर्मा
कान्तिप्रेस माइथान, आगरा।

श्री डिग्गीपुराधीश्वर श्री महाप्रभु कल्याणराय



डिग्गी (जयपुर स्टेट)

स्वामीजी महाराज श्री १०८ श्री कृष्णानन्दजी महाराज



संस्थापक--कृष्ण-गोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय, पो० कालेडा-बोगला, जिला अजमेर ।

ठाकुर नाथूसिंह
केसरे-हिन्द (ग० ऑफ इ०) इस्तमरारदार कालेडा-बोगला,
आयुर्वेद मनीषी और आयुर्वेद मार्तण्ड



मैनेजिंग-ट्रस्टी कृष्ण-गोपाल आयुर्वैदिक धर्मार्थ औषधालय,
पो० कालेडा-बोगला, जिला अजमेर।

निवेदन ।

मूकं करोति वाचालं पङ्गुं लङ्घयते गिरिम् ।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम् ॥
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

श्री महाप्रभु कल्याण रायकी निस्सीम कृपासे **'रसतन्त्रसार व सिद्ध-प्रयोगसंग्रह'** के चतुर्थ संस्करणकी १५०० प्रति ग्रन्थ छपकर तैयार होनेके पहले ही बिक गई थीं। जिस से यह पञ्चम संस्करण सत्वर तैयार किया है। चतुर्थ संस्करणके समान इस पंचम संस्करणको भी पूज्य स्वामीजी महाराज श्री कृष्णानन्दजीने आद्योपान्त देखकर संशोधन और परिवर्द्धन कर दिया है। इस हेतुसे पहले रही हुई कितनीक अशुद्धियाँ और न्यूनता दूर होगई हैं। दृष्टि दोषसे कुछ भूल रह गई हों, या नकल करने वालोंके प्रमाद और कम्पोजीटरोंकी असमझसे नूतन उत्पन्न हुई हों, उनके लिये पाठकोंसे मैं क्षमाप्रार्थी हूं। इन सबको अगले संस्करणमें सुधार लेनेका प्रयत्न किया जायगा।

इस संस्करणमे प्रयोग नहीं बढ़ाये गये। सत्वेरमें लिखा हुआ गुण विवेचन किसी-किसी प्रयोगमें बढ़ाया गया है। चतुर्थ संस्करणकी अपेक्षा इस संस्करणमें ३५-४० पृष्ठोंका लेख बढा है, किन्तु परिभाषा प्रकरणमें से २० पृष्ठोंका लेख कम करने से पृष्ठ संख्यामे केवल १५ पृष्ठोंकी वृद्धि हुई है।

वर्त्तमानमें छपाई आदिका खर्च और कागजोंका मूल्य अत्यधिक बढ़ गया है, एवं देशी कागज समय पर न मिलनेसे ग्रन्थमे आधा अमेरिकन कागज लगाना पड़ा। जिसका मूल्य देशी कागजोंकी अपेक्षा पौने दो गुना है। इन हेतुओंसे निरुपायवश मूल्य चतुर्थ संस्करणसे भी थोड़ा बढ़ाना पड़ा है। अनेक ग्राहकोंसे मूल्य पहले से मिल गया था और जल्दी ग्रन्थ तैयार कराना था; किन्तु कागज मिलनेमें देर होनेसे प्रकाशनमे देर हुई है।

इस ग्रन्थमे दिये हुए प्रयोगोंके अतिरिक्त कितनेक अनुभूत प्रयोग शेष रहे हैं। जिनको रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह द्वितीय खण्ड (अलग ग्रन्थ) रूपसे प्रकाशित किया है। उसका संशोधन व परिवर्द्धन श्री० प० राधाकृष्णजी द्विवेदी आयुर्वेद-भूषण, प्रिंसिपल-गवर्नमेण्ट आयुर्वेदिक कॉलेज–हैद्राबाद (निजाम स्टेट) ने तथा श्री० राजवैद्य पं० रामचन्द्रजी शर्मा, अजमेरनेकिया है।

कृष्ण-गोपाल धर्मार्थ औषधालय से लाभ लेने वाले रोगियोंकी संख्या प्रतिवर्ष बढ़ती जाती है। एव बाहरसे कितनेक रोगी आकर यहाँ रहते भी हैं। जिससे कल्याण चिकित्सा मन्दिरके साथ कितनेक कच्चे मकान नये बनाये हैं। इसके अतिरिक्त महायुद्धकी समाप्ति होने पर भी मँहगाई बहुत बढ़ गई है। इस हेतुसे भी चिकित्सा मन्दिरका खर्च अत्यधिक बढ़ गया है।

एवं कल्याण चिकित्सामन्दिरके साथ आतुरालय (Hospital) के भवन निर्माण का प्रारम्भ होगया है, तथा पाठशाला प्रारम्भ करानेका विचार है। उसके लिये ८००००)+२००००) मिलकर एक लक्ष रुपयोंकी आवश्यकता है। इसमेसे ३००००) अभी तक दान रूपसे मिला है। (जिनके नाम साभार रिपोर्टमे प्रकाशित किये हैं) शेष रकम ७००००) की आवश्यकता है। इसके लिये धर्मप्रेमी हितचिन्तक सज्जनोके प्रति नम्र निवेदन है कि, वे अपनी ओरसे होसके उतनी अधिक सहायता प्रदान करे और परिचित सज्जनोंसे दिलानेकी कृपा करे। इसके अतिरिक्त निष्काममावसे सेवा शुश्रूषा करने वाले स्वयंसेवकोंकी भी आवश्यकता है, यह महाप्रभु कल्याण रायकी प्रेरणापर अवलम्बित है।

अत्र आतुरालयकी स्थापना की है, इससे समाजको २ प्रकार का लाभ मिलेगा। १—इसमे आयुर्वेदिक उपचारों की ही प्रधानता रहेगी (एलोपैथिक औषधियों का उपयोग बहुत कम होगा) इस हेतुसे विविध रोगो पर नूतन-नूतन आयुर्वेदिक प्रयोगों का अनुभव मिलता रहेगा, जो आयुर्वेद साहित्य की वृद्धि करेगा। २—आयुर्वेदिक विद्यालयमे अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों को शास्त्रबोध के अतिरिक्त अनुभव ज्ञान मिलता रहेगा, इस औषधालय मे व्यवहृत नीतिके अनुसार रोगियो की सेवा सप्रेम सद्भाव पूर्वक करना सिखेंगे, नगरोंके मोहमय वातावरणसे बच जायेगे और भविष्यमे भी ग्रामोंमें रहकर सहर्ष सेवा कर सकेंगे।

भारतका उद्धार ग्रामोद्धारसे ही हो सकेगा, इस बातको विद्वानोंने स्वीकार किया हैं। अत. ग्रामोंकी सेवाकी पूर्ण आवश्यकता है। इस कार्यमें इस आतुरालय और विद्यालयके प्रारम्भसे उत्तम प्रकारकी सहायता मिलेगी जो अन्य ग्रामोके लिये अनुकरणीय होगी। अत. इस सेवा कार्यमे सहायता करनेके लिये सर्व सज्जनोंसे नम्र निवेदन है।

चिकित्सा तत्वप्रदीप प्रथमखण्डके प्रथम सस्करणकी सब प्रति समाप्त होगई हैं। द्वितीय सस्करण संशोधित व परिवर्द्धित छप रहा है। आशा है कि वह मार्च के भीतर-भीतर छपकर तैयार हो जायगा। इसके अतिरिक्त ,नेत्ररोग विज्ञान' छप रहा है, वह भी ३–४ मासमे छप जाने की आशा है।

हिन्दी भाषामें क्रियात्मक रोग परीक्षाका स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है, जिसमें प्रश्न, रक्त, नाड़ी, मल, मूत्र, कफ, नेत्र, शब्द आदि परीक्षाओंका विस्तारपूर्वक वर्णन किया हो। इस हेतुसे डाक्टरी क्लिनिकल मेथडके आधारसे 'सिद्ध-परीक्षा प्रदीप' नामक पुस्तक औषधालयके प्रधान वैद्य सोहनलालजी अग्रवालसे लिखवानेका प्रबन्ध किया है। आधे से अधिक भाग तैयार होगया है। इस बातका पूर्ण खयाल रखा है कि, आयुर्वेदके सामान्य बोधवाले वैद्य और विद्यार्थी वर्ग को उपयोगी हो, इसलिये सरल भाषामें अति समझा-समझाकर वर्णन किया गया है। यह ग्रन्थ ६ मासमें तैयार होजानेकी आशा है।

पाश्चात्य वनस्पति शास्त्रके आधारसे प्रारम्भ किया हुआ वनौषध संग्रहका प्रथमखण्ड अपूर्ण है, उसे पूर्णकर सत्वर प्रकाशित करनेका विचार है। किन्तु ग्रन्थ लेखनमें स्वामीजी महाराजको अभी तक सुयोग्य सहायक नहीं मिल सका। इस हेतुसे कार्यमें देर होती है। प्रभु कृपासे आयुर्वेदकी सेवा के उत्सुक कोई सुबोध सहायक मिल जायगा, तो प्रकाशन कार्य सत्वर हो सकेगा।

इस ग्रन्थमें चरक संहिता आदि प्राचीन ग्रन्थोंके अतिरिक्त वर्त्तमानके आचार्योंके लिखे हुए रसायनसार (हिन्दी), आर्य-भिषक्, आयुर्वेद निबन्धमाला और रसायनसार संग्रह (गुजराती), औषधगुणधर्मशास्त्र और वैद्यसार संग्रह (मराठी) तथा रसयोगसागर आदि संग्रह ग्रन्थोंसे सहायता लीगई है। उन सब ग्रन्थोंकी यादी ग्रन्थारम्भमें दी है। उनके अतिरिक्त कितनेक प्रयोग अनुभवी चिकित्सकोंसे मिले हैं। उन सबके नाम प्रयोगके साथ दिये हैं। प्रमादवश या स्मरण न रहनेसे जो नाम छूट गये हों, उन सब ग्रन्थकार और प्रयोग दाताओंका हृदयपूर्वक आभार मानता हूँ।

अन्तमें निवेदन कर देना उचित समझता हूँ कि, इस औषधालय द्वारा जनताकी जो सेवा होरही है, वह किसी स्वार्थके लिये नहीं है। केवल प्रभुप्रीत्यर्थ ही है। अतः इस औषधालय में अभी तक पूर्ण सत्य का पालन हुआ है। रोगी, ग्राहक, कर्मचारी और लेन-देन करने वालोंमें से किसी के साथ अन्याय पूर्वक व्यवहार नहीं हुआ। भविष्यमें भी इस नीतिका पालन दृढतापूर्वक किया जायगा। महाप्रभु कल्याणराय इस निष्काम सेवाकार्य को सर्वदा चलाते रहें, ऐसी मेरी हार्दिक प्रार्थना है। इति शुभम्।

पो० कालेड़ा–बोगला
(ज़िला अजमेर)
ता० १–१–४७

जनता जनार्दनका कृपाकांक्षी
नाथूसिंह वर्मा

संकेत-सूची।

इस ग्रन्थमें निम्न ग्रन्थों से प्रयोग लिये हैं; और प्रयोगों के अन्त में उनका संकेत भी किया गया है।

संस्कृत ग्रन्थ

अनु० त०	अनुपानतरङ्गिणी।
अ० हृ०	अष्टाङ्गहृदय।
आ० प्र०	आयुर्वेदप्रकाश।
गा० नि०	गद निग्रह।
च० सं०	चरकसंहिता।
च० द०	चक्रदत्त।
नि० र०, बृ०नि० र०	निघण्टुरत्नाकर
व० रा०	बसवराजीयम्।
बृ० यो० त०	बृहद् योगतरङ्गणी।
व० से०	वंगसेन।
भा० प्र०	भावप्रकाश।
भा०भै० र०	भारत भैषज्य रत्नाकर
भै० र०	भैषज्यरत्नावली।
यो० र०	योगरत्नाकर।
र० का०	रसकामधेनु।
र० च०	रसचण्डांशु।
र० चि०	रसचिन्तामणि।
र० त०	रसतरङ्गिणी।
र० ये० सा०	रसयोगसार।
र० र०	रसतत्नाकर।
र० र० स०	रसरत्नसमुच्चय।
र० रा० सु०	रसराजसुन्दर।
र० सा०	रसायनसार।
र० सा० सं०	रसेन्द्रसार सग्रह।
वृन्द	वृन्दमाधव।
वै० जी०	वैद्यजीवन।
शा० सं०	शार्ङ्गधर संहिता।
सि० भे० म०	सिद्धभेषजमणिमाला
सि०भे० मं०	सिद्धभैषज्य मंजूषा।
सु० सं०	सुश्रुतसंहिता।
हा० सं०	हारीतसंहिता।

हिन्दी

अ० यो० म०	अनुभूत योगमाला।
इ० गु०	इलाजुलगुर्बा।
खू० चि०	खूबचन्द चिकित्सा
ब० चि०	बालचिकित्सा।
चा० चि०	चारुचिकित्सा।
चि० चं०	चिकित्साचन्द्रोदय।
ति० अ०	तिब्बे अकबर।
धन्वंतरि	धन्वतरि (मासिक)
स्वा० र०	स्वास्थ्यरक्षा।

गुजराती

अ० प्र०	अनुभूत प्रयोगावली
आ० औ०	आय-औषध।
आ० भि०	आयभिषक्।
आ० नि० मा०	आयुर्वेदनिबंधमाला
घ० वै०	घरवैदु।
रसा०सा०सं०	रसायनसारसंग्रह।
र० त०	रसोद्धारतत्र।
वै० चि० सा०	वैद्यक चिकित्सासार
वै० स० वि०	वैद्यकसम्बन्धी विचार

मराठी

औ० गु० शा०	आयुर्वेदीय औषधगुणधर्मशास्त्र।
आ० क०	आयुर्वेद कलानिधि।
वै० सा० सं०	वैद्यसारसंग्रह।



भूमिका



यह बात निर्विवाद है कि सत्य किसीसे छिपाये नहीं छिप सकता। अन्तिम निर्णय भी वही होता है, जो सत्य रहता है। सारांश सत्यकी सदा विजय ही होती है। सत्ये नास्ति भयं क्वचित्—इस उक्ति के अनुसार सत्य को कहीं किसी प्रकार का भय भी नहीं रहता। यही उक्ति हमारे आयुर्वेदके लिये चरितार्थ हो रही है। चाहे कोई कितनी ही निन्दा क्यों न करे, अन्तमें उसे मानना ही पड़ेगा कि आयुर्वेद के सिद्धान्त ध्रुव एवं सत्य है। यूरोप आदि शीत कटिबन्ध निवासियोंके आहार विहार की ओर दृष्टि रखकर अद्यावधि जितनी एलोपैथिक आदि औषधियाँ बनी है, वे उनके लिये चाहे हितकारी हों, परन्तु हमारे महर्षियोंका यह कथन पूर्ण सत्य है कि—

"यस्य देशस्य यो जन्तुस्तज्जं तस्यौषधं हितम्"

अर्थात् जो प्राणी जहाँ जन्मा है, उसके लिये उसी देश के औषधि एवं आहार-विहार हितकारी होते हैं। अर्थात् भारतीय आर्यों के लिये भारतीय औषधि, अन्न और विहारही हितकारी है। यही युक्त सिद्धान्तसूत्रका तात्पर्यार्थ है। इसी सत्सिद्धान्तके अनुसार भगवान् स्वयंभू ने आर्यों के कल्याणार्थ वेदो के अनेक सूक्तोंमें आयुर्वेदोपदेश का विवेचन किया है कि, किस प्रकार प्राणीमात्र नाना महौषधियोंसे आयु और आरोग्य का रक्षण कर दीर्घायु प्राप्त कर सकता एवं क्षयादि भयंकर रोगोंसे छुटकारा पा सकता है। किन्तु वेद या वेदवाणी सब ही के लिये सुलभ नहीं है। सूत्ररूपसे कहे हुए इन गूढ सूक्तों तथा मन्त्रों के गम्भीर अर्थ को यथावत् जान लेना भावी अल्पज्ञ संतानोंके लिये टेढ़ी खीर है। इस भावनासे प्रेरित हो, सम्पूर्ण जगत् के कल्याणेच्छुक आत्रेय, भारद्वाज, काश्यप, पाराशर, सुश्रुतादि महर्षियों ने इन वेदसूक्तो के विस्तृत व्याख्यानरूप आयुर्वेदिक संहिता-ग्रन्थोंकी रचना की। इनमें से कतिपय कालवशात् लुप्तप्राय: हैं।

वर्तमान काल में मात्र अत्रिसंहिता, भेलसंहिता, काश्यपसंहिता, चरक-संहिता, सुश्रुतसंहितादि थोड़े से संहिता ग्रन्थ विद्यमान हैं।

वेदोंकी तरह इन संहिताओंके भी अर्थगाम्भीर्य एवं मनुष्यों के उत्तरोत्तर बल-बुद्धि के ह्रास का अनुभव कर वाग्भट, वृन्द, वङ्गसेन, चक्रपाणि, गयदास, शारंगधर, विजयरक्षित, श्रीकण्ठदत्त, हेमाद्रि, चन्द्रनन्दन, अरुणदत्त, डल्हण, भावमिश्रादि अनेक आचार्यों ने इन संहिताओं पर व्याख्यायें एवं स्वतन्त्र ग्रन्थ रचना की। इन धान्वन्तर-आत्रेय साम्प्रदायिक-संहिता ग्रन्थों के साथ-साथ भगवान् शंकर के सिद्ध साम्प्रदायिक ग्रन्थों का भी अवतार हुआ। धान्वन्तरात्रेय साम्प्रदायिक ग्रन्थों में केवल वनौषधियों द्वारा जैसे चिकित्सा का वर्णन है, वैसे ही सिद्धरसार्णव, काकचण्डीश्वर, रसरत्नाकरादि सिद्धसाम्प्रदायक ग्रन्थोंकी चिकित्सा में पारदादि, रसोपरस, स्वर्णादि धातूपधातु हीरकादि मणि आदि का महत्व विशेष है। साराश यह है कि उपर्युक्त सभी ग्रन्थ संस्कृत में अपने अपने विषयों का वर्णन करने वाले हैं। धान्वन्तर साम्प्रदायिक शल्यचिकित्सा (Surgery), आत्रेय साम्प्रदायिक कायचिकित्सा (Medicines) और सिद्धसाम्प्रदायिक रसायन-शास्त्र (Chemistry) के पथप्रदर्शक रहते हुए पारस्परिक हस्तक्षेप करने वाले नहीं थे। वर्तमान की तरह वे एक दूसरे को देख कुढ़ने-चिढ़ने वाले नहीं थे, अपितु, सबका परस्पर में बड़ा आदरभाव था। अपने शास्त्र के अधिकारकी बात न रहने पर वे स्पष्ट कहते थे, कि यह इस शास्त्र का विषय नहीं है यह अमुक शास्त्र का विषय है। उदाहरणार्थ—शस्त्रक्रिया साध्य विषय का पूरा वर्णन करने के बाद औषधि-विषय के प्रारम्भ में ही महर्षि सुश्रुताचार्य कहते हैं, कि:—"पराधिकारे न च विस्तरोक्तिः" अर्थात् यह कायचिकित्सा शास्त्र का विषय है, अतः मैं यहाँ विस्तार नहीं करना चाहता। इसी प्रकार चरकाचार्य ने भी अपने संहिता ग्रन्थ में मात्र औषधि साध्य बात को ही कहा है। शस्त्रक्रिया-साध्य रोगके विषय में स्पष्ट कह दिया है कि, "अत्र धान्वन्तराणामेवाधिकारः" अर्थात् इस शस्त्रक्रिया के विषय में धन्वन्तरीसंहिता के अनुयायियों का ही अधिकार है। यह इस शास्त्र का विषय नहीं है इत्यादि।

किन्तु आगे चलकर इन तीनों सम्प्रदायों की चमत्कारिक-चिकित्सा-प्रणालियों की उपयुक्तता के अनुभव करनेवाले कतिपय दीर्घदर्शी आचार्यों ने सबका समन्वय एक ही ग्रन्थ में रहना अच्छा समझा और

वैसा कर भी डाला। उदाहरणार्थ--चक्रदत्त, वङ्गसेन, शार्ङ्गधर संहिता भावप्रकाश, योगचिन्तामणि, योगरत्नाकरादि ऐसे समन्वयात्मक अनेक ग्रन्थ आज हम सबके समक्ष विद्यमान है। इसी प्रकार अल्प संस्कृतज्ञों एवं केवल हिन्दी जानने वालों के लिये इन सब ग्रन्थों की भाषाटीकाएँ भी बनी और छपी है। इतना ही नहीं, कतिपय आधुनिक वैद्य महाशयों ने केवल सरल हिन्दी में संग्रहग्रन्थ तैयार किये है, जो छपकर बिक रहे हैं। उदाहरणार्थ--चिकित्सा-चन्द्रोदय, रसहजारा, आयुर्वेदप्रकाशादि। "रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह" नामक प्रस्तुत ग्रन्थ भी इसी संग्रह-कोटि में आता है तथापि यह उपर्युक्त सब ही संग्रह-ग्रन्थोंसे अपनी कुछ विशेषता रखता है। इस विषयमें कुछ कह देना अप्रासंगिक न होगा।

आजतक कई छोटे बड़े संग्रह मेरे देखने में आये हैं। वैद्यक-विषयकी कई बाते ऐसी हैं, जिनका एक ही ग्रन्थमें संगृहीत रहना नितान्त आवश्वक है। परन्तु ऐसा देखने में नहीं आया। आवश्यक बातें दो चार एक में है तो एक-दो दूसरे में इसी प्रकार कुछ बाते किसी और संग्रह में है। ऐसी अवस्था में साधक को एक ही जगह सभी बाते न मिलने से कई संग्रहों को देखने की झंझट रहती है। कई बड़े-बड़े संग्रह होने पर भी उनमें उक्त आवश्यक बातों का नामोनिशान तक नहीं दिखाई देता। ऐसी अवस्था में ऐसे संग्रह ग्रन्थकी नितान्त आवश्कता थी, जो न बहुत बड़ा हो और न नितान्त छोटा। इसके अतिरिक्त ऐसा भी न हो जिसमें वैद्यक विषय की महत्व की बात छूट जाय। यदि सच कहा जाय तो इस बड़ी भारी कमी की पूर्ति कृष्ण-गोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय कालेड़ा-बोगला द्वारा प्रकाशित सरल हिन्दी के "रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह" ने की है। यह वस्तुतः परंपराप्राप्त दीर्घ काल तक अनुभव की हुई वैद्यविद्या का निचोड़ है। सारांश यह है कि इसके विद्वान् अनुभवी लेखक ने:—

(१) उपोद्घात प्रकरण में चिकित्सोपयोगी सभी महत्व की बातें सरल भाषा में स्पष्ट समझाई है।

(२) आवश्क सूचना प्रकरण बड़ा महत्व रखता है, इसलिये कि रोगी, रोग, औषधि और अहार-विहारादि विषयक सभी उपयुक्त सूचनाएँ एक ही स्थान में दे दी है।

(३) परिभाषा-प्रकरणमें औषधियों के बनाने विधि, तोल माप, पुटविधि, यन्त्रों का वर्णन और उनके चित्र, किसी औषधि के

न मिलने पर प्रतिनिधि रूप में किस ओषधि को लेना—किसके लिये न लेना, प्रतिनिधि लेने का शास्त्रीय नियम इत्यादि बातें विस्तारपूर्वक लिखी है।

(४) शोधन-प्रकरण में धातु उपधातु, विष आदि की शोधन-विधि वही दी है जो सरल और अनुभूत है।

(५) भस्म-प्रकरण में कृष्ण-गोपाल धर्मार्थ औषधालय की रसायनशाला में जिस विधि से भस्में वनाई जाती हैं, जिनसे मनुष्यों का निश्चित उपकार हो रहा है, रोगी रोगमुक्त होते हैं, जो शतशोऽनुभूत हैं, उन्हें दिल खोल कर सरल भाषा में लिख दिया है। इतना ही नहीं, उनका गुणविवेचन भी विस्तारपूर्वक लिखा है।

(६) कूपीपक्व रसायन अर्थात् मकरध्वज-चन्द्रोदयादि वनाने की सरल अनुभूत विधिएँ जैसी इस संग्रह में हैं, वैसी किसी भी संस्कृत, हिन्दी, मराठी, गुजराती, वंगला आदि के भाषाग्रन्थों में नहीं है।

(७) पर्पटी, खरलीय रसायन अर्थात् सभी प्रकार के अनुभूत एवं प्रभूत रस, गुटिका चूर्ण, क्वाथ, आसव, अरिष्ट, घृत, तैल, पाक, अवलेह, अंजन, लेप, मरहमादि सभी प्रकरणोंके आदि में महत्व की सूचना और ओषधिविधि आदि का वर्णन किया गया है। विशेषता यह है कि, व्यर्थ आडम्बर न कर प्रयोग वे ही दिये हैं जो अपने अनुभूत हैं। प्रत्येक प्रयोग के साथ मूल ग्रन्थ जिससे प्रयोग लिखा गया है या जिस सज्जन का अनुभूत है, उसका नाम तक लिख दिया है।

(८) अनुक्रमणिका भी दो प्रकार से दी है यथा—रोगानुसार और औषधों के नामानुसार। रोगानुसार औषध सूची में विशेषता यह है कि उपद्रवभेद और वातादि दोषभेद से औषधिभेद दिखाया गया है।

यह ग्रन्थ पहले एक वार छप चुका है और अपनी अतीव उपयुक्तता के कारण विक भी चुका है। छोटा होने पर भी इसमें जितने विषयों का समावेश किया गया था वह वैद्यकव्यवसायियों ने नितान्त उपयुक्त समझा और उससे लाभ भी उठाया। मैंने भी इसके फलदायी प्रयोगों को वनाकर अनुभव किया तो मुझे अत्यन्त सन्तोष हुआ। मेरी इच्छा हुई कि यदि इसी प्रकारका विवेचन कर जिन-जिन विषयों का समावेश इसमें नहीं हुआ है उन्हें भी स्थान दिया जाय, तो सोने में सुगन्धि सा वन जाय। मैंने यह सूचना इस ग्रन्थ के मूल लेखक श्रद्धेय स्वामीजी महाराज श्रीकृष्णानन्दजी को लिखी। मेरी सूचना

का आदर करते हुए स्वामीजीने लिखा कि द्वितीय संस्करणके समय मैं इसका ध्यान अवश्य रखूँगा। सौभाग्यकी बात है कि यह शुभावसर शीघ्र ही प्राप्त हो गया।

प्रस्तुत ग्रन्थ "रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह" का संशोधित एवं परिवद्धित द्वितीय संस्करण है। अनेक अवशिष्ट बातोंके साङ्गोपाङ्ग विवेचनका समावेश करनेसे अब यह ग्रंथ प्रथमावृत्ति से लगभग दूना होगया है। सरल हिंदी भाषा में प्रायः सभी बातें भलीभाँति समझा कर लिख दी गई हैं। इतना होनेपर भी मूल्यमें विशेष वृद्धि नहीं की गई। इस एक ही पुस्तकके पास रहनेसे वैद्यों को इधर-उधर भटकने या अनेक पुस्तकोंको रखनेका झंझट नहीं करना पड़ेगा। यह ग्रन्थ घर तथा प्रवास में समान लाभ देने वाला हो गया है। इस एक ही ग्रन्थके सहारे से वैद्य अपना काम भली भाँति कर सकता है। सारांश, चिकित्सोपयोगी ऐसी कोई बात नहीं छूटी जो इस ग्रन्थ में संगृहीत न हुई हो। प्रत्येक वैद्यको चाहिये कि, वे इस ग्रन्थका समुचित आदर करें और लाभ भी उठावें। इतना ही नहीं, सर्व साधारण के लिये भी यह बड़े कामकी चीज है, इसलिये मैं तो कहूँगा कि, इसकी एक-एक प्रति प्रत्येक घर में रहनी चाहिये।

लेखक के निवेदन में स्पष्ट है कि इस ग्रन्थ के प्रकाशक, कृष्णगोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय द्वारा सब काम केवल प्राणीमात्र पर दया की दृष्टि से हो रहा है। उसकी चिकित्सा दीन दुखियोंके लिये सदैव धर्मार्थ रहती है। मैं आशा करता हूँ कि सभी सज्जन इस औषधालय के प्रत्येक कार्य में तन, मन व धन से सदैव सहायक रहेंगे।

नागपुर
१-६-१६३८ ई० } श्रीगोवर्धन शर्मा छाँगाणी।

ग्रन्थ-प्रकाशन और औषध विक्रय

इस संस्थाकी ओरसे ग्रन्थो का प्रकाशन और औषधविक्रय, ये दोनों कार्य सेवा भाव से किये जाते हैं। इस हेतु से प्रत्येक वस्तु का मूल्य भरसक कम रक्खा गया है, और भविष्यमें परिस्थिति अनुकूल होने पर और भी कम किया जायगा। हमारे ग्रन्थों का अन्य भाषाओं में कोई भी चिकित्सक अनुवाद कराना चाहेंगे, तो उन्हें निःस्वार्थ भाव से सहर्ष अनुमति दी जायगी। इतना ही नहीं, भविष्यमें कदाच किसी कारण से इस औषधालय द्वारा ग्रन्थ प्रकाशन बन्द हो जाय, तो कोई भी धर्मार्थ संस्था हमारे ग्रन्थो को प्रकाशित करा सकती है। हमारी ओर से किसी भी प्रकार का विरोध नहीं किया जायगा।

हमने औषध प्रयोगो में से अभी तक एक भी प्रयोग गुप्त नहीं रक्खा, और भविष्य में भी प्रयोग छिपाये नहीं जायेंगे। प्रयोग विधि गुप्त रखनेसे उनका इच्छानुसार दस-बीस गुना या अधिक मूल्य मिल सकता है, परन्तु ऐसा करनेमें आयुर्वेद साहित्य को और देश को हानि पहुँचती है। अतः इस नियम के सम्बन्धमें हमने अन्य फार्मेसियोंका अनुकरण नहीं किया और न भविष्यमें करेंगे। यह धर्मार्थ संस्था महाप्रभु कल्याणरायकी है। वे यदि इसे निभाना चाहते है, तो इसके संरक्षक वर्ग (ट्रस्टियो) के हृदय में विशाल और सत्य पालन में दृढ़ता प्रदान करेंगे, ऐसा हमारा दृढ विश्वास है।

यह औषधालय गरीबो की सेवार्थ है, किसी व्यक्ति विशेष की सम्पत्ति नहीं है। औषधालयका ट्रष्टडीड रजिस्टर कराया है। ११ ट्रस्टी बना लिये है। औषधालयमें किसीका स्वार्थ न होनेसे पूर्ण सत्यता-पूर्वक व्यवहार किया जाता है। सब औषधियाँ शास्त्रोक्त विधि अनुसार ही तैयारकी जाती है। इस हेतु से औषधि से शास्त्र में लिखे अनुसार पूरा लाभ मिलता है। औषधि और पुस्तक विक्री में जो नफा रहता है उसका उपयोग दीन-दुःखी जनो की सेवा में ही होता है। अतः इस औषधालय से औषधि खरीदनेमें चिकित्सक और ग्राहकों को शास्त्रोक्त विधि से बनी हुई सच्ची औषधि मिल जाती है, साथ-साथ गरीबो की सेवामें सहायता भी होती रहती है।

अनुक्रमणिका ।

आवश्यक सूचना प्रकरण ।



परिभाषा प्रकरण ।

शोधन प्रकरण।

भस्म प्रकरण ।

कूपीपक्व रसायन प्रकरण ।

पर्पटी प्रकरण ।

खरलीय रसायन प्रकरण ।

गुटिका प्रकरण ।

सूचना—कितनेक रसायनों के नाम के अन्तमें वटी [illegible] है। अब उनकी सूची भी पाठकों की सुविधाके लिये इस प्रकरण के साथ [illegible] दी है।

चूर्ण प्रकरण ।

सूचना—[illegible] उनकी सूची में पाठ [illegible]

कषाय प्रकरण ।

आसव-अरिष्ट प्रकरण ।

अवलेह प्रकरण ।

घृत-तैल प्रकरण ।

अंजन प्रकरण ।

लेपादि प्रकरण ।





* श्री धन्वन्तरये नमः *

रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह

उपोद्घात ।

धर्मार्थकाममोक्षाणां शरीरं साधनं यतः ।
सर्वकार्येष्वंतरंगं शरीरस्य हि रक्षणम् ॥

शास्त्राचार्योंने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, ये चार पुरुषार्थ कहे है। इन सबका मुख्य साधन शरीर है। इसलिये शरीरकी रक्षा अवश्य करनी चाहिये। इसी हेतुसे धन्वन्तरि, भरद्वाज, अत्रि इत्यादि परोपकारी मुनियोने अथर्व वेदके उपवेद रूप आयुर्वेदका निर्माण किया है। आयुर्वेदकी व्याख्या प्राचीन आचार्योंने निम्न वचनसे की हे—

आयुर्हिताहितं व्याधेर्निदानं शमनं तथा ।
विद्यते यत्र विद्वद्भिः आयुर्वेद स उच्यते ॥

जिसमें आयुके हित (पथ्य आहार-विहार), अहित (हानिकर आहार-विहार), रोगका निदान और व्याधियोंकी चिकित्सा आदिका वर्णन है, उसे विद्वान् मनुष्य आयुर्वेद कहते है।

इस आयुर्वेदका मुख्य प्रयोजन स्वास्थ्यका रक्षण करना और गौण प्रयोजन रोगाक्रान्त रोगीका रोग दूर करके आरोग्यताका प्रदान करना है। रोग दूर करनेके लिये तीन प्रकारके ज्ञानकी आवश्यकता है—(१) हेतुज्ञान (रोगके भिन्न-भिन्न कारणोंका ज्ञान)। (२) लिंगज्ञान (रोगका लक्षण)। (३) चिकित्साज्ञान। इनमेंसे पहले और दूसरे विभागको इस ग्रन्थमें स्थान नहीं दिया। चिकित्सामें उपयोगी सिद्धप्रयोगसंग्रह, पारदप्रयोग, धातुओंको भस्म बनानेकी विधि इत्यादि विषय यहाँ विस्तारपूर्वक लिखे है।

चिकित्सा के तीन प्रकार है—मन्त्र-चिकित्सा, ओषधि-चिकित्सा और शस्त्र-चिकित्सा। मन्त्र-चिकित्सा और शस्त्र-चिकित्सा इस ग्रन्थका विषय नहीं है। केवल ओषधि-चिकित्सा-सम्बन्धी कुछ विचार किया है। अत्र शास्त्राचार्योंने इन ओषधियोंके मुख्य दो विभाग किये है—(१) सेन्द्रिय (इन्द्रियवाली-प्राणिजन्य और वनौषधि), (२) निरिन्द्रिय (खनिज ओषधि)। पुनः इनका वर्गीकरण करके कर्पूरादिवर्ग, वटादिवर्ग, गुडूच्यादिवर्ग, ऐसे अनेक विभाग किये है। इन ओषधियोंके स्वरूपज्ञान और रस, वीर्य विपाक, प्रभाव आदि गुण-धर्मज्ञानको जाननेके लिये आयुर्वेदके प्रकरण रूप अनेक निघंटु बने है।

दूसरी रीतिसे ओषधि उपयोगके दो विभाग किये हैः—(१) सिद्ध ओषधि (अनेक ओषधि मिला करके अथवा एकही ओषधि अमुक संस्कारसे सिद्ध की गई हो, वह), (२) असिद्ध ओषधि (अलग-अलग ओषधि) इनमेंसे सिद्ध ओषधियोंके कृति और जाति भेदसे निम्न अनुसार चार विभाग होते है। इनका विवेचन पृथक्-पृथक् ४ शास्त्रो में किया है—

(१) कल्प-शास्त्र—एक अथवा अनेक ओषधियोका मिश्रण निश्चित विधिसे तैयार करके सेवन करानेसे अमुक विशेष फलकी प्राप्ति होती है। यह कल्प-शास्त्रके ग्रन्थोमें दिखाया है।

(२) वनस्पतिशास्त्र—इन ग्रन्थोमें भिन्न-भिन्न वानस्पत्यादि ओषधियो का विवेचन किया है।

(३) रसशास्त्र—पारद—और अन्य खनिज ओषधियोंको अन्य ओषधियोके संस्कार देनेसे वे शरीरमें नाना प्रकारके गुण उत्पन्न करती है। यह वर्णन इन ग्रन्थोमें किया है।

(४) रसायनशास्त्र—दो अथवा अधिक ओषधि मिलकर, मूल वस्तुसे भिन्न गुण अथवा अधिक गुणवाली ओषधि तैयार होती है, जैसे पारा, गन्धक और सोना मिलकर अधिक गुणवाला पूर्णचन्द्रोदय-रस, एव पारा और अन्य क्षार मिलकर भिन्न गुणवाला रसकपूर तैयार होता है। ये सब रसायन-शास्त्रके विषय है।

इनमेंसे वनौषधि, रस और रसायन शास्त्रके प्रयोगोमेंसे अनेक महत्वके प्रयोग, जिनका अनुभव कृष्ण-गोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थ ओषधालयमें और इतर परिचित चिकित्सकों द्वारा अनेक वर्षोंसे हो रहा है, उन प्रयोगोको इस ग्रन्थमें स्थान दिया है।

सिद्ध प्रयोग देना यह इस ग्रन्थका मुख्य विषय है। अनेक धातु-उपधातुओं की भस्म, विविध पारदकल्प, विविध वनौषधियों के मिश्रणसे बनाई हुई गुटिका आदि औषधियाँ, क्षार, घृत-तैलादि द्रव्योंको नाना प्रकारके औषधोंके संस्कार देकर सिद्ध की हुई औषधियाँ, इत्यादि सिद्ध प्रयोग हैं। इन प्रयोगोंमेंसे अनेकोंको अनेक औषधियोंके मिश्रण से तैयार किया जाता है। इन औषधि-द्रव्योंमें अनेक प्रकारके गुणोंके परमाणु मिश्रित रहते हैं। भिन्न-भिन्न द्रव्योंमें भिन्न-भिन्न गुण का प्राधान्य रहता है। इस हेतुसे कौन-कौन द्रव्य परस्पर सहायक हैं और कौन-कौन विरोधी है, यह विना शास्त्राभ्यास नहीं जाना जाता। विरोधी औषधियोंका मिश्रण बनानेपर कोई समय तुरन्त और कोई समय भविष्यमें हानि पहुँचती है।

विरोधी औषधियों (एन्टेगोनिस्ट्स-Antagonists) की क्रिया परस्पर एक दूसरेसे विपरीत होती है। इनमें कितनीक वीर्य-विरोधी और कितनीक संयोग-विरोधी हैं। उदाहरण दूध और दही, शराब और कुचिला, अफीम और सूचीबूटी, कुचिला और कपूर, इनका वीर्य परस्पर विरुद्ध होनेसे इनका मिश्रण नहीं कराया जाता। इस तरह अफीम और सूचीबूटी, धारीकून और सूचीबूटी, इनकी क्रिया परस्पर विरुद्ध होनेसे अफीम और धारीकूनके विष-प्रकोपमें सूचीबूटी तथा सूचीबूटीके विष-प्रकोपमें अफीम हितावह होती है। इस तरह धतूरा और पद्मकाष्ठकी क्रिया विरुद्ध है। धतूराका धूम्रपान करने पर उबाक होती है और कफ गिरता है, इसके विपरीत नये पद्मकाष्ठका फाण्ट या चूर्ण लेने पर उबाक और वमन बन्द हो जाती है। अतः ये सब परस्पर विरोधी हैं। इस प्रकारकी विरोधी औषधियों के मिश्रणसे लाभ के स्थान पर हानि पहुंच जानेकी संभावना रहती है।

अतः मनगढ़न्त रीतिसे औषधियोंको मिलाकर प्रयोग तैयार नहीं किये जाते। यदि नया प्रयोग करना हो, तो निम्न प्रकारकी औषधियों को मिलाकर तैयार करना चाहिये:—

१—रोगनाशक एक अथवा अधिक मुख्य औषधियाँ।

२—रोगके उपद्रवोंको शमन करनेवाली औषधियाँ।

३—मुख्य औषधिको सहायता पहुँचानेवाली औषधियाँ।

४—मुख्य और सहायक औषधियोंमें रहे हुए दोषको शान्त करनेवाली औषधियाँ।

जैसे ज्वर उतारनेके लिये ज्वरकेसरी वटी दी जाती है। इस ज्वरकसरीमें पारद, गन्धक, वच्छनाग, त्रिकटु, त्रिफला और जमालगोटा है। इन सब ओषधियोंको यथाविधि मिला, फिर भाँगरेके रसकी भावना देकर तैयार किया जाता है। इनमें उष्णता कम करके ज्वरको दूर करनेवाली मुख्य ओषधि वच्छनाग है। वच्छनागसे पसीना आता है, मूत्र साफ होता है, नाड़ी और हृदयकी बढ़ी हुई गति मन्द होती है, वेदना शान्त होती है और ज्वरकी निवृत्ति होती है।

किन्तु एकमात्र वच्छनागका ही उपयोग किया जाय तो व्याधि से मुक्ति नहीं मिल सकती। कारण, ज्वर होनेमें मुख्य हेतु सेन्द्रिय विष की उत्पत्ति है। जब तक सेन्द्रिय विषको नष्ट न किया जाय और सेन्द्रिय विष जस कारणसे उत्पन्न हुआ है उस परम्परा कारणको भी दूर नहीं हटाया जाय तब तक सेन्द्रिय विषकी उत्पत्ति होती रहेगी। फिर सेन्द्रिय विषको दूर करनेके लिये रक्तमें उष्णता बढ़ ज्वरका वेग उत्पन्न होता ही रहेगा। अतः इस मूल कारणको भी साथ-साथ नष्ट कर देना चाहिये। इस सेन्द्रिय विषका उत्पादक कारण क्या है? इस बात का शास्त्रानुरूप विचार करनेपर अवगत होता है कि, आमाशय रस दूषित होकर (आम बनकर) के नाडियोंमें प्रविष्ट हो जाता है जिससे प्रस्वेद द्वारा विषका निकलना रुक जाता है। यह विष रक्तमें रहे हुए अनेक रक्ताणुओंको दूषित बना देता है, और इसी हेतुसे हानिकर सूक्ष्म कीटाणुओंकी उत्पत्ति होती है।

अन्त्र मलसे पूर्ण हो जाते है, अतः वे अपना फर्ज (Duty) बजानेमें असमर्थ होते है। फिर कोष्ठाग्नि स्वस्थानसे बाहर निकल, दोषोंको जलानेके लिये रक्तमें उष्णता उत्पन्न करती है।

ज्वरको शमन करनेके लिये इन सब कारणोंको (जन्तु, दूषित आम और मलावरोधको) दूर करना चाहिये। किन्तु ये सब कार्य एक मात्र वच्छनागसे नहीं हो सकते। इसलिये वच्छनागके साथ सहायक ओषधियाँ मिलाई है। वच्छनागको सहायता पहुँचाना, जन्तुओंका नाश करना और रक्तके दूषित अणुओंको शुद्ध करना, इन कार्योंके लिये पारद मिलाया है। पारद जन्तुघ्न, कोष्ठस्थ दोषनाशक और योगवाही (गुणवर्धक) है। परन्तु, बिना गन्धक मिलाये अन्य ओषधियोंके साथ पारद नहीं मिल सकता। अतः गन्धक भी मिलाया है। गन्धक पारदको मूर्च्छित बनाकर पारदकी चंचलता दूर करता है। गंधक में दुर्गन्धनाशक, रक्तशोधक, जन्तुघ्न और पाचन

गुण भी है। अतः नाड़ियोंमें रहे हुए दोषका संशोधन, कीटाणुओंका नाश और पाचन-क्रियाको सबल बनाना, इन कार्योंमें सहायता मिलती है। तदपि वच्छनाग और पारद गन्धककी कज्जली मिलानेसे भी मलावरोध रूप पापका शमन सरलतापूर्वक नहीं होता।

अनेक प्रकारके ज्वर बहुधा मलावरोध होनेपर ही होते हैं और वे कब्ज दूर होनेसे दूर हो जाते हैं। अतः जमालगोटेका मिश्रण किया है। जमालगोटा मलावरोधनाशक है। परन्तु इसमें वमन करानेका और आँतोंमें दाह उत्पन्न करनेका दोष है। इस हेतुसे भाँगरेके रसकी भावना दी है और त्रिफला मिलाया है। भाँगरेसे दाह और उत्राकका शमन होता है तथा वातवाहिनियोंका क्षोभ भी दूर होता है। एवं त्रिफला से जमालगोटेकी तेजी कम होती है और दोषोंका पचन होता है।

इनके अतिरिक्त वच्छनाग उष्णता कम करता है। परन्तु साथ-साथ हृदयकी गतिको कुछ शिथिल बनाता है। इस दोषको दबानेके लिये शास्त्राचार्योंने इस औषधिमें कज्जली और त्रिकटुकी योजना की है। पारद-गन्धककी कज्जली हृद्य है, और त्रिकटु भी हृद्य, उष्ण, किंचित् पसीना लानेवाला और दीपन-पाचन है।

इस तरह बने हुए प्रयोगमें वच्छनाग मुख्य रोगनाशक औषधि है। जमालगोटा मल दोषको दूर करनेवाली दूसरे नम्बरमें कही हुई उपद्रवनाशक औषधि है। पारद और गन्धक रक्तशोधक और गुण-वर्द्धक होनेसे दूसरे और तीसरे प्रकारकी सहायक औषधियाँ है। त्रिकटु हृद्य, दोषशामक और अग्निप्रदीपक होनेसे उपद्रवनाशक और दोष-शामक औषधि है। ज्वरमें बहुधा अग्निमांद्य हो जाता है। उसे दूर करनेका काम त्रिकटु करता है, और बल्य होनेसे वच्छनागके दोषका भी शमन करता है। अतः यह दूसरे और चौथे प्रकारमें लिखे हुए कार्योंको करनेवाली औषधि है। भाँगरेका रस और त्रिफला, दोष-शामक चतुर्थ विभागकी ही औषधियाँ हैं।

इस उदाहरणके अनुसार चाहे जितने नये प्रयोग बना सकते हैं। शास्त्रमें ६४-६४ औषधियोंके क्वाथ आदिका जो विधान किया है, उन सबमें यही नियम वर्तमान है। यद्यपि कतिपय समय रोगनाशक अनेक मुख्य और गौण औषधियों एवं उपद्रव-शामक अनेक औषधियों को ही मिलाया जाता है, चतुर्थ विभाग की औषधि मिलानेकी आव-श्यकता नहीं रहती, तथापि मूल नियमका परिवर्तन नहीं होता।

शास्त्रमें रोग, उपद्रव, ऋतु, देश, औषध बल, प्रकृति आदिका पूर्ण विचार करके ही प्रयोग लिखे है, एवं अर्वाचीन विद्वान् भी इसी तरह प्रयोग तैयार करते है। परन्तु साधारण वोधवाले चिकित्सकोंके लिये नूतन प्रयोगकी योजना करनेमें कठिनता रहती है। यह प्रतिबन्ध कुछ अशमें दूर होवे, इसलिये यहाँ मुख्य नियमको संक्षेपमें दर्शाया है।

जिन सिद्ध ओषधियोंके प्रयोगोको प्राचीन आचार्यों और विद्वानोंने शास्त्र-विधि अनुसार तैयार किया है वे सब निर्भयतापूर्वक उपयोगमें आ सकते है। तथापि कोई-कोई समय देश, काल और रोगीकी परिस्थिति अनुसार तुरन्त लाभ होनेके लिये मात्रा और मिश्रणमें थोडा अन्तर किया जाता है। कदाच अन्तर न किया जाय तो भी नुकसानका भय नहीं है। किन्तु शास्त्रविधिका त्यागकर मनगढंत रीतिसे अनेक ओषधियोंका मिश्रण करके उपयोग किया जाय, तो विशेष जवाबदारी रहती है। क्वचित् ऐसी मनोकल्पित ओषधिसे भी किसी को लाभ हो जाय, तो भी वह अनेकों को हानि पहुँचावेगी।

अच्छी विशुद्धि ओषधि किसको कहनी चाहिये, इस विषय में वाग्भट्टाचार्य ने लिखा है कि:—

प्रयोगः शमयेद्व्याधिं योऽन्यमन्यमुदीरयेत्।
नासौ विशुद्धः शुद्धस्तु शमयेद्यो न कोपयेत् ॥

अ० हृ० सू० स्था० अ० १३-१६ ॥

ओषधि उसे कहनी चाहिये जो व्याधिका शमन करे। एक रोग का शमन करके दूसरा रोग उत्पन्न करे उसे अशुद्ध (अनुपयोगी) जाननी चाहिये। जो रोगका शमन करे और कुछ भी विकृति न करे, उसीको शुद्ध लाभदायक ओषधि समझनी चाहिये।

इसी तरह ओषधि प्रयोग तैयार करनेमें नवीन चिकित्सकोको आपत्ति आती है। वह इन परीक्षित प्रयोगोसे बहुत अंशमें दूर हो सकेगी, ऐसी मेरी धारणा है। इसी हेतुसे अनुभूत संग्रहको प्रकाशित किया है। यदि अधिकारीवर्ग इस ग्रन्थसे कुछ लाभ उठावेंगे, तो मै अपना परिश्रम सफल मानूँगा।

आवश्यक सूचना ।

(ओषधि-सम्बन्धी सूचना)

(१) वनौषधि वर्षाकाल पीछे अथवा एक वर्ष हो जाने पर न्यून गुण युक्त हो जाती है। साधारण चूर्ण प्राय. दो मास पीछे और लवण, हींग और पारद युक्त चूर्ण छै मास अथवा अधिक समय पीछे न्यून गुण वाले हो जाते हैं परन्तु काँचकी शीशीमें मजबूत बन्द रहने से गुण कुछ विशेष समय तक रह सकते हैं।

(२) गोली, अवलेह, शर्बत आदि एक वर्ष पश्चात् न्यून गुण वाले होते हैं। पाक एक माससे अधिक समय तक अच्छा नहीं रहता। तैल चार मास पश्चात् न्यून गुणवाला हो जाता है। घृत पुराना होने पर भी गुणयुक्त रहता है।

(३) आसव, अरिष्ट, कूपीपक्व रसायन और धातुओंकी भस्में जितनी पुरानी होती हैं उतनी ही विशेष सौम्य होती हैं।

(४) गूगलवाली कुटिका दो-तीन वर्ष तक अच्छी रह सकती है, तदनन्तर गुणका ह्रास होने लगता है।

(५) पीपल, धनियाँ और वायविडंग एक वर्षका पुराना लेवे।

(६) नेत्र रोगकी ओषधिमें घी पुराना और खानेके लिये नया ले, तथा बाहर लेप करनेके लिये घृतको धोकरके उपयोगमें ले।

कफनाशक ओषधिके के साथ अनुपानरूपसे शहद पुराना और धातुपौष्टिक ओषधिमें नया ले।

(८) गिलोय, कुड़ेकी छाल, अड़ूसा, शतावरी, असगन्ध, पीयाबाँसा, सौंफ, काशीफल, प्रसारणी, ये नव ओषधियाँ ताजा ले। ताजा न मिले, तो सूखी ओषधि समान वज़नसे ले।

(९) उपरोक्त नव ओषधियोंके अतिरिक्त अन्य ओषधियोंको सूखीके बदले ताजी लेनी हो तो दुगुनी लेनी चाहिये।

(१०) बड़े वृक्षोंके मूल लेनेको लिखा हो, वहाँ पर वृक्षकी अन्तर छाल लें, परन्तु छोटे-छोटे वृक्षोंके मूल ही ले। सिर्फ लघु पञ्च-मूलके बदलेमें पञ्चाङ्ग लेनेका रिवाज है।

(११) जहाँ कड़वे पटोल लिखे हों, वहाँ पर मात्रा उसके पत्ते ही लिये जाते हैं।

(१२) यदि कोई ओषधि समय पर न मिल सके, तो प्रति-निधि रूपसे उसके समान गुणवाली दूसरी ओषधि लेनी चाहिये।

परन्तु ओषधि प्रयोगमें जो मुख्य वस्तु हो, उसके बदलेमें प्रतिनिधिभूत अन्य ओषधि न ले। केवल गौण ओषधिके स्थानमें प्रतिनिधि ले। जैसे, आकके दूधके अभावमें आकके-पत्तोंका रस लें। अजवायन न मिलनेपर अजमोद ले। इस तरह और ओषधियोंके लिये भी योजना करे। प्रतिनिधि विषयक विशेष वर्णन आगे परिभाषा प्रकरणके अभाव वर्गमें लिखा जायगा।

(१३) क्वाथ के लिये बरतन मिट्टीका ले, और मुँह खुला रखकर क्वाथ करे, यह प्रचलित रीति है। मुँह ढककर मन्दाग्निसे क्वाथ किया जाय, तो विशेष लाभ होता है, ऐसा नव्य विचारकोंका मत है। पात्र मिट्टीका न मिले, तो पीतलका कलई किया हुआ लें।

(१४) तैल पकानेके लिये पीतलका कलई किया हुआ ही पात्र लेवे, और तैलसे चार-छै गुना बड़ा लेना चाहिये। अन्यथा तैलमें उफाण आ, बाहर निकल अग्निमें गिरनेका भय रहता है। लोहेकी कढ़ाहीमें तैल पकानेसे तैलका रंग काला हो जाता है।

(१५) एल्युमिनियमका बरतन कदापि ओषधि-कार्यके लिये उपयोग में न लें वैसे ही खाने पीनेमें भी एल्युमिनियमका पात्र लेना अनुपयुक्त माना गया है। एल्युमिनियमके बरतनमें बने हुए भोजन और ओषधिमें जहर मिश्रित हो जाता है। उसके सेवनसे पाचन-क्रिया बिगड़ती है और रक्त विकृत होता है। एल्युमिनियमके पात्रमें यदि जल ४-८ घण्टे भरा रहे, तो वह भी दूषित हो जाता है।

(१६) जायफल, जावित्री, लौंग, सौंफ आदि सुगन्धित तैली द्रव्योंका चूर्ण आवश्यकता पर करे। पहलेसे विशेष परिमाणमें कूटकर तैयार न रखे। तैली द्रव्य मिश्रित ओषधियोंके चूर्णको काँचकी मजबूत डाट वाली शीशीमें रखना चाहिये। डाट रहित शीशीमेंसे अथवा टीनके डिब्बेमेंसे चूर्णका सत्वांश थोड़े ही दिनोंमें निकल जाता है।

(१७) नमक और क्षार (नौसादर, शोरा आदि) मिश्रित ओषधियाँ वर्षाऋतुमें शीतल वायु लगनेसे गुणहीन हो जाती हैं। इस-लिये ऐसे समयपर शीशीमेंसे आवश्यकता हो, उतने परिमाणमें ओषधिको सम्हालपूर्वक निकाल, शीशीको सत्वर बन्द कर देना चाहिये। टिन के डिब्बे आदि धातु-पात्रमें रखनेसे लवण और धातुका संयोग होकर ओषधि दूषित हो जाती है।

(१८) घृत और तैलको काँच या चीनी मिट्टीके अमृतवानमें रखना चाहिये। टिनके डिब्बेमें जल्दी खराब हो जाते हैं। अमृतवानमें

से भी घृतको अँगुलियोसे न निकाले। कलछी या चम्मचसे निकालना चाहिये। अन्यथा घृतमें दुर्गन्ध हो जाती है।

(१९) औषधिका उपयोग करनेके पहले रोगके निदान, औषधि के गुण, देश, काल (ऋतु) और प्रकृतिका विचार करना चाहिये। जैसे ताजा गोदुग्ध पथ्य, तेजोवर्धक और तुरन्त बल बढानेवाला है, तो भी पित्त-ज्वर, अतिसार, संग्रहणी, बवासीर, कफवाली खाँसी, कृमि विद्रधि, नवीन सुजाक और कुष्ट आदि रोगोमें हानिकर है। कफ प्रकृतिवालेके लिये हितकर औषधियाँ, पित्त प्रकृतिवालेको समान रोग होनेपर भी हानि पहुंचाती है। एवं देश और काल भेदसे भी औषध-योजनामें परिवर्तन किया जाता है। यदि उपरोक्त रोगोमें दुग्ध देना आवश्यक हो, तो दूध गरम करते वक्त थोडा सोंठका चूर्ण डाल दें।

(२०) संखिया, हरताल, रसकपूर, दालचिकना, मैनसिल, वच्छनाग, कुचिला और कनेर आदि जहरी औषधियोकी तीक्ष्णता और मलदोषको दूर करके उपयोगमें लिया जाता है। ऐसी औषधियोके शोधन करनेकी विधि शोधन प्रकरणमें लिखी है, और धातु-उपधातुएँ प्रायः भस्म करके ही प्रयोगमें ली जाती है।

(२१) हींगको घीमें भून करके उपयोगमें लेनी चाहिये।

(२२) फिटकरी और सोहागाको खानेकी औषधिमें मिलानेके लिये प्रायः फूला बना करके उपयोगमें लिया जाता है। क्वचित् दादकी औषधिमें सोहागा कच्चा भी मिलाते हैं, और पूयप्रमेहकी औषधिमें फिटकरी कच्ची ही मिलाई जाती है।

(२३) वच्छनाग प्रधान औषधि बहुधा शीतांग ज्वर, मुद्दती ताप, विपूचिका और हृदयकी धड़कनमें नहीं देनी चाहिये। यदि देनी आवश्यक है, तो सम्हालपूर्वक बहुत कम मात्रामें दे। कारण, वच्छनाग शरीरकी उष्णताको शीघ्र मूत्र और पसीना लाकर कम करता है, और हृदयको कुछ शिथिल बनाता है। जहाँ ताप बढा हुआ हो और ताप कम करना आवश्यक हो, वहाँपर वत्सनाभयुक्त औषध देनेसे स्वेद आकर ताप शनैः शनैः कम हो जाता है।

(२४) कुचिला नये तीक्ष्ण वातप्रकोपके समय हानि पहुंचाता है और पुरानी वातव्याधिमें अति हितकर है। मात्रा अधिक होने पर वातवाहिनियाँ खिचने लगती है।

(२५) पारद-मिश्रत औषधि सगर्भा स्त्री, दुर्बल, वृक्कशोथयुक्त पाण्डु और कण्ठमालके रोगीको कम अनुकूल रहती है। स्त्रियोके

गर्भाशय और योनिके रोगोंमें हितकर है। एवं बालकोंको पारद-मिश्रित ओषधियाँ तो अति अनुकूल रहती हैं।

(२६) सोमलवाली ओषधियाँ घी या दूध पिलाकर देनी चाहिये। परन्तु न्युमोनिया, सन्निपात आदि रोगोंमें घृत, दूध पिलाये बिना रोगानुसार अनुपानके साथ दें। कितनेक विद्वानोंने शुक्र-क्षयमें सोमलवाली ओषधि हितकर नहीं मानी। एवं सन्निपातमें पित्तप्रकोपसे प्रलाप होता हो, नेत्र लाल हों और बेहोशी आदि उपद्रवों की प्रतीति होती हो, तो सोमलवाली ओषधि नहीं देनी चाहिये।

न्युमोनिया आदि कफ-प्रधान रोगोंमें सोमलयुक्त औषध मल्ल-चन्द्रोदय, समीर-पन्नग आदि सत्वर लाभ पहुँचाते हैं। कफ-प्रधान रोगोंमें जहाँ सोमलभस्म व पुष्प देने का निषेध है, वहाँ पर मल्ल-चन्द्रोदय या समीर-पन्नग वासा-स्वरस या चूर्णके साथ दिया जाता है। शीताङ्ग सन्निपातमें सोमलयुक्त औषध सत्वर फलप्रद हैं। जो ज्वर बार-बार स्वेद आकर उतर जाता है, वहाँ शारीरिक उष्णताका अति ह्रास न होनेके लिये मल्लमिश्रित औषध दिया जाता है।

(२७) हरताल भस्म और हरतालमिश्रित ओषधि पित्त प्रधान कुष्ठ और पित्त प्रधान वातरक्तमें हानिकर है। कारण, हरतालसे पित्त की वृद्धि होती है।

(२८) ताम्र भस्म मूत्रपिंडके शोथमें उत्पन्न हुए उदर रोगमें हानिकर है। कारण, ताम्र भस्म उष्ण और पित्त विरेचक होनेसे मूत्र-पिण्डके कार्यमें प्रतिबन्ध करती है। जिससे मूत्रमें पित्त मिल जाता है और मूत्रोत्सर्ग क्रिया कम हो जाती है। फिर उदरमें जलसंचय अधिक होने लगता है, और शोथ बढ़ता जाता है।

(२९) सुवर्णमाक्षिक भस्म क्विनाइनके विषको दूर करनेमें अति हितकर है, परन्तु नये तीव्र ज्वरमें नहीं देनी चाहिये।

(३०) शृङ्ग भस्म वातजन्य शुष्क कासमें हानिकर है। तथा कफप्रधान कास, श्वास और न्युमोनिया आदि रोगोंमें अति हितकर है।

(३१) जसद-भस्म उपदंशजन्य कंठ रोगमें हितकर नहीं है।

(३२) वराटिका भस्म आमयुक्त जीर्ण संग्रहणीमें लाभदायक है। परन्तु नूतन आम संग्रहणीमें हितकर नहीं है।

(३३) लोह भस्म रक्तार्श और रक्तातिसारके आरम्भमें हानि-कर है। परन्तु वातार्श और पित्तार्शमें अधिक शक्तिपात हुआ हो,

तो भी लाभदायक है। रक्तवृद्धि और पुष्टि के लिये लोहभस्म भोजन के बाद देना, यह विशेष हितकर है।

(३४) सुवर्ण भस्म संखियासे मारण की होवे, तो क्षय रोग की प्रथमावस्थामें नहीं देनी चाहिये, अन्यथा शुष्क कास बढ़ाती है। पारद गंधक या वनौषधिसे मारित सुवर्ण भस्म क्षय रोगमें विशेष हितकर है।

(३५) सुवर्ण पर्पटी पुरानी संग्रहणी रोग में ताप होने पर अथवा मानसिक विकृति होनेपर नहीं देनी चाहिये। सुवर्ण पर्पटी के सेवनकालमें दुग्धाहार विशेष लाभदायक है।

(३६) सुवर्णमिश्रित औषधि ज्यादा परिमाणमें क्षय रोगीको नहीं देनी चाहिये। मात्रा अधिक होने पर क्षयके जन्तु (Tuberculosis) एक साथ अधिक संख्यामें मरते हैं, जिससे विषवृद्धि होकर ज्वर बढ़ जाता है। अतः शुद्ध सुवर्णकी मात्रा एक समयमें $\frac{१}{१००}$ से $\frac{१}{६०}$ रत्ती तक और सुवर्ण भस्मकी मात्रा $\frac{१}{३२}$ रत्ती तक देनी चाहिये। जब क्षय रोगमें ताप ९९ गिग्रीसे अधिक हो, तब सुवर्ण-मिश्रित औषधि न दें। अन्य औषधिसे तापको कम करनेके बाद सुवर्ण-मिश्रित औषधि दें। मंथर ज्वरके विषका ह्रास कराने तथा स्थावर जङ्गम विषके शमनार्थ सुवर्ण-प्रधान औषधि प्रयुक्त होती है।

(३७) एलुवा वाली औषधियाँ विशेषतः रात्रिको सोनेके समय दी जाती है। परन्तु यह सगर्भा स्त्रीको नहीं देनी चाहिये।

(३८) अफीम वाली औषधि बालकोंको न दे। यदि अत्यावश्यकता हो, तो सम्हालपूर्वक दे। रक्तार्श और रक्तातिसारमें दूषित रक्त और कच्चे आम गिरते हो, तब तक अफीम वाली औषधि न दें।

सगर्भा स्त्रीको अफीम वाली औषधि कदापि नहीं देनी चाहिये। कमजोर आँतवाले मधुमेहके रोगीको अफीम वाली औषधि सम्हालपूर्वक देनी चाहिये। नेत्रमें अंजन और लेपके लिये अफीम जितनी पुरानी मिले, उतनी ही हितकर है।

(३९) अफीम आदि कतिपय औषधियाँ स्वस्थावस्थामें जिस तरह क्रिया या परिणाम दर्शाती है, उस तरह कतिपय विकार कालमें परिणाम नहीं दर्शाती। जैसे निद्रा लानेमें अफीम उत्तम औषधि है, फिर भी किसी-किसी व्यक्तिको शारीरिक उत्ताप अधिक होनेपर ज्वरावस्थामें निद्रा नहीं ला सकती, प्रत्युत्त उत्तेजना देती है, जिससे प्रलाप बढ़ जाता है।

(४०) मादक ओषधिकी क्रिया शीतल देशकी अपेक्षा उष्ण-देशमें अधिकतर प्रकाशित होती है; और प्रातःकाल सेवन की हुई ओषधि इतर समयकी अपेक्षा अधिक गुण दर्शाती है ।

(४१) किसी-किसी व्यक्तिको लोहभस्म, सोमल, हींग, अफीम, क्विनाइन या इतर कोई-कोई ओषधि अनुकूल नहीं होती । ऐसे मनुष्योंके लिये उस ओषधिका प्रयोग (रोगनाशक होनेपर भी) नहीं करना चाहिये । एक रोगिणीको दूध अनुकूल नहीं रहता था, दूध पिलानेपर थूकमें रक्त आने लगता था जिससे दूध अहितकर समझकर हमें छुड़ा देना पड़ा था ।

(४२) जिन-जिन ओषधियोंके रासायनिक संयोग द्वारा गुणमें परिवर्त्तन हो जाता हो, ऐसी परस्पर विरोधी ओषधियोंका मिश्रण नहीं करना चाहिये । जैसे दूध दही, दूध और नीबूका रस, दूध और लहसन आदि-आदि । परन्तु क्वचित अतिसारके रोगीको रोगके महिमानुसार दूधमें नीबूका रस निचोड़कर तुरन्त पिलाते हैं । मस्तिष्क-गत वात-विकारमें रोगीको दूधमें लहसन मिला, फिर पका कर सेवन कराते हैं । इस तरह अन्य रासायनिक संयोग-विरोधी द्रव्योंका प्रयोग भी हो सकता है ।

(४३) शराब, तमाखू, अफीम आदिके व्यसन कराना हानिकर है । फिर भी इतर मार्ग न होने पर व्यसन कराया जाता है । जैसे मधुमेह दूर न होने पर अफीमका व्यसन, मानसिक आघात शमनार्थ शराबका व्यसन, निर्बल व्यक्तिकी मानसिक थकावटको दूर करानेके लिये चायका व्यसन आदि-आदि, इस तरह विविध व्यसनो द्वारा रोगका दमन कराया जाता है ।

(४४) मुख द्वारा सेवन की हुई ओषधि जितने परिमाणमें और जितने समयमें फल प्रदर्शित करती है, इसकी अपेक्षा अन्तः-क्षेपण की हुई ओषधि कम परिमाणमें और सत्वर लाभ पहुँचाती है । कारण, आमाशय और अन्त्रस्थ श्लैष्मिक कला द्वारा ओषधिसत्व का शोषण मृदुतापूर्वक और विलम्बसे होता है । शोषण होजाने पर भी वह सत्व यकृत्में जाता है और उसमें पित्त मिश्रित होकर रक्तमें गमन करता है, जिससे यकृत्में भी ओषधिका कुछ अंश नष्ट हो जाता है ।

परन्तु अन्तःक्षेपण द्वारा ओषधि द्रव्य सत्वर शोषित हो जाता और उसके सत्वका इतर यन्त्रो द्वारा क्षय नहीं होता । इस हेतुसे कम मात्रा होनेपर भी सत्वर लाभ पहुँचाता है ।

भीतर प्रवेश किये हुए औषध सत्व का शोषण रसत्वचा (Serous membrane) द्वारा अतिसत्वर होता है। संयोजक कला (Intercellular tissue) द्वारा अपेक्षाकृत कम शोषण और श्लैष्मिक कला द्वारा सबकी अपेक्षा कम शोषण होता है।

(४५) कितनीक औषधियाँ प्रतिदिन सेवन करनेपर देहमें शनैः-शनैः संचित होती रहती है, जैसे पारद, सोमल, कुचिला आदि। इन सग्रहीत औषधियोंका असर अर्थात् संग्राहक क्रिया (Cumulative action) कभी-कभी सहसा उपस्थित होजाता है। अतः इन औषधियो का सेवन दीर्घकाल तक करना हो, तो बीच बीचमें थोड़े-थोड़े दिन तक इनको छोड़ देना चाहिये।

(४६) चूर्ण और गुटिका आदि औषधियोंकी अपेक्षा आसव-अरिष्ट, अर्क, क्वाथ आदि औषधियाँ सत्वर शोषित होकर अपना फल दर्शाती है। अतः तीव्र विकार शमनार्थ औषधिका द्रव-प्रवाही रूपसे उपयोग करना विशेष हितावह माना जाता है।

(४७) आमाशयमें आहार होनेकी अपेक्षा आमाशय खाली होनेपर औषधि सत्वर शोषित होजाती है। इसके अतिरिक्त प्रयोगभेद, रोगभेद, स्त्री-पुरुष भेद, आयुभेद, ऋतुभेद, देशभेद, अभ्यासभेद, शारीरिक उत्तापभेद आदि कारणोंसे औषध-सत्वकी शोषणक्रियामें तारतम्यता होजाती है।

(४८) अफीम, सोमल, शराब, गाँजा, कुचिला आदि औषधियाँ व्यसन, अभ्यास (Idiosyncrasy) के हेतुसे अधिक मात्रामें सेवन करनेपर भी विष-क्रिया उत्पन्न नहीं करा सकती। अतः ऐसी औषधियाँ सेवन करानेके पहले इस बातको भी सोच लेना चाहिये।

(४९) पारद-घटित औषधियाँ युवावस्थाकी अपेक्षा बाल्यावस्थामें अधिकतर अनुकूल रहती है।

(५०) अफीम शिशुओंसे अधिक मात्रामें सहन नहीं हो सकती।

(५१) प्रस्वेद लानेवाली औषधि देनेपर रोगीको भलीभाँति वस्त्र ओढ़ाकर बैठाना या सुलाना चाहिये।

(५२) नित्य उपयोगके दन्तमंजनमें तेज नमक मिलाना हानिकर है। तेज नमकसे दाँतोकी सफेदी और मसूढ़ेको हानि पहुँचती है, दाँतोकी संधि घिस जाती है, और दाँत अलग-अलग होजाते है। परन्तु जिनके दाँतोंमें क्रमि हो, पीप आता हो, उनको सैंधानमक और सरसोंका तैल मिला दन्तमंजन विशेष लाभदायक है।

(५३) किसी भी चूर्णमें ईसबगोल मिलाना हो, तो बिना कूटा ही मिलाना चाहिये। कूटा हुआ ईसबगोल हानिकर है।

(५४) अनुपान रूपसे घृत और तैल लेनेपर एक घण्टा ठण्डा जल न पीवें। यदि अति व्याकुलता उपस्थित हो, तो निवाया जल थोड़े परिमाणमें ले सकते हैं।

(रोग-विषयक सूचना)

(५५) नूतन ज्वर में तेज वायुका सेवन, दिनमें अधिक समय तक शयन, स्नान, अभ्यङ्ग, मैथुन, क्रोध और परिश्रम हानिकर है।

(५६) चढ़ते बुखारमें ज्वरहर ओषधि देनेसे ज्वर विशेष कुपित होता है।

(५७) जब तक नूतन ज्वर शरीरमें रहे, तब तक खानेको कुछ भी नहीं देना चाहिये। आचार्यों ने कहा है कि:—

शयनं पित्तनाशाय वातनाशाय मर्दनम्।
वमनं कफनाशाय ज्वरनाशाय लङ्घनम्॥

(५८) ज्वर रोगमें जल गरम करके ठण्डा किया हुआ थोड़ा-थोड़ा आवश्यकतानुसार देते रहना चाहिये।

(५९) पुराने ज्वरमें रोगीको घी और दूध अवश्य देना चाहिये। दूधको 'सर्वज्वराणां जीर्णानां क्षीरं भेषज्यमुत्तमम्' इस वचनसे उत्तम भेषज माना है। जीर्णज्वर जो क्वाथ, वमन, लंघन और लघुभोजनसे शमन न हुआ हो, उस पर शास्त्रोक्त घृतपान हितावह माना गया है। इसके रोगीको कदापि उपवास न करावे। यदि अपथ्य सेवनसे दोष प्रकुपित हुए हो, तो सम्हालपूर्वक लङ्घन करावे।

(६०) मुद्दती ज्वरमें ज्वरशामक औषध न देवें। विकारको पचन करनेवाली पाचन और शोधन ओषधि देनी चाहिये।

(६१) चातुर्थिक ज्वर (तिजारी) वाले रोगीको ज्वर दूर होने के पश्चात् भी दो-चार मास तक गुड़ वाला पदार्थ खानेको नहीं देना चाहिये, अन्यथा ज्वर पुनः आ जाता है।

(६२) शीतपाक ज्वरमें पीनेको ठण्डा जल दिया जाता है।

(६३) तरुण ज्वरमें द्विदल धान्य आदि भोजन, मांस, स्त्री-सेवन और पतली कॉंजी पीना अति हानिकर है।

(६४) त्रिदोष ज्वरमें घृत कदापि नहीं देना चाहिये, एवं मांस या भात देना भी हानिकर है।

(६५) सन्निपातमें दाह हो तो शीतल जल नहीं पिलाना चाहिये। यदि प्रस्वेद आता हो, सत्वर वन्द करनेकी चिकित्सा करनी चाहिये। अन्यथा रोगी शीतमें आ जाता है।

(६६) यदि सन्निपातमें तन्द्रा हैं, तो तीक्ष्ण नस्य आदि औषध द्वारा तुरन्त चेतना लानेका प्रयत्न करना चाहिये।

(६७) यदि सन्निपातमें कर्णशोथ होजाय, तो जोंक आदि उपचारों से तुरन्त सूजनको दूर करना चाहिये।

(६८) सन्निपातमें पहले वात-कफका शमन करे, तदनन्तर वातपित्तको दूर करना चाहिये।

(६९) ज्वर चले जानेके पश्चात् जब तक शरीरमें शक्ति न आवे, तब तक मैथुन, व्यायाम, मार्गगमन, देरसे पचने वाले भोजन, सूर्यके ताप या वायुका अति सेवन और ठण्डे जलसे स्नान हानिकर है।

(७०) ज्वर रोकनेवाली ओषधि एक दिनमें ३ समय दे। वारीके ताप आनेके ६ घण्टे पहलेसे २-२ घण्टे पर ३ वार ओषधि दे तथा सन्निपातमें रोग कावूमें आये तब तक २-२ घण्टे पर ओषधि देते रहना चाहिये।

(७१) सन्निपात, मुद्दती ज्वर, प्लेग और क्षय रोगमें जुलाव देने अति हानिकर हैं। परन्तु मलावरोध हो तो मृदु विरेचन देकर उदर शुद्धि कर लेनी चाहिये। दूधमें अमलतास डालकर कोष्ठशुद्धिकी जाती है।

(७२) अतिसार रोगीको कच्चा दूध और पतला अन्न (काँजी आदि पिलाना हानिकर है, किन्तु चावलकी लाह्याकी यवागूका निषेध नहीं है। अतिसारमें उपवास अति लाभदायक है। ओषधि थोड़ी-थोड़ी मात्रामें दिनमें ३-४ वार देनी हितकर है। एक साथमें ज्यादा ओषधि देनेसे लाभके वदले हानि होती है। कच्चा आँव पड़ता हो, तब तक अफीम या अन्य स्तम्भक ओषधि नहीं देनी चाहिये। अतिसार शान्त होनेके पश्चात् भी १५ दिन तक अधिक भोजन, पक्वान्न, कच्चा अनाज और देरसे पचने वाले पदार्थोंका त्याग कराना चाहिये।

(७३) विसूचिका (कॉलेरा) में रोगीको पीनेके लिये वार-वार एक-एक तोला वर्फका जल दे। अथवा गरम करके शीतल किये हुए जलको सौंफके अर्कमें मिलाकर एक-एक चम्मच देते रहे। एक साथमें ज्यादा जल नहीं पिलाना चाहिये। अफीम वाली ओपधि हो सके, तब

तक न दे पेशाब बन्द हो, तो मूत्रेन्द्रियमें कपूर रक्खें और पेड़ू पर केसूला तथा कलमी शोराकी लुगदी बाँधें। यदि दस्त बन्द हो जाने पर वमन बन्द न होती हो, तो जलके बदलेमें तिलका तेल अथवा घृत पिलाना अति हितकर है।

(७४) रक्तार्श और रक्तातिसारके आरम्भमें जब तक दूषित रक्त गिरता हो तब तक लोहभस्म आदि स्तम्भक औषध न दें अफीमसे भी तुरन्त दूषित रक्तका स्तम्भन न करें। अर्शके रोगीको कच्चा दूध और मलावरोधकारक भोजन नहीं देना चाहिए।

(७५) जीर्ण मलावरोधके रोगीको बार-बार विरेचन देना हानिकर है। आवश्यकता पर बस्तिसे आँतोंको साफ कर लेना, यह लाभदायक है। परन्तु बस्तिका उपयोग भी बार-बार नहीं करना चाहिये।

(७६) अम्लपित्त रोगमें भोजनके बीचमें या भोजन करके तुरन्त ज्यादा जल पीना, शाक ज्यादा खाना, खट्टे पदार्थ खाना, गरम गरम भोजन, चाय आदि लेना ये सब हानिकर हैं।

(७७) दाहयुक्त अम्लपित्त रोगमें वमन विरेचनसे शोधन किये बिना औषधि देना लाभदायक नहीं है।

(७८) रक्तपित्तके रोगीके धूम्रपान आदि व्यसन और पित्तवर्द्धक आहार विहारोंका त्याग करना चाहिये।

(७९) सब प्रकारके उदर रोगोंमें मट्ठा और गोमूत्रका सेवन अति लाभदायक है।

(८०) कृमि रोगमें गुड़, अधिक दूध और कच्चा दूध हानिकर हैं, तथा तेल हितकर है।

(८१) भगन्दरमें हींग, बेसन और मधुर पदार्थ हानिकर हैं।

(८२) रक्त गुल्म की चिकित्सा शास्त्रमर्यादा अनुसार १० मास के बाद करनी चाहिये। किन्तु नव्य मत अनुसार यदि रोग निर्णीत होजाय, तो तुरन्तकी जाती है।

(८३) कफप्रधान गुल्म रोगमें वमन कराना हानिकर है।

(८४) शूल रोगमें द्विदल धान्य (चना, मसूर, मटर आदि) का सेवन अति हानिकर है। वमन, लंघन, स्वेदन और पाचन औषधियाँ लाभदायक है। प्रथम स्वेदन देना विशेष हितकर है।

(८५) वात जन्य शूलमें रेचक औषधि और निरूह बस्तिः पित्त-जन्य शूलमें मधुर औषधियोंसे सिद्ध किया हुआ दुग्ध और कफजन्य शूलमें कड़वी और चरपरी औषधियाँ तथा वमन हितकर है।

(८६) परिणाम शूलमे लंघन, वमन, विरेचन और तैलयुक्त वस्ति, ये सब लाभ पहुँचाते है।

(८७) अन्नद्रव शूलमे पित्त शमनार्थ तथा कफ नाशार्थ विरेचन और अम्लपित्त हर ओषधि देने का निम्न वचनमें कहा है।

पित्तान्तं वमनं कृत्वा कफान्तं च विरेचनम्।
अन्नद्रवे च तत्कार्यं जरत्पित्ते यदीरितम्॥

(८८) आमजन्य तीव्र उदर शूलमे नमक मिले निवाये जलसे वमन कराना हितकर है। उस समय तीव्र शूलघ्न ओषधि देना हानिकर है।

(८९) जलोदर रोगमे संचित जलको यन्त्र से निकालना हो, तो एक ही समयमें सब जल नही निकालना चाहिये।

(९०) अजीर्ण रोगमे तीव्र पीड़ा होती हो, तब शूलनाशक ओषधि न दे। अन्यथा अग्नि आमदोषसे आच्छादित होनेसे प्रकुपित होती है।

(९१) शुष्क वातिक कास और पित्तप्रधान कास (सूखी खाँसी) के रोगीको, खट्टा पदार्थ, चरपरा पदार्थ, अजीर्ण होवे उतने अधिक परिमाण में भोजन और हींग हानिकर है। इस तरह सिगरफ, संखिया कुचिला और भिलावा आदि उत्तेजक ओषधि भी नही देनी चाहिये।

(९२) क्षय रोगमे विरेचन और स्त्रीसेवन हानिकर है। क्षयके कीटाणुओको नाश करने वाली ओषधि स्वर्ण है, परन्तु जब ज्वर अधिक हो, तब सुवर्णवाली ओषधि नहीं देनी चाहिये। पतले दस्त लगते हो, तो जल्दी रोकने का प्रबन्ध करना चाहिये। परन्तु अफीमसे दस्त न रोके। सोमलवाली ओषधि शुष्क कास होने पर नहीं देनी चाहिये। यदि क्षयरोगीको देवदारु या बाँसके जगलमें, या बकरियोंके साथ रक्खा जाय, तो सत्वर लाभ होनेकी संभावना है।

भोजनमें बकरीका दूध, बकरीका घी, बकरेके मस्तकको उबाल कर निकाला हुआ यूष और लहसुन, ये सब अति हितकर है, तथा उपवास, परिश्रम, मानसिक चिन्ता और तेज वायु अति हानिकर है।

क्षय रोगीके कफको जमीनमें गहरा खड्डा करके दबा दे, तथा वस्त्र और जगहको भी साफ रक्खे। क्षयरोगीके थूकनेके बरतनमें फिनाइल, मिट्टीका तेल अथवा राख रक्खे, जिससे मक्खी उस पर न बैठे। एवं हो सके, तो थूकनेके पात्रको ढक कर रक्खे।

(९३) कृमिजन्य हृद रोगमे वमन करानेका निषेध है, विरेचन देना हितावह है।

(९४) शस्त्र लगनेसे शरीरका कोई भाग कट जाने पर उसको ऊँचा रखनेसे रक्त निकलना बन्द होता है।

(९५) ऊरुस्तम्भ (आढ्यवात)में वमन, विरेचन, वस्ति, तैलमर्दन शिरावेध, और स्निग्ध पदार्थोंका सेवन हानिकारक है। लेप, ईंट तपाकर सेकना, स्वेदन, उपवास तथा आम, मेद और कफके नाशक रूक्ष पदार्थ का सेवन हितकर है। जलाशयमें तैरना भी लाभदायक है। इस रोगमें पहले कफनाशक उपचार और फिर वातशामक औषधि देनी चाहिये

(९६) कम्र वातमें तैलकी मालिश, पौष्टिक भोजन तथा अफीम कुचिला और गूगलका सेवन, ये सब अति लाभदायक हैं।

(९७) अर्दित वात (मुखका पक्षाघात)में तैलकी मालिश और स्निग्ध भोजन लाभदायक हैं।

(९८) मन्यास्तम्भमें रूक्ष स्वेद और नस्यसे सत्वर लाभ होता है।

(९९) जीर्ण आम वातमें लंघन, स्वेदन, स्नेहपान, विरेचन वस्ति तथा कड़वी, चरपरी और अग्निप्रदीपक औषधियोंका उपचार करनेसे सत्वर लाभ पहुँचता है।

(१००) वातरोगकी सूजन पर रात्रिको लेप न करें और दिनमें सूखने पर लेपको बार-बार हटा दें।

(१०१) गाँठ, फोडादि पर बैठानेका लेप गाढा किया हो तो उसे रहने दे, बार-बार न हटावे। एवं पकानेकी गाँठ पर रात्रिको भी नया लेप करना चाहिये।

(१०२) अस्थिभङ्गका लेप २-३ दिन या अधिक दिनके बाद ही खोलकर बदलें, जल्दी नहीं खोलना चाहिये।

(१०३) विद्रधि (फोडा) को पकानेके लिये बाँधी हुई पुल्टिस यदि २–३ घण्टे पर बार-बार बदलते रहें, तो पाक जल्दी हो जाता है। पुल्टिसको ज्यादा समय तक रहने देना, यह लाभदायक नहीं है।

(१०४) विद्रधिको शस्त्रसे चीरना हो, तो खडा चीरा लगावे जिससे रक्तवाहिनियाँ थोड़ी कटती हैं, और रक्त भी थोड़ा निकलता है प्रमादवश आड़ा चीरा लगाया जायगा, तो रक्तवाहिनियाँ ज्यादा कट जायँगी और रक्त ज्यादा निकलेगा।

(१०५) पित्तप्रधान उन्माद रोगीको धारोष्ण दूध अथवा गोघृत पिलाना और पौष्टिक आहार देना, ये सब हितकर हैं। सूर्यके ताप और अग्निका सेवन, मैथुन, शोक, क्रोध आदि हानिकर हैं। ठंडे जलमें बैठाना अति हितकर है।

(१०६) कुष्ठ रोगमे मांस, दूध, दही और इनसे बनी हुई वस्तुओका सेवन करना हानिकर है। चनेके पदार्थ और घी अति हितकर है। वमन, विरेचन, स्वेदन और वस्ति प्रयोग लाभदायक है।

(१०७) विसर्प रोगमे घृत और तैल वाले पदार्थ हानिकर है।

(१०८) श्लीपद रोगमें तैलकी मालिश हानिकर है। किन्तु जब रक्त निकलता हो, तब तैलमर्दन और स्वेदन कर सकते है।

(१०९) कर्णशोथ पर तैल और घृत वाले मलहम लाभदायक नहीं हैं। जोकोसे दूपित रक्त निकलवाकर शोथको तुरन्त कम करने वाला लेप लगाना चाहिये।

(११०) नाणी व्रण (नासूर) का मुँह छोटा होवे तो पहले चूना, सैंधानमक या अन्य क्षार युक्त लेप करके मुँहको बड़ा बनावे। पश्चात् सिद्ध घृत अथवा तैलको पिचकारी द्वारा प्रवेश करानेसे रोग की निवृत्ति होती है।

(१११) पागल कुत्ता काटनेके पश्चात् १ वर्ष पर्यन्त वातप्रकोपक पदार्थोंका सेवन नहीं करना चाहिये।

(११२) साँप काटने के पश्चात् एक आध मास तक नित्य रोगीको शक्ति अनुसार सुबह भोजनके ३ घण्टे पहले २ से ४ तोले तक घी पिलानेसे नेत्रज्योति नहीं बिगड़ती।

(१०३) चूहेके विष-प्रकोपमें शीतल वायु, शीतल जल, शीतल गुण वाला भोजन, दिनमें शयन आदि हानिकर है।

(११४) बहुमूत्र रोगमें अधिक घी, खटाई, नये चावल, अधिक परिमाणमें मधुर पदार्थका सेवन, अजीर्णमें भोजन, भोजन पचन होने से पहले पुनः भोजन और भोजनके साथमें अधिक जलपान, ये सब हानिकर है तथा भोजनके एक घण्टा पीछे जल पीना, भोजन सादा और कम करना, खुली वायुमें घूमना, ये सब हितकर है।

(११५) स्वप्नदोपमे रात्रिको मधुर पदार्थका सेवन, रात्रिको भात खाना, अजीर्णमें भोजन, वातुल पदार्थोंका अति सेवन, खट्टा पदार्थ खाना, तमाखू, चाय आदि हानिकर है। एवं अफीम, सोमल और हरताल मिश्रित ओपधि भी प्रायः हितकर नही है। सायंकालको खुली वायुमें घूमना, सात्विक भोजन, ईश्वरस्मरण, रात्रिको भोजनके बदले केवल दूध पीना, ये सब लाभदायक है।

(११६) पूय मेह (सुजाक) के रोगीका रक्तशोधन न करने और अपथ्य सेवन करनेसे मूत्रकृच्छ्र, पेशाबमें रक्तस्राव, वद, वृपणवृद्धि,

नेत्राभिष्यंद, मंदाग्नि, सधिवात, और प्रमेहपीटिका आदिमेंसे कोई न कोई उपद्रव होजाने की सम्भावना है।

(११७) मुजाक और उपदंश रोगमें अपथ्य सेवनसे रोगका मूल ऐसा दृढ हो जाता है कि, जीवन पर्यन्त बार-बार अनेक उपद्रव होते रहते है। वद, विद्रधि, कुष्ठ, नेत्रव्याधि, नख विगड़ना, रक्तविकार, संधिवात, मन्दाग्नि, मलावरोध आदिकी संप्राप्ति होजाती है।

(११८) दाँतके रोग, नेत्र रोग शिरदर्द और प्रतिश्याय आदिमें आवश्यकता पर पेट साफ रखनेवाली ओषधिका सेवन करते रहना चाहिये।

(११९) साधारण हिलते हुए ऊपरके दाँत और दाढ़ोंको शस्त्रसे नहीं निकलवाना चाहिये। अन्यथा नसोंमें आघात होकर अधिक रक्त गिरना, शिरदर्द, नेत्रकी निर्बलता आदि भयंकर रोग उत्पन्न होते है। यदि दाढोंको निकलवाना हो, तो विशेषज्ञोंसे मसूढ़की जड़को शिथिल करने वाली ओषधिको लगाकर निकलवाना चाहिये।

(१२०) तीक्ष्ण नेत्ररोगमें नेत्रोंको ठंडे जलसे नहीं धोना चाहिये, और ठण्डी वायुसे भी बचाना चाहिले। नेत्रोंको धोनेके लिये निवाये जलका उपयोग करना चाहिये। नेत्र रोगमें गुड़, मिर्च, तैल, शुष्क अन्न, कब्जीकारक पदार्थ और रात्रिका जागरण, इन सबका त्याग करना चाहिये।

(१२१) थका हुआ, रुदन किया हुआ, भयभीत, मदिरा पिया हुआ, नवीन ज्वरवाला, अजीर्ण रोगी, मल-मूत्रका वेग जिसने रोका हो, इन सबके नेत्रोंमें अंजन नहीं लगाना चाहिये।

(१२२) फूला आदि रोगोंमें जहाँ लेखन ओषधिको प्रयोजित करना हो, उस लेखन (तीक्ष्ण) ओषधिके साथ मिश्री अथवा अन्य मधुर ओषधि न मिलावे। केवल शहद मिला सकते है।

(१२३) फूला, मोतियाविन्दु आदि रोगोमें अंजन करनेके लिये ताँबेकी सलाई विशेष हितकर है।

(१२४) मोतियाविन्दुके रोगीके नेत्रोंमेंसे ज्यादा अश्रुपात हो, ऐसी ओषधिका उपचार नही करना चाहिये।

(१२५) पित्तज अभिष्यंदमें कदापि स्वेदन नहीं देना चाहिये। पित्तज और वातज नेत्र रोगकी आमावस्थाके समय कच्चा दोष हो, तब तक नेत्रमें ओषधि न डाले। किन्तु कफजनित नेत्र रोगकी आमावस्थामें भी तीक्ष्ण ओषधि डालनी चाहिये।

(१२६) नेत्र, हृदय और वृषण कोमल होनेसे इन स्थानों पर स्वेदन न दें । अति आवश्यकता होने पर सौम्य स्वेदन दें ।

(१२७) मूत्र रोगमें मूत्रविरेचन देना हो, तो सुबह के समय देना चाहिये ।

(१२८) कफवृद्धि दूर करनेके लिये वमन करानी हो, तो प्रातः काँजी पिला करके वामक ओषधि देवें ।

(१२९) मलावरोध और इतर रोगोंमें विरेचनके लिये ओषधि प्रायः जल्दी दें । परन्तु मृदु विरेचन देना हो, तो रात्रिको देना चाहिये ।

(१३०) अग्निमांद्य और अजीर्णको दूर करनेवाली ओषधि भोजनके साथ देनी चाहिये । अजीर्णनाशक ओषधि रात्रिको भी दी जाती है ।

(१३१) तृषा हिचकी, श्वास और विष-प्रकोपमें बार-बार ओषधि का सेवन कराना चाहिये ।

(१३२) मानसिक चिन्ता या इतर रोगोंसे निद्रा नाश होने पर मादक ओषधि रात्रिको सोनेके दो घण्टे पहले देनी चाहिये ।

(१३३) रक्तविकार, कफप्रकोप, जीर्ण विषपीडा और इतर रोगोंमें रात्रिको स्वेदल ओषधि देनी हो, तो सोनेके दो घण्टे पहले दें ।

(१३४) अग्निसे जले हुए भाग पर शीतल जल लगाना हानिकर है, और तुरन्त सेक करना हितकर है ।

(१३५) कानके रोगोंमें रस आदि ओषधि प्रातः और तैल आदि ओषधि सूर्यास्त के पश्चात् डालनी चाहिये ।

(१३६) दाहसह शिरदर्द रोगमें तैलकी मालिश नहीं करनी चाहिये । क्योंकि तैलसे रोमकूप बन्द हो जाते हैं, जिससे प्रस्वेद द्वारा विष बाहर नहीं निकल सकता । फिर मस्तिष्कमें उष्णताकी वृद्धि होकर दाह, उत्ताप और व्याकुलता बढ़ जाते हैं ।

(१३७) जब असाध्य रोग निवारण न हो सके, तब तीव्र पीड़ा आदि लक्षणोंको कम करानेके लिये प्रयत्न करना चाहिये । परन्तु ऐसी क्रियासे रोग शमन हो जायगा ऐसे मिथ्या भ्रममें रोगी या रोगीके सम्बन्धीजनोंको नहीं डालना चाहिये ।

(रोगी विषयक सूचना)

(१३८) सगर्भा स्त्रीको अफीम, जमालगोटा और एलुवावाली ओषधियाँ अथवा तीक्ष्ण ओषधियाँ नहीं देनी चाहिये ।

(१३६) सूतिका ज्वरमें पीड़ित रोगिणी और सन्निपातके रोगी को घी खिलाना अति हानिकर है।

(१४०) यकृत् की शिथिलतासे उत्पन्न मन्दाग्नि और बहुमूत्रके रोगीको घी ज्यादा नहीं देना चाहिये। मन्दाग्नि होने पर घी का पचन योग्य समयमें नहीं होता, और बहुमूत्र होने से मूत्रोत्पत्तिमें अधिक कष्ट पहुँचता है और पेशाबके साथ घृतका कुछ अंश निकलता है।

(१४१) दूध पीनेवाले बच्चोंको औषधि देने के समय उसकी माताको भी औषधि देनी चाहिये। बालकोंको अफीमवाली औषधि देनेकी आवश्यकता हो, तो सम्हाल-पूर्वक दें।

(१४२) जलमें डूबा हुआ मनुष्य जब तक ऊपर तैर कर न आया हो, तब तक उसके जीवनकी आशा रह सकती है। जलके पैंदेमें से निकाला गया हो, तो कृत्रिम श्वासोच्छ्वास चलाने के लिये बार-बार नाक में फूँक देवे, हाथ हिलाते रहे और सीधा अथवा उल्टा सुलाकर पेटमें रहे हुए जलको निकाल डाले। यदि छोटा बच्चा हो, तो चक्र (गाड़ीके चाक) पर बाँधे, फिर चक्रको फिराकर पेटमें भरे हुए जल को निकाल डाले, जिह्वाको बाहर खेंचे, हाथ-पैर दबावे, सेक करें, गर्म वस्त्र पहनावे, और निर्वात प्रकाशवाले स्थानमें रक्खे। ये सब उपाय करने पर मनुष्य पुनः शुद्धिमें आजाता है।

(१४३) शरीरमें रोग हो तब तक पौष्टिक औषधिसे लाभ नहीं होता। रोग दूर होनेके पश्चात् ही पौष्टिक औषधि देनी चाहिये।

(१४४) किसी भी रोगीको रोग शमन होने लगे, उस समय औषधि व्यवस्था द्वारा, स्वाभाविक क्रिया या अभ्यासमें व्याघात नहीं पहुँचाना चाहिये। स्वभावके अनुकूल औषधि-व्यवस्था और पथ्य आदिकी योजना करनी चाहिये।

(१४५) स्त्रियोंके शारीरिक विधानमें कोमलता और स्वभाव में मृदुता होनेसे पुरुषोंकी अपेक्षा औषधिकी मात्रा कम देनी चाहिये।

(१४६) शास्त्रमें लिखे हुए रोगोंके समस्त लक्षण त्रिदोपज ज्वर आदि रोगोंमें हो तो रोग दूर नहीं हो सकेगा, अर्थात् रोगीकी मृत्यु हो जाने की सम्भावना है।

(आहार-विहार-सम्बन्धी सूचना)

(१४७) शीतल जलपान—मूर्च्छा, पित्त, गर्मी दाह, विष-विकार, रक्तविकार, मदात्य, श्रम, तमक-श्वास, वमन और ऊर्ध्व-रक्तपित्त आदि रोगोंमें अन्न पाचन होने पर ठण्डा जल पिलाना

लाभदायक है। रक्तपित्त, मूर्च्छा, रक्तविकार और पित्त प्रधान रोगोमें उष्ण जलका उपयोग हानिकर है।

(१४८) उष्ण जलपान—पार्श्वशूल, प्रमेह, ववासीर, पाण्डु, जुखाम, वातरोग, गलग्रह, अफरा, मलावरोध, विरेचन, नवीन ज्वर, गुल्म, क्षय, मन्दाग्नि, अरुचि, नेत्र-रोग, संग्रहणी, कफप्रधान रोग, श्वास, कास, फोड़ा-फुन्सी और हिचकी, इन रोगोमें गरम करके ठण्डा किया हुआ जल पिलाना हितकर है। दिनमें उबाला हुआ जल शाम तक और रात्रिको उबाला हुआ सुबह तक उपयोगमें लेवे।

(१४९) अल्प जलपान—अरुचि, जुखाम, मन्दाग्नि, शोथ, क्षय, मुँहमें जल आना, उदर रोग, कुष्ठ, तीक्ष्ण नेत्र रोग, नूतन ज्वर, व्रण और मधुमेहमें थोड़ा-थोड़ा जल आवश्यकता पर पिलाते रहे। विसूचिका (हैजा) में सौंफका उबाला हुआ (परन्तु ठण्डा किया हुआ) जल या वर्फका जल एक-एक चम्मच पिलाते रहे। एक साथमें अधिक जल पिलाने से वमनका वेग नहीं रुकता।

(१५०) शीतल जल निषेध—घृत-पान या तैल-पानके बाद प्यास हो, तो निवाया जल पिलावे। तुरन्त ठण्डा जल पिलाना हानिकर है। एवं सान्निपातके रोगीको ठण्डा जल पिलाना या स्नान कराना, यह मृत्युको बुलाना है।

(१५१) अधिक जलपान—एक समयमें अधिक जल पीनेसे आम वढ़ता है। फिर धीरे-धीरे अनेक रोगोंकी उत्पत्ति होती है।

(१५२) मधुर जलपान—शक्कर मिला जल पीनेसे कफ बढ़ता है और वायु घटता है। मिश्रीयुक्त जल दोष-नाशक और शुक्रल है। गुड़वाला जल मूत्रकृच्छ्रघ्न, पित्तकर तथा कफवर्धक है, किन्तु पुराना गुड़ युक्त जल पित्त-नाशक और पथ्य है।

(१५३) जलपान निषेध—शौच जाने के पश्चात्, सूर्यके तापमें घूमकर विना विश्रान्ति लिये और व्यायाम या शारीरिक परिश्रम करने पर तुरन्त एवं भोजनके प्रारम्भमें जल-पान नहीं करना चाहिये।

(१५४) उषःपान—रात्रिके अन्तमें उठने पर शौच जानेके पहले जलपान करना हितकर है। किन्तु कफप्रकोप, मन्दाग्नि और नूतन ज्वर आदि रोगोमें उषःपान नहीं करना चाहिये। विशेष विचार 'चिकित्सा-तत्त्वप्रदीप' प्रथम खण्ड के पृष्ठ ९०६ में किया है।

(१५५) दुग्ध निषेध—तीव्र आम प्रकोपसह नूतन ज्वर, मंदाग्नि, आमवृद्धि, कुष्ठ, उदरशूल, कफवृद्धि और कृमि, इन रोगो में दुग्ध हानि-

कर है। अर्श के रोगी के लिये कच्चा दुग्ध हानि पहुँचाता है? जब नया उपदंश, सुजाक और व्रणमें से पूयस्राव होता हो, तब अधिक दुग्ध पीना, या भैंसका दुग्ध पीना हितकर नहीं है।

(१५६) दुग्धके प्रतिकूल पदार्थ—सैंधा नमक को छोड़कर अन्य क्षार, आँवले को छोड़कर अन्य खटाई, गुड़, मूँग, मूली, मद्य, मत्स्य आदि भोजन, इनमेंसे किसीके साथ दुग्धका सेवन नहीं करना चाहिये।

(१५७) तक्र निषेध—उपदंश, सुजाक, प्रमेह, मूत्रमें जलन, क्षत, मूर्च्छा, भ्रम, दाह, तृषा, रक्तपित्त और अम्लपित्त आदि रोगवालों को, दुर्बल मनुष्यको एवं गरमी के समय (ग्रीष्म और शरद् ऋतु) में तक्र नहीं पिलाना चाहिये।

(१५८) दही निषेध—रक्तपित, अम्लपित्त, कफवृद्धि, क्षय, सूजन, आगन्तुक क्षतरोग, अस्थिभंग, पीनस, उपदंश, सुजाक, नेत्रदाह, नेत्र-लाली, पित्तप्रमेह, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात आदि मूत्ररोग, मदात्यय, कुष्ट, वातरक्त, रक्तविकार, अन्तर विद्रधि और मूत्ररोग जनित संधिवात, इन व्याधियो से पीड़ितो को दही नहीं देना चाहिये। शरद्, ग्रीष्म और वसन्त ऋतुमें दही प्रतिकूल रहता है, एवं रात्रिके समयमें भी दहीका सेवन निषिद्ध है। दिन में यदि सेवन करना हो, तो नमक, जल, घृत, मिश्री, शहद, मूँगका यूप, अथवा आँवले का चूर्ण, इनमेंसे किसी अनुकूल वस्तु का मिश्रण प्रकृति और समयानुसार करना चाहिये। अन्यथा कुष्ट, रक्तविकार, कामला, सूजन, भ्रम, पित्त-प्रकोप, मूत्रकृच्छ्र, ज्वर, फोड़ा-फुन्सी, और संधियोमें पीड़ा आदि विकार हो जानेकी सम्भावना है।

(१५९) घृत निषेध—ज्वर सहित राजयक्ष्मा रोगी, दूध पीने-वाला बालक, वृद्ध रोगी, कफवृद्धि मलावरोधके रोगी, आमयुक्त रोगी, जीर्णज्वरी, मन्दाग्नि वाले, बहुमूत्र रोगी, प्रमेह रोगी और अजीर्ण जनित निर्जुन्तुक विसूचिका रोगी, इन सबको घी थोड़े-थोड़े परिमाण में दें, अधिक न दें। सन्निपात और नूतन ज्वरमें बिलकुल न दें। क्षयमें अजाघृत तथा सिद्ध घृत अन्य घृतकी अपेक्षा विशेष लाभप्रद हैं।

(१६०) अदरखका निषेध—कुष्ट, पाण्डु, मूत्रकृच्छ्र, सुजाक, रक्त-पित्त, व्रण, शुष्क कास, दाह, निद्रानाश, इन रोगोमें, ग्रीष्म और शरद ऋतुमें तथा पित्त-प्रधान प्रकृतिवालोको अदरका सेवन हानिकर है।

(१६१) शहदका उपयोग—शहद रोगनाशक औषधिके साथ

पुराना और रसायन गुणके लिये नया लेना हितकर है। अनुपानमें शहदके साथ घृत मिलाना हो, तो गोघृत लेना चाहिये। वातश्लेष्म प्रधान प्रकृतिवालों को शहद दुगुना और पित्त प्रधान प्रकृति वालोंको घृत दुगुना लेना चाहिये। दोनोंको समभाग नहीं मिलाना चाहिये।

यूनानीमें शहदकी चासनी कर मैलको निकालकर उपयोगमें लेने का विधान है, तथापि आयुर्वेदकी दृष्टिसे शहद एक प्रकारका विष है। विष अग्नि पर गरम करनेसे प्रकुपित होता है। इसलिये आयुर्वेदमें शहदको गरम करनेका निषेध किया है। शहद बोतल, अमृतबान या मिट्टीके बर्तनमें रखना चाहिये। टीनके पीपेमें ६-८ मास तक रहने पर शहद काला हो जाता है, और दुर्गन्ध आने लगती है।

शहदमें सामान्यतः, शीतवीर्य, लघु, इषत्, कषाय संयुक्त मधुर-रस, रूक्ष, ग्राहि, लेखन, चक्षुके लिये हितकर, अग्निदीपक, स्वरवर्द्धक, व्रणशोधक, व्रणरोपण, कोमलता-सम्पादक, सूक्ष्मस्रोतोगामी, स्रोतः-समूहका विशोधक, आह्लादजनक, प्रसादक, वर्णकारक, मेधाजनक, कामोत्तेजक, विशद गुणयुक्त, रुचिकर, योगवाही और किंचित् वात-कारक गुण है। शहद कुष्ठ, अर्श, कास, रक्तपित्त, कफ, प्रमेह, क्लान्ति, कृमि, मेद, पिपासा, वमन, श्वास, हिक्का, अतिसार, कोष्ठबद्धता, दाह, क्षत और क्षय रोगमें हितकारक है।

शहदमें जो बड़ी मक्खीका शहद (भ्रामर) है, वह गाढ़ा अति मधुर, भारी और रक्तपित्तनाशक है। छोटी मक्खियोंका शहद (माक्षिक) अति हल्का, रूक्ष और श्रेष्ठ है। इस शहदको भगवान् धन्वन्तरि और महर्षि आत्रेयने सर्वश्रेष्ठ और श्वास आदि रोगोंमें विशेष हितकर माना है।

नया शहद बृंहण (पौष्टिक), सर, अभिष्यन्दी, स्निग्ध, अनु-लोमन और श्लेष्महर है। पुराना शहद रूक्ष, मेद और कफका नाशक, ग्राही और अति लेखन (देहको कृश बनाने वाला) है।

छत्ता परिपक्व होने पर शहद निकाला हो, तो वह त्रिदोषनाशक तथा छत्ता पूरा पका न हो, तो शहद खट्टा और त्रिदोषकृत होता है।

नव्यमत (Chemistry) अनुसार शहदकी परीक्षा करने पर विविध शर्करा (अन्न शर्करा, द्राक्षशर्करा और फलशर्करा Dextrose, Glucose or Fructose) मिलती है। इस हेतुसे अनेक रोगोंमें रोगियोंके बलकी रक्षाके लिये शहदकी योजना की जाती है। शहदमें यह विशेषता है कि, वह आमाशयमें ही शोषित हो जाता है। उसे

अन्त्रमें जानेकी आवश्यकता नहीं है। इस हेतुसे मधुमेहके रोगीको भी शहद दिया जाता है। जिनको शहद अनुकूल हो, वे प्रतिदिन २-४ तोले शहद भोजनके साथ सेवन करते रहे, तो हृदय सबल बनता है।

(१६२) मूत्रकी प्रतिक्रिया अम्ल (Acidic Reaction) हो, तो घृत आदि स्नेहयुक्त भोजन अधिकांशमें नहीं करना चाहिये।

(१६३) प्रातःकालके भोजनके पश्चात् वामकुक्षी (लगभग आध घण्टे तक आराम) करना और सायंकालके भोजनके बाद थोड़ा घूमना लाभदायक है। इस विषयमें अंग्रेजीमें कहावत है किः—After dinner rest a while after supper walk a mile.

(१६४) दिनके भोजनके अन्तमें तक्र सेवन और रात्रिके भोजनके बाद दुग्धपान करना हितकारक है। रात्रिको दहीका सेवन और भोजनोपरान्त तुरन्त अधिक जलपान निषिद्ध है।

(१६५) भोजनके पश्चात्, मूत्रके वेगके समय और दिनमें स्त्रीप्रसंग करना हानिकर है। भोजनके पश्चात् और अपचनमें स्नान करना भी हानिकर है।

(१६६) ताम्बूल सेवन—आलस्य, व्रण, विद्रधि, दन्तरोग, तालुरोग, उपजिह्वाके विकार, अर्बुदरोग, गलगण्ड, अपची, तालुशोष और कफप्रकोपमें ताम्बूल हितकर है।

(१६७) ताम्बूल निषेध—नेत्रप्रकोप, रक्तपित्त, क्षत, दाह, विषप्रकोप, शोष (राजयक्ष्मा), मदात्यय, मोह, मूर्च्छा, श्वास आदि रोग पीड़ितोंके लिये नागरवेलका पान हानिकर है।

शौच जाने के पश्चात्, भोजनके पहले, नूतन प्रतिश्यायमें, दृष्टि-विकार, कानके बलका क्षय, दाँतोंमेंसे पीप निकलना, मसूड़ोंकी शिथिलता और परिश्रम करनेसे प्रस्वेद आनेपर पान नहीं खाना चाहिये। राजयक्ष्मा रोगीको भी पान नहीं देना चाहिये।

(१६८) ताम्बूलका अतियोग—पानका अति सेवन करने पर विविध रोगोंकी उत्पत्ति होती है। दाँत, कान, नेत्र आदिका बलक्षय, शोष, रक्तपित्त, दाह और वातरक्त आदि रोग हो जाते है।

(१६९) अचक्षुष्य—शिर पर गरम जलसे स्नान करनेसे नेत्रको हानि पहुँचती है, और वलीपलितकी उत्पत्ति होती है। मन्द प्रकाश या प्रचण्ड प्रकाशमें लिखना-पढ़ना या इतर सूक्ष्म कार्य करना, सोते-सोते और चलती गाडीमें पुस्तक पढ़ना, गरम वस्तुका अधिक सेवन, सिनेमा देखना, नेत्रको अधिक परिश्रम पहुँचे ऐसा सूक्ष्म काम करना,

मिर्च आदि उग्र वस्तु कूटना, धुएँमें बैठना, अग्निको फूँक मारना, अधिक स्त्रीसहवास, अधिक तमाखू सेवन, अग्निके पास अधिक बैठना, सूर्यके तेज तापमें घूमना और सूर्यपर त्राटक आदि नेत्रके लिये हानिकर है।

(१७०) दन्त विघातक—पत्थरके कोयले, रेती या अन्य कठोर वस्तुसे दाँत साफ करनेसे दाँतके ऊपरकी सफेदी खराब हो जाती है। एवं सिगरेट, बीड़ी, सूर्ती तमाखू, शराव, सिरका, तेज खटाई, मधुर पदार्थ और नागरवेलका पान, इनका अधिक सेवन करते रहनेसे दाँतोमें कृमि और हानि होती है।

(१७१) सोनेके समय शिरपर कपड़ा बाँधने एवं पैरपर मोजे या अन्य चिपके हुए वस्त्र या जूते पहननेसे रक्ताभिसरण क्रियामें प्रतिबन्ध होता है। जिससे उस अवयवकी शक्ति न्यून होती जाती है।

(१७२) दिनमें निद्रा लेनेके अधिकारी—व्यायाम या श्रमसे थका हुआ, जिसने मैथुन किया हो, रोज मार्गगमन करनेवाला, अतिसार, उदर शूल, रसाजीर्ण, श्वास, तृषा, हिक्का और निराम वातके रोगी, कफ क्षय हुआ हो, बालक, मद्य पीकर नशेमें आया हो, वृद्ध, रात्रि-जागरण वाले, इन सबको दिनमें भोजनके पहले सोना हितावह है।

(१७३) उपवासके अनधिकारी—वात रोगी-तृपातुर, बालक, वृद्ध, सगर्भा स्त्री, क्षयरोगी, जीर्णज्वरी, अनेक रोगोसे पीड़ित, थका हुआ और क्षुधातुर मनुष्यको उपवास न करावे, तथा उपवास करानेसे जिसकी हड्डीमें पीड़ा, मनमें भ्रम, नेत्र पर अन्धेरा, हृदयमें अवरोध और शरीरमें अति अशक्ति आती हो, उसे भी अधिक उपवास नहीं कराना चाहिये।

(१७४) नूतन रोगमें यदि वात, पित्त, कफ, धातुएँ बलवान् हो, तो ओषधिकी मात्रा पूरी दी जाती है। परन्तु जीर्ण रोगमें वात आदि धातु निर्बल होजानेके कारण जितना रोग जीर्ण हो, उतनी ही मात्रा कम करनी चाहिये, और ओषधि ज्यादा दिनों तक देनी चाहिये। जैसे हृद् रोगसे पीड़ित को लोह भस्म, सुवर्ण भस्म, मुक्ता भस्म, प्रवालपिष्टी या इतर हृदयपौष्टिक औषध यदि पूर्ण मात्रामें दी जाय तो हानि पहुचाती है, और १६ वाँ हिस्सा जितनी सूक्ष्म मात्रा देनेसे वह पचन होकर शनैः शनैः लाभ पहुचाती है।

(१७५) आहारादिका विरोध—ओषधि सेवनमें आहार-विहार, देश-कालादि विरोध न हो, इस बातको समझानेके लिये नव प्रकारके

विरोधोंका उदाहरण अष्टाङ्ग संग्रहकारने निम्न श्लोकमें लिखा है। ऐसी विरोधी वस्तुओंका सेवन नहीं करना चाहिये :—

क्षीरं कुलत्थैः पनसेन मत्स्यै-
स्तप्तं दधि क्षौद्रघृते समांशे।
वार्युपरे रात्रिषु सक्तवश्च,
तोयान्तरास्ते यवकास्तथैव॥

(अ) दूध और कुलथी, दोनोंके विपाक और वीर्यमें विरोध है। इनमें दूध मधुर विपाक युक्त और शीतवीर्य, तथा कुलथी अम्लविपाक युक्त और उष्णवीर्य है। यह विरुद्ध गुण विपाकका उदाहरण है। इनका सेवन एक साथ नहीं करना चाहिये।

(आ) दूधका कटहलसे विरोध है। इन दोनोंके रस, वीर्य विपाकमें समानता होते हुए भी ये परस्पर महाविरोधी हैं। यह सदृश गुण-विरोधी उदाहरण है।

(इ) दूधका चिलिचिम जातिके मत्स्य और इतर प्रकार के सब मत्स्योंके साथ विरोध है। दूध और मत्स्य दोनोंमें मधुर गुण होनेसे एक अंशमें समानता है। दूधमें शीत वीर्य और मत्स्यमें उष्ण वीर्य होनेसे एक अशमें विरोध है। इन दोनोंका एक साथ सेवन करना निषिद्ध है। यह एक देश विरोधी उदाहरण है।

(ई) दही तपाकर खाना यह विरुद्ध होनेसे हानि पहुचाता है। यह विरुद्ध संस्कार उदाहरण है।

(उ) शहद और घी, दोनो समभागमें मिलाकर सेवन करना, यह हानिकर है। यह मात्राविरोधी उदाहरण है।

(ऊ) ऊपर भूमि स्थित जल विरुद्ध स्वभाववाला है, यह विरोधी देशका उदाहरण है।

(ए) रात्रिमें सत्तूका उपयोग करना, यह कालविरोधी है।

(ऐ) विना जल मिलाये सत्तूका संयोगादि दोषदर्शक है।

(ओ) केवल जौका सेवन करना और इतर अन्नका सेवन बिल्कुल न करना, यह स्वभाव विरुद्ध नियमका उदाहरण है।

परिभाषा प्रकरण।

पुट यन्त्र आदि विधि।

(१) गजपुट—एक गज चोडा और एक गज गहरा (लगभग २७ इंच) खड्डा कर, उसमें गोवरी भर, वीचमें औषधके सपुटको रखकर अग्नि देनेसे गजपुट अग्नि कही जाती है। गजपुटके लिये २॥ हाथका गोल खड्डा बनवाकर पक्की ईंटोंसे बँधवा लेनेसे २७ इंच लगभगका खड्डा तैयार हो जायगा। खड्डे की गोलाई नीचे हो, उससे ऊपरके भागमें ३–४ इंच कम रहनी चाहिये। इस रीतिसे खड्डा तैयार होनेपर अग्नि प्रमाणसर लगती है। ईंटोंसे बाँधे विना अग्निकी तेजी जमीनमें वहुत चली जाती है। संपुटके ऊपर १–२ कण्डोंकी तह रहे, इस तरह संपुट बीचमें रखना चाहिये। संपुट स्वांग शीतल होने पर ही गजपुटमें से निकालना चाहिये।

(२) वराहपुट—उपरोक्त विधि से एक हाथ (१८ इंच) का खड्डा तैयार करा, उसमें अग्नि देनेसे वराहपुट कहा जाता है।

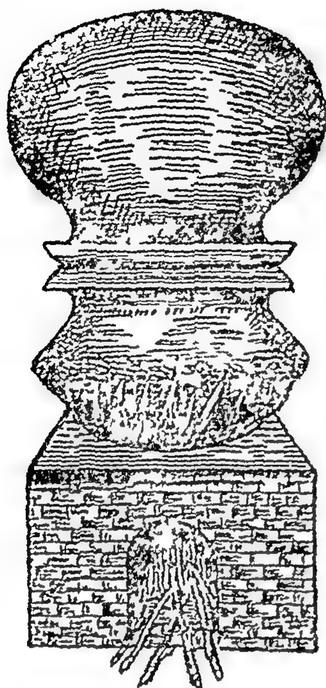
(३) कुक्कुटपुट—उपरोक्त विधिसे ६ इंचका खड्डा बना, उसमें अग्नि देनेसे कुक्कुटपुट कहलाता है।

(४) सरावसपुट—दो मिट्टीके सराव, समान नापवाले लेवे। इनमेंसे एकमें औषध रखें, फिर दूसरेको ऊपर औंधा रखे, तथा सन्धि पर चारों ओर चिकनी मिट्टी में भिगोया कपडा लपेट देवे। ऊपर थोड़ी-थोडी मिट्टी लगाकर सुखा देवे।

सूचना—सराव सपुट करनेके पहले सरावोंकी धाराको पत्थर पर जल डाल घिसकर चिकनी बना लेवें। दोनों सरावोंकी किनारी समान ही होनी चाहिये। एव सराव फूटे हुए या कच्चे न हों, यह भी देख लेना चाहिये।

(५) डमरू यन्त्र—दो हांडी ऐसी लें कि, जिनमें नीचे की हाँडी से ऊपरकी हाँडी वड़ी हो, परन्तु मुँह दोनोंके वरावर हो। इन हाँडियों के भीतर चूना अथवा चाक मिट्टीका लेप अच्छी तरह करके सुखाले। फिर दोनों हाँडियोंके मुँहको पत्थर पर जल डालकर घिसें, और सन्धि वरावर मिल जाय ऐसी किनार वनाले, जिससे सन्धिमें से पारा वाहर न निकल जाय। इस तरह हाँडी तैयार होने पर छोटी हाँडी में सिगरफ, जो तीन घण्टे या अधिक समय तक नीबूके रसमें पीसकर सुखाया हो, वह भरें। पश्चात् वड़ी हाँडीको छोटी हाँडीके ऊपर औंधी रखकर दोनोंकी सन्धि वज्रमुद्रासे वन्द करे। अथवा एक

भाग चूना और दो भाग गेहूँके आटेको जलमें मिलाकर सन्धि वन्द करे या लोहेके तारसे वाँधकर सन्धि पर कपड मिट्टी करें। मजवूत वन्द न होनेसे सन्धिको तोडकर पारा निकल जाता है।



यन्त्र सूखनेसे चूल्हे पर चढ़ाकर १२ घण्टे अग्नि देकर पारा उड़ालें। ऊपरकी हाँडी पर ४-८ गुणे कपड़ेकी तह जल से भिगोकर रक्खे। कपडे को वार-वार गरम होने पर ठण्डे जलमें भिगोले। इतना सम्हाल रक्खे कि, नीचे की हाँडी पर जलकी बूंद न गिर जाय। अन्यथा हाँडी फूट जायगी। १२ घण्टे वाद यन्त्र स्वाँग शीतल होने पर ऊपर की हाँडीमें लगे हुए पारेको कपड़ेसे पोछ निकाल कर वस्त्रमे छानले। कदाचित पारा पूरा न निकला हो और सिगरफमें रह गया हो, तो पुनः इस यन्त्र द्वारा निकाल ले।

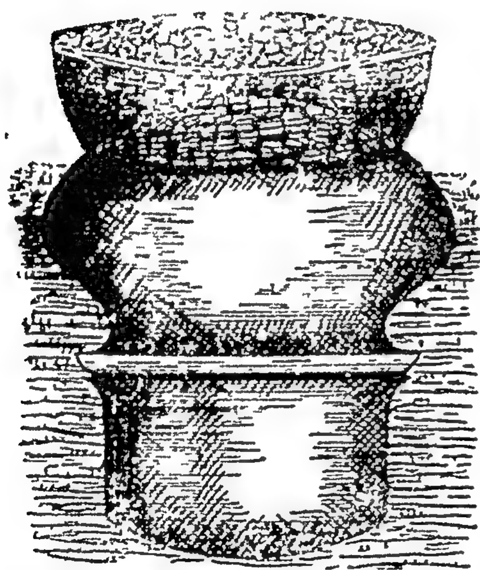
(६) नलिका डमरू यन्त्र—उपरोक्त विधिसे डमरू यन्त्रकी दो हाँडियोको कलईसे पुतवाले। फिर ऊपरकी हाँडीके वरावर मध्य भागमें छेद करे। छेदमें ४-६ अंगुल लम्बी चाक मिट्टीकी अथवा चिकनी मिट्टीकी नली वनवाकर लगादे। नलीके भीतर मटर जा सके उतना वड़ा छिद्र रक्खे। इस नलीको हाँडीके छिद्रमें घुसा, चारो ओर मिट्टी लगाकर सन्धि मजवूत वन्द करे। इस विधिसे ऊपरकी हाँडी तैयार होने पर, नीचेकी हाँडीमें ओषधि भरे। फिर डमरू यन्त्र तैयार कर चूल्हे पर चढ़ावे। धुआँ नलीमेंसे निकलता रहेगा। पश्चात् इस नलीके चारो ओर रससिंदूर आदि ओषधि जम जायगी, और नीचेकी हाँडीके पैदेमें कज्जलीके साथमें डाली हुई धातुकी भस्म हो जायगी। इस तरह इस यन्त्र द्वारा एक साथ दो कार्य होते है।

(७) तैलपातन यन्त्र—चीनी अथवा पीतलके एक वरतन पर स्वच्छ कपड़ेका टुकड़ा फैलाकर वरतनके किनारेको मजवूत वाँधे। फिर कपड़ेके ऊपर वीचमें तेल निकालनेकी ओषधिका चूर्ण रक्खे, और उस पर अभ्रकका टुकड़ा इस तरह रखे कि, ओषधि और कपड़ा वरावर

ढक जाय। बादमें अभ्रकके ऊपर पूरे अङ्गारो से भरे हुए लोहेके तवेको रक्खे, जिससे एकाध घण्टेमें तेल नीचे टपक जाय।

सूचना—कपड़ेको तवा न लग जाय, इस बातका सम्हाल रक्खे अन्यथा कपड़ा जल जाता है और सब ओषधि नीचे बरतनमें गिर जाती है। तवेपर सतत पखेसे वायु करते रहे, जिससे अग्नि सतेज रहे। एकाध घण्टे बाद तवा और अभ्रकको दूर करके देखले। तेल टपक गया हो तो कपड़ेको खोलकर तेल निकालले। इस विधिसे तेल कम निकलता है परन्तु उपयोगमे लेना हो, तब यह तेल पातन यन्त्र काममे आता है।

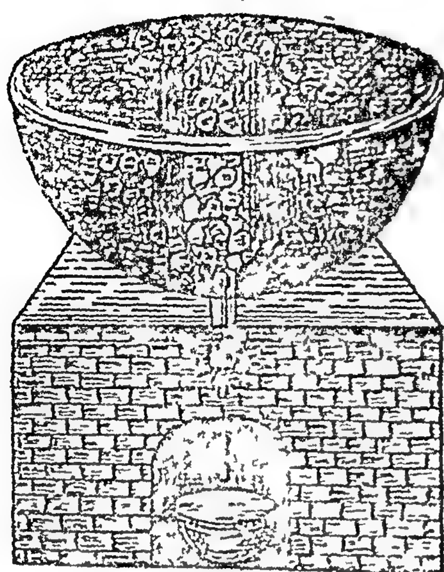
(८) *पाताल यन्त्र (पहली विधि)*—एक हाँडी लेकर उसमें तेल या अर्क निकालनेकी ओषधि कूट कर या भिगो कर भरे। हाँडीके मुख पर मजबूत नया अच्छा कपड़ा बाँध कर कपड़ेके बाहरकी बाजूमें आटा अथवा मिट्टी लगादे। फिर हाँडीके मुँहके बराबर एक कलई किया हुआ भगोना रख, सन्धिको कपड़मिट्टी लगाकर बन्द करे। जरूरत हो तो लोहेके तारसे भी बाँधले। पश्चात् जमीनमें खड्डा कर, उसमें इस यन्त्रको रक्खे। भगोना



नीचे और हाँडी ऊपर रहे। हाँडीका पौना भाग जमीनमें रहे इतना बड़ा खड्डा बनावे। खड्डेमें यन्त्रके चारो ओर मिट्टी अच्छी तरहसे दबाकर भरदे, ताकि नीचे वाले भगोनेको अग्निकी उष्णता न पहुँचे। हाँडीके ऊपरके भागमें अग्नि ३ से १२ घण्टे तक ओषधि के परिमाण अनुसार निश्चित समय तक जलावे। अति खुले भागमें जहाँ तेज वायु चलती हो, वहाँ पर अग्नि न दे। क्योकि ऊपरके बर्तनको अग्नि कम लगती है, और नीचेके बर्तनको उष्णता पहुँचेगी। फिर अर्क कम और जला हुआ निकलेगा।

दूसरी *विधि*—चूल्हे पर एक मिट्टीकी नाँदको ओंधी रख, ऊपर में लोहे या मिट्टीकी परात रखे। बराबर परात और नाँदके बीचमें एक

छिद्र करे। अथवा चूल्हे पर औंधी परात रख, इसके ऊपर दूसरी एक बड़ी परात रखे। फिर बराबर दोनोंके मध्य भागमें करें। या एक ही परात रख उसमें छिद्रकर शीशीको लोहेका कड़ा (Ring) या तारके आधारसे सम्हालपूर्वक रखलें। छिद्र इतना बडा करे कि उसमेंसे शीशी का मुँह नीचे चूल्हेमें ४ अंगुल बाहर निकले। शीशी पर ५–७ कपड़मिट्टी करे। कपड़मिट्टीकी विधि कूपीपक्व रसायन प्रकरणमें लिखी है।



जिस ओषधिका तैल निकालना हो, उसे शीशीमें भर, शीशीके मुँहमें लोहेके तारोंकी गोली डाल मुख बन्द करदे। जिससे ओषधि बाहर न गिर जाय और तैल बराबर झरता रहे। फिर इस शीशीको परातमें रख दोनो की सन्धिको मिट्टीसे बन्द करें, और चूल्हेके भीतर शीशीके नीचे एक काँच का ग्लास रक्खें, जिसमें तैल गिरता रहे। शीशी और ग्लास दोनों एक नली के भीतर रहे, ऐसी लोहेके पतरेकी नली बनाकर रखे, जिससे तैल भापके साथ उड न जाय और बराबर ग्लास में टपकता रहे। इस तरह योजना होने पर ऊपरवाली परातमें अग्नि देते रहे, जिससे तैल टपकता रहे। ६–८ घण्टे तक अथवा जहाँ तक तैल निकलता रहे, तब तक अग्नि दे। तैल निकलना बन्द होने पर अग्नि देना बन्द करें चूल्हे पर नांद रखकर यन्त्र तैयार करने से बाहरसे तैल टपकता देखनेमें आ सकता है।

सूचना—सोंठ, लौंग आदि शुष्क वस्तुका तैल निकालना हो, तो उसे कूट रात्रको जलमें भिगो, दूसरे दिन एक घंटा धूपमें रखकर तैल निकालले।

(६) वायुकागर्भ पाताल यन्त्र—दूसरी विधिसे पाताल यन्त्र बना शीशीके चारों ओर परातमें तीन-तीन अंगुल जगह खाली रहे, और शीशीसे ४ अंगुल ऊँची रहे, ऐसी लोहेकी एक नली बनवा कर, शीशीके चारों ओर परातमें रखदे। फिर नलीके भीतर शीशीके चारों ओर रेत

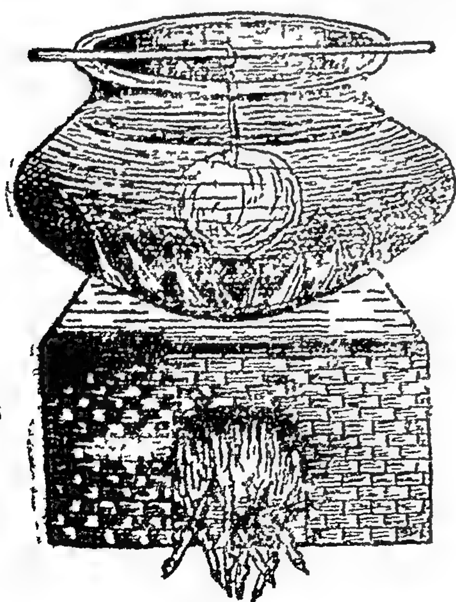
भरे और नलीके बाहर परातके भीतर गोबरी जलावे। इस विधि से तैल अथवा अर्क निकालनेके यन्त्रको वालुकागर्भपाताल यन्त्र कहते है।

(१०) *वालुका यन्त्र*—इस यन्त्र की विधि "कूपीपक्व रसायन"में लिखी जायगी।

(११) *लवण यन्त्र*—मिट्टीकी हॉडीमें नमकके भीतर औषधिके संपुटको दबाकर चूल्हे पर चढावे। फिर निश्चित समय तक अग्नि देकर ओषधिको सिद्ध करें। इस तरह तैयार किये हुए यन्त्र को लवण यन्त्र कहते है।

लवण यन्त्र और वालुका यन्त्र, दोनोंकी कृतिमें समानता है। लवण यन्त्रका विधान होने पर हॉडीमें नमक भरकर ओषधिके संपुट को दबाया जाता है, और वालुका यन्त्रमें रेतके भीतर संपुट अथवा बोतलको रक्खा जाता है। अग्नि देनेकी विधि दोनोंमें समान है।

(१२) *दोला यन्त्र*—कपड़ेकी ४ तह करके एक छोटी थैली बना लें। उसमें ओषधि-मिश्र पारेका गोला ३ भोजपत्रोंमें लपेटा हुआ अथवा अन्य स्वेदन देनेकी ओषधिको रक्खे। थैलीके ऊपरके भागको दृढ़ डोरीसे बॉधकर हॉडीमें लटकावे। हॉडीके ऊपर लोहेकी शलाका रक्खें, जिस पर पारे वाली थैलीकी डोरी बॉध देनेसे हॉडीमें



झूलेकी तरह लटकती रहेगी। थैली हॉडीके पैंदसे १ अंगुल ऊँची रहनी चाहिये। थैलीका कोई भाग हॉडीको नहीं लगना चाहिये, अन्यथा हॉडीके तलेमें कपड़ा लगने से जल जायगा, फिर थैलीमेंसे ओषध हॉडीमें गिरकर नष्ट हो जायगी।

हॉड़ीमें कॉजी, गोमूत्र, दूध, तक्र, तैल अथवा अन्य शोधन द्रव इतना भरे कि थैली में भरी हुई ओषधि अथवा पारदका गोला द्रवमें डूबा रहे। गोमूत्र दूध आदि उफाण आकर बाहर न गिर जॉयँ, इसलिए पहले से हॉडी बड़ी ले। अग्नि मन्द-मन्द नियत समय तक दें। कॉजी, गोमूत्र आदि द्रव्य कदाचित्

समयके पहले सूख जायँ, तो पुनः ऊपरसे डाल ले। किन्तु बिल्कुल सूख जानेपर ऊपरसे काँजी आदि पदार्थ डाला जायगा तो हाँडी फूट जाएगी।

(१३) उष्ण यन्त्र—एक भगोने या हाँडीमें जल अथवा काँजी भरें; और बरतनके ऊपरमें लोहेकी शलाका रक्खें। फिर बादाम, पिस्ता अथवा अन्य तैल निकालनेकी ओषधिको कूट, पोटली बाँधकर डोरेसे उस शलाका पर लटका दे। जल से पोटली ऊँची रहे और भाफ लगती रहे, इस तरह यन्त्र तैयार कर चूल्हे पर चढाकर मन्दाग्नि दे। ओषधि पसीजने पर पोटलीको निकाल कर तैल निचोड ले।

(१४) स्वरस यन्त्र—बिल्वपत्र, अडूसा, पियाबाँसा आदि शुष्क द्रव्योंका स्वरस निकालनेके लिये पहले इनको इमामदस्तेमें कूटे। फिर एक कटोरदानमें भरकर ढकन मजबूत रीतिसे ढक दे। पश्चात चूल्हे पर कड़ाहीको चढा, कडाहीमें ईंटके २ टुकडे रखकर, उन पर कटोरदान रक्खे। उस पर एक पत्थर रक्खे, फिर कटोरदानके चारो ओर जल इतना भरे कि कटोरदानके भीतर प्रवेश न करे। इस तरह यन्त्र बनने पर नीचे अग्नि जलावे। लगभग आध घण्टेमें ओषधि नरम होने पर बाहर निकाल, निचोड़ लें।

(१५) नालिका यन्त्र—(अर्क निकालने का भभका) भीतर से कलई की हुई ताँबे की डेगची या मिट्टीकी डेगची ले। ऊपर ताँबे की बाल्टी जैसा बरतन बनवाकर रक्खे। जिसकी ४ अंगुल किनारी नीचे वाली डेगचीमें चली जाय। फिर सन्धिको अच्छी तरह बन्द करे। ताकि अर्क भाफ होकर बाहर न निकल जाय। ऊपर की बाल्टीके पैदेमें एक औंधा कटोरा कड़ाहीके



आकारका जड़वा ले। उस कटोरेमें भी कलई करवा ले। बाल्टीमें

कटोरेके नीचेके भागमें एक नली लगा दे। जिसमेंसे अर्क बाहर निकलता रहे। नली इस तरह लगानी चाहिये कि वाल्टी डेगची पर रखने के समय नली डेगचीसे ऊपर रहे। जिससे भाफ वाल्टीमें लगे हुए औंधे कटोरेमें इकट्ठी होकर नली द्वारा बाहर निकलती रहे। वाल्टीके नीचेका भाग जो यन्त्र बन्द करनेके समय नीचे डेगचीमें रहता है, उस जगह पर आध इञ्चकी मुडी हुई किनारी वाली तांबेकी पट्टी नलीके समान ऊँचाई पर जड़वा ले, इसलिये कि नीचेकी डेगचीमेंसे भाफ उत्पन्न होकर ऊपरकी वाल्टीके नीचे औंधे जड़े हुए कटोरेमें लगे, और वह भाफ अर्क रूप होकर तांबेकी मुड़ी हुई पट्टी परसे नलीमें चली जाय। वाल्टीमें कटोरेके ऊपर एक दूसरी नली लगवावे, जिससे जल उष्ण होनेपर बार-बार निकाल सके।

इस तरह यन्त्र तैयार होने पर जिस ओषधिका अर्क निकालना हो, उसे ४ गुने पानीमें २४ घण्टे भिगोकर भरे। कोई-कोई ओषधि जल मिलाये बिना भी भरी जाती है। डेगचीका १ हिस्सा खाली रक्खें और ३ हिस्सेमें ओषधियुक्त जल रक्खें। पश्चात् ऊपरके बरतनको बैठा, सन्धिमें कपड़मिट्टी लगा सुदृढ़ बन्द करें। कपडमिट्टी अच्छी नहीं होगी, तो भाफ बाहर निकलती रहेगी, जिससे अर्क कम निकलेगा।

यन्त्र तैयार होनेसे चूल्हे पर चढा कर अग्नि जलाना आरम्भ करें। ऊपरके बरतनमें जल भरें। जल उष्ण होने पर बार-बार निकालते जायँ, और शीतल जल भरते रहें। अर्क निकालनेकी नलीके ऊपरमें एक मुड़े हुए सिरे वाली दूसरी नली लगा दें। उसका अन्तिम भाग बोतलमें रक्खें। फिर इन दोनों नलियोंकी सन्धि पर एक कपड़ा लपेट दें, जिससे अर्क बोतलमें गिरता रहे। जब निकलते हुए अर्कमेंसे जली हुई गन्ध आने लगे, तब अर्क निकालना बन्द करें।

सुदर्शन चूर्ण जैसी कड़वी ओषधिका अर्क इस यन्त्र द्वारा निकालनेसे कड़वापन दूर होता है, और लाभ सत्वर होता है।

यदि हरताल, गन्धक आदिका तैल निकालना हो, तो दोनों पात्र मिट्टीके ही लेने चाहिये, और ऊपरके ढक्कनमें बाँसकी मुड़ी हुई नलीको लगाना चाहिये। बाँसकी नलीका सम्बन्ध काँचकी नलीसे रख कर अर्क बोतलमें गिरे ऐसी योजना करनी चाहिये। इस तरह शङ्खद्राव आदि तेजाब भी मिट्टीके बरतनोंका यन्त्र बनाकर निकालना चाहिये। धातुके बरतनोंका यन्त्र होगा, तो बरतन खराब हो जायँगे और अर्क (तेजाब) भी दोषवाला बन जायगा।

ऊँची बन जाय, तब लोहेकी पैरके अँगूठे जितनी मोटी और एक-एक हाथ लम्बी सोंठ दीवालमें आ जाय, ऐसे ४ छेद चारों ओर समान दूरी पर रख ले। जिससे सोंठोको रख सकें, और इच्छा हो तब निकाल भी सके। सोंठें भट्टीके भीतर छः-छः अंगुल रहेगी, और शेष हिस्सा दीवालमें तथा भट्टीके बाहर रहेगा। इन सोंठोके ऊपर औषधिका संपुट रखनेके लिये लोहेकी जाली रखी जायगी। सोंठोके छेदके ऊपर १० अंगुल और दीवाल बनावें, जिससे सब मिलकर २८ अंगुल ऊँची दीवाल बनेगी। दीवाल भीतरसे इस तरह सँकरी करते जायँ कि, लोहेकी जाली २२ अंगुल गोलाई वाली उन सोंठो पर रह सके। दो दिशामें बराबर सामने आँच देनेके लिये दो मुँह एक-एक बालिश्त लम्बे चौडे बनावे, और भट्टीमें तीसरी ओर एक हाथ लम्बी नीचे भुट्टी चली जाय, ऐसी गोल १० इंचकी चौड़ाई वाली और ऊपरमें २। इञ्च (३ अंगुल) छेद वाली लोहकी नली ऊपरको उठी हुई तिरछी लगावे। इस नलीके भीतरका भाग जमीनके ऊपरसे दीवालमें शुरू हो जायगा और नलीके ऊपरका भाग दीवालमें तिरछा होकर ऊपर निकलेगा। नीचे रखे हुए दो मुँहके बराबर मध्य भागमें (दीवालमें) तीसरी ओर नली रक्खे। जिससे नलीके नीचेके मुँहसे धुआँ और अग्निकी लपटें घुसेगी और ऊपरके मुँहमेंसे बाहर निकलेगी। तीव्राग्नि देना हो, तो संपुटके चारों ओर लकड़ी जलानी पड़ेगी, और उस नलीके मुँहको ईंटकी डाट लगाकर बिल्कुल बन्द करना पड़ेगा। मन्द अथवा मध्यम अग्नि देना हो तो इस नलीमेंसे डाट निकाल डाले। दो मुँह बनाये हैं,

---

५-६—दीवाल। जमीनके ऊपरके लोहेके दंडों तक ऊँचाई १३॥ इञ्च।

७-८—लोहेके दंडे ४ हैं। भट्टीके भीतर ४॥ इञ्च। दीवालमें दबा हुआ ८॥। इञ्च। शेष भाग भट्टीसे बाहर है। बाहरका हिस्सा ज्यादा होनेपर भी चित्रमें जगह कम होनेसे कम दिखाया है।

९—लोहेके दंडेके पास भीतरका खाली भाग। गोलाई १८॥ इञ्च।

१०—लोहेकी जाली। चारों ओर २-२ इञ्च जगह खाली है।

११-१२—ऊपरकी दीवाल। चौड़ाई ६ इञ्च।

१३—ऊपरके भागमें भट्टीके भीतरकी खाली जगह। चौडाई १७॥इञ्च।

१४—लोहेकी नलीके नीचे का भाग। चौडाई १० इञ्च।

१५—लोहेकी नलीके ऊपरका सिरा। चौडाई २। इञ्च। दीवालके मध्य भाग मे है।

इनके मध्य भागमें चौथी दिशाकी दीवालमें थोड़ा ऊँचा एक बालिश्त लम्बा-चौड़ा तीसरा मुँह बनाले, जिसमेंसे कलछेको धातुओंका रस करनेके समय डाल सके। भट्टी तैयार हो जाने पर बाहर और भीतरी अच्छी रीतिसे प्लास्टर कर लें, ताकि भट्टी वर्षों पर्यन्त काम दे सकें। गजपुट देनेके समय लोहेकी जाली निकाल ले, केवल लोहेकी साँठ रहने दें। एवं तीनों मुँहको ईंटोंसे बन्द करें, तथा मध्य भागमें संपुटको रखकर ऊपर और नीचे अग्नि दें। वराह पुट देना हो, तो भट्टीमें लोहे की जाली रक्खें, और भट्टीके ऊपर लोहेका चूल्हा रक्खें। पश्चात् नीचे और ऊपर गोवरी भर बीचमें संपुट रख कर अग्नि दें। इस तरह एक ही भट्टीसे अनेक कार्य एक साथमें होते है। काम करने वालोंको धुआँ अथवा गर्मीसे विशेष त्रास नहीं होता, और थोड़ी लकड़ीसे कार्य भी विशेष होता है। (रसायनसारके आधारसे)

(२२) *सिद्ध भ्राष्ट्री*—इस भट्टीका उपयोग हम अनेक वर्षोंसे करते हैं। इसके बनानेकी विधि कूपी पक्व रसायन प्रकरणमें दी जायगी।

(२) औषध-कृति विधि।

(१) *हिम बनानेकी विधि*—ओषधिके चूर्णको ४ गुने अथवा ८ गुने जलमें ६ से १२ घण्टे तक भिगोकर छान लेनेको हिम कहते हैं। भिगोनेके लिये बरतन चीनी मिट्टी अथवा काँचका लेना चाहिये।

(२) *फाँट बनानेकी विधि*—ओषधिके चूर्णको ४ गुने अथवा ८ गुने या १६ गुने जलमें १२ घण्टे भिगो दें। फिर चूल्हे पर उबालकर, आधा जल शेष रहे, तब उतार लें। शीतल होने पर छानकर उपयोग में लें। इसे फाँट कहते है। फाँट पाकमें हलका है और लाभ जल्दी दिखाता है। हिम और फाँट रोज ताजा करके उपयोगमें लाना चाहिये। सूक्ष्म चूर्ण बिना भिगोए उबाल लेनेसे भी फाँट हो सकता है।

(३) *क्वाथ (काढा) बनानेकी विधि*—साधारणतः दो से चार तोले ओषधिको १६ गुने जलमें मिलाकर काढ़ा बनाया जाता है। सूखी ओषधि हो, तो रात्रिको कूट कर भिगो दें। फिर सुबह चूल्हे पर चढ़ाकर उबालें। जब जलका चौथा भाग शेष रहे, तब उतारकर छान लें। क्वाथ रोज नया बनाना चाहिये। कारण, क्वाथ विशेष समय तक रहनेसे बिगड़ जाता है। नव्य मत अनुसार क्वाथमें रेक्टीफाईट स्पिरिट और शहद मिला लिया जाय, तो अनेक मास तक गुणकारी रहता है। विशेष सूचना क्वाथ प्रकरणके आरम्भमें लिखी है।

(४) *स्वरस निकालनेकी विधि*—अनेक वृक्षोंकी छाल और पत्तोंमें रस बहुत कम होनेसे नहीं निकलता। ऐसी ओषधियोंको कूट कर एक कलई किये हुए कटोरदानमें भरें। फिर यन्त्र-वर्णन में कहे हुए स्वरसयन्त्र द्वारा स्वरस निकाल लेवें।

एवं अनेक ओषधियोंका स्वरस पुट पाक कृतिसे भी निकाला जाता है, और अनेकोंको कूट निचोड़कर कपड़ेसे छान लिया जाता है।

(५) *अर्क निकालनेकी विधि*—गीली अथवा सूखी ओषधिका अर्क नलिका यन्त्र द्वारा निकल सकता है। सूखी ओषधिको २४ घण्टे पहले ८ गुने जल में भिगो दें, और दूसरे दिन अर्क को निकाल लें। पलासकी जड़को निकाल, छोटे-छोटे टुकड़े कर उसी दिन अर्क निकालना पड़ता है, अन्यथा जड़ सूखकर अर्क बहुत कम निकलता है। सुदर्शन चूर्ण जैसी कड़वी ओषधियोंको एक दिन पहले भिगोकर अर्क निकालनेसे अच्छा काम देता है, और कड़वापन चला जानेसे सबके उपयोगमें भी आ सकता है।

(६) *कल्क विधि*—गीली ओषधिको शिला पर पीसकर चटनी बना ले, और सूखी ओषधिमें पानी मिलाकर चटनी तैयार करें।

(७) *पुटपाक विधि*—ओषधियोंका कल्क कर, उसके ऊपर गंभारी, वड अथवा जामुन आदिके पत्तोंको अच्छी प्रकारसे लपेट दें; फिर उस पर दो अंगुल मिट्टीका लेप कर अग्निमें रखें। जब दहकते अंगारेके सदृश वर्णवाला हो जाय, तब संपुटको निकाल लेवें पश्चात् मिट्टी और पत्त दूर कर कल्कके रसको निचोड लेवें।

(८) *अवलेह बनानेकी विधि*—क्वाथ आदिको पुनः पकानेसे जो गाढ़ा हो जाता है, उसे रसक्रिया, अवलेह और लेह कहते है। अवलेहमें चीनी डालनी हो, तो चूर्णसे चौगुनी, गुड़ डालना हो तो चूर्णसे दूना और द्रव पदार्थ मिलाना हो, तो चूर्णसे चौगुना डालें अवलेहमें जब चाशनीके सदृश तार निकलने लगे, पानीमें डालनेसे डूब जाय; चाशनी कड़ी हो जाय, अँगुलीके दबानेसे अँगुलीकी रेखा उठ आवे, और गंध तथा रस अपूर्व हो जाय, तब अवलेहको भलीभाँति पका हुआ जानें।

(९) *घृत और तैल बनानेकी विधि*—पहले ओषधियोंका कल्क करें। पश्चात् उससे चौगुना घृत अथवा तैल और तैलसे चौगुना द्रव पदार्थ लें। सबको कलई की हुई पीतलकी कढ़ाईमें भरकर पकावें। द्रव-पदार्थके जल जाने पर घृत अथवा तैल शेष रहे, तब

कड़ाहीको चूल्हे परसे नीचे उतार लेवें फिर घृत या तैलको ऊपरसे सम्हालपूर्वक निकाल लेवें ।

अथवा ओषधियोंके कल्क या चूर्णमें उससे चौगुना पानी डाल कर पकावें, जब चौथा भाग जल शेष रहे, तब उसमें घृत अथवा तैल डालकर सम्पूर्ण पानी जल जाने तक पकावें । यहाँ जो चौगुना पानी डालनेको कहा है; वह गिलोय आदि कोमल पदार्थोंके लिये है, सोंठ आदि सूखे पदार्थोंके लिये अठगुना और देवदारु आदि कठिन सूखे पदार्थोंके लिये सोलह गुना जल डालें ।

सूचना—घृत, तैल और गुड़पाकको एक ही दिनमें सिद्ध नहीं करना चाहिये। पहले दिन ओषधियोंको भिगोदे और दूसरे दिन सिद्ध करें।

घृत सिद्ध हो जानेके समय झाग बन्द हो जाते हैं तब सुगन्ध आने लगती है। परन्तु तैल सिद्ध होनेके पहले झाग उत्पन्न होते हैं, तैल साफ दिखाई देने लगता है, और सुवास आती है।

घृत और तैल पाककी परीक्षा—कल्कको अँगुलीसे दबाकर मसले। बत्ती की तरह हो जाय और अग्निमें डालनेसे शब्द न होवे, तो पाक सिद्ध समझे। विशेष विचार घृत तैल प्रकरणके आरम्भमें दिया है।

(१०) *काँजी बनानेकी विधि*—एक सेर चाँवलको १६ गुने जलमें उबाले, पक जाने पर ऊपरका माँड ले ले । फिर एक सेर कुलथीका क्वाथ कर, छान कर मिला ले । पश्चात माँड और क्वाथको एक मिट्टीकी हाँडीमें सरसोंका तैल चुपड करके डालें, फिर उसमें राई, जीरा, सैंधानमक, हींग, सोंठ और हल्दीका चूर्ण पाँच-पाँच तोले तथा थोड़े बाँसके पत्ते और आधा सेर उड़दके बडे डाल, मुँह बाँधकर तीन दिन रख दें । चौथे दिन जब खट्टी बास आने लगे, तब काँजी छान कर उपयोगमें लेवे ।

द्वितीय विधि—१ सेर चाँवल या ज्वारको १६ गुने पानीमें उबालें । चतुर्थांश पानी जल जाय और ३ भाग शेष रहे तब उतार कर ३-४ दिन रहने दें । खट्टी गन्ध आने पर छान कर उपयोगमें लें।

पीनेके लिये उपयोगमें लेना हो, तो प्रथम विधिमें लिखे अनुसार मसाला मिलाकर तैयार करें । अथवा प्रकृतिके अनुकूल मसाला मिलावे । ओषधियोंके शोधनके लिये सैंधानमकको छोड़कर अन्य मसाला मिलानेका आग्रह नहीं है।

(११) *चाँवल धोवनकी विधि*—दो तोले चाँवलको मोटा-

मोटा कूटें। फिर जलमें धोकर ८ गुन जलमें भिगो दें। एक घण्टे बाद मसल कर छान लें।

(१२) *लोबानके फूल तैयार करनेकी विधि*—दस तोले लोबान को तवे पर रखकर मन्दाग्नि दें। जब लोबान पतला हो जाय; तब ऊपर काँचका प्याला उलटा रक्खें और अग्नि थोडी तेज करें। जिससे थोड़े समयमें लोबानका फूल भाफ-रूप होकर प्यालेके नीचे लग जायगा। किन्तु भीमसेनी कपूर बनानेकी विधिके अनुसार पहलेसे ही संधि बन्द कर लेना, विशेष लाभदायक है।

(१३) *भीमसनी कर्पूर बनानेकी विधि*—कपूर २ तोले, छोटी इलायचीके बीज ६ माशे, समुद्रफेन, निर्मली, नागरमोथा, रसौत, और अगर ३-३ माशे, केशर १॥ माशा और कस्तूर ६ रत्ती ले। सबको खरलमें डाल गुलाबजलमें घोटकर एक टिकिया बनालें। पश्चात् टिकियाको काँसीके कटोरेमें रक्खें, और ऊपर काँसीका दूसरा कटोरा औंधा रखकर, दोनोंकी सन्धिको पानीसे ओसने हुए उर्दके आटेसे बन्द करें। बादमें संपुटको छोटेसे चूल्हे पर रखकर नीचे तिल्लीके तेलका मोटी बत्तीका दीपक जलावें। कटोरेके ऊपर खादीकी आठ दस तह कर पानीमें तर करके रखें। पाँच-पाँच मिनट बाद कपड़ा बदलते जायँ, इस रीतिसे ३ घण्टे तक अग्नि दें। फिर ठण्डा होने पर यन्त्रको खोल ऊपर कटोरेमें लगे हुए पुष्पको निकाल लेवें। (र० सा०)

सूचना—अग्नि तीन घण्टेसे अधिक समय तक देनेसे ऊपर लगे हुए पुष्प नीचे गिरने लगते हैं। अत अग्नि ३ घण्टे देकर बन्द करें। यदि टिकिया में कपूर रह जाय, तो दूसरे समय अग्नि देकर उड़ाले।

(१४) *यवक्षार बनानेकी विधि*—जौके पञ्चाङ्गको गजपुटके खड्डेमें जलाकर राख करे। फिर १६ गुने जलमें रात्रिको भिगोदे। सुबह ऊपर-ऊपरसे जल सम्हाल कर नितार लेवे, और नीचेकी राखको फेंक देवें। इस जलको छान, कडाहीमें डाल, चूल्हे पर चढाकर अग्नि देवें। पानी जल करके क्षार बन जायगा। कदाचित् क्षार काला होजाय तो और थोडा जल मिलाकर छान लेवे। फिर उसी समय कड़ाहीमें डालकर क्षार बना लेवें। इसकी मात्रा २ रत्तीसे ८ रत्ती तक है।

सूचना—जौके पञ्चाङ्गको खड्डेमें जलानेसे विशेष परिमाणमें राख मिलती है। बाहर जमीन पर जलानेसे वायुसे राख बहुत उड जाती है राखके साथ काले कोयले रहे हों, उनको अलग निकाल डाले। सिर्फ सफेद राख काही क्षार बनानेमें उपयोग करे।

उपयोग—अनेक समय केवल जवाखार ही खानेके लिये दिया जाता है। जवाखारसे मूत्र साफ आता है और अजीर्ण दूर होता है। क्षार विशेष करके घृतमें मिलाकर चटाया जाता है, कचित् जल या दूधकी लस्सीमें दिया जाता है।

सूचना—कोई भी क्षार अधिक दिनों तक सेवन करनेसे, वीर्य और हड्डीकी सन्धियोंको नुकसान पहुंचाता है। अत: आवश्यकता पर क्षारका कुछ दिनों तक सेवन कर फिर छोड़ देना चाहिये।

(१५)**अपामार्ग** *(ऑधीझाड़ा), केलेका खम्भा, तिल पचाङ्ग, पीपल, पलास, आक इमलीकी छाल आदिका क्षार बनानेकी विधि*—जवाखारके अनुसार जिस द्रव्यका क्षार बनाना हो, उसे जलाकर राख करें, फिर क्षार बनालें। पलास पुष्पका क्षार मूत्र रोग, उदर रोग, मलेरिया आदिमें लाभदायक है। केलेका क्षार अश्मरी और नेत्र-रोगमें उपयोगी है।

(१६) *स्वर्जिकाक्षार (सज्जीखार) बनानेकी विधि*—कच्छ आदि देशोमें *सौवर्चल* (लाखा-लूणखी) नामक पौधेको काटकर सुखा देते है। फिर गड्ढेमें भरकर जलाते हैं, बारबार ऊपरसे और सूखे पौधेको डालते जाते है। जब खड्डा राखसे भर जाता है, तब उसे मिट्टीसे बन्द कर देते हैं। १०-१५ दिनमें क्षारका डेला जम जाने पर निकाल लेते है।

यदि वनौषधियोंमेंसे बनाये हुए क्षारोका रासायनिक दृष्टिसे पृथक्करण किया जाय, तो उसमें विविध वायवीय द्रव्य, धातवी द्रव्य और अधातवीय द्रव्य भिन्न-भिन्न मात्रामें प्रतीत होते है। सब क्षारोमें किसी-न-किसी अंशमें दूसरोंसे भेद रहा है। देश-काल-भेदसे एकही औषध के क्षारके द्रव्य-परिमाणमें भी भेद हो जाता है। अतः प्राचीन आचार्योंने ऊसर भूमि, दीमकवाली भूमि, शुष्क भूमि आदि स्थानोसे वनौषधियाँ लानेका निषेध किया है। एवं कौन-कौन औषधि वसत ऋतु शरद ऋतु आदिमें लानी चाहिये, इस बातका भी विचार किया है।

सूचना—क्षार बनानेके लिये भस्मको मिट्टी, पत्थर या चीनी मिट्टीके पात्रमें भिगोना चाहिये। लोहा, पीतल आदि धातुओंके पात्र न ले।

भस्मको ८-१० गुने गरम जलके साथ मिला २-२ घण्टेके अन्तर पर ४-६ बार डडेसे चला देना चाहिये। फिर २४ घण्टेके पश्चात् ऊपर-ऊपरसे स्वच्छ जल नितार, दूसरे मिट्टीके घडेमें छानकर एक दिन रख दे। पश्चात् सम्हालपूर्वक ऊपर-ऊपरसे साफ जलको नितार मिट्टीके पात्रमे डाल चूल्हे पर चढाकर क्षार बना लेवे।

यदि क्षार को विशेष शुद्ध बनाना हो, तो आधा जल कम हो

जाने पर उसमें एक-दो लोटे शीतल जल डालकर पात्रको नीचे उतार लेना चाहिये। ऐसा करनेसे मैल तल भागमें बैठ जाता है। फिर २-३ घण्टे पश्चात् स्वच्छ जलको ऊपर-ऊपरसे दूसरे पात्रमें नितार चूल्हे पर चढ़ाकर क्षार बना लेना चाहिये। जब क्षारके रवे बँधने लगें, तब कुछ समय तक मन्द अग्नि देकर घोलको गाढ़ा होने देवें। खड़ी सदृश होने पर कड़ाहीको उतार दूसरे मिट्टी या चीनी मिट्टीके पात्रमें डाल देवे, ताकि एक दो दिनमें ही सूर्यके तापसे सूखकर क्षार खोके रूपमें जम जाय।

यदि क्षारको सौम्य और विशुद्ध बनाना हो, तो उक्त क्षारमें जल डालकर जल्दी धो डाले। धोनेमें कुछ अंश क्षारका निकल भी जाता है, परन्तु विशेष अंश लवणका ही जलके साथ निकल जाता है। फिर उसे मन्द अग्नि पर सम्हालपूर्वक चलाते रहे जल न जाय यह सम्हाले। यदि अग्नि तेज लग जायगी या कड़ाही अधिक समय तक अग्नि पर रह जायगी, तो क्षारका रंग बदलने लगेगा ऐसा हो, तो तुरन्त नीचे उतार लेना चाहिये। इस सौम्यक्षारका सेवन जलके साथ भी हो सकता है। इतर क्षारोंके समान घृतके साथ लेनेकी आवश्यकता नहीं है।

वर्त्तमान पाश्चात्य देशोंमें सर्ज्जीक्षार (Sona bicarb) विशेषतः नमक, गंधकका तिजाब और चूनाके योगसे बनाया जाता है। इसी तरह यवक्षार (Potass bicarb) का निर्माण भी खनिज द्रव्यों से किया जाता है। इनके गुण भौतिक रसायन शास्त्रकी दृष्टिसे तो लगभग वानस्पतिक क्षारके सदृश है। जीवन रसायन शास्त्रकी दृष्टिसे विभिन्नता या न्यूनता हो, तो इसका निर्णय दोनो प्रकारके क्षारों (वानस्पतिक और खनिज) का रोगियों पर प्रयोग करने पर ही हो सकेगा।

गुणधर्म—खनिज स्वर्जिकाक्षारके सेवनसे यकृत्, अग्न्याशय, आदिके रसोंका स्राव बढ जाता है। तथा आमाशयक रसकी तीक्ष्णता और अम्लता कम हो जाती है। इस हेतुसे उबाक, वमन, अपचन, दाह, विष्टब्धता, उदरके कृमि रोग, मूत्रमें अम्लता, संधि स्थानोंमे पीड़ा आदि विकार शमन हो जाते है। वानस्पतिक स्वर्जिका क्षारका परिणाम समान ही है, या जीवनीय शक्ति पर अधिक लाभ पहुचता है? इसका निर्णय अभी नही हुआ।

इस स्वर्जिका क्षारकी उत्पत्ति सोडियम (Sodium) अर्थात् Natrium), उदजन (Hydrogen) और कर्बन (Carbon) के

एक-एक परमाणु और ओषजन (Oxygen) के ३ परमाणुओंके संयोगसे होती है। इसका रासायनिक संकेत "$NaHCO_3$" है।

खनिज यवक्षारके गुण स्वर्जिका क्षारके अनुरूप किन्तु कुछ भेद वाले हैं। यह क्षार रक्त या मूत्रमें अम्लता बढ़ने पर विशेष हितकर है। अम्लता वृद्धिजन्य सन्धिपीड़ा, संधिशोथ, मूत्रकृच्छ्र, बहुमूत्र, मूत्राश्मरी आदिको दूर करता है। फुफ्फुस और श्वासवाहिनियोंमें जब उष्णताकी वृद्धि होकर श्लेष्मा सूख जाता है, शुष्क कास चलने लगती है, या बँधा हुआ कफ निकलने लगता है, तब इस क्षारका सेवन लाभदायक है।

इसकी उत्पत्ति रसायन शास्त्रकी दृष्टिसे पोटाशियम (Potassium अर्थात् Kalium), उदजन और कार्बनके १-१ अणु और ओषजनके ३ परमाणुके संयोगसे होती है। इसका संकेत KHCO'3 है।

यद्यपि सब क्षारोंके गुण कुछ-कुछ भेद वाले हैं, तथापि प्राचीन आचार्योंने सब क्षारोंको सामान्य रूपसे अग्नि सदृश तीक्ष्ण, पाचक, भेदक, लघु, दृष्टिनाशक, वीर्यको हानिकर और रक्तपित्त कारक माना है। सब क्षार सामान्य रूपसे विबंध, आनाह, पीनस, यकृत् विकार, प्लीहा वृद्धि, आमवृद्धि, कफप्रकोप, गुल्म, अर्श, ग्रहणी और कृमि आदि रोगोंके नाशक हैं।

(१७) *सौवर्चल नमक विधि*—४ सेर सैंधा नमक और एक सेर सज्जीखारको कूटकर जलमें मिला लेवें। पश्चात् मिट्टीके बर्तनमें जमा देनेसे सौवर्चल (काला नमक) जम जाता है। यह चरपरा, उष्ण और लघु है। आम, शूल, ऊर्ध्ववात, गुल्म, विबंध, आफरा, अरुचि आदिको दूर करता है। इतर नमकोंकी अपेक्षा यह अधिकतर उष्णवीर्य है।

(१८) *६४ पहरी पिप्पली बनानेकी विधि*—छोटी अच्छी जातिकी नयी पीपलोंको कूट कपड़छान चूर्ण करें। फिर खरलमें डाल ८ दिन तक अहोरात्र मर्दन करानेसे ६४ प्रहरी पीपल तैयार होती है। अनेक चिकित्सकोंके मतानुसार खरलमें और बत्तेपर सुवर्णका पतरा लगा खरल करना चाहिये, जिससे सुवर्णका अंश भी पीपलमें मिल जाय। यह सुवर्णयुक्त विधि राजा-महाराजाओंके लिये है, सामान्य चिकित्सक, औषधालय और फार्मेसीवालोंके लिये नहीं है।

मात्रा—२ से ६ रत्ती शहदके साथ या इतर भस्म और शहदके साथ दिनमें २ बार सेवन करें।

सत्व उड़ा लेवें । ऊपरकी हॉडी पर गीला कपड़ा रक्खें । कपड़ा सूखने पर कपड़ेको वार वार वदलते रहें । ४ पहर पीछे यन्त्र स्वांग शीतल होने पर ऊपर लगा हुआ सत्व निकाल लेवें ।

वर्त्तमानमें केवल लोहवानका ऊर्ध्वपातन यन्त्र द्वारा पुष्प उड़ा लेते हैं उसे लोहवान पुष्प (Benzoic acid) कहते हैं। इसका उपयोग डाक्टरीमें अधिक होता है मात्रा २॥ से ८ रत्ती यह उत्तेजक है । इसकी क्रिया समस्त श्लैष्मिक कला पर होती है। इन सवमें श्वास प्रणालिका और मूत्र यन्त्रकी श्लैष्मिक कला पर विशेष होती है, जिससे कफ निःसारण और मूत्रजनन कार्यके लिये इसका व्यवहार होता है । सेवन करने पर यह शोषित होकर फिर पेशाबमें हिप्युरिक एसिड रूपसे कुछ-कुछ निकलता रहता है ।

स्थानिक प्रयोगसे वह उग्रता साधक है, इसके धूम्रपानसे श्वासनलिका और नासिकामें उग्रता उत्पन्न होकर जुकाम और कास रोगमें विलक्षण लाभ होता है । इसमें ज्वरघ्न गुण भी रहा है, एवं यह कीटाणुनाशक, शोधक और रोपण होनेसे इसे शतधौत घृतमें मिला मलहम वनाकर दुष्ट व्रण पर उपयोगमें लिया जाता है ।

(२४) *सिगरफमेंसे पारा निकालनेकी विधि*—सिगरफको नीमके पत्तोंके रस या नीवू के रसमें पारा घण्टे खरल कर कपरौटी की हुई हॉडीमें भरें फिर डमरूयन्त्रमें लिखे अनुसार पारद निकाल कर कपड़ेसे अच्छी रीतिसे छान लें नीचे गन्धककी राख रह जायगी कदाचित् उसमें पारद रह जाय तो पुनः संपुट करके निकाल लेवें । एक सेर सिगरफमें से प्रायः तीन पाव पारद निकलता है ।

डमरू यन्त्रके वदलेमें जैसी एक मिट्टीकी हॉडी डमरू यन्त्रकी विधि लिखी है, वैसी घिसी हुई लेवें, और मिट्टीके दो तवे हॉडीके मुंहसे थोडे वड़े लेवें, जो हॉडीके ऊपर अच्छी तरह रह सकें, और हॉडीकी सन्धि पर वरावर मिल जायँ पश्चात् सिगरफका चूर्ण नीवूके रसकी भावना दिया हुआ, भरकर हॉडी को चूल्हे पर चढ़ावें, और हॉडी पर एक तवेको ढकदें । किसी स्थानमें सन्धि खुली न रही हो, यह देख लेवे, १५-२० मिनट पर तथा थोड़ा गरम होने पर, नीचे उतार कर किसी मिट्टीके वरतनमें ओंधा रख दें और तत्काल दूसरे तवे को ढक दें । नीचे उतारे हुए तवेमें लगे हुए पारदको ५ मिनट पश्चात् कपड़ेसे सम्हालपूर्वक पोछ लें, फिर दूसरा तवा गरम होने पर उसे उतारले और पहले उतारे हुए तवेको ढकदें, इस रीतिसे लगभग १५-१५ मिनट

पर तवे वदलते जायँ। वार-वार तवेको हॉडी पर रखनेके समय जलमें भिगोये हुए कपड़ेसे पोछ करके रक्खे।

सिन्ध आयुर्वेदिक फार्मेसी वालोंकी कही हुई इस विधिसे पारद सुगमतासे निकलता है। डमरू यन्त्र वनानेमें जो त्रास पहुँचता है, वह इसमें नही। इसके अतिरिक्त डमरू यन्त्रमें सव पारद चढ़ गया या नही, इस वातका वोध समीचीन रूपसे नहीं होता। मात्र अनुमानसे अग्नि देनी पड़ती है। इस विधिसे पारद निकालनेमें यह शंका नहीं रहती। जव तक तवे पर पारद लगता रहे तव तक अग्नि देवें और पारद निकलना वन्द होने पर कार्यको समाप्त करे। कदाचित् हॉडीमें सिगरफ जम जाय और पारद ऊपर न उड़ सके, तो इस विधिमें कोई भी समय लोहशलाका चलाकर सिगरफको विखेर सकते है। ये सव डमरू यन्त्रकी अपेक्षा इसमें विशेषताएँ है। इस विधिसे पारद निकालने में पारद पूर्ण परिमाणमें निकल आता है।

पारद निकालनेके समय सिगरफमें शुद्ध लोहेका चूर्ण मिला लिया जाय, तो पारद जल्दी निकल आता है, और साथ-साथ लोह भस्म भी होने लगती है। लोहेके वदलेमें रौप्य या ताम्र भी मिला सकते है।

इनके अतिरिक्त सिगरफके चूर्णको कपड़ेकी पट्टियोंमें या पुरानी रुईकी तहमें कन्दुक या वन्डल वना अग्नि देकर पारद निकालते है। कन्दुकको अग्नि निवात-स्थानमें देते है। ऊपर एक वड़ा घड़ा इस तरह रक्खा जाता है कि, पारद उडकर घड़ेमें लगता रहे। पारद न उड़ जाय, ऐसे चौड़े मुँहका घड़ा कन्दुकके ऊपर सम्हालपूर्वक रखना चाहिये। घड़ेको रखनेके समय उसके मुँहका कुछ भाग जमीन पर लगा रहे। एक ओर केलू या पत्थरका टुकड़ा रक्खे, जिससे वायु कन्दुकको मिलती रहे, और कन्दुककी अग्नि वुझ न जाय। इस तरह पारद निकालने पर एक सेर सिगरफमेंसे ७० तोले पारद मिलता है। जो पारद ऊपर उडता है, वह पारद डमरू यन्त्रके समान शुद्ध होता है। किन्तु जो पारद नीचे राखमें मिल जाता है, उसे फिरसे उड़ा लेना चाहिये, क्योकि उसमें अशुद्ध द्रव्य रह जानेका सन्देह रहता है। इस क्रियामें घड़ा छोटा होगा, तो पारद वहुत चला जायगा। कितनेक चिकित्सक घड़ेको आड़ा रखते है। फिर मुँह पर गीला निचोड़ा हुआ कपड़ा डालते रहते है। वार-वार १-१ घण्टे पर कपड़ा वदलते है।

इस प्रकारसे पारद घडेके पेटमें एक ओर लगता रहता है । घडा औंधा रखनेमें पारा ऊपरमें चारों ओर लग जाता है ।

(२५) *कज्जली बनानेकी विधि*—शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक सम भाग लेकर सम्यक् खरल करें । दोनों मिलकर काला चूर्ण होजाय तथा पारदकी चमक बिल्कुल जाती रहे, तब कज्जली तैयार हुई जाने । औषध विशेषमें गन्धक दूना मिलाकर कज्जली बनानेकी विधि है । वहाँ पारदसे गन्धक दूना मिलावें ।

सूचना—औषध बनानेके नियमोंमें कज्जली जहाँ नहीं लिखी है, अलग-अलग पारद और गन्धक लिखा है, वहाँ भी पारद और गन्धककी कज्जली बनाकरके ही व्यवहारमें लानी चाहिये ।

उपयोग—भिन्न-भिन्न ओषधियोंके स्वरसकी भावना देनेसे कज्जलीमें रोग-शामक शक्ति बढ जाती है । बिना भावनासे भी कज्जली अकेली अनेक विकारोंको दूर करती है । कज्जली स्वभावतः जन्तुघ्न, वृष्य, अँतडीके सेन्द्रिय विषको दूर करनेवाली, रसायन (सप्त धातुओंको व्यवस्थित करके शरीरको पुष्ट करनेके) गुणवाली है गलेकी गाँठ (Tonsils) पर सूजन आना, प्रतिश्याय, कास, गलेमें रही हुई घटिका शिथिल होना, फुफ्फुसोंमें पीड़ा होना, कफ और बुदबुद सहित वमन, बालकोंका अपचन, अतिसार, विसर्प, स्त्रियोंके प्रदर रोग इत्यादिको दूर करती है । घृतमें मिला मलहम बनाकर खाज, दाद, मस्तकके फोडे-फुन्सी इत्यादि पर लगानेमें उपयोगी है ।

बरनाके क्वाथकी ७ भावना देकर तैयार की हुई कज्जली अन्तर-विद्रधिका प्रसादन (मासको बिखेर देना) करती है । नागरबेलके पानके रस और अदरखके रसकी भावना दी हुई कज्जली उत्तेतक होती है । आँवलेकी भावना युक्त कज्जली मिश्रीके साथ देनेसे जीर्ण मदात्य रोग (Chronic Alcoholism) को दूर करती है । द्विगुण गन्धककी कज्जली गोघृतके साथ २१ दिन तक उपदंश रोगीको देनेसे उपदंश-विकारका शमन होता है । भोजनमें मात्र गेहूँ और घृत दें । नमक बिल्कुल नहीं देना चाहिये ।

मात्रा—१ से २ रत्ती खानेके लिये । मलहमके लिये ६ माशे कज्जलीको १० तोले शतधौत घृतमें मिला लेना चाहिये ।

(२६) *आसव अरिष्ट बनानेकी विधि*—आसव-अरिष्ट प्रकरणके आरम्भमें लिखी जायगी ।

(२७) *कूपीपक्व रसायन विधि*—कूपीपक्व रसायन प्रकरणके साथ विस्तारसे लिखी जायगी।

(२८) *कलईके मैलमें कलई निकालनेकी विधि*—शोधन करने पर कलईका मैल निकलता है। उसके साथ थोड़ा-थोड़ा नौसादर और गुड़ मिला कढाईमें गरम करनेसे कलई अलग निकल आती है।

इसी तरह शीशेके मैलमेंसे शीशा और जसदके मैलमेंसे जसद निकाल लिया जाता है।

(२९) *अभ्रक निश्चन्द्रकरण विधि*—शुद्ध अभ्रकका चूर्ण १ सेर तथा कलमीशोरा और गुड़ आध-आध सेर लेकर मिला लेवे। पश्चात् हॉडीमें भर तेज अग्नि पर रखकर १२ घण्टे अग्नि देनेसे अभ्रक निश्चन्द्र हो जाती है। शीतल होने पर अभ्रक निकाल, कूटकर जलमें भिगो दे। ४–६ घण्टे पीछे सम्हालकर जल निकाल देवे। फिर जल मिलाकर मल ले। जल स्थिर होनेसे ऊपर निकाल दे। इस रीतिसे ३–४ समय धोनेसे क्षार निकल कर अभ्रक मात्र शेष रह जाती है।

इस अभ्रकमेंसे भस्म बहुत जल्द तैयार होती है। यद्यपि धान्याभ्रकमेंसे बनाई हुई भस्म अधिक लाभदायक है, और इस तरह तैयार करनेमें गुण बहुत कम हो जाता है, तथापि अच्छी अभ्रकके अभावमें समय पर इससे काम चल सकता है।

सूचना—अग्नि लगनेसे शोरा बडी आवाजके साथ उडता रहता है, इससे भय न माने, और हॉडीमें ऊपर थोडी अभ्रक कच्ची रह जाय, तो अलग निकाल लेवे। उसे दूसरे समय निश्चन्द्र कर लेवे। हॉडी पर ढक्कन ऐसा लगावे कि जिसमें अंगुली आ जाय। बिल्कुल बन्द होगा तो बरतन फट जायगा।

(३०) *पोदीनेके फूल बनानेकी विधि*—हरे पोदीनेका स्वरस पॉच तोले, कलमीशोरा, नौसादर और कपूर एक-एक तोला ले। सबको मिला छोटे-छोटे करवोंका डमरूयन्त्र बनाकर पैक करे। मोटे दीपककी बत्ती जैसी पतली लकड़ीकी ऑच ३ घण्टे तक देनेसे फूल ऊपर लग जाते है। बार-बार गीला कपड़ा ऊपर बदलते रहना चाहिये। यदि दो संपुटके बीचमें लोहेके तारकी जाली बॉध दी जाय, तो पीपरमेंटके फूलकी तरह कलमें जमती है। इसी तरह अजवायन और मूलीके स्वरसका भी फूल उड़ा लिया जाता है।

मात्रा—१ से तीन रत्ती तक, दिनमें २ से ३ समय तक।

उपयोग—यह फूल वमन, उबाक, अरुचि, अतिसार, मूत्रविकार और यकृत् दोष दूर करनेमें उपयोगी है।

(३१) *सत्यानाशीका तैल निकालनेकी विधि*—सत्यानाशीके पक्के सूखे बीजोको कूटकर उबलते हुए जलमें डालकर ढक दे। जल उतना लेवे कि बीज अच्छी तरह डूब जॉय। जल शीतल होने पर बीजो को दबाकर निचोड़ लेनेसे जल और तैल निकल आता है। तैल जल पर तैरता है। उसे सम्हालपूर्वक रुईके फोहेसे निकाल लेवें। यह तैल उपदंश और त्वचा रोगमें खाने और लगानेके लिये उपयोगी है।

अधिक परिमाणमें तैल निकालना हो, तो पातालयन्त्रमे अथवा तिल, सरसो आदिके समान कोल्हूसे निकाल लेवें।

(३२) *रसाजन बनानेकी विधि*—दारुहल्दीको कूटकर २४ घण्टे तक १६ गुने जलमें भिगो देवे। पश्चात् क्वाथ करके अष्टमांश जल शेष रहे तब उतारकर छान लेवे। बादमें सम भाग बकरीका दुग्ध मिलाकर कड़ाहीमें दुग्धके मावेकी तरह बना ले। तुरन्त उपयोगके लिए यह रसाजन विशेष उपयोगी है। दुग्ध मिला हुआ होनेसे रसांजन एक मास से अधिक समय तक नहीं रह सकता। जन्तु हो जाते है, इसलिये थोड़े परिमाणमें तैयार करे। दीर्घकाल तक रखनेके लिए रसाजन बनाना हो, तो दुग्ध न मिलावे। केवल क्वाथका ही घन बना लेवे। यदि ताजी दारुहल्दीकी मूलमेंसे रसाजन बनाया जाय, तो विशेष लाभ पहुँचता है। आयुर्वेद-प्रकाशमे दुग्ध चौथा हिस्सा मिलानेको लिखा है।

रसाजन उष्ण, कडवा, चरपरा, रसायन और छेदन गुण वाला है। कफ, विष, नेत्रविकार और व्रण दोषको दूर करता है।

(३३) *एरण्ड तैल निकालनेकी विधि*—लगभग १० सेर या अधिक छिलके निकाले हुए अरंडीके बीजोको कड़ाहीमें भून, कूटकर मैदा जैसा चूर्ण करे। फिर एक हॉडीमें भर, १५ गुना जल मिलाकर उबाले। अच्छी तरह उबलने पर नीचे उतारकर हॉडीको ठण्डी होने दे। बादमें ऊपरसे नितरे तैलको सम्हालपूर्वक निकालले। पुनः हॉडीको चूल्हेपर चढ़ा जलको उबालकर तैल निकाल ले। पहले समय निकाला हुआ तैल ओषधिके लिए उपयोगी है। दूसरे समयका तैल दीपक जलाने लायक होता है।

(३) अभाव वर्ग

एक ओषधि के अभावके समय समान गुणवाली दूसरी ओषधि उपयोगमें लेना, उसे प्रतिनिधि कहते है। प्रतिनिधि उपयोगके विषयमें शास्त्रकारोंने जो नियम बनाया है उस नियमानुसार ही प्रतिनिधि

ओषधि ली जाती है। अनेक ओषधियोंको मिलाकर प्रयोग तैयार करनेमें प्रायः मुख्य और गौण, ऐसे दो विभाग होते है। मुख्य ओषधि वह कही जायगी कि जिसके बिना ओषधि प्रयोग तैयार न हो सके, अथवा इच्छित लाभ न दे सके। गौण ओषधि वे है, जिनके अभावमें समान गुणवाली ओषधि मिलाने पर प्रयोग द्वारा इच्छित लाभकी प्राप्ति हो सके। अतः रोगको दूर कर स्वास्थ्य प्रदान करना अथवा शारीरिक और मानसिक निर्बलता दूर कर बलकी वृद्धि करना, यह मुख्य ओषधिका कार्य है, और मुख्य ओषधिके दोष अथवा उग्रताका शमन करना, उपद्रवोंको दूर करना. गुण-वृद्धि और शीघ्र लाभ पहुँचानेमें सहायता करना, ये गौण ओषधियोंके कार्य है।

जैसे हिंग्वष्टक चूर्णमें हिंगु मुख्य ओषधि है, शेष ७ ओषधियाँ गौण सहायक है जैसे हिंगु न हो, तो हिंग्वष्टक चूर्ण तैयार नही हो सकेगा और कोई गौण ओषधि न होवे, तो उसके स्थानमें प्रतिनिधि की योजना हो सकती है। किसी-किसी प्रयोगमें एकसे अधिक ओषधियाँ भी मुख्य रहती है। कूपीपक्व रसायन, पर्पटी, खरलीय रसायन और इतर अनेक प्रयोगोंमें एकसे अधिक ओषधियाँ मुख्य है जैसे—मल्लचन्द्रोदय रस, पंचामृत पर्पटी, अश्वकंचुकी रस, अमृत-संजीवनी वटी, त्रिफलापिप्पली चूर्ण, दशमूलाद्यरिष्ट, चन्दनबलालाक्षादि तैल, इत्यादि ओषधियोंमें एकाधिक मुख्य ओषधियाँ है।

जहाँ अनेक ओषधियोंमें संयोगजन्य गुण उत्पन्न होता है वहाँ पर उनमेंसे किसीको भी गौण नहीं कह सकेंगे। जैसे रसायन चूर्णमें गिलोय, गोखरू और आँवलेके संयोगसे रसायन समान गुण उत्पन्न होता है, ऐसे स्थानमें किसीके अभावमें प्रतिनिधि नहीं लिया जायगा। एव त्रिफला, त्रिकटु, चातुर्जात, पंचलवण, दशमूल आदि ओषधियोंमें प्रायः सब समान भाववाली अर्थात् मुख्य ओषधियाँ मानी जाती है। ऐसी निश्चित ओषधियोंके मिश्रणसे निश्चित गुणकी उत्पत्ति होती है। अतः उनके स्थानमें प्रतिनिधिका उपयोग नहीं करना चाहिये।

शास्त्रमें प्रायः प्रयोगके नाममें मुख्य ओषधिका सम्बन्ध रक्खा है, जिससे मुख्य ओषधि कौनसी है, इस बातका सहज बोध मिल सकता है। जैसे कस्तूरीभैरव रस, द्राक्षारिष्ट, खदिरारिष्ट, वासाद्यघृत, अमृताद्यतैल, हिंग्वादि चूर्ण, कुटजादि वटी, इन सबमें क्रमशः कस्तूरी, द्राक्षा, खदिर, वासापत्र, अमृता, हिंगु, कुटज, ये सब मुख्य है।

परन्तु आयुर्वेदीय वाङ्मयमें इस नियमका सर्वांशमें पालन

नहीं हुआ। कतिपय प्रयोगोंमें मुख्य ओषधिका सम्बन्ध नामके साथ नहीं रक्खा। जैसे वच्छनाग प्रधान अनेक ओषधियाँ ज्वरांकुश, ज्वर-केसरी वटी आदि एवं कासकुठार रस, कृमिमुद्गररस, चन्द्रप्रभा वटी, आरोग्यवर्धिनी, अमरसुन्दरी वटी, लक्ष्मीनारायण रस, अग्निरस इत्यादिमें रोग सम्बन्ध, गुण सम्बन्ध और सामान्य संज्ञाकी प्रतीति होती है। कतिपय प्रयोगोंमें गौण ओषधिका सम्बन्ध नाममें रक्खा गया है। जैसे चन्द्रप्रभावटीमें चन्द्रप्रभा संज्ञा ओषधिदर्शक मानें, गुणदर्शक न मानें। चन्द्रप्रभा (कपूर, कचूर, शतावरी या वायविडंग) ओषधि गौण है। मुख्य ओषधि शिलाजीत और गूगल है। एवं हारीत संहितामें चन्दनाद्यवलेह, भैषज्य रत्नावली का शुक्र मेहपर चन्दनादि चूर्ण, प्रदर पर चन्दनादि चूर्ण, निघटु रत्नाकरका ग्रहणी रोग पर चन्दनादि चूर्ण, इन सबमें चन्दन आद्य होने पर भी सामान्य ओषधि है। इन प्रयोगोंमें चन्दनके स्थान पर गौण ओषधि मिला दी जाय, तो भी प्रयोगमें विशेष क्षति नहीं पहुँचेगी। इस तरह योगरत्नाकरके तालीसादि चूर्णमें तालीसपत्र गौण है। मुख्य भाँग या हरड़ है। उपर्युक्त बातोंको समझकर जिस प्रयोगमें जिनको गौण सहायक ओषधियाँ मानी जायँ, मात्र उनके ही अभावमें समान गुण (रस-वीर्य-विपाक आदि) युक्त अन्य प्रतिनिधि ओषधि मिलाई जाती हैं।

शोधन प्रकरण

आयुर्वेद शास्त्रकी मर्यादा अनुसार द्रव्योंका शोधन करना अर्थात् दोषलक्षण और गुण वर्णन करना। अनावश्यक, बाधक अंश, विजातीय द्रव्य, अथवा मलको दूर करना या उसमें अवस्थित दोष को आवृत्त करना और गुणकी वृद्धि करना, इन हेतुओंमें से किसी एक या अनेक हेतुओं की सिद्धिके लिये औषध द्रव्यपर जो संस्कार किया जाता है, उसे शोधन कहते हैं।

वच्छनाग में हृदयका अवसादक करने का धर्म अवस्थित है, उस धर्मको नियमित करनेके लिये वच्छनागका शोधन गोमूत्रमें किया जाता है। अर्थात् वच्छनागमें गोमूत्रका प्रवेश कराया जाता है। शिलाजीत, खरिया मिट्टी आदिका शोधन पत्थर आदि विजातीय द्रव्योंको दूर करनेके लिये होता है। पारदका शोधन विविध प्रकारके मल, धातु मिश्रणको दूर करने और गुण वृद्धिके हेतुसे होता है। सुवर्ण आदि धातुका शोधन विजातीय द्रव्य और मलदूर करने तथा सुलभतासे मारण योग्य बनानेके लिये है।

धातु और उपधातुओंका शोधन करनेसे वे अन्य द्रव्योंके मिश्रण रूप दोषसे मुक्त होजाती हैं, एवं उनकी भस्मभी अल्प परिश्रमसे तैयार होती है। यदि धातुओंके शोधनमें परिश्रम कम करे, तो भस्म बनानेमें अधिक त्रास पहुंचता है, और भस्म भी सदोष बनती है। जितना शोधन अच्छा होता है, भस्में उतनी ही अधिक गुणयुक्त होती हैं। ऐसे ही रत्नोपरत्नका शोधन करनेसे उनकी भस्म जल्दी बनती है और विशेष लाभदायक भी होती है।

सुवर्ण, रौप्य, ताम्र, कलई आदि जिन धातुओंका शोधन और मारण करना हो, वे धातु दूसरी धातुके मिश्रणसे रहित लेनी चाहिये। दूसरी धातुका मिश्रणहोनेसे नाना प्रकारके विकार होनेकी सम्भावना रहती है।

विष और उपविष शोधन विधान उग्रता या मारकताको दूर करनेके हेतुसे किया है। विषका स्वभावःहै कि, परिनक्व हुए बिना रस-रक्त आदि धातुओंमें फैलना। यह स्वभाव शोधित विषोंमें कम हो जाता है, जिससे शुद्ध विष मानव प्रकृतिको हानि नहीं पहुंचा सकता।

कच्चा सोहागा और फिटकरी पित्तोत्पत्तिमें प्रतिबन्ध करते हैं। पित्तोत्पत्ति बन्द होनेपर पाचनक्रियाका कार्य रुकता है, इस दोषको दूर करनेके लिये फूला बनाया जाता है। इसे ही शोधन कहा है। कच्ची हींग उग्र होनेसे गलेमें हानि पहुँचाती है। अत हींगको भूनकर प्रयोगमें लेने का विधान किया है।

इस रीतिसे महर्षियोंने मानव शरीर और शक्तिका विचार कर द्रव्यों को शोधन करके ही उपयोगमें लेनेका नियम बनाया है। इस ग्रन्थमें ओषधियो की जो शोधन और मारण विधि लिखी है वह किस-किस ग्रन्थके आधारसे लिखी है, वह भी सूचित किया है। धातुओंकी शोधन और मारण विधि प्राचीन ग्रन्थोंमें नाना प्रकारकी लिखी है। उनमेंसे हमने जिनका अनुभव किया है, मात्र उन्हींको इस ग्रन्थमें स्थान दिया है। अत नये अनभिज्ञ चिकित्सक निर्भय रूपसे यहा लिखी विधियोंको प्रयोगमें ला सकते हैं।

(१) *सुवर्ण और रौप्य शोधन*—शुद्ध सोना और चाँदीके पतरे को अग्निमें तपा-तपाकर तैल, छाछ, काँजी, गोमूत्र और कुलथीके क्वाथमें ७–७ बार बुझानेसे शुद्ध होते है। (र० र० स०)

सोना और चाँदी को दूसरी धातुओंके मिश्रणसे रहित लेना चाहिये। दूसरी धातुओंका मिश्रण होनेपर भस्म दूषित बनती है।

(२) *लोह शोधन*—लोहके सूक्ष्म चूर्णको तपा-तपाकर तैल, गौमूत्र, छाछ, कॉजी और कुलथीके क्वाथमें ७-७ बार बुझानेसे शुद्ध होती है। (र० र० स०)

पुरानी रेती या सुनारकी जन्त्री को अग्निमे तपा वायुमें रखकर ठण्डी

करे (जलसे न बुझावे) फिर कट रेता से घिसकर चूर्ण करे, अथवा लोहेके कारखानेमे लोहका चूर्ण तैयार मिल जाता है, उसे उपयोगमे ले।

(३) *ताम्र शोधन*—ताँबे (बारीक बिजलीके तार) को अग्निमें गरम तैल, छाछ, काँजी, गोमूत्र, कुलथीका क्वाथ, अनारदानेका रस तथा आकके पत्तोंके रसमें ७-७ बार बुझावे। फिर इमामदस्तेमें कूट कर सूक्ष्म चूर्ण करे। पश्चात् एक हाँडीमें गोमूत्र भर, उसमें इमली और नमक डाल, उसके साथ इस चूर्णको १२ घण्टे तक उबाले। शीतल होने पर साफ जल से धो, नीबूके रसमें डालकर धूपमें रक्खे। जब-जब नीबू का रस नीले रंगका हो जाय, तब-तब बदल देवे। इस रीतिसे ७ दिन तक ताम्रचूर्णको नीबूके रसमें डालकर सूर्यके तापमें रक्खें। ७ दिनमें नीबूका रस ३ बार बदलना पड़ेगा। आठवे दिन चूर्णको निकाल कर जलसे धो लेनेसे भस्म करने लायक शुद्ध हो जाता है।

बिजलीके तारका ताँबा शुद्ध आता है। ताँबेके पतरे आते हैं, वह शुद्ध नही हैं। बिजलीका तार न मिले तो नीलेथोथेमे से ताबा निकाल लेवे। नीलेथोथेमे से ताबा निकालनेकी विधि ताम्र भस्ममे लिखी है।

(४) कलई *शोधन*—कलईको तेज आँच पर कढ़ाहीमें गलाकर रस करें। फिर लोहेकी कलछीसे थोड़ा-थोड़ा (२ से ४ तोले) निकाल कर एकाध मिनट हवा लगने पर बुझाते जायँ। प्रथम तैलमें तीन बार बुझावे। तैलमें बुझानेके समय कलईके सब रसको एक ही समयमें डाल दिया जाय, तो भी हर्ज नहीं। किन्तु छाछ, काँजी आदिमें एक साथ न डाले। तैलके पीछे छाछ, काँजी, गोमूत्र और कुलथीके क्वाथमें तीन-तीन बार बुझावे। छाछ आदि पदार्थोंमें बहुत सम्हालकर बुझावें। कारण, कलई शरीर पर उड़कर लग जाती है। इसलिये कलछी हाथमें पकड़ दूरसे ऊँचा हाथ रखकर बाहरकी वायु लगने पर बुझाते जायँ। यदि कड़ाहीमें रही हुई कलईके रसमें जल, छाछ अथवा गोमूत्रमें से एक बूँद गिर जायगी, तो एकदम कलई उछल कर बाहर आजायगी, इसलिये सम्हाल रखे। शोधन होजाने पर कड़ाहीमें कलईका रस कर थोड़ा तैल डाल कर एक गोल चक्की बना लेवे। उनमेंसे कागज जैसे पतले पतरे बनवा कर चौथाई इञ्चके छोटे-छोटे टुकड़े करा लेवे।

भस्म बनानेके लिये पाटकी कलई ले। बरतनोको लगानेकी कलईमे शीशा, जसद आदि धातुओंका मिश्रण रहता है। पाटकी कलई शुद्ध होती है।

सूचना—शोधनके समय जो मैल निकले, उसे अलग निकालते जायँ, ज्यादा इकट्ठा हो, तब नौसादर और गुड मिला रस कर शुद्ध कलई निकाल ले।

जिसको ज्यादा कलई शोधन करना हो, वे तक्र आदिमें बुझानेके समय पात्र पर चक्कीके ऊपरका पाट रखे। फिर उसके छेदमें से रस डाले जिससे कलईके उड़नेका भय बिल्कुल न रहे। अथवा ४ फीट (लगभग २॥ हाथ) बाँस या लोहेकी नली बनाकर दीवारकी तरफ बाँधे। ऊपरका भाग जमीनसे दो हाथ ऊँचा रहे और नीचेका भाग १। हाथ लगभग ऊँचा रहे, इस तरह नलीको बाँधे। पश्चात् नीचेके भागमें छाछ, गोमूत्र आदिसे भरा पात्र रखे। जब कलईका रस हो तब उसे दूसरी कड़ाहीमें निकाल कर, नलीके ऊपरमें डालनेसे सब कलई नली द्वारा नीचेके बरतनमें चली जायगी। इस तरह शोधन करनेमें उड़नेका भय बिल्कुल नहीं रहता। क्वचित् बांस फट जाता है। इसलिये दो नली और तैयार रक्खे, और रस डालनेके समय नलीके नीचे हाथ अथवा पैर न आजाय, यह सम्हाले।

(५) *शीशा शोधन*—अन्य धातुके मिश्रणसे रहित शीशेका शोधन कलईके समान करे। भस्मके लिये शीशेका पतरा करनेकी जरूरत नहीं है।

सूचना—शोधनमें भूल होने पर शीशा बन्दूककी गोलीकी तरह ऊँचा उछलता है। कढ़ाहीमें पानीकी बूँद न गिर जाय, इसका ध्यान रक्खे।

(६) *जसद शोधन*—इतर धातुके मिश्रणसे रहित जसदको कड़ाहीमें डालकर तेज अग्नि पर रस करे। रस होने पर दुग्धमें बुझावे। इस तरह २१ बार गोदुग्धमें बुझानेसे जसद शुद्ध होजाता है। जसदके बुझानेमें कलई या शीशेके समान उड़नेका भय नहीं है। जसदमेंसे मैल बहुत निकलता है। मैलकी अलग भस्म करे। वह नेत्राञ्जनमें उपयोगी है। शुद्ध जसदमेंसे खानेके लिये भस्म बनाले।

(७) *जर्मन सिल्वर, काँसी और पीतल शोधन*—जर्मन सिल्वर, काँसी और पीतलको तपा-तपाकर तैल, छाछ, गोमूत्र, काँजी और कुलथीके क्काथमें ७-७ बार बुझानेसे शुद्ध होते हैं। इस तरह शोधन होने पर इमली और नमक मिले हुए गोमूत्रमें तीन घंटे तक दोलायन्त्र विधिसे उबाल लेनेसे विशेष शुद्ध होते हैं। जर्मन सिल्वर, काँसी और पीतलमें रहे हुए ताम्रके दोष शमनार्थ शोधन जितना अधिक होगा, उतनी ही अधिक लाभदायक भस्म बनेगी।

काँसी और पीतलका शोधन और मारण ताम्रके समान होता है, और गुण भी ताम्रके समान ही हैं, ऐसा शास्त्रकारोंका कथन है।

ताम्र, कलई, शीशा, पीतल और काँसी, इन पाँच धातुओंके मिश्रणसे जर्मन सिलवर बनता है। ताम्रमें चतुर्थांश कलई मिलानेसे कांसी बनती है,

तथा ताम्रमें जसद मिलाने पर पीतल बनती है। दो धातु मिश्रित होनेपर दोनोंके मूल गुण रहते हैं और सयोगजन्य नया गुण भी उत्पन्न होता है।

(८) *मण्डूर शोधन*—सो वर्षके पुराने मंडूरको अग्नि पर तपा-तपा कर ७ बार गोमूत्रमें बुझानेसे शुद्धि होती है। मंडूर शोधनेके लिये बहेडेकी लकडी जलानी चाहिये। यदि बहेडेकी लकड़ी न मिले, तो बबूलकी लकड़ी लेवे। (र० र० स०)

सूचना—नया लोहकीट, मण्डूर भस्म बनानेके लिये उपयोगमें नहीं लेना चाहिये। नये लोहकीटमें शास्त्रकारोंने अनेक दोष दिखाये हैं।

(९) *सुवर्ण माक्षिक शोधन*—सोनामुखीका चूर्ण ३ भाग, सैंधा-नमक १ भाग और नीबूका रस ५ भाग मिलाकर एक कड़ाहीमें डाल कर, तेज अग्नि पर लोहेकी कलछीसे चलाते रहें। नीबूका रस सूखने के पश्चात् जब कडाही खूब लाल होजाय, तब अग्नि देना बन्द करें। कड़ाही शीतल होने पर सोनामुखीमें जल मिला मल-मल कर धोवें। ४-६ समय धोनेसे सैंधानमक निकल जायगा। फिर सूर्यके तापमें सुखा लेनेसे सुवर्णमाक्षिक शुद्ध होजाती है। जल सम्हालपूर्वक निकालें, अन्यथा सुवर्णमाक्षिक भी जलमें चली जायगी। (आ० प्र०)

औषधके लिये अति तेजस्वी सोनेके समान चमक वाली सुवर्णमाक्षिक को उपयोगमें लें। जो निस्तेज हो, उसमें गुण बहुत कम होता है। कसौटी पर रगडनेसे जिसकी सुवर्ण समान रेखायें हों, और टुकड़ा तोडने पर भीतर सुवर्ण समान तेजस्वी हो, उसे अच्छी मानी है। किन्तु वैसी अभी नहीं मिलती।

(१०) *मनःशिल शोधन*—मैनसिलके चूर्णको मोटे कपड़ेकी थैलीमें भर, बकरीके मूत्रके साथ दोलायन्त्रमें ३ घण्टे तक मन्द मन्द आँच दें। फिर तीन घन्टे तक हल्दीके क्वाथमें दोलायन्त्रसे उबालें। पश्चात् अदरखके रसमें तीन घण्टे खरल करके धूपमें सुखा लेवें।

(११) *सुरमा शोधन*—सफेद या काले सुरमेके सूक्ष्म चूर्णको नीबूके रस, केलेके खम्भेके रस, भाँगरेके रस (या त्रिफलाके काढ़े) में ७-७ बार ३-३ घण्टे खरल करके सूर्य तापमें सुखा लेनेसे शुद्ध होता है। एवं २१ बार गरम करके बुझा लेनेसेभी शुद्धि होती है।

(१२) *नौसादर शोधन*—नौसादरके चूर्णको जलमें मिला कपड़ेसे पीतलकी कड़ाहीमें छान मदाग्निसे जलको सुखा लेनेसे शुद्धि होती है।

सूचना—यदि लोहेकी कडाहीमें नौसादर पकाया जायगा, तो उसमें लोहेका रंग मिलजानेसे नौसादर दूषित हो जायगा।

(१३) *तुत्थ शोधन*—२० से ४० तोले तूतियाको बड़े नीबूके

रसमें खरल कर लघुपुटमें पकावें। फिर ३ दिन दहीके पानीकी भावना देनेसे शुद्धि होती है।

नीलाथोथा दो प्रकार का होता है—खानमेंसे निकलनेवाला और कृत्रिम। खान वाला उत्तम है। उसीको औषधके लिये उपयोगमें लेना चाहिये।

(१४) *मल्ल शोधन*—सफेद संखियाके चने समान छोटे-छोटे टुकड़े कर, १६ गुने दुग्धमें मन्दाग्नि पर ३ घण्टे दोलायन्त्रसे उबालकर साफ जलमें धो लेनेसे शुद्धि होती है। शेष दूध जमीनमें दबा दे अथवा घृत निकालकर वात रोग पर मालिशके लिये उपयोगमें ले। कितनेक चिकित्सक संखिया शोधनके लिये दुग्धके बदले बथुवेके रसमें दोलायन्त्रसे ३ घण्टे उबालते है। एव कितनेक वैद्य सोमलका उपयोग बिना शोधन किये करते हैं।

संखिया ४ प्रकारका है—सफेद काला, लाल, पीला। औषधिके लिये विशेष करके सफेद संखिया ही व्यवहार में आता है। सफेद की अपेक्षा अन्य विशेष जहरी है। सफेद संखियामें जो बिलोरी काचके समान चमकीला हो, उसे अच्छा माना है। संखिया पुराना होने पर चमक और गुण कम होजाते हैं।

(१५) *हरताल शोधन*—तपकिया हरतालको जौकुट कर दोलायन्त्रकी विधिसे कांजी, पेठेके रस, तिलीके तैल और त्रिफलाके क्वाथमें तीन-तीन घण्टे तक उबाले। फिर कपड़ेमें बाँध कर १२ घण्टे तक चूनके पानी पर मन्दाग्निसे भाफ देनेसे हरताल शुद्ध होती है। (यो० र०)

औषध रूपसे उपयोग करनेके लिये सुवर्णके समान तेजस्वी वरकी हरताल लेनी चाहिये। पीली निस्तेज पिण्ड हरताल अथवा थोडी चमकवाली हरतालमें इच्छित लाभ नहीं मिलता। अच्छी हरतालमें संखिया विशेष परिणाममें होनेसे गुण भी विशेष दिखाती है।

(१६) *हिंगुल शोधन*—रूमी सिंगरफको १२ घण्टे नीबूके रसमें खरल करे। रस बिल्कुल सूख जाने पर भेड अथवा भैंसके दुग्धमें १२ घण्टे खरल कर सुखा लेनेसे हिंगुल शुद्ध होता है।

श्री प० यादवजी त्रिकमजी आचार्यके मतानुसार हिंगुलको पहले ३ घण्टे गोदुग्धमें खरल करे। फिर नीबूके रसकी ७ भावना दे। इस तरह शोधन करना विशेष लाभदायक माना जायगा।

शास्त्रमें सिंगरफको ७-७ दिन तक नीबूके रस और भेडके दुग्धमें खरल करनेको लिखा है। जितना अधिक खरल हो उतनाही हितकर माना जाता है। नीबूके रससे सिंगरफमें रहा हुआ पारद दोषमुक्त होकर प्रदीप्त बनता है, और दुग्धसे पुष्ट बनता है।

ऊपर चढा हुआ सिंगरफ रससिंदूर सदृश होनेसे थोडे ही शोधनमें दोष-मुक्त होकर शुद्ध बन जाता है। इसलिये स्वल्प शोधनको ही हमने लिखा है।

भूतकालमें खनिज सिंगरफको विशेष उपयोगमें लाया जाता था। परन्तु वर्त्तमानमें अशुद्ध पारद और अशुद्ध गन्धक या गन्धकके, तिजाब (Sulphuric acid) के संयोगमें बने हुए कृत्रिम सिंगरफका उपयोग होता है। कृत्रिम सिंगरफमें भी ऊपर चढा हुआ रूमी सिंगरफ हितकर है और पैंदेमेंही जम जाने वाला सिंगरफ, जो कम पारद और अधिक गन्धक मिलाकर तैयार किया जाता है और जो सख्त व मैले रंग वाला है, उसे खानेकी औषधिमें नहीं मिलाना चाहिये।

हिंगुल कडुवा, कसैला और चरपरा है। नेत्ररोग, कफपित्त विकार उत्क्लेश, कुष्ठ, ज्वर, कामला, प्लीहावृद्धि, आमवात और मेन्द्रिय विष आदि विकारोंको नष्ट करता है। सामान्यत कज्जलीको शीतल, शामक और हिंगुलको उष्ण, उत्तेजक माना है। इस हेतुसे शुष्क कासको औषधिमें हिंगुलकी योजना नहीं की जाती। शुद्ध हिंगुलमें रससिन्दूरके समान, किन्तु कुछ न्यून गुण हैं। कभी-कभी मात्र अकेले हिंगुलको ही रससिन्दूरके स्थानमें अन्य अनुपानके साथ में दिया जाता है। मात्रा $\frac{1}{2}$ से २ रत्ती।

(१७) गन्धक शोधन—आँवलासार गन्धक और घृत समान भाग लेकर लोहेकी कडाहीमें गरम करे। रस होने पर तुरन्त उतारकर चारगुने दुग्धमें डालदे। गंधक डालनेके पहले दुग्धके बरतनके ऊपर एक कपड़ा बाँधे। फिर पिघला हुआ गन्धक डाले। दुग्धके अभावमें मट्ठा अथवा त्रिफलेका काढा लिया जाता है। एकाध घण्टेके बाद जब गन्धक पैंदेमें बैठ जाय, तब ऊपरसे सम्हालकर घृत और दुग्ध निकाल ले। पश्चात् गन्धकको निकाल, छोटे-छोटे टुकड़े कर अच्छी रीतिसे गरम जलसे धोकर धूपमें सुखा लेनेसे गन्धक शुद्ध होता है। अथवा शोधित गन्धकके चूर्णको कडाहीमें डाल, ऊपरसे जल भरदे। पश्चात् चूल्हे पर चढा कर गन्धक मिले जलको गरम करे। जल उबलने लगे, तब ऊपर-ऊपरसे कलछीसे निकालते जायँ और शीतल जल डालते जायँ। घृतका अंश बिल्कुल निकल जाय, तबतक जलको निकालते जायँ। बादमें कड़ाहीको उतार गन्धकको सुखा लेनेसे शुद्ध हो जाता है।

गन्धक शोधनमें जो घृत लिया जाय, उसे सम्हाल करके निकाल ले। उसे चूल्हे पर चढाकर दुग्ध अथवा छाछका अंश जला डाले। केवल घृत रहने पर उतारकर छान ले। यह घृत मालिश करनेमें उपयोगी है। कितनेक आचार्योंने गन्धकको ऊपर लिखे अनुसार ७ बार

शोधन करनेको लिखा है। अधिक वार शोधन करनेके लिए वार-वार घृत और दुग्ध नया लेना चाहिये। शुद्ध गन्धक अनेक रोगोमें खिलाने और लगानेके लिये उपयोगमें आता है।

सूचना—यदि गन्धकका रस होनेके बाद ज्यादा समय तक कडाही चूल्हे पर रहेगी, तो गन्धक लाल होकर बिगड जायगा। इसलिये रस होने पर तुरन्त कडाहीको उतार लेना चाहिये। तमाम गधक एक साथ पिगल जाय इसके लिये उसको कूट कर समान टुकडे कर ले। यदि प्रमादवश गधक लाल होजाय, तो उसका उपयोग पर्पटी बनाने मे होसकता है।

अनुपान—रक्तशोधनार्थ गन्धक और मिश्री समभाग मिलाकर बारीक खरल करे। इसमेंसे ३-३ माशे लेकर ऊपर दुग्ध पीवें। इस तरह दिनमें २ समय १५ दिन तक सेवन करनेसे रक्त शुद्ध होकर खाज, खुजली, फोड़ा, फुन्सी आदि विकार शान्त हो जाते है। मात्र ३ या ७ दिन तक गन्धक सेवन करना हो, तो ६-६ माशे गन्धक भी ले सकते है। अधिक मात्रासे किसीको पेचिश जैसा असर होवे, तो गन्धक २-४ दिन बन्द कर फिर कम मात्रामें पुनः लेना आरम्भ करें।

नेत्ररोग और दृष्टिकी कमजोरी दूर करनेके लिये शुद्ध गन्धक, त्रिफला, घृत और शहद मिलाकर सेवन करे। भोजनमें मात्र दूध-भात ले।

मलावरोध दूर करनेके लिये ६ माशे गन्धक २॥ तोले गुलकन्दके साथ लेवे, और ऊपर थोड़ा दूध वा निवाया जल पीवें।

प्रमेह रोगमें शुद्ध गन्धक १ से २ माशे तक गुड़के साथ दिनमें २ वार एकाध मास तक सेवन करें।

इस प्रकार और रोगोंमें उचित अनुपान की योजना करें।

उपयोग—रक्तविकार, फोड़ा-फुन्सी, खाज-खुजली, कुष्ठ, वात-विकार, कफदोष, ज्वर, आम, मलावरोध, मन्दाग्नि, अरुचि, उदरशूल-उदररोग, अजीर्ण प्रमेह आदि रोगोको दूर करता है। गन्धक उष्ण-वीर्य- अग्निप्रदीपक तथा वीर्यवर्द्धक है।

गन्धक सेवन करते समय नमक, खटाई, तैल, मिर्च, शराब, द्विदल (चना- उड़द, अरहर आदि) धान्य और अपथ्य आहारका त्याग करें। दाहयुक्त रोगीको गन्धक विशेष अनुकूल रहता है।

नव्य मतानुसार गन्धक अल्प मात्रामें रसायन, स्वेदजनक, कफनिःसारक, पित्तनिःसारक और अधिक मात्रामें विरेचक है। गन्धक उत्तम सेन्द्रिय विष और कीटाणुनाशक है। गन्धक मुखके उत्पन्न रसमें द्रवीभूत नही होता। सेवन करने पर इसका आमाशयमें

कुछ भी परिवर्तन नहीं होता। यह आमाशयकी श्लैष्मिक कला पर कुछ भी असर नहीं पहुँचाता। अन्त्रमें जाने पर उसकी श्लैष्मिक कला और मांसपेशियों उत्तेजित होती है और अन्त्रकी परिचालन क्रिया बढ़ती है, जिससे वह मृदु विरेचन-क्रिया दर्शाता है। साथमें वायु उत्पन्न होती है, जिससे पाचन-कालमें आवाज और मन्द उदर पीड़ा होती है। दस्त ढीला और विना वेदना साफ आजाता है। अधिक काल तक इसका सेवन करते रहनेसे आमाशयकी श्लैष्मिक कलाकी प्रतिश्याय सदृश अवस्था उत्पन्न होती है। फिर पचनक्रिया विगड़ती है। कितनेक चिकित्सकोंके मतानुसार यह हृदय गतिको बढ़ाता है, एवं प्रस्वेद लाता है। गन्धक सेवन करने पर शोपण होकर स्वेद, निःश्वास, स्तन्य-मूत्र और मलके साथ बाहर निकलता रहता है। यदि शरीर पर चाँदी का जेवर हो, तो वह गन्धकके योगसे काला होजाता है।

—— गन्धकका उपयोग नव्य मतानुसार कोष्ठबद्धता- प्रवाहिका, अर्श, गुदनलिका निर्गमन, गुदद्वार विदारण, गुदद्वारकी कण्डू तथा गुदनलिका संकोच (Stricture of the Rectum) रोगसे मृदु विरेचन देनेके लिये होता है। एवं यह छोटे बालक और वयोवृद्धके अर्शकी तीव्रावस्थामें उदरशुद्धिके लिये विशेष उपकारक है।

इसके अतिरिक्त कीटाणुनाशार्थ विसूचिका रोगमें- कीटाणुनाश और रक्तशोधनार्थ जीर्ण उपदंश- जीर्ण सुजाक, रक्तविकार आदि पर एवं वातवाहिनियोंकी उत्तेजनार्थ मासिक धर्ममें प्रतिबन्ध होने पर व्यवहृत होता है। इनमें विद्रधि, तारुण्यपिटिका, दद्रु खुजली पामा आदि रोगोंमें उदर रेचन और बाह्य स्थानिक प्रयोगभी होता है। बाह्य प्रयोग में लेप, मलहम और धावन रूपसे उपयोग होता है।

शीशा धातु-जनित विषसे विपाक होने पर इसके उपयोगसे अच्छा लाभ मिलता है। पारद विकारसे मुख आने और पक्षाघात होने पर इसका विरेचन दिया जाता है। एवं संक्रामक कीटाणुओंको नष्ट करनेके लिये कमरेमें इसका धुआँ भी किया जाता है।

(१८) पारद शोधन—इसका शोधन कूपीपक्व रसायन प्रकरण में लिखा है। सिगरफमेंसे निकला हुआ पारद शुद्ध है इसलिये ओषधि बनानेके उपयोगमें लिया जाता है। सिगरफमेंसे पारद निकालनेकी विधि "ओषधि कृति" में लिखी है।

(१९) रसकर्पूर शोधन—रसकर्पूर दोलायन्त्रसे १२ घण्टे तक १६ गुने घृतमें मन्दाग्नि पर उबाल लेनेसे शुद्ध होता है।

(२०) *अभ्रक शोधन*—अभ्रकको कड़ाहीमें डाल तेज अग्नि पर तपा करके दूध, काँजी, त्रिफलाके क्वाथ अथवा गोमूत्रमें ७ बार बुझानेसे शुद्ध होता है। इन सबमेंसे गोदुग्ध विशेष गुणकारक है। फिर खरलमें सूक्ष्म चूर्ण करके, चौथा हिस्सा धान्य मिला, एक कम्बलमें बाँध, एक बरतनमें खूब जल अथवा काँजी डालकर तीन दिन तक भिगो दे। चौथे रोज हाथसे अथवा पैरसे मल-मलकर अभ्रकको कम्बलमेंसे छानकर निकाल लेवे। मसलनेके समय कम्बलवाली पोटलीको जलमें ही रखनी चाहिये। बार-बार जल निकालते जायँ और नया जल डालते जायँ ताकि सब अभ्रक जलमें छन जाय। फिर थोड़े समय तक जल स्थिर रहनेसे अभ्रक पैंदेमें बैठ जाती है। उसे सम्हाल कर ले लेवे। ऊपरका पानी सम्हालकर निकालना चाहिये जिससे अभ्रक निकल न जाय। अन्तमें अभ्रकको धूपमें सुखा लेवे। यह शुद्ध धान्याभ्रक कहलाती है। (र० र० स०)

अभ्रक ४ प्रकारका होता है—सफेद, लाल, पीला और काला। वर्तमानमें इनके अतिरिक्त हरा अभ्रकभी राजपूतानाकी अनेक खानोंमेंसे निकलता है। काले अभ्रकमें भी ४ उपजाति हैं। नाग, पिनाग, दर्दुर और वज्र। इनमेंसे मात्र वज्राभ्रक लेनेकी शास्त्रकारोंकी आज्ञा है। अन्य अभ्रकके पतरे बड़े होते हैं किन्तु वज्राभ्रकके पतरे बहुत छोटे होते हैं। अग्निमें डालने पर किसी भी प्रकारका शब्द नहीं करती एवं इसके पतरे बिखरते भी नहीं हैं।

(२१) *चाक मिट्टी शोधन*—खड़िया मिट्टीके चूर्णको २४ घण्टे जलमें भिगोकर कपड़ेसे छान ले। बार-बार जल और मिलाते जायँ और छानते जायँ। जिससे सब मिट्टी जलमें छन जायगी और कपड़े पर पत्थरका अंश शेष रह जायगा। जब ४-६ घण्टे बाद मिट्टी नीचे बैठ जाय तब सम्हालपूर्वक ऊपरसे जल निकाल डाले और उसे सुखा लेवे।

(२२) *गेरू शोधन*—सोनागेरूको गायके घृतमें भून लेनेसे शुद्ध होता है। (या० र०)

जो सुनारके काममें आता है वह सुवर्ण गैरिक (सोनागेरू) ही औषधि कार्यके उपयोगमें आता है। अन्य गेरू विशेष लाभदायक नहीं है।

सोनागेरू आवश्यकता पर अकेला ही उपयोगमें लिया जाता है। सोनागेरू शीतल, नेत्रोंके लिये हितकर, कसैला और रक्तपित्तनाशक है। विषविकार, हिचकी, वमन और रक्तकी उष्णताको दूर करता है।

मात्रा—२ से ४ रत्ती दिनमें ३ बार शहद दुग्धके साथ।

(२३) *शिलाजीत शोधन*—(*अग्नितापी*) आधा सेर त्रिफलेको कूटकर ३२ सेर पानीमें औटावें, और चौथाई जल रहने पर उतार कर छान लें। इस छने हुए जलमें तीन पाव शिलाजीत डाल देवें, और २४ घण्टे भीगने दें। फिर पानीको उबाल ऊपर ऊपरसे शिलाजीत युक्त साफ जलको नितार लें। जल कड़ाहीमें औटानेसे रबड़ी जैसा गाढ़ा हो जाय, तब कड़ाहीको चूल्हे परसे नीचे उतार लें। अगर शिलाजीत पत्थरोंके साथ रह गई हो, तो पुनः उपरोक्त विधिसे जलमें मिला उबाल कर निकाल लें।

हरिद्वारसे बदरीनाथपुरीके रास्तेमें शुद्ध शिलाजीत बेचनेवाले व्यापारियों की सैकड़ों दुकानें देखनेमें आती हैं। उनमेंसे २-४ व्यापारी कदाच शास्त्रोक्त विधिसे कुछ सूर्य-तापी शिलाजीत तैयार कराते होंगे। शेष सब मनगढन्त रीतिसे तैयार की हुई अग्नितापीको ही सूर्यतापीके स्थानमें देकर ठगते हैं। कितनेक स्वार्थी लोग शिलाजीतमें गोमूत्र मिलाकर उबाल लेते हैं। कोई गोमूत्रमें आक वृक्षका गोंद और गुड़ मिलाकर कृत्रिम शिलाजीत तैयार करते हैं। सूक्ष्म रीतिसे जाच करने पर गुड़ आदि मिलावटसे रहित शास्त्रोक्त विधिसे तैयार की हुई शिलाजीत बहुत थोड़े औषधालयोंमें मिलती होगी। ऋषिकेशसे बदरीनाथके रास्तेमें बहुत थोड़े दिन धूपमें तेजी रहती है। ठंड और वर्षा वाले दिन विशेष रहते हैं। इसी हेतुसे वे सूर्यतापी शिलाजीत तैयार नहीं करा सकते। २-४ बड़े बड़े व्यापारी यात्राके दिनोंमें सूर्यतापी शिलाजीत तैयार करानेके लिये मई और जून मासमें (मात्र १-१॥ मास) सूर्यके तापमें यन्त्रको यात्रियों की श्रद्धाको दृढ करानेके लिये रखवाते हैं। जो व्यापारी प्रतिवर्ष मनों के हिसाबसे शिलाजीत बिक्री करते हैं, वे कदाचित २-४ सेर सूर्यतापी शिलाजीत तैयार करें, तो भी क्या?

दूसरी विधि—(*सूर्यपाती*) पहले शिलाजीतको प्रथम विधिमें लिखे अनुसार त्रिफलाके १६ गुने गरम जलमें मिलाकर २४ घन्टे भिगो देवें। बादमें कड़ाहीको चूल्हे पर चढ़ा कर २-३ उफाण आवे, तब तक उबालें। तत्पश्चात् नीचे उतार लेवें। शीतल होने पर जब जल नितर जाय, तब ऊपरसे साफ़ नितरे हुए जलको एक कलई किये हुए भगोनेमें छान कर भर लेवें। उसे सूर्यकी धूपमें रखनेसे रोज शामको या दूसरे दिन सुबह ऊपरके भागमें दूधकी मलाईके समान शिलाजीत की मलाई आ जाती है। उसे खुरपे या कलछीसे अलग बरतनमें निकाल कर सुखा लेनेसे शिलाजीत शुद्ध बन जाती है। शिलाजीतका भगोना, जिसमेंसे रोज मलाई उतारी जाती है, उसमें यदि मलाई आती हो, और

तेज धूपके कारणसे जल सूख जाय या कम हो जाय, तो पहलेके समान त्रिफलाका क्वाथ आवश्यकता हो, उतना मिलाले। जब शिलाजीत जलके ऊपर न आवे, तब शेष कचरेको फेक दे।

तीसरी विधि—(*सूर्यतापी*) विशेषतः शिलाजीत शोधनार्थ कितनेक चिकित्सक शार्ङ्गधर संहिताके पाठके अनुसार त्रिफला क्वाथके स्थान पर केवल गरम जल ही लेते है। पत्थरोंको जलमें एक प्रहर रख देते है। फिर पत्थरोंको फेक देते है; और जलको छानकर रुई या कपड़े की बत्ती द्वारा दूसरे पात्रमें नितार लेते है। एक-एक बूँद करके जल टपकता रहता है, उसमें शिलाजीत शुद्ध निकल जाता है। और धूल, पत्थर आदि कचरा तलस्थ रह जाता है। फिर नितरे हुए जलको सूर्यके तापमें सुखा लेने पर शिलाजीत शुद्ध हो जाती है। इस तरह शिलाजीत तैयार की जाय, वह त्रिफला क्वाथसे शोधन की हुई शिलाजीत की अपेक्षा विशेष लाभदायक है। त्रिफलासे शोधन की हुई शिलाजीतमें त्रिफलाका अंश मिल जानेसे वजन बहुत बढ़ जाता है। जलसे शुद्ध की हुई शिलाजीतमें किसीका भी मिश्रण नहीं रहता।

सूचना—मच्छर, मक्षिका, धूल, वृक्षोंके पत्ते आदि न गिरनेके लिये शिलाजीतके पात्र पर पतला वस्त्र बाध देना चाहिये।

शिलाजीत के गुण—शिलाजीतमें स्नेह और लवण गुण होनेसे वातघ्न, सर गुण होनेसे पित्तघ्न, तीक्ष्ण गुण होनेसे श्लेष्मघ्न और मेदोघ्न, चरपरी और तीक्ष्ण गुणके हेतुसे दीपन, कड़वा रस होनेसे रक्तविकारनाशक, तथा चरपरा, तीक्ष्ण और उष्ण गुण होनेसे कृमिघ्न है। शिलाजीत स्निग्ध होनेसे पौष्टिक, बल्य, आयुवर्द्धक, वृष्य, विषनाशक, मंगल (रसायन) और अमृत रूप (सत्ववर्द्धक) गुणकी प्राप्ति कराती है। शुद्ध शिलाजीत स्रोतसे, धातु, इन्द्रिय और बुद्धिकी शोधक और वर्णकर गुण युक्त है। वृष्य होनेसे मेध्य भी होती है।

भगवान् आत्रेय के मतानुसार शिलाजतु अनम्ल (खट्टी नहीं है), कसैली तथा विपाकमें चरपरी है। अति उष्ण या अति शीतल नहीं है। यह रसायन, वृष्य और सम्पूर्ण रोगोंकी नाशक है। रोग शमनार्थ आवश्यकतानुसार वातघ्न, पित्तघ्न, कफघ्न, द्विदोषघ्न या त्रिदोषघ्न औषधियोंके क्वाथकी भावना देनेसे परम वीर्योत्कर्षको पाती है महर्षि आत्रेय कहते है किः—

न सोऽस्ति रोगो भुवि साध्यरूपः शिलाह्वयं यन्न जयेत् प्रसह्य।

अर्थात् संसारमें ऐसा एक भी रोग नहीं है, जो विधिपूर्वक शिलाजीतके सेवनसे नष्ट न हो सके।

भगवान् धन्वन्तरिजी कहते हैं कि, सब प्रकारकी शिलाजीत कड़वी, चरपरी, कुछ कसाय रसयुक्त, सर (वात और मल प्रवर्त्तक या सर्वत्र पहुँच जाने वाली), विपाकमें चरपरी, उष्णवीर्य, कफ और मेदका शोषण करने वाली तथा मलका छेदन क ने वाली है। इस शिलाजीतके सेवनसे प्रमेह, कुष्ठ अपस्मार, उन्माद, श्लीपद, कृत्रिम विष, शोष (क्षय), शोथ, अर्श, गुल्म पाण्डु और विषमज्वर आदि रोग थोड़े ही समयमें दूर होते हैं। ऐसा कोई रोग नहीं है, जिसे शिलाजीत हनन न कर सके। बहुत कालसे मूत्र में आने वाली शर्करा (कंकड़ी) और पथरीका भेदन करके उसे बाहर निकाल देती है।

रसरत्न समुच्चयकारने लिखा है कि, शुद्ध शिलाजीतके सेवनसे ज्वर, पाण्डु, शोथ, मधुमेह, सब प्रकारके प्रमेह, अग्निमान्द्य, मेदवृद्धि. राजयक्ष्मा, अर्शरोग, गुल्म, प्लीहावृद्धि सब प्रकारके उदर रोग, हृदय-शूल और सब प्रकारके त्वचाके रोग ये सब निश्चयपूर्वक जड़मूलसे नष्ट हो जाते हैं। अधिक कहाँ तक कहे, देहको नीरोग और सुदृढ़ बनानेके लिये शिलाजीत सर्वोत्तम रसायन है। अभ्रकादि महारस, गवक आदि उपरस, सूतेन्द्र (पारद) माणिक्य आदिरत्न और सुवर्ण आदि धातुओं में जरा मृत्यु (रोग समुदाय) को जीतनेके जो गुण हैं, वे सब गुण शिलाजीतमें भी होनेका निम्न श्लोक में कहा है—

रसोपरस-सूतेन्द्र-रत्न-लोहेषु ये गुणाः।
वसन्ति ते शिलाधातौ जरा-मृत्यु-जिगीषया॥

सब प्रकारके जीर्ण दुःखदायी रोग, मेदोवृद्धि और मधुमेहके लिये शिलाजीतको अति हितकर माना है। इनके अतिरिक्त चोट लगने पर शिलाजीतका लेप भी किया जाता है। शिलाजीतके सेवनसे अकाल मृत्युका भय दूर होता है और आयुकी वृद्धि होती है। यह बालक युवा, वृद्ध, स्त्री, पुरुष, सगर्भा, प्रसूता सबके लिये लाभदायक है।

शिलाजीतको जिन द्रव्योंकी भावना दी जाय, उनके अनुसार गुणकी वृद्धि होती है। अतः शास्त्रमें औषधियोंके क्वाथ या स्वरसकी भावना देनेका निम्नानुसार विधान किया है—

वातरोगनाशार्थ—रास्ना, दशमूल, खरैंटी, पुनर्नवा, एरंड, सो और मुलहठी आदि औषधियोंके क्वाथकी भावना दें।

पित्तरोगनाशार्थ—मुनक्का, शतावरी, या मल्लिका पुष्प, परवल, त्रायमाणा, गिलोय और जीवनीयगणकी ओषधियोसे भावना दे।

कफरोगनाशार्थ—त्रिफला, वच, वायविडंग, करंज, नागरमोथा और वृहद् पञ्चमूल आदि ओषधियोकी भावना दे।

वातपित्त शमनार्थ—लघुपञ्चमूल, सोंठ, द्राक्षा, गम्भारी और अश्वगंधाकी भावना देनी चाहिये। इस तरह गिलोय और खरैटीके स्वरसकी भावना भी दी जाती है।

वातकफ शमनार्थ—नागरमोथा, कूठ, वच, त्रिफला, देवदारु, वायविडंग, पञ्चकोल, हल्दी, कालीमिर्च और अतीसकी भावना दे।

पित्तकफ शमनार्थ—पाठा, परवल, निम्ब, त्रिफला, नागरमोथा, कूठ, सप्तपर्ण, त्रायमाण, गिलोय, अतीस आदि ओषधियोके क्वाथोकी भावना दे।

इस तरह भिन्न-भिन्न रोग शमनार्थ रोगनाशक ओषधियोकी भावना दी जाती है या रोगनाशक अनुपानके साथ शिलाजीत सेवन कराई जाती है।

मात्रा—१ रत्तीसे १ माशा तक दिनमें १ अथवा २ वार, रोगानुसार अनुपानके साथ देवे। मेदोवृद्धि, शोथ, मधुमेह, क्षय, अश्मरी, मूत्राघात आदि जीर्ण रोगोमें मात्रा १ माशा तक शनैः शनैः प्रकृति और अग्नि बलका विचार करके बढानी चाहिये।

अनुपान—

१—ज्वरशमनार्थ—नागरमोथा और पित्तपापड़ाका क्वाथ।
२—शोष रोगमें—मयूर मांसका रस।
३—रक्तपित्त पर—मुलहठीका क्वाथ।
४—कार्श्य रोगमें—दुग्ध।
५—मेदोवृद्धि पर—जलमिश्रित शहद।
६—बुद्धि वृद्धि अर्थ—गोदुग्ध।
७—असाध्य शोथमें—गोमूत्र।
८—पाण्डुसह उदररोग पर—भैंसका मूत्र।
९—अश्मरी पर—वीरतर्वादिगणका क्वाथ।
१०—कुष्ट पर—खदिर क्वाथ।
११—विषहरणार्थ—सोंठ, मिर्च, पीपल और स्वर्णमाक्षिक भस्म।
१२—धातुक्षीणतामें—केशर और मिश्री मिला दूध।
१३—पाण्डु रोग पर—लोहभस्म और त्रिफला।

१४—मूत्ररोगमें—छोटी इलायची और पीपलका चूर्ण।

१५—मूत्राघात—वीरतर्वादिगण का क्वाथ।

१६—मधुमेह पर—शिलाजीतको सालसारादिगणके क्वाथकी ७ भावना देवे। फिर इसे अग्नि बलके अनुसार सालसारादिगणके क्वाथके साथ सेवन करावे या गोमूत्रके साथ देवे।

१७—प्रमेह पर—शिलाजीत और वंगभस्म सम भाग मिला दूधके साथ सेवन करावें।

१८—शुक्रमेह पर—शिलाजीत २ तोले, वंगभस्म २ तोले, लोह भस्म १ तोला और अभ्रक भस्म ६ माशे मिला २-२ रत्तीकी गोलियाँ बनाले। एक-एक गोली प्रातः सायं दूध या प्रकृतिके अनुकूल अनुपानके साथ देते रहनेसे शुक्रमेह और स्वप्नदोष दूर होते है।

अथवा शिलाजीत २॥ तोले, लोहभस्म १ तोला, केशर ६ माशे, कस्तूरी ३ माशे और अम्बर ३ माशे मिलाकर २-२ रत्तीकी गोलियाँ बनाले। सुवह-शाम दूध या चन्दनके शर्बतके साथ सेवन करनेसे शुक्र-मेह और स्वप्नदोष दूर होते है, तथा पाचनशक्ति, स्फूर्ति और स्मरण-शक्तिकी वृद्धि होती है।

१९—बहुमूत्र पर—शिलाजीत, वंगभस्म, छोटी इलायचीके दाने और वंशलोचन, इन चारोंको सम भाग मिलाकर शहदके साथ खरल कर २-२ रत्तीकी गोलियाँ बनालें। प्रातः सायं २-२ गोली धारोष्ण दूध या शीतल मिर्च और बड़े गोखरूके क्वाथके साथ सेवन करानेसे बहुमूत्र, मूत्रकृच्छ्र, शर्करा, प्रमेह और धातुविकार दूर होकर शरीर पुष्ट और तेजस्वी बन जाता है।

२०—मूत्र—जठर पर—शुद्ध शिलाजीत, मिश्री और कपूरके साथ देनेसे मूत्राघात (मूत्रजठर और मूत्रातीत) रोग दूर होता है।

२१—क्षय पर—(अ) त्रिफला, गिलोय, दशमूल, स्थिरादि कषाय (वयःस्थापन कषाय) और काकोल्यादिगणके क्वाथोंकी भावना वाली शिलाजीत २ से ४ रत्ती वकरीके दूधसे दिनमें दो बार दें।

(आ) शिलाजीत, सुवर्णमाक्षिक भस्म, लोहभस्म, त्रिकटु और शहदको मिलाकर चटाये। ऊपरसे बकरीका दूध पिलावे।

२२—त्रिदोषज शोथ पर—शिलाजीत आधसे १ माशा तक त्रिफलाके क्वाथके साथ देवे।

२३—कुम्भकामला पर—गोमूत्रके साथ सेवन करावें।

२४—*उरुस्तंभपर*—शिलाजीतको गूगल, पीपल और सोठके साथ मिला दशमूल क्वाथ या गोमूत्रके साथ सेवन करावे।

२५—आयुवृद्धिके लिये—मिश्री मिले हुये गोदुग्धके साथ एक वर्ष या अधिक समय तक सेवन करावे। १ रत्तीसे आरम्भ करके शनैः शनैः मात्रा १ माशे तक बढ़ावे।

२६—रक्तदबाव वृद्धिपर—रक्तदबाव अति बढ़ जानेपर शिलाजीतका उपयोग होता है। २-२ रत्ती शिलाजीतको काली सारिवा ६ माशे और मुलहठी १ तोलेके क्वाथके साथ दिनमें २ बार देवे, तथा रात्रिको स्वादिष्ट विरेचन या पंचसकार या अन्य चूर्ण ४–६ माशे जलके साथ देते रहनेसे रक्तदबाव एक सप्ताहमें कम होजाता है।

२७—अर्दितपर—शुद्ध शिलाजीत १-१ रत्ती और सारिवा २-२ रत्ती मिला सुबह और दोपहरको देन और कब्ज हो तो दूर करनेके लिये रात्रिको सैंधानमक मिली हुई हरड़का चूर्ण ३ माशे देते रहे। लगभग १ मास देनेपर अर्दित वात दूर होता है।

२८—शिर दर्दपर—बृहदन्त्र, कमर, नितम्ब, आदिके वात प्रकोपमें ज्वर सह शिर दर्द उत्पन्न होता है, वारवार दौरा होता हो, तो शिलाजीत ½ रत्ती, अमृतासत्व १ रत्ती, मजीठ २ रत्ती मिलाकर देवें। इस तरह दिनमें ४ वार आमके मुरब्बाके साथ देते रहे।

अपथ्य—शिलाजीतके सेवन कालमें स्त्रीप्रसंग, लालमिर्च, विदाही, भारी भोजन, तैल, खटाई गुड, कुलथी, मलावरोध करनेवाले पदार्थ, अधिक नमक, सूर्यके तापका अधिक सेवन, रात्रिमें जागरण, दिनमें शयन, मलमूत्रादि वेगका रोकना, मास, मछली, शराब, व्यायाम, तेज वायुका सेवन, मानसिक संताप और प्रकृतिक प्रतिकूल या रोगमें हानिकर पदार्थोंका सेवन न करे। इसमें कुलथी, मकोय और कपोतक मांसका सेवन सदाके लिये त्याग देना चाहिये।

सूचना—जिनके नेत्रोंमें लाली और उष्णता रहती हो, ऐसे पित्त-प्रधान प्रकृति वालेको शिलाजीत सेवन नहीं कराना चाहिये।

(२५) *खर्पर (खपरिया)* शोधन—खपरिया कारवेलक अथवा संगवसरी (दूसरे प्रकार की खपरिया) को ७ दिन तक दोलायन्त्रसे गोमूत्रमें उबाल लेने और केलेमेना पेप्रेटा (तीसरे प्रकारका खपरिया) को गोमूत्रमें ६-६ घण्टे तक खरल कर ७ दिन तक धूपमें सुखा लेनेसे शुद्ध होता है। केलेमेना पेप्रेटा लघु मालिनीवसन्तमें अच्छा काम देता है। नेत्ररोगमें उपयोगी है अथवा नहीं, यह अनिश्चित है।

अनेक वर्षों पर्यन्त वैद्यसमाजमें खर्परके उपयोगमें मतभेद रहा है। खर्परके स्थानमें सुवर्णमालिनीवसन्तमें संदिग्धताके हेतुसे जसदभस्मका उपयोग होता था। कराची वैद्यसम्मेलनके समय पर अध्यक्ष कविराज प्रतापसिंहजीने, कारवेलक सच्चा खर्पर है, ऐसा सिद्ध किया। तबसे कारवेलकका विशेष उपयोग हो रहा है। सुवर्णमालिनीवसन्त और नेत्ररोगकी ओषधिमें जहाँ खर्पर आता है; वहाँ कारवेलकका उपयोग निर्भयतापूर्वक हो सकता है। फिर भी कारवेलकको सच्चा खर्पर माननेमें सन्देह है। कारण, रसरत्न समुच्चयकार लिखते हैं:—

रसश्च रसकश्चोभौ येनाग्नि सहनौ कृतौ।
देहलोमयी सिद्धिर्दासी तस्य न संशयः॥

जो रस (पारद) और रसक (खर्पर), इन दोनोंको अग्निमें स्थिर कर सकता है उसके पास देहसिद्ध (अजरामरत्व) और सुवर्ण बनाने की सिद्धि निःसन्देह दासी बन कर रहती है। इस वचनमें कहा हुआ अग्निसे उड़जाना, यह गुण वर्तमानमें प्रचलित किये हुए कारवेलक और अन्य खर्परमें नहीं है।

(२५) गोदन्ती शोधन—गोदन्तीको दोलायन्त्रमें नीबू, भाँगरा या द्रोणपुष्पीके रसमें ३ घण्टे तक उबाल लेनेसे शुद्ध होती है।

(२६) मुर्दारशृङ्ग शोधन—बिजौरा और अदरखके रसकी ३-३ भावना देनेसे मुर्दासङ्ग शुद्ध होता है। (र० च०)

मुर्दासंग शीशेकी उपधातु है। कफ, उपदंश और गुह्येन्द्रियके अन्य रोगोंको दूर करती है। छोटे बच्चेको मिट्टी खानेसे उपद्रव हुआ हो, उसे मुर्दासंगका जुलाब देनेसे विरेचन होकर मिट्टी निकल जाती है। मुर्दासंग सेवनसे सफेद बाल काले होजाते हैं। पारद बन्धनमें इसका उपयोग होता है तथा घाव सुखानेके लिये मलहममें भी मिलाया जाता है। इसकी दूसरे प्रकारकी शोधनविधि प्रदरान्तक रसकी टिप्पणीमें दी है।

(२७) काशीश शोधन—काशीशको भाँगरेके रसमें ३ घण्टे तक खरल करके धूपमें सुखानेसे शुद्ध होती है। (र० र० स०)

काशीश लाल और नीली दो जातिकी आती है। इनमेंसे भस्म बनानेके लिये लाल काशीश विशेष लाभदायक है। किन्तु विलायती सल्फेट आफ् आयर्न (Sulphate of Iron) की भस्म बनाई जाय, तो वह सत्वर गुण दिखाती है। हम उसीको उपयोगमें लेते हैं।

(२८) वज्र शोधन—हीराको कटेलीके कन्दमें बन्द कर कुलथी और कोदो धान्यके क्वाथमें ३ दिन तक दोलायन्त्र विधिसे उबाल लेनेसे शुद्ध होता है। (आ० प्र०)

(२९) माणिक्य शोधन—नीबूके रसमें २४ घण्टे तक दोला-यन्त्रसे उबाल लेनेसे शुद्धि होती है। (र० र० स०)

(३०) गोमेदमणि शोधन—गोमेदमणिको जयन्तीके रसमें ३ दिन तक दोलायन्त्रसे उबालें। पश्चात् तपा-तपाकर आँवलेके स्वरसमें २१ बार बुझानेसे शुद्ध होजाता है। (शा० स०)

(३१) पन्ना शोधन—पन्नाको कुलथी अथवा कोदो (कोद्रव-धान्य) के क्वाथमें दोलायन्त्रमे १२ घण्टे तक उबाल लेनेसे शुद्ध होता है। (र० र० स०)

(३२) वैडूर्य शोधन—लहसुनियाको त्रिफलाके क्वाथमें २४ घण्टे तक दोलायन्त्रसे उबाल लेनेसे शुद्ध होता है। (यो० र०)

(३३) पुखराज शोधन—कुलथीका क्वाथ और काजी समभाग मिलाकर उसके साथ पुखराजको दोलायन्त्रमें ३ अहोरात्र उबालनेसे शुद्धि होती है। (र० र० स०)

(३४) नीलम शोधन—नीलमको नीलके क्वाथमें ३ दिन तक दोलायन्त्रमें उबालनेसे शुद्ध होता है। (र० र० स०)

(३५) राजावर्त्त शोधन—गोमूत्र, नीबूका रस, जवाखार और पापड़खार मिलाकर, उसमें दोलायन्त्रसे ६ घण्टे तक उबालनेसे लाज-वर्दकी शुद्धि होती है। (र० चं०)

(३६) वैक्रान्त शोधन—हीरा शोधन विधिके अनुसार कुलथीके क्वाथ में दोलायन्त्रसे शोधन करना चाहिये।

दूसरी विधि—वैक्रान्तको तपा-तपाकर २१ बार घोडेके मूत्रमें बुझानेसे शुद्ध होता है। दोनो रीतिसे शोधन किया जाय, तो भस्म सत्वर विशेष कोमल बनती है। (र० र० स०)

राजावर्त्तमे २ प्रकार हैं—एक जातिमे सुवर्ण समान छींटे और दूसरे जाति पर रौप्य समान छींटे रहते हैं। सुवर्ण समान छींटे वाला उत्तम है।

वैक्रान्त श्वेत, रक्त, पित्त आदि भेदसे आठ प्रकारके होते हैं। उनमेसे रसरत्नसमुच्चयकार और अन्य ग्रन्थकारोने लाल रगवालेको उत्तम माना हैं, किन्तु आयुर्वेदप्रकाशमे षट्कोण या अष्टकोण काले रग वालेको श्रेष्ठ दर्शाया है, और उसके नीचे लिखे श्लोकमे दापवाले हीरेको (तोरमल्ली को) ही वैक्रान्त कहा है:—

"विकृता वज्रखण्डा ये वैक्रान्ताख्यां भजन्ति ते।
जातयः शोधनं हिसा गुणास्तेषां तु वज्रवत् ॥" अ० ५ ।१५६॥

हीराकी खानमें उत्पन्न विकारयुक्त हीराके टुकडे ही वैक्रान्त कहलाते हैं। यथार्थमे वे कनिष्ठ हीरा होनेसे उनके शोधन, मारण और गुण हीरा के समान ही हैं। इस वैक्रान्तको भाषामें तोरमल्ली—तरमरी कहते हैं।

वर्त्तमानमे अनेक चिकित्सकोंने अभ्रककी खानमेंसे निकलने वाले एक जातिके पत्थरोंको वैक्रान्त माना है। अन्य स्फटिकको वैक्रान्त कहते हैं।

(३७) *मौक्तिक शोधन*—जयन्तीके रसमें ३ घण्टे तक दोलायन्त्र से मोतीको उबाल लेनेसे शुद्ध होते है। (शा० स०)

वर्त्तमानमे जर्मनी, अमेरिका, जापान आदि देशोंसे बनावटी मोती बहुत आते हैं, वे औषधिके कामके नहीं हे। बसरा से आने वाले मोती अच्छे हैं। औषधिमे प्राय अबीध मोती और बडे मोतीके चूरे का उपयोग होता है। विंधने के समय जो चूर्ण जल मे गिरता है। वह पूरा काम देता है।

बाजारमे मोतीके छिलके जो मिलते हैं। वे शुक्ति के तेजस्वी अंश में से निकाले हुए हैं। उसे खरीद करना हो तो शुक्ति के तेजस्वी अंशकी पिष्टी बना लेना ही अच्छा है। जिससे धनकी व्यर्थ हानि नहीं होगी।

धन्वन्तरि निघण्टु, राजनिघण्टु, भावप्रकाश और चक्रपाणिदत्तके मतमें जयन्ती जाहीको कहते हैं। अमरकोषकारने अरणीको जयन्ती कहा है। इन दोनोंमे से विषनाशक गुण जाही (चमेली) मे अधिक है। अत मौक्तिक शोधनमें अरणीकी अपेक्षा जाही विशेष हितकर मानी जायगी।

दूसरी विधि—पक्के ताजे नीबूके रसमें ४ गुना जल मिला, उसमें १२ घण्टे मोतीको भिगोकर धो लेनेसे शुद्ध हो जाते है। नीबूके जलमेंसे मोतीको सम्हाल कर निकालें। कारण, मोतीमेंसे कुछ चूर्ण होकर नीबूके रसमें मिल जाता है। (औ० गु० ध० शा०)

तीसरी विधि—तपा-तपाकर सात-सात बार घी कुँवारके रस, चंदलोईके रस और स्तन्य (स्त्री दूध) में बुझानेसे मोतीकी शुद्धि होती है। यदि इस तरह शुद्धि करनी हो, तो तपानेके समय बरतन पर ढक्कन ढक देवें। अन्यथा मोती उछलकर पात्रसे बाहर निकल जाते है। किसी-किसी समय तो अग्निमें भी गिर जाते है। इसीलिये अति सम्हालकर शोधन करना चाहिये। (शा० स०)

(३८) *शख और शुक्ति शोधन*—शख और सीपको मट्ठेमें ३ दिन तक भिगोवें। पात्रको दिनमें १२ घण्टे धूपमें तथा रातको १२ घण्टे खुला रखना चाहिये। मट्ठेको रोज बदल देवें ३ दिन बाद मट्ठेमें से निकाल जलसे धोलेने पर शंख और शुक्तिकी शुद्धि होती हैं।

शंख समुद्रमे से निकले हुए बड़े सफेद रंगके मजबूत देखकर उपयोगमे लेवे । मैले रंगके, जल्दी टूटने वाले और नदीके छोटे शखोंको उपयोगमे न ले ।

मोती जिसमें से निकाल लिये हो ऐसी बड़ी सीपोंको उपयोगमे लेना चाहिये । शोधन करनेके समय सीपके पीछे जो काला भाग होता है, उसे चाकू से दूर करें । मात्र सफेद तेजस्वी भागको ही ले । नदीमे उत्पन्न होने वाली छोटी-छोटी सीपोंमे गुण बहुत कम है, अत उनको न ले ।

(३९) *प्रवाल शोधन*—जयन्तीके रसमें दोलायन्त्रसे ३ घण्टे तक स्वेदन करे । या छाछ (अधिक खट्टी न हो) में ३ घण्टे तक भिगोकर धो लेनेसे प्रवाल शुद्ध होती है । (शा० स०)

श्वेत वर्णयुक्त और निस्तेज प्रवाल शाखाओंको निकाल डाले ।

(४०) *वराटिका शोधन*—कौड़ियोको मट्ठा, चूकेका रस, अथवा नीबूके रसमें भिगोदें । जब कौड़ियोका रंग श्वेत होजाय, तब निकाल कर धो ले । लगभग ७-८ दिन तक भिगोना पडता है । (र० र०)

औषधि कार्यमें पीली कौडीका ही उपयोग होता है । वजनकी दृष्टिसे १॥-१॥ तोले वजन वाली उत्तम, १-१ तोले वजनकी मध्यम और ६-६ माशे वजनकी कौडियाँ कनिष्ठ मानी गई हैं । (र० र० स०)

(४१) *अकीक शोधन*—अकीक को तपा-तपाकर गुलाबजल, या अर्क बेदमुश्क, अथवा दूधमें २१ बार बुझानेसे शुद्धि होती है ।

(४२) *जहरमोहरा शोधन*—जहरमोहराको तपा-तपाकर २१ बार गोदुग्ध या आँवलोंके रसमें बुझानेसे शुद्धि होती है ।

(४३) *भस्माग शोधन*—पिरोजाको अग्निमें तपा-तपाकर गाय या बकरीके दूधमें ३ बार बुझानेसे शुद्ध होता है ।

(४४) *संगयसव शोधन*—संगयसवको तपा-तपाकर २१ बार अर्क गावजबाँ या गुलाबजलमें बुझानेसे शुद्ध होता है ।

(४५) *संगयहूद (हजरुल यहूद) शोधन*—संगयहूदको तपा-तपाकर ७ बार कुलथीके क्वाथमें बुझानेसे शुद्ध होता है ।

(४६) *उपपन्ना शोधन*—पन्नाकी खानमेंसे निकलने वाले तेजस्वी नीले रंगके पत्थरोको तपा-तपाकर कुलथीके क्वाथ, गुलाबजल और केवड़के अर्क में ७-७ बार बुझालेनेसे शुद्धि होती है ।

(४७) *बारहसिंगा शोधन*—बारहसिंगेके छोटे-छोटे टुकड़े कर मट्ठे में डालें । फिर धूप लगती रहे, ऐसे स्थान पर ३ दिन तक बरतन को रखे । पश्चात् जलसेधोकर तेज धूपमें सुखा लेनेसे शुद्धि होती है ।

(४८) *फिटकरी और सोहागा शोधन*—इनको लोहेकी कड़ाही में डालकर फूला बना लेनेसे शुद्धि होती है ।

(४९) *जयपाल शोधन*—जमालगोटेके बीजोको २४ घण्टे जलमें भिगोदे । फिर ऊपरके छिलके उतारकर गिरी निकालले । जयपाल वाला हाथ नेत्रोको न लग जाय, यह सम्हाले । कदाचित् भूलसे हाथ लग भी जाय तो घी लगाले । पश्चात् गिरीको १६ गुने दूधमें दोलायन्त्रसे उबालकर जलसे धो लेवे, और बीचमेंसे जीभी निकालकर सूर्यके ताप में सुखा लेनेसे जयपाल शुद्ध होता है । (यो० र०)

सूचना—जयपालके विरेचन और वमनधर्म उसमे अवस्थित तैलके हेतुमे प्रकाशित होते हैं । यदि तैलको अत्यधिक कम कर दिया जायगा तो वह जयपाल मिश्रित औषधि योग्य मात्रा मे इच्छित कार्य नही कर सकेगी ।

(५०) *वच्छनाग शोधन*—सफेद या काले वच्छनागके छोटे-छोटे टुकडे कर ४ गुने बकरीके दूधमें ३ घण्टे उबाल, धोकर छायेमें सुखा लेनेसे शुद्ध होता है । (यो० र०)

बाजारमे गोमूत्रकी गंध वाला काले रंगका वच्छनाग आता है । वह श्वेत रंगके वच्छनागको गोमूत्रमे उबालकरके बनाया हुआ है । वच्छनाग गोमूत्र एक समय उबल जानेके हेतुमे प्राय शुद्ध है । फिर भी अधिक शोधन करना हो, तो उसके छोटे-छोटे टुकडे कर गोमूत्रमे १ दिन भिगोकर धो लेवे । उबालनेके समय वच्छनागमे सुई डालकर परीक्षा करे । यदि सुई पार निकल जाय, तो शुद्ध समझे । कसर हो तो आध घण्टे तक और अग्नि देनी चाहिये ।

(५१) *धत्तूरा शोधन*—काले धतूरेके पक्के बीजोको गोमूत्रमें १२ घण्टे भिगोकर सुखादे । फिर लकड़ीके डंडेसे कूट या शिलापर पीस फटक कर छिलकोंको दूर करनेसे बीजोकी शुद्धि होती है । (यो० र०)

काले धतूरेके पक्के बीज विशेष लाभदायक हैं । कालेके अभावमे श्वेत धतूरेके बीज लेवे ।

(५२) *कुचिला शोधन*—कुचिलेको ७ दिन तक गोमूत्र में भिगोवे । प्रतिदिन गोमूत्र बदलते रहे । फिर छिलका नरम होने या कुचिलामें सुई लगाने पर पार निकल जाय, तब छिलकाओंको उतार देवे, और भीतरसे जीभीको भी निकाल डाले । पश्चात् कुचिलेको १६ गुने दुग्धमें दोलायन्त्रसे उबाले । दुग्ध, रबड़ी जैसा होजाने पर उतार कर धो लेवे । अथवा समभाग घृतमें भून लेनेसे भी कुचिला शुद्ध होजाता है ।

यदि ७ दिन भिगोनेपर भी छिलके नरम न हो, तो २-३ रोज ज्याद

भिगोवे। किन्तु छिलके नरम होने पर अधिक दिन गोमूत्रमे न रखे। अन्यथा गुण कम होजाता है।

कुचिला शोधन करने पर शेष रहे दुग्धका मावा बनाकर अफीम छुडानेके लिये हमने उपयोगमें लिया है। मात्रा अफीमके बराबरमें देते है। अथवा कुचिलेका शेष घृत अफीममे आधे परिमाणमें देते है। इन दोनो प्रयोगोमे अफीमका व्यसन ५-७ दिनमें ही छूट जाता है।

दूसरी विधि—१ सेर कुचिलेको कडाहीमें डाल २॥ से पॉच तोले तक एरण्ड तैल मिला मसलकर मन्दाग्निसे भूनते है। वार-वार खुरपेसे चलाते रहते है। कुचिले फूल जॉय, तब कडाहीको उतार लें। कदाचित एकाध कुचिला उछलकर बाहर निकल जाता है। इस हेतु से सम्हालपूर्वक भूने। कुचले को बाहर पत्थर पर रख मुट्ठी से तोडने पर टूट जाता है, तब पक्का माना जाता है। इस कुचिलेका उपयोग शुद्ध कुचिले के स्थान पर किया जाता है। छिलके और जिह्वा न निकलने पर भी बाधा नहीं पहुचती। कदाचित् कोई कुचिला कच्चा रह गया हो, तो उसे निकाल डालना चाहिये।

कोई कोई वैद्य विना शोधन किये और विना जीभी निकाले बढ़ईसे यन्त्र द्वारा पतले कागज जैसे टुकडे करा कूटकर उपयोगमें लेते है। किन्तु ऐसे अशुद्ध कुचिलेको प्रयोगमें लाना, यह शास्त्रमर्यादाके विरुद्ध है।

(५३) *रसांजन शोधन*—बाजारसे ली हुई रसोतको कूटकर जलमें २४ घण्टे भिगो देवे फिर अच्छी तरह मसलकर कपड़ेसे छान लेवें। और जल मिलाने की जरूरत पडे तो, और जल मिला लेवे। छाने हुये जलको सम्हालकर ऊपरसे एक कड़ाईमें निकाल लेवे। नीचे की मिट्टी को रसोतके साथ न आने दे। फिर जलको उबालकर गाढा करे। ऊपरके भागमें रसोत लगजाय उसे बार-बार खोलते रहे, और नीचे भी न लग जाय इस प्रकार सम्हालपूर्वक चलाते रहे। अग्नि मंद देवे। जब रसोत अवलेहके समान होजाय या जलने लगे तब कढ़ाई को नीचे उतार कर सूर्य के तापमें सुखालेनेकी अपेक्षा 'औषधि क्रिया' में लिखे अनुसार तैयार कर लेना, यह विशेष हितकर है।

(५४) *गूगल शोधन विधि*—एक पाव त्रिफला और आध पाव गिलोयको जौकुट कर ३-४ सेर पानीमें रातको भिगो देवे। सुवह काढा करके आधा पानी रह जाय, तब उतार कर छान लेवे। फिर छने

हुए काढ़ेको लोहेकी कडाहीमें रखकर चूल्हे पर चढायें, और मन्द-मन्द अग्नि दें। कड़ाहीके दोनों कुन्दोंमें एक लम्बी लकडी आडी पिरो देवें। पश्चात् एक साफ कपडेमें एक पाव भैंसागूगल बांध पोटलीसी बना उसी लकडीमें बाँधकर, कडाहीमें लटका देवें। पोटलीका मुँह खुला रक्खें, और उसी कडाहीमें से कडछीसे काढा भर-भर कर गूगलकी थैलीमें डालते रहे। साथ-साथ गूगलको चलाते-भी रहे। दस-बारह बार काढा डालनेसे सारा गूगल कढ़ाईमें छन जायगा। जब कपड़ा खाली होजाय, तब कपडे को निकाल लेवें। उसमें गूगलका मैल रहे, उसे फैंक देवे। कड़ाहीमें जो गूगल मिला काढा है, उसे धीरे-धीरे धार बाँधकर निकाल लेनेसे पैंदेमें मैल रह जायगा। उसे भी दूर करें। केवल नितारे हुए काढ़ेको मन्दी आँच पर पकावें। गाढ़ा हो जाय, तब उतार लेवे। शीतल होने पर हाथोंमें घी लगा गूगलकी गोलियाँ बनाकर सुखा लेवे और कढाहीको गोबरसे साफ कर लेवें।

टिप्पणी—कितनेक चिकित्सक गूगलका शोधन गिलोय और दशमूल क्वाथके साथ करते हैं। आमशोधक कार्य गूगलसे लेना हो तब त्रिफला विशेष हितावह माना जायगा। आमसंचय अधिक न हो ऐसे वात रोगियोंके लिये गिलोय और दशमूल क्वाथ लाभदायक रहेगा।

(५५) *भाँग शोधन*—भाँगकी पत्तीको जलमें उबाल, निचोड़ कर सुखा लेवे। फिर कढाहीमें डालकर सेक लेनेसे शुद्ध होती है।

(५६) *लाङ्गली शोधन*—कलिहारीके छोटे-छोटे टुकडे को २४ घण्टे गोमूत्रमें भिगो, छायामें सुखा लेनेसे शुद्ध होते है। (र० च०)

(५७) *कनेरमूलका शोधन*—कनेरकी जड़के छोटे-छोटे टुकडे कर पोटलीमें बाँधकर २ घण्टे तक गोदुग्धमें दोलायन्त्रसे उबाल लेनेसे शुद्ध होते है। (र० च०)

(५८) *गुञ्जा शोधन*—सफेद चिरमिटीको दोलायन्त्रमें रख, काँजीमें १ प्रहर उबाल लेनेसे शुद्ध होती है। (र० च०)

(५९) *भल्लातक शोधन*—पक्के भिलावे, जो पानीमें डालनेसे डूब जायँ, वे ईंटके चूर्णसे घिसनेसे शुद्ध होते हैं। जब भिलावेका क्वाथ करके पाक आदिमें उपयोग करना हो, तब इस तरह शुद्ध करले।

दूसरी विधि—भिलावोको एक कपड़ेकी पोटली में बाँधकर भैंसके गोबरमें चौगुना जल मिलाकर दोलायन्त्रमें मन्दाग्निसे १२ घण्टे तक उबाले। पश्चात् ४-४ प्रहर गोमूत्र और गोदुग्धमें उबाले। बादमें भिलावोको गरम जलसे धोकर सबके ऊपरसे टोपीको सम्भालकर दूर

करें । फिर भिलावोंको नारियलके जलमें १२ घण्टे उबाल लेनेसे भिलावे चूर्णमें मिलाने लायक शुद्ध हो जाते है ।

(६०) *अफीम शोधन*—अफीमको पानीमें घोलकर कपड़ेकी दो तहोंमें छान लेनेसे पानीमें चली जाती है । फिर आग पर औटा पानीको गाढ़ा कर लेनेसे अफीम शुद्ध होती है । ४ तोले शुद्ध अफीमका शोधन करने पर २ तोले रह जाती है । इस तरह शुद्ध की हुई अफीम को नेत्ररोगकी ओषधिमें मिलनी चाहिये ।

नेत्रोंकी ओषधिमें अफीम ५-१० वर्षकी पुरानी विशेष हितकर है और खानेके लिये नवीन अफीम अच्छी है ।

दूसरी विधि—अफीमको अदरखके रसकी २१ भावना देनेसे खानेकी ओषधिमें मिलाने योग्य शुद्ध होती है । (यो० र०)

(६१) *लहसुन शोधन*—लहसुनके छिलकोंको निकाल, कुचल-कर ३ दिन छाछमें भिगोवे । रोज छाछ बदल देवे । पश्चात् साफ जलसे धोकर छायामें सुखा लेनेसे लहसुन दुर्गन्धरहित शुद्ध होती है ।

(६२) *एरण्ड बीजका शोधन*—अरंडीके फलोंके ऊपरसे छिलके और भीतरसे जीभी निकाल दे । पश्चात् ४ गुने नारियलके जलमें दोलायन्त्रसे मन्दाग्नि पर ३ घण्टे उबालने से शुद्ध होते हैं ।

(६३) *हींग शोधन*—हींग घीमें भून लेनेसे चूर्णमें मिलानेके लायक शुद्ध होती है किन्तु रसायन पारदयुक्त ओषधियोंमें मिलानेके लिये हींगको सूर्यके तापमें कमलके पत्तोंके रसमें ६ घण्टे तक भावना देनेसे शुद्ध होती है । (यो० र०)

(६४) *उसारेरेवन शोधन*—उसारेरेवनको अदरखके रस या सोंठके क्वाथकी ३ भावना देनेसे शुद्ध होती है ।

(६५) *समुद्रफेन शोधन*—समुद्रफेनको नीबूके रसमें ३ घण्टे खरल कर धूपमें सुखा लेनेसे शुद्ध होता है ।

(६६) *सर्पविष शोधन*—काले सर्पके विषको पहले चीनी मिट्टी की प्यालीमें डाल सरसोंके तेलमें मिलाकर सूर्यके तापमें १२ घण्टे रखे । पश्चात् नागरवेलके पानके रस, अगस्त पत्रके रस और कूटके क्वाथकी ३-३ भावना देनेसे शुद्धि होती है ।

द्वितीय विधि—सर्पविषको गोमूत्रमें डालकर तीन दिन सूर्यके तापमें रखे । फिर सुखा लेने पर शुद्ध होजाता है । (र० च०)

सर्पविष निकालनेवाले साँपको पकड मुँहको खोल, ऊपरके भागसे नीचेका भाग थोड़ा टेढ़ा कर मुँहको उलटा कर देते हैं । फिर विषकी थैली

पर अंगुष्ठको दबाकर विष निकाल लेते हैं। जीवित सर्पमेंसे २-३ मास पर बार-बार विष निकालते रहते हैं। मरे हुए सर्पमेंसे विष नहीं निकलता। अनेक सपेरे थैलीको चीरकर विष निकालते हैं, परन्तु उस विषमें रक्त मिल जाता है। ऊपर कही हुई विधिसे दबाकर विष निकालने पर शुद्ध विष सहज मिल जाता है।

सर्पविष थूकके समान निकलता है। फिर थोड़े ही समयमें सूखकर गोंदकी छोटी-छोटी डलीके समान सफेद रङ्गका होजाता है।

सर्पविषकी परीक्षा—तुरन्त मारे हुए किसी पशु शरीरमें बड़ी रक्त-वाहिनी काट दे। फिर बहते रक्तप्रवाहमें नीचे एक सरसों समान विष रखनेसे वह रक्तप्रवाहमें तेजीके साथ ऊपर गति करने लग जाता है।

(६७) *पित्त शुद्धि*—पित्तको कड़वे नीमके पत्तोंके स्वरसकी ३ भावना देकर जलसे धोलेने पर शुद्धि होती है। (र० च०)

(६८) *गधाविरोजा शोधन*—शोधनविधि मूत्रकृच्छ्रान्तक रसकी दूसरी विधिके साथमें आगे दी जायगी।

(६९) *अंडेके छिलकोंका शोधन*—अंडेके छिलकोंको सिरका या नमक नौसादर मिलाये जलमें भिगोदें। ४-६ दिनमें कोमल होने पर भीतरकी झिल्लीको सम्हालकर निकाल देनेसे वे शुद्ध औषधियोंमें मिलाने योग्य, होजाते हैं।

नमक और नौसादर मिलाना हो, तो छिलकोंकी अपेक्षा आठवाँ आठवाँ हिस्सा लेवे। झिल्ली निकालने के पश्चात् शुद्ध जलसे धोकर सूर्यके तापमें सुखा लेना चाहिये।

भस्म प्रकरण।

धातु-उपधातुओंकी भस्म बनाने या मारण करनेका अर्थ उनके सूक्ष्म परमाणुओंको अत्यन्त सूक्ष्म, निरुत्थ और सेन्द्रिय घटक युक्त बनाना, ताकि सेवन करने पर वे उपकारक हों, देहमें शल्य रूपसे अपकारक न हों। धातु-उपधातुओंके निरिन्द्रिय परमाणु शक्य उतने सूक्ष्मतम होजाँय, और उनके साथ भावना द्रव्योंमेंसे गुणवर्द्धक विविध सेन्द्रिय परमाणुएँ मिश्रित होजाँय, ऐसे सूक्ष्मतम सेन्द्रिय स्वरूपकी प्राप्ति करना, यह भस्म करने या मारण करने का उद्देश्य है। अथवा जड द्रव्योंकी जडताको दूर कर शरीरके उपयोगी लघुत्व गुणको उत्पन्न कराना, यह भस्म बनानेका उद्देश्य है।

धातु उपधातुओंकी भस्म बनाने अथवा मारण करनेका अर्थ इनके धातुत्वको बिल्कुल नष्ट कर देना, ऐसा नहीं है। यह कदापि सम्भावित नहीं है।

भस्म चाहे उतनी सूक्ष्म बनाई जाय, कदाच पश्चात्य रसायन शास्त्रकी दृष्टिसे इनका धातुत्व बिल्कुल नष्ट होजाय। फिर भी वह अपना मूल स्वभाव (गुण विशिष्टत्व) का त्याग नहीं कर सकती, यह प्रयोग सिद्ध है।

भस्म तैयार करनेके पहले, शोधन प्रकरणमें लिखी विधि अनुसार धातु उपधातु रत्न, उपरत्न आदि ओषधियोंको शुद्ध कर लेवें। जितना शोधन अच्छा होगा, उतनी ही भस्म अधिक सौम्य होती है। धातु-उपधातुओंकी भस्म बनानेके लिये अनेक प्रकारकी ओषधियों की भावना दी जाती है, जिसमें भावना द्रव्योंके रसके क्षारके सत्वांशका मिश्रण होकर उनके गुण भी समिलित हो जाते हैं।

सुवर्ण, रौप्य, लोह, वंग, जसद, शीशा मण्डूर, मुक्ता शुक्ति, प्रवाल, अभ्रक और अन्य रत्नोपरत्न स्वभावसे सौम्य हैं, तथा ताम्र, संखिया, हरताल आदि उग्र हैं। परन्तु भावना रूप संस्कारसे गुणोंमें कुछ परिवर्त्तन हो सकता है। मूल स्वभाव पूर्णरूपसे नहीं बदलता। अतः भस्म तैयार करनेके पहले किन-किन ओषधियोंकी भावना अनुकूल हैं, इस बातको सम्यक् प्रकारसे जान लेना चाहिये। जैसे रसायन गुणके लिये अभ्रक भस्मको विरेचन और लेखन ओषधियोंके पुट न्यून परिमाणमें और बृंहण ओषधियोंके पुट विशेष परिमाणमें देना चाहिये। किन्तु किसी रोगको दूर करनेका उद्देश्य हो, तो उस रोगको शमन करनेवाली ओषधियोंकी ही भावना ज्यादा देनी चाहिये। उष्ण, सारक, वातश्लेष्मघ्न, कोष्ठविकारघ्न आदि गुणोंके लिये अभ्रक भस्म को अर्क दुग्ध या अर्क पत्रके रसकी भावना देना लाभदायक है। ऐसे गुणोंके लिये यदि शीतवीर्य, रक्तपित्तशामक और कफक्षयनाशक अडूसेके पानके स्वरसकी भावना दीजायगी, तो लाभ कम मिलेगा। मधुमेह पर लोह भस्मका उपयोग करना हो, तो जामुन वृक्षकी छालके क्वाथसे ८-६ या अधिक पुट देवे। एवं कफनाश के लिये अभ्रकको कटेली आदि कफघ्न ओषधियोंके पुट देवे। इस तरह अन्य रोगशामक ओषधियोंके लिये विचारपूर्वक योजना करे।

वनौषधि द्वारा तैयार की हुई वंगभस्म सौम्य होनेसे शुक्र स्थानको पुष्ट बनानेमें विशेष लाभदायक है, और हरताल-मारित वंगभस्म उग्र होनेसे दूषित रस-शुक्र आदि धातुओंको शुद्ध करने, जन्तुओं का नाश करने, उपदंशके रोगीके बिगड़े हुए शुक्रको शुद्ध करनेके लिये और उपदंशजनित चर्मरोगमें विशेष हितकारक मानी गई है। अतः भावना विषयक विचार करके भस्मका उपयोग करना चाहिये। धातु-उपधातुकी भस्म निम्न पाँच प्रकारसे तैयार होती है—

(१) पारद, गन्धक, अथवा सिंगरफके योगसे।

(२) वनौषधियोंके स्वरसकी भावना द्वारा।

(३) सोमल, हरताल, मैनसिल आदि उग्र द्रव्योंके योगमें।

(४) गन्धक, सज्जीखार, शोरा या अन्य क्षारसे।

(५) धातुओंके अन्य विरोधी धातुसे मारण।

इनमे पहले दो प्रकार श्रेष्ठ और निर्दोष हैं। तीसरे प्रकारकी विधिसे भस्म उग्र बनती है, तथा चौथी और पाँचवी विधिसे बनाई हुई भस्म न्यून गुण-युक्त होती है। रसरत्न समुच्चय और आयुर्वेदप्रकाशमें लिखा है कि:—

लोहाना मारणं श्रेष्ठं सर्वेषां रसभस्मना।
मूलीभिर्मध्यम प्राहुः कनिष्ठं गन्धकादिभिः।
अरिलोहेन लोहस्य मारणं दुर्गुणप्रदम्॥

सुवर्ण आदि धातुओंका पारद योगसे मारण श्रेष्ठ, वनौषधियोंसे मारण मध्यम गुणयुक्त, गन्धक और अन्य क्षार आदि से मारण कनिष्ठ, तथा विरोधी धातुओंसे मारण करना हानिकारक है। अन्य आचार्योंने भी लिखा है:—

लोहं सूतयुतं दोषान्स्त्यजेत्सूतस्तु लोहयुक्।
अतः स्वर्णादिलोहानि,विनासूत न मारयेत्॥

सुवर्णादि धातु पारदसयोगसे दोषोंको त्याग देती है और पारद भी सुवर्णादिके योगमे दोषमुक्त होता है। अत विना पारद, धातुका मारण न करें।

जबतक भस्म निरुत्थ न बनजाय, जबतक उपयोगमे नहीं लेनी चाहिये, इस शास्त्राज्ञाका वर्त्तमानमें पूर्ण रूपसे पालन नहीं होता। यूनानी हकीम तो कच्चे वग और शीशेको मिश्रीके साथ खरल करके ही उपयोगमें लाते हैं। उनकी मान्यतानुसार कच्ची धातुके उपयोग मे कुछ भी हानि नहीं है। किन्तु आयुर्वेदने कच्चे वग और शीशेको हानिकर माना है। (रसतन्त्रसार द्वितीयखण्ड मे शीशेके वर्णनमें यह विचार पाश्चात्यपद्धतिअनुसार समझकर लिखा गया)

भस्मोंको सर्वथा सम्हाल कर काँचकी अच्छी डाट वाली शीशियोंमें बन्द रखना चाहिये। इस तरह रखी हुई भस्म जितनी पुरानी होती है, उतनी ही (उग्रताका शमन होकर) विशेष सौम्य और उपयोगी बनती है।

अभ्रक, लोह, सुवर्ण, रौप्य, ताम्र, शीशा, जसद आदि धातुओंको ज्यादा पुट देनेसे-भस्म विशेष गुणयुक्त बनती है, तथा मुक्ता, शुक्ति, प्रवाल, रत्न-उपरत्नोंको मर्यादासे अधिक पुट देने पर न्यून बलयुक्त होजानेकी सम्भावना है। अत. भस्म बनानेमें औषधके स्वरूप और रूपान्तर पर लक्ष्य देना चाहिये।

यदि किसी समय अकस्मात् धातुओंकी भस्मकी शीशी फूट जाने पर काँचके अणु भस्ममें मिल जायँ, तो घीकुँवारके ५-७ पुट देनेसे काँचके दोषकी निवृत्ति होकर भस्म अधिक गुणयुक्त बनती है।

अभ्रक भस्म कितने पुटवाली है, इस बातके निर्णयार्थ अभी तक कोई

साधन उपलब्ध नहीं हुआ। इस हेतुसे १ पुटवाली अभ्रक भी सहस्र पुटवाली बनकर बाजारमें बिकती है। एक समय एक वैद्यजी ने मुझे सहस्रपुटी अभ्रक दिखायी और कहा कि ४) रु० तोले खरीद की है। वह सोनागेरूका चूर्ण ही था। इस तरह बरारसे भी सोनागेरूका चूर्ण अभ्रक भस्मके नामसे आया था।

कुछ वर्षों पहले मैं देहलीके एक वैद्यसे वङ्गभस्म दो आने तोला, अभ्रकभस्म और लोहभस्म ४ आने तोला परीक्षाके लिये लाया था। निर्णय करने पर विदित हुआ कि कितनेक फॉर्मेसी वाले बड़े कारखानेके एञ्जिनोंके भीतर पक्के लोहेकी पेचदार बोतलमें कलई आदिको भर कर कुछ समय तक रखवा देते हैं। फिर निकाल शीतल होने पर जलसे धोकर तवे पर सुखा लेते हैं। इस तरह भस्म बनानेमें शोधन करने की या भावना देने की आवश्यकता नहीं रहती। विज्ञापन देकर सस्ती भस्म बेचनेवालोंके लिये यह विधि उपयोगी है।

कितनेक शठ-वैद्य मुक्ता भस्मके स्थानपर शुक्ति भस्म देकर पूरा मूल्य लेते हैं। सुवर्ण, रौप्य, लोह आदिमें भी लुचाई करते हैं। इन सबकी अपेक्षा जो सदोष-अपक्व भस्म बेचते हैं, वे जनताको अधिक हानि पहुँचाते हैं।

जब भस्म जल पर तैरने लगे, तब विशेष लाभदायक होती है। परन्तु वर्त्तमानमें ऊपर तैर न सके, ऐसी अनेक प्रकारकी भस्में उपयोगमें लानेका रिवाज है। जल पर तैर सके वह जल्दी रस-रक्त आदि धातुओं में मिलकर अपना दिव्य प्रभाव दिखाती है। बिना तैरनेवालीमें उतना गुण नहीं होता।

इस ग्रन्थमें धातुओंकी भस्मोंमें अनेक स्थानों पर कम पुट लिखे हैं। उन स्थानों पर अनुकूलता अनुसार ज्यादा पुट भी दे सकते हैं। ग्रन्थमें लिखी विधि से तैयार की हुई भस्में हानि नहीं पहुँचातीं। अपनी शक्ति अनुसार लाभ ही पहुँचाती हैं। फिर भी अधिक पुट दिये जायँ, तो विशेष लाभदायक बनती हैं।

अभ्रक, लोह, मण्डूर, वङ्ग और माक्षिक कच्ची हों, तबतक उनको अग्नि तेज देनी चाहिये। भस्म पक्व हो जाने पर विशेष पुट देना हो, तब अग्नि कम देनी चाहिये। यदि अन्तके पुटोंमें अग्नि तेज होगी, तो भस्म कठोर हो जायगी। मृदु नहीं बनेगी। इसके विपरीत नाग, रौप्य और सुवर्ण जबतक कच्चे हों, तब-तक अग्नि कम देनी चाहिये। अधिक अग्नि देने पर फिरसे जीवित हो जाते हैं, इनकी भस्म जैसे-जैसे बनती जाय वैसे-वैसे अग्नि बढ़ाते जायँ।

भस्म बनानेके लिये धातु, उपधातु आदि औषधियोंकी टिकिया अथवा गोलेका संपुट मजबूत करना चाहिये। संपुट मजबूत होनेसे अग्निकी उष्णता, जो संपुटके भीतर प्रवेश करती है; वह शीघ्र नहीं निकल सकती, जिससे भस्म थोड़े ही पुटमें विशेष मुलायम होजाती है। संपुट दृढ़ न होनेसे सन्धि खुल

जाती है। फिर अग्निकी गरमी बाहर निकलती रहती है, जिससे भस्मको इच्छित लाभ नहीं पहुँचता।

भस्मका सपुट विशेषत हाँडियोंमें करते हैं। यदि भस्मकी टिकियाओं को बडे गोल तवेपर रखकर सपुट किया जाय, तो गजपुटमें अग्नि विशेष लगती है। गजपुट आदिमें अग्नि देनेके बाद जब तक सपुट स्वाग शीतल न हो, तबतक खड्डेमेंसे न निकाले। अन्यथा भस्मकी गरम टिकियोंको बाहर शीतल वायु लगने पर भस्म दूषित (कठोर) हो जाती है।

रत्नोंकी भस्म बनानेके बदले पिष्टी बनाई जाय, तो विशेष लाभ करती है। परन्तु किसी-किसी समय पिष्टी अनुकूल नहीं रहती, तब भस्म दी जाती है। अतः भस्म बनानेकी विधि भी दी है। ४-५ प्रकारके यूनानी पत्थरोंकी भस्म और पिष्टी विशेष उपयोगी होनेसे उनकी विधि भी साथ साथ दी गई है।

सुवर्ण, रौप्य आदि धातुएँ अन्य धातुके मिश्रणरहित शुद्ध ही लें। दूषित धातुकी भस्मसे बलवीर्यका नाश और अनेक रोगोंकी उत्पत्ति होती है।

ओषधि कार्यमें मण्डूर १०० वर्षसे ज्यादा पुराना ही लेना चाहिये। नये मंडूरकी भस्मके सेवनसे अनेक दोष उत्पन्न होते हैं। काशीश भस्म बनानेके लिये विलायती काशीश लिया जाय, तो लाभ अधिक होता है।

भस्मकी टिकियाँ सुखानेके लिये कलई की हुई थाली, एनेमल (लोहे पर सफेदी लगी हुई) की थाली, चीनी मिट्टीके पात्र अथवा पत्थरके पात्रोंका उपयोग करना चाहिये। पत्थर अथवा धातुपात्र होनेसे टिकिया जल्दी सूख जाती है। यदि ताबा, पीतलका पात्र लेना हो, तो कलई किया हुआ ही लेना चाहिये। बिना कलईके पात्रमें टिकियाँ सुखानेसे पात्रमें रहा हुआ नीलाथोथा टिकियोंको लगकर भस्मको दूषित बना देता है।

टिकियाँ बाँधनेके पश्चात् खरल, बत्ताको और टिकियाँ जिस थालीमें सुखाई हों उस थालीको भी भावना देनेके स्वरससे धोकर रसको सुखा लेवे, या दूसरी भावना देनेके समय उस रसको मिलाले, जिससे भस्म कम न हो।

जबतक भस्म मुलायम न बने, कच्ची धातुका अश प्रतीत हो, तबतक लोहेके खरलका उपयोग करे। पत्थरके खरलमें कच्ची धातुओंको खरल करनेसे खरल और भस्म, दोनो खराब होते हैं। पत्थर घिसकर भस्ममें कुछ अश मिल जाता है। एव नीबूका रस, लोह-विरोधी अन्य स्वरस अथवा नौसादर आदि क्षारयुक्त औषध लोह खरलमें घोटनेसे लोहेका जग बनता है, जो औषधिको दूषित बनाता है। इसलिये विचारपूर्वक खरलका उपयोग करना चाहिये।

हीरा, माणिक्य, मोती, पन्ना, नीलम आदि रत्नोंकी पिष्टी चीनी मिट्टीके खरल (Mortar with Pestle) या सिमाक पत्थरकेमें घोटनी चाहिये।

भस्म और रस आदि ओषधियोंके लिये टोली आदि पत्थरोंके खरल आते हैं, वे सब रत्नोंके घोटनेसे खराब हो जाते हैं।

आयुर्वेदप्रकाशकारने रसपद्धतिके वचनोंका प्रमाण देकर यह लिखा है कि, "रौप्य भस्म, नाग भस्म और उपधातुओंकी भस्मोंमेंसे किसी एक अकेलीका उपयोग करना विशेष हितकर नहीं है। रससिंदूर या अभ्रक आदि अन्य भस्मके साथ मिलाकर सेवन करना चाहिये।"

भस्मोंके भीतर मूलधातुके साथ विविध वनोषधियोंके क्षारका मिश्रण होता है। एवं शहद, दूध या क्वाथ आदि विविध, रोगनाशक अनुपान मिलाये जाते हैं। इन क्षार और अनुपान सह भस्म आमाशयमेंसे ही सूक्ष्म रसायनियों द्वारा शोषित होकर रक्तमें प्रवेश कर जाती है। फिर क्षार और अनुपानके गुणधर्म अनुरूप तत्काल प्रभाव दर्शाती है। इस हेतुसे शास्त्रमें विविध अनुपानोंकी योजना की है, तथा भस्म और रसायनोंको योगवाही कहा है।

(१) सुवर्ण भस्म।

प्रथम विधि—चन्द्रोदय बनानेके समय शीशीके तल भागमें गन्धक मिली हुई सुवर्णकी काली भस्म रह जाती है। उसमें जल मिला कर चीनीके बरतनमें दो-तीन घण्टे रख देवें। फिर सम्हालपूर्वक जलको निकाल डालें। पुनः जल मिलावें, और दो-तीन घण्टे बाद फेंक दें। इस तरह ३-४ समय धोनेसे पानी साफ निकलेगा और सुवर्णकी भस्म मात्र शेष रहेगी। उसे तुलसी, वनतुलसी (नगदबावची) अथवा कुकरौंधाके २० तोले रसमें खरल करें। जब भस्म गाढ़ी होवे, तब एक काँचकी प्लेट (तासक) में फैलाकर धूपमें सुखावें। फिर सुवर्णकी फैली हुई पपड़ीको खोल संपुट कर १६ इंचके खड्डेमें अग्नि देवें। पुनः तुलसी अथवा कुकरौंधाके रसमें घोट संपुट करके फूंक दें। इस तरह ८ पुट देनेसे मुलायम, हलके वजनवाली और हलके लाल रंगकी भस्म तैयार होजाती है।

मात्रा—½ से १ रत्ती तक दिनमें दो समय, शहद, पीपल और शहद, मक्खन-मिश्री, गिलोय सत्त्व और शहद, च्यवनप्राशावलेह अथवा रोगानुसार अनुपानके साथ देवें। शास्त्रकारोंने भिन्न-भिन्न रोगों के लिये नीचे लिखे अनुपानोंकी योजना की है:—

१. *रसायन गुणके लिये*—अ. कमलगट्टा (जीभी निकाला हुआ), धान की खील और प्रियंगुके चूर्ण और शहदके साथ सुवर्ण भस्म देवें, ऊपर गोदुग्ध पिलावें।

आ. काले तिलोंके चूर्णके साथ देवें। ऊपरसे नीलकमलके क्वाथमें पकाया हुआ गोदुग्ध पिलावें ।
इ. आँवलेके चूर्ण और शहदके साथ देवें ।
ई. शतावरी घृत ६ माशे और शहद ३ माशेके साथ ।
उ. भाँगरेके रसके साथ दें ।

२. उन्माद पर—ब्राह्मीका स्वरस ३ माशे, वच ३ रत्ती, कूठ और शंखपुष्पी ३-३ माशे और मिश्री ६ माशेके साथ देवे या धमासेके अर्कके साथ देवें ।
३. बुद्धि-वृद्धिके लिये—वचके चूर्ण ३ रत्तीके साथ ।
४. कांति-वृद्धिके लिये—पद्मकेसरके चूर्णके साथ ।
५ तारुण्य प्राप्तिके लिये—शंखपुष्पीके चूर्णके साथ ।
६. वाजीकरणके लिये—विदारीकन्दके चूर्णके साथ ।
७. राजयक्ष्मा पर—मक्खन, मिश्री और शहदसे दें। या सुवर्ण भस्म आधा रत्ती, शुद्ध सोनागेरू ३ रत्ती, मोतीपिष्टी १ रत्ती मिलाकर शहदके साथ देनेसे क्षयमें वमन, अतिसार, कृमि, कास, रक्तपित्त, अरुचि, उबाक आदि लक्षण दूर होते हैं ।
८. क्षयमें अतिसार पर—दाडिमावलेहके साथ ।
९. दाह-शमनके लिये—मिश्रीके साथ ।
१०. नेत्रोंकी निर्वलतामें—पुनर्नवाके चूर्णके साथ ।
११. जीर्ण नेत्रदाहमें—मुक्तापिष्टी और गिलोय-सत्वके साथ ।
१२. श्वासमें—त्रिकटु और घृतके साथ ।
१३. भयंकर प्रदरमें—चौलाईकी जडके अर्कके साथ ।
१४. खाँसीमें—हल्दी, पीपलका चूर्ण और शहदके साथ ।
१५. जीर्ण कास पर—द्राक्षासवके साथ ।
१६. सुजाक और मूत्रकृच्छ्रमें—छोटी इलायची, कपूर और मिश्रीके चूर्णके साथ ।
१७ रजोधर्म शुद्ध करनेके लिये—मकोयके अर्कके साथ ।

उपयोग—यह भस्म क्षय, धातुक्षीणता, जीर्णज्वर, त्रिदोष, वातवाहिनियोंकी निर्वलता, पुराना श्वास, कास, दाह, नेत्रजलन, पित्तरोग, पित्तज उन्माद, भूतबाधा, विषविकार, पित्तप्रधान प्रमेह और नपुंसकता आदि रोगोंको दूर करती है। इसमें स्निग्ध, मधुर, कषाय, किञ्चित् तिक्त शीतवीर्य और रसायन गुण हैं। यह प्रज्ञा, वीर्य, बल, स्मृति और कान्तिको बढाने वाली, वृष्य, पाककालमें मधुर, बृंहण,

हृद्य तथा वाणीको स्थिर व शुद्ध करने वाली है। सर्व धातुओंमें सुवर्ण अधिकतर स्थिर गुणयुक्त निर्मल और प्रसन्न है।

सुवर्ण भस्मके सेवनसे हृदयको शक्ति मिलती है। यह सुवर्ण का हृद्य गुण कुचिलाके समान सत्वर वातवाहिनियोंको उत्तेजना देने वाला, कपूरके समान रक्तवाहिनियोंको विकसित करने वाला; या पर्णवीज, अर्जुन आदि ओषधियोंके समान रक्तवाहिनियोंको संकुचित करने वाला भी नहीं है। किन्तु इसका कार्य रक्तको निर्विष बना रक्तका प्रसादन कर हृदयको पुष्ट बनाना तथा रक्तवाहिनियों और वात वाहिनियोंको शक्ति देना है। सुवर्णका यह हृद्य गुण अन्य ओषधियोंसे विशेष है। इस गुणके लिये अदरखके रसके साथ सेवन करना चाहिये।

विष, उपविष, शरीरमें उत्पन्न होनेवाला सेन्द्रिय विष, और इसको उत्पन्न करने वाले कीटाणु, इन सबसे शरीर पर होनेवाले दुष्परिणामको दूर करनेका अद्भुत गुण सुवर्णमें है। जब विषकी तीव्रावस्था शमन हो जाती है, और सूक्ष्मावस्था शेष रह जाती है, तब सुवर्णका उपयोग करनेसे शरीर पूर्णरूपसे निर्विष होजाता है। ऐसे प्रसग पर स्वल्प मात्रामें सुवर्ण बार-बार दिया जाता है। ऐसे ही कृत्रिम विषका तीव्र वेग दूर होने पर शेष विकृतिकी शान्तिके लिये सुवर्णका उपयोग करना चाहिये। कारण, सुवर्ण भस्ममें जन्तुघ्न और प्रतिविषोत्पादक (विषघ्न) गुण रहे हैं। इस गुणकी प्राप्तिके लिये सुवर्ण भस्मका उपयोग कम मात्रामें दिनमें ३-४ बार करना चाहिये।

जन्तुघ्न और प्रतिविषोत्पादक गुणके कारण सुवर्ण क्षयमें बहुत लाभ पहुँचाता है। इस हेतुसे आयुर्वेदने सुवर्णके प्रयोगोका क्षय रोगमें स्थान-स्थान पर उपयोग किया है। सुवर्ण-मिश्रित ओषधिका प्रयोग क्षयकी सब अवस्थाओंमें होता है। आयुर्वेदने अवस्था, दोष, दूष्य, स्थान आदिका विचार करके सुवर्णके अनेक प्रयोग निर्माण किये हैं। प्रथमा और द्वितीया अवस्थामें उनका अच्छा उपयोग होता है। मात्र तीसरी अवस्थामें जब बड़े-बड़े उरःक्षत, बल-मासका क्षय और भयंकर शक्तिपात आदि लक्षण होजाते है, तब सुवर्ण या अन्य किसी भी ओषधिसे लाभ नही हो सकता। रोग निरोधक शक्तिका अधि क्षय न हुआ हो, तबतक सुवर्णका अच्छा उपयोग होता है।

क्षय रोगमें जब ज्वरका वेग तीव्र हो, उस समय सुवर्ण नहीं देना चाहिये। एवं सुवर्णकी मात्रा रोगीकी शक्तिसे ज्यादा होनेसे क्षयके कीटाणुओंका अधिक नाश होता है। फिर उन मृत कीटाणुओंसे

सेन्द्रिय विप विशेषांशमें उत्पन्न होकर तुरन्त ज्वर बढ़ने लगता है; और वह मर्यादासे वाहर होजाता है। अतः सुवर्णकी मात्रा रोगावस्था और प्रकृति भेदका विचार करके देनी चाहिये। अनेक समय तो सुवर्ण भस्मका प्रयोग इतनी कम मात्रामें किया जाता है कि, $\frac{1}{40}$ रत्ती।

वारवार शुष्क कास, सारे शरीरमें व्यथा, सायंकालमें नित्य प्रति सम्हाल रखते हुए भी ज्वर आजाना, और इतनेमें ही भयंकर शक्तिपात होना, मन अस्वस्थ, उदासीन और क्रोधी बनना इत्यादि लक्षण होनेपर सुवर्ण भस्म, शृङ्ग भस्म, प्रवालपिष्टी और गिलोय सत्वको मिलाकर दूध-मिश्रीके साथ देते रहनेसे थोड़े ही दिनोंमें प्रकृति सुधरने लगती है। (शुष्क कासमें शृंग भस्मकी मात्रा कम दें।)

सहन होसके उतने अंशमें ताप, हाथ पैरमें जलन, स्वरभेद, स्कंध और पार्श्व भागका संकोच, दिनमें ३-४ वार पतले-पतले दस्त, अत्यन्त शुष्क कास, श्वास, कंठमें पीड़ा, कफके साथ रक्त गिरना इत्यादि लक्षण होने पर सुवर्ण भस्मका उपयोग प्रवालपिष्टी, शृङ्ग-भस्म और दाडिमावलेहके साथ करना लाभदायक है।

उरःक्षतमें सुवर्णका उत्तम उपयोग होता है। ज्यादा रक्तस्राव होता हो, तो रक्तपित्त चिकित्साके साथ-साथ थोड़े परिमाणमें सुवर्ण भस्म देते रहनेसे ज्यादा अशक्ति नहीं आती, रक्तमें रहे हुए मधुरत्व, स्निग्धत्व, प्रसन्नत्व आदि गुणोंकी न्यूनताकी पूर्ति सुवर्ण द्वारा होजानेसे शक्तिपात नहीं होता और रोग सत्वर काबूमें आजाता है।

निर्जन्तुक क्षयकी सब अवस्थाओंमें शरीरके घटकोंके क्षयको रोकनेके लिये सुवर्णका प्रयोग लाभदायक है। रस, रक्त आदि धातुओंके अनुलोम क्षय (रसक्षय-Sprue) और प्रतिलोम क्षय, इन दोनोंमें सुवर्ण भस्मका उपयोग जीवनीयगणकी ओषधिके साथ करनेसे शीघ्र लाभ पहुँचता है।

उन्माद रोगमें पैत्तिक और श्लैष्मिक लक्षण अधिक होने पर सुवर्ण भस्मका उपयोग भलीभाँति होता है। अर्थात् सर्वाङ्गमें दाह, असहिष्णुता, वालकका रोना या सामान्य आवाज भी सहन न होना; प्रकाश, उष्णता और उष्ण पदार्थके स्पर्शसे दुःखका भाव होना, हाथ-पैर पटकते रहना, अति व्याकुलता, मुख, नेत्र, कपोल, अँगुलियाँ आदि पर शोथ, जोर-जोरसे चिल्लाना, दूसरोंको मारनेके लिये दौड़ना, नग्न रहना, बीभत्स चेष्टा करना इत्यादि पैत्तिक लक्षण हो, या मनकी विलक्षण चंचलता, बार-बार दिङ्मूढ़ होजाना, जड़ता, अन्नपर अरुचि,

स्त्री-सम्बन्धी बातों पर प्रेम, एकान्तमें रहनेकी इच्छा, जीवनसे उपरामता इत्यादि श्लैष्मिक लक्षण प्रतीत होते हो तो सुवर्ण भस्मको धमासाके क्वाथ या अर्कके साथ देनेसे लाभ होता है।

अनेक मासकी पुरानी खाँसी और श्वासमें जब पित्तकी प्रधानता, या वातपित्तकी प्रधानता हो, तब सुवर्ण भस्म द्राक्षारिष्ट या द्राक्षासवके साथ देनेसे अच्छा लाभ पहुँचता है।

राजयक्ष्मा रोगमें सेन्द्रिय विष-दोष दुष्टीका परिणाम लघु अंत्र और बृहदन्त्र पर होनेसे फिर वे दुष्ट होजाते है। बार-बार बुदबुदे वाले पतले दस्त होते रहते है। क्वचित् दस्तके साथ रक्त भी जाता है। कितनेक रोगियोंके सारे उदरमें दोष-दुष्टीका प्रकोप होजानेसे बड़े बड़े दस्त लगते हैं, और भयकर अशक्ति आजाती है। इस अवस्थामें सुवर्ण भस्म दाड़िमावलेहके साथ देनी चाहिये।

सुवर्णके योगसे रक्तप्रसादन कार्य अच्छा होता है। त्वचा मुलायम और तेजस्वी बनती है। त्वचागत पित्तविकार अच्छी तरहसे शमन होजाता हैं। मुखमण्डल पर कान्ति बढ़ जाती है; क्षुद्र कुष्ठ या त्वचाके रोग नष्ट होजाते हैं, एवं महाकुष्टके उत्पादक कीटाणुओंका सुवर्णके सेवनसे विनाश होता है। इस प्रकार कुष्ठ रोगोंमें भी सुवर्णका उपयोग लाभदायक है।

पैत्तिक प्रमेह रोगमें सुवर्ण भस्मका उपयोग अच्छा होता है।

आन्त्रिक ज्वर आदि मुद्दती बुखारोंमें ओषधिकी दो प्रकारकी योजना की जाती है। पहला कार्य रक्तमें रहे हुए ज्वरोत्पादक कीटाणुओंका नाश कर, सेन्द्रिय विषको:जलाकर रक्तको निर्विष करनेका है। दूसरा कार्य हृदय आदि इन्द्रियोंको भलीभाँति कार्यक्षम बनानेका है। ये दोनो कार्य सुवर्ण भस्मके योगसे सहज हो जाते है।

सुवर्णमें उत्तम वृष्य गुण है। अतः इस भस्मके सेवनसे अंडकोष की ग्रन्थियाँ बलवान बनती है, और नपुंसकता दूर होती है।

सुवर्णका उपयोग नेत्रके पुराने जिद्दी रोगोंमें बहुत अच्छा होता है। विशेषतः भाँफणीके नीचे बाजरीके समान दाने होजाने, नेत्र लाल रहना, नेत्र, हृदय, हाथ-पैर आदिमें दाह और व्याकुलता आदि पित्त-प्रधान लक्षण अधिक होने पर सुवर्ण भस्मका सेवन मुक्तापिष्टी और गिलोय सत्वके साथ करना हितकर है।

सुवर्णका उपयोग वात, पित्त दोष और रस, रक्त, मांस, शुक्र दूष्य, तथा हृदय, वातवाहिनियाँ, रक्तवाहिनियाँ, नेत्र, श्वसनेन्द्रिय,

लघुअन्त्र, बृहदन्त्र, अण्डकोष और मलोद्देश इत्यादि स्थानों पर अधिकाशमें होता है। (औ० गु० ध० शा०)

गुरु भोजन और अति भोजन करनेवालोंके अन्त्रमें विष संगृहीत होता है। वह अत्यधिक बढ़ जानेपर जब अत्यधिक भोजन किया जाता है, तब वह प्रकुपित होकर समग्र भोजनको विषरूप बना देता है। फिर वमन, विरेचन, हिक्का, उदर पीड़ा, देहमें स्थान-स्थान पर शीतपित्तके ददौरे, अति ज्वर, घबराहट आदि उपस्थित होते हैं। ऐसे समय पर पहले शोधन (वमन-विरेचन) देकर फिर सुवर्ण भस्म १/८ रत्ती चौलाईकी जड़ १ तोलेके क्वाथके साथ दिनमें दो बार देनेसे शेष उपद्रव—वमन, हिक्का, निद्रानाश आदि दूर हो जाते हैं। भोजनमें मुनक्काका फाण्ट देनेसे सत्वर लाभ होता है।

सूचना—राजयक्ष्मा रोगमें सुवर्ण भस्मकी मात्रा १/१६ से १/८ रत्ती तक देनी चाहिये। यदि इतनेसे भी ज्वर बढ़ जाय, तो मात्रा इससे भी कम करें। अधिक मात्रा देनेसे क्षयके कीटाणु अधिक परिमाणमें एक साथ मरकर ज्वरको बढा देते हैं। जब क्षय रोगमें तीव्र ज्वर (९९ डिग्रीसे अधिक) हो, तब स्वर्णका उपयोग नहीं करना चाहिये।

दूसरी विधि—शुद्ध सुवर्ण और शुद्ध पारद २-२ तोले मिलाकर नीबूके रसमें ६ घण्टे खरल करें। पश्चात ४ तोले शुद्ध गन्धक मिलाकर कज्जली करे। फिर नीबूके रसमें खरल कर टिकिया बाँध, सुखाकर सराव-सम्पुट करके २ सेर कण्डोंमें फूँक देवें। इस तरह सुवर्णकी काली भस्म होजाय तबतक (४-५ पुट) तक फूँकें। फिर पारद २ तोले और गन्धक ४ तोलेकी कज्जली मिलाकर कचनारकी छालके क्वाथमें पुट देवे। इस तरह कचनारकी छालके क्वाथके लगभग १०-१२ पुट देनेसे सुवर्णका अणु बिलकुल नहीं दीखेगा, काली भस्म हो जायगी। फिर पारद मिलाये विना कचनार क्वाथके ३-४ पुट देवे। पश्चात् घृत मिलाकर टिकिया बाँध, संपुट करके ५ सेर आरने कंडोंमें फूँक देनेसे गहरे लाल रंगकी हलके वजनवाली मुलायम भस्म बन जाती है। या कचनार क्वाथके बदले कुकरौंधेके स्वरसके ४-८ पुट देकर भस्मको मुलायम बना लेवे। अथवा काँटेवाली चौलाईके स्वरसके ७ पुट देकर लाल रंगकी भस्म बना लेवे।

मात्रा और उपयोग—पहली विधिके अनुसार।

तीसरी विधि—स्वर्णको शुद्ध करके १ तोला वर्क तैयार करे। पश्चात् सत्यानाशीके रसमें २४ घण्टे खरल कर टिकिया बाँधकर

धूपमें सुखा लेवें । बादमें सम्पुट कर ३० आरने कंडोंमें फूंक देवें । स्वांग शीतल होने पर पुनः निकाल कर सत्यानाशीके रसमें खरल कर टिकिया बाँधकर फूंक देवें । इस विधिसे ४ से ६ पुट देनेसे काले रंग की मुलायम स्वर्ण भस्म तैयार होजाती है । (प० गगादत्त जी पन्त, काशीपुर)

मात्रा और उपयोग—पहली विधिके अनुसार ।

भावना दृष्टिसे जिन ओषधियोंकी भावना दीजाय, उनके गुण शामिल होते हैं । इस भस्मको लाल बनानी हो, तो ४-६ पुट चौलाईके रसके देने चाहिये ।

चौथी विधि—२ तोले सुवर्णके शुद्ध पतले पतरे लेवे । फिर हींग और हिंगुल २-२ तोले लेकर तिधारा थूहरके दूधमें खरल कर, इन पतरोंके ऊपर लेप कर (वर्कमें मिलाकर) के सुखादे । पश्चात् सराव-संपुट करके कुक्कुट पुटमें फूंक देवें । पुनः उपरोक्त विधिसे लेप फूंक दे । इस तरह १० कुक्कुट पुट देनेसे गेरू जैसे लाल रंगकी मुलायम भस्म तैयार होती है । (र० च०)

मात्रा और उपयोग—पहली विधिके अनुसार ।

पाँचवीं विधि—१ तोले स्वर्णके वर्कको ग्रीष्म ऋतुमें ३ दिन तक तुलसीके स्वरसमें अच्छी तरह खरल करे । फिर सूख जाने पर नागरबेलके २५ बड़े-बड़े पानोंके स्वरसमें खरल कर १ पतली टिकिया (पूरी सदृश) बना लेवे । इस टिकियाके सूखने पर २५ नागरवेलके पानोंके कल्कमें रख संपुट कर ५ सेर गोबरीकी अग्निमें फूंक देवे । फिर निकाल नागरवेलके २५ पानोंके रसमें खरल कर टिकिया बना लेवे । सूखने पर संपुट कर ५ सेर गोबरीकी अग्नि देवे । इस तरह १० पुट देनेसे उत्तम मुलायम फीके लाल रंगकी भस्म बन जाती है । इसका वजन लगभग १। तोला होता है । (प० रघुवरदयालुजी, देहली)

मात्रा और उपयोग—प्रथम विधिके अनुसार । यह भस्म उपयोग करने पर प्रथम विधिकी अपेक्षा विशेष लाभदायक सिद्ध हुई है ।

(२) रौप्य भस्म ।

प्रथम विधि—शुद्ध चाँदीके कंटकवेधी पत्रे और शुद्ध पारद, दोनों १०-१० तोले लेकर नीबूके रसमें खरल करे । या चाँदीको गला रस कर तुरन्त पारा मिला दे । पारा मिल जाने पर १० तोले शुद्ध गन्धक मिलाकर कज्जली करें । पश्चात् १० तोले शुद्ध हरताल मिला नीबूके रसमें खरल कर गोला बनावें । गोला सूखने पर १० तोले गंधक

को नीबूके रसमें खरल कर गोलेके ऊपर लेप करें। लेप सूखने पर कपरोटी की हुई छोटी हाँडीमें मजबूत बन्द कर ५ सेर कंडोकी आँच दें। प्रारम्भमें अधिक कंडोकी अग्नि नहीं देनी चाहिये। हाँडी स्वाँग शीतल होने पर चाँदीको निकाल पुनः १ तोला हरताल मिला, नीबूके रसमें खरल कर गोला बनावे। फिर गोलेको सुखा, हाँडीमें बन्दकर ५ सेर कंडोकी आँच दें। इस तरह दसवाँ हिस्सा हरताल मिला-मिला कर २०-३० पुट देवें। हल्का गुलाबी रंग आने पर अन्तमें घीकुँवारके रसमें खरल करके एक बड़ा गजपुट दें।

अनेक ग्रन्थकारोने मात्र ३ पुटमें ही भस्म हो जानेका लिखा है परन्तु ३ पुटमें निरुत्थ भस्म नहीं बन सकती।

मात्रा—½ से १ रत्ती तक दिनमें २ वार शहद, मलाई-मिश्री, गोदन्ती, सितोपलादि चूर्ण, नागकेशर और मक्खन, आँवलेका मुरब्बा, त्रिफला अथवा अन्य रोगानुसार अनुपानके साथ दें। रौप्य भस्मके साथमें अभ्रक, लोह या अन्य अनुकूल भस्मको मिलाकर उपयोग करना विशेष लाभदायक है।

अनुपान—१. प्रमेह पर—रौप्य भस्म १ रत्ती, अभ्रक भस्म १ रत्ती, अदरखका रस २ माशे और शहद ४ माशेके साथ।

२ पित्त प्रधान प्रमेह पर—हरताल मारित रजत भस्म १ रत्ती दालचीनी, इलायची और तेजपातके चूर्णके साथ।

३ क्षयमें ज्वर—त्रिकटु और शहदके साथ हरतालमारित रौप्य भस्म देवे।

४. तिमिरमें—रौप्य भस्म और लोह भस्म १-१ रत्ती, पीपल २ रत्ती और ६ माशे शहद मिलाकर देवे।

५ वातशमनार्थ—अभ्रक भस्म, इलायची, वंशलोचन, गिलोयसत्व और शहदके साथ रौप्य भस्म देवे।

६. पित्तविकार पर—आँवलेके मुरब्बेके साथ।

७. वातपित्त विकार पर—त्रिफलाके चूर्णके साथ।

८. उन्माद, शिरोरोग, पित्तप्रमेह, ज्वर और दाह पर—इलायची, घृत और मिश्रीके साथ।

९. २० प्रमेहो पर—१ तोला ईसबगोलकी भूसीकी आधसेर गोदुग्धमें खीर बनाकर उसमें १ छटाँक मिश्री मिलावे। इस खीरके साथ देवे। या शहद, मलाई या मक्खनके साथ देकर ऊपरसे खीर खिलावें। २१ दिनमें प्रमेह दूर होता है। क्षुधा लगने पर भोजन

करें; चाहे प्रातःकाल भोजन छोड़दें, मात्र शामको ही भोजन करें। अथवा रौप्य भस्म और शिलाजीतके साथ शहद मिलाकर देवें। ऊपर आँवले का स्वरस या हिम पिलावे।

उपयोग—यह भस्म नेत्ररोग, क्षय, गुदाके रोग, पित्त-प्रधान कास, जीर्ण प्रमेह, पाण्डु, प्लीहावृद्धि, यकृति-वृद्धि, धातुक्षीणता, अपस्मार, हिस्टीरिया और वातपित्त-प्रधान विकारोंको दूर करती है। मूत्रपिण्डोंका शोधन कर उन्हें शुद्ध और बलवान बनाती है। उपदंश अथवा सुजाक हो जानेके पश्चात् अंडकोष और वातवाहिनी नाड़ियाँ अथवा अन्य स्रोतस संकुचित होकर नपुन्सकता आई हो, तो रौप्य भस्म उत्तम औषध है। यह भस्म वातको शमन करती है। मांस-पेशियों और रक्तवाहिनियोंको बृंहण करती है, एवं आयु, वीर्य, बुद्धि और कान्तिको बढ़ाती है।

रौप्य भस्म मधुर विपाक वाली, कषाय और अम्ल रसात्मक, शीतल, सारक, लेखन, रुचिप्रद और स्निग्ध हैं। बृंहण गुण युक्त होने से वातप्रकोपका शमन करती है। यह शमन कार्य कलायखंज और पक्षाघातकी जीर्णावस्थामें अत्यन्त उत्तम प्रकारका देखनेमें आता है। रक्तवाहिनी-गतवातप्रकोप होने पर शूल, रक्तवाहिनियोंका संकोच, रक्त-वाहिनी मोटी-सी होना तथा अन्तरायाम, बहिरायाम, खल्ली, कौब्ज आदि वातरोग उत्पन्न होते है। इस वातकोपका शमन रौप्य भस्मके सेवनसे उत्तम होता है। केवल वातप्रकोप हो, तो रौप्य भस्मसे लाभ होता है। किन्तु वात प्रकोपके साथ यदि आमानुबन्ध हो, तो रौप्य भस्मकी अपेक्षा योगराज गूगलका उपयोग विशेष हितकर है। यह अन्तर आयुर्वेदकी दृष्टिसे अति महत्वका है।

जैसे ताम्रका प्रभाव यकृत्, प्लीहा आदि इन्द्रियोंमें रहे हुए दोष और धातु पर स्पष्ट दीखता है, वैसे ही रौप्य भस्म मूत्रपिण्ड, मस्तिष्क, वातवाहिनियों और वातदोष पर शामक प्रभाव दर्शाती है।

अति श्रम, अति वाचन, अति जागरण, मनन, शोक, भय, आदिका अतियोग होनेसे वातवृद्धि होती है तथा मस्तिष्ककी शक्ति भी क्षीण होती है। इन हेतुओंसे थकावट, बेहोशी समान भासना, चक्कर आना इत्यादि लक्षण होते हो, तो रौप्य भस्मका अच्छा उपयोग होता है। इन कारणोंसे उत्पन्न शिरदर्द और मस्तिष्कमें शूल चलने पर भी रौप्य भस्म लाभदायक है। वेदना कुछ काल तक तीव्र और कुछ काल तक मर्यादामें हो उस पर रौप्यका उपयोग होता है।

परन्तु यदि उक्त स्थितिमें पित्ताधिक्य हो, पित्त प्रकुपित हुआ हो, तो मुक्तापिष्टीका उपयोग करना चाहिये। अर्थात् वाताधिक्य उपद्रवोंमें रौप्य और पित्ताधिक्यमें मुक्ता देना चाहिये। एवं ये लक्षण अस्राभिनोदन (रक्तके दवाव) की वृद्धि होनेसे हुए हो, तो शिलाजीत का ही उपयोग विशेष हितकर है। शिलाजीतके साथ आरग्वधादि क्वाथके समान सौम्य विरेचन ओषधि भी देनी चाहिये।

रौप्यके उपयोगसे वातवाहिनियोंका क्षोभ शमन होता है; जिससे अपस्मार, उन्माद और विशेषतः आक्षेपककी तीव्रावस्थामें रौप्य लाभदायक है। स्त्रियोंके भूतोन्मादमें यदि वातप्रधान लक्षण ज्यादा हो, तो रौप्य भस्म उसे भी शमन करती है।

वातप्रधान और वातपित्तप्रधान नेत्ररोगमें रौप्य भस्मका सेवन गुणदायक है। शोक, क्रोध, श्रम या सूर्यके तापका अतियोग होनेसे दृष्टिकी विकृति हुई हो, तो ऐसे रोगियोंके लिये मात्र रौप्य भस्म ही एक ओषधि है। नेत्ररोगमें हरतालमारित रौप्य भस्मकी अपेक्षा सुवर्णमाक्षिक और गन्धकके मिश्रणसे या वनौषधिसे बनी हुई रौप्य भस्म विशेष लाभदायक है।

क्षयज विशेषतः शुक्रक्षयज व्याधिमें वंगभस्म और रौप्यभस्म, ये दो ओषधि उपयोगी हैं। यदि, शुक्रक्षयसे वातप्रकोप होकर कमर, पिण्डी आदि स्थानोंमें खिचाव या शूल अथवा सामान्य वेदना, मूत्रमार्गमें और शुक्रमार्गमें अति दाह और व्यथा आदि लक्षण हों, तो रौप्य भस्मका सेवन कराया जाता है। परन्तु शिथिलता, शक्तिपात आदि लक्षण प्रतीत होते हो, तो वंगभस्म उपकारक होती है।

कीटाणुजन्य क्षयमें सुवर्ण भस्म सर्वोत्तम ओषधि है। तथापि सर्वाङ्गमें दाह, विशेषतः नेत्र और मूत्रपिण्डमें जलन आदि लक्षण हो, तो प्रथम रौप्य भस्म दाहशमनार्थ दीजाती है। पश्चात् सुवर्ण भस्म देना हितकर है, अथवा दोनोंका मिश्रण दिया जाता है।

पित्तज, वातज और वातपित्तज अर्श रोगमें रौप्य भस्मका उपयोग किया जाता है। रक्त गिरने पर भी अर्शमें रौप्यसे अच्छा लाभ पहुँचता है। यदि अर्शके मस्से बहुत बड़े हो गये हो, तो पहले उनको निकलवा देना चाहिये। फिर रौप्य भस्म देवें। रक्तार्शमें यदि शूल, वेदना या तीव्र पीड़ा होती हो, तो रौप्य भस्मके सेवनसे इनका शमन होजाता है। यदि दाह बहुत ज्यादा हो और त्वचा भी श्याम, निस्तेज और कठोर होगई हो, तो गन्धक रसायन सेवन कराना चाहिये।

पित्तज उदर रोगमें ज्वर, बार-बार मूर्च्छा, सर्वाङ्गमें दाह, मुँहमें जलनका भास, चक्कर, अतिसार, त्वचा और उदरकी शिराएँ हरी, लाल, पीली होजाना, ज्यादा प्रस्वेद आना, साथमें त्वचामें दाह और कंठमें से धुआँ निकलनेका भास होना, उदरमें जल्दी जल भर जाना, या जलोदर होजाना इत्यादि लक्षणोंके साथ वातवाहिनियों और रक्तवाहिनियोंमें एक प्रकारकी विलक्षण व्यथा बनी रहती हो, तो रौप्य भस्मका उपयोग करना चाहिये।

अम्लपित्त व्याधिमें रौप्य भस्मका उपयोग अच्छा होता है। वातज अम्लपित्तमें मुख्यतः उदर या आमाशयकी वातवाहिनियोंमें क्षोभ उत्पन्न हुआ हो, तो रौप्य भस्मका सेवन कराना चाहिये। इस अम्लपित्त व्याधिमें थोड़े दिन तक बिल्कुल प्रकृति स्वस्थ रहती है, और थोड़े दिनमें पुनः विकार बलपूर्वक उत्पन्न होता है। ऐसे अम्लपित्त रोग में रौप्य भस्मका सेवन लाभदायक है। इसके अतिरिक्त आमाशयकी वृद्धि होकर अम्लपित्त रोग हुआ हो और उसमें वेदना तीव्र रहती हो, तो वह भी रौप्य भस्मके सेवनसे शमन होती है। परन्तु शिथिलता और इन्द्रियोंकी अशक्ति अधिक हो, तो वंगभस्मका सेवन कराना चाहिये।

वातप्रधान शुष्ककासमें रौप्य भस्म लाभ पहुँचाती है। जब शुष्ककासमें पीड़ा, रूक्षता, कंठके भीतरके भागमें भी रूक्ष त्वचा, कंठ और उपजिह्वा (घंटिका) में भी रूक्षता तथा कंठ मार्गमें छोटी-छोटी फुन्सियाँ या शोथ-सा होगया हो, तो रौप्य भस्मका सेवन हितकर है।

पाण्डु रोगमें रक्तके भीतर रक्तकणोंकी न्यूनता हो जाती है। रक्त कणोंके न्यून होनेमें मन पर आघात या मानसिक चिन्ता आदि कारण हो, अथवा वातप्रधान या वातपित्तप्रधान लक्षण प्रतीत होते हों, तो ऐसे पाण्डुरोगियोंको रौप्य भस्मका सेवन अति हितकर है।

मानसिक चिंता, शोक या अन्य वातप्रकोपक कारणोंसे अरुचि उत्पन्न हुई हो, तो रौप्य भस्मका सेवन गुणदायक है। वातप्रकोपके कारणसे जठराग्नि मन्द होने पर वातके कार्यको सुव्यवस्थित करनेके लिये एवं जठराग्निकी मन्दता दूर करनेके लिये रौप्यभस्म उपयोगी है।

शरीरके घटक धीरे-धीरे गलते जाते हों, दूषित होनेवाले अवयवोंमें दाह और शूल होता हो, उस स्थानकी त्वचा काली हो गई हो, क्वचित् ज्वर भी रहता हो, यह विकार सुजाक, प्रमेह या मधुमेहके उपद्रव रूप हो, या अन्य रोगोंके उपद्रव रूप हो और वातज या पित्तवातज दुष्टि हो, तो इस कोथ रोग (Gangrene) में

रौप्य भस्मका सेवन हितकर है। छोटी इलायची, आँवले, वंशलोचन, अमृतासत्व और शहदसे देवें अथवा चोपचिन्यादि चूर्णके साथ देवें।

यदि फिरंग (उपदंश) और पूयमेह (सुजाक) होजानेके पश्चात् अंडकोप और उसके समीपमें रही हुई वातवाहिनियाँ या अन्य स्रोतसे संकुचित होकर नपुंसकता आई हो, तो रौप्य भस्मके सेवनसे वातवाहिनियोंका संकोच दूर होकर अंडकोपमें रक्त आदि धातु आवश्यक परिमाणमें पहुँच जाती है और नपुंसकता दूर हो जाती है।

रौप्य-भस्म वल्य गुणके लिये भी उपयोगमें आती है। जब स्रोतसोंका संकोच हो जानेसे रक्त आदि धातुओंका परिभ्रमण व्यवस्थित रूपसे न होता हो, इन्द्रियोंको और बाह्य अवयवोंको थोड़े-थोड़े श्रमसे थकावट आजाती हो, शक्ति क्षीण होजाती हो; तव निर्वलताको दूर करनेके लिये रौप्य भस्म उत्तम प्रकारसे कार्य करती है।

रौप्य भस्म मेध्य (बुद्धिवर्द्धक) है। बुद्धिका कार्य साधक नामक पित्तके योगसे सम्यक् होता है। इस पित्तके विकृत होनेसे बुद्धिके कार्यमें अव्यवस्था होती है। ऐसे समय पर साधक पित्तके कार्यको सुव्यवस्थित बनानेके लिये रौप्य भस्म उपयोगी है।

रौप्य भस्मका उपयोग सूतिका ज्वरमें बहुत अंशमें होता है। यदि ज्वर मर्यादामें हो, परन्तु सारे शरीरमें वेदना, भ्रम, प्रलाप आदि लक्षण ज्यादा परिमाणमें हो, तो रौप्य भस्म देना हितकारक है।

रौप्य भस्म वात और वातपित्त मिश्रित दोष, रस, मांस और अस्थियें दूष्य, तथा मूत्रपिण्ड, मस्तिष्क, वातवाहिनी नाड़ियाँ, नेत्र, मांसपेशियाँ, कफस्थान, पचनेन्द्रिय, जननेन्द्रिय, मनोदेश और बुद्धि, इन सव पर विशेप-रूपसे लाभ पहुँचाती है। (औ० गु० ध० शा०)

वात प्रकोप होकर मस्तिष्कमें दोष जाने पर चक्कर आना, नेत्रमें दाह और पुतली भीतर खिंच जायगी या ऐसी भयंकर पीड़ा होना और मस्तिष्क शूल उपस्थित होते हैं। नेत्रके ऊपर हाथोंसे दवाने पर अच्छा लगता हो, वद्धकोष्ट और अन्त्रवृद्धि न हो, तो शतावर, आँवले, नागरमोथा, और गिलोयसत्वके मिश्रणके साथ रौप्य भस्म देना चाहिये। विशेषतः यह मिश्रण भोजनके प्रारम्भमें घी और शहदसे देना विशेष हितावह है।

मधुराके दूसरे सप्ताहमें अन्त्रमें प्रदाह विशेष होने पर पतले दस्त होने लगते हैं। किसी-किसीको मधुरा दूर होने पर भी अतिसार रह जाता है। फिर आहार-विहारमें भी विशेप नहीं सम्हाले तो अधिक

भोजन करने और ज्यादा फिरते रहने पर मल-मूत्र और शुक्रको धारण करनेकी शक्ति शिथिल होजाती है। दिनमें ५-७ बार पतले दस्त लगते है और बार-बार पेशाब करना पड़ता है। शुक्र भी पतला होकर मूत्रके साथ जाता रहता है। इस विकार पर रौप्य भस्म और रस-सिंदूर मिलाकर शतावरी घृतके साथ भोजनके प्रारम्भमें दिनमें २ बार देनेसे विकृति दूर होजाती है।

कभी प्रसूताके बालककी प्रकृति अस्वस्थ होजाने पर माताको भी मानस आघात पहुँचकर उन्मादका-सा असर होजाता है। प्रलाप, रुदन, भय लगना, हाथ-पैरोंमें कम्प, निस्तेज मुखमण्डल, उदासीनता, अनिमेष दृष्टि, भोजनकी इच्छा न होना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उस पर यह रौप्य भस्म ½ रत्ती मात्रामें दिनमें ३ बार ब्राह्मी शर्बत अथवा आँवलोंके मुरब्बाके साथ देते रहने से सब विकार शमन होजाते हैं।

दूसरी विधि—पहली विधिमें लिखे अनुसार शुद्ध चाँदीके वर्क ५ तोले, शुद्ध पारद १० तोले, शुद्ध गन्धक २० तोले और शुद्ध हरताल ५ तोले मिलाकर कज्जली करें। फिर आतशी शीशीमें भर वालुकायंत्रमें रखकर तीन दिन तक अग्नि देनेसे पैदेमें चाँदीकी भस्म और गलेमें तालसिंदूर बन जाते है। नीचेसे मिली हुई चाँदीकी भस्मको जलसे धोकर गुलाबके फूलोंके रसमें खरल कर १६ इंचके खड्डेमें फूँक दे। इस तरह गुलाबके अर्कके ४ से ६ (१५ से २०) पुट देनेसे उत्तम गुलाबी रंगकी भस्म बन जायगी। (रसा० सा०)

मात्रा और उपयोग—पहली विधिके अनुसार।

तीसरी विधि—शुद्ध चाँदी ३६ तोलेके पतले पतरेको कतर-कतर कर छोटे-छोटे टुकड़े बनावें। पश्चात् एक चीनी मिट्टीके प्यालेमें २० तोले शोरेके तिजाव (Nitric Acid) के साथ मिलाकर जलती हुई अँगीठी पर रक्खे और लकड़ीसे चलाते रहें। धुआँ न लगे, इस बातका ध्यान रक्खे। लगभग आध घण्टेमें सफेद भस्म होजायगी। पश्चात् भस्मको ४-६ बार जलसे धोकर १२ वाँ हिस्सा (३ तोले) हरताल मिलाकर घीकुँवारके रसमें खरल कर टिकिया बनावे। फिर सुखाकर मजबूत सराव-संपुट कर ५ सेर कंडोकी अग्नि दें। पुनः-पुनः हरताल मिलाकर ५-५ सेर कंडोंके १० पुट दें। अन्तमें घीकुँवारके रसमें खरल करके ३ गजपुट अग्नि देनेसे उत्तम प्रकारकी भस्म तैयार होती है।

मात्रा और उपयोग—पहली विधिके अनुसार।

सूचना—गन्धकके तिजाबसे भी चाँदीकी कलमे होजाती हैं। उसकी भी ऊपर लिखी विधिसे भस्म बन सकती है; परन्तु तिजाबके संसर्गसे भस्म कुछ न्यून गुणवाली होती है।

(३) ताम्र भस्म।

बनावट—शोधन प्रकरणमें लिखे अनुसार अच्छी रीति से शुद्ध किये हुए ताँबेको कूटकर बारीक चूर्ण करें। फिर चौथा हिस्सा शुद्ध पारद मिलाकर तीन घण्टे नीबूके रसमें खरल करें। पश्चात् ताँबेके वजनसे दुगुनी शुद्ध गन्धककी नीबूके रसमें घुटाई करें। उसमें इस पारदयुक्त ताँबेके चूर्णको मिलाकर गोला बनावें। पश्चात् मीनाक्षी (मछेछी), खट्टा चूका (चाँगेरी) अथवा सोंठीको पीसकर चटनी बनावें। इस चटनीका ताँबेके गोले पर दो-दो अंगुल मोटा लेप करें। फिर गोलेको हाँडीमें रख, ऊपर रेत भर, मुँह पर ढक्कन ढककर राख और नमकसे संधि बन्द करें। तत्पश्चात् चूल्हे पर चढ़ाकर बारह घण्टे तक आँच दें। पहले मन्द, पीछे कुछ तेज अन्तमें खूब तेज करें। १२ घण्टे बाद स्वाग शीतल होने पर हाँडीको खोल, सम्हाल कर रेत और कल्क की राखको दूर कर, ताँबेकी भस्मके गोलेको निकालें। ६ घण्टे सूरण (जमीकन्द) के रसमें खरल कर गोला बना सूरणके भीतर रख, कपड़मिट्टी कर गजपुटमें आँच देनेसे उत्तम प्रकारकी (मोरके कंठके रंग जैसी) नील ताम्रभस्म बन जाती है। कदाचित् सूरण न मिले तो नीबूके रसमें ही गोला बनाकर फूँक देवें। (भावप्रकाश)

मात्रा—¼ से ½ रत्ती दिनमें २ बार शहद, पीपल-शहद, पुनर्नवा-क्वाथ, अनारदानेका स्वरस, नीबूका रस, दही, कुमार्यासव, शिलाजीत या रोगानुसार अनुपानसे देवें।

अनुपान—१. कफप्रधान सन्निपात पर—अदरखके रस और मिर्च के साथ।

२. हिचकी पर—नीबूका रस या १ रत्ती काकड़ासिंगी और २ रत्ती पीपलके चूर्णके साथ मिलाकर शहदमें दें।

३. आम संग्रहणी पर—सोंठके चूर्ण और घृतके साथ।

४. आमातिसार पर—आँवलेका चूर्ण २ माशे और पीपल ३ रत्तीके साथ। या सोंठके चूर्ण और मट्ठेके साथ।

५. कफ-प्रमेह पर—गूलरके फलके चूर्णके साथ।

६. यकृत्-दाह पर—मीठे अनारके रसके साथ।

७. अग्निमान्द्य पर—पीपल और शहद या हल्दीके साथ खिलाकर ऊपर अदरखका रस पिलावें।

८. जलोदरमें—शहदके साथ चटाकर ऊपर चित्रकमूलका क्वाथ, कॉंजी या हल्दीका क्वाथ पिलावें।

९. गुल्म पर—अदरख या नागरबेलके पानके रस अथवा कुमार्यासव के साथ दें।

१० गुल्म, वातज शूल और विसूचिकामें—त्रिकटु और पंचलवणके चूर्णके साथ। अथवा १/१६ रत्ती वच्छनाग और ४ रत्ती त्रिकटुके साथ देवें।

११ औदुम्बर कुष्ट पर—ताम्र भस्म, अपामार्गका क्षार, सज्जीखार और जवाखार, चारोंको समभाग मिलाकर २-२ रत्ती दिनमें ३ बार शीतल जलके साथ ४९ दिन तक दें। कुष्ठरोगी उडद, मछली और दूध, दाह करने वाली वस्तुएँ तथा पक्के भोजनका त्याग करें।

१२. विषम ज्वर (एकाहिक, द्वयाहिक, तृतीयक, और चातुर्थिक) पर—ताम्र भस्म ½ रत्ती और शुद्ध वच्छनाग १ चावल मिला कर शहद के साथ देवें या ताम्र भस्म कालीमिर्च और तुलसीके रसके साथ देवें।

१३ शूल पर—ताम्र भस्म और रससिंदूरको अदरखके रस और शहद में दें। कृमिजन्य शूल हो, तो ऊपरसे शक्कर मिला तुलसीका क्वाथ पिलावें।

१४. मलावरोध पर—शहदमें लेकर जौ या गेहूँकी भूसीका क्वाथ पीवें।

१५ त्रिदोषज भगंदर और व्रण पर—घृत और शहदके साथ।

१६. अम्लपित्तमें—शक्कर या शहदके साथ देकर मुनक्का और हरड़ १-१ तोलेका क्वाथ पिलावें जिससे २-३ दस्त आजायँ।

१७ सब प्रकारके कुष्ट, शीतपित्त, उदर्द, खाज, तीक्ष्ण पीड़ा सहित कफप्रधान शोथ और कोष्ट (त्वचा पर काले धब्बे) पर—बावची का चूर्ण शहदके साथ।

१८. मूर्च्छा रोगमें—खस और केशरके साथ देकर शीतल जल पिलावें अथवा घृतके साथ दिनमें ३ बार देकर जवासाका क्वाथ पिलावें।

१९. मूत्रकृच्छ्रमें—इलायची, भॉंग और शहदके साथ।

२०. तीव्र वातज शूल, गुल्म और अपचन पर—भुनी हींग, त्रिकटु, मुलहठी, काला नमक और इमलीका क्षार, सब एक-एक रत्तीके साथ मिलाकर निवाये जलसे देवें।

२१. वातज प्रमेह पर—गिलोय सत्त्व, मिश्री और शहदसे।
२२. प्लीहोदर, यकृतोदर, पित्तज शोथ और परिणामशूल पर—कुमार्यासव, शहद-पीपल या पुनर्नवादि क्वाथसे।
२३ सब प्रकारके शूल पर—ताम्र ½ रत्ती, शुद्ध गन्धक १ रत्ती और इमलीका क्षार १ माशा मिला गोघृतके साथ चटाकर ऊपर निवाया जल पिलावे।
२४. पित्ताश्मरी पर—करेलेके पत्तोंके रसके साथ।
२५. हृदय, यकृत और मूत्रपिण्डकी विकृति पर—पुनर्नवादि क्वाथ के साथ।

उपयोग—उदररोग, प्रमेह, अजीर्ण, ज्वर, सन्निपात, कफोदर, प्लीहोदर, यकृद्विकार, परिणामशूल, दाह, हिचकी, आफरा, अतिसार, संग्रहणी, पाण्डु मांसार्बुद (कर्कस्फोट-Cancers and tumours) इत्यादि रोगोंको ताम्र भस्म नष्ट करती है।

ताम्र भस्मका मुख्य कार्य शरीरके अनेक प्रकारके पिण्डोंकी वृद्धि होने पर, उनको कम कर पिण्डोंको सुदृढ़ बनानेका है। इनमें भी विशेषतः यकृत् और प्लीहाकी वृद्धि होनेपर इसका अच्छा उपयोग होता है। इसके सेवनसे बढ़े हुए घटक झरने लगते हैं; और मृतप्राय घटकोंके सजीव घटकोंसे पृथक् होनेमें यह सहायता पहुँचाती हैं। इनके सेवन करने पर इसे यकृत् और इसके अन्य अवयवोंमें जाना पड़ता है। यकृत्में भी विशेषतः पित्ताशय पर उपयोग होता है। पित्ताशय संकुचित हुआ हो या पित्त अधिक गाढा होगया हो, या पित्ताशयके भीतरके भागमें विकृति हुई हो, इनमेंसे किसीभी कारणसे उदरमें व्यथा होती हो, तो इसका सेवन कराना अति लाभदायक है। ताम्रके योगसे यकृत्-पित्तका स्राव होकर उसमें नियमितता आजाती है। यदि पित्ताशयमें यकृत-पित्तके कण या अश्मरी जम जानेके हेतुसे उदरमें व्यथा होती हो, तो वह इस भस्मके सेवनसे दूर होती है। इस भस्मका सेवन करेले के पत्तोंके रसके साथ करनेसे पित्तके जमे हुए कंकड़ (पित्ताश्मरी) धीरे-धीरे टूटने लगते है और उदर-व्यथा शमन होती है। यकृत्के अनेक विकारोंमें विशेषतः यकृत्के घटकोंकी वृद्धि होने पर इस भस्मका उपयोग करना चाहिये।

प्लीहावृद्धिमें ताम्र भस्मका सेवन अति लाभदायक है। गुल्म तथा अष्ठीला आदि विकारोंमें गाँठका द्रावण करनेके लिये ताम्र भस्मका उपयोग होता है। गुल्म पर ताम्रका उपयोग कुमार्यासव या अन्य

सारक वा सूक्ष्म रेचक ओषधिके साथ करना लाभदायक है। एवं आमाशयमें उत्पन्न हुए कर्कस्फोटमें भी यह हितकारक है। मांसावुर्दमें यदि वात-प्रधान अथवा कफ-प्रधान दोष हो, तो ताम्र भस्म देनी चाहिये, और यदि पित्तप्रधान्य दोष ग्रन्थिमें लीन हुआ हो, तो वंग भस्म देनी चाहिये। ताम्र भस्म देनेसे दोपका स्राव होता है। किन्तु रक्तस्राव होता हो, तो ताम्रभस्म नहीं देनी चाहिये। (ऐसे समय पर वंगभस्म ही दी जाती है।)

साधारणतः उदर रोगकी उत्पत्ति हृदय, यकृत् और मूत्रपिण्ड (गुरदा), इन तीन स्थानोंमें विकृति होने पर होती है। इन स्थानोकी कफ-प्रधान या कफवात प्रधान विकृतिको दूर करनेके लिये ताम्र भस्म दीजाती है। परन्तु ताम्रभस्ममें स्वभावतः मूत्रल गुण नहीं है। अर्थात् जलोदर जैसे रोगमें संचित् जलको शरीरसे वाहर निकालनेमें ताम्र भस्मका साक्षात् उपयोग नहीं होता। इसलिये ताम्र भस्म पुनर्नवा या अन्य मूत्रल ओपधालयोके साथ दी जाती है।

विशेपतः ताम्र भस्मके साथ शामक (Sedative), मूत्रल एवं विरेचक ओपधि देकर संचित जलको वाहर निकालनेका प्रयत्न करना चाहिये। कतिपय समय पित्तप्रधान प्रकृति वालोको ताम्रभस्म से ही विरेचन होजाता है। ताम्र भस्मसे यदि विरेचन होते है, तो पित्तवृद्धि होकर या पित्तमें तीक्ष्णता आदि गुण वढ़ करके होते हैं। अतः पित्त अच्छी रीतिसे निकालने और पतले जल जैसे विरेचन होनेके लिये अमलतासकी फलीका गूदा या कुटकीके समान विरेचन ओपधि का अनुपान देना चाहिये।

ताम्र भस्मके सेवनसे रक्तका दवाव वढ़ता है, जिससे अनेकोंके कंठ या नाकमेंसे रक्त गिरने लगता है। इसी हेतुसे मूत्रपिण्ड विकृतिसे होने वाले जलोदर ताम्र भस्मसे मूत्रपिण्डका शोथ वढ़ने लगता है। मूत्रोत्सर्ग क्रिया कम होती है फिर उदरमें जलका संचय अधिक होता है। इसलिये ऐसे समय पर इस भस्मका उपयोग नहीं करना चाहिये। केवल मूत्रपिण्डके पूयवृक्क (गुरदेमेंसे पीप निकलना) विकारमें ताम्रभस्मके उपयोगसे पूयकी कमी होती है और शनैःशनैः मूत्रपिण्ड पूर्वस्थितिमें आजाता है। अतः इस रोगमें इस भस्मका प्रयोग वहुत कम मात्रामें करना चाहिये। हो सके, तव तक वृक्कके रोगोंमें इसका उपयोग न करना ही अच्छा माना जाता है। उदर रोगोमें यकृतोदर,

कफोदर, प्लीहोदर इत्यादिमें कफप्रधान या कफवातप्रधान दुष्टी हो, तो ताम्र भस्मका उपयोग अच्छी रीतिसे हो सकता है।

विसूचिका में अनेक दस्त होजाने पर हाथ-पैरकी नाड़ियोंमें अति खिचाव होने लगता है, और पिण्डियोंमें भयंकर पीड़ा होती है। वह ताम्रके सेवनसे तुरन्त दूर होती है ऐसे समय पर $\frac{1}{2}$ रत्ती ताम्र भस्मका प्रयोग आध-आध घण्टे पर करना चाहिये। यदि साथ-साथ वमन, शूल, भ्रम, ये लक्षण हो, तो वे भी इस योगसे कम होजाते है। नाड़ियोंका खिचाव दूर होने पर सुवर्णमाक्षिक भस्म, शंख भस्म, काम-दूधारस आदि वमननिवारक ओषधियाँ देनी चाहिये।

ताम्र भस्मका उपयोग अम्लपित्त व्याधिमें होता है। मात्र वमन बिल्कुल थोड़े परिमाणमें अतिशय गरम जलती हुई पित्तकी होती हो, चक्कर, उदर-पीड़ा, ये उपद्रव अति बलिष्ठ और अति त्रासदायक हो, तो ताम्र भस्मका उपयोग हितकर है। यदि अम्लपित्तमें बड़ी-बड़ी वमन, और अकस्मात् होती हो, तो सुवर्णमाक्षिक देनी चाहिये। वमन कड़वी, खट्टी और मीठी हो, एवं पित्तका संचय अधिक हुआ हो, तो सुवर्ण, माक्षिक भस्म दीजाती है। ताम्र भस्मका सेवन करानेसे अम्लपित्तके पित्तका स्राव कम, परन्तु पित्तकी तीव्रता, तीक्ष्णता और उग्रता अत्यधिक होनी चाहिये। स्मरण रहे कि, पित्तस्राव करानेके लिये ही ताम्र भस्म दीजाती है। यह एक प्रकारकी पित्तस्राव कराने वाली विरेचक ओषधि है। इसका उपयोग सम्हाल कर करना चाहिये, और इसके साथ घृत आदि स्नेह देना चाहिये। यकृत् पित्तका स्राव कम होने पर एक प्रकारका अतिसार (श्वेत वर्णका मल) होजाता है। उसमें ताम्र भस्मका सेवन हितकारक है।

मदोत्पादक (Delıriant) विष या कृत्रिम विष (गर) जो मदोत्पादक हो, या सेन्द्रिय विष उदरमें आजाय, तो उसका संशोधन करनेके लिये ताम्र भस्मका सेवन हितकर है। सेन्द्रिय विषसे यदि मद उत्पन्न होता हो, तो भी ताम्र भस्मका सेवन हितकर है। कफप्रधान दोषोंमें ताम्र भस्मसे आमाशय और पक्वाशयका संशोधन उत्तम प्रकार से होजाता है। इसलिये कफप्रधान विकृतिमें शोधन आवश्यक होने पर ताम्र भस्मका उपयोग करना चाहिये।

अन्नद्रवशूल किंवा अन्य कोष्ठशूलमें अष्ठीला आदि उदरगत ग्रन्थि बढी हो, या उदरगत ग्रन्थि शूलका कारण हो, तो ताम्र भस्म

देनी चाहिये। इसके सेवनसे कठिन और उन्नत ग्रन्थि शनैः शनैः छोटी हो जाती है।

पाण्डु रोगमें प्लीहा और यकृत्, इन दोनोकी अथवा इन दोनोंमें से एककी वृद्धि होने पर ताम्र भस्मकी योजना करनी चाहिये। पाण्डु-वर्णकी अपेक्षा निस्तेजता अधिक हो, त्वचा चिकनीसी भासती हो, मुंह पर शोथका भास होता हो, और मुखका वर्ण श्वेत होगया हो, समस्त शरीरमें थोड़ा थोड़ा शोथ, इनमें भी यकृत् प्लीहा विकृति कारण हो, तथा पित्त क्षीण हो और कफ वृद्धि हो, तो ताम्रभस्म देनी चाहिये।

कफज गुल्म अथवा अष्ठीलाकी वृद्धि बहुत जल्दी होगई हो, तो ताम्रभस्मका उपयोग करना चाहिये।

मांस खानेवालेको होनेवाले प्रमेह रोगमें अन्य ओषधियोंकी अपेक्षा ताम्र भस्म विशेष हितकर है। ताम्र भस्मके योगसे मांस-घटकों को पचानेके लिये उपयोगी पित्तकी उत्पत्ति होती है। इस तरह ताम्र-भस्मका उपयोग प्रमेह रोगमें भी होता है।

ग्रहणी विकारमें पित्तकी उत्पत्ति कम होती है, और जो उत्पन्न होता है, उसमें भी तीक्ष्णत्व कम होनेसे निर्बल होता है। ऐसी अवस्थामें बाजरीका आटा जलमें मिलाने समान सफेद मैले रंगका और लसदार दस्त होता है, दस्तमें दुर्गन्ध आती है, उबाक आती है, कभी वमन होती है, वह भी लसदार, फीकी और दुर्गन्धवाली, ऐसे विकारमें ताम्रभस्मका प्रयोग बहुत अच्छा होता है।

लौकिक व्यवहार में ताम्रभस्म नपुंसकतानाशक मानी गई है, परन्तु ऐसा गुण अनुभवमें नहीं आता।

ताम्रभस्मका कार्य—ताम्रभस्म कफ दोष, रस, रक्त, मांस, ये दूष्य, तथा यकृत, प्लीहा, ग्रहणी, पक्वाशय, बृहदन्त्र और कोष्ठग्रन्थि पर लाभ पहुँचाती है। इसके सेवनसे पित्तस्राव अधिक होता है। पित्तमें तीक्ष्ण और उष्ण गुण बढते हैं। रक्ताभिसरण क्रिया जोरसे होने लगती है। रक्तस्राव ज्यादा होता है। यह कफ-दोष पर अधिक उपयुक्त कार्य करती है। (औ० गु० ध० शा०)

किसी कारणवश रक्तमें विकार होकर मांसग्रन्थियां उत्पन्न होती है। ये ग्रन्थियां भिन्न-भिन्न स्थानोंमें हाथ, पैर, मस्तिष्क, उदर आदि पर हो जाती है। 'ये दुखती नहीं है, किन्तु धीरे-धीरे बढ़ती जाती हैं और नयी-नयी उत्पन्न होती रहती है। इन ग्रन्थियोंके नाश और नयी उत्पत्ति को रोकनेके लिये ताम्रभस्म अर्कक्षीर चूर्ण (आक के

दुग्धको वाष्प पर सुखाकर किये हुए चूर्ण) ४-४ रत्तीके साथ दिनमें ३ चार शहद में मिलाकर देते रहने और वाहर वच्छनाग ३ माशे, वच और राई १-१ माशे तथा कपूर ५ रत्तीके चूर्णको गोंदके जलमें मिलाकर लेप करते रहनेसे १-२ मासमें ग्रन्थि नष्ट हो जाती हैं ।

सूचना—ताम्रभस्म अत्यन्त उग्र, तीक्ष्ण, उष्ण, भेदी और पित्तस्रावी है । अतः इसका प्रयोग अति सम्हालकर करना चाहिये । क्वचित् इसके सेवनमें पित्तस्राव अधिक होकर अतिसार होजाय, तो भय मानकर उसे बन्द न करें ।

ताम्रभस्म निरुत्थ ही उपयोगमें लेनी चाहिये । कच्ची भस्मका उपयोग कदापि नहीं करना चाहिये । कच्ची भस्मके सेवनसे भ्रम, प्रलाप, वमन, क्वचित्, ज्वर, अतिसार, शूल, और रक्तस्राव आदि विकार उत्पन्न होते हैं । यदि उग्रतादि दोषोंके हेतुसे उत्पन्न विकारोंको शमन करनेके लिये आवश्यकता हो, तो मुक्तापिष्टी अति लाभदायक है ।

ताम्रभस्म सेवन कालमें मिर्च आदि चरपरी वस्तुएँ, तेल, खटाई, सम्पूर्ण पित्तवर्द्धक वस्तुएँ, अग्निसेवन, सूर्यके तापमें घूमना और रोगविरुद्ध अपथ्य भोजन इत्यादिका त्याग करें । एव बालक, वृद्ध, क्षयरोगी, सूतिका, गर्भिणी, रक्तार्श रोगी और मूत्रपिण्डके सूजनयुक्त उदर रोगीको ताम्रभस्म न दें ।

ताम्रभस्मकी परीक्षा—थोड़ेसे दहीमें ताम्रभस्म मिलाकर कॉच की शीशीमें १२ घण्टे रहने दें । फिर दहीके रंगमें नीलापन दीखे, तो भस्मको दोष वाली समझकर, सूरण अथवा अन्य औषधके रसमें खरल करके पुनः गजपुट देना चाहिये ।

ताम्रभस्म सूर्यकी किरणों द्वारा देखनेसे चन्द्रिकारहित मालूम होने पर पूर्णपक्व जाने । चंद्रिका हो, तो और २-२ पुट देवें । सदोष भस्मसे वमन, रक्तविकार, कुष्ठ आदि विविध विकार होते है ।

दूसरी विधि—नीलाथोथा एक सेर ले बारीक पीसकर एक लोहेकी कड़ाहीमें डालें। फिर उसे वथुवेके रसमें भिगो देवें । २४ घण्टे वाद रसको निकाल ताम्र खुरचकर निकाल लेवें । फिर नीलाथोथा और रस जो निकला है उसे पुनः कड़ाहीमें डाल साथमें वथुवेका और रस मिला देवें, २४ घण्टे वाद फिर निकाले । इस तरह ३ ४ वार करें । प्रायः एक सेर नीलाथोथामेंसे आध पाव ताम्र निकलता है । फिर ताम्रको खरलमें नीबूके रसके साथ ३ घण्टे तक घोटकर धो लेवें । पश्चात् आकके दूधमें खरलकर टिकिया बनाकर सुखाले । टिकियाको थूहर के डडेमें रख, कपड़मिट्टी कर गजपुटमें फूंक दें । पश्चात् भस्म को निकाल, वनगोभीके रसमें खरलकर टिकिया बनावे, और उसकी

लुगदीमें रख कपड़-मिट्टी कर गजपुटमें फूँक देनेसे ताम्र भस्म मैले सफेद रंगकी हो जाती है। (धन्वन्तरि)

या वथुवेके समान नीलेथोथेको ४ गुने त्रिफलाके साथ १६ गुने जलमें भिगोकर ४० दिन तक तेज सूर्यके तापमें रख देवे। जल घट जाने पर पुनः मिलाये। पश्चात् जलको स्याही रूपसे कार्यमें लेवें, और कड़ाहीमें लगे हुए ताम्रकी भस्म वना लेवे।

मात्रा और उपयोग—पहली विधिके अनुसार।

तीसरी विधि—शुद्ध ताम्र चूर्ण, शुद्ध पारद और शुद्ध गंधक, तीनो २०-२० तोले, शुद्ध हरताल १० तोले और शुद्ध मैनसिल ५ तोले लें। पहले ताम्र और पारदको नीवूके रसके साथ खरल करे। ताम्र चूर्णके श्वेत वनने पर जलसे धो गंधक मिलाकर कज्जली करे। पश्चात् हरताल और मैनसिलको मिलाकर खरल करे। फिर सरावमें भर कर मजवूत कपड़मिट्टी करे। इस संपुटको धूपमें सुखा वालुकायन्त्र में रख, मुँहको अच्छी तरह वन्दकर चूल्हेपर चढाकर १२ घण्टे अग्नि दे। स्वांग शीतल होने पर यन्त्रमेंसे संपुटको निकाले। पश्चात् सम्हाल कर भस्मके गोलेको निकाल कर खरल करलें। इस भस्मको 'सोमनाथी ताम्रभस्म' कहते हैं। (र० र० स०)

मात्रा—½ से १ रत्ती दिनमें २ वार शहद-पीपल, जवाखार और घृत अथवा अदरखके रसके साथ दें।

गुण—यह भस्म, परिणामशूल, कास, श्वास, मन्दाग्नि, गुदाके रोग, अनक प्रकारके पाण्डु, प्लीहावृद्धि, उरःक्षत, मलमूत्रावरोध, उदर-रोग वातरक्त और कफप्रधान रोगोको नष्ट करती है। शेष गुण प्रथम विधिके अनुसार है।

सूचना—इस भस्मका उपयोग परीक्षा करके करें। सदोष हो, तो फिर से पचन करें।

(४) लोह भस्म।

प्रथम विधि—शुद्ध लोह चूर्ण (या १० पुटी लोह भस्म) २० तोले, सफेद संखिया, तवकिया हरताल, शुद्ध गन्धक और शुद्ध पारद, प्रत्येक ४-४ तोले और शुद्ध कपूर २ तोले लें। पहले लोह चूर्ण या लोह भस्मके साथ सोमल १ तोले और कपूर १॥ माशे मिला घी-से कुँवारके रसमें ३ घण्टे खरल कर, दो-दो तोलेकी टिकिया वाँध तेज धूपमें सुखावें। पश्चात् मिट्टीके कूँजेमें वन्द कर ५ सेर गोमें की आँच दे। दूसरी वार उसी लोहमें हरताल १ तोला और कार

१॥ माशा मिला घीकुँवारके रसमें ३ घण्टे तक खरल कर ४ सेर कण्डों में फूंक देवें। तीसरी बार गन्धक १ तोला और कर्पूर १॥ माशा मिला, घीकुँवारके रसमें खरल कर टिकिया बांधकर उपरोक्त प्रकारसे आंच दें। चौथी बार पारद १ तोला और कर्पूर १॥ माशा मिलाकर उपरोक्त रीतिसे खरल करके आंच दें। इसी क्रमसे १६ बार आंच दें। फिर भस्मको लोहेकी कड़ाहीमें डाल, समभाग शोरा मिलाकर नीचे मन्द-मन्द आंच दें और हिलाते रहें। जब शोरा जल जाय, तब भस्मको लोहेके तवेसे ढक दें, और ३ घण्टे तक तीव्र अग्नि दें। स्वांग शीतल होने पर निकाल लें। यह लोहभस्म अति मुलायम खील होजाती है। इस भस्मको अनेक चिकित्सकोंने वारितर लोहभस्म नाम भी दिया है। (र० त०)

सूचना—१६ पुटके स्थानमें ६४ पुट दिये जायँ, तो भस्म विशेष लाभदायक बनती है।

मात्रा—४ चावलसे एक रत्ती तक रोज सुबह ४० दिन तक मक्खन अथवा मलाईमें लपेटकर खावें, ऊपर मिश्री मिला दूध पीवें। अथवा लोह भस्म, पूर्ण चन्द्रोदय रस (या रससिन्दूर) और वृद्धदारु चूर्ण मिलाकर मिश्री मिले दूधके साथ दिनमें दो बार देवें। या लोह भस्म, शुद्ध कुचलेके चूर्ण १ रत्ती और अश्वगन्धादि चूर्ण २ माशेके साथ मिलाकर दूधके साथ देवें।

उपयोग—यह लोहभस्म नपुंसकता, शीघ्रपतन, स्वप्नदोष, मूत्रदोष, पांडु और शारीरिक निर्बलताको दूर करनेमें अकसीर है।

लोह भस्मका प्रभाव रक्तपर सत्वर पहुंचता है, जिससे पाण्डु रोगादि अनेक व्याधियां दूर हो जाती हैं। परन्तु इस भस्मने भावना ऐसे उग्र द्रव्योंकी दी गई है, कि यह भस्म रक्ताभिसरण क्रिया में शिथिलताजन्य या शुक्रोत्पादक कोषोंकी निर्बलताके हेतुसे नपुंसकता आई हो, विशेष तो लाभदायक होती है। यह भस्म अण्डकोष वीर्यस्थान, शुक्रवाहिनियों और अन्य नसोंको कुछ उत्तेजना देती है।

लोह भस्मके गुणोंका विशेष विवेचन दूसरी विधिके साथ किया है। वह इस भस्मके लिये भी समझ लेना चाहिये।

त शास्त्रकारोंने लोह भस्मके विवेचनमें लिखा है कि:—

पर "आयुःप्रदाता बलवीर्य्यकर्त्ता रोगापहर्त्ता मदनस्य कर्त्ता।
थूह :ः समानं न हि किञ्चिदस्ति रसायनं श्रेष्ठतमं नराणाम् ॥"
को ।

लोहभस्म आयुवर्द्धक, बल और वीर्यको बढानेवाली, रोगोंका नाश करनेवाली और कामोत्तेजक गुणवाली है। इस लोहभस्मके समान उत्तम रसायन रूप अन्य एक भी औषधि मनुष्योंके लिये नहीं है।

अपथ्य—लोहभस्म अथवा लोहभस्म-मिश्रित औषधि सेवनकाल में तिलका तैल, उड़दके बने हुए पदार्थ, राई, शराब, खट्टे पदार्थ, अनूप देशके जीवोंका मांस, ककारपूर्वक द्रव्य (कूष्माण्ड, ककड़ी, कलिङ्ग अर्थात् तरबूज, करोंदा, कशेरू करीर, ककोड़ा, कर्कन्धु अर्थात् छोटे बेर, कांजी, कुलथी, कड़वा तैल, करेला, कैथ, कासल शाक अर्थात् नाड़ीशाक, कुक्कुट अर्थात् मुर्गेका मांस और कंगनी आदि), सूर्यके तापमें भ्रमण, मैथुन, धूम्रपान, विदाही पदार्थ, तेजमिर्च, लहशुन, प्रकृति-विरुद्ध, देश-विरुद्ध, काल-विरुद्ध, संयोगके विरुद्ध या रोगमें अपथ्य हो, ऐसे आहार-विहारका त्याग करना चाहिये,

सूचना—६४ पुटी लोहभस्मके उग्र होनेसे इसका उपयोग उष्णकालमें और अति तेज पित्तवालोंके लिये नहीं करना चाहिये। या सम्हालकर करना चाहिये। इस भस्मके सेवन करने वालोंको दूध, घृत आदि पौष्टिक पदार्थ ज्यादा मात्रामें लेने चाहिये।

दूसरी विधि—शुद्ध लोहेका बारीक चूर्ण ४८ तोला और बारहवाँ भाग सिंगरफ मिला, घीकुँआरके रसमें १२ घण्टे घुटाई कर, २-२ तोलेकी टिकियाँ बाँधकर तेज धूपमें सुखावे। फिर शरावसम्पुटमें बन्द करके गजपुटमें फूँक दे। इस तरह १२ बार गजपुट दे। बराबर सिंगरफ मिलाते जायँ। यदि लोह चूर्ण मोटा हो, तो पहले त्रिफला, गोमूत्र और केले अथवा घीकुँआरके रसके ४-६ पुट देना चाहिये। फिर सिंगरफके पुट देवे। अन्तमें जामुनकी छालके क्वाथके ३ पुट देनेसे नीले रंगकी उत्तम लोहभस्म बनती है।

मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती तक दिनमें २ बार पीपल और शहद, मक्खन-मिश्री, त्रिफला, घृत-मिश्री, मलाई या च्यवनप्राशावलेहमें मिला चाटकर ऊपरसे मिश्री मिला हुआ दूध पीवे, अथवा रोगानुसार अन्य अनुपानके साथ ले। लोह भस्ममें संग्राही गुण होनेसे मलावरोध (कब्ज) हो, तो च्यवनप्राशावलेह या त्रिफलाके साथ सेवन करना चाहिये।

अनुपान—१. प्रमेह पर—हरड़ और गोखरू २-२ माशेके चूर्ण तालमखाने ४ माशे तथा मिश्री ६ माशेके साथ दे। ऊपर शीतल कार

पिलावे। या ३ माशे त्रिफलाके चूर्णके साथ मिला, शहदके साथ देकर गिलोयका स्वरस पिलावे।

२. दारुण अश्मरी पर—शहदके साथ देवें। ऊपरसे ४ तोले गोखरूका क्वाथ पिलावे।

३. कफयुक्त श्वास—रससिंदूर-मिश्री या त्रिकटु-शहदसे।

४. जीर्णज्वरमें—शहद और पीपलके साथ।

५ वातवृद्धिमें—लहसुन और घृतके साथ।

६. पित्तज्वरमें—शहदके साथ।

७. कफपित्तज्वरमें—अदरखके रसके साथ।

८. पाण्डु पर—लोहभस्मको ७ दिन तक गोमूत्रमें खरल कर ३-३ रत्ती दिनमें २ वार दूधके साथ देना चाहिये।

९. मंडलकुष्ठ, पामा और खुजली पर—आँवला, शक्कर और नीम पंचांगके साथ २१ दिन ३-३ रत्ती दिनमें २ वार।

१० उदावर्त्तमें—शक्करके साथ।

११ सर्वाङ्गशूलमें—शम्बूक भस्म और शक्करके साथ देकर ऊपर निवाया जल पिलावे।

१२ श्वास और हिक्का पर—कचूर, पुष्करमूल और आँवलोका चूर्ण २ माशे, लोहभस्म २ रत्ती और शहद ६ माशे दें।

१३. उदरशूल पर—गोमूत्रमें पकाई हुई छोटी हरड़का चूर्ण और गुड़के साथ दे। ऊपर निवाया जल पिलावे।

१४ ८० प्रकारके वात पर—निर्गुण्डीके रस के साथ।

१५ कफवृद्धिमें—शहद-पीपल या कज्जली और शहदके साथ।

१६ पित्त रोगमें—दालचीनी, इलायची और तेजपातके साथ।

१७ रक्तपित्त पर—चातुर्जात और मिश्रीके साथ, या आँवला, पीपल और मिश्रीके साथ मिलाकर अदरखके रसमें दे।

१८. पाण्डु और हलीमक पर—पुनर्नवाके रसमें या नागरमोथाके चूर्णके साथ देकर खैरकी छालका क्वाथ पिलावे।

१९. २० प्रमेहो पर—हल्दी, पीपल और शहदके साथ।

२० मूत्रकृच्छ्र पर—शिलाजीतके साथ।

२१. मन्दाग्निमें—नागरवेलके पानके साथ।

२२ रसायनके लिये—त्रिफला और शहदके साथ।

२३ धातुदोष पर—त्रिकटु, भारंगी और शहदके साथ।

२४ बलवृद्धिके लिये—पुनर्नवाके चूर्ण और गोदुग्धके साथ।

२५. कास पर—वासा स्वरस, पीपल, मुनक्का और शहदके साथ।
२६. त्रिदोषज शूलपर—त्रिफला चूर्ण, घृत और शहदके साथ।

उपयोग—यह लोह भस्म पाण्डु, पित्तविकार, पित्तज और कफज प्रमेह, उन्माद, धातुनिर्बलता, संग्रहणी, मंदाग्नि, प्रदर, मेदवृद्धि, कृमि-रोग, कुष्ठ, उदररोग, उदरशूल, आमविकार, क्षय, विष, हृद्रोग, श्वास कास, अर्श, नेत्रकी उष्णता, रक्तपित्त आदि रोगोको नष्ट करती है।

लोह सेवनसे रक्तमें रक्त-कण बढते है। रक्तकी निस्तेजता दूर होती है। इसलिये लोह भस्मका उपयोग पाण्डुरोगमें होता है। पाण्डुरोगीके लिये लोहभस्म प्रशस्त और प्रसिद्ध औषधि है।

पाण्डु रोगमें भी विशेषतः पित्तज पाण्डु और हलीमक पर लोह भस्मका उपयोग उत्तम प्रकारसे होता है। कृमिजन्य पाण्डु रोगमें अन्य कृमिघ्न औषधिके साथ लोहभस्म देनेसे लाभ होजाता है। आँतोमें उत्पन्न होनेवाले कितनेक प्रकारके कीटाणुओसे पाण्डु रोगकी उत्पत्ति होती है। ऐसे पाण्डु रोगमें लोहभस्मको वायविडंग और अजवायनके फूलो (थाईमोल) के साथ देनेसे अच्छा कार्य करती है।

वातवाहिनियो, मांसपेशियो या स्नायुओके संकोच अथवा वात-विकारके कारण तीव्र वेदना उत्पन्न होती हो, उसका शमन करनेके लिये वाजीकरण लोह भस्म और सिंगरफसे मारण की हुई लोहभस्म अति उपयोगी है। परिमाणसे अधिक रक्तस्राव होनेसे रक्तवाहिनियो, मस्तिष्क अथवा अन्य अवयवोमें शून्यता आजाने, तथा घबराहट, निर्बलता, चक्कर आदि लक्षण प्रतीत होने पर इसका सेवन अति हित कर है। यदि ये उपद्रव रक्तपित्तमें हुए हो, तो लोह भस्म रक्तचन्दनादि क्वाथके साथ दे, अथवा चरकोक्त लोहासवका सेवन करावे।

पित्तप्रकोप होना, जिसमें नेत्र लाल-लाल होजाना, मुँह और हाथ-पैरो पर तुरन्त प्रस्वेद आजाना, शरीर लाल होजाना, थोड़े समय बाद घबराहट होकर शरीर निस्तेज और गरम हो जाना, सारे शरीरमें रक्तवाहिनियोमें रक्तप्रवाह अति वेगसे वहना, हृदयकी गति और नाड़ी के वेगमें वृद्धि हो जाना, मानसिक बेचैनी होना और त्वचा उष्ण हो जाना इत्यादि पित्तप्रकोपके लक्षण होने पर लोह भस्म उत्तम प्रकारसे सत्वर कार्य करती है।

पित्ताशयको आवश्यक रक्त न मिलने अथवा पित्तके परिमाणमें कमी हो जानेसे अपचन, अफरा, बारबार खट्टी और खराब डकार

आना तथा चिकनी, पित्त-कफ मिश्रित थोड़ी-थोड़ी वमन होना इत्यादि लक्षण होने पर लोह भस्म अति उपयोगी है।

अतिसार अथवा ग्रहणी रोगमें ग्रहणी और पक्वाशय अशक्त होजानेसे वारवार बड़े-बड़े दुर्गन्धयुक्त श्वेत या मैल रंगके दस्त अनायास ही होते रहते हैं। ऐसे अतिसारमें लोह भस्मका शक्तिवर्द्धक औषध रूपसे उपयोग होता है। संग्रहणीमें यदि अत्यन्त अशक्तता और वलमांस विहीनत्व आ गये हो, तो लोह भस्मका उपयोग करनेसे वलकी वृद्धि होकर निर्वलता दूर हो जाती है।

रक्तार्शके रक्त गिरनेके प्रारम्भमें लोह भस्मका उपयोग नहीं करना चाहिये। फिर भी पित्तार्श अथवा वातार्शके प्रारंभमें विशेषतः जव अधिक क्षीणता आ गई हो, तब लोह भस्मका उत्तम रीतिसे उपयोग होता है। एवं रक्तार्शमें रक्त बहुत बह जानेके बाद हृदयव्यथा, शोथ, पाण्डुता आदि लक्षण होने पर लोह भस्म (दूसरी विधिवाली) का उपयोग अति हितकर माना गया है।

लोह भस्ममें कषाय गुण होनेसे कफनाशक है परन्तु उसके साथ पाण्डुता रूप लक्षण होना चाहिये। हृदयव्यथा होने पर यदि श्वास हो, तो लोह भस्मका अच्छा उपयोग होता है। एव पित्तप्रधान तमक श्वासमें भी इस भस्मसे अच्छा लाभ होता है। ऐसा भास होता हो कि श्वास छातीमें खूब भरा है, साथमें निस्तेजता, बेचैनी और नाड़ी तेज है, ऐसी परिस्थितिमें लोहका सेवन अत्यन्त हितकारक है।

विषमज्वर अथवा ठण्ड लगकर आनेवाले ज्वर अधिक दिन तक रहने या अधिक ज्वर होनेपर भोजन करते रहनेसे प्लीहावृद्धि हो जाती है, एवं क्विनाईन युक्त औषधिका ज्यादा परिमाणमें सेवन करनेसे घबराहट, श्वास, मुँह पर शोथ-सा होजाना, मुखमण्डल श्वेत और निस्तेज होना, कानमें बधिरता आना आदि लक्षण होते हैं। इस पर लोह भस्मके सेवनसे उत्तम लाभ होता है। परन्तु जिनसे लोहभस्म सहन न हो सके, उनको स्वर्णमाक्षिक भस्म दी जाती है। प्लीहावृद्धिमें पाण्डुता अधिक होनेपर लोह भस्मका सेवन विशेष लाभदायक है।

लोह भस्म सर्वाङ्ग शोथके विकारमें अत्यन्त उपयोगी औषधि है। सर्वाङ्गमें शोथ, त्वचाके नीचेके भागमें लसीका का संचय होजाना, यहाँ तक कि शोथ पर अँगुली दवानेसे गहरा गड्ढा हो जाता है, फिर भरनेमें समय लगता है, तथा अत्यन्त पाण्डुता, अतिशय घबराहट, मुँह पर अधिक शुष्कता, सारे शरीरकी शिराएँ उड़ती हो ऐसा भास

होना, रोगीसे पूरा बोला भी न जाय, मूत्र सामान्य रीतिसे ठीक रहता हो, परन्तु मूत्राशय अशक्त होनेसे पेशाब अनेक समय करना पड़ता हो, ऐसे प्रकारके शोथ रोगमें यदि यकृत-प्लीहावृद्धिका अनुवन्ध हो, तो ताम्र भस्म और लोह भस्म मिलाकर देना अति प्रशस्त है।

पचन शक्तिकी निर्बलता या सर्वत्र धातु परिपोषण क्रम (Metabolism) की अशक्तिके कारण शरीरमें सेन्द्रिय विषका संचय होता है। यह विष लोह भस्मके सेवनसे नष्ट हो जाता है।

पैत्तिक और श्लेष्मिक प्रमेहमें लोहभस्मका उपयोग होता है। इसके सेवनसे प्रमेह रोगमें आई हुई निर्बलता दूर होती है। जिस रोगी को मूत्र बार-बार न होता हो, परन्तु कम समय और प्रत्येक समय अधिक परिमाणमें होता हो, तथा त्वचा निस्तेज हो, उसे लोह भस्मका सेवन हितकर है। परन्तु बार-बार पेशाब थोड़ा-थोड़ा होता हो, अंतरमें दाह हो और त्वचा चिकनी हो, तो जसद भस्म देनी चाहिये।

गुल्म, अष्ठीला, प्लीहा और यकृद् वृद्धिमें रक्तके रक्ताणु न्यून होकर पाण्डुता आई हो, तो लोह या मंडूर भस्मकी योजना करनी चाहिये।

किसी भी महा व्याधिसे मुक्त होनेके पश्चात् रोगीका बल कम हो जाता है। रक्तके रक्ताणु निर्बल हो जाते है। एवं बड़े रोगमें दोष-प्रकोपसे लड़ाई और धातुसाम्य प्रस्थापित करते रहनेसे सब इन्द्रिय-समूह बिल्कुल थक जाते है, तथा बलमासक्षीणत्वकी प्राप्ति होती है। यह क्षीणता लोह भस्मके सेवनसे सत्वर कम हो जाती है। विशेषतः रक्तकी अशक्तताके कारण निर्बलता आई हो, तो निःसन्देह लोहभस्म का उपयोग कराना चाहिये। इस दृष्टिसे लोहभस्म बलकर है।

पित्तप्रधान कुष्ठ रोगमें दोषोंके कारणसे रक्त और त्वचा दुष्ट हुए हो, तो लोहभस्मका सेवन कराना अति हितकर है। पित्तप्रधान कुष्ठ में दाह, लाली तथा त्वचा, अँगुली, फाले या व्रणोंमेंसे जलके समान पतला स्राव, थोड़ा घाव होने पर पक जाना, फूटना, उसमेंसे दुर्गन्ध-युक्त चिकना पीप निकलना, कभी-कभी अँगुलियोंकी त्वचा निकल जाना, टूट जाना आदि लक्षण होते है। इस रोगमें यदि त्वचा पर व्रण लाल, काला सा हो, उसमें छोटी-छोटी फुन्सियाँ हों, खाज चलती हो और दाह आदि लक्षण हो, तो लोह भस्म और त्रिफला चूर्ण या अन्य कुष्ठघ्न औषधि देनी चाहिये। अथवा आरोग्यवर्द्धिनी देनी चाहिये। कुष्ठ रोगमें पहले प्रधान लक्षणात्मक दोषकी योजना करनेके पश्चात् अन्य जिस दोषका अनुवंध हो अथवा अनुवंध वाला दोष शेष रहा हो,

उसकी योजना की जाती है। इस न्यायसे पित्त दोषकी चिकित्सा करनेसे कुष्ठ रोगका शमन होना शक्य है।

लोह भस्म रसायन है अर्थात् इसके सेवनमें रस आदि सब धातु की प्रशस्त उत्पत्ति होती है, जिससे सब इन्द्रियां और घटक उत्तम प्रकारसे पुष्ट होते हैं। यह भस्म रसायन विधानमें अर्थात चढ़ते उतरते क्रमसे सेवन करनी चाहिये। अथवा शिलाजीत, अभ्रक भस्म, सुवर्ण भस्म, त्रिफला, इनमेंसे किसीके साथ सेवन करनी चाहिये।

इस शरीरमें सब धातुओंको योग्य परिमाणमें आवश्यक द्रव्य यथासमय पहुँचानेवाली धातु रक्त है। रक्त धातुके रक्तकण और घटक शरीर-पोषणके लिये विशेष उपयोगी हैं। ये सब लोह भस्मके सेवनसे सुदृढ होते हैं। इस तरह अन्य पञ्चभौतिक द्रव्य भी शरीर पोषणके लिये आवश्यक हैं। वह भी इसके सेवनसे शुद्ध और सुदृढ होना है। इस दृष्टिसे विचार करें, तो लोहके सेवनसे देह अति दृढ होती है। इससे देहसिद्धि होती है, यह कथन बिल्कुल सत्य है।

मनुष्यके लिये लोहभस्म और छोटे बच्चोंके लिये मंडूर भस्म हितकर है। निरोगी मनुष्यको बिना हेतु निर्बलताका भास होना हो, तो लोह का सेवन कराना चाहिये। इस दृष्टिसे शास्त्रकारोंने लोह भस्मको मन और शरीरसे निरोगी मनुष्यके लिये दीर्घायु प्राप्त कराने वाली उत्तम रसायन ओषधि कहा है, वह युक्त ही है। आयुको नदीके ओघ सदृश मान लें, तो जब तक उसे आवश्यक अनुकूलता मिलती रहेगी, तब तक जीवित ओघ चलता ही रहेगा। यह सुविधा इसके सेवनसे पूर्ण होती रहती है। अतएव लोह भस्मको दीर्घ जीवन प्राप्त कराने वाली कहा है। यह शास्त्र-वचन युक्तियुक्त ही है।

यदि वातवाहिनियों या रक्तवाहिनियोंके संकोचसे शूल उत्पन्न हुआ हो, तो लोह भस्मके सेवनसे रक्ताभिसरण क्रियाकी वृद्धि होकर शूलका शमन हो जाता है। यदि शूल आमवात अथवा वातरक्त जन्य हो, तो महायोगराज गूगल, आक्षेपक समान हो, तो महावातविध्वंसन रस, वातपित्तप्रधान आक्षेपरहित शूल हो, तो सूतशेखर, और पित्त-प्रधान हो, तो ताप्यादि लोह देना चाहिये।

लोहभस्म अंडकोशोंको शक्ति देती है। इस हेतुसे अंडकोशकी निर्बलतासे उत्पन्न नपुंसकता और हीनवीर्यता इसके सेवनसे दूर होती है। अलावा सब धातु पुष्ट और शुद्ध होनेसे शरीरकी कान्ति बढ़ती है, तथा सब अवयव बलवान बनते हैं। विशेषतः उदर उत्तम बलवान

होने पर अर्थात् कोष्ठके अवयव प्रतिकारक्षम होने पर, सेन्द्रिय विषका प्रभाव अधिक नहीं पड़ता। इस दृष्टिसे लोह भस्म विषहर है।

यदि लोह भस्म सामान्य मुंड लोहमेंसे बनाई जाय, तो मृदु बनती है, जिससे कोमल प्रकृतिके सुकुमार रोगियोको देनेमें अच्छी उपयोगी होती है। कोष्ठगतशूल, आमजन्य शूल और अर्शके कारणसे ज्यादा रक्त बह जानेके पश्चात्के शूल पर मुंड लोह भस्म अच्छा लाभ पहुँचाती है। एवं प्रमेह रोगमें जिनसे लोहभस्म सहन नहीं होती, उनके लिये मुंड लोहभस्मका सेवन हितकर होता है।

कामला विकारमें पित्त, पित्ताशयमेंसे कोष्टमें नहीं जाता, किन्तु रक्तमें मिल जाता है। ऐसे समय पर पित्ताशय प्रायः निर्बल होता है। त्वचा, नख, मूत्र आदि पीले होते हैं। इस विकारमें यदि निर्बलता अधिक है, तो मुंड लोहभस्मका सेवन विशेष हितकर है।

आमवातका विकार अच्छा हो जाने पर इस रोगके कारण उत्पन्न हुई निर्बलता नष्ट करनेके लिये आमविकारके मूल कारण आम की उत्पत्तिको रोकना चाहिये। इस आमकी उत्पत्ति अग्निकी मन्दताके हेतुसे होती है। जब पाचक अग्नि (पाचक पित्त) सबल और कार्यक्षम हो जाय, तब नया आम नहीं बनता। पित्तको कार्यक्षम बनानेका यह कार्य मुंड लोहभस्मसे होता है। ऐसे ही पाचकपित्तकी अशक्तिके कारण कोष्ठशूल, मन्दाग्नि आदि विकार उत्पन्न हुए हों, वे भी मुंड लोहसे दूर होते हैं।

मुंड लोह भस्मकी विशेषता—अन्य लोह भस्ममें ग्राही गुण अधिक है, जिससे शौच शुद्धि बराबर नहीं होती। अतः जिनको मलावरोध रहता हो, उनको कान्त लोह भस्म मलावरोधमें वृद्धि करती है, किन्तु मुंड लोहभस्ममें ग्राही गुण या विरेचक गुण नहीं है। फिर भी कोष्टशोधक है, अर्थात् कोष्ठकी शक्ति और क्रियाको बढ़ाकर उसमेंसे मलको उत्तम प्रकारसे निःसरण कराती है। इसलिये ऐसे बद्धकोष्ठके पाण्डुरोगियों अथवा अशक्त व्यक्तियोंको मुंड लोह भस्मका सेवन हितकर है।

लोह भस्म पित्त और वात दोष, रक्त, मांस विशेषतः, और सामान्यतः सब धातु, इन दूष्यों, और हृदय, यकृत्, पचनेन्द्रिय तथा बृहदन्त्र, इन स्थानोंमें विशेष लाभ पहुँचाती है। (औ० गु० ध० शा०)

सूचना—रक्तार्शके रक्त गिरनेके आरम्भमें लोह भस्म नहीं देनी चाहिये। लोह भस्म अति मुलायम होने पर रस-रक्त आदिके साथ शीघ्र मिल

सकती है। अतः लोह भस्म मुलायम हो जाय; तब तक गजपुट देते रहना चाहिये। अपक्व लोह भस्म आँवलों पर मसलनेसे आँवलोंका रंग काला हो जाता है। ऐसी लोह भस्म सेवन नहीं करना चाहिये।

तीसरी विधि—शुद्ध लोहका सूक्ष्म चूर्ण ३० तोले, शुद्ध पारद १० तोले और शुद्ध गन्धक २० तोले लें। पहिले पारद और लोहके चूर्णको मिला घीकुँवारके रसमें ६ घण्टे खरल कर जलसे धो लें। फिर गन्धक मिलाकर कज्जली करें, और १२ घण्टे घीकुँवारके रसमें खरल कर गोला बाँधे। पश्चात् अरंडके पत्तोंसे लपेट ऊपर सूत बाँधकर ताँबेके डिब्बेमें रक्खें। सन्धि पर मिट्टीका मजबूत लेप करके सूर्यके तापमें ६ घण्टे सुखावे। फिर अनाजके कोठेके भीतर ४० दिन तक दबा देनेसे भस्म तैयार हो जाती है। ४१वे रोजको भस्मको निकाल कपड़ेसे छानकर खरल कर ले। यह भस्म काले रंगकी वारितर और मुलायम होजाती है। इस भस्मका नाम शास्त्रकारोंने "सोमामृत लोह भस्म" रक्खा है। (र० त०)

मात्रा और उपयोग—दूसरी विधिके अनुसार।

चौथी विधि—शुद्ध सूक्ष्म लोह चूर्णको कुकरौंधेके रसमें १२ घण्टे तक खरल करके गजपुट दे। इस तरह पुनः-पुनः खरल कर १० पुट देनेसे लाल नीले रंगकी मुलायम भस्म तैयार होती है। इस तरह जामुनकी छालके क्वाथ, बबूलकी फलीके रस, हस्तीशुण्डीके रस, गोमूत्र आदि ओषधियों के पुटोंसे भी लोह भस्म बन जाती है।

मात्रा और उपयोग—दूसरी विधिके अनुसार।

(५) वङ्ग भस्म।

प्रथम विधि—शुद्ध कलईके कागज जैसे पतले पतरे बनाकर नखके मुताबिक बारीक-बारीक टुकड़े करें। फिर गोबरी लगभग २॥ सेर वजनवाली लेवें। जिसमें चारों ओर एक-एक इंच भागको छोड़कर बीचमें गहरा एक इंचका खड्डा करें। पश्चात् उसमें इमलीकी छालका चूर्ण और तिल मिलाकर तैयार किया हुआ चूर्ण लगभग १० तोले डाले। फिर कलईके छोटे-छोटे टुकडोंको एक एक करके चारों ओर बिछा दे। पुनः ऊपरसे इमलीकी छालवाला चूर्ण लगभग १० तोले डाल-कर उसपर कलईके टुकड़ोंको बिछावे। इस तरह ३ से ४ तह करे। एक गोबरीकी जोड़ीमें लगभग १०-१२ तोले कलई बन्द करनी चाहिये, तथा सब मिलकर इमलीका चूर्ण तिल मिला हुआ लगभग ४० से ५०

तोले डालना चाहिये । ऊपर और नीचे इमली वाला चूर्ण ही रखे । इस तरह चूर्ण और कलईके पतरे रखकर समान गोलाईवाली भीतरसे खड्डा की हुई दूसरी गोबरी ऊपर ढककर गोबरसे दोनोकी संधिको बन्द करें। सूख जाने पर एक कड़ाही या परातमें नीचे ऊपर लगभग १ सेर गोबरी रखकर निर्वात स्थानमें अग्नि देवे । ठंडा होने पर सम्हालकर कलईकी भस्मके एक-एक फूलको चुन लेवे । फिर भस्मको लोहेकी खरलमें खरल कर कपडेसे छान ले । जो भस्म कच्ची रही होगी; वह कपड़ेके ऊपर रह जायगी । उसे अलग कर दें । पक्की भस्म, जो छनकर नीचे चली जाती है, वह चूनेके समान सफेद रंगकी मुलायम और बहुत हल्की होती है ।

इमली-तिलके बदलेमें भाँग मिलानेसे भी भस्म उत्तम बनती है । गोबरीके बदलेमें टाटमें लपेट करके भी भस्म हो सकती है । टाटमें लपेट कर भस्म करना हो, तो टाटका दृढ़ गोला बना चारो ओर ५ सेर गोबरी रख, निर्वात स्थानमें अग्नि देनेसे भस्म तैयार हो जाती है। टाटके गोलेकी ऊँचाई ८-६ इंचसे अधिक नहीं रखनी चाहिये। १०-१२ तोले कलईकी एक बार भस्म करे । ज्यादा मात्रामें कलई लेनेसे कच्चा भाग विशेष रह जाता है। जो कच्ची भस्म शेष रह जाय, उसकी भस्म तीसरी विधिके अनुसार बनाई जाती है। (आ० प्र०)

सूचना—कच्ची भस्मको लोहेकी खरलमें खरल करनी चाहिये । पत्थरकी खरलमें घोटनेसे खरल खराब होती है ।

मात्रा—१ से २ रत्ती तक दिनमें २ समय मलाई-मिश्री, बादाम की खीर, ईसबगोलकी भूसी-मिश्री, मक्खन-मिश्री या रोगानुसार अनुपानके साथ देनी चाहिये ।

अनुपान—१. प्रमेहमें—शहदके साथ देकर, शुद्ध गन्धक पुराना गुड़ मिलाकर खिलावें, या मोचरस और हल्दीका चूर्ण मिलाकर शहदके साथ, अथवा अभ्रक भस्म और शिलाजीतके साथ या गिलोय सत्व और शहदके साथ ।

२. मूत्राघातमें—वङ्गभस्म, शिलाजीत, गिलोय सत्व, सब ३-३ रत्ती और मिश्री ६ रत्ती मिलाकर शहदके साथ ।

३ मुख-दुर्गन्ध-नाशके लिये—कपूरके साथ ।

४. कान्तिवृद्धि और पुष्टिके लिये—जायफल और गोदुग्ध या शहदके साथ कुछ दिनों तक सेवन करानी चाहिये ।

५. कफप्रधान प्रमेहमें—तुलसीके पत्तोके साथ या मिश्री और शहदके साथ देनी चाहिये ।
६. गुल्ममें—सोहागेके फूलेके साथ सेवन करनी चाहिये ।
७. रक्तपित्त और ऊर्ध्वश्वास पर—हल्दीके चूर्ण और शहदके साथ दिनमें २ या ३ वार कुछ दिनो तक देते रहे ।
८. पित्तशमनके लिये—मिश्रीके साथ ।
९. वीर्यस्तम्भनके लिये—नागरवेलके पानमें या भॉग अथवा कस्तूरी के साथ प्रातः सायं दिनमें दो वार देनी चाहिये ।

अथवा वंशलोचन, छोटी इलायचीके दाने, मुलतानी मिट्टी, तीनो १-१ तोला तथा वंगभस्म ६ माशे मिलाकर खरल करे । फिर उसमेंसे १॥ से ३ माशे तक दिनमें २ वार ऑवलेके जलके साथ देवे । रात्रिको ऑवला १ तोला १० तोले जलमें भिगो सुबह मसल कर छान लेवे । एवं सुबह भिगोकर शामको उपयोगमें लेवे । इस तरह ७ दिन तक वंगभस्मका सेवन करानेसे घोर वीर्यस्रावमें आशातीत लाभ पहुँचता है । यह प्रयोग ग्रीष्म आदि ऋतुओमें निर्भयतापूर्वक किया जाता है । शीतकालमें देना हो, तो ऑवलेके जलको निवाया करके उपयोगमें ले ।

१०. मंदाग्निमें—पीपलके साथ ।
११. दाह पर—नीबूके रसके साथ ।
१२ अजीर्ण पर—ऑवला अथवा सुपारीके साथ ।
१३. अस्थिगत ज्वर पर—सितोपलादि चूर्ण, मक्खन और शहद, या गिलोय सत्व और शहदके साथ ।
१४ कुष्ठ पर—निर्गुण्डीके पत्तोके रसके साथ ।
१५ वात रोगमें—अजवायन अथवा असगन्धके साथ ।
१६. उदरव्यथामें—छोटी हरड़के साथ ।
१७. वातगुल्ममें—मट्ठाके साथ ।
१८. श्वासमें—जायफल, लोग और शहदके साथ ।
१९. स्वप्नदोषमें—१ तोला ईसवगोलकी भूसीके साथ ।
२० बहुमूत्रमें सितोपलादि चूर्ण और शहदके साथ ।
२१ सुजाक पर—वंग भस्म, मोती पिष्टी, चॉदीका वर्क, इलायची और वंशलोचनको मिलाकर शहदके साथ दे ।
२२. नासूरमें—नागवलाके साथ ।
२३. जीर्णज्वर पर—पीपल और शहदके साथ ।

२४. चर्मरोग पर—खदिर छालके काथके साथ।
२५. उपदंशजनित शुक्रदोष पर—हरतालमारित वङ्गभस्म २-२ रत्ती चोपचिन्यादि चूर्णके साथ एक-दो मास तक देवे।
२६. कृमि पर—शहदके साथ चटाकर ऊपर पूतिकरंजका रस अथवा पीपलामूलको दहीके तोड़में मिलाकर पिलावे।

उपयोग—वङ्ग भस्म लघु, सर, रूक्ष, तिक्त, उष्ण, दीपन, पाचन, रुचिकर, वर्णकारक, कफघ्न, किञ्चित् वातप्रकोपक और किञ्चित् पित्तकारक गुण वाली है। सब प्रकारके प्रमेह, कफ, कृमि, मन्दाग्नि, वमन, क्षय, पाण्डु, श्वास और नेत्र रोगोको दूर करती है। शरीरके बलको बढ़ाती है। कलईमें तीक्ष्ण और उष्ण गुण रहा है, इस हेतुसे वङ्ग भस्म वातघ्न है। परन्तु इसका रूक्षत्व आदि गुणोका परिणाम क्वचित् वातप्रकोपकारक भी होता है, तथा यह भस्म गुरु (जड़) होनेसे कितनेक कफप्रधान प्रकृतिवालोकी पचन-क्रिया पर ज्यादा लाभ प्रतीत नही होता।

वङ्गभस्मके मुख्य गुणधर्मके वर्णनमें शास्त्रकारोने कहा है:—

"वङ्गं भक्षयतो नरस्य न भवेत्स्वप्नेऽपि शुक्रक्षयः।"

वङ्ग भस्मके गुणधर्मका यह बिल्कुल यथार्थ वर्णन है। इसे अधिकरण सूत्र कहो तो भी कह सकते हैं। कारण, वङ्गके गुणकी मालिका इस केन्द्रके चारों ओर गूँथी हुई है। शुक्र और शुक्र स्थान की अशक्तता प्राप्त होनेमें जो अनेक कारण है, उन पर वङ्ग भस्मका उत्तम उपयोग होता है। यह मुख्यतः शुक्रस्थानको शक्ति प्राप्त कराने वाली होनेसे उस स्थानकी निर्बलताको दूर करती है। इस शिथिलतामें भी अनेक प्रकार है। फिर भी सब प्रकारके शैथिल्यके मूलमें प्रायः वातवाहिनियोका शैथिल्य होता है। यह शैथिल्य वातवाहिनियो या मांसपेशियोंको प्राप्त होनेका कारण विशेषतः स्त्रीसेवन अथवा अन्य रीतिसे वीर्यका दुरुपयोग होता है। इस तरह बार-बार वातवाहिनियों और स्नायुओंका उपयोग होते रहनेसे वे बिल्कुल शक्तिहीन बन जाते है। किसी-किसी समय तो परिणाम यहाँ तक आ जाता है कि, मात्र मनमें स्त्रीकी भावना हुई या स्त्रीका दर्शन हुआ या मात्र शृंगार चेष्टा मनमें आई, बस तुरन्त शुक्रस्खलन होजाता है। स्वप्नावस्थामें ग्राम्य धर्मका चित्र मनमें आया, बस तत्काल किंचित् क्षोभ होकर वीर्यस्राव होजाता है। ऐसे विकारोमें वङ्ग भस्मका उपयोग अच्छा होता है।

कितनेक मनुष्योंका तो शुक्रस्खलन नियमित रोज रात्रिको होता ही रहता है। इसका दुष्परिणाम उतने दूर पर पहुँच जाता है कि, कितनेक बिलकुल पागल हो जाते है। कितनेकोको अर्द्ध पागलावस्था प्राप्त हो जाती है। कितनेक नपुंसक, कितनेक शुष्क मुरदार, कितनेक जन्मरोगी, तथा अनेक दीन, हीन और अपने जीवनसे बिल्कुल उपराम हुए हो, ऐसे बन जाते है। अनेकोको झटके आते रहते है। किसी सुन्दरीका दर्शन होनेके साथ मनमें विकृति होने लगती है। यहाँ तक कि झटके आकर मुँहमें झाग आने लगते है और जब शुक्रस्राव हुम जाता है, तब इन विकारोका शमन होता है। इन सब प्रकारके विकारो में वङ्ग भस्मका उत्तम उपयोग होता है। स्वप्नावस्थाके समान पेशावके साथ शुक्रस्राव होता हो, तो भी वंगभस्मके सेवनसे लाभ हो जाता है।

वङ्गभस्मके लिये शास्त्रमें लिखा है कि:—

"सिंहो यथा हस्तिगणं निहन्ति तथैव वङ्गोऽखिलमेहवर्गम्"।

अर्थात् जैसे सिंह हाथियोंके समुदायका नाश करता है, वैसे ही वङ्ग भस्म समस्त प्रमेह वर्गका दमन करती है। यथार्थमें विचार किया जाय, तो वङ्ग भस्म समस्त प्रमेहो पर पूर्णरूपसे लाभ नहीं पहुँचा सकती। विशेषतः वातज प्रमेहो पर इसका उपयोग न करना, यही अच्छा मालूम होता है। सान्द्र, अच्छ, इक्षु, हस्ति आदि प्रमेहों पर इसका उपयोग ज्यादा हुआ है। विशेषतः प्रारम्भमें से दुष्ट मित्रोके सहवाससे बारबार शुक्रपात करानेकी आदत होनेसे निस्तेज, निर्बल और शुष्क रोगियोको होने वाले सब जातिके प्रमेहो पर वङ्ग भस्म का उत्तम उपयोग होता है, अर्थात् शुक्रपात अथवा शुक्रक्षय, यह प्रमेहका निमित्त कारण होवे, तो ऐसे रोगियोके शुक्र-स्थानको शक्ति देनेके लिये वङ्गभस्म उत्तम ओषधि है।

वृद्धावस्थामें प्रमेहका विकार होने पर बारबार मूत्रोत्सर्ग ज्यादा परिमाणमें होने लगता है। वृद्धावस्थाके कारण मूत्रपिण्ड, मूत्रवह स्रोतसे और मूत्राशय, सब अवयव निर्बल होकर थक जाते है, जिससे बारबार पेशाव करना पड़ता है। इस विकारमें वंगका अच्छा उपयोग होता है। यदि तरुणावस्थामें शुक्रस्रावका अतियोग इस विकारका कारण हो, एवं वृद्धावस्थामें वातप्रधान लक्षण ज्यादा हो, तो वङ्ग भस्म के साथ वातशामक ओषधिकी योजना करनी चाहिये।

वस्ति (मूत्राशय) के मुखके पिण्ड (पौरुष ग्रन्थि) की विकृति होनेसे मूत्रकृच्छ्रमें वस्तिके मुखके [illegible]

है। उसमें एक प्रकारकी सांद्रता होती है। इस विकार पर वंग भस्मका अच्छा उपयोग होता है। यदि यह रोग बहुत बढ़ गया हो और जीर्ण होगया हो, तो शस्त्रकर्म (आपरेशन) ही कराना पड़ता है।

यह उपद्रव बहुधा प्रमेहके पश्चात् उत्पन्न होता है। वंग भस्ममें मेहनाशकत्व गुण होनेसे वंगका उपयोग इस विकार पर भी होता है। प्रमेहके विकारमें सब दोष और मेद, मांस आदि सब शरीरके घटकोंमें विकृति होजाती है। फिर उस हेतुसे धातु परिपोषण क्रम बिगड़ता है, जिससे मल भाग शरीरमें संचित होता रहता जाता है। उसे बाहर निकालनेके लिए बार-बार मूत्रोत्पत्ति और मूत्रोत्सर्ग होते है। वंग-भस्मके सेवनसे यह शारीरिक घटकोंकी ह्रास सदृश विकृति कम होती है, तथा मूत्रोत्पत्ति और मूत्रोत्सर्गकी अधिकता दूर होती है। यदि मधुमेहके रोगमें यह विकृति है, तो वंग भस्मकी अपेक्षा नाग भस्मका उपयोग विशेष लाभदायक है। परन्तु मधुमेहमें भी शुक्रपात रूप कारण की प्रधानता हो, तो वंग भस्म या वंग-नाग मिश्रणका सेवन हितकर है। अनुपान रूपसे गुणमार अर्क देवें।

यदि मैथुनके अतियोग या अन्य रीतिसे अधिक शुक्रपातके हेतु से क्षयरोग उत्पन्न हुआ हो, तो उसकी बढ़ी हुई अवस्थामें भी वंग भस्म लाभ पहुँचाती है। यदि यह कारण न होने पर भी छाती बिल्कुल पोकल-निर्बल होगई हो, छातीका संकोच होजानेका भास होता हो, एवं अति कष्टसे सफेद, पीला, दुर्गन्धयुक्त कफ गिरना आदि लक्षण हो, तो भी उनपर वंग भस्मके अच्छा उपयोग होनेके अनेक उदाहरण मिले है। इस स्थानमें वंगमें रहा हुआ विशिष्ट धर्म अर्थात् क्षयको (क्षाथ) नाशक धर्मका उपयोग होता है। वंगभस्मके साथ शृङ्गभस्म और रससिंदूर मिश्रित करके अथवा पृथक्-पृथक् भी दिये जाते है।

वंग कृमिघ्न होनेसे कृमिजन्य ज्वर, कृमिज हृद्रोग, अथवा कृमिजन्य अन्य रोग पर इसका अच्छा उपयोग होता है। कृमिजन्य ज्वरके लक्षण प्रायः विषम ज्वरके समान होते है। अनेक समय कृमिजन्य ज्वर और सन्तति आदि विषम ज्वरके निदानमें कठिनता हो जाती है, परन्तु कृमिके विशिष्ट लक्षणोंसे इस ज्वरका परिचय होजाता है। कृमिजन्य ज्वरमें उदरपीड़ा, बार-बार उबासी आना, उबाक और वमन होना आदि लक्षण ज्यादा होते है। यह ज्वर कितनेक समय तो ४०-४२ दिन तक रहता है। ऐसे विकारमें बड़े उदर कृमि नहीं होते। बारीक, गोल, चपटे, अथवा धान्यके अंकुर सदृश छोटे होते है।

वंगभस्मका उपयोग इन सब छोटे कृमियों पर होता है। वंगभस्मके सेवनसे कृमि मूर्च्छित होते हैं, या परिपोषक द्रव्यके अभावसे मरते हैं, परन्तु वे गिरते नहीं। इसलिये वंगभस्मके साथ आरग्वधादि क्वाथ या सनायका क्वाथ देवे, जिससे कृमि बाहर निकल जायँ।

शुक्रपातके भयंकर दुष्ट स्वभावके कारण अनेक नवयुवकोंकी पाण्डु रोगीके समान स्थिति होती है। कोई भी कार्य करनेका उत्साह नहीं होता। शरीर निस्तेज, पीलासा, शुष्क और कृश होता है। पाचन शक्ति मंद होजाती है। इस पाण्डुतामें रक्तकणोंकी साक्षात् न्यूनता नहीं होती, परन्तु यह पाण्डुता शुक्रधातुकी निर्बलताके कारणसे होती है, अर्थात् शुक्रोत्पत्ति करनेके लिये जो आवश्यक रक्तकी, वातवाहिनियोंका प्रेरकत्व और आवश्यक प्राणवायुकी अनुकूलता चाहिये। इन सबका पहले अतियोग हुआ है। फलतः वे सब क्षीण होनेसे रक्त बलहीन हो जाता है। इसी कारणसे त्वचा और सब अङ्गों में पाण्डुता आजाती है। ऐसी स्थितिमें लोह भस्म, नाग भस्म और जसद भस्मकी अपेक्षा वंग भस्मका उपयोग विशेष लाभदायक है। इस पर वंग भस्म, प्रवाल भस्म और सुवर्णमाक्षिक भस्मका मिश्रण अथवा वंग, शिलाजीत और लोह भस्मका मिश्रण देना चाहिये। यदि केवल मानसिक निर्बलता ही हो और पाण्डुता न हो, तो वंग भस्म और अभ्रक भस्मका मिश्रण ब्राह्मीके लेह या अर्कके साथ देना चाहिये।

मैथुनातियोग किंवा अधिक शुक्रपातके कारण कास रोग उत्पन्न होता है, वह शुष्क और त्रासदायक होता है। अनेक समय खाँसते-खाँसते चक्कर आजाता है। इस रोगमें अत्यन्त निर्बलता होती है। इनमें भी यदि पहले उपदंश रोग होगया हो और कासके साथ श्वास रोग भी हो, तो हरतालमारित वंगका अच्छा उपयोग होता है। उपदंश के विष पर वंगका साक्षात् कार्य यदि न होता हो, तो भी उसका शुक्र स्थान पर जो परिणाम हुआ है उस पर इसका कार्य होता है।

वंगभस्म मन्दाग्निनाशक और दीपन-पाचन है। यह दीपनत्व शंख या वराटिकाके समान या हींग, अजवायन, चित्रक आदिके समान अथवा नीबू, इमली आदिके समान नहीं है। इन सब द्रव्यों का कार्य साक्षात् पाचक पित्तके गुणोंको बढ़ा करके होता है। वंगका कार्य भी पाचक पित्तके गुण बढ़ा करके ही होता है। फिर भी यह गुणवृद्धि साक्षात् पित्त पर कार्य करके नहीं होती। वंगभस्म पित्तल है; परन्तु साक्षात् कार्य नहीं होता। वंगका कार्य प्रारम्भमें शुक्रस्थान

पर होता है। शुक्रस्थानके बलवान होनेसे देहके समस्त अवयवोंको बलकी प्राप्ति होती है। इस तरह परंपरागत पचनेन्द्रिय संस्था सशक्त बनती है, और मन्दाग्नि दूर होती है।

शुक्रकी निर्बलता-जनित अग्निमांद्य रोग अन्य प्रकारक अग्निमांद्य रोगोंकी अपेक्षा अति भयंकर त्रासदायक होता है। इस प्रकार अन्न पर अरुचि ज्यादा होती है। अनेकोंको अन्नकी वास भी सहन नहीं होती। ऐसी परिस्थितिमें वंगभस्म अच्छा काम करती है। इस प्रकार और उसके परिणाम रूप वमन रोगमें वंगका अच्छा उपयोग होता है।

उदरमें मांसार्बुद (Cancer) उत्पन्न होनेसे यदि वमन होती रहती हो, तो उसमें वंगभस्म लाभदायक है। वंगसे मांसार्बुदके विषप्रकोपका शमन होता है। इस रोगमें आयुर्वेदीय औषधि उपयोगी हैं—वंग और ताम्र। इनमें ताम्र उग्र होनेसे कफ-प्रधान अथवा वात-कफप्रधान दोषमें लाभदायक है। वंग इनसे अन्य दोषप्रकोपमें देनी चाहिये। मांसार्बुदकी रक्तवाहिनियोंकी विकृति वंगभस्मके सेवनसे दूर होती है। इस विकृति पर नागभस्मका भी उपयोग होता है।

हस्तमैथुन आदिके व्यसनका अतियोग या अन्य रीतिसे अधिक शुक्रपातके पश्चात् शक्तिपात होता है, उसे वंगभस्म दूर करती है। इसके सेवनसे इन्द्रिय समूहको शक्ति प्राप्त होने पर दुष्ट लालसा भी स्वयं-मेव न्यून हो जाती है।

वंगभस्म उत्तेजक औषधि नहीं है फिर भी शक्तिवर्द्धक है, और इसी गुणके हेतुसे वह वृष्य मानी गई है। शुक्रपातके अतियोगसे नपुंसकता आई हो, तो उसे यह दूर करती है। कितनेक मनुष्योंमें पुरुषत्व होने पर भी मनकी भावना रतिके प्रतिकूल होती है, अर्थात् रति करनेमें प्रेम नहीं है, और अनेकोंको अंडकोश आदि इन्द्रियोंकी वृद्धि योग्य परिमाणमें न होनेसे पुरुषत्वमें कुछ न्यूनता रहती है। इन सब प्रकारोंमें वंगभस्म अच्छा काम करती है।

वंगभस्म शुक्रस्थान और शुक्रधातु, दोनोंको शक्ति और पुष्टि देने वाली है। अतः इसके सेवनसे शुक्रस्थान सशक्त बनता है, और शुक्र धातु सम और यथायोग्य उत्पन्न होने लगती है। परिणाममें सब धातु पुष्ट होजाती है। समस्त देहको पुष्टिकी प्राप्ति होती है। शुक्र धातुका कार्य बल और बुद्धि उत्पन्न करनेका है। इन कार्योंकी सिद्धिसे सारा शरीर और सब इन्द्रियाँ प्रबल हो जाती है। सब धातु और इन्द्रियें सबल और दृढ़ होनेसे देहका वर्ण सुन्दर होजाता है। शरीर

तेजस्वी, स्फूर्तिवान और वलवान प्रतीत होता है, वुद्धि तेजस्वी वनती है, और स्मरण-शक्ति वढ़ जाती है।

वंगभस्मका कार्य पूय उत्पन्न करने वाले जन्तुओं पर जन्तुघ्न है। व्रणमेंसे पूय गाढ़ा पीले रंगका निकलता हो, ऐसे रोगियोंको व्रण-रोपणार्थ अन्य क्रिया करनेके साथ वंगभस्मका सेवन करानेसे सत्वर ज्यादा लाभ होनेके अनेक उदाहरण मिले हैं।

शुक्रधातुके २ कार्य हैं—गर्भसंजनन और वुद्धिवर्द्धन। गर्भ-संजननके लिये उपयोग न होने पर जो वीर्य संचित रूपसे रहता है, उससे वुद्धि और स्मरण-शक्तिको लाभ पहुँचता है। इस दृष्टिसे वंग भस्मको वुद्धि और प्रज्ञा वढ़ाने वाली कहा है, वह योग्य ही है।

स्त्रियोंके जननेन्द्रिय-सम्वन्धी विकारों पर वंग भस्मका अच्छा उपयोग होता है। अंडकोष (वीजाधार) की फलवाहिनियोंकी अशक्तिसे स्त्री-जननेन्द्रिय निर्वल रहती हो, और इसी कारणसे मासिकधर्म न आता हो, तो वंगभस्म और लोह भस्म एलुआके साथ मिला, गोली करके देनी चाहिये। अथवा वंग भस्मका सेवन कन्या-लोहादि वटीके साथ कराना चाहिये।

वध्यात्व दूर करनेके लिये वंग भस्मका उपयोग होता है। वंध्यात्व अनेक कारणोंसे होता है। उनमें से यदि स्त्रियोंके वीज-कोषोंमें उत्पन्न होनेवाला स्त्रीवीज-डिम्ब (Ova) निर्वल हो, या वीजाधार अशक्त होनेसे वलवान स्त्रीवीजोंकी उत्पत्ति न हो सकती हो; अथवा स्त्रियों की मनोवृत्ति विकृत होनेसे वंध्यात्व रहता हो, प्रदरका विकार अतिशय वढ़ जानेसे निर्वलता रहती हो, पूयमेह (सुजाक) के हेतुसे अत्यन्त अशक्ति आकर वंध्यत्व आया हो, अथवा फिरंग (उपदंश) के संसर्गसे।अन्तरेन्द्रियकी शिथिलता, व्रण या अन्य विकृति होजानेके पश्चात् वध्यात्व आया हो, तो इन सव दोषों पर वंगभस्म के उपयोगसे अच्छा लाभ पहुँचता है। गर्भाशय और वीजाधार सुदृढ़ होते हैं, रज शुद्ध होता है, वीज सवल होते हैं, निर्वलता दूर होती है, मन वलवान वनता है और गर्भ धारण होजाता है।

अनेक स्त्रियोंको रजोदर्शनकालमें वस्ति भाग (गर्भाशय) में भयंकर शूल चलता है। इसमें अनेक कारण हैं। इनमें वीजाधारोंकी शिथिलता, रजस्राव रुक-रुककर होना या रजस्रावका विल्कुल मार्गसे वाहर न होना, भीतर ही संचित होते रहना, इन कारणोंसे वस्ति भागमें पीड़ा होती हो, तो वंग भस्मके सेवनसे लाभ होजाता है

विशेष करके क्रोधी, दुराग्रही, निर्बल मन वाली, कोमल प्रकृति और कामल स्वभाव वाली अशक्त स्त्रियोको वंग भस्म विशेष हितकर है।

वंग भस्म जीर्ण त्वचाके रोगो पर भी अच्छा प्रभाव दिखाती है। हरतालमारित वंग भस्मका उपयोग उपदंशजनित त्वग्रोगमें अधिक होता है। त्वचाके रोगोंमें भी पुराना व्युची रोग (Eczema), जिसमें बहुत खाज आती रहती है, त्वचा काली और शुष्क होजाती है; या छोटी-छोटी फुन्सियाँ और पीले-पीले फोड़े होकर पतला पीले रंगका जल जैसा स्राव या पूय जैसा गाढ़ा स्राव होता रहता है। इस रोग पर बाह्य उपचारके साथ वंग भस्मका सेवन करानेसे सत्वर लाभ पहुँचता है। विकार जितना जीर्ण, उतना ही वंग भस्मका कार्य अधिक स्पष्ट होता है। मात्रा ८०० रत्ती जितनी सूक्ष्म देनी चाहिये।

(औ० गु० ध० शा० के आधारसे)

वंग भस्म कफ और पित्त दोष, रस, रक्त, मांस, अस्थि और शुक्र दूष्य, एवं आमाशय, यकृत, प्लीहा, अन्त्र, त्वचा, वातवाहिनियाँ, वृक्कस्थान, मूत्राशय, गर्भाशय, मूत्रेन्द्रिय, शुक्रस्थान, वृषण, हृदय, फुप्फुस, मनोदेश और बुद्धि, इन स्थानो पर प्रभाव दिखाती है। इनमें शुक्रस्थान पर अपना विशेष प्रभाव पहुँचाती है।

देह का योग्य विकास होनेके पहले लड़कियोका पुरुष समागम होता है, तब स्थानिक शिथिलता उत्पन्न होती है। उस हेतुसे प्रदर रोग उत्पन्न हुआ हो, पतला स्राव होता रहता हो, तो वंग भस्म, फिटकरीके फूले, माजूफल और बबूलकी कच्ची फलीके चूर्णको मिला वर्त्ति बनाकर योनि में रखनेसे शिथिलता दूर होकर प्रदर रोग निवृत्त होजाता है। साथमें वङ्गभस्म, रससिन्दूर और बबूलकी फलीके चूर्णका उदर सेवन कराया जाय, तो विशेष लाभ पहुँचता है।

यदि वात पित्त प्रकोप सहप्रदर उत्पन्न हुआ हो, स्राव पतला, उष्ण, झागयुक्त हो, देहमें स्थान-स्थान पर वातज पीड़ा होती रहती हो, देह निस्तेज और निर्बल हो गया हो, तो वङ्ग भस्म, सुवर्णमाक्षिक भस्म, गोदन्ती भस्म तथा असगंध, शतावर और गोखरूके चूर्णको मिलाकर प्रातः साय दूधके साथ देनेसे कुछ दिनोमें रोग शमन होजाता है।

कीटाणुजन्य कर्णपाक होने पर कानमें से पूय निकलकर जहाँ-जहाँ लग जाता है, वहाँ-वहाँ फोड़े होजाते है। एव बाह्य उपचार करने पर दीर्घकाल तक अच्छा नहीं होता। एक स्थानके फोड़े दूर

होते है, उतनेमें दूसरे स्थानमें फोड़े तैयार होजाते हैं। धीरे-धीरे विष अधिकाधिक स्थानमें फैलता जाता है। ऐसे विकार पर बाह्य उपचार (दशांगलेप आदि) के साथ अन्तरोपचार वङ्ग भस्मका सेवन कराना विशेष लाभप्रद सिद्ध हुआ है।

कभी कर्णपाक शमन होजाने पर कानके पीछे कफमेदज ग्रन्थि उत्पन्न हो जाती है। उसका उपचार न करने पर वह बहुत बढ़ जाती है। उस पर वङ्ग भस्म १ रत्ती और ताम्र भस्म ½ रत्ती मिला उसमें से ३ विभाग कर ४—४ घण्टे पर दिनमें ३ बार शहदके साथ देते रहने और ग्रन्थि पर निवाये सरसोंके तैलका मर्दन दिनमें दो बार करते रहनेसे थोड़े ही दिनोंमें ग्रन्थि बैठ जाती है।

वातवृद्धिसे उत्पन्न वाताटोप पर वंग भस्म १-२ रत्ती और लौंग, जायफल, दालचीनी, इन ३ की काली राख ४ रत्ती मिलाकर २-२ घण्टे पर २-३ बार देनेसे चमत्कारिक लाभ हो जाता है।

दूसरी विधि—शुद्ध कलईको एक कड़ाहीमें डालकर चूल्हे पर चढ़ावें। कलईका रस होने पर उसमें पलास-पुष्प (केसूला) का चूर्ण थोडा-थोड़ा डालते जायँ और लोहेकी कलछीसे हिलाते रहे। चलानेके लिये कलछी पर लकड़ीका दस्ता लगवा लेनेसे हाथ नहीं जलेगा। ६ घण्टे तक तेज अग्नि देनेसे भस्म सफेद होजाती है। फिर अग्नि देना बन्द करे, और भस्मको कडाहीमें एक थाल रखकर ढक देवे। ठण्डा होने पर कपडेसे छानकर कच्ची भस्मको अलग करें। पक्की भस्मको घीकुँवारके रसमें ६ घण्टे खरल कर दो-दो तोलेकी टिकिया बनावें। प्रत्येक टिकियाको आकके पत्तोंमें लपेट कर ऊपर डोरा बाँधे। फिर हाँडीमें बन्द कर गजपुट देनेसे एक ही पुटमें भस्म सफेद होजाती है। यदि भस्म मुलायम न हुई हो, दूसरी बार गजपुट दें। (वै० चि० स०)

मात्रा—१ से ३ रत्ती तक दिनमें २ समय मलाई और मिश्रीके साथ या रोगानुसार अनुपानके साथ देवें।

उपयोग—यह भस्म प्रमेह, प्रदर, धातुक्षीणता, बहुमूत्र, वीर्यस्राव, स्वप्नदोष, श्वास, रक्तपित्त, पाण्डु आदि रोगोंको दूर करती है। स्त्रियोंके गर्भाशयके दोष, अल्पार्त्तव और कष्टार्त्तवमें भी लाभदायक है। एवं वातनाशक और शुक्रवर्द्धक है। विशेष वर्णन प्रथम विधिमें लिखा है।

तीसरी विधि—१ सेर शुद्ध कलईको कड़ाहीमें डालकर रस करे। फिर हल्दी, अजवायन, जीरा, इमलीकी छाल और पीपल (अश्वत्थवृक्ष)

की छालका अलग-अलग चूर्ण एक-एक सेर लेवें। पहले थोड़ा-थोड़ा हल्दीका चूर्ण डालते जायें और बड़े कलछेसे चलाते रहे। अग्नि तेज देवें। हल्दीके चूर्णके समाप्त होजाने पर अजवायनका चूर्ण डालते जायँ, पश्चात् जीरा, इमलीकी छाल और पीपलकी छालका चूर्ण अनुक्रमसे डालें। इस तरह सब चूर्ण समाप्त होने पर कलईकी भस्म होजाती है। फिर कड़ाहीमें भस्मको इकट्ठी कर ऊपर से मिट्टीका सरव ढक देवे और लगभग ६ घण्टे तक तेज अग्नि देनेसे भस्म सफेद रंगकी होजाती है। पश्चात् कडाही ठण्डी होने पर भस्मको कपडेसे छान लेवें। सेर भर कलईमेंसे कोई-कोई समय १–२ तोले जितनी छोटी-छोटी कच्ची कलईकी गोलियाँ रह जाती हैं, उनको अलग करें। भस्मका रंग लगभग खडिया मिट्टी जैसा सफेद होता है। (र० च०)

वक्तव्य—इस भस्मको घीकुँवारके रसमें खरल कर दूसरी विधिमें लिखे अनुसार ४-६ गजपुट दे, तो मुलायम बन जाती है।

मात्रा और उपयोग—प्रथम विधिके अनुसार।

चौथी विधि—तीसरी विधिकी वंगभस्मके साथ १२वाँ हिस्सा हरताल मिला घीकुँवारके रसमें १२ घण्टे तक खरल कर, टिकिया बना, सराव-सम्पुट करके गजपुटकी अग्नि दे। स्वाग शीतल होने पर पुनः हरताल मिला, घीकुँवारके रसमें खरल करके गजपुट दे। इस रीतिसे ७ गजपुट देनेसे काले रङ्गकी उत्तम भस्म तैयार होती है।

मात्रा—½ से १ रत्ती रोगानुसार अनुपानके साथ देवे।

उपयोग—यह भस्म हरतालके योगसे तैयार होनेसे उग्र स्वभाव वाली है। जिसका शुक्र उपदंश आदि रोगसे दूषित होगया हो, उसके लिये यह अति हितकर है। पुराना रक्तदोष, त्वचादोष, कृमिविकार, मांसार्बुद, पुराना व्युचीरोग, सूक्ष्म ज्वर, जीर्णज्वर, पूयमेह (सुजाक), मन्दाग्नि आदि रोगोंको दूर करनेमें अन्य प्रकारकी वंगभस्मकी अपेक्षा यह अधिक हितकर है। शेष गुण प्रथम विधिमें लिखे है।

(६) त्रिवंग भस्म।

प्रथम विधि—शुद्ध कलई, शुद्ध शीशा और शुद्ध जसद, तीनो १५-१५ तोले लेकर कडाहीमें डालकर तेज अग्नि पर रस करे। फिर घीकुँवारके मूलके डंडेसे घोटते रहे। जब तीनो धातुओंका चूर्ण हो जाय, तब हल्दीका चूर्ण २। सेर लेकर, थोड़ा-थोड़ा डालते जायँ और डंडेसे चलाते रहें। फिर भस्मको तवेसे ढककर १२ घण्टे तेज अग्नि

देवे। स्वांग शीतल होने पर भस्मको छानकर हल्दीके क्राथ और घीकुँवारके रसकी १४-१४ भावना देवें। वार-वार १२-१२ घण्टे खरल करके छोटी-छोटी टिकिया बाँधें। फिर सूर्यके तापमें सुखा, सम्पुट कर गजपुट अग्नि देवें। इस तरह २८ पुट देनेसे मुलायम, सुन्दर, पीले रंगकी उत्तम भस्म बनती है। (आ० गु० ध० शा०)

मात्रा—१ से २ रत्ती शहद, शर्बत बनफशा, शर्बत नीलोफर, आँवलेका मुरब्बा, दूध, घृत या रोगानुसार अनुपानके साथ देवें।

उपयोग—त्रिवंगभस्म शक्तिदायक होनेसे नपुंसकत्व, मांस-पेशियाँ और रक्तवाहिनियोंगत वात पर उत्तम लाभदायक है। यह भस्म प्रमेहोंमें इक्षुमेह, हरिद्रामेह और लालामेह पर अधिक गुण पहुँचाती है। इसके सेवनसे वार-वार मूत्रोत्सर्गकी शंका होना, मूत्रकी उत्पत्ति ज्यादा होना, ये विकार दूर होते हैं। मूत्रोत्सर्ग क्रिया पर इसका मुख्य उपयोग होता है। इसी हेतुसे मधुमेहमें भी इसका उपयोग किया जाता है, परन्तु अकेली नागभस्मके सेवनसे मधुमेहमें प्रायः अधिक लाभ होता है। मधुमेह संधिवातके पश्चात् उत्पन्न हुआ हो, या मधुमेही रोगीको बहुत समय पहले संधिवात हुआ हो, अथवा शिर दर्द, उदर पीड़ा, या अन्य अजीर्ण रोग पहलेसे रहा हो और पश्चात् मधु-मेहकी उत्पत्ति हुई हो, तो नागकी अपेक्षा त्रिवंग अधिकतर हितकारक है। मधुमेहकी अत्यन्तावस्था प्राप्त होगई हो, और उसमें प्रमेहपिटिका (अदीठ फोड़ा आदि) होगई हो, तो त्रिवंग और नागकी अपेक्षा अकेले शिलाजीतका ही उत्तम उपयोग होता है।

त्रिवंग उत्तम वाजीकर है। नपुन्सकताको दूर करनेमें अच्छी उपयोगी है। अति वीर्यपात या अति स्त्रीसेवनसे मासपेशियाँ शिथिल होकर नपुन्सकता हुई हो, वार-वार स्वप्नावस्था होनेसे नपुन्सकता आई हो, या कामेच्छा तृप्त करनेको बढ़ी हुई लालसासे नपुन्सकता आई हो, आदि कारण होने पर त्रिवंगका उपयोग उत्कृष्ट है।

यह भस्म वीर्यवर्द्धक होनेसे जननेन्द्रियकी मासपेशियोंको शक्ति प्रदान करती है। इस कारण नपुन्सकत्व न होने पर भी स्वप्नावस्था या अन्य कारणोंसे स्वतः शुक्रस्राव होता हो, तो उस विकार पर त्रिवंगभस्मका उत्तम उपयोग होता है। नपुंसकत्वका एक प्रकार ऐसा है कि, पहले पुरुषार्थ प्रतीत होता है, परन्तु स्त्री दृष्टिगोचर होने पर तुरन्त नष्ट होजाता है। भीति, घबराहट, लज्जा और चिन्ता अधिक होना आदि लक्षण होते है। इस विकार पर यह लाभदायक है।

स्त्रियोंके वंध्यत्वमें त्रिवंगका उपयोग होता है। गर्भाशय या योनि मार्गमें शारीरिक प्रतिबन्ध आनेसे वंध्यात्व आया हो, तो उस प्रतिबन्धको बाह्य-क्रिया या शस्त्रसे दूर करना ही अच्छा है। ऐसा प्रतिबन्ध न हो, बीजाधारो (Ovaries) की अशक्ति, या संकोच अथवा फलवाहिनियो (Oviducts) की अशक्ति या संकोच हो, किंवा इन अवयवोंका पूरा विकास न होनेसे वंध्यत्व आया हो, तो इसके सेवनसे लाभ होजाता है। जब बीजकोषोका विकास नही होता, तब शरीर सुन्दर नही दीखता, नितंब भाग पूर्ण भरा हुआ नही भासता, बिल्कुल शुष्क बैठा हुआ होता है। ऐसे ही छाती भी योग्य परिमाणमें उठी हुई नही दीखती, संकुचित होती है। मासिक-धर्म प्रारम्भ होजाने पर भी चेहरे पर योग्य स्त्रीभाव नही आता, इन लक्षणोसे अन्तर अवयव पूर्ण विकसित नही है, ऐसा जानकर त्रिवंगका सेवन कराना चाहिये।

यह भस्म स्त्रियोकी अंतरेन्द्रियको उत्तम शक्तिदायक है। ज्यादा संतति या थोड़े-थोड़े समयमें संतानोत्पत्ति होने और बार-बार गर्भपात होनेका स्वभाव होजानेसे स्त्रियोकी अंतरेन्द्रियमें निर्बलता आजाती है। इस कारण बाह्य अवयव और शरीर भी कमजोर हो जाते है, ऐसे समय पर त्रिवंग भस्मका उत्तम उपयोग होता है।

बाल अवस्थामें असमय पर मासिक-धर्मका प्रारम्भ होने या किशोरावस्थामें अधिक पुरुष-समागम होनेसे स्त्रियोकी अंतरेन्द्रिय पीड़ित और निर्बल होजाती है। इस कारणसे गर्भ नही रहता और कदाच रह जाय, तो भी गर्भकी वृद्धि योग्य परिमाणमें न होकर गर्भस्राव या गर्भपात होजाता है। प्रसव पूर्ण समय पर नही होता। यदि पूर्ण समय पर प्रसव हुआ, तो भी संतान बिल्कुल कृश और टेढ़ी-बाँकी जन्मती है। ऐसी स्त्रियोकी अंतरेन्द्रियको शक्ति देने और कार्यक्षम बनानेके लिये त्रिवंग भस्मका सेवन लाभदायक है।

कामेच्छा मर्यादा बाहर होनेसे या अधिक समय पुरुष समागम होनेसे स्त्रियोके योनिमुखमेंसे सफेद, चिपचिपा या पतला स्राव (श्वेतप्रदर) होता है, यह स्राव कतिपय समय इतना अधिक होता है, कि इस स्रावके कारण स्त्री लाचार होजाती है। इनमेंसे अनेकोंके मनमें उपभोग-चित्र आने पर तत्काल अति स्राव होजाता है, एवं आनुषंगिक कृत्य देखने, सुनने या स्मरण आजाने पर भी स्राव होजाता है। इस रोगमें त्रिवंगका अच्छा उपयोग होता है।

छोटी लड़कियोंकी खराब आदतके कारण या ऋतुस्नाता होनेके पहले पुरुष समागम होनेसे अंतरेन्द्रिय निर्बल होजाती हैं, जिससे थोड़े-थोड़े श्रमसे थक जाती है। योनिमुखमें से जल जैसा पतला स्राव सारे दिन होता रहता है। यह स्राव त्रिवंग भस्मके सेवनसे बन्द हो जाता है, और शरीरमें बल भी आजाता है। (अनुपान रूपसे गिलोयसत्व, शीतल मिर्च और गोखरूका चूर्ण देवे। ऊपर दूध पिलावे। दिनमें दो बार।

मांसपेशियों और रक्तवाहिनियोंकी विकृतिसे सर्वाङ्गमें विशेषतः मस्तिष्कमें शूल निकलता रहता है। भीतरसे रक्तवाहिनियोंका आकुंचन होता है, और शूल भी निकलता है। क्वचित् ऊपरसे रक्तवाहिनी मोटी बनकर अशक्त होजाती है। एवं जीवनीयशक्तिका इन रक्तवाहिनियोंके ऊपरका अधिकार नष्ट होनेसे हाथ-पैर उठाना या अन्य क्रिया करना अशक्यप्राय होजाता है, हाथ-पैरकी शक्ति नष्ट होनेसे हाथ-पैरोंमें कम्प होता है, और शरीर कुब्ज बन जाता है। इस विकार पर त्रिवंग भस्मका अच्छा उपयोग होता है।

त्रिवंग भस्म वात और वातपित्त दोष, रक्त, मांस, अस्थि और शुक्र, ये दूष्य, तथा मगज, वातवाहिनियाँ, वातवहमंडल, शुक्रस्थान, गर्भाशय, अंडकोष और स्त्री बीजकोष, इन स्थानोंमें विशेष लाभ पहुँचाती है। (औ० गु० ध० शा०)

दूसरी विधि—शुद्ध कलई, शुद्ध शीशा और शुद्ध जसद, तीनों १५-१५ तोले लेकर कड़ाहीमें तेज अग्नि पर रस करे। रस होने पर हल्दी, इमलीकी छाल और पीपलकी छालका चूर्ण अलग-अलग ६०-६० तोले लेकर, क्रमशः थोड़ा-थोड़ा चूर्ण डालते जायँ और बड़के डंडेसे चलाते जायँ। एक प्रकारका चूर्ण समाप्त होने पर दूसरा और तीसरा चूर्ण डाले। फिर भस्मको तवेसे ढक, १२ घण्टे तक तेज अग्नि दे। स्वांग शीतल होने पर भस्मको छान बड़की जटाके क्वाथके ३ और घीकुँवारके रसके ४ पुट देनेसे उत्तम पीले रङ्गकी मुलायम भस्म बन जाती है।

मात्रा और उपयोग—पहली विधिके अनुसार।

तीसरी विधि—शुद्ध कलई, शुद्ध शीशा और शुद्ध जसद, तीनोंको समभाग मिला कड़ाहीमें डाल, चूल्हे पर चढ़ाकर अग्नि तेज दें, और घीकुँवारके मूलके डंडेसे घोटते रहें। चूर्ण होजाने पर घीकुँवारका रस डालते जायँ और घोटते रहें। ६ घण्टे बाद भस्म काली होने पर अग्नि देना बन्द करे। स्वांग शीतल होने पर कपड़ेसे छानले

छनी हुई भस्मको घीकुँवारके रसमें खरल कर, टिकिया बाँध, सम्पुट करके गजपुट दें। इस तरह ३ गजपुट देनेसे मुलायम भस्म बन जाती है।

मात्रा, अनुपान और उपयोग—पहली विधिके अनुसार।

(७) जसद भस्म।

बनावट—शुद्ध जसद १ सेर कढाहीमें डाल, चूल्हे पर चढ़ाकर तेज आग देवे; और लोहेके कलछेसे चलाते रहे। आगकी लपटे उठने पर नीमके पत्तोंका स्वरस २० तोले डालें। फिर आगकी लपटे उठे, तब पुनः २० तोले रस डालें। इस तरह ४ समयमें स्वरस एक सेर डाले। पश्चात कढ़ाहीमें मिट्टी अथवा लोहेका ढक्कन ढककर २ घण्टे तेज अग्नि देनेसे भस्म होजाती है। कढ़ाही ठंडी होने पर भस्मको कपड़ेमें छान ६ घण्टे घीकुँवारके रसमें खरल कर छोटी-छोटी टिकिया बनावें। पश्चात् सूर्यके तापमें सुखा सराव-सम्पुटमें रखकर गजपुट दे। इस तरह ३ गजपुट देनेसे भस्म मुलायम और गुणकारी बनती है।

सूचना—स्वरस निकालने के पहले पत्तोंको जलमें धो लेवें। फिर कूट, स्वरस-यन्त्र बन्द कर वाष्प पर पकाकर यथाविधि स्वरस निकाल लेवें।

मात्रा—१ से २ रत्ती तक दिनमें २ समय मक्खन-मिश्री, दूध, घृत, मिश्री या मलाईके साथ अथवा रोगानुसार अनुपानसे दें। नेत्र-रोगमें २ रत्ती जसद भस्म १ तोला गायके मक्खनमें मिलाकर दिनमें २ समय अंजन करें।

उपयोग—जसद भस्म कषाय और अति शीतल गुणवाली है। रसवाहिनी और रसवहापिण्डकी विकृतिमें यह भस्म उत्तम औषधि मानी गई है; और कफपित्त शामक है। जसद भस्म नेत्र रोग, दाह, प्रदर, पित्तप्रमेह, खाँसी, अतिसार, संग्रहणी, धातुक्षय, जीर्णज्वर आदि रोगों को दूर करती है। नेत्रोंको अत्यन्त हितकर है। इस भस्मके सेवनसे प्रमेह, पाण्डु और श्वास रोग दूर होते हैं।

ज्वर रोग, जिसमें सारे शरीरमें दाह और व्याकुलता हो और क्षयकी प्रथमावस्थामें सूक्ष्म ज्वर रहता हो, इन दोनों पर जसद भस्मका अच्छा उपयोग होता है। कंठरोग, गंडमाला, अपची, अन्तरेन्द्रियमें शोथ, इन सब व्याधियोंमें इस भस्मके सेवनसे लाभ होता है।

आँतोंमें शोथ होने पर एक प्रकारका अतिसार होता है, साथ में वमन भी होती है। इस अन्त्रशोथके हेतुसे ज्वर भी आता है। उदरमें भयंकर शूल चलता है। इस रोगमें जीभ फटी हुई या धुपे और

रँगे हुये चमड़ेके समान मुलायम रहती है। आवाज बिल्कुल क्षीण हो जाती है। रोगी बिल्कुल कृश होजाता है। हाथ उठानेको भी शक्ति नहीं रहती। ऐसी भयंकर स्थितिमें भी जसद भस्मका बहुत अच्छा उपयोग होता है। इस रोगमें जसद भस्म १ रत्तीको ६ रत्ती मिश्रीके साथ मिलाकर ६ विभाग करें, और २-२ घण्टे पर एक-एक पुड़िया को छाछ या दूधके साथ देते रहनेसे सत्वर लाभ होने लगता है। छाछ या दूध सहन न कर सकें, ऐसे रोगीको, जवका यूष या चावलकी खीलोंका यूष देनेसे भी लाभ पहुँच सकता है। इसके साथ तालमखानेका जल देते रहनेसे कार्यको अच्छी सहायता मिलती है। (किसीको आँतोमें शोथ आने पर उस स्थानमें स्पर्श भी सहन नहीं होता, ज्वर १०१-१०२ रहता है, वार-वार वमन होना, अति तृषा, पतले दस्त लगते रहना, निद्रानाश और अतिअशक्ति आदि लक्षण उपस्थित होते है। उस पर यह जसद भस्म मिश्रीके साथ दी जाती है। तथा उदर पर दशांग लेप लगाया जाता है।)

कंठमें रही हुई गाँठोका जीर्णशोथ और पुराने कंठरोगमें जसद भस्म अच्छी लाभदायक है। वलय, वृन्द और वलास, इन कंठरोगोंमें तो जसद भस्मका उपयोग नहीं होता, परन्तु स्वरघ्न, विदारिका, गिलायु, अधिजिह्व, उपजिह्व, इन विकारो पर जसद भस्मका उपयोग होता है। इनके अतिरिक्त स्वरसाद और स्वरभंग, इन विकारोंमें जसद भस्मका अच्छा उपयोग होता है। यदि ये विकार उपदंशजनित हो, तो जसद भस्मका उपयोग नहीं करना चाहिये। क्षयजन्य या कफजन्य अथवा रसवहापिण्ड (लसीका ग्रन्थियो) की विकृतिमें उपद्रव रूप उत्पन्न हुए हो, तो जसद भस्मके सेवनसे लाभ होजाता है।

जन्मकालमें बालकोकी शरीर रचनामें न्यूनता रह जाने पर किसीको स्तन, पीठ, मस्तिष्क आदि प्रदेश पर ग्रन्थि होजाती है। फिर उसमेंसे रस निकलता है या रस न निकलते हुए ग्रन्थि रसौलीके सदृश बढ़ती जाती है। उस पर जसद भस्म, प्रवालपिष्टी और अमृता-सत्व शहदके साथ देवे और ग्रन्थि भेदन लेप (दन्तीमूल, चित्रकमूलकी छाल, सेहुँड़का दूध, आकका दूध, गुड़, गोडंबी, कासीस और सेंधा नमकका लेप) करनेसे गाँठ बिखर जाती है।

पोथकी, अभिष्यंद, वर्त्म, शुण्डिका आदि नेत्ररोगो पर जसद भस्मका उत्तम उपयोग होता है। इन रोगोमें अंजनके लिये १ रत्ती जसद भस्मको आधे तोले शतधौत गोघृत या मक्खनमें मिलाकर दिन

में दो बार प्रातः सायं अंजन करना चाहिये। इस अंजनसे कनीनिका या भौंफणींके पास पड़ा हुआ व्रण भी भर जाता है।

नाड़ीव्रण, भगंदर, दुष्ट व्रण आदि विकारोंमें वाह्य उपचारके साथ इस भस्मका सेवन करानेसे अच्छा लाभ पहुँचता है।

जसद भस्मका उपयोग क्षयकी विशिष्ट अवस्थामें होता है। जब उरःक्षत होकर फुफ्फुसका कुछ भाग नष्ट हुआ सा भासता है, सारे शरीरमें विष फैलकर रक्त दूषित होकर तीव्र ज्वर आता है, प्रातःकाल के समय प्रस्वेद आता है, अङ्ग गल जाता है, बलमांसका क्षय हो जाता है, ऐसे समय पर शिलाजतुके साथ इस भस्मका सेवन कराना लाभदायक है। इस औषधिके योगसे क्षयमें नया विष बननेकी क्रिया कम होजाती है और रोगीको शान्ति मिलती है।

जसद भस्म प्रमेहमें उपयोगी है। मेहके अन्य प्रकार और मधुमेह, इनमें आयुर्वेदकी दृष्टिसे अन्तर है। इस भस्मका उपयोग प्रमेह और मधुमेह, दोनोंमें होता है, विशेषतः पित्तभूयिष्ट लक्षण होने पर इसका उपयोग करना चाहिये। अग टूटना, हाथ-पैरोंमें दाह, सारा शरीर गरम रहना, अधिक तृषा, परन्तु थोड़े जलपानसे शमन होजाना, शरीरमें स्थान-स्थान पर सुई चुभानेके समान पीड़ा होना, जिह्वा कठोर शुष्क होजाना, कंठमें रही हुई गॉठों पर शोथ-सा हो जाना, भयंकर थकावट, थोड़ा काम करने पर थक जाना, मूत्रमें मधु (शर्करा) का परिमाण मर्यादामें होने पर भी थकावट अधिक हो, मस्तिष्कमें अस्व-स्थता, विस्मृति, विचार शक्तिका ह्रास, थोड़ा-सा विचार करने पर मन उपराम हो जाना, मस्तिष्क गरमसा होजाना, अनेक समय विचार करते-करते मन शून्य होजाना इत्यादि लक्षण पित्तजन्य क्षार, नील, काल, पीत (हारिद्र), रक्त, माजिष्ट इन ६ जातिके प्रमेहोंमें होते है। इन सब पर इसका उत्तम उपयोग होता है।

मधुमेहकी आधुनिक उपपत्ति अनुसार इन्सूलिन (Insuline) नामक मधुपिण्डोंमेंसे निकाला हुआ द्रव्य मधुमेहमें उपयोगी है। इन्सूलिनकी पूर्ति कम हो जाने पर रक्तमें शकर (मधु) अधिक हो जाती है। पश्चात् वह रक्तमेंसे मूत्र द्वारा बाहर निकलती है। इस हेतुसे इन्सूलिन शरीरमें बाहरसे डालने पर निसर्गतः कमी हुए या उत्पन्न न हुए जो इन्सूलिन द्रव्य, वह बाहरसे मिल जाने पर उसका शर्करा (मधु) नियमनका कार्य अच्छी रीतिसे हो सकता है। मधुमेह में मूत्रमें मिलने वाली वा रक्तमें संचित होने वाली शर्करा अग्न्याशय

(Pancreas) से उत्पन्न अंतरस्राव (Internal secretion) अर्थात् इन्सूलिन द्रव्यके अभावका परिणाम है। यह आधुनिक मान्यता है।

सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करने पर अन्य उपाय भी मधुमेहमें करने की आवश्यकता है। क्योंकि अग्न्याशयमें मधुद्रावक द्रव्यका अभाव क्यों हुआ ? इस बातका निर्णय दोष-दूष्यके विचारसे ही अधिक स्पष्ट होता है। दोष-दूष्योंके वैषम्यके कारणसे ही यह हुआ है। अतः दोष-दूष्योंकी विषमता दूर करना, यही अन्तिम और श्रेष्ठ उपाय है। इस उपायके लिये जसद भस्म उपयोगी औषध है।

पाण्डु रोगमें हाथ-पैरका टूटना, रसवाहिनी और रसवह पिण्डो की विकृति अधिक हो और पित्त दोषकी प्रधानता हो, तो जसद भस्म का उपयोग करना चाहिये।

गलेकी गाँठ या उदरग्रन्थि बढ़ने पर श्वासका दौरा होता हो, या श्वास रोग और इन गाँठोंका साहचर्य हो, तो जसद भस्मका सेवन कराना चाहिये। अनुपानश—हद-पीपल या सितोपलादि अवलेह।

जसद भस्म कफ और पित्त दोष, रस और मांस दूष्य, तथा रसवाहिनी, रसवहा ग्रन्थियाँ, आँत, कण्ठ, नेत्र, वृक्क, अग्न्याशय, यकृत् और उर पर लाभ पहुँचाती है। (औ० गु० ध० शा०)

सूचना—जसद भस्म जल पर तैरने लगे और नीबूके रसमें डालनेसे बुदबुदे न उठे, उसे निरुत्थ समझना चाहिये।

दूसरी विधि—पहली विधि अनुसार कड़ाहीमें तैयार कर कपड़ेसे छानी हुई जसद भस्मको नीबूका रस, हल्दीका क्वाथ और घीकुँवारका रस, इन ३ औषधियोंकी क्रमशः ३-३ भावना देकर बारबार राजपुट देनेसे उत्तम प्रकारकी भस्म तैयार होती है।

मात्रा और उपयोग—पहली विधिके अनुसार। प्रथम विधिकी अपेक्षा यह भस्म अधिक गुणदायक होती है।

इस भस्मको कतिपय चिकित्सक ६ पुटके स्थानमें ४२ पुट देते है। अधिक पुट देनेसे अधिक गुणवाली होती है।

(८) नाग भस्म।

प्रथम विधि—एक सेर शुद्ध शीशेको कड़ाहीमें डाल चूल्हे पर चढ़ा कर तेज अग्नि दे। रस होने पर शुद्ध मैनशिल थोड़ा-थोड़ा डालते जायँ, और ताजे अडूसेके मोटे डंडेसे चलाते रहे। इस रीतिसे धीरे-धीरे समान मैनशिल डाल देनेसे धूल जैसी सूक्ष्म भस्म हो जाती है।

पश्चात् लोहेके तवेसे भस्मको ढककर ६ घण्टे तक तेज अग्नि देवें। फिर कड़ाही ठंडी होने पर उतार, छानकर कच्ची भस्मको अलग निकाल देवे। पश्चात् छनी हुई शीशा भस्ममें १ सेर शुद्ध गन्धक मिलाकर ६ घण्टे नागरबेल रसमें खरल कर शिवलिंगके सदृश लम्बा गोला बनाकर सूर्यके तापमें सुखावे। फिर सराव-संपुटमें रखकर गजपुटमें फूँक देने से भस्म तैयार हो जाती है। यह भस्म काली होती है, परन्तु अति गुणकारी है। इस भस्ममें अष्टमांश मैनशिल मिला-मिलाकर अड़ूसेके पत्तोंके रसके साथ १२ घण्टे खरल कर २१ गजपुट दिये जायँ, तो आशु फलप्रद बनती है।

मात्रा—१ से २ रत्ती दिनमें २ समय शहद, दूध, मक्खन-मिश्री, सितोपलादि चूर्ण और घृत, हल्दी, आँवला और शहद या रोगानुसार अनुपानके साथ दे।

अनुपान—१ घोर प्रदरपर—वंशलोचन, जीरा, इलायची और मिश्रीके साथ।
२. आमातिसारमें—सोंठ और सौंफके चूर्णके साथ।
३. गुल्ममें—सोंठ और काले नमकके साथ।
४ कफ, वायु और जलोदर पर—अजवायन, पीपल और शहद।
५. उपदंश पर—शीतलचीनी और इलायचीके साथ।
६ धातुक्षीणता पर—मक्खन और मिश्रीके साथ।
७. मधुमेहमें—शिलाजीतके साथ।

उपयोग—इस भस्मके सेवनसे प्रमेह, नेत्ररोग, गुल्म, प्लीहावृद्धि, प्रदर, अतिसार, ज्वर, रक्तगुल्म, आमाशय वृद्धिसे होने वाला अम्लपित्त, मन्दाग्नि, अपची, गंडमाल, धातुक्षय, श्वासनलिकाकी सूजनसे होने वाली खाँसी, आमवात, निर्बलता, शिरदर्द, यकृत् दोष, श्वास रोग, सब प्रकारके मूत्र रोग, धनुर्वात आदि वात रोग, पाण्डु, ये सब दूर होते हैं। इस नाग भस्मके सेवनसे रस धातुसे लेकर शुक्र धातु तक, सब धातु-क्रमक्रमसे पुष्ट होकर उत्तम शक्ति आती है। सब अवयव पुष्ट होते हैं और अग्नि प्रदीप्त होती है।

जब आमाशयका आकार बढ़नेसे अम्लपित्त हो जाता है, तब प्रातः दाह, अतिशय तृषा, तुरन्त वमन करने की इच्छा होना, इत्यादि लक्षण होते हैं। ये विकार अंतः परिमार्जनसे कम हो जाते हैं। इस लिये एक समय अन्तः परिमार्जन (वमन आदि शोधन) करके नागभस्म देनेसे सत्वर लाभ पहुँचता है। नागभस्मके योगसे आमाशयके

आकुंचन होनेमें सहायता मिलती है। उदरमें व्रण होकर अम्लपित्तके समान विकार होता है, वह भी नागभस्मके सेवनसे दूर हो जाता है। इस रोगमें रोगी अत्यन्त क्षीण हो जाता है। यदि रोग जीर्ण होगया हो, तो नागभस्मका उपयोग अवश्य करना चाहिये।

अपची और गंडमाला रोगमें गाँठ सूज जाती है; मात्र उतनी ही दोषोकी दुष्टी नहीं है, परन्तु यह विकार प्राकृतिक है; अर्थात् सारे शरीरमें दोष-दुष्टी फैलने पर होता है। इस विकारमें एक ऐसी अवस्था आती है कि, सब धातु शुष्क और त्वचा भी शुष्क हो जाती है। अस्थि पर त्वचा लपेटी हुई हो, ऐसी बाह्य अवयवोकी अवस्था भासती है। कंठमाला-अपचीकी गाँठ कठोर या सूजी हुई और ऊपर अधिक उठी हुई भासती हो, तो उस पर अन्य औषधियोकी अपेक्षा इस भस्मका उपयोग अच्छा होता है। इसके सेवनका आरम्भ होने पर थोड़े ही दिनोमें गाँठोकी कठोरताका ह्रास होता है। सब धातु शनैः-शनैः पुष्ट होने लगती है। इस तरह यह गंडमालाके उत्पादक विकारको कम करानेके लिये भी उपयोगी है।

नाग भस्म प्राकृतिक रोगकी उत्तम औषधि है। प्राकृतिक रोगके दो प्रकार है। पहले प्रकारका रोग अति दृढ़ जड़ वाला, दीर्घ काल पर्यन्त रहनेवाला; त्रास देने वाला, एवं एक समय मिट जाने पर पुनः-पुनः उठने वाला होता है। क्वचित् कुछ काल तक बिल्कुल नष्ट होजानेका भास होता है, परन्तु थोड़ासा कारण मिलने पर पुनः दर्शन देता है। दूसरे प्रकारका रोग न्यूनाधिक परिमाणमें एकसा बना रहता है। पहले प्रकारकी व्याधियाँ--उन्माद, अपस्मार आदि है। दूसरे प्रकारके रोग मधुमेह, गडमाला, क्षय आदि है। इनमें नित्य टिकनेवाले दूसरे प्रकारके रोगो पर नाग भस्मका अच्छा प्रभाव पड़ता है। प्रथम प्रकारके रोगोमें अभ्रक भस्म तथा द्वितीय प्रकारके रोगोमें नाग भस्म लाभदायक है।

नाग भस्मका उपयोग मधुमेहमें उत्तम होता है। मधुमेह विकार सारे शरीरमें व्यापक दोष और सब धातुओंकी विकृति होने पर उत्पन्न होता है। आयुर्वेदकी दृष्टिसे मधुमेहमें वात, पित्त, कफ तीनो दोष और रस, रक्त, मांस, मेद, वसा, लसिका, मज्जा, शुक्र और ओज, ये सब धातुएँ दुष्ट होजाती है। इन सबकी क्रिया परस्पर एक दूसरे पर होनेके पश्चात् मधुमेह उत्पन्न होता है। इस सिद्धान्तके अनुरोधसे चिकित्सा करनी चाहिये। अर्थात् त्रिदोष अथवा चैतन्याणु

भवन क्रियामें जो विकार हुआ हो, उसे दूर करना प्रथम कर्त्तव्य है। इस तरह जब त्रिदोषमें उत्पन्न हुई विकृति दूर होती है, तभी उस-उस अणुकी बनी हुई पृथक्-पृथक् धातुओंमेंसे दुष्टी दूर होती है। त्रिदोषमें इस रीतिकी दुष्टीके दो प्रकार है। एक अब्धातु उत्पादक, दूसरी अब्धातुशोषक। मधुमेहमें पहले प्रकारकी दुष्टी होती है। नाग भस्मका उपयोग इस प्रथम प्रकारकी दुष्टीके शमनार्थ होता है। इसका सेवन करने पर प्रथम तृषा कम होती है। द्वितीय कार्य मधु (शर्करा) कम करनेका है, वह भी सत्वर होने लगता है। यह कार्य इस भस्ममें शक्तिवर्द्धक गुण होनेसे सत्वर प्रतीतिमें आता है। ऐसे समय पर मात्र गोदुग्धका पथ्य रखनेसे अति शीघ्रतासे अच्छा लाभ पहुँच जाता है। मधुमेहमें अन्य उपद्रवोके शमनके लिये इस भस्मके साथ शिलाजीत देनेसे विशेष फायदा होता है।

मधुमेहके अनेक रोगी स्थूल और अनेक कृश होते है। स्थूल रोगीमें मेदकी दुष्टी अधिक होती है। ऐसे रोगियोंको शरीरके परिमाणमें बल भी कम होता है। मेदस्वी मधुमेही रोगियोके लिये नाग भस्मका उपयोग ज्यादा हितकर है, और कृश रोगियोको दाह आदि लक्षण अधिक परिमाणमें होने पर जसद भस्म लाभदायक है।

नागभस्म कोष्ठशूल पर उपयोगी है। यह शूल एक विशिष्ट प्रकारका होना चाहिये। इसमें अन्त्र और सब कोष्ठगत अवयव बिल्कुल अशक्त होजाते है, और उनका व्यापार शिथिल हो जाता है। यह शूल वातप्रधान या वातपित्तानुबंधी होता है। इस रोगमें थोड़ी-थोड़ी वमन अधिक त्राससे होती है, और वमनका वेग मन्द होता है। ऐसे समय पर नाग भस्मका अच्छा उपयोग होता है। इसके अतिरिक्त रंगके कारखानोंमें काम करनेवालोको जो उदरशूल उत्पन्न होता है, उसमें भी नागभस्म लाभदायक है।

बद्धकोष्टके हेतुसे शौच शुद्धि नही होती। यह विशेषतः आँतो की निर्बलताके कारणसे होता है। इसका हेतु अनेक समय शुक्र क्षीण होनेसे बद्धकोष्ठ होता है। एवं अन्य धातुओंमें क्षीणता होजाने भी कोष्ठबद्धता होती है। इसमें शौचका वेग ही निर्बल होजाता है। वेग उत्पन्न होने पर भी अन्त्रकी बहिर्निःसरण शक्ति न्यून हो जानेसे मल-प्रवृत्ति नहीं होती। ऐसे प्रकारके बद्धकोष्टमें नागभस्म उत्तम कार्य करती है, आँतोको शनैः-शनैः सबल बनाकर नियमित मलत्याग कराती है।

अस्थिगत व्रणमें इस भस्मका अच्छा उपयोग होता है। अस्थि-

धातुकी पुष्टिके लिये पार्थिव आदि घटककी पूर्ति इसके सेवनसे हो जाती है।

मज्जागत दोषोंके योगसे अस्थि क्षीण और नरम होकर टेढ़ी-बाँकी होजाती है, तथा मज्जा भी दुष्ट होजाती है। अस्थियोंके संधिस्थानमें हड्डी बढ़ी-सी या दबी-सी भासती है। कभी-कभी इस विकारके प्रारम्भमें और पश्चात् भी भयंकर वेदना होती है। अस्थि और संधि स्थानोंमें तीव्र शूल उत्पन्न होता है। ज्वर, वमन, बेचैनी आदि लक्षण होते हैं। ऐसी दशा प्रसूतावस्था और सगर्भावस्थामें भी हो जाती है। यह विकार अस्थिमज्जागत वातप्रकोपसे होता है, ऐसा आयुर्वेदका सिद्धान्त है। इस पर नागभस्मका बहुत अच्छा उपयोग होता है। अनुपान—आँवले, गोखरू और मिश्रीका चूर्ण देवे।

अशक्तिसे मलावरोध होकर अर्शरोग उत्पन्न हुआ हो तो वह नागभस्मके सेवनसे दूर होता है। इस रोगमें शोथ होकर भीतरका हिस्सा बाहर निकलता है। वह कितनी ही खटपट करने पर भीतर नहीं जाता, बाहर ही रहता है। अर्शके मस्से बिल्कुल मुलायम और निर्बल होते हैं। शौचके समय मलको बाहर निकालनेकी भी शक्ति नहीं रहती। कृत्रिम उपायोंसे शौच-शुद्धि करनी पड़ती है। ऐसे विकारमें स्नायुओंका शैथिल्य हो, तो नागभस्म देनी चाहिये। परन्तु शुक्रके अति दुरुपयोगके कारण अशक्तता, मलावरोध और अर्श हुए हों, तो नागभस्मकी अपेक्षा वंगभस्मका उपयोग विशेष हितकर है।

पित्तज गुल्म और रक्तज गुल्म, इन विकारों पर नागभस्मका शक्तिवर्द्धक रूपसे उपयोग होता है। पित्तगुल्मके प्रारम्भ-कालमें ही नागभस्मका सेवन कराया जाय, तो अधिक वृद्धि नहीं होती। रक्तगुल्मके प्रारम्भमें तो किसी भी प्रकारकी योजना नहीं की जाती। रक्तगुल्म जीर्ण होने पर (१० मास होजाने पर) ही उसका साध्यत्व होता है—("रक्तगुल्मे पुराणत्वं सुखसाध्य लक्षणम्")।

ग्रहणी और अतिसार, इन व्याधियोंमें शरीर-बल क्षीण हुआ हो, तो रोगको दूर करनेके लिये जो प्रतिकार होना चाहिये, वैसा रोग-निवारक शक्तिसे नहीं होता, जिससे रोग दीर्घकाल-पर्यन्त बढ़ता जाता है। रोगी दिन-प्रति-दिन अधिकाधिक क्षीण होता जाता है। ऐसे समय पर यदि ज्वर आदि लक्षण न हों, तो नागभस्म दी जाती है।

नागभस्म, लोहभस्म, अभ्रकभस्म और सुवर्णभस्म, ये सब ओषधियाँ जीवनीय (जीवनके लिये उपकारक) हैं। ये सब भस्में

शरीरके घटकोंमें नया जीवन उत्पन्न करती है, और घटकोंको अन्नादिकोंमेंसे मूल अंशको उत्तम प्रकारसे शोषण करनेकी शक्ति प्रदान करती हैं। यह इन औषधियोंमें विशेष गुण है। इनमें नागभस्म मांसपेशी आदिके लिये जीवनीय है। अतः इनकी शक्ति क्षीण होने पर नागभस्मका उपयोग करना चाहिये।

नागभस्मका वृष्यत्व (नपुंसकत्व नाशक) गुण जन्म पंढोंके लिये तो प्रतीतिमें नहीं आता। परन्तु मधुमेहके समान क्षीणता उत्पन्न करने वाले रोगोंमे यदि पंढता आई हो, तो नागभस्मके सेवनसे दूर होती है। यदि यह नपुंसकत्व स्नायुओंकी निर्बलताके कारण आया तो, तो भी नागभस्मका उपयोग होता है। एवं अंडकोषकी ग्रन्थियोंकी निर्बलतासे यह रोग उत्पन्न हुआ हो, तो इसके साथ शिलाजतु और स्वर्णभस्म आदि औषधका उपयोग करना चाहिये। पुष्पधन्वा रसमें नागभस्म है, यह रस नपुंसकत्व दूर करनेमें उत्तम है।

यदि वातवाहिनी या मानसिक क्षीणता आदि कारणोंसे पाण्डु रोग उत्पन्न हुआ हो, तो अभ्रकभस्मका सेवन अधिक लाभदायक है। रक्तस्राव या रजःस्रावकी अधिकतासे या मिट्टी खानेसे या कृमि आदि कारणोंसे रक्तके रक्ताणु न्यून होकर पाण्डुरोग उत्पन्न हुआ हो, तो लोहभस्म उपयोगी है। परन्तु अणुभवन क्रिया या धातुपरिपोषण क्रिया, सब इन्द्रिय, हृदय आदि निर्बल होजानेसे पाण्डुरोग हुआ हो, तो नागभस्म उत्तम कार्य करती है। इस भस्मको लोहभस्म और अभ्रक भस्मके साथ मिलाकर भी दे सकते हैं।

जीर्ण पक्षाघातके रोगमें अधिक अबलत्व, विशेष करके शाखाश्रित रक्तवाहिनियां स्नायु, कण्डरा, सबमें ज्यादा निर्बलता आई हो, और इसी कारणसे हाथ-पैरों और अँगुलियोंकी शक्ति क्षीण होगई हो, तो नागभस्म देनी चाहिये।

मधुमेह, अन्य मेह या क्षीणता उत्पन्न करने वाली अन्य व्याधियाँ, इनके अन्तमें भ्रम-सा होना, यह लक्षण होता है। मनमें निकम्मा-निकम्मा विचार आकर मन शून्य-सा होजाता है। यह स्थिति ज्ञानेन्द्रियाँ अशक्त होने अथवा रक्तकी पूर्ति न होने या रक्त निर्बल हो जानेसे होती है। कितनेक रोगी विचारोंमें लीन होजाते है, कितनेक अनैच्छिक कर्म ही भूल जाते हैं, व्यवस्थापूर्वक नहीं कर सकते। जैसे पेशाब करनेकी इच्छा उत्पन्न हुई है, फिर भी उठनेकी अनिच्छा, या इसके लिये मिनटों या घण्टों तक विचार करते रहना, इस रीतिसे

मूत्रको रोकनेसे शून्य-सी अवस्था होजाती है। परन्तु इतना होने पर भी मूत्रोत्सर्गकी सुध नहीं। ऐसे प्रकारके रोगियों पर नागभस्मका इतना अच्छा उपयोग होता है कि, अनेक समय एकाध दिनमें ही मनुष्यकी विचारोंमें मग्न होजाने वाली स्थिति दूर होकर मन और इन्द्रियाँ कार्यक्षम होजाते हैं। मधुमेहकी अन्तिम अवस्थामें संन्यास (मूर्च्छा) रूप उपद्रवकी प्राप्ति होजाती है। इसमें नागभस्म अनेक ओषधियोंमेंसे एक उत्तम ओषधि है। अनेक समय इसके सेवनसे संन्यासके अति त्वरित दूर होनेके उदाहरण देखनेमें आये हैं।

हृदय और फुफ्फुस अशक्त होनेसे एक प्रकारकी शुष्क त्रास-दायक कास, जिसमें आवाज गहरी होजानेके समान खाँसना होता है। इस कास रोगमें कफ बिल्कुल नहीं गिरता। वारवार खाँसीका वेग उठता रहता है। ऐसे रोगमें नागभस्म अच्छा काम देती है। चिकित्सकोंको मांसार्बुद (Cancer) में नागभस्मका उपयोग करके देखना चाहिये। वातप्रधान मांसार्बुद रोग होने पर विशेष उपयोग हो सकेगा। वेदना अधिक हो, तो नागभस्म अच्छा कार्य करती है।

नाग भस्म वात-विशेषतः व्यानवायु दोष, रससे लेकर शुक्र-पर्यंत सातों धातु, ये दूष्य, और मस्तिष्क वातवाहिनियाँ (संज्ञावाहिनी और आज्ञावाहिनी), स्नायु, आमाशय और अन्तःस्रावक पिण्ड, इन स्थानों पर विशेष लाभ पहुँचाती है। (औ० गु० ध० शा०)

नागभस्मके लिये शास्त्रमें लिखा है, कि:—

नागस्तु नागशततुल्यबलं ददाति
व्याधिं विनाशयति जीवनमातनोति।
वह्निं प्रदीपयति कामबलं करोति
मृत्युं च नाशयति संतत सेवितः सः॥

नाग भस्मका सतत सेवन करनेसे सौ हाथीके समान बलकी प्राप्ति होती है, सब रोगोंका विनाश होता है, आयुकी वृद्धि होती है, जठराग्नि प्रदीप्त होती है, कामोत्तेजना होती है, एवं मृत्युका भी नाश होता है।

सूचना—कोई-कोई समय नाग भस्मसे कोष्ठशूल उत्पन्न होता है, ऐसे समय पर थोडे दिनोंके लिये भस्म बन्द कर देनी चाहिये।

यह भस्म अच्छी निरुत्थ न हुई हो, तो उपयोगमें नहीं लेनी चाहिये। कच्ची भस्मसे उदरशूल होनेकी विशेष संभावना है।

दूसरी विधि—एक सेर शुद्ध शीशेको कड़ाहीमें डाल चूल्हे पर

चढ़ा, तेज अग्नि देकर रस करे। फिर आकके फूल थोड़े-थोड़े डालते जायँ और आककी जड़ोंके डंडेसे चलाते रहे। ४ सेर आकके फूल लगभग ४ घण्टेमें डालनेसे भस्म होजाती है। पश्चात् कड़ाहीमें ढक्कन ढककर ६ घण्टे तक तेज अग्नि देवे। स्वाग शीतल होने पर कड़ाही उतारकर भस्मको कपड़ेसे छान लेवें। कच्चे भागको अलग निकाल डाले, और छनी हुई भस्ममें बारहवाँ हिस्सा मैनसिल मिलाकर अडूसे के पत्तोंके रसमें ६ घण्टे खरल कर छोटी-छोटी टिकिया बाँध, सूर्यके तापमें सुखा, गुजपुट देवे। इस तरह १० गजपुट देनेसे पीले रंगकी उत्तम नागभस्म तैयार होती है। (वै० चि० सा०)

मात्रा—½ रत्तीसे २ रत्ती तक दिन में दो समय देवे।

अनुपान—सुजाकमें विहीदाने के लुआवके साथ अथवा गिलोय के रस और शहदके साथ। रक्तार्श (बवासीर) में अनारके रसके साथ। इस तरह और अनुपानोंकी योजना करें। विशेष उपयोग पहली विधिमें लिखे अनुसार करना चाहिये।

सूचना—इस भस्मके सेवन-कालमे खटाईको बिल्कुल छोड दे।

तीसरी विधि—लोहेकी कडाहीमें शुद्ध शीशाका रस कर पलास-मूलके डंडेसे ४ प्रहर घोटते रहे। अग्नि तेज देते रहनेसे लाल रंगकी भस्म तैयार होती है। (र० च०)

मात्रा, अनुपान और उपयोग—पहली विधिमें लिखे अनुसार।

यद्यपि यह भस्म निरुत्थ नहीं होती, फिर भी अन्य भस्मके साथ उपयोग करनेमें अनेक ग्रन्थकारोंने बाधा नहीं मानी। अग्नि ४ प्रहरके स्थानमें ८ प्रहर देनी चाहिये। यह भस्म स्त्रियोंके प्रदर रोग, नेत्र रोग और कफ-प्रधान प्रमेहमें अच्छा काम देती है।

(६) पारद भस्म।

बनावट—शुद्ध पारद एक तोलेको कपरौटी की हुई आतशी शीशीमें डालकर ऊपरसे ५ तोले एसिड सलफ्यूरिक (गन्धकका तिजाब) डालें। शीशीको खुले मैदानमें सिलगते हुए कोयलोंकी अँगीठी पर धर दे। आधे घंटे बाद शीशीके मुँहसे धुआँ निकलना बंद होने पर शीशी उठाले, और ठंडी होने पर शीशीमेंसे श्वेत रंगकी पारद भस्म निकालले। भस्मका वजन २ माशे बढ़ जाता है। (खु० चि०)

डाक्टरीमे इस भस्मको परसलफेट ऑफ मर्करी (Persulphate of murcury) कहते हैं। इसकी बनानेकी विधि रसकपूरमें देखे।

मात्रा—एकसे चार चावल तक मुनक्कामें रख कर निगल जायँ।

अथवा फीके दलिये (मिश्री अथवा नमक रहित) में रखकर निगल जायँ। दाँतको भस्म लगेगी तो दाँत निर्बल होजायगा।

उपयोग—यह भस्म उपदंश (Syphilis) और कुष्टको दूर करनेमें अति उपयोगी है। उपदंशमें ३ से ७ दिन और कुष्ट रोगमें १५ से २० दिन देनी पड़ती है। उपदंश दूर होजानेके पीछे भविष्यमें पारदका विकार कभी देखनेमें नहीं आया। उपदंशमें १ समय और कुष्ठके रोगीको दिनमें २ समय देनी चाहिये।

सूचना—किसीको वमन, विरेचन हो, तो भय न माने।

तिजाब शुद्ध ले। जल या तेल मिला हुआ न लेवे।

दूध दहीसे बने हुए पेडा, बर्फी, कलाकन्द आदि पदार्थ उपयोगमें न ले। घृतका सेवन न्यून करें। मात्र फीका दलिया (थूली) और मूँगकी दाल खावे। नमक, मिर्च, खटाई न लें।

यह भस्म अन्य धातुओंकी भस्मके साथ मिलानेमें उपयोगी नहीं है। कारण, खटाई लगनेसे पुनः पारा मूल रूपमें आजाता है। उपदंशके हजारों रोगियोंको हमने दी है, किसीको हानि नहीं हुई।

इस भस्मको चीनी मिट्टीके प्यालेमें डाल ऊपर जल भरदे। ३ घण्टे बाद जलको निकाल देवें। फिर ८-१० बार जल मिला-मिलाकर धोवें, जिससे गन्धकके तिजाबकी अम्लता निकल जायगी। फिर भस्मको शुष्क लेनेसे पीले रंगकी बन जाती है। इस पीत भस्मको ४ गुने मक्खनमें मिलाकर मलहम बना लेवें। इसमेंसे रात्रिको सोनेके समय सलाईसे अञ्जन करनेसे नेत्रमें जलस्राव होना और कोटे कटने, दोनों विकार दूर होजाते हैं।

(१०) सुवर्णमाक्षिक भस्म।

बनावट—शुद्ध सोनामुखीको कुलथीके काढ़ेमें १२ घण्टे खरल कर, टिकिया बाँध, सूर्यके तापमें सुखावें। पश्चात् सराव-संपुट करके गजपुटमें फूँकदें। इस तरह अरंडीका तेल, मट्ठे और बकरेके मूत्रमें क्रमशः खरल कर एक-एक गजपुट देनेसे भस्म तैयार होती है। यदि इस भस्मको बकरेके मूत्रके ३ पुट ज्यादा दिये जायँ, तो भस्म विशेष लाभदायक बनती है।

मात्रा—१-३ रत्ती दिनमें २ बार दूध शहद, गुलकन्द, गिलोय सत्व, त्रिफला, कुटकी, मक्खन मिश्री, या रोगानुसार अनुपानसे दें।

अनुपान—१ मसूरिका पर—कचनारकी छालके काथके साथ देनेसे अन्तर्गत विष बाहर निकलता है।

२. पाण्डु, हलीमक, कामला पर—शहद-पीपल या मूलीके रससे ।
३. स्वप्नदोष, जीर्णज्वर, मस्तकशूल, पित्त प्रमेह और मूत्रकृच्छ्र पर—मक्खन-मिश्री या शहद-मिश्रीके साथ ।
४. वमन पर—जीरा, मिश्री और शहदके साथ ।
५. निद्रानाशमें—सोंठ और आँवलोंके मुरब्बेके साथ ।
६. वृद्धावस्थाकी निर्बलता, कुष्ठ, प्रमेह, पाण्डु और क्षय पर—गोदुग्धके साथ ।

उपयोग—यह भस्म पाण्डु, कामला, जीर्णज्वर, निद्रानाश, मस्तिष्ककी उष्णता, पित्तविकार, नेत्रजलन, नेत्रकी लाली, वमन, उबाक, व्रणदोष, पित्तप्रमेह, प्रदर, मूत्रकृच्छ्र, शीर्षशूल, विषविकार, अर्श, उदर रोग, कण्डु, कुष्ठ, कृमि और अश्मरी आदि रोगोंको दूर करती है । कफ-पित्तविकृतिमें यह भस्म विशेष लाभदायक है ।

सुवर्णमाक्षिक, यह लोहका सौम्य कल्प है । सुवर्णमाक्षिक भस्म स्वादु, तिक्त, वृष्य, रसायन, योगवाही, शामक, शक्तिवर्द्धक, पित्तशामक, शीतवीर्य, स्तम्भक और रक्तप्रसादक है । इसके योगसे रक्तप्रसादन होनेसे रक्ताणु शुद्ध होते हैं, और रक्त धातु सशक्त बनती है । लोहके अन्य कल्पोंमें जो उष्णता और तीव्रता आदि गुण हैं, वे इस भस्ममें नहीं हैं । यह कल्प अति सौम्य होनेसे कोमल प्रकृति, सुकुमार और अशक्त स्त्री पुरुषोंके लिये निर्भय रूपसे उपयोगमें आता है ।

केवल पित्तविकृति अथवा कफपित्तसंसर्गज विकृतिमें माक्षिक का अच्छा उपयोग होता है । इसलिये इस भस्मका पित्तज, शीर्षशूल, पित्तज अम्लपित्त, पित्तज परिणामशूल, पित्तज गुल्म, इन व्याधियों पर अवस्था-भेद और अनुपान-भेदसे उपयोग होता है ।

पित्तज शीर्षशूलमें सूतशेखरका भी उपयोग होता है, परन्तु सूतशेखर देनेमें मुख्य लक्षण भ्रम (चक्कर) होना चाहिये । सूतशेखर वातपित्तात्मक विकारोंमें उपयोगी होता है । परन्तु जिस शीर्षशूलमें उबाक, मुँहमें कडवापन, कोई भी अच्छा प्रिय पदार्थ खानेमें भी अरुचि और वमन होने पर शीर्षशूल कम हो जाना आदि लक्षण हों, उसपर सुवर्णमाक्षिक भस्मका ही अच्छा उपयोग होता है । जीर्ण शीर्षशूलमें भी अच्छा इलाज होजानेके अनेक उदाहरण मिले हैं ।

वार-वार चक्कर आना, विचार करते करते मन गुम हो जाना और चक्कर आना एवं सूर्यके तापमें फिरने, किसी भी उष्णवीर्य पदार्थ के सेवन, जागरण, मगजके थोड़े श्रम, शक्तिसे थोड़ा ज्यादा विचार

होने आदि थोड़ी-थोड़ी बातोसे चक्कर आजाना, इन सब प्रकारके चक्कर पर सुवर्णमाक्षिक भस्म देनी चाहिये। अनुपान रूपसे अनारका रस; मोसम्बीका रस, या अनार शर्बत आदिका उपयोग करे।

नेत्रशोथ, लाली, नेत्रदाह, ये सब अधिक, परन्तु परिमाणमें वेदना कम, अथवा नेत्रके और दोष कम होने पर भी भयंकर दाह होना, यहाँ तक कि रोगीकी ऐसी इच्छा हो कि, नेत्र पर बर्फ बाँध दूँ या शीतल जल छिड़कता ही रहूँ; इन सब लक्षणोका कारण पित्तदोष ही है। वात अथवा कफकी प्रधानता नहीं है। ऐसे पित्ताभिष्यन्द और रक्ताभिष्यन्द रोगमें सुवर्णमाक्षिक भस्मका सेवन लाभदायक है। खाने और अंजन करने, दोनो रीतिसे उपयोगी है। इस तरह उपयोग करनेसे भलीभाँति रक्त-प्रसादन होजाता है। पित्तप्रधान जीर्ण नेत्र-रोग (मोतियाबिन्दु, लिङ्गनाश और भाँफणीके नीचे बड़ी-बड़ी फुन्सियाँ हो जाना और मांस बढ़ना, इन विकारोको छोड़कर शेष नेत्ररोग) में माक्षिक भस्मका सेवन कराया जाता है। माक्षिक भस्मके साथ प्रवालपिष्टी मिलाकर दिनमें दो बार देते रहने और रात्रिको सोते समय त्रिफला चूर्ण १–१ माशा शहदके साथ देते रहनेसे नेत्र-लाली और अन्य जीर्ण दोष शमन होजाते है)।

आगन्तुक कारणो क्रोध आदि, अति जागरण और अति गरम पदार्थके सेवनसे पित्तवृद्धि होकर रोगके वेगकी वृद्धि होजाती है। थोड़ी हलचल करने पर घबराहट हो जाती है। इस पर माक्षिक भस्मका अच्छा उपयोग होता है।

पित्त दोष दुष्टी होनेके पश्चात् उसका आश्रय, रक्त, रक्तवाहि-नियाँ और हृदय, ये स्थान दुष्ट होते है। इन दोष, दूष्य और स्थान-दुष्टीके कारण अनेक प्रकारके भिन्न-भिन्न रोग उत्पन्न होते है। फिर जब ये रोग जीर्ण होते है, तब हाथ पैर और मुँह पर शोथ आता है। वह माक्षिकके योगसे अच्छा होजाता है। सुवर्णमाक्षिक हृद्य, स्तम्भन और रक्त-प्रसादन होनेसे, इन विकारो पर अच्छा कार्य करती है। यह पर्णबीजकी जातिकी ओषधि है, परन्तु पर्णबीजमें बेचैनी लानेका गुण होनेसे, वह लेने पर अनेकोका मन खराब होजाता है और वमन होजाती है। माक्षिक ऐसी न होनेसे वह शरीरमें ठहरती है, पचन हो जाती है, और अपना हृद्यकार्य अच्छी रीतिसे करती है।

रक्तमें विदग्ध पित्त मिश्रित होनेसे पित्तके तीक्ष्ण, उष्ण, अम्ल और द्रवत्व गुण बढ़ जाते है। इस हेतुसे रक्तवाहिनियोकी त्वचा

पतली होजाती है। इस तरह रक्तपित्तसे जब रक्तमें उष्णता आदि गुण बढ़कर और रक्तवाहिनियोंकी अन्तर-त्वचा पतली होकर रुधिरवाहिनियों फूटती है, और उनमेंसे रक्तस्राव शुरू हो जाता है, तब वह आयुर्वेदके मतानुसार रक्तपित्त रोग कहलाता है। यह व्याधि अधोमार्ग और ऊर्ध्व मार्ग, दोनों ओरसे प्रवृत्त होती है। इस पर माक्षिकका अच्छा उपयोग होता है। इसके साथ प्रवाल-पिष्टी, हल्दी और सोनागेरू मिश्रित करके देनेसे अति शीघ्र और अच्छा लाभ होता है। इस रोगमें केवल माक्षिकके सेवनसे अच्छी चिकित्सा होजानेके भी अनेक उदाहरण मिले हैं। भोजनमें केवल दुग्धाशन कराना चाहिये। विशेषतः बकरीका दूध अधिक हितकर है। माक्षिक अधो रक्तपित्तकी अपेक्षा ऊर्ध्वग रक्तपित्तमें ज्यादा उपयोगी है।

आमाशय बढ़ने, आमाशयकी अन्तर-त्वचा विकृत होने एवं उदरमें व्रण होनेसे अम्लपित्त रोग हो जाता है। आयुर्वेदने इन सबका अन्तर्भाव अम्लपित्तमें ही किया है। इन अम्लपित्तोंमें कर्कट ग्रन्थि (मांसार्बुद) और उदर व्रण, इन दोको कम करके शेष सब प्रकारके अम्लपित्तमें माक्षिक भस्म उत्तम कार्य करती है। उदरकी आकृति बढ़नेसे होनेवाले अम्लपित्तमें अपना स्तम्भक, शामक और स्वादु गुण पहुँचाकर पित्तका नियमन करती है, और साम्यावस्थाको प्रस्थापित करती है। अन्तर पिच्छिल त्वचा विकृत होनेसे होनेवाले अम्लपित्तमें माक्षिकके लवणत्व अंशका उपयोग होता है। उदरमें पित्तोत्पादक अथवा रसोत्पादक पिण्डकी विकृति होनेसे उत्पन्न हुई विकृतिमें माक्षिक भस्ममें रहे हुए लोह अंश और बल्यत्व गुणके कारणसे आकुञ्चन होकर तथा बलकी प्राप्ति होकर कार्य होता है। इनके अतिरिक्त अम्लपित्त ज्यादा बढ़ने, अथवा पित्तकी तीव्रता ज्यादा बढ़नेसे उदर पीड़ा होती हो, और वमन होनेके साथ उदर-पीड़ा अथवा शिरदर्द कम होजाता हो, तो सुवर्णमाक्षिक भस्म देना अच्छा लाभदायक है। वान्ति होने पर भी अच्छा न लगना, और शूल अधिक होना, यह लक्षण प्रतीत होते हो, अर्थात् वातपित्तसंसर्गजनित दुष्टी हो, तो सुवर्णमाक्षिक भस्मकी अपेक्षा सूतशेखर देना विशेष लाभदायक है।

अम्लपित्तमें कोई भी चिकित्सा चालू होनेके पहले अंतः परिमार्जन (वमन आदि संशोधन) करना अच्छा है। यह अपनी प्राचीन पद्धति अनुसार या नूतन पद्धति अनुसार किया जाय, तो भी चल सकता है। अम्लपित्त अत्यन्त ज्यादा परिमाणमें बढ़ गया हो, और

उसीसे उदरमें व्रण होकर रक्तवाहिनियाँ टूट कर वमन होने लगती हों; वमनमें रक्त आता हो, तो इस विकारमें सुवर्णमाक्षिक भस्म, प्रवाल-पिष्टी, गिलोय सत्व और सोनागेरू मिलाकर देना लाभदायक है।

सुवर्णमाक्षिकको सर्व सामान्य रूपसे शक्तिवर्द्धक मान करके भी उपयोग होता है। इसमें लोहका अंश होने और यह लोहसाम्य होनेसे माक्षिकमें शीतल शक्तिवर्द्धक गुण आया है। इस हेतु नाकमेंसे रक्त गिरने और रक्त गिरकर चक्कर आने पर सुवर्णमाक्षिक अनन्तमूल, रक्तचन्दन और पद्मकाष्ठके कषायके साथ दीजाती है।

निर्बलता, ज्यादा विचार या मनोव्याघात, इनमेंसे किसी भी कारणसे भ्रम होता हो, और चक्कर आता हो, इनमेंसे कभी-कभी तो भ्रम अत्यन्तावस्था तक चला गया हो, इतने तक कि यह मनुष्य तो पागल होगया है, ऐसा दूसरोंको भासता हो, ऐसे बढ़े हुए लक्षणोंमें भी सुवर्णमाक्षिक कूष्मांडके रसके साथ देनेसे सत्वर लाभ पहुँचता है।

पैत्तिक उन्माद रोगमें जबतक रोग नहीं बढ़ा है, तब तक सुवर्णमाक्षिकका अच्छा उपयोग हुआ है। जटामांसी, नेत्रबाला और रक्तचन्दनके कषायके साथ देनी चाहिये।

शराबके अतियोग होनेसे मदात्यय व्याधि होकर चक्कर आने लगते है। वमन होना, वमनमें रक्त आना, नेत्र लाल होजाना, दृष्टि मन्द होना, मन्दाग्नि, निद्रानाश, मुँह और सारा शरीर निस्तेज हो जाना इत्यादि लक्षण प्रतीत होते है। इस स्थितिमें माक्षिक भस्म कुटकी, पुनर्नवा और गिलोयके क्काथके साथ देनेसे लाभ होता है।

रक्तार्श या पित्तार्शमें रक्त बहुत चले जानेसे सारे शरीरकी रक्तवाहिनियाँ तड़तड़ उड़ने लगती है, शरीर निस्तेज होजाता है, कितनेकोंको शोथ आजाता है, ऐसे समय पर माक्षिक भस्मका अच्छा उपयोग होता हैं। इस भस्मके सेवनसे रक्तकी उष्णता और पतलापन कम होजाते है। अनुपानमें मिश्री, नागकेशर, तेजपात और इलायची देवे।

अपचन-जनित विसूचिकामें वमन बन्द करनेके लिये माक्षिक भस्मका अच्छा उपयोग होता है। परन्तु माक्षिकका उपयोग विसूचिका की विषघ्न ओषधिके साथ करना चाहिये। सुवर्णमाक्षिक भस्म और सूतशेखरका मिश्रण बार-बार अदरखके रसके साथ चटाया जाता है।

विसूचिका रोग शमन होजाने पर जो निर्बलता रह जाती है; तथा अवशिष्ट लक्षणोंमें विशेषतः चक्कर, बार-बार वमन होना, कभी-कभी पतले दस्त होजाना आदि लक्षण रहने पर माक्षिक भस्म और

शंख भस्म मिश्रित कर आम या आँवलेके मुरब्बेके साथ देनी चाहिये।

सुवर्णमाक्षिक स्वादु, रसोत्पादक, तिक्त और वल्य है। इस वल्यत्व गुणके कारणोंसे रस आदि धातुओंकी योग्य परिमाणमें उत्पत्ति कराती है। इस हेतुसे यह रसायन भी है।

वस्तिका-नियामक स्नायुओं की अशक्तिसे वस्ति (मूत्राशय) में चाहिये उतने परिमाणमें मूत्र भरा नहीं रह सकता, बूँद-बूँद टपकता रहता है। इस विकारमें माक्षिक और शिलाजतु मिलाकर उपयोग होता है। पेठा, अश्वगंधा और मंजिष्टाके साथ देना चाहिये।

वातज या वातपित्तज हृद्रोगमें हृदयेन्द्रियकी चंचलता, वार-वार घवराहट, उबासी आना, प्रस्वेद, दाह, सर्वाङ्गमें कम्प आदि लक्षण होने पर सुवर्णमाक्षिक देनी चाहिये। यह भस्म हृदयेन्द्रिय पर शक्तिदायक होनेसे जीर्ण हृद्रोगमें भी लाभदायक है। हृदयक रोगोंमें मात्र हृदयके परदो (Valves) की विकृतिमें इसका कुछ भी उपयोग नहीं होता। शेष सब वातज और वातपित्तात्मक रोगोंमें हितकर है।

गलेकी गाँठ (Tonsils), लालापिण्ड (Salivary Glands), कण्ठ इत्यादि भागोंमें विकार होने पर वेदना, शोथ, लाली, दाह आदि लक्षण प्रतीत होते हो, तो माक्षिक भस्म दीजाती है। यदि तीव्र ज्वर हो, तो माक्षिक भस्म नहीं देनी चाहिये, अन्यथा हानि होती है।

शीतज्वरमें अनेक दिनो तक क्विनाइनका सेवन किया हो, क्विनाइन सेवन करने पर प्लीहावृद्धि हुई हो, फिर प्लीहा-वृद्धिसे उदर वढ़ गया हो, शरीरमें शोथ, घवराहट, वमन आदि लक्षण भी उपस्थित हुए हो; तो ऐसी स्थितिमें सुवर्णमाक्षिकका अच्छा उपयोग होता है। क्विनाइनके दुष्ट परिणामको शमन करनेके लिये यह उत्तम औषधि है। क्विनाइनके अतियोग या क्विनाइन सहन न होनेसे उत्पन्न होने वाले निद्रानाश, वधिरता, नेत्रदाह, मस्तिष्ककी निर्वलता, यकृद् विकार, मूत्र में पीलापन, मूत्रमें दाह आदि लक्षणोंको शमन करनेमें इसका बहुत अच्छा उपयोग होता है। यह कार्य औषधि-प्रभावसे होता है।

हृदयेन्द्रियकी व्याधिसे उत्पन्न शोथ या शीतज्वरके पश्चात् फीकापन होकर आई हुई पाण्डुता और पाण्डुतासे उत्पन्न शोथ या अन्य कारणसे पाण्डुता आकर आई हुई सूजन, साथ-साथ घवराहट, चक्कर, भ्रम, शीर्षशूल आदि लक्षण होनेपर माक्षिक अच्छी उपयोगी है।

पित्तोत्पादक, तीव्र, दाहकारक, गर (अन्तरोत्पन्न विष) के

कारण या विरुद्ध अन्नपानके कारण पित्तप्रकोप अधिक होने पर माक्षिक का बहुत अच्छा उपयोग होता है; परन्तु गरघ्न चिकित्सा (संशोधन) करनेके पश्चात् माक्षिक देनी चाहिये।

सर्वाङ्गमें बारीक-बारीक फुन्सियाँ होना, खाज चलना, सर्वाङ्ग नाखून, त्वचा, ओष्ठ आदि निस्तेज होजाना; इस तरह अनेक समय रक्तस्रावके पश्चात् या अतिसारके पश्चात् ज्यादा अशक्ति आकर त्वचा पर छोटी-छोटी फुन्सियाँ होना, त्वचा रूक्ष और कठोर होकर उसमें खाज चलना आदि विकारों पर सुवर्णमाक्षिकका बहुत अच्छा उपयोग होता है। अनुपान अनन्तमूलका क्वाथ दें। इस चर्मरोगमें ताप्यादि लोहका भी उपयोग होता है।

मूत्रातिसार (मधुमेहका पूर्व लक्षण विशेष रूप न होने पर उत्पन्न हुआ मेह समान विकार), जिसमें मूत्र पीला, त्वचा पीली और फीके नाखून आदि लक्षण होते हैं, साथ-साथ दिन-रात ज्यादा परिमाणमें और अधिक बार पेशाब होता है. ऐसी परिस्थितिमें सुवर्णमाक्षिक भस्म अति लाभदायक है। जामुनके रसके साथ देनी चाहिये, और पित्तज प्रमेहो पर अनुपान रूपसे गिलोय सत्व देना चाहिये।

शुक्रक्षय या रजःक्षयके विकारमें वंगभस्मके साथ सुवर्णमाक्षिक भस्म देनेसे ज्यादा लाभ होता है। त्रासदायक प्रदर विकारमें भी माक्षिक मधुकाद्यवलेह या शर्बत बनफशाके साथ देनेसे उत्तम कार्य होता है। यदि रुग्णा अतिकृश होगई हो, तो गोदन्ती भस्म भी साथमें मिला देनी चाहिये।

त्वचाका कालापन आकर उस पर छोटी-छोटी फुन्सियाँ हो जाना, हाथ-पैरकी अँगुलियाँ मोटी होकर शून्यसी होजाना, उनका स्पर्शज्ञान नष्ट होजाना; शरीर पर लाल-काले चकत्ते उठना, ऐसे विकारमें सुवर्णमाक्षिक भस्म गन्धक रसायनके साथ मिश्रित करके देनी चाहिये। अथवा मात्र सुवर्णमाक्षिक तुलसीके रसमें देनी चाहिये।

सुवर्णमाक्षिक भस्म पित्तज कामला रोगमें उत्तम कार्य करनेवाली औषधि है। सब प्रकारके कामला रोग पर इस औषधिका उत्तम उपयोग हुआ। प्रवाल भस्म, शुक्ति भस्म और सुवर्णमाक्षिक भस्मका मिश्रण कर मूलीके रसके साथ देनेसे अति उत्तम कार्य होता है।

सुवर्णमाक्षिक भस्म पाचक और रंजक पित्त, ये दोष, रस, रक्त, मज्जा और शुक्र, ये दूष्य, शिर, नेत्र, हृदय, आमाशय, यकृत्, अन्त्र,

पचनेन्द्रिय, वस्ति, अन्तःस्रावक पिण्ड (Ductless Glands), त्वचा, अंडकोष और मनोदेश, ये स्थान, इन सब पर लाभ पहुँचाती है।

(ओ० गु० ध० शा०)

आक्षेपक वातके झटके वार-वार आते रहते हो, इसके साथ वमन भी उपस्थित होती है, वह आक्षेप दूर होने पर भी रह जाती है। इस पर सुवर्ण माक्षिक भस्म और सितोपलादि चूर्णको मिलाकर आमके मुरव्वाके साथ दिनमें ४ वार ३-३ घण्टे पर देनेसे वमन सत्वर निवृत्त होजाती है।

अधिक धूम्रपान, उष्ण आहार अथवा अधिक नेत्रश्रमके हेतुसे नेत्रकी वात नाड़ियाँ दूषित होती है। फिर दृष्टि मन्द होजाती है, किसीको नेत्रमें दाह होने लगता है, किसीको एक वस्तुकी दो वस्तु भासती है। इन विविध दृष्टि विकृति पर सुवर्णमाक्षिक भस्म १ रत्ती, त्रिफला चूर्ण १ माशा, घी २ माशा और शहद ३ माशे मिलाकर प्रातःकाल और रात्रिको सेवन करानेसे थोड़े ही दिनोंमें लाभ होजाता है।

सूचना—इस भस्ममें चमक नहीं रहनी चाहिये। सूर्यके तापमे देखने पर चमक दीखे, तो कच्ची समझ कर पुन. १-२ पुट दे।

नूतन और तीव्र ज्वरमें इस भस्मका उपयोग नहीं करना चाहिये। इस भस्मके सेवन करने वालोंको अम्लविपाक वाले पदार्थ, कबूतरका मांस, कुलथी, नये चावल और खट्टे पदार्थका त्याग करना चाहिये।

दूसरी विधि—शुद्ध सुवर्णमाक्षिक, वकरेका मूत्र, मट्ठा, गोघृत और विजोरेका रस १-१ सेर लेवे। सुवर्णमाक्षिकको कड़ाहीमें डाल चूल्हे पर चढ़ाकर तेज अग्नि देवे, और क्रमशः वकरेके मूत्र आदिको मिलाकर जला डाले। फिर भस्मको ढककर ६ घण्टे तेज अग्नि दें। स्वांग शीतल होने पर भस्मको निकाल, अरंडीके तेलके ३ पुट देनेसे भस्म खूब सुन्दर और मुलायम वन जाती है।

मात्रा और उपयोग—पहली विधिके अनुसार।

(११) मंडूर भस्म।

वनावट—शुद्ध मंडूरको चौगुने त्रिफलेके क्वाथके साथ कड़ाहीमें मिलाकर पकावें। त्रिफलेका क्वाथ सूख जाने पर भस्म होजाती है। जब मंडूर और कड़ाही दोनोंका रंग लाल होजाय तव आग देना वन्द करें। स्वांग शीतल होने पर भस्मको निकाल, गोमूत्र और घीकुँवारके रसके ३-३ पुट देनेसे विशेष गुणकारी और मुलायम भस्म वन जाती है।

मात्रा—१ से ३ रत्ती दिनमें दो बार पीपल-शहद, आमका मुरब्बा, कुमार्यासव या अन्य अनुपानके साथ। बालकोको माताके दूधमें।

शोथ रोग में—मूत्रल औषधिके साथ।

त्रिदोषज शूल पर—त्रिफलाका चूर्ण, घृत और शहदके साथ।

उपयोग—इस भस्मके सेवनसे पाडु, प्रमेह, शोथ, संग्रहणी आदि रोग मिटते है। बालक और कमजोर शरीर वालेको लोह भस्मकी अपेक्षा मंडूर भस्म विशेष हितकारी है, छोटे बालकोंकी निर्बलता, प्लीहावृद्धि, यकृद्विकार, मिट्टी खानेसे होने वाला पाण्डु, स्त्रियोंके गर्भाशय और बीजकोषोंकी निर्बलता, युवावस्था होने पर भी मासिकधर्म न आना आदि विकृतियाँ इसके सेवनसे नष्ट होती है। एवं यह हलीमक, कामला और कुम्भकामलाको भी दूर करती है।

मंडूर शीतल, सौम्य और कषाय गुण वाला है। जो गुण लोहमें हैं, वे ही गुण मडूरके भीतर न्यून अंशमें रहे है। मडूरभस्म लोहभस्म की अपेक्षा शरीरमें सत्वर पचन होती है, और सन्मिलित होजाती है। इसके अतिरिक्त मडूर (लोह कीट) का कीटत्व अनेक वर्षो पर्यन्त रह जानेसे इसका रक्त पर, विशेषतः रक्ताणु पर सत्वर अच्छा परिणाम होता है। यह भस्म छोटे-छोटे बच्चोंके लिये अधिक उपयोगी है, यह इसका विशेष गुण है।

मंडूरके योगसे रक्तमें रक्ताणु ज्यादा उत्पन्न होते है। अनेक भिन्न-भिन्न कारणोसे रक्तके रक्ताणु कम होने पर जब रक्त फीका बन जाता है, और त्वचाका वर्ण पाण्डु होजाता है, तब पाण्डु रोग कहलाता है। इस रोगमें रक्ताणुओ की न्यूनता होजानेसे हृदयके वेगकी वृद्धि होजाती है। इस कारणसे नाड़ी तेज होजाती है। नाड़ी के ठोके ज्यादा होते है। कारण, जितने रक्ताणु रक्तमें होगे, उतनेही सारे शरीरमें शीघ्र-शीघ्र फैलते रहेगे। शारीरिक इन्द्रियाँ और घटको को इन रक्ताणुओका सान्निध्य प्राप्त होता रहे, और उनके द्वारा प्राणतत्त्वकी पूर्ति होती रहे, इसी कारणसे पाण्डु रोगमें नाड़ी तेज हो जाती है। इसलिये रक्ताणुओंकी वृद्धि करके इस विकृतिको दूर करना चाहिये। यह कार्य आयुर्वेदके मतानुसार लोहभस्म अथवा मंडूरके योगसे रंजक पित्त सम्यक् बनकर होता है। किन्तु आधुनिक शास्त्र कहते है कि; मज्जा धातु भी रक्ताणुओको बढ़ानेके लिये उत्तेजित होनी चाहिये। उससे भी रक्ताणु उत्पन्न होते है। कुछ भी हो, मडूर रक्ताणुओंको बढ़ाता है, यह कथन बिल्कुल सत्य है। पैत्तिक पाण्डुरोगमें इस

भस्मका विशेष उपयोग है। इसके कषायत्व गुणके कारण नाड़ीका वेग भी मर्यादामें आजाता है, और पाण्डुता कम होजाती है। पाण्डुरोग पर कोई भी ओषधि लें, उसमें न्यूनाधिक परिमाणमें लोह अथवा विशेषतः मंडूर भस्म अवश्य होती है।

कामला विकारमें पित्त लक्षण ज्यादा होने पर मंडूर भस्मका उत्तम उपयोग होता है। हाथ-पैर, नेत्र और मूत्रमें पीलापन, मूत्रेन्द्रिय के चारों ओरकी त्वचा काली-सी होना, मल सफेद मैले रङ्गका होना इत्यादि लक्षण हों, तो मंडूर भस्म अवश्य देनी चाहिये। अनुपान कुमार्यासव या मूलीका रस और मिश्री। इस भस्मके साथ सुवर्णमाक्षिक भस्म मिला देनेमें और भी अच्छा कार्य होता है।

पाण्डुरोग जीर्ण होने अथवा बढ़ने पर एवं कुम्भकामला अधिक दिन रहने पर सर्वाङ्ग-शोथ उत्पन्न होता है। त्वचाके नीचे जल का संचय होता है। इसमें रक्ताणुओंकी न्यूनता ही कारण है। यह शोथ नेत्र, उदर, गाल और हाथ-पैरके ऊपरके भागमें होता है। शोथ पर जोरसे अँगुली दबानेसे खड्डा होजाता है। वह बहुत समय तक नहीं भरता। ऐसे रोगमें पाण्डुरोगके लक्षण होने पर अथवा पाण्डुता कारण होने पर मण्डूर भस्म अति उत्तम कार्य करती है। मंडूरके सेवन से रक्ताणुओंकी वृद्धि होती है। रक्ताणु बढ़ने पर हृदयकी गति नियमित और बलवान् बनती है, जिससे रक्तका पतलापन कम होकर त्वचाके नीचे संचित हुआ जल रक्तमें शोषण होजाता है, और शोथ शमन होजाता है। यह शोथ कामलाके पश्चात् भी होसकता है। कामला जब ज्यादा दिन तक रह जाता है, तब पाण्डुरोगके समान शोथ उत्पन्न हो जाता है। इस अवस्थामें मंडूरभस्मके साथ पुनर्नवा और शिलाजीतका उपयोग अति हितकर है।

कामला रोग अधिक दिन टिकने पर सारे शरीरमें शुष्कता आ जाती है, त्वचा कठोर काली-सी होजाती है, हाथ-पैरमें स्थान-स्थान पर त्वचा फट जाती है, उसे कुम्भ-कामला कहते है। उस पर भी मण्डूर का उत्तम उपयोग होता है। यकृत्के अनेक विकारमें कामला उत्पन्न होजाता है। यकृत्के मांसार्बुदसे कुम्भकामला हुआ हो, तो मंडूरकी अपेक्षा ताप्यादि लोह, ताम्रभस्म और वंगभस्मका ज्यादा उपयोग होता है। यथार्थमें तो वह प्रकार साध्य होना अति दुष्कर है।

पाण्डु रोगके लाघरक, आलस, पालिक, कुम्भस आदि अनेक प्रकार हैं। इन सब पर न्यूनाधिक लक्षणोंके उपस्थित होने पर मंडूर

भस्मका उपयोग होता है। पाण्डुरोगमें जब त्वचाका वर्ण हरा, श्याम, पीला, काला होकर बल-उत्साह नष्ट होजाता है, आलस्य, मन्दाग्नि, अरुचि, क्वचित् दुर्गन्धयुक्त वमन, दाह, तृषा, भ्रम, तन्द्रा, नेत्र पर बोझ-सा लगना, सूक्ष्म ज्वर, पौरुष कम होजाना, अंग टूटना आदि लक्षण होजाते हैं, तब हलीमक कहलाता है। इस रोगमें भी मंडूर भस्मका उत्तम उपयोग होता है।

तरुण स्त्रियोंके हारिद्रक (पाण्डु) रोगमें मंडूरका उत्तम उपयोग होता है। यदि यह विकार मानसिक कारणोंसे हो, तो अभ्रक भस्म देनी चाहिये। अन्य कारणोंसे हो, तो लोहभस्म अथवा मंडूर योग्यतानुसार देना चाहिये।

छोटे बच्चोंको यकृद्वृद्धि और प्लीहावृद्धि रोग होने पर उन रोगकी नाशक योजनाके साथ शक्तिवर्द्धक और रक्तवर्द्धक रूपमें मंडूर भस्मका उपयोग करना चाहिये। मात्र मंडूर भस्म देनेकी अपेक्षा लघु-मालिनी वसंतके साथ देना विशेष हितकर है। फुफ्फुसावरणके जीर्ण विकारमें पाण्डुता विशेष होने पर भी लघुमालिनी और मण्डूर मिश्रण विशेष लाभदायक होता है।

बालकोंके अस्थि वक्रता रोगमें प्रवालपिष्टी और गिलोय सत्वके साथ मंडूर भस्म देना विशेष लाभदायक है। इस मिश्रणने २-२ मासके बच्चोंके लिये भी उपयोग हुआ है।

बालकों और स्त्रियोंको मिट्टी खानेसे होनेवाले पाण्डुरोगकी उत्पत्ति मिट्टी आंतोंमें सचित होजाने पर होती है। उस विकारमें मंडूर भस्म लाभदायक है। पहले मिट्टीका विरेचन करानेके पश्चात् मंडूर भस्म देनी चाहिये। पित्तात्मक और कफात्मक, दोनों प्रकारके रोगों पर इसका उपयोग होता है।

कितनी ही लड़कियोंकी आयु बड़ी होने पर अंग नहीं भरता, और न रजोदर्शन होता है, चेहरा और सर्वाङ्ग निस्तेज रहता है; गाल कुछ सूजे-से रहते हैं, और सूक्ष्म ज्वर आता रहता है, इत्यादि लक्षण किसी एक रोगके कारणसे नहीं होते। इसके अनेक कारण हैं:—

(१) कन्याका बाल्यावस्थामें अति कमजोर रहना।
(२) मृदुहृस्थि या देहको निर्बल बनाने वाला प्राकृतिक रोग।
(३) अतिसार, संग्रहणी आदिमेंसे अन्त्रकी कोई चिरव्याधि।
(४) यकृत् प्लीहाके रोग।

इत्यादि कारणोंसे रोग हो जाने पर उनका अधिक त्रास या

प्रादुर्भाव उस कालमें न हो, मात्र प्रथम व्याधि होजानेसे धातुक्रिया एक समय अशक्त और विकृत हुई हो, जिसके परिणामस्वरूप निर्बलता एक समान टिकी हो, संक्षेपमें पूर्व विकारके परिणामके हेतुसे रक्त जितना सुदृढ़ चाहिये उतना न हुआ हो, इस हेतुसे लड़कीका अंग पुष्ट नहीं बनता। एवं स्त्री बीजकोषों और गर्भाशय आदि अवयवोंका योग्य विकास न होनेसे रजोदर्शन नहीं होता। इस वस्तुस्थितिके लिये अन्य भी कारण होसकते हैं। यदि उपरोक्त कारण हो, तो मंडूरको त्रिफला और घृतमें मिला पश्चात् शहद मिलाकर देनी चाहिये।

शीतसह ज्वर अथवा विषम ज्वर या अन्य प्रकारका ज्वर अनेक दिनों तक आता रहनेसे पाण्डुता उत्पन्न हुई हो, उसमें मंडूरका उत्तम उपयोग होता है।

तीव्र पाण्डु रोगका प्रारम्भ प्रायः ज्वर आकरके होता है। क्वचित् साथ-साथ ज्वर भी बहुत करके एक समान रहता है; वमन होती है; अनेकोंको एक समान पतले-पतले दस्त होते रहते हैं; तथा चेहरा निस्तेज, श्वेत फीके रंगका होजाता है। इस विकारमें मंडूरका उपयोग होता है। इस अवस्थामें मंडूरके साथ प्रवाल-पिष्टी और गिलोय सत्व या अमृतारिष्ट देना चाहिये।

ज्यादा रक्तस्राव होने पर आई हुई पाण्डुतामें मंडूर भस्मका उपयोग माक्षिक भस्मके साथ किया जाता है। रक्तस्रावके समान ज्यादा रजःस्राव होजाने या प्रसूतावस्थामें अधिक रक्तस्राव होजानेसे पाण्डुता आई हो, तो भी मंडूरका उपयोग करना चाहिये, विशेषतः पाण्डुता और शोथ एक साथ होनेसे मंडूरका अच्छा उपयोग होता है।

कृमिजन्य पाण्डु रोगमें पहले अजवायनका फूल (थाईमोल) और कपूरके समान कृमिघ्न ओषधि देनी चाहिये। पश्चात् मंडूर भस्म अकेली या त्रिफलाके साथ देनी चाहिये।

रक्तका परिमाण न्यून होजाने या रक्तमें रक्ताणुओंका ह्रास हो जानेसे अनेकोंकी मानसिक स्थिति विलक्षण होजाती है। वे अधिक विचार नहीं कर सकते। स्वभाव क्रोधी और संशयी बनजाता है। थोड़ासा भी इच्छा-विरुद्ध होने पर सहन नहीं होता। मस्तिष्क और नेत्रोंमें निर्बलता आजाती है। बेहोशी या जड़ता रहती है। ऐसी स्थितिमें मंडूर भस्म देनेसे उत्तम कार्य होता है।

मंडूर भस्म रंजक पित्त दोष, रक्त, मांस, मज्जा, ये दूष्य; तथा

यकृत्, प्लीहा, फुफ्फुस, हृदय और अग्न्याशय, ये स्थान, इन सब पर विशेष लाभ पहुँचाती है। (औ० गु० ध० शा०)

दूसरी विधि—शुद्ध मंडूर ३२ तोले लेकर १२८ तोले गोमूत्रमें पचन करें। सूखा चूर्ण हो जाने पर ६४ तोले गोदुग्ध मिलाकर पचन करें। फिर कड़ाहीमें मन्डूरको मिट्टीके तवेसे ढककर ६ घण्टे तक तीव्र अग्नि देनेसे मंडूर भस्म तैयार होती है। इस भस्मको "क्षीरमंडूर" भी कहते हैं। (वृ० मा०)

मात्रा और उपयोग—ऊपर लिखे अनुसार। यह भस्म परिणाम-शूलके लिये विशेष उपकारक है।

सूचना—मंडूरसे किसीको उबाक या वमन होजाय, तो सुवर्णमाक्षिक भस्मके साथ मिलाकर देनेसे दोष शमन होकर गुणकी वृद्धि होती है।

तीसरी विधि—उपरोक्त मंडूर भस्मको त्रिफलेके क्वाथकी ३, गोमूत्रकी ३, घीकुँवारके रसकी ४ और औषधि पंचामृत (गिलोय, मूसली, सोंठ, गोखरू और शतावरी) के क्वाथकी ७ भावना देवें। प्रत्येक भावनाके अन्तमें गजपुट देवे। इस तरह १७ भावना देनेसे उत्तम प्रकारकी मंडूर भस्म तैयार होती है। इस भस्मका नाम रसरत्न-समुच्चयकारने 'मधुमंडूर' रक्खा है। (र० र० स०)

मात्रा—२ से ४ रत्ती तक शहद और पीपलके साथ।

उपयोग—इस भस्मके सेवनसे पाण्डु, गुल्म, प्लीहा, संग्रहणी, आमवृद्धि, सूतिकारोग, कृमि रोग, अरुचि, श्वास, कास, रक्तकी निर्बलता, श्वेत प्रदर, रक्तप्रदर, कुम्भकामला, सूजन, अन्तड़ीकी निर्बलता, धातुक्षीणता और हृदय रोग दूर होते हैं। यह स्त्रियों और बालकोंको निर्भयतापूर्वक दे सकते हैं। विशेष विवेचन प्रथम विधिके साथ। यह प्रथम विधिकी अपेक्षा विशेष लाभदायक है।

चौथी विधि—शुद्ध मंडूर ४० तोलेके कपड़छान चूर्णको बोतलमें डाल ऊपरसे अंगूरका सिरका भर देवे। मंडूरके ऊपर ५ अंगुल सिरका रहे, उतना सिरका डालें। दिनमें ३-४ बार बोतलको चला दिया करें। ४१ दिन तक इस तरह बोतलमें रखे। फिर ७ दिन तक घीकुँवारके रसमें खरल कर गजपुट अग्नि देनेसे सुन्दर लाल रंगकी मुलायम भस्म बन जाती है। कसर हो तो फिरसे घीकुँवारके रसमें खरलकर गजपुट देवे।

मात्रा और उपयोग—पहली विधि अनुसार। इस तरह अभ्रक आदिकी भस्म भी सरलतासे बनाई जाती है।

(१२) मंडूर-माक्षिक भस्म।

बनावट—शुद्ध मंडूर और शुद्ध सुवर्णमाक्षिक २०-२० तोले मिला, गोमूत्रमें १२ घण्टे खरलकर टिकियाएँ बाँधकर सूर्यके तापमें सुखावे। फिर सराव-संपुट करके गजपुट अग्नि देवे। स्वाग शीतल होने पर निकाल पुनः गोमूत्रमें खरल करके गजपुट देवे। इस तरह ३ गजपुट देनेसे मुलायम भस्म तैयार होती है। इस भस्मको अनेक वैद्य "भौम मंडूर" भी कहते हैं।

मात्रा—१ से ३ रत्ती शहद, दूध-मिश्री या अनार शर्बतके साथ।

उपयोग—यह भस्म सगर्भा स्त्रियोंका पीलापन, पित्ताधिक संग्रहणी, पाण्डु, कामला, परिणामशूल, शिरदर्द आदिको दूर करती है। जिनको मात्र मंडूर अनुकूल न रहता हो, उनके लिये और सगर्भा स्त्रियोंके लिये यह भस्म विशेष उपयोगी है। इस भस्ममें सुवर्णमाक्षिक और मण्डूर, दोनोंके मिश्रित गुण अवस्थित है।

(१३) अभ्रक भस्म।

प्रथम विधि—(सहस्रपुटी अभ्रकभस्म)—शुद्ध धान्याभ्रकको निम्न ७२ ओषधियोंमेंसे जो-जो मिल जायँ, उन-उनकी १६-१६ भावना देकर १००० पुट पूरे करें। प्रत्येक भावनाके अन्तमें छोटी-छोटी टिकिया बना सूर्यके तापमें सुखा सम्पुट करके गजपुट अग्नि दें। इन ओषधियोंके अतिरिक्त किसी रोग विशेषको शमन करनेवाली ओषधियोंकी भावना देनी हो, तो भी होसकता है। यदि रसायन गुणके लिये अभ्रम भस्म तैयार करना हो, तो भावना देने की ओषधियोंमें तीक्ष्ण और लेखन गुण वाली ओषधियोंको कम ले, और विरेचक ओषधियोंकी भावना भी अधिक नहीं देनी चाहिये।

आकका दूध, थूहरका दूध, बड़की जटाका क्वाथ, घीकुँवारका रस, अरंडीके पत्तोंका रस, नागरमोथाका क्वाथ, गिलोयका स्वरस, छोटी कटेलीका क्वाथ, बड़ी कटेलीका क्वाथ, गोखरूका क्वाथ, भाँगका क्वाथ, कुकरौंधाका स्वरस, सहदेईका रस, नागबलाका क्वाथ, अतिबलाका क्वाथ, खिरैंटीका क्वाथ, तुलसीका रस, शालपर्णीका क्वाथ, पृष्ठपर्णीका क्वाथ, कसौंदीके पत्तोंका स्वरस, अरणीकी छालका क्वाथ, बेलके पत्तो का क्वाथ, देवदारुका क्वाथ, कालीमिर्चका क्वाथ, अदरखका स्वरस, पीपलका क्वाथ, चित्रकमूलका क्वाथ, इन्द्रायणकी जड़का क्वाथ, लोदका क्वाथ, कुटकीका क्वाथ, जामुनकी छालका क्वाथ, आँवलेका स्वरस,

हरड़का क्वाथ, बहेडेका क्वाथ, अडूसेका स्वरस, नीमकी छालका क्वाथ, सतवनकी छालका क्वाथ, धतूरेके पत्तोंका स्वरस, सफेद सरसोंका क्वाथ, अपामार्गका क्वाथ, मोलसरीकी छालका क्वाथ, भांगरेका स्वरस, गोदुग्ध, अगस्त्यके पत्तोंका रस, बड़ी तोरईका रस, गोमूत्र, पाढलका क्वाथ, तालीसपत्रका क्वाथ, केलेके खंभेका रस, नागरमोथा रस, मूसली का क्वाथ, असगंधका क्वाथ, दूर्वाका क्वाथ, देवदाली पञ्चांगका क्वाथ, मछेछी (मत्स्याक्षी) का रस, मकोयका रस, पुनर्नवाका रस, शंखपुष्पीका रस, नागरबेलके पानोंका रस, खैरकी छालका क्वाथ, ब्राह्मीका रस, जटामांसीका क्वाथ, धमासेका क्वाथ, अमलतासकी फलीका क्वाथ, आकाशबेलका क्वाथ, चमेलीके पत्तोंका क्वाथ, काले जीरेका क्वाथ, गोरखमुंडीका क्वाथ, मूषाकानीके पत्तोंका स्वरस, भारंगीका क्वाथ, शतावरीका रस, विदारीकंदका रस, इन ७२ औषधियोंमेंसे जो-जो मिल जायँ, उनके पुट १००० पर्यन्त दें। इन औषधियों के अतिरिक्त अन्य रोगनाशक औषधियोंका भी पुट दे सकते हैं; प्रतिकूल औषधियोंका पुट नहीं देना चाहिये।

सूचना—गजपुटमें गोबरी कम डाली जाय, तो २००-४०० पुट तक भी अभ्रककी चमक नहीं जाती और अग्नि अच्छी तरह देने पर केवल ७ पुटोंमें ही अभ्रककी भस्म निश्चन्द्र होजाती है।

मात्रा—१ से २ रत्ती दिनमें २ समय देनी चाहिये।

अनुपान—१. प्रदरमें—सोनागेरू २ रत्ती और गिलोय सत्व ४ रत्तीके साथ देवें, ऊपर चावलोंका धोवन पिलावें।

२. पित्त-प्रकोपमें—सोनागेरू, गिलोय सत्व और शक्करके साथ देकर मिश्री मिला हुआ दूध पिलावें। या प्रवाल-पिष्टी और गिलोय-सत्वके साथ देवें।

३. पित्त-प्रधान प्रमेहो पर—सोनागेरू, गिलोय सत्व, पीपल और शहदके साथ, या गिलोय स्वरस और मिश्रीके साथ।

४. नेत्रोंकी निर्बलतामें—त्रिफलाका चूर्ण और शहदके साथ।

५. श्वास, कास, कफवृद्धि, जीर्णज्वर, भ्रम, प्रमेह, संग्रहणी, पाण्डु, क्षय, विषविकार, कामला और गुल्ममें—पीपल-शहदके साथ।

६. क्षय, पाण्डु, संग्रहणी, शूल, आम, कुष्ट, श्वास, प्रमेह, कास, मदाग्नि और उदरव्यथा पर—वायविडंग और त्रिकुटके साथ।

७. २० प्रमेहो पर—शिलाजीत और शहद-पीपलके साथ अथवा हल्दी, पीपल और शहदके साथ।

८. क्षय पर—आध रत्ती सुवर्णके वर्क और सितोपलादि चूर्ण या च्यवनप्राशावलेह अथवा सितोपलादि चूर्ण और शहदके साथ।
९. धातुवृद्धिके लिये—सुवर्ण के वर्क या चाँदीके वर्क और आँवलोंके मुरब्बेके साथ; या लौंग और शहदके साथ।
१०. रक्तपित्त पर—हरड़ और शक्कर; या इलायची और मिश्रीके साथ।
११. क्षय, पाण्डु और अर्शपर—त्रिकटु, त्रिफला, चातुर्जात, मिश्री और शहदके साथ।
१२. प्रमेह और मूत्रकृच्छ्रमें—इलायची, गोखरू, भूमिआँवला और मिश्रीके साथ देकर ऊपर गोदुग्ध पिलावे।
१३. जीर्णज्वरमें—गिलोय सत्व और मिश्रीके साथ, अथवा शहद-पीपलके साथ।
१४. अर्श पर—नागरवेलके पानमें मिलावा और भस्म डाल खिलावें।
१५. वात रोगमें—सोंठ, पुष्करमूल, भारंगमूल और असगन्धके चूर्ण तथा शहदके साथ।
१६. पित्तरोगमें—गोदुग्ध और मिश्री या चातुर्जात और मिश्रीके साथ।
१७. कफरोगमें—कायफल, पीपल और शहदके साथ।
१८. शुक्रस्तम्भनके लिये—भाँगके साथ।
१९. रक्त, मांस और अन्य धातुओंकी निर्बलतामें—लोह भस्म और शहद-पीपलके साथ।
२०. संग्रहणीमें—अनार शर्बत या कुटजादि अवलेहके साथ।
२१. कफ ज्वर और कास पर—अभ्रकभस्म, शृङ्ग भस्म, मुलहठी और सितोपलादि चूर्ण मिलाकर शहदके साथ दिनमें ३ बार देवें।
२२. नूतन कफकास पर—अभ्रक शृङ्गभस्म और लवंगादि चूर्णके साथ।

उपयोग—अभ्रक भस्म कषाय, मधुर, शीतल, आयुवर्द्धक और धातुवर्द्धक होनेसे त्रिदोष, व्रण, प्रमेह, कुष्ठ, प्लीहावृद्धि, उदरग्रन्थि, विष और कृमि आदि रोगोंको दूर करती है, शरीरको सुदृढ़ बनाती है, वीर्यकी वृद्धि करती है। इसके सेवनसे युवावस्थाकी प्राप्ति होती है; और सौ स्त्रियोंसे रमण करनेकी शक्ति उत्पन्न होती है। इसके सेवन करने वालोंके पुत्र दीर्घायु और सिंह सदृश पराक्रमी होते हैं, तथा अकाल मृत्युकी भीति भी दूर होती है।

क — यह क्षय, पाण्डु, ग्रहणी, शूल, आम, श्वास, अरुचि, दुर्धर कास, मन्दाग्नि, उदर व्यथा, कामला, ज्वर, गुल्म, अर्श

आदि रोगोको अनुपान-भेदसे दूर करती है। एवं वातवाहिनी नाड़ियोंमें क्षोभ या निर्बलता, श्वास, उरःक्षत, क्षय (Phthisis) की प्रथमावस्था, मानसिक दुर्बलता, अपस्मार, उन्माद, हृद्रोग (Heart Disease), पुरानी खाँसी, प्रसूति रोग, पाण्डु रोग, धातुक्षीणता, संग्रहणी और ज्वर आदि सब रोगोंमें भी अभ्रक भस्म अति उपयोगी है।

सगर्भा स्त्रीको थोड़ी मात्रामें सितोपलादि चूर्णके साथ अभ्रक भस्म ३-४ मास तक सेवन करानेसे गर्भ बलवान और निरोगी बनता है। क्षयरोगी, जो बिलकुल हाड़पिंजर हो गये हो; जिनके जीवनकी आशा न रही हो; डाक्टर और हकीमोने जिनको जवाब दे दिये हो; वैसे रोगी भी सहस्र पुटी अभ्रक, सुवर्ण भस्म और च्यवनप्राशावलेह के योगसे बिल्कुल तन्दुरुस्त होगये है।

अभ्रक भस्म मस्तिष्क, वातवह-मंडल, वातवाहिनियाँ, फुफ्फुस, हृदय और शरीरके सब भागोंमें मास-ग्रन्थियोके लिये बल्य, जीवनीय और शामक गुण दर्शाती है। कफस्थान (उरः) के लिये बल्य है। अभ्रक कफ और वात दोष और रस, रक्त, मांस, अस्थि, इन दूष्योंके विकारोंमें लाभदायक है। अभ्रक भस्मको सेवनके समय शहदमें पाव आध घण्टे तक खरल करके उपयोगमें लिया जाय, तो धातुपरिपोषण-क्रम और अन्तस्राव पर त्वरित लाभ होता है।

अभ्रक भस्मके मुख्य कार्य—चित्परमाणुओंको तरल और तरल-तर बनानेमें सहायता करना, संचालक इन्द्रियोको शक्ति देना; और इनके पोषक द्रव्योंकी पूर्ति करना, वातवाहिनी नसोंके क्षोभको दूर करना, तथा स्नायु शैथिल्य, इन्द्रियोंकी दुर्बलता, और वातवाहिनियो की क्षीणता दूर कर शरीर-संचालक प्राणोंको उत्तेजना देना; और सब इन्द्रियसमूहको कार्यक्षम बनाना आदि कार्य है।

अभ्रक भस्म उत्तम रसायन, वृष्य, मेधाजनक और योगवाही है। रसायन गुणयुक्त होनेसे रस आदि धातुओंको सुदृढ़ बनानेमें बहुत सहायक है। यद्यपि अभ्रकका वृष्यत्व प्रत्यक्ष नही है, तथापि अप्रत्यक्ष रूपसे सब धातुओंकी समता होने पर वृष्यत्व उत्पन्न होता है। यह वृष्यत्व विशेष काल स्थायी और श्रेष्ठ प्रकारका है।

अभ्रक भस्म योगवाही है, अर्थात् (१) अन्य ओषधियोंके गुणोंको बढ़ाती है। (२) अन्य ओषधियोंके गुणोंमें बाधा न पहुँचाते हुए सम्मिलित ओषधिके दोषको दूर करती है, और (३) दोष दूर करते हुए गुणमें वृद्धि करती है, इन तीन गुणोंके हेतुसे अभ्रकका

उपयोग अत्यन्त विरुद्ध प्रकारके भिन्न-भिन्न योगोंमें किया जाता है; और परिणाममें अभ्रक-मिश्रित सब प्रयोग वीर्यवान बनते है।

अभ्रकका मुख्य कार्य तरल और तरलतर परमाणु बनाने का है। अतः संचालक इन्द्रियोंके भीतर जो तरल परमाणुओंकी न्यूनता हुई हो, उसे यह दूर करती है। किसी भी रोगमें शारीरिक घटक और परमाणु शनैः-शनैः क्षीण होते जाते हो; इन्द्रियोंकी शक्ति का शोषण होता रहता हो, और इनकी कार्यक्षमताका ह्रास होता हो, ऐसे शोषरोगमें अभ्रकका उत्तम उपयोग हुआ है। अनेक बार घटक निर्बल होकर क्षीण हो जाते है, और अनेक बार सड़कर मृतवत् हो जाते हैं। इनमेंसे जहाँ घटक क्षीण हुए हों, वहाँ पर यह उपयोगी है, सड़े हुए पर इसका कार्य उतना अधिक नहीं हो सकता।

अनेक व्यक्तियोंको ऐसा सन्देह होजाता है कि, मुझे क्षय हो गया है। फिर बार-बार उदासीन-सा रहते है, किसी कार्य करनेमें उत्साहित नहीं होते, आनन्दके प्रसङ्गोंमें भी वह चिन्तातुर और व्याकुल रहते है। ऐसे मनुष्योंको थोड़े ही दिनों तक अभ्रकका सेवन कराने पर उनके मन और इन्द्रियाँ सबल बन जाती हैं, तथा वे स्वस्थ होजाते हैं।

मस्तिष्ककी निर्बलता जब अत्यधिक होजाती है; कार्य करनेका उत्साह नष्ट होजाता है, बार-बार चक्कर आता है, कपाल पर प्रस्वेद आना रहता है, मन अस्थिर रहता है, रोगी निस्तेज, चिन्ताग्रस्त, क्रोधी स्वभाव वाला और शुष्क होजाता है, तब अभ्रक भस्मका सेवन करने से थोड़े ही दिनोंमें प्रकृति स्वस्थ होजाती है। मुखमण्डल पर पाण्डुता प्रतीत होती हो और धमनियाँ कूदती हो, तो लोह भस्म देनी चाहिये, तथा मानसिक निरुत्साह हो, तो अभ्रक भस्म देनी चाहिये।

अपस्मार, उन्माद, स्मृतिनाश, बुद्धिविप्लव, इन सबमें मानसिक-यन्त्र निर्बल होजाता है। रस आदि धातुओंमेंसे आवश्यक पोषक पदार्थ इन इन्द्रियसमूहोंसे ग्रहण नहीं हो सकता। इस हेतुसे ऐसी परिस्थिति उपस्थित होती है। इन विकारोंमें मानस-यन्त्रको पोषण पूर्णरूपसे मिल जाय, तो ये सब रोग शमन होजायँ। परन्तु वर्तमानमें चिकित्सा इस तत्त्वके अनुसार नहीं करते। केवल रोगशामक ओषधि से वातवाहिनियोंका क्षोभ निवृत्त करते है। इस हेतुसे चिकित्सा फल-प्रद नहीं होती। उपरोक्त तत्त्वको लक्ष्यमें रखकर चिकित्सा करें, तो अच्छा लाभ पहुँचता है, ऐसा अनुभव हुआ है।

जब किसी इन्द्रियके घटकोंको योग्य पोषण नहीं मिलता; तब

वह क्षीण होती है । सामान्यतः घटकोंके लिये आवश्यक द्रव्य रक्तमेंसे शोषण कर उसे अपना बना लेनेका शारीरिक परमाणुओंका प्रयत्न सतत चालू रहता है; उसका अभाव होने पर इन्द्रिय क्षीण होती जाती है । इस वैगुण्यका निवारण अत्यन्त वीर्यवान तथा रस-रक्त आदि सब धातुओंको ओज और तेज समर्पक औषध द्वारा हो सकता है । ऐसी ओषधि अभ्रक भस्म है ।

अभ्रम भस्मके सेवनसे थोड़े ही दिनोंमें शारीरिक परमाणुओंको ओजकी प्राप्ति होजानेसे वे सुदृढ़ बन जाते हैं । ऐसे समय पर स्मृति-केन्द्रकी क्षीणता नष्ट कर उसे पूर्व स्थितिकी प्राप्ति कराना, यही सच्ची चिकित्सा कहलाती है ।

अभ्रक भस्मसे मनका तरल अंश शनैः-शनैः सबल होता जाता है । फिर संज्ञावाहिनियों और आज्ञावाहिनियोंकी क्षीणता कम होने लगती है । तत्पश्चात् अपस्मार आदिकी क्षोभ प्रवृत्ति नष्ट होजाती है ।

अपस्मार और उन्मादकी जीर्णावस्थामें जब रोगी निस्तेज, डरपोक, निर्बल और चिन्तातुर हो गया हो, स्मरण-शक्ति नष्ट होगई हो, तब अभ्रक भस्म एक आध मास तक सेवन करानेसे रोगीकी इन्द्रियाँ बलवान् बन जाती हैं और रोग शमन होजाता है ।

अर्धाङ्ग वातकी जीर्णावस्थामें रक्तवाहिनियोंकी विकृति और मानसिक क्षोभ होते है, तब रोगशामक ओषधिके साथ अभ्रक भस्मका उपयोग करनेसे सत्वर लाभ होता है ।

छोटे बालकोंकी बुद्धिका विकास, आयुके परिमाणमें जब न हुआ हो, या मूढ़ता बढ़ती जाती हो, शरीर कृश, निर्बल और निस्तेज रहता हो, शुद्ध बोल भी न सकता हो या अच्छी रीतिसे चल न सकता हो; तथा मुँहसे लार गिरती रहती हो, तब अभ्रक भस्मसे लाभ होजाता है । यदि माता-पिताको उपदंश रोग होनेके पश्चात् बालकका जन्म हुआ हो, तो अभ्रक भस्मके साथ गन्धक रसायन (प्रथम विधि वाला) देना चाहिये । बार-बार वमन होती हो, तो प्रवालपिष्टी और गिलोय सत्वको मिला देना चाहिये । कफ विकृति अधिक हो, तो शृङ्ग भस्म और रक्तकी कमीमें मण्डूर भस्म मिश्रित करनी चाहिये ।

मस्तिष्कके किसी एक भागका उचित विकास न होनेसे बाल्यावस्थामें वैगुण्य उपस्थित होता है । इस हेतुसे बालक मस्तिष्कको सीधा नहीं रख सकता । उसका हाथ-पैर पर अधिकार न होनेसे वह चल नहीं सकता । एवं अच्छी तरह बोल भी नहीं सकता । ऐसी स्थितिमें

अकेली अभ्रक भस्म या अन्य सहायक ओषधिके मिश्रण सहित सेवन करानेसे बालक स्वस्थ होजाता है।

अभ्रकमें रसायन गुण होनेसे धातु-परिपोषण क्रमको सुव्यवस्थित करती है। इसी कारणसे पाण्डु, रक्तपित्त, अम्लपित्त, क्षतक्षय आदि तीव्र और जीर्ण व्याधियोंमें इसके सेवनसे लाभ होता है।

रक्तमेंसे रक्ताणुओंकी न्यूनता और मानसिक चिंताके कारण नवयुवा स्त्रीको हारिद्रक रोग हुआ हो; ज्वर रहता हो, शरीर पीला, शुष्क, निस्तेज हो, तथा कभी-कभी वमन आदि लक्षण होते हों, तो अभ्रक और लोह मिलाकर देनेसे रोग थोडे ही दिनोंमें चला जाता है।

पाण्डु रोगमें मानसिक चिंता करण हो, अथवा अर्शमें वार-वार रक्त जानेसे पाण्डुता आई हो, तो इसका उपयोग लाभदायक है। ऐसे ही अन्त्रमें निर्वलता आने पर गुद-त्रिवली पर बोझा आकर शोथ आ गया हो। फिर शौचमें रक्तस्राव होकर निर्वलता आई हो, तो अभ्रकका उपयोग करनेसे अन्त्र वलवान् होकर रोगका शमन होता है।

किन्तु यकृत्के समीप रुधिराभिसरणके दबावमें वृद्धि होनेसे इस स्थितिकी प्राप्ति हुई हो, तो अभ्रक भस्मके सेवनसे यथोचित लाभ नहीं हो सकेगा। ऐसी परिस्थितिमें विरेचन या रक्तके दबावकी शामक औषधकी योजना करनी चाहिये।

अनेक वार रक्तार्श उत्पन्न होकर पुराना होजाता है। फिर वार-वार रक्त गिरता रहता है। इस रक्त गिरनेके अभ्यास को नष्ट करनेके लिये अभ्रकभस्म-घटित औषधिका उपयोग किया जाता है। अभ्रकसे अर्शके मस्से तो नष्ट नहीं होते, परन्तु रक्त गिरना कम होजाता है, और शरीरमें निर्वलता नहीं आती।

अर्शके मस्सेका ऑपरेशन करानेके पश्चात् अनेक समय भगन्दर या नाड़ी-व्रण होजाता है। ऐसे समय पर व्रणको भरनेके लिये अभ्रकका सेवन सहायक होता है। ऐसे ही जीर्ण व्रण रोगमें शारीरिक शक्तिको स्थिर रखनेवाली और व्रणको सत्वर भरनेमें सहायता पहुँचानेवाली औषधियोंमें अभ्रक भस्म उत्तम औषधि है।

यदि फुफ्फुसोंकी अशक्तिसे कफविकार हुआ हो, एवं आघात, मानसिक चिंता, ज्वर ज्यादा समय तक रहने या अन्य कारणसे हृदय निर्बल होगया हो, तो फुफ्फुस और हृदयको शक्ति देनेवाली औषधियोंमें अभ्रक भस्म सबसे उत्तम है। इस तरह किसी भी रोगमें रोगीकी बोलनेकी शक्ति क्षीण होगई हो, तो अभ्रक भस्मसे लाभ पहुँ-

चता है। यदि अशक्तताकी अपेक्षा अनिच्छा हेतु की प्रधानता हो, तो ऐसे स्वर-भेदमें जसद भस्म देनी चाहिये।

आयुर्वेदमें कहे हुए निर्जन्तुक, अनुलोम और प्रतिलोम क्षयमें अभ्रक भस्मको शृङ्ग भस्म और गिलोय सत्वके साथ देते रहनेसे रोग शमन हो जाता है, अर्थात् अभ्रकसे अणुभवन क्रिया सुधरकर घटकों का ह्रास नष्ट होजाता है। परन्तु आधुनिक युगमें फैले हुए कीटाणु-जन्य क्षयकी सब अवस्थाओंमें अभ्रक भस्मसे उपयोग होना ही है, ऐसा नहीं कह सकेंगे। प्रथमावस्थामें ज्वर बिल्कुल कम रहता हो, उस समय तो अभ्रक भस्मका उपयोग निःसंदेह होता है। इस प्राथमिक अवस्थामें फुफ्फुस और अन्य शारीरिक घटकोंको सबल बना देने से क्षयके विषकी प्रगतिका अवरोध होजाता है।

जीर्ण कफप्रकोप, जीर्ण कास, कफात्मक और कफ-वातात्मक जीर्ण श्वास, जिसमें श्वास-वाहिनियाँ विकृत होगई हों, और उनमें व्रण होगये हों, अति खाँसने पर सफेद, चिकना कफ निकलता हो; थोड़े श्रमसे प्रस्वेद आता हो, रोगी अत्यन्त अशक्त होगया हो, तो ऐसे समय पर कफघ्न अनुपानके साथ या शहद-पीपलके साथ अभ्रक भस्म देनेसे रोग निर्मूल होजाता है।

हृदयकी निर्बलतासे एवं वयोवृद्ध और निर्बल मनुष्योंको वर्षा ऋतुमें या शीतकालमें बादल होने पर श्वास रोग होजाता है, कितनेकोंको बैठनेसे श्वास शमन होजाता है, और थोड़े परिश्रमसे श्वास भर जाता है, उन सबके लिये अभ्रक भस्म अति लाभदायक है।

पाण्डु-रोगिणी स्त्रियोंको श्वास-वाहिनियोंके संकोच होनेसे अतिशय घबराहट और श्वासरोग होजाता है, पंखासे हवा करने पर अच्छा लगता है, अन्यथा दिन-रात बेचैनी रहती है, शीतल या उष्ण ओषधि सहन नहीं होती, ऐसे समय पर श्वासवाहिनियोंको विकसित करनेवाली और पित्तको शमन करनेवाली ओषधियोंमें अभ्रक भस्म उत्तम है। ऐसे प्रसंग पर कार्यकर ओषधियाँ अभ्रक भस्म, रुद्रवन्ती, शिलाजीत, चंद्रप्रभा और आरोग्यवर्द्धिनी हैं। उनमें मानसिक क्षोभ दूर करनेके लिए अभ्रक है, विष मूत्र द्वारा बाहर निकालने और विकारका शोषण करनेके लिये रुद्रवन्ती, शिलाजीत और चन्द्रप्रभा हैं, एवं मलशुद्धिकी आवश्यकता हो, तो आरोग्यवर्द्धिनीका उपयोग किया जाता है। इन सब प्रयोगोंमें जीर्ण दोष या स्वभावको नष्ट करने के लिये बार-बार शहदके साथ अभ्रकका सेवन कराना चाहिये।

हृदयकी अशक्तिके कारणसे वार-वार थोड़े परिश्रमसे श्वास भर जाता हो, नाड़ी क्षीण, मन्द और वार-वार अनयमित रहती हो, तो अभ्रकके सेवनसे प्रकृति स्वस्थ होजाती है। यदि रक्तवाहिनियोंकी दीवार पतली होगई हो, फिर उन उन स्थानोंमें रक्त संगृहीत हो गया हो, तो इस विकारमें एवं इससे उत्पन्न रक्तपित्तमें भी यह हितकर है। प्रवालपिष्टी और गिलोतसत्व मिलाना और अधिक लाभदायक है। यदि इस रोगकी उत्पत्ति उपदंशसे हुई हो, तो अनुपान अनन्तमूलका अवलेह अथवा रक्तशोधक अरिष्ट या रक्तशोधक क्वाथ दे।

अभ्रक भस्म निमोनिया रोगमें दालचीनीके साथ देनेसे रोगके कारणभूत कीटाणुओंको नष्ट करती है। लोहभस्मके साथ देनेसे रक्ताणुओंको बढाती है। इस कारण पाण्डु रोगमें अभ्रक भस्म, लोहभस्म, त्रिफला और शहद मिलाकर दिया जाता है।

अभ्रक भस्म हृदयोत्तेजक है। फिर भी कुचिला अथवा कपूरके समान हृदय-उत्तेजक नहीं है। अभ्रक भस्म तो हृदयके स्नायुमय घटकोंको शक्ति देकर हृदयको उत्तेजना देती है। इस कारण हृदय-विकारसे होनेवाले शोथ रोगमें इसके सेवनसे लाभ होता है।

उदरकी अशक्ति और पित्तोत्पादक पिण्डकी अशक्तिके कारणसे पित्तकी उत्पत्ति सम्यक् न होती हो, फिर इसीसे अपचन और मन्दाग्नि रोग हुआ हो, तो पित्तोत्पादक पिण्ड और उदरके अवयवोंको शक्ति देकर रोगको दूर करनेका काम यह करती है।

अरुचि अर्थात् जिसमें भोजन करनेमें प्रीति न हो, स्वादिष्ट वस्तु भी वेस्वादु लगती हो, यह विकार उदरविकृति और अशक्ति होने के पश्चात् या अरुचिरूप उपद्रव क्षय, पाण्डु, कामला, ज्वर आदि रोगोंके पश्चात् हुआ हो, तो इस भस्मका उपयोग लाभदायक है।

जीर्ण अम्लपित्त रोगमें यदि सूतशेखर आदि औषधिसे लाभ न होता हो, सर्वदा उबाक बनी रहती हो, उदरमें पीड़ा रहती हो, और वमनके साथ रक्त निकलता हो, परन्तु उदरमें कर्कस्फोट न हो, तो अभ्रक भस्मका उपयोग करना हितकर है। एवं पेटकी आकृति बड़ी होगई हो, और भोजनके पश्चात् वमन होजाती हो, तो अभ्रक भस्म का उपयोग वंग भस्मके साथ करना लाभदायक है।

क्षय रोगके अतिसारमें अन्य जन्तुघ्न औषधिके साथ अभ्रकके उपयोगसे लाभ होता है। उस समय अभ्रक भस्म, मुक्ता पिष्टी, शंख-भस्म और वराटिका भस्मका मिश्रण घृतके साथ दिया जाता है। ऐसे

ही अन्त्रकी निर्बलताके कारणसे बहुत दिनोंके पुराने त्रासदायक अतिसारमें बार-बार झागसहित थोड़ा-थोड़ा दस्त होता हो; अन्त्रकी संधारण शक्ति क्षीण होगई हो, तो अभ्रक भस्मका उपयोग वराटिका भस्म, सोंठका चूर्ण और घृत (या शहद) के साथ करना हितकारक है। ग्रहणीकी अशक्तताके कारणसे जीर्ण ग्रहणी रोगमें यदि अन्त्रमें स्थान-स्थान पर व्रण होगये हों, बार-बार रक्त गिरता हो, तो अभ्रक भस्मका उपयोग पर्पटीके साथ करना चाहिये।

उदरमें रसवाहिनी और रसोत्पादक पिण्डकी विकृति अथवा रसवहनकार्यमें प्रतिबन्ध होनेसे उदर-ग्रन्थियों बढ़ गई हों; साथ-साथ मन्द-मन्द शूल घण्टों तक बार-बार चलता रहता हो, रोगी अशक्त होजाता हो, मन्द ज्वर, मलावरोध और अपचन भी साथ-साथ रहते हो, तो अभ्रक भस्मका उपयोग हितकारक माना गया है।

छोटी आँत और बड़ी आँतकी निर्बलताके कारण मलावरोध रहता हो; फिर रोग जीर्ण होने पर मलमें दुर्गन्ध, रक्तविकार, फोड़े-फुन्सियाँ, छोटे-छोटे दूषित रक्तके मंडल आदि भीषण स्वरूपकी प्राप्ति हुई हो, तो इस भस्मका सेवन रक्तशोधक अनुपानके साथ हितकर है।

मूत्राशयकी अशक्तिके कारण बूँद-बूँद मूत्र होता रहता हो, और बारबार पेशाब करना पड़ता हो, अथवा मूत्रमें रक्त भी जाता हो, एवं मूत्रकृच्छ्रका रोग जीर्ण हुआ हो, तो इस भस्मके सेवनसे मूत्राशय बलवान बन जाता है। मधुमेहमें अभ्रक, शिलाजीत और जामुनके बीजके चूर्णके साथ देते रहनेसे शक्ति क्षीण नहीं होती, और व्याधिबल भी धीरे-धीरे न्यून होकर अनेकांशमें रोग दब जाता है।

वातवाहिनियोंकी निर्बलताके कारण या मानसिक आघात पहुँचनेसे नपुंसकता आई हो, वह अभ्रक भस्मके सेवनसे दूर होती है। अभ्रक भस्म जननेन्द्रियके स्नायु, जननेन्द्रियके घटक, जननेन्द्रियको उत्तेजना देने वाली वातवहा नाड़ियोंके केन्द्र और वातवाहिनियाँ, इन सबको शक्ति देकर नपुंसकताको दूर करती है।

योगवाही होनेसे अभ्रक भस्मका कार्य संयोजित द्रव्य अनुसार त्वरित और मन्द वेगवाला होजाता है। लक्ष्मीविलास रस (सन्निपात-नाशक और हृदयपौष्टिक रसायन) में कर्पूरादि औषधिका संयोग होनेसे यह तीव्र और शीघ्र गुण करती है। आरोग्यवर्द्धिनीमें ताम्र आदि औषधि संयुक्त होनेसे गुण शनैः-शनैः दर्शाती है। लक्ष्मीविलास में उत्तेजक कार्य और आरोग्यवर्द्धिनीमें निर्बल बने हुए घटकोंको

दूर कर नये सबल घटकोंको तैयार करनेका कार्य अभ्रक भस्मके संयोगसे होता है। इस तरह संयोगजन्य गुण न्यूनाधिक परिमाण और पृथक्-पृथक् रूपमें होता है।

अभ्रकभस्म का उपयोग कफ कास पर उत्तम होता है। किन्तु शुष्क कासमें व्यवहृत नहीं होती। फुफ्फुस प्रणालिकाएं और वायुकोष निर्बल बनने पर उनमें कफ संगृहीत होजाता है। उसके साथ कण्ठमें शुष्कता हो, तो शुष्ककास चलती रहती है और सरलतासे कफ नहीं निकलता। रोगी अति बेचैन होजाता है, प्रस्वेद आजाता है, कण्ठ सूख जाता है फिर थोड़ा कफ गिरता है। ऐसी अवस्थामें अभ्रकभस्म, शृंगभस्म, छोटी इलायचीके दाने और प्रवालपिष्टी १-१ रत्ती, गिलोय सत्व और वंशलोचन २-२ रत्ती मिला, उसकी ४ पुड़ी बनाकर दिनमें ४ बार आमके मुरब्बाके साथ सेवन कराने पर पहलेही दिनसे आराम होने लगता है।

सूचना—अभ्रक भस्म किसीको भी हानि नहीं पहुंचाती, फिर भी किसी-किसीको इसकी मात्रा ज्यादा लेनेसे नाड़ीका वेग बढ जाता है और रक्ताभिसरण क्रि- | ,याद्रा वेगसे होने लगती है। ऐसे समय पर अभ्रक भस्म थोड़े दिनोंके लिये बन्द कर देनी चाहिये। पश्चात् थोड़े परिमाणमें सेवन करानी चाहिये और मुक्ता या प्रवाल-पिष्टी साथमें मिला लेनी चाहिये।

अभ्रक भस्मको १० से १००० गजपुट तक देनेका शास्त्रविधान है। जितने अधिक पुट देनेमें आवे उतने परिमाणमें गुणकी वृद्धि होती है। अभ्रकके सेवन करनेवाले अकाल मृत्युसे बच जाते हैं। अनुपान-भेदसे यह सब रोगों पर उपयोगी है। इसलिये इसे मनुष्य लोकका अमृत माना है।

श्वेत अभ्रकको अंग्रेजीमें माइका (Mica) और कृष्ण अभ्रकको बाइओटाईट (Biotite) कहते है। रसायन-शास्त्रकी दृष्टिसे अभ्रक डबल सिलिकेट आफ् एल्युमिना एण्ड पोटाश-सोडियम (Double Silicate of Alumina and Potash-Sodium) है। कतिपय जातिमें लोहका अंश मिलता है, और कितनेक प्रकारके अभ्रकमें मैगनेशिया प्रतीत होता है।

श्वेताभ्र—K_2O, $3Al_2O_3$, $4SiO_2$, (२ पोटाशियम ऑक्साईड, ३ एल्युमिनियम् ऑक्साईड, ४ सिलिकन ऑक्साईड)

कृष्णाभ्र—वज्राभ्र—$3MgO$, Al_2O_2, $3SiO_2$ (३ मेगने-

शियम् ऑक्साईड, एल्युमिनियम् ऑक्साईड और ३ सिलिकन ऑक्साईड)। कृष्णाभ्रमें कुछ-न-कुछ लोहका अंश रहता ही है।

श्वेताभ्र—Muscovite (मस्कोवाईट) Potash Mica.

कृष्णाभ्र—Biotite (बायोटाईट) Ferromagnesian Mica.

रासायनिक पृथक्करण:—(१) सिलिका, (२) लोह, (३) एल्युमिनियम, (४) पोटाशियम, (५) मैगनेशियम। (आ० गु० ध० शा०)

दूसरी विधि—(१०० पुटी) शुद्ध धान्याभ्रकको आकका दूध, थूहरका दूध, धतूरेके पत्तोंका रस, केलेके खंभेका रस, चित्रकमूलका क्वाथ, नागरमोथाका क्वाथ, शतावरीका क्वाथ, गोखरूका क्वाथ, कौंचका क्वाथ, गिलोयका स्वरस, नागरवेलके पानोंका रस, गोदुग्ध, गोमूत्र, घीकुँवारका रस और बड़के अंकुरोंका क्वाथ, इनके रस और क्वाथके साथ १२-१२ घण्टे खरल करके छोटी-छोटी टिकिया बाँधें। पश्चात् सूर्यकी तेज धूपमें सुखा, संपुट करके गजपुट अग्नि दें। इस रीतिसे इन सबके क्रमशः ७-७ पुट देनेसे १०५ पुटी भस्म तैयार होती है। सहस्रपुटीके अभावमें यह भस्म उपयोगमें आती है।

मात्रा और उपयोग—पहली विधिके अनुसार।

तीसरी विधि—(४० पुटी अभ्रक भस्म) शुद्ध धान्याभ्रकको नागरमोथेका क्वाथ, पुनर्नवाका रस, कसौंदीके पत्तोंका रस, नागरवेलके पानोंका स्वरस, आकका दूध, गोमूत्र, लोधका क्वाथ, सफेद मूसलीका क्वाथ, गोखरूका क्वाथ, कौंचका क्वाथ, केलेके खंभेका रस, तालमखानोंका क्वाथ, घीकुँवारका रस, और बड़की जटाका क्वाथ, इन १४ ओषधियोंकी क्रमशः ३-३ भावना देवे। बार-बार टिकिया बाँध, सूर्यके तापमें सुखा, संपुट करके गजपुट अग्नि दे। इस रीतिसे प्रत्येक भावनाके पश्चात् गजपुट देनेसे ४२ पुटी अभ्रक भस्म तैयार होती है।

मात्रा और उपयोग—प्रथम विधिके अनुसार।

चौथी विधि—(२० पुटी) धान्याभ्रकको कुकरौंधाके स्वरसमें खरल कर छोटी-छोटी टिकिया बाँध, तेज धूपमें सुखा, एक हाँडीमें बन्द करके गजपुट अग्नि दें। इस प्रकारके १० गजपुट देनेके बाद आकके पीले पत्तोंके रसके ७ और बड़के अंकुरोंके क्वाथके ३ गजपुट देनेसे अति मुलायम २० पुटी अभ्रक भस्म बन जाती है।

मात्रा और उपयोग—पहली विधिके अनुसार।

पाँचवीं विधि—"ओषधिकृति" में कहे अनुसार अभ्रकको निश्चन्द्र बना, आकके दूध (अभावमें पत्तोंके रस) में १२ घण्टे खरल

कर छोटी-छोटी टिकियाँ बाँधें। सूर्यकी तेज धूपमें सुखा, संपुटकर एक गजपुट देनेसे लाल रंगकी निर्दोष भस्म बन जाती है। (र० मा०)

सूचना—जब तक अभ्रकका चमकीला अंश नष्ट न हो जाय, तब तक उस भस्मको व्यवहारमें नहीं लेना चाहिये।

मात्रा, अनुपान और उपयोग—पहली विधिके अनुसार।

(१४) कासीस भस्म।

बनावट—विलायती कासीस (Ferri Sulph.) को भाँगरेके रसमें १२ घण्टे तक खरल कर टिकिया बाँधकर, सूर्यके तापमें सुखावें। फिर संपुट करके लघुपुट देवें। इस तरह ३ पुट देनेसे लाल रंगकी मुलायम भस्म बन जाती है। अन्य कासीसकी भस्म ऐसी मुलायम नहीं बनती। विलायती कासीस ४० तोलेमेंसे भस्म केवल १० तोले बनती है।

मात्रा—१ से ३ रत्ती तक दिनमें २ समय।

अनुपान—नष्टार्तवमें एलवा और हींगके साथ।

प्लीहा, गुल्म, शूल और पाण्डुमें-त्रिफला और घृतके साथ।

पाण्डु, कफ, आम, उदर रोग, प्लीहामें—शहद-पीपलके साथ।

संग्रहणीमें—नागकेशर और मिश्रीके साथ।

मधुमेहमें—जामुनकी गुठलीके चूर्णके साथ।

गर्भाशय और बीजाशयके दोषमें—शर्बत बनफसाके साथ।

नेत्ररोगमें—त्रिफला और घृत या त्रिफला और शहदके साथ।

उपयोग—यह भस्म पाण्डु, क्षय, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, यकृद्वृद्धि, प्लीहोदर, उदरवातयुक्त संग्रहणी, अतिसार, प्रवाहिका, मधुमेह, आमविकार, कफप्रकोप, अर्श, शूल, वातज गुल्म और स्त्रियोंके गर्भाशय दोषको दूर करनेमें उपयोगी है। एवं किसी रोगके हेतुसे या चितासे अकालमें आई हुई निर्बलताको भी दूर करके शरीरको सुदृढ़ और कान्तिवान बनाती है।

कासीस भस्म किञ्चित् उष्ण, कषाय तथा अम्ल गुणयुक्त है। नेत्रोंके लिये हितकर है। आमसशोषक और कफनाशक होनेसे मंदाग्नि को दूर करके अग्नि प्रदीप्त करती है; तथा रक्तमें रहे हुए रक्ताणुओंकी वृद्धि करती है। शतधौत घृतके साथ मिलाकर अभिष्यंद (नेत्रकी लाली), पूयाभिष्यंद, नेत्रव्रण, नेत्रकी पुतली पर व्रण आदि रोगोंमें अंजन करनेमें उपयोगी है। इस भस्ममें कषाय गुण होनेसे यह रक्त-प्रसादन कार्य करके नेत्रविकारको शमन करती है। यह कार्य केवल

मृदु त्वचा पर और सुकुमार इन्द्रियों पर बहुत अच्छी प्रकारसे होता है।

कासीस भस्म आमसंशोषक होनेसे अग्नि को प्रदीप्त करती है। यह कार्य रसायन विधानसे घृत और शहदके साथ लेनेमें प्रतीत होता है। मात्र कासीस भस्मके सेवनसे आमका पाचन होता है। पचनेन्द्रिय अथवा पचनेन्द्रियकी सन्निधिके भागके रक्त धातुमें विकृति अथवा रक्तकी आमदनी उस-उस इन्द्रियके लिये न्यून होना, यह मन्दाग्नि और आम संजननके अनेक कारणोंमेंसे एक कारण होसकता है। पित्तका आश्रय या आधार रक्त है, और पित्त आश्रयी अथवा आधेय है। इस कारण रक्तका परिमाण न्यून होने पर पित्तधातुसे उत्पन्न होनेवाले पाचक द्रव्यकी उत्पत्ति भी न्यून होजाती है। रक्तकी यह न्यूनता इस भस्मके सेवनसे दूर होती है।

कासीस भस्म अग्निप्रदीपक है, अर्थात् पाचक रसका पाचकत्व कम होने पर पचनेन्द्रिय को उत्तेजना देकर पाचक-रस की तीव्रता प्रस्थापित करानेवाली ओषधि है। पाचन-क्रिया पचनेन्द्रियके भिन्न-भिन्न रसोंके परिमाणके ऊपर और उसके घटकों पर अवलम्बित है। यह कार्य पित्त धातुके योगसे होता है, और कासीस भस्मका कार्य पित्तधातुमें साम्यता लानेका है। अतः इसके सेवनसे पचनेन्द्रिय और पाचक रस व्यवस्थित होता है।

अन्त्रमें रहे हुए आम पर इस भस्मका कार्य होता है। इसलिये आमजन्य अजीर्ण या जीर्ण अजीर्ण रोग और उनसे होने वाले विकार पर यह उपयोगी है।

शरीर अकालमें निर्बल और निस्तेज होजाने पर इस भस्मका सेवन कराया जाता है। यदि अकालमें बाल पक कर सफेद होजाते हैं; और वृद्धावस्थाके समान कमजोरीकी प्राप्ति होती है, तो इस भस्मके सेवनसे लाभ होजाता है। ऐसे समय पर कासीस भस्म, लोह भस्म और त्रिफला, तीनोंको मिलाकर परिस्थिति अनुसार योग्य परिमाणमें घृत और शहदके साथ देनेसे अच्छा उपयोग होता है। यह योग पाण्डुरोगकी प्रथमावस्थामें भी दिया जाता है। बार-बार अजीर्ण होनेकी आदत हो और पाण्डुता आई हो, तो इस योगका अवश्य प्रयोग करना चाहिये।

धातुगत पचन अर्थात् रस और रक्तमेंसे आवश्यक अंशको लेकर उसमेंसे अपने अंशको बढ़ानेकी प्रत्येक धातुकी प्रवृत्ति नियमित रीतिसे होरही है। उसमें शिथिलता होजाय, तो प्रत्येक धातु क्षीण

होने लगती हैं । ऐसी परिस्थितिमें रोगीके शरीरमें क्षयके कीटाणु होने ही चाहिये, ऐसा नियम नहीं है । इस विकार पर इस भस्मका उपयोग करना चाहिये । उपरोक्त योग इसमें अति प्रशस्त है ।

वातज गुल्म और शूल पर कासीस भस्मका उपयोग होता है । यह अग्निप्रदीपन करके गुल्म और शूलको नष्ट करती है ।

बृहदन्त्रमें सेन्द्रिय विषको रूपान्तरित करनेवाली औषधियोंमें कासीस भस्मकी गणना होती है । इस स्थान पर दो प्रकारकी औषधियाँ उपयोगी हैं—आरोग्यवर्द्धिनी, वराटिका भस्म, ताम्रभस्म आदि उष्ण, तीक्ष्ण और रसायन गुणयुक्त औषधियाँ । और दूसरी कासीस भस्मके समान कषाय, रसात्मक और शामक रसायन औषधियाँ । इनमेंसे कासीस भस्मका उपयोग विशेषतः सेन्द्रिय विषके योगसे दाह होने पर अच्छा होता है । दाहके साथ उदरमें वात भी उत्पन्न होता हो, दुष्ट अपान वायु बराबर न निकलता हो, और उदरमें गुड़गुड़ाहट आदि लक्षण होने पर कासीस भस्मका उपयोग किया जाता है ।

जीर्ण व्रणोंमें कासीस भस्मका उपयोग होता है । यदि व्रण रक्त और मांस धातुगत हो, उसमें पित्त-दुष्टीके लक्षण हों, तो इस भस्मका सेवन कराना चाहिये । दाह, लाल व्रण, किनारी पर शोथ, भीतरसे स्राव कम होना, बारबार रक्त आते रहना, इत्यादि लक्षण होने पर बाह्य उपचारके साथ इस भस्मका सेवन लाभदायक है ।

कासीस भस्म वात और कफ दोष, रस और रक्त दूष्य, तथा यकृत, प्लीहा, आमाशय, ग्रहणी और नेत्र स्थान, इन सब पर लाभ पहुँचाती है । इसके सेवनसे रक्तके रक्ताणुओंकी वृद्धि होती है । यह इसका विशेष धर्म है । (औ० गु० ध० शा० के आधार से)

सूचना—कासीस भस्मसे किसी-किसीको वमन होती है, और चक्कर आता है । ऐसा होने पर मात्रा कम करे, और सुवर्णमाक्षिक मिला देवे ।

(१५) कासीस-गोदन्ती भस्म ।

बनावट—विलायती कासीस और गोदन्ती १०-१० तोले मिला घीकुँवारके रसमें ६ घण्टे घोटकर छोटी-छोटी टिकियाँ बाँधे । फिर टिकियोंको सुखा, सपुट करके गजपुटमें फूँक देवे । इस रीतसे दो-तीन पुट देनेसे सिंदूर जैसी लाल भस्म होजाती है ।

मात्रा—१ से २ रत्ती मिश्री और दूध या शहदके साथ दे । विषम ज्वरमें अदरखके रस और शहदके साथ ।

उपयोग—यह भस्म आमप्रकोपसे उत्पन्न नवीन ज्वर, मलेरिया

(विषम ज्वर), जीर्णज्वर, पांडु, श्वेतप्रदर, मन्दाग्नि और आमवृद्धिको दूर करके शरीरमें रक्तकी वृद्धि करती है। सगर्भा और प्रसूता स्त्रियों और बालकोंके लिये भी हितकारी है। मलेरिया आनेके ४ घण्टे पहले एक मात्रा और दूसरी मात्रा दो घण्टे पहले देनेसे ज्वर रुक जाता है।

(१६) गोदन्ती भस्म ।

बनावट—४० तोले गोदन्तीके टुकड़ोंको बारहसींगेमें लिखे अनुसार आकके पत्तोंकी लुगदी या गुँवारपाठेके गूदेमें संपुट कर जगपुट अग्नि देनेसे सफेद रंगकी मुलायम भस्म तैयार होती है।

मात्रा—२ से ८ रत्ती सुदर्शनचूर्णके क्वाथ, मिश्री या शहदके साथ दें। बालकोंको एक रत्ती माताके दूध या शहदके साथ दें।

उपयोग—यह भस्म पित्तज्वर, आमज्वर, शिरदर्द, जीर्णज्वर विषम ज्वर, स्त्रियोंके श्वेतप्रदर, रक्तप्रदर, रक्तस्राव और सूखी खाँसीमें अति लाभदायक है। बालकोंके ज्वर, कास, श्वास, हड्डियोंकी निर्बलता अग्निमांद्य, दूध फेंकना, कब्ज और अजीर्ण आदि पर निर्भयतापूर्वक बारबार उपयोगमें आती है। बढे हुए विषम ज्वरमें सुदर्शन चूर्णके क्वाथ या अर्कके साथ देनेसे तुरन्त लाभप्रद होती है। सन्निपातमें तुलसीके स्वरस और शहदके साथ २-२ घण्टे पर देते रहनेसे चेतना आजाती है और त्रिदोषज लक्षण शान्त होजाते हैं।

रक्त प्रदर पर गोदन्ती भस्म दिनमें तीन बार आँवले और ईसबगोलके, तथा श्वेतप्रदरमें संगजराहत भस्म, जीरा और माजूफलके साथ मिलाकर दिनमें ३ बार दी जाती है। शिरःशूलमें १-१ माशा भस्म १ तोला घी और १ तोला शक्करके साथ मिलाकर दिनमें २ या ३ बार देनेसे लाभ होजाता है। किन्तु शिरःशूलके रोगीको कफकी अधिकता रहती हो, तो गोदन्तीके साथ ½-½ रत्ती समीरपन्नग मिला देनेसे सत्वर लाभ पहुँचता है।

सूचना—भस्म बनानेके लिये गोदन्ती उज्ज्वल, पारदर्शक अच्छी देख कर उपयोगमें लेनी चाहिये। मैले रंग वाली या कच्ची गोदन्ती हानिकारक है। अच्छी गोदन्तीकी बनाई हुई भस्म बालक, सगर्भा स्त्री, प्रसूता स्त्री, युवा, वृद्ध आदि सबके लिये लाभदायक है। इन सबमें बालकोंके लिये यह उत्तम औषधि है। स्तन्य दोषसे जिन बच्चोंका शरीर कृश होगया हो, उनको यह भस्म थोड़े दिन तक देते रहनेसे शरीर पुष्ट और तेजस्वी बन जाता है।

गोदन्ती, यह गन्धकका भेद होने पर भी हरतालके समान लाभ पहुँचाती है। इसलिये गोदन्तीको गोदन्ती हरताल भी कहते हैं। गोदन्तीका उपयोग

अधिक मात्रामें बार-बार करते रहनेसे यकृत्को हानि पहुँचाती है। इसलिये मात्रा कम देनी चाहिये।

(१७) वज्र (हीरा) भस्म।

बनावट—शुद्ध किये हुए हीरेके कणोको अभ्रकके पतरे पर रख, अग्निमें तपा-तपा कर मेंडकके मूत्रमें बारबार बुझाते जायँ। लगभग २०-२५ बार बुझानेसे हीरेका रग बदल जाता है। चमक मिट जाने तक तपा-तपाकर बुझाते रहे। अभ्रकके पतरे सहित हीरेके कणोको मेंडकके मूत्रमें डुबोनेसे हीरेके कणोको एक पतरेसे दूसरे पतरे पर रखनेमें आसानी रहती है। इन कणोको चीमटेसे उठाना चाहिये। हाथ न लगावे, अन्यथा हीरेका जहर अँगुलियोमें प्रवेश कर जाता है। फिर वहाँ पर कुष्ठके समान सफेद दाग हो जाते है। बार-बार अभ्रकका पतरा बदल देना चाहिये। (यो० र०)

मेंडकका मूत्र लेनेके लिये एक बड़े मेंडकके चारो पैर बाँधकर कांसीकी थालीमें चित रखकर थालीको अंगारो पर टेढी रखे। मेंडक की पीठको उष्णता लगने पर वह मूत्र कर देता है। बादमें मेंडकको खोलदे। एक ही बड़े मेंडकके मूत्रसे हीरा निस्तेज होजाता है।

इस विधिसे ४-६ माशे हीरेके कणोको निस्तेज कर सुनारकी सोहागा मिली हुई मिट्टीकी छोटी कटोरीमें नीमका आधा पत्ता रख, उस पर हीरेके कणोको रखे। बादमें नीमका आधा पत्ता ऊपर रखकर दूसरी समान नापवाली कटोरी ढककर मजबूत कपड़मिट्टी कर सूर्यके तापमें सुखा लेवे। फिर एक मिट्टीके घड़ेमें चारो ओर अनेक छिद्रो कर २॥ सेर बबूलके कोयले भरे। उसके बीचमें संपुट रखकर अग्नि देनेसे भस्म तैयार हो जाती है। स्वांग शीतल होने पर संपुटमें से सम्हाल कर भस्म निकाल लेवे। इस भस्मको हीग और सैंधानमक मिलाये हुए कुलथीके क्राथमें खरल कर टिकिया बनावे। पश्चात् सराव-संपुट करके २-३ गोबरीकी अग्नि देवे। इस तरह ७ पुट देनेसे हीराकी मुलायम भस्म बन जायगी। (श्री० पण्डित नन्ने मिश्र)

मात्रा—१/८ से १/३२ रत्ती तक सुवर्ण या अभ्रक भस्मके साथ अथवा पूर्णचन्द्रोदय रसके साथ देवे।

उपयोग—वज्र भस्म सब प्रकारके वातरोग, पित्तप्रकोप, कफ-वृद्धि, त्रिदोष, शोप, क्षय, भ्रम, भगंदर, प्रमेह, मेद, पाण्डु, उदररोग, नपुंसकता आदि रोगोको दूर करती है। क्षयकी दूसरी अवस्थामें तो लाभ पहुँचाता ही है, परन्तु तीसरी अवस्थामें भी वज्रभस्म वाला रसा-

यन त्वरित लाभ पहुँचाता है, विविध रोगोंके कीटाणुओंको नष्ट करता है, वातवाहिनियो और उनके केन्द्र स्थानको दृढ़ बनाता है, और जीवनीय शक्तिको सबल बनाता है। इन कारणोंसे वज्र भस्म मिश्रित प्रयोग अनेक कठिन रोगोंमें उपकार दर्शाते है। संक्षेपमें वज्र भस्म शारीरिक और मानसिक निर्बलताको दूर कर शरीरको वज्र समान बलवान और कान्तिवान बनाती है, तथा आयुकी वृद्धि करती है।

(१८) माणिक्य भस्म (कुश्ता याकूत)।

प्रथम विधि—शुद्ध माणिक्यको लोहेके खरलमें पीस, सूक्ष्म चूर्ण करें। फिर पत्थरके पक्के खरल या चीनी मिट्टीके खरलमें सम भाग गन्धक, मैनसिल और हरतालको मिला, कटहलके रस में १२ घण्टे घोट, टिकिया बाँधकर सूर्यके तापमें सुखावे। फिर सराव-संपुट कर २ सेर उपलोंकी अग्नि दे। इस रीतिसे १० बार अग्नि देनेसे उत्तम भस्म बन जाती है। सुनार जिस सरावको सोहागा और मिट्टी मिलाकर बनाते है, उसका उपयोग करना चाहिये। (र० र० स०)

माणिक्यका रग लाल होता है। जो माणिक्य लाल रगका होनेपर भी बैंजनी आभा वाला हो, उसे उत्तम माना है। गुलाबी रग वालेको न्यून माना है। यह रत्न कठिन है। इसकी कठिनता हीरेसे कुछ कम है। इस रत्नके टुकडे गोल, त्रिकोण, चौकोण, अष्टकोण आदि होते हैं। भस्म बनानेके लिये छोटे कणोंका उपयोग होता है।

मात्रा, अनुपान और उपयोग—दूसरी विधिके अनुसार।

दूसरी विधि—शुद्ध माणिक्यके चूर्णको गुलाबजलमें १५ दिन तक खरल करनेसे पिष्टी तैयार होती है। यह पिष्टी भस्मके स्थान पर उपयोगमें आती है। अनेक यूनानी हकीम केवड़ा, चन्दन और गुलाब को साथमें मिलाकर अर्क निकालते है। फिर उसमें १०-२० समय बुझा, उसी अर्कमें खरल करके पिष्टी बना लेते हैं। (रसा० सा० स०)

मात्रा—आधीसे १ रत्ती तक मलाईके साथ दिनमें एकसे दो बार या सुवर्णके वर्क और शहदके साथ देवें।

उपयोग—यह भस्म नपुंसकता, धातुक्षीणता, हृद्रोग, वात-पित्तविकार, पित्तविकार, रक्तपित्त, वातदोष, ग्रहबाधा और क्षयको दूर कर सब धातुओंको पुष्ट बनाती है। यह दीपन होनेसे कफवातज विकारोंको शान्त करती है, तथा सूर्यग्रहकी पीड़ाको दूर करती है।

मधुमेह जनित निर्बलता पर मुक्तापिष्टी और गुड़मारके अर्कके

साथ माणिक्य पिष्टी देते रहनेसे निर्बलता दूर होती है, मस्तिष्क और हृदय सबल बनते है, तथा रक्तमेंसे विष कम हो जाता है।

(१९) गोमेदमणि भस्म।

प्रथम विधि—मैनसिल, हरताल और गन्धकको सम भाग ले, और सबके बराबर शुद्ध गोमेदमणिका सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर कटहलके रसमें १२ घण्टे खरल कर २ सेर आरनोकी आँच देवे। इस रीतिसे ८ पुट देनेसे भस्म बन जाती है। (र० र० सा०)

रसचूड़ामणि-कार ने गोमेदमणिको कटहलके रसमें ७ वार बुझाकर समान गंधक मिला कटहलके रसमें मर्दन कर १० गजपुट देनेको लिखा है।

मात्रा—½ से १ रत्ती मलाई या शहदके साथ देवे।

उपयोग—गोमेदमणि लका (सीलोन) से भारतमें आता है। यह भस्म कफपित्तघ्न होनेसे क्षय और पाण्डु रोगका नाश करती है। दीपन-पाचन होनेसे मन्दाग्नि और अरुचिको दूर करती है, अम्ल और उष्ण गुण वाली होनेसे वातप्रकोपको शमन करती है, तथा त्वचाके वर्णको सुन्दर बनाती है। एवं यह बुद्धिप्रबोधक है। गोमेदमणिके सेवनसे बल, वीर्य और आयुकी वृद्धि तथा राहुग्रहकी बाधा शान्त होती है।

दूसरी विधि—माणिक्यमें कही रीतिसे चन्दन, गुलाबके फूल और केवड़ेको मिला अर्क निकाल, उसमें पिष्टी बना लेवे।

मात्रा और उपयोग—पहली विधिके अनुसार। भस्मकी अपेक्षा पिष्टी विशेष सौम्य होती है।

(२०) तार्क्ष्य (पन्ना) भस्म (कुश्ता जमुर्रद)।

बनावट—मैनफलके रसमें अलसी और सोठको पीसकर कल्क बनावें। इस कल्कके बीचमें पन्नाको रख, संपुट कर २ सेर गोबरीमें फूँक दे। इस रीतिसे २० पुट देनेसे उत्तम प्रकारकी भस्म बनती है। पन्ना बिखर जाय तब मैनफलके रसमें टिकिया बाँध, सपुट करके गज-पुट देना चाहिये। (रसा० सा० स०)

पन्ना (Emerald), यह रत्न षट्कोण आकृतिका मिलता है। दक्षिण अमेरिकाकी खानोंमेंसे अधिक निकलता है। इसका रग हरा है। तपाने पर पहले सफेद फिर मैले रगका बन जाता है। यह रत्न अति कठिन है। भस्म बनानेमें प्रायः छोटे-छोटे टुकड़ोंका उपयोग होता है।

दूसरी विधि—पन्नाके बारीक चूर्णमें समभाग मैनसिल,

हरताल और गन्धक मिला कटहलके रसमें खरल कर, टिकिया बाँध, सूर्यके तापमें सुखाकर २ सेर आरनोंकी अग्नि दें। इस रीतिसे ८ पुट देनेसे उत्तम प्रकारकी भस्म बनती है। (र० र० स०)

यूनानी हकीम पन्नेको घीकुँवारके रसमें खरल कर टिकिया बाँध १० सेर आरनोंमें मात्र एक ही समय फूँककर भस्मको उपयोगमें लेते हैं।

तीसरी विधि—माणिक्य पिष्टीके समान पिष्टी बना लेवें।

मात्रा—आधसे १ रत्ती शहद और पीपलके साथ देवें।

उपयोग—यह भस्म ओजवर्द्धक है। ज्वर, सन्निपात, वमन, तृषा, विषविकार, अम्लपित्त, श्वास, पाण्डु, मलावरोध, अर्श और शोथ आदिको दूर करती है; तथा अग्नि प्रदीप्त करके ओजको बढ़ाती है। यह शीतल गुणवाली है। इसलिये उष्ण प्रकृतिवालेके लिये अति हितकर है। आमाशय और हृदयकी निर्बलताको दूर करती है। क्षय, बहुमूत्र और मधुमेहमें लाभदायक है। आयु और स्मरणशक्ति की वृद्धि करती है। भूतबाधा और बुधग्रहकी पीडाको शान्त करती है। इस भस्मको सर्पविषकी उत्तम ओषधि माना है।

(२१) वैडूर्य भस्म।

बनावट—वैडूर्य (लसुनिया) को माणिक्यमें लिखी विधि अनुसार भस्म अथवा पिष्टी बना लेवे।

यह रत्न अन्य रत्नोंकी अपेक्षा न्यून महत्व वाला है। यह रत्न हरे, पीले, हरे-नीले, सफेद, सोना सदृश, काले, नीले आदि अनेक रंगके प्रतीत होते हैं। इस रत्नको वस्त्र आदि पर घिसनेसे विद्युत् उत्पन्न होती है।

मात्रा—½ से १ रत्ती घृत-मिश्री या रोगानुसार अनुपानके साथ।

उपयोग—यह भस्म पित्तविकार और रक्तपित्तमें गिरते रक्तको शान्त कर, अग्निको प्रदीप्त करती है, और आयुको बढ़ाती है। क्षय और संग्रहणीमें अति लाभदायक है। केतुग्रहकी पीड़ाको दूर करती है।

(२२) पुष्पराग (पुखराज) भस्म।

बनावट—पुखराजके सूक्ष्म चूर्णमें सम भाग गन्धक, हरताल और मैनसिलको मिलाकर पक्के कटहलके रसमें १२ घण्टे खरल कर, टिकिया बाँध, सूर्यके तापमें सुखा संपुट कर ५ सेर गोबरीकी अग्नि देवे। इस रीतिसे ८ पुट देनेसे भस्म हो जाती है, अथवा माणिक्यमें लिखी रीतिसे पिष्टी बना लेवे। (र० र० स०)

मात्रा—½ से १ रत्ती शहद या रोगानुसार अनुपानके साथ।

उपयोग—यह भस्म हरताल और मनःशिलके योगसे बनने पर

उग्र बनती है। यह भस्म कीटाणुनाशक, पित्तवर्द्धक और बल्य है। पिष्टी बनाने पर सौम्य होती है। पुखराज विषविकार, वमन, वातप्रकोप, कफविकार, दाह, रक्तविकार, अर्श, कुष्ठ और मन्दाग्निको दूर करता है, तथा अग्निको प्रदीप्त करता है। क्षय और धातुशोषमें अति हितकर है। पुखराजसे गुरु ग्रहकी बाधा दूर होती है।

(२३) नीलमणि (नीलम) भस्म।

बनावट—पुष्परागमें लिखी रीतिसे भस्म या पिष्टी बना लेवे। यह रत्न माणिक्यकी खानमेंसे मिलता है, इसके विविध आकारके स्फटिक निकलते हैं। यह काश्मीर, पटियाला, ब्रह्मदेश, लंका (सीलोन) और श्यामदेशमें मिलता है।

मात्रा—½ से १ रत्ती दिनमें २ बार शहद और पीपलके चूर्णके साथ अथवा मक्खन-मिश्रीके साथ।

उपयोग—यह भस्म वृष्य, पाचक और त्रिदोषघ्न है। श्वास, कास, त्रिदोष, विषमज्वर, अर्श आदि रोगोंको दूर करती है, अग्नि प्रदीप्त करती है, और सर्व धातुओंको पुष्ट बनाती है। नीलम धारण या सेवनसे शनिग्रहकी व्यथा दूर होकर आयु और कान्ति बढ़ती है।

(२४) राजावर्त भस्म।

बनावट—शुद्ध राजावर्तको इमामदस्तेमें कूट, सम भाग गन्धक मिला, बिजौरेके रसमें १२ घण्टे खरल कर, टिकिया बनाकर सूर्यके तापमें सुखावे। फिर संपुट कर गजपुटमें फूँके। इस रीतिसे ७ पुट देनेसे उत्तम मुलायम मैले लाल रंगकी भस्म बन जाती है। (र० र० स०)

मात्रा—१ से २ रत्ती दिनमें २ से ३ बार मलाई-मिश्री, मक्खन-मिश्री अथवा रोगानुसार अनुपानके साथ देनी चाहिये।

उपयोग—राजावर्त शीतल, गुरु, दीपन, पाचन, वृष्य और रसायन है। इस हेतुसे यह भस्म पित्तप्रकोप, अतिसार, अर्श, क्षय, पाण्डु, कफदोष, वातविकार और पित्त-प्रधान प्रमेह आदि रोगोंको दूर करती है, और पचन-शक्तिको बढाती है।

दूसरी विधि—शुद्ध राजावर्तको कूट, सूक्ष्म चूर्ण कर सेवके स्वरसके साथ १४ दिन तक खरल करे। फिर खरलमें सेवका स्वरस पिष्टीके ऊपर १ अंगुल रहे, उतना भर देवे, और सम्हालकर ३-३ घण्टे तक ३ दिन चलाते रहे। बादमें स्वच्छ स्वरस ऊपर-ऊपरसे निकल सके, उतना निकाल लेवें। फिर खरल करके पिष्टी बना देवे। (प० नन्हे मिश्र)

मात्रा—१ से २ रत्ती तक दिनमें २-३ बार शहद, गुलकंद अथवा आँवलोके मुरब्बेके साथ देवे ।

उपयोग—यह पिष्टी क्षय रोगमें, कफ, दाह और पित्तवृद्धि होकर होने वाले अतिसार, अर्श, पाण्डु, पित्तप्रमेह और शारीरिक निर्बलताको दूर कर शरीरको बलवान बनाती है, तथा मदात्यय रोगमें निद्रा न आना, अरुचि, नेत्रलाली, दाह, बेचैनी आदि लक्षणोंको शमन करती है ।

(२५) वैक्रान्त भस्म ।

बनावट—शुद्ध वैक्रान्तको सावधानीसे कूट या खरल कर बारीक चूर्ण करे । फिर सम भाग गन्धक मिला खट्टे नीबूके रसमें राजावर्त्तके समान खरल कर गजपुट दें । इस रीतिसे ८ पुट देनेसे मुलायम मैले लाल रंगकी भस्म तैयार होती है । मुलायम न हो, तो दो पुट अधिक देने चाहिये । (आ० प्र०)

मात्रा—⅛ से ¼ रत्ती तक रोगानुसार अनुपानके साथ ।

उपयोग—वैक्रान्तको उत्तम गुणके हेतुसे हीरका उपरत्न माना है । इसकी भस्म त्रिदोषघ्न, षट्रसयुक्त और रसायन गुणवाली है । सब धातुओंकी निर्बलता, उदर रोग, पाण्डु, ज्वर, श्वास, कास, धातु-विकार, क्षय, प्रमेह, वात, पित्त और कफप्रकोपको दूर कर आयुकी वृद्धि करती है । हीरा भस्मके अभावमें वैक्रान्त भस्म ली जाती है ।

(२६) मुक्ता भस्म ।

प्रथम विधि—२ तोले शुद्ध मोतीको पहले लोहेके खरलमें घोट-कर सूक्ष्म चूर्ण करें । फिर पत्थरके पक्के खरल या चीनी मिट्टीके खरलमें १२ घण्टे घीकुँवारके रसमें घोट टिकिया बना कर धूपमें सुखावे । पश्चात् सरावसंपुट कर २ सेर गोबरोंकी आँच देवे । दूसरी बार गायके दूधमें खरल कर टिकिया बाँध, सराव संपुट करके २ सेर अरनोंकी अग्नि देनेसे श्वेत मुलायम भस्म तैयार होती है ।

मात्रा—½ से १ रत्ती तक दिनमें २ बार दूध-मिश्री, मलाई, मक्खन, गुलकन्द, आँवलोंका मुरब्बा, च्यवनप्राशावलेह या अन्य रोगानुसार अनुपानके साथ दे ।

उपयोग—मुक्ताभस्म कफ, पित्त, क्षय, कास, श्वास, अग्नि-मांद्य, दाह, उन्माद, वातरोग, नपुंसकता आदि रोगोंको दूर कर शरीरको पुष्ट बनाती है, और आयुकी वृद्धि करती है ।

अग्निपुटी मुक्ताभस्मकी अपेक्षा मोतीपिष्टी बनाना विशेष

हितकर है। अग्निपुटी भस्मका उपयोग शख, वराटिका, शुक्तिकी अपेक्षा तो अधिक होता है, परन्तु अत्यधिक अंतर नहीं है। अतः गुलाबजलमें खरल कर मुक्तापिष्टी तैयार करनेकी पद्धति अच्छी है। पिष्टीमें ही सच्चे मुक्ताके गुण दीखते हैं।

दूसरी विधि—मोतीका पहले लोहेके खरलमें सूक्ष्म चूर्ण कर सीमाक पत्थर या चीनी मिट्टीके खरलमें गुलाबजलके साथ २१ दिन तक खरल करनेसे पिष्टी तैयार होती है।

मात्रा—आधीसे १ रत्ती दूध, गुलकन्द, चन्दनका शर्बत, गुलाब का शर्बत, या सितोपलादि चूर्ण, चाँदीके वर्क और शहदके साथ।

उपयोग—यह पिष्टी नेत्ररोग, धातुक्षीणता, क्षय, उरःक्षत, हृदय की निर्बलता, खाँसी, जीर्ण ज्वर, हिक्का, भ्रम, नाकमेंसे रक्त गिरना, मस्तिष्ककी निर्बलता, नेत्रदाह, शिरदर्द, पित्तवृद्धि, दाह, प्रमेह और मूत्रकृच्छ्र आदि दोषोंको दूर करती है। मोतीके सेवनसे पित्तकी तीव्रता और अम्लता कम होती है, तथा नेत्रज्योति बढती है। यह पिष्टी शीतवीर्य और मूत्रल है। मूत्रमार्ग और सर्वाङ्गका दाह और पित्तवृद्धिको शमन करती है। निद्रानाशके समय किसी भी रोगमें मुक्तापिष्टीसे निद्रा लानेमें सहायता मिलती है।

अत्यन्त त्रास, अत्यन्त क्रोध, अति जागरण, अति अभ्यास, अति मानसिक श्रम, अति उष्ण पदार्थ सेवन, सूर्यके तापका सेवन, इन कारणोंसे मस्तिष्कको त्रास होता है। यह शिथिलता और मामूली कारणसे क्रोध करना, विचारहीनता, ऊँचा शब्द, कठोर स्पर्श, तीव्र वास, थोड़ा बेस्वादु भोजन, विचित्र या भयानक रूप, बड़ी आवाज़, स्पर्श आदि विषयोंका असहनत्व, थोड़े विचारमें ही मस्तिष्क फिर जाना, सर्वाङ्ग और मस्तिष्कमें दाह, निद्रानाश इत्यादि अधिक बढ़े हुए विकारों पर मुक्तापिष्टीका उपयोग बहुत अच्छा होता है।

बहुत बड़ा मानसिक आघात पहुँचने या शराब, गाँजा, धतूरा आदि तीक्ष्णवीर्य, उष्ण और विकाशी पदार्थोंके अति सेवनसे मस्तिष्क की विकृति होकर उन्मादका विकार (विशेषतः पित्तज उन्माद) होनेसे मुक्तापिष्टीका बहुत अच्छा उपयोग होता है। इस विकारमें मुक्ता पिष्टी और सुवर्णमाक्षिक भस्म अथवा मोती और प्रवाल पिष्टीका मिश्रण कूष्माण्ड पाक, ब्राह्मीलेह अथवा घृतके साथ देना चाहिये। ऐसे ही भूतोन्मादमें भी अति त्रास देनेवाले, क्रोधी और लड़ाकू रोगियोंके लिये भी मुक्ता उत्तम औषध है।

मुक्ताका उत्तम शीतवीर्य धर्मका गर्मीके दिनोंमें होनेवाले दाह पर अच्छा उपयोग होता है। कितनेक श्रीमत लोग गरमीके दिनोंमें बहुत व्याकुल होजाते हैं। अर्थात् शरीरकी बाह्य उष्णताके साथ समधर्म होनेकी पात्रता कम होकर समस्त शरीर विशेषतः संज्ञावाहिनियोंकी बाह्य शिरायें (अन्तभाग) बिल्कुल मृदु होजाती हैं। इस स्थितिमें दाहशामक अन्य ओषधियोंकी अपेक्षा मुक्ताका उत्तम उपयोग होता है। कारण, यह पिष्टी वातवाहिनियोंके लिये भी शामक गुण दर्शाती है।

गरमीके दिनोंमें तेज धूप, अग्निके पास ज्यादा समय काम करने, धूपमें ज्यादा समय फिरने, अधिक जागरण करने या अपथ्य आहारसे नाक, मुँह, गुदा, मूत्र, या अन्य मार्गसे रक्त गिरने लगता है। साथ-साथ हाथ-पैर और सर्वाङ्गमें दाह, व्याकुलता आदि लक्षण होते हैं, तब रक्तस्राव बन्द कर मस्तिष्कको शान्ति देनेके लिये इस पिष्टीका उत्तम उपयोग होता है।

उपदंश या सुजाक होनेके पश्चात् पित्तप्रकोप होकर मूत्रमार्गका दाह होने या अन्य कारणोंसे पित्त बढकर मूत्रका दाह होने अथवा मूत्रकी तीव्रता, तीक्ष्णता आदि बढ़नेके हेतुसे मूत्रमार्गमें दाह होने पर मुक्ताका सेवन अति हितकारक है।

रक्त ज्यादा जानेसे उत्पन्न अन्तर्दाह अथवा अन्य कारणोंसे उत्पन्न अन्तर्दाहमें मुक्ता लाभदायक है। परन्तु स्त्रियोंके योनिस्राव में अथवा इसके पश्चात् उत्पन्न अन्तर्दाहमें मोतीकी अपेक्षा वंगभस्मका विशेष उपयोग होता है। तमक श्वास रोगमें अन्तर्दाह होता हो, तो मोतीपिष्टीका उपयोग हितकर है।

बार-बार नेत्र दुखनेकी आदत, उसमें भी नेत्र खूब लाल होना, नेत्रोंमेंसे गरम-गरम भाफ निकलना, और गरम-गरम अश्रु गिरते रहना इत्यादि लक्षण होने पर मोतीका बहुत अच्छा उपयोग होता है।

पित्तज और कफ-पित्तज कास-विकारमें यदि दाह आदि लक्षण हों, तो मुक्ता-पिष्टी देनी चाहिये।

क्षय रोगमें दाह, व्याकुलता, अधिक ज्वर, अधिक तृषा आदि लक्षण हों, तो मोतीपिष्टी देनी चाहिये। क्षयकी बिल्कुल प्रथमावस्थामें ही जिस तरह प्रवालपिष्टीका उपयोग होता है, उस तरह मोतीका उपयोग दाह-विशिष्ट अथवा पित्त-प्रधान लक्षण होने पर किया जाता है।

श्वासके कितनेक मेदवृद्धियुक्त रोगियोंको मौक्तिकपिष्टी ज्यादा लाभ पहुँचाती है। घबराहट, उदरमें आग, सारे शरीरमें दाह, इसमें

भी हाथ-पैरमें अधिक जलन, भयंकर शोष, तृषा, वमन आदि लक्षण हो और पंखासे वायु डालनेसे अच्छा मालूम होता हो, तो अन्य औषधियोंकी अपेक्षा इससे श्वासरोगका दमन त्वरित होता है।

पित्तज अम्लपित्तके कारण कंठमें दाह, मिर्च लगनेके समान गलेमें आग होना, गरम, खट्टी और कड़वी वमन, वमनके साथ नेत्रोंमें जल आजाना और भयंकर त्रास होना, मुँहमें छाले होजाना आदि विकृत्तिमें मुक्तापिष्टीका उत्तम उपयोग होता है। यदि अम्लपित्तमें मन्दाग्नि और दाह हो, तो इसका अवश्य ही उपयोग करना चाहिये।

दाहयुक्त अतिसारमें पीले रंगके गरम जल जैसे बडे-बडे दस्त होना, इस हेतुसे उदर, लघुअन्त्र, बृहदन्त्र और गुदामार्गमें दाह होता हो, तो मुक्ताके उपयोगसे पित्तकी विषमता दूर होकर साम्यावस्था प्रस्थापित होती है, और अतिसार बन्द होजाता है।

अतिसारके समान रक्तार्शमें जलन, वेदना, गरम गरम रक्त गिरना, पश्चात् भयकर जलन होना आदि लक्षण होते है। कचित् इस जलनके कारणसे रोगी मूर्च्छित भी होजाता है। ऐसे समय पर मोतीका बहुत अच्छा उपयोग होता है।

मूत्रकृच्छ्र या मूत्राघातमें, मूत्रके साथ रक्त जाता हो और जलन होती हो, तो मोतीपिष्टीका बहुत अच्छा उपयोग होता है। अनुपानमें कुकरौंधेका रस विशेष अनुकूल रहता है।

अत्यार्त्तव या योनिमार्गमेंसे रक्तपित्त रोगके कारण रक्त गिरना, दाह, खाज और भयंकर त्रास होना आदि विकारोंमें मोतीपिष्टी धारोष्ण दूध या गुलकन्दके साथ देनी चाहिये, और योनिमें शतधौत घृतका पिचु रखना चाहिये।

यदि योनिमार्गमें अन्य समयमें दाह, पुरुष-समागमके समय भयकर वेदना और जलन, क्वचित् दाहके कारणसे स्त्रीके साथ समागम करना ही अशक्य होजाना इत्यादि लक्षण हो, तो भी मोतीका उत्तम उपयोग होनेके अनेक उदाहरण मिले है।

अनुलोम क्षय (रसक्षय संग्रहणी Sprue) में रसादि धातुसे आरम्भ होकर उत्तरोत्तर रक्त आदि सब धातु क्षीण होजाती है। इस कारणसे शरीर कृश और अशक्त होजाता है, साथ-साथ अतिसार—बड़े-बड़े गरम जल जैसे दस्त बार-बार होते हैं। मुँहमें छाले, और सारे शरीरमें दाह होते है। ऐसे लक्षण होने पर मुक्तापिष्टीका उत्तम उपयोग होता है। इस रसक्षयमें मुक्ताके सेवनसे दाह कम होता है।

साथ-साथ रस आदि सब धातु पुष्ट होकर धातु-परिपोषण क्रम उत्तम प्रकारसे सुधर जाता है, शरीर पुष्ट बनता है, शक्ति आती है; और शरीरका वर्ण उत्तम बनता है।

मुक्ता स्थूल रसायन-शास्त्रकी दृष्टिसे चूनेका कल्प है।, परन्तु जीवन-रसायनकी दृष्टिसे चूना, मोती, प्रवाल, शंख, कौड़ी, सीप, ये सब भिन्न-भिन्न गुण करनेवाली स्वतन्त्र ओषधियाँ है।

मुक्ता पित्तदोष (विशेषतः तीक्ष्ण, उष्ण और अम्ल गुणकी वृद्धिमें), रस, रक्त, मांस, अस्थि, ये दूष्य, त्वचा, हृदय, क्लोम (प्यासके लिये स्थान), यकृत्, प्लीहा, अन्तःस्रावक ग्रन्थियाँ और अन्य ग्रन्थियाँ, इन सब पर लाभ पहुँचाती है। (औ० गु० ध० शा०)

(२७) प्रवाल भस्म।

प्रथम विधि—१६ तोले प्रवाल लेकर सूक्ष्म चूर्ण करें। फिर ४ तोले कज्जली मिला घीकुँवारके रसमें १२ घण्टे घुटाई करके छोटी-छोटी टिकियाँ बनावे। फिर धूपमें सुखा संपुटमें बन्दकर गजपुटमें फूँक देनेसे गुलाबी झाईं वाली भस्म बन जाती है। (चि० च०)

मात्रा—१ से २ रत्ती तक दिनमें दो समय सितोपलादि चूर्ण और शहद, गिलोयका सत्व और शहद, गुलकन्द, मलाई-मिश्री, मक्खन-मिश्री, या अन्य रोगानुसार अनुपानके साथ देवे।

१ शुष्क कासमें—शक्करके साथ।
२. कफज कासमें—कफको बाहर निकालनेके लिये शक्करके साथ; कफ सुखानेके लिये शहदके साथ।
३. जीर्ण ज्वर पर—सितोपलादि चूर्ण और शहदके साथ।
४. जीर्ण ज्वर, कास, श्वास, हिक्का और उदर-वात पर—हरड़ और शहदके साथ।
५ नवीन ज्वरमें—(पित्तज्वर) सुदर्शन चूर्णके क्वाथके साथ।
६. धातु क्षयमें—पक्के केलेके साथ।
७. कृशता पर—नागरबेलके पानके साथ।
८. हरिद्र मेह पर—चावलके धोवन और मिश्रीके साथ।
९. प्रदर पर—धारोष्ण गोदुग्ध या आँवलेके रसके साथ।
१०. वात रोग पर—तुलसीके रस, मिश्री और शहदके साथ।
११. पित्तज कासमें—अनारके रस और मिश्रीके साथ।
१२. अस्थिभंगमें—शहदके साथ।

१३ पित्तप्रकोप और भ्रम पर—प्रवाल पिष्टी, आँवलोंका मुरब्बा, घृत और मिश्री, सबको मिलाकर देवें।
१४. उरःक्षत पर—सितोपलादि चूर्ण, घी और शहदके साथ।
१५. मूत्रकृच्छ्र पर—चावलके धोवनके साथ।
१६ नेत्रजलन और खुजली पर—घृत और शक्करके साथ, या मिश्री मिले धारोष्ण दुग्धके साथ।
१७. मस्तकशूल पर—बादामकी खीरके साथ।
१८. पित्तोद्भव पाण्डु पर—घी-शक्करके साथ।
१९. रक्तपित्त पर—आँवलेके मुरब्बेमें।
२०. मस्तिष्ककी निर्बलता पर—बादामकी खीरमें।
२१. धातुक्षीणतामें—मलाईके साथ देवें।

उपयोग—प्रवाल भस्म क्षय, रक्तपित्त, कास, धातुदोष, मूत्र-विकार, विषविकार, भूतबाधा, शिरोरोग, नेत्रदाह, रक्तार्श, कामला, यकृद्विकार यकृद्-दोष-जनित वमन आदि रोगोंको दूर करती है।

मुक्ता, प्रवाल, वराटिका, शुक्ति, शंख, ये सब सेन्द्रिय चूनाके कल्प हैं। इनमें प्रवाल चूनेका कल्प होने पर भी अति सौम्य और शीतवीर्य है। किन्तु अग्निपुटी प्रवालमें प्रवालपिष्टीकी अपेक्षा सौम्यत्व गुण कम है, और दीपनत्व गुण ज्यादा है।

प्रवाल भस्म या प्रवालपिष्टी नीबूके रसके साथ देनेसे उत्तम पाचन होता है। अग्निमांद्य या अग्निसाद, अरोचक, ये विकार पित्त-दुष्टी और कफ-दुष्टीसे भी होते हैं। पित्त-दुष्टीसे हो, तो प्रवाल भस्म, कामदुधारस या प्रवालपंचामृत रस देना चाहिये, और कफदुष्टीसे हो, तो अग्निकुमार, हिंग्वादि चूर्ण इत्यादि औषधि उपयोगी होती है। विशेषतः मुँहमें बेस्वादुपना, मुँहमें विलक्षण गन्ध, कंठमें विदाह, मुँह में फोड़े आदि लक्षण होने पर प्रवाल भस्म देनी चाहिये। इसके योगसे पाचक पित्तका उत्तम और व्यवस्थित स्राव होकर पचन-क्रियाकी वृद्धि होती है, और अग्निमांद्य दूर होता है।

अनेक समय अग्निमांद्य आदि रोगोंके परिणामरूप रसाजीर्ण हो जाता है। उसमें अन्न आगे आया कि, उस पर अरुचि आने लगती है, अनेकोंको अन्नकी वास भी सहन नहीं होती, अनेक भोजनका नाम लेने पर रोने लगते है, उबाक सदाके लिये बनी रहती है, उदर जड़ समान हो जाता है, इन पर अग्निपुटी प्रवाल सत्वर लाभ पहुँचाती है।

प्रवाल भस्म उत्तम दीपन औषधि है। इसके योगसे उदरमें

पाचक रसका उत्तम कार्य होता है। पित्त दुष्टीसे अग्निमांद्य उत्पन्न होने से प्रवाल भस्मका अच्छा उपयोग होता है। इस भस्मके योगसे पित्त-धातु (आमाशयिक रस—Gastric Juice) की वृद्धि होकर सारक प्रस्थापित होता है। इस तरह दीपन कार्य भी इस औषधिसे होता है। (पित्त प्रकारका विवेचन वैज्ञानिक विचारणा पृष्ठ ३४ से किया है)।

आमाशय अथवा पक्वाशयमें जल, दाह, अम्लता और इस हेतु से पतले-पतले दस्त होते हैं। ऐसे लक्षण होने पर प्रवाल भस्मका उत्तम उपयोग होता है। ([illegible])

ज्वर जीर्ण होने पर निर्बलता अधिक आ जाती है, तब ज्वर धातुमें लीन हो जाता है। जब सामान्य ज्वर बनता है, तब चक्कर आना, मंद-मंद ज्वर बना रहना, माथा भारी होना, हाथ-पैरकी नाड़ियां खिंचना, अरुचि, खाने पर वान्ति हो जाना आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। उस पर प्रवाल भस्म १ रत्ती, गिलोय सत्व २ रत्ती, आँवले, गिलोय और नागरमोथा ४-४ रत्ती शहदके साथ देवें। इस तरह दिनमें २ या ३ बार शहदमें देनेसे ज्वर निवृत्त होजाता है।

दूसरी विधि—२० तोले प्रवाल, २० तोले [illegible] पत्ते, २० तोले मिश्री, तीनोंको मिला हांडीमें संपुट करके गजपुट दें। दूसरे दिन हांडीको निकालकर प्रवालको चुन लें। फिर भैंसका दूध मिला, ३ घण्टे तक घुटाई कर, छोटी-छोटी टिकियां बना, धूपमें सुखाकर संपुट करें। हांडी थोड़ी बड़ी लेनी चाहिये। कारण, टिकिया गजपुट देनेसे फूल जाती है। यह भस्म चूना जैसी सफेद गुलाबी बन जाती है।

(ब्र० स्वा० [illegible]गिरिजी)

मात्रा और उपयोग—पहली विधिके अनुसार।

तीसरी विधि—प्रवालका सूक्ष्म चूर्ण कर गुलाबजल मिला-मिला कर २१ दिन तक १२-१२ घण्टे घुटाई करनेसे तैयार हो जाती है। इसे चन्द्रपुटी प्रवाल भस्म और प्रवाल पिष्टी कहते हैं। कितनेक चिकित्सक केवल ७ दिन तक खरल करते हैं, परन्तु जितनी ज्यादा खरल होती है, उतना ही गुण अधिक होता है। पिष्टी अच्छी प्रकारका खरल होने पर वारितर होजाती है, वह सत्वर लाभ पहुँचाती है।

सूचना—शुद्ध प्रवालको पहले इमामदस्तेमें कूटकर एक लोहेके खरलमें खरल करें। पश्चात् २१ दिन तक गुलाबजल मिला-मिलाकर चीनी मिट्टीके खरलमें घोटना चाहिये। सामान्य पत्थरके खरलमें घोटनेसे खरल घिसकर पत्थरके अणु पिष्टीमें मिल जानेसे पिष्टी दूषित होजाती है।

मात्रा और अनुपान—पहली विधिके अनुसार ।

उपयोग—प्रवालपिष्टी क्षय, पित्तविकार, रक्तपित्त, कास, श्वास, विष, भूतबाधा, उन्माद, नेत्ररोग, इन सबको दूर करती है । प्रवाल मधुर, अम्ल, कफ-पित्तादि दोषोंकी नाशक, शुक्र और कान्तिकी वर्द्धक है । यह पिष्टी भस्मकी अपेक्षा विशेष पित्तशामक, पित्तविकारघ्न और सौम्य होनेसे पित्तयुक्त शुष्क कास, रक्तप्रदर, रक्तपित्त, अम्लपित्त, नेत्रदाह, वमन आदि विकारोंमें विशेष हितकर है, तथा यह मधुर और अम्ल होने पर भी दीपन पाचन है । प्रवाल मधुर है, अर्थात् मिश्री समान मधुर नहीं, परन्तु प्रवालका परिणाम मधुर रसके अनुसार, शामक, बृंहण, प्रसादन आदि होता है । प्रवालके शामक, शीतवीर्य और प्रसादन गुणका उपयोग भिन्न-भिन्न रोगोंमें उत्तम प्रकारसे होता है ।

ज्वरके प्रारम्भमें आमावस्था हो, तो लंघन कराना चाहिये । लंघनके पश्चात् पाचन ओषधि रूपसे प्रवालका बहुत अच्छा उपयोग होता है। ज्वरादि पाचन कषायके स्थानमें प्रवालपिष्टी दे सकते हैं । ज्वरका वेग तीव्र होने पर प्रवालका अच्छा उपयोग होता है । पित्त-प्रधान ज्वरमें दाह, तृषा, प्रस्वेद, शीर्षशूल, निद्रानाश प्रलाप, चक्कर, वमन आदि लक्षण हो, तो यह बहुत अच्छा कार्य करती है । ऐसे समय पर इसे गिलोय सत्वके साथ देना चाहिये। अन्य सक्रामक ज्वर या विषम ज्वरमें पित्त-प्रधान लक्षण अधिक होने पर (ज्वर-वेग तीव्र होने पर) अर्थात् १०३°–१०६° तक होने पर प्रवालपिष्टीका ही उपयोग करना चाहिये । उतना अधिक पित्तज्वर होने पर त्रिभुवनकीर्ति समान तीव्र और स्वेदल ओषधि न देना ही अच्छा माना जायगा । यदि देना हो, तो सम्हालपूर्वक दें, और उसके साथ या स्वतंत्र रूपसे प्रवालपिष्टी दें । पित्त प्रधान सन्निपात ज्वरमें सन्निपात-दोषघ्न ओषधि देनेसे साथ पित्त-दोष कम होनेके और ज्वरवेगको मर्यादामें लानेके लिये प्रवालपिष्टी की योजना अवश्य करनी चाहिये ।

शीतला, छोटी माता रोमांतिका, अन्य सक्रामक ज्वर, या कीटाणु-जन्य-दूषित ज्वर या आगन्तुक ज्वरमें रोगीको भयंकर दाह, व्याकुलता और तीव्र ज्वर हो, तो प्रवालकी योजना करनी चाहिये । एवं सेन्द्रिय विषकी तीव्रतासे उत्पन्न ज्वरमें भी प्रवाल दीजाती है । प्रवालके सेवनसे विषप्रकोप और ज्वर, दोनों शान्त होजाते हैं । संक्षेपमें जब-जब ज्वरमें पित्तकी प्रधानता हो, तब-तब इसका उत्कृष्ट उपयोग होता है ।

निस्तेजता, सर्वाङ्गमें विशेषतः हाथ-पैरमें भयंकर जलन, कितनेक समय तो जलन यहाँ तक बढ़जाना कि मनुष्यका बिल्कुल व्याकुल होजाना; हाथ-पैरों पर मिर्च लगनेके समान वेदना होना, सब त्वचा शुष्क होजाना आदि लक्षणयुक्त पैत्तिक कासमें प्रवालपिष्टी मीठे अनारके रस अथवा मिश्रीके साथ देनी चाहिये।

अधिजिह्वा, उपजिह्वा या गलशुण्डिका, इन विकारोंमें कंठमें जलन होती है, शुष्क त्रासदायक खाँसी आती है, तथा खाँसते-खाँसते गरम और कडवी वमन होजाती है। इन पर प्रवालका अच्छा उपयोग होता है।

छोटे बच्चोंकी काली खाँसीमें प्रवालपिष्टी बहुत उत्तम औषधि है। विशेषतः खाँसी बहुत जोर की हो, खाँसीके कारण नाक, मुँह और कानसे रक्त गिरता हो, साथ-साथ बच्चेका मुँह लाल होजाता हो, चेहरा फूला हुआ अथवा सूजा हुआ हो, ऐसे लक्षण प्रतीत होन पर इसका बहुत अच्छा उपयोग होता है। कारण, इसके योगसे कंठ और सप्तपथ (Pharynx) का शोथ त्वरित उपशम होजाता है। काली खाँसी पर प्रवालपिष्टी, शृंगभस्म, वंशलोचन, इलायचीके दाने और अमृतासत्व का मिश्रण विशेष गुणदायक है।

उरःक्षतजन्य कासमें प्रवाल उत्तम लाभदायक है। उरःक्षतमें शुष्क कास, विदाह, रक्त गिरना आदि लक्षण होने पर प्रवालपिष्टी अवश्य देनी चाहिये, जिससे क्षतरोपणमें भी सहायता मिले। कतिपय समय इसके साथ लाक्षा अथवा उसका रस देना पड़ता है। तब कितनेक समय मात्र प्रवालसे कार्य होजाता है।

सगर्भा स्त्रियोंको होनेवाली कास और उसके साथ वमन, प्रवालपिष्टीके योगसे शमन होजाती है। सगर्भावस्थामें स्त्रीको अपने शारीरिक घटकोंमेंसे बालकके अस्थिपोषणार्थ अस्थि उत्पन्न करनेवाला द्रव्य देना पड़ता है। उसका परिणाम स्त्रीके रक्त, पचनेन्द्रिय और अस्थि पर होता है, जिससे वह स्त्री निस्तेज होजाती है। चलनेमें उसके पैर दुखने लगते है। गोड़ों (घुटनो) पर शोथ आजाता है। थोड़ा खाया हुआ भी सुखसे नहीं पचता। पेट फूल जाता है और वमन होती है। ऐसी अवस्थामें या ऐसी जिनकी प्रकृति हो उन पर यह बहुत अच्छा काम करती है। जिस स्त्रीके बालक जन्मसे बार-बार रोने वाले, निर्बल, निस्तेज और दुर्बल होते है, और जिनकी त्वचामें स्थान-स्थान पर सल पड़ते हो, वे थोड़े ही समयमें दगा देते है। ऐसी

स्त्रियोंको गर्भावस्थाके प्रारम्भसे अंत तक गिलोय सत्व और प्रवालपिष्टी सितोपलादि चूर्णके साथ देनेसे बहुत अच्छा लाभ होता है। माताकी ऐसी निर्बल स्थितिमें संतानके अस्थि, मांस और रक्तके अंशको योग्य परिमाणमें पोषण नहीं मिलता। यह विकार प्रवालके सेवनसे दूर होता है। गर्भपाल रसका कार्य इसकी अपेक्षा अलग जातिका है।

रसक्षय (अनुलोमक्षय) में प्रवालपिष्टी अति हितावह है। इसके योगसे रस आदि धातुमें पचनकी वृद्धि होकर सब धातु उत्तमप्रकारसे बनती हैं।

पित्ताभिष्यंद विकारमें नेत्रोंमें लाली, जलन, वेदना, नेत्र फूलने के समान ऊपर आजाना और रात्रि दिनमें दाहके कारण निद्रा न आना, आदि लक्षण होते हैं। इस पर प्रवालपिष्टीका उत्तम उपयोग होता है। इस रोगमें प्रवाल और सुवर्णमाक्षिक भस्मको मिलाकर मिश्री और घृत या दुग्धके साथ देना चाहिये।

नेत्र, हाथ, पैर, मूत्र, इन सबमें दाह (पूयशुक्र या पूयप्रमेह का दाह छोड़कर), मूत्रका वर्ण लाल अथवा बहुत पीला, सर्वाङ्ग और त्वचामें भी दाह हो, विशेषतः गर्मीके दिनोंमें उष्ण पदार्थके सेवनसे या जागरणसे इस विकारकी उत्पत्ति हुई हो, तो प्रवालपिष्टीका उपयोग करना चाहिये। इस अवस्थामें मुक्तापिष्टी भी उपयोगी होती है। परन्तु वह अति शीतवीर्य होनेसे अत्यन्त तीव्र दाहमें उपयोगी है।

प्रवालका उपयोग पित्तोन्माद और भूतोन्माद पर होता है। उन्मादका कारण प्रथम मानसिक और पश्चात् शारीरिक होता है। अथवा प्रथम शारीरिक कारण उपस्थित होकर पश्चात् वह मनोदेशको दूषित करता है, परिणाममें उन्माद उत्पन्न होता है। गर, तीव्र शराब, गांजा आदिके सेवनसे घोर शारीरिक दोष उत्पन्न होकर उन्माद हो जाता है। यह दूसरे प्रकारके उन्मादका उदाहरण है। केवल मानसिक आघात, शोक और मनोव्याघातसे असह्य मानसिक क्लेश होकर जो उन्माद होता है, उसे पहले प्रकारका उन्माद कहेंगे। जो दूसरे प्रकार का उन्माद है, जिसमें पित्तदुष्टी हेतु है, जिसमें तीव्र शराब या तीव्र विषके सेवनसे पित्तदुष्टी होती है, वह पित्तदुष्टी प्रवालपिष्टीके सेवनसे दूर होती है। इस रीतिसे उन्माद पर प्रवाल लाभदायक है।

कोष्ठगत सेन्द्रिय विष (गर) के योगसे विशेषतः उसमें पित्त-दुष्टी होने पर उन्माद होता है। कितनेक रोगी बिल्कुल पागल होजाते हैं। ऐसे विकारमें प्रवालपिष्टीके साथ आरोग्यवर्द्धिनी, चन्द्रप्रभा या शिलाजीत देना चाहिये।

भूतोन्मादमें पित्तका अनुषंग हो, तो प्रवालपिष्टी देनी चाहिये। विशेषतः क्रोधी, लड़ाकू, साहसी और दूसरोंको संताप देने वाली स्त्रियों को यह ओषधि बहुत उपयोगी होती है। उन्मादके झटकेके साथ नाक में से रक्त गिरना, चेहरा बिल्कुल लाल हो जाना, शिरायें खिंच जाना आदि लक्षण होने पर प्रवालका बहुत अच्छा उपयोग हुआ है।

बालकोंके अस्थिवक्रता रोग (Rickets) पर प्रवालपिष्टी अति उपयुक्त है। बिल्कुल छोटे ३-४ मासके बच्चोंसे लेकर बड़े बच्चों तक सब के लिये यह उपयोगी है। इस रोगमें बालकोंके नितम्ब (चूतड़) आदि स्थानों पर सल (सिकुड़न) पड़ जाना, पैर और हाथकी, इनमें भी विशेषतः पैरकी हड्डी मुड़ जाना, बार-बार थोड़े-थोड़े दस्त होना, ज्वर भी रहना इत्यादि लक्षण होने पर प्रवालपिष्टी और गिलोय सत्वको मिलाकर देना चाहिये। यदि खाँसी भी हो, तो शृंग भस्म भी मिला देवें। प्रवालपिष्टी चूनेका सेन्द्रिय सौम्य कल्प होनेसे अस्थि-मार्दव रोगमें इसका अच्छा उपयोग होता है। इस रोगमें चूनेकी न्यूनता मूल कारण है। जिस द्रव्यकी इस विकारमें न्यूनता हुई है, उसी द्रव्यकी प्रवालपिष्टीके सात्मीत्वके कारणसे प्राप्ति होजाती है। इस रोगकी प्रथमावस्थासे लेकर अंतिमावस्थापर्यन्त प्रवालका उत्तम उपयोग होता है।

पारिगर्भिक रोगमें बालक अति अशक्त होजाते हैं। वमन, कभी-कभी अतिसार, अत्यन्त कृशता, ज्वर रहना, सारे दिन रोते रहना, आदि लक्षण होते हैं। इस पर प्रवाल अति उपयोगी है। यदि अपचन और अतिसार हो, तो सर्वाङ्गसुन्दर रस देना चाहिये।

बालकोंके दाँत आनेके समय होनेवाले विकारोंमें, प्रवाल अति उपयुक्त है। विशेषतः यह रोग ज्यादा दिन तक रहा हो, ज्वर, वमन, पीले पतले दुर्गन्धयुक्त दस्त आदि लक्षण हो, प्रवाल देनी चाहिये। जिस बच्चेका दाँत अति कठोर हो; उसके लिये भी प्रवाल अति उपयोगी है। यदि दन्तोद्भव विकारमें वातप्रधान लक्षण और दस्तका रंग हरा, दधिकणयुक्त पतला हो, कनकसुन्दर रस देना चाहिये।

बालकके स्तनपानके कारण अनेक सुकुमार स्त्रियोंका शरीर ज्यादा कृश, निस्तेज और निर्बल होजाता है। हाथ-पैरोंकी संधियोंमें पीड़ा होने लगती है। कितनीक स्त्रियोंकी संतानें एक पीछे एक, मृदृस्थि रोगसे मरती है। ऐसे दोषोंमें प्रवालका सेवन अधिक प्रशस्त है।

पित्तदोषकी दुष्टीको दूर करके उसमें साम्यावस्था प्रस्थापित करनेका धर्म प्रवालका अति महत्वका है, जिससे पित्तजन्य विशेषतः

पित्तके तीक्ष्ण, उष्ण आदि गुण बढ़नेसे उत्पन्न हुए अनेक विकारोंमें इस पिष्टीका अति उत्तम उपयोग होता है। पैत्तिक शीर्षशूल, वमन, दाह, आदि पित्तप्रधान लक्षण हो, तो प्रवालपिष्टी देनी चाहिये।

पित्तज अम्लपित्तमें बारबार अत्यन्त कड़वी, पीली, जलती हुई वमन, चक्कर, व्याकुलता, शिरदर्द आदि लक्षण हो, तो प्रवाल देवे।

प्रवालपिष्टीसे पित्तकी तीव्रता और अम्लता दूर होकर दाहका शमन होजाता है। अर्थात् प्रवालके योगसे माधुर्य उत्पन्न होता है। कामदूधा रससे भी यह कार्य होता है, परन्तु वह स्तम्भक है।

प्रवालपिष्टी शुक्रस्थानकी विकृतिमें उपयोगी है। शुक्रदोष कहनेकी अपेक्षा, शुक्रस्थानके दोषमें उपयोगी है, ऐसा कहना अधिक सयुक्तिक होगा। ग्रन्थिशुक्र या पूयशुक्र आदि पर इसका लाभ बहुत थोड़ा होता है। परन्तु थोड़ी धूप लगी, अग्निके पास बैठे, थोड़ा-सा जागरण किया, किंचित् उत्तेजक पदार्थ, गरम मसाला या खटाई खाई, तो रात्रिको स्वप्नावस्था होकर मालूम न हो इस तरह शुक्रस्राव होता है। इस पर अच्छा उपयोग होता है।

खराब आदतोंके कारण शुक्रस्थान इतने निर्बल होजाते हैं कि, मनको थोड़ा-सा आघात भी सहन नहीं होता। स्त्री-विषयक मात्र बात मनमें आई कि तुरन्त शुक्रस्राव होने लगता है। वस्तुतः ऐसे लोगोंको सच्ची कामेच्छाका बोध ही नहीं है। मात्र इन्द्रियोंकी लालसा होती है। यह इन्द्रिय-लालसा या मनकी खराब स्थिति यहाँ तक बढ़ जाती है कि, कुछ कह नहीं सकते। स्त्रीजातिमेंसे चाहे बहन-बेटी क्यों न हो, कोई दृष्टिगोचर हुई कि, तुरन्त इच्छा न होने पर भी मनमें विकृति होकर शुक्रस्राव होजाता है। स्त्रियोंके जेवरोंकी आवाज सुनी कि, शुक्रस्राव हुआ। किसी सुन्दरीका दर्शन हुआ कि, मन विकृत होकर शुक्रस्राव होता है। यह स्थिति, विशेषतः मानसिक स्थिति, प्रवालपिष्टीके योगसे अति उत्तम प्रकारसे सुधर जाती है। वंगभस्म शुक्रस्थानको शक्तिदायक है, और प्रवाल शामक है। इस कारण अनेक समय इन दोनोंको मिश्रित करके देनेकी आवश्यकता रहती है।

जीर्ण सुजाक और उपदंश रोगका परिणाम मूत्रमार्ग पर होनेसे बारबार मूत्रदाह होता है। मूत्रका रंग पीला-लाल होजाता है। मूत्र बहुत गरम हो जाता है। साथ-साथ सारे शरीरमें विशेषतः हाथ-पैर और नेत्रोंमें अधिक दाह, दाँतोंमें से रक्त गिरना, बार-बार मसूढ़े फूलना आदि लक्षण होते हैं। इस प्रकारमें प्रवालपिष्टी अनन्तमूलके

साथ देनेसे उत्तम उपयोग होता है। यदि स्त्रियोंको भी अति पुरुष-प्रसङ्ग, जीर्ण सुजाक या उपदंशके विकारके पश्चात मूत्रमार्गका ऐसा ही विकार हुआ हो, तो उनको भी प्रवाल देनी चाहिये।

सुजाक, उपदंश या अन्य कारणोंसे स्त्रियोंके अपत्य मार्ग पर दाह होकर स्फोट उत्पन्न होजाते हैं। फिर गर्भाशयमें दाह होता है। इस कारणसे गर्भाशयका कार्य भी यथोचित रूपमें न होकर गर्भस्राव या गर्भपात होजाता है या समयके पहले प्रसव होजाता है। ऐसे लक्षण होने पर प्रवालपिष्टीका अति उत्तम उपयोग होता है।

स्त्रियोंके गर्भाशय और योनिमार्गमें अनेक प्रकारकी विकृति होने से प्रदर रोगकी उत्पत्ति होती है। भीतरकी रक्तवाहिनियाँ फूट जानेसे रक्तप्रदर होता है। श्वेतप्रदरमें स्राव रक्तवाहिनियोंमेंसे नहीं होता; श्लैष्मिक-कलामेंसे स्राव होता है। इस रोगकी चिकित्सा करनेके समय भीतरमें क्या विकृति हुई है, यह अच्छी रीतिसे जान करके उपचार करना चाहिये। उपचार दो रीतिसे किया जाता है—उत्तर वस्ति द्वारा योनिमार्गको शुद्ध और स्वच्छ बनाना, तथा पेटमें भी औषध देना चाहिये। प्रदरमें बिल्कुल जल समान पतला दुर्गन्धयुक्त भयंकर गरम स्राव होना, साथमें दाह, जहाँ प्रदरका जल लगे वहाँ पर फुन्सियाँ होजाना, या त्वचा फटकर उसमें पीड़ा होना, खुजली चलना, दाह होना (क्वचित् जलन यहाँ तक बढ जाती है कि, संसार-कर्म अशक्य हो जाता है) और भयंकर त्रास होना, इत्यादि लक्षण हो, तो उस पर प्रवालपिष्टी देनी चाहिये। प्रवाल उशीरासवके साथ देनेसे उत्तम इलाज होजानेके अनेक उदाहरण मिले है। इस तरह उपरोक्त लक्षण वाले रक्तप्रदर और अत्यार्तवमें भी इसके सेवनसे अच्छा लाभ पहुँचता है। रक्तप्रदर पर प्रवालपिष्टी सुवर्णमाक्षिक भस्म और वङ्ग भस्म मिलाकर दाड़िमावलेहके साथ दी जाती है।

रक्तार्श और पित्तार्श, दोनो प्रकारके अर्शमें पित्त लक्षण अधिक होने पर प्रवालपिष्टीका उपयोग करना चाहिये। इन दोनो प्रकारोंके लिये प्रवाल, गिलोय सत्व और नागकेशरको मिलाकर मक्खन-मिश्री अथवा बकरीके दूधके साथ देनेसे अच्छा लाभ होता है।

विष शमन होजानेके पश्चात् विषका परिणाम (लेश) शेष रह जाता है। यह अनेकोंको आजन्म त्रास देता है। विशेषतः सोमल, रसकपूर आदि तीक्ष्ण और तीव्र विषका परिणाम अति त्रासदायक होता है। विषका लक्षण तीव्र नही होता, परन्तु व्याकुलता बनी रहती

है; लघुशंका खूब गरम होती है; उदर, छाती, पीठ, किंबहुना सर्वाङ्गमें दाह, हाथ-पैरोंमें ज्यादा जलन, नाकमेंसे बारबार रक्त गिरना, और मस्तिष्क फिरना, ऐसे लक्षण होते है। इस पर प्रवाल अति लाभदायक है। (अनुपान रूपसे धमासा और गोखरु १-१ तोले और मिश्री दो तोले मिला अष्टमांश क्वाथ कर १-१ तोला गोघृत मिलाकर दिनमें ३ बार देते रहे।)

प्रवाल पित्तदोषके तीक्ष्णत्व, उष्णत्व, अम्लत्व आदि गुणोंकी वृद्धिको शमन करनेमें उपयोगी है। अस्थि, मज्जा, शुक्र, रक्त, मांस, ये दूष्य, और आमाशय, पचनेन्द्रिय, वातवह मण्डल, मनोदेश ये स्थान, इन सब पर असर पहुँचाती है। (औ० गु० ध० शा०)

यकृत् पित्त (पित्ताशयमेंसे निकलने वाला पित) तीव्र होजाने और अधिक मात्रा में निकलने पर पैत्तिक शूल उत्पन्न होता है। यह शूल भोजन के पहले रहता है। भोजन कर लेने पर स्तम्भित होता है। नलिका की श्लैष्मिक कलामें व्रण होजाने से या छिल जानेसे बाहर से दबाने पर दर्द होता है। उस विकार पर प्रवालपिष्टी अमृतासत्व के साथ मिला आँवलों के रस में भोजन के १ घण्टे पहले दिनमें दो बार देने से शूल शमन होजाता है। साथ में पित्त नलिकाकी श्लैष्मिक कला की विकृति को दूर करने के लिये रोज रात्रि को भोजन करने के आरंभ में १-१ तोला त्रिफला घृत लेते रहना चाहिये।

(२८) शुक्ति भस्म।

बनावट—शुद्ध मोतीकी सीपके ऊपर लगे हुए उज्ज्वल भागको हाँडीमें घीकुँवारका गूदा ऊपर नीचे रख सम्पुट कर गजपुट दे। स्वांग शीतल होने पर निकाल पुनः नीबूके रसमें ६ घण्टे खरल कर, टिकिया बाँध सम्पुट कर गजपुट देनेसे मुलायम सफेद रंगकी उत्तम भस्म बनजाती है। २० तोले सीप हो, तो ८० तोले घीकुँवारका गू [illegible] लेवे।

श्री० प० यादवजी त्रिक्रमजी आचार्यने मोतीपिष्टीके समान शुक्ति की पिष्टी बनानेका लिखा है। उसका उपयोग मुक्तापिष्टी के समान होता है।

मात्रा—१ रत्तीसे ३ रत्ती दिनमें २ बार मक्खन-मिश्री अथवा शहद या पानमें अथवा सितोपलादि चूर्ण, घी और शहद मिलाकर देवे।

उपयोग—यह भस्म क्षय, खाँसी, जीर्णज्वर नेत्रदाह, उदरवात, पित्तज गुल्म, श्वास, हृद्रोग (पित्तप्रकोपज दाह), पित्तप्रधान अरुचि, पित्तज परिणामशूल, यकृत् शूल, पित्तज वमन, पित्तातिसार,

अम्लपित्त, विदग्धाजीर्ण, उद्‌गार (डकार आना), रक्तप्रदर और निर्बलता को दूर करती है। शुक्तामें मुक्तिकी अपेक्षा न्यून गुण हैं।

शुक्ति भस्ममें शङ्खभस्मकी अपेक्षा तीव्रता कम है। वस्तुतः शुक्ति, शङ्ख, वराटिका, तीनों भस्म स्थूल रसायनशास्त्रकी दृष्टिसे एक ही प्रकार की है। तीनों ही चूनेके सेन्द्रिय कल्प हैं। परन्तु जीवनरसायन शास्त्र या गुणधर्मशास्त्रकी दृष्टिसे तीनोंमें कुछ-कुछ अन्तर है। शङ्ख और वराटिकामें अधिक साधर्म्य है, एवं शुक्ति और मुक्तामें भी विशेष साधर्म्य है। इस हेतुसे सीप यदि मोती के अनुसार केवल शीत भावनापुट विधिसे की हो, तो उसका धर्म मुक्तासे किञ्चित् न्यून देखनेमें आवेगा। परन्तु उस रीतिसे शुक्ति पिष्टी बनानेका रिवाज नहीं है। शुक्ति की भस्म गजपुट विधिसे तैयार करते हैं यह कुछ तीव्र बनती है। फिर भी वराटिका और शङ्ख भस्मसे तीव्रता न्यून ही है। इसी हेतुसे शुक्ति भस्म छोटे बच्चों, सुकुमार तथा नाजुक प्रकृतिके स्त्री-पुरुषोंको दीजाती है।

शुक्तिभस्मके सेवनसे स्वादुता उत्पन्न होती है, जिससे अम्लपित्त रोग, पित्तजन्य शूल, परिणामशूल, और अन्नद्रवशूलमें पित्तकी तीव्रता कम होजाती है।

अम्लपित्तमें शुक्ति और माक्षिकका अच्छा उपयोग होता है। विदग्धाजीर्णमें दूषित डकारें बहुत आती हों और कंठमें दाह होता हो, तो शंखकी अपेक्षा शुक्ति विशेष हितकर है। रसाजीर्ण की तीव्र और जीर्ण अवस्थामें नाजुक मनुष्योंको शुक्ति से ज्यादा लाभ होता है।

पित्तातिसारमें वारवार दस्त होते हों, दस्तका रंग पीला, नीला, अथवा लाल-नीला हो, साथमें विलक्षण तृषा, वारवार चक्कर आना, मूर्च्छा, सर्वाङ्गमें दाह, गुदाके बाहरके अंशमें त्वचा फटना, छोटी छोटी फुन्सियाँ होजाना आदि लक्षण हों, तो शुक्तिभस्म देनी चाहिये। अनुपान—अनारपाक, आमका मुरब्बा, मक्खन या अनार शर्बत।

पित्तजन्य वमनमें शुक्तिका उपयोग होता है। अत्यन्त गरम-गरम कड़वी, पीली, नीली वमन, कंठमें जलन, उदरमें दाह, नेत्रके समक्ष अन्धकार, चक्कर आना आदि लक्षण हों, तो यह हितावह है।

पित्तगुल्ममें यह भस्म हितकर है। मुँह, नेत्र और सारा शरीर लाल होजाना, ज्वर, तृषा, अन्नका पाचन होने पर कोष्ठमें भयंकर, शूल, व्रणके समान गुल्म पर हाथ या अन्य वस्तुका स्पर्श सहन न होना, आदि लक्षणोंसे युक्त गुल्ममें शुक्ति दी जाती है। यह गुल्म

अष्ठीला या विद्रधिके अनुसार मांस आदिकी वृद्धि होकर नही होता।

रक्तगुल्ममें शुक्तिका उपयोग होता है। मात्र उसमें अन्य दोष की अपेक्षा पित्ताधिक्य होना चाहिये। पित्तज शीर्षशूलमें भी इसका उपयोग होता है। मूत्रकृच्छ्र, दाँत या अन्य मार्गसे रक्तस्राव होनेकी प्रकृति हो, तो शख या वराटिका भस्म दी जाती है। परन्तु कोमल प्रकृति वालोंके लिये इस भस्मका उपयोग करना चाहिये।

शुक्तिसे कोष्ठगत वातका शमन होता है। कोष्ठगत वातके साथ श्वास हो, तो भी इसका उपयोग लाभदायक है। हृदयमें वातकी रुकावट होना, हृदयमें वातके योगसे बोझा-सा मालूम होना, पीड़ा होना, शूल चलना, कोष्ठ में जलन होने के समान भासना, हाथ-पैर शून्यसे होकर झनझनाहट होना, हाथ-पैर में शीतलताका भास होना, इत्यादि लक्षण होते है, और डकार आने पर व्यथा कम हो जाती है या बिल्कुल शमन होजाती है। ऐसी स्थितिमें शंख तथा वराटिकाकी अपेक्षा शुक्तिका अधिक उपयोग होता है।

अरुचिमें, विशेपतः पित्तप्रधान अरुचिमें, शुक्तिका उपयोग किया जाता है। इस भस्मके सेवनसे मुँहकी बेस्वादुता, मुँहमेंसे दुर्गन्ध आना, मुँह कड़वा, खट्टा, खारा या चरपरा होजाना, मुँहमेंसे गरम-गरम भाफ निकलना, ये सब लक्षण दूर होते है।

शुक्ति भस्म पित्त और किञ्चित् कफ दोप, रस, रक्त, मांस, अस्थि, ये दूष्य, और आमाशय, यकृत्, प्लीहा और ग्रहणी ये स्थान, इन सब पर लाभ पहुँचाती है। (औ० गु० ध० शा०)

सूचना—मुक्ता, प्रवाल, शुक्ति, वराटिका, शख, इनकी भस्में क्षार-रूप होने से रूखी ओपधियोंके साथ सेवन करने पर किसी-किसीके मुखमें छाले होजाते हैं। अत. घी मिलाकर सेवन करे या गिलोय सत्व और शहदको अच्छी तरह मिलाले। अथवा मुक्तापिष्टी या प्रवालपिष्टी सेवन करे।

(२६) वराटिका (कपर्दिका) भस्म।

बनावट—४० तोशे शोधन की हुई पीले रंगकी कोड़ियोको निर्धूम तेज अग्निमें लाल होजायँ तब तक रखे। अच्छी रीतसे फूल जाने पर सम्हालपूर्वक उठा घी कुँवारके रसमें डुबोदे। पश्चात् उसी रसमें खरलकर दो-दो तोलेकी टिकियाँ बना, सूर्यके तापमें सुखा, संपुट कर गजपुट अग्नि देनेसे वराटिका भस्म तैयार होजाती है।

मात्रा—२ से ४ रत्ती दिनमें दो से, तीन समय घृत-मिश्री, निवाये

जल, नीबूका रस, शहद या नागरवेलके पान या अन्य अनुकूल अनुपानके साथ देवें। कान पकने पर भस्म डाल ऊपर नीबूका रस डालें।

उपयोग—यह भस्म परिणामशूल, अन्नद्रवशूल, रसाजीर्ण, संग्रहणी, अम्लपित्त, रसक्षय, आफरा श्वास, गुल्म, उदरवात, मन्दाग्नि, जीर्णज्वर और कानसे पीप निकलना आदि रोगोंको दूर करती है। इस भस्ममें पित्तकी अम्लताको कम करनेका मुख्य गुण होनेसे इसके सेवनसे नेत्रकी उष्णता भी शान्त होती है।

कपर्दिका भस्म चूनेका सेन्द्रिय कल्प है। इसमें सेन्द्रियत्व होनेसे अन्य निरिन्द्रिय कल्पकी अपेक्षा सत्वर और सुखपूर्वक शरीरमें शोषण होजाती है। कपर्दिका भस्म उदरमें स्वादुता उत्पन्न करती है। शंख और शुक्तिकी अपेक्षा वराटिकामें यह गुण विशेष रूपसे रहा है। इस हेतुसे कोष्ठगत वात-वृद्धि होकर आफरा आना, पेट दुखना, पेटमें शूल चलना, भोजन जहाँ का तहाँ स्थिर-सा रह जाना, वारवार शुष्क डकार या दुर्गन्धयुक्त भोजनकी वास वाली डकार आना, व्याकुलता, विशेषतः वातुल, जड़ और तले हुए पदार्थोंके सेवनसे अजीर्ण होजाना आदि लक्षण युक्त अपचनमें वराटिका भस्मका उपयोग हितकर है। यदि इस स्थितिमें ज्यादा वमन भी होती हो, और वमनके साथ आफरा वढ़ता हो और शूल ज्यादा चलता हो, तो इसे अनारके रस या दाडिमावलेहके साथ देनी चाहिये। ऐसे ही रसाजीर्ण होनेकी जिनकी प्रकृति हो, उनको भी यह भस्म देना हितकर है।

परिणामशूल—विशेषतः पित्तज, वातज अथवा वातपित्तज होने पर इस भस्मका सेवन कराना चाहिये। परिणामशूल में वहुत करके ग्रहणी स्थानमें ज्यादा विकृति होती है। वराटिकासे यह दुष्टी दूर होती है। इस रीतिसे मुद्रिका द्वार पर व्रण हो और व्रण वहुत न वढ़ा हो, तो व्रणरोपण रूप महत्वका कार्य इससे होजाता है।

अन्नद्रवशूलमें यह भस्म हितकारक है। अन्नद्रवशूलमें वातप्रकोपके कारणसे आफरा होता हो, तो कपर्दिका भस्म और शंख भस्मको मिलाकर देना चाहिये।

अम्लपित्तमें विल्कुल प्रारम्भ कालमें झागयुक्त खट्टी वमन होती हो, तो वराटिका भस्म दी जाती है। साथमें सुवर्णमाक्षिक भस्म देनेसे ज्यादा लाभ होता है।

ग्रहणी रोगके विल्कुल प्रारम्भकालमें और आमातिसारमें आम पाचनके लिये कपर्दिका भस्मका उपयोग होता है। प्रारम्भमें एक दो

उपवास करा कपर्दिका भस्म देनी चाहिये, अथवा जिसमें यह भस्म मिली हो, ऐसी जातिफलादिवटी, ग्रहणीकपाट रस या अन्य ओषधि देनी चाहिये। जाति फलादि और ग्रहणीकपाटमें अफीम मिलाई है, जिससे वे तीव्र स्तम्भक बने है। इसलिये इनका उपयोग बहुत सम्हाल-पूर्वक करे। आमातिसार और ग्रहणीमें तीव्र शूल अर्थात् आमजन्य शूल हो, तो कपर्दिका भस्मसे अति उत्तम कार्य होता हे। ग्रहणी रोगकी जीर्णावस्थामें इसका उपयोग अच्छा नही होता। विशेषतः आम रक्त मिश्रित होकर गिरते हों, तो इस ओषधिका उपयोग न करना ही अच्छा माना जायगा। नूतन रोगमें भी रक्तमिश्रित आम पर कपर्दिका भस्म नहीं देनी चाहिये। यदि देनी हो, तो अन्य स्तम्भक और रक्तप्रसादक औषध में मिला कर देनी चाहिये।

रसक्षयके प्रारम्भमें जब थोड़ा भोजन करने पर भी पचन न होता हो, मीठी, खट्टी और खाये हुए भोजनकी विकृत डकार बार-बार आती हो, मलावरोध भी रहता हो, तब इस भस्मसे लाभ होजाता है।

रक्तपित्त और क्षतक्षय पर वराटिका, प्रवाल और सोनागेरू मिला कर देना चाहिये। इनमें चूना और माधुर्य उत्पादक धर्म होनेसे, रक्त और रक्तवाहिनियोंका स्तम्भन होकर रक्त गिरना बन्द होजाता है।

जीर्ण अग्निमांद्यमें वराटिका भस्म घृत या अन्य पाचक ओषधि के साथ देनी चाहिये। जीर्णज्वर और प्लीहावृद्धिमें मंदाग्नि हो, तो भी इसका उपयोग हितकर है।

कर्णस्राव चिकना, स्फोटयुक्त तीव्र हो, तो वराटिकाका उपयोग करना चाहिये। कानमें थोड़ी वराटिका भस्म डाल उसपर गरम कर शीतल किया हुआ तेल, बिल्वादि तेल, या क्षार तेल डालना चाहिये, और वराटिका भस्म दूधके साथ सेवन करानी चाहिये।

अग्निदग्ध त्वचा पर वराटिका भस्मका उत्कृष्ट उपयोग होता है। वराटिका भस्म, मुर्दासंग, सोनागेरू, गिलोय सत्व, श्वेत चन्दन और वंशलोचन, सबको समभाग मिला, अरंडीके तेलमें खरल कर मृदु ब्रुश या रूईके फोहेसे जले हुए स्थानमें मोटा-मोटा लेप करे। जैसे-जैसे लेप लगाते जायँगे, वैसे-वैसे शीतलता होती जायगी, फोड़े नहीं उठेंगे, और त्वचा उत्तम-प्रकारसे अच्छी होजाती है।

वराटिका भस्म पित्तशामक, विशेषतः पित्तकी अम्लता शामक, कोष्ठस्थ वातहर, शूलघ्न और पाचक है। इसका कार्य यकृत्, प्लीहा,

आमाशय और ग्रहणी पर होता है। पित्तदोष तथा रस और कचित् रक्त, इन दूष्यों पर लाभ पहुँचाती है। (औ० गु० ध० शा०)

सूचना—वराटिका भस्मके सेवनसे जिह्वा फट जाती है। इस हेतुसे घृत या गिलोय सत्व और शहद या अन्य औषधिके साथ मिलाकर लेनी चाहिये।

(३०) शंख भस्म।

बनावट—२० तोले शुद्ध शंखके टुकड़ोंको एक हॉडीमें घीकुँवारका गूदा आध-आध सेर ऊपर नीचे रख, सपुट कर अच्छी रीतिसे गोवरी भर गजपुट देनेसे सफेद रंगकी भस्म बन जाती है। भस्म मुलायम न हुई हो, तो नीबूके रसमें खरल कर दूसरी वार गजपुट देवे। यह भस्म अच्छा लाभ करती है। फिर भी इस भस्मको आकके पीले पत्तोंके रसमें ६ घण्टे खरल कर पुनः गजपुट देवे; तो यह नारू रोग और उदर रोगके लिये विशेष लाभदायक बनती है।

मात्रा—१ से ४ रत्ती दिनमें दो समय अजीर्ण पर नीबूके रस और मिश्री अथवा गरम जलके साथ, या १ रत्ती हींग और ६ माशे घृतके साथ दें। अतिसार और संग्रहणीमें बेलके मुरब्बेके साथ। नेत्रके फूले पर दिनमें २ समय अंजन करें। हिक्कामें १ रत्ती काकड़ासिंगी और २ रत्ती पीपलके चूर्णके साथ १-१ घण्टे पर ३-४ वार दें। त्रिदोपज शूल पर काला नमक, भुनी हींग और त्रिकटुके साथ मिलाकर निवाये जलके साथ देवे।

उपयोग—यह भस्म उदरवात, यकृद्वृद्धि, प्लीहावृद्धि, गुल्म, मन्दाग्नि, अतिसार, अजीर्ण, आफरा, शूल, सग्रहणी और नेत्रके फूले आदि रोगोंमें अति उपयोगी है। स्नायु (नारु) निकला होवे, तब १-१ माशे भस्म दिनमें २ समय ४ दिन तक देते रहनेसे रक्तमें रहे हुए (बाहर न निकले हुए) नारु जल जाते है।

शंखभस्म एक प्रकारका क्षार है। क्षारके गुणधर्म बहुत अंशमें इस भस्ममें प्रतीत होते है। शंख और वराटिकामें गुण-सादृश्य अधिक है। कारण, दोनों चूनेके सेन्द्रिय कल्प है। फिर भी शंखमें कुछ पृथक् गुण भी है। उन्हींको यहाँ पर दिखाया है। शंखभस्ममें ग्राही अर्थात् स्तंभन गुण है, जिससे अतिसारमें, विशेषतः पक्वातिसारमें, अच्छी उपयोगी है। पक्वातिसारमें शंखभस्म, सोहागेका फूला, अफीम और जायफलको योग्य परिमाणमें मिश्रण करके देना अति हितकर है। इस योगको शंखोदर कहते है। ग्रहणीके विकारमें शंखभस्मका उपयोग

इसमें बार बार पतले विरेचन होते हो, कोष्ठशूल ... साथ पतले थोड़े-थोड़े दस्त होते हो, तो शंख ... होता है।

... पित्तज अतिसार और कफपित्तज कोष्ठशूलमें ... अनुपानके साथ होता है। उदरमें वात ... होजाना, शूल निकलना, कोष्ठकी क्रिया ... होका तहाँ स्थिर होजाना, मीठी या जली हुई ... वाली डकार आना, आदि लक्षण होने ... उदरवातका शमन होकर, अन्न पचन होने ... तत्काल दूर होता है।

... होनेसे आमाशय या पक्वाशयमें शूल उत्पन्न ... नीबूके रसके साथ देनी चाहिये। ऐसे ही ... के लिये भी शंखभस्म अति लाभदायक है। ... रोगीको यह भस्म नहीं देनी चाहिये।

शंखभस्मका उपयोग ... यकृत और प्लीहाकी क्रिया मन्द होनेसे उत्पन्न होनेवाले विकारोंमें अच्छा [illegible] होता है। यकृत् और प्लीहावृद्धिमें ... उपयोग होता है ... [illegible] मलावरोध हो, तो इसके ... या अन्य विरेचन [illegible] औषधका उपयोग करना चाहिये, ... बार देना चाहिये। [illegible] गुल्म और अष्ठीला रोग पर ... अति उपयोगी है। [illegible] क्षार, जवाखार और अन्य ... खट्टा इस भस्ममें तीव्रता न्यून है।

... नारिकेलज (ऋतु परिवर्तनसे होनेवाला) अतिसार, अपचन-... नीबूके रस और कीटाणुजनित विसूचिका (कॉलेरा) में तीव्र वेग कम ... के बाद इस भस्मका अच्छा उपयोग होता है। कॉलेराकी सुधार वाली ... अवस्थामें (जुलाब, वमन आदि लक्षण कम होने पर) थोड़े-थोड़े ... दस्त होने और निर्बलता शेष रहने पर शंख भस्म और ... मात्विक भस्मका उत्तम उपयोग हुआ है।

... नेत्रके फूलेमें शंख भस्म उपयोगी है। इसके अंजनसे फूले नष्ट ... हो जाते हैं। इस स्थानमें इसके रोपण धर्मका उपयोग होता है।

तरुण स्त्री-पुरुषोंके मुखदूषिका (तारुण्यपिटिका—मुँह पर ... फुन्सियाँ होजाना) में शंख भस्म खिलानेसे उत्तम उपयोग होता है।

शंख भस्म, पित्त दोष, रस, रक्त और अस्थि, ये दूष्य, एवं यकृत, प्लीहा, ग्रहणी, पक्वाशय, बृहदन्त्र, कोष्ठग्रन्थि, पचनेन्द्रिय, नेत्र

और मुख ये स्थान, इन सब पर असर पहुँचा तथा रस और क्वचित् (शा०)
अम्लपित्त रोगमें अपचन, उदरमें भ (औ० गु० ध० शा०) त और
कण्ठमें दाह रहता हो, तब शंख भस्मके स दार और
नौसादर मिलाकर भोजन कर लेने पर घी या जाती है। इस हेतु साथ देनेसे
विशेष लाभ होता है। किन्तु जिनको भोजन मिलाकर लेनी बढ जाता हो,
मुखपाक भी रहता हो, उनको भोजनके पश पर शंख
भस्म, शुक्तिभस्म और अमृतासत्व मिलाकर साथ देवें।

हिक्का रोगमें वेग बढ गया हो, व्याकु कोको एक हाँडीमें और
वातपित्तप्रधान लक्षण प्रतीत होते हो, तो संपुट कर अच्छी तरह और
देते रहने और सोंठका कपड़छान चूर्ण सुं बन जाती है। एट पर
ही दिनमें शमन होजाता है। कर दूसरी बार रोग एक

इनके अतिरिक्त यह भस्म पित्तविदग्ध ी इस भस्मको
दायक है। इस रोगमें शूल, आफरा, दा पुट देवें; तो यह में लाभ-
शिरदर्द आदि लक्षण प्रतीत होते है। इस पर बनती है। कुलता,
गुडके साथ करानेसे थोड़े ही दिनोंमें रोग दूर होजाता है। भस्मका पुराने

(३१) अकीक भस्म।

प्रथम विधि—शुद्ध अकीकको इमामदस्तेमें कूटकर चूर्ण करें। फिर गुलाबजल या घीकुँवारके रसमें खरल कर टिकिया बाँध सम्पुट कर गजपुट देनेसे भस्म होजाती है। फिर दूधमें खरल कर टिकिया बाँधकर गजपुट देवें। दूधकी भावनाके बाद गजपुटमें रखनेसे सम्पुटमें भस्म फूलती है। इसलिये सम्पुट थोड़ा खाली रहे, ऐसा बड़ा सराव लेना चाहिये। इस तरह ३ पुट देनेसे भस्म मुलायम बन जाती है। कितनेक चिकित्सक इसे चौथा पुट दूधका भी देते है।

दूसरी विधि—शुद्ध अकीकको गुलाबजलमें ७ दिन तक खरल करके पिष्टी बना लेवे।

मात्रा—१ से ३ रत्ती दिनमें दो समय शहदके साथ दें।

उपयोग—यह भस्म हृदयकी सब प्रकारकी निर्बलता, उष्णता, हृदय-रोग, नेत्ररोग, रक्तप्रदर आदि को दूर कर शरीरको बलवान् बनाती है। थूकमें रक्त आता हो, तो उसे बन्द करती है। एवं मस्तिष्क को शान्त बनाती है। रक्तस्रावके रोधके लिये अकीक पिष्टी, तृणकान्त-मणि पिष्टी, अभ्रक भस्म और अमृतासत्व मिलाकर देनेसे सत्वर लाभ पहुँचाती है।

(३२) जहरमोहरा भस्म।

बनावट—हलके वजनवाले जहरमोहराको इमामदस्तेमें कूट कपड़छान चूर्ण तैयार करें। फिर दूधमें ६ घण्टे खरल कर टिकिया बाँध, सूर्यके तापमें सुखा, सम्पुट कर गजपुट अग्नि देनेसे भस्म बन जाती है।

मात्रा—१ से ४ रत्ती दिनमें ३ समय शहदके साथ।

उपयोग—यह भस्म शीतल और हृदयपौष्टिक है। बालकोंके हरे पीले दस्त, अपचन-जनित विसूचिका, वमन, अतिसार आदिको दूर करती है। वातवाहिनियाँ तथा हृदयको बलवान् बनाती है। कॉलेरामें आध-आध घण्टे पर देते रहना चाहिये। बालकोंको मात्रा आध-आध रत्ती देनी चाहिये।

स्त्रियोंके अतिरजस्राव और निर्बलतामें जहरमोहरा पिष्टी, प्रवाल पिष्टी, अभ्रक भस्म, अमृतासत्व और शुभ्राभस्म मिलाकर शहदके साथ दिनमें २ या ३ बार देते रहनेसे रोग निर्मूल होजाता है।

रक्तदबाववृद्धि-जनित शिरमें भारीपन, नेत्रमें लाली, घबराहट आदि लक्षण प्रकाशित होने पर जहरमोहरा पिष्टी सोडाबाई कार्ब और गुलकंदके साथ दिनमें ३ या ४ बार देनेसे दबाव कम होजाता है।

कीटाणुजनित तीव्र वान्ति होती हो, बार बार वमन होती रहे, वमन दुर्गन्ध युक्त हो तो मयूरपुच्छ भस्म और जहरमोहरा पिष्टी २-२ रत्ती मिला पोदीने के अर्कके साथ आध आध घण्टे पर देते रहना चाहिये। कीटाणुओंको नष्ट करके वान्तिके वेगको शमन करने और आमाशयको निर्दोष तथा सबल बनानेके लिये यह उत्तम औषध है।

(३३) तृणकांतमणि (केहरवा) पिष्टी।

बनावट—केहरवाका बारीक चूर्ण कर गुलाबजलमें ४-६ दिन खरल करनेसे पिष्टी होजाती है। (सि० भै० म० मा०)

मात्रा—२ से ६ रत्ती जलके साथ दिनमें ३ समय दें।

उपयोग—यह पिष्टी पित्तविकार, प्रवाहिका, रक्तातिसार, रक्त-प्रदर, अन्त्रके रोग, अर्श और रक्तपित्त आदि रोगोंमें रक्तका प्रवाह बन्द करनेके लिये उत्तम और निर्भय है। मस्तिष्कमें कीड़े पड़ जानेके कारण निरन्तर शिरदर्द बना रहना, नाकमेंसे रक्त गिरना, नाकमेंसे दुर्गन्ध आना, मन्द-मन्द ज्वर रहना, अरुचि, दाह, प्रस्वेद, चक्कर आना, आदि लक्षण होने पर तृणकांतमणि पिष्टी दी जाती है। इससे नाकसे कीड़े गिरने लगते हैं और थोड़ेही दिनोंमें दर्द शान्त होजाता है।

अर्शका रक्तस्राव बन्द करनेके लिये इस पिष्टीके साथ नाग-बोलकी पर्पटी मिला द्राक्षावलेहके साथ देना विशेष हितकारक होता है। यदि निर्बलता अधिक हो और कब्ज न रहता हो, तो इस पिष्टीके साथ अभ्रकभस्म, अमृतासत्व और नागकेसरका चूर्ण मिश्रित कर देना चाहिये।

यूनानी हकीम कहरवा २ से ४ रत्ती तक देते हैं। कहरवा मस्तिष्कके लिये हानिकर मानते हैं। अधिक मात्रामें लेनेसे शिरदर्द हो जाता है। पित्तवृद्धिसे हृदयके वेगकी वृद्धि हुई हो, तो तृणकान्तमणि पिष्टी लेनेसे शमन होजाती है। सगर्भा स्त्रीके गलेमें कहरवाकी माला पहनानेसे हृदयकी निर्बलता दूर होती है, और गर्भस्राव या गर्भपात नहीं होता। इस पिष्टीको घाव पर छिड़कनेसे रक्तस्राव बन्द होकर घाव भर जाता है।

सूचना—तृणकान्तमणि अधिक मात्रामें लेनेसे मस्तिष्कमें पीड़ा हुई हो, तो शर्बत बनफ्शा पिलावें।

(३४) पिरोजा भस्म ।

बनावट—शुद्ध पिरोजाका बारीक चूर्ण कर घीकुवारके रसमें १२ घण्टे खरल करके टिकिया बांधे। पश्चात् सूर्यके तापमें सुखा संपुट कर गजपुट देनेसे भस्म होजाती है। (र० सा० सं०)

मात्रा—आधी रत्तीसे २ रत्ती तक गायके घी और काली मिर्चके चूर्णके साथ मिलाकर दिनमें २–३ समय दें।

उपयोग—पिरोजाके सेवनसे विस्फोटकके फोड़े शीघ्र शान्त होते हैं। विषविकारमें भी यह उपयोगी है। पिरोजा कसैला, मधुर, दीपन और सारक है। स्थावर-जंगम विष और संयोगजन्य विषविकारको शीघ्र नाश करके शरीरको नीरोग बनाता है।

(३५) हरताल भस्म ।

प्रथम विधि—शुद्ध तपकिया हरताल ५ तोलेको आकके दूधमें ७ दिन तक खरल कर पूरी जैसी चौड़ी टिकिया बना सूर्यके तापमें सुखावें। फिर एक हांडीमें पीपल या ढाककी राख भर, ऊपर हरतालकी पूरीको चारों ओर शहद लगाकर रखें, और उस पर ४-५ अंगुल राख दबा देवें। इस हांडीको चूल्हे पर चढ़ा बेरकी लकडीकी १२ घण्टे तक मन्द अग्नि दें, और देखते रहें कि हरतालका धुआं राख मेंसे तो नहीं निकलता। यदि धुआँ निकले, तो तुरन्त और थोड़ी राखसे दबा देवें। ७ घण्टे बाद अग्नि देना बन्द करें। स्वाग शीतल होने पर ऊपरमें लगी

हुई राखको सम्हालपूर्वक दूर कर हरताल भस्मको निकाल लेवे। फिर पुनर्नवाके स्वरसमें १२ घण्टे खरलकर टिकिया बाँधे। उसे सुखा सराव-संपुट कर २ सेर गोबरीकी अग्निमें फूँक देनेसे मुलायम सफेद भस्म बन जाती है।

मात्रा—१ से २ चावल तक प्रातः, सायं या आवश्यकता पर देवें।

अनुपान—१. चित्तभ्रम, विषम ज्वर, शीताङ्ग और कफवात-प्रधान महा घोर सन्निपातोंमें—अदरखके रसके साथ।

२. कुष्ठमें—बावचीके चूर्ण अथवा मंजिष्ठादि अर्कके साथ।

३. तमक श्वासमें—शहद और पीपलके चूर्णके साथ।

४. ज्वर, क्षय और पाण्डु पर—शक्करके साथ।

५. प्रसूताके शूल और वातरोग पर—अदरखके रसमें।

६. जलोदर पर—बकरीके मूत्रमें।

७. शैत्य पर—केशर और जावित्रीके साथ।

८ संधिवातमें—चोपचिन्यादि चूर्ण और शहदके साथ।

९ रक्तविकृतिमें—आमाहल्दीके साथ।

१०. ऊर्ध्वश्वासमें—हरडके चूर्णके साथ।

११. कुष्ठ पर—बावचीके चूर्णके साथ।

१२ कुष्ट और वातरक्त पर—गिलोयके क्वाथके साथ।

१३. वातरोगमें—शक्करके साथ।

१४ अपस्मारमें—बच्छनाग $\frac{1}{8}$ रत्ती और जीरेके चूर्णके साथ।

१५ भगंदर पर—देवदालीके रसमें।

उपयोग—यह भस्म विविध उपद्रवो सह वातरक्त, सब प्रकारके कुष्ट, फिरंगजनित कुष्ट, विसर्प, कण्डू, पामा, विस्फोटक, ८० प्रकारके वातरोग, कफरोग, प्रमेह और गुदाके रोगोको दूर करती है। इस भस्मके सेवन-कालमें नमक और खटाईको त्याग देना चाहिये।

यह भस्म गलत्कुष्ठ (Nodular Leprosy), सुप्तकुष्ठ (Nervous Leprosy), व्युची, उपदंश (Syphilis), उलट-उलटकर बार-बार आने वाला ज्वर (Relapsing Fever), शीताङ्ग सन्निपात, श्वास, कफप्रकोप आदि पर अति हितावह है।

हरताल भस्म स्निग्ध, उष्ण, कटु, अग्निदीपक और कुष्ठघ्न है। यह एक उत्कृष्ट रसायन होनेसे रसायन विधान अनुसार सेवन करने पर जरावस्थाकी निर्बलताको नष्ट करती है, कान्ति बढ़ाती है, तथा अकाल मृत्युको दूर करके आयुकी वृद्धि करती है।

अर्शका रक्तस्राव बन्द करनेके लिये इस पिष्टीके साथ लाल-बोलकी पर्पटी मिला द्राक्षावलेहके साथ देना विशेष हितकारक होता है। यदि निर्वलता अधिक हो और कब्ज न रहता हो, तो इस पिष्टीके साथ अभ्रकभस्म, अमृतासत्व और नागकेसरका चूर्ण मिश्रित कर देना चाहिये।

यूनानी हकीम कहरवा २ से ४ रत्ती तक देते हैं। [illegible] मस्तिष्कके लिये हानिकर मानते हैं। अधिक मात्रामें लेनेसे शिरदर्द हो जाता है। पित्तवृद्धिसे हृदयके वेगकी वृद्धि हुई हो, तो तृणकांतमणि पिष्टी लेनेसे शमन होजाती है। सगर्भा स्त्रीके गलेमें कहरवाकी माला पहनानेसे हृदयकी निर्वलता दूर होती है, और गर्भस्राव या गर्भपात नहीं होता। इस पिष्टीको घाव पर छिड़कनेसे रक्तप्रवाह बन्द होकर घाव भर जाता है।

सूचना—तृणकान्तमणि अधिक मात्रामें लेनेसे मस्तिष्कमें [illegible] हुई हो, तो शर्बत बनफसा पिलावें।

(३४) पिरोजा भस्म।

बनावट—शुद्ध पिरोजाका बारीक चूर्ण कर घीकुँवारके रसमें १२ घण्टे खरल करके टिकिया बांधे। पश्चात् सूर्यके तापमें सुखा संपुट कर गजपुट देनेसे भस्म होजाती है। (स्या० सा० सं०)

मात्रा—आधी रत्तीसे २ रत्ती तक गायके घी और काली मिर्चके चूर्णके साथ मिलाकर दिनमें २-३ समय दें।

उपयोग—पिरोजाके सेवनसे विस्फोटकके फोड़े शीघ्र शान्त होते है। विषविकारमें भी यह उपयोगी है। पिरोजा कसैला, मधुर, दीपन और सारक है। स्थावर-जंगम विष और संयोगजन्य विषविकारको शीघ्र नाश करके शरीरको नीरोग बनाता है।

(३५) हरताल भस्म।

प्रथम विधि—शुद्ध तपकिया हरताल ५ तोलेको आकके दूधमें ७ दिन तक खरल कर पूरी जैसी चौड़ी टिकिया बना सूर्यके तापमें सुखावें। फिर एक हांडीमें पीपल या ढाककी राख भर, ऊपर हरतालकी पूरीको चारों ओर शहद लगाकर रखें, और उस पर ४-५ अंगुल राख दबा देवें। इस हांडीको चूल्हे पर चढ़ा बेरकी लकड़ीकी १२ घण्टे तक मन्द अग्नि दें, और देखते रहें कि हरतालका धुआँ राख मेंसे तो नहीं निकलता। यदि धुआँ निकले, तो तुरन्त और थोड़ी राखसे दबा देवें। ७ घण्टे बाद अग्नि देना बन्द करें। स्वाग शीतल होने पर ऊपरमें लगी

हुई राखको सम्हालपूर्वक दूर कर हरताल भस्मको निकाल लेवे। फिर पुनर्नवाके स्वरसमें १२ घण्टे खरलकर टिकिया बाँधे। उसे सुखा सराव-संपुट कर २ सेर गोवरीकी अग्निमें फूँक देनेसे मुलायम सफेद भस्म बन जाती है।

मात्रा—१ से २ चावल तक प्रातः, सायं या आवश्यकता पर देवे।

अनुपान—१. चित्तभ्रम, विषम ज्वर, शीताङ्ग और कफवात-प्रधान महा घोर सन्निपातोंमें—अदरखके रसके साथ।

२. कुष्टमें—बावचीके चूर्ण अथवा मंजिष्ठादि अर्कके साथ।

३. तमक श्वासमें—शहद और पीपलके चूर्णके साथ।

४. ज्वर, क्षय और पाण्डु पर—शक्करके साथ।

५. प्रसूताके शूल और वातरोग पर—अदरखके रसमें।

६. जलोदर पर—बकरीके मूत्रमें।

७. शैत्य पर—केशर और जावित्रीके साथ।

८ संधिवातमें—चोपचिन्यादि चूर्ण और शहदके साथ।

९ रक्तविकृतिमें—आमाहल्दीके साथ।

१०. ऊर्ध्वश्वासमें—हरड़के चूर्णके साथ।

११ कुष्ठ पर—बावचीके चूर्णके साथ।

१२ कुष्ट और वातरक्त पर—गिलोयके क्वाथके साथ।

१३. वातरोगमें—शक्करके साथ।

१४. अपस्मारमें—बच्छनाग $\frac{1}{8}$ रत्ती और जीरेके चूर्णके साथ।

१५. भगंदर पर—देवदालीके रसमें।

उपयोग—यह भस्म विविध उपद्रवो सह वातरक्त, सब प्रकारके कुष्ट, फिरंगजनित कुष्ठ, विसर्प, कण्डू, पामा, विस्फोटक, ८० प्रकारके वातरोग, कफरोग, प्रमेह और गुदाके रोगोको दूर करती है। इस भस्मके सेवन-कालमें नमक और खटाईको त्याग देना चाहिये।

यह भस्म गलत्कुष्ट (Nodular Leprosy), सुप्तकुष्ट (Nervous Leprosy), व्युची, उपदंश (Syphilis), उलट-उलटकर बार-बार आने वाला ज्वर (Relapsing Fever), शीताङ्ग सन्निपात, श्वास, कफप्रकोप आदि पर अति हितावह है।

हरताल भस्म स्निग्ध, उष्ण, कटु, अग्निदीपक और कुष्ठघ्न है। यह एक उत्कृष्ट रसायन होनेसे रसायन विधान अनुसार सेवन करने पर जरावस्थाकी निर्बलताको नष्ट करती है, कान्ति बढ़ाती है, तथा अकाल मृत्युको दूर करके आयुकी वृद्धि करती है।

वातरक्त पर यह भस्म अच्छी उपयोगी है। विशेषतः वातप्रधान वातरक्त और कफप्रधान वातरक्त पर यह अधिक लाभदायक है। वातरक्तका प्रारम्भ पैर अथवा हाथके अंगुष्ठके पासमे होता है। पहले अँगूठे सूजते है, उनमें पीडा होती है, पश्चात् धीरे-धीरे सारे शरीरमें वातरक्तका प्रादुर्भाव होता है। वातरक्त और कुष्ठ, दोनो रोग भिन्न है। दोनोके दोष-दूष्योमें महदन्तर है। वातरक्त होने पर सर्वाङ्गमें—संधियो, धमनियो और अँगुलियोमें बार-बार अति त्रासदायक शूल, हाड़-हाड टूटनेके समान पीडा, शोथ, शोथमें भी त्वचा फटी-सी होजाना, त्वचाका रंग मैला, काला या काला-सफेद होजाना, हाथ या पैरकी वातवाहिनियोका संकोच होना, हाथ या पैरोकी अंगुलियाँ टेढ़ी होना, हाथ-पैरका सन्धि-बन्धन, भीतरसे खिचना (जिससे चलनादि क्रिया यथोचित न होना), सारा अङ्ग जकड जाना, कम्प आना, शोथ वाला भाग शून्य-सा हो जाना, स्पर्शका बोध न होना, शीतल वायु, शीतल जल, शीतल भोजन आदि पर तिरस्कार होना, शीत-स्पर्श आदिसे रोगकी वृद्धि होना, इन लक्षणयुक्त वातप्रधान वातरक्त पर घीके साथ ताल भस्म सेवन करानी चाहिये।

यदि वातरक्त रोगमें शोथ वाले भागमें जडता, सारे शरीरमें जडता, शीतलता, शक्ति नाश और शून्यता, हाथ पैर पर अग्नि स्पर्श आदिके असरका भी भान न होना, हाथ-पैरकी त्वचा स्निग्ध-सी भासना, सारे शरीरमें खुजली चलना, शरीर शीतल और वेदना कम, ये कफप्रधान लक्षण हो, तो हरताल भस्मको काँटेवाले करंजके पत्तोके रसमें घी या मिश्री मिलाकर देनी चाहिये।

पित्तप्रधान वातरक्तमें हरतालका उपयोग नही करना चाहिये, अन्यथा रोगीको त्रास बढ़ता है, पित्तप्रकोप होकर रक्तपित्त होजाता है।

वातरक्तके समान वातरक्तके उपद्रवोमें भी हरताल उपयोगी है। अनिद्रा, अरुचि, श्वास, वातजन्य मासकोथ (पित्तज कोथमें तो ताप्यादि लोह), मस्तिष्ककी शिरा खिचना, बार-बार मूर्च्छा, बेहोशी, दृष्टिमान्द्य, शूल ज्यादा निकलना, तृषा, ज्वर, विचारोमें लीन-सा होजाना, सारे शरीरमें थर-थर कम्प, हिक्का, पंगुता, विसर्प, शोथ पककर फूटना, शोथ-स्थान में सुई चुभनेके समान पीड़ा, चक्कर आना, थकावट, अंगुलियाँ टेढ़ी होजाना, शरीर पर फोड़े-फुन्सियाँ होजाना, शिरदर्द, शिराओंका संकोच, इन सब त्रासदायक उपद्रवोको

भी तालभस्म दूर करती है। इन उपद्रवोंमें वार-वार बेहोश या मूर्च्छा होजाना अति कष्टप्रद। इसे असाध्य कहो, तो भी बाधा नहीं।

वातरक्तका विकार अति त्रासदायक और दीर्घकाल टिकने वाला है। कुछ दिन तक, अच्छा होगया, ऐसा भासता है, परन्तु थोड़ा-सा कारण मिलने पर पुनः बलपूर्वक उछल आता है। सारे लक्षण विलक्षण वेग सह उपस्थित होते है। कितनेक रोगियोंको वातरक्तका शमन होकर विसर्प, व्युची, फोड़े-फुन्सियाँ खाज, सारे शरीरमें सूखी खुजली, स्थान-स्थान पर रक्तदूषित होकर चकत्ते होजाना, गाँठ होजाना, सारा शरीर काला होजाना इत्यादि लक्षण उत्पन्न होते है। इन सब पर तालभस्म अच्छा लाभ पहुँचाती है। अनुपान रूपसे अनन्तमूल, चोपचीनी आदि रक्तशोधक औषध देनी चाहिये।

तालभस्मका उपयोग वातरक्तके समान कुष्ठ रोगमें भी होता है। आयुर्वेदने अनेक त्वचाके रोगोंका कुष्ठ रोगमें अंतर्भाव किया है। इनमें से पामा, कच्छू, उग्रा, दद्रु आदि उपकुष्ठोंमें (त्वचाके रोगोंमें) हरताल की अपेक्षा गंधक रसायनका ही उपयोग करना अच्छा है। यदि इनमें भी कोई रोग जीर्ण, दृढ़मूल वाला और अति त्रासदायक हो, तो उस पर हरतालका उपयोग मंजिष्ठादि अर्कके साथ किया जाता है। शेष महाकुष्ठोंमें दोष-दूष्यको देख कर हरतालका उपयोग करना चाहिये। ताल भस्म कुष्ठ रोगोंमें अति प्रशस्त औषधि है। मात्र पित्त-प्रधान दुष्टी या केवल रक्तविशिष्ट दुष्टी होने पर ताल भस्मका चाहिये वैसा उपयोग नहीं होता। शेष वात-कफ, ये दो दोष-प्रधान दुष्टी और त्वचा, मांस, लसीका, ये दूष्य होने पर कुष्ठ रोगमें ताल भस्म अमृत रूप है। योग्य परिमाण और योग्य अवस्थामें तालभस्म की योजना की जाय, तो कुष्ठ रोग निःसंदेह दूर होते है।

त्वचा काली या लाल-काली, शुष्क, कठोर, स्थान-स्थान पर फटीसी और अत्यन्त वेदनायुक्त हो, ऐसे कुष्ठको वातप्रधान दोष-दुष्टी से उत्पन्न हुए समझकर उस पर ताल भस्मका उपयोग करना चाहिये। कपाल, उदुम्बर, मंडल, सिध्म, काकण, पुंडरीक, ऋष्य-जिह्व, ये सात महाकुष्ठ है। इनमें उदुम्बर कुष्टमें दाह, लाली, खाज, अत्यन्त वेदना और रोंगटे मुरझाये हुए मलिन-से होते है, तथा कुष्ठका भाग पके गूलरके फलके समान लाल, ऊपर उठा हुआ होता है। मात्र इस कुष्ठ पर ताल भस्म नहीं दी जाती। शेष महाकुष्ठों पर दोष-दूष्योंका विचार करके देनी चाहिये।

जिस कुष्टका रंग श्वेत या लाल हो, स्थान घट्ट और प्रस्वेद आता ही रहता हो, तथा ऊपर उठा हुआ और तेजस्वी मंडल समान जो भासता हो, वह मंडल कुष्ट है। इस कुष्टको कष्टसाध्य माना है, तथापि इस पर भी ताल भस्मका उपयोग होता है।

जिस कुष्टकी त्वचा फटी-सी, किनारी लाल वर्णकी, भीतरका भाग काला, अति वेदना वाला और लम्बा मण्डल हो, वह ऋष्यजिह्व है। जिस कुष्टका भाग श्वेत-सा लाल वर्णका, किनारी लाल और कमलके पत्तेके समान सर्वाङ्ग पर फैला हुआ और ऊपर उठा हुआ हो, उसे पुण्डरीक कुष्ट कहा है। जिस कुष्टका वर्ण बिल्कुल गुञ्जाके समान लाल और भयङ्कर वेदना वाला हो, वह काकण कुष्ट है। इन सब पर ताल भस्मका सेवन हितकर है।

फिरंग रोगकी तीव्र और जीर्ण, दोनों अवस्थाओंमें हरतालका अच्छा उपयोग होता है। इस रोगमें बिल्कुल प्रथमावस्थामें चट्टा कहीं भी न हो, ऐसी स्थितिमें तो पारद भस्म, रसकर्पूर और अमीर रस, इन सबका ही उपयोग अच्छा होता है। परन्तु कुछ उपद्रवोंका प्रादुर्भाव हुआ हो, होनेकी संभावना हो, तो ताल भस्मका उपयोग करना चाहिये। यदि उपदंशका विष दोष-दूष्योंमें अधिक गहरा न गया हो, तब तक तो पारद कल्पका उपयोग हितकर है। परन्तु जब विष गहराईमें जाकर त्वचा, मांस आदि दूष्योंको दूषित कर देता है; तब ताल भस्मका उपयोग अच्छा होता है। तीव्र विकारमें पारद तथा जीर्णावस्थामें तालभस्म और मल्ल कल्पकी ओषधियाँ अवस्था-क्रमसे उपयोगमें ली जाती है। विकारमें दोष-दूष्यादिकके पारतम्यको देखकर औषधि-योजना की जाती है, अर्थात् पित्त दोष और रक्त दूष्य होने पर (इनकी प्रधानता होने पर) पित्त-शामक और रक्तप्रसादन करने वाली ओषधि (अनुपान) के साथ हरताल देनी चाहिये।

उपदंशके भी अनेक उपद्रव होते हैं—उपद्रव अर्थात् व्याधिके पश्चात् उत्पन्न होने वाले अन्य स्पष्ट रोग। ऐसे उपदंशके अनेक उपद्रवोंमें गलत्कुष्ट और गुदशूक (मांसकीलक–Condyloma), इन दोनों पर हरतालका विशेष अच्छा प्रभाव पड़ता है। अन्य उपद्रवों पर हरतालका उपयोग नहीं होता, ऐसा नहीं। अन्य विकारों पर भी हरताल हितावह ही है। हरताल अन्य कुष्टकी अपेक्षा उपदंशजन्य कुष्ठ पर सत्वर अच्छा लाभ पहुँचाती है। उपदंशज कुष्ट और अन्य कुष्ठ इनमें बहुत अन्तर है। यह कुष्ठ उपदंशके पश्चात् होता है। अन्य कुष्ठ के

समान इसमें अपने दोष-दूष्य नही होते। कुष्ठके अवस्था भेद अथवा जाति और लक्षणके अनुरोधसे भेद नही होते। मात्र एक ही प्रकारके लक्षण होकर और बढ़कर अन्तमें गलत्कुष्ठकी प्राप्ति होजाती है। प्रथमतः कानकी पाली, नाकके अग्रभाग और गाल पर लाल चकते हो जाते है। पश्चात् सारे शरीर पर वैसे चकते होने लगते है। हाथ-पैरो की अँगुलियाँ सूज जाती हैं। हाथ-पैरोकी संवेदना-शक्ति कम होती जाती है, अर्थात् चुटकी भरने या अग्नि-स्पर्शका भी पूरा बोध नही होता। सज्ञावाहिनियाँ बधिर होजाती है। पश्चात् शोथ फूटने लगते है, उनमेंसे पूय निकलता रहता है। सारा शरीर सूज जाता है। सम्पूर्ण चेहरा और अंग आदि भयानक विचित्र दीखने लगते है। इस अवस्था में भी हरतालका अच्छा उपयोग होता है। परन्तु गलत्कुष्ठमें जब तक शोथ फूटकर उसमेंसे मात्र पूय निकलता रहता है, तब तक ही औषधि या अन्य उपचार होसकता है। एक समय अवयव जीर्ण होकर खण्डशः टूट कर गिरने लगें, तब जैसा चाहिये वैसा उपयोग नही होता। यही न्याय आनुवंशिक कुष्ठको भी लागू होता है।

वातादिक दोषोंके दुष्ट होनेसे होनेवाला कुष्ठ निज और उपदंशज कुष्ठ, दोनोंमें अनेक समय रोग बढ़ने पर वातवाहिनियाँ दुष्ट होकर स्पर्शासहत्व होता है, अर्थात् थोड़ा सा आघात होने पर भी भयङ्कर पीड़ा होने लगती है। थोड़ा-सा धक्का भी सहन नही होता। सहनशक्ति नष्ट होनेसे सारे शरीरमें झनझनाहट होती रहती है। अनेक समय तो रोगी रोने लगता है, या कतिपयोंकी वातवाहिनियाँ आकुंचित हो-जाती है, जिससे स्नायु और मासका भी संकोच होजाता है। जिस भागमें दुष्टि हुई होगी, वह भाग सूखनेके समान होजाता है। इस प्रकारके लक्षणोंमें हरताल भस्मका उपयोग अच्छा होता है। एवं उपदंशके उपद्रव रूप उत्पन्न हुए प्रमेह और अर्श रोग भी तालभस्मके सेवनसे अच्छे होजानेके अनेक उदाहरण है।

उलट-उलट कर वार-बार आने वाला ज्वर (परिवर्तित ज्वर) पर हरतालका विशेष उपयोग होता है। एवं साधारण शीतपूर्वक ज्वर (विषम ज्वर और कफ-प्रधान ज्वर) पर भी यह दी जाती है।

सन्निपातमें कफ और वातप्रकोप दूर करनेके लिये इसका उपयोग होता है। इसके सेवनसे शीत और बेहोशी जल्दी दमन होती है, वातवाहिनियाँ सशक्त बनती है, और रोगी सचेत होजाता है। सन्निपातमें अदरखके रसके साथ देनी चाहिये।

यह भस्म वात और कफ दोष, रस, रक्त, मांस, ये दूष्य; तथा त्वचा, शाखा (हाथ-पैर), यकृत्, इन स्थानों पर अधिक लाभ पहुँचाती है। (औ० गु० ध० शा०)

सूचना—पित्तप्रधान कुष्ठ और पित्तप्रधान वातरक्तमें हरताल नहीं देनी चाहिये। हरताल सेवन कालमें सूर्यका ताप, नमक खटाई, मिर्च, तेल आदि हानिकर वस्तुओंका त्याग कर देना चाहिये। आवश्यकता पर भोजनमें थोडा सैंधानमक और काली मिर्च मिलालें।

बद्धकोष्ठ या मूत्रावरोध रहने पर हरताल विशेष लाभ नहीं पहुंचा सकती। अतः पहले कोष्ठ-शुद्धि कर लेनी चाहिये।

जीर्णविकारमें मात्रा कम देनी चाहिये एवं बार बार १०-१५ दिनके पश्चात् ३-३ रोज बन्द करना चाहिये, जिससे ओषधि-सत्व रस, रक्त आदिमें अच्छी रीतिसे मिलजाय।

जिस हरताल भस्मको अग्नि पर डालनेसे धुँआ न निकले उसे उपयोग में लेने योग्य माना है। अर्द्ध पक्व भस्मके सेवनसे विविध विकृतियां होती हैं।

दूसरी विधि—शुद्ध तबकिया हरताल १ तोला और लाल फिटकरी ४ तोले लेवे। पहले मिट्टीके करवेमें आधा फिटकरीका चूर्ण नीचे रखकर हरतालके चूर्णको ऊपर बिछा देवे। शेष फिटकरीका चूर्ण ऊपर रख, उसपर ढक्कन ढककर (संधि बराबर बिठानेके लिये करवेको थोडा-थोडा घिसकर ठीक कर लेवे) ऊपरमें मजबूत कपड़मिट्टी करें। सूखने पर २ सेर कण्डोंकी अग्नि देवे। शीतल होने पर हरताल मिली गुलाबी रंगकी फिटकरीका फूला निकाल लेवे। इसमेंसे हरताल बहुत उड़ जाती है, तो भी काम अच्छा देती है। संपुटमें जगह थोड़ी खाली रखनी चाहिये, क्योंकि फिटकरीका फूला होता है।

मात्रा—१ से २ रत्ती दिनमें २ समय देवे।

उपयोग—यह भस्म नवीन ज्वर, जीर्णज्वर और विषमज्वरको दूर करती है। विषमज्वर आनेके ३ घण्टे पहले ३ माशे मिश्रीके साथ देवें, पुनः दो घण्टे बाद देवें।

(३६) मल्ल (संखिया) भस्म।

बनावट—(प्रथम विधि) एक होंडीमें मूली की १ सेर राखको ऊपर नीचे रख २ तोले संखिया रखे। राख अच्छी रीतिसे दबादे। फिर हाँडीके मुख पर मजबूत कपड़मिट्टी कर चूल्हे पर चढ़ा अँगूठे-जैसी दो लकड़ीकी अग्नि १२ घण्टे तक देनेसे भस्म बन जाती है।

मूली की राखके बदलेमें अपामार्ग (ऑधीझाड़ा) की राखमें भी भस्म हो सकती है।

मात्रा—आधे चावलसे एक चवन्नी तक मुनक्कामें रखकर निगल जायँ। ऊपर दूधमें घी मिलाकर पीवे। अथवा पहले घी पिला कर ओषधि देवें। अन्य रोगोमें रोगानुसार अनुपानके साथ देवें।

उपयोग—इस भस्मके सेवनसे कास, श्वास, शीतज्वर, कोढ़, पक्षाघात और नामर्दी आदि रोग नष्ट होते है।

सोमल तीक्ष्ण और उष्ण-वीर्य होनेसे कफ और आमका शमन करता है, पित्तकी वृद्धि करता है, तथा रक्ताभिसरण क्रियाको बढ़ाता है। एव कीटाणुनाशक होनेसे रक्त, मांस, अस्थि और मज्जामें रहे हुए विषम ज्वर, उपदंश और कुष्ट आदिके कीटाणुओको नष्ट करता है, तथा उपदंशसे उत्पन्न उपद्रव—गुदशूक (Condyloma), नासात्रण, तालुव्रण, पक्ष्मव्रण, नेत्र व्रण, नाड़ी व्रण, अतिसार, अन्त्रविकार, पक्षाघात आदि को भी दूर करता है। फुफ्फुस, हृदय और वातवाहिनीको उत्तेजना देता है। यदि कफ-प्रधान सन्निपातमें आरम्भसे ही सोमल का उपयोग किया जाय, तो रोगका वल बढ नही सकता। वेहोशी, गलेमें कफका बोलना, नाड़ी मन्द, शरीर शीतल और भ्रम आदि लक्षण हो, कफको बाहर फेंकनेकी वातवाहिनियोमें शक्ति न रही हो, ऐसे समय पर सोमल अपना प्रभाव तत्काल दिखाता है। किन्तु यदि ज्वर १०१ डिग्रीसे ज्यादा हो, नेत्र लाल हो, पित्त-प्रधान अन्य लक्षण भी प्रतीत होते हो, तो ऐसी स्थितिमें सोमलका उपयोग नहीं करना चाहिये। अन्यथा रक्ताभिसरण क्रियाके वेग की वृद्धि होकर मस्तक पर रक्त अधिक चढ़ता है।

सूचना—कास श्वासादि रोगोंमे अधिक कफवृद्धि होने पर सोमल की मात्रा कम देनी चाहिये। अन्यथा कफप्रकोप, हृदयावरोध, नेत्रदाह, उदरपीडा, शिरदर्द, सन्धिस्थानोंमें पीडा, वृक्कस्थानमे उष्णता इत्यादि विकृति होने लगती है एव पेशाब थोडा और पीला होकर ज्वर होजाता है। कदाच ऐसा हो, तो मोती और शिलाजीत देकर उपद्रवको शमन करे। तत्पश्चात् ३ दिनके बाद आवश्यकता हो, तो पुन स्वल्प मात्रामे सोमल देना आरम्भ करे।

सखिया भस्म खाने वालेको मूली बिल्कुल नहीं खानी चाहिये; तथा पित्त प्रकृति वालेको, पित्तविकार वालेको और उष्ण ऋतुमे मल्ल भस्म नही देनी चाहिये।

दूसरी विधि—पापड़ाखार ४ तोले लेकर उसमेंसे आधा मिट्टीके

सरावमें रक्खे, उस पर एक तोला संखिया रख कर, शेष पापड़ाखार को ऊपर रक्खे। फिर दूसरा सराव ढक, मजबूत कपड़मिट्टी करे। संपुटके लिये समान नाप वाला सराव लेना चाहिये, जिससे सरावमें खाली जगह न रहे। संपुट सूखने पर दो सेर कंडोमें रख फूँक देनेसे श्वेत रंगकी सुन्दर मुलायम भस्म होजाती है। (चि० च०)

मात्रा—आधीसे एक रत्ती शहद, दूध-मिश्री या घीके साथ देवें। श्वासके लिये गुड़का हलवा बनाकर प्रथम ग्रासमें देवें।

उपयोग—यह भस्म निमोनिया, मलेरिया, कास, श्वास, कोढ़ और पक्षाघातको दूर करनेके लिये अति उपयोगी है।

तीसरी विधि—संखिया, कलमीशोरा, चूना, सीप भस्म, सोहागा का फूला, हरएक दो-दो तोले और नौसादर १६ तोले लेवे। सबको महीन पीस, आठ तोले आकके दूधमें खरलकर दो-दो तोलेकी टिकियाँ बना, सरावसंपुटमें रख, कपड़मिट्टी करे। सूखने पर २॥ सेर कंडोकी अग्नि देनेसे काले रंगकी भस्म बन जाती है। भस्म वजनमें कम उतरती है पर लाभ अच्छा करती है। (धन्वन्तरि)

मात्रा—आधी रत्ती से एक रत्ती तक अदरखके रस या दूध-मिश्री अथवा रोगानुसार अनुपानके साथ देवे।

उपयोग—यह भस्म वात व्याधि, अर्द्धाङ्ग वायु, गठिया, जीर्ण-ज्वर, नया वातज्वर, कफज्वर, सन्निपात आदिको मिटाती है। निमोनिया रोगमें खूब फायदा करती है, स्वेद लाकर ज्वरको घटाती है एवं गलगंड और बवासीरमें भी लाभदायक है।

चौथी विधि—सफेद संखिया १ तोला और शुक्तिभस्म दो तोले लेकर आकके पत्तोंके रसमें १२ घण्टे घोटकर टिकिया बाँधे। फिर सुखा संपुट कर दो सेर गोबरीकी अग्निमें फूँक देवें।

मात्रा—आध-आध रत्ती दिनमें दो बार शहदके साथ देवे।

उपयोग—यह भस्म कफपित्तात्मक श्वास, खाँसी, मन्दाग्नि, उदररोग, रक्तविकार, नारू और चर्म रोगमें लाभदायक है। अत्यधिक शराब पीने पर होने वाली उबाक, वमन, आमाशय-दाह और बेचैनी आदिको दूर करती है।

सूचना—श्वासके रोगीको सुबह १ से २ तोले घी पिलाकर भस्म देवे। शामको घी पिलानेकी जरूरत नही है। अथवा घीके बदले शहद और पीपलके साथ देकर ऊपर दूध पिलावे।

पाँचवी विधि—खुरासानी थूहरकी सूखी लकड़ी जलाकर २॥ सेर

कपड़छान राख तैयार करें। फिर एक मिट्टी की केलड़ी (कपाल) में आधी राख भर ४ तोले सोमलका एक टुकड़ा रख, शेष राख ऊपर दबा देवे। पश्चात् चूल्हे पर चढ़ा मन्दाग्नि देवे। लगभग ६ घण्टेमें सोमल की भस्म हो जाती है। जब सोमल फूलता है, और राखमें दरार पड जाती है, तब तुरन्त धुआँ न लगे, इस तरह सम्हाल कर चूल्हे परसे वरतन उतार कर नीचे रख देवे। स्वांग शीतल होने पर फूले हुए सोमलको सम्हालपूर्वक निकाल लेवें।

मात्रा—१ से २ चावल तक मलाई-मिश्री, अदरखके रस अथवा अन्य रोगानुसार अनुपानके साथ देना चाहिये।

उपयोग—यह भस्म सन्निपातकी मूर्च्छा, नाड़ियोंके खिचाव और पसलियोंके शूलको तुरन्त दवा देती है। जीर्णज्वर, निमोनिया, मलेरिया, कुष्ट, उपदंश, रक्तविकार और श्वासमें अनुकूल अनुपानके साथ देनेसे रोगको सत्वर दूर करती है।

सूचना—आँखको धुआँ लगेगा, तो मनुष्य अन्धा होजायगा, और शरीर पर धुआँ लगेगा तो फाला होजायगा—ऐसा सुननेमें आता है। फाले पर गौका घी लगानेसे मिट जाता है।

इस भस्मके लिये चूल्हा बिलकुल जमीनमें बनावे और जमीनसे सिर्फ आध इंच ऊँचे बरतन रखे। बरतनके ऊपरके भाग में एक छोटा छेद करें, जिससे सेमल फूलनेके साथ लम्बी लोहेकी शलाका द्वारा बरतनको चूल्हेसे दूर हटा सके।

छठवीं विधि—१ तोले शुद्ध सोमलको गुलावजलमें ३ दिन खरल कर टिकिया बनावे। पश्चात् टिकियाको सुखकर २ तोले दालचीनीके चूर्णके बीचमें रखकर सराव-संपुट करे। ऊपर अच्छी तरह कपड़मिट्टी कर सूर्यके तापमें सुखा संपुटको छोटे चूल्हे पर चढ़ा, नीचे बेरकी लकड़ीकी ३ घण्टे तक मन्द अग्नि देवें। दो लकड़ी अँगुल समान लेकर जलावे। फिर स्वांग शीतल होने पर सम्हाल कर निकाल लेवें।

मात्रा और उपयोग—पाँचवी विधिके अनुसार।

सूचना—यदि मल्ल भस्मके सेवनसे उष्णता बढ़ जाय, तो दूधमें घी मिलाकर पिलाना चाहिये, या जलमें कत्था मिलाकर पिलावे।

(३७) शृङ्ग भस्म।

बनावट—शुद्ध बारहसिंगेके सूखे टुकड़ेके वजनसे ४ गुने आकके पत्तोंको कूटकर लुगदी बनावे। इसमेंसे आधी लुगदी कपड़े पर बिछा

ऊपर बारहसिंगेके टुकडे रख, शेष आधी लुगदीको ऊपर ढक, पोटली बाँधकर मजबूत कपड़मिट्टी करे। पोटलीमें बारहसिंगके टुकड़े एक दूसरेसे न मिल जायँ यह सम्हाले। कपड़मिट्टी सूखने पर गजपुट अग्नि देनेसे सफेद रंगकी मुलायम भस्म होजाती है। कदाचित भस्ममें से कोई टुकड़ा काला कच्चा रह जाय, तो उसको आकके रसमें ३ घण्टे खरल कर टिकिया बना, संपुट कर दूसरी बार गजपुट देनेसे उत्तम भस्म बन जाती है। (ब्र० स्वा० सदानन्दगिरिजी)

उपरोक्त विधिसे घीकुँवारके गर्भको बिछा उसमें बारहसिंगके टुकड़े रख करके भी भस्म बनाई जाती है।

सूचना—शुष्क कासमें शृङ्ग-भस्म नहीं देनी चाहिये। आकके पत्तोंकी लुगदीकी अपेक्षा घीकुँवारके गर्भमें संपुट करके भस्म बनाई जाती है; वह सौम्य होती है। तीक्ष्ण रोगोंमें उग्र भस्म लाभदायक है। परन्तु कोमल प्रकृति वालोंके लिये सौम्य भस्म हितकर है।

मात्रा—१ से ३ रत्ती दिनमें २ समय। कफको बाहर निकालनेके लिये मिश्रीके साथ। पतले कफके शोषणके लिये शहद या नागरवेलके पानके साथ। शूल पर पीपलके चूर्ण और शहदके साथ। क्षयके तापमें प्रवालपिष्टी और गिलोय सत्वके साथ। मृदुस्थि रोगमें प्रवालपिष्टी या गोदन्तीके साथ। श्वसनक ज्वर (न्युमोनिया) पर शृङ्गभस्म, मोरके चन्द्रिकाकी भस्म और १-१ तोला अष्टागावलेहके साथ दे। ऊपर सोंठ मिली हुई चाय पिलावे।

उपयोग—शृङ्ग भस्म श्वास, खाँसी, पार्श्वशूल, फुफ्फुस-सन्निपात (निमोनिया Pneumonia fever), बालकोंका पसली रोग (Broncho Pneumonia), नया फुफ्फुस आवरण शोथ (उरुस्तोय Pleurisy), वातश्लेष्मज्वर (Influenza), जीर्णज्वर, सेन्द्रियविष जनित अस्थिविकार, राजयक्ष्मामें ज्वर, जुकाम, हृदयशूल, मंदाग्नि, वृक्कव्रण, दाँतमेंसे पूय निकलना (Pyorrhoea) और बालकोंके अस्थि-वक्रता रोग (Rickets) आदिको शमन करती है।

शृङ्ग भस्मका मुख्य गुण ज्वरघ्न, शक्तिवर्द्धक, कफस्रावका नियमन करना, फुफ्फुसोंमें रहे हुए कफदोषकी साम्यावस्था प्रस्थापित करके फुफ्फुस कोषोंको शक्ति देना, हृदयको शक्ति देना, क्षयकी प्रथमावस्थामें क्षयके कीटाणुओंका नियमन कर क्षयको बढ़ने न देना इत्यादि है। इनमेंसे अन्तिम कार्य शृङ्ग भस्मके योगसे फुफ्फुसके अथवा अन्य स्थानके शारीरिक घटक सुदृढ़ होकर क्षयके कीटाणु या

क्षयजन्य विष नष्ट होने पर होता है। शृङ्ग-भस्मसे क्षयका विष बिल्कुल नष्ट होजाता है, ऐसा नहीं। क्षयजन्य विषको निर्विष करनेवाली अथवा क्षयज कीटाणुओंको मारनेवाली कीटाणुनाशक ओषधि सुवर्ण भस्म है। परन्तु शृङ्ग भस्मका उपयोग ऊपर लिखे अनुसार (कीटाणुओंकी वृद्धिको रोक देना) होनेसे, क्षय होजानेका सन्देह होने पर तुरन्त शृङ्ग भस्म और प्रवाल भस्मको मिलाकर देते रहनेसे क्षय नहीं होता। रोगी क्षय रोगसे बच जाता है। ऐसे समय पर इस भस्मको १ रत्तीसे प्रारंभ कर क्रमशः ६ रत्ती तक बढ़ानी चाहिये।

श्वासनलिकामेंसे कफका परिमाणसे अधिक स्राव होता हो, तो उसे शृङ्ग भस्म नियमित कर कफविकारको दूर करती है। वासा (अड़ूसा) श्वासवाहिनियोंमेंसे कफस्राव ज्यादा करानेवाला है। मुलहठी श्वासवाहिनियोंसे उपतापको शमन करती है, अर्थात् यह मधुर, चिपचिपा, पतला और कोमल रस उत्पन्न करने वाली होनेसे उपताप कम होजाता है। जब कण्ठदाह, कण्ठशोथ, फुन्सियाँ और उपजिह्व आदिके दोषसे खाँसी आती है, तब बहेड़ेमें स्तम्भक गुण होनेसे वह उपयोगी होता है। इस रीतिसे खाँसीके पृथक्-पृथक् कारणोंके अनुरोधसे भिन्न-भिन्न ओषधि उपयोगमें लीजाती है।

शृङ्ग भस्म वातजन्य शुष्क कासमें नहीं देनी चाहिये, अन्यथा श्वासवाहिनिया शुष्क होकर खाँसी बढ़ जायगी। परन्तु बालकोंकी काली खाँसी (Whooping cough) और उसके समान संक्रामक कासमें शृङ्ग भस्मका अच्छा उपयोग होता है। फुफ्फुसो या श्वास वाहिनियोंके प्रदाहके पश्चात् उत्पन्न होने वाली खाँसीमें एवं कफसंचय-जनित कासमें शृङ्ग भस्म उत्तम लाभदायक है। साँभरके सींगोंकी अपेक्षा छोटे बच्चोंके लिये हरिणके सींगोंकी भस्म विशेष उपयोगी है। हरिणके सींगोंकी भस्म साँभर सींगोंके समान की जाती है।

फुफ्फुस सन्निपात (निमोनिया Pneumonia) के पश्चात् प्रायः उरस्थ कफसंचय ज्यादा होता है। यह संचय अनेक समय दिनों तक त्रास पहुँचाता रहता है। कफ दुर्गन्धयुक्त, चिकना, पीले रंगका निकलता है। ऐसे कफको सत्वर निकाल देना चाहिये, तथा फिर से नया दूषित कफ उत्पन्न न होनेके लिये भीतरके अवयवोंको निर्दोष और बलवान बनाना चाहिये। इन सब कार्योंके लिये उत्तम औषध की योजना करें, तो शृङ्ग-भस्म और रससिंदूरको मिला अडूसा, मुलहठी, बहेड़ा और मिश्रीके क्वाथके साथ दिनमें २ या ३ बार देना चाहिये।

(साथ-साथ पचगुणतैल और नारायण तैलको मिला निवाया कर छाती पर मालिश करने और गरम जलमे सेक करने पर सत्वर लाभ होता है।)

कतिपय समय इस प्रकारका कफस्राव न्यून होने पर या कफकी दुर्गन्ध न्यून होने पर भी अन्तरमें कोई एकाध भाग दुष्ट बना हुआ शेप रह जाता है; जिससे कुछ कालके पश्चात् उस भागमें दोप सचय की वृद्धि होती है। दोपदुष्टी बढ़कर ज्वर आने लगता है। इस प्रकार के ज्वरमें त्रास ज्यादा नहीं होता, तथापि रोगीकी शक्ति क्षीण होती जाती है। ऐसी परिस्थितिमें अन्य ज्वरघ्न औपधिकी अपेक्षा शृङ्ग-भस्म विशेप हितकर है। उसके साथ रससिंदूर बिल्कुल थोड़े परिणाम में मिला देनेसे फूफ्फुसोंमें से मल-द्रव्य और दोप-दुष्टी नष्ट होनेमें अच्छी सहायता मिल जाती है। यह दुष्टी दूर होने पर सूक्ष्म ज्वर स्वयमेव शमन होजाता है।

शृङ्ग भस्म हृदयपौष्टिक है। हृदयके शूलका विकार जीर्ण होने पर हृदयमें विशेप विकृति न हो, मात्र हृदयेन्द्रियकी सामान्य निर्बलता ही कारण हो, और स्नायु निर्बल हुए हों, तो ऐसी स्थितिमें शृङ्ग भस्म अवश्य देनी चाहिये। अनेक दिवसोंके उपवासो या मार्ग चलनेके कारण या मस्तिष्क का श्रम अतिशय होनेसे हृदयमें निर्बलता आई हो, तो भी शृङ्ग भस्म हितकर है। ऐसी अशक्तिके समय थोड़ा-सा कारण मिलने पर उत्पन्न होने वाली घबराहट, हृदयके वेगकी वृद्धि, कानमें आवाज और नाड़ियाँ उड़ती हों, ऐसा रोगीको भास होता हो, तो शृङ्ग भस्म और सुवर्णमाक्षिक भस्मका मिश्रण देना लाभदायक है। हृदयकी निर्बलतासे उत्पन्न कास, रक्तमें आई हुई निर्बलता, मुँह और सारे शरीर पर आया हुआ कफ जन्य शोथ अथवा शोथ समान मुँह फूला हुआ-सा भासना, आदि विकृतिमें यह हितकारक है।

शृङ्गभस्मका उपयोग करके निर्जन्तुक क्षय एवं जन्तुजन्य क्षय, दोनो पर अनेक समय अनुभव किया है। इसके योगसे क्षय रोगके ज्वर और कास, दोनो जल्दी दूर होते हैं। इतना नहीं, क्षयके कीटाणुओंका नियमन, वृद्धि न होने देना, ऐसा राजयक्ष्माके कीटाणुओं पर भी परिणाम होता है। इस भस्मका सेवन आरम्भ होने पर उसी समयसे क्षयके कीटाणुओंका आगे बढ़ने वाला पैर पीछे पड़ता है। राजयक्ष्मामें रोगी बिल्कुल घबरा न गया हो, बलमांसविहीनत्व स्थिति न हुई हो, तो शृङ्गभस्मका बहुत अच्छा उपयोग होता है। क्षयकी

बिल्कुल प्रथमावस्थामें इस भस्मका उपयोग करने लगे, तो रोगी बहुत करके अच्छा ही होजाता है। इस कारणसे क्षय रोगमें शृङ्ग भस्म अनेक ओषधियोंमें से एक उत्तम ओषधि है, ऐसा कहनेमें अतिशयोक्ति नहीं है। क्षय रोगमें अभ्रक भस्म, सुवर्ण भस्म और शृङ्गभस्म, तीनों एकत्र करके देनेसे सत्वर अधिक लाभ पहुँचता है। तद्वत् शरीर में रहे हुए सूक्ष्म ज्वर पर भी इसका उपयोग अच्छा होता है।

बालकोंकी बालशोथ व्याधि, जिसमें अस्थि बहुत कमजोर, हाथ-पैर शुष्क और पेट घड़ेके समान हो जाता है; इस पर शृङ्ग भस्म और प्रवालपिष्टीके मिश्रणका अच्छा उपयोग होता है।

मूत्रपिण्डके विकार पूयवृक्क और वृक्कव्रणमें वंग भस्म या अन्य ओषधिके साथ शृङ्ग भस्म देनेसे पूय सत्वर सूखने लगता है, रोगीको अधिक त्रास होता हो, वह कम होजाता है, और रोग शीघ्र काबूमें आता है।

शृङ्ग भस्म विशेषतः कफदोष, रस, रक्त, अस्थि, मज्जा इन दूष्यों और श्वसनेन्द्रिय, हृदय, वृक्क (मूत्रपिण्ड), इन स्थानों पर लाभ पहुँचाती है। (ओ० गु० ध० शा०)

शृङ्ग भस्म २ रत्ती और नौसादर शुद्ध ४ रत्ती मिलाये जलके साथ देनेसे नूतन प्रतिश्याय में कफस्राव जल्दी होने लगता है। फिर थोड़े ही समयमें प्रतिश्याय और सिर दर्द दूर होजाता है।

यदि श्वास रोगमें कफ संगृहीत होजानेसे अति त्रास होता हो, तो शृगभस्मके साथ मल्लसिंदूर (नं० २) और त्रिकटु मिलाकर ४-४ घण्टे पर शहदके साथ देते रहे और ऊपर चाय पिलाते रहे, तो एक दिनमें घबराहट दूर होजाती है। किन्तु जिनको कफ अधिक गाढ़ा हो उनको मल्लसिंदूर न दें। उनको शृंग, अभ्रक, समीरपन्नग और सितोपलादि चूर्ण मिलाकर ४-४ घण्टे पर देना चाहिये। समीरपन्नग मिलानेसे कफ सरलतासे बाहर निकल आता है।

सेन्द्रियविष या कीटाणुका रक्तमें प्रवेश होने पर नखोंकी रचना अव्यवस्थित और विकृत होने लगती है। बहुधा फिरंग रोगके विषसे ऐसा होता ही है, तथापि उदरमें सूक्ष्म कृमि दीर्घकाल पर्यन्त रह जाने पर भी नख बैठे हुए, विकृत और अनियमित मोटे-से बन जाते है। उस पर यह भस्म दोपहरके भोजनके समय अमृतासत्व, नागरमोथा और आँवलेके चूर्णके साथ सेवन करा ऊपर भृंगराज तैल ६ माशे पिलाया

जाता है। इस तरह सेवन करने पर १-२ मासमें नखविकृति दूर होजाती है।

कास रोगके साथ कितनेकोंको श्वास रोग भी होता है। रोग जीर्ण होने पर बार-बार कास चलती रहती है, और १०-२० बार खाँसने पर कफ गिरता है, कभी-कभी झागदार वान्ति होजाती है, बोलनेमें श्वास भर जाता है और शीतकालमें बैठे-बैठे रात्रि काटनी पड़ती है। गर्मीके दिनोंमें त्रास कम रहता है। इस विकार पर शृंग भस्म २ रत्तीके साथ रससिंदूर १ रत्ती मिला तुलसीके रस और शहदके साथ दिनमें दो बार देते रहनेसे शनैः-शनैः छाती सबल होकर कास और श्वास, दोनो रोग निवृत्त होजाते हैं।

(३८) संगयसब भस्म।

बनावट—शुद्ध संगयसबको गावजवाँके क्वाथमें ६ घण्टे खरल कर २-२ तोलेकी टिकियाँ बनावे। फिर सूर्यके तापमें सुखा सरावमें ऊपर-नीचे गावजवाँका कल्क रख, संपुट करके सुखा लेवें। बादमें गजपुट अग्नि देवें। इस रीतिसे ३ समय गजपुट देनेसे भस्म मुलायम होजाती है। (श्री० प० गंगादत्तजी पन्त वैद्यराज)

दूसरी विधि—गावजवाँके क्वाथमें १४ समय बुझा, अर्क गावजवाँ या केवड़ाके साथ ७ दिन खरल करके पिष्टी बना लेवें।

मात्रा—१ से ३ रत्ती दिनमें २ समय शहदके साथ देवें।

उपयोग—यह भस्म हृदयकी धड़कन और उष्णताको दूर करके हृदयको बलवान बनाती है। वातवाहिनियोंकी निर्बलता, मस्तिष्ककी उष्णता, आमाशयकी अशक्ति और धातुकी निर्बलताको दूर करती है, तथा स्मरणशक्तिको बढ़ाती है।

हृदय निर्बल होजाने पर हृदय स्पन्दन बढ़ जाता है। मुखमण्डल निस्तेज होजाता है। पचन क्रिया मन्द बन जाती है। थोड़ा-सा परिश्रम लेनेमें श्वास भर जाता है। अनेकोंको शिरमें भारीपन होजाता है। कितनेकोको कफवृद्धि होती है। उसके लिये संगयसब भस्म, जहर-मोहरा पिष्टी, रससिंदूर और लवंगादि चूर्ण मिला मक्खन-मिश्रीके साथ देना हितकर है।

संगयसबको जलमें पीस, दूध-मिश्री मिलाकर भी पिलाया जाता है। अनेक मुसलमान संगयसबका तावीज बनाकर हृदयके रक्षणके लिये बालकोंके गलेमें पहिनाते है।

(३९) संगजराहत भस्म।

बनावट—गावजबाँके काथमें १४ समय बुझाये हुए गोदन्तीके समान उज्ज्वल संगजराहत को घीकुँवारके रसमें खरल कर टिकिया बना संपुट कर अग्नि देवे। इस रीतिसे घीकुँवारके रसके ३ पुट देनेसे भस्म मुलायम होजाती है।

मात्रा—४ से ८ रत्ती तक दिनमें दो समय देवे।

अनुपान—पूयमेहमें मक्खनके साथ सुबह २१ दिन तक। प्रदर में चावलके धोवनके साथ। अंतडीमें क्षत और शोथ होकर रक्त और पूय सहित अतिसार हुआ हो, तो गिलोयके सत्व और शहद या मट्ठे अथवा बकरीके दूधके साथ। उरःक्षत, जीर्णज्वर, रक्तपित्त और रक्तसह कफकासमें मलाई-मिश्री अथवा समान सोनागेरू मिलाकर अनार शर्बतके साथ। छुरी आदि लगनेसे होने वाले रक्तस्रावको बन्द करानेके लिये घावके ऊपर इस भस्मको दबा देनी चाहिये।

दूसरी विधि—सेलखड़ीके टुकड़े ४० तोलेको ऊपर-नीचे हाँडीमें २ सेर घीकुँवारके गूदके बीचमें रख संपुट कर गजपुट अग्नि देवे। स्वांग शीतल होने पर भस्मको निकालकर पीस लेवें।

दंतमंजनमें मिलानेके लिये घीकुँवारका गूदा रखनेकी जरूरत नहीं है। सेलखडी १-१ सेर अलग-अलग हाँडीमें भरकर गजपुट पर ४-६ हाँडी रख देनेसे दंतमंजनमें मिलाने योग्य मुलायम भस्म होजाती है। मुलायम न हुई हो, तो फिरसे गजपुट पर रखनी चाहिये।

मात्रा—४ से ८ रत्ती शहद वा मक्खन-मिश्रीके साथ।

उपयोग—यह भस्म पूयमेह (सुजाक), श्वेत प्रदर, रक्तप्रदर धातुदौर्बल्य, उरःक्षत, अतिसार, मुँहके छाले, दाह, रक्तपित्त आदिको दूर करती है। दन्तमंजनमें मिलानेसे दाँतको सफेद बनाती है और पूयको बन्द करती है। कर्णस्रावमें इस भस्मको कानमें डाल ऊपर नीवूका रस २-२ बूँद डालते रहनेसे थोड़े ही दिनोंमें आराम होजाता है।

(४०) संगयहूद (हजरुल्यहूद) भस्म।

बनावट—शुद्ध यहूदको धमासेकी लुगदीमें रखकर संपुट करे। २० तोले संगयहूदके लिये ८० तोले धमासेकी लुगदी लेवें। संपुट सूखने पर गजपुटमें फूँक देवे। स्वांग शीतल होने पर संपुटमेंसे यहूदको निकाल, मूलीके पत्तोंके रसमें १२ घण्टे घोट, छोटी-छोटी

टिकियाँ बाँध, सूर्यके तापमें सुखा लेवें । फिर सराव-सपुट कर गजपुट अग्नि देनेसे भस्म मुलायम बन जाती है।

मात्रा—२ से ४ रत्ती शर्वत बजूरी या शक्करसे जलके साथ १-१ घण्टे बाद २-३ बार दे ।

उपयोग—अश्मरी, शर्करा, मूत्रावरोध आदिको दूर करती है। मूत्राशयकी पथरीको तोड़कर मूत्रके साथ बाहर निकाल देती है। अश्मरी बहुत बड़ी हो, तो अधिक मात्रामें ८-१० दिन तक रोज सुबह देते रहनेसे विना आपरेशन, पथरी कट कर रोग शमन होजाता है ।

दूसरी विधि—कुलथीके क्काथमें ७ समय बुझाये हुए संगयहूद १० तोले और शोरा २० तोलेको मिला, मूलीके रस १ सेरके साथ खरल कर छोटी छोटी टिकियाँ बनावे। फिर सूर्यके तापमें सुखा सराव-सपुट कर गजपुट अग्नि देवे। स्वांग शीतल होने पर टिकियोंको निकाल पुनः १२ घण्टे तक मूलीके रसमें खरल कर गजपुट देनेसे भस्म मुलायम होजाती है ।

मात्रा—२ से ६ रत्ती शर्वत बजूरी वा शक्करके साथ ।

उपयोग—प्रथम विधिके अनुसार ।

अनेक हकीम संगयहूदको जलके साथ घिसकरके उपयोगमें लेते हैं। ऐसे ही पिष्टी बनाकर भी प्रयुक्त होती है ।

(४१) पीतल भस्म ।

बनावट—२० तोले शुद्ध पीतलके पतले पतरेके छोटे-छोटे टुकड़े करें। फिर मैनसिल और गन्धक २०-२० तोलेको नीबूके रसमें खरल कर टुकड़ो पर लेप कर सुखा लेवे । यदि पीतलका चूर्ण कर लिया हो, तो मैनसिल और गन्धक मिलाकर नीबूके रसमें खरल कर गोला बाँधें। फिर सूर्यके तापमें सुखा गोलेको या उन लेप किये हुए टुकड़ोंको सराव-संपुट कर गजपुट अग्नि देवे । स्वांग शीतल होने पर निकाल, पुनः उपरोक्त विधि अनुसार मैनसिल गन्धकके साथ मिला नीबूके रसमें खरल कर, गोला बाँध गजपुट अग्नि देवें। इस तरह ८ गजपुट देनेसे भस्म बन जाती है । पश्चात् १ पुट बड़े नीबूके रसका देनेसे भस्म निर्दोष और विशेष लाभदायक बनती है । (र० र० स०)

मात्रा—¼ से १ रत्ती शहद, मीठे अनारदानोके रस अथवा रोगानुसार-अनुपानके साथ दे ।

उपयोग—पीतल भस्म उष्णवीर्य और शीतल है। रूक्ष, लवण

रसवाली, तिक्त (कड़वी) और दीपन पाचन है। रक्तपित्त, श्वेतकुष्ठ, यकृत्‌के दोष, प्लीहावृद्धि, रक्तविकार, प्रमेह, अर्श, सग्रहणी, शूल, पाण्डु और कृमिरोगोंका नाश करती है। विशेषतः कफपित्त-जनित रोगोंमें यह उपयोगी है। इस भस्मका व्यवहार चिकित्सक-वर्ग बहुत कम करते हैं। इस भस्ममें ताम्र और जसद भस्मके मिश्रित गुण हैं। यह भस्म ताम्र समान उग्र या जसद समान शीतल भी नहीं है। जिन रोगियोंसे उदर रोगमें ताम्र भस्म सहन नहीं होती, एवं रसायनियोंकी विकृतिमें तथा शूल, संग्रहणी आदिमें जसद भस्म लाभ नहीं पहुँचा सकती, उन रोगियोंके लिये पीतल भस्म लाभदायक है।

(४२) कांस्य भस्म।

बनावट—शुद्ध काँसीके २० तोले चूर्णके साथ समान गन्धक और चौथा हिस्सा हरताल मिला, नींबूके रसमें खरल कर गोला बना, सूर्यके तापमें सुखा/मजबूत संपुट करके ५ सेर आरने कंडोंकी अग्नि देवें। स्वाग शीतल होने पर निकाल पुनः-पुनः उपरोक्त विधिसे ५-५ सेर आरने कंडोंकी अग्नि देवें। इस रीतिसे ५ पुट देनेके पश्चात् ३ गजपुट देनेसे उत्तम मुलायम भस्म तैयार होती है। (र० र० स०)

मात्रा—१ रत्ती दिनमें दो समय, शहद, गुलकन्द अथवा रोगानुसार अनुपानके साथ देवें।

उपयोग—काँसी भस्म लघु, तिक्त (कड़वी), उष्ण, लेखन, दृष्टि शुद्ध करनेवाली, दीपन हितकर और विशेषतः वातपित्तजनित रोगोंकी नाशक है। कृमि, कुष्ठ और रक्त-विकार आदि रोगोंको दमन करती है। कांस्य भस्मसे त्वचा मुलायम बनती है। बहुमूत्र, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र आदि मूत्र रोगोंमें लाभदायक है। नेत्रके लिये हितकर है।

इस भस्ममें ताम्र और वंगके गुण सम्मिलित है। यह नेत्रोंके लिये अति हितकर है। रक्तस्रावयुक्त रोग—रक्तपित्त, अर्श, रक्तातिसार रक्तवमन, कफमें रक्त आना, मूत्रमें रक्त जाना आदि पर प्रयुक्त होती है। आमका शोषण करती है। आँतमें संचित सेन्द्रिय विष और कीटाणुओंको नष्ट करती है। अन्तर-विद्रधिके पूयको सुखाती है, तथा पक्वाशय, मूत्राशय आदि की श्लैष्मिक कलाको मुलायम करती है।

सूचना—कांस्य भस्म प्रातः लेनेके ३ घण्टे बाद भोजन करें। सायंकाल को भी ३ घण्टेका अन्तर रखें। कांस्य भस्मके सेवन करने पर ३ घण्टे तक घी वाला पदार्थ न खावें। रोगके कारण दूध अपथ्य न हो, तो अधिक मात्रामें सेवन करें। नीबू और तिल तैलका सेवन रोगमें अपथ्य न हो, तो कर सकते हैं।

(४३) वर्तलोह (जर्मन-सिल्वर) की भस्म ।

बनावट—शुद्ध जर्मन-सिल्वरको कांस्य भस्ममें लिखी विधिसे गन्धक और हरताल मिला-मिलाकर नीबूके रस या अर्कदुग्धके साथ खरल कर ५ गजपुट देनेसे भस्म बन जाती है । (र० र० स०)

मात्रा—१ से २ रत्ती शहद, शहद-पीपल, घृत, गिलोय-सत्व या रोगानुसार अनुपानके साथ देवें ।

उपयोग—काँसी, ताँबा, पीतल, कलई और शीशा, इन ५ धातुओंके मिश्रणसे जर्मन-सिल्वर बनती है, जिससे इस भस्ममें पाँचोंके मिश्रित गुण और सयोगजन्य गुण रहते हैं । इस भस्मको शास्त्रकारोंने शीतल, अम्ल, चरपरी, रुक्ष, कफपित्तनाशक, रुचिकर, त्वचाके रोगोंको नाश करनेवाली, कृमिघ्न, नेत्रोंके लिये हितकारक तथा योगवाही माना है । अनुपान-भेदसे अनेक रोगोंको शमन कर सकती है । फिर भी इस भस्मका उपयोग बहुत कम अंशमें होता है ।

सूचना—इस भस्मके सेवनकालमें खट्टे पदार्थ नहीं खाने चाहिये ।

(४४) तुत्थ भस्म ।

बनावट—नीलेथोथेकी ३-४ तोलेकी १ डली और २० तोले रीठा लें । रीठोंके ऊपरके छिलकेका सूक्ष्म चूर्ण करें । फिर समान नाप वाले दो सरावों मेंसे एकमें आधा चूर्ण नीचे, आधा ऊपर रख बीचमें नीलाथोथा रखें । पश्चात् दूसरा सराव ऊपर ढक कर कपड़मिट्टी करें । सराव-संपुटमें खाली जगह न रहनी चाहिये । संपुट सूखने पर १॥ सेर गोवरीकी आँच देनेसे भस्म होजाती है । (श्री० प० रामनाथजी त्रिवेदी)

मात्रा—३ से ६ रत्ती रोटी अथवा बाटीके गर्भमें रखकर निगल जायँ, ऊपरसे १० तोले घी पीवें । लगभग दो घण्टे पीछे एक दस्त होने पर पुनः ५ तोले घी पीवें । दूसरी बार दस्त होने पर फिर ५ तोले घी पीवें । इस रीतिसे बार-बार ५-५ तोले घी पीते रहें । जब अच्छा विरेचन लगकर दस्तमें केवल घी निकले, तब चावल-मूँगकी खिचड़ी खायँ ।

घी किसी-किसीको १०-१२ दफे पिलाना पड़ता है । जल न पिलावें । खिचड़ीके सिवाय दूसरी चीज न खिलावें । दूसरे दिन भी केवल खिचडी खिलावें । फिर प्रकृतिके अनुकूल भोजन करें ।

उपयोग—उपदंशका रोग एक ही दिनमें चला जाता है । अशुद्ध रसकपूर वाली औषधि लेकर जिसके शरीरमें नाना प्रकारके उपद्रव उत्पन्न होगये हों, उसके लिये यह औषधि लाभदायक है ।

उपदंश रोगमें मांस तक दूषित होगये हो, पित्तप्रकोप विशेष परिमाणमें हो, ऐसे समय पर तुत्थ भस्म अति उपयोगी है। एवं विष-विकार, दूषी विषप्रकोप, हृदयदाह, हृदयशूल, कुष्ठ, चित्रकुष्ठ, अम्लपित्त, मलावरोध और अर्श आदि रोगोंको दूर करती है। वमन और विरेचन करा शरीरको शुद्ध करती है।

सर्पविष पर नेत्रमें अंजन करनेसे वेहोशी और निद्रा आने नहीं देती। जल-मिश्रित करके सुँघानेसे मस्तकमें गया हुआ जहर नाकमेंसे टपक-टपक कर दूर होजाता है, खिलानेसे वमन विरेचन होकर दूर होता है, और दंशस्थानमें नौसादरका चूर्ण डालते रहे, जिससे जहर दूषित रक्तके साथ वाहर निकलता रहे। दंशस्थानके ऊपरकी ओर बन्धन बँधा हो, वहाँ तक नौसादर मिले जलमें कपड़ा भिगो-भिगोकर बार-बार पोंछते रहे, जिससे जहर वाला रक्त साफ होता रहे।

कितनेक चिकित्सक तुत्थ भस्मके साथ और ओषधियाँ मिलाकर उपदंशकुठार वटी बना लेते है, जो बहुत अच्छा लाभ पहुँचाती है। श्री० वैद्यराज श्रीरामसिहजी चौहान (शेगाँव) नीलेथोथेको आमके अचारके साथ खरल कर टिकिया बाँधते हैं। फिर लघु गजपुट देकर भस्म बना लेते हैं, जो लाल-काली भस्म बनती है। फिर वह भस्म, कत्था और छोटी हरड़ ५-५ तोले तथा समुद्रफेन २॥ तोले मिला ६० नीबूके रसके साथ खरल कर २-२ रत्तीकी गोलियाँ बनाते हैं। इन गोलियोंमेंसे एक-एक या दो-दो, रोग और रोगी की शक्ति अनुसार प्रातःकाल १ समय अथवा प्रातःसायं दिनमें दो समय अचारके आधे नीबूके साथ देते है। ऊपरसे २० तोले दही पिलाते है। फिर ५-७ उड़द के वडे तैलमें तले हुए खिलाते है। इस तरह उपयोग करने पर विविध उपद्रवो सह असाध्य उपदंश रोग नष्ट होजाता है। नया उपदंश, जीर्ण उपदंश, कोथसह उपदंश जिसमें मूत्रेन्द्रियका मांस गल गया हो, उपदंशजनित कुष्ठ, विद्रधि, नाड़ीव्रण, मस्से आदि उपद्रव, ये सब इन गोलियोंके सेवनसे नष्ट होजाते है। नया विकार ५–७ दिनमें दूर होजाता है, तथा जीर्ण वढ़े हुए विकारके लिये १४ दिन ओषधि देनी पड़ती है।

यदि कच्चा रसकपूर या हिंगुलका धूम्रपान करने या अपथ्य सेवन करने पर रसायन फूट निकला हो या भयंकर दाह होता हो, तो उन रसायन सेवियोको पहले जुलाब देकर उदरशोधन करे। फिर एक दिन रोटी या भातके साथ गोजिह्वा (जगली गावजवांन) का शाक खिलावें। तत्पश्चात् इन गोलियोका सेवन करानेसे रसायनकालीन

विष और उपदंशज विकृति, दोनों दूर होते हैं। वैद्यराज श्रीरामसिंहजी ने इस ओषधिका हजारों रोगियों पर उपयोग किया है, किसीको हानि नहीं पहुँची। यह अति निरापद और उत्तम ओषधि है।

सूचना—इन गोलियोंके सेवन करने पर १ मास तक दूध नहीं लेना चाहिये। शक्कर, गुड़, मास और मैथुनका दो मास तक त्याग करना चाहिये, तथा आम और चनेके पदार्थोंको एक वर्ष तक छोड़ देना चाहिये।

यदि किसीने इस ओषध-सेवन-कालमें आहार-विहारके नियमोंको भंग किया तो सांधो-सांधोमें दर्द होजाता है, एवं कितनेककी सन्धियों पर शोथ भी होजाता है। यह उपद्रव सोंठ और नमकके सेवनसे ४-६ दिनमें शान्त होजाता है।

दूसरी विधि—शुद्ध नीलाथोथा, शुद्ध गन्धक और सोहागेका फूला, तीनों २-२ तोले मिला, कटहरके पके फलके रसमें १२ घण्टे खरल कर टिकिया बनावे। सूर्यके तापमें सुखा सराव-संपुट कर कुक्कुट पुट देनेसे भस्म हो जाती है। (र० र० स०)

मात्रा—४ से ८ रत्ती दही या जीरा-मिश्री या गुलकन्दके साथ अथवा रोगानुसार अनुपानके साथ देवें। वमन-विरेचनके लिये १ माशा निवाये जलके साथ देनी चाहिये।

उपयोग—यह भस्म सब प्रकारके दोष, विषविकार, हृद्रोग, शूल, अर्श, कुष्ठ, अम्लपित्त, मलकी गाँठ बँध जाना, इत्यादि को दूर करती है, वमन और विरेचन कराती है, तथा चित्री (सफेद कुष्ठ) और दूषी विषको नष्ट करती है।

सूचना—नीलाथोथा सहन न होनेसे कुछ विकार होजाय, तो ३ दिन नीबूका रस या चावलकी खीलों (लाजा) का क्वाथ लेवे।

(४५) हरताल गोदन्ती (मिश्रित) भस्म।

बनावट—५ तोले उत्तम वरकी हरतालके एक टुकड़ेको पीले फूलवाली हुलहुल (कागलाका खेत) के १ सेर स्वरसमें डालकर एक मिट्टीकी हाँडीमें भरें। हाँडीको छोटे चूल्हे पर चढ़ाकर बहुत मन्द आँच १२ घण्टे तक देवें। कदाच बीचमें रस समाप्त होजाय, तो और डालें। पश्चात् एक सरावमें गोदन्ती भस्म २५ तोलेके बीच हरतालको रख ऊपर दूसरा सराव ढककर, मजबूत कपड़मिट्टी करें। उसे सूर्यके तापमें सुखाकर ५ सेर आरने कंडोंकी आँच दें। स्वांग शीतल होने पर निकाल घीकुँवारके रसमें १२ घण्टे खरल कर गोला बाँध, सुखा,

संपुट कर ५ सेर कंडोकी अग्नि दे । इस रीतिसे ३ वार गजपुट देनेसे भस्म तैयार होजाती है । टिकिया कठोर प्रतीत होती है, परन्तु पीसनेसे भस्म मुलायम होजाती है । (श्री० प० नन्हे मिश्र)

मात्रा—½ से ४ रत्ती तक दिनमें २ वार देवे ।

अनुपान—सन्निपातमें अदरखके रस और शहदमें मिलाकर चटावे । एक ही वार देना हो, तो ४ से ८ रत्ती तक देवे । अधिक समय देनेके लिये २-२ रत्ती २-२ घण्टे पर देते रहे । वालकोकी काली खाँसी में दंडाथूहरके पत्तोको गरम कर निकाले हुए रसके साथ आधी-आधी रत्ती दिनमें २ समय देते रहनेसे ३-४ दिनमें खाँसी शान्त होजाती है । विषम ज्वरमें तुलसी, सहदेई वा द्रोणपुष्पीके रसके साथ देवे । इस तरह अन्य रोगोके लिये समयानुकूल अनुपानकी योजना करे ।

उपयोग—यह भस्म नूतन ज्वर, शीतज्वर (Malaria), फुफ्फुस सन्निपात (Pneumonia), प्रलापक सन्निपात (Typhus), मोतीझरा (Typhoid Fever) उलट-उलटकर आने वाला ज्वर (Relapsing Fever), कुष्ट, रक्तविकार, विस्फोटक, उपदंश, वातरक्त, श्वास, कास, वालकोकी काली खाँसी आदि रोगोको दूर करती है । सब प्रकारके सन्निपातमें तुरन्त अपना प्रभाव दिखाती है । हरताल की उग्रताका गोदन्तीके संयोगसे शमन होजानेसे इस भस्मका उपयोग निर्भयतापूर्वक होता है ।

(४६) शम्बुक घोंघा भस्म ।

बनावट—शम्बुक (नदीमें उत्पन्न होने वाले छोटे छोटे शंख) का शोधन (शंखशोधनमें लिखी विधिसे) करे । फिर कूट सूक्ष्म चूर्ण कर पित्तपापड़ाके क्वाथमें ३ दिन खरल कर टिकियाँ वाँध, सूर्यके ताप में सुखावे । सूखने पर सराव-सम्पुट कर गजपुट अग्नि देनेसे सफेद रङ्गकी मुलायम भस्म वन जाती है । इस तरह नदीमे उत्पन्न छोटी-छोटी सीपोकी भस्म भी शम्बुक भस्मके समान की जाती है ।

मात्रा—१ से ६ रत्ती दिनमे २ समय दे ।

अनुपान—१. परिणामशूल पर—निवाये जलके साथ ।
२. विषम ज्वरमे—तुलसीके रसके साथ ।
३. संग्रहणी और रक्तातिसारमे—वेलके मुरब्बेके साथ ।
४. मन्दाग्नि पर—घृत या शहदके साथ ।
५ अजीर्णमे—नीबूके रसके साथ ।
६ गुल्म पर—जवाखार या अपामार्ग क्षारके साथ ।

उपयोग—यह भस्म कफज्वर, ठण्डी सहित विषमज्वर (मलेरिया), अतिसार, रक्तातिसार, संग्रहणी, कफपित्तात्मक परिणामशूल, मन्दाग्नि, शीतपित्त, विस्फोटक आदिको दूर करती है। अंजन करनेसे नेत्रशूल और फूलेका नाश होता है। यह भस्म शीतल, नेत्रपीड़ानाशक, तीक्ष्ण, ग्राही, दीपन और पाचन है। फोडे पर लगानेमें भी उपयोगी है। विशेष गुण शंखभस्मके समान किन्तु न्यून हैं। इसको १ माशा सैंधा नमक मिला ६ माशे शहदके साथ लेनेसे दुःसह संग्रहणी नष्ट होती है। मद्यपान, मैथुन, व्यायाम, ईर्ष्या भारी भोजन तथा मलमूत्र आदि वेगोंका धारण, इन सबका त्याग करना चाहिये, ऐसा प्राचीन ग्रन्थकारोंने लिखा है।

(४७) कुक्कुटाण्डत्वक् भस्म ।

भस्म विधि—५ तोले अण्डेके शुद्ध छिलकोंको कूट चूर्ण कर एक सरावमें डाल, भीग जाय, इतना चाँगेरीका रस मिला देवें। पश्चात् दूसरा सराव ढक, सन्धिलेप कर ५ सेर गोबरीकी अग्निमें फूँक दे। स्वांग शीतल होने पर संपुटको खोलकर मुलायम श्वेतभस्म निकाल लेवे। अग्नि कम लगने पर रंग श्याम होजाता है। ऐसा होने पर पुनः चाँगेरीके रसमें खरल कर टिकिया बना, अग्निमें फूँक देनेसे उत्तम श्वेत रंगकी मुलायम भस्म बन जाती है। इस भस्मके साथ १॥ तोले सिगरफ मिला घीकुँवारके रसमें १२ घण्टे खरल कर टिकिया बनावे। उसे सूर्यके तापमें सुखा संपुट कर गजपुट अग्नि देवे। इस तरह पुनः-पुनः १॥-१॥ तोले सिगरफ मिला, खरल कर आँच देनेसे ४ पुटमें अत्यन्त मुलायम और गुणदायक भस्म बन जाती है। (धन्वन्तरि)

मात्रा—१ से २ रत्ती मक्खन-मिश्री, मलाई, दूध, च्यवनप्राशावलेह, आँवलोंके रस या अनार रसके साथ।

उपयोग—यह भस्म उत्तम रसायन और वाजीकरण है। सब प्रकारके शुक्रविकारको दूर करती है। सब प्रकारके प्रमेहोंमें गुणदायक है। कफप्रकोप, वातविकार, शुक्रकी निर्बलता और पतलापन, स्वप्नदोष, हृदय और मस्तिष्ककी निर्बलता तथा नपुंसकताको दूर करती है।

स्त्रियोंके रक्तप्रदर, श्वेतप्रदर, बहुमूत्र और सोमरोगको नष्ट करती है। स्त्रियोंको प्रसवके पश्चात् कुछ दिनों तक सेवन करानेसे वे सुदृढ़, स्वरूपवान्, बलवान् और कुमारी सदृश बन जाती है।

इस भस्मका २१ दिन तक पथ्य-पालन (ब्रह्मचर्य) सह उपयोग

करनेसे निस्तेज और वृद्ध मनुष्य भी तेजस्वी तथा सबल बन जाता है। रक्ताणुओंकी वृद्धि होती है; पाचन-शक्ति प्रबल होजाती है; और मानसिक प्रसन्नता की प्राप्ति होती है। बहुधा यह भस्म सब प्रकृति वालो को और सब आयु वालोंको लाभ पहुचाती है।

(४८) शुभ्रा भस्म।

बनावट—१० तोले श्वेत फिटकरीको ३ घण्टे भेड़के मूत्रमें खरल कर टिकिया बना सूर्यके तापमें सुखा लेवें। फिर ६० तोले या अधिक जल रह सके, इतने बड़े मिट्टीके सरावमें रख संपुट कर गजपुट में फूँक दें। स्वाङ्ग शीतल होने पर भस्म मुलायम श्वेत वर्णकी बन जाती है। संपुट का पात्र छोटा होगा, तो फूट जायगा।

मात्रा—१ से ४ रत्ती शक्कर शहद, शरबत बनफशा या रोगानुसार अनुपानके साथ दिनमें २-३ बार देते रहना चाहिये।

उपयोग—यह भस्म पार्श्वशूल, न्युमोनियामें शूल, कटिशूल, जीर्ण काली खांसी, राजयक्ष्मामें वमन, रक्तवमन, कफके साथ रक्तका आना, वेगपूर्वक श्वासोंका चलना, अधिक खाँसीके हेतुसे पार्श्वपीड़ा होना, नुखाक, मासिक धर्ममें अधिक रक्त जाना, रक्त प्रदर, चित्र (कुष्ठ भेद), विसर्प, योनिशिथिलता आदि विकारोंको दूर करती है। आन्त्रिक ज्वर, शीशाग्निपजन्यशूल, जीर्ण अतिसार आदिमें हितकर है।

यह भस्म उत्तम प्रभावशाली है। इसके प्रधान गुण स्रोतसंकोचक और रक्तस्तम्भक है। यह रक्तवाहिनियोंकी परिधिको सकुचित करती है, और नाड़ियोंके भीतर रहे हुए दोष को बाहर निकालनेमें सहायता पहुंचाती है। बढ़े हुए श्वास और कासके वेगको सत्वर घटाती है। अनेक बार सेवन करनेके साथ ही आवेगका दमन होजाता है। न्युमोनियाकी द्वितीयावस्थामें फुफ्फुस कोष लसीकास्रावसे भर जाते हैं, फुफ्फुस पत्थर-सा बन जाता है, प्रारम्भमें कफ पतला निकलता है, फिर चिकने पीले रंगका निकलने लगता है, किसी-किसीको रक्त भी आता है और शूल भी चलता है, इन दोनों अवस्थाओंमें कफका संशोधन होकर अनेक लक्षण इस भस्मके सेवनसे शमन होजाते है।

अनेकोंको जीर्णकास रोगमें कफ चिकना पीला आता है, सरलता से बाहर नहीं निकलता, उनको यह भस्म अच्छा लाभ पहुँचाती है।

कतिपय रोगियोंको राजयक्ष्मा रोगमें खाँसीके प्रकोपसे दुर्दम वान्ति होती रहती है, उसे यह भस्म सत्वर बन्द कर देती है।

काली खाँसी चिरकारी दुःखदायी व्याधि है। इस विकारमें बालक अति निर्बल बन जाता है। भोजन करने पर तुरन्त खाँसी चलकर वमन होजाती है और बालक अति व्याकुल होजाता है। इस तरह बारबार खाँसीका वेग प्रबल होकर बडे मनुष्योंको भी वमन होती हो, तो उनको भी यह भस्म देनेसे वमन बन्द होजाता है और कीटाणुओं का नाश होकर थोडे ही दिनोंमें खाँसी की निवृत्ति होजाती है।

मधुरा रोगमें अन्त्रस्थ श्लैष्मिक कला शिथिल बन जाती है। उसमें क्षत होजाते हैं, कचित् दस्तमें रक्त भी आने लगता है। ऐसे समय पर यह भस्म १-१ रत्ती शक्करके साथ दिनमें ४ या अधिक समय देनेसे रक्तस्राव बन्द होजाता है, क्षत दूर होता है, श्लैष्मिक कला सबल होती है और अन्त्र-विकारका भी शोधन होजाता है।

नाग (शीशा) धातु-जन्य उदरशूल होने पर इस भस्मका उप-योग अफीम और कपूरसे साथ ३ ३ घण्टेके अन्तर पर किया जाता है। फिर रात्रिको या सुबह मृदुविरेचन देकर कोष्ठको शुद्ध कर लिया जाता है। नागविष-जन्यशूलमें और औषधियाँ भी दी जाती है, परन्तु यह शुभ्राभस्म महौषध मानी गई है।

चिरकारी अतिसार दिनों तक रहनेपर अन्त्र शिथिल होजाते हैं; तब दाड़िमावलेह, लघु गंगाधरचूर्ण या अन्य ग्राही अनुपानके साथ शुभ्रा देनेसे अन्त्रमार्ग संकुचित होकर अपना कार्य नियमित करने लगता है।

पूयमेहमें यह भस्म छोटी इलायची, शीतल मिर्च और मिश्रीके साथ देने एवं फिटकरीकी पिचकारी द्वारा मूत्रप्रसेक नलिका धोते रहने से ३-४ दिनमें ही तीव्र व्यथा शमन होजाती है। इस तरह नूतन तीव्र श्वेत प्रदररोगमें भी यह भस्म १ माशा जवाखार और घीके साथ मिला-कर दिनमें ३ बार देनेसे तीव्रता और दाह शमन होजाता है।

मासिक धर्ममें अधिक रक्तस्राव होने पर इस भस्मका दिनमें तीन बार मोलसरीकी छालके चूर्णके साथ प्रयोग करने और फिटकरी के जलकी गर्भाशयमें उत्तर बस्ति देनेसे सत्वर लाभ होजाता है।

सूचना—इस भस्मका अधिक मात्रामें अधिक दिनों तक उपयोग नहीं करना चाहिये। अतियोग होने पर आमाशय और अन्त्रकी श्लैष्मिक कलामें उग्रता और प्रदाहकी प्राप्ति होती है।

लाल फिटकरीकी भस्म—श्वेत फिटकरीके समान लाल फिटकरी की भस्म की जाती है। वह आन्त्रिक ज्वरमें हितकर है। इसके अतिरिक्त

लाल फिटकरी ७ तोलेमें १ तोला सिंगरफ मिला १ दिन घीकुंवारके रस में खरल कर टिकिया बाँधे। फिर दृढ़ सराव-संपुट कर २॥ सेर गोबरीमें फूँक कर भस्म तैयार करें। वह आन्त्रिक ज्वर, ज्वर पीछेकी निर्बलता, शारीरिक निर्बलता, कास, रक्तस्राव, प्रमेह और शुक्रकी निर्बलता आदि पर विशेष हितकारक है। सिंगरफ मिला रक्त स्फटिकाकी भस्मके उपयोगसे हमने अनेक बार लाभ उठाया है।

फिटकरीका फूला—यदि फिटकरी का फूला बनाकर उपयोग में लिया जाय, तो नेत्रपुष्प पर अंजन रूप से प्रयोजित होता है। नेत्रस्राव होने पर ४ रत्ती फूलों को २॥ तोले गुलाबजल में मिलाकर प्रातः-सायं नेत्र में २-२ बूँद डालते रहने से नेत्रस्राव बन्द होजाता है। एवं कर्ण-पाक में फूले के सूक्ष्म चूर्ण को प्रातः-सायं कान में डालने और सम्हाल-पूर्वक साफ करते रहने से थोडे ही दिनों में रोग निवृत्त होता है।

कच्ची फिटकरी—कच्ची फिटकरीकी मात्रा १ से २ रत्ती तक आवश्यकता पर १-१ घण्टे पर दी जाती है। कच्ची फिटकरीमें ग्राही, रक्तरोधक, वमनकारक और व्रण आदिका दाहक गुण अधिक है। शरीरके किसी स्थान पर लगानेसे उस स्थानको आकुंचित करती है। उस स्थानकी शिरा आदिकी परिधिका ह्रास कराती है। वह स्थान कठिन और पाण्डु वर्णका होजाता है, एवं उस स्थानसे रसस्राव आदि क्रिया बन्द होजाती है। मुख और कण्ठमें यह स्थानिक संकोचक क्रिया दर्शाती है। मुँहमें डालने पर स्वाद अतिशय कसैला लगता है, और कण्ठ-नलिका शुष्क होजाती है। खाने पर आमाशयमें रक्त-रस (Plsama) को संयत और श्लैष्मिक कलाका आकुंचन करती है। एवं आमाशय और अन्त्रके श्लैष्मिक स्रावका ह्रास कराती है। रसस्राव होता हो, तो उसका रोध होता है। परन्तु इस निग्रह क्रियाकी अपेक्षा स्थानिक सकोचन क्रिया अति प्रबल होती है। अन्त्रमेंसे फिटकरीका देहमें शोषण नही होता। फिर वमन कराने का प्रयत्न करती है।

यह नागपिपज शूलकी महौषध है। ५-५ रत्ती मात्रामें २-२ घण्टे पर ३-४ समय देनेसे नागविपज शूल निवृत्त होता है। इस तरह जीर्ण प्रवाहिका और जीर्ण अतिसारमें २ से ५ रत्ती तक बीजाबोलके चूर्णमें मिलाकर दिनमें ३ समय दीजाती है। अर्श रक्तस्रावको बन्द करनेके लिये इसके जलकी पिचकारी देते है। कण्ठरोहिणीमें प्रतिश्याय के शमनार्थ फिटकरीका स्थानिक प्रयोग होता है। चूर्ण लगाया जाता है, या कुल्ले कराये जाते है। तीव्र विकार हो, तो फिटकरीके चूर्णको

कण्ठमें फूँक देना चाहिये। चिरकारी विकारमें कुल्ले ही कराने चाहिये।

उपजिह्विका प्रदाह (Tonsilitis) और रक्तज्वरमें गलेके भीतर क्षत होने पर फिटकरीके चूर्णको शहदमें मिलाकर लगाते हैं।

पारद-विष-जनित मसूढ़ोंकी शिथिलता, मुखसे लार गिरना, क्षत और रक्तस्राव होने पर फिटकरीके जलके कुल्ले कराये जाते हैं।

जुकाम (चिरकारी प्रतिश्याय) में फिटकरीके फूलका नस्यरूप से प्रयोग करनेसे श्लेष्मस्राव बन्द होजाता है।

मूत्राशयमेंसे रक्तस्राव, गर्भाशयमेंसे रक्तस्राव, श्वेतप्रदर और पूयमेहमें फिटकरीसे धावन की पिचकारी लगानेसे रक्त, दूषित रस और पूयका स्राव कम होजाता है।

योनिकण्डू रोगमें फिटकरीके गाढ़ द्रवसे धोने पर खुजलीकी निवृत्ति होजाती है। योनिदाह होने पर फिटकरीको जलमें मिला पिचकारी लगाकर धोनेसे दाह शमन होता है।

योनि मेंसे कमल बाहर निकल आने पर १ तोला फिटकरी और ४ तोले माजूफलके चूर्णको मिला छोटी-छोटी पोटली बाँध योनिमें धारण करने पर कमलका निकलना बन्द होजाता है। पोटलीको लम्बे डोरेसे बाँधनी चाहिये, जिससे डोरा लटका रहे। नया रोग होने पर यह प्रयोग हितकर है। जीर्ण विकारमें औषधि-प्रयोगसे लाभ नहीं होता।

विविध चक्षुप्रदाहमें फिटकरी महोपकारक है। २ रत्ती कच्ची फिटकरी या ४ रत्ती फूलको २॥ तोले गुलाबजलमें मिलाकर प्रातः-सायं २-२ बूँद डालते रहनेसे नेत्रप्रदाह शमन होजाता है। बालकोंके पूययुक्त चक्षुप्रदाहमें फिटकरीके जलकी बूँद डाली जाती है। इस तरह फिटकरी नेत्ररोगमें बाहरके लेपके लिये भी प्रयोजित होती है। फिटकरी को कड़ाहीमें डाल अग्नि पर रक्खे, रस होने पर जम्बीरी नीबूका रस थोड़ा-थोड़ा डालते जायँ, जिससे काले रंगका कीचड़ बन जायगा। फिर निवाया रहने पर नेत्रके चारों ओर लेप कर देनेसे एवं इसकी पुल्टिस नेत्र पर बाँध देनेसे रक्तसंग्रहका जल्दी निवारण होकर विकार नष्ट होजाता है।

राजयक्ष्माकी दुर्दमन वमनमें भस्मके अभावमें फिटकरीका चूर्ण २ सेर ५ रत्ती मिश्रीमें मिलाकर दे देनेसे वमन बन्द होती है।

ब्युची रोगमें फिटकरी और अफीमको जलमें मिलाकर लेप करनेसे ब्युचीके कीटाणु नष्ट होते हैं, और रसस्राव बन्द होता है।

रक्तस्राव पर फिटकरीका चूर्ण डाल पट्टी बाँध देनेसे रक्तस्राव बन्द होजाता है और घाव भी नहीं पकता।

दंतवेष्ठज शोथ पर फिटकरीको निवाये जलमें मिलाकर कुल्ले करनेसे शोथकी निवृत्ति होती है। रक्तस्राव बन्द होता है, तथा दाँत और डाढ़ दृढ़ होते है।

गुदभ्रंशमें फिटकरीको निवाये जलमें मिलाकर आवदस्त लेनेसे गुदभ्रंश दूर होता है।

क्षौर कराने पर फिटकरीके गोले (जो घिसकर चिकना किया हो) को मुखमण्डल पर फिरा लेनेसे उस्तरेकी तेजी या कीटाणु आदिसे उत्पन्न विकृति नष्ट होजाती है। इस हेतुसे फुन्सियाँ या अन्य विकारकी उत्पत्ति नहीं होती।

विषप्रकोपमें फिटकरी ६ माशे जलमें मिलाकर पिला देनेसे वमन होकर विषकी निवृत्ति होजाती है।

वर्षाका जल या कभी प्रवासमें मलिन जल मिलने पर जलमें किञ्चित् फिटकरी डाल देनेसे दोष तलेमें बैठ जाता है, या ऊपर आ जाता है, छान लेनेसे जल स्वच्छ होजाता है।

फिटकरीके चूर्णमें अर्क दुग्ध मिला ३ घण्टे खरल कर सुखा बारीक चूर्ण बना लेवे। फिर दन्तमंजन रूपसे उपयोग करनेसे दाँत और दाढ़का दर्द शमन होता है और मसूढ़े दृढ होते है।

सूचना—फिटकरीकी आभ्यन्तरिक अधिक मात्रा देने पर आभ्यन्तरिक और स्थानिक अधिक मात्रासे स्थानिक उग्रता उत्पन्न होती है। स्थानिक लेपको अधिक समय तक रक्खा जाय, तो प्रदाहकी उत्पत्ति होती है। यह प्रदाह बाह्य त्वचा पर नहीं होता, श्लैष्मिक कला या क्षत स्थान पर होता है।

नेत्रकी श्लैष्मिक कलाके तीव्र प्रदाहमें कच्ची फिटकरीका उपयोग नहो करना चाहिये।

४ माशे या इससे अधिक मात्रामें सेवन करने पर उत्क्लेश, वमन, कभी आमाशयमें वेदना और विरेचनकी उत्पत्ति होती है।

कुछ दिनों तक प्रतिदिन नियमपूर्वक सेवन करते रहनेमें आमाशयमें भारीपन और वेदना प्रतीत होती है, तथा आमाशयका रक्तस्राव कम होजानेसे जठराग्नि मन्द होजाती है।

कूपीपक्व रसायन

रसायनमें रस पारदका नाम है, और अयन मार्गको कहते हैं। इसलिये जिन-जिन ओषधियोंमें पारद है वे सब रसायन कहलाती हैं। एवं जिस ओषधि से जरा और व्याधिका नाश होकर बल, ओज, मेधा आदिकी वृद्धि होकर शरीर सुदृढ़ बने और आयु स्थिर हो, उसे रसायन कहते हैं। ये सब गुण पारदमें अवस्थित होनेसे पारद-मिश्रित ओषधियोंको रसायन कहा है। पारद अतिशय चंचल और अक्षय वीर्यवान है। पारद अति सूक्ष्म परमाणु रूप बनकर शरीरके सब स्थानोंमें अति शीघ्र पहुँचकर इच्छित लाभकी प्राप्ति कराता है। पारदयुक्त ओषधियोंकी मात्रा स्वल्प है, अरुचि भी नहीं करता और असाध्य रोगोंको भी सत्वर शमन करता है। इसलिये शास्त्रकारोंने रसायनको अन्य ओषधियोंसे श्रेष्ठ माना है।

अल्पमात्रोपयोगित्वादरुचेरप्रसङ्गतः।
क्षिप्रमारोग्यदायित्वादौषधिभ्योऽधिको रसः॥ (र० र० स०)

भूतकालमें महर्षियोंने अति परिश्रम करके पारदको अनेक प्रकारसे उपयुक्त किया है। उन्होंने अनेक प्रकारकी शरीर-स्वास्थ्यकर ओषधियोंकी योजना, सुवर्ण बनानेकी विधि, आयुष्य वृद्धि और नाना प्रकारकी सिद्धि प्राप्त करनेकी रीति निर्माण की है। उनमेंसे साधारण औषधि बनानेकी कुछ विधियाँ वर्त्तमान सामयिक समाजमें प्रचलित हैं, और अन्य दिव्य क्रियायें भारत-सन्तानोंके दुर्भाग्यवश प्राय लुप्त होगई हैं। प्राचीन आचार्योंने पारदके अनेक प्रकारके दिव्य गुणोंका अनुभव करके संस्कृत भाषामें गुणोंके अनुसार अनेक नाम रक्खे हैं। उन नामोंका उल्लेख कोष ग्रन्थोंमें मिलता है, किन्तु उनके अलौकिक गुणोंको प्राप्त करनेकी विधिका लोप होगया है।

पारदको चार प्रकार का कहा है—लाल, पीला, काला और सफेद। लाल पारा निर्बलता दूर करके शरीरको पुष्ट बनाता है। पीला सुवर्ण आदि धातुओंमें उपयोगी है। काला सिद्धिको प्राप्ति कराता है, और सफेद सब रोगोंका नाश करता है। इन चार जातिके पारदमेंसे सम्प्रति मात्र श्वेत पारद ही मिलता है। अतः इस श्वेत जातिको ही उपयोगमें लेते हैं।

मूर्च्छित (कज्जली किया हुआ) पारा सब प्रकारके रोगोंका नाश करता है। जारित (पूर्णचन्द्रोदय रस आदि) वृद्धावस्था को दूर कर शरीर को तेजस्वी बनाता है। बद्ध पारा (पारदकी गोली) आकाशगमन आदि की सिद्धि देता है। मारा हुआ पारद (पारद भस्म) अजर अमर बनाता है; और कामित तथा

रञ्जित (साधन भक्तिसे प्रसन्न किया हुआ) पारद परामक्ति और मुक्ति की प्राप्ति कराता है। मनुष्य और पशुओंके असाध्य रोग, जो दूसरी ओषधिसे दूर न हो सके, वे भी सब पारदसे नष्ट होते हैं। इसी हेतुसे पारदको अन्य ओषधियोंसे श्रेष्ठ कहा है।

साध्येषु भेषजं सर्वमीरितं तत्ववेदिभिः।
असाध्येष्वपि दातव्यो रसोऽतः श्रेष्ठ उच्यते॥

भूमिमेंसे निकले हुए पारदमें मल, विष, अग्नि, गिरिदोष और चपलता दोष स्वभावसिद्ध रहते हैं। कलई और शीशेके सम्बन्धसे दो प्रकार के संयोगजन्य आगन्तुक दोष भी मिले हुए हैं। इन ७ दोषोंमेंसे मलसे मूर्च्छा, विषसे मृत्यु, अग्निसे शरीरमें दाह (संताप), गिरिदोषसे जड़ता, चपलतासे वीर्यनाश, कलईके योगसे कुष्ठ, रक्तविकार और शीशेके सम्बन्धसे नपुंसकताकी प्राप्ति होती है। इसलिये पारदको शुद्ध करके उपयोगमें लेना चाहिये। साधारण रोग दूर करनेवाली ओषधिमें सिंगरफमेंसे निकाला हुआ पारद मिलाया जाता है। गन्धक पारदके दोषको खा जाता है। इसलिये सिंगरफसे निकले पारदको शुद्ध माना है। किन्तु रसायन या दिव्य गुणोंकी प्राप्तिकी चाह हो, असाध्य रोग दूर करना हो, तो पारदके आठ संस्कार कर बुभुक्षित करें। बुभुक्षित होनेमें वह सुवर्णको पाचन कर असाध्य रोग दूर करनेमें समर्थ होता है; एवं रसायन गुणकी प्राप्ति कराता है।

रसायने तु या शुद्धिः सा व्याधावपि कीर्तिता।
रसायनस्य या शुद्धिः सैव कष्टतरा मता॥

अष्ट संस्कार वाली शुद्धि जो रसायनके लिये कही है, वह कठिनतर है। वही सब व्याधियोंमें हितकारक है।

शुद्ध पारदके संयोगसे दो प्रकारके रसायन तैयार किये जाते हैं—(१) अग्निसंस्कार द्वारा. (२) अग्निसंस्काररहित, मात्र गंधक आदि ओषधियोंके साथ खरल करके। पहले प्रकारमें दो भेद हैं—कूपीपक्व और पर्पटी। इनमेंसे कूपीपक्व रसायनका इस प्रकरणमें विवेचन करेंगे। अग्निसंस्काररहित को खरलीय रसायन कहते हैं, उसका विवेचन पृथक् प्रकरणमें किया जायगा।

कूपीपक्व रसायन बनानेके लिये सिद्धभ्राष्ट्री (भट्टी), वालुकायन्त्र, अग्नि देना, डाट बन्द करना, बोतल तोड़ना इत्यादि कार्यके लिये निश्चित विधिका उपयोग होता है। यदि मनगढन्त रीतिसे कार्य किया जायगा, तो कूपीपक्व रसायन नहीं बन सकेगा। भट्टी जैसी वर्त्तमानमें प्रचलित है, वैसी भूतकालमें नहीं थी। पहले सामान्य चूल्हे पर कूपीपक्व रसायन बना लेते थे;

परन्तु उसमें लकडीका खर्च अधिक होता था। एवं कभी-कभी अकस्मात् बोतल फटकर कार्य करने वालेको चोट लग जाती थी, या पारदमिश्रित गंधकका जहरी धुआँ श्वासके साथ फुफ्फुसमें प्रवेश कर हानि पहुंचा देता था। इस कारण वर्त्तमानमें विद्वानोंने विशेष अनुकूल भट्टीका प्रबन्ध किया है। इसमें बोतल न फूटनेके लिये अनेक अनुकूल साधनोंकी योजना की है।

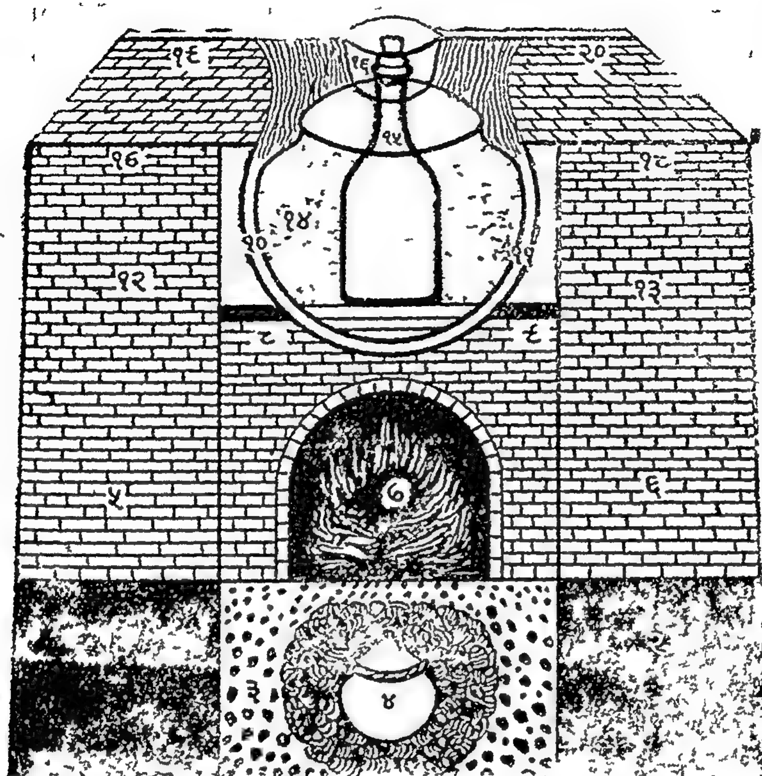
पारदमिश्रित अनेक औषधियाँ वालुकायन्त्र द्वारा काँचकी शीशीमें तैयार की जाती हैं, उनको कूपीपक्व रसायन कहते हैं। इन कूपीपक्व रसायनोंकी कृति अन्य सब प्रकारकी औषधि-कृतियोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ और शीघ्र फलप्रद है। कूपीपक्व रसायनोंमें पारद और गंधक मुख्य द्रव्य हैं। इनको तैयार करनेके लिये पारद, गंधक और अन्य औषधियाँ विशुद्ध मिलानी चाहिये। दूषित औषधियोंके उपयोगसे लाभके बदले हानि होनेकी संभावना है।

सुवर्णवर्गको छोड़कर शेष कूपीपक्व रसायन प्रायः वात और कफ प्रकृति वालोंको विशेष अनुकूल तथा पित्त प्रकृति वालोंको कम अनुकूल हैं। पित्त पित्त प्रकृति वालोंको, पित्तवर्द्धक ऋतुमें या पित्तप्रकोपमें देनेकी आवश्यकता हो, तो दूसरी शीतल औषधि मिश्रित करके दें, और थोड़े दिन देकर ४-६ रोज बन्द करें, फिर पुनः देवें।

सिद्धभाष्टी—कूपीपक्व रसायनके लिये भट्टी बाहरसे चौकोन और भीतरसे गोल बननी चाहिये। नीचे गोलाई कुछ ज्यादा और ऊपरमें कुछ कम रक्खें जिससे अग्निकी लपटें अच्छी तरहसे लगें। पहले २८ इञ्च चौकोन जमीनमें ८ इञ्च का गहरा गड्ढा खोदकर गोबर मिट्टीसे अच्छी तरह पोत लेवें। बीचमें गोल भाग रहे, इस तरह सम्हालकर दीवार बनावें। नीचे चोकोन २८ इञ्च और ऊपर १५ इञ्च रक्खें, इसलिये जमीन परसे दीवार जाने भीतरकी ओर कुछ बढती हुई भी बनानी पड़ेगी। जमीनके बाहर दीवार हो पर बराबर बीचमें एक मुँह लकड़ी डालनेके लिये ७ इंच चौड़ा और ८ इञ्च ऊँचा रखें। मुँहके ऊपर भी दीवार बनानी पड़ेगी। उसकी ऊँचाई गड्ढेमेंसे २४ इञ्च और जमीनसे १६ इञ्च रहेगी। मुटाई ६ इञ्च ऊपरके भागमें रहे ऐसी सावधानी रखकर बनावें। नीचे की मुटाई लगभग ८ इञ्च रहेगी, ऊपरके भागकी दीवार चारों ओर ६-६ इञ्च मोटी रहनेसे बीचमें १२ इञ्च गोलाकार जगह वालुकायन्त्र रखनेके लिये खाली रहेगी।

मुँह वाली दीवार छोड़कर शेष तीनों दीवारोंमें जमीनसे १० इञ्च ऊँचाई पर पैरके अँगूठे-जैसी मोटी ६-६ इञ्च लम्बी लोहेकी साटें रख देनी चाहिये। इन साटोंका ३-३ इञ्च जितना भाग भट्टीके भीतर रहेगी और ६-६ इञ्च दीवारमें दब जायगा। जो ३-३ साटें भट्टीके भीतर दीखती हैं; उन्हीं पर

वालुकायन्त्र रहेगा। साटोके ऊपर दीवार ६ इञ्च है, जिससे वालुकायन्त्र की थोड़ी किनारी भट्टीमे बाहर दीखती रहेगी।



१–२—जमीनके भीतर दीवार। नीवमे चौडाई ७॥ इञ्च। जमीन तक ऊँचाई ८ इञ्च।

[redacted]—जमीनके भीतर कोयला गिरने और भस्मका सपुट रखनेका हिस्सा। १२ इञ्च गोलाई।

४—भस्मका सपुट।

५–६—दीवार। जमीनके ऊपर चोडाई ७ इञ्च। लोहेकी सॉटो तक ऊँचाई १० इञ्च।

७—भट्टीका मुँह। चोडाई ७ इञ्च। ऊँचाई इंच।

८–९—लोहेके दण्डे (Iron Bars) दीवारमें ६ इञ्च। भट्टीमें २ इञ्च। तीसरा दण्डा पिछली दीवारमे होनेसे नहीं दीखता।

१०–११—वालुकायन्त्रके चारों ओर आध आध इञ्च खाली जगह। वह अग्नि की लपटें और धुआँ बाहर निकालनेके लिये रखी है।

इस भट्टीके भीतर और बाहर मिट्टीका (पलस्तर) कर देनेसे भट्टी कई वर्षों तक अच्छी रहती है। २४ औंस की काली बोतलके लिये ऊपर वाली भट्टीकी लम्बाई-चौड़ाई लिखी है। बड़ी बोतल अथवा विलायती आतशी शीशी (Flask) के लिये भट्टी बनानी हो, तो इसी विधिके अनुसार बड़ी बनावें।

जमीनमें जो ८ इञ्च गहरा गड्ढा रखा है; उसमें ताम्र अथवा अभ्रक का संपुट थोड़ी गोबरीके बीचमें रक्खा जाता है। गोबरी जल जानेके पीछे लकड़ीके कोयलोंसे संपुट पकता रहता है। ३ गजपुट जितना आंच एक रातमें लग जाती है। कदाचित् बीचके समयमें संपुट निकालना हो, तो दूसरी दीवारमें एक मुँह बना लेना चाहिये।

इस भट्टीमें ३ दिन आंच लगने पर भी तेज अधिक गरमी न हो जानेसे काम करने वालोंको विशेष त्रास नहीं होता। एक मासमें दो कार्य (भस्म और कूपीपक्व रसायन) हो जाते हैं। एवं अकस्मात् शीशी फूट जाय तो भी यन्त्र भट्टीके भीतर रहनेसे काम करने वालोंको हानि नहीं पहुंच सकती। इस भाष्ट्रीका उपयोग हमारी रसायनशालामें अनेक वर्षोंसे होता है।

सूचना—(१) भट्टी बनानेके लिये मकान ज्यादा खिड़की और दरवाजेवाला तथा ऊँचा होना चाहिये, जिससे धुआँ और अग्निकी उष्णतासे काम करनेवालोंको विशेष बाधा न पहुँचे। एवं अकस्मात् किसी समय शीशी फूट जाय, तो भी काम करनेवाले अपना रक्षण कर सकें।

(२) आवश्यकता पर शीशीको उठानेमें उपयोगी हो ऐसी एक मोटी सँडासी, एक चीमटा और एक लोहेकी शलाका तैयार रखनी चाहिये। लोहेकी शलाका छातेकी ताड़ीकी या छातेकी ताड़ीसे दुगनी मोटी १ हाथ लम्बी और ऊपरके भागमें लकड़ीका दस्ता लगा होना चाहिये, एवं शलाकाके नीचेके भागको थोड़ा तीखा बनवा लेना चाहिये।

१२–१३—लोहेकी सॉटोंके ऊपर बनी हुई दीवार। ऊँचाई ६ इञ्च। ऊपरके भागमें चौड़ाई ६ इञ्च।

१४—बालुकायन्त्र, जिसमें अभ्रकके पतरोंके ऊपर शीशी रक्खी है।

१५—शीशीके कण्ठका भाग, जो यन्त्रसे बाहर प्रतीत होता है।

१६—शीशीके ऊपर मिट्टीके घड़ेके नीचेका आधा हिस्सा पहनाया है। यह औषधि उफान आकर बाहर न निकलने और अग्निकी लपटोंसे कण्ठमें लगी हुई औषधि की रक्षाके लिये रखा है।

१७–१८—भट्टीके ऊपरकी दीवार। चौड़ाई २५ इञ्च।

१९–२०—पिछली दीवार, जो भाग आगेसे दीख सकता है ;

(३) मिट्टीकी एक खेलडी (घड़ेके नीचेका आधा भाग) पैंदेमें छेदवाली—जिस छेदमे शीशीका मुख बराबर आजाय—ऐसी वालुकायन्त्र पर रखनी चाहिये, जिससे कभी उफान आजाय, तो भी ओषधिका रक्षण हो जाय, अन्यथा रेतमे गिर कर ओषधि निकम्मी होजाती है। साथ ही खेलडी होनेसे बोतलके ऊपरके भागमे अग्निकी लपटसे नुकसान भी नहीं पहुँचता।

(४) भट्टी बिल्कुल खुले भागमें नही बनानी चाहिये, अन्यथा वर्षा ऋतुमे वर्षाका भय और गरमीके दिनोमे धूपका त्रास भोगना पडेगा। तथा खुले भागमे किसी-किसी समय तेज वायु लगनेमे अग्नि भी बराबर नही लगेगी।

(५) लोहेकी मोटे जो दीवारमे रखनेकी हैं, वे पतली होगी, तो वालुकायन्त्रके बोझ और अग्निकी लपटे लगनेसे मुड जायेंगी।

वालुकायन्त्र—मिट्टी अथवा लोहेकी हाडी भट्टीके भीतर आजाय, और चारों ओर एक-एक अगुल जगह खाली रहे, ऐसी लेनी चाहिये। १-१ अगुल जगह होनेसे अग्निकी लपटे चारो ओर समान लगती रहती हैं, और धुआँ निकलता रहता है। हाडी लगभग १२ इञ्च ऊँची और चौडाई शीशीको भीतर रखने पर चारो ओर लगभग २ इञ्च जगह खाली रहे, वैसी लेनी चाहिये। कितनेक मिट्टीके बरतन तेज आँचके समय गल जाते हैं, और लोहेके बरतनमें मन्दाग्निके समय भी आँच तेज लग जानेकी सम्भावना है। इसलिये समयानुकूल लोह-पात्र अथवा मिट्टीकी पक्की हाँडी लेवे। यदि लोहपात्र या मिट्टीकी कच्ची हाडी हो, तो उस पर दो-तीन कपडमिट्टी करले, और मिट्टीके बरतनके मुँह पर लोहेका तार बाँधे, जिससे फूटने का भय न रहे। लोहेके बरतनमे अथवा मिट्टीकी हाडीके पैंदेमे बराबर बीचमें एक पैसा आजाय उतना बड़ा छेद करालें और छेदके अन्दर ३ इञ्च गोल कटा हुआ अभ्रक अथवा केलु का पतला टुकडा रखकर चारों ओर थोडी मिट्टी (शीशी स्थिर रहने और रेतके रक्षणके लिये) लगादें। मिट्टी सूखने पर कपडमिट्टी की हुई आतशी शीशी अभ्रकके टुकडे पर सीधी रखकर, चारो ओर थोडी मिट्टी लगादे। पश्चात् यन्त्रमे शीशीके इर्दगिर्द रेत भरे। कितनेक चिकित्सक २ इञ्च चौड़ा छेद करते हैं। एव अभ्रकका पतरा भी नहीं रखते। उस विधिसे योजना करने पर रसायन जल्दी पकती है।

रेत नदीमेंसे मँगाकर बहुत मोटी और बहुत बारीक निकाल, मध्यम परिमाणकी उपयोगमें ले। समुद्रके किनारेकी खारी रेतको न लेवे। रेत भट्टीमे ३-४ समय काम देती है। किसी समय अकस्मात् वालुकायन्त्र टूट जाय, तो भी रेतके लिये दौड़ना न पड़े, इसलिये एक-दो पीपा अधिक भरकर तैयार रक्खे। यन्त्रमें शीशी रखनेके बाद पैंदेकी मिट्टी सूखने पर रेत शीशीके

गले तक भरे, शीशीके गलेसे ऊपरका भाग खाली रक्खे। रेत भरनेके समय शीशीके मुँह पर डाट लगा दें, ताकि शीशीमें रेत न गिरे। कज्जली भरनेके समय काचकी कीप (Funnel) या कागजके चोंगा को शीशी पर रख करके भरे, ताकि कज्जली रेतमे न गिरे।

आतशी शीशी—कूपीपक्व रसायन बनाने के लिये शीशी समतल वाली अथवा नीचेसे फूली हुई लेनी चाहिये। तलेमें खड्डेवाली शीशी न लें। विलायती शराबकी शीशी चल सकती है। विलायती पक्की आतशी शीशी (Flask) के फूटनेका डर बहुत कम रहता है। किन्तु अग्नि तेज लगाने पर वह मुड जाती है। यदि उसे लेना हो तो १ सेर जल रहे उतनी बटी लें। एक साथ में ज्यादा गन्धक मिलाकर कूपीपक्व रसायन बनाना हो, तो विलायती अथवा देशी बडी शीशीमेंसे अनुकूल रहे उसको उपयोगमें लेवे।

शीशीके ऊपरमें एक-एक बालिश्तके छोटे-छोटे कपडेके टुकडोंको मिट्टीमें भिगोकर कपडमिट्टी करे। ७ कपडमिट्टी करके शीशीको उपयोगमें लेवे। पतली आतशी शीशी हो, तो २ कपडमिट्टी ज्यादा करे। एक कपडमिट्टी सूखे, तब दूसरी करें। एक साथ ७ या १० कपडमिट्टी नहीं करनी चाहिये। कारण, क्वचित् पतली शीशी मिट्टीके बोझेसे टूट जाती है। एवं एक साथ की हुई कपडमिट्टी मजबूत भी नहीं होती। ७ कपडमिट्टी में लगभग आधेसे पौन इञ्च जितनी मुटाई शीशी पर होती है। बारबार ज्यादा मिट्टी नहीं लगानी चाहिये।

कपडमिट्टी करनेमें छनी हुई चिकनी मिट्टीके साथ थोडा गोबर और घोडेकी लीद मिला लेनेसे विशेष मजबूत होती है। अथवा भिगोकर छानी हुई मिट्टी ८ सेर, रेत २ सेर, राख १ सेर, नमक ऽ॥ सेर मिलाकर कीचड करे। फिर छोटे-छोटे (८-९ इञ्चके) कपडोंके टुकडोंको भिगोकर शीशी पर लपेटे। अथवा मुलतानी मिट्टीसे कपडमिट्टी करे। कितनेक चिकित्सक कपडेके स्थान पर रुईको मिट्टीमें मिलाकर एक ही कपडमिट्टी करते हैं। वह भी दृढ होती है।

सूचना—शीशीमें औषधि तीसरे हिस्सेसे आधे भागके भीतर रहे, उतनी भरें। शेष जगह खाली रक्खे। ज्यादा औषधि भरनेसे क्वचित् उफान आकर औषध बाहर निकल जाती है। शीशीमें कज्जलीयुक्त औषधि बिल्कुल सूखी डाले। गीली औषधिसे शीशी फूटनेका भय रहता है।

अग्नि देनेकी विधि—अग्नि देनेके लिये बबूलकी सूखी लकडी हाथके काँडे जैसी मोटी ले। पहले लकडी इकट्ठी तैयार करके रक्खे, जिससे रात्रिके समय यकायक लकडी लानेके लिये दौडना न पडे। तीन दिन अग्नि देनेके लिये लगभग ५ मन लकडी लगेगी। पहले दिन लगभग १ मन, दूसरे दिन १॥ मन, और तीसरे दिन २॥ मन, यह साधारण अनुमान है। यदि चूल्हा

ठीक नहीं होगा, तो लकड़ी ज्यादा जलेगी। एव अन्तमे तेज अग्नि दी जाती है, वह नियमसे कम लगेगी, तो ओषधि कच्ची रह जायगी, और अति तेज हो जायगी, तो शीशी गल जायगी, या ओषधि जलकर उड जायगी। इसलिये मर्यादानुसार अग्नि दे। इस बात को भी लक्ष्यमे रखे कि, विलायती पतली शीशीको अग्नि थोड़ी मन्द देनी पड़ती है, अग्नि तेज होने पर उसके गलनेका भय है, सादी काली शीशीको तेज अग्नि ज्यादा परिमाणमे देनी पड्ती है।

अग्नि प्रथम मन्द, फिर मध्यम और अन्तमे तेज दे। अग्नि देनेके दो-तीन घण्टेके बाद यन्त्र गरम होकर शीशीमेंसे गन्धकका धुआँ निकलना शुरू होता है। ६ घटे पीछे गन्धकरपिघल जाती है, तब अग्नि थोडी तेज करे। जो अग्नि ज्यादा तेज होजायगी, तो शीशीमे कज्जली उफान आकर बाहर निकल जायगी। कभी ऐसा होकर कज्जली बाहर निकलने लगे, तो लकडी नीचेसे खीच ले और तुरन्त लोहेकी शलाकाको शीशीमे चलावें जिससे उफान तुरन्त बैठ जाय। जो भूल होजायगी और १५-२० मिनट निकल जायँगी, तो ऊपर छप्परमे शीशी लगकर घर जला देगी, और काम करने वालोको भी बाधा पहुचेगी, अथवा कज्जली रेतमें गिरकर निकम्मी होजायगी।

लगभग १२ घण्टे पीछे जब धुआँ ज्यादा परिमाणमे जोरसे निकलता दीखे, तब लोहे की शलाकाको अग्निमें तपा, शीशीके मुँहमे डालकर परीक्षा करें। बराबर रस होजाने पर, मुँह पर गन्धक की बत्ती जलती रहेगी, अन्यथा बत्ती तुरन्त बुझ जायगी। बत्ती चालू रहे तो ताप और थोडा तेज करे। बत्ती जलनेकी शुरूआत होजानेके बाद लगभग १२ घटे तक बत्ती जलती रहती है। पहले बत्ती मुँह पर दीखती है, वह कुछ समय पीछे गलेके भीतर चली जाती है। जिस तरह औषधि पकती जाय और धुआँ कम होता जाय उस तरह अग्नि थोडी-थोडी तेज करनी चाहिये, जिससे समय पर ओषधि तैयार होजाय।

जब सब गन्धक जलकर बत्ती बन्द हो जाती है, और धुआ थोड़ा-थोड़ा निकलता हुआ देखनेमे आता है, तब लोहेकी शलाकाको तपाकर बार-बार आध-आध घण्टे पर शीशीमे डालकर गलेको साफ करते रहें। यदि ओषधिमे क्षार मिलाया हो, तो गन्धकमेंसे क्षार निकल कर बार बार गले मे लगता रहता है। कदाच इस क्षारमे मुँह बन्द हो जाय, तो शीशीके फट जाने या उछल जानेका भय रहता है। इसलिये सावधानीसे लोहेकी तप्त शलाकासे गलेमें लगे हुए क्षारको गिराते रहे। इस तरह बार-बार मुँहको साफ किया जायगा, तो ओषधिमें क्षारका मिश्रण कम होगा, और ओषधि भी जल्द पकेगी।

इस बातको भी स्मरणमें रखे कि, शलाकासे बार-बार तलस्थ ओषधि का चालन नहीं करना चाहिये। मात्र गलेको साफ करे। तप्त शलाकासे

तलस्थ औषधिका बार बार चालन न करनेसे औषधिके पाकमें थोड़ा अधिक समय लगता है, तथापि औषधि बननेमें जितना समय अधिक लगता है उतना ही गुण अधिक होता है।

औषधि पाकका निश्चय करनेके लिये तप्त शलाकाको चला बाहर निकाल कर तुरन्त सूँघे। *यदि गन्धककी गन्ध बिल्कुल न आती हो, तो* समझ ले कि, औषधि पाक हो गया। पाक तैयार होने लगे, तब बोतलके भीतर शलाकाको न चलावे। कारण; आसन्न पाकके समय बार-बार शलाकासे औषधि चालन करते रहनेसे तैयार हुई औषधिमेंसे पारदका अंश उड़ने लगता है।

सूचना—(१) यदि औषधिमें नौसादर या और कोई क्षार मिलाया हो, तो धुआँ निकलनेकी शुरूआतसेही शीशीके मुँहको साफ करते रहें। कारण; नीचे रहा हुआ क्षार धुआँ निकलनेके प्रारम्भसे ही ऊपर चढ़ने लगता है।

(२) यदि अग्नि कम लगेगी तो पेंदेमें कच्चा द्रव्य रह जायगा और ऊपर नलीमें लगी हुई औषधि भी खोलनेमें बड़ी कठिनता होगी।

(३) बार-बार बोतलके भीतर दृष्टि नहीं डालनी चाहिये, अन्यथा नेत्रज्योतिको हानि पहुंचती है।

डाट लगाने की विधि—सब गन्धक जलकर और धुआँ बन्द होकर जब औषध उपरसे लाल दीखती है, तब चूना और शहद मिला उसमें कपड़े का टुकड़ा भिगो ईंट या चाकके डाटके ऊपर लपेटकर शीशी पर लगादें। कदाचित् थोड़ा धुआ रह जानेके कारण किसी समय जोरसे डाट उड़ जाय, तो घबराना नहीं चाहिये। आध घण्टा बाद पुनः डाट लगा दें। डाट लगानेके बाद मुँह पर एक कपड़ेकी पट्टी चूना और शहदमें डुबोकर लगादे, जिससे सन्धि अच्छी तरहसे बन्द हो जाय। शीशी पर लगानेके पहले १।-१॥ इञ्च लम्बा डाट चाक अथवा मिट्टीको घिसकर पहलेसे तैयार कर ले। १ इञ्च डाट शीशीके भीतर जाय; शेष भाग बाहर रहे, वैसा डाट होना चाहिये।

परीक्षाके लिये शीशीके भीतर तप्त लोह शलाका डालनेसे औषधि पक गई हो तो एकदम लाल अग्निकी लपट उठती है। गन्धक रहने पर लपट में नीला रंग भासता है। यदि सोमल, हरताल या मैनसिल मिश्रित औषधि होगी, तो लाल बत्ती नहीं बनेगी, सफ़ेद बनेगी। इस तरह परीक्षा करके लाल या सफेद बत्ती दीखने पर डाट लगा दे। यदि डाट समय पर नहीं लगाया जायगा, तो चन्द्रोदय आदि औषधिमेंसे बहुत भाग उड़ जायगा।

कलकत्तेके अनेक बड़े-बड़े कविराज शीशी पर डाट नहीं लगाते; केवल आँच कम कर देते हैं। विशेष करके वे लोग पत्थरके कोयलोंकी अग्नि देते हैं; जिससे औषधि जल्दी (केवल २०-२२ घण्टेमें) तैयार होजाती है।

डाट न लगानेकी जो विधि है, उसमे ओषधि कुछ कम निकलती है। वे लोग लोहशलाकासे ओषधि-चालन नहीं करते, और पाक-कालमे ६ माशे शोरा डालते हैं, जिससे गलेमें सत्वर ओषधि लग, मुँह बन्द होकर ऊपरमे ओषधि पकती है, फिर ऊपरमे ओषधि शुष्क होनेमे वे लोग अग्नि बन्द कर देते हैं। इस तरह तैयार की हुई ओषधि न्यून गुणयुक्त होती है।

शीशीके मुँह पर डाट लगानेके समय नवीन वैद्योको चाहिये कि, धुआँ न दीखे तब ऐसा ही एक समय डाट लगा देवे। आधे घण्टे पीछे डाट निकालकर देखनेसे धुआँ रहा होगा, तो एक दम निकल जायगा। धुआँ नही होगा, तो डाटके मुँह पर थोडीसी पाग वाली ओषधि लग जायगी। ऐसा निश्चय कर तुरन्त डाट लगा देना चाहिये। मुख पर डाट लगानेके पीछे एकाध घण्टा अग्नि मन्द करे। पश्चात् धीरे-धीरे तेज करते जायँ। अन्तमे तेज अग्नि १२ से ३६ घण्टे तक देनेमे ओषधि तैयार होजाती है।

ओषधि निकालनेकी विधि—अग्नि बन्द करनेके दो दिन बाद यन्त्र स्वाग शीतल होने पर नीचे उतार कर शीशी निकाले। ऊपरकी कपडमिट्टी साफ कर शीशीको तोडे। तोडनेके लिये एक सुतलीका टुकडा मिट्टीके तेलमें भिगो, शीशीके पेट पर बाँधकर जलावे। जब अग्नि बुझने लगे, तब सुतलीकी जगह पर २–४ बूँद जल टपकावे, जिससे शीशीके दो टुकडे होजायँगे। छोटे छोटे टुकडे होकर ओषधिमे काच न मिल जाय, इस बातका सम्हाल रक्खे। यदि काचका टुकडा ओषधिके साथ खानेमें आजाय, तो अतड़ीमेंसे रक्तस्राव होने लगता है। शीशी तोडनेके समय साफ जमीन पर एक बडी थालीमें शीशीको रखकर तोडे। शीशीमेंसे धुआँ निकलकर, श्वासोच्छ्वासमे न चला जाय, यह भी सम्हाले, अन्यथा काम श्वास रोग होजाता है।

शीशीके मुखपर जो तैयार ओषधिकी नली लगती है, उसे सम्हालकर निकाले। यदि नली पर थोडा मैल वाला भाग हो, तो उसे चाकूसे खोलकर अलग रखें। उसे दूसरी बार जब उस प्रकारकी ओषधि तैयार करनी हो, तब कज्जलीमें मिलाले। जो नीचे पैंदेमे थोडी गन्धककी काली राख शेष रह जाती है वह निकम्मी है। वजनदार राख हो, तो उसमें पारदका अंश रहता है। अग्नि कम लगनेसे नीचे पैंदमें वजनदार नीली, काली भस्म या गठा शेष रह जाय, तो उसे दूसरे समय कज्जलीमे मिलाकर ओषधि बना लेनी चाहिये।

यदि सोना कज्जलीमे मिलाया हो, तो उसकी काली भस्म बनकर पैंदेमे रह जाती है। उसे ३–४ समय सुवर्ण भस्ममे कही विधिसे जलसे धोकर भस्म बनाले, या एसिडके योगसे शोधन कर शुद्ध सुवर्ण बनाले।

औषध-परीक्षा—जो कूपीपक्व रसायन बोतलमेंसे सरलतापूर्वक खुल

जाय, वह पक्का माना जाता है। जिस रसायनको खोलनेमें अधिक परिश्रम पड़े, एक साथ विशेषाशमें न खुले, अति कठिनतासे थोड़ा-थोड़ा खुले, वह अपक्व माना जाता है। यदि भली-भाँतिसे परिपक्व न हुआ हो, ऐसे रसायनका सेवन किया जायगा, तो मुँहमें थूकका प्रवाह बढ़ना, मसूढ़ेमें शोथ आना और दाँत हिलना आदि विकार उत्पन्न होजायँगे।

जो रसायन कच्चा रह गया हो, उसे दूसरी बार सम भाग गन्धक मिला आतिशी शीशीमें भर २४ घण्टे अग्नि देकर तैयार कर लेना चाहिये।

पारद-शोधन विधि—शास्त्रमें पारद-शोधनके १८ संस्कार कहे हैं। उनमें ८ संस्कार औषध-कार्यके हेतुसे कहे हैं। शेष संस्कार सुवर्ण आदि धातु अर्थ कहे हैं। अतः स्वेदन, मर्दन, मूर्च्छन, उत्थापन, पातन (अधःपातन, ऊर्ध्वपातन और तिर्यक्पातन), बोधन, नियमन और सन्दीपन इन आठ संस्कारोंका यहाँ वर्णन किया है।

(१) स्वेदन *विधि*—चित्रकमूल, सोंठ, मिर्च, पीपल, सैंधा नमक, राई, मूली और अकरकरा, सबको समभाग मिलाकर ४० तोले ले। फिर पारद ८० तोलेमें मिलाकर काजीके साथ ३ दिन खरल करके गोला बाँधे। पश्चात् केले या कमलके पत्तोंमें अच्छी रीतिसे लपेट ऊपर सूत बाँधकर, चौगुने मजबूत कपड़ेकी थैलीमें रखे और काजीसे एक इञ्च ऊपर रहे, उस तरह लटकावे। काजी पारदको न लगे, केवल बाष्प लगती रहे, उस तरह दोलायन्त्र विधिसे तीन अहोरात्र स्वेदन करे। बार-बार काजी डालते जायँ। लगभग १ मन काजी लगेगी। इसलिये पहलेसे काजी आवश्यकतानुसार तैयार करा लेनी चाहिये। फिर पारदको निकाल डमरूयन्त्रमें डालकर ५-७ तोले उड़ाले। शेष पारद हाँडी शीतल होने पर स्वयमेव काष्ठादि औषधियोंकी राखसे अलग हो जायगा। कदाचित् राखमें कुछ अंश शेष रह जाय, तो डमरूयन्त्र द्वारा पुनः उड़ाले। इस तरह पारदको स्वेदित कर लेने पर प्रथम संस्कार पूर्ण होता है।

(२) मर्दन *विधि*—लाल ईंटका चूर्ण, हल्दी, रसोईघरका धुँआ, कंबल या ऊनकी काली राख और कड़वी तूम्बीके बीज सबको पारदसे १६-१६ वाँ हिस्सा ले, पारदके साथ मिला, नीबूका रस डाल-डालकर ३ दिन तक खरल करे। पश्चात् डमरूयन्त्र द्वारा उड़ा लेनेसे पारद शीशेके दोषसे मुक्त होजाता है।

पश्चात् उस पारदमें इन्द्रायनके मूलका चूर्ण और अकोलके मूलका चूर्ण १६वाँ-१६वाँ हिस्सा मिला काजीके साथ १ दिन खरल कर डमरूयन्त्र द्वारा उड़ा लेनेसे पारद वङ्गदोषसे मुक्त होजाता है।

(३) मूर्च्छन *विधि*—घीकुँवारके रस, त्रिफलाके क्वाथ और चित्रकमूलके क्वाथमें ७-७ दिन तक अनुक्रमसे मर्दन करे। घीकुँवारसे मलका नाश,

त्रिफलासे दाहनाश और चित्रकमूलसे विषदोष दूर होता है। इस रीतिसे २१ दिन तक खरल करनेसे पारा मूर्च्छित होता है।

(४) *उत्थापन विधि*—मूर्च्छित पारदको १२ घण्टे नीबूके रसके साथ सूर्यके तापमें खरल करें। फिर डमरूयन्त्र द्वारा पारदको उड़ा लेवें।

(५) *पातन संस्कार*—ऊर्ध्व, अधः और तिर्यक् भेदसे त्रिविध है।

ऊर्ध्वपातन विधि—पारदमें ¼ ताम्रेका चूर्ण मिला लोहेके खरलमें नीबूके रसके साथ ६ घण्टे खरल कर गोला बनावें। फिर डमरूयन्त्र द्वारा उड़ाले।

अधःपातन विधि—हरड़, बहेड़े, आंवले, चित्रकमूल, नमक, राई और सुहिजने की छाल, सबको सम भाग मिलाकर पारदसे आधा लें। फिर इन ओषधियों और पारदको घीकुँवारके रसके साथ मिलाकर खरल करें। जब पारदका अणु देखनेमें न आवे, तब मिट्टीके घड़ेमें लेप कर डमरूयन्त्र बनालें। लेप वाले घड़ेको ऊपर रखें। नीचेका घड़ा जमीनमें दबा दें। ऊपरके घड़ेका मात्र चतुर्थांश भाग ही जमीनसे ऊपर रक्खें। नीचेका घड़ा जलमें डूबा रहे और ठण्डा जल बार-बार बरतनके चारों ओर जासके, इसलिये एक बांसकी नली दो हाथ लम्बी जमीनमें दबावें। जिसका १ मुँह नीचेके घड़ेके साथ लगा रहे, और दूसरा जमीनके ऊपर घड़ेसे १–१॥ हाथ दूर रहे। इस नलीको जलसे भरी रखें। नली खाली होती जाय, वैसे-वैसे जल डालते जायँ। इस तरह योजना करके ऊपरके घड़े पर गोबरी जलावें। १२ घण्टे मध्याग्नि देनेसे पारद नीचे आजाता है, या भूधर यन्त्र द्वारा पारदका अधःपातन करें।

तिर्यक् पातन विधि—पारदको चतुर्थांश धान्याभ्रकमें मिला, कांजीके साथ १२ घण्टे खरल करें। पश्चात् ताड़मेंसे झरता मद्य (ताड़ी) भरनेके फूले हुए पेट वाले और लम्बी गर्दन वाले मिट्टी के घड़े आते हैं, ऐसे दो घड़े लेवें। इनमें से एक घड़ेके भीतर लेप कर, दूसरा समान मुँह वाला घड़ा मिलाकर डमरूयन्त्र बनावें अर्थात् दोनोंके मुँहको मिलाकर मजबूत कपड़मिट्टीसे



बन्द करे। पारेवाला घड़ा चूल्हे पर रखे, और दूसरा खाली घड़ा जलसे भरी हुई कड़ाही या बाल्टीमें रखे। कड़ाहीको भी थोड़ी ऊँची रखें। बार-बार उस पर जल छिड़कते रहे अथवा गीला कपड़ा फेरते रहें। या खाली घड़ेमें आधे भाग तक जल भरें। पारद वाले घड़ेके ऊपर कपड़मिट्टी करें; और भीतर सोहागा और लाखका रस चारों तरफ इस तरह लगालें कि, पारदवाले घड़े पर जलवाला कपड़ा फिरानेसे भी वह न फूटे। ऐसी योजना नहीं होगी, तो पारद बहुत उड़ जायगा। अथवा चित्रमें दिखाये हैं, वैसे मिट्टी या चीनी मिट्टीके यन्त्र बनवाकर तिर्यक्पातन करें। इस रीतिसे १२ घण्टे तक युक्तिसे अग्नि देनेसे पारद दूसरे घड़ेमें चला जाता है। अग्निकी लपट घड़ेके ऊपरके भागमें न लगे, इस बातका पहलेसे प्रबन्ध कर लेना चाहिये। इस तरहसे तीन संस्कार (ऊर्ध्व, अध और तिर्यक्पातन) होनेसे पातन संस्कार पूरा होता है।

वर्त्तमानमें विदेशसे लम्बी मुड़ी हुई गर्दन वाली शीशी (Retort) आती है, उसके मुँहके साथ अन्य शीशी (Receiver) को जोड़ उसमें पारद भर स्पिरिट लैम्प पर तिर्यक्पातन कर लेनेसे पारदकी हानि नहीं होती, और सरलतासे शोधन-क्रिया होजाती है।

(६) बोधन *विधि*—उपरोक्त संस्कारोंसे पारद शुद्ध होने पर षंढ हो जाता है। इसलिये शक्तिवृद्धिके हेतुसे बोधन संस्कार करना चाहिये। पृष्ठपर्णी का पंचांग और कमलकन्द सम भाग ले, जलमें पीसकर कल्क बनावें। इस कल्कमें से एक कटोरे जैसा आकार बना, उसमें पारद भरें और ऊपर कल्कसे ही बन्द कर गोला बना ले। गोलेके चारों ओर भोजपत्र या कमलपत्रको अच्छी तरह लपेट कर सूतसे बांधे। पश्चात् चौगुने कपड़ेकी थैलीमें भर, दोलायन्त्रमें लटकाकर तीन दिन तक काँजीसे स्वेदन करें। फिर पारदको निकाल गरम जलसे धो लेनेसे बोधित संस्कारकी समाप्ति होती है।

(७) *नियमन विधि*—गन्धनाकुली (सर्पाक्षी, अभावमें रास्नामूल) का कन्द, इमली, बाँझ कटोली (बाँझ ककोड़ा) का कन्द, भांगरा, नागरमोथा और धतूरेके बीज सम भाग लेकर क्वाथ करें। इस क्वाथमें १२ घण्टे तक दोलायन्त्र विधि से पारदको स्वेदन देनेसे पारदकी चंचलता दूर होकर स्थिर हो जाता है। फिर निकाल कर कांजीसे धो लेवें।

संदीपन *विधि*—सेंधानमक, समुद्रनमक, राई, सोहागा, सुहिंजनेकी छाल, कालीमिर्च, पीपल, जवाखार, सज्जीखार, चित्रकमूल और बिजोरा, सबको सम भाग लेकर चूर्ण करें। पारदके वजनसे चूर्ण दुगुना मिला नीबूके रसमें ७ दिन खरल कर गोला बनावें। ऊपर भोजपत्र लपेट कर सूत बांधे।

फिर मजबूत कपड़े की थैलीमें रख दोलायन्त्र विधिसे तीन दिन काजीके साथ स्वेदन करें। काजी बार बार डालते जायें, पश्चात् गरम जलसे धोकर एक दिन नीबूके रसमें काचके प्यालेमें १२ घण्टे सूर्यके तापमें रखें। दूसरे दिन गरम जलसे धोलेनेसे पारद सम्पूर्ण दोषोंसे मुक्त हो जाता है।

सूचना—धोनेके समय कुछ पारद जलमें मिल जाता है, उसे जल स्थिर होने पर तलेसे निकाल लेना चाहिये। जो पारद काजी आदिमें मिल गया हो, उस मिश्रणको उबाल, गाढ़ा कर फिर पारदको उड़ा लेना चाहिये।

पारद पर ८ संस्कार करनेमें अधिक समय और श्रमकी आवश्यकता है; तथा पारदमेंसे बहुत भाग उड़ भी जाता है। तथापि ८ संस्कारसे शेष रहे पारदसे बहुत लाभ प्राप्त होता है। इस अष्ट संस्कारित पारदमेंसे पूर्ण चन्द्रोदय आदि रसायन तैयार करनेसे शास्त्रमें लिखे अनुसार फलकी प्राप्ति होसकती है।

पारद बुभुक्षित विधि—अष्ट संस्कारित पारद तैयार न होने पर सिंगरफमेंसे निकाले हुए पारदको आकका दूध, थूहरका दूध, धत्तूरेके पत्तोंका रस, कलिहारीके मूलका क्वाथ, कनेरके मूलका क्वाथ, सफेद गुञ्जाफलका क्वाथ और अफीमका रस (अफीममें १६ गुना जल मिलाकर तैयार किया हुआ जल), इन ७ उपविषोंमें अनुक्रमसे ७-८ दिन तक खरल करें। बार-बार एक-एक विषमें खरल कर पारदको डमरूयन्त्र द्वारा उड़ा लेवें। पश्चात् दूसरे विषमें खरल करें। फिर चतुर्थांश बीरबहूटी और सोलहवाँ हिस्सा सैंधा नमक मिला नीबूके रसमें ७ दिन खरल कर डमरूयन्त्र द्वारा उड़ा लेनेसे पारदको सुवर्ण आदि धातुओंके भक्षण योग्य मुखकी प्राप्ति होती है।

पारद जारण विधि—बुभुक्षित पारद ३२ तोले और सुवर्णके वर्क ८ तोले मिलावें। फिर गन्धक १६० तोले मिला कज्जली कर बड़की जटाके क्वाथकी भावना देकर नलिकाडमरूयन्त्र द्वारा २४ घण्टे मध्यम अग्नि दें। गन्धक जल जाने पर अग्नि देना बन्द करें। पश्चात् गन्धकमिश्रित पारदको सम्हालपूर्वक निकाल पुन दूसरे समय गन्धक १६० तोले मिला कज्जली कर बड़की जटाके क्वाथकी भावना देकर नलिकाडमरूयन्त्र द्वारा गन्धक जलावें। पुन: तीसरी समय १२८ तोले गन्धक मिला बड़की जटाके क्वाथकी भावना देकर नलिकाडमरूयन्त्रसे गन्धक जारण करें। फिर चौथे समय ६४ तोले गन्धक मिला, शीशीमें भर वालुकायन्त्रमें रख यथाविधि पूर्णचन्द्रोदयरस बना लेवें। इस तरह षोडश-गुण गन्धक-जारित पूर्णचन्द्रोदयके अनुसार शतगुण गन्धकका जारण करनेसे शतगुण जारित पूर्णचन्द्रोदय रस बनता है। अधिक गन्धक जारण होने पर रसायन विशेष लाभदायक बनता है। कितनेक प्राचीन

ग्रन्थकारोने षड्गुण गन्धक जारण तक विधान किया है। एवं कितनेक नव्य ग्रन्थकारोने शतगुण जारण तक लिखा है।

पारद शोधन सरल विधि—लाल ईंटोका चूर्ण, कम्बलकी भस्म, बिना बुझा चूना, रसोईघरमें लगा हुआ कालोंस, हल्दी, पाँचों द्रव्योंको सम भाग ले। सबके वजनसे पारद आधा मिला, नीबूके रसमें एक दिन खरल कर डमरूयन्त्रमें रख तीन घण्टेकी अग्नि देकर उठा लेनेसे पारद शुद्ध होजाता है। यह कूपीपक्व रसायन और मलहम आदिके उपयोगमें आसकता है। (र० मा०)

जो पारद डमरूयन्त्रसे दो समय उड़ाया हुआ जर्मनीसे आता है, वह शुद्ध होनेसे सामान्य मलहम आदिमें, एवं साधारण कूपीपक्व रसायन बनानेमें बिना शोधन किये उपयोगमें लेना चाहें, तो भी चल सकता है।

रसायन (पारद-मिश्रित ओषधि) सेवनमें पथ्य—घृत, सैंधानमक, धनिया, जीरा और अदरख आदि मसालोंके द्वारा संस्कार किये हुए पदार्थ, चौलाई, परवल, रामतोरई आदि शाक, गेहूं, पुराने शालि चावल, गायका घृत, दूध, दही, हंसोदक (धूप और चाँदनीमें रखा हुआ जल) और मूँगका यूष, ये सब पदार्थ सेवन करने चाहिये। (र० र० स०)

पारद सेवन करने वालोंके लिये अपथ्य—बड़ी कटेली, बेल, पेठा, बेतके अंकुर, करेला, उड़द, मसूर, मटर, कुलथी, सरसों, तिल, तथा लंघन, उद्वर्त्तन (उबटन), स्नान, मुर्गेका मांस, मद्य, आसव, अनूप देशोंके जीवोंका मांस, कांजी, केलेके पत्ते और कांसीके बर्त्तनमें भोजन करना, गुरुपाकी (भारी), विष्टम्भकारक, अत्यन्त तीक्ष्ण और अत्यन्त गरम भोजन, ये सब पदार्थ और क्रियाएँ पारद सेवन करनेवाले मनुष्यको त्याग देने चाहिये।

ककारादि गण—कटेरीके फल, कांजी, सालई वृक्षका शाक या कछुएका मांस, तेल, राई, नीबू, निर्मली, तरबूज, पेठा, ककड़ी, मोर और मुर्गेका मांस, करेला, बाँझककोटा, बैंगन और कैथ, इन पदार्थोंके समूहको ककारादि गण कहते हैं। इस गणका देवीशास्त्रमें प्रतिपादन किया गया है।

कंगनी, कन्दूरी, बेर, मुर्गा, मोर और सूअरका मांस, कुलथी, कटेरीके फल, सरसोंका तेल, काली गलक नामक मछली, कछुएका मांस, मटर, पीपल, पेठा, करेला, निर्मलीके फल, बाँझककोडा, ककड़ी, अरहर और कांजी, यह ककारादि गण श्रीकृष्णदेव नामक आचार्यने कहा है।

जिस रसमें ककारादि गणके पदार्थोके सेवनका निषेध किया गया हो, उस रस पर इन ककारादि गणके पदार्थोंका सेवन नहीं करना चाहिये, और अन्यान्य गुणहीन पदार्थोको भी त्याग देना चाहिये। (र० र० स०)

समे गन्धे तु रोगघ्नो द्विगुणे राजयक्ष्मजित्।
जीर्णे तु त्रिगुणे गन्धे कामिनीदर्पनाशनः॥
चतुर्गुणे तु तेजस्वी सर्वशास्त्रार्थसिद्धदः।
भवेत् पञ्चगुणे सिद्धः षड्गुणे मृत्युजिद् भवेत्॥

गन्धक जारित पारदके गुण—समान गन्धक जारण करनेसे पारदका गुण सौगुना बढता है, और सर्व साधारण रोगोको नाश करता है। दुगुना गन्धक जारण करने पर कफ, क्षय और कुष्ठको दूर करता है। तिगुना गन्धक जारण करनेसे नपुन्सकता और दुर्बलताको दूर करता है। चार गुने गन्धक जारणसे वृद्धावस्थाकी निर्बलताको दूर कर शरीरको तेजस्वी बनाता है। पाच गुना गन्धक जारण करनेसे क्षयका नाश करता है और सकल्पसिद्ध बनाता है। छै गुना गन्धक जारण करनेसे इस पारदके समक्ष कोई भी रोग नही टिक सकता। यह सम्पूर्ण रोगोका नाशक है, एव मनुष्यको मृत्युजित बनाता है।

नव्य चिकित्सकोके मतानुसार पारद-मिश्रित ओषधि खाने (ग्रे आइल आदिके इन्जेक्शन करने) और मलहम-लेप आदि बाह्य प्रयोग करने पर पारद रक्तमे मिलकर रक्त शोधन करता है, रक्ताभिसरण क्रिया बढाता है, और रक्तमें रक्ताणुओंकी वृद्धि कराता है। रक्ताणुओकी वृद्धिके लिये अति न्यून मात्रामें कुछ दिनो तक सेवन करना चाहिये। किन्तु यदि दूषित पारदका सेवन किया जाय, या शुद्ध पारदका अत्यधिक काल तक निरन्तर व्यवहार किया जाय अथवा मात्रा अधिक ली जाय, तो रक्ताणुओका नाश होता है, पौष्टिक तत्त्व (Fibrin) न्यून होजाता है, तथा कितनेक विपरीत लक्षण भी प्रकाशित होते हैं। यथा मुँहमे छाले, मुँहका स्वाद पित्त-प्रकोप सूचक होना, दाँतोकी जडमे शिथिलता और वेदना होना, लाल स्रावमे वृद्धि, और मुँहसे दुर्गन्ध निकलना, नाकमे से उष्ण निःश्वास निकलना, कण्ठमे लसीका ग्रन्थियोंकी वृद्धि, पारद शोषित होजाने पर शरीरकी समस्त ग्रन्थियोंके स्रावकी वृद्धि होना, अति प्रस्वेद आना, किसी-किसीको दस्त पतला होना, किसी को वृक्क स्थानमे पीडा, हाथ-पैरके चलानेमे कम्प, देहमे शुष्कता और निस्तेजता आजाना आदि प्रकाशित होते हैं।

क्वचित् वात संस्थान आक्रान्त होने पर हाथ-पैर और मस्तिष्ककी मासपेशियोंमे स्पन्दन होना, या पक्षाघातके प्रारम्भिक लक्षण या मन्द वेदना होती है। किसीको प्रलाप होता है। अत. पारदका व्यवहार दीर्घकाल तक करना हो, तो बीच-बीचमे थोडे-थोडे दिन बन्द करते रहना चाहिये। डाक्टरी पारद-

कृतिमे जितना हानिका भय है, उतना आयुर्वेदिक कृतिमे नहीं है। फिर भी सम्हालते रहना, यह लाभदायक है।

बडे मनुष्यकी अपेक्षा बालक-बालिकाओंको पारद विशेष सहन होता है। बाल्यावस्थामे पारद-मिश्रित औषधि सेवन करनेसे थोडेही दिनोंमे शरीर मोटा बन जाता है।

सूचना—पारद सेवन कालमे ४-४ या ६-६ दिन पर मसूढोंको देख लेना चाहिये कि, मसूढो पर नील वर्णकी रेखाएँ तो नहीं हुई हैं? एव लाला निःसरण वृद्धि तो नहीं हुई है? ऐसा कदाच प्रतीत हो, तो तत्काल औषधि बन्द कर देनी चाहिये। एव इसके विपरीत प्रवाल, मुक्ता, सुवर्णमाक्षिक, अमृतासत्व, सितोपलादि, च्यवनप्राश आदि प्रकोपशामक औषधिका सेवन करना चाहिये। अथवा आवश्यकता पर पहले विरेचन ले लेना चाहिये।

(१) पूर्णचन्द्रोदय रस।

बनावट—क्षीरबहूटी और ७ उपविषोसे बुभुक्षित किया हुआ पारद ८ तोले, सुवर्णके वर्क १ तोला और शुद्ध गन्धक १६ तोले लेवे। पहले पारद और सुवर्णके वर्कोको मिलाकर ३ दिन तक नीबूके रसमें खरल करे। रोज प्रातः एक-एक तोला सैंधानमक साथमें मिला लेवे। चौथे रोज पारदको ३-४ समय जलसे धोकर क्षार दूर करे। पश्चात् गन्धक मिला, कज्जली कर लाल कपासके फूलोंके रस (फूलोंका रस स्वरस-यन्त्रसे निकाले) और घीकुँवारके रसकी ३ दिन तक भावना दे, सुखा, आतशी शीशीमें भरकर ६० घण्टेकी आंच देवे। लगभग ३६ घण्टेमें डाट लगाना पड़ेगा। फिर २४ घण्टे तीव्र अग्नि देनेसे औषधि पक जाती है। नीचे गन्धक और क्षार मिश्रित पीली भस्म थोड़ी मिलेगी। पारद बुभुक्षित नही होगा, तो तल भागमें सुवर्णकी काली भस्म शेष रह जायगी। सुवर्ण ऊपर नही चढ़ेगा।

कपासका वृक्ष, जो अनेक वर्षों तक जीवित रहता है, उसके लाल फूलोंका स्वरस लेना चाहिये। वर्षायु कपासके फूलोंका रस उपयोगी नहीं है।

सेवन विधि—चन्द्रोदय और कपूर ४-४ तोले खरल करके मिला लेवे। बादमें जायफल, समुद्रशोष (वृद्धदारु) के बीज, लोंग और कस्तूरी ३-३ माशे मिला खरल करके बोतलमें भर लेवे।

बाजारमे कपूर मिक्सचर्ड केम्फर, प्योर केम्फर, रिफाइन्ड केम्फर, तीन जातिका मिलता है। इनमेंसे रिफाइन्ड केम्फरमें से भीमसेनी कपूर बनाकर

उपयोगमे लेना चाहिये। अथवा चीनसे जो भीमसेनी कपूर आता है, उसे उपयोग मे लेवें। चीनसे आया हुआ भीमसेनी कपूर सबमे विशेष लाभदायक है।

(२) चन्द्रोदय, अभ्रकभस्म, शुद्ध कपूर, केशर, अकलकरा, समुद्रशोष, छोटी पीपल प्रत्येक १-१ तोले और कस्तूरी ३ माशे मिलाकर खरल कर शीशीमें भर लेवें। अथवा नागरवेलके पानके रसमें १२ घण्टे खरल कर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें।

मात्रा—चन्द्रोदय मिश्रण की मात्रा १ से ३ रत्ती दिनमें १ या २ बार शहदमें या नागरवेलके पानके साथ लेवें। अथवा गोली खाकर ऊपर दूध पीवें। ज्वरादि रोगोंमें हृदयपौष्टिक रूपसे देना हो, तो आधसे १ रत्ती चन्द्रोदय को शहद-पीपलके साथ मिलाकर दिनमें २ या ३ समय दें।

उपयोग—यह पूर्णचन्द्रोदय रस हृदयपौष्टिक, वाजीकर, रसायन, बल्य, रक्तप्रसादक, जन्तुघ्न, सेन्द्रिय विषशामक और योगवाही है। राजयक्ष्मा, कफप्रकोप-जन्य व्याधियों और शुक्रकी निर्बलताके नाश करनेमें अत्यन्त लाभदायक है। वीर्यस्राव, स्वप्नदोष, धातुक्षीणता, मानसिक निर्बलता, नपुन्सकता, हृदयकी निर्बलता, जीर्णज्वर, क्षय, श्वास, प्रमेह, विषविकार, मन्दाग्नि, अपस्मार आदिको दूर करके बलवीर्यकी वृद्धि करता है, और आयुको बढ़ाता है।

इस चन्द्रोदयका सेवन यदि रतिकालमे या रतिके अन्तमें किया जाय, तो सौ मदोन्मत्त स्त्रियोंके गर्वका हरण करने योग्य बल देता है। इस रसायनके सेवन कालमें घी, औटा कर गाढ़ा किया हुआ दूध, जड़ माम, मांसरस, उड़दके पदार्थ और अन्य आनन्दवर्द्धक आहार-विहार पथ्य है। इस रसायनका एक वर्ष पर्यन्त सेवन करने पर कृत्रिम, स्थावर या जंगम कोई भी प्रकारका विष बाधा नहीं पहुँचा सकता। जिस तरह 'मृत्युञ्जय क्रिया या यन्त्रके अभ्याससे मृत्युका निवारण होता है, उस तरह इस रसायनके नित्य सेवनसे जरा और मृत्युका भय मनुष्यको नहीं सता सकता।

सुवर्ण और सुवर्ण सम्मिलित ओषधियाँ हृदयको शक्ति देती हैं, और रक्तको निर्विष बनाती है। सुवर्ण योगवाही होनेसे हेमगर्भपोटली रस आदि उत्तेजक ओषधियोंके संयोगसे हृदय पर उत्तेजक गुण और शामक असर दर्शाता है। पूर्ण चन्द्रोदय रसमें भी उत्तेजक गुण रहता है। सुवर्णके योगसे इस रसायनका उपयोग कीटाणुजन्य क्षयमें होता है। राजयक्ष्माकी द्वितीयावस्थामें अनेक समय उत्तम

उपयोग होनेके उदाहरण मिले है। इस रसायनका परिणाम क्षयके कीटाणुओं पर साक्षात् होता है। अतः क्षयकी तीव्र अवस्थाओंमें यह सत्वर लाभ पहुँचाता है।

केवल राजयक्ष्माका संशय उत्पन्न होने पर ही पूर्णचन्द्रोदय रसका प्रारम्भ किया जाय, तो यह उत्तेजक होनेसे कुछ समय तक रक्तवाहिनियों, स्रोतों और रक्त आदि धातुओं पर उत्तेजकता दर्शाता है; जिससे कभी-कभी लक्षण बढ़ जानेका भास होता है। परन्तु जैसे-जैसे सुवर्णक्षारका रक्तमें मिश्रण होता जाता है, वैसे-वैसे रक्त सबल बनता जाता है, और शनैः-शनैः क्षय कीटाणु नष्ट होते जाते हैं। क्वचित् पूर्णचन्द्रोदयके सेवनसे ज्वर बढ़ जाता है, ऐसा होने पर पूर्ण-चन्द्रोदयकी मात्रा कम कर देनी चाहिये।

यह कल्प शारीरिक घटकों (Tissues) का नाश नहीं करता, केवल शरीरको हानि पहुँचाने वाले कीटाणुओंका नाश करता है। इस दृष्टिसे कीटाणुनाशक ओषधियोंमें पूर्ण चन्द्रोदय रस उत्तम ओषधि है। यह रसायन जीर्ण उरःक्षतमें रक्त गिरनेकी अवस्थामें रक्त को शक्ति देकर रक्तवाहिनियोंको सुदृढ़ बनाता है एवं व्रण रोपण रूप महत्वका कार्य भी कर देता है। क्षयकी भिन्न-भिन्न अवस्थाओंमें उत्पन्न होने वाले उरःक्षत मेंसे अनेकमें इस कल्पका उपयोग होता है।

कीटाणुजन्य अन्य व्याधियोंमें रक्तमें मिले हुए कीटाणुओंको नष्ट कर रक्तको सबल बनानेका महत्वका धर्म इस रसायनमें रहा है। इस हेतुसे आन्त्रिक सन्निपात, फुफ्फुस सन्निपात, फुफ्फुसावरण शोथ (उरस्तोय) और इस तरहके अन्य संक्रामक ज्वरोंमें जब-जब हृदय-क्रिया कीटाणुओंके विषके हेतुसे विकृत होती है, मंद या क्षीण होती है; तब-तब अन्य किसी भी ओषधिकी अपेक्षा पूर्णचन्द्रोदय रस देना विशेष हितकारक है। जब आयु-वृद्धिके साथ शरीरकी वृद्धि नहीं होती, तब शरीर नाटा या ठिगना प्रतीत होता है, मुखमण्डल निस्तेज और सूजा-सा भासता है, त्वचा, नाखून आदि शुष्क प्रतीत होते है, जननेन्द्रिय और नितम्ब भागकी वृद्धि न होनेसे आयु वृद्धि होने पर भी युवा स्त्री सामान्य छोटी लड़की सदृश दीखती है, अर्थात् इस इन्द्रियका व्यवहार आयु अनुसार नहीं होता। इस तरह स्तन आदि इन्द्रियोंका विकास भी नहीं होता। पुरुषोंके अण्डकोषका यथोचित विकास न होनेसे योग्य शुक्रोत्पत्ति क्रिया नहीं होती, शरीर पर तेज नहीं आता, समस्त अवयवोंकी योग्य वृद्धि न होनेसे अवयव संकुचित जैसे भासते

है; स्फूर्ति नहीं रहती, नेत्र पर निस्तेजता भासती है और नाड़ी मन्दगति से चलती है। इस स्थितिमें आयुर्वेदमें दो औषधियाँ उत्तम कार्य करती हैं—एक पूर्णचन्द्रोदय रस, दूसरी आरोग्यवर्द्धिनी। इसमें वात-प्रधान विकार वालोंको आरोग्यवर्द्धनी और कफप्रधान विकृतिवालोंको पूर्णचन्द्रोदय रस उपयोगी है।

किसी भी कारणसे आई हुई इन्द्रिय-शिथिलताको यह रसायन दूर करता है। यहाँ पर इन्द्रियका अर्थ ज्ञानग्रहण-सामर्थ्य और आज्ञा-प्रदान सामर्थ्य किया है। शरीर अवयव इन्द्रियोंके अधीन हैं। जैसे नेत्र नेत्रेन्द्रियके अधीन है। जिह्वा रसनेन्द्रियके और त्वचा त्वकेन्द्रिय के अधिकारमें रहते हैं। इन ज्ञानेन्द्रियोंके सामर्थ्यसे मनुष्यको शब्द, स्पर्श, रूप रस और गन्ध गुणका बोध होता है। इनकी शिथिलता होने पर नेत्रसे दर्शन-क्रिया और कर्णसे श्रवण-क्रिया यथोचित नहीं होती। यह शिथिलता वात और पित्त धातुओंकी विकृतिके हेतुसे होती है। धातुओंका कार्य जिस तरह शरीर-अवयव और शरीर-घटक पर होता है, उस तरह बुद्धि, मन, मनोदेश और ज्ञानेन्द्रिय पर भी होता है। फिर धातु-साम्य प्रस्थापित होकर इन्द्रियोंकी शिथिलता दूर होती है, और शरीर-अवयव व्यवस्थित रूपसे काम करने लग जाते हैं।

ज्ञानेन्द्रियके समान अन्य अवयवोंमें रही हुई इन्द्रिय (शक्ति)का पराभव होजाता है, वह भी इससे उत्तेजित होजाती है। इस हेतुसे नपुन्सकता प्राप्त होनेपर पूर्णचन्द्रोदयसे लाभ होता है। इसके सेवनसे इन्द्रिय-शैथिल्यका नाश होता है, और मनमें भी स्फूर्त्तिकी प्राप्ति होती है।

इस रसमें कपूर अत्यधिक मात्रामें मिलाया है। एवं जायफल, समुद्रशोष आदि अन्य ओषधियोंके संयोगसे वृष्यत्व गुण अत्यधिक परिमाणमें बढ़ जाता है। योग्य विचार किया जाय, तो यह गुण नहीं किन्तु दोष माना जायगा। कारण, इस गुणकी प्राप्ति होने पर पुरुषको कामवासनाके अतिरिक्त अन्य विचार ही नहीं आता। रति-लालसाकी तृप्ति नहीं होती इस हेतुसे अत्यन्त कामोत्तेजक ओषधिका उपयोग करना हो, तो सम्हालपूर्वक ही करना चाहिये।

कृत्रिम विष (गर), शरीरमें उत्पन्न विष या स्थावर जंगमात्मक विष, इनकी तीव्रता होने पर विषघ्न चिकित्सा करनेके पश्चात् उसके लीन अंशका प्रकोप दीर्घ काल तक न रहनेके लिये पूर्णचन्द्रोदयका सेवन हितकर है। इस रसायनसे रक्तका प्रसादन होकर शरीर निर्विष बनता है। (औ० गु० ध० शा०)

सन्निपातमें कफप्रकोप होनेपर पूर्णचन्द्रोदय रस का अच्छा उपयोग होता है। कफ दूषित और संगृहीत होजाने पर रोगीके कमरे में जानेके साथ दुर्गन्धिका भास होता है। कण्ठमें घर-घर आवाज, नेत्रमें लाली, कोष्ठबद्धता, कफ और दस्तमें रक्तस्राव, निद्रानाश, जिह्वा काली और काँटेदार, चित्तविभ्रम, प्रलाप आदि लक्षण उपस्थित होते है। क्वचित् किसीको मस्तिष्कावरण का प्रदाह होता है। उस स्थितिमें कण्ठ हिलाना, भांफणीके भीतर शोथ और अधिक उन्माद जैसे वर्ताव आदि लक्षण प्रकाशित होते है। ऐसी अवस्थामें पूर्ण-चन्द्रोदय, शृङ्गभस्म, प्रवालपिष्टी और सुवर्ण माक्षिक भस्म मिलाकर शहदके साथ दिनमें ३ बार थोड़ी-थोड़ी मात्रामें दिया जाता है। इनके अतिरिक्त मुलहठी, वहेड़ा, मुनक्का, अडूसा और मिश्रीका अष्टमांश क्वाथ करके देते रहनेसे कफ शुद्धि सत्वर होनेमें सहायता मिल जाती है (इस विकारमें उदर शुद्धिके लिये तीव्र विरेचन कदापि नहीं देना चाहिये)।

सूचना—पूर्णचन्द्रोदय रसके सेवन समयमे घृतयुक्त मधुर पदार्थ विशेष रूपमें लेनेसे विशेष लाभ पहुँचता है। जिसकी नाडी और हृदयकी गति मन्द हो और कफप्रधान प्रकृति हो, उसके लिये यह रसायन विशेष अनुकूल रहता है। पित्त-प्रधान प्रकृति वाले, जिनकी नाडी और हृदयकी गतिमे विशेष तेजी रहती हो, अन्तरमे उष्णता रहती हो, उनको यह रसायन नही देना चाहिये।

(२) रससिन्दूर।

प्रथम विधि—शुद्ध पारद १६ तोले और शुद्ध गन्धक ९६ तोले मिलाकर कज्जली करे। फिर घीकुँवारके रसकी भावना दे, सुखा आतशी शीशीमें भरकर वालुकायन्त्रमें ४ अहोरात्र अग्नि देनेसे तैयार होजाता है। लगभग ६० घण्टे पर डाट लगेगा, पश्चात् २४ घण्टे तीव्र अग्नि देनेसे रसायन परिपक्व होजाता है। एकसाथ ६ गुना गन्धक जारण करनेकी अपेक्षा दो-दो गुना गन्धक तीन समय जारण किया जाय, तो रससिन्दूर अधिक लाभदायक बनता है।

मात्रा—१ से २ रत्ती दिनमें दो वार, अभ्रक भस्म, पीपल और शहदके साथ या रोगानुसार अनुपानके साथ।

विविधि अनुपान—१. वात रोगमें—पीपल, शहद, मांसरस, तेल या लहशुनके साथ।

२. पित्त रोगमें—आँवलेके चूर्ण और मिश्रीके साथ।

३. कफ रोगमें—अदरखका रस और शहदके साथ ।
४. रक्तविकारमें—शहद अथवा हल्दी और मिश्रीके साथ ।
५. अतिसार और पेचिशमें—चंदलोईके रस या कच्चे बेलफल या लौंग, हिंगुल, अफीम और भाँगके साथ ।
६. कामला, पाण्डु और मन्दाग्नि पर—त्रिकटु, त्रिफला और वासाके स्वरसके साथ ।
७ मूत्रकृच्छ्र पर—शिलाजीत, इलायची और मिश्रीके साथ ।
८. धातुवृद्धिके लिये—लौंग, केशर मिले नागरवेलके पानमें वा विदारीकन्दके चूर्णके साथ ।
९. वमन-शमनके लिये—भाँग और अजवायनके २-२ रत्ती चूर्णके साथ अथवा लाजाचूर्णके साथ ।
१०. उदर-रोग पर—काला नमक, हल्दी, भाँग और अजवायनके चूर्ण १॥ माशेके साथ ।
११. कृमि पर—१॥ माशे पलासफलके चूर्ण और गुड़में ।
१२. मन्दाग्नि पर—काला नमक और अजवायनके साथ ।
१३ बलवृद्धिके लिये—गिलोयसत्वके साथ ।
१४. हृदयकी निर्बलता पर—पीपल और शहदके साथ ।
१५. वातज प्रमेह पर—शहद-पीपलके साथ ।
१६. पित्तज प्रमेह पर—त्रिफला और मिश्रीके साथ ।
१७. कास, श्वास और शूल पर—त्रिकुट, भारंगी और शहद, शहद और पीपल, या भाँगरेके रसके साथ ।
१८ मन्दाग्नि, मलावरोध और हृद्रोग पर—पीपल, चित्रकमूल, हरड़ और काले नमकके साथ ।
१९. शुक्रवृद्धिके लिये—कर्पूर आध रत्ती, लौंग, केशर, जावित्री, अकरकरा, पीपल और भाँग २-२ रत्ती, तथा मिश्री १ माशा के साथ १ से २ रत्ती रससिन्दूर देवे । अथवा केलेके साथ ।
२०. सब प्रकारके ज्वर पर—लौंग, चिरायता, हरड़ और काले नमकके साथ या जीरा और पीपलके साथ ।
२१. ज्वरकी सन्निपातावस्थामें औचित्य देखकर चतुःसम चूर्ण (चन्दन, अगर, कस्तूरी और केशर) के साथ, या निर्गुण्डीके पत्तोंके रसके साथ ।
२२. रक्तपित्तमें—शर्करयुक्त द्राक्षाके साथ ।
२३. राजयक्ष्मामें—घृतके साथ ।

२४. धातुक्षयमें—कसौंदी और अदरखके स्वरसके साथ ।
२५. अरुचि—बिजौरेके रसके साथ ।
२६. मदात्ययमें—नीमका मद (जल) और शक्करके साथ ।
२७ मूर्च्छामें—नारियलके जल या पित्तपापड़ाके क्वाथमें ।
२८. अपस्मारमें—कल्याण घृतके साथ ।
२९. विसूचिकामें—सोंठ, जीरा और जावित्रीके साथ ।
३० अजीर्ण और हड़फूटनमें—धनिया तथा सोंठके क्वाथमें ।
३१. ग्रहणीमें—चाँगेरीका रस, भुनी हरड़ या सोंठके साथ ।
३२. पीनसमें—कालीमिर्चके चूर्णके साथ ।
३३. कुष्ठोंमें—बावची और पुंवाड़के बीज अथवा खैरके क्वाथके साथ।
३४. मुखपाकमें—सफेद चन्दनके क्वाथमें ।
३५ वातरक्तमें—तालमखानेके चूर्णके साथ ।
३६. दन्त रोगोंमें—दन्तधावन वृक्षोंके रसमें ।
३७. विबन्धमें—एलुवाके चूर्णके साथ ।
३८ हिचकी और आध्मानमें—कुलथीके क्वाथमें ।
३९ हृद्रोग, रक्तस्राव और उदररोगमें—अर्जुन छालके रस और शहदके साथ ।

उपयोग—धातुक्षीणता, हृद्रोग, कफप्रधान प्रमेह, क्षय, श्वास, कास, वातरोग, उदररोग, मूर्च्छा, अर्श, भगंदर, पाण्डु, दुष्ट व्रण, शूल, वमन, ज्वर, संग्रहणी, सन्निपात, मंदाग्नि, मगजकी निर्बलता, स्त्रियोंके गर्भाशयके दोष, शोथ, गुल्म, प्लीहाविकार और त्रिदोष प्रकोप आदि रोगों पर अति लाभदायक है ।

रससिंदूरका कार्य फुफ्फुस और श्वासवाहिनियों पर विशेषतः होनेसे कफस्रावी ओषधियोंके साथ देनेसे दूषित कफ, जो संचित हुआ हो, वह सरलतासे छूटकर बाहर आजाता है। कफ धातु निर्दोष बनती है, और फुफ्फुस-शोथ नष्ट होकर फुफ्फुस बलवान बनते हैं। इसलिये कफप्रधान सन्निपात, फुफ्फुस सन्निपात (Pneumonia), इन्फ्लुएञ्जा, श्वास रोग, जीर्ण कफकास और जुखाममें कफ संचय होने पर विपन्न और कफघ्न रूपसे रससिंदूरका उपयोग हितकर है ।

कफस्राव करानेके लिये रससिंदूरके उत्तेजक गुणका कार्य होता है। इस कफप्रकोपके विरुद्ध जब शुष्क कास हो, तब इस रसायनका उपयोग बिल्कुल नहीं करना चाहिये। अन्यथा कास बढ़ जायगी;

क्षोभ अधिक होगा। शुष्क कास युक्त अवस्थामें प्रवालपिष्टी, ब्राह्मी, मुलहठी, इलायची आदि शामक कफस्रावी औषधि देनी चाहिये।

कफसंचय होकर कास हो रही हो, तो रससिंदूरको कफ-स्रावी अनुपानके साथ देनेसे कफस्राव दूर होता है, और कास भी कम होजाती है। यदि कफसंचयको दूर न किया जाय, तो भीतरके स्रोत दुष्ट होत है। फिर ज्वरकी उत्पत्ति होजानेकी संभावना रहती है। ऐसा अनेक बार श्लैष्मिक सन्निपात (Influenza) में प्रतीत हुआ है। श्लैष्मिक सन्निपातकी तीव्रावस्था नष्ट होकर जब पुनः पूर्व स्थितिकी प्राप्ति होती है; तब फुफ्फुसोंके किसी स्थानमें कफ संचित रह जाता है। जो कुछ समयमें पूय . दुर्गन्ध युक्त बन जाता है। फिर जो कफ निकलता है, वह हरा-पीला दुर्गन्धमय निकलता है। जो पूय भावकी प्राप्ति न होसके, तो कफ श्वेत, चिपचिपा और गाढा निकलता है। इस तरह कफ विकृति होने पर ज्वर आने लगता है। यह ज्वर कफसचय और कफदुष्टिक अनुरूप न्यूनाधिक परिमाणमें होता है। इस विकृति पर रससिंदूर और शृङ्गभस्म मिलाकर दिये जाते है।

कितनेक मनुष्योंको बार-बार प्रतिश्याय होजाता हो, उनको विशेषतः नासिकाकी श्लैष्मिक कला स्वरयन्त्र और श्वसनिकामें क्षोभ उत्पन्न होकर जुकाम होजाता है, ऐसी प्रकृतिवालोंको रससिंदूरका सेवन करानेसे क्षोभ दूर होकर व्याधिका निवारण होजाता है।

उरस्तोय (Pleurisy) होने पर फुफ्फुसावरणमें जल संचय होता है। इस जलकी विकृति होने पर ज्वर आने लगता है। यदि जल सचय अधिक हो, तो शस्त्र क्रिया द्वारा निकलवा देना चाहिये; और जल संचय मर्यादामें हो, तो रससिंदूरको आरोग्यवर्द्धनी, शृङ्ग-भस्म और लघुमालिनी वसंतके साथ मिलाकर देना चाहिये। कफवृद्धि और ज्वर होने पर रससिंदूर अच्छा उपयोगी होता है।

उरःक्षतमें यदि रक्त न पडता हो, मात्र पीला दुर्गन्धवाला कफ गिरता हो, तो वासावलेह वा अन्य व्रणरोपण औषधिके साथ रस-सिंदूर देनेसे शीघ्र क्षत भर जाता है। ऐसे ही कीटाणुजन्य क्षय आदि रोगोंमें सुवर्णके वर्क और अभ्रकके साथ रससिंदूर देनेसे कीटाणुओंका नाश होता है; और शारीरिक शक्तिका रक्षण होता है। यद्यपि कीटाणु-जन्य क्षयकी तृतीयावस्था में उरःक्षत होने पर किसी भी औषधिका उपयोग नहीं होता, परन्तु द्वितीयावस्था पर्यन्त या तृतीयावस्थाके आरम्भकालमें कफकी प्रधानता होने पर सुवर्ण, अभ्रकभस्म और रस-

सिंदूरसे लाभ होनेके अनेक उदाहरण मिले हैं। इस स्थान पर रस-सिंदूरका उपयोग कीटाणुनाशक रूपसे होता है।

रससिंदूर हृदयके बलको बढ़ाता है; वातवाहिनियोंको उत्तेजना देता है, और स्नायुओंको भी दृढ़ बनाता है। इस कारण जब हृदयबलके संरक्षणकी आवश्यकता हो, तब अनेक रोगोंमें रससिंदूर का उपयोग होता है।

विष्टब्धाजीर्ण या आमाजीर्णके कारण होनेवाले जीर्ण मन्दाग्नि रोग पर रससिंदूरका प्रयोग विशेष हितकर है। [illegible] आमाति-सार या जीर्ण आमसंग्रहणीमें भी इसकी प्रयुक्तता हो, तो [illegible] या अन्य ग्राही औषधियोंके साथ रससिंदूर देना आवश्यक है।

रससिंदूर कफरोग, रस, रक्त और मांस, ये धातु, तथा फुफ्फुस-श्वासवाहिनी, हृदय और आमाशय आदि कफ स्थानों पर विशेष प्रभाव दिखाता है। (औ० गु० ध० शा०)

सूचना—पित्तप्रधान प्रकृतिवालोंको या [illegible] या अन्य पित्तप्रधान रोगोंमें रससिंदूरका उपयोग नहीं करना चाहिये।

दूसरी विधि—शुद्ध पारद १६ तोले और शुद्ध गन्धक ३२ तोले मिलाकर कज्जली करें। फिर घीकुंवारके रसकी भावना दे आतशी शीशीमें भर, तीन दिन अग्नि देकर औषधि सिद्ध करें। इस रसायनको द्विगुण गन्धकजारित रससिंदूर कहते हैं। (र० सं०)

तीसरी विधि—शुद्ध पारद १६ तोले और शुद्ध गन्धक १६ तोले मिलाकर, कज्जली कर बड़के अंकुरोंके क्वाथ या घीकुंवारके रसकी भावना दे। फिर कपड़मिट्टी की हुई शीशीमें भर, ४८ घण्टे अग्नि देकर वालुकायन्त्र द्वारा तैयार करें। इस रसायनको समगुण गन्धकजारित रससिंदूर कहते हैं। (औ० र०)

चौथी विधि—शुद्ध पारद ८ तोले, शुद्ध गन्धक २ तोले, नौसादर ६ माशे मिला, कज्जली कर नीबूके रसकी भावना दें। फिर सुखा, आतशी शीशीमें भर, ३६ घंटे अग्नि देकर रससिंदूर तैयार करें। (या० र०)

मात्रा और उपयोग—पहली विधिके अनुसार।

सूचना—क्षार मिलाकर रससिंदूर बनानेमें धुआँ निकलनेकी शुरुआत से तप्त शलाका द्वारा गला बार-बार साफ करते रहना चाहिये। यदि गला क्षारसे बन्द होजायगा, तो शीशी फूट जायगी।

(३) हरगौरी रस।

बनावट—शुद्ध पारद १५ तोले, शुद्ध गन्धक ५ तोले मिलाकर

कज्जली करें। फिर नौसादर १॥ तोला मिला धतूरेके पत्तोंके रसकी ३ भावना दे सुखा, आतशी शीशीमें भर वालुकायन्त्रमें रखकर, ३६ घण्टे की अग्नि देनेसे हरगौरी रस तैयार होता है। १२ घण्टे मन्दाग्नि देनेसे गन्धक जीर्ण होजायगा। पश्चात् डाट लगाकर धीरे-धीरे अग्नि बढ़ावे। इस तरह २४ घण्टे अग्नि देनेसे रसायन बन जाता है। (र० का०)

मात्रा और उपयोग—रससिंदूरके अनुसार। किन्तु हरगौरी रसमें धतूरेके क्षारका असर रहनेसे, रससिंदूरकी अपेक्षा कफको बाहर निकालनेमें, वातको दूर करनेमें, आमशोधनमें और ज्वर-शमनमें अधिक काम देता है। यह हृदयको उत्तेजना अधिक देता है। इनके अतिरिक्त इस रसायनमें कुछ वाजीकरण गुण होनेसे अन्य कामोत्तेजक, पौष्टिक औषधिके साथ देनेसे शीघ्र लाभ पहुंचता है। यह रसायन वात और कफ प्रकृतिवालोंके लिये हितकर है। मूल (रसकामधेनु) ग्रन्थकारने इस रसको वातव्याधिमें लिखा है, और इसमें वातशामक गुण अधिक दर्शाया है।

सूचना—इस रसायनको बनानेमें पहलेसे क्षार गले पर जमने लगता है। अतः सावधानीसे बार-बार खोलते रहना चाहिये।

(४) मल्लसिंदूर।

बनावट (प्रथम विधि)—शुद्ध सोमल ५ तोले, शुद्ध पारद १० तोले और शुद्ध गन्धक १० तोले ले। पहले पारद और गन्धककी कज्जली करें। फिर सोमलका बारीक चूर्ण मिलाकर ६ घण्टे खरल करें। पश्चात् घीकुँवारके रसकी भावना दे, सुखा आतशी शीशीमें भर वालुका-यन्त्रमें रख ३६ से ४८ घण्टे तक अग्नि देकर औषधिको सिद्ध करे।

मल्लसिंदूर बनानेमें बार-बार सावधानतापूर्वक शीशीका गला साफ करते रहना चाहिये। लगभग १२ घण्टे बाद जब गन्धकका धुआँ बन्द होकर सोमलका धुआँ निकलने लगे, और तप्त शलाकासे बत्ती सफेद रंगकी दीखे, तब तुरन्त डाट लगा देवे। देर होगी तो सोमल उड़ जायगा, और जल्दी होगी तो डाट धुआँके बलसे उड़ जायगा। डाट लगानेके पश्चात् २४ से ३६ घण्टे तक औषधिका विचार करके तेज अग्नि देनी चाहिये। गन्धकका धुआँ रहता है, तब तक शीशीमें काला कीचड़ जैसा देखनेमें आता है। गन्धक जल जाने पर ऐसा कीचड़ नहीं रहता। मल्लसिंदूर काले चिलकते रंगका और कठोर होता है।

मात्रा—पावसे आधी रत्ती तक दिनमें दो समय शहद और

पीपलके साथ । अथवा खरलीय रसायन प्रकरणमें लिखे अनुसार मल्लसिंदूर वटी बनाकर प्रयोगमें लावें ।

हिस्टीरिया पर—मल्लसिंदूर, कस्तूरी, केशर, कुचिला, सफेद मिर्च और अकरकराके साथ देवें । ऊपर जटामांसीका अर्क पिलावें ।

जीर्णपक्षाघात पर—मल्लसिंदूर, शुद्ध कुचिला और असगन्ध का चूर्ण, तीनोंको मिलाकर घी-शहदमें देवें, ऊपर रास्नादि अर्क पिलावें दिनमें दो बार ।

उपयोग—मल्लसिंदूर श्वास, कास, सन्निपात, उन्माद, अपतन्त्रक, हिस्टीरिया, आमवात, बालकोंका डब्बा रोग, विसूचिका, वातरोग, प्रमेह और सब प्रकारके कफ रोगोंका नाश करता है ।

मल्लसिंदूर तीक्ष्ण और उग्रवीर्य है । फुफ्फुस, वातवाहिनी और हृदय पर उत्तेजक असर पहुँचाता है । इस रसायनका उपयोग कफवृद्धि और आमवृद्धिसे उत्पन्न दोष और वातप्रकोप पर होता है । जब कफोल्वण सन्निपात, जीर्णश्वास या कासके तीक्ष्ण कफप्रकोपमें देश और ऋतुके प्रतिकूल होनेसे या प्रकृति अधिक निर्बल होनेसे, मल्लभस्म या मल्लपुष्पको अधिक उग्रताके कारण न दिया जाय, वहां पर मल्लचन्द्रोदय और मल्लसिंदूर देनेमें अधिक भय नहीं रहता । मल्लसिंदूर कफ और आमका शमन करके रोगको शान्त भी कर देता है ।

ज्वर १०० डिग्रीसे अधिक न हो सर्वाङ्गमें प्रस्वेद, श्वासकी घड़घड़, छातीमें कफ संग्रह, नाड़ीमें क्षीणता, तन्द्रा वृद्धि आदि लक्षण उपस्थित होने पर मल्लसिंदूर दिया जाता है । यदि वाताक्षेपकके झटके साथमें हो, तो मल्लसिंदूरके बदले पचसूत देना चाहिये । इस तरह शुष्क कफ और श्वास हो, तो समीरपन्नग हितकारक माना जाता है ।

उपदंशजनित पक्षाघात और अन्य हेतुसे उत्पन्न पक्षाघातमें बार-बार आनेवाले आक्षेपकोंको रोकनेके लिये यह रसायन उत्तम लाभदायक है । इसके सेवनसे विष और कीटाणु नष्ट होजाते हैं । जिससे झटके आनेमें प्रतिबन्ध होता है । इसी तरह इसके सेवनसे हिस्टीरिया का दौरा रुक जाता है ।

यह रसायन कीटाणुनाशक होनेसे रक्तमें रहे हुए जीर्णज्वर और परिवर्तित ज्वरके कीटाणुओंका नाश कर ज्वरको शमन करता है । जीर्ण आमवातमें जब तीक्ष्ण प्रकोप न हो, ज्वर साधारण रहता हो, तब कोष्ठ शुद्ध करके मल्लसिंदूर देना लाभदायक है । अजीर्ण जनित कीटाणु रहित विसूचिका और कीटाणुजन्य विसूचिकामें भी जब जीवनीय

शक्तिके रक्षणकी आवश्यकता हो, तब इस रसायनका उपयोग लाभदायक है। इसके सेवनसे हृदयमें उत्तेजना आती है, नाड़ीका वेग बढ़ता है, शीतलता कम होती है, और आमाशय दोषकी निवृत्ति होती है।

बालकोंके पसली रोगमें फुफ्फुस और श्वासनलिका कफसे बहुत भरे हों, गले में कफ घरघर बोल रहा हो, किन्तु ज्वरकी कमी हो तो अन्य रोगशामक ओषधिके साथ १/१६ रत्ती मल्लसिंदूर मिला देनेसे सत्वर लाभ पहुँचता है।

सूचना—१. पित्तप्रधान रोगमें इस रसायनका उपयोग न करें।

२. ज्वरकी उष्णता बहुत बढ़ी हो, तब यह रसायन न दें।

३. वृक्क विकारके रोगी, जिनको मूत्रशुद्धि न होती हो, उनको यह रसायन नहीं देना चाहिये।

४. सोमलवाला धुआँ आँखको न लगे यह सम्हाले। जबतक गंधक जलता है, तबतक सोमल नहीं उड़ता। गंधक जलजाने पर सम्हलना चाहिये।

५. मल्लसिंदूर बनानेके समय पारदके साथ पारदसे चौथा हिस्सा सुवर्ण मिलाया जाय तो मल्लचन्द्रोदय कहलाता है। मल्लचन्द्रोदय, सुवर्णके संयोगके कारण, मल्लसिंदूरकी अपेक्षा कुछ सौम्य होता है। यदि मल्लचन्द्रोदयमें बुभुक्षित पारदके साथ सुवर्ण मिलाकर बनाया जाय, तो मल्लचन्द्रोदय अधिक गुणदायी बनता है।

दूसरी विधि—शुद्ध सोमल ५ तोले, शुद्ध पारा १० तोले, शुद्ध गन्धक १० तोले और रसकपूर १० तोले मिला, कज्जली करके घीकुँवार के रसकी भावना देवें। पश्चात् सुखा, शीशीमें भर, उपरोक्त विधिसे वालुकायन्त्रमें ३६ से ४८ घण्टे अग्नि देकर मल्लसिंदूर बना लेवें।

मात्रा—पाव से आध रत्ती घृत और शहद या अदरखका रस और शहदके साथ।

उपयोग—उपदंश (फिरंग), पक्षाघात, आदिमें कुष्ठ, रक्तविकार, फिरंगअनुबंध युक्त मृगी, सन्निपात, कफादिक जनक श्वास, कास, जीर्ण प्रतिश्याय और संधिवात आदि सब प्रकारके वातरोगोंका नाश करता है।

पहली विधिके मल्लसिंदूरकी ओषधियोंके साथ रसकपूरको मिलाकर इस रसायनको तैयार किया है। अतः इस रसायनमें रसकपूरका गुण भी सम्मिलित हुआ है। यह रसायन प्रलापक, भुग्ननेत्र, कफष्ठीवी आदि कफोल्बण सन्निपातमें नाड़ियों और फुफ्फुसोंके भीतर रहे हुए दूषित कफको बाहर निकलनेमें सहायता पहुँचाता है, कोटा-

णुओंका नाश करता है, तथा फुफ्फुस और हृदयको उत्तेजना देकर रोगको शमन करता है।

जब ज्वर कफप्रधान सान्निपातिक है, ऐसा निर्णय होजाय; तभीसे योग्य अनुपानके साथ मल्लसिंदूरका प्रयोग करनेसे सन्निपात की सर्व अवस्थाओंमें रोगीको अधिक त्रास नहीं होता, और सन्निपात का बल अधिक नहीं बढ़ता। परन्तु ओषधि सेवनके साथ लङ्घन आदि की सहायताकी भी आवश्यकता है। कण्ठमें कफकी घर-घर आवाज, थोड़ी-सी कास, नेत्र आधे खुले या नेत्रकी पुतली ऊँची चढ़ी हुई, तन्द्रा-सी अवस्था, प्रलाप, भ्रम, बेहोशी (बेशुद्धि) बीच-बीचमें कुछ निद्रा लगजाना आदि लक्षण प्रतीत होते हों और ज्वर मर्यादामें हो, तो मल्लसिंदूर देना चाहिये।

न्युमोनिया और इन्फ्लुएञ्जामें कफ संचयावस्थामें रसायन अधिक लाभदायक है।

कफ संचय होने पर जब फुफ्फुसोंकी अशक्ति या फुफ्फुसोंकी वातवाहिनियोंकी अशक्तिके हेतुसे कफको बाहर निकालनेमें त्रास होता हो, तो ऐसी अवस्थामें इस रसायनका प्रयोग करना चाहिये।

इन्फ्लुएञ्जाके अन्तमें फुफ्फुसोंके बलका क्षय होने पर श्वासोच्छ्वास मन्द और मन्दतर होता जाता है। ऐसे समय पर मल्लसिंदूरका अच्छा उपयोग होता है। मल्लसिंदूरसे हृदय और फुफ्फुसोंको उत्तेजना मिलती है। एवं इन अवयवोंके नियन्त्रण करनेवाले वातवहानाड़ीकेन्द्र और वातवाहिनियाँ भी उत्तेजित होते है, जिससे रोगीकी गिरती हुई हालत सुधरने लग जाती है। किन्तु पित्त की प्रधानता होनेसे थूकके साथ रक्त गिरता हो और उदरमें आग, वमन आदि लक्षण हो, तो मल्लसिंदूर नहीं देना चाहिये।

ज्वर वेग अधिक होने पर इस रसायनका प्रयोग नहीं करना चाहिये। अन्यथा रक्ताभिसरण क्रिया बढ कर मस्तिष्कमे रक्तका दबाव अधिक होजाता है।

यदि आन्त्रिक सन्निपात (मोतीझरा) मे न्युमोनिया या कफप्रकोप होकर प्रलाप, भ्रम, तन्द्रा आदि लक्षण हो, तो १-२ मात्रा मल्लसिंदूरकी देनी चाहिये।

मल्लसिंदूर उत्तम कफसंशोषक है। इस हेतुसे फुफ्फुसोंमे कफसंचय, श्वासोच्छ्वासमें घर-घर आवाज, श्वास ग्रहण या त्यागमे कष्ट, नाड़ी मन्द, कपालपर प्रस्वेद, हाथ पैर शीतल, तन्द्रा, बेसुधि, नेत्रकी

पुतली ऊपर चढी हुई तथा जिह्वा जड होनेसे उच्चारण स्पष्ट न होना आदि लक्षण प्रतीत होते हो, तो रोगीका जीवन अनिश्चित होजाता है। ऐसी अवस्थामें यदि उरस्थ कफमें न्यूनता हुई, तो रोगीके बच जानेकी आशा है। यह कार्य मल्लसिन्दूरसे होता है।

परिवर्त्तित ज्वरमें यदि समवायी कारण कफ दोष हो, तो मल्ल-सिन्दूरका सेवन करानेसे उसके कीटाणुओ (Spirochaeta Obermeieri) का नाश होकर रोग शमन होजाता है। (औ० गु० ध० शा०)

उपदंश और सुजाक रोगका शमन होने पर भी उनके विषका असर रह जाता है, जिसमे रक्तविकार, संधिवात, पक्षावात, गुदशूक, नेत्रदाह, कुष्ट, व्रण आदि अनेक उपद्रव बार-बार होते रहते है। इन उपद्रवोंके मूलकारण रूप विषको यह रसायन शमन कर देता है, जिससे शरीर नीरोग बन जाता है।

सूचना—जब जीर्ण उपदंश आदि रोगोंमें इस रसायनको १५ दिनसे अधिक दिन तक सेवन करना हो, तब १५ दिनके बाद ५–७ रोज इस औषधि को बन्द कर प्रवाल आदि शीतल और विषनाशक औषधि सेवन करनी चाहिये। पश्चात् पुन १५ दिन तक इस रसायनको लेवे। इस रीतिसे बीच-बीचमे छोडकर सम्हालपूर्वक लेवे। किसीको नेत्र पर सूजन, नेत्र लाली या दाह बढ जाय, तो इसे तुरन्त बन्द करे।

उपदंश और सुजाक रोगीको मल्लसिन्दूरके साथ शिलाजीत भी दिया जाय, तो विशेष हितकर है।

(५) तालसिंदूर।

बनावट—शुद्ध हरताल ५ तोले, शुद्ध पारा १० तोले और शुद्ध गन्धक १० तोले मिलाकर कज्जली करे। फिर घीकुँवारके रसमें खरल कर सुखा, आतशी शीशीमें भर, वालुकायन्त्रमें रखकर ४८ घण्टेकी अग्नि देनेसे तालसिन्दूर तैयार होता है। तालसिन्दूरमें मल्लसिन्दूरके समान १२ से १५ घण्टे बाद सफेद बत्ती दीखने पर डाट लगाया जाता है। डाट लगानेके बाद ३६ घण्टे तक तीव्र अग्नि देनी पडती है। क्योंकि हरताल जल्दी नहीं उड़ती। तालसिन्दूरमें यदि पहले पारेके साथ सुवर्ण का वर्क मिलावें, तो वह तालचन्द्रोदय कहलाता है। (रसा० सा० संग्रह)

सूचना—घीकुँवारके रसकी भावना मूलग्रन्थमे नही है, परन्तु हितकर होनेसे हमने बढाई है। गन्धक जल जाने पर डाट तुरन्त लगा देना चाहिये। अन्यथा हरताल उडने लगती है।

मात्रा—१ से २ रत्ती अदरखका रस और शहद या घीके साथ लेवें। अथवा खरलीय रसायन प्रकरणमें लिखे अनुसार लवङ्गादि तालसिन्दूर या मंजिष्ठादि तालसिन्दूर बनाकर उपयोगमें लेवें।

उपयोग—यह रसायन कुष्ठ, वातरक्त, उपदंश, रक्तविकार, त्वचादोष, शोथ, श्वास, क्षय, कास, उरःक्षत, कफप्रधान जलोदर, विषमज्वर, परिवर्तित ज्वर आदि रोगोंको दूर करता है। इस रसायनमें मुख्य द्रव्य हरताल है। हरताल रस और विपाकमें कटु (चरपरी), स्निग्ध, कषाय रसवाली, कफघ्न, कण्डुघ्न और कुष्टघ्न है। हरतालके ये सब गुण इस रसायनमें आते है। यह तालसिंदूर, तालभस्म और तालपुष्पकी अपेक्षा कम उग्र होनेसे तालभस्म या तालपुष्पका उपयोग जहाँ न हो सके, वहाँ पर इसका उपयोग निर्भयतापूर्वक होसकता है। इस रसायन में कुष्ठघ्न, कफघ्न और कण्डुघ्न गुण होनेसे कफप्रधान और कफवातप्रधान कुष्ठ रोग, उपदंशज कुष्ठ रोग और उपदंशज अन्य उपद्रव—रक्त विकार, सधिवात, वातरक्त, त्वचादोष—आदिमें अच्छा काम देता है। एव कफघ्न गुणके कारण, फुप्फुस कोषोंके स्रोतसोंमें कफ भर जानेसे जब हृदयकी मंदगति, सारे शरीरमें शूल, अरुचि, व्याकुलता और निर्बलता आजाती हैं, तब यह रसायन अति लाभदायक है।

कफघ्न और जन्तुघ्न गुण होनेसे यह रसायन श्वास, कास और क्षयकी प्रथम या द्वितीयावस्थामें फुप्फुस और स्रोतसोंका शोधन, ताप का शमन और कीटाणुओंको नष्ट करना, इन सब कार्योंमें सहायता पहुँचाता है। जब तक क्षयके प्रारम्भमें शुष्क कास हो, तब तक इसे उपयोगमें नहीं लेना चाहिये। कदाच उपयोगमें लेना हो, तो प्रवालपिष्टी मिलाकर करें, तथा कफस्राव होने पर तालसिंदूरका उपयोग करना हो, तब शृङ्गभस्म और मिश्रीके साथ देनेसे कफ और कीटाणुओंका नाश सत्वर होता है।

यह रसायन ज्वरघ्न, जन्तुघ्न, कफघ्न और उष्ण होनेसे शीतांग सन्निपात, वार-वार उलटकर आनेवाले परिवर्तित ज्वर, तृतीयक (एकांतरा), चातुर्थिक (तिजारी) आदि विषमज्वर और शीत सहित आनेवाले जीर्णज्वरमें कीटाणुओंको नष्ट करता है, आम और दूषित कफको जला देता है, तथा रक्तको निर्विष बनाकर ज्वरको दूर करता है। एवं विष-निवृत्ति होजाने पर जीर्ण ज्वरसे उत्पन्न वातप्रकोप, धनुर्वात, आक्षेप, शूल आदि लक्षण भी निवृत्त होजाते है।

इस रसायनमें उष्ण, यकृद्बल्य और हृदयोत्तेजक गुण होनेसे

यकृद् या हृदय-विकृतिसे उत्पन्न शोथ और जलोदर रोगमें इसे देने पर हृदय और यकृत् क्रिया बढ जाती है, जिससे रक्ताभिसरणक्रिया सबल बनती है, और दुष्ट रसका शोषण होजाता है।

उरः स्थानमें कफ संगृहीत होनेसे स्रोतसोका अवरोध हुआ हो; फिर उस हेतुसे हृदयकी क्रियामें मन्दता, सारे शरीरमें शूल चलना, अरुचि, जिह्वा पर श्वेत मल का आवरण, उबाक, हाथ-पैर शून्य हो जाना, जड़ता, पैरोंमें भारीपन, हाथ-पैरोंके तलोंकी शक्तिका ह्रास होना आदि लक्षण प्रतीत होते हों, तो तालसिंदूरका उपयोग किया जाता है।

(औ० गु० ध० शा० के आधारसे)

कितनेक वातप्रकोप और कफप्रकोपके रोगियोंको जब वृक्क-विकार होनेसे मल्लसिंदूरका या मल्लमिश्रित अन्य औषधि सहन नहीं होती, तब इस तालसिंदूरका सेवन कराया जाता है।

इस रसायनके सेवन कालमें भोजनमें घी अधिक ले। मिर्च, तैल, नमक, गुड़ और खटाईका त्याग करे। कुष्ठरोगमें नमक और दूधका भी निषेध है। शोथरोगमें नमक नहीं देना चाहिये।

(६) शिलासिंदूर।

बनावट—शुद्ध मैनसिल ५ तोले, शुद्ध पारद १० तोले और शुद्ध गन्धक १० तोले मिलाकर कज्जली करें। फिर घीकुँवारके रसकी भावना दे सुखा, आतशी शीशीमें भर वालुकायन्त्रमें रख, २॥ दिन अग्नि देकर मल्लसिंदूरमें लिखी विधिसे शिलासिंदूर बना लेवे। शलाकासे सफेद बत्ती दीखने पर डाट लगावे। फिर ३६ घण्टे तक अग्नि तेज देवे। स्मरण रखे कि, मैनसिल अत्यन्त कठोर पदार्थ होनेसे मन्दाग्नि देनेसे नहीं उड़ता। इस औषधिमें सुवर्ण वर्क मिलाकर बनाने पर शिलाचन्द्रोदय कहलाता है। शिलासिंदूरका रंग कालसयुक्त चमकदार होता है।

(आ० नि० मा०)

मात्रा—एकसे दो रत्ती शहदके साथ देवे, या शिलासिंदूर वटी बनाकर उपयोगमें लेवे।

उपयोग—इस रसायनके सेवनसे श्वास, कास, मेद, कुष्ठ, विसर्प, कंठमाल, रक्तविकार आदि दोष दूर होते है।

इस रसायनमें मुख्य औषधि मैनसिल है। मैनसिल गुरु, वर्ण्य, सारक, उष्ण, लेखन, कटु (चरपरे) विपाकवाला, तिक्त (कडुवा) और स्निग्ध है, तथा विष, श्वास, कास, भूतबाधा और रक्तविकार

नाशक है । इसके ये सब गुण इस रसायनमें प्रतीत होते हैं । इसमें कटु, लेखन, कफघ्न गुण होनेसे मेदका शमन करता है, तथा नाड़ियोंमें रहे हुए कफको जलाकर श्वास और कास को दूर करता है ।

मेदोवृद्धि होने पर उदर्याकला पर मेदका अत्यधिक संग्रह हो जाता है, थोड़ा-सा चलने पर श्वास भर जाता है, प्रस्वेदमें दुर्गन्ध आती है, क्षुधा और तृषाके वेगको सहन करनेकी शक्तिका ह्रास होजाता है; तथा आलस्य और निद्रा बढ़ जाते है । उस पर इस रसायनके सेवनसे पचन क्रिया सबल बनती है, शनैः-शनैः मेद पचन होता है; और रोगनिवारणमें सहायता मिल जाती है । रोगीको चाहिये कि भोजनमेंसे घी, शक्कर और चावल हो सके उतने परिमाणमें कम करें, बार-बार भोजन न करे, तथा शक्ति अनुसार शारीरिक श्रम (घूमना, फिरना, या और कुछ कार्य करना) लेते रहे ।

इस रसायनमें कीटाणुनाशक और विषघ्न गुण होने से यह कण्ठमाला, अपची, रसौली, विसर्प, कफप्रधान कुष्ठ, व्युचो, रक्तवाहिनियोंमें स्थान-स्थान पर रक्त जम जाना, रक्तविकृति और त्वचाविकृति आदि व्याधियोंमें लाभदायक है । इसके सेवनसे कण्ठमाला, कुष्ठ आदिके कीटाणु नष्ट होते है, विषकी निवृत्ति होती है, दुष्ट कफ और दुष्ट आमका संशोषण होता है, तथा रक्तका प्रसादन होकर उक्त रोगोंका शनैः-शनैः निवारण होता है । कण्ठमाला, अपची और गलगण्ड रोग बहुत पुराने न हुए हों, जब तक रक्तमें विषप्रकोप अत्यन्त न होगया हो, तबतक औषधियोंसे लाभ होता है। रोग अति बढ़जाने पर बहुधा औषधि सेवन करने पर निवृत्ति नहीं होसकती ।

यह रसायन उत्तेजक, जन्तुघ्न, सारक और स्निग्ध होनेसे आमाशय और अन्त्रमें संगृहीत आम, जन्तु और विषको नष्ट करता है, एवं अन्त्रशक्तिको सबल बनाकर कोष्ठबद्धताको दूर करता है । इसमें भूतबाधाशामक गुण होनेसे वातवाहिनियोंके क्षोभसे होने वाले उन्माद रोगमें रोगशामक अन्य औषधियोंके साथ शिलासिंदूरको मिला देनेसे सत्वर लाभ पहुँचाता है । (औ० गु० ध० शा०)

(७) माणिक्य रस ।

बनावट—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मैनसिल और शुद्ध शीशा ८-८ तोले ले । शीशेको कड़ाहीमें रस कर पारा मिलावें । फिर गन्धक मिलाकर कज्जली करे । पश्चात् मैनसिल मिला ६ घण्टे खरल

कर घीकुँवारके रसकी भावना देवें। सूखने पर आतशी शीशीमें भर, वालुकायन्त्रमें रख कर २॥ दिन अग्नि देवे। स्वाँग शीतल होने पर शीशीके गलेमें लगे हुए माणिक्यके समान लाल रंगके सिंदूरको निकाल लेवें। (र० चं०)

सूचना—कितनेक ग्रन्थकारोंने इस रसायनमें हरताल भी मिलायी है। हम बिना हरताल मिलाये तैयार करते हैं। नीचे जो शीशा भस्म बच जाती है, उसे अधिक पुट देकर उत्तम नागभस्म बना लेते हैं।

मात्रा—आधसे एक रत्ती मक्खन और मिश्री, शहद या नागरबेलके पान अथवा रोगानुसार अनुपानके साथ देवें।

उपयोग—यह रसायन क्षयरोगमें ज्वर और कास दूर करके शरीरका वजन और बल बढ़ाता है। एवं कास, श्वास, धातुक्षीणता आदि रोगोंको भी दूर करता है। इसके सेवनसे शुक्रका स्तम्भन होता है, विविध रोग दूर होते हैं, राजयक्ष्मा समूल नष्ट होता है; और वृद्ध भी तरुण बनता है।

शुष्क कास जो बार-बार आध-आध घंटे तक आती रहती है; जिसमें कफ सरलतासे नहीं निकलता और रात्रिको सोनेके समय रोगीको त्रास पहुँचता है, उस पर यह रसायन अच्छा लाभ पहुँचाता है। इस रसायनके योगसे कफ सत्वर छूट जाता है। उरस्तोयमें फुफ्फुस आवरणके भीतर जल भरना, शुष्क कास होना और ज्वर बढ़ना आदि लक्षणोंको शमन करता है। क्षयरोगमें कफको पतला कर सत्वर बाहर निकालता है, और बढ़े हुए ज्वरको कम करता है।

यकृत्के पित्तका अम्लत्व गुण बढ़ने पर यकृत्में पीड़ा, पित्तका स्राव, पतले दस्त, मूत्रका कम होना, मुँहमें छाले, ज्वर आना इत्यादि लक्षण होते है। ये सब इस रसायनके सेवनसे दूर होते हैं।

वृद्धावस्थामें बहुमूत्र बहुधा वातवाहिनियोंकी विकृतिके कारण होता है। मूत्रका विशिष्ट गुरुत्व (Specific gravity) कम होने से बार-बार थोड़ा-थोड़ा पीले रंगका पेशाब होता रहता है, विष या क्षार रक्तमें शेष रहता है, जिससे शरीर निर्माल्य बनता जाता है। यह विकार इस रसायनके सेवनसे शान्त होजाता है। कारण, इस औषधिके योगसे मूत्रपिंड, मूत्रवहनलिका और मूत्रवहस्रोतसोंको उत्तेजना मिलती है; वातवाहिनियाँ सबल बनती हैं; और योग्य परिमाणमें क्षार का निःसरण होता है।

इस रसायनका कार्य उत्तेजक और शक्तिवर्द्धक होनेसे वृद्ध और

निर्बलोंके लिये यह अमृतरूप है। यह रसायन कफ और वात दोष; रस, रक्त और मांस, ये दूष्य, तथा यकृत्, फुफ्फुस, आमाशय, वातवाहिनियाँ और मूत्रस्थान, इन सबपर विशेष असर पहुँचाता है।

(८) सुवर्णवंग।

बनावट—शुद्ध कलई ५ तोले, शुद्ध पारद ५ तोले, शुद्ध गंधक ५ तोले, नौसादर ४ तोले और कलमीशोरा १ तोले लेवें। पहले कढ़ाहीमें कलई का रस करके पारद मिलावें। फिर सैंधेनमक का जल मिलाकर दो दिन खरल करनेके बाद ५-७ बार जलसे धो क्षारका अंश निकालकर सुखावें। पश्चात् गन्धक मिलाकर कज्जली करें। तत्पश्चात् नौसादर और शोरा मिला खरलकर आतशी शीशीमें भरें। फिर वालुकायन्त्रमें रख २४ घण्टे अग्नि देकर ओषधि तैयार करें। शीशीके गलेमें पहलेसे क्षार लगता है; इसलिये सावधानतापूर्वक बार-बार तप्त शलाकासे गला साफ करते रहें। ८-१० घण्टेमें गन्धक जारण होजाने पर डाट लगाकर १६ घण्टे अग्नि देनेसे ओषधि तैयार होजाती है। इस सुवर्णवंगको मृगाङ्क भी कहते हैं। शीशीके तोड़नेसे पेंदेमें से सुवर्ण के समान तेजस्वी, हलके वजनवाला सुवर्ण वङ्ग और गलेमेंसे क्षार और वंगसिंदूर (राजमृगांक) मिलेंगे। ये तीनों ओषधि उपयोगमें आती हैं। (रस० सा० सं०)

सूचना—सुवर्ण वङ्गको अग्नि अधिक तेज नहीं देनी चाहिये, अन्यथा शीशीमें अग्नि लग जाती है, जिससे वङ्ग जलकर काली होजाती है। कदाच प्रमादवश अग्नि लग जाय, तो तुरन्त शीशीके मुँहपर दो-चार मिनटके लिये डाट लगा देनी चाहिये, जिससे अग्नि बुझ जाय।

यदि गन्धक जीर्ण होनेपर शोरा डालें, तो बोतलमें अग्नि लगनेका भय नहीं रहता। इस रसायनका रंग गिन्नीगोल्ड जैसा कुछ लालप्रभायुक्त पीला होता है। यदि रंग शुद्ध सुवर्ण जैसा पीला बनाना हो, तो सुवर्ण वंगको कपड़ेमें रख गरम जलमें डुबो तुरन्त निकाल फिर सुखा देवें।

मात्रा—२ से ३ रत्ती शहद, मलाई या मक्खन-मिश्रीके साथ।

उपयोग—यह ओषधि बल्य, प्रमेहघ्न, कान्ति, मेधा तथा अग्निबलको बढ़ाने वाली है। मधुमेह, प्रमेह, स्वप्नदोष, खाँसी, धातुक्षीणता आदि दोष दूरकर शरीर को बलवान बनाती है। क्षार, शहदमें देनेसे सूखी खाँसी गीली होजाती है, तथा मन्दाग्नि, यकृत्दोष और मूत्रकृच्छ्र दूर होते हैं। वंगसिंदूर मलाई वा मक्खनके साथ देनेसे कास और श्वासको दूर कर शरीरको पुष्ट बनाता है।

वंगभस्मकी अपेक्षा सुवर्णवंगका रंग तो सुन्दर है, और संसार में महिमा भी बहुत गाई है, परन्तु हमें सुवर्ण वंगके गुणमें वंग भस्म की अपेक्षा विशेषताका अनुभव नहीं हुआ; ऐसा रसयोगसागरकार का कथन है। इसके विरुद्ध ओपधिगुणधर्म शास्त्रकार का लेख है। सत्य क्या है, इस बातका निर्णय चिकित्सक वर्ग ही करेंगे।

इस सुवर्ण वंगका उपयोग जीर्ण पूयमेहमें अच्छा होता है। पूयमेहके लीन विपको यह दूर करता है, और अपने रसायन गुणके हेतुसे शरीरको सबल बनाता है। एवं पूयमेहयुक्त उपदंश, नपुंसकता, चर्मविकार आदिको भी दूर करता है।

यह भस्म रक्तमें संचित विपको मूत्र द्वारा बाहर निकाल देती है। मूत्रेन्द्रिय और मूत्र यन्त्रको बलवान् बनाती है, तथा मूत्राशय विकृतिको शनैः शनैः दूर करती है।

पचनेन्द्रियमें विकार होनेपर सेन्द्रिय विपकी उत्पत्ति होती है; एवं वृक्क-यन्त्र निर्बल होजाने पर विप बाहर नहीं निकल सकता। परिणाममें बहुमूत्र या प्रमेह (मधुमेहके अतिरिक्त प्रमेह) होजाते हैं। फिर शरीर शनैः-शनैः गलता जाता है। इन पर विपकी उत्पत्तिको रोकने और संचित विषको बाहर निकालने वाली औपधि देनी चाहिये। ये दोनों कार्य इस रसायनसे होते हैं। इनपर भूलसे स्तम्भक औषधि दीजाय, तो लाभके स्थान पर हानि पहुँचती है।

प्रमेह और पूयमेह, दोनों रोगोंकी प्रतीति मूत्रस्थानमें होती है। परन्तु दोनोंमें अति भिन्नता है। मूत्रोत्पत्ति और मूत्रोत्सर्ग करानेवाले अवयवोंमें निज दोप-विकृति होने पर प्रमेह रोगकी उत्पत्ति होती है; और पूयमेहकी प्राप्ति-अण्डाकृति कीटाणु-गोनोकोकस (Gonococcus) द्वारा होती है। यह पूयमेह किसी स्त्री या पुरुपको होने पर उससे संसर्ग करनेवाले अन्य स्त्री-पुरुपोंको होजाता है। इस व्याधिमें मूत्रनलिकाके भीतर प्रदाह, शोथ, व्रण और पूयोत्पत्ति होजाती है। इसकी तीव्रावस्थामें तो इस ओपधिका उपयोग नहीं होता, परन्तु पूय की कमी होनेपर इसके सेवनसे अच्छा लाभ होता है, आन्तरिक क्षति की पूर्ति होती है; तथा दाह, हाथ-पैर टूटना, मूत्रावयवमें जलन और व्याकुलता आदि की निवृत्ति होती है।

जीर्णावस्थामें सुवर्णवङ्ग, प्रवालपिष्टी, शिलाजीत, गंधाबिरोजा और अमृतासत्व मिलाकर दिनमें दो बार देते रहनेसे विष शमन होकर स्वास्थ्यकी प्राप्ति होजाती है। यदि पूय बिल्कुल न आता हो, तो

सुवर्णवङ्ग, रौप्यभस्म, वंशलोचन और अमृतासत्व मिलाकर मलाई-मिश्रीके साथ दिया जाता है।

यह रसायन पूयमेहयुक्त उपदंशकी द्वितीयावस्था और तृतीयावस्थामें अच्छा उपयोगी होता है। इसके साथ अष्टमूर्त्ति रसायन या मल्लसिन्दूर द्वितीय प्रकारकी योजना करनी चाहिये। इसके सेवनसे शरीर पर उत्पन्न पिटिकाएँ और धब्बे जल्दी अच्छे होजाते हैं। प्रथमावस्थामें तो पारद भस्म, अमीर रस और व्याधिहरण रस विशेष हितकारक है, तथा द्वितीय और तृतीयावस्थामें जब विकार अस्थि तक पहुँच जाता है, तब अष्टमूर्त्ति रसायन और उपदंशचूर्ण विशेष हितकर माने जाते है। उस समय सुवर्णवंगसे लाभ नहीं होता। परन्तु जीर्ण लीन उपदंश विकारमें सुवर्णवंगको सारिवा और मंजिष्ठाके क्वाथ या अर्कके साथ देनेसे अच्छा लाभ होता है।

अन्य प्रकारके विषसे उत्पन्न चर्मरोगोंमें सुवर्णवंगका अच्छा उपयोग होता है। इस हेतुसे पुराना पामा रोग, बार-बार होने वाले व्रण, प्रस्वेद स्राव युक्त व्युची, अरुंषिका आदि त्रासदायक और अड्डा जमाकर बैठे हुए त्वचा रोगोंमें इस रसायनका अच्छा उपयोग होता है। इस प्रकारके रोगोंमें ७ दिन तक देवें। फिर ७ दिन छोड़ दें। पुनः ७ दिन दें और ७ दिन बन्द करें। इस तरह औषध देते रहना चाहिये। एवं कोष्ठशुद्धिके लिए एरण्ड तैल या अन्य सौम्य विरेचन देना चाहिए। कितनेक पूयमेहके रोगियोंको नपुंसकताकी प्राप्ति होती है। यह नपुंसकता इस सुवर्णवंगके सेवनसे दूर होती है।

सुवर्णवंग संधिवात पर उत्तम औषध है। संधिवात और आमवातमें महदन्तर है। पूयमेह, उपदंश, दन्तवेष्ट (Pyorrhoea) आदि विकारों से उत्पन्न संधिवातमें पूय हेतु है, तथा आमवातमें आम हेतु है। आमवातमें महायोगराज गूगल, रास्नादि कषाय, श्योनाक छाल आदि आमनाशक औषधियाँ लाभदायक है। संधिवातमें पूयनाशक गुणप्रद सुवर्णवंग उपयोगी है। यदि पूयमेहका रोग जीर्ण होने पर शोथ उत्पन्न हुआ हो, तो वह भी इस औषधके सेवनसे निवृत्त होता है। इस तरह पूयमेहसे उत्पन्न नेत्रके पूयाभिष्यन्द रोगमें भी इसका उत्तम उपयोग होता है।

सुवर्णवंगका उपयोग पित्तप्रधान कासमें उत्तम होता है। सूखी खाँसी, कण्ठमें दाह, खाँस-खाँसकर वमन होजाना, नेत्र, कण्ठ और नाकमेंसे स्राव होना, दाह, चक्कर, स्वरयन्त्र, प्रसनिका, उपजिह्वा, मुखका

आगेका हिस्सा, ये सब लाल होजाना इत्यादि लक्षण होने पर सुवर्ण-वंग आमके मुरब्बे के साथ देनेसे सत्वर लाभ होता है।

किसी भी स्थानमें वात या पित्तकी दोषज वृद्धि, विशेषतः पित्तज वृद्धि होने पर वंगेश्वर बहुत अच्छा काम करता है। इसी प्रकार किसी ग्रन्थिकी वृद्धि होने पर भी वंगेश्वर दिया जाता है।

धातु-परिपोषण-क्रममें शरीरकी क्षतिकी पूर्ति करना यह मुख्य कार्य है। नित्य होने वाले शारीरिक व्यापारसे जो क्षति होती है, वह धातुके उत्पादन द्वारा पूर्ण होती है। इस तरह धातु-साम्य बना रहता है। इसी साम्य पर आरोग्यका आधार है। परन्तु कभी-कभी अनेक भिन्न-भिन्न कारणोंसे इस न्यूनताकी पूर्ति नहीं होती, बल्कि अधिकाधिक ह्रास होता जाता है। इस तरह शरीरस्थ रक्त आदि धातुओंका परिमाण भी न्यून होने लगता है। प्रतिदिन उत्पत्ति कम और नाश अधिक होते रहनेसे देह शुष्क होजाती है। इस स्थितिके कारण अनेक हैं। जो कारण हो, उसे निर्णीत कर दूर कर देना चाहिये। परन्तु जब कोई निश्चित कारण नहीं मिलता और शरीर कृश होता जाता है, तब सुवर्णवंग देना, यह उत्तम मार्ग है। इससे शारीरिक व्यापार नियमित बनता है, और शारीरिक कृशता कम होने लगती है। इस दृष्टिसे यह रसायन जीवनीय औषध है।

इस रसायनके साथ शिलाजतु, लोहभस्म, प्रवालपिष्टी, मिश्रित करनेका भी रिवाज है। इनके मिश्रणसे अच्छा लाभ होता है। तथापि इनकी अपेक्षा वंगेश्वरको स्वतंत्र देना विशेष हितकर है।

सुवर्णवंग शक्तिवर्द्धक, धातु-परिपोषण-क्रम नियमित करने वाली और सुधारनेवाली, पूयनाशक, जीर्ण सुजाक और उपदंशमें लाभदायक है, एवं यह मूत्रेन्द्रियको निर्विष बनाती है।

यह रसायन पित्त, वात, ये दोष, रक्त मांस, ये दूष्य, तथा मूत्रेन्द्रिय, जननेन्द्रिय, मूत्राशय और वृक्क स्थान पर लाभ पहुँचाता है।

(औ० गु० ध० शा०)

श्वेतप्रदर जनित निर्बलता आने तथा पाण्डुता और उष्णता रहने पर सुवर्णवंग, सुवर्णमाक्षिक भस्म और गोदंती भस्म के साथ मिलाकर मधुकाद्यवलेह के साथ देनेसे प्रदर और उससे उत्पन्न सब उपद्रव दूर होजाते हैं।

कासरोगमें कफको बाहर निकालनेके लिये सुवर्णवङ्ग वासाक्षार, मुलहठी और बहेड़ेके चूर्णके साथ दी जाती है। एवं बार-बार

कास आती रहती हो, तो जहरमोहरा पिष्टि और लोहवान पुष्पके साथ देने से सत्वर लाभ पहुँचता है। अग्निमान्द्य, घबराहट, कफकी उत्पति को रोकने के लिये पीपरामूल और शहद के साथ देनेसे रात्रि को त्रास कम हो जाता और घबराहट दूर होती है।

त्वचागत वायु कुपित होनेपर चर्मकील रोग होजाता है। इसके मस्से त्वचाके रंगके, कठिन, छोटे-छोटे और कभी कभी समीप-समीप अनेक होजाते है। फिर रोगी दीर्घकाल तक उपचार नहीं करते। ऐसे जीर्ण रोगपर पीलुके पानी की पुल्टिस या लेप लगाते रहनेके साथ सुवर्णवंग ½ रत्ती, यवक्षार और त्रिफला चूर्ण २-२ रत्ती मिला दिनमें दो बार भोजन के बाद देते रहनेसे सत्वर लाभ हो जाता है। यदि नये-नये उत्पन्न होते है, तो वे बन्द हो जाते हैं।

दूसरी विधि—नौसादर, सैंधानमक और पारद, तीनों औषधियों ५-५ तोले मिला खरल कर डमरूयन्त्रमें बन्द करे। फिर ४ प्रहर तक अग्नि देवे। स्वाग शीतल होने पर यन्त्रको खोलकर ऊपर लगे हुए पारदमिश्रित नौसादरके फूलको ले लेवें। इस फूलके बराबर शुद्ध कलईका रेतेसे किया हुआ चूर्ण (या भस्म) और दोनोंके बराबर शुद्ध गन्धक मिलाकर कपड़मिट्टी की हुई आतशी शीशीमें भरें। पश्चात् वालुकायन्त्रमें रखकर १॥ से २ दिन तक अग्नि देवें। स्वांग शीतल होने पर सुवर्णके सदृश सुवर्णवंग (मृगांक) को निकाल लेवें। कितनेक ग्रन्थकारोंने इसे मस्क मृगाङ्क और सुवर्णराजवंगेश्वर नाम भी दिया है। (र० यो० सा०)

मात्रा—२-२ रत्ती इलायची के चूर्ण और शहद के साथ।

उपयोग—किसी ग्रन्थकारने लिखा है कि यह भस्म सुवर्णभस्म से सौगुना लाभ पहुँचाती है। यह वृष्य, आयुवर्द्धक और कामोत्तेजक है। सब प्रकारके प्रमेह और मधुमेहका नाश करती है।

(६) समीरपन्नग रस।

बनावट—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, सोमल, मैनसिल और हरताल प्रत्येक १०-१० तोले लेकर कज्जली करे। फिर तुलसीके रस या घीकुँवारके रस की ३ दिन तक भावना देकर सुखा देवें। पश्चात् आतशी शीशीमें भरकर ५० से ६० घण्टे तक अग्नि देनेसे काला, तेजस्वी और कठोर समीरपन्नग रस शीशीके गलेमें तैयार होता । लगभग १६ घण्टे तक मन्दाग्नि देनेसे गन्धकका जारण होता है। फिर डाट लगाकर ३६ घण्टे तेज अग्नि देनी पड़ती है। मूल ग्रन्थकारने

८ प्रहर तक क्रमाग्नि देकर तलस्थ रसायन बनानेको लिखा है।

(औ० गु० ध० शा०)

वक्तव्य—कितनेक चिकित्सक २॥ तोले स्वर्ण वर्क मिला ४८ घण्टे की मन्दाग्नि देकर तलस्थ रसायन बनाते हैं। उसे 'सुवर्ण समीर पन्नग' कहते हैं। इसमें सुवर्ण मिल जाने से और मन्दाग्नि पर पाक होने से रसायन की उग्रता विशेष नहीं होती। उपयोग करने पर वह विशेष गुणदायक विदित हुआ है।

मात्रा—½ से २ रत्ती तक दिनमें २ से ३ समय, नागरबेलके पानमें या अदरखके रस और शहदके साथ। श्वासावरोध या श्वासमें कफस्राव करानेके लिये वासाके पत्ते, मुलहठी, बहेड़ा, भारङ्गी और मिश्रीके क्वाथके साथ देवें।

उपयोग—यह रसायन त्रिदोष और निमोनियामें घबराहट, संधिवात, उन्माद, कास, श्वास, ज्वर, जुखाम आदि रोगोंको शान्त करता है। इसमें सोमल, हरताल और मैनसिल मिलाया है। ये तीनों अत्यन्त उग्र और उष्णवीर्य है। तीनोंमें भी सोमलकी ही प्रधानता है, फिर भी मल्लभस्म, मल्लपुष्प और मल्लसिंदूरकी अपेक्षा यह रसायन कम तीव्र है। जहाँ मल्लभस्म देनेमें हानि होनेका भय रहता है, वहाँ पर समीरपन्नग देनेमें अधिक भय नहीं है।

इस रसायनमें सोमल मिला हुआ है, तथापि इस रसायनकी बड़ी मात्रा देने पर (सोमलका परिमाण अधिक होजाने पर भी) विषविकारके लक्षण प्रतीत नहीं होते। उग्रताकी यह न्यूनता रासायनिक संमिश्रणसे होती है। समीरपन्नग, मल्लसिंदूर और पंचसूत, तीनोंमें सोमल मिलाया है। अतः तीनोंके गुण धर्ममें साधर्म्य है, और वैशिष्ट्य भी। मल्लसिंदूर अत्यन्त तीक्ष्ण, विस्फोटकारी और श्लैष्मिक कला पर उग्रता उत्पादक है। पंचसूतमें मल्लसिंदूरकी अपेक्षा तीक्ष्णता न्यून है, और श्लैष्मिक कलाको कम हानि पहुँचाता है, तथा संचित कफका शोषण करके रूपान्तर कराता है। समीरपन्नग मल्लकल्प होने पर भी दोनोंकी अपेक्षा कम तीव्र गुणयुक्त, कम स्फोटोत्पादक और कम दाहक है।

समीरपन्नग श्वासवाहिनियों और फुफ्फुस कोषोंके भीतर श्लैष्मिक कलापर शोथ न लाकर कफका स्राव कराता है, और दोष निकल जाने पर उस स्थानके घटकोंको सशक्त बननेमें सहायक होता है।

समीरपन्नगके प्रयोगसे श्वासनलिकाके अन्तरमें उत्पन्न दुष्ट व्रण कफात्मक या वातात्मक होने पर कफस्राव कराकर उसे नष्ट कर देता है।

इस हेतु से जीर्णकास या कफाधिक विकारमें वात और कफकी प्रधानता होने पर समीरपन्नगका अच्छा उपयोग होता है।

मल्लसिंदूर से कफका शोषण होता है; कण्ठ और श्वासवाहिनियाँ शुष्क हो जाते है। पञ्चसूतसे संचित कफमेंसे दुर्गन्ध कम होती है। जल द्रव्यका रूपान्तर होकर कफ कम हो जाता है। समीरपन्नगसे श्वासवाहिनियाँ और फुफ्फुस कोष उत्तेजित होते हैं; कफ छूट कर कफस्थानकी शुद्धि होती है। इस हेतुसे जिस स्थान पर कफस्राव कराना इष्ट हो उस स्थान पर कफवातज कास-श्वासमें समीरपन्नगका अच्छा उपयोग होता है।

यदि उरस्तोय और कुक्षिशूल हो, तो वहाँ पर समीरपन्नगकी अपेक्षा पंचसूत अधिक हितकारक है। कारण, उरस्तोयमें संचित द्रवका रूपान्तर और संशोषण करानेके महत्त्वका गुण जैसा पंचसूतमें है; ऐसा समीरपन्नगमें नहीं है।

वातकफभूयिष्ठ श्वास रोगमें समीरपन्नगका अच्छा उपयोग होता है। पंचसूतका अधिक उपयोग नहीं होता। ऐसे श्वासमें समीरपन्नग देने पर तत्काल कफस्राव होने लगता है। इसके लिए समीरपन्नग ½ से १ रत्ती और सोहागेका फूला ३ रत्ती मिलाकर शहदके साथ देवें। ऊपर मुलहठी, बहेड़ा, मिश्री और अडूसेके पत्तेका क्वाथ पिलावें। अवाश्यकतापर क्वाथ आध-आध घण्टे पर २-३ बार देवें। यह क्वाथ वेगशामक और कफस्राव करानेवाला है। इस क्वाथका रसायनके साथ सम्मिलन होनेसे कफ जल्दी-जल्दी निकलने लगता है, और श्वासवेग शमन होजाता है। तीक्ष्ण वेग शमन होने पर फिर इसे नागरवेलके पानमें देनेसे आंतरिक शक्ति सबल बनती है।

समीरपन्नग उत्तेजक और बलवर्द्धक होनेसे पाण्डु और विषमज्वरके पश्चात् आई हुई निर्बलतामें अति कम मात्रा (⅛ रत्ती) में दिन में दो बार लोहभस्मके साथ मिलाकर देनेसे अच्छा लाभ पहुँचाता है।

जीर्णकासमें अनेक प्रकार है। कितनेक व्यक्तियोंको यह विकार वर्षाऋतुमें उत्पन्न होता है। कितनेकोंको शीतकालमें और किसी-किसी को उष्ण ऋतुमें होजाता है। जैसे कारण हो, उनके अनुरूप दोष प्रकुपित होते है। कभी व्याधि कुछ काल तक शमन होजाने का भास होता है। दोष धातुओंमें लीन होजाता है, जिससे पुनः पुनः विवक्षित दोष-प्रकोप-कालमें उनके लक्षणोंसे युक्त होकर आक्रमण करता है। उदाहरणार्थ—शीतल वायुमें रहना, लुणेवाले मकान अर्थात्

जिसकी दीवारोंमेंसे लवण निकलता रहता हो, ऐसे स्थान में या सील-युक्त मकानमें रहना आदि कारणोंसे कफभूयिष्ठ कास होजाती है। इस प्रकारकी कास तत्काल कम हुई, तो अच्छा, अन्यथा दोष लीन होजाता है। फिर सामान्य प्रतिकूलता होनेपर (रोगको अनुकूलता मिलने पर) रोग बार-बार आक्रमण करता रहता है। इस हेतुसे मकान सदोष हो, तो मकानका त्याग कर देना चाहिये। अन्यथा वर्षाऋतुकी शीतल वायु लगने पर एवं शीतकालमें वर्षा होने पर बार-बार व्याधि त्रास देती रहती है, शनैः-शनैः रोग जीर्ण होता जाता है, और जीवनीय शक्तिको निर्बल बनाता जाता है। फिर चाहे स्थान परिवर्तन करे या चाहे उतना पथ्यपालन करे, तो भी रोगसे मुक्ति नहीं मिलती, क्योंकि दोषका अत्यन्त सूक्ष्म अंश बीजरूपसे देहमें दृढ़ होजाता है। यथार्थमें जिस समय पहली बार दोष दुष्ट होकर कासोत्पत्ति हुई है, उसी समय इन सबका विशिष्ट संमिलन हुआ है। फिर इस सम्मिलनके अनुरोध से दोष-दूष्य संयोगका परिणाम शारीरिक घटक पर होता है, इसी हेतु से बार-बार समान लक्षण उपस्थित होते रहते है।

विपरीत कारणोंसे उत्पन्न हुई शारीरिक परिस्थितिमें दोषदूष्य संयोग दबा हुआ रहता है। परन्तु उसके बीजोंको थोड़ीसी अनुकूलता मिलने पर अपना प्रभाव दर्शा देते है। जिस तरह घासके बीज ग्रीष्मऋतुके तापसे या अग्निसे जल जानेपर भी वर्षाऋतुमें पुन सजीव होजाते है, उसी तरह इस रोगके बीज भी पुनः रोगके स्वरूपको धारण करते रहते हैं। इस दृष्टि से यह रोग प्राकृतिक बन जाता है। प्राकृतिक रोग अनेक हैं, इनमें जीर्णकास अति त्रासदायक है। कफस्थान का स्वभाव कफस्राव करानेका होजाने पर बार-बार श्लैष्मिक कला मेंसे कफस्राव होता रहता है। जीर्ण कासविकारमें श्वासनलिका, श्वास-प्रणालिका, श्वासवाहिनि जाल और फुफ्फुसकोष गत श्लैष्मिक त्वचा, ये सब दुष्ट होजाते है। श्लैष्मिक कलामें कुछ उग्रता आती है, या सूक्ष्म-सूक्ष्म व्रण होते है। अत कफ सचय होने पर उपचार करनेसे कफस्राव होजाता है, और किञ्चित् काल स्वस्थताका भ्रम होता है। किन्तु रोगबीज जैसाका वैसा ही सुप्तावस्थामें रह जाता है। ऐसी स्थितिमें बीजको ही नष्ट करनेका प्रयत्न करना चाहिये।

प्राकृतिक रोगके अन्य भी अनेक प्रकार है। इनमेंसे एक चर्म-रोग भी है। कितनेक कण्डू, पामा, व्युची, दाद, चर्मदल, विस्फोटक, पीटिका आदि पीड़ित रोगियोंको बाल्यावस्थामें उत्पन्न चर्मरोग समग्र

जीवन पर्यन्त त्रास देता रहता है। कभी किसी-रूपमें एक स्थानमें होता है, तो दूसरी बार दूसरे रूपमें अन्य स्थान पर होजाता है। इनकी खुजानेकी रीति, चलनेकी शैली, मन्दता, अस्थिरता, मानसिक चंचलता और वर्त्तावमें कुछ उतावलापन भासता है। ऐसे जीर्ण रोगमें एक प्रकारकी विशिष्टता प्रतीत होती है। वह यह है कि, कास और चर्मरोग क्रमशः आक्रमण करते रहते है। जब तक त्वचारोग सबल है; तब तक कास कम रहती है, या बिल्कुल नहीं रहती। फिर चर्मरोग दब जानेपर आंतरिक दोषसे कफभूयिष्ठ विकार बलवान बन जाता है। त्वचा पर स्फोट रूपसे उत्पन्न होनेवाले लक्षण और भावी कफके लक्षण, दोनो एकही प्रकारके दोष-दूष्य विकृतिमे उत्पादित होते है। इस तरह कफ और कफवात प्रकोपसे उत्पन्न इन विकारोंमें समीरपन्नग अच्छा उपयोगी है। समीरपन्नग दिनमें एक बार ही देना चाहिये, और अन्य कोई भी औषध नही देनी चाहिये। अन्य औषध मिला देनेसे समीर-पन्नगके कार्यमें प्रतिबन्ध होता है।

यह रसायन उपदंश या पूयमेहके उपद्रवरूप सन्धिवात, रक्त-विकार, त्वचारोग, जीर्ण पक्षाघात और अन्य उपद्रवोका नाश करता है। अर्दित, जिह्वास्तम्भ, धनुर्वात या अन्य वात रोगोमें, जब कफ दोष सम्मिलित हुआ हो तब इस समीरपन्नग के सेवनसे अच्छा लाभ पहुँचता है। वात आक्षेपके लिये भी समीरपन्नग अति हितकर है। इस तरह स्तम्भसंकोच, शूल आदि वातविकारमें भी यह अच्छा उपयोगी है। बृंहण अनुपानके साथ देना चाहिये। कफप्रधान उन्मादमें भी वातकफ वृद्धिका शमन करके रोगको दबा देता है। रसाजीर्णमें प्रायः पित्तस्राव कम होता है, और कफस्राव अधिक होता है। इस पर समीरपन्नगका उपयोग अच्छा होता है। उदरमें जड़ता, अन्नविद्वेष, उबाक, मुँहमें मीठापन, चिपचिपा थूक, उदरमें वातसचय आदि लक्षण होने पर समीरपन्नग अति उपयुक्त है।

विसूचिका रोगमें वमन-विरेचन अधिक होजाने पर शक्तिपात हो जाता है। हाथ-पैरमें शीतलता, नाड़ी अति मन्द होजाना, निश्चेष्टता और सर्वाङ्ग प्रस्वेद पूर्ण होजाता है। ऐसी स्थिति में सोंठ और कायफल की मालिश कराई जाती है, तथा समीरपन्नग ½ रत्ती, मण्डूर-भस्म, सुवर्णमाक्षिक भस्म और प्रवालपिष्टीके साथ मिला तुलसीका रस, अदरखका रस और शहद मिलाकर १०-१० मिनट पर देते रहनेसे रोगी सचेत होजाता है और देह उष्ण होजाती है। फिर

सूतशेखर और संजीवनी वटी देनेसे रोगी सुधर जाता है।

मलावरोध दीर्घकाल तक रहनेपर कीटाणुओंकी आवादी दृढ़ होजाती है। फिर उस हेतुसे किसी-किसीमें आक्षेप आने लगता है। तीव्रावस्थामें छातीकी धड़-धड, श्वासोच्छ्वासमें कष्ट, शिर दर्द और घबराहट आदि लक्षण उत्पन्न होते है। झटकाकी इस तीव्रावस्थामें समीरपन्नग ¼ रत्ती मात्रा में लहशुनके रसके साथ दिनमें ३ वार देने और निवाये चन्दन बला लाक्षादि तेलकी मालिश करने पर रोग शमन होजाता है। समीरपन्नग देनेके पहले एरंड तैलसे उदर शुद्धि कर लेवे।

सेन्द्रिय विष प्रकोप या वार-वार अत्यधिक भोजन करनेकी आदत वालोंका आमाशय शिथिल होजाता है। फिर भोजन जब तक न किया जाय, तबतक एक पीछे एक डकार आती रहती है। अधिक डकार आनेसे छातीमें वेदना, अग्निमान्द्य, अशक्ति आदि लक्षण उपस्थित होते है। इस विकार पर समीरपन्नग, शंखभस्म और मुलहठीके चूर्णको आमके मुरब्बामें मिला लेवे। फिर भोजनके समय थोड़ा-थोड़ा ग्रास-ग्रासके साथ मिलाकर सेवन करानेसे थोड़े ही दिनोंमें गुण होजाता है।

छातीमें कफ सूख जाने पर वात प्रकुपित होकर शूल निकलने लगता है, यह शूल खाँसी आने पर निकलता है। वातप्रकोप होनेसे भीतर कफ सूखकर सूखी खासी होजाती है। इस रोग पर समीरपन्नग, मुलहठी सत्व, अदरखके रस और शहदके साथ मिला भोजनके साथ सुबह-शाम देते रहनेसे शूल निवृत्त हो जाता है और कफ छूटकर बाहर निकल जाता है।

समीरपन्नग कटुरसात्मक (चरपरा), कटुविपाकी, उष्ण, तीक्ष्णवीर्य, उत्तेजक, बल्य, कफघ्न, कफवातघ्न और त्वचाके रोगोंका नाशक है। इसका कार्य कफ और कफवात, ये दोष, रस, रक्त और मांस ये दूष्य, एवं उर, आमाशय, यकृत्, प्लीहा, वातवाहिनियाँ, वातवाहिनियोंके केन्द्रस्थान, मस्तिष्क और त्वचा, इन स्थानो पर होता है।

वक्तव्य—इस रसायनको अनेक चिकित्सक २४ घण्टेकी अग्नि देकर तल भागमें ही सिद्ध करते हैं। उसमें कालागन अधिक रहता है, और कण्ठस्थ रसायनकी अपेक्षा उग्रता भी अधिक होती है।

द्वितीय विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, सोमल और हरताल,

भागोंको समभाग मिला कुमारीके रसमें [illegible] दिन [illegible] आतशी शीशीमें रख २४ घण्टे मन्दाग्नि देकर [illegible] रसायन [illegible]।

(र० [illegible])

मात्रा और उपयोग—[illegible] विधिके अनुसार।

यह रसायन प्रथम विधिकी अपेक्षा [illegible] के [illegible] जनित रोगों पर [illegible] लाभ पहुँचाता है। इस [illegible] विधि [illegible] उल्लिखित रसायनका उपयोग [illegible] और कुष्ठरोगों पर [illegible] किया है [illegible] पर यह जितना लाभ पहुँचाता है, उतना [illegible] नहीं होता। [illegible] होते हैं। [illegible] और [illegible] है। ऐसी स्थितिमें यह [illegible] रोगको निवृत्त करता है।

पहली विधिकी अपेक्षा यह रसायन [illegible] और इसकी [illegible] श्याम होता है। इसको [illegible] वातकफप्रधान [illegible] विचार [illegible]।

सूचना—[illegible] लगावें। [illegible] अग्नि पाक होनेमें [illegible] घण्टे [illegible] लगता है।

यदि तलस्थ [illegible] सख्त न बना हो, तो [illegible] १–६ घण्टे [illegible] मन्दाग्नि देकर परिपक्व बना लेवें। इस रसायनको [illegible], तो थोड़े ही दिनोंमें काले नमकके समान दुर्गन्ध आने लगेगी, और रसायनपर सफेद क्षार लग जायगा। ऐसे दूषित रसायनका उपयोग न करें। शुद्ध गन्धक मिला [illegible] वालुकायन्त्रमें रख, अग्नि देकर उड़ा लेना चाहिये।

(१०) सुवर्णभूपति रस।

बनावट—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक १–१ भाग, ताम्र भस्म

२ भाग, अभ्रक भस्म, लोह भस्म, कान्तलोह भस्म (अभावमें लोह भस्म), सुवर्ण भस्म, रजत भस्म और शुद्ध बच्छनाग १-१ भाग लेकर सबको मिला लेवे। फिर हंसराजके रसमें १२ घण्टे मर्दन करके सुखा लेवें। पश्चात् आतशी शीशीमें भर, चाक मिट्टीका डाट लगा, मजबूत बन्द कर वालुकायन्त्रमें रख, दो प्रहर मन्दाग्नि देकर औषधि पाक करें। पैदेमें ही औषधि मिलकर जम जाती है। रेता और शीशीके ऊपर का भाग अच्छी तरह गरम होजाय, तब अग्नि देना बन्द करें। स्वांग शीतल होने पर पैदेमेंसे सुवर्णभूपति रस निकाल लेवें। (यो० र०)

मात्रा--१ से ३ रत्ती अदरखके रस और मिश्रीके साथ या पीपल और शहदके साथ अथवा रोगानुसार अनुपानके साथ देवें।

उपयोग--यह रसायन सब प्रकारके सन्निपात और क्षयकी दूसरी अवस्थामें अति लाभदायक है। आमवात, धनुर्वात, शृङ्खलावात (लॅगड़ापन), ऊरुस्तम्भ (आढ्यवात), पंगुवात, कम्पवात, कटिवात, मन्दाग्नि, सब प्रकारके शूल, गुल्म, उदावर्त, भयंकर संग्रहणी, प्रमेह, उदर रोग, सब प्रकारकी अश्मरी, मलावरोध, मूत्रविबन्ध, भगन्दर, सब प्रकारके कुष्ठ, विषविकार, बढ़ा हुआ विषप्रकोप, विद्रधि, श्वास, कास, अजीर्ण, सब प्रकारके ज्वर, कामला, पाण्डु, शिरोरोग आदि सब कफ-वात-प्रधान रोग अनुकूल अनुपानके साथ इसके सेवनसे दूर होते हैं। महाराष्ट्र में अनेक वैद्य इस औषधिका अनेक रोगों पर उपयोग करते हैं। यह महाराष्ट्रकी अति प्रसिद्ध औषधि है।

इस सुवर्णभूपतिमें सुवर्ण, रौप्य, ताम्र, लोह और अभ्रक, इन भिन्न-भिन्न गुण वाली धातुओंका संयोग होनेसे यह वात, पित्त और कफ, तीनों दोषोंके विकारोंको शमन करनेमें प्रभावशाली है। सन्निपातमें कफसे श्वासनलिका अति आच्छादित न हुई हो, वात या पित्तप्रकोप अधिक हो, कफविकृति न्यूनांशमें हो, ऐसे सब सन्निपातोंमें यह लाभ पहुँचाता है। क्षयकी दूसरी अवस्था तक इस का उपयोग होता है। क्षयमें सूक्ष्म मात्रा देनेसे कीटाणुओंका नाश, वातप्रकोप, ज्वर और कासका शमन, बलकी वृद्धि और शान्ति प्राप्त होती है।

इस रसायनमें ताम्रका परिमाण अधिक होनेसे यकृत्, प्लीहा और वृक्कस्थानको शुद्ध करना, संचित सेन्द्रिय विषको बाहर फेंकना एवं कफ और आमपाचन करना, ये गुण विशेष रूपमें मिलते हैं।

इसके सेवनसे अजीर्ण, उदरशूल, सारे शरीरमें चलनेवाले शूल और आमवातका शमन होता है।

इस तरह रौप्य के प्रभाव से वातवाहिनियों और वातप्रकोप पर लाभ पहुंचता है। विविध प्रकारके कम्प, हनुस्तम्भ, आक्षेप-कवात, चक्षुगत वातविकार, वातवृद्धि होकर चक्कर आना, मूर्च्छा, शुष्क कास और शूल आदिपर व्यवहृत होता है। कभी साथमें कुचिला मिला दिया जाता है और दशमूल क्वाथ या रास्नादि क्वाथ अनुपान रूपसे दिया जाता है।

आहार-विहारमें दीर्घकाल पर्यन्त अनियमितता होनेसे आमाशय, यकृत, फुफ्फुस, हृदय या गुदाशय आदि यन्त्र शिथिल हो जाते है, तब इनके व्यापारमें न्यूनता न होने के लिये वातवाहिनियों के तन्तु लम्बे और पतले बनकर इन सब आशयोंका संरक्षण करते हैं। परन्तु जब इन वातवाहिनियोंकी शक्तिका क्षय हो जाता है, तब पक्षाघात आदि विविध वातरोगोंका आक्रमण होता है। इन वात रोगोंमें तीव्रावस्था दूर होने पर वात, पित्त, कफ तीनों धातु, सब आशय और वातवाहिनियोंको सबल बनाकर रोगको पूर्णांशमें दूर करनेके लिये यह रसायन अति उपयोगी है।

जब पचन-क्रियामें विकृति होनेसे सेन्द्रिय विषकी उत्पत्ति होती है, और फिर इसी हेतुसे धमनियोंमें फिरने वाले रक्तमें मलिनता आजाती है, रक्त शैरिक भावको प्राप्त होता है, तब वाताक्षेप उपस्थित होता है। इस अवस्थामें पचन-क्रिया सुधार कर और सेन्द्रिय विषको नष्ट कर आक्षेपको दूर करनेका कार्य इस सुवर्णभूपतिसे होता है।

इनके अतिरिक्त मानसिक आघात पहुंचने पर वातप्रकोप हो जाता है। उसे भी यह सुवर्णभूपति रस दूर करता है। इससे वातकफ-प्रधान ऊरुस्तंभ और वातवाहिनीकी विकृतिसे होनेवाले वातरोग, यकृत् और अन्त्र दोषसे उत्पन्न वातरोग, उदावर्त्त, शिरोरोग, गुल्म, उदररोग, कास और श्वास भी दूर होते हैं।

इस ओषधिमें वात आदि तीनों दोषोंको नियमित करने और सेन्द्रिय विषको नष्ट करनेका गुण होनेसे यह मधुमेहको छोड़कर शेष सब प्रकार के प्रमेहोंको नष्ट करती है। कच्चे आम को प्रस्वेद और मूत्र द्वारा बाहर निकालती है, और जलाती भी है, जिससे दिनो तक बने रहने वाले नूतन ज्वर और जीर्ण ज्वरका शमन होता है, तथा मल-मूत्रावरोध और अजीर्ण नष्ट होता है।

संयोगजन्य ग्राही और दीपन-पाचन गुण होनेसे अतिसारका शमन करनेमें यह उपयोगी है। इसके अतिरिक्त इस औषधिका वियोजन पर्पटीके समान अन्त्रमें होता है। अतः अन्त्रशोथयुक्त ग्रहणी, वात, पित्त और कफोल्वण ग्रहणी, अन्त्र व्रणयुक्त रक्तज ग्रहणी या पूयमय ग्रहणी, अन्त्रक्षय (संग्रहणी), इन सबको नष्ट करता है। एवं इस रसायनमें लोहका मिश्रण होनेसे यह रक्तमें रहे हुए रक्ताणुओं की वृद्धि कर पाण्डु और कामलाको भी दूर करता है।

सब रोगोंके मूल वात, पित्त और कफ दोष, एवं रस, रक्त आदि दूष्योंकी विकृति है, इन सब पर प्रत्यक्ष और परोक्ष रूपसे इस रसायन का असर होता है। आमाशय, यकृत, प्लीहा, हृदय, अन्त्र, फुफ्फुस, रक्तवाहिनी, वातवाहिनी, मस्तिष्क, मांसग्रन्थियाँ, पिपासास्थान, वृक्क-स्थान, वीर्यस्थान आदि शरीर संरक्षण निमित्त महत्वके सब स्थानोंको सुवर्णभूपति बल देता है। अतः शास्त्रमें लिखा है कि, 'सर्वरोगविनाशाय सर्वेषां स्वर्णभूपतिः'—अर्थात् सब रोगोंके विनाशके लिये सुवर्णभूपति सबसे उत्तम औषध है।

(११) अष्टमूर्त्ति रसायन।

बनावट—शुद्ध पारद १ तोला, शुद्ध गन्धक ६ तोले, सिगरफ १ तोला, मैनसिल १ तोला, सोमल १ तोला, हरताल ६ माशे, रसकपूर ६ तोले, मुर्दासंग ६ माशे, फिटकरीका फूला १ तोला, सुवर्णके वर्क ६ माशे और चाँदीके वर्क ६ माशे लेवें। सबको मिलानेसे वजन २२ तोले होता है। पारदके साथ सुवर्ण, रौप्य और गन्धक क्रमशः मिला-कर कज्जली करें। पश्चात् अन्य औषधियों को मिलाकर आतशी शीशी में भरें। फिर वालुकायन्त्रमें रखकर लगभग ३० घण्टेकी मन्द, मध्यम और तीव्र अग्नि देकर रसायन सिद्ध करें। लगभग १० से १२ घण्टे बाद गन्धकका धुआँ निकल जाने पर तुरन्त डाट लगा कर २० घण्टे तक तीव्र अग्नि देवें। स्वांग शीतल होने पर शीशीके गलेमें लगे हुए अष्टमूर्त्ति रसायनको निकाललें। (औ० गु० ध० शा०)

मात्रा—१ से २ रत्ती तक अदरखके रसमें घिस शहद मिलाकर दिनमें २ बार देवें।

उपयोग—यह रसायन जीर्ण उपदंश, परिवर्तित ज्वर, विषम ज्वर, सन्निपात, क्षय, संन्यास (रक्तज मूर्च्छा), भूतोन्माद, अपस्मार, मूत्राघात, कलायखंज (लँगड़ापन), अपतानक, अपतन्त्रक तथा धनुष्कंप आदि वातविकारको दूर करती है।

यह रसायन जीर्ण, फिरंग (Syphilis) रोगके उपद्रवोंके शमनके लिये अत्युत्तम औषधि है। जिस फिरंग रोगीके विकार अस्थिपर्यन्त पहुँच गये हों, अस्थिव्रण, दाँतोंमें चल, मसूड़ोंमें सूजन, तालुमें व्रण, मुँहसे लार गिरना इत्यादि उपद्रव होगये हों, ऐसे कृश और क्षीण रोगीको यह लाभदायक है। एवं फिरंग रोगके अनुबन्धमें हुए क्षय रोग, मस्तिष्कमें रक्त दबाव बढ़कर सन्यास हो जाना, प्रसूता के बालक मरजाना, उन्माद, अपस्मार, वातधमनि या वातकुण्डली मूत्राघात, कलायखञ्ज (जिसमें मनुष्य सीधा खड़ा नहीं रह सकता), अपतानक, अपतन्त्रक, धनुष्कंप और आयाम आदि वातविकार और अन्य रोग जो फिरंगके विषसे उत्पन्न हुए हों, वे सब अष्टमूर्ति रसायन के सेवनसे शमन होजाते हैं। यदि आक्षेपक वातरोग निरनुबन्ध स्वतन्त्र जीर्णावस्थामें हो, अर्थात् फिरंग आदि रोगका सम्बन्ध न हो, तो भी इनके आक्षेपके शमनके लिये यह रसायन अच्छा उपयोगी है।

बार-बार उलट-उलटकर आनेवाले परिवर्तित ज्वर (Relapsing Fever) में रोगी बहुत कृश, दुर्बल और हताश हो गया हो; सारे शरीरमें दाह होता हो, शरीरका रंग काला हो गया हो, नाखून विकृत और नीले होगये हों, स्थान-स्थान पर रक्तके धब्बे होते हों, छोटी-छोटी फुन्सियाँ सारे शरीरमें होगई हों, ऐसे विकारमें इस रसायनको उत्तम प्रकारका माना है।

कृष्ण ज्वर, जिसमें त्वचा बिल्कुल काली होजाती है, शीत लगकर ज्वर आता है, पीले झागवाली वमन, मूत्र पहले लाल रंगका पश्चात् काला अथवा अत्यन्त लाल या अत्यन्त काला होना, इत्यादि लक्षण हों, और ज्वर जीर्ण हो जानेसे शरीर दुर्बल हो गया हो; ऐसे रोगीको अष्टमूर्ति रस नवजीवन प्रदान करता है।

जीर्ण शीतज्वरमें शरीर कृश हो; या आंत्रिक सन्निपातमें वातप्रधान लक्षण अधिकांशमें प्रतीत होते हो तथा शरीर कृश और दुर्बल हो; उन रोगियोको अष्टमूर्त्ति देना लाभदायक है। किन्तु, इस सन्निपात में रक्तस्थ दोष विशेषतः हो अर्थात् दाह, रक्तवमन, मोह, शरीर पर मंडल आदि हों, तो इस रसायनके साथ या पश्चात् प्रवाल, मुक्ता या अन्य शीतल औषधि भी देनी चाहिये।

उन्मादके विशेषतः भूतोन्मादके आक्षेपमें इस रसायनका अनेक बार बहुत अच्छा उपयोग हुआ है। इसके सेवनसे मस्तिष्कगत वातवाहिनियो के केन्द्र पर तत्काल असर पहुँचता है, हृदय-क्रिया उत्तेजित

होती है, और सेन्द्रिय विष नष्ट होकर उन्माद शमन हो जाता है।

उपदंशका विष रक्तमें लीन होनेसे गर्भाशय और उससे सम्बन्ध वाले अवयवोंमें विकृति होने पर प्रसवकालमें अति त्रास होता है, और सन्तान भी जीवित नहीं रहती। कदाच जीवित रही, तो उसे उपदंशज विषसे विविध व्याधियाँ होती है, यह दशा बार-बार प्रतीत होती रहती है, ऐसी स्थितिमें उन्माद उत्पन्न होता है, तो रोगिणी हताश, दीन, कृश और निर्बल हो जाती है। उसकी इच्छा विरुद्ध थोड़ा-सा हुआ कि, मूर्च्छित हो जाती है और आक्षेप आते है। ये सब लक्षण होने पर अष्टमूर्त्ति रसायन अति उत्तम कार्य करता है।

कलायखञ्ज होने पर मनुष्य सीधी रीति से नहीं चल सकता, पैर टेढ़े पड़ते हैं, सन्धि-बन्धो में शिथिलता आजाने से चलने पर विलक्षणता भासती है, पैर की शक्ति नष्ट हो जाती है। रोगी बड़े कष्ट से चलता है, अच्छी तरह खड़ा भी नहीं रह सकता, पैर कॉपते रहते हैं। इस रोगमें त्रिकास्थिके ऊपर रहे हुए कटि-कसेरुकाओ में से पहले और दूसरे कसेरुकाके भीतर सुषुम्णा मुख और उसके समीप रही हुई वातनाड़ियोकी विकृति भासती है। इस रोगमें अनेक निमित्त कारणोमें एक कारण उपदंशज विष भी है। यदि उपदंशजनित सम्प्राप्ति हो, तो अष्टमूर्त्ति देना चाहिये। इससे लाभ होने के अनेक उदाहरण मिले है।

अष्टमूर्त्ति रसायन शक्तिवर्द्धक, ओजस्कर, हृदयोत्तेजक, जतुघ्न, बल मांसवर्द्धक और आक्षेपकघ्न है। वात और कुछ पित्तदोष, रक्त, मांस, अस्थि और मज्जा, ये दूष्य, एव सहस्रार, शिरोब्रह्म, सुषुम्णा, सुषुम्णामुख, अन्य नाड़ीचक्र, वातवाहिनियाँ, स्नायु, फुफ्फुस, हृदय और वृक्क, इन सब पर विशेष लाभ पहुँचता है। (औ० गु० ध० शा०)

(१२) व्याधिहरण रस।

प्रथम विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, सोमल, हरताल, मैनसिल, रसकपूर, इन सबको ५-५ तोले मिला घीकुँवारके रसमें ३ दिन खरल करके सुखा देवे। पश्चात् आतशी शीशीमें भर, वालुकायन्त्रमें रख ५२ घण्टे अग्नि देकर व्याधिहरण रस तैयार करे। गन्धक लगभग १६ घण्टेमें जारण होता है। गन्धक जल जाने पर डाट लगाकर ३६ घण्टे तक मंद, मध्यम और तीव्र अग्नि देवे। अन्त में अग्नि खूब तेज होने पर ही ओषधि उड़ती है, अन्यथा मैनसिल आदि द्रव्य तलभागमें रह जाते हैं।

(रसा० सा० स०)

मात्रा—१ से २ रत्ती दिनमें २ समय शहद या घी के साथ।

उपयोग—इस रसायनके सेवनसे नये और पुराने फिरंग रोग जड़मूलसे नष्ट होजाते हैं; एवं फिरंगजनित मज्जाविकार, संधिवात, कुष्ठ, नासाव्रण, नाड़ीव्रण आदि सब उपद्रव दूर होते हैं। उपदंश जीर्ण होनेसे विष हड्डी तक फैल गया हो, तो भी इस के थोड़े ही दिनोंके सेवनसे विष नष्ट होकर संपूर्ण शरीर नीरोग बन जाता है।

दूसरी विधि—शुद्ध पारद ८ तोले, शुद्ध गन्धक ८ तोले, और रसकपूर १६ तोले ले। सबको यथाविधि मिला, कज्जली कर वालुका-यन्त्रमें रखकर २४ घण्टे अग्नि देकर रसायन बना लेवें। (सि० यो०)

वक्तव्य—इस रसायन को [illegible] रखने का लिखा है तथा नाम [illegible] दिया है।

मात्रा—१ से २ रत्ती तक नागरवेलके पानमें अथवा घृत या शहदके साथ दिनमें २ समय देवें।

उपयोग—यह रसायन उपदंश, उसके व्रण आदि उपद्रव और नपुंसकता आदि रोगोंको दूर करता है। एवं हृदयशूल, वातश्लेष्म विकार और वलीपलित का भी नाश करता है। इस रसायनमें प्रधान गुण रसकपूरका है। रसकपूर अति तीव्र होने से इससे मुँह आजाते हैं। यह दोष इसमें न होनेसे नये उपदंश पर निर्भय रूपसे उपयोगमें आता है। इससे उपदंश रोग उपद्रवसहित शमन होजाता है। उपदंश होनेके पश्चात् सारे शरीर पर लाल चट्टे, स्वरभेद, मुँहमें व्रण, गुदशूक (गुदा पर अनेक अंकुर निकलना), गांठ होना, बाल गलना, ज्वर, शिरदर्द, निद्रानाश, पांडु, नेत्रलाली, बार-बार नेत्र आ-जाना, नेत्रोंमें छोटे-छोटे दाने हो जाना, अस्थिगत व्रण, वृषणशोथ, नाखूनोंका टेढ़ा होजाना, सन्धिवात, वृषण पर शोथ आदि उपद्रव यदि नये हों (१ से २ वर्ष के भीतरके हो), बहुत गहरे न हों, तो ये सब दूर होजाते हैं।

उपदंशके विपक परिणाम गर्भ और गर्भाशय पर तथा सन्तान पर भी होता है। इस हेतुसे सन्तानोंको विविध चर्मरोग, अस्थि रोग, मांसगत रोग, ग्रन्थिवृद्धि, यकृत्‌वृद्धि आदि हो जाते हैं। इनकी उत्पत्तिको रोकनेके लिये विषप्रकोप होनेके पहले इसका उपयोग करना चाहिये। यदि अस्थिपर्यन्त दोष चला गया हो, तो व्याधिहरण नं० १ देनेसे रक्त, गर्भाशय आदि शुद्ध होते हैं।

व्याधिहरण रसायनका परिणाम वात, पित्त, कफ तीनो धातु

और रस, रक्त आदि सप्तदूष्यों पर होता है। यह रसायन उपदंश-विषघ्न और बल्य है। (औ० गु० ध० शा० के आधार से)

(१३) पंचसूत।

बनावट—शुद्ध पारद ४ तोले, शुद्ध हिंगुल ८ तोले, सौवीर (काला सुरमा) २ तोले, शुद्ध गन्धक ४ तोले, रससिंदूर ६ तोले और रसकर्पूर ८ तोले लेवें। सबको मिला कज्जली कर छोटी दूधीके रस की ३ भावना दे, सुखा, आतशी शीशीमें भरें। पश्चात् मन्द, मध्यम, तीव्र अग्नि क्रमशः १½ दिन देवें। ६-८ घण्टे पर डाट लगा कर २७ घण्टे तीव्राग्नि देनेसे बोतलके कण्ठ पर ओषधि लग जाती है।

(औ० गु० ध० शा०)

मात्रा—½ रत्ती शहद, अदरखके रस, तुलसीके रस या मुलहठी, बहेड़ा, वासाके पत्ते और मिश्रीक क्वाथसे दिनमें २ से ३ बार।

उपयोग—यह रसायन श्वास, कास, आमसे उत्पन्न शूल, दुष्ट वातविकार, फुफ्फुसावरण शोथ (उरस्तोय—Pleurisy), सन्निपात आदि घोर रोगोंको नष्ट करता है।

पंचसूतका मुख्य गुण कफशोषक है। यह विशेषतः फुफ्फुसा-वरण और अन्य स्थानमें संचित दोषोंका शोषण करता है। मल्लसिंदूर और पंचसूत, दोनों कफशोषक और उत्तेजक हैं। किन्तु पंचसूतमें मल्ल-सिंदूरके सदृश तीक्ष्णता और उष्णता नहीं है। जब वातवाहिनियोंकी क्रियामें शिथलता होकर व्यत्यय होता है, या अन्य प्रकारका दोष उत्पन्न होता है, ऐसे वातरोगमें पंचसूत उत्तम औषधि है।

फुफ्फुसावरण शोथ होनेसे शारीरिक क्रिया शिथिल होती है, हृदय बिलकुल अशक्त होजाता है। फिर रोग जीर्ण होने पर फुफ्फुसा-वरणमें जलका संचय होने लगता है। इस रोगको उरस्तोय या कुत्यु-दर भी कहते हैं। इस स्थितिमें कुक्षिशूल, शुष्ककास और ज्वर भी रहता है। किसी-किसीको इतना त्रास होता है कि, रोगी खाँस नहीं सकता। इस तीव्र अवस्थाके पश्चात् जलसंचय होता है। (फुफ्फुसावरण के समान कभी-कभी मस्तिष्कके आवरणमें भी शोथ आकर जलसंचय होता है।) पंचसूत इस जलका शोषक, जलको रूपान्तर करानेवाला, कफको निर्दोष करके साम्यावस्थामें प्रस्थापित करनेवाला तथा ज्वर, शोथ और पीड़ाको हरनेवाला उत्तम रसायन है।

फुफ्फुस सन्निपात (निमोनिया) के वेगका शमन होने पर यदि फुफ्फुसकोषोंमें कफसंग्रह होने लगता है, तो फुफ्फुसोंकी क्रिया का

प्रतिबंध होता है। श्वासोच्छ्वासमें घर-घर आवाज निकलती रहती है। उस पर पचसूत बहुत अच्छा काम देता है। कारण कि पंचसूत हृदय और फुफ्फुसोंको उत्तेजना देता है, उनकी क्रियाको सुधारता है, और फुफ्फुसोंमें संचित कफका शोषण करके रूपान्तर कराता है। किन्तु निमोनियामें रक्त गिरता हो, तो पंचसूत नहीं देना चाहिये।

पचसूत उत्तम हृदयोत्तेजक है। अनेक बार अन्य औषधियोंके सूचिकाभरण (इन्जेक्शन) लेनेसे रोगी निराश होगये हों, उन रोगियोंकी जीवनरक्षा पंचसूत और समीरपन्नगसे होनेके उदाहरण मिले है। यथार्थमें पंचसूतमें समीरपन्नगकी अपेक्षा हृद्य गुण कुछ न्यून है, तो भी कफस्थानों पर पोषक गुण विशेष प्रकारका है।

श्वासवाहिनियोंमें कफसंचय होकर श्वासोच्छ्वासमें प्रतिबन्ध, घर-घर आवाज, श्वास रुकना, छिन्न श्वास, नाड़ीका विषम वेग आदि लक्षण होने पर पंचसूत देनेसे वह श्वासवाहिनीमें संगृहीत कफको अति सत्वर सुखाकर सरलतासे नाड़ियोंको शुद्ध करता है। किन्तु समीरपन्नगका कार्य इससे विपरीत है। समीरपन्नग कफस्राव कराने और कफको बाहर फेंकनेके लिये श्वासवाहिनीको शक्तिकी प्राप्ति करने में सहायता करता है। इनके अतिरिक्त समीरपन्नगका कार्य वात वाहिनियों पर भी होता है।

पचसूतका उपयोग कफयुक्त श्वासरोग में होता है। किन्तु शुष्क कासयुक्त पित्तश्वास में उपयोग करना हानिकर है। पंचसूतसे कफका शोषण अधिक होकर श्वास बढ़ जाता है। समीरपन्नग से कफ खुल कर श्वास-वेग कम हो जाता है। तन्द्रा और मूर्च्छामें कफाधिक्य और जड़ता का लक्षण हो, तो पचसूत देना लाभदायक है। जीर्ण पक्षाघात में जब तीव्रावस्था दूर होती है, तब पचसूत देनेसे सत्वर लाभ होने लगता है।

छोटे बच्चोंका स्कन्दग्रह, अहिपूतना आदि बालग्रहके विकार मस्तिष्कके आवरणकी विकृतिसे अर्थात् मस्तिष्कमें रहे हुए वातके विकृतिके कारणसे हुए हों, तब तीव्र विकारके शमन होनेके पश्चात् कफप्रधान लक्षण होने पर पचसूत अमृत सदृश गुणदायी है।

बालग्रहके अनेक कारण हैं। इनमें १० कारण मुख्य माने जाते हैं—(१) उदर और अन्त्रकी विकृति या वातसचय, (२) दन्तोद्भव (३) कृमि, (४) मूत्रद्वारकी त्वचा चिपक जानेसे मूत्रोत्सर्गमें प्रतिबन्ध, (५) कर्णपाक, (६) मृद्वस्थि, (७) शीतला, विस्फोटक

रोमान्तिका आदि तीव्र पिटिका युक्त ज्वर; (८) काली खाँसी, (९) मस्तिष्कावरण शोथ, (१०) धनुर्वात या अपस्मारका पूर्व रूप। इनमें से उदर या अन्त्रमें वातसंचय विकृत दुग्ध या आहार-जन्य विकृति होने पर होता है। फिर बालग्रह सदृश आक्षेप बार-बार आते हैं, ऐसी परिस्थितिमें उदरस्थ वातप्रकोप शमनार्थ पचगूत देना चाहिये।

माताके दुग्धकी विकृति या माताकी मानस-विकृतिसे बालकोंको पेचिश या आक्षेप हुए हों, या कीटाणुजन्य विषप्रकोपसे पेचिशकी प्राप्ति हुई हो, तो दुग्धविकृति, कीटाणुप्रकोप और वातसचय, इन सबके निवारणके लिये सरल सौम्य विरेचन और किंचिद् यकृदुत्तेजक गुण-युक्त ओषधि देनी चाहिये। ये सब गुण पंचसूत में अवस्थित है। पचसूत सौम्य रेचन करता है, और यकृत्को थोड़ी उत्तेजना भी देता है। ऐसे निराशाजनक स्थिति-प्राप्त छोटे बच्चोंके प्राणका रक्षण इस पचसूतसे हुआ है। इस रसायनका कार्य यकृत् पर उत्तेजक होनेसे तीव्र यकृद्विकारमें भी इसका उपयोग होता है।

अन्त्र और कोष्ठमें स्थित जन्तुजन्य विषको पचसूत दूर करता है। इसलिये गर्भवात, तीव्र यकृत्संकोच और अन्त्रस्थ जन्तुजन्य विकृति से उत्पन्न उदरवातरोगमें तीव्र लक्षण होने पर पचसूतका उपयोग किया जाता है। जीर्ण व्याधिमें इसका उपयोग नहीं होता।

पचसूत कफवात और कफप्रधान दोष, रस, रक्त और मांस, ये दूष्य, और फुस्फुस, फुस्फुसावरण आदि कफस्थान, पक्वाशय, बृहदन्त्र, ग्रहणी, सहस्रार, सहस्रारावरण, वातवाहिनियाँ और स्नायु, इन सब पर विशेष प्रभाव दिखाता है। इसका मुख्य कार्य सशोषक है। फुफ्फसावरण आदि स्थानोंमें संचित द्रवका शोषण करता है।

सूचना—पचसूत तीव्र ओषधि होनेसे सम्हालपूर्वक उपयोग करना चाहिये। पित्तभूयिष्ठ विकारमें पचसूत देनेसे मुँह आना, मसूढ़े सूजना, रक्त गिरना इत्यादि उपद्रव होते हैं। इस हेतुसे इसका आन्त्रिक सन्निपात (मोतीझरा Typhoid Fever) में उपयोग नहीं करना चाहिये। कदाचित् आवश्यकता हो, तो शामक ओषधिके साथ करें।

(१४) त्रिपुरभैरव रस।

बनावट—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हिंगुल और रसकपूर १०-१० तोले, नौसादर १ तोला और फिटकरीका फूला ५ तोले मिला, कज्जली कर आतशी शीशीमें भरें। फिर वालुकायन्त्रमें रखकर दो दिन

अग्नि देवें। पहलेसे ही क्षार गलेमें लगता रहता है, अतः गला बार-बार साफ करते रहना चाहिये। गन्धकका धुआँ निकल जानेके बाद डाट लगाकर २४ घण्टे तक तीव्राग्नि देनेसे सुन्दर लाल रंगका त्रिपुर-भैरव सिद्ध होता है। (वै० सा० सं०)

मात्रा--आधीसे २ रत्ती दिनमें २ समय घीके साथ।

उपयोग—त्रिपुरभैरव रस उपदंशजन्य विकार, रक्तविकार, नाड़ीव्रण, कठमाला और पक्षाघात आदिको दूर करता है। एवं संधि-वात, नेत्रविकृति, अस्थिगत व्रण, गाँठ, छाती और पसलियोंमें शूल चलना, इत्यादिको भी शमन करता है।

इस रसायनका उपयोग विशेषतः उपदंशजनित विकार पर होता है। इस रसायनके अतिरिक्त पारद भस्म, रसकपूर, व्याधिहरण. अष्ट-मूर्त्ति और मल्लसिंदूर आदि अनेक ओषधियाँ उपदंश रोगके लिये लिखी है। परन्तु इन सबके उपयोग और गुणमें कुछ-कुछ अन्तर है। थोड़े ही दिनोंके उपदंश रोगमें पारद भस्म उपयोगी है। प्रथमावस्थाके लक्षणों तक व्याधिहरण रस नं० २ लाभ पहुँचाता है, और यह त्रिपुर-भैरव रस प्रथमावस्था और द्वितीयावस्थाके उपदंश रोग और उनके उपद्रवोंको शमन करनेमें उपयोगी है। अष्टमूर्त्ति, व्याधिहरण नं० १ और मल्लसिंदूर (द्वितीय विधि) तृतीयावस्थामें भी हितकर है।

उपदंशजन्य और उपदंशरहित उत्पन्न जीर्ण अस्थिगत व्रण, अस्थियोंके अन्त भाग मोटे हो जाना, छातीमें दर्द, अस्थियोंमें कीटाणु उत्पन्न होना तथा उपदंशज अन्य विकारोंमें यह रसायन उपयोगी है।

इनके अतिरिक्त वातप्रधान और कफप्रधान सन्निपातमें अन्य ओषधि तैयार न होनेपर इसको प्रयोजित किया जाता है।

पक्षवध, अर्दित आदि रोगोंपर यह रसायन अच्छा लाभ पहुँ-चाता है। परन्तु तीव्रावस्थाका ह्रास होनेपर यह उपयोगी होता है।

सूचना--त्रिपुरभैरव रसायनमें फिटकरीका फूला ही मिलाना चाहिये। यदि कच्ची फिटकरी मिलाई जायगी, तो गला बन्द होकर शीशी फूट जायगी।

[१५] संघातसिंदूर रस।

बनावट--कूपीपक्व रसायन बनानेमें शीशी तोड़नेके समय चन्द्रोदय, रससिंदूर, मल्लसिंदूर आदिमें काँचके टुकड़े मिल गये हो, ऐसे चूर्णमें सम भाग गन्धक मिला लोहेके खरल में घीकुँवारके रसके साथ खरल करके आतशी शीशीमें भरे। फिर वालुकायन्त्रमें ३६ घन्टे अग्नि देकर ओषधि उड़ा लेनेसे काँचके टुकड़े सब नीचे रह जाते हैं;

और रसायन ऊपर लग जाती है। इस सिंदूरमें सब प्रकारके रसायन होनेसे सबके गुण सम्मिलित होते हैं। (र० सा०)

मात्रा—१ से २ रत्ती रोगानुसार अनुपानके साथ दें।

उपयोग—इस रसायनका उपयोग द्विगुण गन्धकजारित रस-सिंदूरके समान होता है। रससिन्दूरसे यह अधिक उत्तेजक है।

सूचना—रसकर्पूरमिश्रित ओपधियों मेंसे रसायन अलग बनाना चाहिये; और उसका उपयोग व्याधिहरणके समान करना चाहिये।

पर्पटी प्रकरण।

रसायन कल्पमें पर्पटीको अति महत्वकी ओपधि माना है। पारद और गन्धककी कज्जली वा उसके साथ अन्य ओपधियोको मिला अग्निसस्कार करके पर्पटी बनाई जाती है। पारद-गंधकयुक्त पर्पटी विशेप करके अन्त्र के विकारोंको दूर करने मे अति उपयोगी है। अन्त्र मे रही हुई दुर्गन्धको दूर करती है; कीटाणुओंका नाश करती है, और अन्त्रकी शक्तिको बढाती है। अन्त्रविकृति को दूर करनेमें अन्य औषधकृतिकी अपेक्षा पर्पटी सौम्य, विशेप हितकर और शीघ्र लाभदायक है। पर्पटी बनानेमे कज्जली और अन्य ओपधियोंका वियोजन आमाशयमें नहीं होता, परन्तु ग्रहणी, पक्काशय और बृहदन्त्रमें होता है। इस हेतुसे ग्रहणी रोगमे पर्पटी अपना प्रभाव विशेप दिखाती है।

पारदयुक्त सब प्रकारकी पर्पटी जन्तुघ्न, पाचक, व्रणशोधक, व्रणरोपण और शक्तिवर्द्धक हैं, और अन्य जो-जो ओपधियाँ मिलाई जायँ, उनके गुण भी सम्मिलित होते हैं। लोहपात्रमे पर्पटी तैयार करनेसे पर्पटीमे लोहेका गुण आता है। लोहपात्रके सयोगसे रक्तके रक्ताणुओंकी वृद्धि होनेमे सहायता मिलती है। ताम्रपत्रमे तैयार करनेसे यकृत्, प्लीहा और वृक्कस्थानकी निर्बलताको दूर करने और पित्तविसर्जन क्रियाको सुधारनेके गुणोंसे युक्त बनती है। अतः जिस धातुके पात्रका उपयोग किया जाता है, उस धातुका गुण पर्पटीके साथ कुछ अंशमें संयोजित होता है।

पर्पटीके लिये पारद शोधनविधि—पारदको घीकुँवारके रसमें मर्दन करनेसे मलदोप, त्रिफलेके क्वाथमे मर्दन करनेसे अग्निदोप और चित्रकमूलके क्वाथमें खरल करनेसे विपदोष दूर होता है। इस प्रकार पारदके दोपोंको दूर कर उसे अरणीके पत्ते, अरण्डके पत्ते, अदरख, और मकोयके पत्तोंके रसोंमे पृथक्-पृथक् मिलाकर क्रमशः पत्थरके खरलमे मर्दन करके शोषण करे। इस रीतिसे पारदकी विशेप शुद्धि करने पर पर्पटी विशेप गुण दर्शाती है।

पर्पटी के लिये गन्धकचूर्ण विधि—शुद्ध गन्धकके चावलोंके समान छोटे-छोटे टुकड़े कर पत्थरके खरलमें भागरे के रसकी ७ बार भावना देवें, और ७ बार धूपमें सुखानेसे पर्पटीके योग्य गन्धक बनता है। भागरे की भावनासे यकृत् उत्तेजक गुण बढ़ जाता है, जो ग्रहणी आदि व्याधिमें हितावह है।

पर्पटी बनाने के लिये कढ़ाही अथवा कलछी में घी लगाकर कज्जली आदि औषधि डाले। पश्चात् चूल्हे पर चढ़ा लोहे की या तांबे की शलाका से सम्हालपूर्वक चलावे, और बेरकी लकड़ी के निर्धूम कोयलों की मन्द आँच पर पिघलाकर रस करें। फिर जमीन पर गोबर फैला ऊपर केले के पत्ते बिछा, उस पर तैयार हुआ रस डाल, एक केले का पत्ता ढक, उसके ऊपर और गोबर डालकर दबा देवे। थोड़े समय बाद शीतल होने पर पर्पटी निकाललें। कलछी में शेष कठिन भाग लगा हुआ रह जाय, उसे ग्रहण न करें। पर्पटी का रंग मयूरशिखा के समान होजाय, वह उत्तम माना जाता है।

श्री यादवजी त्रिकमजी आचार्य के मतानुसार चूल्हे पर एक तवा रखे। उस पर एक अगुल मोटा बालू का स्तर बिछावे। उस पर कढ़ाही रखे। इस तरह पर्पटी बनाने पर गुण अधिक करती है।

पर्पटी बनानेमें मृदु, मध्यम और खर, तीन प्रकारके पाक होते हैं। मृदु बनने पर बिखर जाती है, और अच्छी रीति से नहीं टूटती। मध्यम पाक होनेपर चमकदार चांदीके समान टुकड़े बन जाते हैं। खर पाक होजाय तो रुक्ष, चिकनी और कुछ ललाई युक्त दीखती है, और तोडने में जल्दी नहीं टूटती। मृदु और मध्यम पाक में पारद दृष्टिगोचर होता है, किन्तु खर पाक होनेसे पारद उड़ जाता है। अत मृदु और मध्यम पाकका सेवन करना चाहिये, और खर पाक को विष समान मानकर त्याग देना चाहिए। इसी कारणसे कलछी में शेष लगी हुई खर पाक वाली पर्पटी का त्याग करने का विधान किया है।

पर्पटी सेवन मे अपथ्य—पारदमिश्रित पर्पटी के सेवन करने वाले को वायु, धूप, क्रोध, मानसिक चिन्ता, आहार के समय की विषमता, व्यायाम, अत्यन्त परिश्रम, स्नान और अत्यन्त बोलना, ये सब अहितकारक हैं। पके हुए केले के फल, वक्कल और जड़, नीम आदि को लेकर सम्पूर्ण कड़वे पदार्थ, गरम, अनूप देश के जीवों का मास तथा जलचर जीवो का मास, पक्षियों का मास, मछली, काली मछलियो में गडक नामक मछली, खट्टे पदार्थ, दही और शाक आदि पदार्थ भक्षण नहीं करने चाहिए। पर्पटी का सेवन करते हुए स्त्रियों से बातचीत भी नहीं करनी चाहिए। एवं गुड, खाँड, ईख के रस के बने हुए पदार्थ, ईख (गन्ने), करेले के पत्ते, फल और बेल आदि नहीं खाने चाहिये।

पर्पटी सेवन करने के समय अन्न और नमक का सेवन न किया जाय

तो अच्छा। यदि ऐसा न हो सके तो नमकमिश्रित भोजन २ घण्टे तक नही करना चाहिए। नमकमिश्रित मट्ठा के लिए अधिक बन्धन नही है, तथापि अनुपान रूपसे मट्ठा लेना हो तो उसमें नमक न मिलाया जाय, तो अच्छा है। क्योंकि पारद का नमक के साथ संयोग होने पर पारद लवण (मर्करी क्लोराइड) बन कर हानि पहुंचाता है, या योग्य लाभ नहीं पहुँचा सकता।

पर्पटी सेवन में पथ्य—(जो अन्न का त्याग नही कर सकते उनके लिए) थोड़े घी, जीरे, धनिये और अन्यान्य मसालों के द्वारा सिद्ध किये हुए, सेंधा नमक मिले हुए व्यञ्जनादि, पुराने शालि चावलों का भात, काले बेंगन, पाढ के पत्तोंका शाक, बथुआ, साबुत मूंग, केलेके पत्ते, परवल, सुपारी, अदरख, मकोयके पत्तोंका शाक, लवा, बतक, तीतर और मोर का मांस, मुद्गर, रोहित और काली मछली, सम भाग जल मिलाकर सिद्ध किया हुआ दूध, ये सब पदार्थ हितकारी हैं।

पर्पटी सेवन-काल में ब्रह्मचर्य का आग्रह पूर्वक पालन करना चाहिये। शराब, सिगरेट, चाय आदि का व्यसन हो, तो हो सके उतना कम करदे। चाय पीना हो, तो ठण्डी करके ही पीवे, व्यसन का त्याग होसके, तो विशेष हितावह माना जायगा। रोगी पूर्ण विश्रान्ति ले, तो लाभ जल्दी पहुचता है।

इस पर घृत थोड़ा खाना चाहिये और पथ्य में यथेच्छ आहार देना चाहिये। भूख लगने पर अवश्य भोजन करें। यदि आधी रात को भूख लगे, तो उस समय भी भोजन करना चाहिए। बहुत क्या कहे, रोगी को जब जब भूख लगे, तब ही निर्भय होकर बार-बार दूध पिलावे। कदाचित् भोजन के समय का उल्लघन होने से ज्वर या विरेचन होजाय, तो सम भाग अथवा अधिक जल मिलाकर सिद्ध किया हुआ दूध पिलाना चाहिये। वमन होने पर नारियल का जल या दूध देवे। स्वप्न में वीर्यपात होजाय, तो दुग्धपान करावे।

भूख उत्पन्न हुई है या नहीं, इसकी परीक्षा इस प्रकार करनी चाहिये—जब शरीर शक्तिहीन हो, मस्तकमे शूल और झनझनाहट आदि लक्षण उपस्थित हो; तब निश्चय ही भूख लगी समझनी चाहिये।

(१) रसपर्पटी।

बनावट—शुद्ध पारद और शुद्ध आँवलासार गन्धक, दोनो ५-५ तोले मिला कज्जली कर लोहेकी कढाही या कलछीमें डालकर ऊपर लिखी विधिसे पर्पटी बनालें। (र० का०)

मात्रा—१ से ३ रत्ती तक दिनमें २ बार शक्ति अनुसार धीरे-धीरे बढाकर शहद या हींग और जीरेके साथ या घृत अथवा दूध के साथ देवें। जलके बदले मेंदूध ही दें; तथा नमक, जल और अन्न छुड़ादें।

पर्पटीके ऊपर सुपारीका टुकड़ा खिलावें। इस रीतिसे ४० दिन तक सेवन कराना चाहिये।

उपयोग--संग्रहणी, अन्त्रव्रण, अन्त्रशोथयुक्त अतिसार, अपचन, शूल, बवासीर आदि रोगोको शमन करती है।

जब पित्तस्राव कम होने से भोजनका परिपाक ठीक नहीं होता; या अंतड़ीमें शोथ होनेसे वार-वार थोड़े-थोड़े पतले दस्त होते रहते है; जिसमें कुछ अंश अपक्व अन्नका होता है, पचनक्रिया विकृत होजाती है; दस्तमें अम्ल या पूतिगन्ध होती है, रोगीकी जिह्वापर श्वेत मलकी तह आ जाती है, जिह्वाकी किनारी लाल होती है; पचनेन्द्रिय संस्था दूषित होजाती है, तब रस पर्पटी विशेष हितकर होती है।

गर्मीके दिनोमें दूध जल्दी विकृत होजाता है। ऐसा विकृत दूध पिलाने पर बालकके उदरमें कृमि उत्पन्न होकर अतिसार होजाता है। दस्त चावलोके धोवन या खड़िया मिट्टीके सदृश होता है, कचित् वमन भी होती है, ज्वर बहुधा नही होता। ऐसा लक्षण प्रतीत होनेपर बालसंजीवन रस अति हितकर है। परन्तु जब बालसंजीवन से लाभ नही पहुँचता, तब रसपर्पटी दीजाती है। यदि बालकको प्रवाहिक रोग होता है, तो बालसंजीवन रस काम नही देसकता। ऐसे समय पर बालातिसारहर चूर्णके साथ रसपर्पटी ही लाभ पहुँचाती है।

यदि अतिसारमें कृमिका अनुबंध हो, तो पहले कृमिघ्न औषध और एरंड तैल देकर कोष्ठ शोधन करना चाहिये। फिर रसपर्पटी देनेसे सत्वर लाभ पहुँचता है।

जीर्ण अतिसार रोगमें अन्त्रकी ग्राही शक्ति अति न्यून होजाती है। ऐसे समय पर अफीम या अन्य स्तम्भक औषधि द्वारा अन्त्रकी श्लैष्मिक कलाको कामचलाऊ शक्ति देने या मलको रोकनेका प्रयत्न किया जाता है। इस प्रकारकी औषधियोकी क्रिया अस्थिर होनेसे सच्चा लाभ नही होता। कचित् थोडे ही समयमें अतिसार प्रबल वेगपूर्वक फिर होजाता है। किन्तु रसपर्पटी देनेसे अन्त्रशक्तिकी वृद्धि होकर रोग निर्मूल होजाता है।

उपदंश रोगमें उपद्रव रूपसे अतिसार होजाता है, ऐसे रोगियो के लिये केवल अतिसारकी चिकित्सा करनेसे रोगनिवृत्ति नही होती उपदंशके विषको भी नष्ट करना चाहिये। ये दोनो कार्य रसपर्पटीके योगसे उत्तम प्रकारसे होते है। अन्त्रमें शोथ होनेपर एक प्रकारका विषप्रकोप होकर ज्वर उपस्थित होता है। उस ज्वरमें समान वायु

प्रकुपित होता है। ज्वर आनेके पश्चात् सब अवस्था पूर्ण होनेमें ३ से ६ सप्ताह लगते हैं। उस विकारमें आगे शोथकी कमी होकर अन्त्रव्रण होजाते है। ऐसे ज्वर और आन्त्रिक ज्वर (मधुरा) के भीतर अनेकांश में साम्य है। इस प्रकारके ज्वरमें महत्त्वका लक्षण अतिसार है। यह अतिसार अति त्रासदायक और दीर्घकाल स्थायी होता है। बार-बार बड़े-बड़े दस्त लगते रहते हैं। दस्तका रंग सफेद या पीला-सा होता है। ऐसे अतिसार पर रसपर्पटी उत्तम कार्य करती है। रसपर्पटी के सेवनसे शोथ कम होता है; व्रण भर जाते है, पचनक्रिया सुधरती है; अतिसार कम होता है; उदर स्वस्थ होजाता है, गुदामें फटी हुई त्वचा आदि विकृति दूर होती है, विष नष्ट होता है, तथा समान वायुका साम्य होकर अनुलोम होता है। (औ० गु० ध० शा०)

जीर्ण अतिसारमें रसपर्पटी, जातिफलादि चूर्ण और लघुगंगाधर चूर्ण मिलाकर दिनमें ३ बार देते रहनेसे थोड़े ही दिनोंमें अच्छा लाभ पहुँच जाता है।

जीर्ण आमातिसार पर रसपर्पटी, लघुगंगाधर चूर्ण, हिंग्वष्टक और कुड़ेकी छालके चूर्ण के साथ मिलाकर दिनमें ३ बार मट्ठेके साथ देते रहने पर आमोत्पत्ति कम होकर पचन क्रिया बलवान बन जाती है।

सूचना—रसपर्पटी पित्तप्रकोपजनित रोगोंमें अनुकूल नहीं रहती। कारण, यह स्वयं पित्तवर्द्धक है। इस पर्पटीके सेवन-कालमें विदाही पदार्थ, तेल, केला और लौनिबन आदिका आग्रहपूर्वक त्याग करना चाहिये।

(२) सुवर्ण पर्पटी।

बनावट—शुद्ध पारद ४ तोले, शुद्ध गन्धक ४ तोले और सुवर्ण भस्म या सुवर्णका वर्क एक तोला लेवे। पहले पारद और सुवर्णके वर्कको मिला, नीबूके रसमें ६ घण्टे खरल कर गरम जलमें ३ समय धो लेवें। फिर गन्धक मिलाकर कज्जली करे। सुवर्ण भस्म मिलाना हो, तो पारद-गन्धक की कज्जलीके साथ मिला लेवें। पश्चात कढ़ाहीमें थोड़ा घी डाल कर उपरोक्त विधिसे पर्पटी बना लेवे। (र० चं०)

पारद के स्थान पर रससिंदूर मिलाया जाय तो सुवर्णपर्पटी का वर्ण रक्त होता है। मलमें श्वेत वर्ण और दुर्गन्ध होनेपर यकृत्का पित्त-स्राव अधिक कराना इष्ट हो तब रससिंदूर वाली पर्पटी विशेष हितावह है, किन्तु शुष्क कास हो तो न देवे।

मात्रा—१ से ३ रत्ती दिनमें २ समय त्रिकटु और शहदके साथ

देवें। मात्रा ३ रत्ती तक धीरे-धीरे बढानी चाहिये। संग्रहणीमें प्रवाल-पंचामृत २-२ रत्ती और त्रिकटु शहदके साथ या दाड़िमावलेहके साथ।

उपयोग—यह पर्पटी पित्तशोधक, कीटाणुनाशक और बलवर्द्धक है। सब प्रकारकी संग्रहणी, शोष, क्षय, कास, श्वास, प्रमेह, शूल, अतिसार, मन्दाग्नि और पाण्डु रोगका नाश करके जठराग्निको प्रदीप्त करती है, और बल-वीर्यको बढ़ाती है।

पर्पटी कल्पमें सुवर्ण पर्पटी अति महत्वकी अग्रगण्य ओषधि है। बिल्कुल अस्थिपंजर और मरणोन्मुख रोगियोंको भी स्वस्थ बनाती है। सुवर्ण पर्पटीके साथमें दूध विशेष लाभदायक है।

जिस जीर्ण और त्रासदायक अतिसारमें उदरके भीतर पीड़ा नहीं होती, परन्तु नलको खोलने पर जिस तरह जल की धारा गिरती है; उस तरह के बड़े-बड़े दस्त लगते रहते है, शौचकालमें बल नहीं लगाना पड़ता; एक साथ घड़ा खाली करने सदृश जुलाब दिनमें ४-५ बार होते रहते हैं, उस अतिसारमें अन्त्रकी ग्राहक-शक्ति अत्यन्त क्षीण होती है, तथा यकृद् रस और अन्त्ररसस्राव अधिक होते हैं। रोगी अतिशय क्षीण, कृश, दुर्बल, केवल अस्थिपञ्जरवत् बन जाता है। बोलनेकी शक्ति भी नहीं रहती, एवं बलमांसविहीनताकी अंत्यावस्था होती है, ऐसी अवस्थामें भी सुवर्णपर्पटी जादूसदृश कार्य करती है। ऐसे अनेक रोगियोंका प्राण इसने बचाया है।

ऐसे अतिसारसे उत्पन्न उपद्रवरूप कास, श्वास, पाण्डुता, हिक्का, या केवल निर्जन्तुक अनुलोम-प्रतिलोम क्षय, जिसमें क्रमशः रसधातुसे शुक्रपर्यन्त या शुक्रसे रसपर्यन्त धातुएँ क्षीण होती है, इन सब पर यह पर्पटी अच्छी उपयोगी है। सुवर्ण पर्पटी देने योग्य रोगियोंकी मानसिक स्थितिका केवल विचार करना चाहिये। मानसिक स्थिति अविकृत हो, तो सुवर्णपर्पटी निःसंदेह लाभ पहुँचाती है।

संग्रहणी-अनुलोमक्षय (Sprue) में विशेषत जिह्वासे लेकर गुदनलिका पर्यन्त समस्त पचनेन्द्रिय संस्थाकी श्लैष्मिक कला पर सूक्ष्म-सूक्ष्म स्फोट होजाते है। ये स्फोट विस्फोटक सदृश तीव्रतर नहीं होते, किन्तु इससे विलक्षण प्रकारके सौम्य होते है। इस हेतुसे रोगियोंको बड़े-बड़े सफेद रंगके और गरम-गरम दस्त लगते हैं। जिह्वाका स्वाद नष्ट होजाताहै, जिह्वा लाल कॉटे वाली होजाती है। कितनेक रोगियोंकी जिह्वा फटी-सी भासती है। जिह्वाके नीचेके हिस्से में, गाल, कण्ठ और समस्त मुँहके भीतर त्वचा लाल होजाती है। नमक

या जलका स्पर्श भी सहन नहीं होता। कइयों को लाला अधिक निकलती है। कुछ काल मुखपाक होता है, फिर अच्छा होजाता है। ऐसा क्रम विष शेष रहे, तबतक वर्षोपर्यन्त चलता है। मुखपाक शमन होने पर दस्त भी न्यून होजाते है, और रोग निवृत्त होनेका भ्रम होजाता है। परन्तु किञ्चित् निमित्त कारण मिलने पर पुनः समस्त लक्षण पूर्ववत् उपस्थित होते है। इस रोगमें अन्नका रस ही अच्छा नहीं बनता। जो बनता है, उसका भी सशोषण आमाशय और अन्त्र स्फोटयुक्त होने से यथोचित नहीं होता। इस हेतुसे योग्य पोषणके अभावमें रोगी दिन प्रतिदिन कृश, अनुत्साही और निस्तेज होता जाता है।

इस व्याधिके मुख्य कारण विषयक विद्वानोंमें मतभेद है। कितनेक विद्वानोंकी मान्यतानुसार इसका कारण यकृत्के पित्तस्रावकी विकृति है; इस हेतुसे आधुनिक विद्यावाले गोरोचन, मत्स्य पित्त या बैलके पित्तको दही या मट्ठेके साथ देते रहते है।

आयुर्वेदके मत अनुसार किसी भी रोगमें इस तरहके रासायनिक द्रव्यकी अपेक्षा उसके उत्पादक और नियामक त्रिधातु और त्रिदोष को विशेष महत्त्व दिया है। इस दृष्टिसे यकृत्का पित्तस्राव कम होने या अन्य उपपत्ति अनुरूप अन्य अन्तःस्रावकी न्यूनता होनेसे अन्त्रमें विकृति हुई हो, उस तरह मान लें, तो भी आयुर्वेदकी दृष्टि अनुसार यह स्थिति पित्तदोषसे मानी है। जब पित्तदोषकी दुष्टता दूर हो, और पित्तका सम्यक् नियमन होकर उसके बढ़े हुए अम्लत्व, उष्णत्व और द्रवत्व गुण न्यून हों, तब यह व्याधि स्वयमेव शमन होती है। यह महत्वका कार्य सुवर्ण-पर्पटी करती है। किन्तु यकृत् या अन्य पित्तस्थानके मंदत्वके हेतुसे उस स्थानमें उत्पन्न होनेवाले पित्तकी उत्पत्ति ही कम हो, या उस स्थानसे अन्त्रमें पित्तस्राव ही कम जाता हो, तो पंचामृत पर्पटी देना चाहिये।

अन्त्रमें क्षयके कीटाणुओंकी उत्पत्ति हो, तो हाथ-पैरो पर शोथ आजाता है, कास, श्वास आदि उपद्रव होते हैं, तथा शरीर कृश और निस्तेज बन जाता है। ऐसे संग्रहणी (अनुलोमक्षय Sprue) और प्रतिलोमक्षयमें मानसिक अवस्था अविकृत है, तो इस पर्पटीके सेवनसे अवश्य लाभ पहुँचता है। अनुपान रूपसे दाड़िमाव लेह देवें।

यह सुवर्ण पर्पटी शीतल होनेसे पित्तप्रधान विकारमें अच्छा

काम देती है। जब यकृत्‌मेंसे पित्तकी उत्पत्ति पूरी होने पर भी स्राव न्यूनांशमें होता हो, अथवा अन्य अतःस्रावकी न्यूनतासे अन्त्रमें विकृति उत्पन्न हुई हो, मल बहुत ज्यादा परिमाणमें एक साथ निकलता हो, और दस्तकी संख्या अधिक न हो; तब सुवर्ण पर्पटी पित्त धातुको प्रकृतिस्थ नियमित बनानेके महत्वका कार्य करती है।

सुवर्णप्रधान इस रसायनसे संग्रहणीके अतिरिक्त पित्तज प्रमेह, पाण्डु, पित्तप्रधान उदरशूल, उन्माद, शोप, राजयक्ष्मा आदि रोगोंका भी नाश होता है। इसका सविस्तार वर्णन सुवर्ण भस्ममें किया है।

अन्त्रक्षय के रोगीको ज्वरसह मुखपाक रहता हो, खट्टी डकार आती रहती हो, तो सुवर्ण पर्पटीके साथ यशद भस्म, अतीसका चूर्ण तथा लवग चतुःसम चूर्ण (लवंग, जायफल, जीरा और सोहागेका फूला) मिला देना चाहिये।

ग्रहणी में क्षत (Duodenal ulcer) होनेपर विशेपतः पित्तज परिणामशूल उत्पन्न होता है। फिर भोजनके ३-४ घण्टे वाद वान्ति होजाती है। वान्ति अति खट्टी होती है, तृषा अधिक लगती है, वान्ति होने पर फिर दर्द नहीं रहता, शौच शुद्धि नहीं होती, अन्त्रमें भी क्षत हो जाने के वाद उदर पर दबाने में व्यथा होती है, जिह्वा लाल होती है। नेत्र पीले भासते हैं। उस विकार पर सुवर्ण पर्पटी, कामदूधारस और सगजराहत भस्म मिलाकर दिनमें ३ वार देते रहने तथा कब्ज रहे, तो स्वादिष्ट विरेचनका उपयोग करते रहने पर रोग निवृत्त होजाती है। यदि उदरमें वात संचय होता हो, तो बबूलके कोयले की काली राख ४ रत्ती मिला देनी चाहिये।

(३) ताम्र पर्पटी।

बनावट—शुद्ध पारद ४ तोले, शुद्ध गन्धक ४ तोले और ताम्र-भस्म २ तोले लेवें। प्रथम पारद गन्धककी कज्जली करे। फिर ताम्रभस्म मिला, यथाविधि रस करके पर्पटी बना लेवे। (र० यो० सा०)

ग्रन्थकारने ताम्र पर्पटी तैयार होने पर भाँगरेका रस, अडूसे के पत्तोंका रस, त्रिकटु का क्वाथ, त्रिफला का क्वाथ, अदरख का रस सुहिजनेके मूलका क्वाथ, तेजपातका क्वाथ, कटेलीका रस, बच्छनाग का क्वाथ और चन्दनका क्वाथ, इनकी ७-७ भावना देनेको लिखा है। रोगानुरूप भावना देकर प्रयोजित करे, तो लाभ सत्वर पहुँचता है।

मात्रा—१ से २ रत्ती दिनमें ३ समय।

अनुपान—ग्रहणी रोगमें सेका हुआ जीरा ४ रत्ती, धोयी भांग

१ रत्ती, छोटी इलायची का चूर्ण २ रत्ती मट्ठाके साथ दे। प्रमेह पर त्रिफलाके चूर्ण और शहदके साथ। सन्निपात में अदरखके रसके साथ। उदरशूल पर एरण्ड तैलके साथ। कुष्ठ रोगमें खैरके क्वाथ के साथ। अर्श रोग में नागकेशर के चूर्ण, मक्खन और मिश्री के साथ।

उपयोग—यह पर्पटी ग्रहणी, प्लीहावृद्धि, यकृद्वृद्धि, वातश्लेष्मज्वर, सन्निपात, मूत्रपिंडका शोथ (Bright Disease), वातरक्त, कुष्ठ, वातपित्तप्रकोप, शोथ, मन्दाग्नि, अतिसार-पाण्डु आदि रोगो का नाश करनेमें हितकर है।

इस ताम्र पर्पटीमें ताम्रभस्म प्रधान है। ताम्रका असर विशेषतः यकृत्, प्लीहा और मूत्रपिण्ड पर होता है, जिससे उन पिण्डोकी विकृतिसे हुए रोगोंमें ताम्र पर्पटी लाभ पहुँचाती है। एवं पित्तविसर्जन क्रियामें प्रतिबन्ध होनेके कारण उत्पन्न होनेवाले अतिसार, संग्रहणी आदि रोगोंमें ताम्र पर्पटी विशेष लाभदायक है। इस पर्पटीमें विशेष गुण ताम्रका है। उसका वर्णन ताम्रभस्ममें पहले होगया है।

कचित् यकृद् वृद्धि जीर्ण होने पर त्रासदायक अतिसार होने लगता है, ऐसे समय पर यकृद्वृद्धि और अतिसार, दोनोको दूर करने का कार्य ताम्र पर्पटीके सेवनसे होता है।

(४) विजय पर्पटी ।

बनावट—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक और ताम्रभस्म ४-४ तोले और शुद्ध वच्छनाग १ तोले लेवें। पहले पारद-गन्धककी कज्जली करें। पश्चात् ताम्रभस्म और वच्छनागको मिला गोघृतमें कल्क बना लोहेकी कलछीमें मन्दाग्नि पर रस करें। रस रक्तवर्णका होनेपर केलेके पत्तेपर डालकर पर्पटी बना लेवें। इस रसायनको ग्रन्थकारने "महाविजय पर्पटी" कहा है। (र० का०)

मात्रा—½ से २ रत्ती दिनमें २ से ३ वार।

अनुपान—ग्रहणी रोगमें पचकोल (पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रकमूल तथा सोंठ) और शहद। राजयक्ष्मामें शहद-पीपल। शूलमें अरंडोका तेल। उदरवात पर घीकुँवारका रस। सन्निपातमें अदरखका रस। पाण्डुमें त्रिफलाका जल। दादमें बावचीका रस। प्रमेहमें त्रिफला और शहद। कुष्ठरोगमें खदिरकी छालका क्वाथ।

उपयोग—यह पर्पटी सन्निपातमें उष्णता, रक्तके दबावकी वृद्धि, नाड़ीकी गति बढ़ना, अतिसार, बेहोशी आदि प्रकोपोको दूर करके तुरन्त रोगको शमन करता है। ऐसे ही ग्रहणी, शूल, उदरवात, प्रमेह

और कुष्ठ आदि रोगोको दूर करती है।

उपरोक्त ताम्र पर्पटीका गुण इस पर्पटीमें है, और वच्छनागके गुण--शरीरमेंसे दोषोंका प्रस्वेद और मूत्र द्वारा बाहर निकालना, वेदना शमन करना, नाड़ीकी बढ़ी हुई गतिको कम कर देना इत्यादि--इस पर्पटीमें सम्मिलित होते है। मन्दाग्नि और यकृत्, प्लीहा, मूत्रपिण्ड आदिकी विकृतिके बादमें ज्वरसहित अतिसार या ग्रहणीरोग उत्पन्न हुआ हो, ऐसे समय विजय पर्पटी रोगको तुरन्त नष्ट करती है।

यदि यकृत् और प्लीहाकी विकृतिके बाद फुफ्फुस विकृत होकर राजयक्ष्मा हुआ हो, तो यह पर्पटी मूलकारण रूप इन स्थानोंको सशक्त बनाकर और ज्वरको दूर करके राजयक्ष्माका शमन करती है। एवं यकृत-प्लीहाकी विकृतिसे चलनेवाले शूल, उदरवात, पाण्डु, पित्तज और कफज प्रमेह तथा कुष्ठ आदि रोगोंको भी नष्ट करती है।

सूचना—ताम्रभस्म और वच्छनाग, दोनों अधिक परिमाणमें होनेसे बहुत कम मात्रामें इस पर्पटीका उपयोग करना चाहिये।

(५) लोह पर्पटी।

बनावट—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक और लोह भस्म, तीनोंको समभाग लेवे। पारद-गन्धक की कज्जली करके लोह भस्म मिलावें। पश्चात् पूर्वोक्त रीति से पर्पटी बना लेवे। (भै० र०)

यदि लोह पर्पटी में गन्धक द्विगुण लिया जाय तो पर्पटी अधिक सौम्य बनती है। वह प्रसूता और छोटे बालकों के लिये विशेष उपकारक है।

मात्रा—१ से ३ रत्ती दिनमें २ समय जीरेके चूर्ण और मट्ठे के साथ या धनिये, जीरेके क्वाथ से दें। मात्रा एक रत्ती से प्रारम्भ कर शनैः-शनैः बढ़ावे।

उपयोग—यह पर्पटी संग्रहणी, अतिसार, पाण्डु, कामला, आमवात, कुष्ठ, शूल, प्लीहावृद्धि, आमाशयकी निर्बलता, मन्दाग्नि, उदावर्त, शोथ और स्त्रियोंके प्रसूति रोगको दूर करती है।

लोह पर्पटीमें रस पर्पटी और लोहभस्मके गुण मिले हुए हैं। लोहभस्मका मुख्य गुण रक्ताणुओंको बढ़ानेका है। यह रस पर्पटीकी अपेक्षा इसमें अधिक है। लोह पर्पटी पाण्डु रोगीको विशेष अनुकूल रहती है। जब ग्रहणीरोगके साथ प्लीहावृद्धि, पाण्डु रोग, कामला या रक्तमें रक्ताणुकी न्यूनता हो, तब यह लोह पर्पटी अच्छा काम देती है। दीपन-पाचन गुण होनेसे यह पर्पटी मन्दाग्नि, आमवात, शूल, पित्तज

प्रमेह और उदरवात आदि रोगोंको भी शमन करती है। रक्तमें रहे हुए दूषित अणुओंका नाश करके शुद्ध रक्ताणुओंको बढ़ाती है। इस हेतुसे पित्तप्रधान कुष्ठरोगमें भी लाभ पहुँचता है, और शोथ दूर होता है। एवं यह पर्पटी प्रसूताके जीर्ण या मंद ज्वर, अतिसार, संग्रहणी, आमशूल, प्लीहावृद्धि, यकृत्वृद्धि, पाण्डु, मन्दाग्नि, अम्लपित्त, आमवात इत्यादिको भी दूर करती है।

(६) बोल पर्पटी।

बनावट— शुद्ध पारद २ तोले, शुद्ध गन्धक २ तोले और बीजा बोल ४ तोले लेवे। रक्तबोलको थोड़ा दूधका हाथ (मूण) लगाले। फिर कलछीमें कज्जलीका रस बना, बोलका चूर्ण मिलाकर तुरन्त केलेके पत्ते पर पर्पटी बना लेवे। एकाध मिनट देरा होगी, तो बोल जलकर पर्पटी न्यून गुणयुक्त बन जायगी। दूधका हाथ न लगाया जाय, तो पर्पटी कठोर बनती है और बोलका सत्व भी कुछ जलता है। (यो० र०)

मात्रा—२ से ८ रत्ती मिश्री और शहद, मक्खन-मिश्री, गुलकन्द, अशोकारिष्ट वा अन्य रोगानुसार अनुपानके साथ दिनमें २ से ३ समय देवें। मात्रा धीरे-धीरे बढ़ानी चाहिये।

उपयोग—यह बोल पर्पटी बोलबद्ध रसकी अपेक्षा रक्तातिसार, रक्तपित्त, रक्तार्श (खूनी बवासीर), रक्तप्रदर, अत्यार्तव आदि रोगोंमें रक्तस्राव बन्द करनेके लिये सत्वर लाभ पहुँचाती है। बोल पर्पटीके प्रयोगसे रक्तवाहिनियाँ संकुचित होती है, जिससे रक्तपित्त, उरःक्षत, अर्श और स्त्रियोंके रक्तप्रदर आदि रोगोंमें शीघ्र लाभ पहुँचता है। गर्भाशयमें से होनेवाले रक्तस्राव और रक्तार्शमें भी रक्तस्रावको त्वरित बन्द करती है। रक्तस्राव के रक्तको बन्द करनेके लिये इस पर्पटी के साथ अकीकपिष्टी और तृणकान्तमणिपिष्टी मिला देने से विशेष लाभ होता है।

दूसरीविधि—शुद्ध पारद २ तोले और शुद्ध गन्धक २ तोले मिलाकर कज्जली करें। कज्जलीको कलछीमें डाल रस कर काले बोल (एलुवा) का चूर्ण ४ तोले मिला, तुरन्त केलेके पत्ते पर डालकर दबा देवें। (औ० गु० ध० शा०)

मात्रा—१ से ६ रत्ती दिनमें २ बार शहद और घी या शहद और मिश्रीके साथ दें, या मुनक्कामें रख निगलवा देवे।

उपयोग—यह पर्पटी स्त्रियोंके दूषित रक्तका स्राव करा गर्भाशय को शुद्ध और बलवान बनाती है। यद्यपि गर्भाशय में से रक्तस्राव कराने

के लिए कपासमूलत्वक्‌का क्वाथ या अरिष्ट दिया जाता है. परन्तु कपासमूलत्वक् गर्भाशय को उत्तेजित करके उसमें से रक्तस्राव कराता है, परन्तु वह रक्तस्राव स्वयमेव बन्द नहीं होता। यह दोष इस पर्पटी में नहीं है। यह पर्पटी दूषित रक्तका स्राव करा फिर स्तम्भन क्रिया भी कराती है। इस हेतु से इसके प्रयोग में रक्तस्राव का अतिरेक नहीं होता।

इस पर्पटी में पित्त स्थान में से पित्तका सम्यक् विसर्जन कराने का गुण है। इस हेतुसे यकृत् पित्तका स्राव सम्यक् न होनेसे उत्पन्न होने वाले अतिसार, आनाह आदि विकार तथा आमाशय में पित्तस्राव योग्य न होने से उत्पन्न अपचन आदि विकारों को यह दूर करती है।

जिस तरह यकृत्‌की निर्बलता से उत्पन्न विविध व्याधियों में यह पर्पटी लाभ पहुँचाती है, उस तरह अन्त्रस्थ वातवाहिनियों को भी शक्ति प्रदान कर पुरःसरण क्रिया उत्तेजित कराती है। इस हेतुसे कोष्ठ-बद्धता में यह पर्पटी अच्छा कार्य करती है। विशेषतः उपदंशज बद्ध-कोष्ठ पर अच्छा गुण दर्शाती है।

इसके अतिरिक्त यह गर्भाशय को सबल बनाती है। अतः गर्भाशय विकृति और तरुण स्त्रियों को होनेवाले हारिद्रक और हलीमक पाण्डु में उपयोगी है। एव नष्टार्त्तव और पीडितार्त्तव में भी इस बोल पर्पटी से अच्छा लाभ होता है। (औ० गु० ध० शा०)

(७) पंचामृत पर्पटी।

बनावट—शुद्ध पारद, लोह भस्म, अभ्रक भस्म और ताम्र भस्म २-२ तोले और शुद्ध गन्धक ८ तोले लें। सबको मिला, कज्जली कर यथाविधि पर्पटी बनालें। (चो० र०)

मात्रा—१ से ३ रत्ती दिनमें २ से ३ बार कुड़ेकी छाल, पीपलके चूर्ण और शहदके साथ मिलाकर चाटें। या भुनी हींग, सैंधानमक और जीरेके साथ देवे। अन्त्रक्षयमें आध-आध रत्ती जसद भस्म भी मिलाते रहें। मात्रा १ रत्तीसे आरम्भ करके धीरे-धीरे बढ़ावें।

उपयोग—यह पर्पटी आम और रक्तयुक्त प्रवाहिका, संग्रहणी, अतिसार, अग्निमांद्य, वमन, बवासीर, ज्वर, कृमि, सूजन, क्षय, पाण्डु, अम्लपित्त और प्रसूता स्त्रियोंके ताप, अतिसार, संग्रहणी, शिरदर्द और सूजनको दूर करती है।

सब कज्जलीयुक्त पर्पटियोंमें पञ्चामृत पर्पटी श्रेष्ठ है। इस पर्पटीके कार्य मध्यकोष्ठमें पचनेन्द्रियको शक्तिदायक, आँतड़ीके दोष-

नाशक और जन्तुघ्न, इन तीनों प्रकारके है। इसका वियोजन भिन्न-भिन्न स्थानोंमें होता है। ग्रहणीमें थोड़े भागका शोषण होनेसे तत्रस्थ उपताप का शमन होता है। कुछ भाग यकृत् और पक्वाशयमें शोषण होकर लाभ पहुँचाता है। इनमेंसे ताम्रभस्म विशेषतः यकृत्में जाकर अपना कार्य करती है; और लोहभस्म पक्वाशयमें स्तम्भक और शक्तिदायक असर पहुँचाती है। पारद, गन्धक और लोहका कार्य बृहदन्त्रकी शक्ति को बढ़ानेके लिए होता है। अभ्रकभस्म श्वसनेन्द्रिय, श्वासवह स्रोतसे, श्वासवह केन्द्र, धातुपरिपोषण क्रम और मनोदेशको लाभ पहुँचाती है।

पञ्चामृत पर्पटी पित्तप्रधान रोगोंमें भी दी जाती है। कारण, ताम्र पित्तका निःसरण करता है, और पित्तमार्ग का प्रतिबन्ध मिटाता है। पित्त स्थानके मन्दत्वके हेतुसे उत्पत्ति और स्राव न्यूनांशमें होता हो, तो पर्पटी विशेष हितकर है। जीर्ण संग्रहणी, जीर्ण क्षयजन्य अतिसार, जीर्ण अम्लपित्तसे उत्पन्न अतिसार और रक्तरहित अतिसारमें रोगीकी प्रकृतिके अनुसार मट्ठा या दूधके साथ देनेसे रोग को शीघ्र मिटाती है।

क्षयजन्य जीर्ण अतिसार और जीर्ण संग्रहणीमें पञ्चामृत पर्पटीका उत्तम उपयोग होता है। अति क्षीण हुए रोगियोंको सुवर्ण पर्पटी भी दीजाती है। परन्तु सुवर्ण पर्पटी जब अधिक ज्वर न हो, एवं रोगीकी मानसिक अवस्था विचलित न हो, तब दीजाती है। केवल क्षयजन्य विषके हेतुसे अन्त्रमें विकृति होकर अतिसार उत्पन्न हुआ हो, फिर उससे रोगी अत्यन्त क्षीण हुआ हो, और बलमांस-विहीनताकी प्राप्ति हुई हो, तो सुवर्ण पर्पटीका उत्तम उपयोग होता है। सुवर्ण पर्पटी क्षयके विषकी नाशक और स्तम्भक है, इसमें शोधन गुण बिल्कुल नहीं है। पञ्चामृत पर्पटीमें कुछ अंशमें शोधन गुण भी रहा है। यह गुण भी कोमल प्रकृति वालो पर प्रतीत होता है। अतः शोधन गुणकी आवश्यकता होने पर पञ्चामृत पर्पटी दीजाती है।

पञ्चामृत पर्पटीका कार्य निर्जन्तुक क्षयमें विषघ्न और धातु-परिपोषण क्रमको व्यवस्थित करनेका है। इसी हेतुसे फुफ्फुस, यकृत्, अन्त्र, तीनों स्थानोंमेंसे जहाँ क्षय-विकृति हुई हो, वहाँ पर यह अपना लाभ पहुँचाती है। यदि यह विकृति जन्तुजन्य विषप्रकोपसे हुई हो, और समस्त शरीरमें फैल गई हो, उस हेतुसे शरीर कृश हो, तथा प्रबल अतिसार भी हो, तो सुवर्ण पर्पटी देनी चाहिये। सुवर्ण पर्पटीका कार्य विशेषतः अंत्रविकृति पर होता है, और पञ्चामृत पर्पटी

के कार्यक्षेत्रअन्त्र, यकृत और फुफ्फुस प्रदेश, ये तीन हैं।

संग्रहणी-अनुलोमक्षयकी संप्राप्ति यकृतके पित्तकी उत्पत्ति न्यून होने या अन्त्रमें पित्तस्राव न्यून होनेसे हुई हो, तो यह पर्पटी दी जाती है। जब संग्रहणीमें दस्त सफेद रंगका बाजरेके आटेके घोल सदृश, दुर्गन्धयुक्त होता हो, और दस्तके समय अधिक कि्छना पड़ता हो, तथा मानसिक आघात होने पर रोग बढ़ जाता हो, तो पञ्चामृत पर्पटी हितकारक है। बड़े-बड़े जुलाब, क्षयके कीटाणु और बलमांसनि- हीनता आदि लक्षण हों, तो सुवर्ण पर्पटी देनी चाहिये।

वक्तव्य-श्री प० यादवजी त्रीकमजी आचार्य ने लिखा है कि इस पञ्चामृत पर्पटीमें वंगभस्म और यशदभस्म २-२ तोले मिलाकर सप्तामृत पर्पटी बनायी है। यह पंचामृत पर्पटी से अधिक गुणकारी है। अन्नक्षय में सप्तामृत पर्पटी अकेली या सुवर्ण पर्पटी के साथ मिलाकर देने से विशेष लाभ होता है।

यदि अम्लपित्त के रोगी को पर्पटी देनी हो तो जहरमोहरा पिष्टी और द्राक्षावलेह मिला कर देनी चाहिये। अधिक अग्निमान्द्य हो, आमाशय का पचन अति कम हो, तो पञ्चामृत पर्पटी के साथ एरंड ककड़ी सत्व (papain) मिला देने से विशेष लाभ पहुँचता है।

यदि संग्रहणीके रोगीको शीतसह ज्वर रहता हो, अति अशक्ति आगई हो, पचनशक्ति भी अति मन्द हो, तो पचामृत पर्पटीके साथ अभ्रक भस्म, सप्तपर्णघन, एरंड ककड़ी का सत्व (papain) और जातिफलादि चूर्ण मिलाकर देना चाहिए।

वातजग्रहणी होने पर तालुशोष, चक्कर आना, अति निर्बलता, कानों में शब्द होना, हाड़-हाड़ दुःखना शूल चुभाने समान वेदना, स्वादिष्ट भोजन की चाह होना, गुदामें काटने के समान पीड़ा होना, आफरा आना, झागयुक्त मल गिरना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। इस विकार पर पञ्चामृत पर्पटी, काला नमक मिले हुए मट्ठे के साथ देना चाहिये।

दूसरी विधि—शुद्ध गन्धक ८ तोले, शुद्ध पारद ४ तोले, लोह- भस्म २ तोले, अभ्रक भस्म १ तोला और ताम्र भस्म ६ माशे लें। सबको यथाविधि मिला, कज्जली कर पर्पटी बना लेवें। (र० का०)

मात्रा—१ से ४ रत्ती दिन में २ समय कुड़ाकी छाल, पीपल और शहद, या शहद और गोघृत के साथ, या रोगानुसार अनुपान के साथ दे। १ रत्ती से आरम्भ कर मात्रा शनैः-शनैः बढ़ावें।

उपयोग—यह पर्पटी नाना प्रकार की ग्रहणी, अरुचि, दुष्ट

बवासीर, वमन, जीर्ण अतिसार, ज्वरातिसार, रक्तपित्त, क्षय आदि रोगों को दूर करती है। यह वृष्य, हृद्य, आयुवर्द्धक, वलीपलितनाशक, और सब रोगों को दूर करने वाली है। अग्नि प्रदीप्त करती है; जिससे पुनः नूतन रोग की उत्पत्ति की शंका ही नहीं रहती।

पहली विधि और दूसरी विधि में ओषधियाँ समान है, मात्र मात्रामें अन्तर है। पहली विधिमें ताम्र अधिक होने से अधिक उष्ण है; इसमें ताम्र कम होनेसे यह सौम्य है। ग्रहणीमें जब पित्तप्रवेश न्यून होता हो, मलका रंग श्वेत हो, यकृत्, प्लीहा और वृक्कस्थान को अधिक बल देना हो, और पित्तस्राव अधिक कराना इष्ट हो, तब पहली विधि वाली पर्पटी उपादेय है। जब इन कार्यों की आवश्यकता कम हो, मलमें पीला-पन हो, पित्तकी अधिकता हो तथा हृदय पर उत्तेजक और बल्य असर एवं कफ निर्दोष कराने और रक्तवृद्धि की आवश्यकता विशेषांश में हो, तब यह दूसरी विधि उपयोगी है। इस रीतिसे अन्य रोगों के लिये भी किञ्चित् अन्तर पड़ता है।

(८) प्राणदा पर्पटी।

बनावट—शुद्ध पारद, अभ्रक भस्म, लोह भस्म, नाग भस्म, वंग भस्म, कालीमिर्च, शुद्ध वच्छनाग, प्रत्येक २-२ तोले और शुद्ध गंधक १४ तोले लेवें। पारद-गंधक की कज्जली के साथ और ओष-धियों को मिला लोहे की कढ़ाही में थोड़े घृत के साथ डाल कर बेर के कोयलों को अग्नि पर रक्खें। सम्हालपूर्वक लोहशलाकासे चलाते रहें। रस होने पर पर्पटी बनालें। (नि० र०)

मात्रा—१ से ३ रत्ती शहद-पीपल या रोगानुसार अनुपान के साथ दें। ग्रहणी रोग में मात्रा १ रत्ती से आरम्भ करके शनैः-शनैः बढ़ावें, किन्तु ३ रत्ती से अधिक न बढ़ावें। कारण, इसमें हृदय अव-सादक वच्छनाग मिला हुआ है।

उपयोग—प्राणदा पर्पटी पाण्डु, प्रवाहिका, संग्रहणी, ज्वराति-सार, खाँसी, क्षय, प्रमेह और मन्दाग्नि को दूर करती है।

आम संग्रहणी में जब ज्वर, पाण्डु और कफवृद्धि हो, वात, पित्त और कफ, तीनों दोष और रस, रक्त आदि सब धातुएँ शिथिल हो गये हो, शारीरिक शक्ति अति क्षीण हो गई हो, ज्वर बना रहता हो, या अपथ्य सेवन से ग्रहणी रोग पुनः प्रकुपित हुआ हो, तब इस प्राणदा पर्पटी का उपयोग करने से सत्वर लाभ पहुँचता है। यह पर्पटी दोषघ्न, उष्ण और जन्तुघ्न होने से दूषित आमकफ को जलाती

है, सेन्द्रिय विषको प्रस्वेद और मूत्र द्वारा बाहर निकालती है; अग्नि को प्रदीप्त करती है, और ज्वरातिसार, प्रवाहिका (पेचिश), कफ-कास, क्षयरोग में अतिसार, अग्निमांद्य और कफ-प्रमेह को नष्ट करती है।

(६) शीतल पर्पटी।

बनावट—कलमी शोरा २० तोले और गन्धकका शुद्ध तिजाब (Acid Sulphuric) २ तोले लेवें। दोनो को लोहे के सफेदी लगे हुए कलई (एनेमल) के पात्र में डालकर निर्धूम कोयलोंकी मन्द अग्नि पर रखे, और सम्हाल पूर्वक लोहशलाकासे चलाते रहे। गन्धक का धुआँ श्वास में न आजाय, इसका ध्यान रखें। धुआँ निकल जाने पर जब पतला रस सफेद रंग का बन जाय, तब पात्र को नीचे उतार कर उसी में ही चारो ओर पर्पटी को फैला देवें; फिर शीतल होने पर पर्पटी को खोल लेवें। (श्री प० वंशीधर जी आयुर्वेदाचार्य)

मात्रा—६ से १२ रत्ती सुबह जीरे के चूर्ण के साथ देकर थोड़ा शीतल जल पिलावें। आवश्यकता पर एक घण्टे बाद दूसरी मात्रा दें।

उपयोग—यह पर्पटी मूत्रकृच्छ्र या अन्य किसी कारणसे उत्पन्न हुए मूत्रावरोध को सत्वर दूर करती है, एवं अम्लपित्त, वमन, उदर-शूल, वृक्कशूल, अजीर्ण, यकृद्विकार आदि में भी हितकर है।

अम्लपित्त रोगी को भोजन करलेने के बाद हृदय में शूल निकलता हो तो यह पर्पटी भोजन के बाद दिन में दो बार शीतल जल के साथ देनी चाहिये। इसके सेवन से दूषित पित्त का रूपान्तर होता है, मूत्र साफ आता है और दाह, शूल और बेचैनी दूर होते है।

आयुर्वेदके मतानुसार शोरा अति उष्ण, तीक्ष्ण, अग्निप्रदीपक, दाहक, शोषक, वातनाशक और पित्तकारक है। प्लीहा, मूत्रकृच्छ्र, नेत्ररोग, वातरक्त, कुम्भकामला, श्वास, शूल, आध्मान, पिटिका आदिमें हितावह है।

डाक्टर बसु लिखते हैं कि, शोरे का सेवन अल्प मात्रा में करने पर लालानिःसारक, अग्निप्रदीपक, बल्य, शैत्यकारक, रसायन (परिवर्तक), पित्तनिःसारक और क्षारनाशक है। यह क्षुधाको बढ़ाता है, और बलका संचार करता है। अधिक मात्रामें सेवन करने पर प्रदाह (दाह-शोथ) और दाह-विष-क्रिया की उत्पत्ति कराता है। फिर मुँह के भीतर की श्लैष्मिककला पीली हो जाती है।

शोरेके उक्त गुण इस पर्पटी में अवस्थित है। अतः अत्यधिक मात्रामें इसका उपयोग नहीं करना चाहिये।

(१०) मल्ल पर्पटी (पर्पटी रस)।

बनावट—सफेद राल १६ तोले और सोमल २ तोले लेवें। प्रथम लोहेकी कढ़ाही में थोड़ा घी लगा रालका रस तैयार करे। फिर नीचे उतार तुरन्त सोमलका चूर्ण मिला देवें। पश्चात् केलेके पत्ते पर फैलाकर पर्पटी को दबादें। (सि० भे० म०)

मात्रा—½ से १ रत्ती शहद के साथ दिनमें दो बार।

उपयोग—मल्ल पर्पटी कफज्वर, वातज्वर और ज्वर के उपद्रव-रूप वातभ्रम (चक्कर आना), श्वासावरोध, कफवृद्धि और हृदयावरोध आदि दोषों को दूर करती है।

इस पर्पटीमें सोमल आता है; अतः वह तीक्ष्ण और उष्णवीर्य है। इसका फुफ्फुस, हृदय और वातवाहिनियों पर उत्तेजक परिणाम होता है। अतः जब वातकफप्रकोपसे मंद-मंद ज्वर या अन्य विकार होते हों, तब यह अच्छा काम देती है। विशेष वर्णन मल्ल भस्म में देखें।

सूचना—पित्तप्रकोपमें इस ओषधिका उपयोग न करें। ज्वर का वेग अधिक बढ रहा हो; उस समय यह ओषधि न दें। वरना अस्राभिनोदन (रक्तके दबाव की वृद्धि) होकर मस्तक में रक्त बहुत चढ़ जायगा और बेहोशी, भ्रम आदि लक्षण बढ जायँगे। अतः ज्वर कम होने पर दें।

(११) अभ्र पर्पटी।

बनावट—अभ्रक भस्म १ भाग, शुद्ध पारद २ भाग और शुद्ध गन्धक ४ भाग लेवें। सबको यथाविधि मिला, कज्जली कर, यथा-विधि पर्पटी बना लेवें।

मात्रा—१ से ३ रत्ती त्रिकटु और शहद के साथ देवें।

उपयोग—यह पर्पटी कफप्रधान कास, क्षय रोगमें अतिसार, सगर्भा स्त्रीके अतिसार, संग्रहणी, श्वास, अरुचि, पाण्डु और सब प्रकारके कफप्रधान रोगों को नष्ट करती है। अनेक बार यह पर्पटी लोह पर्पटी के साथ मिलाकर व्यवहृत होती है।

सूचना—भोजन मधुर और हलका देना चाहिए। क्षार, खटाई, तीक्ष्ण पदार्थ, बेंगन का शाक और दाल का त्याग कराना चाहिए।

खरलीय रसायन प्रकरण।

रस पारदको कहते हैं, इस कारण से जिन-जिन औषधियोंमे पारद या पारद के खनिज द्रव्य सिंगरफको मिलाया जाता है, उन सबका रस प्रकरण में अंतर्भाव होता है, और वे सब रसायन कहलाते हैं। रसायनके २ विभाग, कूपीपक्व और पर्पटी, पहले प्रकरणोंमें लिख चुके हैं। इस कारण इस प्रकरण का नाम "खरलीय रसायन" रक्खा है। पारदयुक्त औषधिको जितने अधिक परिमाण में खरल किया जाय, उतने ही पारदके परमाणु सूक्ष्म होते हैं, जिससे लाभ भी उतनी ही शीघ्रतासे पहुँचता है। पारदयुक्त औषधि विशेष समय तक गुणयुक्त रहती है, और थोडी मात्रामे शीघ्र लाभ पहुचाती है।

अनेक औषधियाँ पारदमिश्रित न होने पर भी रसायन समान गुणयुक्त होने से उन औषधियोंका इसी प्रकरण में समावेश किया है।

पारा, गन्धक और विषैली वस्तुओंको शुद्ध करके ही औषधि-प्रयोगमें मिलाना तथा खाने के लिये आँवलासार गंधक ही उपयोग में लेना चाहिये। दंडागन्धक खाने के लिये हितकर नहीं है।

फिटकरी और सोहागाको फूला करके उपयोग मे लेना चाहिये, एवं हींग को भूनकर ही मिलाना चाहिए।

औषधि तैयार करने मे पारद, गन्धक, भस्म और काष्ठादिक वस्तुएँ साथमे हो, तो पहले पारद और गन्धकको मिला, १२ घण्टे खरलकर कज्जली करे। फिर भस्म मिलावे। पश्चात् विषैली वस्तुएँ और अन्तमे काष्ठादि वस्तुओंका कपड़छान चूर्ण मिलावे। पाठमे शिलाजीत, अफीम और गूगल हों, तो इनको थोडे जलमे मिला, एकरस करके मिलाना चाहिए।

यदि रसायनों के गुण की वृद्धि करना हो, तो पारद या कज्जलीको पहले रोगशामक औषधियोंके क्वाथ या स्वरस की भावना देवे। फिर प्रयोग तैयार करे। जैसे ज्वर दूर करने के लिए ज्वरघ्न औषधियोंके क्वाथ की भावना, पित्त-प्रकोपमे पित्तशामक, वातवृद्धिमे वातहर, कफनाशके लिये कफस्रावी, कुष्ठ-नाशके लिये कुष्ठघ्न, अतिसार होने पर ग्राही एवं मधुमेह दूर करनेके लिये गुडमार, जामुनकी छाल या न्यग्रोध आदि वर्गके द्रव्योंकी भावना देने से रसायन सत्वर लाभ पहुँचाता है।

रस या गुटिका प्रभृति औषधियो में जहाँ पर भावना देने के लिये वनौषधियोंका साक्षात् स्वरस मिल सकता हो; वहाँ पर अच्छी रीति से औषधि आर्द्र होजाय—रबडी सदृश होजाय, उतना स्वरस मिला सूखने तक खरल करने को एक भावना कहते हैं। स्वरसका अभाव होने पर जिस वनौषधिके

काथकी भावना देनी हो, उसे भाव्यद्रव्यके (जिस ओषधिको भावना देनी हो उसके) समान लेकर ८ गुने जलमें मिला क्वाथ कर अष्टमाश शेष रहने पर भावना दे। यदि उतने क्वाथ से भाव्यद्रव्यमे अच्छी रीतिसे गीलापन न आता हो, तो क्वाथ करनेकी ओषधि दुगुनी लेकर क्वाथ करें।

जब रसायन या अन्य कोई ओषधि खरल मे हो और घोटाई चालू न हो; या रात्रि के समय घोटाई बन्द रहे, तब मोटे कार्डबोर्ड या लकड़ी के ढक्कनसे खरल को ढक देना चाहिये, और ढक्कनके बीचमे बत्ता आजाय उतना बड़ा छेद करा लेना चाहिये, जिससे बीचमे बत्ता खड़ा रह सके। इस रीतिसे ओषधि बन्द रहनेसे बाहर का कचरा या सूक्ष्म जन्तु नहीं गिरेंगे। इसके अतिरिक्त भावनाके लिए मिलाया हुआ रस निकम्मा सूख कर ओषधिमें अनावश्यक क्षारकी वृद्धि नहीं होगी। जैसे सुवर्णमालिनीवसतकी घोटाई अधिक दिनों तक होती है। उस ओषधियुक्त खरल को यदि रात्रिके समय न ढकें, तो उसमे नीबूके रसके क्षारका परिमाण अधिकाश में होजायगा, जिससे ओषधिका गुण न्यून होजायगा। भावनामे मिलानेका रस उतने अशमे मिलावे कि जिसमेसे बहुत हिस्सा शाम तक घोटाई करनेमें ही सूख जाय। अधिक रस बार-बार शेष रह जाने से ओषधियोंमे कुछ अशमे विक्रिया होजाती है।

ओषधियों को भावना देनेके पश्चात् गोलियाँ बनाकर छायामे जहाँ कूड़ा-कचरा न उड़ता हो, ऐसे स्थान पर सुखावे, और सूख जाने पर साफ अच्छी डाट वाली शीशियोंमे भर देवे। यदि थोडी गीली गोलियाँ भर दी जायँगी, तो उस ओषधिमे विक्रिया होकर थोडे ही दिनोंमें दुर्गन्ध आने लगेगी। एवं ओषिध अच्छी सूख जाने पर भी खुली रक्खी जायगी, तो उसमेसे सत्वाश उड़ता रहनेसे ओषधि थोडे ही महीनोमे हीन वीर्य होजायगी।

रसायन वाली ओषधियोको घोटनेके लिये पक्के पत्थरके खरलका उपयोग करें। लोहेके खरलमें क्षारयुक्त ओषधि मिलाने अथवा नीबू आदिके रसोकी भावना देनेसे ओषधिमे लोहेका जंग मिल जाता है।

(१) विश्वतापहरण रस।

बनावट—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध वच्छनाग, ताम्रभस्म, सोंठ, मिर्च, पीपल और अकलकरा, इन ओषधियो को सम भाग लेकर खरल करें। फिर करेलेके पत्तोके रसमें १२ घण्टे घोटकर उड़दके समान गोलियाँ बनावे। (आ० नि० मा०)

मात्रा—१ से २ गोली जीरा-मिश्री ६-६ रत्तीके साथ दे।

उपयोग—यह रसायन सब प्रकारके विषमज्वर, धातुगतज्वर, अपचनजनित ज्वर, जीर्णज्वर, द्वन्द्वज्वर, वातज्वर और कफज्वरको

और मिश्री, या तुलसीके रसके साथ। ज्वरसहित अतिसारमें नागरमोथे का क्वाथ; ग्रहणी और अर्शमें मिश्री और शहद; वातप्रकोपमें त्रिकटु और चित्रकमूलका क्वाथ, कम्पवात, अपबाहुक, एकांगवात, अपस्मार और उन्मादमें शुद्ध धतूरेके बीज ५ नग और मिश्रीका अनुपान दें। इस रीतिसे अन्य अनुपानोंकी योजना कर लेनी चाहिये।

उपयोग—यह रसायन शीतांग सन्निपात, कफज्वर, वातज्वर, वातश्लेष्मज्वर (Influenza); फुफ्फुस सन्निपात (Pneumonia), प्रतिश्याय, कफप्रकोपसे उत्पन्न समस्त रोग, ज्वरातिसार, आमातिसार, कफप्रधान नया ग्रहणी रोग, अर्श, कंपवात, अपबाहुक, एकांगवात, अपस्मार और उन्मादको नष्ट करनेमें अति उपयोगी है।

इस रसायनके सेवनसे नाडियोंमें संगृहीत कफ और अंतड़ीमें रहे हुए आमका शोषण होता है, तथा मल-मूत्रावरोध दूर होकर अग्नि प्रदीप्त होती है, फिर आमाशय, फुफ्फुस, अन्त्र और मूत्राशय शुद्ध होकर अपनी-अपनी क्रियाको नियमित करने लगते हैं। तथा ज्वर शमन होजाता है।

इस रसके सेवनमें दूध, दूधके बने पदार्थ, दहीके पदार्थ, मट्ठा, चावल और शक्कर आदि पदार्थ पथ्य माने जाते हैं। फिर भी रोग और प्रकृतिका विचार करके भोजन देना चाहिये।

सूचना—इस रसायनमें बच्छनागकी मात्रा अधिक है, अतः निर्बल हृदय वालोंको यह रसायन अति कम मात्रामें देना चाहिये। कारण बच्छनाग हृदयकी गतिको शिथिल करता है।

(४) कस्तूरीभैरव रस।

बनावट—शुद्ध हिंगुल, शुद्ध बच्छनाग, सोहागेका फूला, जावित्री, जायफल, कालीमिर्च, पीपल और कस्तूरी, सब सम भाग लें। कस्तूरी को छोड़ शेष ओषधियोंको मिलाकर ब्राह्मीके क्वाथमें ३ दिन खरल करें। फिर कस्तूरी मिला कर ३ घण्टे नागरवेलके पानके रसमें खरल करके मिर्चके समान गोलियाँ बाँधे। भावना देनेको मूल ग्रन्थकारने नहीं लिखा, अनुकूल समझ कर हमने बढ़ाया है। (र० रा० सु०)

मात्रा—२ से ३ गोली दिनमें २ से ३ समय जल या रोगानुसार अनुपानके साथ देनी चाहिये।

उपयोग— यह रसायन ज्वरकी तरुणावस्थामें आम-पाचन और ज्वर-शमनार्थ दिया जाता है। इस ओषधिके सेवनसे १४ दिनके मुद्दती ताप प्रलापक सन्निपात (Typhus Fever) और २१ दिनके

मुद्दती ताप आंत्रिक सन्निपात (Typhoid Fever) में रोगीकी शक्ति स्थिर रहती है, और समय पूरा होने पर ज्वर चला जाता है। जिन रोगियोंके जीवनकी आशा छूट गई हो, ऐसे मोतीझराके अनेक रोगी ब्राह्मी क्वाथके साथ इस औषधके सेवनसे सुधर गये हैं। यह रसायन कोमल प्रकृतिवालों और बालकोंके लिये भी हितकर है। कफ और वातप्रधान सन्निपातमें प्रलाप, शीत, निद्रानाश, या वातप्रकोपको दबानेके लिये भी अच्छा काम देता है। प्रसूताके धनुर्वात, कंप, दाँत भिचना, श्वास, कास और हृदयावरोधको सत्वर दूर करता है। हिस्टीरिया, अपस्मार, उन्माद और मूर्च्छामें मस्तिष्कको शान्त रखता है, और हृदयको भी सबल बनाता है।

(५) सूचिकाभरण रस।

बनावट—रससिंदूर, शुद्ध सर्पविष और कस्तूरीको समभाग मिला धतूरे के रस में १२ घण्टे खरल करके चूर्ण बना ले। (र०यो०सा०)

उपयोग—सुईके अग्र भागसे थोड़ा-सा ($\frac{1}{32}$ रत्ती) निकाल शिर परके बालोंको अलग कर रक्त निकाल कर उसमें मिला देनेसे तथा उतने ही परिमाणमें मिश्रीके साथ मिलाकर खिला देनेसे सन्निपात की बेहोशी और इन्द्रियोंकी शून्यता आदि तत्काल दूर होते है।

सूचना—दाह होने पर शर्बत या मिश्री मिला दूध पिलावे।

(६) लघु सूचिकाभरण रस।

बनावट—अशुद्ध काला ताजा वच्छनाग ४ तोले, शुद्ध पारद ३ माशे, दोनोंको एकत्र मिलाकर पारद अदृश्य होवे तबतक (३ दिन तक) खरल करे। यदि वच्छनाग सूखा मिलाया हो, तो जल डालकर खरल करे। फिर चौड़े मुँहकी शीशीमें बन्दकर १ मास तक जमीन में दबादें। पश्चात् चीनी मिट्टीकी छोटी दो प्यालियोंमें सपुटकर कपड़-मिट्टी करे। पश्चात् धूपमें सुखा, चूल्हे पर रख, दो प्रहर तक मन्द-मन्द अग्नि देवे। ऊपरकी प्याली पर गीला कपड़ा बार-बार बदलते जायँ। स्वांग शीतल होनेसे ऊपरकी प्यालीमें लगे हुए पारदको वायु न लगे वैसे निकालकर शीशीमें भर लेवे। (शा० सं०)

उपयोग—$\frac{1}{16}$ से $\frac{1}{8}$ रत्ती सुईके अग्र भागसे शीशीमेंसे निकाल, सन्निपातके रोगी अथवा सर्पदंश से मूर्च्छित रोगीके तलवेके मध्यके बालों को उस्तरेसे अलग कर त्वचामें-से रक्त निकालकर औषधि लगादे। फिर अँगुलीसे मलकर औषधिको रक्तमें मिला देनेसे बेहोशी,

इन्द्रियोंकी शून्यता और सांपके विषसे आई हुई मूर्च्छा तत्काल शान्त होती है।

सूचना—इस उपायसे दाह होनेपर शर्बत पिलाना चाहिये।

(७) ज्वरकेसरी वटी।

बनावट—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाग, सोंठ, पीपल, कालीमिर्च, हरड़, बहेड़ा, आँवला और शुद्ध जमालगोटा, सब सम भाग मिला, १२ घण्टे भाँगरेके रसमें खरल कर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बनावें। (भैं० र०)

निघंटुरत्नाकरमें भांगरेके स्थानमें द्रोणपुष्पीके रसकी भावना देनेको लिखा है। वह ज्वर-शमनमें विशेष लाभप्रद रहता है।

मात्रा—१ से २ रत्ती दिनमें २ समय ५ से ७ नग कालीमिर्चोंके साथ निगल जायँ, ऊपर एक घूँट जल पीवें। बालकोंको सरसोंके बराबर दें। मूल ग्रन्थकारने अनुपान भिन्न भिन्न लिखे हैं। सब प्रकारके ज्वर पर नारियलका जल। पित्तज्वरमें शक्कर। सन्निपातमें कालीमिर्च। दाहज्वरमें पीपल और जीरा।

उपयोग—ज्वरकेसरी रस सब प्रकारके नूतन ज्वर, वातज्वर, पित्तज्वर, दाहज्वर, विषमज्वर, सन्निपात, भूतानुबन्धयुक्त ज्वर, प्लीहावृद्धिसे आनेवाला ज्वर, सब प्रकारके पित्तप्रधान कुष्ट, गुल्म, मलावरोध, मन्दाग्नि, अजीर्ण, शोथ, शूल तथा सब प्रकारके पित्त और रक्तदोषको शान्त करता है।

बहुधा अनेक प्रकारके ज्वरों की उत्पत्ति मलावरोध होनेपर होती है। मलावरोध होनेपर आम और सेन्द्रिय विष की वृद्धि होती है। फिर आम और विषको जलानेके लिये जीवन संरक्षक शक्ति उष्णता को बढ़ा देती है। उसे शास्त्रकारोंने ज्वर संज्ञा दी है। इस ज्वरमें प्रकृति और लक्षणभेदसे विविध प्रकार होते हैं। यदि मलावरोध ज्वर का हेतु है, तो फिर चाहे किसी भी जातिका ज्वर हो, वातज, पितज, कफज, द्वन्द्वज या त्रिदोषज, सबके मूल हेतुरूप मलावरोधको दूर करने तथा ज्वरको शमन करनेके लिये यह निर्भय औषधि है।

सूचना—यह औषधि बालक, वृद्ध, युवा, स्त्री-पुरुष, सबको देनेमें उपयोगी है। सिर्फ सगर्भा स्त्री और अतिसारके रोगीको नहीं देनी चाहिये।

(८) नारायणज्वरांकुश रस।

बनावट—शुद्ध सोमल, शुद्ध पारद, शुद्ध, गन्धक, शुद्ध हरताल, शुद्ध बच्छनाग, शुद्ध धतूरेके बीज, वराटिका भस्म, सोहागेका फूल,

भाँग, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, सब सम भाग लें। पहले पारद और गन्धककी कज्जली करके क्रमशः सोमल और हरताल मिलावें। फिर आधे घण्टे घुटाई करनेके बाद वच्छनाग और अन्तमें सब वस्तुओंका बारीक चूर्ण मिला, अदरखके रसमें ३ दिन तक घुटाई करके ज्वारके दानेके समान गोलियाँ बनावे। (यो० र०)

मात्रा—१-१ गोली दिनमें ३ समय जलके साथ दे। ज्वर होने पर उतारने, और ज्वर न हो तब रोकनेके लिये दिनमें ३ समय देवे।

उपयोग—नारायणज्वरांकुश सब प्रकारके विषमज्वर (ठण्ड लगकर आनेवाले ताप), सन्निपात, जीर्णज्वर और विसूचिकाको नष्ट करता है। सब प्रकारके कफप्रधान और वातप्रधान ज्वरमें उपयोगी है।

सूचना—इस ओषधिमें सोमल है, इसलिये खान पानमें अपथ्य नहीं करना चाहिये। जीर्णज्वरमें अवश्य घी और दूध देना चाहिये। नूतन ज्वरमें ओषधि देकर कपडा ओढा देनेसे पसीना आकर ज्वर उतर जाता है।

यह रसायन ज्वरके तीव्र वेगमें, ग्रीष्म और शरद् ऋतुमें तथा पित्त-प्रधान प्रकृति वालेको नहीं देना चाहिये।

(९) महाज्वरांकुश रस।

प्रथम विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध वच्छनाग, तीनों एक-एक भाग, शुद्ध धतूरेके बीज ३ भाग, और सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, तीनों दो-दो भाग लेवें। सबको यथाविधि मिला, अदरख और नीबूके रसकी १-१ भावना देकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बाँधे। (र०रा०)

मात्रा—१-१ रत्ती अदरखके रस और शहदके साथ देवें।

कफप्रधान ज्वरमें महाज्वरांकुश, शृंगभस्म, कफकुठार और नौसादर मिलाकर दिनमें ३ वार देवे और ऊपर पिप्पल्यादि क्वाथ पिलावें।

उपयोग—यह रसायन वेदनाशामक, ज्वरघ्न और पाचक है। वातज्वर, कफज्वर, द्वन्द्वज ज्वर, त्रिदोषज ज्वर और सब प्रकारके विषम ज्वर—एकाहिक, द्वयाहिक, तृतीयक, चातुर्थिक आदिका नाशक है। यह रसायन विना ठण्डके ज्वर और लगातार रहनेवाले ज्वर और बढ़ने-घटने वाले ज्वरमें अति उपयोगी है। ज्वर के साथ उत्पन्न अजीर्ण, पतले दस्त होना, पेट में दर्द होना, पेटमें वायु (आफरा) होना इत्यादि विकारोंको भी दूर करता है। जीर्ण संधिवात (आमवात) में यह रसायन लाभदायक है।

इस रसायन के सेवन से कुछ प्रस्वेद आता है, वेदना शमन

होती है, और आम पचन होकर ज्वर दूर हो जाता है।

अजीर्ण या असात्म्य भोजन से पचनेन्द्रिय संस्था के कार्य की विकृति होकर उत्पन्न ज्वर पर इस रसायनका उत्तम उपयोग होता है। विशेपतः वेदना सहन न करनेवाले अधीर और चंचल प्रकृतिके रोगी को यह दिया जाता है।

सर्वाङ्ग में कम्प, ज्वर वेग असमान, निद्रानाश, बार-बार छींकें आना, शरीर जकड़ जाना, हाथ-पैर टूटना, संधि-संधि में वेदना, मस्तिष्क और कपाल में दर्द, मुँह में बेस्वादुपन, मलावरोध, सारे शरीर में भारीपन, हाथ पैर शून्य होजाना, कान में आवाज आना, दाँत भिंचना, व्याकुलता, शुष्क कास, उबाक, थोड़ी-थोड़ी वमन, रोंगटे खड़े होना, तृषा, चक्कर आना, प्रलाप, मूत्र का रंग पीला, लाल या काला-सा हो जाना, उदर में शूल, आफरा, बारबार उबाली आना तथा लक्षण-वृद्धि होने पर असहनशीलता, रोगीका बड़बड़ करते रहना (पूछने पर रोगी कहता है कि, प्रलाप करने पर अच्छा लगता है), इत्यादि वातप्रधान लक्षण होने पर यह महाज्वरांकुश रस दिया जाता है।

ज्वरका मंद वेग, अङ्गमें जड़ता, आलस्य, निद्रावृद्धि, अङ्ग अकड़ा हुआ भासना, कपड़ा उतारने पर शीत लगना, मुँहमें बार-बार पानी आना, उबाक, वमन, उदर में भारीपन, नेत्रके समक्ष अन्धकार, सूर्यके तापमें बैठने या अग्निसे तापनेकी इच्छा, सूर्य के तापमें बैठनेसे अच्छा लगना, खाँसी, अरुचि, बेचैनी आदि कफप्रधान लक्षण होने पर इस महाज्वरांकुश का अच्छा उपयोग होता है।

कफवात ज्वर होनेसे अंगमें जड़ता और अति गीलापन, मस्तिष्क जकड़ा हुआ भासना, हाड़-हाड़ फूटना, तन्द्रा, जुकामके समान नाकमें श्लेष्मकी उत्पत्ति होना, खाँसी, प्रस्वेद न आना, हाथ-पैर और नेत्रोंमें दाह, भय लगना, क्रोध उत्पन्न होना, थकावट-सी लगना आदि लक्षणों में ज्वर विशेपतः मर्यादित होता है। इस पर यह रसायन् लाभदायक है।

संतत विषमज्वर अर्थात् ७ या १० दिन तक रहने वाले ज्वर में अति जड़ता, हाथ-पैर टूटना, अति प्यास (यह प्यास उष्ण जल या सोंठ, लौंग आदि उष्ण पदार्थके सेवनसे कम होती है), आदि लक्षण प्रतीत होते है। इस ज्वर में और एक दिन छोड़कर आने वाले तृतीयक ज्वर में यह महाज्वरांकुश हितकारक है।

अजीर्ण या अपथ्य सेवनसे ज्वर आनेपर कोष्ठस्थ विकृति होती

है। फिर उबाक, लालास्राव, उदर में वायु भर जाना, अरुचि, उदर में मन्द-मन्द शूल, थोड़ा-थोड़ा दस्त लगते रहना, अग्निमान्द्य, किसी भी प्रकार के भोजन की इच्छा न होना, शारीरिक उत्ताप मर्यादित होना, संधि-संधिमें वेदना आदि लक्षण प्रतीत होते है। इस ज्वर पर महाज्वरांकुश रसका अच्छा उपयोग होता है।

(औ० गु० ध० शा०)

दूसरी विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, ताम्र भस्म, सुवर्णमाक्षिक भस्म, शुद्ध जमालगोटा, कुटकी, हरड़, निसोत, शुद्ध कुचिला, सब सम भाग मिला भाँगरा, तुलसी और अदरख के रसकी १-१ भावना देकर एक-एक रत्ती की गोलियाँ बाँधे। (आ० मि०)

मात्रा—१-१ रत्ती दिनमें दो समय गरम जलके साथ दे।

उपयोग—यह ज्वरांकुश सारक, उष्ण और ज्वरघ्न है। ठण्ड देकर आनेवाले एकाहिक आदि विषमज्वर और कार्तिक-मार्गशीर्षमें आनेवाले पित्तप्रकोपज ज्वर में उपयोगी है। ज्वर के साथ कब्ज, यकृत् के दोष, पेशाबका क्षार, वातदोष और वातविकारको भी शान्त करता है। वातपित्तज और पित्तश्लेष्मज ज्वरकी यह उत्तम ओषधि है।

इस रसायन में वच्छनाग न होने से निर्बल हृदयवालो को भी यह दिया जाता है। मलेरिया में जिनसे किनाईन सहन नहीं होता, उनको यह ताम्र कुचिला और जमालगोटा प्रधान ओषधि देने से लाभ पहुँच जाता है। कितनेको को क्विनाईन लेते रहने पर भी ज्वर दूर नहीं होता, बार-बार ज्वर आता रहता है। उनके लिये इस महाज्वरांकुश का सेवन हितावह है। थोड़ी मात्रा में कुछ दिनो तक देना चाहिये। यदि कब्ज हो, उदरमें जीर्ण मल संगृहीत हुआ हो तो उसे भी यह दूर कर देता है।

तीसरी विधि—शुद्ध पारद १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, सोहागे का फूला २ भाग, शुद्ध मैनशिल ½ भाग, शुद्ध हरताल १ भाग, शुद्ध वच्छनाग २ भाग, शुद्ध कुचिला १ भाग, सुवर्णमाक्षिक भस्म २ भाग, सोंठ ३ भाग, मिर्च ३ भाग, पीपल ३ भाग, हरड़ २ भाग, बहेड़ा २ भाग, आँवला २ भाग, करंजके बीज सेके हुए २ भाग, कुटकी २ भाग, शुद्ध धतूरे के बीज ३ भाग, मुलहठी २ भाग और पुष्करमूल २ भाग लेवे। प्रथम कज्जली कर, हरताल, मैनशिल और सोहागा क्रमशः मिलावे। फिर शेष द्रव्य मिलाकर अगस्त के पत्तो के रस, तुलसीके

पत्तोंके रस, धतूरेके पत्तोंके रस और अदरखके रसकी १-१ भावना देकर एक-एक रत्ती की गोलियाँ बाँधें । (आ० मि०)

मात्रा—एक एक रत्ती दिनमें २ समय अदरखके रस और शहद या निवाये जल के साथ देवे ।

उपयोग—यह रसायन दीपन, पाचन, उत्तेजक, वेदनाशामक और ज्वरघ्न है । ठण्ड देकर आनेवाले ताप, कफज्वर, सन्निपात और श्रावणसे दिवाली तक आनेवाले मलेरिया ज्वरमें उपयोगी हैं । यदि कब्ज हो, तो इस ओषधिके देनेके पहले ज्वरकेसरी अथवा अश्वकंचुकी रस देकर कोष्ठशुद्धि कर लेनी चाहिये । जिन रोगियोंको पहले पेचिश होगया है या पतले दस्त होते रहते हो ऐसे विषम ज्वरके रोगियोंके लिये यह प्रयोग लाभदायक है ।

(१०) रत्नगिरि रस ।

बनावट—शुद्ध मैनशिल, शुद्ध हिंगुल, लौंग और जायफल, समभाग मिलाकर अदरखके रसकी २ भावना देवे । फिर एक-एक रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें । (आ० नि० मा०)

मात्रा—१ से ३ गोली । बच्चोंको ¼ से ½ रत्ती तक देवे ।

अनुपान—धनिया और मिश्री जौकुट आधा-आधा तोला लेकर १ छटाँक जलमें एक घण्टे तक भिगो देवे । फिर मसल छानकर ओषधि के साथ पिलादे । जीर्ण ज्वरमें दूधके साथ दे ।

उपयोग—यह ओषधि बड़े मनुष्य और बच्चोंके बने रहनेवाले ज्वरको उतारनेके लिये अमोघ है और निर्भयतापूर्वक दीजाती है ।

इस रसायनको धनिया-मिश्रीके हिमके साथ देने पर स्वेदल गुण दर्शाता है । रक्तमें रहे हुए विषको जलाकर प्रस्वेदके साथ बाहर निकाल देता है । एवं कोष्ठमें संचित आम-विषका पचन कर ज्वरके मूलको नष्ट कर देता है ।

जो ज्वर दिनों तक बना रहता है, ऐसे ज्वरमें धनिया-मिश्रीके रसके साथ इस रसायनका सेवन करानेसे ज्वर बढ़ जाता है, और ४-६ घण्टेके भीतर प्रस्वेद आकर ज्वर शमन होजाता है ।

इस रत्नगिरि रसमें बच्छनाग न होने से निर्बल हृदयवालोंके लिये यह विशेष उपयोगी है । मुद्दती ज्वरमें जब बच्छनागवाली औषध देनेसे हानिकी संभावना हो, तब इस रत्नगिरि रसका उपयोग अति हितकर होता है ।

इस रत्नगिरिका उपयोग समस्त वातरोग, उदरवात, गुल्म

आदि पर भी होता है। वातरोग पर इस रसायनकी ३-३ गोली दिनमें ३ वार निवाये जल अथवा शहद-पीपलके साथ देनी चाहिये।

(११) अश्वकंचुकी रस।

बनावट--शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध वच्छनाग, सोहागेका फूला, शुद्ध हरताल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, और शुद्ध जमालगोटा, सब समभाग मिलाकर भाँगरेके रसमें २१ दिन तक घुटाई करके १-१ रत्ती की गोलियाँ बनावें। (र० रा० सु०)

मात्रा—एकसे चार गोली सुबह जलके साथ देवें। बालकको आधी गोली देनी चाहिये।

उपयोग—ज्वरकेसरी वटीमें सोहागा और हरताल मिलाने पर अश्वकंचुकी रस तैयार होता है। इस रसायनमें भाँगरेके रसकी जितनी अधिक भावना लगती है, उतनी ही सौम्यता आती है, तथा दाहक और विरेचक गुण कम होता है। भाँगरेके रसकी अधिक भावना से यकृत्को अधिक लाभ पहुँचता है, एवं जमालगोटेकी उग्रताका शमन होकर दाह, उबाक और वमन करानेकी शक्तिका ह्रास होता है, तथा हरतालकी उग्रता भी कम होती है।

इस अश्वकंचुकी रसको अश्वचोली और घोड़ाचोली भी कहते हैं। सामान्य जनताकी मान्यता है कि, यह रसायन सब रोगों पर उपयोगी है। परन्तु शास्त्रदृष्टिसे विचार करने पर यह मान्यता भ्रम-युक्त भासती है। इतना सत्य है कि, यह रसायन अत्यन्त वीर्यवान् और प्रभावशाली है, तथा अनेक रोगोंमें हितकारक है।

यह रसायन तीक्ष्ण, उष्ण, ज्वरघ्न, सारक, विकाशी, व्यवायी, प्रमाथी, व्रण करने वाला, लेखन, और दोष-संघातका भेदक और योगवाही है। कफ, वातकफ और पित्तकफ दोषको दूर करता है। अनूप देशमें (वर्षा और वृक्ष अधिक हो, ऐसे देशमें) अधिक हितकर है, और जांगल देशमें कम उपयोगी है।

कफप्रकोप होकर उदरमें आफरा, उबाक बना रहना, श्वास और कास उपस्थित होना, इन लक्षणोंके साथ तन्द्रा होने पर इस औषधिका उपयोग करना चाहिये। इस तरह आमाशय और उरःस्थान में कफवृद्धि होकर वर्षाऋतुके प्रारम्भ या मध्यमें उत्पन्न होने वाले श्वास और प्रतिवर्ष वर्षाऋतुमें आक्रमण करने वाले श्वास पर इस रसायनका उपयोग होता है। इस श्वासमें कफप्रधान लक्षण होते हैं, बार-बार घट्ट और सफेद रंगकी बड़ी-बड़ी कफकी गाँठ पड़ती रहती है,

श्वासवेग तीव्र नहीं होता; एव घबराहट भी अधिक नहीं होती, ऐसे लक्षण होने पर इस ओषधिका उपयोग होता है ।

छै मासके शिशुको पसली रोग होने पर उसकी छाती भारी होजाती है, श्वासोच्छ्वास जल्दी-जल्दी चलता है, इस रोगमें प्रत्येक श्वासके साथ उदरमें खड्डे पड़ते है। बालक अति व्याकुल होजाता है, ज्वर-वेग सामान्य होता है, कोष्ठ-शुद्धि नहीं होती। इस विकारमें माता के दूधके साथ या करेलेके पत्तोके रसके साथ यह रसायन दिया जाता है। बालकको उत्पन्न होनेवाले श्वसनक सन्निपात (न्युमोनिया) में, श्लेष्मसंचय अधिक होने पर श्वासोच्छ्वासका वेग बढ़ जाता है, इस पर इस घोड़ाचोलीका उपयोग किया जाता है। इस विकारकी प्रथमावस्थामें इस ओषधिका उपयोग करनेसे कफका लेखन होता है; और रोगबल बहुत अंशमें कम होजाता है। रोगी सहसा दगा नहीं देता। एवं कितनेक रोगियोकी प्रकृति समयके पहले ही सुधर जानेके उदाहरण मिले हैं। छोटे बालकके समान बड़े मनुष्यको भी कफप्रधान दोष होने पर इस ओषधिसे लाभ पहुँचता है।

बार-बार कफ-(आम)-मिश्रित वमन होना, उदरमें जड़ता, मुँहमें जल आते रहना, लालास्राव, मधुर और झागयुक्त गाढ़ी वमन होना, आलस्य, मुख पर शोथ-सा भासना आदि लक्षण होनेपर अश्वकंचुकी रसायनका उपयोग किया जाता है।

छोटे बालकोंकी यकृद्वृद्धिमें यह ओषधि उत्तम लाभ पहुँचाती है। इस विकारमें प्रधान रूपसे कफवृद्धिके लक्षण होने चाहिये। यकृत्‌में जड़ता, तन्द्रा, नेत्रोंमें भारीपन, कास (इतनी अधिक कास होती है कि, छाती सर्वदा भरी हुई भासती है), कण्ठमें घर-घर आवाज, मल में पाण्डुता, समस्त शरीर पर पाण्डुता, मुख, हाथ-पैर आदि कुछ फूले हुए भासना आदि लक्षण होने पर अनूप देशमें रहने वालोंके लिये यह ओषधि उत्तम लाभप्रद है। यदि इस रोगमें पित्तप्रधान लक्षण— अधिक प्रस्वेद, दाह, शुष्क कास, देहमें उष्णता, मल-मूत्रमें पीलापन आदि—हो, तो इस ओषधिका उपयोग नहीं करना चाहिये।

यकृद्वृद्धि समान कफप्रधान प्लीहावृद्धिमें भी यह ओषधि लाभदायक है। इस रोगके अंत्यावस्थाको प्राप्त रोगी भी इस औषध के सेवनसे अच्छे होजानेके उदाहरण मिले हैं। बड़े मनुष्यकी यकृद्वृद्धि (शराबीके अतिरिक्त मनुष्यकी यकृद्वृद्धि) में यदि कफप्रधान लक्षण हो, तो इस रसायनका अच्छा उपयोग होता है।

वर्त्तमानमें इस औषधिके दुरुपयोगके भी उदाहरण मिलते हैं। रोगके दोष-दूष्य-संयोगका यथातथ्य विचार न करते हुए केवल व्याधि प्रत्यनीक चिकित्सा करने पर विपरीत परिणाम आता है। जैसे यकृद्-वृद्धिमें कफविकृतिके लक्षण और पित्तप्रकोपके लक्षण भी होते हैं। पित्तविकारके लक्षण प्रतीत होने पर इस औषधका उपयोग नहीं करना चाहिये, अन्यथा रोगीको हानि होती है।

जीर्ण यकृद्विद्रधि यदि अंत्यावस्थाको प्राप्त न हुई हो, और शराबका व्यसन इसका कारण न हो, तो इसका उपयोग करना चाहिये। कचित् संग्रहणी रोगमें उपक्रम योग्य न होने या उपक्रम योग्य होने पर भी कीटाणुप्रकोपसे यकृद्विद्रधि हुई हो, और वह रोग जीर्ण होगया हो, तो कुरैयाकी छालका अर्क या कुटज़ारिष्ट और अश्वकंचुकी रसका मिश्रण अति उपयोगी होता है। इसमें भी कफ-प्रधान लक्षण होना चाहिये।

बालकोंके यकृतोदर या प्लीहोदरमें कफप्रधान लक्षण होने पर जलोदर उत्पन्न होजाने के पश्चात् भी इस औषधिने अनेक रोगियों को जीवन प्रदान किया है। रोगीको तन्द्रा, आलस्य, पाण्डुता, बद्ध-कोठ, मलमें आम आना, मल चिकना और गाढ़ा होना, मुख, उदर और हाथ-पैर पर सूजन और मूत्र परिमाणकी अपेक्षा अधिक होना आदि लक्षण होते है। इस व्याधिके कारण दीर्घकालका शीतज्वर, मृद्-भक्षण या, बार-बार उदरमें कृमि होनेका अभ्यास, बद्धकोष्ठ, मधुर, स्निग्ध और जड़ भोजन या माताके दूधमें विकृति आदि है। परन्तु जलोदरके कारणमें हृदय या वृक्कस्थानकी विकृति हो, तो इस औषधिका उपयोग नहीं करना चाहिये।

मध्यम कोष्ठशूल बहुधा जीर्ण आमसंचय या कफजन्य स्रोत-सावरोधसे होता है, और यह शूल कोष्ठबद्धतासह होता है। यह विकार अधिक बैठे रहनेवाले या आलसी, स्निग्ध भोजन करने वाले और मांसाहारी मनुष्योंको होता है। इस रोगसे रोगीकी आँतोंमें मल-सञ्चयके हेतुसे पुरःसरण क्रिया मन्द होती है। मलावरोध बना रहता है। फिर पचन-क्रिया मन्द होती है, और रसोत्पत्ति योग्य नहीं होती। रसका शोषण योग्य न होनेसे परिमाणमें रक्त आदि धातुको उचित पोषण नहीं मिलता, उदर बढ़ जाता है, तथा रोगी बिल्कुल निर्बल होजाता है। इस अवस्थामें घोड़ाचोलीका उत्तम उपयोग होता है।

कफ-गुल्ममें अश्वचोलीका उपयोग होनेके अनेक उदाहरण मिले हैं। गुल्मका यह विकार मध्यम कोष्ठशूलके लिये लिखे हुए कारणोंसे होना चाहिये और अनूप देश में रहने वालोंको हो, तो अश्वचोलीका प्रयोग किया जाता है। यह गुल्म जड़, मोटा और घड़ा होता है; शेष कफप्रधान लक्षण प्रतीत होते है।

यह ओषधि वातगुल्म या पित्तगुल्म में उपयोगी नहीं है। जीर्ण अतिसार के विकार में बार बार सफेद चिपचिपा दस्त होता रहता है; और उदर में जड़ता भासती है। इस व्याधि में लघु और बृहदन्त्रकी श्लैष्मिक कला मोटी हो जाती है। उसमें से स्राव होता ही रहता है। यह स्राव कफप्रधान विकृतिके हेतुसे होता है। जब इन श्लैष्मिक कलाकी मोटाई कम हो और स्राव कम हो, तभी इस अतिसारकी निवृत्ति हो सकती है। यदि स्तम्भक, दीपन-पाचन आदि सामान्य अतिसार चिकित्सा करते रहे तो यह व्याधि महीनों तक बनी रहती है। इसका मूल दोष लीन रहता है। उसे बाहर निकाल कर दूर करना चाहिये। यह कार्य घोड़ाचोलीके योग से अति उत्तम प्रकार से होजाता है।

केवल स्तम्भक औषधसे शल्यरूप संचित दोष अधिकाधिक स्तम्भित होकर दृढ़ होता जाता है, और रोग दिन-प्रति-दिन प्रबलतर होता जाता है। इसलिये इस स्थान पर दोषका सम्यक् निर्हरण करना आवश्यक है। यही न्याय नूतन कफातिसार के लिये भी लागू होता है। जीर्ण संग्रहणी में बृहदन्त्र में जहाँ व्रण होते हैं, उस स्थानसे श्लैष्मिक कला और रक्त सर्वदा निकल कर मलके साथ गिरते रहते हैं। इस विकारमें, हो सके तब तक, इस हरतालप्रधान उग्र रसायन का उपयोग नहीं करना चाहिये। इस स्थान पर दोष संचित होने पर एरंड तैल या नाराच घृत से कोष्ठ-शोधन करना चाहिये।

आयाम और अपतानक वातविकारमें कोष्ठस्थ मलसंचय के हेतुसे वातवृद्धि होती है। फिर रोगी को यकायक आक्षेप आने लगते है। पश्चात् बेहोशी होजाती है, मुख में झाग आजाता है, कंठमेंसे घर-घर आवाज निकलती रहती है, मल संचित होने पर उदर कठोर और मोटा होजाता है, अधोवायु नहीं सरती, क्वचित् वमन भी होती है, आक्षेपके झटके बार-बार आते रहनेसे रोगी व्याकुल होजाता है, किसी-किसीको इतना बलपूर्वक आक्षेप आता है कि, पीठ भी कमानके सदृश मुड़ जाती है। इन वातविकार में पहले कोष्ठशुद्धि करनी चाहिये। इस

कार्यके लिये उदरमें स्थित मल और सेन्द्रिय विषको निकालनेवाली ओषधियोंमें घोड़ाचोली उत्तम है।

भूतोन्माद रोगमें रोगी बेसुध और व्याकुल हो गया हो, रोगी की छाती, उदर, कण्ठ आदिमें कफभूयिष्ठ मलसंचय अधिक होनेसे संज्ञा नष्ट हो गई हो, कौड़ी-प्रदेश के समीप का भाग खूब फूला हुआ हो, कण्ठ में विलक्षण घर घर आवाज और प्रत्येक श्वासोच्छ्वासके साथ मुँहमेंसे थूक के बुदबुदे और लाला गिरते हो, तो इस अश्वकंचुकी को शहदके साथ देने से आश्चर्यकारक लाभ होनेके उदाहरण मिले है।

मूर्च्छाके विकार में, विशेषतः पित्तका अनुबंध होने पर, केवल पित्तशामक उपचार करने की अपेक्षा पित्तविरेचक ओषधि देना विशेष उपयुक्त है। इसके साथ रक्तका दबाव भी कम होना आवश्यक है। यह कार्य त्वरित होना चाहिये। अनेक दिनों तक उपयोग करने पर आरोग्यवर्द्धनी और चन्द्रप्रभा भी रक्तदबावको कम कराते है। परन्तु तत्काल कार्यकर ओषधि अश्वचोली है। इससे मूर्च्छा भी दूर हो जाती है।

यकृत्के विकार से या यकृत्की क्रियाविकृति होनेसे देह पर काले-काले धब्बे उत्पन्न होते है। कितनेक समय स्फोट होजाते है। शेष लक्षण कुष्ठ सदृश भासते है। परन्तु त्वचाकी शून्यता और कुष्ठके कीटाणु इन व्याधियोंमें नहीं होते। इस विकार पर अश्वचोली का उपयोग आश्चर्यजनक हुआ है।

क्षुद्र कुष्ठ अर्थात् चर्म रोगमें उत्पन्न होनेवाले धब्बे, व्रण, पिटिका, लसीकास्राव, कण्डू आदि व्याधियोंमें हल्दी या त्रिफलाके क्वाथके साथ घोड़ाचोली देनेसे अच्छा लाभ पहुँचता है।

चातुर्थिक ज्वरमें दोष रस आदि धातुओंसे मेद-धातु-पर्यन्त पहुँच जाता है। इस विकारमें कोष्ठ-बद्धता, प्लीहावृद्धि आदि विकार होते हैं। यदि चौथे चौथे दिन पर ज्वर आनेके समय कोष्ठमें जड़ता और छातीमें कफसंचय आदि लक्षण हो; तथा अनेक दिनोंसे ज्वर त्रास पहुँचाता हो, तो इस रसायनका प्रयोग अगस्त्यके पत्तोंके रसके साथ करना चाहिये। इस तरह अन्य प्रकारके विषम ज्वरोंमें भी तीव्रावस्था दूर होनेके पश्चात् जीर्णावस्था प्राप्त होने पर प्लीहावृद्धि, अग्निमान्द्य और पाण्डुता आदि लक्षण होने पर घोडाचोली देनी चाहिये।

कोष्ठस्थ मलसंचयसे शीर्षशूल और उसके साथ नेत्रशूल, और आमाशयमें कफसंचय होने पर शूल अधिक तीव्र न हो, और

मल-संचय अधिक हो, तो इस औषधिका उपयोग करना चाहिये।

शरीरमें रस-ग्रन्थियोंकी वृद्धि और साथ-साथ कफ-दोषकी वृद्धि होने पर कोष्ठमें सूक्ष्म-सूक्ष्म शूल चलता रहता है। कोष्ठमें ग्रन्थियाँ बढ़ने सदृश भासती हैं। कोष्ठ जड़ होजाता है। इस स्थितिमें अश्वचोली उपयोगी है। इस विकारमें जसद भस्म भी व्यवहृत होती है। शरीर में दाह, हाथ-पैर टूटना, सूक्ष्मज्वर और पित्तवृद्धिके लक्षण हों, तो जसद भस्म देवें। कफप्रकोप में अश्वचोली और पित्तवृद्धिमें जसद भस्म, यह दोनोंमें अन्तर है। (औ० गु० ध० शा)

सूचना—यह रसायन पित्तप्रधान प्रकृति वालेको नहीं देना चाहिये। पित्तप्रधान रोग और पित्तप्रधान ऋतुमें कदाचित् उपयोग करना हो, तो शीतल औषधि (वा अनुपान) के साथ मिलाकर देना चाहिये।

गर्भिणी, सूतिका, छोटे बच्चे और अति वृद्ध मनुष्यके साधारण ज्वरमें इसका उपयोग नहीं होता। ऐसे ही रक्तपित्त, उरःक्षत, मूत्रकृच्छ्र, और मूत्राघात रोगी को यह अश्वकंचुकी रस नहीं देना चाहिये।

(१२) त्रिभुवनकीर्ति रस।

बनावट—शुद्ध सिंगरफ, शुद्ध बच्छनाग, सोंठ, मिर्च, पीपल, सोहागेका फूला और पीपलामूल, प्रत्येक समभाग मिलाकर बारीक चूर्ण करें। पश्चात् तुलसी, अदरख और धतूरेके रसकी क्रमशः ३-३ भावनाएँ देकर आध-आध रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें। (यो० र०)

त्रिभुवनकीर्ति रसके पाठमें वृद्धपरम्परा अनुसार औषधिगुणधर्मशास्त्रकारने जीरा और सोफ, ये दो औषधियाँ अधिक मिलाई हैं, तथा हमने गुण-विवेचन भी उसके अनुसार ही लिखा है।

कितनेक चिकित्सक धतूरेके रसकी भावनाके स्थानमें पीले धतूरे (सत्यानाशी) के स्वरस की भावना देते हैं। उनकी मान्यता है कि, सत्यानाशी की भावना देनेसे मलेरिया पर विशेष लाभ होता है। कोष्ठबद्धता हो, तो दूर करता है, तथा कफस्राव अधिक कराता है। हमारे यहाँ धतूरेके रसका ही उपयोग होता रहता है।

मात्रा—एक-एक गोली दिनमें २ समय अदरखके रस और शहदके साथ या अन्य रोगानुसार अनुपानके साथ देवें। सन्निपातमें आवश्यकता पर ३-३ घण्टे बाद एक-एक गोली देते रहना चाहिये। कफप्रधान ज्वरमें सुवर्णवङ्ग और अर्कमूलत्वक् के साथ मिलाकर शहद में दें। दिनमें २ या ३ बार।

उपयोग—यह रसायन ज्वरघ्न, कफघ्न, स्वेदल और वेदनाहर है। सब प्रकारके वातप्रधान और कफप्रधान नूतन ज्वर, वातकफ-ज्वर (Influenza), ठंडी देकर आनेवाले संततज्वर और सततज्वर एवं कफप्रधान सन्निपातको नष्ट करता है। रोमांतिका (छोटीमाता) में जब त्रास बढ़ गया हो, और कुछ दाने बाहर दीखने हो, तब भीतर का विष बाहर लानेके लिये सहायक औषधिके साथ इस रसायनका उपयोग करनेसे मात्र ३-४ दिनोंमें ही रोग शमन होजाता है। ऐसे ही कफप्रधान शोथ, कंठमें रही हुई गाँठका शोथ, श्वासनलिकाका उपताप या अन्य कफविकार और वातप्रकोपसे आनेवाले ज्वर, सबको यह रसायन सत्वर दूर करता है।

यह त्रिभुवनकीर्ति रस वातज्वर, कफज्वर और वातकफात्मक ज्वरमें अत्युत्तम औषधि है। यह रस बच्छनागप्रधान औषधियोंमें एक अत्युत्तम कल्प है। इसका उपयोग वातात्मक, कफात्मक और वातकफात्मक ज्वर, उन दोषप्रधान विषमज्वर और सान्निपातिक ज्वरोंमें होता है। यह कल्प तीक्ष्ण गुण युक्त होनेसे पित्तप्रधान सन्निपात या पित्तप्रधान अन्य ज्वरमें व्यवहृत नहीं करना चाहिये। कदाच उपयोग करना पड़े, तो प्रवालपिष्टी या अन्य कोई पित्तशामक औषधि मिलाकर कम मात्रामें करना चाहिये।

रोमान्तिका, अन्य कफप्रधान शोथ और अंतरेन्द्रियके उपतापसे उत्पन्न ज्वर (कण्ठमें स्थित ग्रन्थियोंके शोथसे या श्वासनलिकाके उपतापसे ज्वर या अन्य आंतरिक वेदनासे उत्पन्न ज्वर) में कफप्रधान दोष होने पर यह औषधि अप्रतिम कार्य करती है।

त्रिभुवनकीर्ति रसमें ज्वरनाशक धर्म बच्छनागका है। किन्तु बच्छनागमें हृदयअवसादक दोष है। उसे दूर करनेके लिये और स्वेदल और ज्वरघ्न गुण बढानेके लिये अन्य द्रव्योंका संयोग करा तुलसी, अदरख और धतूरेके पत्तोंके रसकी भावना दी है। इन भावनाओंके हेतुसे वातकफनाशक कल्प बना है।

त्रिभुवनकीर्तिकी योजना अति सावधानतापूर्वक की है। फिर भी बच्छनागका धर्म उसमें रहे हुए उग्र विषके हेतुसे तत्काल प्रतीतिमें आता है। इस बच्छनागके हेतुसे ही रोगीकी नाडी मन्द होती है। यद्यपि नाड़ीकी गति विशेष मन्द न होनेके लिये इस औषधिमें पीपलामूल, पीपल, सोंठ, कालीमिर्च, तुलसीका रस और अदरखका रस, इन हृदयपौष्टिक औषधियोंकी योजना की है, तथापि बच्छनागका

स्वभाव पूर्णांशमें दूर नहीं होता।

त्रिभुवनकीर्ति रसका सेवन करने पर तत्काल हृदय, मस्तिष्क स्थित हृदयकेन्द्र, त्वचा और वृक्कके ऊपर परिणाम होता है, नाड़ीके वेग और बलका ह्रास होता है, त्वचा और स्वेद ग्रन्थियाँ उत्तेजित होती हैं; आध घण्टेमें ही प्रस्वेद आने लगता है, मूत्रका परिमाण बढ़ जाता है, हृदयके स्पन्द और बल न्यून हो जाते हैं, नाड़ी शिथिल होती है; श्वासोच्छ्वास क्रिया मन्द होती है, सब स्थानोंकी वेदनाका ह्रास होता है, वातवाहिनियोंके अन्तिम सिरे बधिर हो जाते हैं, तथा उत्ताप और शोथमें से रक्त स्त्राशयमें वापस आनेकी महत्वकी क्रिया भी इस रसायनके योगसे होती है।

सर्वाङ्गमें कम्प, नाड़ीका विषम वेग, नाड़ी तीव्र और दृढ़ होना, शिरमें विलक्षण वेदना, जड़ता, बारबार छींकें आना, अङ्ग जकड़ जाना, मस्तिष्क, छाती, पीठ आदिमें शूल चलना, किञ्चित चलने पर शूलवृद्धि होना, उष्ण जल या उष्ण पदार्थ सेवनकी इच्छा, उष्ण पदार्थ सेवनसे अच्छा लगना, मुँहमें बेस्वादुपन, पैरोंमें एेंठन, कानोंमेंसे आवाज निकलना, शुष्क, त्रासदायक और असह्य वेग युक्त कास, कासके साथ कण्ठमें पीड़ा होना, कासके हेतुसे छाती और पीठमें शूल चलना, कण्ठमें ग्रन्थियाँ सूज जानेसे कास जाना, कण्ठ बैठ जाना, इतने तक कि बोलनेमें भी दर्द होना, स्वरयन्त्र, श्वसनिका, कण्ठ और मस्तिष्कमें से शूल चलना, रोंगटे खड़े होना, सन्धि-सन्धिमें दर्द, नासिकाके भीतरमें वेदना, इन लक्षणोंसे युक्त नूतन ज्वर किन्तु निराम ज्वरमें त्रिभुवनकीर्ति रसका उपयोग होता है। जबतक लालास्राव आदि साम ज्वरके लक्षण हों, तबतक यह रसायन नहीं देना चाहिये।

ज्वर वेग तीव्र न हो, मन्द हो, सर्वाङ्गमें अतिशय जड़ता, चलनेकी इच्छाका अति अभाव, आलस्य, आफरा, उदर जकड़ जाना, अतिशय निद्रा, सारे शरीरमें मन्द मन्द वेदना, कास, छाती भारी और जकड़ी हुई, नाक और मुँहमेंसे कफस्राव, जुकाम, कण्ठमें दर्द, हाथ-पैर टूटना, सन्धि सन्धिमें पीड़ा, मस्तिष्क जकड़ जाना, गरदनमें दर्द, प्रस्वेद न आनेसे शिथिलता और जड़ता भासना, ये लक्षण होने पर त्रिभुवनकीर्तिकी योजना करनी चाहिये।

विषम ज्वरमें सतत और सतत ज्वरमें इस औषधिका उपयोग होता है। अन्येद्यु, तृतीयक और चातुर्थिक ज्वरमें शीतभंजी, महा-

ज्वरांकुश, नारायणज्वरांकुश आदि उपयोगी है। संततज्वर ८-१० दिनों तक रहता है; बीचमें नहीं उतरता। सततज्वर दिनमें कुछ समयके लिये उतर जाता है, फिर आजाता है। पीठमें पीड़ा होकर ज्वरका प्रारम्भ होना, नाड़ीका विषम वेग, प्रस्वेद कम आना, सर्वाङ्गमें व्यथा, बेहोशी न होना, प्रलाप, प्रलाप करने पर अच्छा लगना, शान्त रहने पर व्याकुलता, मुखमें शुष्कता; शीतलकी अपेक्षा उष्ण जलपानकी इच्छा, उष्ण जलपानसे तृषा कम होना और कुछ अच्छा लगना, ये लक्षण होने पर इसे तुलसीके रस और शहद या तुलसीके क्वाथके साथ देवें।

इस रसायनका उपयोग श्वसनक और श्लैष्मिक सन्निपात (न्युमोनिया और इन्फ्लुएञ्जा) में उत्तम प्रकारसे होता है। (न्युमोनियामें इस रसायनके साथ अभ्रक भस्म, शृङ्ग भस्म और चन्द्रामृत रस मिलाकर देनेसे अच्छा लाभ पहुँचता है।) आन्त्रिक सन्निपातमें विशेषतः पित्तप्रकृतिके रोगीको यह ओषधि देने पर अधिक त्रास होता है। आन्त्रिक सन्निपातमें ज्वर-वेग अधिक हो; तथा नाडी तीव्र और दृढ़ होने पर क्वचित् त्रिभुवनकीर्ति रसको प्रवालपिष्टी, गिलोय सत्व और सितोपलादि चूर्णके साथ मिलाकर दिया जाता है।

श्वसनक और श्लैष्मिक सन्निपातमें ज्वरवेग मर्यादामें हो, मन्द भारी नाड़ी, अंगमें अतिशय व्यथा, कमर और पीठमें से शूल निकलना और पीड़ा होना, शीतल वायु, शीतल जल और शीतल उपचार से दुःख होना, और सब लक्षण बढ़ जाना, मस्तिष्कमें भारीपन, मस्तिष्कमें मन्द वेदना, कण्ठमें दर्द होना और कुछ शोथ-सा भासना, खाँसी, पसलियोंमें पीड़ा होना, खाँसी आने पर अधिक पीड़ा होना, श्वास लेने में व्यथा, खाँसी लेने पर छाती दब रही है, ऐसा भास होना आदि लक्षण होने पर त्रिभुवनकीर्ति रस का उपयोग करना चाहिये।

वातकफ-प्रधान श्लैष्मिक सन्निपात (Influenza) में त्रिभुवनकीर्तिका उत्तम उपयोग होता है। घबराहट, दाह आदि पित्त लक्षण न हों, सर्वाङ्गमें मन्द शूल, अँगुलियोंकी सन्धि और शरीरकी सब संधियों में दर्द, हाथ-पैर टूटना, जुकाम होकर फिर सूखी त्रासदायक खाँसी, कण्ठकी श्लैष्मिक कलामें क्षोभ, क्वचित् यह क्षोभ बढकर फुप्फुस या फुप्फुसावरणका शोथ उत्पन्न होना और उसके साथमें अन्य आनु-

पंगिक लक्षण उपस्थित होना आदि चिह्न होने पर त्रिभुवनकीर्ति रस उत्तम प्रकारसे उपयोगी होता है।

रोमान्तिका रोग जैसा प्रतीत होता है; ऐसा मामूली नहीं है। इसकी पिटिका पूर्णांशमें बाहर नहीं आई, तो भविष्यमें भिन्न-भिन्न प्रकारकी व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं। सूक्ष्म पिटिकाएँ, नेत्रसे जलस्राव, बार-बार छींके आना, जुकाम, नाकमेंसे पतला श्लेष्मस्राव, ज्वर, मुँहमें लाल दाने होना और व्याकुलता, ये सब रोमान्तिकाके सामान्य लक्षण हैं। इस अवस्थामें त्रिभुवनकीर्ति रस देनेसे रोमान्तिकाका विष बाहर आजाता है। इस विकारमें बहुधा ३-४ दिनमें ज्वर, कास आदि बढ़ जाते हैं श्वसनक और श्लैष्मिक सन्निपातके लक्षण कुछ-कुछ भासते हैं; तथा पिटिकाएँ आधी बाहर आजाती हैं, ऐसी बढ़ी हुई परिस्थितिमें भी त्रिभुवनकीर्ति रसका उत्तम उपयोग होता है। (आ० गु० ध० शा०)

सूचना—पित्तप्रधान ज्वरमें यह औषधि न दें। कदाच देनी पड़े, तो प्रवालपिष्टी या अन्य पित्तशामक औषधि मिलाकर देवें।

(१३) त्रैलोक्यचिन्तामणि रस।

बनावट—रससिंदूर, हीराभस्म, सुवर्णभस्म, रौप्यभस्म, ताम्रभस्म, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, शुद्ध गन्धक, मुक्ताभस्म, शंखभस्म, प्रवालभस्म, शुद्ध हरताल, शुद्ध मैनशिल, इन १३ औषधियोंको सम भाग मिलाकर चित्रकमूलके क्वाथके साथ ७ दिन तक खरल करें। पश्चात् आकका दूध, निर्गुण्डीका क्वाथ, जमीकन्दका रस और थूहरका दूध, इन चार द्रव्योंमें ३-३ दिन तक क्रमशः खरल करें। फिर शुद्ध पीले रंगकी बड़ी कौड़ियोंमें इसे भरें, और सोहागेको आकके दूधमें खरल करके कौड़ियों के मुँहको बन्द करें। सब कौड़ियोंको दो सरावमें भर, कपड़मिट्टी कर, सुखाकर गजपुट अग्नि देवें। स्वांग शीतल होने पर कौड़ी सह इस औषधिको खरल करें, और इसके साथ समान परिमाणमें रससिंदूर और रससिंदूरका चतुर्थांश वैक्रान्त भस्म मिलाकर सुहिजनेके मूलके क्वाथकी ७, चित्रकमूलके क्वाथकी २१, अदरखके रसकी ७ और जम्भीरी नीबू या बिजौरेके रसकी ७ भावना दें। फिर शुष्क चूर्ण बनाकर सोहागे का फूला, शुद्ध बच्छनाग और कालीमिर्च, तीनों उक्त चूर्णके ¼-¼, तथा लौंग, सोंठ, हरड़, पीपल, जायफल, ये प्रत्येक बच्छनागके चतुर्थांश मिलाकर बिजौरेके रस और अदरखके रसकी १-१ भावना देनेसे यह रस सिद्ध होता है। (यो० र०)

सूचना—रससिंदूर, हीराभस्म, आदि १-१ तोला लेने पर इसका वजन ६ सेर लगभग होजाता है।

मात्रा—½ से २ रत्ती तक शहद-पीपल, वा अदरखके रस और शहद अथवा सोंठके क्वाथ और गुड़के साथ देवे।

उपयोग—यह रसायन सब रोगोंको दूर करनेके लिये विविध अनुपानोंके साथ दिया जाता है। यह अग्नि, बल, तेज और वीर्यको बढ़ाता है, विषका हरण करता है, और शरीरको दृढ़ बनाता है। इसके सतत सेवनसे अकालमृत्यु और वृद्धावस्था दूर होती है, तथा शरीर पुष्ट होता है। कास, क्षय, श्वास, वात, विद्रधि, पाण्डु, शूल, ग्रहणी, रक्तातिसार, प्रमेह, प्लीहा, जलोदर, अश्मरी, तृषा, शोफ, हलीमक, उदर, लताविष, मूत्रकृच्छ्र, भगंदर, विविध ज्वर, अर्श, कुष्ठ, साध्य और असाध्य व्याधियाँ, ये सब इसके सेवनसे दूर होते हैं।

त्रैलोक्यचिंतामणि तीक्ष्ण और उष्ण है। अन्तर अवयवोंमें विशेषतः हृदय, फुफ्फुस, वातवाहिनियाँ और वातवाहिनिकेन्द्रको तत्काल उत्तेजित करता है, तथा शरीरमें नूतन बलका संचार कराता है। इस दृष्टिसे यह रसायन बल्य, वीर्यवर्द्धक, ओजस्कर और जीवनीय है। इसका उपयोग करनेके समय इस बात पर लक्ष्य देना चाहिये कि, पित्तदोषकी वृद्धि तो नहीं हुई है, अथवा पित्तदोषका साथमें अनुबन्ध तो नहीं है? कफदोषकी वृद्धि, कफका अनुबन्ध या कफात्मक दोषप्रकोप होने पर इस औषधका उपयोग उत्तम प्रकारसे होता है।

श्लैष्मिक सन्निपात (Influenza) और श्वसनक सन्निपात (Pneumonia) तथा श्लेष्म वृद्धिके विविध प्रकारो पर इस रसायनका अच्छा उपयोग होता है। विशेषतः इन रोगोंकी अन्तिम अवस्थामें इस औषधिका उपयोग करना चाहिये।

जिस तरह अन्य उत्तेजक औषधियाँ उत्तेजना बढ़ाकर फिर विपरीत अवसादकताकी प्राप्ति कराती है, उस तरह इस औषधिके उत्तेजक कार्यके पश्चात् पुनः हृदय या नाड़ीमें क्षीणता नहीं आती। यह इस औषधिमें महान् सद्गुण है। इसके सेवनसे हृत्संनिध भागमें रक्तवाहिनियाँ विकसित होकर हृदयका कार्य उत्तम प्रकारसे होता है।

इसका उपयोग हृदयके शूल पर उत्तम प्रकारका होता है। कफप्रधान या कफवातप्रधान दोष पर यह प्रयोजित होता है।

रक्त-दबाव या आवश्यक प्राणवायुकी पूर्तिमें न्यूनता होने पर अन्तरावयवोंको दुर्बलता प्राप्त होती है, फिर वे अपना कार्य नियमित

नहीं कर सकते। इस स्थितिमें त्रैलोक्यचिंतामणि उपयोगी है।

अकस्मात् अपघात या मानसिक आघात होने पर जब हृदयकी क्रिया क्षीण होती है, और नाड़ीमंदता, प्रस्वेद, चक्कर, बेहोशी, भयंकर व्याकुलता आदि लक्षण उपस्थित होते हैं, तब ऐसी परिस्थितिमें त्रैलोक्यचिंतामणिका कार्य अति उत्तम होता है। कारण, हृद्य ओषधियोंमें इस रसायनका स्थान बहुत ऊँचा है। इसका प्रभाव हृदय, फुफ्फुस और मध्यम कोष्ठ पर अधिकार रखनेवाली सब वातवाहिनियोंके केन्द्रस्थान और सहस्रार पर होता है। इन सबको यह रसायन शक्ति प्रदान करता है, और सबको प्राणवायुकी प्राप्ति भलीभाँति कराता है। इस हेतुसे ये सब इन्द्रियाँ उत्तेजित होती हैं।

श्वसनक और श्लैष्मिक सन्निपात, स्वतन्त्र होने एवं वातकफज्वर, आन्त्रिक ज्वर या अन्य ज्वरके उपद्रवरूप उत्पन्न होने पर उरःस्थानमें शोथ और फिर कफसंचय, यह वस्तुस्थिति प्रतीत होती है। इन सन्निपातोंमें प्रारम्भके कुछ दिनों तक दोष-दूष्योंका विवेक करना पड़ता है। परन्तु उपद्रव उत्पन्न होजाने पर बहुधा एकही अवस्था प्राप्त होनेका सम्भव है। वह यह कि, उरःस्थानमें कफसञ्चय होकर फुफ्फुसोंके कोषसमूह और श्वासवाहिनियाँ कफसे रुद्ध होते हैं। उनको आवश्यक प्राणवायु नहीं मिल सकता। परिणाममें हृदयसे चारों ओर रक्तको सम्यक् पूर्ति नहीं होती। इस कारणसे वातवाहिनियोंसे मिलने वाले वायुकी पूर्ति भी इन अवयवसमूहोंको अच्छी तरह नहीं होती। आगे उस कफका सचय बढ़कर श्वसनमार्ग, रक्ताभिसरण मार्ग और वातमार्ग, सब रुद्ध होकर रोगी कालवश होजाता है। इस स्थितिमें यह रसायन उत्तम कार्य करता है। इसके योगसे श्वासवाहिनियाँ उत्तेजित होकर संचित कफको बाहर फेंकने लगती हैं। हृदयके समीप रक्तवाहिनियाँ विकसित होकर अभिसरण क्रिया सम्यक् करने लगती हैं, और वातवाहिनियाँ उत्तेजित होकर सर्वत्र प्राणवायु पहुँचाने लगती है। इस तरह इस त्रैलोक्यचिंतामणिका कार्य तीनों प्रकारसे होने लगता है।

हृदय-शूल होने पर स्तम्भ, सर्वाङ्गमें भारीपन, हाथ-पैरोंमें शून्यता, हाथ-पैर भारी होजाना, जिह्वामें शून्यता आना, पीठ और सर्वाङ्गमें झनझनाहट, मुँहमें जल आना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस हृच्छूलका कारण शीतोपचार या वर्षाऋतुमें वर्षा होजाने पर शीतल वायु हो, अथवा कास श्वासके विकारके पश्चात् श्लेष्म संचित होकर या अनेक दिनों तक रहने वाले सान्निपातिक ज्वरके अन्त

में कफसंचय होकर अथवा मनोव्याघातसे विना कफसंचय उपस्थित हुआ हो, तो उसपर त्रैलोक्यचिन्तामणिका प्रयोग करना चाहिये।

यह रसायन अग्निको बढ़ाता है, परन्तु यह कार्य हिंग्वष्टक सदृश उत्तानस्वरूपका दीपन कार्य नहीं है। हिंग्वष्टक या अम्लरससे आमाशयकी श्लैष्मिक कला और पित्तोत्पादक ग्रन्थियाँ केवल उसी समयके लिये उत्तेजित होकर पाचक पित्तका स्राव कराते है। यह कार्य अधिक कालके लिये नहीं है। इसके विपरीत त्रैलोक्यचिन्तामणिका कार्य अति प्रभावशाली, वीर्यवान् और स्थिर होता है। इस रसायनका कार्य आमाशय, ग्रहणी, यकृत्, अग्न्याशय और अन्त्र पर होता है। इतना ही नहीं, आँतमें रही हुई रसाकुरिकाओं (संशोषियो— Intestinal Villi) की संशोषण क्रिया, रस-रक्तमें मिलनेके पश्चात् उसकी रूपान्तर क्रिया एवं रक्तमेंसे उत्तरोत्तर धातु बनानेकी क्रिया, सब पर इसका परिणाम होता है। इन सबसे कफविकृति विशेषतः कफके गाढ़ापन, चिकनापन, और स्थिरपन, ये गुण बढ़ कर नाड़ियाँ रुद्ध होगई हो, और उसके हेतुसे रक्त और प्राणवायुकी योग्य पूर्ति न होने से मंदाग्नि हुआ हो, तो त्रैलोक्यचितामणि रस देनेसे कफकी विकृति नष्ट होती है। सब अवयवोंको रक्त और वायु अच्छी तरह मिलने लगता है। फिर पाचक अग्नि प्रदीप्त होकर योग्य पचन करने लगता है। इस दृष्टिसे मूलग्रन्थमें 'अग्नि दीपयते' यह गुणधर्म दर्शाया है।

स्नायुओंके योगसे विविध क्रिया सरलतापूर्वक योग्य होने पर शरीर सबल रहता है। परन्तु स्नायुओंकी क्रिया योग्य तब होसके, जब उन पर और वातवाहिनियों पर वायुका कार्य उत्तम रीतिसे होता रहे। जब कफसंरोधसे वायुका सम्यक् कार्य नहीं होता, तब निर्बलताकी प्राप्ति होती है। ऐसी अवस्थामें त्रैलोक्यचितामणि देने से कफसंरोध दूर होता है, वायुका कार्य योग्य रूपसे होने लगता है, तथा बलकी वृद्धि होती है।

शारीरिक शुक्रसे सत्वरूप ओजकी कल्पना आयुर्वेदने स्पष्ट की है। इसके समान कल्पना आधुनिक वैद्यकमें नहीं मिलती। यह ओज हृदयमें है, और समग्र शरीरमें फैला हुआ है। इसकी सुस्थिति पर शारीरिक सब व्यापार अवलम्बित है। ओज अच्छी तरह उत्पन्न कर उसके सारे शरीरमें फैलानेका कार्य इस त्रैलोक्यचितामणि द्वारा होता है। इसी गुणके हेतुसे हृदय जब क्षीणतर होने लगता है, तब तत्काल उत्तेजना देनेके लिये इस रसायनका उपयोग किया जाता है।

शरीरमें उत्पन्न होनेवाले विविध मेन्द्रिय विषका रक्तमें शोषण होकर कफप्रधान या कफवातप्रधान लक्षण उत्पन्न होने पर इस औषध का उत्तम उपयोग होता है। कफप्रधान कास और श्वासमें इस रसायन का अच्छा उपयोग होता है।

पक्षाघातकी अन्तिम अवस्था या अन्य वातव्याधिके अंतमें रोगी अत्यन्त क्षीण, निर्बल और ओजक्षययुक्त होने पर इस रसायन की योजना करनी चाहिये।

संक्षेपमें, त्रैलोक्यचिंतामणि रस हृद्य, ओजस्कर, अग्निप्रदीपक, बलवर्द्धक और धातुसाम्य लानेवाला है। अत्यन्त वीर्यवान और तीव्र होनेसे इसका उपयोग विशेषतः कफप्रधान और कफवातप्रधान विकृति पर होता है। जब स्रोतसें कफसे रुद्ध होती हैं तब इस रसायन का उपयोग करना चाहिये। (आ० गु० द० शा० के आधार से)

(१४) जयमङ्गल रस।

बनावट—सिंगरफ से निकाला हुआ पारद, शुद्ध गन्धक, सोहागे का फूला, ताम्रभस्म, वंगभस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, सेंधानमक और सफेद मिर्च, प्रत्येक एक-एक तोला, सुवर्ण भस्म २ तोले, लोहभस्म १ तोला और रौप्यभस्म १ तोला लेवे। सबको यथाविधि मिला, खरल कर, धतूरेके पत्तोंके रस, हारसिंहारके पत्तोंके रस, दशमूलके क्वाथ और चिरायतेके क्वाथकी क्रमशः ३-३ भावना देकर आध-आध रत्ती की गोलियाँ बनावें। (भै० र०)

मात्रा—½ से १ रत्ती तक दिनमें २ से ३ समय जीरेके चूर्ण और शहद के साथ या रोगानुसार अनुपान के साथ देवे।

उपयोग—यह बड़ी दिव्य औषधि है। सब प्रकारके ज्वरोंको दूर करती है, और मस्तिष्कमें पहुँची हुई ज्वरकी उष्णताको दूर करके उसे शान्त बनाती है। बहुत कालका पुराना महाघोर जीर्णज्वर, साध्य और असाध्य आठों प्रकार के ज्वर, वातपित्त आदि भिन्न-भिन्न दोषोसे होने वाले सब प्रकारके ज्वर, सब प्रकारके विषम ज्वर, मेदोगतज्वर, मांसाश्रित ज्वर, अस्थि और मज्जामें रहा हुआ ज्वर, अंतरवेग और बाह्यवेग वाला उग्र ज्वर, नाना प्रकारके दोषोसे उत्पन्न ज्वर, शुक्रगतज्वर तथा अन्य सभी प्रकारके ज्वरोको यह रसायन दूर करता है। बलवीर्यकी वृद्धि करता है, तथा सर्व रोगोको नष्ट करता है।

अनेक समय विषमज्वर कई दिनों तक त्रास पहुँचाता रहता हो, जो मुद्दती ज्वर, औषधि या पथ्यमें भूल होनेसे २-२ मास तक

या इससे भी ज्यादा समय का होगया हो, अन्य किसी भी प्रकारके ज्वर, जीर्ण होकर मांस आदि धातुके आश्रित रहे हुए हो, और शीतल उपचारसे तथा गरम उपचारसे भी बढ़ जाते हो, ऐसे सब ज्वरोंको समूल नष्ट करने के लिये यह रसायन अद्वितीय है।

इस रसायनके सेवनसे मस्तिष्कमें स्थित उष्णता उत्पादक और नियामक केन्द्रस्थान सबल बनते हैं, अन्तरमें रहे हुए ज्वरके कीटाणु नष्ट होजाते हैं; सेन्द्रिय विष जल जाता है, निद्रा आने लगती है। दाह शमन हो जाती है; कफ सरलतासे निकल जाता है, दुष्ट कफकी उत्पत्ति बन्द होजाती है, वातवाहिनियाँ बलवान् बनने लगती हैं, मन प्रफुल्लित बनता है; एवं क्षुधा प्रदीप्त होने लगती है। परिणाममें थोड़ेही दिनोंमें शरीर नीरोग, पुष्ट और तेजस्वी बन जाता है।

जब ज्वरविष रक्त आदि धातुओंमें लीन रहता है, वात, पित्त, कफ, तीनों धातु निर्बल होजानेसे जीवनीय शक्ति ज्वरविष या कीटाणुओंको नष्ट करनेमें असमर्थ होगई हो, हृदयकी शिथिलताके हेतुसे वच्छनागप्रधान ओषधि अनुकूल न रहती हो, या अधिक अवसादकता लाती हो; तब विषघ्न, ज्वरघ्न, बल्य, हृद्य और पचनेन्द्रियकी संशोधक गुणयुक्त औषधकी आवश्यकता है। ये सब गुण जयमंगल रसमें अवस्थित हैं।

जब राजयक्ष्मामें ज्वर वेग अधिक रहनेसे व्याकुलता और निर्बलता अधिक आई हो, तब सुवर्ण-प्रधान अन्य ओषधिका उपयोग नहीं होता; परन्तु यह रसायन न्यून मात्रामें निर्भयतापूर्वक दिया जाता है। इसके सेवनसे क्षयके कीटाणु और विष नष्ट होते हैं, और शारीरिक उत्ताप भी मर्यादित रहता है।

बालक, स्त्रियाँ या कोमल प्रकृतिके पुरुष रात्रिको या असमय पर या अस्थान पर अकेले कभी चले जाते हैं; तब वातवाहिनियों और मन पर आघात होकर अनेकोंको ज्वर आजाता है, प्रलाप, भीति, दुष्ट-स्वप्न, जाग्रत अवस्थामें भी भयकी कल्पना, कम्प, हृदयकी चचलता और उन्मादके लक्षण सह ज्वर प्रतीत होता है। ऐसी अवस्थामें जयमंगल रस देनेसे सत्वर उत्तम लाभ पहुँचता है।

ज्वरमें या बिना ज्वरावस्थामें कभी शोक आदि कारणोंसे मानसिक आघात पहुँचने पर सान्निपातिक ज्वरकी संप्राप्ति होजाती है। लक्षण अनेक सान्निपातिक ज्वरोंके साथ मिल जाते है, कुछ-कुछ भेद भी रहता है। वातवाहिनियाँ, वातवहा नाड़ीकेन्द्र, सहस्रार और मन

आदि शिथिल और दूषित हो जाते है। प्रलाप, अरुचि, विचारशक्तिका नाश, निद्रानाश, क्वचित् ज्वर और अतिसार, कचित् अतिसारका अभाव, नेत्रमें वार वार अश्रु आना, मुखमण्डल निस्तेज होजाना इत्यादि लक्षण प्रतीत होने पर जयमंगल रस देना चाहिये। जयमंगल रससे हृदय; मन और वातवाहिनियोंके केन्द्रस्थान आदिका सरक्षण होता है, और रोगनिवृत्तिमें अच्छी सहायता मिलती है।

(१५) दुर्जलजेता रस।

बनावट—शुद्ध वच्छनाग २ तोले, वराटिका भस्म ५ तोले और कालीमिर्च ६ तोले मिलाकर खरल करे। फिर अदरखके रसमें ६ घण्टे खरल करके मूँगके समान गोलियाँ बनाले। (यो० र०)

मात्रा—१ से ३ गोली दिनमें २ समय जलके साथ।

उपयोग—यह रसायन दुष्ट जलवायु-जनित ज्वर, जुकामसहित ज्वर, शीतज्वर, अजीर्ण, मन्दाग्नि, आमवृद्धि, आफरा, मलावरोध, शूल, श्वास, कास आदि रोगोंको दूर करनेमें अति हितकर है।

इस रसायनके सेवनसे कफदोष दुष्टि कम होती है। पेशाव साफ आता है, पाचक पित्तकी शुद्धि होती है; तथा अतिसार और अजीर्ण दूर होते है।

इस रसायनका उपयोग वर्षाऋतुमें कीचड़के विषसे उत्पन्न ज्वर पर बहुत अच्छा होता है। ज्वर आने पर जड़ता, अंग पर गीलापन, मुँहमें चिकनापन और मीठापन, अङ्ग अकड़ जाना, उदरमें वायु भरा रहना और भारीपन, क्षुधानाश, मीठी और दूषित डकार आना, मलावरोध, पीठसे कमर तक शूल निकलनेके समान भासना, जुकाम, मस्तिष्कमें भारीपन आदि कफप्रधान लक्षण प्रतीत होते हैं। ऐसे समय पर इस रसायनका प्रयोग किया जाता है।

आमाशयस्थ कफदोष विकृत होने पर आमाशयके स्रावमें अम्लता और पिच्छिलता कम होती है। इस हेतुसे उदरमें भारीपन, क्षुधानाश, उबाक, मुखमें मधुर जल आते रहना, थोड़ा भोजन करने पर भी सम्यक् पचन न होना, उदरमें आफरा और मंद-मंद व्यथा, मल दुर्गन्धयुक्त, पतला अयोग्य मिश्रण वाला होजाना, और मूत्रमें पीलापन आदि लक्षण प्रतीत होते है। इस पर दुर्जलजेता रस दिया जाता है। इस रसायनके सेवनसे स्राव नियमित होता है, कफ विकृति दूर होती है। फिर अपचन और अतिसारकी भी निवृत्ति होती है।

इस औषधिमें पारद न होने पर भी रसायन समान गुण होनेसे

शास्त्रकारोंने इस औषधिको "दुर्जलजेता रस" संज्ञा दी है।

(१६) हेमगर्भपोटली रस।

बनावट—शुद्ध पारद, ताम्र भस्म और गन्धक १-१ तोला, सुवर्ण भस्म (या वर्क), चाँदी भस्म, लोह भस्म और रससिंदूर प्रत्येक ६-६ माशे लेकर भेड़के दूधकी ३ भावना देवें। फिर सोगठी (शिखरवाली गोली) बाँधकर सुखावें। इन सोगठियोंको पृथक् पृथक् नये रेशमी कपड़ेमें दृढ़ बाँध, फिर सबको एक साथ एक कपड़ेमें रख डोरेसे बाँधकर हाँडीमें लटकावें। इस हाँडीके नीचे दंडा गन्धक उतना भरें कि, गन्धक पिघलने पर उसमें औषधिकी पोटली डूब जाय। कपड़ेकी बत्तीको तेलमें भिगोकर ताप देवें। लगभग आध घण्टेमें गन्धक पिघलने पर औषधि पचन होने लगती है; फिर आध या एक घण्टेमें पाक होजाता है। पश्चात् पोटली निकालकर शीतल होने देवे। पश्चात् सोगठियोंको गरम पानीसे धो लेवें। फिर ऊपर लगी हुई गंधकको चाकूसे छील कर साफ कर लेवें। (वै० चि० सा०)

मात्रा—½ से १ रत्ती तक पानी या अदरखके रसमें घिसकर पिलावें। दिनमें २ से ४ समय दो-दो घण्टेके बाद देवे।

उपयोग—हेमगर्भपोटली रस त्रिदोष, मूर्च्छा, शीताङ्ग, श्वास, कफ, निमोनिया आदि दोषोंको तुरन्त दूर करके रोगीको सचेत बनाता है। श्वसनक सन्निपात (निमोनिया), आन्त्रिक सन्निपात (मधुरा) और अन्य सन्निपातोंमें हृदयक्षीणता, शरीरमें अधिक शीतलता, श्वासका वेग मंद और नाड़ीका वेग अधिकाधिक क्षीण होता जाना, आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसे समय पर इस रसायनका सेवन करानेसे ये सब तीव्र लक्षण सत्वर शमन होजाते हैं। एवं सन्निपात आदि रोगोंमें मस्तिष्क शून्य होकर रोगी बेसुध होजाता है, तब यह औषधि अमृत समान गुण दर्शाती है, हृदयको उत्तेजना देती है, क्षय, श्वास, कफविकार, वातप्रकोप, मन्दाग्नि आदि दोषोंको दूर करती है, तथा आँतड़ीमें उत्पन्न सेन्द्रिय विषको नष्ट करके रोगीको सचेत बनाती है।

दूसरी विधि—शुद्ध पारद ४ तोले, शुद्ध गन्धक २ तोले, सुवर्ण भस्म १ तोले, ताम्रभस्म ३ तोले और समीरपन्नग ६ माशे, इन सबको यथा विधि मिला घीकुँवारके रसमें ७ दिन खरल कर सोगठी बाँधें। फिर इनको प्रथम विधिमें लिखे अनुसार पचन करे। (औ०गु०ध०शा०)

मात्रा—½ से १ रत्ती तक आवश्यकता पर घिसकर देवें।

उपयोग—यह रसायन अतिशय तीव्र और उष्णवीर्य है। इसका

उपयोग अति सम्हाल कर करना चाहिये। यह औषधि आयुर्वेदके अमूल्य औषधरत्नोंमेंसे एक उत्तम रत्न है। अनेक बार इस रसायनने अत्यन्त पराकाष्ठाको पहुँचे हुए असाध्य और मृत्युमुखमें प्रवेश करनेके लिये तैयार रोगियोको जीवन-दान दिया है। इतना होने पर भी इसका दुरुपयोग होनेसे रोगीको त्रास और बढ़ जाता है। इस रसायनके सेवनसे तत्काल नाड़ीका वेग बढ़ जाता है; नाड़ीके स्पन्दन नियमित होते हैं; एवं रक्ताभिसरण क्रिया सबल बनती है।

हेमगर्भका उपयोग सान्निपातिक ज्वरकी अन्तिम अवस्थामें बहुत अच्छा होता है। आन्त्रिक सन्निपात (मोतीझरा), श्वसनक सन्निपात (न्युमोनिया), श्लेष्मकज्वर (इन्फ्लुएञ्जा) या अन्य सन्निपात की अन्तिम दशामें शरीर शीतल होने लगता है, श्वास बढ़ जाता है, नाड़ी अति मन्द और छिन्न होजाती है; तन्द्रा आजाती है; शरीर पर विशेषतः कपाल पर शीतल स्वेद आता है; यह स्वेद अधिकतर आता है; और हाथ-पैर शीतल आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। ऐसी अवस्थामें यह रसायन अति उपयुक्त है। यह अवस्था होनेपर शारीरिक उत्ताप अति कम होने पर इसका कार्य अति उत्तम होता है। विशेषतः श्लेष्मक और श्वसनकमें तो यह अत्युत्तम माना गया है। परन्तु इस स्थितिमें उपयोगी होने वाले हृदयोत्तेजक औषधको श्लेष्मक आदि सन्निपातोकी बिल्कुल प्रथमावस्था या द्वितीयावस्थामें देने पर अति हानि होती है; ज्वर भयंकर बढ़ जाता है, नाड़ी वेगसे चलने लगती है, तथा किसी-किसी रोगीके मुँहमेंसे रक्त गिरने लगता है।

ऋतुपरिवर्त्तनसे होनेवाले अतिसार (अपचनजनित विसूचिका) और जन्तुजन्य विसूचिकामें अत्यधिक दस्त लग जाने पर नाड़ी और हृदयकी गति क्षीण होजाती है, फिर श्वासप्रकोप होजाता है, उदर देखने पर बैठा-सा भासता है। भयंकर तृषा, व्याकुलता, हाथ-पैर और समस्त शरीर शीतल आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। अन्तमें नाड़ी बिल्कुल डोरी सदृश और छिन्न होजाती है, क्वचित् नाड़ी हाथको भी नहीं लगती। इस स्थितिमें हेमगर्भ रस अति उपयुक्त है। यह रसायन अदरखके रसमें घिस, थोड़ा शहद मिलाकर देना चाहिये। जैसे जैसे मात्रा शोषित होती है, वैसे-वैसे प्रकृति सुधरने लगती है।

तमक, प्रतमक, ऊर्ध्व और महाश्वासमें हेमगर्भका अच्छा उपयोग होता है। परन्तु खूब सम्हालपूर्वक कम मात्रामें देना चाहिये।

अपतन्त्रक आदि वातरोगमें तन्द्रा, भ्रम, संन्यास, आदि

लक्षण होनेपर कफाधिकता हो, तो इसका अति उत्तम उपयोग होता है।

उरस्तोय और कुक्षिशूल विकारमें ज्वर कम होने और नाड़ीकी क्षीणता बढ़नेपर हेमगर्भपोटली रस देना चाहिये।

प्रसूताके वातप्रकोपमें हेमगर्भ अति उपयुक्त है। प्रसवकालमें प्रसव-वेदना कम होकर नाड़ी क्षीण होनेपर हेमगर्भपोटलीरस दिया जाता है। (औ० गु० ध० शा० के आधारसे)

सूचना—हेमगर्भपोटली रसका अनधिकारी पर प्रयोग होनेसे शारीरिक उत्ताप खूब बढ़ जाता है। क्वचित् मृत्यु होजानेके बाद भी शरीरोष्मा अधिक रहती है। हेमगर्भ देनेके पश्चात् अन्य औषधिका कार्य बहुधा नहीं होसकता। हेमगर्भकी शरीरपर होनेवाली उत्तेजक क्रिया शमन होनेपर अन्य औषधिका प्रयोग होसकता है।

(१७) पंचवक्त्र रस।

बनावट—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, सोहागेका फूला, पीपल, कालीमिर्च और शुद्ध वच्छनाग, इन ६ औषधियोंको सम भाग मिला, काले धतूरेके पत्रके रसमें एक दिन खरल कर (टीकाकारके मतानुसार ७ भावना देकर) मूँगके बराबर गोलियाँ बाँधें। (शा० सं०)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें ३ समय तक ३-३ घण्टे पर अदरखके रस और शहदके साथ देवें। ऊपर त्रिकटु मिला हुआ आकके मूलका कषाय पिलावें।

उपयोग—पञ्चवक्त्र रस अति उष्णवीर्य, तीक्ष्ण, व्यवायी और पीड़ाहर है। कफप्रधान सन्निपात में वातानुबन्ध होने पर पंचवक्त्रका उपयोग अति लाभदायक है। पित्तानुबन्ध में उपयोग नहीं करना चाहिये। कफवातात्मक सन्निपात और वातश्लेष्मज्वर (Influenza) में यह रसायन विशेष लाभदायक है। पूयमेहके तीक्ष्ण दर्द, मूत्रावरोध, पूय और शोथ आदिमें पंचवक्त्र रस देनेसे पेशाब साफ आकर तीक्ष्ण दर्द सत्वर दूर होता है।

श्लेष्म-प्रधान सन्निपातमें कफसंचय होने पर इस रसायनकी योजना करनी चाहिये। कफसंचय होनेसे कण्ठमें घरघर आवाज, नाड़ी भारी और तेज, श्वासोच्छ्वासके वेगकी वृद्धि, ज्वरवेग मध्यम, भ्रम, प्रलाप, हाथ-पैर पटकना, शिर हिलाते रहना, कफ गिरने पर किञ्चित् अच्छा लगना, कफ न निकलने तक अधिक त्रास, तन्द्रा, शरीरमें भारीपन, त्वचामें कुछ गीलापन आदि लक्षण होते हैं। इस पर इस

रसायनका उत्तम उपयोग होता है।

कफ सन्निपातकी इस अवस्थामें त्रैलोक्यचिन्तामणि, हेमगर्भ, कालकूट, पञ्चसूत, समीरपन्नग, मल्लसिंदूर, इन सबका पृथक्-पृथक् लक्षणानुरोधसे उपयोग होता है। पञ्चवक्त्रके लिये विशेष चिह्न यह है कि, कफके साथ वातका अनुबन्ध होना चाहिये।

श्वसनक सन्निपात (न्युमोनिया) में बिल्कुल प्रारम्भसे इस औषधका उपयोग उत्तम प्रकार से होता है। तीक्ष्ण पार्श्वपीड़ा होकर चारो ओर फैलना, साथ-साथ श्वास लेनेमें त्रास, श्वासोच्छ्वासके साथ वेदनावृद्धि, किञ्चित् चलने पर दर्द होना, स्थिर रहे तब पार्श्व-पीड़ाका बल कम प्रतीत होना, सेक करने पर अच्छा लगना, स्नेह स्वेद उपचार करने पर भी प्रारम्भमें अच्छा लगकर पुनः पीड़ा पूर्ववत् होनी, पीड़ित स्थान पर दबाकर बाँधनेसे पीड़ा कम भासना, सन्धि-सन्धिमें (अँगुलियोंके सांधोमें भी) वेदना, नेत्र पर भारीपन, निद्रानाश, अङ्ग अकड़ जाना, अंगको स्पर्श भी सहन न होना, मध्यम ज्वर-वेग होने पर भी सहन न होना, मंद-मंद प्रलाप और अर्द्ध बेहोशी आदि लक्षण होते हैं। इस सन्निपात ज्वरमें पञ्चवक्त्रका उपयोग उत्तम प्रकारका होता है।

वातकफप्रधान ज्वर और श्लैष्मिक सन्निपात (इन्फ्लुएञ्जा) में वेदना अधिक, तन्द्रा, आलस्य, सर्वाङ्गमें पीड़ा, पर्वभेद, देहमें गीलापन आदि लक्षण होने पर इस रसायनका उपयोग करना अति हितकर है। (औ० गु० ध० शा०)

सूचना—धतूरेका नशा आवे, तो दही-भात खिलाना अथवा नीबूका रस पिलाना चाहिये।

(१८) मृत्युञ्जय रस।

बनावट—नीबूके रससे शुद्ध किया हुआ हिंगुल २ तोले, शुद्ध बच्छनाग, गन्धक, कालीमिर्च, सोहागेका फूला और पीपल, प्रत्येक १-१ तोला लें। सबको यथाविधि मिला अदरखके रसमें ३ दिन खरल करके मूँगके बराबर गोलियाँ बनावें। (यो० र०)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें ३ समय अदरखके रस या जलसे दे।

विविध अनुपान—सब प्रकारके ज्वरमें—शहद।

वातज्वरमें—दही का तोड़।

दारुण सन्निपातमें—अदरखका रस।

जीर्णज्वरमें—नागरबेलके पानका रस और शहद या पीपल-शहद।

निमोनियामें—तुलसीका रस।
अजीर्ण ज्वरमें—जम्भीरी नीबूका रस।
विषम ज्वरमें—काला जीरा और गुड़।
पक्षाघात और आमवातमें—वेलपत्रका स्वरस और शहद।
वातज्वर और कफज्वरमें—लवंगादि पाचन।

लवंगादि पाचन-लौंग १ माशा, काली मिर्च ३ माशे, सौंफ, पोदीना, मुलहठी, सोंठ, और गिलोय १-१ तोला ले। सबको मिला क्वाथ कर ३ हिस्से करें। दिनमें ३ समय ३-३ माशे मिश्री मिला कर पिलावें।

उपयोग—सर्व प्रकारके कफज तथा वातकफ-प्रधान नवीन ज्वर, विषम ज्वर, जीर्णज्वर और सन्निपातको नाश करता है। अतिसार और कृमि-रोगमें भी उपयोगी है।

इस रसायनके सम्बन्धमें रसचण्डांशुकारने लिखा हैकिः—

अव्यक्तः सिद्धिदः शुद्धो रोगघ्नः कीर्त्तिवर्धनः।
यशप्रदः शिवः साक्षात् मृत्युञ्जय रसः स्मृतः॥

यह मृत्युञ्जय रस अव्यक्त, सिद्धिदायक, शरीर-शुद्धिकर, रोगहर, कीर्तिको बढ़ानेवाला, तथा यशकी प्राप्ति करानेवाला साक्षात् मृत्युञ्जय (भगवान् सदाशिव) रूप ही है।

यह रसायन कफघ्न और स्वेदल है। अन्त्रस्थ मल और आमका पाचन कराता है, तथा विषको पसीना और मूत्र द्वारा निकल कर ज्वर को शमन करता है। पूयमेह (सुजाक) के तीक्ष्ण प्रकोप, मूत्रजलन, और मूत्रनलिकाके शोथको १-२ दिनमें ही दूर करता है।

कफज्वरमें नासिका, कण्ठ, श्वासवाहिनियाँ और फुफ्फुसोंमें कफ-दुष्टि होने पर और वह भी बिल्कुल उत्तान स्वरूप (मामूली ऊपर ऊपरके) होने पर ज्वरवेग मध्यम, आलस्य, मुखमें मीठापन और चिकनापन, बार-बार पेशाब आना, मूत्रका सफेद रंग, अङ्गमें भारीपन, हाथ-पैर टूटना आदि लक्षण प्रतीत होने पर मृत्युञ्जय रस अदरखके रस और शहदके साथ देना चाहिये।

वातकफप्रधान ज्वरमें जुकाम, कास और सारा अङ्ग टूटना, ये लक्षण होने पर मृत्युञ्जय रस देना अति उपकारक है।

अपचनसे आये हुए ज्वरमें इस रसायनको जम्भीरी नीबूके रस के साथ देनेसे क्लेदन कफकी शुद्धि होती है, पाचक पित्त सबल बनता है, और अजीर्ण दूर होकर ज्वरकी निवृत्ति होती है।

श्लैष्मिक और श्वसनक सन्निपातकी प्रारम्भिक अवस्थामें कफ चिपकू होने पर इस रसायनका उपयोग होता है। पित्तातिरेकता होने और रक्तमिश्रित कफ गिरने पर इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये।

मलेरिया में क्विनाइन अच्छा लाभ पहुँचाती है, तथापि किसी किसीको हानि भी पहुँचा देती है। ऐसे रोगियों को क्विनाइन अधिक दिन देनेसे ज्वर विशेष प्रकुपित होता है और धातुओंमें लीन हो जाता है, फिर जल्दी नहीं छोड़ता। क्विनाइन के समान अपथ्य सेवन करने वालो का मलेरिया ज्वर भी धातुओंमें लीन होकर रह जाता है। ज्वर १०१° से १०४° तक बढ़ जाता है। ऐसी अवस्थामें अरुचि, सिर में भारीपन, प्रतिश्याय, कफकास आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इसके लीन और उत्तान विषको जलाकर ज्वरको दूर करनेके लिये मृत्युञ्जय रस अधिक हितकारक है। १-१ रत्ती रसको सोंठ, नागरमोथा और धनिया के क्वाथके साथ दिनमें दो बार देते रहनेसे दूसरे ही दिनसे ज्वर कम होने लगता है। उष्णता अधिक हो, तो प्रवालपिष्टी १-२ रत्ती मिला देवें।

सूचना—कफप्रधान रोग लीन ज्वरमें पूर्ण लाभ पहुँचाती है। परन्तु अतियोग होने पर इससे हानि पहुँचती है। स्त्री, बालक, वृद्ध और निर्बलोंको मात्रा शक्ति अनुसार देवें। छोटे बच्चोंको भी उचित मात्रामें दे दिया जाता है। पित्तप्रधान ज्वरमें इस रसायनका उपयोग नहीं करना चाहिये।

(१६) महामृत्युञ्जय रस।

बनावट—शुद्ध मल्ल शुद्ध हरताल, शुद्ध वत्सनाग और शुद्ध जमालगोटा एक-एक तोला, सिंगुल और सफेद कत्था चार-चार तोले लेवें। सबका बारीक चूर्ण कर सत्यानाशीके रसमें १२ घण्टे खरल करके आधी-आधी रत्ती की गोलियां बनावें।

मात्रा—१-१ गोली दिनमें ३ समय अदरखके रसके साथ।

उपयोग—महामृत्युञ्जय रस ग्रन्थिक सन्निपात (Plague) को दूर करनेमें अति उपयोगी है। यह रसायन हृदयको उत्तेजना देता है, नाड़ियोंमें रहे हुए कफआमका शोषण करता है, मलमूत्रावरोधको दूर करता है, तथा लसीका ग्रन्थियों और रक्तमें रहे हुए कीटाणुओंको नष्ट करके प्लेगको दूर करता है, एवं अन्य कफप्रधान सन्निपातमें कफ और मलकी शुद्धिके लिये भी यह दिया जाता है।

सूचना—ज्वरका वेग भयंकर हो, रक्त गिरता हो; तथा दस्त पतला और गरम-गरम होता हो, तो यह रसायन नहीं देना चाहिये।

(२०) गदमुरारि रस।

बनावट—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मैनसिल, लोहभस्म, अभ्रकभस्म और ताम्रभस्म, प्रत्येक १-१ तोला तथा शुद्ध बच्छनाग ३ माशे लेवें। पहले पारद गन्धककी कज्जली करें। फिर भस्म और वच्छनाग मिला, अदरखके रसमें १२ घण्टे खरल करके आधी-आधी रत्तीकी गोलियाँ बनावें। इस रसायनका नाम अनेक आचार्योंने "ज्वरमुरारि रस" भी रक्खा है। (नि० र०)

मात्रा—१-१ गोली दिनमें २ समय निवाये जल, अदरखके रस, तुलसीके रस अथवा अन्य रोगानुसार अनुपानके साथ देवें।

उपयोग—गदमुरारि रस आमप्रधान जीर्ण ज्वरोंका शमन करता है। यह रसायन अनेक दिनों तक रहने वाले ज्वरोंमें धातुपरिपोषण-क्रमको धीरे-धीरे सुधार कर रोगको शमन करता है। जिन ज्वरोंमें दोष धातुओंके भीतर लीन रहता हो, उनमें ज्वरमुरारिका उपयोग अत्यन्त हितकर है। रसगतज्वर, पित्तज्वर, जीर्ण सन्निपातोंकी अच्छी रीतिसे चिकित्सा न हुई हो, ऐसे बहुत समयके पुराने विषमज्वर, क्षयकी प्रथमावस्थाका ताप, अतिसारसहित जीर्ण ज्वर आदि पर यह रसायन प्रयोजित होता है।

रसगत ज्वरमें अंगमें जड़ता, हाथ-पैर टूटना, उबाक, वमन, अरुचि, छातीमें भारीपन, मुखमण्डल पर निस्तेजता और कृशता आदि लक्षण प्रतीत होते हैं; ऐसे लक्षण होने पर गदमुरारि रस देना चाहिये।

कफके साथ रक्त गिरना, थूकमें रक्त आना, रक्त गिरने पर भी श्लैष्मिक या श्वसनक ज्वरके अन्य लक्षण न होना और फुफ्फुस आदि अवयवोंकी विकृति भी न हो, तथा तृषा, अगोंका दाह, निकम्मा-निकम्मा विचार आते रहना, वमन, चक्कर, वेहोशी, प्रलाप, सन्धि-सन्धि में दर्द होना आदि लक्षण होने पर गदमुरारि रस ब्राह्मीके क्काथ, वासा स्वरस या दूर्वामूलके फांटके साथ देना चाहिये।

अति तृषा, बार-बार शौच और लघुशंका, सर्वाङ्गमें दाह, हाथ-पैरों के तलोंमें जलन, हाथ-पैरकी नाड़ियाँ खिचना, हाथ-पैर पटकना अतिशय व्याकुलता, पंखेसे वायु डोलते रहने पर कुछ अच्छा लगना आदि लक्षण होने पर ज्वरमुरारि रस नागरमोथाके क्काथके साथ देना चाहिये।

अति प्रस्वेद, अदि तृषा, बार-बार मूर्च्छा, प्रलाप, वमन, मुँहसे दुर्गन्ध आना, प्रस्वेद द्वारा देहमेंसे दुर्गन्ध निकलना, अरुचि, शरीरके

किसी भी भागमें स्पर्श सहन न होना, आदि लक्षण होने पर ज्वर-मुरारिरस शहद और जलके साथ देनेसे अच्छा लाभ पहुँचता है।

हाथ-पैरोंकी नाड़ियाँ खिंचना, सर्वाङ्गमें पीड़ा, श्वास, बेचैनी, वमन, अतिसार आदि लक्षण होने पर ज्वरमुरारि रसको प्रवालपिष्टी और शृङ्गभस्मके साथ मिला पियावाँसाके स्वरस या क्वाथके साथ दें।

चक्कर आना हिक्का, खाँसी, शीत लगना या शरीर शीतल हो जाना, हाथ-पैर शून्य होजाना, वमन, अन्तर्दाह, हृदय, मूत्राशय और पार्श्वभागमें वेदना, दीर्घ बलपूर्वक श्वास लेना आदि लक्षण होने पर इसे सुदर्शन चूर्णके क्वाथके साथ देनेसे तत्काल लाभ पहुँचता है।

न्युमोनिया, इन्फ्लुएञ्जा और मधुर ज्वर अति जीर्ण होने पर तीव्र औषध नहीं दिया जाता। ऐसे समय पर शनैः-शनैः कार्य करने वाली सौम्य ओषधि देनी चाहिये। ऐसी ओषधि गदमुरारि रस है। इस रसायनका उपयोग कर्णक, भुग्ननेत्र, चित्तविभ्रम और अभिन्यास सन्निपातकी जीर्णावस्थामें भी होता है।

विषमज्वरकी योग्य चिकित्सा न होने पर या प्रारंभसे ही चिरकारी होने पर दीर्घकालस्थायी होता है। इस ज्वरमें निश्चित प्रकारका व्यक्त रूप नहीं होता। अर्थात् चातुर्थिक सदृश चौथे रोज या संतत समान सर्वदा ज्वर आता है, ऐसा नहीं। दिनमें कोई भी समय अनियमित रूपसे आना, कभी कम कभी ज्यादा, कभी शीत लगकर कभी विना शीत लगे, कभी तृषा अधिक, कभी तृषा न लगना आदि अनियमितता होती है। ज्वर आने पर सर्वाङ्गमें दर्द, ज्वर चले जाने पर अच्छी तरह चलना-फिरना आदि लक्षण होते हैं। ऐसे ज्वरमें विषम ज्वरके कीटाणु या सेन्द्रिय विषरूप कारण स्पष्ट प्रकाशित नहीं होता। केवल ज्वर दीर्घ काल तक रहता है। परिणाममें कृशता, ग्लानि, अपचन, निर्बलता, निस्तेजता, मलावरोध आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसे विकारमें ज्वरमुरारि रसका उपयोग किया जाता है।

क्षयकी प्रथमावस्थामें सामान्य ज्वर, शुष्क कास, सारे शरीरमें दर्द, नाड़ीका तीव्र वेग, तृषा, दाह आदि लक्षण होनेपर इस रसके साथ प्रवालपिष्टी और शृङ्गभस्म देनेसे अच्छा लाभ पहुँचता है।

जीर्ण शोफ, भीतरके अवयवोंका शोफ, जिसमें खाँसी, छाती और पसलियोंमें शूल निकलना, निश्चित समय पर सूक्ष्म ज्वर, अंगमें भारीपन, कृशता, उदरमें मन्द-मन्द दर्द होना, आम गिरना, मलकी रचना अच्छी न होना आदि लक्षण गौण हों और प्रधान लक्षण ज्वर

हो, तो ज्वरमुरारि रसका उपयोग करना चाहिये। (औ० गु० ध० शा०)

(२१) कालकूट रस।

बनावट—शुद्ध वच्छनाग १ भाग, शुद्ध पारद ३ भाग, शुद्ध आँवलासार गन्धक ५ भाग, शुद्ध मैनसिल ६ भाग, ताम्र भस्म ४ भाग, सोहागेका फूला ६ भाग, शुद्ध हरताल ६ भाग, चित्रकमूल ६ भाग, त्रिकटु १२ भाग, त्रिफला १० भाग, भुनी हींग १ भाग और वच १ भाग लेवें। पहले पारद और गन्धक मिलाकर कज्जली कर ताम्र भस्म, मैनसिल, हरताल, सोहागा और वच्छनाग क्रमशः मिलावें। बादमें शेष ओषधियों का कपड़छन चूर्ण मिला, अदरखका रस, चित्रकमूलका क्वाथ, जम्भीरी नीबूका रस, लहसुनका रस, करंजके पत्तोंका रस, आकके मूलका क्वाथ, कलिहारीके मूलका क्वाथ, धतूरेके मूलका क्वाथ, नागरवेलके पानका रस, अंकोलके मूलका क्वाथ, सुहिंजनेके मूल का क्वाथ, पंचकोल (पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रकमूल और सोंठ) का क्वाथ, बृहद् पञ्चमूल (बेल, अरनी, श्योनाक, गम्भारी और पाढलकी छाल) का क्वाथ, इन १३ ओषधियोंकी १-१ प्रहर तक भावना देकर आध-आध रत्तीकी गोलियाँ बनावे। (र० यो० सा०)

मात्रा—१-१ गोली अदरखके रससे दिनमें ३ बार देवें।

उपयोग—कालकूट रस सब प्रकारके ज्वर और सन्निपातोंका नाश करता है। इस ओषधिके पाठके साथ लिखा है कि, इस रसायनके सेवनके पश्चात् रोगी को स्नान करावे, और चन्दनका लेप करें। एवं पथ्यमें दही, खजूर आदि तथा ताम्बूल देवें।

यह रसायन अति तीक्ष्ण, उष्ण, विकाशी और व्यवायी है। इसमें मिलाये हुए द्रव्य और विविध उग्र भावनाओंके हेतुसे यह अति उग्र बना है। इस का उपयोग करनेमें खूब सम्हालना चाहिये। जब नाड़ी पूर्ण भरी हुई या डोरी सदृश हाथको भी न मालूम पड़ने वाली हो, नाड़ी हृदयके अवसादकत्वकी साक्षी देती हो, तथा किसी स्थानमेंसे रक्तस्राव न होता हो, तब इस का उपयोग करना चाहिये। वरना कालकूटके तीक्ष्णत्व आदि गुणोंसे रक्तस्राव बढ़ जाता है।

इस रसायनके सेवनसे आध घण्टेमें हृदयको अतिशय उत्तेजना आकर नाड़ीके वेगमें लगभग २०-३० स्पन्दन बढ़ जाते है, फिर रक्त का दबाव भी बढ़ता है। अतः नेत्रमें लाली आदि लक्षण हो, तो यह रस नहीं देना चाहिये। भूल होने पर कभी-कभी इस रसायनके तीव्रत्वके हेतुसे रक्तवाहिनियाँ फटकर रक्तस्राव भी होने लगता है।

रोगलक्षणके साथ ओपधिकी उग्रता और हानिके लक्षण प्रतीत होने लगते हैं। सन्निपात कहनेसे उसकी कठिनता अवगत होजाती है, ऐसे समय पर अनुचित ओपधिकी योजना होने पर रोगीको त्रास होने का कहना ही क्या ? इस हेतुसे दुष्परिणामको अच्छी तरह समझकर इसका उपयोग करें। अतः दुरुपयोगसे बचनेके लिये इस ओपधिके होनेवाले दुष्परिणाम और इसके विपरीत जीवनदान रूप लाभको हमने विस्तारपूर्वक समझाकर लिखा है. जिस स्थान पर हानिका संदेह हो, उस स्थानमें इसका उपयोग नहीं करना चाहिये।

यह रसायन कफप्रधान और वातससर्गी सन्निपात की उत्तमोत्तम ओपधि है। इसका मुख्य उपयोग ग्रन्थिक सन्निपातमें किया है; और इससे ग्रन्थिक सन्निपातमें अच्छा लाभ मिला है। परन्तु इस औषधके अवगुणको विचार किये बिना अधिक मात्रामें वार-वार प्रयोग किया जाय, तो हानि होनेका भय रहता है।

कफप्रधान सन्निपातमें निम्न लक्षण होने पर कालकूट रस देना चाहिये। नाड़ी अतिमद और भारी, सारा शरीर जड़, मस्तिष्क अतिशय जड़, यहाँ तक कि मस्तिष्क पर वड़ा पत्थर बाँधने सदृश भास होना, मस्तिष्क चलाने या उठानेमें भी कष्ट होना, मस्तिष्क हिलाने के पहले मस्तिष्क नहीं है ऐसा लगना, जो विचार आवे वह दूसरो का है ऐसी भावना होना, ज्ञान, विज्ञान, संज्ञा आदि सर्व भावनाओं में जड़ता आ जाना अर्थात् अति प्रयत्न से अति समय लगने पर कुछ विचार आना, मस्तिष्क में अधिक पीड़ा न होना, यदि पीड़ा हुई तो वह गम्भीर स्वरूप की होना, नेत्र पर भारीपन, नेत्र में निस्तेजता, नेत्र की पुतली में जड़ता, किसी ओर दृष्टि न डालने की इच्छा, प्रकाश की चाह, अन्धकार, शीतल जल और शीतल स्पर्श में अप्रीति, कभी-कभी नेत्र में से गाढ़ा चिपचिपा स्राव होना, नेत्र में कुछ मोटा शल्य है ऐसा लगना, कभी-कभी नासिका में से श्लेष्मस्राव, नासिकासे वास का बोध न होना, गरम पदार्थ या तमाखू सूंघने पर अच्छा लगना, जिह्वा मोटी और जड़ होजाने से उच्चारण अस्पष्ट, मन्द निकलना, जिह्वा पर सफेद मैल आजाना, दाँत और जिह्वा पर कुछ शून्यता, जबाड़े में जड़ता, और किसी बात पर लक्ष्य देने की इच्छा न होना आदि लक्षण होने पर इस रसायन का उत्तम उपयोग होता है।

कफवातात्मक विकृति होने पर श्वासोच्छ्वास अति कष्ट से चलता है, श्वासोच्छ्वास के मार्ग में कोई खास प्रतिवन्ध नहीं होता,

कफस्थान विकृति कमी होने पर भी कफदोष विकृति अधिक होती है। इस हेतु से श्वासोच्छ्वास अति धीरे-धीरे चलता है। खाँसी भी विशेष नहीं होती, या गम्भीर होती है। कफ की गाँठ सफेद, गाढ़ी, लसदार और बड़ी होती है। कफ में मीठा, खट्टा कोई स्वाद नहीं होता, नाड़ी मन्द और भारी होती है। एक मिनट में स्पन्दन संख्या ४० से ५० होती है। ऐसे लक्षण होने पर कालकूट रस अवश्य देना चाहिए।

हाथ-पैर जड़, हाथ-पैरों में शून्यता, हाथ-पैर चलाने में त्रास या अशक्ति, हाथ-पैर में देर-देर से मंद-मंद आक्षेप आना (यह आक्षेप वातवाहिनियों की विकृति से आता है) और तन्द्रा आदि लक्षण होने पर कालकूट रसायन की योजना करनी चाहिए।

वातकफप्रधान ज्वर (Influenza) में कफ संसर्ग और वातके लक्षण होने पर कालकूट रस देना चाहिये। वात लक्षणों का स्वरूप सन्निपात के लक्षणों में पहले कहा है। इस ज्वर के प्रारम्भ में त्रिभुवनकीर्ति रस का उपयोग गुडूच्यादि क्वाथ (चिकित्सातत्वप्रदीप पृष्ठ ४७८) के साथ बहुत अच्छा होता है। यदि पहले से ही यह प्रयोग किया जाय, तो रोग की वृद्धि नहीं होती। प्रारम्भ में उपेक्षा की जाय, तो कफ और वात लक्षण बढ़ जाते हैं। वात लक्षण में दो प्रकार हैं। एक में रोगी को आधी सुध, प्रलाप, भ्रम, अति प्रस्वेद, कण्ठ हिलाते रहना, कभी-कभी बूम मारना और शारीरिक उत्ताप १०२° से १०४° डिग्री होना आदि लक्षण होते हैं। उस पर महा वातविध्वंसन रस देवे। दूसरे प्रकार के वात लक्षणों में मंद प्रलाप, जड़ता, हाल-चाल अतिमंद, मंद ज्वर, नाड़ी में मंदता आदि लक्षण होते है, इस पर कालकूट, तथा स्मृतिनाश और आक्षेप हो, तो स्मृतिसागर देना चाहिये।

कालकूट रस, यह धनुर्वात की प्रशस्त औषधि है। यदि धनुर्वात में कफप्रधान दुष्टि हो, तो कालकूट उत्तम लाभदायक है। गर्भपात होनेके पश्चात् होनेवाले धनुर्वात में इस रसायन का उपयोग होता है। गर्भपात होने पर यदि शारीरिक व्यवस्था अच्छी रही, तो कोई विकार उत्पन्न नहीं होता। परन्तु अव्यवस्था होने पर—मलिन हाथ या मलिन वस्त्र आदि का संसर्ग होने पर—धनुर्वात की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार के धनुर्वात में रक्तस्राव अधिक नहीं होता, या बिल्कुल नहीं होता। इस बात का पहले निर्णय कर लेना चाहिये। फिर रक्तस्राव किंचित् हो या न हो, तो कालकूट देना चाहिये। इससे शरीर में धनुर्वात के कीटाणुओं का नाशक प्रतिविष या प्रतिकारी

परिस्थिति उत्पन्न होती है।

गर्भपात के पश्चात् जिस संप्राप्ति से धनुर्वात होता है; वही सूतिका के लिए भी लागू होती है। आयुर्वेद-कथित उत्पत्ति अनुसार इस विकार की पृथक् पृथक् अवस्थाओं में लक्षण-भेद से पृथक्-पृथक् ओषधि—सूतकारि, सूतिकाभरण, प्रतापलंकेश्वर, ताप्यादि लोह और कालकूट आदि—दी जाती है। मक्कलशूल आदि वातप्रधान लक्षण मुख्य हों, तो प्रतापलंकेश्वर; बार-बार आक्षेप और पित्तप्रधानता होने पर ताप्यादि लोह, धनुर्वात आदि लक्षण स्वल्प और सौम्य होने पर सूतिकाभरण; वातकफप्रधान लक्षण हो, तो सूतिकारि; और कफ-प्रधान जड़ता, बेहोशी, आदि पर कालकूट देना चाहिये। इस बात का भी स्मरण रक्खे कि, रक्तस्राव न हो, तो ही कालकूट दिया जाता है।

छोटे बालकों को होने वाले पूयमय वृक्कविकार में यह ओषधि सैंधा नमक और हरड़ के साथ दीजाती है। इस रोग के आरम्भ में ज्वर अधिक होता है, हाथ-पैर पर शोथ, मुख और सर्वाङ्ग का रङ्ग भस्म सदृश, तथा मूत्र थोड़ा और लालवर्ण का पूयमिश्रित होता है। फिर आगे तन्द्रा, मन्द आक्षेप, जड़ता और भयप्रद अवस्था की प्राप्ति होती है। इस द्वितीयावस्था में कालकूट रस उत्तम कार्य करता है।

अभिन्न नेत्र सन्निपातकी तीव्रावस्थामें इस रसायनका अच्छा उपयोग होता है। (औ० गु० ध० शा०)

सूचना—यह रसायन अति तीव्र होनेसे सगर्भा स्त्रियोंको नहीं देना चाहिये। छोटे बच्चोंको अति कम मात्रामें सम्हालपूर्वक देवें; और बड़े मनुष्यको भी विचारपूर्वक ही देवे। इसे ज्यादा दिनों तक चालू नहीं रखना चाहिये।

क्वचित् कालकूट रससे कण्ठमें घाव होजाता है, जिह्वा फट जाती है, और अति उष्णता बढ जाती है।

(२२) लक्ष्मीनारायण रस।

बनावट—शुद्ध हिंगुल, अभ्रकभस्म, शुद्ध गंधक, सोहागेका फूला, शुद्ध बच्छनाग, निर्गुण्डीके बीज, अतिविष, पीपल, कुड़ाकी छाल, सैंधानमक, प्रत्येक समभाग मिला दंतीमूल और त्रिफलाके क्वाथ की ३-३ भावना देकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें। (यो० र०)

मात्रा—१ से २ रत्ती अदरख के रस और शहदके साथ देवें।

उपयोग—लक्ष्मीनारायण रस दुष्टज्वर, सन्निपात, विसूचिका, विषमज्वर, अतिसार, ग्रहणी, रक्तातिसार, प्रमेह, शूल, सूतिका रोग, वातव्याधि और बालकोंके धनुर्वात को दूर करता है।

यह रसायन उत्तम ज्वरघ्न, स्वेदल (परन्तु अवसादक नहीं), पाचक, सेन्द्रिय विषघ्न और कीटाणुनाशक है। इसका उपयोग रस और रक्तधातुगत ज्वरों पर—विशेषतः मुद्दती तापकी तीव्रावस्थामें—बहुत अच्छा होता है। यह रस स्वेदल होनेपर भी हृदयको शिथिल नहीं बनाता। धनुष्कंप, अपतानक, आक्षेपक आदि वातनाड़ियों के विकृति-जनित वातरोगमें जब ज्वर आने लगता है; तब यह देनेसे ज्वर और वातप्रकोप, दोनों, शमन होते हैं। अनेक बालकोंको धनुर्वातके झटके आते हैं, जो बच्चोंके लिये विशेष भयप्रद हैं। उस अक्षेपका शमन इस रससे तत्काल होकर ३–४ रोजमें रोग नष्ट होजाता है। कुक्षिशूलके विकारमें बार-बार शूल चलना, ज्वरदाह, शोथ और बेचैनी आदि लक्षण होनेपर इस रसायनसे शीघ्र लाभ पहुँचता है।

सूतिका ज्वर अति भयंकर व्याधि है। प्रसवकालमें या पश्चात् किसी कारणवश मलिन हाथ या मलिन गन्दे वस्त्रके संसर्गसे योनि-मार्गमें कीटाणुओंका प्रवेश होकर व्रण उत्पन्न होते हैं। फिर गर्भाशय और योनि-मार्गमें विकृति फैलती है। यदि इसे सत्वर न सम्हाला जाय, तो इस विकारका असर समस्त शरीरमें होजाता है। इसके योगसे ज्वर आता है। विशेषतः ज्वरका वेग तीव्र होता है। यदि तीव्र ज्वरके साथ शिरदर्द, तृषा, क्वचित् बेहोशी, धनुर्वात आदि लक्षण हो, तो लक्ष्मीनारायण रस दशमूलारिष्टके साथ देनेसे वह रक्तमें मिश्रित हुए विषको जलानेका और ज्वरको उतारनेका अच्छा कार्य करता है। साथमें उत्तरवस्ति द्वारा गर्भाशय, गर्भमार्ग और योनिमें उत्पन्न होने वाले सेन्द्रिय विषका भी निरोध कर देना चाहिये। यदि ज्वरका वेग कम हो, और वातप्रकोप भयंकर हो, तो इस रसको नहीं देना चाहिये। ऐसी अवस्थामें प्रतापलंकेश्वर दें और गर्भाशय शुद्धिके लिये दशमूलारिष्ट साथमें देना चाहिये। इस तरह सूतिका विषजन्य ज्वरमें लक्ष्मीनारायण उत्तम ज्वरघ्न और विषघ्न औषध है।

आन्त्रिक सन्निपात (२१ दिनका मुद्दती ताप—मधुरा) के आरम्भमें लक्ष्मीनारायण देनेसे आन्त्रिक विषका शमन, दोषपाचन और ज्वरघ्न रूपसे उत्तम कार्य होता है। दूसरे तीसरे सप्ताहमें दुर्गन्धयुक्त अतिसार सहित ज्वर १०४–१०५ डिग्री पर्यन्त बढ़ने पर भी लक्ष्मीनारायण रस, वटी प्रकरणमें कही हुई मधुरान्तक वटीके साथ देनेसे दाह, विषशमन, और अतिसारका रोध करनेके लिये अच्छा कार्य करता है, और ज्वर बढ़कर रोगीकी शक्तिका क्षय नहीं होने देता। लक्ष्मीनारा-

यणकी मात्रा अधिक नहीं देनी चाहिये। विष बहुत अधिक होगया हो, तो लक्ष्मीनारायण और मधुरान्तक वटी दिनमें २ समय तथा प्रवालपिष्टी शहदके साथ दिनमें ३ समय देते रहनेसे कोष्ठदाह, विष, प्रलाप, अतिसार, ज्वरका वेग आदि सत्वर कम होजाते हैं।

इस आन्त्रिक ज्वरमें विचित्र-विचित्र उपद्रव खड़े होजाते हैं। ऐसे समय पर उपद्रव अनुसार औषध दीजाती है, परन्तु लक्ष्मीनारायणको भी वन्द नहीं करना चाहिये।

जिन रोगियोंको आन्त्रिक ज्वरमे लक्ष्मीनारायण नहीं दिया जाता, उनमेंसे कितनेकोंको भयंकर त्रासदायक अतिसार होता है। रोगी कहता है कि, इस अतिसारकी अपेक्षा वद्धकोष्ट होजाय, तो वह भी अच्छा। अतिसारसे शक्ति अधिक क्षीण होती जाती है। अतिसार जल सदृश पतला, दुर्गन्ध-युक्त होता रहता है, और दस्त लगनेके पहले त्रासदायक उदरवातकी उत्पत्ति होती है। यह अतिसार भी लक्ष्मीनारायण रससे ही वन्द होता है।

श्लैष्मिक और श्वसनक सन्निपात एवं अन्य प्रकारके सन्निपात में उन सन्निपातकी नाशक ओषधियोंके साथ ज्वरघ्न, स्वेदल और सेन्द्रिय विषघ्न गुणोंके लिये लक्ष्मीनारायण रस दिया जाता है।

विषम ज्वरमें जिस औषधमें ज्वरघ्न और धातुगत दोषनाशक गुण हों, वही उपयोगी होती है। ये दोनो गुण (ज्वर और धातुगत दोषको नष्ट करना) इस रसायनमें होनेसे संतत ज्वर (जिसमें ज्वर बना रहता है, और सर्वाङ्गमें जड़ता, मुँहमें पानी आना, वमन, उबाक, अरुचि, दाह, किंचित् प्रलाप, तृषा, आक्षेप, शिर दर्द, चक्कर, प्यास आदि लक्षण प्रायः रहते हैं), सततज्वर (रोज आकर उतर जानेवाला ज्वर), एकाहिक, तृतीयक (एकांतरा), चातुर्थिक (तिजारी), इन सब प्रकारके विषम ज्वरोंमें लक्ष्मीनारायण सुदर्शन अर्क या तुलसीके रस के साथ देने से धातुगत दोष का शमन होकर ज्वर जल्दी दूर हो जाता है। सतत ज्वर, एकाहिक, तृतीयक, चातुर्थिक आदिमें ज्वर न हो, तब सप्तपर्ण सत्व सदृश औषध देने और ज्वरावस्थामें लक्ष्मीनारायण देनेसे रोग शमन होजानेके अनेक उदाहरण मिले हैं।

परिवर्तित ज्वर, जो वर्षोंपर्यन्त बार-बार थोड़े दिन वाद अनियमित समय पर आता रहता है, उसमें कफभूयिष्ठ लक्षण हों, तो हरताल या सोमलवाली ओषधि दीजाती है; तथा पित्तप्रधान लक्षण हो; आरंभ में जोरसे ठण्ड लगकर ज्वर आता हो, और साथ-साथ प्यास, बेचैनी,

दाह, शिरदर्द आदि लक्षण हो, तो हरताल या सोमल कल्पकी अपेक्षा लक्ष्मीनारायण रस ही विशेष लाभदायक होता है। परवर्तितके समान अन्य जाति के कीटाणुजन्य ज्वरमें भी पित्ताधिक्य लक्षण हो, तो लक्ष्मीनारायण रस देनेसे कीटाणु नष्ट होकर ज्वर शमन होजाता है।

आंत्रिक ज्वरके पश्चात् उत्पन्न होनेवाले ग्रहणी रोगमें एवं दूषित जलवायुके योगसे होनेवाले अतिसारमें उदरमें दर्दकी कमी, परन्तु वार-वार थोड़ा-थोड़ा आँव और रक्तसहित दस्त होना और ज्वर आदि लक्षण होने पर लक्ष्मीनारायण रस अत्यन्त हितकर है।

तीव्र ज्वरके पश्चात् संग्रहणी होजाने पर लक्ष्मीनारायण और कनकसुन्दर अति उपयोगी औषधि है। उदरमें मद-मंद दर्द होकर बार-बार शौच जाना, शौचमें कुछ आम और किंचित् रक्त पड़ना, मल कभी बिल्कुल न आना, कभी मल थोड़ा-सा आना, वार-बार पेशाब आते रहना, साथ-साथ ज्वर भी रहना इत्यादि लक्षण होने पर लक्ष्मीनारायणका उपयोग उत्तम होता है।

कभी किसी रोगीको लक्ष्मीनारायण रस देनेसे अति प्रस्वेद आता है, इस हेतुसे त्रास अधिक होता है। ऐसे समय पर प्रवालपिष्टी और अमृतासत्व मिश्रण करके देते रहना चाहिये।

इस लक्ष्मीनारायण रसका कार्य विशेषतः अंत्र, यकृत् और प्लीहा स्थान पर, तथा रस, रक्त, मांस और त्वग्गत स्वेदपिंडो पर होता है। यह पित्तकी तीव्रताके शमनार्थ अच्छा उपयोगी है।

(औ० गु० ध० शा० के आधार से)

कभी-कभी रोमान्तिका रोग शहरव्यापी बन जाता है। एक मकान के भीतर किसी एक बालक को होने पर अन्य बालको पर भी इस रोग का आक्रमण होजाता है। यह रक्त धातुगत और वातपित्तात्मक ज्वर है। इस रोगकी संप्राप्ति ३ मासके बच्चेसे लेकर ८ वर्ष की आयुवाले बालकों को होजाती है। ज्वर १०३°-१०४° तक बढ़ जाना, जिह्वा सफेद, नेत्र उभरे हुए, शुष्ककास, किसीको प्रतिश्याय, बहुधा चौथे दिनसे मुखमण्डल और कण्ठपर पिटिकाएं प्रतीत होती हैं, पांचवे दिन समस्त देह पर भासती है। इस विकार पर लक्ष्मीनारायण रस, गोरोचन, प्रवाल, शृंगभस्म अमृतासत्व और सितोपलादि चूर्ण मिलाकर दिनमें ३ समय देने और मसुरिका रोगपर कहे हुए निम्बादि क्वाथ पिलाते रहने से बिना कष्ट पहुँचाये रोग दूर होजाता है।

(२३) मधुरान्तक वटी।

बनावट—मोती पिष्टी १ माशा, कस्तूरी २ माशे, केशर ३ माशे, जायफल ४ माशे, जावित्री ५ माशे, लवग ६ माशे, तुलसीपत्र ७ माशे और अभ्रक भस्म ८ माशे लेवें। सबको मिला ३ घण्टे अदरखके रसमें खरल करके एक-एक रत्तीकी गोलियाँ बनावें।

मात्रा—आधी रत्तीसे २ रत्ती तक दिनमें ३-४ समय तीन-तीन घण्टेके अन्तरसे अदरखके रस या जलके साथ देवें।

उपयोग—इस वटीके सेवनसे २१ दिनका मुद्दती ताप (Typhoid Fever) में मधुराके दाने जल्दी निकल कर, भर तथा ढल जाते हैं। यह वटी मधुराकी सब अवस्थाओंमें उपयोगी है, विपका शमन करती है, अँतड़ीको बलवान बनाती है, और दाहको शान्त करती है। अपथ्य सेवन या औषधिमें भूल होने पर कभी दाने बाहर नहीं आते, विष भीतर फैल जानेसे विविध विकार उत्पन्न होते हैं; ऐसी परिस्थितिमें यह ओषधि जादू समान लाभ पहुँचाती है।

(२४) संचेतनी गुटिका।

बनावट—सोंठ, पीपलामूल, वायविडङ्ग, चित्रक, दालचीनी, तेजपत्र, जावित्री, शुद्ध कुचिला, शुद्ध वच्छनाग, मल्लभस्म, ताम्रभस्म, कस्तूरी, सब सम भाग मिला १२ घण्टे भाँगरेके रसमें घोटकर चने बराबर गोलियाँ बना लेवें। (धन्वन्तरि)

मात्रा—१-१ गोली आवश्यकतानुसार गरम जलके साथ दिनमें ३-४ समय ३-३ घण्टेके अन्तर पर देवे।

उपयोग—यह रसायन सन्निपातमें बेहोशी दूर करनेमें अति उपयोगी है। मरता हुआ रोगी भी एक दफा होशमें आजाता है। कफ आम और वातप्रकोपको यह वटी तत्काल दूर करती है। हृदयकी गतिको उत्तेजना देती है, और त्रिदोषको सम बनाती है।

यह रसायन अति उग्र, उष्णवीर्य, स्वेदल, विकाशी, हृदयोत्तेजक सेन्द्रिय विषनाशक और कीटाणुनाशक है। जो गुण हेमगर्भपोटली रसमें रहा है वह इस वटीमें है। वातप्रधान, कफप्रधान और वात-कफप्रधान सन्निपातकी गिरी हुई अवस्थामें यह रसायन अमृत सदृश लाभदायक है। यह रसायन मस्तिष्कगत केन्द्रको उत्तेजित कर बेहोशी को तत्काल दूर करता है। मरण मुखमें जाते हुए अनेक रोगी इस रसायनके सेवनसे बच जानेके उदाहरण मिले हैं।

सूचना—पित्तप्रधान विकारमें एव शारीरिक उत्ताप अधिक होने पर इस रसायनका उपयोग नहीं करना चाहिये, वरना मस्तिष्कमें रक्तस्रावकी वृद्धि होकर लाभके स्थानमें हानि पहुँचेगी।

(२५) लक्ष्मीविलास रस।

बनावट—अभ्रक भस्म ४ तोले, शुद्ध पारद २ तोले, शुद्ध गंधक २ तोले, कपूर, जायफल, जावित्री, विधाराके बीज, धतूरेके शुद्ध बीज, गाँजेके बीज, विदारीकन्द, शतावरी, नागबला (गुलशकरी), अतिबला (कघी), गोखरू, जलवेतके बीज, इन सबको १-१ तोला लें। पहले पारद-गन्धककी कज्जली करके अभ्रक मिलावे। फिर शेष काष्ठ आदि ओषधियोंके कपड़छान चूर्णको मिला, नागरवेलके पानके रसमें १२ घण्टे खरल करके १-१ रत्तीकी गोलियाँ बनावे। (र० यो० सा०)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें ३ समय दूध, दही, शराब, शहद या अन्य रोगानुसार अनुपानके साथ देवें।

उपयोग—यह रसायन सुखसाध्य, कृच्छ्रसाध्य, याप्य और प्रत्याख्येय, चारों प्रकारके सान्निपातोंसे उत्पन्न विकारोंको नष्ट करता है। इसमें यह नियम भी नहीं है कि, वातप्रधान या पित्त-प्रधान दोषको ही दूर करे। सब प्रकारों पर यह रसायन उपकारक है। १८ प्रकारके कुष्ठ, २० प्रकारके प्रमेह, नासूर, दुष्ट व्रण, गुदरोग, भगन्दर, रक्तमांसाश्रित कफ-वातप्रधान श्लीपद, मेदगत, धातुगत, जीर्ण अथवा वंशपरंपराप्राप्त गलशोथ, अन्त्रवृद्धि, दारुण अतिसार, सब प्रकारके आमवात, जिह्वास्तंभ, गलग्रह, उदररोग, नासिका, कर्ण, नेत्र और मुखके विकार, कास, पीनस, राजयक्ष्मा, अर्श, स्थूलता, (मेदवृद्धि), पसीनेमें दुर्गन्ध आना, कुक्षिशूल, शिरःशूल, प्रसूता स्त्रियोंके मक्कलशूल (वातजशूल) आदि सब प्रकारके रोग और पुरुषोंके ध्वजभंग आदि रोगोंको नष्ट करता है, तथा वृद्धोंको तरुणोंकी बराबरी कराता है। इस रसायनका निरन्तर सेवन करने वालोंको इन्द्रियशैथिल्य और श्वेत केश की प्राप्ति नहीं होती।

यह लक्ष्मीविलास रस आयुर्वेदीय ओषधियोंमें एक उत्कृष्ट और वीर्यवान् औषधि है। यह उत्तम (हृदयको बलवान बनानेवाली) और हृदयोत्तेजक है। इस ओषधिसे तीव्र विकारमें शान्तिपूर्वक उत्तेजना और रक्तवाहिनीकी विस्फारितता एवं जीर्णविकारमें हृद्य गुण मिलता है। हृद्य गुण के कारणसे हृदयकी संकोच-विकास क्रिया नियमित होनेसे धड़कन दूर होजाती है, और हृदयको शान्ति मिलती

है । इस ओपधिका परिणाम पुरीतती (हृदयावरण· Pericardium) वाम और सव्य पार्श्वपटल (बायीं तथा दाहिनी ओरके आच्छादित करनेवाले कपाट—valves) और हृदयके अलिंद-निलय (Auricles and Ventricles) इन विभागों पर उत्तम प्रकारका होता है ।

जिस तरह ब्राण्डी आदि ओपधियों में हृदयोत्तेजना के पश्चात् उतने ही बलपूर्वक अवसादकताकी प्राप्ति होती है; उस तरह इस रसायनजनित उत्तेजनाके अंतमें प्रतिक्रियारूप अधिक अवसादकता दृष्टिगोचर नहीं होती । यह गुण इसका विशेष माना जाता है । इस रसायनसे नाड़ी सुधरनेके पश्चात् दीर्घकालपर्यन्त वैसी ही रहती है ।

श्वसनक और श्लैष्मिक सन्निपातमें हृदयकी निर्बलता-सम्बन्धी संशय होने पर इस का उपयोग करनेसे उत्तम कार्य होता है । आगे भी आवश्यकता पर इसके सेवन से कास, श्वास, ज्वराधिक्य, फुफ्फुसदाह, नाड़ी और हृदयका वेग अधिक बढ़ना, ये सब लक्षण दूर होते हैं। फुफ्फुसशोथ कम होकर श्वासके वेग और कासका शमन होता है । यदि इस सन्निपातकी तृतीयावस्थामें कफप्रकोपसे गलेमें घर-घर आवाज़, तन्द्रा और बेहोशी आदि लक्षण उपस्थित हों, तो लक्ष्मीविलास न देकर मल्लसिंदूर, पंचसूत या समीरपन्नग देना चाहिये ।

आंत्रिक सन्निपात (मधुरा) में हृदयक्षीणता, सर्वाङ्गशूल, भ्रम, प्रलाप, बेहोशी, निस्तेजता, शुष्क कास आदि लक्षण उपस्थित हों, अथवा मुद्दत पूरी होने पर भी रोग जैसाका वैसा कायम रहे; या शुष्क कास आदि लक्षणोंकी वृद्धि हो, तो लक्ष्मीविलास रस देनेसे अन्त्रदोषघ्न और हृद्य, दोनों प्रकारके परिणाम प्रतीत होते हैं, तथा रोगी थोड़े ही दिनोंमें स्वस्थ होजाता है ।

आंत्रिक सन्निपातके द्वितीय और तृतीय सप्ताहमें क्वचित् शुष्क त्रासदायक कासका वेग अति बढ़ जाता है। साथ-साथ नाड़ी क्षीण और मंद होजाती है; अन्य लक्षणों में अन्तर नहीं होता । फिर भी कासके लिये दुर्लक्ष्य किया जाय, तो आगे हृदय और नाड़ी क्षीणतर होते जायँगे । अतः कासका प्रारम्भ होने पर ही लक्ष्मीविलास देते रहने से कासका निवारण होता है, और रोगी शनैःशनैः स्वस्थ होजाता है ।

आन्त्रिक सन्निपातमें क्वचित् भूल प्रमाद वश मुद्दत बढ़ जाती है। ऐसे समय पर रोगीकी स्थिति भयंकर करुणाजनक होजाती है। मन पर किञ्चित् विरोधी विचार आनेके साथ मन अस्वस्थ होजाता है,

ज्वरविष से लड़ाई करते-करते जीवनीय शक्ति क्षीण होजाती है, इस हेतुसे मस्तिष्क विविधि पीड़ाओसे त्रस्त होजाता है। देह पर अस्थिचर्म शेष रहते है। हृदय अति दुर्बल, क्षीण और मद होजाता है। इस अवस्थामें लक्ष्मीविलास रसने अनेकोको जीवनदान दिया है। इस आन्त्रिक सन्निपातके अन्तमें हृदयक्षीणता, नाड़ीमांद्य, निस्तेज मुखमण्डल, भ्रम, मन्द-मन्द मनोमय प्रलाप आदि लक्षण होने पर लक्ष्मीविलास उत्तम कार्य करता है।

वातश्लेष्म ज्वर (Influenza) में इस औषधका उत्तम उपयोग हुआ है। बिल्कुल प्रथमावस्थामें इस रसायनकी अपेक्षा गुडूच्यादि क्वाथ (चि० त० प्रदीप, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ४७४) के साथ त्रिभुवनकीर्ति अधिक हितकारक है। परन्तु कास, श्वास, नाड़ीमान्द्य और हृदयविकृति आदि लक्षण होने पर यही रस उत्तम उपयोगी है।

भयंकर शीत लगने, जलाशयमें डूबने या अन्य शीतोपचार करने या अन्य कारणसे नाड़ीक्षीणता अथवा वातकफप्रधान ज्वरमें प्रबल अंगमर्द, सर्वाङ्गमें शूल सदृश वेदना, इन लक्षणोके साथ हाथ-पैरोमें ऐंठन, हाथ-पैर मुड़ जाना, हाथकी अँगुलियोंमें शून्यता आना, मुख या अन्य स्थानके स्नायु बिल्कुल टेढ़े होजाने, विलक्षण स्फुरण और नाड़ीक्षीणता हो, तो लक्ष्मीविलास देना चाहिये। इन लक्षणोके साथ हृदयाधरिक प्रदेशमें शूल हो तो भी यह उत्तम लाभदायक है।

हृदयका अनियमित स्पंदन या अधिक स्पंदन होनेपर घबराहट और व्याकुलता होते है। घबराहटका अन्य कारण न हो और साथ साथ किञ्चित् हृदयशूल हो, तो लक्ष्मीविलास रस देना चाहिये।

घबराहटके हेतुसे चेतनाशक्ति भीतर खिंचती हो, श्वासावरोधसा भासता हो, साथ-साथ हाथ-पैर शीतल, नाड़ी मंद और क्षीण, सर्वाङ्गमें विशेषतः कपालपर प्रस्वेद आदि लक्षण हो, तो लक्ष्मीविलास रस अप्रतिम लाभ पहुँचाता है। इस घबराहट आदि लक्षणोके साथ शुष्क त्रासदायक कास, बार-बार कास चलना, यत्किञ्चित् श्रमसे खाँसी बढ़ जाना आदि लक्षण हो, तथा इनका हेतु हृदयावरण और हृदयमें विकृति हो, तो लक्ष्मीविलास अवश्य देना चाहिये।

इस तरहकी बार-बार घबराहट और व्याकुलता बनी रहनेके अतिरिक्त हेतुओसे हृदय और नाड़ी क्षीण होकर रक्ताभिसरण क्रिया मंद हुई हो, फिर उसी हेतुसे सर्वाङ्गमें शीतलता और देहका वर्ण बदल गया हो, एक प्रकारका श्याम भस्म सदृश रंग होगया हो, तो

उस विकार पर लक्ष्मीविलास रसका उपयोग करना चाहिये ।

उक्त लक्षणोंके साथ या उक्त लक्षण न होनेपर हृदयकी अशक्ति के हेतुसे प्रारम्भ में बार-बार चक्कर आना, फिर भ्रान्ति, तन्द्रा, बेहोशी आदि लक्षण हो, तो भी लक्ष्मीविलास रस देना चाहिये । इन लक्षणोंके साथ क्वचित् छिन्नश्वास होता है । श्वासकी नियमितता नष्ट होकर पहले जोर-जोरसे लम्बा-लम्बा दीर्घश्वास आना, फिर दीर्घ न होकर ऊपर-ऊपरसे श्वास चलना, २-२ या ४-४ श्वासके बाद, ४-६ या ८ सैकण्डके लिये श्वास टूटना, इस अवस्थाकी प्राप्ति होनेपर छिन्न-श्वास कहलाता है । वह बिल्कुल असाध्य है; तथापि अति बढ़ा न हो; प्रथमावस्थामें हो, तो लक्ष्मीविलास रस दिया जाता है ।

कासके अनेक प्रकार हैं । इनमें शुष्क त्रासदायक कास, साथ-साथ अति घबराहट, थोड़ासा परिश्रम किया, किञ्चित् चलनेका काम पड़ा, कुछ बोझा उठाया या अन्य हेतुसे परिश्रम हुआ, तो तुरन्त शुष्क-कास चलने लगती है; श्वास भर जाता है, हृदयके स्पन्दन बढ़ जाते है; इन लक्षणोंके साथ क्वचित् थोड़ी सूजन होती है, सूजन विशेषतः हाथ-पैरपर होती है । सूजनमें एक विशेष प्रकार यह है कि, शोथपर दबान पर वहाँ खड्डा होता है । इस तरहके कासविकारमें लक्ष्मीविलास रस अति उत्तम कार्य करता है ।

इन्फ्लुएन्जाके तीव्र वेगका शमन होनेपर दिनो तक शुष्ककास रह जाती है । इस कासमें कफ अति कम गिरता है । इसमें यदि घबराहट लक्षण हो, तो लक्ष्मीविलास रस देना चाहिये ।

जीर्ण । हृद्रोगके विकारमें हृदावरण, हृत्स्नायु, अन्तःपटल (दोनो कपाट) या हृदयकी नाडियोकी विकृति—विशेषतः कफप्रधान विकृतिसे अवयव-समूह मन्द कार्यकारी होकर सर्वाङ्गमें शोथ, थोड़ेसे श्रमसे घबराहट, हृदयक्रिया और स्पन्दन मन्द और अनियमित होना, इस व्याधिके परिणाममें यकृत्, प्लीहा और वृक्कस्थानोको हानि पहुँचना आदि लक्षण होते है । इस पर लक्ष्मीविलास दिया जाता है ।

कुष्ठ आदि चिरकारी रोगकी वृद्धि हृदय या रक्ताभिसरण क्रिया की विकृतिसे होती हो, तो लक्ष्मीविलास का उपयोग करना चाहिये ।

प्रमेहके २० प्रकार आयुर्वेद शास्त्रमें कहे है । ये सब और मधुमेह एक नहीं हैं । प्रमेह के अनेक कारण हैं । इनमें मुख्य 'कफ क्च सर्वम्' इस प्रधान कारणसे उत्पन्न प्रमेह हो, रोगकी तीव्रताके पश्चात् सर्वाङ्गमें शैथिल्य, अशक्ति, हृदयकी मन्दता, बिल्कुल श्रम न

होना, अधिक बोलनेकी शक्ति भी न होना, मूत्रका परिमाण अधिक, मूत्र अधिक वार होना, मूत्रवेगके पश्चात् अशक्ति या शक्तिपात-सा भासना, आदि लक्षण उपस्थित हो, तो लक्ष्मीविलास देना चाहिये।

नाड़ीव्रण, दुष्टव्रण और भगन्दर, ये रोग दीर्घकालस्थायी होते हैं। इनका कारण शारीरिक घटक (Tissue) और इनके चित्परमाणुओंकी निर्बलता है। जिनके घटक बलवान् और निर्दोष हो, उनके व्रणका सत्वर रोपण होजाता है, जख्म होनेपर बहुधा नही पकते और थोड़े ही समयमें भर जाते है। निर्बल घटक और शक्तिहीन चित्परमाणु वालोंके जख्म जल्दी नही भरते और व्रण अधिकाधिक भीतर प्रवेश करता जाता है। इन घटक और चित्परमाणुओंकी निर्बलतामें भी अनेक हेतु है। इनमें रक्त, रक्ताभिसरण और हृदयकी अशक्ति कारण हो, तो व्रणरोपण ओपधिके साथ लक्ष्मीविलासका सेवन करानेसे व्रणरोपण कार्य उत्तम प्रकारसे होता है।

श्लीपद विकारमें गन्धक रसायन, गुग्गुल कल्प और लक्ष्मी-विलास उत्तम ओषधियाँ है। इनमें लक्ष्मीविलास का कार्य व्यापक है। इसके उपयोगमें हृदय और रुधिराभिसरणकी अशक्ति है या नहीं, इस वात पर लक्ष्य देना चाहिये। गन्धक रसायन त्वग्गत विकार पर और लक्ष्मीविलास रुधिराभिसरण और तदंगभूत विकार पर प्रयोजित होता है। (गुग्गुलु आमविष नाशके लिये प्रयुक्त होता है)।

अग्निमान्द्य, मुख, जिह्वा, तालु, ये सव चिपचिपे रहते हों, उदर में जड़ता, अन्नपर अनिच्छा, जड़ भोजनकी इच्छा न होना, निस्ते-जता, पचनेन्द्रियको यथोचित् रक्तकी पूर्ति न होना आदि लक्षण होने पर लक्ष्मीविलास रस देना चाहिये। वातकफ ज्वरके पश्चात् उपद्रव रूप से अग्निमान्द्य होने पर भी लक्ष्मीविलास दिया जाता है। किन्तु मुँह में जल आता रहता हो, तो अग्निकुमार रस देना चाहिये।

अग्निमान्द्य के पश्चात् अतिसार या विना अग्निमान्द्य अन्य हेतु से उत्पन्न अतिसार में लक्ष्मीविलास दिया जाता है। अतिसार में बड़े-बड़े पतले जलसदृश दस्त होने, प्रत्येक जुलाव के साथ शक्तिपात, ऐंठन या हाथ-पैर टूटना, सर्वाङ्ग में शीतलता, प्रस्वेद आना और नाड़ीमान्द्य आदि लक्षण होने पर लक्ष्मीविलास रस अति उत्तम ओषधि है।

विसूचिकामें नाड़ीमान्द्य, शीतलता और प्रस्वेद लक्षण होनेपर लक्ष्मीविलास रस लाभदायक है।

उदरोग, सर्वाङ्गमें शोथ और जलोदर में हृदावरण, हृदय या हृदय के कपाट की विकृति हेतु हो, तो जीर्णावस्थामें लक्ष्मीविलास उपयोगी होता है। हृदय के विकार के साथ या इसके पश्चात् यकृद्-वृद्धि, सर्वाङ्गमें शोथ, फिर इन रोगों की जीर्णावस्थामें जलोदर की प्राप्ति आदि लक्षण होने पर लक्ष्मीविलास रस मूत्रल ओषधि—पुनर्नवा, गोखरू और अनन्तमूल वा शिलाजीत—के साथ देना चाहिये। यदि इन लक्षणों के साथ घबराहट, अति प्रस्वेद, थोड़े श्रम में श्वास भर जाना, उदरमें आफरा, चेतनाशक्ति भीतर खिचना, हृदयस्पंदन की वृद्धि, सर्वाङ्ग पर विशेषतः हाथ पैरो पर सूजन, मस्तिष्क में भारीपन, चक्कर आना, शिरदर्द आदि उपलक्षण हो, तो भी लक्ष्मीविलास हितकर है।

स्थौल्य, मेदोवृद्धि विकार की उत्पत्ति में विशेषतः व्यायामका अभाव और उपचयकारक आहार का अधिक सेवन, ये दो कारण होते हैं। इनमें कुछ अपवाद भी मिलते हैं। इनके अतिरिक्त रक्तवाहिनियो और अण्डकोषकी विकृतिसे भी मेदोवृद्धि होजाती है। इस मेदोवृद्धिका परिणाम हृदय पर होता है। हृदय पर मेद बढ़ने लगता है। हृदय के चारो ओर मेद संचय होता है या हृदयके घटकोमें मेदके घटक सम्मिलित होकर रहते है। इस प्रकारमें श्वास भर जाना, सर्वाङ्ग में प्रस्वेद आते रहना, किसी भी कार्य करने की अनिच्छा, व्यायाम तो बिल्कुल सहन न होना, थोड़ासा श्रम होने पर भी दम भर जाना, वह इतना कि छाती वायुसे भरकर फूली हुई-सी भासना. श्वास नासिका से पूरा न ले सकनेके हेतुसे मुख द्वारा जोर-जोरसे लेना आदि लक्षण होनेपर लक्ष्मीविलास रस उपयोगी होता है। ये सब लक्षण मेदसे मार्ग आवृत्त होने पर होते हैं। इस विकारमें मेदके आगेकी धातुएँ यथोचित नही बनतीं। इस हेतुसे शरीर फूला हुआ-सा होजाता है, इसमेंसे दुर्गन्ध निकलती रहती है, यह दुर्गन्ध कुक्षि, कटिसन्धि आदि स्थानोमें प्रस्वेद आकर फिर सड़कर उत्पन्न होती है। इस विकार में लक्ष्मीविलास लाभदायक है।

कुक्षिशूल, कक्षाशूल और पार्श्वशूलकी उत्पत्ति बहुधा फुप्फुसावरण की विकृतिसे होती है। विकार आशुकारी होनेपर तीव्रशूल और चिरकारी होने पर मंद शूल निकलता है। इस विकार की उत्पत्ति शीतलता या शीतल वायुके असह्य आघातसे हुई हो, तथा कुक्षि, कक्षा और पार्श्वमें तीव्रशूल हो, किसी एक स्थानमें सुई चुभाने सदृश वेदना, किसी भी स्थितिमें चैन न पड़ना, बराबर दबाकर बैठना, गरम जल

आदिसे सेक करने पर वेदना कुछ कम होना, शूलके साथ-साथ समग्र छाती या सर्वाङ्गमें प्रसार होना या आक्षेप होना आदि लक्षण होने पर लक्ष्मीविलास रस देना चाहिये।

वातज शिरःशूलमें खूब जोरसे सुई चुभाने सदृश वेदना होकर पुनः कुछ काल के लिये कम होजाना अर्थात् आक्षेप सदृश बार-बार शूल चलता हो, तो महा वात-विध्वंसन रस देना चाहिये। परन्तु समान शूल चलता रहे, एवं गला, कपाल, भ्रू तथा पीठकी ओर दर्द फैले, ऐंठन सदृश दर्द, सेकने पर अच्छा लगे, शीतल वायुसे वेदना बढ़े आदि लक्षण हों, तो लक्ष्मीविलासका उत्कृष्ट उपयोग होता है।

प्रसवके पश्चात् उत्पन्न उदरशूल को व्यवहारमें मक्कलशूल कहते हैं। इस पर महायोगराजगूगल, महा वात-विध्वसन, प्रताप-लंकेश्वर और लक्ष्मीविलास रस उपयोगी औषध हैं। ऐंठन सदृश वेदना और हृदयशूल या हृदयकी अशक्ति हों, तो लक्ष्मीविलास रस देना चाहिये। (आमवृद्धिमें महायोगराजगूगल, स्थान-स्थान पर शूल मेंमहा वात विध्वंसन और गर्भाशयमें संगृहीत दोपपर प्रतापलंकेश्वर)।

यह लक्ष्मीविलास रस वृष्य है, अतः यह अण्डकोषकी ओर रक्तका दबाव यथोचित न होनेसे उत्पन्न सामान्य नपुंसकताको दूर करता है। (इस तरह अधिक शारीरिक निर्बलतासे उत्पन्न नपुंसकता को भी दूर करता है।)

इस रसायनका उपयोग विशेषतः वात और वातकफ दोष, वायु के लघुत्व, शीतलत्व, चलत्व ये गुण, रस, रक्त और मांस, ये दूष्य, हृदावरण, धमनियाँ, शिराएं, फुफ्फुस और फुफ्फुसावरण ये स्थान, इन सब पर होता है। (औ० गु० ध० शा० के आधार से)

मधुराकी अन्तिम अवस्थामें जब नाड़ी छूटने लगती है, ऐसी आसन्न मृत्युवाली अवस्थामें छिन्न श्वास उपस्थित होता है। उस अवस्थामें डाक्टरी चिकित्सामें प्राणवायु (ऑक्सिजन) फुफ्फुसोंमें भरते है। किन्तु हृदय क्षीण होनेसे उसका उपयोग नहीं होता। कारण ऑक्सिजन को ले जाने वाले रक्त कण अति शिथिल मृत-सी स्थितिमें होने से वे ऑक्सिजन को योग्य स्थान पर नहीं पहुँचा सकते। उस स्थिति में हृदय से संलग्न रक्तवाहनियोका विकास कर हृदयको रक्त और वायु की पूर्ति करनी चाहिये। यह कार्य इस लक्ष्मीविलास रससे उत्तम प्रकार से होने के उदाहरण मिले है।

न्युमोनिया और अन्य कितनेक सन्निपातोंमें कितनेक समय

अकस्मात् नाड़ी क्षीण होकर प्रस्वेद आन लग जाता है और शारीरिक उष्मा बहुत कम हो जाती है। ये लक्षण अनेक वार प्राणघातक होता है। ज्वर का जल्दी उतरना, सर्वाङ्ग का अति प्रस्वेद आकर शीतल हो जाना, नाड़ी अति मंद होना, अति घबराहट आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस तरह के लक्षण के प्रारम्भ होने पर लक्ष्मीविलास, शृंग-भस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म तीनो १-१ रत्ती को आमके मुरब्बा ६ माशेके साथ मिलाकर ऊपर ऊपर देते रहे और अर्जुनारिष्ट थोड़ा-थोड़ा पिलाते रहे तो कुछ भी बाधा न होते हुए रोगी सुधर जाता है।

सूचना—इस रसायनसे कचित् किसीको नाडी वेग अति बढ जाता है। ऐसा होने पर सुवर्णमाक्षिक भस्मका सेवन कराना चाहिये।

(२६) ब्राह्मी वटी।

बनावट—ब्राह्मी (जल नीम) ५ तोले, रससिंदूर २ तोले; अभ्रक भस्म, वंग भस्म, शुद्ध शिलाजीत, कालीमिर्च, पीपल और बायविडङ्ग, प्रत्येक १-१ तोला लेवें। सबको मिला ब्राह्मीके क्वाथमें ३ दिन खरल करके चने समान गोलियाँ बनावें। ब्राह्मी २॥ तोले और जल २० तोले लेकर क्वाथ करें। १० तोले जल शेष रहने पर उतार छानकर उपयोगमें लेवें।

मात्रा—१ से २ गोली दिन में २ समय दूध के साथ देवें।

उपयोग—यह वटी ज्वरके पीछेकी निर्बलता, जीर्णज्वर, मस्तिष्क की कमजोरी, हृदयकी निर्बलता, स्मरणशक्तिका अभाव, धातुस्राव आदि विकारोंको मिटाती है। ज्वरको उतारनेमें उपयोगी है। मोतीझरेके विशेष बेचैनी, प्रलाप, अतिसार, उदरशूल आदि लक्षणोंमें यह वटी हितावह है। वातप्रधान और कफप्रधान सन्निपातमें हृदय और मस्तिष्क का रक्षण करती है, तथा दोषके पचनमें सहायता पहुँचाती है।

(२७) मल्ल पुष्प।

बनावट—सोमल १० तोलेको नीबूके रसमें १ दिन घोटें। फिर लाल फिटकरी १० तोले मिला, खरल कर मिट्टी की छोटी हाँडीमें भर, ऊपर दूसरी हाँडी उलटी रखकर डमरूयन्त्र बना लेवे। सन्धिको अच्छी रीतिसे बन्द करें। फिर चूल्हे पर चढाकर ६ घण्टे तक मन्दाग्नि दे। बार-बार ऊपरकी हाँडी पर गीला कपड़ा बदलते रहे। स्वांग शीतल होने पर सावधानीसे खोलकर ऊपरकी हाँडीमें से फूल निकाल लेवे। नीचेसे फिटकरीका फूला मिले, उसका उपयोग वटी प्रकरणमें लिखे

अनुसार ज्वरारि वटी बनानेमें करे। (र० सा०)

मात्रा—१ चावल भर सोठके घासेके साथ, बताशेमें, अथवा रोगानुसार अनुपानके साथ देवें।

उपयोग—मल्लपुष्प श्वास, कास, जीर्णज्वर, कुष्ठ, त्रिदोष, रक्तविकार, निमोनिया, उपदंश, सन्धिवात आदि रोगोका नाश करता है। सन्निपातमें भयंकर कफवृद्धि होकर गलेमें कफ भर जाता है, वह इस मल्लपुष्पके देनेसे सत्वर दूर होजाता है।

सूचना—यह रसायन पित्तप्रकृतिवालेको और १०२ डिग्रीसे अधिक ताप हो, तब नहीं देना चाहिये। इस औषधिके साथ घी-दूधका सेवन ज्यादा रखना चाहिये, और अपथ्यसे दृढतापूर्वक बचना चाहिये।

(२८) मलेरिया वटी।○

प्रथम विधि—गोदन्ती भस्म, शुद्ध हरताल, गिलोय सत्व, वंशलोचन और छोटी इलायची, सबको समभाग मिला सहदेवीके रसमें १२ घण्टे खरल कर ज्वारके दानेके बराबर गोलियाँ बनावें। (धन्वन्तरि)

मात्रा—पालीके तापमें १ गोली ज्वर आनेके ४ घण्टे पहले और २ गोली दो घण्टे पहले शक्करके साथ दें। अन्य तापोमें दिनमें २ बार दूधके साथ दें।

उपयोग—यह वटी सब प्रकारके विषमज्वर (मलेरिया)—संतत सतत, एकांतरा, तिजारी—आदि और अन्य ज्वरोको दूर करती है।

कभी-कभी चातुर्थिक ज्वर छूटजाने पर चौथे-चौथे दिन हिस्टीरिया मिश्रित अपस्मार (Hystero epilepsy) उपस्थित होते है। रोग तीव्रावस्था में न हो, तब जड़ता, प्रलाप, फिर मूर्च्छा, मुँह में से झाग निकलना, फिर दाँत भिचना लक्षण होते हैं। शौच शुद्धि नहीं होती। उदरमें वेदना होती है। उस पर यह मलेरिया वटी अमृतारिष्टके साथ सुबह को और रात्रि को अश्वकंचुकी रस देने से रोग शमन हो जाता है।

दूसरी विधि—क्विनाइन बाइ हाइड्रोक्लोराइड ७। माशे, गिलोय सत्व २ तोले, वंशलोचन १ तोला, छोटी इलायचीके दाने ६ माशे और केशर १ माशा मिलाकर खरल करे। पश्चात् नीम गिलोय २ तोले, धनिया १ तोला, लाल चन्दन, पद्माख और नीमकी कोमल पत्ती ६-६ माशे मिलाकर क्वाथ करे। इस क्वाथमें औषधिको खरल करके १-१ रत्तीकी गोलियाँ बनावें। (श्री डा० रामरक्षपालजी शुक्ल)

मात्रा—२ से ४ गोली दिनमें ३ समय दूध या जलके साथ। जिनको क्विनाइन सहन न होता हो; उनको दूध पिलाकर देवें; और ऐसे रोगियोंको जीर्ण ज्वर और मन्द ज्वरमें भोजनके बाद देवें।

उपयोग—यह वटी सब प्रकारके विषम ज्वर, जिसमें दाह और ठंडी दोनों रहती हों; ऐसे एकाहिक, द्व्याहिक, तृतीयक, चातुर्थिक आदि सब ज्वरोंका नाश करती है; प्लीहावृद्धिको कम करती है; और शरीरमें शान्ति लाती है।

(२९) मल्लादि वटी।

बनावट—सफेद संखिया १ तोला, शुद्ध हिंगुल १ तोला और छोटी पीपल २॥ तोले लेकर सबका बारीक चूर्ण करें। फिर अदरखके रसमें ६ घण्टे घोटकर मूंगके बराबर गोलियाँ बना लेवें।

मात्रा—एक-एक गोली दिनमें २ समय अदरखके रस और शहद या नागरबेलके पानके रस और शहदसे देवें।

उपयोग—इस ओषधिके सेवनसे शीतज्वर, एकांतरा, चातुर्थिक (तिजारी) आदि विषमज्वर, सन्निपात और जीर्णज्वर दूर होते हैं। उदरकी शुद्धि करके प्रयोग करने पर हिस्टीरियामें भी इस वटीसे बहुत लाभ पहुँचता है।

सूचना—ताप न हो तब दूध पीकर गोली लेनी चाहिए।

दूसरी विधि—शुद्ध सोमल और शुद्ध हरतालको सम भाग मिलाकर करेलेके रसमें ३ दिन खरल करके छोटे मूँग समान अर्थात् ¾ रत्ती परिमाणकी गोलियाँ बनावें। (र० यो० सा०)

यद्यपि मूल श्लोकमें करेलेके रसकी भावना लिखी है; परन्तु उसकी जगह ककोड़ेका रस लिया जाय, तो अधिक काम करता है, ऐसा रसरोगसागरकारका अनुभव है।

मात्रा—१ गोली ज्वर आनेके २ या ३ घण्टे पहले तुलसीके पत्ते और कालीमिर्चके साथ या गोली, भाँग १ रत्ती और छोटी कटेली का चूर्ण १॥ माशे और धतूरेका पत्ता २ इंच जितना गोल मिला, कत्थाचूना लगे नागरबेलके पानमें डालकर खिला देवें। २-३ घण्टे तक जल नहीं पिलाना चाहिये। पुराने बिगड़े हुए जुकाममें मल शुद्ध करनेके पश्चात् दूधके साथ, कफवृद्धिमें मिश्रीके साथ, और आमवृद्धिमें अदरखके रसके साथ देवें।

उपयोग—यह वटी शीत लगकर आनेवाले सब प्रकारके विषम ज्वर, एकाहिक, तृतीयक, चातुर्थिक आदिको एक ही दिनमें रोक देती

है। जीर्ण प्रतिश्याय, कफवृद्धि, कफवृद्धिसे होनेवाली अरुचि, मन्दाग्नि, मन्द-मन्द ज्वर, श्वास, कास और आमवृद्धिको दूर करती है।

सूचना—पित्तप्रधान प्रकृति वालेको और नये जुकामके रोगीको यह औषधि नहीं देनी चाहिये।

(३०) भूतभैरव रस।

बनावट—शुद्ध हरताल ६ तोले, शुक्ति भस्म ६ तोले और शुद्ध नीलाथोथा २ तोले मिला, घीकुँवारके रसमें ३ दिन खरल करके टिकिया बनावें। सूखने पर मजबूत सराव-संपुट कर २॥ सेर आरने कण्डो की अग्नि देवें। स्वांग शीतल होने पर निकाल पीसकर बारीक चूर्ण करे। (र० च०)

मात्रा—१ रत्ती चूर्णको ३ माशे चीनीके बीचमें रखकर ताप आनेके पहले २ बार ३ घण्टे पहलेसे हर घण्टे खा लेवे। तापका समय चला जाने पर दही-भात खानेको देवे।

उपयोग—इस रसायनसे सब प्रकारके विषमज्वर, ठण्ड लगकर आनेवाले ताप, एकांतरा, तिजारी आदि एक दिनमें ही दूर हो जाते हैं। इस औषधसे कदाच किसीको वमन होजाय तो भय न माने।

(३१) चन्दनादि लोह।

बनावट—रक्तचन्दन, नेत्रवाला, पाठा, खस, पीपल, हरड़, सोंठ, कमलकन्द, आँवला, त्रिमद (नागरमोथा, चित्रकमूल और बायविडङ्ग), ये १२ औषधियें १-१ तोला और लोह भस्म १२ तोले मिलाकर खरल करें। (रसे० सा० स०)

मात्रा—२ से ४ रत्ती शहदके साथ दिनमें २ समय लेकर ऊपर तुलसी, कालीमिर्च और नागरमोथाका क्वाथ पीवें।

उपयोग—यह रसायन सब प्रकारके विषम ज्वर और जीर्ण-ज्वरको दूर करता है। जो ज्वर थोड़े दिन आता है, थोड़े दिन नहीं आता, ऐसे दीर्घकाल तक बार-बार आनेवाले ज्वरोंमें यह चूर्ण अच्छा लाभ पहुँचाता है। एवं इसके सेवन से नेत्रजलन, प्लीहावृद्धि, यकृद्-विकार, मन्दाग्नि, पाण्डुता, शिरदर्द, दाह, कृमि आदि दोष दूर होकर शरीर स्वस्थ और बलवान बनता है। यदि रक्त, रक्ताभिसरण और हृदयकी निर्बलताके हेतु से जीर्णज्वर बना रहता हो, तो इसके सेवनसे सत्वर लाभ पहुँचता है।

(३२) सुवर्णमालिनी वसंत।

बनावट—सुवर्णभस्म १ तोला, मोतीपिष्टी २ तोले, शुद्ध हिंगुल ३ तोले, सफेद मिर्च ४ तोले और शुद्ध खर्पर ८ तोले लेवें। पहले सोने के भस्म या वर्क और हिंगुलको मिलावे, बादमें अन्य वस्तु मिला, गाय के कच्चे दूधमें से निकाला हुआ मक्खन ४॥ तोले मिलाकर ३ घण्टे घुटाई करें। फिर नीबूका रस डालकर चिकनापन दूर होवे तब तक खरल करें। लगभग ७-८ दिन घुटाई करनी पड़ेगी। फिर १-१ रत्ती की गोलियाँ अथवा १-१ माशेकी टिकिया बना लेवें। (भै० र०)

सुवर्ण भस्मके अभावमें कुन्दन अथवा सुवर्णके वर्क लें। मोती-पिष्टीके अभावमें मोतीकी सीपकी भस्म लें। खर्परके अभावमें जस्ता भस्म लेवें। सिंगरफको शुद्ध करके उपयोगमें लें; अथवा द्विगुण गन्धकजारित रससिंदूर मिलावें। अनेक वैद्य मक्खन ४ तोले मिलाकर ४० दिन तक नीबूके रसमें खरल करते हैं। परन्तु इसमें नीबूका खट्टा-पन अधिक बढ़ जाता है। (यो० र०)

मात्रा—१ रत्तीसे २ रत्ती तक दिन में २ बार पीपलके चूर्ण और शहद अथवा सत गिलोय, पीपल और शहद (या च्यवन-प्राशावलेह) के साथ देवें।

क्षयकी प्रथमावस्था और जीर्ण ज्वरपर सुवर्ण वसत, अभ्रक भस्म, शृंगभस्म और सितोपलादि चूर्ण मिला या शहदके साथ दिनमें ३ बार देते रहें।

उपयोग—यह रसायन क्षय, जीर्ण ज्वर, धातुगत विषमज्वर, प्लीहावृद्धि, यकृद्विकार, मन्दाग्नि, स्त्रियोंके प्रदररोग, मगजकी निर्बलता, खाँसी, धातुक्षीणता, हृद्रोग, मस्तकशूल आदिमें हितकर है। पुराने रोगोंमें शान्तिपूर्वक सेवन करनेसे निश्चित लाभ होता है। किसी रोग से अथवा व्यायाम, परिश्रम या वृद्धावस्थाके हेतुसे आई हुई निर्बलता इस वसन्तके सेवनसे निश्चयपूर्वक दूर होती है।

यह रसायन रसवाहिनियाँ, रसोत्पादक पिण्ड, यकृत्, प्लीहा आदिकी विकृतिमें उत्कृष्ट है। यकृत् और प्लीहाके दोष (वृद्धि अथवा शिथिलता) को दूर करके पचनक्रियाको नियमित बनाती है। यही इस औषधिका मुख्य कार्य है; इस हेतुसे थोड़े समयमें शरीर सशक्त हो जाता है। अनुपान-भेदसे अनेक रोगोंमें यह लाभ पहुँचाती है।

बालक, वृद्ध, सगर्भा स्त्री, सबके लिये हितकर है। सब ऋतुमें, सब देशमें और सब प्रकारकी प्रकृतिवालोंके लिये निर्भयतापूर्वक इस

वसन्तमालिनीको प्रयोगमें ला सकते है। तरुण स्त्रियोंके मासिक धर्ममें रक्त अधिक जाना और रक्तप्रदर या श्वेतप्रदरके पश्चात् होनेवाली पाण्डुतामें यह सुवर्णमालिनी अत्यन्त उत्तम ओषधि है।

सुवर्णमालिनीमें रसायन, वल्य, क्षयघ्न, कीटाणुनाशक और रक्तप्रसादन गुण हैं। वातवह मण्डल, सहस्रार, नाड़ीचक्र आदिसे लेकर शरीरके सूक्ष्मातिसूक्ष्म अवयवसमूह पर्यन्त सबको बल देना, यह महत्त्वका गुण इस रसायनमें है। इसका उपयोग आभ्यन्तरिक अवयवोंकी निर्बलतासे उत्पन्न सब रोगों पर किया जाता है। इसी हेतुसे मूल ग्रन्थकारने इसके गुणमें केवल "सर्वरोगे वसन्त" इतना ही कहा है।

कुचिला आदिसे क्षणिक उत्तेजना आती है, इससे भी बलकी प्राप्ति हुई कहा जाता है। परन्तु विचार करने पर बल और उत्तेजना में महदन्तर है। कुचिलासे वातवाहिनियोंका स्पन्दन बढ़कर उत्तेजना आती है, वह क्षणिक है, धातुसाम्यपूर्वक नहीं। सुवर्णमालिनी वसन्त से जो बल मिलता है, वह स्थिर है; धातुसाम्य रखकर मिलता है। सब अवयवसमूहोंको उसके अनुरूप घटकद्रव्य प्राप्त होकर बलकी प्राप्ति होती है। यह नियम है कि, आहार परिणामज द्रव्य उस उस स्थानके धात्वाग्निके योगसे पचन होकर उस धातुमें आत्मसात् होनेपर यह कार्य होता है। पूर्व धातुओंमेंसे परधातु बनती है। उसमें पूर्वधातु परधातुके लिये आहार रूप है। इसी हेतुसे पूर्वधातुमेंसे रूपांतर होकर परधातुकी प्राप्ति होती है। इस तरह धातुओंका पोषण होता है। धातुपोषण व्यवस्थित होने पर बलाधान होता है। सुवर्णमालिनी के। योगसे, रससे शुक्र और ओज तक सब धातुओंका पोषण, सबके भीतर रहे हुए धात्वाग्नि सम्यक् प्रकारके कार्यक्षम बनने पर होता है। धातु परिपोषण क्रम सबल और व्यवस्थित होने पर वात आदि त्रिधातुओंको भी बलकी प्राप्ति होती है। इसका भी पोषण तो होना ही चाहिये। त्रिधातुके साम्य पर शारीरिक घटक और मण्डलके बलका आधार है। त्रिधातु बलवान और सम होने पर ही सब रस, रक्त आदि दूष्य और वातवहमण्डल आदि बलवान रह सकते हैं। इस तरह इस रसायनका परिणाम वातवहमण्डल पर शक्तिदायक होता है।

रोगी किसी बड़े त्रासदायक रोगमेंसे उठा, ऐसा कहनेमें तात्पर्य यह है कि, रोगके त्रासदायक लक्षण सब दूर हुए हैं, या कम हुए हैं।

किन्तु रोगके साथ लड़ते-लड़ते शरीरकी सभी धातु क्षीण होजाती है; बल भी क्षीण हो जाता है। अग्निमान्द्य होनेपर अन्नका अच्छा पचन नहीं होता। ऐसी परिस्थितिमें सुवर्णमालिनी वसंत देनेका वृद्ध वैद्योंका बर्ताव है। इस तरह "सर्वरोगे वसन्तः" वचन सार्थक होता है।

वसंतमालतीसे पाचक रसकी उत्पत्ति और क्रिया उत्तम प्रकारसे होती है, धातुके अंतर्गत अग्निको भी बलकी प्राप्ति होती है। इसी हेतुसे अन्न पचनयोग्य होता है। फिर रस, रक्त आदि धातु सम्यक् प्रकारसे बनती है, आगे-आगे की धातु सबल होती जाती है, ओजकी वृद्धि होती है, तेज बढ़ता है, और देहका वर्ण भी सुधर जाता है।

क्षयमें—विशेषतः कीटाणुजन्य राजयक्ष्माकी प्रथमावस्थामें शरीर बल बढ़ानेका और प्रतिकारक्षमता बढ़ानेका महत्वका कार्य इस सुवर्णमालिनीसे होता है। प्रतिकारक्षमता बढ़ने पर क्षयके कीटाणुओं का नाश होता है। यह कार्य सुवर्णमालिनीमें रहे हुए सुवर्ण और मुक्ताके योगसे होता है।

कफक्षयकी प्रथमावस्थामें शुष्ककास, सूक्ष्मज्वर, विशेषतः सायं-कालको शारीरिक उत्ताप बढ़ जाना, दिन-प्रति-दिन निर्बलताकी वृद्धि होना और प्रातःकालके समय प्रस्वेद आना आदि लक्षण होने पर सुवर्णमालिनी वसंत देना चाहिये। इस अवस्थामें इस रसायनका उत्तम उपयोग होनेके अनेक उदाहरण मिले है। (प्रवालपिष्टी और सितोपलादि चूर्ण साथमें मिला देनेसे सत्वर लाभ पहुँचता है।)

कफक्षयकी द्वितीयावस्थामें सुवर्णमालिनी वसंतकी अपेक्षा सुवर्ण भस्म, पूर्णचन्द्रोदय रस आदि मिश्रणका अधिक उपयोग होता है।

गण्डमाला या अन्य किसी स्थानमें—कक्षा, उदर, जंघाके भीतर ग्रन्थि उत्पन्न होकर उसमेंसे रसस्राव होना, सूक्ष्मज्वर रहना, आगे ज्वर बढ़ते जाना, त्रासदायक शुष्ककास, सर्वाङ्गमें शुष्कता, बाह्य त्वचा बिल्कुल रूक्ष होजाना, अशक्ति, मांसक्षीणता, हाथ-पैर लकड़ी सदृश बन जाना आदि लक्षण होते हैं। इस अवस्थामें सुवर्णमालिनी वसंत अति उपयोगी है। यदि उपर्युक्त लक्षणोंके साथ मनुष्य मोटा और पुष्ट हो, तो जसद भस्म देनी चाहिये।

जीर्ण ज्वरमें प्लीहावृद्धि और अग्निमान्द्य आदि विशेष लक्षण होते है। इसमें क्षयका कोई सम्बन्ध नहीं होता। अनेक दिनो तक शीतपूर्वक ज्वर एवं आन्त्रिक आदि सान्निपातिक ज्वरके पश्चात् जीर्णज्वर रह गया हो, तो सुवर्ण वसंत अति उत्तम कार्य करती है।

जीर्ण और आग्रही शीतपूर्वक ज्वरके कतिपय ऐसे रोगी प्रतीत होते हैं कि जिनकी क्विनाइन, सोमल, लोहकल्पके विविध सिद्ध योगों द्वारा चिकित्सा अनेक बार अनेक दिनों तक सतत हुई हो, फिर भी शीतज्वर न जाता हो, बार-बार अपना अस्तित्व प्रकाशित करता ही रहता हो; रोगीको त्रास पहुँचता ही रहता हो; इसका कारण यह है कि ये औषधि व्यसनसदृश सामान्य होजानेसे शरीरमें शोषण होकर प्रतिकारक्षमता नहीं बढ़ा सकते। ऐसी परिस्थिति मे सुवर्णमालिनी वसंतसे अपूर्व लाभ प्राप्त हो जानेके अनेक उदाहरण मिले हैं। इस प्रकारके विकारमें प्लीहावृद्धि होने पर एक समय सुवर्णमालिनी और दूसरी बार रोहितारिष्ट देने पर अति उत्तम लाभ पहुँच जाता है।

धातुक्षयके दो प्रकार हैं—अनुलोम और प्रतिलोम। रससे शुक्र पर्यन्त धातुक्षीण होनेको अनुलोम और शुक्रसे रसपर्यन्त क्षय होनेपर प्रतिलोम क्षय कहलाता है। रक्तस्राव अधिक होनेपर अन्य धातुओंका भी क्षय होता है। फिर निस्तेजता, अशक्ति और अग्निमान्द्य आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। स्त्रियोंको रजःस्राव अत्यधिक होनेपर या प्रसवावस्थामें रक्तस्राव अधिक होजाने पर भी धातुक्षीणता उत्पन्न होकर निस्तेजता आजाती है। किसी भी कारणसे धातुक्षीणता होकर बलमांस विहीनत्वकी प्राप्ति हो, सारा शरीर टूटना, हाथ-पैरमें जलन, नेत्रमें दाह, निरुत्साह, किसी भी कार्यकी इच्छा न होना इत्यादि लक्षण प्रतीत होते हों, तो सुवर्णमालिनीका सेवन कराना अति हितकारक है। यदि पाण्डुता भी साथमें आई हो, तो सुवर्णमालिनी वसंतके साथ मण्डूर भस्म या लोहभस्म मिश्रित करके या अलग स्वतन्त्र रूपसे देनी चाहिये। यदि पाण्डुताके साथ सर्वाङ्गमें शोथ, सारे शरीर पर मोम लगाने सदृश तेज, एवं मुख, गाल आदि पर भी शोथ और तेजी हो, तो लोहकल्प और सुवर्णमालिनी वसंत देना अधिक हितकर है।

शुक्रकानाश अनेक प्रकारसे होता है। अति व्यवाय, अन्यथा व्यवाय (हस्तमैथुन आदि) आदि कारणोंसे शुक्र-नाश होता है। शुक्र-[illegible] होनेपर ओजकी क्षीणता होती है। फिर बलक्षय और अन्य [illegible]की पूर्तिमें न्यूनता होनेसे धातुओंकी क्षीणताकी प्राप्ति होती है। [illegible]णाममें सहस्रार आदि बुद्धीन्द्रिय कार्यक्षम नहीं रहतीं। बुद्धि, [illegible]ते, धारणा शक्ति, तीनों मंद होजाती हैं। ओजक्षय या शुक्रक्षय होने-[illegible] मनमें विविध भ्रम होने लगते हैं। किसी बातकी अधिक स्मृति नहीं [illegible]ी। रोगीको बोलनेमें भी रुकावट होती है। विचार करनेमें थक

जाता है। विचार नियमबद्ध नहीं होता। चित्तविभ्रम-सा होकर किसी स्थान पर मूढ़ सदृश बैठा रहता है, या मूक-बधिरसदृश देखता रहता है, मस्तिष्कमें कुछ विचार ही न हो, ऐसा उन्माद रोगी सदृश दीखता है। इस तरह शुक्रधातु क्षीण होने पर अन्य धातुओंमें क्षीणता आकर ऐसी परिस्थिति होजाती है। धातुक्षीण होनेपर आभ्यन्तरिक अवयव भी निर्बल और कृश होते जाते है। शुक्रधातु, जो सहस्रार और मन-बुद्धिको शक्तिदायक है, उसका जितना क्षय अधिक हो, उतनी ही सहस्रारको हानि पहुँचती है। इस प्रकारकी विकृतिमें सुवर्ण-मालिनी वसन्त अति उत्तम ओषध है।

मैथुन लालसा अति बढ़ी हुई हो, परन्तु उसमें अतृप्ति होने पर उस पर लगी हुई चित्तवृत्ति भी एक आपत्ति ही है। इसका चिकित्सक से (बिना कहे) निदान होना भी कठिन है। इसमें भी स्त्री रुग्णा हो, तो फिर कहना ही क्या? इस प्रकारमें वातवाहिनियाँ, इनके केन्द्र-स्थान और इनके चक्र (मण्डल), इन सबमें क्षोभ विशेष कारण होता है। इस प्रकारकी विकृतिमें सुवर्णमाक्षिक भस्म या ब्राह्मी, जटामाँसी सदृश शामक औषधिके साथ सुवर्णमालिनी वसतंका उप-योग करना चाहिये।

सुवर्णमालिनी वसंत स्त्रियोके श्वेत प्रदरमें लाभदायक है। यथार्थमें श्वेतप्रदरमें भी अनेक प्रकार है। इनमें गर्भाशय या योनिमार्ग की श्लैष्मिक कलामें उष्णता होकर प्रदर हुआ हो, और नया रोग हो, तो सुवर्णमालिनी वसंत गिलोय सत्व और शहदके साथ देनेसे लाभ पहुँच जाता है। बीजाशय विकृति और व्रण आदि हेतुसे प्रदर हो, तो प्रदरान्तक लोह, प्रदरान्तक रस आदि औषधका सेवन और बाह्य उपचार भी करना चाहिये।

गण्डमाला बढ़ने पर उससे सूक्ष्म ज्वर आने लगता है, सारा शरीर टूटता है, क्षीणता आती जाती है, ऐसी स्थितिमें सुवर्णमालिनी वसन्त उत्तम कार्य करती है। यदि ज्वर अधिक हो, तो यह रसायन नही देना चाहिये। सूक्ष्म ज्वर, शुष्क कास, शुष्कता और हाथ-पैर टूटना आदि लक्षण होने पर वसन्त उत्तम कार्यकारी है।

कण्ठके सदृश उदरमें ग्रन्थि बढ़ने पर यदि मंद ज्वर आदि उक्त लक्षण हो, तो सुवर्णमालिनी वसन्त अवश्य देना चाहिये। यदि मनुष्य बलवान पुष्ट हा और गाँठ बड़ी हो, तो जसद भस्म देनी चाहिये।

जीर्ण अतिसार, साथ-साथ सर्वाङ्गमें रूक्षता, शुष्कता हो, तो

सुवर्णमालिनी वसत शक्ति बढ़ाने या कायम रखनेके लिये देनी चाहिये। इस प्रकारके अतिसारमें शौच अधिक समय नहीं जाना पड़ता है। परन्तु प्रत्येक समय हौजके डाट खोलने पर वेगपूर्वक निकलने वाले जलप्रवाहके सदृश पतला दस्त अधिक परिमाणमें एकदम बाहर निकल जाता है। ऐसा होने का कारण अन्त्र की संग्राहक और धारणशक्ति की न्यूनता है। ऐसे अतिसारमें सुवर्णप्राधान्य लक्ष्मीविलास रस भी दिया जाता है। परन्तु लक्ष्मीविलास देनेमें मल कमी हो और अनेक बार शौच होता है या नहीं—यह देखना पड़ता है।

जीर्ण संग्रहणीके विकारमें पर्पटी कल्प मुख्य है। परन्तु बल-मांस विहीनत्व होकर अन्त्रकी शक्तिका ह्रास होता जाता हो, तो शक्ति-संरक्षणार्थ सुवर्णमालिनी वसत देना अति लाभदायक है।

जीर्ण अजीर्ण विकार और इससे उत्पन्न आमविष, फिर होने वाले सामविकार, इन सबमें सुवर्णमालिनी वसंत उत्कृष्ट औषध है। वसंतसे पचन अवयवों की शक्ति बढ़ जाती है। पाचक रसका स्राव सम्यक् होता है। फिर आमविष कम होता जाता है। इस उपपत्तिकी दृष्टिसे जीर्ण आमवात और उससे उत्पन्न होनेवाले व्याधिसंकर (उपद्रव) के विकारोंमें भी वसंत उपयोगी है।

यह रसायन कफ और पित्तदोष, रस रक्त, मांस, शुक्र और ओज, ये दूष्य, तथा कोष्ठस्थ अवयव समूह इन सब पर लाभदायक है।

(औ० गु० ध० शा०)

जीर्ण ज्वर होने पर नेत्रोंमें दाह, हाथ-पैरोंमें जलन, मलावरोध, जिह्वा पर सफेद मलकी तह आजाना, नाड़ीमें क्षीणता, पेशाबमें पीला-पन आदि लक्षण होजाते है। इनमें कफ प्रकृति वालेको सुवर्णमालिनी वसंत ½-½ रत्ती के साथ मुलहठी, सितोपलादि चूर्ण और अमृतासत्व मिलाकर शहदके साथ देना चाहिये, तथा सुबह शठी, खस, छोटी कटेली के मूल, सोंठ और मिश्री का क्वाथ शहद मिलाकर देवें तथा आवश्यकता पर रात्रि को उदर शुद्धिके लिये आरग्वधादि क्वाथ या मधुकादि कषाय देना चाहिये।

सूचना—यदि सुवर्णमालिनीसे किसीको पित्त बढता हो या रक्तस्राव हो, तो प्रवालपिष्टी साथ मे मिला लेनी चाहिये।

किसी किसीको तीव्र शुष्ककास होने पर सुवर्णमालिनी सहन नहीं होती। उनको पहले मुक्ता, प्रवाल और गिलोय सत्व या कामदूधा देकर अधिक उग्रताका दमन करना चाहिये। फिर सुवर्णमालिनी देनेसे पूरा लाभ होता है।

इस रसायनमें मिलानेके लिये पक्के पीले [illegible] ४ तहसे छानकर ग्लासमें भरें । ८-१० घण्टे बाद [illegible] बैठ जानेपर फिल्टर पेपरसे छानकर उपयोगमें लेवें । स्वर्णमालिनी वसन्त [illegible] ३ माशे कस्तूरी और १ तोला केशर मिला लेनेसे विशेष लाभदायक बनती है ।

एक तोला सुवर्णभस्म [illegible] तोले स्वर्णमालिनी बनती है । उसमें ३ माशे कस्तूरी मिलानेसे, एक तोले में लगभग पौन रत्ती या [illegible] रत्ती से [illegible] वां हिस्सा कस्तूरी होती है, जिससे सगर्भा स्त्री को भी [illegible] है । फिर भी सगर्भा स्त्रियोंके लिये, जिनको कस्तूरी न मिलानी हो, वे न मिलावें ।

(३३) मधुमालिनी वसन्त ।

बनावट—सिंगरफ २० तोले लेकर अनारदानोंके रसमें ७ दिवस खरल करके सूखा चूर्ण बना लेवें । पश्चात् सुर्गीके २० अंडोंके रसके साथ लोहेकी कढ़ाहीमें डाल चूल्हे पर चढ़ाकर मन्दाग्नि दें, और लोहे की कलछीसे चलाते रहें । बार-बार रसका शोषण होकर सिंगरफकी गोलियाँ बनने लगेंगी, उनको कलछीसे तोड़ते रहें । जब बिल्कुल रस सूख जाय, तब कढ़ाहीको चूल्हे परसे उतार लेवें । पश्चात् कचूर, सफेद मिर्च और गऊँला (प्रियङ्गु), प्रत्येक तैयार हुए सिंगरफके चूर्णके वजनसे आधे-आधे परिमाणमें मिला, बड़हर (अथवा अनार) के रसमें ७ दिन तक खरल करके १-१ रत्तीकी गोलियां बनावें । (र० चं०)

मात्रा—१ से २ गोली मिश्री-घृत या दूधके साथ दें । बालकोंके मृद्वस्थि रोगमें मंडूर भस्म और शृङ्गभस्मके साथ देवें ।

उपयोग—यह रसायन, बृंहण, बल्य, ओजोवृद्धिकर तथा सूक्ष्म स्रोतसोंके लिये स्नेहन करने वाला है । यह बालक, सगर्भा, अशक्त और सुकुमारोंके लिये अधिक उपयोगी हैं ।

छोटे बच्चोंको गर्भिणी माताका दूध पीनेसे पारिगर्भिक रोगकी उत्पत्ति होती है । इसमें बालकका पोषण योग्य नहीं होता । कास, अग्निमान्द्य, अरुचि, ग्लानि, चक्कर आदि विकार होते हैं; बालक बार-बार रोता रहता है, देहमें बल-मांस-विहीनत्वकी प्राप्ति होती है उदर बड़ा होजाता है, तथा हाथ-पैर पतले होजाते हैं, इस विकारमें दीपन-पाचन ओषधिके साथ इस रसायनका उपयोग करना चाहिये । यदि अग्निमान्द्य अधिकांशमें है, तो इसका उपयोग विशेष रूपसे नहीं होगा । बालक को माताका दूध रोगके निदान परिवर्जनके होनेसे नहीं पिलाना चाहिये, और मधुमालिनीका सेवन करना चाहिये ।

छोटे बच्चोंके अस्थि वक्रता (Rickets) व्याधिमें अन्य अस्थिपोषक द्रव्यके साथमें इस रसायनका उपयोग करना चाहिये। इस रोगमें हड्डियाँ मृदु होकर मुड़ जाती है, तथा कृशता, पाण्डुता, मांसक्षीणता और कुब्जता आदि तथा अस्थि धातुमेंसे चूनाका परिमाण कम होजाना, उदर बड़ा, हाथ-पैर पतले, मानसिक विकृति, बालक क्रोधी और दुराग्रही होजाना, दाँत आनेके समय जिस तरह अवयवों का क्षोभ होता है उस तरह क्षोभ होकर अनेक इन्द्रियोंके व्यापारमें विकृति होना, पचनेन्द्रियकी क्रिया विकृत होनेसे कभी अतिसार और कभी कोष्ठबद्धता होना आदि लक्षण होते हैं, उस पर रक्त, मांस और अस्थिकी पोषक चिकित्सा करनी चाहिये। अतः मण्डूर भस्म, शृङ्ग भस्म और मधुमालिनी वसन्तका मिश्रण हितकर है।

गर्भिणीकी अस्थि धातु क्षीण होनेपर गर्भकी भी अस्थि धातु क्षीण होती है। फिर बालकको आगे मृद्वस्थि रोग होजानेकी सम्भावना रहती है। अतः अस्थि धातुके पोषणार्थ सगर्भाको उक्त योग का सेवन कराना चाहिये। जिससे बालक को मृद्वस्थि रोग होनेकी भीति न रहे।

स्त्रियोंकी अशक्तताके कारणसे गर्भका योग्य पोषण नहीं होता; और सगर्भा स्त्रियाँ भी दिन-प्रति-दिन क्षीण होती जाती है। गर्भकी योग्य वृद्धि नहीं होती। एवं रूक्ष आहार-विहारके सेवनसे या योनिस्राव अधिकांशमें होनेसे भी गर्भका योग्य पोषण नहीं होता। गर्भ शनैः-शनैः सूखता जाता है। इस अवस्थाको किसी आचार्यने नागोदर और किसी ने उपशुष्कक (उपविष्टक) संज्ञा दी है। इस अवस्थामें गर्भ और गर्भिणीके पोषणकी अत्यन्त आवश्यकता है। इसकी चिकित्सा श्री वाग्भट्टाचार्यके निम्न वचनानुसार करनी चाहियेः—

तयोर्बृंहण-वातघ्न-मधुर-द्रव्य-संस्कृतैः।
घृत-क्षीररसैस्तृप्तिरामगर्भैश्च खादयेत्॥

अर्थात् इस अवस्थामें बृंहण और वातघ्न गुणयुक्त घी, दूध, मिश्री, अंगूर आदि मधुर द्रव्यों और आम गर्भ (कच्चे गर्भ) से सगर्भा की तृप्ति करानी चाहिये। यह कार्य मधुमालिनी वसन्तके सेवनसे उत्कृष्ट रूपसे सिद्ध होता है, कारण इसे आम गर्भोंकी भावना दी है।

स्त्रियोंको श्वेतप्रदर विकारमें अधिक स्राव होता हो, तथा बल, मांस और ओजकी क्षीणता हो, तो मधुमालिनी वसन्त देना चाहिये।

इस तरह प्रसवके पश्चात् अत्यधिक स्राव होनेपर बल क्षय प्रतीत होता हो, तो शक्ति लानेके लिये यह रसायन अति उपयोगी है।

मधुमालिनी वसन्त शीतपूर्वक ज्वरके पश्चात् बल-मांस-विहीनत्व पर उपयोगी है। रक्तकणोंके नाशसे आई हुई पाण्डुतामें लघुमालिनी और मण्डूर भस्मका मिश्रण अधिक हितकर है। परन्तु अधिक कृशता और अधिक बलक्षय पर मधुमालिनी देनी चाहिये।

जीर्णज्वरके विकारमें पहले बहुधा शीतपूर्वक ज्वर होता है। यह कम होनेपर या अनेक दिन चले जाने पर जीर्णज्वर होजाता है। इसमें प्लीहा बढ़ जाती है, अग्निमान्द्य होता है, और रोगी निर्बल बन जाता है। इस विकारमें अग्निमान्द्य मर्यादित हो, और प्लीहावृद्धि और मांसविहीनत्व आया हो, तो मधुमालिनी देनी चाहिये।

कोई भी व्याधि दीर्घकाल पर्यन्त रह जानेसे बल मांस-विहीनत्व की प्राप्ति होनेपर मधुमालिनी वसन्तका उपयोग अवश्य करना चाहिये। यह वसन्त कल्प नाजुक प्रकृति वाले, कृश, बालक और गर्भिणीके लिये शक्तिदायक और मांसवर्द्धक है। केवल अग्निबलका विचार करके इसकी योजना करनी चाहिये। (औ० गु० ध० शा० के आधारसे)

मज्जाक्षय और शुक्रक्षय होने पर देह निस्तेज हो जाती है, तथा सांधो-साधो में पीडा, रूक्षत्व, चक्कर आना, मलावरोध, स्त्री समागम की अनिच्छा, हृदयमें कम्प, बडी आवाज भी सहन न होना आदि लक्षण प्रकाशित होते है। उक्त रोग पर मधुमालिनी वसंत, प्रवाल भस्म और अमृतासत्व मिलाकर आमके मुरब्बे के साथ देने से थोड़े ही दिनोमें व्याधि दूर हो जाती है।

जीर्ण ज्वर दीर्घकाल तक रह जाने पर ओजक्षय होजाता है। फिर रोगी डरपोक बन जाता है, एव अति निर्बलता, शुष्कता, कान्तिहीनता उत्पन्न होती है। ऐसी अवस्थामें मधुमालिनी वसन्तका सेवन दूधके साथ कराने पर जीर्णज्वर, ओज क्षय, मांसक्षय, अग्निमान्द्य आदि विकार दूर होते हैं।

(३४) मधुमालिनी वसन्त।

प्रथम विधि—खपरिया (कारवेलक या केलेमेना पेपेट्रा) शुद्ध ८ तोले, सफेद मिर्च ४ तोले और शुद्ध हिंगुल ८ तोले मिला, गोदुग्ध मेंसे निकाले हुए २ तोले मक्खनके साथ खरल करें। फिर १०० नीबुओंका रस निकाल, फिल्टर पेपरसे छान, थोडा-थोड़ा मिलाकर खरल करें। लगभग ५-६ रोजमें मक्खनका चिकनापन दूर होने पर

२ २ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवे। (आ० क० नि०)

मात्रा—१ से २ गोली शहद-पीपल, दूध या जलके साथ।

उपयोग—इस रसायनके सेवनसे जीर्णज्वर, धातुगत ज्वर, विषमज्वर, अतिसार, क्षय, अर्श, ताप, मन्दाग्नि, शूल, वातविकार, प्रदर, रक्तार्श और नेत्ररोगका नाश होता है।

इस लघु वसंतमें सुवर्णमालिनीसे न्यून गुण हैं। दोनोंमें खर्पर मुख्य है। रसवाहिनी और रसोत्पादक पिंडमें विकृति होनेपर यह रसायन अमृतसदृश गुणदायी है। जीर्ण विषमज्वरमें दोष रस, रक्त, मास आदि किसी धातुमें प्रवेश करता है, तब शुक्रगत ज्वरको छोड़कर अन्य धातुओंमें रहे हुए ज्वरको दूर करनेमें यह लघुवसंत अच्छा लाभदायक है। जीर्ण ज्वरमें प्लीहावृद्धि, रसधातुगत ज्वर, मन्दाग्नि, हाथ पैरमें सूक्ष्म उष्णता रहना इत्यादि दोष होने पर लघु वसंत अच्छा लाभ पहुँचाता है। जीर्ण शीतज्वर जब किनाइनसे नहीं जाता; तब लघु वसंतसे रक्तकणोंकी शुद्धि और वृद्धि होकर शमन होजाता है। शीतज्वर या अन्य ज्वरके पश्चात् मन्दाग्नि, पतले दस्त, या कब्ज और शरीरमें आई हुई पाण्डुतापर लघुवसंत, मण्डूर भस्मके साथ देना चाहिये।

दूसरी विधि—खपरिया ८ तोले और सफेद मिर्च ४ तोले मिलाकर खरल करें। फिर गौके दूधका मक्खन १। तोला मिला, नीबूके रसमें ४ दिन खरल करके २-२ रत्तीकी गोलियाँ बाँधे। (यो० र०)

कई ग्रन्थकारोंने इस रसायनका नाम ज्वरमुरारि रक्खा है। रससार संग्रहकारने रसराज संज्ञा दी है। किसी ग्रन्थकारने नवज्वरारि और व्याधिगज-केसरी नाम लिखे हैं। यह जीर्णज्वर और शोष रोगकी उत्तम औषध है। बालक, सगर्भा, सूतिका, वृद्ध आदि सबको निर्भयतापूर्वक दिया जाता है।

मात्रा—१ से २ गोली तक शहद-पीपल या दूधके साथ देवे। सगर्भाको जयन्तीके पुष्पके रसके साथ दिनमें २ बार देवे।

उपयोग—यह औषधि जीर्णज्वर, धातुगतज्वर, विषमज्वर, पित्तविकार, रक्तविकार, रक्तातिसार, नेत्ररोग, प्रदर, रक्तार्श तथा बालकोंके बालशोष और तापके पीछेकी निर्बलता आदि विकारोंको दूर करनेमें हाथीके लिये सिंह समान है। छोटे बालक और सगर्भाके लिये यह वसंत अत्यंत हितकर है।

पहली विधि की अपेक्षा यह अधिक सौम्य है। पहली विधि पित्तप्रधान प्रकृतिवालोंको कम अनुकूल रहती है, यह शीतल होनेसे विशेष लाभप्रद है। वसंतका मुख्य कार्य रसवाहिनियों और लसीका

ग्रन्थियों पर होता है।

यह रसायन जीर्ण ज्वरमें उत्कृष्ट औषधि है। जीर्ण ज्वरमें प्लीहावृद्धि, रसगत सूक्ष्म ज्वर और अधिक समय अग्निदौर्बल्य, ये लक्षण होते है। नाड़ी परीक्षा द्वारा ज्वर प्रतीत होता है; उष्णतामापक यन्त्र द्वारा नहीं जाना जाता। रोगीके हाथ-पैर टूटना, बेचैनी, कुछ शुष्कता आजाना, नेत्रदाह, मूत्रमें पीलापन, त्वचामें निस्तेजता, क्षुधानाश, प्लीहावृद्धि, मुँह फूला हुआ-सा निस्तेज पाण्डु वर्णका हो जाना और थोड़ा खाने पर भी उदरमें भारीपन आदि लक्षण होता है, उस पर लघुमालिनी वसंत अत्यन्त उपयोगी है।

कभी-कभी जीर्ण शीत ज्वरके विकारमें केवल शीतज्वरनाशक उपाय दीर्घकाल पर्यन्त करने पर भी लाभ नहीं होता। क्विनाइन सदृश औषधका चक्रपारायण करने पर भी ज्वर नहीं भागता। इसमें एक कारण यह भी है कि, क्विनाइन मलेरियाके कीटाणुनाशक होने पर भी यदि इसका अनेक दिनो तक सेवन किया जाय, तो वह भी कीटाणुओंको सात्म्य होजाता है। फिर कीटाणु ढीठ बन जाते हैं। ऐसे समय पर वसंत कल्प अति उपकारक है। इस रसायनसे अग्निबल की वृद्धि होकर पचन-क्रिया सुधरती है। रस, रक्त, धातु पुष्ट बनती हैं। प्रत्येक धातुकण सबल होता है। फिर आगन्तुक कीटाणुओंको विदा किया जाता है। इस तरह जीर्णज्वरके अनेक रोगियोंको इस औषधिने आरोग्यकी प्राप्ति कराई है। रोग-प्रभावसे शीतज्वरके पश्चात् या अन्य ज्वरके पश्चात् रक्तमें से रक्त कण कम होकर श्वेतता या पाण्डुता आने पर लघुवसत और मण्डूर भस्म मिश्रण उत्तम कार्य करता है। पाण्डुरोगकी बिलकुल प्रथमावस्थामें इसका उपयोग होता है।

तरुण युवतीको होने वाले पाण्डु रोगमें इस रसायनका उपयोग होता है। मासिक-धर्ममें अधिक रजःस्राव, रक्तप्रदर या श्वेतप्रदरके पश्चात् आई हुई पाण्डुतामें भी यह रसायन उत्तम कार्य करता है।

छोटे बच्चेको मिट्टी खाने की आदत होजाने पर पाण्डुता उत्पन्न होती है। इसमें पहले मुर्दासङ्ग आदि मृदुविरेचन योग देना चाहिये। फिर लघुवसत और मण्डूर भस्म मिलाकर दिया जाता है।

कृमि रोगसे उत्पन्न ज्वरमें भोजनकी इच्छा न होना, क्षुधानाश, पाण्डुता आदि लक्षण होने पर पहले कृमिनाशक औषधि दीजाती है। फिर वसत-मण्डूर मिश्रण देना चाहिये।

यह रसायन बालकोंको १६ वर्षकी आयु तक बल्यरूपसे उप-

योगी है। विल्कुल स्तनंधय शिशुको यह वसत नहीं देना चाहिये। परन्तु अन्न और दूध लेनेवाले वालकको यह निर्भयतापूर्वक दिया जाता है। अतः इस वसंतको वालमित्र उपमा देनेमें अतिशयोक्ति नहीं होती।

सूक्ष्म ज्वर और इसके पश्चात् या इसके साथ अशक्ति, अस्थि-मार्दव रोगकी अशक्ति या क्षीरालसक (त्रिदोष-दूषित स्तन्यसे होने वाला ज्वर, जिसमें वमन, नाक, मुख आदिका पाक भी होता है) तथा पारिगर्भिक रोगसे आई हुई कृशता आदि विकारोंमें स्नायुओंकी निर्वलताको नाश करनेवाली और अन्य धातुओंको पुष्ट करनेवाली औषधियोंमें यह वसंत उत्कृष्ट वल्य है। इस अवस्थामें वसन्त-मण्डूर मिश्रणका उपयोग करना चाहिये।

जीर्ण ज्वरमें अग्निसाद मुख्य लक्षण है, एवं जीर्ण ज्वरके पश्चात् या अन्य व्याधिके पश्चात स्नायु या अन्य धातुओंकी अशक्ति होजाती है, तथा मांस-विहीनत्वकी प्राप्ति होती है। इसका कारण भी वहुधा अग्निसाद् होता है। अग्नि अर्थात् पचनेमें सहायक होने वाला पित्तांश यह प्रत्येक धातुओंमें रहता है, ऐसा आयुर्वेदका सिद्धान्त है। इस नियमानुसार अग्निसादका अर्थ इस स्थान पर प्रत्येक धातुके भीतर रही हुई पचन-शक्ति (पचन क्रिया) क्षीण होना, इस तरह रस आदि धातुक्षीण होनेमें तत्रस्थ धातुकण वनानेकी और उसे आत्मसात् करनेकी शक्तिकी क्षीणता होती है। इस अवस्थामें वसंत उत्तम औषधि है। छोटे वच्चोंके लिए तो लघुवसंत अधिक प्रशस्त है। तथापि बडी आयु वालोंके लिये भी रसाजीर्ण वार-वार होने पर लघुवसंत अति उपयोगी है। अन्नका विद्वेष, उदर और कौडी प्रदेश सर्वदा जड़ रहना, उवाक, मुँहमें चिपचिपा पानी आते रहना और निरुत्साह आदि लक्षण होने पर लघुवसंत देना चाहिये।

पचनेन्द्रिय निर्वल होने पर या अधिक अग्निसाद होने पर अन्नपचन योग्य रूपसे नहीं होता। फिर अतिसार होजाता है। कुछ दिन तक अतिसार रहता है, कुछ दिन नहीं रहता। फिर अतिसार हो जाता है। इस तरह वार-वार लौट-लौटकर हमला करता रहता है। साथ में सूक्ष्म ज्वर, सारा शरीर टूटना, दाह, रसवाहिनियोंकी विकृति, मुँह का वेस्वादुपन, उवाक, थोड़ा-थोड़ा दस्त लगना, मल सफेद रंग का होना, खट्टी-सी वास आना, अशक्ति, क्षुधानाश, थोड़ा-सा खाने पर भी न पचना आदि लक्षण होने पर लघु वसंत देनेसे जठराग्नि प्रवल होकर अन्नपचन सम्यक् होने लगता है। फिर अतिसार वन्द होजाता

है। यह अतिसार जीर्ण व्याधि रूप ही होता है।

शारीरिक व्यापार योग्य चलनेके लिये प्राणवायुकी पूर्ति होनी चाहिये, और रक्ताभिसरण क्रिया सम्यक् प्रकारसे होकर सब अवयवों को आवश्यक रक्त मिलते रहना चाहिये। रक्त सबल न होने पर इन्द्रियों में अशक्ति आती रहती है, या पूरा रक्त न मिलने से इन्द्रिय कार्यक्षम नही रह सकतीं। इस हेतुसे "रक्तं जीव इति स्थितिः" यह वचन योग्य ही कहा है। रक्त सबल बनानेका और सब स्थानों पर पहुँचानेका कार्य वसंतसे उत्तम रूपसे होता है। इसलिये भिन्न-भिन्न इन्द्रियोंकी निर्बलता पर लघुवसंत अति उपकारक है।

प्रदरमें मुख्य श्वेत और रक्त, ये दो प्रकार है। इनमें श्वेतप्रदर अपचन या योनिमार्गकी सूक्ष्म ग्रन्थियोंके कारणसे भी उत्पन्न होजाता है। यदि अपचन विकारसे उत्पन्न हुआ हो, तो लघुवसंत अति उत्तम लाभ पहुँचाता है। यदि सूक्ष्म ग्रन्थियोंका क्षोभ हेतु हो, तो वंगभस्म और त्रिवंगभस्म अधिक हितकर है। इस प्रकारके प्रदरमें जल सदृश पतला स्राव अनजानपनमें होता रहता है। मस्तिष्क भ्रमता हो ऐसा भासता है, शिर दर्द, कण्ठमें शुष्कता या चिपचिपापन, श्वसन योग्य न होना, बार-बार दीर्घ श्वास लेना, हृदयके स्पन्दनमें वृद्धि, उदरमें आफरा, उबाक, अग्निसाद, लघु अन्त्र और बृहदन्त्रमें आफरा अधिक, मल-शुद्धि नियमित न होना (कभी मल साफ होता है, कभी अनेक बार दस्त होता है), मलमें खट्टी वास आना और मलका रंग सफेद-सा हो जाना आदि लक्षण युक्त प्रदरमें लघुवसन्त देना चाहिये।

धातुगत ज्वरकी आयुर्वैदिक उपपत्ति अति अभिनव है। ज्वर विविध कारणोंसे उत्पन्न होता है। किसी भी ज्वरोत्पादक कारणसे विकार उत्पन्न होकर रस, रक्त आदि दूष्योंमें या स्थूल धातुओंमें जाकर पृथक्-पृथक् प्रकारके ज्वरो की उत्पत्ति करता है। यह आयुर्वैदिक उपपत्ति है। इस पद्धतिसे रसगत ज्वर, रक्तगत ज्वर आदि विभाग आयुर्वेदने किये है। इनमेंसे शुक्रगत ज्वरको छोड़, अन्य धातुगत ज्वरोंमें ज्वरकी तीव्रता कम होने पर लघुमालिनी अति उत्तम कार्य करती है। मुँहका बेस्वादुपन, उबाक, शरीरमें भारीपन, अंग गलना, बार-बार वमन, अरुचि, मुखमण्डल पर निस्तेजता और दीनता, यह रसगत ज्वरके लक्षण है। दाह, थूकमें किञ्चित् रक्त आना, निकम्मे विचार आते रहना या चक्कर आते रहना, वमन, प्रलाप, सर्वाङ्गमें एँठन, तृषा, शुष्कता, ये लक्षण रक्तगत ज्वरमें होते है। अतिशय प्रस्वेद,

अति शुष्कता, बार-बार मूर्च्छा, प्रलाप, वमन, प्रस्वेदमें सड़ी हुई दुर्गन्ध, अति ग्लानि, अरुचि, सहनशीलता कम होजाना, ये मेदस्थ ज्वरके लक्षण हैं। इन सब पर वसन्तका अति उत्तम उपयोग होता है। इस प्रकारके धातुगत विषम ज्वरोंमें विषम ज्वरदोष किसी भी धातुमें लीन रहता है। इस तरहके धातुगत विषम ज्वरमें भी यह अति उत्तम है।

नेत्र रोगोंमें पोथकी रोगकी जीर्णावस्थामें वसन्तका उत्तम उपयोग हुआ है। जीर्ण पोथकीके हेतुसे अग्निमान्द्य और कोष्ठदुष्टि हो सकती है, ये विकृति लघुमालिनी वसन्तसे उपशमन होजाती है।

यह वसन्त छोटे बच्चे और गर्भिणीके अबलत्वसे उत्पन्न सब विकारोंको दूर करता है। इस हेतुसे मूल ग्रन्थकारने इसके फलमें 'सर्व-रोगहरः शिशोः' अर्थात् बालकके सब रोगोंको हरण करने वाला कहा है।

कितनीक स्त्रियोंमें बार-बार गर्भपात होनेकी आदत होजाती है। चौथा मास तक गर्भस्राव हो जाता है। फिर गर्भपात होता है। इसका कारण गर्भाशयकी अशक्ति या मानसिक अस्वस्थता होती है। यदि गर्भाशय की अशक्ति हो (गर्भाशयमें उपदंश या अन्य रोगजनित विष विकृति न हो), तो पहले माससे ही लघुमालिनी वसन्तका प्रारम्भ करना चाहिये। यदि मानसिक अस्वास्थ्य कारण है, तो गर्भपालरस, सार्वदैहिक विशेषतः अधिक मांस क्षीणत्व होने पर मधुमालिनी वसंत, उपदंशज विष हेतु है, तो अष्टमूर्ति रसायन, अभ्रक और सितोपलादि मिश्रण देना चाहिये। लघुवसन्तसे गर्भपोषण उत्तम प्रकारसे होता है। गर्भोदक भी उत्तम बनता है। विकृत गर्भनिर्माण रूप दोषकी निवृत्ति होती है, तथा सगर्भाको आनेवाला सूक्ष्म ज्वर भी दूर होता है।

उरस्तोय विकारमें फुफ्फुसावरणके भीतर यदि जलका संचय थोड़े परिमाण में हुआ हो, तो लघुवसंतसे संचित जलका शोषण हो जाता है; और फुफ्फुसावरण अपने कार्यके लिये सशक्त बन जाता है।

पार्श्वशूलकी तीक्ष्ण अवस्थामें इसका उपयोग नहीं होता, परन्तु शूल नष्ट होनेके पश्चात् जीर्णावस्थामें फुफ्फुसावरणकी त्वचा मोटी हो जाना, सूखी खाँसी, और श्वासोच्छ्वास क्रियामें थोड़ा त्रास होने पर यह औषधि लाभदायक है।

सूचना—यह औषधि अधिक मात्रामें २-३ मास तक देने पर किसीको मुँह आना, गलेमें दर्द, उदरपीड़ा, और मूत्रमें लाली आ जाना आदि लक्षण

उपस्थित हो जाते हैं। ऐसे समय पर कुछ दिनोंके लिये इसे बन्द कर दोष शमनार्थ प्रवालपिष्टी और गिलोय सत्वके मिश्रणका सेवन कराना चाहिये।

(औ० गु० ध० शा० के आधार से)

(३५) संशमनी वटी।

प्रथम विधि—गिलोय घन १० तोले, लोह भस्म १ तोला, अभ्रक भस्म १ तोला और सुवर्णमाक्षिक भस्म ६ माशे मिलाकर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। (वै० नि० सा०)

मात्रा—२ से ४ गोली दिनमें २ बार दूधके साथ देवें।

उपयोग—यह वटी जीर्णज्वर, क्षय, पाण्डु, खाँसी, प्रदर, वीर्यस्राव, धातुक्षीणता, निर्बलता आदि दोषोंको दूर करके शरीरमें बल बढ़ाती है। पित्त प्रकृति वाले, नाजुक प्रकृति वाले, सगर्भा, प्रसूता और बालकोंके लिये यह लाभदायक है। वातवाहिनियाँ, मांस, स्नायु, ग्रन्थियो और मस्तिष्कको बलवान बनाती है, स्मरणशक्तिको बढ़ाती है; और शरीरमें स्फूर्ति लाती है। बिगड़े हुए धातु परिपोषण क्रमको सुधारने, जीर्णज्वरको दूर करने और पचन क्रियाको बढ़ानेमें अति हितकर है।

दूसरी विधि—गिलोय घन १० तोले और लोह भस्म १ तोला मिलाकर दो-दो रत्तीकी गोलियाँ बनालें। (वै० चि० सा०)

मात्रा—२ से ३ गोली दिनमें २ बार दूधके साथ देवें।

उपयोग—यह वटी जीर्णज्वर, क्षय, पाण्डु, रक्तकी निर्बलता, हृद्रोग, प्रदर वीर्यस्राव और मन्दाग्निमें लाभदायक है। ज्वरके पीछे की निर्बलता और पाण्डुताको दूर करनेके लिये अति उपयोगी है।

(३६) नीलकण्ठ रस।

बनावट—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, सोहागेका फूला और नीलेथोथेका फूला, चारोंको समभाग मिला, देवदालीके फलोंके रसमें १ दिन खरल करके २-२ रत्तीकी गोलियाँ बनावें। (र० यो० सा०)

मात्रा—१ से ३ गोली मिश्री और निवाये जलके साथ दें।

उपयोग—यह रसायन वमन करानेके लिये उपयोगी है। पित्त और ज्वरविष आदिको दूरकर सत्वर ज्वरका शमन कराता है, अम्लपित्त, श्वास, विषसेवन, कास, हिक्का आदि रोगोंमें ऊर्ध्व भागका शोधन करके शरीरको नीरोग बनता है, एवं जो जो रोग पित्तप्रकोपजनित या कफवृद्धि जनित होनेसे वान्ति साध्य हो, उन सबके लिये यह रसायन उपयोगी है।

(३७) इच्छाभेदी रस ।

बनावट—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सोहागेका फूला, सोंठ और कालीमिर्च १-१ तोला तथा शुद्ध जमालगोटा ३ तोले मिला, नीबूके रसमें ६ घण्टे घुटाई करके १-१ रत्तीकी गोलियाँ बाँधें। (भै० र०)

मात्रा—१ से २ गोली सुबह ठंडे जल या शर्बतके साथ दे।

उपयोग—इस रसायनकी दो गोलीसे ५-७ जुलाब लगकर अंतड़ी साफ होजाती है। यह रसायन वातविकार, रक्तदोष, त्वचादोष, श्वास, कास, हिचकी, गुल्म, उपदंश, कुष्ठ, अजीर्ण, आफरा, शूल, उदर रोग, आमवृद्धि, मलावरोध, कृमि, विस्फोटक कफ प्रधान जलोदर आदि रोगोंमें जुलावके लिये उपयोगमें लिया जाता है। यह रस तीव्र विरेचक, कफवातनाशक, शूलघ्न, विषघ्न और बड़ी अंतड़ीमें रहे हुए सेन्द्रिय विषका संशोधक है।

यह रसायन विरेचन रूपसे जलोदरमें विशेषतः कफप्रधान जलोदरमें उदर्याकलामें से संचित जलको बाहर निकालने या शोषण करानेके लिये दिया जाता है।

तीव्र स्वरूप वाले पिष्टमय पदार्थके खानेसे उत्पन्न आनाह और आध्मान (कब्ज और आफरा) में इस रसायनका उत्तम उपयोग होता है। यदि आध्मानकी जीर्णावस्था हो या बार-बार आध्मान आ जाता हो, तो इच्छाभेदी सदृश तीव्र औषधि नहीं देनी चाहिये। यदि मल संचित होकर शुष्क गट्ठे बन गये हों और उस हेतुसे शूल चलता रहता हो, तो पहले स्नेहन देकर फिर विरेचन देना चाहिये।

अपतानक, अपतन्त्रक और आक्षेपक वातविकारमें कफानुबन्ध होनेपर कोष्ठशुद्धि और कफसे संरुद्ध स्रोतसोंको शुद्ध करानेके लिये विरेचन औषधियोंमें इच्छाभेदी उत्तम प्रकारसे लाभदायक है।

बृहदन्त्रमें मल सञ्चय अतिशय होनेपर सब आँतें दूषित होती हैं। फिर इसमें सेन्द्रिय विष निर्माण होता है। वह विष अति तीव्र स्वरूपका होता है। वह सारे शरीरमें शोषण होजाने पर रस रक्त आदि धातुएँ विकृत होकर कुष्ठ सदृश रोग उत्पन्न होजाता है। मुख्य कुष्ठरोग और मलसञ्चयजनित कुष्ठ सदृश विकार, दोनोंमें सम्प्राप्ति और लक्षण दृष्टिसे महदन्तर है। इस रोगमें समस्त देह पर बड़े-बड़े काले या लाल धब्बे होजाते हैं; खुजली भी आती रहती है। इस विकार पर विरेचन की आवश्यकता होनेपर इच्छाभेदी रस उत्तम कार्य करता है।

हिक्काके विकारसे आमाशयमें पित्त या कफ सचय खूब होजाने पर बार-बार हिक्का जनित विलक्षण श्वास होता है। ऐसे समय पर वमन, विरेचन द्वारा आमाशय शुद्धि की अति आवश्यकता है। इच्छा-भेदीसे वमन और विरेचन, दोनो कार्य उत्तम प्रकारसे होजाते हैं।

विरुद्ध भोजन, अध्यशन (भोजन पचन होनेके पहले फिर भोजन) या गर सेवन होनेपर बार-बार हिक्का आती रहती है, और कचित् वान्ति भी होती रहती है, उस पर इच्छाभेदी देनेसे कोष्ठशुद्धि होती है, और गर (सेन्द्रिय विष) भी नष्ट होकर व्याधि शमन हो जाती है। (औ० गु० ध० शा० के आधारसे)

रक्तदबाव वृद्धि (High blood pressure) होने पर शिरदर्द उपस्थित होता है। मस्तिष्कगत रक्तवाहिनियाँ रक्तसे खूब भर जाती हैं। दबाव अति बढ़ने पर खोपरी टूट जायगी या क्या? ऐसा भ्रम होता है। उस समय सत्वर उपचार न किया जाय, तो कोई बड़ी रक्त-वाहिनी टूट कर पक्षवध या सन्यास हो जाता है। इस रोग पर ५–७ जुलाब हो जाये, ऐसा विरेचन दिया जाता है। इस हेतुसे इच्छाभेदी रस २ रत्ती और निसोत चूर्ण ३ माशे मिलाकर शर्वतके साथ देना चाहिये। आध घण्टेपर सौंफ का अर्क ५ तोले देवे। आवश्यकता पर शाम को दूसरी बार विरेचन देवे। इस तरह २–३ दिन तक विरेचन देनेसे बृहदन्त्रकी शुद्धि होकर रक्तदबाव कम होजाता है। भोजन में खिचड़ी देवें।

सूचना—यह रसायन नूतन ज्वरी, अतिसार रोगी, जीर्ण आध्मानके रोगी और बार-बार आफरा आने वाले, और सगर्भाको नहीं देना चाहिये। विरेचन लेनेपर अधिक दस्त लगे, तो शर्बत पिलाना चाहिये।

पथ्य—खिचड़ी-घी अथवा दही भात।

(३८) आनन्दभैरव रस।

प्रथम विधि—शुद्ध हिंगुल, सोंठ, कालीमिर्चे, पीपल, सोहागेका फूला, बच्छनाग और गन्धक, इन सबको समभाग मिला, नीबूके रसमें १२ घण्टे खरल कर १–१ रत्तीकी गोलियाँ बनावे। (भै० र०)

मात्रा—१ से २ रत्ती दिनमें २ बार जल, छाछ, चावलके धोवन, कुड़ेकी छालका चूर्ण, या अनार शर्वतके साथ देवें।

उपयोग—इस रसायनके सेवनसे कफज्वर, खाँसी, श्वास, जुकाम, अतिसार, मन्दाग्नि, अजीर्ण, ग्रहणी, अपस्मार, वातरोग, प्रमेह, सन्निपात और ज्वरातिसार दूर होते है।

यह रसायन ज्वरहर और स्वेदल है। यह त्रिभुवनकीर्तिकी अपेक्षा कम उग्र है। इस रसायनमें पित्तवृद्धि होती है, अतः पित्त ज्वर में नहीं देना चाहिये। कफप्रधान ज्वरमें इसका उपयोग किया जाता है। परन्तु कफज्वरमें भी जब तक आमावस्था हो, तब तक यह नहीं देना चाहिये। लङ्घन करा निरामावस्था प्राप्त होने पर यह दिया जाता है। इस रससे कण्ठके भीतर श्वासमार्गकी श्लैष्मिक कलापर परिणाम होकर कफका संशोषण होता है, अतः कफविकारमें इसका उपयोग इतने अंशमें अच्छा होता है। सर्वाङ्गमें जड़ता, देहमें गीलापन, मर्यादित ज्वर, ज्वरकी अपेक्षा देहमें भारीपन अधिक, आलस्य, मुँहमें मीठापन, अंग अकड़ जाना, लङ्घन करने पर भी उदरमें भारीपन, भोजन अभी किया है ऐसा भासना, सारे शरीरमें शीतलता और मुँहमें जल आना आदि लक्षण होने पर आनंदभैरव रस अवश्य देना चाहिये।

कफप्रधान कासकी उत्पत्ति जुकाम होकर फिर पक्व करके हुई हो; कफकी बड़ी-बड़ी गाँठ निकलती हो, या जुकाममें अच्छी तरह कफ निकलता हो, तो यह रस देना अति हितकर है। कितनेक चिकित्सक जुकामके प्रारम्भ होनेके साथ वच्छनाग प्रधान ओषधि देते हैं, इसका परिणाम अनेक बार हानिकर होता है। अर्धावभेदक आदि शिरोरोग उत्पन्न होजानेकी भीति रहती है। बच्छनागका महत्व का धर्म नाक, कण्ठ आदि भागकी श्लैष्मिक कलामेंसे होने वाले स्रावका संशोषण करा कलाको शुष्क बनाना है। जब विषको बाहर निकालनेके लिए जीवनीय शक्तिने जुकाम उत्पन्न किया है, तब उसका शोषण कराना इष्ट नहीं है। पतले कफका स्राव करा फिर कफ पक्व होने पर ही आनंदभैरवका उपयोग करना चाहिये।

श्वास रोगमें कभी-कभी कफ इतने अधिक बार निकलता है कि, रोगी बेचैन हो जाता है। ऐसे समय पर आनंदभैरवसे सत्वर लाभ पहुँचता है। श्वासकी अन्य अवस्थामें इसका उपयोग नहीं होता।

कफज अरुचि और अग्निमान्द्यसे उत्पन्न अतिसारमें अन्नका सम्यक् पचन न होनेसे उदरमें जडता उत्पन्न होकर और अन्त्रकी श्लैष्मिक कलामें क्षोभ होकर स्राव होता रहता है। इस हेतुसे अतिसार की उत्पत्ति हुई हो, तो इसकी तीव्रावस्थामें आनन्दभैरवका उपयोग होता है। किन्तु जीर्णावस्थामें अश्वकंचुकी उपयोगी है।

सन्निपातज ग्रहणी विकारमें विशेषतः कफयुक्त आम अधिक गिरना, कफप्रसेक, भारीपन, अरुचि आदि लक्षण होने पर तथा ग्रहणी

का निमित्त कारण शीतोपचार या शीतल वायुमें फिरना आदि हों, तो आनदभैरव देना चाहिये ।

शीतोपचार या शीतल वायुसे उत्पन्न मध्यम कोष्ठशूल, उदरमें वायुकी उत्पत्ति, मलावरोध और बार-बार दस्त होने पर भी शौचशुद्धि न होना आदि लक्षण होने पर आनदभैरवका प्रयोग करना चाहिये ।

वातज अपस्मारमें यह रस आक्षेपको दबानेमें सहायक होता है ।

आनदभैरव रसमें काले वच्छनागके स्थान पर श्वेत वच्छनाग मिलाया जाय, तो उदकमेह, पिष्टमेह, शनैर्मेह आदि कफज प्रमेहों पर अच्छा लाभ पहुँचता है । इस रसायनके प्रमेह पर प्रयोग करनेमें इस बातको सम्हालना चाहिये कि, मूत्रमें शहद बिल्कुल न हो, यदि है तो भी अति कम मात्रामें मूत्र बार-बार अधिक परिमाणमें, मूत्रका विशिष्ट गुरुत्व अति कम और मधुमेहके तृषा, दाह, चिपचिपापन आदि लक्षण न हों, इस स्थितिमें आनन्दभैरव रसका अच्छा उपयोग होता है । इन प्रमेहोंमें मुख्य लक्षण अपचन भी होना चाहिये । अग्निमान्द्य इतना हो कि, थोड़ा खाने पर भी पचन न हो । इस तरह अपक्व अन्न पक्वाशय और बृहदन्त्रमें रहजानेसे प्रमेह या मूत्रातिसार उत्पन्न हुआ हो, तो उसपर आनन्दभैरव रस देना चाहिये । (औ० गु० ध० शा० के आधारसे)

द्वितीय विधि—शुद्ध सिगरफ, शुद्ध वच्छनाग, कालीमिर्च, सोहागेका फूला और पीपलको समभाग मिला नागरवेलके पानके रसमें १२ घण्टे खरल कर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बनावे ।

उपयोग—यह रसायन कफज कासके निवारणार्थ व्यवहृत होता है । दिनमें दो बार १-१ गोली जल या शहद-पीपलसे देवें । कासके अतिरिक्त जुकाम, अपचन, कुछ बुखार होना, दिनमें ३-४ बार शौच होना आदि पर भी लाभदायक है ।

(३९) कर्पूर रस ।

बनावट—कपूर, शुद्ध हिंगुल, शुद्ध अफीम, नागरमोथा, इन्द्रजौ और जायफलको समभाग मिला ३ घण्टे अदरखके रसमें खरलकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवे । (भै० र०)

मात्रा—½ से १ रत्ती दिनमें ३ बार जलके साथ देवें ।

उपयोग—यह रसायन ज्वरातिसार, अतिसार, ६ प्रकारके ग्रहणी-रोग और प्रबल रक्तातिसार आदिको रोगानुसार अनुपानके साथ देनेसे सत्वर दूर करता है । विसूचिकामें दूषित मल निकल जानेके पश्चात् २-२ घण्टे पर देनेसे अतिसार और वमन दोनोंका निवारण करता है ।

पित्तातिसार और इसके साथ ज्वर, तृषा, दाह, चक्कर आदि लक्षण होनेपर तथा पीला, नीला और अरुण रंगका मल होने पर इस रसायनका अच्छा उपयोग होता है। अन्य सब प्रकारके अतिसारमें इतना अधिक लाभ नहीं होता।

संग्रहणीके सब प्रकारों पर इसका उपयोग होता है, ऐसा मूल-ग्रन्थकारने लिखा है। परन्तु पित्तज और वातज ग्रहणीमें ही इसका अच्छा व्यवहार होता है, कफजमें नहीं।

वातज संग्रहणीमें भोजनका पचन ठीक नहीं होता। खट्टी वास वाली उग्र डकारें आती रहती है, मुँह और कण्ठ सूखते है, एव तृषा, नेत्रके पास अधकार, कानमें आवाज तथा कण्ठ, पार्श्व, जङ्घा, गुल्फ आदि संधि स्थानोमें पीड़ा, उदरमें सुई चुभाने सदृश वेदना हृदयमें व्यथा, निर्बलता, कृशता, मुँहमें बेस्वादुपन, भोजनकी इच्छा होती है, परन्तु खानेके साथ उदरमें काटने सदृश पीड़ा होना, रोगके अनुपातसे क्षुधा अच्छी लगना, हाथ-पैर गल जाना, अप्रसन्नता, अन्नपचन होने पर आफरा, अनेक समय पतले शौच होना, चिपचिपा, आममिश्रित झाग युक्त मल बड़ी आवाजके साथ गिरना, बहुत समय किंछनेसे मंत्र आना, मलशुद्धि न होना, शौच शंका बनी रहना, शौचका वेग बार-बार आना आदि लक्षण होते हैं। थोड़ा किंछने पर शौच होता है, और इससे कुछ अच्छा भी मालूम पड़ता है, परन्तु पुनः-पुनः शौच जानेकी इच्छा होती रहती है। इस परिस्थितिमें उत्तम शामक ओषधि चाहिये, वह कर्पूर रस है। इस रसायनमें अफीम, जायफल आदि शामक द्रव्योसे वातवाहिनियोका उत्पन्न हुआ क्षोभ कम होता है; जिससे शौच-शंका भी कम होती है।

पित्तप्रधान संग्रहणीमें नीला-पीला, रक्तयुक्त पतला दुर्गन्ध-मय मल होजाता है, अधिक वेदना नहीं होती, किंछना भी नहीं पड़ता; परन्तु उदरमें दाह, शौचमें जलन, मलोत्सर्ग होनेपर भी गुदामें दाह, गुदपाक, सर्वाङ्गमें दाह, अरुचि, तृषा आदि लक्षण अधिक होते हैं। इस अवस्थामें कर्पूर रस अच्छा उपयोगी है।

रक्तातिसारमें अफीम समान तीव्र स्तम्भक ओषधिकी अपेक्षा प्रियंगु, लोध, अर्जुन या धायके फूल सदृश रक्तस्तभक और रक्तप्रसा-दन करनेवाली ओषधि देना अधिक हितकर है। अफीम तीव्र शामक होनेसे अन्तरेन्द्रियका व्यापार अत्यधिक मद होजाता है। फिर इसकी क्रियाशक्ति अनेक बार नष्टप्रायः होजाती है। उसे नियमित होनेमें

बहुत काल लग जाता है। अतः इस विकार पर होसके तबतक अफीम-प्रधान औषधि न देना, यह अच्छा माना जायगा। (औ० गु० ध० शा०)

सूचना—कर्पूर रसमें अफीम और जायफल अति स्तम्भन करनेवाली औषधि होनेसे अतिसार और संग्रहणीकी आमावस्था (कच्चे आम) में इसे प्रयोगमें नहीं लेना चाहिये।

नये रक्तातिसारके प्रारम्भमें भी इस रसायनका उपयोग नहीं करना चाहिये, वरना अपक्व दोष भीतरमें रह जानेसे १-२ मास बाद फोड़ा-फुन्सी आदि अनेक रोग हो जाते हैं।

(४०) अगस्तिसूतराज रस।

बनावट—शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक १-१ तोला, शुद्ध सिंगरफ २ तोले, धतूरेके शुद्ध बीज ४ तोले और शुद्ध अफीम ४ तोले लें। सबको विधिपूर्वक मिला भाँगरेके रसमें ७ दिन खरल करके आध-आध रत्ती की गोलियाँ बनावे। (यो० र०)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें ३ समय। अतिसारमें जीरा और जायफलके चूर्णके साथ। मंदाग्नि, वमन, शूल, कफ और वातविकारमें त्रिकटु और शहदके साथ। प्रवाहिकामें कालीमिर्च और घीके साथ।

उपयोग—अगस्तिसूतराज शामक, वेदनाहर, जन्तुघ्न और अंतड़ीमें उत्पन्न होनेवाली अब्धातु (जल) की वृद्धिको कम करता है। इस रसायनका उपयोग पक्वातिसार और निराम ग्रहणीमें विशेष लाभदायक है। इसका उपयोग आमसंग्रहणी या आमातिसारकी आमावस्थामें नहीं करना चाहिये। लङ्घन द्वारा आमपचन करा फिर इसका उपयोग सम्हालपूर्वक करना चाहिये।

पक्वातिसारमें कफ, वात और कफवातज प्रकोपमें इसका अच्छा उपयोग होता है। विशेषतः बड़े-बड़े जुलाब लगना, उदरमें आक्षेप सदृश शूल, रह-रह कर शूल चलना और कुछ काल शमन होजाना आदि लक्षण हो, तो अगस्तिसूतराज रस उत्तम कार्य करता है। यदि इस रोगमें झागयुक्त कुछ दुर्गन्ध वाली वमन भी होती हो, तो अनुपान रूपसे त्रिकटु और शहद मिलाना चाहिये।

संग्रहणीके विकारमें आमावस्था दूर होनेके पश्चात् इसका अच्छा उपयोग होता है। वातप्रधान और कफप्रधान संग्रहणीके रोगीको मट्ठा पर रख कर इस औषधिका उपयोग करते रहनेसे अच्छा लाभ पहुँचता है। ऐसे अनेक रोगियोंको लाभ होनेके उदाहरण मिले हैं।

कफप्रधान संग्रहणीमें वेदना होती है, परन्तु तीव्र नहीं होती।

मल दुर्गन्धयुक्त, चिपचिपा कफ सदृश होता है। इस स्थितिमें इस रसायनसे अच्छा लाभ होता है। मलकी दुर्गन्ध कज्जली और हिंगुलके हेतुसे कम हो जाती है, तथा पित्तस्राव योग्य मात्रामें होनेसे अग्निमान्द्य कम होता है। धतूराके बीजसे अन्तःस्राव अर्थात् कफयुक्त अव्-धातु स्राव नियमित होता है।

धतूरेसे वातप्रधान ग्रहणीमें क्षोभ और शूलका ह्रास होता है; और अफीमके योगसे पूर्ण प्रशमन होता है। वातग्रहणीमें जो भयंकर शूल होता है; उसे अफीम सत्वर दूर करती है। इस औषधिके देने पर वस्ति देनेसे कार्य जल्दी होता है। विशेष अनुवासन वस्ति (या एरंड तैलकी पिचकारी) देनी चाहिये। ग्रहणीमें पहले अग्निमान्द्य होनेसे घृत वा अन्य प्रकारके स्नेहका उपयोग न करना अच्छा माना जायगा।

अतिसार या ग्रहणीके अतमें कचित् प्रथमावस्थामें उपेक्षा करने पर भी वार-वार दस्त होते रहते हैं। इस हेतुसे गुदामार्ग और संपूर्ण कोष्ठकी ग्राहक शक्ति बिल्कुल क्षीण होजाती है। फिर मल भीतर नहीं रुक सकता, सत्वर बाहर आजाता है। इस अवस्थामें अगस्तिसूतराजका उपयोग अच्छा होता है।

प्रवाहिका बिना बोध वार-वार शौच होजाना, इस तरह अधिक किंछना, किसी-किसीको अधिक बलसे किंछने पर गुदाका बाहर निकल जाना, किसी-किसी रोगीको वेदनाके हेतुसे मूर्च्छा आ जाना इत्यादि लक्षण होने पर अगस्तिसूतराज रसका उपयोग बहुत अच्छा होता है। धतूरा अन्त्रस्राव और आक्षेपको कम करता है, तथा अफीम वेदनाका निवारण करती है।

मूत्रमार्गमेंसे शर्करा (छोटे कंकड़) या सिकता (रेत) जाने पर आशयों पर आघात पहुँचता है, जिससे शूल उत्पन्न होता है, यह शूल कितनेक रोगियोंमें अति भयंकर होता है। सिकता या शर्कराका विद्रावण हो जाय, या इनकी उत्पत्ति बिल्कुल न हो, और उत्पन्न शर्करा-सिकता मूत्रमार्गमें से सरलतापूर्वक निकल जाय, इस तरहकी औषध-योजना करनी चाहिये। परन्तु ऐसी चिकित्सामें समय अधिक लगता है; और शूलकी त्रासदायक वेदना हो रही है। अतः 'पश्चाच्चिकित्से-चूर्णं वा बलवन्तमुपद्रवम्' इस न्यायानुसार बलवान् उपद्रवको पहले जीतना चाहिये। अतः शूल शामक चिकित्सा तत्काल करनी चाहिये। इस स्थान पर अगस्तिसूतराज रसको मूत्रल अनुपानके साथ देना

चाहिये। उशीरासव, चंदनासव, सारिवासव या अरविंदासव, यह आसव कल्प अनुपानरूपसे विशेष अनुकूल रहता है। अगस्तिसूतराजसे स्तम्भन होकर मूत्रका परिमाण कम होने की संभावना है। इसी हेतुसे मूत्रल अनुपानकी योजना की जाती है।

यकृत्का पित्त अधिक गाढ़ा होजानेसे पित्ताशयमें अश्मरी (पत्थर) बन जाती है। कभी एक गोल बड़ी अश्मरी होती है, कभी २-५ या १०००-२००० या इससे अधिक बाजरीके कण सदृश होती है। इनमेंसे कोई कण जब पित्तनलिकामें होकर ग्रहणीमें जानेका प्रयत्न करता है, तब शूलकी उत्पत्ति होती है। यह शूल वातप्रधान होता है। इसका मूल कारण पित्तस्रावकी न्यूनता है। इस हेतुसे पित्त शुष्क होकर जम जाता है। चिकित्सा कारणानुरोधसे करनी चाहिये; अर्थात् वस्तुस्थितिका परिवर्त्तन कर पित्तको सम्यक गुणयुक्त बनाना चाहिये। यह कार्य ताम्रप्रधान ओषधिसे होता है। ताम्रभस्म करेलेके रस या कुटकीके साथ दी जाती है, अथवा सूतशेखर दिया जाता है। परन्तु कभी शूल इतना भयंकर होता है कि, पहले उपद्रव दूर करनेकी चेष्टा करनी पड़ती है, ऐसे समय पर शूलजनित वेदनाको शमन करनेके लिये अगस्तिसूतराज रस अति उपयोगी ओषधि है। (औ० गु० ध० शा० के अधारसे)

सूचना—इस ओषधिमें अफीमका परिमाण ज्यादा है। अतः सम्हाल पूर्वक थोड़ी मात्रामें उपयोग करना चाहिये।

(४१) कनकसुन्दर रस।

बनावट—शुद्ध हिंगुल, कालीमिर्च, शुद्ध गन्धक, पीपल, सोहागे का फूला, शुद्ध बच्छनाग और शुद्ध धतूरेके बीज, सबको समभाग मिला भाँगके क्वाथमें ४ प्रहर खरल कर एक-एक रत्तीकी गोलियाँ बनावें। (भै० र०)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें ३ बार मट्ठेके साथ दें।

उपयोग—कनकसुन्दर रस ज्वरातिसार, अतिसार और संग्रहणीको दूर करके अग्नि प्रदीप्त करता है।

कनकसुन्दर रस छोटे बालकोंके लिये उत्कृष्ट ओषधि है। बालकोंके दाँत निकलनेके समय त्रासदायक लक्षणोंको कम करनेके लिये इस रस का उपयोग अति लाभदायक है।

दाँत निकलनेके समय विशेषतः वातविकृतिजनित लक्षण उत्पन्न

होते है। बालक डरपोक बन जाता है, बार-बार रोता रहता है, और पचनक्रिया बिगड़ जाती है। फिर इसी हेतुसे उदरमें आफरा और वमन या अतिसार होते है। दस्त बहुधा हरे रंगका होता है, दस्तमें दूध-पानी पृथक् होते है, दूधके दधिकण जैसेके वैसे भासते हैं मानसिक स्थिति अस्थिर हो जाती है। किसी तरह चैन नही पडता बच्चा एकसे दूसरेके पास, दूसरेसे तीसरेके पास जानेका प्रयत्न करता है। धीरे-धीरे रोना, जोरसे रोना, चिल्लाना, काटना, मसूडो पर अपनी मुट्ठी जोरसे दबाने का प्रयत्न करना, निद्रानाश और इसी हेतुसे नेत्रमें भारीपन आदि लक्षण उपस्थित होते है। इस व्याधि पर कनकसुन्दर रसका अति उत्तम उपयोग होता है। दन्तोद्भव ज्वरमें यदि ज्वर (शारीरिक उष्मा) अति तीव्र न हो, तो कनकसुन्दर देना चाहिये। इस रसायनमें रहे हुए धतूरोके बीजोसे वातप्रकोपका शमन होकर ज्वरकी निवृत्ति होती है।

ग्रहणीके विकारमें निराम अवस्था होने पर इस रसायनका उपयोग होता है। जब तक कच्चे आम निकलते हो, तब तक एक दो दिन लङ्घन कराना चाहिये। फिर औषध योजना करनी चाहिये। प्रत्येक शौच के समय रक्तमिश्रित थोड़ी आम गिरना, इसके साथ उदरमें अतिशय शूल निकलना, फिर जोरसे किंछने पर कुछ अच्छे लगना, कभी-कभी शौचके लिये बैठे बैठे देर तक किंछता ही रहना, उठने की इच्छा न होना आदि लक्षण प्रतीत होते हो, तो उस अवस्थामें अफीम सदृश स्तम्भक औषधि देनेसे अन्त्रमें रही हुई सूक्ष्म मांसपेशियोका स्तम्भन होकर आम और मलका निःसरण उत्तम प्रकारसे नहीं होता। आम और मलमें से कुछ अंश शेष रह जानेसे वह अधिक प्रबल विकार की उत्पत्ति करता है। कनकसुन्दर देनेसे उसमें रहे हुए धतूरा और भाँग वेदना शमन करते है, मांसपेशियोंका स्तम्भन नही करते, और इसके विपरीत मल निःसरणमें सहायता करते है। हिंगुल जन्तुघ्न गुण के हेतुसे विषकी निवृत्ति करता है। अतः यह औषधि छोटे बच्चोकी संग्रहणी पर बडे मनुष्योके संग्रहणी रोगकी अपेक्षा विशेष लाभदायक है। बड़ी आयु वाले विशेषतः वातप्रधान प्रकृति वाले रोगियोके लिये यह अधिक उपयोगी है। इस रसका उपयोग जीर्णरोगकी अपेक्षा नये रोग पर अधिक होता है।

अतिसारके विकारमें वातप्रधान लक्षण होने पर इस औषधिका उत्तम उपयोग होता है। अतिसारमें अन्त्रकी श्लैष्मिक कलामें से स्राव अधिक होता है। इस स्रावको केवल स्तम्भक औषधिके योगसे दबानेका

प्रयत्न करने पर वह अन्त्रमें रह जाता है। फिर कुछ समयमें विकृति होकर अतिसार पुनः बढ़ जाता है। इस हेतुसे इस रोगमें केवल स्तम्भक औषधि न देकर श्लैष्मिक कलामें से उत्पन्न स्रावकी अधिकताको कम करनेवाली औषधि देनी चाहिये। धतूरा इस स्रावको नियमित बनाता है। अतः धतूरा मिश्रित औषधि—कनकसुन्दर रस सम्हालपूर्वक दिया जाता है। वातातिसार और वातकफातिसार, दोनों पर इस रसका उपयोग हुआ है।

अनेक दिनों तक अतिसारका विकार चालू रहनेसे कुण्डलिका (Sigmoid Colon) और गुदनलिका (Rectum) की अन्तस्त्वचामेंके एक प्रकारका पूय सदृश मलिन स्राव मलके साथ होने लगता है। अन्त्र में मलका दवाव होने पर यह स्राव अधिकाधिक होता जाता है। ऐसी परिस्थितिमें बेलफलोंके क्वाथके साथ कनकसुन्दर देनेसे अच्छा लाभ पहुँचता है।

वातवर्द्धक पदार्थ अधिक खानेसे विकृत अम्ल रसकी उत्पत्ति होती है। फिर अतिसार हो जाता है। इस अतिसारमें ज्वर भी रहता है। एवं बार-बार डकार आना और उदरमें आफरा आदि लक्षण हों, तो कनकसुन्दर रस देना चाहिये।

आमाशय बिल्कुल शिथिल होजाने पर उसमें पाचक पित्तकी उत्पत्ति ठीक नहीं होती। इस हेतुसे अन्न पचन भी ठीक नहीं होता। अग्निमान्द्य होजाता है। शनैः-शनैः परिणाम सम्पूर्ण पचनेन्द्रिय पर होकर सब प्रकारके पाचक पित्त (आमाशय, पित्ताशय, अन्त्र और अग्न्याशयमेंसे निःसृत पित्त) सम्यक् उत्पन्न नहीं होते। पचनसंस्था विकृत होजाती है। इस तरह अग्निमान्द्यसे अतिसारका प्रारम्भ होजाता है। इसमें दुर्गन्धयुक्त बड़े-बड़े दस्त होते हैं। इस विकारमें कनकसुन्दर अमूल्य औषधि है। (औ० गु० ध० शा० के आधारसे)

अतिसार, ग्रहणी रोगमें बार-बार किछते रहने पर गुदभ्रंश होजाता है। किसीको गुदास्थानमें शूल भी निकलता है, उस पर यह कनकसुन्दर, पंचामृत पर्पटी और सौंफके चूर्णके साथ दिनमें २ समय भोजनके बीचमें देनेसे और मट्ठा पिलानेसे विकार थोड़े ही समयमें शमन होजाता है। बाह्य उपचार रूपसे भातमें घी डालकर सेक करने और माजूफलको शहद में मिलाकर लेप करने पर सत्वर लाभ पहुँचाता है।

(४२) ग्रहणीकपाट रस।

बनावट--शुद्ध पारा २ भाग, शुद्ध गन्धक १० भाग, शुद्ध वत्सनाग १ भाग, शुद्ध अफीम ४ भाग, कौड़ी भस्म ७ भाग, कालीमिर्च ८ भाग और शुद्ध धतूरेके बीज २० भाग लें। सबको यथाविधि मिलाकर खरल करें। फिर पोस्तडोडेके क्वाथकी ३ भावना देकर एक-एक रत्तीकी गोलियाँ बनावें। (मूल ग्रन्थमें भावना देनेका नहीं लिखा; हमने अनुकूल समझकर बढ़ाया है।) (र० रा० सु०)

मात्रा--२-२ रत्ती दिनमें ३ समय, जीरेका चूर्ण ३ माशे और शहद ६ माशे मिलाकर चटावें। अथवा मट्ठेके साथ देवें।

उपयोग--ग्रहणीकपाट रस उग्र संग्रहणी, भयंकर अतिसार और मन्दाग्निको दूर करता है, और कच्ची आमको पाचन करता है।

यह रसायन तीव्र वेदनायुक्त संग्रहणी रोगमें लाभदायक है। ज्वर, मुखपाक, दाह, उदरपीड़ा होकर बार-बार दस्त आना, गुदामें अति जलन, गुदाका बाहर निकलना, आम और रक्तमिश्रित मल थोड़ा-थोड़ा बार-बार शूलसहित निकलना आदि लक्षण होनेपर ग्रहणीकपाट रस विशेष लाभदायक है। इस रसायनसे आमका पचन होता है, अग्नि प्रदीप्त होती है, शोथ दूर होता है, और थोड़े ही दिनोंमें संग्रहणी रोगका शमन होता है। इस रसायनमें धतूरेका परिमाण अधिक है, जिससे ग्रहणीकी पिच्छिल त्वचामें से जो अन्धातुस्राव होता है, वह नियमित बनता है। अफीममें स्तम्भक और वेदनाशामक गुण होनेसे बार-बार शौच जाना, शूल होना, इत्यादि विकार शीघ्र बन्द होजाते है। थोड़े दिन तक नियमपूर्वक इस ग्रहणीकपाटके सेवनसे संग्रहणी रोग नष्ट होजाता है। वातसंग्रहणी, पित्तसंग्रहणी, कफप्रधान संग्रहणी, रक्त और पूयमय संग्रहणी, सब प्रकारके नये रोगमें यह रसायन अच्छा काम देती है।

सूचना--इस रसायनमें अफीम मिली है। अतः रोगारम्भमें जब तक आम कच्चे हों, तब तक इसका उपयोग नहीं करना चाहिये।

दूसरी विधि--शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, अतीस, हरड़, अभ्रकभस्म, यवक्षार, सज्जीखार, सोहागेका फूला (मतान्तरमें कॉच लवण), मोचरस, बच और शुद्ध भाँग, इन ११ ओषधियोंको समभाग मिलाकर १२ घण्टे जम्भीरी नीबूके रसमें खरल कर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बनावें। (यो० र०)

मात्रा--१ से ४ रत्ती दिनमें ३ बार शम्बुक भस्म, घी और

शहदके साथ या मट्ठे के साथ। बालकोंको मात्रा आधसे १ रत्ती तक है।

उपयोग—यह रसायन नये ग्रहणी रोग पर अति हितकर है। इस रोगमें कज्जली कल्प, दरद कज्जली कल्प और दरदकल्प (हिंगुल-प्रधान औषधि), ये तीनों विकार भेदसे प्रयोजित होते हैं। केवल अन्त्र में दोष होने पर कज्जलीकल्प, आमाशय और अन्त्र दोनों स्थानोंमें विकृति होने पर दरद कज्जलीकल्प, तथा केवल आमाशयमें दोषदुष्टि होने पर दरदकल्पका प्रयोग करना चाहिये।

यह रसायन विशेषतः बालकोंको अधिक अनुकूल रहता है। एवं बड़ी आयुवालोंको भी दिया जाता है। जब दस्त सफेद रंगके, अपक्व अन्नयुक्त, सफेद गाढे और झागवाले आम मिश्रित, किंचित रक्तयुक्त और योग्य रचनारहित हो; शौच कम समय जाना पड़ता हो परन्तु प्रत्येक समय मलकी मात्रा अधिक हो, शौच होने पर त्रास होना, कुछ प्रवाहण, विशेषतः मालूम हुए बिना शौच हो जाना या अकस्मात् शौच होना, शौचके साथ वान्ति, वान्तिमें अपक्व और खट्टा दुर्गन्ध युक्त अन्न गिरना, इनके अतिरिक्त अधिक शौच होनेसे ज्वर आना आदि लक्षण होने पर ग्रहणीकपाट देना चाहिये।

बड़ी आयुवाले को मानसिक आघात या शोकसे उत्पन्न अति-सार और ग्रहणी रोग पर ग्रहणीकपाट रसका अच्छा उपयोग होता है। शोकोत्पन्न और मनोव्याघात जन्य विकार विशेषतः दुश्चिकित्स्य माने गये हैं। इन विकारोंमें मनोदेश अधिक प्रक्षुब्ध हो जाता है। इस हेतुसे शरीरमें व्याधि उत्पन्न होजाती है। इस तरहके पीड़ित व्यक्तिको किसी भी स्थानमें चैन नहीं पड़ता। एक ही विषय बार-बार मनमें आता रहता है, उसी विषयका चिन्तवन बना रहता है। इसी हेतुसे अन्य इन्द्रियोका व्यापार मन्द होजाता है, और वातधातुमें क्षोभ उत्पन्न होता है। फिर पचनेन्द्रिय संस्था विकृत होती है। इस विकार पर मनोदेश पर लाभदायक, अभ्रक युक्त पाचक और अन्नप्रदीपक औषधि की आवश्यकता है। यह कार्य इस रसायनसे अत्युत्तम होता है।

राजयक्ष्मा रोगमें उपद्रव रूपसे उत्पन्न अतिसार या ग्रहणीविकार अधिक भयंकर है। इस विकारमें बडी आंत बिल्कुल शिथिल होजाती है; और पचनक्रिया मन्द होजाती है। फिर सफेद रंगके आममिश्रित दस्त बिना बोध होते रहते है, इस विकार पर ग्रहणीकपाट हितकारक है।

कितनेक समय ग्रहणी रोग जीर्ण होजाने पर या नूतन ग्रहणी रोगके साथ श्वासरूप उपद्रव उपस्थित होजाता है। इस श्वास पर भी ग्रहणी-

कपाटका उत्तम उपयोग होता है ।

ग्रहणीकपाटमें कज्जली कीटाणुनाशक, रसायन और योगवाही है । अतीस शक्तिवर्द्धक, यकृत्के पित्तका स्राव कराने वाली, पाचक और ज्वरघ्न है । अभ्रकभस्म शक्तिवर्द्धक, रसायन, मनोदेशदुष्टिनाशक और क्षय रोगमें हितकर है । तीनो क्षार पाचक और यकृतोत्तेजक हैं । मोचरस उपलेपक, स्तम्भक और संग्राही है । भांग संग्राही, दीपक और पाचक है । जम्भीर रस पाचक और अग्निप्रदीपक है । हरड़ दीपन, पाचन और रसायन है । वच आमशूलघ्न, मनोदोषनाशक और आक्षेपहर है । (ओ० गु० ध० शा० के आधारसे)

(४३) दुग्ध वटी ।

बनावट—शुद्ध बच्छनाग १२ रत्ती, अफीम शुद्ध १२ रत्ती, लोहभस्म ५ रत्ती और अभ्रक भस्म ६० रत्ती लें । सबको मिला बकरीके दूध में १ दिन खरल कर १–१ रत्तीकी गोलियाँ बनावें । (भै० र०)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २ वार दूधके साथ देवे ।

उपयोग—इस ओषधिके सेवनसे अनेक प्रकारके शोथरोग, शोथयुक्त संग्रहणी, अतिसार, पेचिश, विषम ज्वर, मन्दाग्नि, पाण्डु आदि रोग दूर होते है । जिस संग्रहणीके रोगीको सूजन और बुखार रहता हो, और मट्ठा अनुकूल न रहता हो, उसके लिये यह ओषधि हितकर है । इसके सेवनके समयमें केवल बकरीके दूध पर रहने तथा नमक और जल न लेनेसे शोथ सह संग्रहणी थोडे ही समयमें दूर होती है ।

(४४) लाही चूर्ण ।

बनावट–शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, अभ्रक भस्म, भुनी हीग, छोटी इलायची, दालचीनी, तेजपात, नेत्रवाला, जायफल, लौंग, कूठ, भुना जीरा, कुलीजन सोठ, मिर्च, पीपल, मोचरस, बेलगिरी, कलौंजी, काला-नमक, सैंधानमक, सॉभरनमक, बिड़नमक, समुद्रनमक, सबको समभाग मिलावे । फिर सबके समान भुनी भॉग मिलाले । (र० रा० सु०)

मात्रा—१ से २ माशे सुबह-शाम जीरा, सोठ और सैंधानमक मिले हुए गायके ताजे मट्ठेके साथ सेवन करे ।

उपयोग—यह रसायन वातज, कफज और आमयुक्त संग्रहणी, अतिसार, प्रवाहिका, उदररोग, मन्दाग्नि आदिको नाश कर पचनशक्ति को बढ़ाता है, तथा संग्रहणीके ज्वर, कास, श्वास, निद्रानाश, अरुचि, निर्बलता आदि उपद्रवोंको भी दूर करके शरीरबलका रक्षण करता है ।

नूतन आमयुक्त संग्रहणी और उदरके विविध विकारोंको दूर करनेके लिये यह उत्तम औषधि है। यह चूर्ण पचन क्रियाकी वृद्धि करता है। ज्वर, कास, श्वास, निद्रानाश, अरुचिका निवारण करता है; तथा शूलसह आमातिसार और रक्तातिसार का शमन करता है।

इस रसायनमें मुख्य औषधि भांग है। इस हेतुसे इस चूर्णमें पित्तवर्द्धक, आमपाचक, कफनाशक, वातनाशक, अग्निप्रदीपक और ग्राही गुण अवस्थित है। यदि वातप्रकोप और कफवृद्धिजनित संग्रहणी रोगमें अग्निमान्द्य हो, अथवा अधिक पक्के भोजनके सेवनसे मुँहमें अरुचि, दूषित डकार आना, उदरमें वायु भरा रहना, मलमें कच्चे आम जाना, शूल चलना, उदरमें भारीपन, वार-वार दस्त होनेपर भी मलशुद्धि न होना आदि लक्षण प्रतीत होते हों, तो इस चूर्णके सेवनसे पचनक्रिया सबल होकर ग्रहणीरोगका निवारण होजाता है।

नूतन संग्रहणीमें यह चूर्ण अकेला ही लाभ पहुँचा देता है, तथा जीर्णरोगमें पर्पटी कल्पके साथ थोड़ी मात्रा में दिनमें ३ वार देते रहने पर अग्निप्रदीपक रूपसे अच्छी सहायता पहुँचाता है।

सूचना—इसके सेवनसे किसी-किसीको तृषा बढ़ जाती है एवं शक्तिसे मात्रा अधिक होने पर मादक असर होता है। ऐसा होने पर मट्ठेका अधिक सेवन कराना चाहिये, तथा मात्रा कम कर देनी चाहिये।

(४५) लघुलाही चूर्ण।

बनावट—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, अजवायन, भुना जीरा, काला नमक, सेंधानमक, भुनी हींग, और विड़-नमक, ये सब सम भाग और कुड़ाकी छाल (मतान्तरमें भुनी भांग) सबके बराबर लें। काष्ठादि औषधियोंका बारीक चूर्ण करें। फिर कज्जली मिलाकर खरल करें।

मात्रा—२ से ३ माशे तक दिनमें ३ वार मट्ठेके साथ।

उपयोग—यह चूर्ण नयी वातज, पित्तज और आमप्रधान संग्रहणी, शूल, आफरा, पेचिश और सब प्रकारके शूलसहित अतिसार का नाश करता है। अंत्रकी संधारणशक्ति बढ़ाकर अन्त्रको बलवान् बनाता है, रक्तातिसार और उदरशूलका शमन करता है; एवं आहारको अच्छी रीतिसे पचन कराकर मलको बाँधता है।

जिसको भांग अनुकूल न हो, अन्त्रकी धारणशक्ति शिथिल होजानेसे वार-वार दस्त लगते ही रहते हो, तथा उदरमें मरोड़ा भी आता हो, उसके लिये कुड़ाकी छाल वाली यह औषधि अति हितकर है।

(४६) शंख वटी।

बनावट—इमलीका क्षार (भस्म) ४ तोले और पाँचो नमक मिलाकर ४ तोले लें। सबको २० तोले नीबूके रसमें घोल दें। पश्चात् ४ तोले शुद्ध शंखको तपा तपा कर बिखर जाय, तबतक उस रसमें बुझावें या शंखभस्म मिला लें। बादमें भुनी हींग, सोंठ, मिर्च और पीपल ४-४ तोले, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और शुद्ध बच्छनाग, तीनों १-१ तोला लें। पारद-गन्धककी कज्जली करके शंख भस्मके साथ मिलावें। पश्चात् अन्य ओषधियोंका कपड़छन चूर्ण मिला, ३ दिन नीबूके रसमें खरल करके १-१ रत्तीकी गोलियाँ बनावें। (यो० र०)

मात्रा—१ से ४ गोली दिनमें ३ समय जलके साथ देवें।

उपयोग—यह वटी क्षय, ग्रहणी, अजीर्ण और पंक्तिशूल, आदि व्याधिको दूर कर अग्निको प्रदीप्त करती है।

शंख वटी आयुर्वेदमें पाचन ओषधियोंके भीतर एक उत्तम ओषधि है। विष्टब्धाजीर्ण जनित आफरा, उदरव्यथा, शूल और व्याकुलता होने पर शंख वटीका उत्तम उपयोग होता है। अधिक भोजन कर लेने पर उदरमें भारीपन या उदरमें वेदना होनेपर शंख वटी अति हितकर है। वातवर्द्धक या जड़ भोजन खानेपर कुछ समयके पश्चात् उदर खूब खिचने लगता हो ऐसा भासता है, श्वास लेनेमें प्रतिबन्ध होता है, चलना-फिरना तो अशक्यप्राय: हो जाता है। इस विकार पर शंख वटी देनेसे आमाशय बन्धको उत्तेजना मिलती है, एवं आमाशयमें अलसीभूत अन्नको आगे गति करानेमें सहायता मिल जाती है। इस हेतुसे उदरकी खिचाई और व्यथा कम हो जाती है। मध्यम कोष्ठके शूलमें भी यही स्थिति होती है, उस पर भी शंख वटीका अच्छा उपयोग होता है। शंख वटीसे अन्त्रकी पुर:सरणक्रिया बढ़ जाती है, अवरोध दूर होजाता है, और अन्नको आगे-आगे चलानेमें सुविधा होजाती है। इस तरह शूलके हेतु नष्ट होजानेसे शूल स्वयमेव शमन होजाता है। लघु और बृहदन्त्रके संयोग स्थानमें अपक्व अन्न संचय होकर आनाह और शूल उत्पन्न होने पर शंख वटीका उत्तम उपयोग होता है। ये सब विष्टब्धाजीर्णकी अवस्थाएँ है, और यह शूल अजीर्णजनित है।

विदग्धाजीर्णमें कण्ठमें दाह, खट्टी डकार, उदरमें जलन, भोजन करनेके पश्चात् घण्टाओं तक अन्न जैसाका वैसा पड़ा रहना आदि लक्षण होते हैं। इस अवस्थामें शंखवटी अच्छा लाभ पहुँचाती है।

अपक्क आहार, विदग्धाहार जनित मूर्च्छा, अत्यधिक भोजन, विष्टम्भकारक अन्न, कच्चे या अर्द्धपक्व भोजन, पक्के भारी भोजन, शीतल पदार्थ या दुर्गन्धयुक्त भोजनका सेवन आदि कारणोसे अतिसार होजाता है। यह अतिसार अन्नविपके हेतुसे होता है। इस अन्नविपसे विष्टम्भ, वेदना, शिरदर्द, मूर्च्छा, भ्रम, पीठ और कमर जकड़ जाना, जँभाई, हाड़फूटन, तृपा, ज्वर, छर्दि, प्रवाहिका, अरुचि, अपचन आदि विकार होजाते है। इस अन्नविपसे विदाह होकर अन्त्रकी श्लैष्मिक कला विकृत होती है; और अब्धातुकी वृद्धि होती है। फिर यह अब्धातु (जल) अपक्क आहारमें मिश्रित होकर वडे-वडे जुलाव लगने हैं। इस जुलावके साथ उदरमें आफरा भी होता है। सारे उदरमें मन्द-मन्द वेदना होती है, या शूल चलता है। ये सब अन्नविप जनित क्षोभसे होते हैं। इस अतिसारमें शंख वटी उत्तम कार्य करती है।

ग्रहणी रोगकी अति तीव्रावस्थामें इस ओपधिसे अधिक लाभ नही होता। परन्तु इस अवस्थाकी प्राप्ति होनेके पहले अग्निमान्द्य, अजीर्ण, अन्नविपसंचय आदि पर इसका अच्छा उपयोग होता है। एवं ग्रहणीके तीव्र विकारमें भी कफप्रधान लक्षण और शूल होने पर शंख वटी उत्तम लाभदायक है।

अग्निमान्द्यमें अरुचि और शूल अधिक होने पर शख वटीका बहुत अच्छा उपयोग होता है।

परिणामशूलमें विबन्ध, आफरा और कोष्ठशूल, ये लक्षण होने या अन्न आमाशयमें अधिक समय रहकर शूल उत्पन्न होने पर शंख वटी दी जाती है।

जीर्ण बद्धकोष्ठके विकारमें लघु और बृहदंत्रके सयोगस्थान, अन्त्रपुच्छ, बृहदन्त्र, इन स्थानोमें आफरा, कब्ज होकर भयंकर श्वास, शूल, घबराहट, या अस्वस्थता आदि लक्षण प्रतीत होते हो, तो शख वटीका उत्तम उपयोग होता है।

शख वटी वात और कफ दोष, रस दूष्य तथा आमाशय, यकृत्, प्लीहा, ग्रहणी, लघु अन्त्र, बृहदन्त्र, इन स्थानो पर लाभ पहुँचाती है।

सूचना—इस वटीके अधिक उपयोगसे मुखपाक, दातोमे वेदना, क्वचित् अर्श और रक्त गिरना आदि उपद्रव उत्पन्न होते हैं। (औ० गु० ध० शा०)

(४७) शंखोदर रस ।

बनावट—शङ्ख भस्म ४ तोले तथा शुद्ध अफीम, जायफल और

सोहागेका फूला १-१ तोला मिलाकर खरल करें। (र० यो० सा०)

मात्रा—½ से १ रत्ती दिनमें ३ से ४ बार मक्खन-मिश्री या मट्ठेके साथ। पक्वाशयके शूल पर गुड़ और बेलके क्वाथके साथ।

उपयोग—यह रसायन रक्तातिसार, रक्तार्श, पक्वातिसार, भयंकर शूलसहित पतले, पीले, लाल या नीले कष्टसाध्य अतिसार, गुदामें जलन और अनेक प्रकारके उत्कट शूल आदिको तत्काल नष्ट करता है। एवं आमका पचन करता है।

शंखोदर रसमें स्तम्भक गुणकी अपेक्षा वेदनाशामक गुण अति उपयुक्त है। इस हेतुसे इसका प्रयोग शूलसह अतिसार, तीव्र पक्वातिसार और निराम सग्रहणीमें किया जाता है। अजीर्ण, विदग्ध आहार, विष, गर, कृमि आदि क्षोभक त्रासदायक निमित्त कारणोंसे उत्पन्न अतिसारमें मूल क्षोभक कारणको दूर करना यही इसकी उत्कृष्ट चिकित्सा है। इसके अतिरिक्त कारणोंसे उत्पन्न होनेवाले पक्व अतिसार, आमातिसार या आम सग्रहणीकी प्रथमावस्थाको छोड़, शेष अवस्थामें इसका उत्तम उपयोग हुआ है। पित्त या वातप्रकोपसे अन्त्र क्षोभ होकर अतिसार हुआ हो, तो इसे उपयोगमें लें।

बड़े-बड़े पतले पीले और गरम-गरम जुलाब, नीले लाल रंगके दस्त, अति तृषा, क्वचित् मूर्च्छा, आमाशय आदिमें दाह, गुदाद्वारमें जलन और परिपाक, शौचके समय अति जलन, रक्त गिरना और व्याकुलता आदि लक्षण होने पर मक्खन-मिश्रीके साथ इस रसायनका उपयोग करना चाहिये।

अरुण वर्णका झाग और झागयुक्त थोड़ा-थोड़ा दस्त होना, अति किछना, बार-बार शौच होना, उदरमें भयंकर दर्द, भयंकर वेगपूर्वक पेचिश होकर शौच होना तथा शौचके समय अति कष्टदायक असह्य वेदना आदि लक्षण होने पर शंखोदर रस आशु फलप्रद है।

जिस अतिसारमें किछ-किछ कर थोड़े-थोड़े दस्त होते हो, दस्तमें विशेषतः आम और कुछ रक्त हो, गुदामार्गमें दाह, गुदा पर स्पर्श भी सहन न हो, ये लक्षण हो, तो शंखोदर रस देना चाहिये।

यह रसायन वात, पित्त, ये दोष, रस रक्त, मास, ये दूष्य, तथा यकृत्, लघु अन्त्र और बृहदन्त्र, इन स्थानो पर लाभदायक है।

(औ० गु० ध० शा० के आधारसे)

सूचना—इस रसायनमे अफीम होनेसे कम परिमाणमे ही देनीचाहिये। कदाचित् किसीको अफीमके नशेका असर हो, तो नीबूका रस पिलावे। सगर्भा

स्त्रीको यह रसायन नहीं देना चाहिये।

(४८) जातिफलादि वटी।

बनावट—जायफल, सैंधानमक, शुद्ध सिंगरफ, कौड़ी भस्म, सोंठ, शुद्ध अफीम, धतूरेके शुद्ध बीज और पीपल, सबको समभाग मिलाकर बारीक चूर्ण करें। फिर नीबूके रस, धतूरेके बीजके क्वाथ और भाँगके क्वाथकी एक-एक भावना देकर आध-आध रत्तीकी गोलियाँ बनावें। (वै॰ सा॰ स॰)

मात्रा—१-१ गोली दिनमें ३ बार मट्ठा अथवा जलके साथ। वमनसहित अतिसारमें नीबूके रस और मिश्रीके साथ। अपचन-जनित विसूचिका पर हींग और सैंधानमक मिले मट्ठेके साथ।

उपयोग—यह औषधि पक्वातिसार, निराम संग्रहणी, अजीर्ण जन्य विसूचिका और शूलको दूर करती है। यह शामक, स्तम्भक और पाचक है। अजीर्णजन्य विसूचिकामें छोटी आयुवालोंको थोड़ी मात्रामें दी जाती है। नूतन संग्रहणीमें आमानुबन्ध न हो, तो इसका उपयोग होता है। इसके सेवनसे अजीर्णजन्य शूल, अतिसारमें होने वाले तीव्र शूल और मध्यम कोष्ठस्थशूल शीघ्र शमन होते है।

अतिसारमें बड़े-बड़े पीले रंगके जुलाब लगना, उदरमें शूल या भयंकर पीड़ा होना, पहले प्रत्येक समय पर अधिक शौच बिना त्राससे होना, फिर उदरमें दर्द अधिक होना, और श्वास भर जाना, खट्टी-खट्टी वमन होना आदि लक्षण होते हैं। इस पर जातिफलादि वटी नीबूके रस और मिश्रीके साथ या मट्ठेके साथ देनी चाहिये।

छोटे बालकोंको अजीर्णजन्य विसूचिका या अतिसार होने पर इस औषधिका उपयोग होता है। यदि शूल तीव्र हो; जुलाब बार-बार बड़े-बड़े लगते हो; व्याकुलता अति हो; परन्तु उदरमें-अधिक दोष संचय न हो, तो इस वटीका उपयोग करना चाहिये।

संग्रहणीके विकारमें आमानुबंध हो, और विकार नया हो, तो इस औषधिका उपयोग किया जाता है। जीर्ण संग्रहणी और आम संग्रहणीमें इसका उपयोग नहीं करना चाहिये।

विसूचिकामें दो प्रकार हैं—जन्तु जन्य और निर्जन्तुक। जन्तु-जन्य विसूचिकामें संजीवनी वटीका उपयोग होता है। निर्जन्तुक विसू-चिका में विशेषतः अपचनसे उत्पन्न होने पर इस जातिफलादि वटीका प्रयोग किया जाता है। आमलक्षण अर्थात् उबाक, मुंहमें पानी आना

और आफरा आदि लक्षण हो, तो यह वटी नहीं देनी चाहिये।

मध्यम कोष्ठस्थ शूल, अपचनसे उत्पन्न अतिसार या संग्रहणीमें उत्पन्न तीव्र त्रासदायक शूल, ये सब इस औषधिसे त्वरित प्रशमन होते है।

सूचना—अतिसारमें जब तक कच्चा आम गिरता होवे, तब तक इसका या अन्य अफीमयुक्त स्तंभक औषधिका उपयोग नहीं करना चाहिये।

(४६) हिंगुल वटी।

बनावट—शुद्ध सिंगरफ, कच्ची हींग, सुपारीके फूल, जावित्री और अफीम २-२ तोले लेकर बारीक चूर्ण करें। फिर चार बड़े पक्के खट्टे अनारमें खड्डा कर औषधि भर, ऊपरसे बन्द करे। पश्चात् थोड़ा सूत लपेट, ऊपरमें बाटीके समान जलमें गूंदा हुआ गेहूँका आटा पाव इंच मुटाई जितना लगावे। फिर बाटीकी रीतिसे सेककर खड्डेमें दबा दें; और ऊपर ३० सेर आरनोंकी निर्धूम कूटी हुई अग्नि डालें। खड्डेमें अनारकी बाटी पर एक-एक इंच धूल अथवा राख डालें। फिर ऊपर निर्धूम अग्निकी गरम राख दबावें। २ दिन बाद अग्नि बिल्कुल शान्त हो जाय, तब निकाल अनार सहित औषधिको खरल करके चने बराबर गोलियाँ बनालें। (श्री० पं० रामनाथजी त्रिवेदी)

मात्रा—१-१ गोली दिनमें २ से ३ बार जलके साथ देवें।

उपयोग—यह वटी प्रवाहिका, उदर शूल, रक्तातिसार, पक्व अतिसार, संग्रहणी, हैजा, मन्दाग्नि, निर्बलता, बहुमूत्र, वमन, धातु-क्षीणता और श्वास आदि रोगोंका नाश करती है।

यह वटी स्तम्भक, पाचक और वातनाशक है। इससे लघु अन्त्र और बृहदन्त्र में रहे हुए अब्धातुका शोषण, आमका पाचन, उदरवातका निःसरण तथा अन्त्रक्षोभका शमन होता है, जिससे पक्व अतिसार, रक्तातिसार, प्रवाहिका, नूतन ग्रहणी, अजीर्णजन्य विसूचिका, जन्तुजन्य विसूचिका तथा उदरशूल शमन होते है। पित्तविकृति और उदरमें वायु भरनेके कारण मूत्रशुद्धि न होती हो, बार-बार थोड़ा-थोड़ा मूत्र आता रहता हो, ऐसा बहुमूत्र रोग इसके सेवनसे दूर होता है।

हैजेमें दूषित मल निकल जानेके पश्चात् दो-दो घण्टे पर १-१ गोली देते रहनेसे ६-८ घण्टेमें रोग निवृत्त होजाता है।

सूचना—अनारके ऊपरका आटा खड्डेमें दबा देना चाहिये।

खड्डेमें अनार रखनेके समय कटा हुआ भाग ऊपरकी ओर रहना चाहिये। अन्यथा रस बाहर निकलकर औषधिका गुण बहुत कम होजाता है।

दूषित पुराना मल और कच्चे आम हो, तब तक इसका प्रयोग न करें।

दूसरी विधि—शुद्ध सिगरफ, सोहागेका फूला २-२ तोले और शुद्ध अफीम ४ तोला लेवे। सबको मिला, नीबूके रसमें ३ दिन खरल करके आध आध रत्तीकी गोलियाँ बनावे। (इ० गु०)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें दो समय जल, सौंफका अर्क या मट्ठेके साथ देवे। विसूचिकामें १-१ गोली ३ समय २-२ घण्टे पर देवें।

उपयोग—यह वटी रक्तातिसार, उदरशूल, पेचिश और नये संग्रहणी रोगको सत्वर शमन करती है, विसूचिकामें वमन और दस्त को तुरन्त रोक देती है, प्यासको कम करती है, और हृदयकी गति और नाड़ीको उत्तेजना देकर रोगीकी शक्तिका रक्षण करती है। यह वटी मधुमेहमें प्यासको कम करती है, और यकृत्की क्रियाको सुधार कर मूत्रमें शर्कराका परिमाण कम कराती है।

ऋतु परिवर्तनसे उत्पन्न अतिसार और ग्रहणी रोग कभी-कभी उग्र बन जाते है। इन विकारोंमें दिनमें ५०-१०० बार शौच जाना पड़ता है। बार-बार थोड़ा-थोड़ा शौच होना, उदरमें अति बलपूर्वक मरोड़ा आना, प्रवाहण करने पर कुछ आम आना या किञ्चित् रक्तमिश्रित थोड़ा मल गिरना, घबराहट, अति थकावट, बेचैनी, मुखमें जल भर जाना, उबाक आना, क्वचित् मन्द ज्वर रहना आदि लक्षण होने पर इस वटीका बहुत अच्छा उपयोग होता है।

रक्तातिसार होने पर उदरमें मरोड़ा आकर रक्तमिश्रित मल गिरना, गुदाद्वारसे काँच निकलना, गुदाद्वारमें झनझनाहट, मूत्र थोड़ा और लाल होजाना, नाड़ी कभी तेज कभी क्षीण होजाना, दस्तके समय किछना आदि लक्षण होते है। इस पर यह रसायन उपयोगी है।

सूचना—जब तक पुराना दूषित मल निकलता हो, तब तक यह या अन्य अफीम मिश्रित औषधि नहीं देनी चाहिये।

इस रसायनमे मिलाये हिंगुलमें दुर्गन्धनाशक, कीटाणुनाशक, संग्रहीत आमको निर्विष कर रूपान्तरित कराना और शक्तिवर्द्धक गुण हैं। सोहागा दुर्गन्ध हर, शीतल, मूत्रल, अम्लताशामक, कीटाणुनाशक और पचनविकार निवारक है। अफीम स्तम्भक, वेदनाशामक, मादक और आक्षेपघ्न है। नीबूका रस पाचक गुण बढ़ाने वाला है।

(५०) रामबाण रस।

बनावट—शुद्ध पारा १ भाग, शुद्ध गन्धक १ भाग, शुद्ध बच्छनाग १ भाग, लौंग १ भाग, कालीमिर्च २ भाग और जायफल

आधा भाग लेवें। इन सबको मिला पक्की इमलीके रसमें १२ घण्टे खरल करके मूँगके बराबर गोलियाँ बना लेवें। (भै० र०)

अन्य ग्रन्थकारोंने इस रसायनको इमलीके रसकी भावनाके पश्चात् बिजौरा, संतरा, अनार, आकके फूल और अदरख, इन सबके रसमें १-१ दिन खरल करनेका विधान किया है। इस तरह ६ औषधियोंकी भावना देनेसे यह रसायन विशेष लाभदायक बनता है। हम इसी तरह तैयार करा उपयोगमें लेते हैं।

इस रसायनको कफशमनार्थ अदरखके रसमें, वातशमनार्थ निर्गुण्डीके रसमें; पित्तनाशार्थ धनियेके हिममें, श्वासपर त्रिकटु और वासास्वरसके साथ, उदर रोगमें सोंठ, सैंधानमक और हरड़के साथ, शोथ पर पुनर्नवाके क्वाथमें; पाण्डु रोगपर गोमूत्र या त्रिकटु और त्रिफलाके क्वाथमें, क्षयपर शहदमें, विषमवात वेदना और संपूर्ण वातविकारमें एरण्ड तैलके साथ देना चाहिये।

मात्रा— १ से २ गोली दिनमें ३ बार मट्ठे या जलसे दें।

उपयोग—रामबाण रस उत्तम, दीपन, पाचन और ग्राही औषधी है। नयी आमसंग्रहणी, अजीर्णजन्य अतिसार, आमवात, मन्दाग्नि, श्वास, कास, ज्वर, वमन, जुकाम तथा कृमिरोगका नाश करता है। यह रस कोष्ठस्थ अवधातुका शोधन करता है, दूषित अंशको मूत्र और प्रस्वेद द्वारा निकाल देता है, तथा पाचनक्रिया बढ़ाता है, जिससे आमजनित विविध रोग नष्ट होजाते हैं।

यह रसायन विशेषतः वातज विकृति, कफज विकृति और वातकफज विकार पर लाभदायक है। पित्तप्रकोपमें इसका उपयोग नहीं करना चाहिये। जब आमाशयके पित्तका स्राव कम रोकर अग्नि मन्द होजाती है, तब अपचन होता है, आमकी उत्पत्ति होने लगती है, बार-बार थोड़ा दस्त लगना, उदरमें भारीपन बना रहना, उबाक तथा कभी जुकाम होजाना, इत्यादि लक्षण उपस्थित होते हैं। उस पर इस रसायनका सेवन लाभदायक है। इसके सेवनसे आमाशय का पित्तस्राव बढ़ जाता है, जिससे अग्निमान्द्य दूर होकर सब विकार शमन होजाते हैं।

यदि यकृत् की पित्तोत्पत्ति कम होनेसे अपचन होकर अतिसार हुआ हो, तो बार-बार थोड़ा-थोड़ा दस्त होता है। मल दुर्गन्धयुक्त सफेद रंगका निकलता है। कभी मलमें सूक्ष्म कृमि उत्पन्न होजाते है। उस पर यह रसायन हितकर है। इस रसायनके सेवनसे पित्तोत्पत्ति

की वृद्धि होकर अतिसारकी निवृत्ति होती है।

यदि अपचन होनेसे ज्वरोत्पत्ति हुई हो; या अग्नि मंद होनेसे निर्बलता आकर श्वासरोग हो गया हो, अथवा आम और कफकी वृद्धि होकर कास रोग की प्राप्ति हुई हो, तो वे सब मूल कारण (अग्निमान्द्य अथवा अजीर्ण) दूर होनेसे नष्ट होजाते हैं।

(५१) नित्योदित रस।

बनावट—रससिंदूर, शुद्ध गन्धक, अभ्रकभस्म, लोहभस्म, ताम्र भस्म और शुद्ध वच्छनाग, सब सम भाग और सबके बराबर भिलावा मिला जमींकन्दके रसमें ३ दिन तक खरल करके मटरके समान गोलियाँ बनावे। (र० रा० सु०)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें दो बार घी लगाकर निगलें।

उपयोग—इस रसायनके सेवनसे अर्शकी सूजन, जलन, रक्त गिरना आदि सब दोष दूर होकर मस्से मुरझा जाते हैं। यह रस पचन क्रियाको बढ़ाता है, यकृत्‌को उत्तेजित करता है, और रक्तको सबल बनाकर अर्शको मिटा देता है, तथा गुल्म और उसके सब उपद्रवोंको नष्ट करता है।

सूचना—रस निकालने, खरल करने और गोलियाँ बाँधनेके समय हाथ पर घी लगाना चाहिये।

(५२) अर्शःकुठार रस।

बनावट—शुद्ध पारा १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, लोहभस्म और अभ्रकभस्म ३-३ भाग, बेलगिरी, चित्रकमूल, कलिहारी, सोंठ, मिर्च, पीपल, पित्तपापड़ा और दंतीमूल, प्रत्येक १-१ भाग; सोहागेका फूला, जवाखार, सैंधानमक ५-५ भाग, सबको एकत्र करके ३२ भाग गोमूत्रमें पाचन करे। फिर चौधारी थूहरका दूध ३२ भाग डाल मन्दाग्नि पर पका कर मटरके समान गोलियाँ बनावें। (यो० र०)

मात्रा—१ से २ गोली २१ दिन तक सुबह कुटजावलेह, गुलकन्द अथवा जलके साथ देवे।

उपयोग—यह रस सब प्रकारके बवासीर-रक्तार्श, वातार्श आदि को छेदन करनेमें कुल्हाड़ीके समान है। इसके सेवनसे मलशुद्धि बराबर होती रहती है, पाचनशक्ति सबल बनती है, और सेवनके आरम्भसे दाहका शमन होता है।

(५३) जातिफलादि वटी।

बनावट—जायफल, लौंग, पीपल, सैंधानमक, सोंठ, धतूरेके बीज, हिंगुल और सोहागेका फूला समभाग मिला, जम्भीरी नीबूके रसमें खरल करके एक-एक रत्तीकी गोलियाँ बनावे। (र० सा० सं०)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २ बार ६ माशे तिल और १ तोला मक्खनके साथ या जलके साथ देवे।

उपयोग—इस वटीके सेवनसे बवासीरका खून गिरना और जलन दूर होते है, मलशुद्धि होने लगती है, तथा पचनक्रिया बलवान् बनती है। कुछ दिनों तक इसका सेवन करनेसे मस्से मुरझा जाते है।

(५४) बोलबद्ध रस।

बनावट—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, गिलोय सत्व, तीनो १—१ भाग, और बीजाबोल ३ भाग मिला, सेमलके रस या सेमलकी छालके क्वाथमें ३ दिन खरल कर २—२ रत्तीकी गोलियाँ बाँधें। (नि० र०)

मात्रा—२ से ४ गोली मक्खन-मिश्री या शहदके साथ।

उपयोग—बोलबद्ध रस रक्तज अर्श, पित्तज अर्श, पित्तज विद्रधि, भगंदर, रक्तपित्त, रक्तप्रदर, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह और वातरक्तको दूर करता है। इस औषधिके सेवनसे नाक, मुँह, गुदा वा योनिमेंसे गिरता हुआ रक्त सत्वर बन्द होजाता है।

बोलबद्ध रस शीतवीर्य और रक्तस्तम्भक है। रक्तवाहिनियों और गर्भाशयको संकुचित और बलवान् बनाता है। गर्भाशय, मूत्रेन्द्रिय, पचनेन्द्रिय, रस, रक्त और वातकफात्मक रोगोंमें शामक और कोथप्रशमन (सड़ते हुए भागका संरक्षण) करता है। प्रसवके पश्चात् या मासिक धर्म में अधिक रक्त जाने या अन्य कारणसे उत्पन्न श्वेत प्रदरमें बोलबद्ध रस का अच्छा उपयोग होता है। इससे गर्भाशयकी शिथिलता दूर होती है, यदि जीर्ण क्षोभ हो, तो वह भी शमन होजाता है। इसी हेतु से गर्भाशय मुख या योनि मार्गमें से होनेवाला श्लैष्मिक स्राव (श्वेत-प्रदर) बन्द होजाता है। यह रसायन केवल जल सदृश स्राव में उपयोगी होता है, प्रदर का स्राव पीले रंगका हो या दुर्गन्धयुक्त हो, तो इससे लाभ नहीं होता। इस रस से गर्भाशय संकोच में सहायता मिल जाती है। इस हेतु से प्रसव के पश्चात् भी प्रदरयुक्त गर्भाशय के कोष्ठशूलमें इसका उपयोग किया जाता है एवं गर्भाशयके अन्य प्रकार के विकारमें यदि गर्भाशय पर शामक असर पहुँचाने की आवश्यकता हो, तो बोलबद्ध को प्रयुक्त किया जाता है।

प्रदर का विकार दीर्घकाल के अपचनसे उत्पन्न होता है। थोड़ा अधिक भोजन करने या कुछ जड़ पदार्थ खानेपर अपचन होकर प्रदर बढ़ जाता हो; तथा मुख, जिह्वा और मसूढों में व्यथा या पक जाने सदृश भासना, मुखपाक, क्वचित् पतले दस्त अधिक होना और उदर में आफरा आदि लक्षण हों, तो प्रदर के शमनार्थ बोलबद्ध रस अच्छा उपयोगी है।

प्रदर होने पर भी बार-बार मूत्रमें जलन, मूत्र लाल या पीला होना आदि लक्षण हो तो बोलबद्ध का उत्तम उपयोग होता है। इससे मूत्र की उत्पत्ति अधिक होती है, उसका रंग सुधरता है, और प्रदरका विकार भी कम होजाता है।

वृद्धावस्थामें गर्भाशय की शिथिलता या गर्भाशय मुखके विकार के हेतुसे श्वेत या रक्तप्रदर होना, साथ-साथ श्वास या कास हो, तो बोलबद्ध उत्तम औषध है। इसके योगसे कफ छूटकर पतला होजाता है, तथा उसमेंसे दुर्गन्ध कम होजाती है। श्वासकी घबराहट कम होती है; और प्रदर भी दूर होजाता है। इस तरह के श्वास-कास में अभ्रककी अपेक्षा बोलबद्ध रस विशेष उपयुक्त है। तीव्र वेग शमन होने पर फिर श्वास की जड़ को नष्ट करने के लिये अभ्रक भस्म देना हितकारक है।

जीर्णकासमें दुर्गन्धयुक्त, चिपचिपा सफेद कफ होने पर बोलबद्ध रस अच्छा लाभदायक है। इस ओषधि से कफ छूटता है, पतला होता है; और दुर्गन्ध कम होती है।

जीर्ण प्रदर, जीर्ण अजीर्ण रोग, यकृत् सम्यक् कार्यक्षम न होना, त्वचा पर सूक्ष्म-सूक्ष्म पिटिका होना, मुँह फूला हुआ सा भासना, हाथ-पैरो में जलन, बार-बार मुँह आना, कण्ठमें रही हुई गाँठें बढ़ जाना, कुछ भी कार्य करनेकी अनिच्छा, निस्तेजता, ओजक्षीणता आदि लक्षण होने पर बोलबद्ध रस फलप्रद औषध है।

बोलबद्ध रस प्रमेह, विशेषतः कफज प्रमेहके विकारोंमें हितकर है। इस रस में रही हुई बीजाबोल का कार्य मूत्रेन्द्रिय की श्लैष्मिक कला पर होता है। इस हेतु से प्रमेह में बोलबद्ध रस लाभ पहुँचाता है; तथा यह रसायन स्त्रियो के गर्भाशय, मूत्रेन्द्रिय, पचनेन्द्रिय, रस, रक्त और वातकफात्मक विकारोंमें शामक और कोथ-प्रशमनकारक गुण दर्शाता है। (औ० गु० ध० शा० के आधार से)

सूचना—वायु बढानेवाली और पित्त करने वाली वस्तुएँ नहीं खानी

चाहिये। आहार मधुर और थोड़ा लेना चाहिये।

(५५) अग्निकुमार रस।

बनावट—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सोहागे का फूला और शुद्ध बच्छनाग १ भाग, शंख भस्म और कौडी भस्म २-२ भाग और काली मिर्च ८ भाग लेकर बड़े जम्भीरी पक्के नीबू के रस में ७ दिन खरल करके मूँगके बराबर गोलियाँ बनावें। (यो॰ र॰)

मात्रा—१से ३ गोली दिन में २ बार जल के साथ दें।

उपयोग—यह रसायन अग्नि को प्रदीप्त करता है; तथा वात-प्रकोप से उत्पन्न अजीर्ण, विसूचिका और कफ रोग को दूर करता है। अपचन-जनित उदरवात, गुदामार्ग में वातसंचय, गुल्मजनित वात और अन्य कोष्ठस्थ वातविकारका प्रशमन करता है। इस रस में दीपन-पाचन और वातघ्न गुण प्रधान है। इस हेतुसे अन्त्र में उत्पन्न अन्नविदाह और सड़न को नष्ट करता है। आफरा, उदरशूल, आमाशय, पक्वाशय और ग्रहणीमें वायु संगृहीत होना, फिर अपान वायु न निकलनेके हेतुसे अति व्यथा होना, इन सबको तत्काल शमन करता है।

यह रसायन उष्णवीर्य होनेसे इसका उपयोग कफप्रधान, वातप्रधान और कफवातप्रधान अजीर्ण में उत्तम होता है। पित्तजन्य अजीर्णमें अग्निकुमार या अन्य किसी तीक्ष्ण, उष्ण आदि गुणयुक्त ओषधि का सेवन न करना ही अच्छा माना जायगा। पित्तप्रकोप में इसका उपयोग न होकर विपरीत परिणाम की प्राप्ति होती है, अर्थात् पित्त अधिक प्रकुपित होकर उबाक, वमन, व्याकुलता, दाह आदि विकार सबल बनते हैं।

कफज अपचनमें आम लक्षण अधिक होनेपर—"अजीर्णं तु कफादामं तत्र शोफोऽक्षि गण्डयोः" ऐसे लक्षण होनेपर पहले उपवास कराकर आमका पाचन कराना चाहिये। पश्चात् अग्निकुमार देनेसे सत्वर लाभ होता है। वातप्रधान अजीर्णमें कब्जियत विशेष रहती है। उस पर यह रसायन दहीके जलके साथ देना विशेष लाभदायक है।

यदि उदरशूल तीव्र हो, तो घीको पतला कर उसके साथ अग्नि-कुमार देना हितकर है।

विसूचिकामें दो भेद है—एक अजीर्णजन्य और दूसरा कीटाणु जन्य। कीटाणुजन्य विसूचिकामें लहशुनादि वटिका, संजीवनी, विसूचिकाहर वटी आदि का उपयोग अधिक होता है। परन्तु अजीर्ण-जन्य विसूचिकाके लक्षण—भयंकर उदरशूल, आफरा, मुँहमें बार-बार

जल भर जाना, बार-बार वमन होना, उदरमें जड़ता भासना आदि प्रतीत होने पर अग्निकुमार देना चाहिये। अजीर्णजन्य विसूचिकामें कफप्रकोप या पित्तप्रकोप होनेपर वमन होती है। इनमेंसे कफ विकृतिसे उत्पन्न लेसदार, दुर्गन्धयुक्त वमन होनेपर अग्निकुमारका अच्छा उपयोग होता है। खट्टी और गरम छर्दि होनेपर पित्तप्रकोप मानकर शंखभस्म, वराटिका भस्म, शुक्ति भस्म आदिका सेवन कराना चाहिये।

प्रतिश्याय होकर उबाक या वमन होना, बार-बार लालास्राव, इनके साथ आफरा आदि लक्षण होनेपर नागगुटिकाकी अपेक्षा अग्निकुमार अधिक उपयोगी है। बार-बार प्रतिश्याय होनेका स्वभाव और साथ-साथ अपचन, अथवा अपचन होकर प्रतिश्याय होना, इन विकारों पर अग्निकुमार उत्तम सफल औषधि मानी गई है।

प्रतिश्यायके पश्चात् होनेवाले कासरोग और प्रतिश्याय न होकर श्वासवाहिनियोंमें कफ संगृहीत होकर उत्पन्न होने वाली कास, साथ-साथ आफरा, उबाक, जिह्वापर सफेद मल संचित होना, मुँहमेंसे स्वाद नष्ट होजाना, किसी वस्तुके स्वादका पूरा बोध न होना, चरपरे पदार्थपर विशेष प्रीति होना, स्निग्ध और स्वादु अन्न दृष्टिगोचर होनेपर मुँहमें पानी छूटना आदि लक्षण होनेपर अग्निकुमार देना चाहिये, क्योंकि ऊर्ध्वगतिशील कफविकारमें अग्निकुमार लाभदायक माना है।

गुदामार्गकी अशक्तताके हेतुसे अतिसार (बार-बार थोड़ा मल निकलना), अपान वायुका अवरोध और जड़ता आदि होते हैं। यह विकृति गुदमार्गका प्रदाह होकर स्तम्भन या धारणशक्तिकी न्यूनता होनेपर होती है। इस गुदवात रूप विकृतिमें अग्निकुमार रसका अच्छा उपयोग होता है। कफगुल्म और कफवातजगुल्मके कारणसे उदरमें होनेवाले वातप्रधान लक्षण अग्निकुमारके सेवनसे शान्त होजाते हैं। इससे गुल्म तो दूर नहीं होता, तथापि उत्पन्न वायु शमन होती है।

उदरमें आम या कफ संगृहीत होकर बार-बार उबाक होकर कै होती है। वमनमें कुछ मीठे-से, चिकने, या बेस्वादु जल या झाग निकलते है। उदरमें जड़ता प्रतीत होती है। चाहे उतनी बार वान्ति हो, फिर भी उदरकी जड़ता कम नहीं होती, बल्कि बढ़ती ही जाती है। साथ-साथ आफरा आदि लक्षण होने पर अग्निकुमार रस देना चाहिये। अग्निकुमारसे पित्तका यथोचित स्राव होकर उदरमें संगृहीत द्रव नष्ट हो जाता है। कचित् कफ लीन होजानेसे वमन दिनों तक होती रहती है। ऐसा होनेपर पहले अतःपरिमार्जन (वमन आदि कर्म) करा फिर

अग्निकुमारकी योजना करनी चाहिये।

अग्निकुमारके योगसे द्विदलधान्य, मैदा और पिट्ठीके पदार्थ, पक्का भोजन आदिका पचन सरलतासे होजाता है। इन पदार्थोंसे अपचन होनेपर बड़े-बड़े जुलाब, उदरमें वायुका संचय, गुदा बाहर निकलना आदि लक्षण होनेपर यह उपयोगी है। (औ० गु० ध० शा०)

(५६) क्रव्याद रस।

बनावट—शुद्ध गन्धक ८ तोले, शुद्ध पारा ४ तोले, ताम्र भस्म १ तोला और लोह भस्म १ तोला लें। प्रथम पारद-गन्धककी कज्जली करके भस्में मिलावें। फिर पर्पटी प्रकरणमें लिखी विधि अनुसार बेर की लकड़ीके कोयलोंकी निर्धूम मन्दाग्नि पर कढ़ाहीमें कज्जलीका रस कर अरंडीके पत्तों पर डाल, पर्पटी तैयार करे। शीतल होने पर खरल कर, पुनः लोहेकी कढाहीमें डाल, चूल्हे पर चढ़ाकर मन्दाग्नि देवे। बार-बार थोड़ा-थोड़ा जम्भीरी नीबूका रस डालते जायँ। ५ सेर रसका शोषण करावें। फिर पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रकमूल, सोंठ और अम्लवेतके क्वाथकी ५० भावना देवें। पश्चात् सब चूर्णके समान सोहागेका फूला, सोहागेसे आधा काला नमक और सबके बराबर कालीमिर्चका चूर्ण मिला चनेके क्षारके साथ ७ दिन तक खरल कर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बनावें।

मात्रा—२ से ४ रत्ती मट्ठा और सैंधेनमकके साथ देवे।

उपयोग—क्रव्याद रस अत्यन्त दीपन और पाचनशक्ति बढ़ानेवाला है। मध्यम कोष्ठमें सब पचनेन्द्रियोंकी शिथिलताको दूर करके उत्तेजित करता है, तथा पचनेन्द्रियके व्यापारको प्रबल बनाता है। मांस खानेवाले और जड़ान्न खानेवाले लोगोंके लिये यह रसायन अति उपयोगी है। मांसाहार या पक्के भोजनका सम्यक् पचन न होने पर उत्पन्न होने वाले अलसक (उदरमें भोजन पत्थर सदृश-पड़ा रहे और तीक्ष्ण शूल चले, ऐसा अजीर्ण), विलम्बिका (वात-कफ दोषसे भोजन पत्थर सम होकर उदरमें पड़ा रहे, किन्तु तीक्ष्ण पीड़ा न रहे ऐसा अजीर्ण), विसूचिका आदि अजीर्ण विकारको मट्ठे और नमकके साथ देनेसे क्रव्याद रस शीघ्र दूर करता है।

भोजनका सम्यक् पचन न होनेसे अन्न-रस ठीक तैयार नहीं होता। फिर इस रसका भी योग्य रूपान्तर न होनेसे आमोत्पत्ति होती है। इस आमका सचय होनेपर शनैः-शनैः यह विकृतावस्थाको प्राप्त होता है। इस हेतुसे विविध साम विकारोंकी उत्पत्ति होती है। इनमें

आमाजीर्ण, रसशेषाजीर्ण, ये तीव्र प्रकार हैं। आमसंचय अधिक होता है, तो शूल, अतिसार, ग्रहणी, कोष्ठबद्धता आदि व्याधियोंकी उत्पत्ति होती है। इन सब विकारोंके भीतर दुष्ट आमका पचन करा संशोषण कराना, यह कार्य इस रसायनके योगसे उत्तम प्रकारसे होता है। पहले लङ्घन करा फिर क्रव्याद रसकी योजना करनी चाहिये।

धातु परिपोषण क्रमका व्यापार इस तरह होता है कि, पूर्वधातु मेंसे परधातु अपने अनुकूल अंशका शोषण कर अपने स्वरूपमें मिलाते रहते हैं। परधातुकी क्रियासे पूर्वधातुमें न्यूनता होती है; फिर वह धातु अपनेसे पूर्व रही धातुमेंसे सत्व ग्रहण करती है। इस तरह शुक्र, मज्जा, अस्थि, मेद, मांस, रक्त और रस, इन धातुओंकी क्रिया सतत होती रहती है। इन सबका आधार योग्य आहार रस पर है। यदि इस नियमका भग होता है, तो फिर मेद आदि कोई धातु बढ़ती ही जाती है, और पर धातुको पोषण नहीं मिलता। यदि मेदकी वृद्धि होती है; तो फिर मनुष्य स्थूल--फूला हुआ बनता ही जाता है। इस स्थौल्यको नष्ट करनेके लिये पूर्वधातुओंके सत्वको परधातुके योग्य बनानेका काम पचन-क्रिया बढ़ने पर ही होता है। यह पचन-क्रिया बढ़ानेका कार्य क्रव्याद रस से उत्तम प्रकार का होता है। इस रसायनसे धात्वन्तर्गत पचन-गुण भी बढ़ जाता है।

मध्यमकोष्ठमें दीर्घकालके अजीर्ण रोगसे अन्नका कीटांश या पुराना मल सचित होता है। इस सचयसे विविध सेन्द्रिय विष निर्माण होता है। यह विष दीर्घ कालतक अन्त्र में रह जाने पर समस्त शरीरको दुष्ट बनाता है। विरुद्ध, दूषित और अपथ्य आहारके योगसे इस गरकी उत्पत्ति होती है। बासी, बिगड़े हुए, ताम्र आदि धातुके विषसे दूषित या सड़े माससे गर (विष) अधिक बनते है। कृत्रिम विष अर्थात् निर्विष पदार्थमेंसे स्वतः विकृति होकर परिवर्तित विषको गर संज्ञा दी है। यह गर विष सदृशही किबहुना विषकी अपेक्षा भी अधिक भयंङ्कर है। गरके लक्षण दोषानुरोधसे भिन्न-भिन्न होते है। जिन प्रकार के गरोंसे कफप्रधान या कफवातप्रधान लक्षण उत्पन्न होते है, उन सब पर क्रव्याद रसका अच्छा उपयोग होता है।

अर्शमें दोष कफप्रधान हो, मस्से मोटे सफेद रंगके हो, मस्सेमें वेदना, चिपचिपे झागदार मल, शौच जानेकी इच्छा बनी रहना आदि लक्षण होनेपर क्रव्याद रस मट्ठे के साथ देना चाहिये।

जीर्ण अजीर्ण रोगमें विशेषतः गुरु और स्निग्ध भोजन अधिक

करनेसे उत्पन्न होने वाले अजीर्णमें आमसंचय होकर बार-बार शूल चलता हो, तथा उदरमें जड़ता, उदरमें दर्द, मुँह फीका रहना, और मुखमण्डल सूजा हुआ-सा भासना आदि लक्षण हों, तो क्रव्याद रसकी योजना करनी चाहिये। इसके योगसे आमका पचन होकर शूल निवृत्त होजाता है।

वातगुल्म और कफगुल्म पर यह रसायन उपयोगी है।

जीर्णज्वरके पश्चात् प्लीहावृद्धि और अग्निसाद, ये दो लक्षण प्रबल हो, ज्वरवेग कम होकर आलस्य, तन्द्रा, गुरुता, हृदयोत्क्लेश, वमन, अंग गल जाना, अरुचि आदि लक्षण हो, तथा प्लीहा कठोर, स्थिर और बड़ी हो, तो क्रव्याद रसके योग से उत्तम लाभ पहुँच जानेके अनेक उदाहरण मिले हैं। हरड़के हिमके साथ या कुमारी आसवके साथ क्रव्याद रस देना चाहिये। जीर्ण वृद्धिमें ही इस औषधि का उपयोग होता है। नयी प्लीहावृद्धि, ज्वर, हाथ-पैरमें जलन, सब अंग टूटना आदि लक्षण हो, तो इसका उपयोग नहीं करना चाहिये।

प्लीहावृद्धिके समान यकृद्वृद्धिमें भी क्रव्याद रसका उपयोग होता है। यकृद्वृद्धि जीर्ण होनेपर सब लक्षण कफभूयिष्ठ होने चाहिये।

संग्रहणीके विकारमें अन्नका पचन अति कष्टसे होता हो; तथा मुँहमें पानी छूटना, उबाक, अरुचि, मुँहमें चिपचिपापन और मीठापन, खाँसी, बार-बार लालास्राव होकर चिपचिपे झाग सदृश थूक निकलना, नाक पक जाने सदृश भासना, जुकाम-सा होना, उदर जड़ और जल भरासा भासना, मीठे दुर्गन्धयुक्त डकार आने, अंग टूटना, देह अति कृश न होने पर भी अति बलहीनता आजाना, बलक्षय इतना कि थोड़ा-सा चलनेमें भी दुःख हो, आम मिले कफयुक्त बार-बार दस्त लगना आदि लक्षण हो तो दीपन-पाचन औषध देना चाहिये। ऐसी अवस्थामें क्रव्याद रस उत्तम ओषधि है।

वाताष्ठीला के विकारमें क्रव्याद रसका उपयोग करना चाहिये।

श्वासका विकार कभी-कभी अपचन से उत्पन होता है। उदर में अधिकाधिक वायु भरता जाता है, बार-बार डकार आते हैं। फिर भी आफरा कम न होना, मलावरोध, कुछ थोड़ा-सा हल्का भोजन करने पर भी उदर में आफरा आकर कोष्ठबद्धता होजाना, इस अवस्था में वातघ्न और शौचशुद्धिकर औषध रूप से क्रव्याद उत्तम कार्य करता है। अपचन के लक्षण न्यून होनेपर श्वासविकृति भी कम होजाती है।

जलोदर में निमित्त कारण निरन्तर भोजन या जलपान होने से अपचन होकर उसमें यकृद्वृद्धि होना, इससे हाथ-पैर और मुँह पर शोथ, मुखमण्डल अत्यंत निस्तेज होजाना, अंग अत्यन्त भारी लगना, जड़ता, सारे शरीर में जलभराहट, अति निद्रा, उदर अति बड़ा, उदर अति खिंचना, उदर में पानी का सञ्चय, इस हेतु से खाँसी चलना, श्वास और थोड़ा-सा चलने में कष्ट होना आदि लक्षण होनेपर इस प्रकार रस का उपयोग करना चाहिये। इस रसायन का प्रयोग लोहासव-अरिष्ट के साथ करना चाहिये। यदि जल अधिक संचित होगया हो, तो जलोदरारि रस ऊँटनी के दूध के साथ देना चाहिये।

सूचना–पित्त प्रधान रोगों में इस रस का सेवन नहीं करना चाहिये।

([illegible])

(५७) लघुक्रव्याद रस ।

बनावट—शुद्ध पारद ८ तोले, शुद्ध गन्धक १६ तोले, लोहभस्म, पीपल, पीपलामूल, चित्रकमूल की छाल, सोंठ और लौंग, सब ४-४ तोले; काला नमक ८ तोले तथा सोहागे का फूला और कालीमिर्च १६-१६ तोले लेवें। पहले पारद-गन्धक की कज्जली करके लोहभस्म मिलावें। पश्चात् शेष औषधियों का कपड़छन चूर्ण मिला, जम्भीरी नीबू के रस की ७ दिन तक भावना देकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बनावें। (यो० र०)

मात्रा—१ से ३ गोली दिन में दो समय जीरा, कालीमिर्च और सेंधा नमक मिलाये हुए मट्ठे के साथ देवें।

उपयोग—यह रसायन अजीर्ण, गुरु भोजन से उदर भारी होना, मन्दाग्नि, आमवृद्धि, अरुचि इन सबको दूर करता है। इस रसायन में बृहद् क्रव्याद के समान गुण हैं, परन्तु यह अधिक उग्र नहीं है। इस रसायन के सेवन से भी भोजन किया हुआ गुरु अन्न सत्वर पचन होजाता है; और पचन क्रिया बलवान बन जाती है। इस रस से सब प्रकार के अजीर्ण का शमन होता है।

(५८) अग्नितुण्डी वटी ।

बनावट—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाग, हरड़, बहेड़ा, आँवला, सज्जीखार, जवाखार, चीतामूल, सेंधानमक, जीरा, अजमोद, समुद्र नमक, वायविडङ्ग, कालानमक, सोंठ, कालीमिर्च और पीपल, सब समभाग और सबके बराबर शुद्ध कुचिला लें। सबको यथाविधि मिला, नीबू के रस में १२ घण्टे खरल कर मिर्च के बराबर

गोलियाँ बाँधें। (शा० सं०)

मात्रा—१-१ गोली दिनमें २ वार जल के साथ देवें।

उपयोग—यह रसायन मन्दाग्नि, आफरा, शूल, आमातिसार, अजीर्ण, पागल कुत्ते का विष, निर्बलता, स्वप्नदोष, हृद्रोग, वातरोग और संग्रहणी में लाभदायक है। सर्वाङ्गशूल और परिणामशूल का नाश करता है। एव विशेषतः आमवात को नष्टकर अग्नि प्रदीप्त करता है।

अग्नितुण्डी वटी शूलघ्न, पाचक और दीपक है। रसाजीर्ण आदि पुराने त्रासदायक विकारमें अति लाभदायक है। कफभूयिष्ठ विकार विशेषतः आमाशयस्थ कफवृद्धि होती है। फिर कफमें भारीपन, चिपचिपापन आदि गुण बढ़नेसे उत्पन्न कफभूयिष्ठ लक्षणोंमें विशेष उपयोगी होती है। एवं मध्यम कोष्ठगत वात दूषित होकर वायुके शीतत्व, चलत्व आदि गुणवृद्धि होने पर भी यह वटी हितकर है।

रसाजीर्णके स्वभाव वाले रोगियोको बहुधा अग्निविक्षेप होता है; सर्वदा उदरमें जड़ता और भारीपन भासते है, वृत्तिमें प्रसन्नता नहीं रहती, कचित् उदरकी जड़ता इतनी बढ़ जाती है कि, उदर पत्थर सदृश कठोर प्रतीत होता है, नेत्रदृष्टिमें न्यूनता होती है, किसी भी कार्य करनेमें उत्साह नहीं होता, अन्नका परिपाक सम्यक् नहीं होता; डकार मधुर या भोजनके दूषित स्वादयुक्त आती रहती है, जिह्वाका स्वाद चला जाता है, जिह्वा चिपचिपी, सफेद मलयुक्त होजाती है, भोजन कर लेने पर तुरन्त ही वमन होजाती है, वमनमें खाया हुआ अन्न और मधुरसा जल निकलता है, आमाशयमें पित्त (पाचक रस-Gastric juice) की उत्पत्ति जितनी चाहिये उससे कम होती है, तथा उदरके भीतर की पिच्छिल त्वचापर श्लेष्माका आवरण आजाता है। ऐसी स्थितिमें अग्नितुण्डी उत्तम कार्य करती है।

यकृत अशक्त बनने पर यकृत्मेंसे पित्तस्राव कम होता है, या उस पित्तका पाचकत्व गुण न्यून होता है, इस हेतुसे अन्नका सम्यक् पचन नहीं होता, मध्यम कोष्ठमें एक प्रकारकी जड़ता भासती है, किसी-किसी समय उदरमें शूल उत्पन्न होता है, एवं अपक्व दूषित अन्नका संचय होजानेसे अतिसार भी होजाता है, इस अतिसारमें दुर्गन्धयुक्त, सफेद-सा, बिखरा हुआ (अपूर्ण रचना वाला) मल वार-वार आता रहता है। ऐसे लक्षण होने पर अग्नितुण्डी देनी चाहिये।

यकृद्वृद्धि विकारमें अग्नितुण्डी वटीका उपयोग होता है। परन्तु वालकोंके लिये इस ओषधिका उपयोग, होसके उतना कम करना

चाहिये। विशेषतः कफप्रधान और कफ-वातप्रधान यकृद्वृद्धि विकारमें त्वचा, नख, नेत्र, ओष्ठ, मुख आदि श्वेत—निस्तेज—होजाते हैं; गाल फूले हुए भासते हैं; गालों पर एक प्रकार का चिकनापन (या तेज-सा) आजाता है, यकृत्का किनारा मोटा होजाता है, उन भागमें सर्वत्र जड़ता आजाती है, आमाशयमें जड़ता, पिच्छिलस्राव, उदरमें भारीपनका भासना, उदरमें मंद-मंद शूल होना, पाचक अग्नि अतिमंद होना, जल मिले हुए बाजरीके आटे सदृश या जल मिले तिलकी खली सदृश सफेद दूषित रचना वाला मल होजाना आदि लक्षण होते हैं। कोष्ठमें शूल तीव्र नहीं होता, फिर भी बेचैनी अधिक रहती है। इस प्रकारमें विशेषता यह है कि, सब लक्षणोंके साथ एक प्रकारकी स्तब्धता आजाती है। सारे शरीरमें जड़ता भासती है। इसी तरह रोगीकी मानसिक स्थिति भी जड़ सी होजाती है। एक प्रकारका बुद्धिमान्द्य आता है; विचारशक्ति न्यून होती है। ऐसे प्रकारमें अग्नितुण्डीका उत्तम उपयोग होनेके उदाहरण मिले हैं। इसके साथ कुमार्यासव, वज्रक्षार या अन्य मृदुविरेचन दिया जाय, तो बहुत अच्छा उपयोग होता है।

मध्यम कोष्ठ और बृहदन्त्रमें पुरःसरण क्रिया मंद होने पर अन्न जहाँका वहाँ रुक जाता है, फिर उदरमें जड़ता आजाती है। उस स्थानमें वायुके प्रेरकत्व और पित्तके उष्ण तीक्ष्ण आदि धर्मसे जो भिन्न-भिन्न रस निर्माण होते हैं; उसमें मंदता आजानेसे अन्नका सम्यक् परिपाक नहीं होता। कुछ-न-कुछ अंशमें आहार दूषित होने लगता है। परिणाममें कोष्ठमें कदाच अधिक तीव्र शूल न हो, तो भी मानसिक प्रसन्नताको नष्ट करने वाला एक प्रकारका शूल निकलता रहता है। आहार आगे गति नहीं करता। जहाँका वहाँ स्थिर सा रह जाता है, फिर आफरा आकर उदर खिचने लगता है। डकार या अधोवायुकी प्रवृत्ति सम्यक् नहीं होती। मुँहमें बार-बार जल आना, उबाक बना रहना आदि लक्षण होने पर अग्नितुण्डीका उत्तम उपयोग होता है।

बद्धकोष्ठका विकार जीर्ण होने पर लघु अन्त्र, शेषान्त्रक (Ilum) और अन्त्रपुच्छ (Appendix) के समीपके प्रदेशमें अशक्तता आजाती है। इस हेतुसे अर्द्धपक्व अन्न अन्त्रमें आवश्यकता की अपेक्षा अधिक समय तक रह जाता है, एवं पुरःसरण क्रिया सम्यक् नहीं होती। परिणाममें अन्न विकृत होने लगता है। फिर वहाँ पर शूल निकलता है, जड़ता भासती है, और वह फूले हुए सदृश बन जाता है। इस विकारमें अग्नितुण्डीका उपयोग किया जाता है।

अन्त्रपुच्छ प्रदाह (Appendicitis) के विविध निमित्त कारण होनेपर भी, समवायी (उपादान) कारण दोषप्रकोप ही है। दोषोके विकार-भेदके अनुसार लक्षणोंमें अन्तर होजाता है। कफभूयिष्ठ या कफवातभूयिष्ठ प्रदाहमें लक्षण अधिक तीव्र नहीं होते। ज्वर और शूल मर्यादित होते हैं। अन्त्रपुच्छ अर्थात् उदरके दक्षिण वङ्क्षणोत्तरिक प्रदेश (Right Iliac region) में पत्थर बाँधने सदृश जड़ता होती है, और वह भाग ऊँचा उठ जाता है। बार-बार उबाक आकर मधुर लेसदार वमन होता है। कितनेक रोगियोंको इस स्थानमें होने वाला शूल अति तीव्र होता है। उसे सहन करना अति कठिन होजाता है, परन्तु इसके साथ ज्वर, दाह आदि लक्षण अति मर्यादित होते हैं। इस प्रकारकी व्याधिमें अग्नितुण्डीका उपयोग अप्रतिम होनेके उदाहरण मिले हैं। व्याधि जीर्ण होजाने पर इसका उपयोग उतना नहीं होता। जीर्णव्याधिमें आरोग्यवर्द्धनी अधिक हितकारी है।

कफज उदर रोगमें हाथ, पैर, मुख, नेत्र, त्वचा, नख ये सब निस्तेज—सफेद—हो जाते है। उदर जड़, ऊपर अधिक उठा हुआ और स्तब्ध भासता है। उदर्याकलामें अधिक जलसंचय होनेके पहले सारे शरीरमें शोथ, इनमें भी हाथ-पैर पर अधिक शोथ, और हृदयमें क्षीणता आजाती है, तथा सब यन्त्रोंका व्यापार मन्द होजानेसे समस्त शरीर जड़-सा बन जाता है। मूत्रोत्सर्ग पहले (स्वस्थ) के समान न होने पर भी अच्छा होता है। मूत्र का वर्ण श्वेत वा किञ्चित् पीत-श्वेत होता है। ऐसी स्थिति में अग्नितुण्डी का प्रयोग किया जाता है।

पक्षाघात की प्रारम्भिक तीव्र अवस्था के पश्चात् व्यवहार में लाने योग्य औषधियों में अग्नितुण्डी का समावेश कर सकते हैं। हाथ-पैर में पक्षाघात होजाने पर वातवाहिनियो का ह्रास होजाता है, जिससे किसी भी पदार्थ को उठा लेने की शक्ति नष्ट होजाती है। झनझनाहट, जड़ता और भारीपन आदि लक्षण भासते है। इस स्थिति में अग्नितुण्डी का उपयोग करना चाहिये।

यदि मन, मस्तिष्क (सहस्रार—Brain), वातवाहिनी केन्द्र-स्थान आदि में विकृति हुई हो, मन विचार करनेमें असमर्थ होगया हो; निकम्मे विचार आते रहते हो, तो स्मृतिसागर अथवा सुवर्णप्रधान औषधि, सुवर्णभूपति या मल्लचन्द्रोदय देना चाहिये, तथा वातवाहिनियाँ और मांसतन्तुओंमें क्षीणता अधिक होगई हो, अर्थात् वायु की क्षीणता के हेतु से या वातकफका संयोग होजाने से वायु के प्रेरकत्व

आदि धर्म न्यून होकर वातवाहिनियों और स्नायुओं पर अधिकार कम होगया हो, और जड़ापन आगया हो, तो अग्नितुण्डी वटी देनी चाहिये। (औ० गु० ध० शा० [illegible])

कभी अन्त्रपुच्छ प्रदाह सामान्य होता है और वहां कृमि उस स्थान के समीप विष फैलाता है, तब नाभिके दाहिनी ओर अन्त्रपुच्छ स्थान ऊँचा उठा हुआ भासता है, शौच शुद्धि नहीं होती, विरेचन लेनेपर योग्य शुद्धि नहीं होती और उदरगुहा में वृद्धि होती है, बार बार डकार आती रहती हैं, उदरमें वेदना रहती है। ऐसे रोगी को अग्नितुण्डी वटी आधी-आधी रत्ती दिन में ३ बार निवाये जलसे देवें और शोथ स्थान पर हल्दी, पुनर्नवा गूगल और आमाहल्दी को घिस निवाया कर लेप दिनमें २ बार करते रहे। इस तरह उपचार करने पर कृमि गिर जाते हैं और थोड़े ही दिनों में अन्त्रप्रदाह दूर होता है।

इनके अतिरिक्त बालकोंके कृमिरोग और पाचन क्रिया के शिथि की जीर्णावस्था में इस वटी का सेवन कराने से रोग नष्ट होजाता है, और प्रकृति स्वस्थ होजाती है।

सूचना—इस वटी में कुचिला आदि विषद्रव्य हैं, इसलिये १५ रोज से अधिक एक साथ में नहीं देनी चाहिये। आवश्यकता हो तो ८ दिन छोड़कर फिर देनी चाहिये। मात्रा ज्यादा नहीं देनी चाहिये। इस औषधि को अन्तर-अन्तर थोड़े-थोड़े दिन छोड़कर सेवन करानी चाहिये।

(५६) कृमिमुद्गर रस।

बनावट—शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोले, अजमोद ३ तोले, वायविडङ्ग ४ तोले, शुद्ध कुचिला ५ तोले और पलास के बीज ६ तोले लेवें। सबको यथाविधि मिला शहद के साथ खरल कर १—१ रत्ती की गोलियाँ बना लेवे। (यो० र०)

मात्रा—१ से २ रत्ती नागरमोथाके क्वाथ के साथ दिन में २—३ बार लेवें। इस तरह ३ दिन सेवन कर चौथे रोज जुलाब लेना चाहिये।

उपयोग—कृमिमुद्गर रस अति तीव्र होनेसे कफज कृमि और पुरीषज कृमिके लिये विशेष उपयोगी है। कृमिके हेतु से अरुचि, अपचन, वमन, ज्वर, मूर्च्छा, आफरा, बार-बार हिचकी आना, छींके आना, पेटमें दर्द होना आदि लक्षण होते हो, तो कृमिमुद्गरका उपयोग करना चाहिये। कफवृद्धिसे उत्पन्न कृमि, विशेषतः आमाशय में उत्पन्न होते हैं और आमाशय में ही रहते हैं। उनको दूर करने के लिये यह

रस अति लाभदायक है। इसके सेवनसे ऑंतड़ी में रहे हुए कृमि बाहर निकल आते है, और अन्तड़ी निर्दोष तथा बलवान बन जाती है।

इस रसायनमें कुचिला होनेसे कोष्ठशैथिल्य और इससे उत्पन्न कृमि को बाहर निकलने की अशक्ति, दोनो दूर होते हैं। विशेषतः पक्वाशय और वृहदन्त्र को उत्तेजना मिलने से अशक्ति दूर होती है। अनेक समय कृमिघ्न औषधका इष्ट परिणाम नहीं होता, इसका कारण कोष्ट ने अवयवो की अक्षमता है। कोई भी ओषधि अपना कार्य ठीक व्यवस्थित करने लगे, तब जीवनीय शक्तिकी सहायताकी अति आवश्यकता है। यह सहायता अन्तर अवयवो से न मिलने से उचित कार्य नहीं होता। या ऐसे ही कहो कि, च्युत हुए कृमि फिर वहाँ ही रह जाते है। इस बात को लक्ष्य में रखकर आयुर्वेद ने द्रव्यसंयोग योजना अति मार्मिक रूप से की है।

जब कृमियोग से वातक्षीणता के लक्षण उत्पन्न हो, तब कृमिमुद्गर रस का उपयोग किया जाता है। अजमोद और वायविडंग के मिश्रण से पलाशबीज का त्रास कोष्टमें नहीं होता, बल्कि अपना प्रभाव योग्यरूप से दर्शा सकता है।

कफज कृमि विशेषतः आमाशयमें उत्पन्न होते हैं। ये कृमि बढ़ने पर आमाशयके सब भागोंमें फिरते रहते है। ये कृमि मोटे होते हैं, इनमें कोई गण्डूपद सदृश, कोई धान्यके अंकुर सदृश, कोई अति सूक्ष्म और कोई अति लम्बे होते है। ये कृमि सफेद, लाल, काले, नीले या भिन्न-भिन्न रंग के होते है। इन कृमियो के हेतु से उबाक, अरुचि, अन्न का पचन योग्य न होना, मुँह में पानी आना आदि लक्षण प्रमुख रूप से प्रतीत होते हैं। जब कृमि अति बढ़ जाते हैं, या दोषवृद्धि अति होजाती है, तब सतत वमन, ज्वर, मूर्च्छा, आफरा, बार-बार हिक्का आदि लक्षण उपस्थित होते है। ये कृमि देह में दीर्घ काल तक रह जाने पर रस आदि धातुओं की उत्पत्ति सम्यक नहीं होती। फिर मनुष्य कृश होजाता है। बार-बार जुकाम, छींके आना, खाँसी, उदरपीड़ा आदि विकार होते रहते हैं। इस तरह जीवन अति कष्टमय बन जाता है। इन सब पर कृमिमुद्गर रस का उपयोग किया जाता है। (औ० गु० ध० शा०)

(६०) कृमिकुठार रस।

बनावट—कपूर ८ भाग, इन्द्रजव, त्रायमाण, अजमोद, वायविडंग, शुद्ध सिंगरफ, शुद्ध बच्छनाग और नागकेशर, ये ७ ओषधियाँ १-१ भाग लेवें। सब को मिला भाँगके रसमें ६ घण्टे खरल करके

सुखावे। पश्चात् सब चूर्ण के बराबर पलाश बीज का चूर्ण मिला, मूसाकानी और ब्राह्मी (मण्डूक पर्णी) के रस की १-१ भावना देकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बनावें (नि० र०)

मात्रा—१ से ३ गोली दिन में २ बार सत्यानाशीकी जड़के क्वाथ या शहदके साथ लें। शहदके साथ लेना हो, तो तीन रोज बाद जुलाब लेने से कृमि गिर जाते हैं।

उपयोग—गोल और लम्बे कृमि को छोड़कर सब प्रकार के उदर कृमि, हृदय कृमि, कफज कृमि, पुरीषज कृमि इत्यादि सब जाति के कृमि, कृमिकुठार रस से दूर होते है। एवं कृमिके हेतुसे उत्पन्न उदर-शूल, शीर्षशूल, पाण्डु और वातरोग का शमन होजाता है। यदि कृमि के हेतु से छोटे बालकों को खाँसी और धनुर्वात हुए हो, तो ये भी इस रसायन से निवृत्त होते है।

कृमिकी २० जाति आयुर्वेदने कही है। इनके अतिरिक्त वर्त्तमान में अनेक प्रकार के कृमियो की शोध हुई है। कितनेक कृमि दृश्य हैं; तब कितनेक अदृश्य अर्थात् अति सूक्ष्म होने से केवल नेत्र के योगसे प्रतीत नही होते। इन कृमियो से विविध व्याधियोकी उत्पत्ति होती है। इन सब व्याधियो में कृमि निमित्त कारण है। बाहर से देह में आये हुए कृमियो से दोषप्रकोप, और दोषप्रकोपसे रोग यह परस्परा कितनेक स्थानो में प्रतीत होती है। इससे पृथक् कितनेक स्थानो में पहले मल-संचय अधिक होकर कृमिकी उत्पत्ति होती है। कफज कृमि और पुरीषज कृमि इसी तरह उत्पन्न होते है। कितनेक प्रकार के कृमियो से अतिसार, कोष्ठशूल, आक्षेप आदि होते है। यदि कृमि सूक्ष्म, गोल, धान्यांकुर सदृश हो, तो उदरशूल, अतिसार और वातविकार की प्राप्ति होती है। ऐसे समय पर यह कृमिकुठार रस उत्कृष्ट औषध है।

अणुवीक्षण यन्त्र से दिखने वाले सूक्ष्म कीटाणुओ से उत्पन्न पाण्डु और अतिसार, साथ-साथ नेत्र, भ्रूभाग, कर्णके पास तथा हाथ-पैर, नाभि और मूत्रेन्द्रिय आदि पर शोथ, मुख-मण्डल निस्तेज—सफेद होजाना तथा आम और रक्त मिश्रित मल आदि लक्षण प्रतीत होते हैं, इन पर कृमिकुठार का उत्तम उपयोग होता है।

पक्वाशय और बृहदन्त्र में पुरीषज कृमि उत्पन्न होने से ज्वर, उबाक, नाक और सर्वाङ्गमें खुजली, स्थान-स्थान पर शीतपित्तके समान रक्तके धब्बे होजाना आदि लक्षण होते है। इस व्याधि पर कृमि कुठार रसका उपयोग करना चाहिये।

कृमिज हृद्रोग वस्तुतः हृदयविकार नही है, परन्तु हृत्संनिध प्रदेश (आमाशय) का है। आमाशयमें कफ सचय होने पर या जीर्ण व्रण दीर्घकाल तक रह जाने पर उसमें सूक्ष्म-सूक्ष्म कृमि उत्पन्न होते है, जिससे उदरमें अति वेदना, अम्लपित्त के सदृश खट्टी वमन, वार वार वमन, अन्नका पचन न होना, दिन-पर-दिन क्षीणता बढ़ते जाना आदि लक्षण होने पर प्रारम्भमें कृमिनाशार्थ कृमिकुठारका उपयोग होता है। फिर कामदूधा, सूतशेखर आदि प्रयोजित होते है। यथार्थमें ये कृमि सत्वर नष्ट नहीं होते। इस हेतुसे वार-वार इस रस का उपयोग करते रहना चाहिये।

मध्यम कोष्ठमें भिन्न-भिन्न प्रकारके कृमियोसे कभी-कभी क्षयके समान लक्षण भासते हैं। सम्यक् निरीक्षण और उदरपरीक्षा करने पर निदाननिर्णय होता है। कृमिका निर्णय होने पर कृमिकुठार देना चाहिये। फिर विरेचन देवे। इस तरह प्रयोग करनेसे अनेक रोगियों को जीवन-दान मिला है।

छोटे बालकोंको आक्षेप, बड़ी आयु वालेके आक्षेप, शीर्षशूल, कोष्ठशूल, विशेषतः अन्त्रपुच्छके पास शूल, बद्धकोष्ठ, पाण्डुता आदि रोगोमें कृमि कारण होसकते है। कृमि का निर्णय होने पर कृमि-कुठारका उपयोग होता है।

कृमिकुठारमें कपूर और पलाशबीज होनेसे कफस्रावी गुण भी दर्शाता है। इस हेतुसे छोटे बालकोके कास रोगमें उपयोगी है। यह औषध किञ्चित् हृद्य भी है।

सूचना—कृमिकुठार रस ज्यादा परिमाणमे देनेसे स्वेद, आलस्य, जँभाई, हाथ पैरोंमें शून्यता आदि लक्षण होते हैं। अतः मात्रा कम ही देवे।

(६१) ताप्यादि लोह।

बनावट—हरड़, बहेड़ा, आँवला, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, चित्रकमूल, वायविडंग प्रत्येक २॥-२॥ तोले, नागरमोथा १॥ तोले, पीपरामूल, देवदारु, दारुहल्दी, दालचीनी और चव्य १-१ तोला; शुद्ध शिलाजीत, सुवर्णमाक्षिक भस्म, रौप्य भस्म और लोह भस्म प्रत्येक १०-१० तोले, मण्डूर भस्म २० तोले, और मिश्री ३२ तोले ले। फिर सबको यथाविधि कूट खरल करके मिला लेवे।* (ओ० गु० ध० शा०)

* मूल ग्रन्थमें शिलाजीत, सुवर्णमाक्षिक भस्म, रौप्य भस्म और लोह भस्म, चारो भूलसे १--१ तोला लिखी गई हैं। परन्तु गुणविवेचनमें मूल ग्रन्थकारने इस औषधिमें शिलाजीत ज्यादा परिमाणमें है, ऐसा लिखा है। अतः इन औषधियोंको आवश्यकतानुसार १०-१० तोले लिखा है।

मात्रा—१ से ३ रत्ती तक दिनमें २ समय मूलीके रस अथवा गोमूत्रके साथ। नये बालग्रहमें अरंडीके तेलके साथ। जीर्ण बालग्रह रोगमें ब्राह्मीके रसके साथ।

उपयोग—यह रसायन शीत ज्वरके बाद होनेवाला पाण्डु, स्त्रियोंके पाण्डु रोग, हृदयकी निर्बलता, थोड़ा-थोड़ा सूजन, भोजनके बाद आफरा, रजोदर्शनकी अनियमितता, छोटे बालकोंको मिट्टी खाने से होनेवाला पाण्डु, कृमिजन्य पाण्डु, अरुचि, वमन, यकृत्के ऊपरसे होनेवाला मांसार्बुद, आदि रोगोंका नाश करता है। इस रसायन के योगसे रक्तकणकी वृद्धि होकर अभिसरण क्रिया सुधरती है, और हृदय आदि इन्द्रियाँ बलवान बनकर अनेक रोग नष्ट होजाते है।

प्राचीन शास्त्रकारोंने ताप्यादि लोहका मुख्य उपयोग पाण्डु रोग पर लिखा है। इसकी रचना पर दृष्टि डालनेसे विदित होता है कि, रक्तकी अशक्तता या रक्ताभिसरण क्रिया की मन्दताके कारण से उत्पन्न होनेवाले रोगोंमें इसका उपयोग होसकता है। आयुर्वेदमें जिसको पाण्डुरोग संज्ञा दी है; उस रोगकी भिन्न-भिन्न अवस्थाओंमें भिन्न-भिन्न कारण होते हैं। किसी भी रोगके प्रखर आघातसे रक्तमें रहे हुए रक्ताणुओंका नाश होकर रक्तमें एक प्रकारका फीकापन आता है, जिससे त्वचा निस्तेज होजाती है। मुँह और शरीर पर शोथ आ जाता है। इन लक्षणोंसे युक्त अवस्था को पाण्डुरोग कहा है। यह अवस्था किसी-किसी समय अन्य तीव्र रोगके उपद्रव रूप भी होती है। इस प्रकारके पाण्डु में इस औषधके योगसे रक्तकणकी वृद्धि और दृढ़ता होती है। अभिसरण क्रिया सुधरती है; तथा हृदय आदि अभिसरण करने वाली इन्द्रियाँ सशक्त होकर रोगका नाश होता है।

अनेक दिनों तक शीतज्वर आजानेके हेतु से पाण्डुता उत्पन्न होजाती है, उस पर ताप्यादि लोहका उपयोग होता है। ऐसी अवस्था में लोहभस्मयुक्त औषधि देनेका शास्त्रकारोंने विधान किया है। आयुर्वेद में मात्र लोहभस्मकी अपेक्षा मण्डूर वटक, नवायस लोह, त्रिफला लोह आदि लोहमिश्रित औषध देनेका रिवाज है और वह उत्तम है। यह ताप्यादि लोह इन औषधियोंमेंसे ही एक है।

तरुण स्त्रियोंको होनेवाले पाण्डुरोग (हलीमक) में इस ताप्यादि लोहका उपयोग होता है। इस पाण्डुरोगमें त्वचाका रंग एक प्रकार का हरा-पीला होजाता है। स्त्री केवल अशक्त, किसी भी बातकी इच्छा न होना, किसी काम करनेमें उत्साहका अभाव, बैठी हो तो बैठी ही

रहनेकी इच्छा, हृदयमें घबराहट और धड़कन, हृत्स्पंदकी वृद्धि, हृदय की निर्बलता, हृदयके एक खण्डमें से दूसरे खण्डमें रक्त जानेकी क्रियामें विकृति होजाना, मुँह, हाथ, पैर, नेत्र, होठ और गाल पर थोड़ी-सी सूजन, अपचन, थोड़ा-सा खाने पर भी पेट फूल जाना, दूषित डकार आना, यथासमय रजोदर्शन न होना इत्यादि लक्षण होनेपर ताप्यादि लोहका उपयोग करना चाहिये ।

छोटे बच्चो और बड़ोंमेंसे किसी-किसीको मिट्टी खानेकी आदत होजाती है। इससे पाण्डुरोग होजाता है। मृद्भक्षणजन्य पाण्डु रोगमें पहले मृदु विरेचन रस देना चाहिये। पश्चात् ताप्यादि लोह या चरकोक्त योगराज रसका सेवन करानेसे पाण्डु रोग दूर होता है।

कृमिजन्य पाण्डुरोग में हाथ-पैर पर शोथ, हृदयमें घबराहट, नाड़ीकी तेज गति, बेचैनी, मल मलीन-सा आम, झाग और रक्तयुक्त, शौच कम समय होवे, परन्तु प्रत्येक समय मल ज्यादा निकले, अविपाक, अरुचि, कभी-कभी वमन, उदरमें थोड़ा-थोड़ा दर्द, सफेद निस्तेज रक्तहीन त्वचा, मानसिक अस्थिरता, उत्साह न रहना, शक्तिपात और कृशता आदि लक्षण होनेपर उदरमें, विशेषतः ग्रहणी (Duodenum) में सूक्ष्म-सूक्ष्म कृमि है, ऐसा मानना चाहिये। इन कृमियों को नष्ट करनेके लिये पहले कृमिघ्न औषधि देना चाहिये, पश्चात् अथवा साथ-साथ ताप्यादि लोह भी देना चाहिये ।

ताप्यादि लोहमें यकृत्शक्तिवर्द्धक, पाचक और अग्निप्रदीपक चित्रक आदि औषधियाँ होनेसे इसका उपयोग कामला रोगमें भलीभाँति होता है। यकृत्के ऊपर उत्पन्न होनेवाले मांसार्बुद (कर्कस्फोट) के कारणसे कामला रोग हुआ हो, तो ताप्यादि लोह थोड़ा-बहुत काम करता है। परन्तु इसके अतिरिक्त अन्य प्रकारके कामला रोगमें ताप्यादि लोहका बहुत अच्छा उपयोग होता है ।

सर्वाङ्गमें पीलापन, नख, मूत्र, नेत्र और त्वचा, ये सब अति पीले, उतने परिमाणमें कि पहने हुए कपड़े और बैठनेकी गादीकी चादर भी पीली होजाना, मूत्रका रंग अत्यन्त पीला और गँदला, कभी-कभी गँदला होकर अति लाल भी होजाना, शौच मैला सफेद रंगका चिकनापन रहित, झागयुक्त, पतला होना, अन्नपर अरुचि, मदाग्नि और बलविहीनत्व आदि लक्षण होनेपर ताप्यादि लोह आमके मुरब्बेके साथ या मिश्रीमिले मूलीके रसके साथ देनेसे उत्तम कार्य होता है। इसके साथ अमलतासको फलीका गर्भ या अन्य सौम्य विरेचन देना चाहिये ।

मूल संस्कृत ग्रन्थोक्त गुणपाठमें "विशेषाद्धन्त्यपस्मारं कामलां गुदजानिच" ऐसे विशेष गुण धर्म दिया है। अपस्मार बहुत दिनका होजानेसे उसपर कितना उपयोग होता है, यह प्रश्न विचारणीय है। परन्तु नया विकार हो, तो इसका उपयोग बहुत अच्छा होता है। अपस्मारका अर्थ होता है स्मृतिका अपाय—तात्कालिक स्मृति नष्ट होना। यकायक झटका आकर बेहोशी, मुँहमें झाग आजाना, मुँह टेढ़ा होजाना, बीभत्स चेष्टा, हाथ-पैर और सारा शरीर टेढ़ा-मेढ़ा हो जाना, बार-बार नाड़ियाँ खिचना और प्रायः पूर्वसूचक चिह्न कुछ भी न होते हुए अकस्मात् किसी भी स्थानमें और किसी भी स्थितिमें झटका आकर पत्थर समान बेहोश होजाना आदि लक्षण होने पर ताप्यादि लोह उपयोगी है। अभ्रकभस्म मनोव्याघातजन्य अपस्मारमें और ताप्यादि लोह शारीरिक दोष विकृतिजन्य अपस्मारमें उपयोगी है।

छोटे बच्चोंके बालग्रह (धनुर्वात) में यह औषधि अच्छा कार्य करती है। मात्र इसके साथ अरंडीका तेल अथवा अन्य मृदु विरेचन देना चाहिये। बालग्रहका पहला तीव्र झटका आजानेके पश्चात् इसका विशेष उपयोग होनेके अनेक उदाहरण हैं। जीर्ण बाल-ग्रह, अपचनसे उत्पन्न बालग्रह, उन्माद रोगसे पीड़ित माताके बालकको होने वाला बालग्रह, डरपोक, क्रोधी और निर्बल मनवाली माताके सन्तानको होनेवाले बालग्रह, इन सब पर ताप्यादि लोह सफल औषधि है। जीर्ण बालग्रह रोगमें अनुपान ब्राह्मीका रस देना चाहिये।

इस औषधिमें शिलाजीतका परिमाण अधिक होनेसे इसका उपयोग मूत्रविकार पर होता है। मूत्रमें रहे हुए अनेक प्रकारके क्षार शरीरमें संचित होजानेसे उत्पन्न विविध विकारोंमें, विशेषतः वातविकार में, उनमें भी जीर्ण वातविकारमें इस औषधिका अच्छा उपयोग होता है।

शिलाजीत मूत्रल, आमपाचक, रक्तदोषहर, और शरीरमें संचित मूत्रके अद्भुत क्षारोंका वियोजन करके मूत्र द्वारा स्राव कराने वाली सेन्द्रिय औषधि है। शिलाजीत सेन्द्रिय द्रव्य होनेसे देहमें जानेके साथ तुरन्त शोषण होकर अपना कार्य करने लगता है। शिलाजीतके इस गुणके हेतुसे यह कल्प (ताप्यादि लोह) जीर्ण आमवात और वातरक्त, एव इनसे उत्पन्न होनेवाले स्नायुसंकोच अथवा वातवाहिनियोंकी शुष्कता, इन सब विकारों पर बहुत अच्छा काम देता है।

इसी कारणसे प्रमेह आदि रोगसे उत्पन्न कोथ (घटकोंका गलना Gangrene) की बिलकुल प्रारंभावस्थामें ताप्यादि लोहका सेवन करने

से आगे होनेवाले सब अरिष्ट दूर होजाते है, ऐसा अनुभव है। त्वचामें या त्वचाके भीतरके भाग में भयंकर जलन, कालापन, साथ-साथ सूक्ष्म ज्वर, बेचैनी, घबराहट, मानसिक अस्वस्थता, प्यास आदि लक्षण अति बढने पर त्वचा बिल्कुल काली कोलतार (डामर) के समान रंगवाली होजाती है। ऐसे समय पर उसके घटकोंका गलना, यह भी साथ-साथ बढता जाता है। इस तरह कोथ रोग अत्यन्त बढ़ गया हो, तो इस ओषधिका उपयोग ज्यादा नहीं होसकेगा। परन्तु प्रारंभ कालमें यदि इसकी योजना की हो, तो रोगकी वृद्धि रुक जाती है और शनैः-शनैः रोग कम होजाता है।

शरीर पर भयंकर खाज, छोटी-छोटी फुन्सियाँ होना, त्वचा पर काले धब्बे होजाना, फुन्सियोंका विष फैलकर दादके समान खाज आते ही रहना, और यह विकार कभी ज्यादा कभी कम होजाना, इनमें त्वचाका विकार कम होने पर झटका आना और झटका कम होने पर त्वचाका विकार होना (क्वचित् झटका भी नहीं आना), ऐसी स्थितिमें ताप्यादि लोह अच्छी उपयोगी है। किंबहुना, ऐसे त्वचाके रोगोंमें गन्धक रसायनकी अपेक्षा ताप्यादि लोह ही युक्त ओषधि है।

आयुर्वेदमें अम्लपित्त रोगमें अनेक भिन्न-भिन्न कारणोंका अर्थात् शरीरावयव विकृतिका समावेश होता है। साधारण रूपसे पित्त ज्यादा उत्पन्न होनेसे होनेवाला, पित्त ज्यादा तीव्र होनेसे होनेवाला, पित्तोत्पादक पिण्डका क्षोभ होनेसे होनेवाला, अन्तर व्रण होकर उदरकी आकृति बढ़ जानेसे होने वाला, इस रीतिसे अम्लपित्तके अनेक प्रकार होते हैं। इनमेंसे उदरकी आकृति बढ़ जानेसे होने वाले अम्लपित्तमें सुबह वमन अवश्य करानी ही पड़ती है, यह विशेष लक्षण है, तथा कण्ठदाह, उदरदाह, क्वचित् उदरपीडा, वमन होजाने पर अच्छा लगना आदि लक्षण हो, तो ताप्यादि लोह मक्खन-मिश्रीके साथ देना चाहिये, और अन्तःपरिमार्जन (आमाशय शोधन) भी करना चाहिये।

बद्धकोष्ठ (कब्जियत) रोग अन्त्रकी निर्बलताके कारणसे होता है। अन्नका पचन अच्छी रीतिसे न होना, मलोत्सर्ग बराबर न होना, खाये हुए भोजनका विदाह, सेन्द्रिय विष कोष्ठमें संचित होकर आम संचय होजाना, इन कारणोंसे बद्धकोष्ठ उत्पन्न होता है। इनमेंसे वर्त्तमानमें अन्त्रनिर्बलता और इस अन्त्रनिर्बलताके कारण उसकी संचालनक्रिया कम होकर उत्पन्न मलावरोध अधिकांशमें प्रतीत होता है। अन्त्रशक्ति कम होजानेसे किसी भी प्रकारकी विरेचन ओषधिका

इष्ट परिणाम नहीं होता, बल्कि अनिष्ट परिणाम होता है। कारण, विरेचन औषधिसे अन्त्रशक्तिमें न्यूनता होती और सेन्द्रिय विष की वृद्धि होती है। फिर आम संचय होकर अन्त्रमें निर्बलता आ जाती है। इसी कारणसे बद्धकोष्ठ निर्माण होता है। ऐसे रोगीको विरेचन देनेमें बद्धकोष्ठ बढ़नेका ही अनुभवमें आता है। इस कारणसे ऐसे रोगीको विरेचन नहीं देना चाहिये। इसके विपरीत अन्त्रको बलवान बनाकर मलोत्सर्ग करानेवाली औषधि देना, यही श्रेयस्कर है। इस अवस्थामें ताप्यादि लोहके सेवनसे शनैः-शनैः आँतें बलवान् बनकर बद्धकोष्ठ की आदत कम होजाती है। यदि यह ताप्यादि लोह सेवन काल समय मलावरोध होजाय, और अति आवश्यकता हो, तो बस्ति देनी चाहिये, परन्तु विरेचन नहीं देना चाहिये।

किसी भी अवयवमें रक्तका दबाव बढ़ने पर उसका प्रसादन करना, यह ताप्यादि लोहमें बड़ा भारी गुण है। यह गुण शिलाजतु, रौप्य और सुवर्णमाक्षिकके कारणसे दृष्टिगोचर होता है। इस हेतुसे रक्तज मूर्च्छा, पक्षाघात और आन्त्रिक सन्निपातमें होनेवाले दुष्ट रक्त-जन्य वातप्रकोपके शमनार्थ ताप्यादि लोह अति उपयोगी है।

पक्षाघातके बिल्कुल प्रारम्भिक एक दो दिनमें रोगी बेहोश, नेत्र लाल, ज्वर, शक्तिहीनता, हाथ-पैरोंकी शक्ति बिल्कुल नष्ट होजाना, जड़ता, जिह्वाकी बोलने की शक्ति कम होजाना, अंगका एक ओरका अर्द्ध भाग अकस्मात् शक्तिहीन होकर काष्ठवत् होजाना आदि लक्षणोंसे युक्त पक्षाघातमें प्रारम्भके एक दो दिन जानेके पश्चात्, रोग कुछ स्थिर होजानेपर ताप्यादि लोहका उपयोग करना हितकर है। पक्षाघातकी इस अवस्थामें ताप्यादि लोहका एकांगवीरकी अपेक्षा भी अच्छा उपयोग होता है। परन्तु पक्षाघातकी जीर्णावस्थामें इस औषधिका चाहिये वैसा उपयोग नहीं होता! जीर्ण रोगमें भी इस औषधिका रक्तप्रसादन कार्य अनुभवमें तो आता है, फिर भी कितनेक जीर्ण रोग में दोष रक्तकी अपेक्षा अन्य धातुओंमें (गहराई) चले गये होते हैं। इसलिये इस औषधिसे इष्ट कार्य नहीं होता।

ताप्यादि लोहका उपयोग रक्तप्रसादन गुणके कारण दुष्ट रक्त-जन्य ज्वर, सूतिकाज्वर और पूयजन्य ज्वरमें आक्षेपक, झटके, तन्द्रा और मूर्च्छा, इन विकारों पर अच्छी रीतिसे होता है।

इस औषधिमें रक्तप्रसादन और बद्धकोष्ठनाशक गुण होनेसे अर्श की प्रारम्भिक अवस्थामें उत्पन्न मस्सेपर इसका उपयोग, उत्तम

होता है । वे ही मस्से बड़े होजाने पर या अधिक शोथ आजाने पर बाह्य उपचार द्वारा निकाल देनेके सिवा अन्य उपाय नहीं है ।

धनुर्वात विकारमें आयुर्वेदने धनुष्कंप, अंतरायाम, बहिरायाम, ऐसे भिन्न-भिन्न नाम दिये है । अभिघात (चोट), गर्भपात, सूतिका रोग, कटा हुआ घाव कुपित होजाना, इन कारणोसे यह रोग उत्पन्न होता है, यह आयुर्वेदको मान्य है । यह रोग लगे हुए घाव द्वारा एक प्रकार का जन्तु जन्य विष शरीरमें फैल जानेसे उत्पन्न होता है । इस रोगमे चिकित्सा करनेमें दो बातोकी ओर लक्ष्य देना पड़ता है । पहली बात यह है कि, जिस स्थानके भीतर इस प्रकारके विषाक्त कीटाणु गये हों, उस स्थानको स्वच्छ करना, दूसरी बात सारे शरीरके स्नायुओमें फैले हुए विषको नष्ट करना । घावको स्वच्छ करके शहदमिश्रित रुईका फोहा रखनेसे प्रथम बातकी सिद्धि होती है । दूसरी बातके लिये सारी देहमें विषप्रकोप फैला हो और विष की तीव्रता हो, तो कालकूट रस लाभ-दायक है । इस रसका विषाक्त जन्तुओ पर निश्चित उत्तम परिणाम होता है । परन्तु कालकूट रस अति तीव्र है और जितने परिमाण में रक्त-प्रसादन कार्य कराना चाहिये, उतने अंशमें इससे नहीं होता । इस कारण तीव्रावस्था कम करनेके लिये कालकूट रसको उपयोगमें ले । फिर मन्दावस्थामें रक्तप्रसादन करके रक्तको निर्विष करनेवाली औषधि देनी चाहिये । ऐसी औषधि ताप्यादि लोह हैं । इस ताप्यादि लोहके सेवनसे धनुर्वातके अवशेष लक्षण और विष नष्ट होजाते है । यह रसायन कालकूट जितना उष्ण भी नहीं है ।

विष प्रयोगमें पहले विषनाशक वमन आदि प्रयोग और विष को निर्विष करनेवाले साक्षात् प्रतिविष द्वारा जीवनरक्षा करनी पड़ती है, परन्तु आगे उस विषके तीव्रत्व आदि गुणोका लेश—अनिष्ट परिणाम रूप असर भीतर रह जाता है, जो अनक दिनो तक (क्वचित् वर्षों तक) त्रास देता रहता है । उस अवस्थामें ताप्यादि लोहका उपयोग होता है । इसके सेवनसे विषके लेशसे दीर्घकाल तक टिकनेवाले उत्कर्ष और वृत्ति धर्म नष्ट होनेमें सहायता मिलती है । यह इस रसायनमें महत्त्वका गुण है ।

हृदयकी अशक्तता या हृत्स्पंद विकारसे उत्पन्न कास रोगमें फुफ्फुसोंके भीतर विदाह, सूक्ष्म ज्वर, मुँहमें शुष्कता (क्वचित् शुष्कता इतनी बढ़ती है कि मनुष्य अत्यन्त बेचैन होजाता है), चहे जितना जल-पान करने पर भी तृप्ति न होना, खाँसते खाँसते पीली,

कड़वी, खट्टी और गरम-गरम वमन होजाना, वेग उत्पन्न होने पर खूब खाँसी चलना, मुँह और सर्वाङ्ग निस्तेज और पीलासा होजाना, वार-वार खाँसते रहनेसे मुँह, विशेपतः गाल-थोड़ेसे फूले हुए दीखना और घवराहट आदि लक्षण होते हैं, उस पर ताप्यादि लोह दाड़िमावलेहके साथ देना चाहिये।

क्षतक्षयमें ऊपर लिखे अनुसार वमन होजाय ऐसी त्रासदायक खाँसी हो, वार-वार पीला, हरा, गरम, क्वचित् रक्तयुक्त कफ पड़ता हो तथा उवाक अधिक हो, तो इस औषधिका उपयोग करना चाहिये।

विपम ज्वरमें ज्वर आनेका प्रकार, ज्वर निकल जानेकी रीति, लक्षणोंकी जाति, इन सवमें भूत आदिके समान विल्कुल नियम न होना, जैसे आज थोड़ी ठण्ड लग कर वड़ी जल्दीसे ताप आना, ताप भी ज्यादा हो, दूसरे दिन ज्यादा ठण्ड लग कर ताप आना, कभी न आना, कभी अकस्मात् आजाना ऐसी अनियमित ज्वरकी अवस्थामें वातपित्तात्मक लक्षण अधिक होने पर इसका उपयोग करना चाहिये।

आमाशय, पक्काशय, ऊर्ध्व और मध्यम वृहदन्त्रमें समान वायुका कार्य सम्यक् प्रकारसे न होनेसे वार-वार अपचन होनेकी आदत पड़ जाती है। साथ-साथ अरुचि, उवाक, उदरमें जड़ता, अन्न समीप आने पर मुँहमें जल आजाना आदि लक्षण अधिक हो; एवं मर्यादामें या थोड़े परिमाणमें भोजन करने पर भी पचन न होता हो, तो उस विकार पर ताप्यादि लोह अच्छा काम करता है।

काल मेह, नील मेह, हारिद्र मेह, मांजिष्ठ मेह, इन प्रमेहोंमें विशेपतः पित्तप्राधान्य लक्षण होते हैं। इन पर चन्द्रप्रभा, नाग भस्म और ताप्यादि लोह उपयोगमें आते है। अपचनसे होने वाले या इन रोगो वाले रोगियोको अधिकतर अपचन रहती हो, निश्चितता, स्थिरता और लक्षणोकी दृढ़ता ज्यादा न हो, लक्षणोकी चचलता हो, तो इन प्रमेहोंमें ताप्यादि लोहका सेवन हितकारक होता है।

रक्तकी अशक्तताके कारणसे शरीर फूलकर आया हुआ सर्वाङ्ग शोथ, अर्श या अन्य मार्गसे रक्तस्राव अधिक होने पर आया हुआ शोथ, यकृद्वृद्धि, प्लीहावृद्धि, मलावरोध या मूत्रपिण्ड (वृक्क) की विकृतिसे उत्पन्न शोथ, रक्तस्राव अधिक होजानेसे आई हुई निर्वलता और उससे उत्पन्न क्षय, विशेपतः रक्त धातुका क्षय तथा तदनन्तर उत्पन्न शोथ, इन सव प्रकारो पर ताप्यादि लोह उत्तम कार्य करता है।

संक्षेपमें ताप्यादि लोह पाण्डु, कामला, अपस्मार, वालकोके

बालग्रह, जीर्ण वातविकार, कोथ (शरीरके घटकोंका गलना), खुजली, अम्लपित्त, मलावरोध, रक्तदबाव वृद्धि, वातप्रकोप, नूतन पक्षाघात, पूयजन्य ज्वर, सूतिका ज्वर, दुष्ट रक्तजन्य ज्वर, धनुर्वात, जीर्ण विष-प्रकोप, हृदयकी विकृतिसे होनेवाला कास रोग, क्षतक्षय, अनियमित विषम ज्वर, जीर्ण अजीर्ण रोग, पित्तप्रधान प्रमेह, शोथ रोग, रक्तमें विष अथवा क्षारवृद्धि, स्त्रियोंके गर्भाशयके दोष, मूर्च्छा, त्वचा रोग इत्यादिको दूर करनेमें उत्तम लाभदायक जाना गया है।

ताप्यादि लोहमें रक्तप्रसादक, रक्तके रक्ताणुवर्द्धक, मूत्रल, वल्य, रसायन, आक्षेपघ्न, पाचन और दीपन गुण है। इसमें सुवर्णमाक्षिक पाचन, दीपन, आक्षेपघ्न, पाण्डुत्वनाशक (रक्तकणवर्द्धक), वल्य और रसायन है। शिलाजीत रसायन, धातुपरिपोषण क्रममें सहायक और मेहनाशक है। रौप्य मूत्रल, वृष्य और आक्षेपघ्न है। मंडूर रक्तवृद्धिकर, रक्तस्तम्भक, रक्तकणवर्द्धक और इस कारणसे धातुवर्द्धक है। चित्रक, पाचक, अग्निप्रदीपक, वातनाशक और अर्शोघ्न है। त्रिफला रसायन, मृदु सारक और पचनेन्द्रियको शक्ति देकर पचन क्रिया बढ़ानेवाला है। त्रिकटु पाचक और अग्निप्रदीपक है। वायविडंग कृमिघ्न और पाचक है।

(औ० गु० ध० शा० के आधारसे)

(६२) नवायस चूर्ण।

बनावट—सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड़ बहेड़ा, आँवला, नागर-मोथा, वायविडङ्ग और चित्रकमूल, ये सब एक-एक तोला और लोह भस्म ९ तोले लेवें। सबको मिलाकर एकत्र करें। (च० चि०)

मात्रा—२ से ४ रत्ती घी और शहद या मट्ठेके साथ दिनमें २ बार। धीरे-धीरे मात्रा बढ़ावें। कफ अधिक हो, तो अदरखके रसमें दें।

उपयोग—यह रसायन कामला, पाण्डु, शोथ, हृदय रोग, उदर रोग, कृमि, कुष्ट, भगन्दर, मन्दाग्नि, प्रमेह, बवासीर और अरुचिको दूर करता है; तथा शक्तिवर्द्धक, अग्निप्रदीपक और पाचक है। रक्तमें रक्ताणुओंकी वृद्धि करता है, और यकृत्को शक्ति देकर उसकी क्रियाको सुधारता है,

शीतल वायुका स्पर्श, जीर्ण अपचन, सूक्ष्म ज्वर दिनों तक रह जाना, इन कारणोंसे कामला उत्पन्न होने पर नवायस रसायन उत्तम लाभदायक है। इस तरह उत्पन्न कामलामें एक दो दिनके भीतर ही पूर्ण लक्षण उपस्थित हो जाते है। मंद ज्वर, अरुचि, नेत्र, हाथ-पैर, नाखून, त्वचा और मूत्रमें अति पीलापन, बद्धकोष्ठ, शौच होने पर

सफेद सा मल, तिलकी खलको जलमें मिलाने सदृश दस्त होना आदि लक्षण प्रकाशित होते हैं। इस पर सौम्य विरेचन अमलतासकी फलीके गर्भ का क्वाथ या अन्य अनुपान देना चाहिये।

दीर्घकालस्थायी अति दुःखदायी ज्वर आजानेके पश्चात् या अतिसार, ग्रहणी या इनके समान दीर्घकाल टिकने वाले विकार दूर होने पर आई हुई पाण्डुता पर इस नवायस चूर्ण का अच्छा उपयोग होता है। इन विकारोंमें दोप-दूष्य आदिकी विकृतिको नष्ट कर धातु-साम्य प्रस्थापित करनेके लिये जीवनीय शक्तिको अति परिश्रम करना पड़ता है। इस हेतुसे देहमें पृथक्-पृथक् अवयव बिल्कुल थक जाते हैं। ऐसी परिस्थितिमें सबके लिये शक्तिदायक औषध की आवश्यकता रहती है। नवायस चूर्णमें इस प्रकारकी उत्तम योजना है।

अपचन, अग्निमांद्य, पाण्डुता, साथ-साथ हृत्स्पंद, थोड़ा-सा चलने, बोलने या परिश्रम करने पर हृदयमें धड़कन और घबराहट हो जाना, हाथ-पैर पर शोथ, अनियमित और तीव्र वेगवती नाड़ी, मस्तिष्क और हाथ-पैरोंकी शिराओंमें रक्तकी गति बढ़नेसे रक्त स्पंदन स्पष्ट प्रतीत होना, चेतना शक्तिके भीतर खिचने सदृश भासना आदि लक्षण होने पर नवायस चूर्ण घृत और शहदके साथ देना चाहिये।

यकृत्की क्रिया सम्यक् न होनेसे उसमें रक्तशुद्धि करने की क्रिया ठीक नहीं होती। फिर दोप संग्रहीत होकर रक्त विकृत होजाता है। इसका परिणाम त्वचा पर होता है। त्वचा पर काले-नीले धब्बे पड़ते हैं, खुजली चलती है। सूक्ष्म पिटिकाएँ होती हैं। इन पिटिकाओं के नष्ट होने पर उन स्थानों पर काले मण्डल होजाते हैं। एव मलावरोध, अग्निमान्द्य, यकृत् पर कुछ शोथ आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस व्याधिमें नवायस चूर्ण मट्ठे के साथ देना चाहिये।

कफज अर्शमें मस्से बहुत मोटे और लम्बे होते हैं। इनमें वेदना कम होती है। वे ऊपर उठ जाते है, तथा सफेद, तेजस्वी, गोल, मोटे और गाढ़े प्रतीत होते हैं, हाथको कुछ गीलेसे मालूम पड़ते हैं, ऊपरमें खुजली आती है। रोगी इन मस्सोंको बार-बार स्पर्श करता रहता है। स्पर्श करने या खुजाने पर अच्छा मालूम पड़ता है। ये मस्से गोस्तन, कटहल की गुठली या अंगूरके गुच्छ सदृश भासते हैं।

साथलोंमें कुछ सूजन, गुदाद्वार और बस्ति मार्गका नाभि पर्यन्त भीतर आकर्षण हो रहा हो ऐसा भासना, कास, श्वास, उबाक, अरुचि,

बार-बार जुकाम होजाना, बार-बार मूत्रोत्सर्ग होना, अनेक बार मूत्रमें दाह हो, कण्ठमें जड़ता आजाना, मस्सोंका त्रास होने पर देहमें शीत आने सदृश भासना, अग्निमान्द्य, कभी-कभी वमन, आम समान लेसदार सफेद दस्त होना, अति किंछने पर दस्त होना आदि लक्षण होते हैं। मस्से फूटते नहीं, मस्सोंमेंसे स्राव नहीं होता, अधिक रक्त भी नहीं गिरता, परन्तु सारे शरीरमें अति निस्तेजता आजाती है। इस प्रकारके अर्श रोग पर नवायस चूर्णका उपयोग अच्छा होता है।

स्निग्ध भोजन करके बैठे रहने या निद्रा लेकर दिनको पूरे करना, गुड़ या गुड़की विकृतिमेंसे बने हुए पदार्थों का अधिक उपयोग, ईखके रस या अन्य मधुर पदार्थोंका अधिक सेवन करना इन कारणोंसे कफ-प्रमेह होता है। इस प्रमेहमें अनेक बार अधिक परिमाणमें मूत्रोत्सर्ग होता है। मूत्र का विशिष्ट गुरुत्व अनेक बार कम होता है, इसमें शहद या क्षारकी मात्रा भी कम होती है। ऐसी स्थितिमें नवायस चूर्णका उपयोग अच्छा होता है। (औ० गु० ध० शा०)

यकृद् वृद्धि होने पर अपथ्य सेवन करनेसे यकृदुदरके साथ सर्वाङ्गशोथ उपस्थित होता है। उस रोग पर नवायस चूर्ण १-१ माशा गोमूत्र या निवाये जलके साथ दिनमें २ बार सुबह और शामको देने तथा भोजन करलेने पर पुनर्नवासव, अभयारिष्ट और रोहितकारिष्ट, तीनों मिला लवणभास्करचूर्ण १॥-१॥ माशेके साथ देते रहनेसे यकृद्-वृद्धि और शोथ सत्वर शमन होजाते हैं। अधिक मूत्र शुद्धिकी आवश्यकता हो तो पुनर्नवा और गोखरू ६-६ माशे का क्वाथ बनाकर रोज सुबह नवायस चूर्णके साथ देते रहना चाहिये।

(६३) योगराज रस।

बनावट—त्रिफला, त्रिकटु, चित्रकमूल, वायविडङ्ग ये आठ ओषधियाँ ३-३ भाग, शुद्ध शिलाजीत, रौप्यमाक्षिक भस्म, सुवर्ण-माक्षिक भस्म और लोह भस्म प्रत्येक ५-५ भाग और मिश्री ८ भाग लेवें। सबका बारीक चूर्ण कर दुगुने शहदमें मिला लोहपात्रमें भरकर दो सप्ताह तक धान्य राशिमें दबा देवें। पश्चात् निकाल कर उपयोग में लेवें। (च० चि०)

मात्रा—१ से १॥ माशे दिनमें २ बार सेवन करें।

अनुपान—योगराज रसके साथ अनुपान अम्लविपाक रहित और मूत्रपिण्डकी क्रिया में बाधा न पहुँचाने वाला मिलाना चाहिये। पाण्डुमें दुग्ध, कामलामें मूलीका रस या गोमूत्र, नूतन बालग्रह में

एरण्डतैल, रक्त दबाववृद्धिमें लहशुन स्वरस या विरेचन, शोप पर अजादुग्ध तथा नूतन अर्शमें मट्ठा।

उपयोग—यह रसायन हृदय और पचनेन्द्रिय संस्थाकी निर्बलतासे उत्पन्न सब रोगोंका नाश करनेमें उत्तम है। इनमें भी विशेषतः पाण्डु, विषविकार, कास, क्षय, विषमज्वर, कुष्ट, अजीर्ण, प्रमेह, शोप, श्वास, अरुचि, कामला, अर्श और अपस्मारको नष्ट करता है।

यह रसायन पाण्डुरोगीके लिये अमृतरूप है। शीतज्वर पश्चात् पाण्डु, मृद्भक्षणजन्य पाण्डु, स्त्रियोंको होनेवाला पाण्डु, रक्तस्राव या रजःस्रावसे उत्पन्न पाण्डु, इन सब प्रकारके पाण्डु, सब प्रकारके कामला रोग और हलीमक आदि नाना प्रकारके उपद्रवोंसह व्याधियोंको नष्ट करता है। जीर्ण अजीर्णके पश्चात् नया अपस्मार, अजीर्णजन्य सेन्द्रिय विषसे उत्पन्न विविध रोग, जीर्ण विषविकार, अजीर्णजन्य कफप्रमेह, वात पित्त-कफप्रधान सब जातिके नये कुष्ठ, नया अर्शरोग इन सबमें यह रसायन अति हितकर है।

योगराज रस और ताप्यादि लोह, दोनों ओषधियोंमें बहुत अंशमें समानता है। इस हेतुसे योगराज रसमें भी गुण अनेकांशमें ताप्यादि लोहके समान है। जहाँ ताप्यादि लोह दिया जाता है वहाँ प्रायः योगराजका भी उपयोग होसकता है। जब रोगीकी देहमें मेद बढ़ जाता है और बलक्षय अधिक होता है, या श्लेष्म प्रकोपजनित रक्तमें दुष्टता बढ़ जाती है, श्वेत जीवाणु संख्या अत्यन्त बढ जाती है; तब यह रसायन ताप्यादि लोहकी अपेक्षा अधिक लाभ पहुँचाता है।

सूचना—इस रसायनके सेवन करनेवालोंको चाहिये कि, रसायन जीर्ण होने पर कुलथी, मकोय, कबूतरका मास तथा रोग या प्रकृतिके प्रतिकूल पदार्थोंको छोड़कर प्रकृतिके अनुकूल भोजन करे।

(६४) चन्द्रकला रस।

बनावट—शुद्ध पारा, ताम्र भस्म और अभ्रक भस्म १-१ तोला तथा शुद्ध गन्धक २ तोले लेवे। सबकी कज्जली बना नागरमोथा, दाड़िमके दाने, दूर्वामूल, केतकीकी कली, सहदेवी, घृतकुमारी, पित्तपापड़ा, मरुवा और शतावर प्रत्येकके क्वाथ या रसमें पृथक्-पृथक् क्रमशः १-१ दिन घोटें। फिर कुटकी, गिलोयका सत्व, पित्तपापड़ा, खस, चमेलीके पुष्प, सफेद चन्दन और सारिवा समभाग मिलाकर चूर्ण करें। पश्चात् उपर्युक्त ओषधिके बराबर इस चूर्णको मिला द्राक्षादि गण (द्राक्षा, दाड़िम, केला, ताड़का फल, बेलगिरी, जामुन, आम) की ओषधियोंके

क्वाथकी ७ भावना देकर गोला बनावे। सूखने पर (पत्तोंमें लपेट कर) अनाजके ढेरमें दबा देवें। सात दिनके बाद निकाल, पीस द्राक्षादिगण के क्वाथकी भावना देकर चनेके बराबर गोलियाँ बना लेवें। (नि० र०)

मात्रा—एक से दो रत्ती दिनमें दो बार जीरा और मिश्रीके साथ लेवें, ऊपर दूध पीवे या गुलकन्दके साथ लेवे।

विशेष अनुपान—मूत्रमें रक्त जाता हो तो गोखरू, धमासा, धनिया आदि ओषधि के हिमके साथ।

नाकसे रक्त गिरता हो तो उशीरासव या धारोष्ण दूधके साथ।

क्षयरोगकी प्रथमावस्था, ज्वर, प्यास, छातीमें दर्द और रक्त-वमन में चाँदीके वर्क आध रत्ती मिलाकर दाड़िमावलेहके साथ।

रक्तप्रदरमें अशोकारिष्ट या पेठेके रस के साथ।

दाह, पेशाबमें भयङ्कर जलन और पेशाब लाल रंगका थोड़ा-थोड़ा होता हो, तो ब्राह्मी, अनन्तमूल और पित्तपापड़ाके हिमके साथ।

उपयोग—यह रसायन सब प्रकारके रक्तपित्त, रक्तप्रदर, मूत्र-कृच्छ्र, अश्मरी, दुस्तर प्रमेह, अम्लपित्त, अन्तर्दाह, बाह्यदाह, भ्रम, मूर्च्छा, रक्तकी वमन और ज्वर आदि रोगोंको दूर करता है। यह रसायन शीतल होनेपर भी जठराग्निको मंद नहीं करता। एवं वातपित्त-प्रकोप तथा ऊर्ध्वगामी और अधोगामी रक्तपित्त रोगमें ग्रीष्म जैसी उष्ण ऋतुमें भी शान्तिदायक है।

यह चन्द्रकला रस ऐसे विविध द्रव्योंके संयोगसे तैयार हुआ है कि रक्तवाहिनीके लिये प्रसादक और स्तम्भक, दोनों कार्य करता है। मुख्य कार्य समग्र रुधिराभिसरण और रुधिरवाहिनी पर शामक और प्रसादक है। जब-जब रक्तका दबाव बढ़नेसे अन्तर्दाह, बहिर्दाह और रुधिरवाहिनी मोटी होकर चक्कर, मूर्च्छा, भ्रम आदि उत्पन्न होते हैं, या रक्तमें पित्तमिश्रित होकर रक्तविदग्ध होता है, तथा इसी हेतुसे अंतर्दाह और रुधिरवाहिनियोंकी दीवारकी विकृति होकर विविध व्याधियोंकी उत्पत्ति होती है, उस पर इसका अच्छा उपयोग होता है।

तीव्र सेन्द्रिय विषके योगसे रक्त विकृत होकर भ्रम, प्रलाप, ज्वर आदि लक्षण उपस्थित होने पर चन्द्रकलाका प्रयोग किया जाता है। इस तरह पित्तकी तीव्रता, विशिष्ट सेन्द्रिय विष या विशिष्ट कीटाणु के हेतुसे समग्र मूत्रमार्ग विकृत होकर मूत्रकृच्छ्र या मूत्राघात होनेपर इस रसायनका सेवन कराया जाता है। इनके अतिरिक्त मस्तिष्क, मध्यम कोष्ठ, मध्यम रोम मार्ग, मूत्रमार्ग और विशेषतः रक्त, इनमें

पित्तके तीक्ष्णत्व और उष्णत्व गुणकी वृद्धि होने पर भिन्न-भिन्न व्याधियो पर चन्द्रकला उत्तम ओषधि है ।

चक्कर, दाह, नेत्रमें व्यथा, नेत्र लाल-लाल होजाना, मस्तिष्ककी शिराएँ खिंचना, शिराएँ मोटी, भारी और रक्तपूर्ण होना, असम्बद्ध प्रलाप और ज्वर आदिकी उत्पत्ति होना, बृहद्मस्तिष्क, लघुमस्तिष्क, वातवाहिनियोंके केन्द्रस्थान, तथा इनके समीपके सब स्थानोंकी रक्तवाहिनियाँ मोटी होकर इनका दबाव उन अवयवो पर पड़नेसे प्रलाप आदि लक्षण उपस्थित होते है। ऐसी परिस्थितिमें रक्तके दबावको कम करनेका महत्वका कार्य इससे सरलतापूर्वक होजाता है।

इसी प्रकारकी अत्यंत तीव्रावस्था कितनेक सान्निपातिक ज्वरोंमें भी उत्पन्न होजाती है। ज्वरोष्मा अतिशय बढ़ जाती है, रोगी बेहोश होजाता है, नेत्र लाल होजाते है। एव शिरदर्द, गर्दनको चलाते रहना, बड़ी बड़ी चूमें मारकर गर्दन इधर-उधर फिराते रहना, मस्तिष्क फूटने या भालेसे भेदन करने सदृश दूखना आदि वेदना होती है। चाहे रोगी स्पष्ट समझा न सके, फिर भी मुखमण्डल अति दीन, भयभीत, बलह्रास, और अति व्यथित प्रतीत होता है। प्रारम्भमें रोगी सचेत जबतक रहता है, तबतक उपरोक्त वर्णन करता है। ये सब लक्षण सान्निपातिक ज्वरके मूल हेतु रूप विविध दोषप्रकोपके योगसे होते है। अत. इस स्थानमें तत्तद्दोषनाशक चिकित्सा करनी चाहिये। एवं उसके साथ ही चन्द्रकलाका उपयोग करना चाहिये।

कभी-कभी आन्त्रिक ज्वरमें मस्तिष्क के भीतर अधिक उष्णता पहुँचजाती है। फिर ज्वर दूर होजाने पर उन्मादका असर उपस्थित होता है। विशेषतः दोपहर को असम्बद्ध प्रलाप करना, नेत्र लाल-लाल भासना, घबराहट, सर्वाङ्ग में प्रस्वेद आदि लक्षण प्रकाशित होते है। उस पर चन्द्रकला रस १ रत्ती, भागरेका रस ३ माशे और आमका मुरब्बा ६ माशे मिलाकर देवें। इस तरह २-२ बार देने से पित्त शमन होकर उन्माद दूर होजाता है।

यदि क्षयजन्य विषसे इस प्रकारके लक्षण उत्पन्न हुए हो, तो चन्द्रकलाका उपयोग कहाँ तक होगा, यह निश्चित नही कह सकते। परन्तु आन्त्रिक सान्निपातकी इस अवस्थामें चन्द्रकलाका उपयोग उत्तम होने के उदाहरण मिले है।

सूर्यके तापमें फिरना, अग्निके समीप अति कार्य करना, शराब या अन्य उष्ण द्रव्यका अति सेवन, अति व्यायाम आदिके अति योग

होने पर भी रक्तका दबाव बढ़कर ऊपर लिखे अनुसार लक्षण होते है। उस व्याधि पर चन्द्रकलाका उपयोग करना चाहिये। उस प्रकारमें तो केवल चन्द्रकला ही कार्य करता है। परन्तु सान्निपातिक ज्वरमें विशिष्ट अवस्थाके अनुरोधसे अन्य ओषधिकी योजना भी की जाती हे। इस तरह इन दोनो अवस्थाओंकी चिकित्सामें भेद होता है।

ज्वरूष्मा अधिक बढ़ने पर शिरदर्द होकर नासिकासे रक्तस्राव होने लगता है। कितनेक रोगियोंको दाह अधिक बढ़ने पर मुँहमेंसे रक्त निकलने लगता है। ऐसे लक्षण होने पर चन्द्रकला रस मिश्री मिले दूधके साथ देकर ऊपर उशीरासव, सारिवालेह, हल्दीका अर्क और जल आदिका मिश्रण देना चाहिये।

कण्ठमें वेदना, दाह, छातीमें दर्द, जलन और सूजन आने समान भासना तथा सर्वाङ्गमें दाह, रक्त गिरना, ज्वर, तृषा आदि लक्षण होने पर चन्द्रकलाका दाड़िमावलेहके साथ उत्तम उपयोग होता है।

क्षयरोगके प्रारम्भ या मध्यमें रक्तवमन होकर रोगवृद्धि होती है, तो रक्तस्राव सत्वर बन्द होने और बल के संरक्षणार्थ चन्द्रकला और चाँदीके वर्कको दाड़िमावलेह या अनार शर्बत के साथ देना चाहिये।

उर्ध्व रक्तपित्तमें चन्द्रकलाका उत्तम उपयोग होता है। रक्तपित्त अर्थात् सतत होने वाले रक्तस्रावमें पित्तके तीक्ष्णत्व आदि धर्म बढ़ जाते हैं। इस हेतुसे रक्तवाहिनियोंकी श्लैष्मिक कला पतली और विकृत होकर फूटती है; फिर उसमेंसे रक्तस्राव होने लगता है। ऊर्ध्वग रक्तपित्त में विशेषतः नाक या मुखमेंसे रक्तस्राव होता है। यह स्राव कुछ काल तक बन्द रहता है और फिर होने लग जाता है।

कभी-कभी रक्तपित्त उपद्रव रूपसे और कितनीक बार स्वतन्त्र रोग रूपसे होता है। आन्त्रिक सन्निपातमें उसके विष-प्रभावसे ऊर्ध्वग, अधोग और त्वग्गत रक्तपित्त हो जाता है। पित्तप्रधान विषयुक्त सर्प के दंशमें भी ऐसा ही होता है। इस प्रकारके रक्तपित्तमें निमित्त-कारण विविध विष है। यह निमित्त कारण दीर्घकाल पर्यन्त रहता है। अतः इस विषके नाशकी योजना रक्तपित्त चिकित्सामें आवश्यक है। यदि विष कारण न हो, केवल शारीरिक दोष विकृतिसे ही रोगोत्पत्ति हुई हो, तो चन्द्रकला अति लाभ पहुँचाता है।

रक्तपित्तके साथ उदरमें वेदना आदि लक्षण हो और वेदना होकर वमन द्वारा रक्त निकलता हो, मुँहमें शुष्कता, उदरमें जलन-सी भासना, सर्वाङ्गमें दाह, तृषा बनी रहना, बार-बार उदरमें पीड़ा होकर

वमन होना आदि अति पित्तप्रकोपजनित लक्षण प्रतीत होते हों, तो उस पर चन्द्रकला रसका अवश्य उपयोग करना चाहिये।

अधोग रक्तपित्तमें उपद्रवभूत और मूल रोग रूप, ऐसे दो प्रकार है। इसमें मूत्रेन्द्रिय और गुदासे रक्त जाता है। इनमें से गुदा-मार्गसे रक्तस्रावके हेतुओंमें दो प्रकार है—अन्त्रव्रण, आन्त्रिक सन्निपात, अति भीतर उत्पन्न हुए रक्तार्श और क्षोभक कारणोंसे अकस्मात् आँतोंमें कोई शिरा टूट जाना आदि हैं। कचित् अन्य रोगमें उपद्रवरूप से उत्पन्न भी होजाता है। उपद्रवभूत होने पर तत्तद्रोगनाशक ओषधिके साथ और स्वतन्त्र व्याधिपर केवल चन्द्रकलाका प्रयोग किया जाता है।

अधोग रक्तपित्तमें मूत्रमार्गसे रक्तस्राव होनेमें मुख्यतः वृक्का स्थान का शोथ, वृक्का स्थानोंमेंसे सिकता (रेत) या शर्करा (छोटे कंकड़) गवीनी द्वारा मूत्राशयमें उतरना, मूत्राशय, मूत्रमार्ग और वस्तिका क्षोभ और दाह, ये सब कारण है। इन सबमें पित्तदोषकी वृद्धि ही कारण है। ऐसे रक्तपित्तकी सब अवस्थाओंमें चन्द्रकला रस द्वारा विविध अनुपान संयोगसे उपयोग होनेके उदाहरण मिले हैं। मूत्रपिण्ड के शोथमें अनंतमूल सदृश शामक, सौम्य और मूत्रल अनुपान देना चाहिये। सिकता, शर्कराको सत्वर बाहर निकालनेके लि तृणपञ्चमूल क्काथ समान मूत्रविरेचन तथा मूत्रमार्गके दाहमें दाहशामक और मूत्रल गोखरू, धमासा, धनियाका क्काथ देना चाहिये।

स्त्रियोंके रक्तप्रदरमें चन्द्रकलाका उपयोग अच्छा होता है। शूल-सह रजस्राव और अत्यार्त्तव, इन दो व्याधियोंका रक्तप्रदरमें अन्तर्भाव होता है। स्त्रियोंके बीजाशय, गर्भाशय और अपत्यमार्गमें किसी कारण वश क्षोभ होकर रक्तस्राव होने लगता है, उसे रक्तप्रदर कहते है। उस पर आम, अशोक, कपासमूल, तीनो की छालके क्काथके साथ चन्द्रकला देने पर रक्तप्रदर कम होजाता है। (रोग अति प्रबल और भयंकर दुःखदायी हो, तो ऊनकी काली राख दी जाती है।)

रक्तपित्त (Scurvy) होनेपर किसी-किसी को दन्तमूल और मसूढोंमें शोथ और वेदना होकर रक्तस्राव होता है। एवं कितनेको को यह त्रास अधिक बढ़ जाता है, फिर त्वचाके रोमरन्ध्रोंमें से बूँद-बूँद रक्त निकलता रहता हैं। यह विकार अति त्रासदायक और प्राणघातक है। परन्तु इसमें भी सारिवाके क्काथके साथ चन्द्रकलाके उपयोगसे लाभ होजाता है।

चन्द्रकला रस दाहनाशक है। इसलिये अतिशय दाह होकर

उन्माद समान वेग उत्पन्न होता हो, मूत्रमार्ग, नेत्र, हाथ-पैर इन सबमें दाह, कभी-कभी नाक, मूत्रमार्ग या अन्य मार्गसे रक्तस्राव होना, मूत्रमें चिकना श्लेष्म जाना, मूत्र लाल और परिमाणमें कम होजाना आदि लक्षण होने पर ब्राह्मी, अनन्तमूल, पित्तपापड़ा आदिके साथ चन्द्रकला का उपयोग किया जाता है।

पित्तजन्य प्रमेहमें विशेषतः कालमेह, नीलमेह, हारिद्रमेह और मांजिष्ठमेहमें चन्द्रकला उत्तम ओषधि है। इन विकारोंमें मूत्रका रंग क्रमशः काला, नीला, अति पीला और मंजिष्टके क्वाथके सदृश भासता है। सर्वाङ्गमें अतिशय दाह होता है। अति तृषा, मूत्रके परिमाणमें कमी, परन्तु पेशाब अधिक बार होना, चक्कर आना, शुष्कता, अति दाह, पंखेसे निरन्तर वायु करते ही रहना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। पंखेको बन्द करने पर रोगी चिल्लाता है। इस प्रकारके दाहमें पित्तका तीक्ष्णत्व धर्म बढ़कर रक्ताश्रित और त्वगाश्रित होता है। इस पर चन्द्रकलाका उपयोग अच्छा होता है।

पित्तके तीक्ष्णत्व और उष्णत्व धर्म की वृद्धि होने पर उनको चन्द्रकला रस नष्ट करता है; तथा पित्तका साम्य प्रस्थापित करता है। यह रस दाहनाशक, मूत्रल, शामक, कोष्ठस्थ पित्तका योग्य परिमाणमें स्राव कराने वाला, यकृत्को शक्ति देकर पित्तसाम्य लानेवाला, सहस्रार, वातवाहिनियोंके केन्द्रस्थान, वातवाहिनियाँ आदि स्थानों के क्षोभको शमन करनेवाला और सौम्य है। इस तरह शीतल गुण होने पर भी अग्निमान्द्य नहीं करता, समस्त शरीरमें उत्पन्न क्षोभ, दाह और वेदनाको शमन करता है। यह कफप्रधान और कफवातप्रधान विकारोंका भी निवारण करने वाली उत्तम वीर्यवान् ओषधि है। सूतशेखर पित्तके विस्रत्व, सरत्व, द्रवत्व और अम्लत्व धर्म वृद्धिजन्य विकारोंमें पित्तसाम्य प्रस्थापित करनेमें उपयोगी है; और चन्द्रकला पित्तके तीक्ष्णत्व और उष्णत्व धर्म बढ़ने पर लाभ-दायक है। यह इन दोनोंमें अन्तर है। (औ० गु० ध० शा० के आधार से)

जखमका योग्य उपचार न करने पर कीटाणुओंका प्रवेश होकर आक्षेपक वात हो जाता है। फिर उसके उपचारमें भूल होने पर (भलता इञ्जेक्शन देने पर) रोग अति भयंकर रूप धारण कर लेता है। सारे शरीरमें फुन्सियाँ, त्वचा लाल हो जाना, निद्रानाश, ज्वर, दाह, घबराहट, सारे शरीरमें सुई चुभानेके समान वेदना, कर्णबाधिर्य, वातप्रकोप, हृदयमें भारीपन आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। उसकी चिकित्सा

सत्वर न की जाय तो पक्षवध या मृत्यु होनेकी भीति रहती है। ऐसी स्थिति में मूलकारणरूप कीटाणु और विषको नष्ट करनेके लिये चंद्रकला रस, प्रवालपिष्टी और अमृतासत्व मिलाकर दिनमें ३ वार दाड़िमावलेहके साथ देने, जख्मका वाह्योपचार करने और रोगीको केवल गोदुग्ध पर रखनेसे सत्वर विष शमन हो जाता है । व्रण शुशोधनार्थ निम्बपत्र, सत्यानाशी और शमीपत्रका मलहम अति लाभदायक सिद्ध हुआ है। विष शमन होने पर फिर शेष लक्षण रहे उसके लिये महायोगराज गूगल आदि का सेवन कुछ काल तक करते रहना चाहिये ।

(६५) महामृगाङ्क रस ।

बनावट—सुवर्णभस्म १ भाग, पारद भस्म २ भाग, मुक्ता भस्म ३ भाग, शुद्ध गंधक ४ भाग, सुवर्णमाक्षिक भस्म ५ भाग, रौप्य भस्म ४ भाग, प्रवाल भस्म ७ भाग और सोहागेका फूला २ भाग लें। सबको यथाविधि मिला, विजौरेके रसमें ३ दिन खरल कर गोला (पेड़ा) बना, सूर्यकी तेज धूप में सुखावें। फिर सेंधा नमक भरे हुए घड़ेके भीतर रख घड़ेके मुँह पर सराव ढक, मिट्टीसे वन्द करके १२ घण्टे मंद और मध्यमाग्नि देकर गन्धकका जारण करें। स्वांग शीतल होने पर गोले को निकाल ६४ वाँ हिस्सा हीरा भस्म या १६ वाँ हिस्सा वैक्रान्त भस्म मिला, खरल करके शीशीमें भरलें। (र० चं०)

मात्रा—½ रत्तीसे १ रत्ती तक दिनमें २ वार कालीमिर्च और घृत अथवा शहद-पीपलके साथ ।

उपयोग—यह रसायन नाना प्रकारके उपद्रवसहित क्षय, ज्वर, गुल्म, विद्रधि, मन्दाग्नि, स्वरभेद, कास, अरुचि, मूर्च्छा, भ्रम, आठ प्रकारके महारोग, ग्रहबाधा, पाण्डु, कामला और पित्त प्रकोपजनित सब रोगोंको नष्ट करता है। यह ओषधि क्षयकी सब अवस्थाओंमें लाभ पहुँचाती है। मस्तिष्कमें शान्ति उत्पन्न करके निद्रा लाती है। मानसिक बेचैनी दूर करती है। कीटाणुओं को नष्ट कर तथा विषको जलाकर तापका शमन करती है। शरीरमें शक्ति बढ़ाकर थोड़ेही दिनोंमें रोगीको आशातीत लाभ पहुँचा देती है।

जिन रोगियोंको अस्थिसंस्थामें अति निर्बलता आई हो, य जिन रोगियों को निद्रानाश, वृक्क विकृति, वातवाहिनियोंमें क्षोभ और शुक्रक्षय आदि लक्षण हो, उन क्षय रोगियोंके लिये यह रसायन अमृतके समान हितकारक है।

सूचना—इस रसायनके सेवन-कालमें शक्तिवर्द्धक और शुक्रवर्द्धक भोजन करना चाहिये। पारदके विरोधी करेला और ककारादिवर्ग के पदार्थ, हींग, बैंगन, बेल, अधिक नमक, क्षार और तीक्ष्ण पदार्थोंका त्याग, तथा ब्रह्मचर्यका आग्रहपूर्वक पालन करना चाहिये।

(६६) हेमगर्भपोटली रस।

प्रथम विधि—शुद्ध पारा ४ तोले, शुद्ध गन्धक २ तोले, सुवर्णका वर्क १ तोला और ताम्रभस्म ३ तोले लेवें। सबको यथाविधि मिला, घीकुंवारके रसमें ३ दिन तक घुटाई करके सोगठी (शिखर वाली गोलियाँ) बाँधे। भलीभाँति सूखने पर नये अच्छे रेशमी कपड़े पर थोड़ा गन्धक बिछा, ऊपर सोगठीको रखकर बाँधे। फिर सब सोगठियोंको एक साथ डोरेसे मजबूत बाँध एक मिट्टीकी छोटी हाँडीमें पोटलीके समान वजनमें डण्डा गन्धक डालकर ऊपर पोटली रखें; और थोड़ा गन्धक ऊपर रख हाँडीके मुँह पर ढक्कन लगाकर बन्द करें। ढक्कनमें एक छोटा छेद रखें; जिससे उसमें लोहेकी शलाका डालकर परीक्षा होसके। फिर वालुकायन्त्रमें रखकर लगभग १॥ घंटा मन्दाग्नि दें। नीचे गन्धकका रस होकर ओषधि पकने पर हाँडीको उतारलें; फिर तुरन्त गर्म जलसे सोगठियो को धो लें। (र० च०)

मात्रा—½ रत्तीसे १ रत्ती पीपल और शहदके साथ।

उपयोग—यह रसायन कफसहित भयंकर कास, श्वास, क्षय, कफप्रकोप, वातरोग, संग्रहणी आदि सब रोगोंको नष्ट करता है। पित्त-विसर्जन क्रियामें दोष उत्पन्न होकर संग्रहणीयुक्त क्षय हुआ हो, उसमें पित्तविकृतिको सुधार क्षय और संग्रहणीको दूर करता है।

दूसरी विधि—शुद्ध पारा और सुवर्णके वर्क ४-४ भाग मिलाकर बारीक पीसें। फिर १२ भाग शुद्ध गन्धक मिलाकर कज्जली करें। पश्चात् मोतीपिष्टी १६ भाग, शंख भस्म २४ भाग और सोहागेका फूला १ भाग मिला, पक्के ताजे नीबुओंके रसमें २ दिन खरलकर पेड़े के समान गोला बनाकर सुखालें। बादमें उसे सरावमें रख कर दृढ़ संपुट करें। सपुट सूखने पर एक हाँडीमें सेंधेनमकके भीतर दबा चूल्हेपर चढ़ा ३ अहोरात्रि मध्यम अग्नि देवें। स्वांग शीतल होने पर बाहर निकालकर खरल करलें। यह रसायन कुछ गुलाबी आभावाला सफेद रंगका होता है। यदि रंग श्याम रह गया हो तो अग्नि कम लगी ऐसा मानकर एक दिन तक फिर आँच देवें। (शा० सं०)

मात्रा—१ से २ रत्ती कालीमिर्च २६ नगके चूर्णके साथ गोघृत

और शहदमें मिलाकर चाटें।

उपयोग—यह रसायन क्षय, कास, श्वास, कफसंग्रहणी और वातज अतिसार आदि सब रोगोंको दूर करता है। क्षयमें ज्यादा ताप (१०० डिग्रीसे अधिक) न हो, तब यह देना चाहिये। यह रसायन क्षयकी सब अवस्थाओंमें लाभदायक है। क्षय रोगके पित्तप्रकोप, मुखपाक, शुष्ककास, अतिसार आदि लक्षणों, उपद्रवरूपसे उत्पन्न संग्रहणी तथा विना राजयक्ष्मा उत्पन्न संग्रहणीको भी यह दूर करता है, और पाचनशक्तिको बढ़ाता है। उदरमें वातप्रकोप हो, पित्तमें अम्लता और उष्णता बहुत बढ़ गई हो, अन्नकी संधारण शक्ति निर्बल होगई हो; तब इस रसायनका उपयोग अत्यंत हितावह है। अपची, कण्ठमाल में भी यह लाभदायक है।

(६७) लक्ष्मीविलास रस।

वनावट—सुवर्ण भस्म, रौप्य भस्म, अभ्रक भस्म, ताम्र भस्म, वंगभस्म, लोह भस्म, मंडूर भस्म, कान्त लोह भस्म (अभावमें लोह भस्म), नाग भस्म, शुद्ध वच्छनाग और मुक्ता भस्म, इन ११ ओषधियोंको १-१ तोला और रससिंदूरको ११ तोले ले। सबको मिला शहदके साथ खरल कर पूरीके सदृश पतली बड़े थाल समान चौड़ी दो पर्पटी बनाकर सूर्यकी धूपमें सुखावे। ३-४ दिनमें सूखने पर सराव-संपुट करके तार्क्ष्य पुट अर्थात् ४-५ वनगोवरीकी अग्नि दें। स्वांग शीतल होने पर निकाल चित्रकमूलके क्वाथमें ८ प्रहर खरल करके आध-आध रत्तीकी गोलियाँ बनावें। (यो० र०)

मात्रा—½ से १ रत्ती दिनमें २ बार देवें।

अनुपान—क्षयमें प्रवालपिष्टी और गिलोयसत्व। नपुंसकतामें वंगभस्म। शोथमें मकोयका अर्क। शक्तिवृद्धिके लिए शहद-पीपल वा च्यवनप्राशावलेह। प्रतिश्यायमें कालीमिर्च मिला निवाया दूध।

उपयोग—यह रसायन त्रिदोषज क्षय, पाण्डु, कामला, संपूर्ण वातरोग, सूजन, प्रतिश्याय (जुकाम, नजला), शुक्रक्षय, अर्श, शूल, कुष्ठ, मन्दाग्नि, सन्निपात, श्वास, कास आदि सब रोगोंको नष्ट करता है; शरीरको तारुण्यरूपा लक्ष्मीकी प्राप्ति कराता है, तथा शक्तिवर्द्धक, क्षयरोगनिवारक और क्षयके कीटाणुओं (Tubercnulosis) को नष्ट करनेवाला है। इसका उपयोग आयुर्वेदीय चिकित्सकगण शक्तिवर्द्धक गुणकी प्राप्तिके लिये विशेष करते हैं। जिस तरह जलाभावसे मरणोन्मुख अवस्था प्राप्त वृक्षके मूलमें जलसिंचन होने पर वह

प्रफुल्लित होकर फल-पुष्प-पर्ण आदि से सुविकसित होजाता है; तद्वत् इस रसायनके सेवनसे जीवन-प्रदीप सुप्रकाशित होजानेका अनुभव होता है।

क्षयकी बिल्कुल प्रथमावस्थामें इसका प्रयोग करने पर शक्तिपात दूर होता है। रक्त आदि धातु त्वरित वृद्धिगत होने लगती है; बल बढ़ने लगता है। इस तरह क्षयकी द्वितीयावस्थामें भी इसका अच्छा उपयोग होता है। केवल तृतीयावस्थामें बड़े-बड़े उरःक्षत होजाते है, तब इस रसायनका विशेष उपयोग हुआ हो, ऐसा नहीं जाना गया।

राजयक्ष्माके निमित्त कारण—वेगरोध, धातुक्षय, साहस और विषमाशन (आहार-विहारमें विषमता) है। निश्चित कारण दोषप्रकोप हैं। इनमें क्षय अर्थात् रस-रक्त आदि धातुओंके ह्रास होनेसे उत्पन्न राजयक्ष्मामें इस लक्ष्मीविलासका उत्तम उपयोग होता है। यदि क्षयके कीटाणु मूल कारण रूप हों, तो भी शारीरिक घटकोंकी शक्ति ह्रास हुए बिना इन कीटाणुओंको देहमें बढ़नेका स्थान नहीं मिलता। अतिशय रक्तस्राव, शुक्रस्राव या रजःस्राव होने पर या दीर्घकालका अति रजःस्राव रूप विकार होने पर जब अन्य हेतुओंसे धातुक्षय अधिक होता है; तब ही क्षय कीटाणुओंको उपयुक्त क्षेत्रकी प्राप्ति होती है, फिर उस रोगका विकास होता है।

मांसक्षीणता, कृशता, दुर्बलता और मर्यादित ज्वर होने पर क्षय रोगीको लक्ष्मीविलास देना चाहिये, ऐसी अवस्थामें इसे प्रवालपिष्टी और गिलोय सत्वके साथ देना चाहिये। या सुबह यह रसायन और सायंकालको ज्वरशामक अन्य ओषधि दे। प्रातःकालको अधिक ज्वर हो, तो इस रसायनका उपयोग नहीं करना चाहिये, त्रैलोक्यचिन्तामणि या जयमंगल रस देना चाहिये।

क्षयके अतिरिक्त जीर्ण कफकास रोगमें भी इस रसायनका उत्तम उपयोग होता है। रोग अति जीर्ण हो, रोगी अति कृश, बलमांस-विहीन होगया हो, त्वचा शुष्क होगई हो, कफ चिकना, गाढ़ा, पीला और दुर्गन्धयुक्त निकलता हो, त्रासदायक कास, साथ-साथ श्वास लक्षण प्रतीत होते हों, ऐसे,युवा और हाड़पिञ्जर सदृश बने हुए शक्तिहीन श्वासरोगियोंको यह ओषधि अति उपयोगी होती है। इसके सेवनसे जीवनीय शक्ति सबल होती है। फिर वह सरलतासे रोगके विष या कीटाणुओंके साथ युद्ध कर सकती है।

किसी भी इन्द्रियके बल और आकृतिका यथासमय योग्य

विकास न हुआ, तो उस इन्द्रियमें समयके पहले क्षीणता और अशक्ति आती जायगी। उससे अपना व्यापार उचित नहीं होसकेगा। फिर बलात्कारसे परिश्रम करते रहनेसे शक्तिका क्षय अधिक और पूर्ति कम, ऐसी स्थिति प्राप्त होती है। उस अवस्थामें फुफ्फुसोंकी क्रिया सम्यक् न होने पर कफदोष दूषित होकर कासरोग उपस्थित होता है, कचित् साथमें श्वासविकार भी होता है। इस तरह फुफ्फुसके समान हृदय अशक्त होने पर श्वास, हाथ-पैरोंमें ऐंटन, हाथ-पैर और मुख पर किञ्चित् शोथ और कितनेक वार वार्त्तालाप करते रहनेमें ही श्वास भर जाना, आवाज बिल्कुल भीतर खिचना और अति परिश्रमसे उच्चारण होना आदि लक्षण होते हैं। उस पर यह रस अच्छा लाभ-दायक है। अभ्रक प्रधान लक्ष्मीविलास (नं० २५) में हृदयोत्तेजक गुण अधिक है; तब इस रससिंदूर-प्रधान लक्ष्मीविलासमें शक्तिवर्द्धक गुण विशेष है। यह उत्तेजक होने पर भी अधिक हृदयोत्तेजक नहीं है। हृदयकी अशक्तिसे रुधिराभिसरण क्रिया ठीक न होनेसे सर्वाङ्गमें अशक्ति आजाती है। ऐसी अवस्थामें यह अति हितकर जाना गया है।

आमाशय की अशक्तिके हेतुसे आमाशय रस (पाचकाम्ल रस—Gastric juice) की उत्पत्ति योग्य नहीं होती, अर्थात् पाचक, रस निर्माण करनेवाले सूक्ष्म कोष समूह अशक्त होजानेसे आमाशयस्थ पित्तोत्पत्ति सम्यक् नहीं होती। फिर भोजनका पचन भी ठीक नहीं होता। ग्रहणी, अग्न्याशय, यकृत् और लघु अन्त्र, सब निर्बल होनेसे, इन सबसे उत्पन्न पाचक रस भी सकस नहीं होता। इस हेतुसे भी अन्नका पचन, चाहिये वैसा नहीं होता। अन्नका विदाह होजाता है। भोजन परिपाक योग्य न होनेसे रसोत्पत्ति भी ठीक नहीं होती। फलतः शारीरिक सजीव घटकोंको पोषण नहीं मिलता, लङ्घन होने लगता है। फिर इनकी वृद्धि या स्थितिमें प्रतिबन्ध होता है। रोगी दिन-प्रतिदिन क्षीण और कृश होता जाता है। थोड़ासा भोजन करने पर भी उदरमें भारीपन होजाता है। अन्न पर अरुचि होती है। ऐसी परिस्थितिमें लक्ष्मीविलासका अच्छा उपयोग होता है। इसके योगसे समस्त पच-नेन्द्रिय संस्थाके पित्तोत्पादक कोषाणु सशक्त बनते है। अन्नका विदाह होना बन्द होजाता है, उत्तम रीतिसे परिपाक होने लगता है; और नूतन अणुभवन क्रिया (Anabolism) नियमित होने लगती है।

यकृत्की अशक्तिसे यकृत्मेंसे उत्पन्न होनेवाले पित्त (Bile) का स्रावनिर्माण पूरे परिमाणमें न होनेसे पक्वाशय (लघुअन्त्र) में

अन्नका पचन और रसका संशोषण सम्यक् नहीं होसकता। इस हेतुसे देहमें पाण्डुता प्राप्त होती है, तथा उदरमें आफरा, अपचन, उदरमें भारीपन, आंतोंमें गुड़गुड़ाहट, आंतोंमें मंद-मंद व्यथा होना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इन सबमें अग्निमान्द्य प्रधान होता है। ऐसे विकार पर यह रस उत्तम कार्य करता है।

कामला आशुकारी और चिरकारी, दो प्रकारके होते हैं। चिरकारी कामलामें यकृत्के कोषाणुओं (Cells) के भीतर धातु-क्रियामें विकृति होती है। फिर पित्त विकृति होकर रक्त और रस धातुमें मिश्रित होता है। परिणाममें कामलाकी उत्पत्ति होती है। इस प्रकारके कामलामें अशक्ति अधिक होती है; यह रोग दीर्घकाल तक रहता है। सर्वाङ्गमें पीलापन, मूत्रमें आशुकारी कामलाकी अपेक्षा कुछ कम पीलापन, अग्निमान्द्य, अरुचि, कभी वमन और दिन-प्रति-दिन मांसविहीनत्वमें वृद्धि होना आदि लक्षण अधिक होते हैं। इस प्रकारके रोगमें लक्ष्मीविलास रस उत्तम कार्य करता है।

वातविकारमें अनेक भेद हैं। इस रोगके कारण विविध हैं, और लक्षणोंमें भी नाना प्रकारकी विचित्रता रहती है। इस विकारमें मुख्य आशुकारी और चिरकारी, ऐसे दो विभाग हैं। आशुकारीमें पक्षाघात, अपतानक, आक्षेपक आदि; और चिरकारीमें कलाय खंज, सर्वाङ्ग वात, गृध्रसी, विश्वाची, खल्ली आदि व्याधियोंका अन्तर्भाव होता है। इनमें से वातस्थानकी अशक्तिके हेतुसे उत्पन्न चिरकारी विकारमें यह रस लाभदायक है। आशुकारी पक्षाघात आदिकी तीव्रावस्थामें यह उपयोगी नहीं है। परन्तु जीर्णावस्था और साथ-साथ सर्वाङ्गमें अशक्ति आनेपर यह उपयुक्त है। एवं शीर्षशूल, कर्णनाद, किसी भी इन्द्रियकी अशक्तिसे अपना कार्य सम्यक् प्रकारसे न होना, कोई शारीरिक अवयव केवल अशक्तिसे सूखकर पतले होजाना, स्मृतिनाश आदि विकार और उपरोक्त चिरकारी विकारमें यह रस अति उपयुक्त है।

हृदयकी निर्बलतासे आनेवाले सर्वाङ्ग शोथमें मूत्रल अनुपानके साथ इस रसायनका प्रयोग करनेसे हृदय सबल बन कर तथा रस-त्वचामेंसे संचित रसका रक्तमें आकर्षण होकर शोथ शमन होजाता है।

प्रतिश्यायके एक दुष्ट प्रकारमें नाकमें से जलस्राव सतत होते रहता है। रात्रि-दिन प्रवाह चालू रहता है। रात्रिमें निद्राके भीतर भी जलस्राव होता रहता है। यह केवल जल है परन्तु गाढ़ा होजाता है।

यह स्राव नासास्थित रसवाहिनियों और श्लैष्मिक कलामेंसे होता रहता है। इस पर किसी प्रकारसे नियन्त्रण नहीं होसकता। कभी-कभी कुछ कालके लिये जुकाम बन्द होजाता है। परन्तु जब होता है, तब स्राव निरन्तर कुछ दिनों तक होता रहता है। इस पर इस रसका उपयोग होता है। इसके सेवनसे रसायनियों और श्लैष्मिक कलामें नियन्त्रण शक्ति प्राप्त होती है। फिर बार-बार जुकाम नहीं होता।

नपुंसकतामें अनेक कारण हैं; इनमेंसे एक कारण अण्डकोपके कोषाणुओंका पुंबीज और ओज बनानेकी शक्तिका ह्रास है। इन कोषाणुओंकी अशक्तिके हेतुसे रक्ताभिसरण क्रिया ठीक नहीं होती। फिर शुक्रमें से ओज (शुक्रधातु ने जो विशिष्ट ओज) योग्य नहीं बनता, इस हेतुसे नपुंसकताकी प्राप्ति होती है। रोगी बिल्कुल निस्तेज और शक्तिहीन भासता है, मुखमण्डल उदास रहता है। सर्वदा विचारोंमें डूबा हुआ प्रतीत होता है। किसी भी कार्यके लिये उत्साह नहीं होता। मुख पर किसी भी प्रकारकी मनोवृत्ति स्पष्ट प्रतीत नहीं होती। इस पर वंगभस्मके साथ लक्ष्मीविलास देनेसे पुंसत्वकी वृद्धि होकर उत्साह आजाता है। इसके सेवनसे अण्डकोप सबल बनता है, पुंबीज और ओज प्रवृतिमें सहायता मिलती है। नपुंसकत्व, नष्टवीर्यत्व और शीघ्रपतन, तीनों विकृति नष्ट होकर तारुण्य-लक्ष्मीकी पुनः प्राप्ति होतीहै।

इसका उपयोग सन्निपातकी तीव्रावस्थामें नहीं होता, फिर भी उसके उतरने पर उसके संकर या उपद्रव को दूर करनेमें यह लाभदायक है। त्रिविध विषम ज्वरोंमें सतत ज्वर उतरने पर, श्लैष्मिक और श्वसनक सन्निपातमें ज्वरवेग दूर होनेपर, आन्त्रिक ज्वरमें शारीरिक उत्ताप बिल्कुल कम होने पर या अन्य प्रकारके ज्वरका वेग शमन होनेपर नाड़ीमें क्षीणता, सर्वाङ्गमें चिपचिपापन और शिथिलता, हृदयमें क्षीणता, श्वास अधिक होनेपर भी रोगीको पूर्ण शुद्धि होना, ऐसी घातक स्थितिमें यदि नाड़ीका वेग क्षणक्षणमें चेतना होना कम होरहा हो, तो उस समय हेमगर्भ उपयुक्त है। परन्तु यह प्रबल मारक अवस्था दूर होजाने पर शारीरिक उत्ताप कम हो, शीत अधिक हो, नाड़ी क्षीण हो, नाड़ी-स्पदन कम हो, उस स्थितिमें लक्ष्मीविलास अति उपयोगी है। कभी-कभी सन्निपात ज्वरोंकी शीतांगवाली भयप्रद अवस्थामें रोगी ८-१० दिन तक रहजाता है। उस पर यह रस अपूर्व कार्य करता है। इसने अनेकोंको पुनर्जन्मकी प्राप्ति करादी है।

अतिसाररोगमें आमाशयसे बृहदन्त्रके अंत भागतक अबधातुकी

वृद्धि होकर बड़े-बड़े जुलाब होते रहते हैं। परन्तु मलक्षयके विकारमें मल-प्रवृत्ति बराबर होती रहती है; थोड़ा-थोड़ा मल निकलता ही रहता है; बिल्कुल स्तम्भन नहीं होता। उस पर लक्ष्मीविलास उत्तम लाभ पहुँचाता है। इस तरह क्षय रोगमें उपद्रवरूप अतिसार पर भी यह लाभदायक है। केवल शारीरिक उष्णता मर्यादामें होनी चाहिये।

संक्षेपमें यह रसायन किसी भी हेतुसे निर्बलता आजाने पर सब इन्द्रियों और अवयवोंको योग्य परिमाणमें पोषक द्रव्यकी प्राप्ति करा सशक्त बनानेवाली मूल्यवान् औषधि है। इस हेतुसे शरीर-क्षय-कारी अनेक व्याधियोंमें इसका उपयोग होता है। (औ० गु० ध० शा०)

श्वसनक ज्वर (न्युमोनिया) में यह रसायन लाभदायक है। इस रसायनके साथ मयूरके चन्द्रिकाकी भस्म, दालचीनी, मुलहठी और बहेड़ेका चूर्ण मिला अदरखके रस और शहदके साथ प्रातःकालको देते रहना चाहिये। यदि निर्बलता अधिक हो तो ½ रत्ती कस्तूरी भी मिला देनी चाहिये। रात्रिको समीरपन्नग रस देते रहें। इस तरह उपचार करने पर रोग निर्विघ्न दूर हो जाता है।

(६८) कल्याणसुन्दरो रस।

बनावट—रससिन्दूर, अभ्रक भस्म, रौप्य भस्म, ताम्र भस्म, सुवर्ण भस्म, शुद्ध हिंगुल, इन ६ औषधियोंको सम भाग मिलाकर चित्रकमूलके क्वाथकी भावना देवें। पश्चात् हस्तीशुंडीके रसकी ७ भावना देकर एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनावें। (भै० र०)

मात्रा—१-१ गोली दिनमें २ बार निवाये जलके साथ।

उपयोग—यह रसायन नया उरस्तोय (फुफ्फुसावरण शोथ-Pleurisy-जिसमें फुफ्फुसके आवरणमें प्रदाह होकर जल भरता है), हृदयशूल, हृदयमेंसे रक्तका गिरना, फुफ्फुसोंकी निर्बलता, दाह, शुष्क कास, ज्वर, चक्कर आना, मन्दाग्नि, अरुचि, इन सब रोगोंको नष्ट करके फुफ्फुस और हृदयको बलवान बनाता है।

(६९) चन्द्रामृत रस।

बनावट—त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपल), त्रिफला (हरड़, बहेड़ा, आँवला), चव्य, धनिया, जीरा, सैंधानमक ये १० औषधियाँ एक-एक तोला ले, बारीक कूटकर बकरीके दूधमें ६ घण्टे खरल करें। फिर शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक और लोह भस्म २-२ तोले, सोहागेका फूला ४ तोले और कालीमिर्चका चूर्ण २ तोले मिलावें। पहले पारद-गन्धककी

कज्जली करें। फिर भस्म और चूर्ण क्रमसे मिला, ३ घण्टे बकरीके दूधमें खरल करके ३-३ रत्तीकी गोलियाँ बनावें। (र० र०)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २-३ बार बकरीके दूध, वासास्व-रस, कुलथीके क्वाथ, कमलके रस, शहद-पीपल या अदरखके रसके साथ।

उपयोग—यह रसायन वातपित्तप्रधान, वातश्लेष्मप्रधान, पित्तश्लेष्मप्रधान, वातिक और पैत्तिक कास, रक्तयुक्त कास, शुष्क कास, कफकास, श्वासयुक्त कास, ज्वरसह श्वास, तृषा, दाह, भ्रम, प्लीहा, गुल्म, उदररोग, आनाह, कृमि, हृद्रोग, पाण्डु, जीर्णज्वर आदि रोगोंको दूर करता है। खाँसीकी तीक्ष्ण व्याधिको एक-दो दिनमें ही शान्त कर देता है, तथा अग्नि, व और वीर्यकी वृद्धि करता है।

फुफ्फुसोंमें कफ अति संगृहीत हुआ हो और ज्वर भी रहता हो, तो मुलहठी अडूसा, गिलोय, भारंगी, मोथा और छोटी कटेलीको समभाग ले, बारीक चूर्ण करके १॥-१॥ माशे शहदके साथ भोजनके बाद लें, या इसका क्वाथ अनुपान रूपसे लेने से फेफड़े सत्वर निर्दोष और बलवान् बनते है। इस रसायनका हमने भिन्न-भिन्न प्रकारके कास रोगमें अनेक बार प्रयोग किया है। यह अति प्रभावशाली सिद्ध औषधि है।

(७०) कफकुठार रस।

बनावट—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, ताम्र भस्म और लोह भस्म, सब समभाग ले। पहले पारद-गन्धककी कज्जली करके भस्म मिलावे। बादमें त्रिकटुका कपड़-छान चूर्ण मिला-कर छोटी कटेलीके फलोंके रसमें ६ घण्टे खरल करें। पश्चात् कुटकीके क्वाथ और धतूरेके पत्तोंके रसकी १-१ भावना देकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बनावें। (र० रा० सु०)

मात्रा—१ से २ गोली नागरबेलके पानके साथ देवें।

उपयोग—कफकुठार रस अत्यन्त तीक्ष्ण है। छातीमें बहुत कफ का संग्रह होगया हो, बार-बार खाँसी आकर थोड़ा-थोड़ा कफ गिरता हो और ज्वर हो, तब खाँसीका वेग कम कराने, कफस्राव कराने और श्वासवाहिनी पर शामक असर पहुँचानेमें यह अति हितकर है।

कफकुठारका उपयोग उद्रिक्त कफ और तज्जन्य काससह ज्वर पर होता है। जब कफ छातीमें अति संगृहीत होनेसे बार-बार खाँसी चलकर अति गाढ़े, चिपचिपे कफकी बड़ी-बड़ी गाँठें निकलती रहती है, तब औषधयोजना करनेमें बड़ी कठिनता होती है। खाँसी अति त्रासदायक और बार-बार आती रहनेसे कभी-कभी अफीम-प्रधान

औषध देना पड़ता है। अफीममें स्तम्भक और शामक गुण होनेसे खाँसी कुछ कम मालूम पड़ती है, परन्तु परिणाममें हानि अधिक होती है। कारण, दुष्ट कफ भीतरमें अधिक दुष्ट बनकर अपायकारी बन जाता है। इस हेतुसे ऐसी त्रासदायक कासमें अफीम सदृश केवल शामक ओषधि नहीं देनी चाहिये। कफस्रावी और श्वासवाहिनियों पर शामक असर पहुंचानेवाली धतूरा-मिश्रित ओषधि अधिक उपयुक्त होती है। इस रसमें धतूरेके अतिरिक्त छोटी कटेली और कुटकी मिश्रित होनेसे उत्तेजना देकर कफस्राव कराना और कफको पतला बनाकर घबराहट दूर करना, ये दोनो कार्य इससे सरलतापूर्वक होते है।

कफ अधिक संगृहीत रहनेसे कुछ समयमें प्रकुपित होकर ज्वरोत्पत्ति कराता है। ऐसे समय पर कफ जितना-जितना कम होता है; उतना-उतना ज्वरका बल भी घटता जाता है। इस ज्वरमें ज्वरवेग अधिक होनेपर भी नाड़ीका वेग तीव्र नहीं होता। समस्त शरीर गीला-सा और भारी मालूम पड़ता है। आलस्य अधिक आता है। सारा अंग विशेषतः छाती, जकड़ जाती है। आगे-आगे खाँसीका बल भी जैसे-जैसे बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे छातीमें शूल भी चलने लगता है। खाँसने पर शूल अधिक होता है, और पसलियाँ ऊपर खिचकर घबराहट सी होती है। कफ गिर जाने पर वेदना कम होती है। रोगी अशक्त और निस्तेज होजाता है। ऐसा होनेपर इस रसका अच्छा उपयोग होता है।

कफकुठार रसमें ताम्र वेदनाशामक, आक्षेपनाशक और कफोत्पत्ति कम कराता है। धतूरा खाँसीका वेग कम करके कफ बाहर निकालनेमें सहायता पहुँचाता है, वातवाहिनियोंके लिये शामक है; और अंतःस्रावको नियमित करता है। कटेली उत्तेजक और कफस्रावी है। कुटकी कफ पतला बनानेवाली और वामक (कफ बाहर निकालने में सहायक) है। पीपल कफस्रावी है। सोंठ और मिर्च पाचक और दीपक हैं। लोहभस्म शक्तिवर्द्धक है, तथा कज्जली योगवाही और रसायन है। (औ० गु० ध० शा० के आधार से)

(७१) अग्नि रस।

बनावट—शुद्ध पारद १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोले, पीपल ३ तोले, हरड़ ४ तोले, बहेड़ा ५ तोले और अड़ूसेके पत्ते ६ तोले लेवें। सबको यथाविधि मिला; बबूलकी अन्तर्छालके काथकी २१ भावना देकर सूखा चूर्ण बनालें, अथवा २-२ रत्तीकी गोलियाँ बाँधे। (र०र०स०)

अनेक ग्रंथकारोंने इस अग्नि रसमें भारंगी ७ तोले मिलाकर "भागोत्तर वटी" संज्ञा दी है।

यदि अग्निरसके सेवनके समय २-२ रत्ती भारंगमूल मिला लिया जाय तो कफस्थान की शक्ति अधिक बढ़ती है, जिससे कफ सरलतासे बाहर निकल जाता है। शुष्ककासके रोगियोंके लिये भारंगमूल नहीं मिलाना चाहिये।

मात्रा—४ से ६ रत्ती दिनमें ३ बार शहद मिलाकर चटावें। सुबह-शाम ऊपर बकरीका दूध पिलावें। दोपहरको दूध न दें।

उपयोग—यह रसायन कफयुक्त कास, श्वास, क्षय और उरःक्षत में अति लाभदायक सौम्य औषध है। क्षयमें या जीर्ण कास रोगमें कफके साथ रक्त आता हो, या फुफ्फुसो पर चोट लग जानेसे थूकमें रक्त आता हो, तब यह ओषधि अच्छा लाभ पहुँचाती है। श्वास-वाहिनियोंमेंसे कफस्राव शीघ्र कराती है। कठ और जिह्वाके दोपको शमन करती है, और रक्त निकलना बन्द करती है। बार-बार कास चलती रहती हो, ऐसी शुष्क कासमें भी यह लाभदायक है। यह रस शामक होनेसे कास के वेग का ह्रास करता है।

(७२) लवंगादि तालसिंदूर।

बनावट—कूपीपक रसायन प्रकरणमें लिखे अनुसार तैयार किया हुआ तालसिंदूर और बिना मिश्री मिला लवंगादि चूर्ण ५-५ तोले मिलाकर खरल करें। फिर ५ तोले लवगादि चूर्ण का क्वाथ कर, ३ भावना देकर मूंगके समान गोलियाँ बनावें। (आ० नि० मा०)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २ से ३ बार अदरखके रस और शहदके साथ अथवा नागरवेलके पानमें देवें।

उपयोग—यह रसायन श्वास, क्षय, कास, उरःक्षत आदि फेफड़े और हृदयके सब रोगोको दूर करता है। भोजनमें घी अधिक लेवें और पथ्यका आग्रहपूर्वक पालन करें। विशेष गुण तालसिंदूरके वर्णन में लिखा है, किन्तु इस रसायनमें तालसिंदूरकी उग्रता लवंगादि चूर्ण के संयोगसे शमन होकर लवंगादि चूर्णके गुणकी वृद्धि होती है।

(७३) श्वासकुठार रस।

बनावट—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाग, सोहागेका फूला और मैनसिल १-१ तोला और कालीमिर्च ८ तोले लेवें। पारद-गन्धककी कज्जली करके बच्छनाग, सोहागा और कालीमिर्च अनुक्रमसे

मिलावें। मिर्च १-१ डालते जायँ और खरल करते जायँ। पश्चात् सोंठ, कालीमिर्च और पीपल, १-१ तोलेका बारीक चूर्ण मिला लेवें। कितनेक चिकित्सक इस रसायनको नागरवेलके पानके रसमें खरल करके गोलियाँ बनाते हैं।

मात्रा—१ से २ रत्ती दिनमें २ बार नागरवेल के पान, अदरख के रस और मिश्री अथवा छोटी कटेलीके क्वाथके साथ देवें।

उपयोग—यह रसायन श्वास, कास, मन्दाग्नि और वातश्लेष्म प्रधान रोगोंको नष्ट करता है। सन्निपात, मूर्च्छा, अपस्मार, बेहोशी आदिमें सुँघानेसे तत्काल रोगी सुधमें आजाता है। फुफ्फुस-आवरण शोथ (कुद्युदर-उरस्तोय) में जबतक जल नहीं उत्पन्न होता; तबतक यह लाभ पहुँचा सकता है। एवं सूर्यावर्त, आधाशीशी और दुस्सह शिरदर्द, प्रतिश्याय, ११ प्रकारके क्षय, हृद्रोग, शूल, दारुण स्वर-भेद आदिमें रोगानुसार अनुपानके साथ देनेसे सब रोगोंको दूर करता है।

श्वासकुठारका उपयोग श्वास रोग पर अच्छा होता है। मूल-भूत श्वास रोगके अतिरिक्त अन्य कारणोंसे अन्य रोगोंके पूर्वरूप, उपद्रव या लक्षणरूपसे गौण श्वासविकार भी होता है। हृद्रोग या सर्वाङ्गशोफ, दोनों रोगोंमें श्वासकी सम्प्राप्ति होजाती है। ऐसे लक्षण रूप श्वासमें इस रसायनका उपयोग नहीं होता।

वृद्धावस्था या तरुणावस्थामें ही कास और उसके साथ श्वास होनेपर इसका उपयोग होता है। इस श्वासमें घबराहट अधिक होती है। श्वासोच्छ्वास वेगपूर्वक चलता है। श्वासकी अपेक्षा उच्छ्वास लम्बा होता है। श्वासका वेग उत्पन्न होनेपर रोगी बिल्कुल बेचैन होजाता है। समीपमें रहे हुए खम्भे या मनुष्यको पकड़कर बैठनेसे चैन पड़ेगा, ऐसा उसे भासता है। इस हेतुसे जो कुछ हो, उसे पकड़ लेता है। कफ छूटनेके लिये जो पदार्थ मिले उसे मुँहमें रखता है। इस श्वासका निश्चित कारण नहीं। किसीको शीतलवायु या शीतकालके हेतुसे; तब कितनेकोंको वर्षाकाल, शीतकाल, वर्षा या बर्फ गिरकर फिर शीतल वायु चलना आदि कारणोंसे श्वास होजाता है। किसी-किसीको ग्रीष्म ऋतुमें सूर्यकी प्रखर उष्णताके हेतुसे श्वासवृद्धि होती है। इस तरह आहार-विहारके भेदसे भी दौरा होजाता है। किसीको किञ्चित् अम्ल मट्ठेसे श्वासवृद्धि होती है; और इसके विपरीत किसी-किसीको प्रकृति-भेदसे ऐसे मट्ठेसे श्वासरोगमें लाभ पहुँचता है।

प्रतिश्याय होकर श्वासवाहिनियोंमें कफका प्रादुर्भाव होनेपर

कुछ समयमें कफावरोध होता है। फिर श्वास उत्पन्न होनेपर इस औषधका उपयोग करना चाहिये। इस रोगमें श्वासवेग होनेपर बार-बार चक्कर आकर नेत्रोंके समीप अंधकार आता रहता है, तथा अग्निमान्द्य, कास आदि लक्षण होते है। कफ न पड़े, तबतक अधिक त्रास होता है; बार-बार खाँसी आती रहती है। कफ गिरनेपर कुछ समय तक अच्छा लगता है। कण्ठमें कुछ वस्तु लगी हो, ऐसा भासता है। कास-वेग और श्वास वेग होनेपर मुँहसे बोलना भी कठिन होजाता है। निद्रा बिल्कुल नही आती। कचित् आँख लगी, तो थोड़े ही समयमें श्वासका वेग बढ़कर पुनः ज्यादा घबराहट होजाती है। यह घबराहट कफावरोधके हेतुसे होती है। रोगी पलँगपर सीधा लेट नहीं सकता। बैठे रहनेमें कुछ अच्छा लगता है, या आगे-पीछे कुछ आधार रख लेनेमें कुछ शान्ति मालूम पड़ती है। यदि जरा-सा शयन किया तो तत्काल वेगवृद्धि होकर बैठा होना-पड़ता है। गरम जल, गरम-गरम चाय, सेक, अँगीठी, ओढ़नेके लिये गरम वस्त्र आदि से अच्छा लगता है; जरा-सा ठण्ड लगनेपर श्वास-वेग और व्याकुलता बढ जाते है। श्वासवेग अधिक होनेपर नेत्र आधे मिच जाते हैं। नेत्रकी पुतली कुछ ऊपर चढ़ी हुई भासती है। प्रस्वेद आना, विशेषतः कपालपर प्रस्वेद आना, मुँहमें शुष्कता, आवाज न निकलना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसे श्वास में श्वासकुठार रस लाभदायक है।

आकाश में बादल आने, वर्षा होने तथा शीतल और आर्द्र वायु चलने पर श्वास सहज बढ़ जाता है। इस तरह गीली जमीन पर बैठने, शीतल भोजन या कफवर्द्धक भोजन करने पर श्वास बढ़ जाता है। शीत वीर्य और शीत स्पर्श वाली वस्तुओ से कफ बढ़कर श्वास होजाता है। इस प्रकार के श्वासविकार में श्वासकुठार का अच्छा उपयोग होता है। इस प्रकार के रोगपर समीरपन्नग भी लाभदायक है।

श्वास के अतिरिक्त मोह, मूर्च्छा, भ्रम आदि में बेहोशी होनेपर नस्यरूप से इसका उपयोग किया जाता है। (औ० गु० ध० शा०)

सूचना—(१) पित्तज कासमें इसका उपयोग नहीं करना चाहिये।

(२) कभी-कभी श्वासकुठार से कितनेक रोगियों को उष्णता बढ़ जाती है। ऐसे समय पर प्रवालपिष्टी और गिलोयसत्व या दाडिमावलेह अथवा मिश्री मिले दूधका सेवन कराना चाहिये।

(७४) श्वासरोगान्तक वटी।

बनावट—शुद्ध सोमल १ तोला, अभ्रक भस्म ११ तोले, सोहागे

का फूला और सफेद मिर्च का चूर्ण २-२ तोले लें। सबको मिला नागर-बेलके पानके रसमें ३ दिन खरल करके १-१ रत्ती की गोलियाँ बनावें।

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २ बार शहद, मिश्री मिले हुए दूध अथवा घृत के साथ देवें।

उपयोग—नया और पुराना श्वास रोग, जिसमें कफ बहुत गिरता हो; श्वासनलिकाएँ कफसे भरी रहती हो, थोड़ासा परिश्रम करने पर श्वास रुकने लगता हो; ऐसे रोगमें इस वटीसे बहुत जल्दी लाभ पहुँचता है। जिन रोगियोंकी पचनक्रिया अधिक दूषित न हुई हो, उन रोगियो को विशेषतः जीर्ण रोगमें घीके साथ दिया जाता है। घी २-४ तोले पिलाया जाता है।

सूचना—पित्तप्रधान प्रकृतिवालोंको यह वटी न दे। वृक्कस्थान सदोष होने से योग्य मूत्रोत्पत्ति न होती हो तो भी यह रसायन न देवें। यकृत् निर्बल होनेसे पित्तस्राव न्यून होता हो, तो घी अधिक न दें, दूध पिलावे।

दूसरी विधि—शुद्ध बच्छनाग, शुद्ध सिंगरफ, सोहागे का फूला और पीपलामूल २-२ तोले; पीपल, सफेद मिर्च, मुनक्का, छोटी हरड़ और मुलहठी ४-४ तोले; काली तमाखू के डंठलके कोयले १० तोले और केशर ६ माशे लें। सबको कूट कपड़छन चूर्ण कर, नागरबेल के पानके रसमें १२ घण्टे खरल करके आध-आध रत्तीकी गोलियाँ बनावें।

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें ३ बार जल, शहद अथवा नागर-बेलके पानके साथ देवें।

उपयोग—यह वटी तमाखूके व्यसनसे होनेवाले श्वास और कास को दूर करती है। कफजन्य कास, श्वास और शूल पर शीघ्र लाभ पहुँचाती है। जुकाम, अरुचि, मन्दाग्नि, मलावरोध, सूक्ष्मज्वर और अतिसार को भी नष्ट करता है।

सूचना—तमाखू के डठल के छोटे-छोटे टुकड़े कर मिट्टी के बर्तन मे रखकर जलावें। निधूंम होने पर ढक्कन ढक दें, वरना राख होजायगी। जिस दिन कोयले करें, उसी रोज गोलियाँ बना लेनी चाहिये।

(७५) मल्लादि वटी।

प्रथम विधि—शुद्ध सोमल, वंशलोचन, इलायची और जावित्री २-२ तोलेको मिला गुलाबजलमें २ दिन खरल करके ज्वारके दाने बराबर गोलियाँ बनावें।

मात्रा—१-१ गोली दिनमें २ बार दूध के साथ देवें।

उपयोग—इस वटीके सेवनसे [illegible]

वमन, प्रमेह और वातविकार आदि रोग दूर होते हैं। इस औषध में सोमल की उष्णता अन्य शीतल ओषधियों के योगसे कम होजाती है, कफ सरलतासे बाहर आजाता है, एवं कफकी उत्पत्ति भी कम होजाती है। यह वटी जीर्ण वात-प्रकोपपर अच्छा लाभ पहुँचाती है; हृदय को सबल बनाती है, और निर्बलता को दूर करती है।

दूसरी विधि—शुद्ध संखिया १ तोला और सैंधानमक ७ तोले मिला घीकुँवारके रसमें ३ दिन खरल करके मूँगके बराबर गोलियाँ बाँधें। (ग्र० यो० मा०)

मात्रा—१-१ गोली दिनमें २ बार जल, दूध या घीके साथ दें।

उपयोग—यह वटी उदरशूल, विषमज्वर, कफदोष, श्वास, आमवात, अपचन और वायुविकारको दूर करती है।

(७६) श्वासदमन चूर्ण।

बनावट—शुद्ध मैनसिल, भुनी हींग, बायविडङ्ग, कूठ, कालीमिर्च और सैंधानमक समान मिलाकर बारीक चूर्ण करें। (र० र० स०)

मात्रा—१-१ माशे दिनमें २ बार शहद और घीके साथ दें।

उपयोग—इस ओषधिके सेवनसे श्वास, हिक्का और कासमें सत्वर लाभ पहुँचता है। हृदयावरोध और श्वास की रुकावट तुरन्त कम होजाती है, तथा हिक्का और कफयुक्त कास नष्ट होती है। घबराहट होनेपर यह ओषधि तुरन्त फल दर्शाती है।

(७७) हिक्कान्तक रस।

बनावट—सुवर्ण भस्म, मुक्ता पिष्टी, ताम्र भस्म और लोह भस्मको समभाग मिला बिजौरेके रसकी ३ भावना देकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बनालें।

मात्रा—१ से ३ रत्ती बिजौरेके रस, शहद और काले नमकके साथ दें। आवश्यकता पर २-२ घंटे पर और दो बार देवे।

उपयोग—यह रसायन सब प्रकारकी हिचकीको निःसन्देह शमन करता है। इस रसायनका नाम 'रसचंद्रांशु'कारने सुवर्णभस्मादि योग लिखा है।

(७८) वान्तिहृद् रस।

बनावट—लोह भस्म, शंख भस्म, शुद्ध गन्धक और शुद्ध पारा सबको ५-५ तोले लेकर कज्जली करे। पश्चात् घीकुँवार, धतूरेके पत्ते और चांगेरीके रसकी १-१ भावना देकर गोली बनावें। सूखने

कपड़मिट्टी करके २ सेर गोबरीमें फूँकदे । स्वांग शीतल होनेपर खरल करले । (र० चं०)

मात्रा—१ से २ रत्ती दिनमें ३ या अधिक बार शहदके साथ दें। ऊपर पीपल वृक्षकी राखको जलमें भिगोकर नितरा हुआ जल पिलावें। कृमि रोगमें वमन होती हो, तो वायविडङ्ग, अजवाइनके चूर्ण और शहदके साथ दे ।

उपयोग—यह वान्तिहृद्रस जीर्ण वमन रोग, अपचनजनित वमन, पित्तप्रकोपज वमन और कृमिरोगका नाश करता है।

वमन, यह लक्षण अनेक भिन्न-भिन्न रोगोंमें उपस्थित होते हैं। सामान्यतः वान्तिके कारण ३ प्रकारके हैः—

(१) आमाशय और तत्सन्निध अवयवोंकी स्थानिक विकृति ।

(२) वातवाहिनियाँ, वातवहा नाड़ीकेन्द्र या मानसिक विकृति ।

(३) दोषदूष्य सयोगजन्य वृक्क, गर्भाशय आदि अन्य स्थानों की विकृतिसे उत्पन्न विकार ।

इनमेंसे पित्तजन्य आमाशय विकृति पर-विशेषतः पित्तके तीव्रत्व, अम्लत्व और द्रवत्व गुण बढनेपर वान्तिहृद्रसका उपयोग किया जाता है। जीर्णविकार, कण्ठमें जलनसह अत्यधिक मात्रामें कै होना, साथ-साथ आफरा, भोजन करनेपर तुरन्त वमन, अंगकान्ति निस्तेज होजाना आदि लक्षण होनेपर वान्तिहृद्रस उत्तम ओषधि है।

दूषित अन्न, बासी दुर्गन्धयुक्त भोजन, गर विष, फटा हुआ दूध या ताम्र आदि धातुओंके पात्रमें रखा हुआ भोजन आदिके सेवनसे कै होने लगती है। ऐसे समयपर प्रारम्भमें वमन आदि क्रिया द्वारा संशोधन कराना चाहिये। फिर विष अनुसार प्रतियोगी विषघ्न उपचार करना चाहिये। इसपर इस वान्तिहृद्रसका उपयोग नहीं होता। केवल निज रोगोंमें यह रसायन उपयोगी है ।

अम्लपित्त, पित्तज परिणामशूल, अन्नद्रवशूल आदि व्याधियोंमें बार-बार त्रासदायक वमन होनेपर इसका उपयोग होता है। एवं बीभत्स पदार्थके दर्शन, भोजनमें मक्षिका आदिका प्रतीत होना, या अन्य मानसिक कारणसे उत्पन्न छर्दिमें भी यह कुछ अंशमें उपयोगी है।

सर्वाङ्गमें शोथ, पाण्डुरोग, हृद्रोग, यकृद्वृद्धि और जीर्णज्वर आदि जीर्ण व्याधियोंमें स्थानिक विकृति होकर वमन होती हो, तो वान्तिहृद्रसका उत्तम उपयोग होता है। विशेषतः पित्तप्रधान विकार

होनेपर बहुत अच्छा लाभ पहुँचता है।

जीर्ण कृमिज हृद्रोग और कृमिज पाण्डु रोगपर इस ओषधिका उपयोग करके निर्णय करना चाहिये। कृमिजन्य तीव्र विकारमें तो इसका उपयोग नहीं होना चाहिये, ऐसा अनुमान है।

संक्षेपमें यह रसायन पित्तघ्न, आमाशयके पित्तको शमन करनेवाला, जीर्ण रोगमें हितकर, पाचक, कृमिघ्न और बल्य है।

(औ० गु० ध० शा०)

सूचना—यह रसायन दूषित भोजन और विष भक्षणसे वमन होनेपर एवं उपदंश और जीर्ण सुजाकके रोगवालेको नहीं देना चाहिये।

यह ओषधि मलावरोधके रोगीको नही देनी चाहिये।

सगर्भा स्त्रीको यह रसायन न दिया जाय, तो अच्छा है।

तीव्र वमनके रोगीको एक साथ अधिक जल न पिलावें। यदि पीपल (अश्वत्थ) की छालको जला, श्वेत भस्म बना, १६ गुने जलमें भिगो २ घण्टे बाद ऊपरसे साफ जल नितार कर मिट्टीके घडेमे भर लेवे, उसमेसे थोड़ा-थोड़ा जल आवश्यकतानुसार पिलाते रहे, तो विशेष हितकर माना जायगा।

(७९) रसादि चूर्ण।

बनावट—शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोले, कपूर ३ तोले, शुद्ध शिलाजीत ४ तोले, खस ५ तोले, श्वेत मिर्च ६ तोले और मिश्री ७ तोले मिलाकर खरल करे। (भै० र०)

मात्रा—१ से २ रत्ती शीतल जलके साथ दिनमें ३ बार ले।

उपयोग—इस चूर्णके सेवनसे अत्यन्त बढ़ी हुई तृष्णा सत्वर शमन होती है। इस कारणसे यह ओषधि तृषा रोग एवं अन्य रोगके तृषारूप उपद्रवमें उपयोगमें ली जाती है। मधुमेह, विसूचिका, अतिसार, मदात्यय, दाह और विषप्रकोप आदि रोगोमें और अन्य कारणसे तृषा बढ़नेपर इस ओषधिका उपयोग करनेसे अब्धातु प्रवृत्ति नियमित होकर तृषा शमन होजाती है।

(८०) कुमुदेश्वर रस।

बनावट—ताम्रभस्म ४ तोले और वनौषधिसे मारित वङ्गभस्म २ तोले मिला, मुलहठीके क्वाथकी ७ भावना देकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बनालें। (र० चं०)

मात्रा—१ से २ रत्ती तक दिनमें ३ बार लेवे। ऊपर में निम्न चंदनादि क्वाथ पिलावें।

चंदनादि क्वाथ--सफेद चन्दन, अनन्तमूल, नागरमोथा, छोटी इलायची और नागकेशर १-१ तोला और धानकी खील (लाह्या) ५ तोले मिलाकर १६ गुने जलके साथ, आधा जल रहे तबतक उबाल कर छानले। फिर मिश्री और मधु मिलाकर थोड़ा-थोड़ा पिलावें।

आमप्रकोपसे तृषा लगती हो, तो मुलहठीके क्वाथके साथ देवें।

उपयोग---इस रसायनके सेवनसे पित्तप्रकोप, आमप्रकोप या मधुमेह आदि रोग या अन्य किसी कारणसे उत्पन्न हुई तृषा शमन होती है, एवं वमन होती हो, तो वह भी सत्वर दूर होती है।

यह रस मूल ग्रन्थमें तृषा चिकित्सामें दिया है। तृषा स्वतन्त्र रोग नहीं है; किन्तु उपलक्षण है। इस औषधके पाठ और भावनाका विचार करने पर यह केवल पित्तज तृषाके लिये उपकारक है, ऐसा नहीं, मधुमेहजन्य तृषा और आमज तृषा पर भी उपयोगी है। मधुमेह विकार यकृत्की अशक्तिसे निर्माण होनेसे बार-बार अधिक मूत्रोत्सर्ग होता हो, और रोगी कृश होकर ओजक्षय विशेष रूपसे हुआ हो, तो भी इस रसायनके सेवनसे लाभ पहुँच जाता है।

शुक्र-स्खलनकी आदत होजाने पर अपचन और कोष्ठबद्धता आदि विकार उपस्थित होते हैं। फिर थोड़ा-सा जड़ अन्न सेवन करने पर वह पचन नहीं होता, और अपचन बढ़ने पर बार-बार शुक्रस्राव होता रहता है। मुखमण्डल उदास प्रतीत होता है। जीवन पर बिल्कुल अभाव-सा होजाता है। यह रोग वर्त्तमानमें बहुत बढ़ गया है। इसपर कुमुदेश्वर से जल्दी लाभ पहुँचता है। (औ० गु० ध० शा०)

(८१) राजावर्त्त रस।

बनावट---राजावर्त्त भस्म, पारद भस्म (रससिंदूर), ताम्र भस्म और सुवर्णमाक्षिक भस्म, चारोंको समभाग मिला थोड़े घीके साथ मन्दाग्नि पर घृत शोषण होकर औषध संमिश्रण होजाने तक पका लेवें। (र० चं०)

मात्रा---१ से २ रत्ती दिनमें २ बार मक्खन-मिश्री या मिश्री, घी और शहदके साथ या धारोष्ण दूधके साथ देवें।

उपयोग---यह रसायन सब प्रकारके मदात्यय रोग, दाह, शिर-दर्द और पित्तविकारको दूर करता है, तथा हृदयको सबल बनाता है।

मदात्यय रोगमें शारीरिक और मानसिक निर्बलता तथा निस्तेजता आजाता है। रोगीका मुखमण्डल मलिन होजाता है। निद्रानाश,

प्रलाप, नेत्रमें लाली, दाह, शीत लगना, कम्प होना, भयप्रद दर्शन होना, हृदयमें विविध प्रकारके संशय होना, अति प्रस्वेद आना, निःश्वासमें दुर्गन्ध निकलना, आमाशयमें उग्रता आजाना आदि लक्षण उपस्थित होते है। क्वचित् रोगी अधिक सुरापान कर लेवें तो उसके हृदयमें चोरी, डाका, नरहत्या, व्यभिचार आदि दुर्दमनीय कार्यकी लालसा उत्पन्न होजाती है। इस विकारमें हृदयमें मेदवृद्धि, वृक्कविकृति, ध्वज-भंग, उन्माद, मस्तिष्कविधानमें विकृति, मृगी, पक्षाघात आदि होकर आयुक्षय होता है। इस विकारमें निद्रानाश, दाह, व्याकुलता आदि लक्षण होनेपर इस रसायनका अच्छा उपयोग होता है। इस रसायन के सेवनसे मस्तिष्क और हृदय सबल बनते हैं; जिससे दाह, अति प्रस्वेद और आमाशयकी उग्रता आदि लक्षण शमन होजाते है। फिर रोगी शनैः-शनैः रोगमुक्त होकर बलवान और तेजस्वी बन जाता है।

(८२) कामदूधा रस।

बनावट—मुक्तापिष्टी, प्रवालपिष्टी, शुक्ति भस्म, वराटिका भस्म, शंख भस्म, सुवर्णगैरिक (सोनागेरू) और गिलोय सत्व, इन ७ औषधियों को सम भाग मिलाकर खरल करलें। (र० यो० स०)

मात्रा—१ से ३ रत्ती तक दिनमें २ बार जीरा-मिश्री के साथ। अम्लपित्त में आँवले के चूर्ण और घृत के साथ।

उपयोग—कामदूधारस शीतवीर्य, क्षोभनाशक और शक्तिदायक है, तथा पचनक्रिया, रुधिराभिसरण, वातवहन क्रिया और मूत्रमार्ग पर शामक असर पहुँचाता है। कामदूधा से जीर्णज्वर, पित्तविकार, अम्लपित्त, दाह, मूर्च्छा, भ्रम, चक्कर, उन्माद, अपस्मार, मस्तक-शूल, सोमरोग, प्रदर, रक्त गिरना आदि शीघ्र दूर होते है। मगजकी निर्बलता, मूत्रदाह, मुखपाक, रक्तार्श, सगर्भा स्त्रीकी वमन, मानसिक त्रास इत्यादि भी शमन होते है।

कामदूधा रस शतीवीर्य होने से इसका शामक परिणाम पचन-क्रिया, रुधिराभिसरण, वातवहन क्रिया और मूत्र मार्ग पर होता है। इसके योग से इन सब अवयव समूहों में उत्पन्न दाह सत्वर कम हो जाता है। इसका कार्य भ्रम, चक्कर आदि विकारो से लेकर उन्माद की परिस्थिति पर्यन्त मस्तिष्क के विकार, आमाशयसे लेकर सब महा-स्रोतके विकार, मूत्राघात, मूत्रोत्सर्ग, मूत्र कृच्छ्र आदि मूत्रविकार तथा सामान्य रक्तस्राव और नाक में से रक्तस्राव से लेकर रक्तपित्त की

भयंकर स्थिति तक रुधिराभिसरण क्रिया, सब पर भिन्न-भिन्न रीति से होता है।

इस ओषधिमें प्रधानतः चूना कल्प होनेसे इसका उपयोग सामान्य शक्तिवर्द्धक रूप से भी होता है। जीर्णज्वर से उत्पन्न शक्तिपात चाहे उतना अधिक हो, तो भी इससे दूर होता है। शंखवराटिका भस्म के योग से प्लीहावृद्धि नष्ट होकर प्लीहाको मूल स्थिति की प्राप्ति होती है। अग्निसाद (मन्दाग्नि) दूर होकर क्षुधा उत्तम प्रकार से लगती है। शीतसह ज्वर में कड़वी ओषधियों का उपयोग बहुत किया जाता है। इनमें क्विनाइन का अधिक उपयोग होने पर बधिरता, मन्दाग्नि, भ्रम, अरुचि, अन्न की इच्छा कम हो जाना आदि लक्षण उत्पन्न होने पर कामदूधा उत्तम लाभ पहुँचाता है। यदि इन लक्षणों के साथ निरतेजता, उबाक, उदर में पीड़ा होकर बडी-बडी वमन होना आदि लक्षण हो, तो कामदूधा के साथ सुवर्णमाक्षिक भस्म का मिश्रण करना चाहिये।

पित्त विदग्ध होने पर रक्त भी विदग्ध होता है, फिर इस हेतु से रक्तवाहिनियो की श्लैष्मिक कला विकृत होकर दीवार पतली हो जाती है। पश्चात रक्तवाहिनियाँ फूट-फूट कर रक्त बाहर निकलने लगता है। इस परिस्थितिमें चूनाका अंश बहुत कम होजाता है। इस रक्तपित्तके साथ सर्वाङ्गमें दाह, चक्कर, नेत्र खोलने पर सारा संसार फिरता हुआ भासना, इस हेतुसे नेत्र मूँदकर पडे रहना, अति निर्बलता भासना, मूत्रमें दाह, जहाँमें रक्त गिरता हो, वहाँ से रक्त गरम-गरम निकलना और वहाँ पर दर्द होना इत्यादि पित्तप्रधान रक्तपित्त होनेपर कामदूधा का उत्तम उपयोग होता है।

पित्तभूयिष्ठ या वातभूयिष्ठ शीर्षशूलमें कामदूधा अच्छा लाभ पहुँचाता है। कितनेकोको शिरदर्द दिनो तक होता रहता है। शिर-दर्द हो-होकर वमन होने पर शिरदर्द कम होता है। इस अवस्थामें कामदूधा रस देना चाहिये। यदि वमन होजाने पर भी शिर दर्द रहता हो, तो सूतशेखर देना चाहिये।

पित्तप्रधान शीर्षशूलमें रोगी अति क्रोधी, त्रासिक, जरा-सा कारण मिलने पर शिरको कूटने वाला, अतिअसहनशील एवं जोरसे हँसना, जोरसे बोलना, बालकोका रोना, बाजे आदिकी आवाज, पक्षियों का कलरव आदि सहन न होना, रोगीकी मानसिक स्थिति अत्यन्त नाजुक होजाना आदि लक्षण होते है। ऐसे रोगीको सूतशेखरकी अपेक्षा

कामदूधा अधिक हितकर है। इस विकारमें पित्तप्रकोप होता है; वह कामदूधासे शमन होजाता है। सूतशेखरसे पित्तकी उत्पत्ति नियमित बनती है, अर्थात् पित्त अधिक तीव्र गतिसे या अधिक परिमाणमें उत्पन्न नहीं होता। कामदूधासे पित्तकी तीक्ष्णता और अम्लता कम होकर पित्तकी प्रबलता नष्ट होती है। अतः जब पित्तकी तीक्ष्णताके हेतुसे त्रास होता हो, तब कामदूधाका उपयोग करना चाहिये।

जागरण, अति मानसिक श्रम, अति विद्याभ्यास, सूर्यके ताप या अग्निका अधिक सेवन आदि कारणोंसे नेत्रोंको त्रास पहुंचता है; एवं शिरदर्द होने लगता है, उस पर कामदूधा रस अति लाभदायक है। यही क्षोभ बढ जाने पर मस्तिष्ककी विचारशक्ति और धारणशक्ति कम होजाती हो, जो उस अवस्थामें कामदूधा सदृश क्षोभनाशक और शक्तिदायक ओषधिकी ही योजना की जाती है।

आमाशयस्थ पित्तमें वृद्धि होने पर जलन, खट्टी डकार, शिर-दर्द, चक्कर आदि लक्षण होकर खट्टी और कड़वी वमन हो, उसे अम्ल-पित्त कहते है। इस विकारमें पित्तस्राव आवश्यकतासे अधिक होता है, या पित्तकी तीव्रता बढ़ जाती है। पित्तका स्राव अधिक होने से भोजन खट्टा होजाता है, और खट्टी वान्ति होती है; ऐसे समय पर सूतशेखर का उपयोग अधिक होता है। परन्तु पित्तकी तीव्रता अधिक होकर वमन होनेमें अधिक त्रास होना, पित्त थोड़ा-थोड़ा निकलना आदि लक्षण होने पर कामदूधाका उपयोग करना चाहिये। अनुपान रूपसे आँवलेका चूर्ण और घी या नागकेशरका चूर्ण और घी मिला देना चाहिये, जिससे पित्तकी तीव्रतासे बाधा न पहुँचते हुए अम्लपित्त शमन होजाता है। यह अम्लपित्त रोग बढ जाने पर पित्तकी तीव्रता और भोजनके विदाहसे आमाशयकी श्लैष्मिक कलाके क्षोभ और दाह होते है। फिर क्वचित् सूक्ष्म-सूक्ष्म व्रणोंकी उत्पत्ति होती है। इस तरहके अम्लपित्त-जनित विकारो पर कामदूधाका उत्तम उपयोग होता है।

यह रसायन शीतवीर्य-शामक होनेसे पित्तकी तीक्ष्णताका शमन कर उसे सौम्य बना देता है। इस औषधमें गेरू अति शामक और स्तम्भक ओषधि होनेसे पित्तका स्राव भी कम होजाता है। कामदूधाके योगसे रक्त और रक्तवाहिनियोंका प्रसादन होता है। फिर क्षोभ दूर हो जाता है। पित्तातिसार और रक्तातिसार पर कामदूधाकी शामकता प्रतीत होती है। इस ओषधिके योगसे अंतस्त्वचाका क्षोभ शमन हो

जाता है। रक्तातिसार और पित्तातिसारमें लघु अन्त्र और बृहदन्त्रकी अन्तस्त्वचामें क्षोभ होजाता है। उदरमें दाह होता रहता है। जल पीने की बार-बार इच्छा होना, शौच जाने पर गुदामें जलन, ये सब पित्त प्रकोपजनित लक्षण होने पर कामदूधा रस उत्तम कार्य करता है।

विदग्ध पित्तके योगसे रक्तका विदाह होता है। इस हेतुसे रक्तमें तीक्ष्णत्व आदि पित्तके धर्मो की वृद्धि होजाती है। ऐसे गुण वाला रक्त जब रक्तवाहिनियोंमें वहन करता रहता है तब रक्तवाहिनियोंकी अन्तस्त्वचा अधिकाधिक पतली होती जाती है। फिर कुछ क्षोभोत्पादक कारण मिलने पर रक्तवाहिनियाँ फूट कर उनमेंसे रक्तस्राव होने लगता है। इन सबमें विदग्धपित्त कारण है, और रक्तपित्त कार्य है। इस पर प्रवाल, मुक्ता आदि औषधका उपयोग होता है। परन्तु इनमें स्तम्भक-पना न होनेसे कितनीक विशेष अवस्थामें कामदूधाकी योजना करनी चाहिये। बार-बार रक्त पड़ते ही रहना, रक्तस्राव बन्द हुआ तो भी बहुत थोड़े समयके लिये, एक स्थान पर बन्द होने पर अन्य स्थान पर पुनः आरम्भ होजाना, रक्तमें जमकर संघात करने की क्रिया मंद होजानेसे रक्त गिरते रहना, सर्वाङ्गमें दाह, हाथ-पैर, नेत्र और मूत्रमें जलन, पंखेसे वायु डालते ही रहना, मस्तिष्क फिरता हुआसा रहना, घर, आकाश आदि फिरनेका भास होना, कभी चक्कर विकार बढ़कर मूर्च्छा आजाना आदि लक्षण होने पर कामदूधा उत्तम कार्य करता है।

पित्तदोषकी विकृतिसे पचनक्रिया विकृत होती है। फिर उदरमें सेन्द्रिय विषका निर्माण होता है। यह पित्त गुणभूयिष्ठ होता है। इसका प्रकोप होने पर उन्माद सदृश विकार उत्पन्न होता है। इस घोर दोष संचयका परिणाम मनोवृत्ति पर होता है, जिससे अल्पसत्व मनुष्यका मन चंचल होता है। उसमें चल विचलता होकर विभ्रमावस्थाकी प्राप्ति होजाती है। इसे ही उन्माद कहते हैं। इस विकारमें बुद्धिका विभ्रम, मनकी अस्थिरता, दृष्टिकी अस्थिरता, चंचल और व्याकुल नेत्र, धैर्यनाश, इच्छानुसार असम्बद्ध प्रलाप, हृदयमें अकस्मात् शून्यता आजाना, बार बार चक्कर आना, चक्कर आकर बेहोशी आजाना, आदि लक्षण होने पर कामदूधा रस उत्तम कार्य करना है।

हृदयके विकारमें पित्तप्रकोपके लक्षण अधिक होने पर कामदूधा का उपयोग करना चाहिये। इसमें हृदय और नाड़ीकी गति बढ़ना, बार-बार चक्कर आना, हृत्स्पंदन और अन्य पित्तलक्षण बढ़ जाना आदि

विकार प्रतीत होते है। ऐसी परिस्थितिमें कामदूधा हितकारक है।

सर्वाङ्ग शोफमें व्याकुलता, चक्कर, अकारण थकावट, उबाक,-वमन, शिरदर्द, उदरमें दाह आदि पित्तलक्षण प्रकाशित हों, इस विकारमें यदि मूत्रका परिमाण अति कम हो, तथा मूत्र लाल, गाढा हो, तो तीव्र क्षारप्रधान मूत्रल औषध लाभ नहीं पहुँचा सकती। तीव्र औषधि देने पर वृक्कोंका दाह अधिक बढकर शोथवृद्धि होजाती है। अतः शामक औषधका उपयोग किया जाता है। यदि शामक मूत्रल औषधि दीजायगी, तो वृक्कोंको अधिक कार्य करना पड़ता है वह भी कितनीक अवस्थामें इष्ट नहीं होता। केवल क्षोभनाशक, शीतवीर्य, प्रसादन औषधका अधिक उपयोग होता है। यह कार्य कामदूधामें होता है। कामदूधा शीतवीर्य होनेसे मूत्रपिण्डोंको होनेवाला त्रास विशेषांशमें कम होजाता है। यह शामक होनेसे रक्तका प्रसादन करके शोथको कम कराता है। अतः वृक्कविकारजनित पित्तप्रधान सर्वाङ्ग शोफमें कामदूधाकी योजना करनी चाहिये।

गवीनियों (Ureters) मेंसे मूत्र निकलनेके समय दाह और वेदना होना, स्रोतसे स्फोटयुक्त फटीसी होजाना, आदि लक्षण होने पर कामदूधाका प्रयोग करना चाहिये।

स्त्रियोंके रक्तप्रदरमें कामदूधा उपयोगी है। सगर्भावस्थामें कड़वी, खट्टी, जलती हुई वमन होती हो, तो वह भी कामदूधा रस सेवन से शमन होजाती है।

बालकोंकी काली खाँसी पर उपयोगी औषधियोंमें कामदूधा रस उत्तम औषधि है। अति निर्बलता आने पर और आमाशयमें अधिक उग्रता होने पर अन्य औषधियाँ जब निष्फल होजाती है, तब यह लाभ पहुँचा देती है। (औ० गु० ध० शा० के आधारसे)

(८३) गन्धक रसायन।

प्रथम विधि—शुद्ध गन्धकको गायके दूध, चातुर्जात (इलायची, दालचीनी, तेजपत्र, नागकेशर) का क्वाथ, गिलोयका स्वरस, हरड़, बहेड़ा, आँवला, इनका अलग-अलग क्वाथ, भाँगरेका रस और अदरखका रस, इन वस्तुओंकी आठ-आठ भावना दे सुखाकर बारीक चूर्ण करें। (यो० र०)

कितनेक चिकित्सक आठ-आठ भावनाके स्थान पर केवल एक-एक भावना देते है। अधिक भावना देनेसे गुणमें वृद्धि होती है।

मात्रा—आधेसे १ माशे तक दिनमें दो बार समभाग मिश्री मिलाकर दूधके साथ सेवन करें। कुष्टरोगमें दारुहल्दी, हल्दी, मजीठ, अनन्तमूल, आँवला, गोखरू, गिलोय, काले खैरकी छाल, चोपचीनी और नीमकी निबौलीके क्वाथके साथ एक मास तक सेवन करें। फिर एक मास छोड़ देवे। पुनः प्रारम्भ करें। इस तरह ३ वर्ष तक सेवन करनेसे सब प्रकारके कुष्ट शमन होजाते हैं।

उपयोग—इस गन्धक रसायनके सेवनसे वीर्यकी वृद्धि और शरीरकी दृढ़ता होती है। पाचनशक्ति बलवान बनती है। खाज, कुष्ट और उग्र विषदोष दो मासके सेवन मात्रसे नष्ट होजाते हैं। घोर अतिसार, ग्रहणी, रक्त और शूल सहित ग्रहणी, जीर्णज्वर, सब प्रकारके प्रमेह, सब प्रकारके वात रोग, सब प्रकारके उदर रोग, अण्डकोषवृद्धि और सोमरोगको यह रसायन दूर करता है। ६ मास सेवन करनेसे बाल काले होजाते हैं, और युवावस्थाके समान बलकी प्राप्ति होती है। सङ्क्षेपमें यह रसायन सब प्रकारकी व्याधियोंको दूर करता है। बिल्कुल मरणतुल्य शरीरवालोंको भी बलवान, नीरोग और दीर्घ आयुवाला बना देता है। वीर्यकी वृद्धि करता है। वात, पित्त और कफ, तीनों दोषोंमें से बढ़े हुएको घटाता है, और घटे हुए को बढ़ाता है। जीर्णज्वर, सब प्रकारके जीर्णरोग, राजयक्ष्मा, प्रमेह, पाण्डु, क्षय, श्वास, अर्श आदि रोगोंको दूर करके शरीरको तेजस्वी बना देता है।

इस गन्धक रसायनके साथ यदि रससिंदूर या सुवर्ण भस्मका सेवन किया जाय, तो बलवृद्धिके लिये विशेष लाभ पहुँचता है।

इस गंधक रसायनके गुणपाठमें अनेक प्रकारकी व्याधियोंके नष्ट करनेका लिखा है, परन्तु इसको एक विशेष प्रकारकी दोष-दूष्योंकी सगति चाहिये। इसका कार्यक्षेत्र रक्त और त्वचा है। किसी भी कारण से रक्त दूषित हुआ हो, तो उसे शुद्ध बनाना यह धर्म इसमें मुख्य है। ऐसे ही शरीरमें संचित हुए विकृत द्रव्योंका रूपान्तर और भेदन करके शुद्ध बनानेका कार्य भी करता है।

रक्त की अशुद्धिके हेतुसे रस आदि सप्त धातुओंमें मलिनता उत्पन्न होने पर उनका धर्म अर्थात् आवश्यक तत्त्वोंके संशोषण और रूपान्तर करके आत्मसात करनेका गुण मंद होजाता है। फिर रक्तका संशोधन कर धातुओंके इस धर्मको पुनः प्रस्थापित करने की आवश्यकता है। यह कार्य इस रसायनसे उत्तम प्रकारसे साध्य होता है।

समस्त शरीरमें संचारित विशिष्ट प्रकारका विष दीर्घकालपर्यन्त रह जानेसे सप्तधातुओंमें लीन होकर विविध प्रकारकी चिरकारी और जिद्दी व्याधियाँ उत्पन्न करते हैं। इस प्रकारके दोष-दूष्योंके जीर्ण संयोगमें यह अमृतवल्लीके सदृश कार्य करता है।

इस स्थान पर विष दो प्रकारके विवक्षित हैं—(१) स्थावर जंगमात्मक तीव्र, (२) शरीरके भीतर शारीरिक सूक्ष्म कोषाणुओंसे उत्पन्न होनेवाले तीव्र या मंद सामान्य विष और उपदंश, सुजाक आदि रोगोंके विशिष्ट विष। इन दोनों प्रकारके विषकी जीर्णावस्थामें इस रसायनका उत्तम उपयोग होता है।

गंधक रसायन जिन रोगोंमें उपयोगी होता है, उन रोगोंमें मुख्य लक्षण दाह होना चाहिये। मूत्रमें जलन, हाथ-पैरोंमें दाह, उदरमें दाह, समस्त शरीरमें दाह, मस्तिष्कके भीतर, कण्ठ, जिह्वा आदि पर दाह, शौच जलता हुआ होना, अधोवायु उष्ण निकलना, किञ्चित् चलने-फिरने पर सर्वाङ्गमें जलन-सी होजाना, हाथ-पैर किसी स्थान पर रखने पर दाह होना, हाथ-पैर पर शीतल जलकी पट्टी रखनेकी इच्छा होना आदि लक्षण उपस्थित होने पर पित्तकी तीक्ष्णता समझनी चाहिये। ये लक्षण किसी विशिष्ट विष (संक्रामक कीटाणु) का देहमें संचय होनेपर ही होते हैं। उपदंशकी जीर्णावस्थामें गंधक रसायनके अतिरिक्त उपदंशसूर्य, अष्टमूर्त्ति रसायन, मल्लसिंदूर, व्याधिहरण आदि औषधियाँ दीजाती हैं। परन्तु ये सब दाह अत्यधिक होनेपर उपयोगमें नहीं आतीं। उपदंशसूर्यादि मल्लप्रधान औषधियाँ उपदंशके कीटाणुओंके लिये मारक हैं, तो भी विविध दोषदूष्य संयोगोंके अनुरोधसे आयुर्वेदकी दृष्टिसे विविध चिकित्सा करनी पड़ती है। यह उपदंशज विष अथवा पूयशुक्र (Gonorrhoea) जनित विष, क्षुद्र कुष्ठजनक सेन्द्रिय विष या अन्य सेन्द्रिय विष, इनमेंसे किसीके योगसे पित्तदोष बढ़कर पित्त रक्तस्थिति होनेपर दाहके उपरोक्त लक्षण होते हैं। इस दोषदूष्य संयोगमें यह विशेष उपयोगी है।

त्वचापर सूक्ष्म-सूक्ष्म पिटिका या स्फोट, अतिशय शुष्क खुजली होना, शौचशुद्धि न होना, देहपर अति खुजानेसे उस स्थानपर दाह होना, कभी रक्त निकल जाना आदि लक्षण होनेपर इसे मिश्रीके साथ देना चाहिये। शुष्क कण्डूके सदृश दीर्घकालस्थायी और त्रासदायक पामा पर भी इसका अच्छा उपयोग होता है।

खुजलीके विशिष्ट प्रकारके कीटाणु (Parasites) होते हैं, जो अति जिद्दी और त्रासदायक होते है। गंधक रसायनके सेवनसे इन कीटाणुओंको पोषण मिलना बन्द होजाता है। इस हेतुसे रक्त और त्वचामें कीटाणुका बल न्यून होकर रोग शमन होने लगता है। इसके सेवनसे दो-तीन दिनके भीतर पामा आदिके फोडे बड़े होजाते है जिससे किञ्चित् विकार बढ़नेका भ्रम होता है, परन्तु यह सचमुचमें इसके लागू होनेके चिह्न है। वर्षानुवर्षपर्यन्त त्रास भोगनेवाले रोगी गंधक रसायनके सेवनसे सुधर गये है। जितना विकार जीर्ण हो उतना ही यह अधिक कार्य करता है।

पामा सदृश अन्य क्षुद्र कुष्ठमें भी गधक रसायनका उपयोग होता है। मात्रा १-२ रत्ती तक। जैसे-जैसे रोगबल कम हो, वैसे-वैसे मात्रा कम करनी चाहिये। उतने तक कि एक सप्ताहमें एक बार केवल एक ड्ढा रत्ती, त्वचा साफ होनेतक देते रहना चाहिये।

मस्तिष्क पर फोडे होकर उनमेंसे दुर्गन्धयुक्त गाँठ निकलना, सफेद या पीला पूय स्राव होना आदि विकारो पर गंधक रसायनकी अपेक्षा रसपर्पटी अधिक हितकर है। परन्तु इन फोड़ोंमेंही शुष्कता, कण्डू, ऊपरसे सफेद त्वचा निकलते रहना, खुजानेपर अतिशय दाह होना आदि लक्षण हो, तो उसपर यह अप्रतिम औषध है। एवं मस्तिष्क पर इन्द्रलुप्त होनेपर मस्तिष्कमें जलन होती हो, तो इसका उपयोग उत्तम प्रकारसे होता है।

महाकुष्टमें विशेषतः पित्तप्रधान महाकुष्ठोंमें इस रसायनका उत्तम उपयोग होता है। परन्तु इनमें भी विशेष लक्षण दाह होना चाहिये। कुष्ठ शुष्क और न फूटा हुआ चाहिये। एवं इसका विष रक्तऔर त्वचा पर्यन्त प्रवेशित हो, देह पर उत्पन्न धब्बे या स्फोटोंमें लाली, खुजली और दाह विशेष हो; तथा सर्वत्र त्वचामें कुछ-कुछ जलन होती हो, तो यह देना चाहिये। इस कुष्ठपर अनुपान रूपसे विवेचनके प्रारम्भमें लिखा हुआ दार्व्यादि क्वाथ देनेसे कुष्ठ दूर होनेके उदाहरण मिले हैं। यह प्रयोग सतत तीन वर्ष पर्यन्त करना पड़ता है।

पामा दब जानेपर अनेक बार विविध विकारोकी उत्पत्ति होती है। कितनेक बार तो पामा और अन्य विकार घटमालके समान एक पीछे एक क्रमशः होते और मिटते रहते है। अर्थात् पामा मिटने पर

दूसरा रोग उत्पन्न होता है, और उसे शमन करने पर पामा तैयार हो जाता है। यह रोगानुबंधका क्रम दीर्घकालपर्यन्त सतत चलता रहता है। ऐसे विकारोंपर यह उत्तम कार्यकर औषध है। क्वचित् पामा बिल्कुल शमन होकर दूसरे रोगके निदानार्थकर होती है। फिरसे पामाकी उत्पत्ति नहीं होती। परन्तु नया उत्पन्न रोग दीर्घकालपर्यन्त त्रास देता रहता है। अतिसार, संग्रहणी, शीर्षशूल, मुखपाक, उदरमें वायुकी गुड़गुड़ाहट और दाह आदि विकारोंमें से कोई उत्पन्न होनेपर यह लाभदायक है। मात्रा अति कम देनेसे अति उत्तम काम होता है।

उपदंशका जीर्ण विष, अन्य दूषी विष, पारद विष (दूषित रसकपूरका सेवन, हिंगुलका धूम्रपान या अन्य) और जंगम विषकी जीर्णावस्था आदि कारणोंसे घोर अतिसार या ग्रहणी रोग होना, साथमें रक्त और आम जाना, उदरमें कतरनेके सदृश या शूलके समान वेदना आदि लक्षण होनेपर यह अत्यन्त उपयुक्त है।

उपदंश या अन्य सेन्द्रिय विषकी जीर्णावस्थामें उत्पन्न प्लीहावृद्धि और अग्निमान्द्यके साथमें यदि सर्वाङ्गमें दाह हो, तो गंधक रसायनका उपयोग करना चाहिये।

प्रमेह और मधुमेह, ये स्थूल और अति कृश मनुष्योंको भी हो जाते है। स्थूल मनुष्यको गुग्गुल, शिलाजतु, त्रिफला आदि अधिक हितकारक हैं, तथा कृश मनुष्योंमें जिनको जननेन्द्रिय-सम्बन्धी रोग होजानेसे ये विकार हुए हो उनको गंधक रसायन देना चाहिये।

उपदंश आदि रोगोंका विष जीर्ण होजाने पर वातवाहिनियो पर असर पहुँचाता है, तब वातवाहिनियोंको विकृति होकर सर्वाङ्गवात, पक्षाघात अथवा अन्य शारीरिक व्यापारको नष्ट करनेवाला रोग उत्पन्न होता है। ऐसे विकारो पर यह उत्तम कार्य करता है। इस शारीरिक व्यापारकी न्यूनताका परिणाम अन्त्र पर होनेपर अन्त्र बिल्कुल अशक्त होजाती है। फिर कोष्ठबद्धता, मलमें सुपारीके सदृश गाँठें होजाना, गाँठोंको बाहर निकालनेकी शक्ति अन्त्रमें न रहना, उदरमें अशक्ति और दाह आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं, उस पर पहले स्नेहन करा फिर गंधक रसायनका उपयोग करना चाहिये।

उपदंशकी जीर्णावस्थामें सांधोंमें शोथ, दाँतोंमें से रक्तस्राव, सारे शरीरमें स्थान-स्थान पर गाँठें होना, रक्तवाहिनियाँ मोटी-मोटी होजाना, खड़े रहनेकी शक्ति नष्ट होना, हाथ-पैरोंमें कम्प होना, कभी-कभी

विकारकी तीव्रता बढ़नेसे जमीन पर पड़े रहना, छाती और सर्वाङ्गमें शूल चलना, हृदयमें खुजली चलना, सूक्ष्म-सूक्ष्म पिटिका निकलना आदि लक्षण होने पर गंधक रसायन उत्तम काम करता है।

पूयशुक्रकी जीर्णावस्थामें सर्वाङ्गमें दाह, अण्डकोप बढ़कर उसमें पीड़ा होना, उस पर थोड़ा शोथ आजाना, मूत्रोत्सर्ग करने पर मूत्रप्रसेक नलिकामें दाह होना, मूत्राशयके मुख या मूत्रप्रसेक नलिका पर दबानेसे पीड़ा होना, उसमेंसे थोड़ा-थोड़ा पूय निकलना आदि लक्षण होते है। इस पर गधक रसायनने अनेक वार उत्तम लाभ पहुँचाया है। कभी पूयशुक्रके विपसे नेत्रोंमें शूल, समग्र शरीरमें शूल और दृष्टिनाश आदि उपद्रव उत्पन्न होते है। उसे भी यह रसायन दूर करता है। ऐसी तीव्रावस्थामें गन्धक रसायनके साथ खखसाके फूल ६-६ माशे और प्रवालपिष्टी १-१ रत्ती मिलाकर दिनमे ३ समय देते रहने से लाभ त्वरित होता है। वाह्य उपचार भी करते रहना चाहिये।

अबुद्ध जन स्त्रियोंके पूयशुक्र और प्रदर, दोनोंको अज्ञानके हेतुसे एकही मान लेता है, परन्तु पूयशुक्र मूत्रवाहिनी और मूत्राशयका रोग है, तथा प्रदर अपत्यमार्ग, गर्भाशय और बीजाशयका रोग है। पूयशुक्रमें स्राव मूत्रमार्गसे और प्रदरमें स्राव अपत्यमार्गसे होता है। पूयशुक्र रोग जीर्ण होनेपर उसके कीटाणु अपत्यमार्ग द्वारा गर्भाशयमें पहुँचकर उसे भी दूपित करते है। फिर गर्भाशयमेंसे भी पूयस्राव होने लगता है। परन्तु इस स्राव और प्रदरके स्रावसे अन्तर अत्यधिक है। यह स्राव पीला, दुर्गन्धयुक्त और दाहक होता है। साथमें जलन, सर्वाङ्गमे दाह, शिथिलता, हाथ-पैर टूटना, आदि पित्त-प्रधान लक्षण होते है। इस प्रकारके विकारमे यह उत्तम उपयोगी है।

अर्शरोगके अनेक हेतु है। यदि कोष्ठबद्धतासे उत्पन्न हो, तो आरोग्यवर्द्धनी हितावह है। बड़ी अन्त्र के कुण्डलिका-भाग (Sigmoid) और उण्डुक (Caecum) मे शिथिलता आनेसे त्रिवली पर दबाव आकर अर्श उत्पन्न हुए हो, उसकी किनारी सूज गई हो, गरम-गरम रक्त गिरता हो, कुण्डलिका और उण्डुकमें दाह, व्याकुलता आदि लक्षण हो, तो इसका उत्तम उपयोग होनेके अनेक उदाहरण मिले है।

अर्श रोग आनुवंशिक भी होता है। इस तरह अन्य रोगोंमें उपद्रवरूपसे होजाता है। किसी-किसी रोगीमें अर्श, कास और श्वास; किसी-किसीमें अर्श और संग्रहणी, एव कितनेक रोगियोमें अर्श और अपस्मार, इस तरह विकारोंके द्वन्द्व अर्थात् एक शमन होने पर दूसरा

घटमाल सदृश क्रमशः होता और मिटता रहता है। इन द्वन्द्वों पर गन्धक रसायन अच्छा लाभ पहुँचाता है।

नेत्रकी किनारी लाल-लाल होजाना, भीतरसे तीक्ष्ण बाष्प निकलना, नेत्रमें अतिशय खुजली चलना, दाह, फिर पूयाभिष्यंद भी होजाता है। यदि इसमें मूल कारण, पारदका अधिक सेवन अथवा सुजाक या उपदंश विष हो, तो इसका उपयोग करना चाहिये।

नासाव्रण शुष्क और दाहयुक्त, उपजिह्व-अधिजिह्वक दाहयुक्त, छोटे बच्चोंको होनेवाला तालुकण्टक, तालुके भीतर छिद्र होजाना, कण्ठमें पिटिका होजानेसे शुष्क कास चलना और दाह होना आदि विकार होनेपर गन्धक रसायनका उत्तम उपयोग होता है।

जीर्ण नाड़ीव्रण, जीर्ण अस्थिव्रण, जीर्ण मांसगत व्रण, इन रोगोंमें पूय कम हो, परन्तु दाहयुक्त लसीका स्राव, व्रण स्थान पर भयंकर जलन, वह इतनी अधिक कि रात-दिन व्याकुलता बनी रहना, व्रणके प्रत्येक किनारेकी ओर मिर्च लगाने के सदृश जलन आदि लक्षण होनेपर इससे अति सत्वर लाभ होने के उदाहरण मिले हैं।

दंतव्रण (Pyorrhoea) या दन्त पुट-पुटमें मसूढ़ेमें जलन, मसूढ़े पर जरा-सा धक्का लगने पर रक्तस्राव होना, दाहयुक्त पूय निकलना, फिर यही विकार जीर्ण होनेपर अग्निमान्द्य, छर्दि, शूल, विष अन्त्रमें जानेपर ग्रहणी, अतिसार, यकृत् आदि इन्द्रियोंके चिरकारी विकार होजाना, पश्चात् इनसे दूष्योदर होना, जिससे घबराहट, मूत्र बिल्कुल कम होजाना, मूत्र लाल होजाना, सर्वाङ्गमें दाह आदि लक्षण होते हैं। उस पर यह उत्तम कार्य करता है। अन्य प्रकारके दूष्योदरमें भी यदि पित्त लक्षण अधिक हो, तो इसका अप्रतिम उपयोग होता है।

विशेष किसी भी प्रकारके स्पष्ट कारण न होने पर रोगी दिन-प्रति-दिन निर्बल होता जाता है, और बलमांसविहीनत्वकी प्राप्ति होती है। अन्तरेन्द्रियमें जो-जो अवयवसमूह अशक्त होते जाते हैं; उन-उन अवयवसमूहोंके विकार अर्थात् पित्तप्रधान विकार प्रतीत होने लगते हैं। कितनी ही सूक्ष्म जाँच की, तो भी रोगका विशिष्ट कारण नहीं मिलता। असात्म्येन्द्रियार्थसंयोग समान सामान्य कारण मिलता है। ऐसे रोगमें उत्पन्न हुए बलमांसविहीनत्व, नष्ट हुए वीर्य, लुप्त हुई शक्ति, मन्द हुई अग्नि, शिथिल हुए स्नायु, इन सबको समस्थितिमें लाकर योग्य कार्यक्षम बनाने की शक्ति गन्धक रसायन और षड्गुण-बलिजारित रससिंदूरमें है। रससिंदूर योग्य रोगीकी अवस्था

रससिंदूरके विवेचनमें दी है। पित्तप्रधान लक्षण पर गन्धक रसायन और कफ-प्रधान पर रससिंदूर लाभदायक है।

(औ० गु० ध० शा० के आधार से)

पथ्यापथ्य—शक्कर, साठी चावल, गोघृत, केला, सैंधा नमक, आमके पक्के मधुर फल, दालचीनी, पुराना शहद, मांस, नागरवेलका पान, सुपारी-कत्था आदि पथ्य है। नमक, खट्टे पदार्थ, शाक-भाजी, सब प्रकारकी दाल, चाय, काफी, तैल, गुड़, बीड़ी या सिगरेट पीना, स्त्री-प्रसंग, सवारी पर बैठना और कसरत अपथ्य हैं। अग्निसेवन और सूर्यके तापसे होसके उतना बचना चाहिये।

सूचना—कदाचित् शक्तिसे अधिक परिमाणमें गन्धक रसायनका सेवन होगा, तो उदरमें मरोडे होजायेंगे। इसलिये थोड़े परिमाणमें ज्यादा दिन तक लेना अच्छा है, अथवा मात्रा धीरे-धीरे बढ़ानी चाहिये।

दूसरी विधि—एक सेर गन्धक और दो सेर नमक मिलाकर ८ घण्टे तक खरल करें। शामको २४ सेर जल मिलाकर रख दें। सुबह सम्हालकर ऊपरसे जल निकाल डाले। शेप गन्धकमें २ सेर नमक मिला पुनः ८ घण्टे घुटाई कर २४ सेर पानीमें भिगोदे। सुबह जल निकाल डालें। इस तरह २१ दिन तक घुटाई करें। यह गन्धक सफेद रंगका होजाता है। २१ बार खरल होजानेके पश्चात् गन्धकको साफ जलसे २—४ बार धो, धूपमें सुखाकर शीशीमें भर लेवें। (आ०नि०मा०)

मात्रा—१ से २ रत्ती दूध, घी अथवा शहदके साथ देवें।

उपयोग—यह रसायन पुराना सुजाक, पुराना उपदंश, रक्त-विकार, कुष्ठ तथा उपदंशजनित नेत्रोंकी लाली और व्रण रोग आदि उपद्रवोंको दूर करता है।

सूचना—गन्धकमेंसे जल निकालनेके समय थोड़ा जल रहे तब एक खादीका छोटा टुकड़ा भिगो, आधा भगोनेमें और आधा बाहर रहे ऐसे रख, भगोनेको टेढ़ा कर देनेसे जल धीरे-धीरे सब निकल जाता है। बिना कपड़ेसे निकालनेमें बहुत गन्धक चला जाता है। अथवा रबरकी नलीसे जलको सम्हाल कर निकाल देना चाहिये।

इस प्रयोगमें जलको निम्नानुसार साइफोन (Siphon) की विधिसे निकालनेमें विशेष सुविधा रहती है:—

कॉच, रबर, टिन या मिट्टी आदिकी एक नली '1' इस तरह मुड़ी हुई लेवे। इस नलीको उलटी कर, जलसे मुँह-मुँह भर देवे। फिर नलीको सीधी कर छोटे भागके सिरेको जलपात्रमें रख देनेसे नलीके सिरे तकका सब जल

क्रमशः आकर्षित होकर बाहर रहे हुए सिरे द्वारा निकल जाता है।

नलीके समान रुई या कपडेकी भिगोई हुई पट्टीसे जल बाहर निकालनेमे देर बहुत लगती है।

तीसरी विधि—पाँच सेर गोदुग्धको एक भगोनेमें डालकर मुँह पर कपडा बाँधे। ऊपर एकसेर गन्धकका चूर्ण फैलादे। भगोनेके किनारेपर लकड़ी या केलूका टुकड़ा रखे, पश्चात् गन्धकके ऊपर एक तवा रखे, और गेहूँका आटा जलसे गूँधकर सधि बन्द करे। फिर तवे पर कोयलेकी अग्नि रखनेसे गन्धक पिघलकर भगोने में गिर जाता है। इस रीतिसे ७ वार शोधन करे। पश्चात् ईखका रस, गिलोयका रस, भाँगरेका रस, त्रिफलाका क्वाथ, त्रिकटुका क्वाथ, चातुर्जातका क्वाथ प्रत्येककी ३-३ भावना देकर २-२ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवे।

सूचना—शोधनके लिये वार-बार दूध नया ले। सब दूधका दही बनाकर घी निकालले। यह घी कण्डु आदि त्वचा रोगपर मालिशमें उपयोगी है।

मात्रा—२ से ४ रत्ती तक दिनमें दो वार, अनुपान और उपयोग प्रथम विधिमें लिखे अनुसार। ६ मासके बच्चेको १ चावल बराबर और, ३ वर्ष पर्यन्तके बालकके लिये १ रत्ती तक देवे। पहली विधिकी अपेक्षा रसका शोधन अधिक होनेसे यह सत्वर दाह शमन करता है।

(८४) उन्मादगजकेसरी रस।

बनावट—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक और शुद्ध मैनसिल १-१ तोला और धतूरेके शुद्ध बीज ३ तोले लेवे। सबको यथाविधि मिला बच और रास्नाके क्वाथकी ७-७ भावना देकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ अथवा सूखा चूर्ण बना लेवे। रसराजसुन्दरमें रास्नाके स्थानमें ब्राह्मीकी भावना लिखी है। शेष पाठ समान है। (यो० र०)

मात्रा—१ से ४ रत्ती तक दिनमें २ वार मक्खन-मिश्री अथवा घृत और सफेद मिर्चके साथ देवे।

उपयोग—यह रसायन उन्माद, अपस्मार, भूतोन्माद और ज्वर आदिको दूर करता है, इन्द्रिय, मन और बुद्धिको प्रसन्न तथा सब धातुओंकी विकृतिको शमन करके प्रकृति साम्य बनाता है। जब वातप्रकोप अधिक हो; शरीर रुक्ष, कृश, शुष्क होगया हो; त्वचाका रंग कुछ श्याम प्रतीत होता हो, भोजन जीर्ण होनेपर व्याधिका बल बढ़ता हो; उसपर और अपस्मारमें यह रसायन लाभदायक है। इन तीव्र लक्षणोंमें रास्नायुक्त भावना लाभदायक है, और जिसको ज्वर, दाह, निद्रानाश और बुद्धिविकृति विशेषांशमें हों; वातप्रकोप आदि चिह्न

सामान्य हो, उसके लिये ब्राह्मीकी भावना हितकर है।

भूतोन्माद, जिसमें पहलेके प्राप्त ज्ञानकी स्मृति आनेपर विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान देना या वार्तालाप करना, उन्मादके वेगका समय अनिश्चित रहना, और कफोन्माद, जिसमें अरुचि, निस्तेजता, तन्द्रा, अतिनिद्रा, वमन, लालास्राव आदि लक्षण हों, इन दोनों प्रकारके उन्मादमें ब्राह्मीकी भावनावाला रसायन अच्छा काम देता है। एवं मानसिक चिन्ताजनित और पित्तप्रधान उन्माद जिसमें क्रोध, निद्रानाश, रक्तवर्ण, दौड़ादौड़ी या मारपीट करना आदि लक्षण हों, उसमें यह रसायन बहुत थोडी मात्रामें ब्राह्मीघृत या ताजे दूधके साथ देना चाहिये। अथवा ताप्यादि लोहका सेवन कराना चाहिये।

सूचना—भोजन पथ्य दें। सूर्यके ताप या अग्निका सेवन, धूम्रपान और मानसिक चिन्ताको छुड़ा दें, तथा मनको प्रसन्न रखनेका प्रयत्न करें।

(८५) भूतभैरव रस।

बनावट—शुद्ध पारद, शुद्ध तबकिया हरताल, शुद्ध मैनसिल, लोह भस्म, शुद्ध काला सुरमा, और ताम्र भस्म प्रत्येक १-१ तोला और शुद्ध गन्धक १२ तोले लेवें। पहले पारद-गन्धक मिलाकर कज्जली करें, फिर और ओषधियाँ मिला मनुष्य मूत्र, गोमूत्र या बकरेके मूत्रमें दही जैसा प्रवाही बनाकर कड़ाहीमें डाल मन्दाग्निपर मूत्रको सुखाकर ओषधिको पका लेवें। (यो० र०)

मात्रा—२ से ४ रत्ती तक दिनमें २ बार गोघृतमें मिलाकर चटावें। आवश्यकता हो, तो थोड़ा शहद मिला देवें, और ऊपरसे त्रिकटु (सोंठ, मिर्च और पीपल)का क्वाथ बना, हींग और घी मिलाकर (अथवा छोंककर) पिलावें। अथवा धतूरेके शुद्ध ५ बीजोंके साथ खिलाकर ऊपरसे आध छटांक घी पिलावें। धतूरेके बीज वाला अनुपान अन्त्र दोषवाले स्थूल रोगीके लिये विशेष हितकर है।

उपयोग—भूतभैरव रससे भूतोन्माद, मानसिक चिन्ताजन्य उन्माद, अपस्मार, हिस्टीरिया आदि वातवाहिनियोंसे सम्बन्धवाले सब रोग शान्त होते हैं। इस औषधसे मलावरोध दूर होता है, निद्रा आने लगती है, तथा थोड़े ही दिनोंमें उन्माद दूर होजाता है।

(८६) वातकुलान्तक रस।

बनावट—कस्तूरी, शुद्ध मैनसिल, नागकेशर, बहेड़ा, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, जायफल, इलायची और लौंग २-२ तोले लें। पहले पारद गन्धककी कज्जली कर फिर शेष ओषधियोंका कपड़छन चूर्ण

मिला जल (ब्राह्मीके क्वाथ) में खरल करके २-२ रत्तीकी गोलियाँ बनावे ।
(रमे० सा० सं०)

मात्रा—१-१ गोली दिनमें २ या ३ बार जटामांसीके क्वाथसे दें ।

उपयोग—वातकुलान्तक रस महाघोर अपस्मार, हिस्टीरिया, मूर्च्छा, आक्षेपयुक्त विविध वातरोग, निद्रानाश, प्रबल हिक्का, धनुर्वात, सूतिकारोगमें आक्षेप आदि सबको दूर करता है, और मनको प्रसन्न बनाता है । एवं सन्निपात, न्युमोनिया आदि रोगोंमें बुद्धिभ्रंश, मूर्च्छा, कम्प, आक्षेप, प्रलाप आदि उपद्रवोंको शमन कर निद्रा लानेके लिये भी यह रसायन हितकर है ।

हिस्टीरियामें निद्रानाशको दूर करनेके लिये यह महौषध है । मानसिक विकृतिजन्य अपस्मारमें अभ्रक भस्म ½-½ रत्ती मिलाते रहनेसे त्वरित लाभ होता है । मानसिक व्याघातजन्य मूर्च्छामें भी अभ्रक भस्मके साथ देना विशेष हितकर माना गया है । एवं बालकोंके दाँत आनेके समय तीव्र आक्षेप (रक्ताधिक्य न हो, तो) कण्ठ, आमाशय, अन्त्र, मूत्रनलिका, पित्ताशय, पित्तनलिका, महाप्राचीरा पेशी (Diaphragm) आदिके आक्षेपका यह रसायन तत्काल शमन करता है । धनुर्वात बालकम्प, हृदय कम्प आदि वातवाहिनियोंकी विकृति पर यह अति हितावह है ।

(८७) निद्रोदय रस ।

बनावट—रससिंदूर, वंशलोचन और अफीम, तीनों ६-६ माशे, धायके फूल और आँवले २-२ तोले लेवे । सबको मिलाकर भाँगके रस की तीन भावना देवें । फिर बीज निकाली हुई मुनक्का १२ तोले मिलाकर १-१ माशेकी गोलियाँ बाँधे । (र० यो० सा०)

मात्रा—१-१ गोली सायंकालको दूधके साथ दे ।

उपयोग—जब किसी रोगमें निद्रा न आती हो, तब इस रसायन के सेवन से शान्ति निद्रा आजाती है, शुक्रस्तम्भन होता है; तथा बल, वर्ण और तेज आदिकी वृद्धि होती है ।

सूचना—उन्माद रोगी निद्रा को लानेके लिये यह रसायन देना हो, तो जिनके नेत्रमें अधिक लाली एवं बद्धकोष्ठ न हो, ऐसे रोगियोंको ही देना चाहिये।

(८८) अमर सुन्दरी वटी ।

बनावट—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोह भस्म, शुद्ध वच्छनाग, रेणुक बीज (समालु के बीज), सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, पीपलामूल, चित्रकमूल, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नाग-

केशर, वायविडंग, अकलकरा और नागरमोथा, सब १-१ तोला लें। पारद-गन्धककी कज्जली करके लोह भस्म और वच्छनाग मिलावें। फिर शेष ओषधियोंका बारीक चूर्ण और ४० तोले गुड़ मिलाकर चनेके बराबर गोलियाँ बना लेवें। गुड़की चाशनीमें चूर्ण मिला लेनेसे गोलियाँ अच्छी बनती हैं। (नि० र०)

मात्रा—१ से ३ गोली दिन में २ से ३ बार जलके साथ देवे।

उपयोग—यह ओषधि अपस्मार, सन्निपात, श्वास, कास, अर्श और सब प्रकारके वात रोग को दूर करती है। स्त्री, बालक, वृद्ध आदि को अजीर्ण ज्वर, कफप्रधान सन्निपात आदिमें निर्भयतापूर्वक दी जाती है को इस ओषधि का अजमेर जिले में अधिक उपयोग होता है। हमने भी अनेक समय उपयोग करके लाभ उठाया है।

दूसरी विधि—इस रसायनका नाम अनेक ग्रन्थकारोंने विजय-भैरव रस रखा है, ऐसा रसयोगसागर पर से जाना जाता है। निघण्टु-रत्नाकर के पाठमें पीपलामूल और दालचीनी है। उस स्थानपर र० यो० सा० में अभ्रक भस्म और ताम्र भस्म हैं। शेष पाठ समान है।

अनुपान—कफप्रधान रोगों पर अदरखके रसके साथ और सन्निपातमें तुलसी के रस या अदरखके रसके साथ देवे।

उपयोग—कास, श्वास, क्षय, गुल्म, प्रमेह, विषमज्वर, सूतिका रोग, ग्रहणी, मन्दाग्नि, शूल, पाण्डु और हाथ-पैरोंके रोगों पर यह गुटिका प्रशस्त है। अभ्रक भस्म और ताम्र भस्मके योग से यह रसायन आशु फलप्रद बनता है।

अभ्रक और ताम्र मिलानेसे कफयुक्त कास, कफयुक्त श्वास, परिणामशूल, प्लीहावृद्धि यकृद्वृद्धि, पाण्डु, विषमज्वर, नूतन अजीर्ण-ज्वर, तृतीयक ज्वर, जीर्ण ज्वर, सूतिकाज्वर, सूतिकाके वात और कफ-प्रकोप, दाँत भिचना, श्वास, कास, अतिसार, ज्वर, अरुचि सन्निपात, प्रलाप आदि उपद्रव, कफप्रधान सन्निपात, कफगुल्म, वातगुल्म कफपित्त-गुल्म, यकृद्विकारयुक्त संग्रहणी रोग, पाण्डु, हाथ-पैरकी नसें खिंचना, चक्कर, वातवृद्धि, अर्श और अपस्मार आदि रोगों को सत्वर दूर करता है।

(८६) महावातविध्वंसन रस।

बनावट—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, नाग भस्म, वंगभस्म, लोह भस्म, ताम्र भस्म, अभ्रक भस्म, पीपल, सोहागे का फूला, कालीमिर्च, सोंठ, ये ११ ओषधियाँ १-१ तोला तथा शुद्ध वच्छनाग ४॥ तोले लेवे। पहले कज्जली करके भस्म मिलावे। पश्चात् शेष ओषधियों का कपड़छान चूर्ण मिला त्रिकटुका क्वाथ, त्रिफलाका क्वाथ, चित्रकमूलका क्वाथ,

भाँगरेका स्वरस, कूठका क्वाथ, निर्गुण्डी के पत्तोंका स्वरस, आकका दूध, आँवले का स्वरस, अदरखका रस और नीबू का रस, सबकी ३-३ भावना देकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बनावें । (र० चं०)

मात्रा—१ से २ गोली दिन में ३ बार तीव्र वात रोग पर अदरख के रस, भाँगरे के रस या शहद के साथ और आमवात पर अरंडी के तैल, घी या निवाये जल के साथ दें ।

उपयोग—यह रसायन वातविकार, शूल, कफप्रकोपसे होनेवाले रोग, ग्रहणी, सन्निपात, मूढता, अपस्मार, मन्दाग्नि, शरीर शीतल होना, पित्तोदर, प्लीहावृद्धि, कुष्ठ, अर्श, स्त्रियोंके गर्भाशयकी विकृतिसे होने वाले रोग, सबको नष्ट करता है।

वातविध्वंसन रसायन वातवृद्धि और वातवाहिनियों के क्षोभ को शमन करनेवाली उत्तम शामक ओषधि है। एवं इसमें शूलघ्न गुण भी विशेषांश में है। यह रसायन वातवाहिनियोंके क्षोभमें उपयोगी होनेसे अपतानक, अपतन्त्रक, आक्षेपक और तीव्र वेगवाले आशुकारी पक्षा-घातमें वातवृद्धिके लक्षण अधिक होने पर इसके सेवनसे वातप्रकोपका शमन होकर वातसाम्य प्रस्थापित होता है। किसी भी निमित्त कारणसे उत्पन्न किसी भी रोग में वातवृद्धि या वातवाहिनियोंमें क्षोभ होने पर तीव्रावस्थामें वातविध्वंसन उपयोगमें आता है। केवल वातविकृति होने पर यह दिया जाता है, परन्तु वातपित्तात्मक दुष्टि हो, तो सूत-शेखर रस देना चाहिये। यह इन दोनो में अन्तर है।

वातवाहिनियोंके कार्यमें किसी कारणसे प्रतिबन्ध होने पर वातक्षोभ होता है। फिर किसी भी अवयवमें शूल निकलता है उस पर यह रस दिया जाता है। यद्यपि आमवात और सन्धिवातकी जीर्णा-वस्थामें तो योगराज गूगल और गोक्षुरादि गूगल हितकर हैं, तथापि जब बिच्छूके काटनेके समान अत्यन्त तीव्र वेदना, शोथ-स्थानमें भयंकर वेदना, शूल, बेचैनी, प्रलाप आदि लक्षण हो, तब आमशोषक और वेदनाशामक, ये दोनो कार्य इस महावातविध्वंसनके सेवनसे होते हैं। रोगीको थोड़े ही समयमें बहुत लाभ होजाता है। आमवातकी तीव्रा-वस्थामें यह अप्रतिम ओषधि है।

मानसिक रोगोंमें भी वातक्षोभ होकर वेदना होती है। अप-स्मार, उन्माद, मनोव्याघात आदि विकारोंमें होनेवाली वेदना स्वतः संवेदनाजन्य है। इन रोगो पर विशेषतः द्राक्षारिष्ट या अभ्रक-प्रधान ओषधि दीजाती है। किन्तु जो शुद्ध शारीरिक दोषोसे, विशेषतः वात-

दुष्टिसे उत्पन्न होता है, उस पर इस रसायनका कार्य होता है। इससे वातप्रकोप दूर होकर वातसाम्य प्रस्थापित होता है। इसी हेतुसे किसी भी प्रकारके शूलमें इसका उत्तम उपयोग होता है। स्थानभेद और दूष्यभेदसे अनुपानभेद कर लेना चाहिये।

केवल वातक्षोभसे शिरदर्द होता हो, वह अति त्रासदायक होता है। उस समय व्याकुलता बनी रहती है, शरीरमें कील गाड़नेके सदृश वेदना होती है, रोगी गला इधर-उधर फिराता रहता है, बिल्कुल चैन नहीं पड़ता। भलते-भलते विचार आते रहना, विशेषतः मस्तिष्ककी दाहिनी ओरमें अतिशय व्यथा होना आदि लक्षण होते हैं। इस व्यथाके मारे रोगी शिर पीटता है, और रो देता है। इस तरह कुछ समय तक दर्द होकर स्वयमेव कम होजाता है, अर्थात् वेदना सहन होसके उतनी होती है। फिर पहलेके समान तीव्र वेदना होने लगती है। इस तरह बार-बार आक्षेपसदृश तीव्रवेग उत्पन्न होता रहता है। ऐसे शीर्षशूल पर वातविध्वंसन रस लाभदायक है।

शीर्षशूलके समान कुक्षिशूल, उरःशूल, पार्श्वशूल, इनमें भी अकस्मात् तीव्र वेदना होने लगती है। फिर कुछ समयके लिये वेदना कम होकर रोगीको अच्छा लगता है। पुनः शीर्षशूल सदृश तीव्र असह्य वेदना होजाती है, छुरा मारनेके सदृश दर्द होता है जिससे रोगी रोने लगता है। फिर वेदना शमन होजाती है। इस प्रकारके रोगों पर वातविध्वसन रस उचित अनुपानके साथ देना चाहिये।

हृदयक शूलमें उक्त प्रकारके आक्षेप सदृश वेदना होने पर भी यही रसायन देना चाहिये। परन्तु जब तीव्र वेदना हृदयमेंसे निकल बांये हाथकी ओर फैलती हो, और साथमें घबराहट, प्रस्वेद आदि लक्षण प्रतीत होते हैं, तब यह नहीं दिया जाता। (स्वल्प मात्रामें सूतराज रस अथवा मुक्ता या प्रवालप्रधान शामक ओषधि देनी चाहिये)। यदि वातक्षोभसे छाती या पीठमें शूल निकलता है, तो महावातविध्वसनका उपयोग करना चाहिये। इस तरह फुफ्फुसप्रदाहके प्रारम्भमें छातीमें शूल चलता हो और वेदना वातक्षोभसे होती हो, वेदनाके साथ ज्वर और शोथ मर्यादामें हो, उसपर भी यह रस देना चाहिये।

उदरशूल केवल वातक्षोभसे होने पर वातविध्वंसन रस उपयोगी है। उदरमें पीड़ा, यह विकार अति चमत्कारी है, इसमें उदरके भीतर विविध अवयव, उनकी क्रिया और उनमें उत्पन्न विकार, तीनोंका सम्बन्ध रहता है। इस हेतुसे इसके कारणके निर्णयमें अति त्रास

होता है। उदरपरीक्षा करनेमें पचनेन्द्रियके विकार; मूत्रपिण्ड, मूत्रमार्ग या मूत्राशयका विकार, अन्त्रविकृति और उसमें शल्य तथा सर्व कोष्ठ में व्यापक वातवाहिनियोंमें विकृति, सगर्भा स्त्री रोगिणी होने पर गर्भाशय विकार, सबका विचार करना पड़ता है। इनमें वातक्षोभज शूल हो, तो इसका प्रयोग किया जाता है। यह शूल भी आक्षेप सदृश बड़े जोरोंसे उत्पन्न होता है, और उतने ही वेगसे शमन होता है।

श्लैष्मिक और श्वसनक सन्निपातकी प्रथमावस्थामें यदि कफविकृति सामान्य और वातप्रकोप अधिक हो, तो वातविध्वंसन रस लाभदायक है। परन्तु जब गलेमें कफकी घरघर आवाज होती रहती है तब इस रसायनसे अधिक लाभ नहीं होता।

आन्त्रिक सन्निपात (मधुरा) ग्रन्थिक सन्निपात (प्लेग) और सन्धिक सन्निपातमें बेहोशी, कण्ठ चलाते रहना, प्रलाप, चित्तविभ्रम, नेत्र भरे हुए भासना, जिह्वा शुष्क, (क्वचित् जिह्वा काली होजाती है), जिह्वा पर कांटे, ऐसी वातक्षोभयुक्त अवस्थामें वातविध्वंसन रसके समान निश्चयपूर्वक लाभ करनेवाली दूसरी औषधि नहीं है।

प्रसूता स्त्रियोंके ज्वर न होने पर भी मक्कलशूल होता है; जिसमें भयकर शिरदर्द, वस्ति, कोष्ठ और गर्भाशयमें अति तीव्र शूल या आक्षेपके समान वेदना, वेदना गर्भाशयमेंसे निकलकर वस्ति और उदरमें फैल जाना आदि लक्षण होते हैं। इस पर यह रसायन अति उत्तम लाभदायक है।

महावातविध्वंसनका कार्य वातवाहिनियाँ, वातवहमण्डल और वातस्थानों पर क्षोभनाशक होता है। यह रसायन वातदोष तथा मांस और अस्थि, इन दूष्यों पर लाभ पहुँचाता है। इसमें कज्जली रसायन कीटाणुनाशक और योगवाही है। नाग, वंग और लोह शक्तिवर्द्धक और बल्यत्वके हेतुसे वातशामक है। ताम्र आक्षेपनाशक और वातशामक है। अभ्रक भस्म वातवाहिनियों पर बल्य और शामक असर पहुँचाती है। सोहागा कीटाणुनाशक और शामक है, तथा वच्छनाग अवसादक, क्षोभनाशक और शूलघ्न है। (औ० गु० ध० शा० के आधार से)

गृध्रसी रोग (Sciatica)को डाक्टरोंमें वातनाड़ीशूल(Neuralgia) के अन्तर्गत माना है। इस रोगके प्रारम्भमें बेचैनी, पैरोंमें झनझनाहट, नाड़ियोंका खिचाव आदि होता है। फिर नितम्ब प्रदेश, जंघाके सामने या पीछे या बाहर शूल उत्पन्न होता है। इस रोगमें यन्त्रणा सह्य होती है। निद्रा नहीं आती, इस स्थितिमें कितनेक सप्ताह या

श्वास निकल जाते है। इस रोगमें किसीको ज्वर आजाता है, ज्वर १०२-१०३ या १०५ डिग्री तक बढ़ जाता है। फिर वमन, घबराहट, भयंकर शिरदर्द, छातीमें वेदना और वेहोसी आदि लक्षण उपस्थित होते है। ऐसी अवस्थामे महावातविध्वंसन रस ½ रत्ती, आमके मुरब्बा ३ माशे और भांगरेका रस १ तोला मिलाकर उसमेसे थोड़ा-थोड़ा चाटण ३-४ वार देवे। इस तरह दो वार चाटण तैयार करके देते रहे। तथा विषगर्भ तैल, तार्पिन तैल और कपूर मिलाकर मालिश करते रहने से वेदना सत्वर शमन हो जाती है।

(९०) वातगजांकुश रस।

बनावट—रससिंदूर, लोहभस्म, सुवर्णमाक्षिक भस्म, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हरताल, शुद्ध वच्छनाग, बड़ी हरड़, काकड़ासींगी, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, अरणीकी छाल और सोहागेके फूलेको सम भाग लेवें। फिर यथाविधि मिला गोरखमुण्डी और निर्गुण्डीके पत्तोके रस की १-१ भावना देकर २-२ रत्तीकी गोलियाँ बनावे। (रसे० सा० सं०)

मात्रा—१-१ गोली दिनमें २ वार पीपलके चूर्णके साथ लेकर ऊपर मजीठ या हरड़का काढ़ा पीवे। अथवा अनुपान रूपसे रास्ना, गिलोय, देवदारु, सोंठ और अरंडीकी जड़का क्वाथ थोड़ा गूगल मिला निवाया लेवे।

उपयोग—यह रसायन सब प्रकारके वातरोगोंको दूर करता है। त्रिदोषज भयकर वातश्लैष्मात्मक गृध्रसी रोगको ७ दिनमें ही दूर करता है। एवं क्रोष्टुशीर्षक (वातरक्तात्मक गोड़ेकी वादी), अपबाहुक (वातश्लेष्मात्मक वाहुकी वादी), ऊरुस्तंभ (श्लेष्म, मेद और वात-प्रकोपसे उत्पन्न आढ्यवात), हनुस्तंभ, मन्यास्तभ (वातकफात्मक कंठ की वादी), पक्षाघात (कफविकृति सहित उत्पन्न होनेवाला अर्धाङ्गवात), इन सबके लिये यह अत्युत्तम औषधि है।

वातरोगमें जब कफ या आमसह कफका सम्बन्ध हो, तब नूतन और जीर्णावस्था, दोनोमें यह रसायन लाभ पहुँचाता है। केवल वात-विकृति पर वातविध्वसन, वातपित्तात्मक विकृति में सूतशेखर, और आमका अधिक सम्बन्ध हो, तो योगराज गूगल उपयोगी है। किन्तु जब कफानुबन्ध हो, तब इस रसायनसे बहुत हित होता है।

(९१) समीरगजकेसरी।

बनावट—शुद्ध हिंगुल, कालीमिर्च, शुद्ध अफीम और शुद्ध कुचिला, इन सबको समभाग मिला, अदरखके रसमें ३ घण्टे खरल

करके मूँगके बराबर गोलियाँ बना लेवे । मूलग्रन्थमें हिंगुल नहीं है; किन्तु हमने गुणवृद्धिके कारण मिलाया है । (र० च०)

मात्रा—२ से ४ गोली नागरवेलके पान या जलके साथ ।

उपयोग—यह रसायन सब प्रकारके जीर्ण वातविकार, आमवात, कटिशूल, जुकाम, अरुचि, उदरशूल, संग्रहणी आदि सब रोगों को दूर करता है, तथा कुब्जता, लँगडापन, सब प्रकारके गृध्रसी रोग, अपबाहुक, शोथ, अपतानक, अपस्मार, विसूचिका (हैजा) आदिको नष्ट करता है । जब नाड़ियोंमें रहे हुए मल, कफ, मेद या आमका शोषण करना हो, वातवाहिनियोंके क्षोभको दूर करना हो, हृदयको उत्तेजना और बल देना हो, तथा मस्तिष्कको शान्त बनाना हो; तब यह रसायन अमृत समान गुणदायी है, किन्तु तीव्र आक्षेप होता हो, तब यह न दें, महावातविध्वंसन रस देना चाहिये ।

जीर्ण जुकाम और नजलामें रस धातु अधिक दूषित होती है; जिससे पीला या सफेद गाढ़ा नासास्राव होता रहता है, तथा विष मस्तिष्कमें चढकर नेत्र और मगजको हानि पहुँचाता है । उसका इस रसायनके सेवनसे निग्रह होजाता है । नये तीव्र प्रकोपमें इसका सेवन नहीं कराना चाहिये, तीव्रता शमन होने पर यह दिया जाता है ।

कीटाणुप्रकोप या अग्निमांद्य और रसशेषाजीर्णमें कच्चा रस शेष रहकर आम बनता है, तब थोडा-थोड़ा आमसहित दस्त होता है । फिर आम आहारविहारके दोषसे कुपित होकर नाडियोंमें जाकर आमवातको उत्पन्न करता है, भयंकर वेदना होती है, और हृदयकी गति शिथिल हो जाती है । उसकी जीर्णावस्थामें समीरगजकेसरी देनेसे दोषका शोषण होकर नाड़ी शुद्ध हो जाती है, तथा शूल, आमातिसार और आमवात भी नष्ट होजाते है ।

सूचना—यदि कोष्ठमें दूषित मल शेष हो, तो उदरशुद्धि करानेके पश्चात् इस औषधका उपयोग करना चाहिये ।

(६२) बृहद् योगराज गुग्गुलु ।

बनावट—सोंठ, पीपल, चव्य, पीपलामूल, चित्रकमूल, भुनी हींग, अजमोद, सरसों, जीरा, कलौंजी, रेणुक बीज, इन्द्रजौ, पाठा, बायविडंग, गजपीपल, कुटकी, अतीस, भारंगी, वच और मूर्वा, ये २० ओषधियाँ एक-एक तोला, त्रिफला ४० तोले, शुद्ध गूगल ६० तोले तथा बंग भस्म, चाँदी भस्म, नाग भस्म, लोह भस्म, अभ्रक भस्म, मंडूर भस्म और रस-सिंदूर, प्रत्येक ४-४ तोले लें । पहले गूगलको जलमें मिला

गरम कर अवलेह जैसा बनाले। फिर काष्ठादि वस्तुओंका कपड़छन चूर्ण डालें। बादमें भस्मों को मिलावे। तत्पश्चात् पत्थरके खरलमें थोड़ा-थोड़ा घी मिलाकर कूटें। मुलायम होजाने पर मटरके समान गोलियाँ बाँधे। (शा० सं०)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २ बार दें।

अनुपान—वातव्याधि में रास्नादि क्वाथ या जल। तीव्र व्याधिमें योगराज गूगल १ से ३ माशेको १ छटांक अरंडीके तेलमें मिला गरम कर, आधसेर गरम दूध और १ छटाँक मिश्री मिलाकर पिलावे। इस अनुपानसे भयंकर वातव्याधि भी एक सप्ताहमें नाश होती है।

पित्तविकारमें काकोल्यादि गणके साथ (काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, मुद्गपर्णी, मेदा, महामेदा, गिलोय, काकड़ासिङ्गी, वंशलोचन, पद्माख, पुण्डरीक, ऋद्धि, वृद्धि, मुनक्का, जीवन्ती और मुलहठी, इनमेंसे मिल सके उतनी औषधियोंके क्वाथके साथ) देवे।

कफविकारमें आरग्वधादि क्वाथ। प्रमेह में दारुहल्दी का क्वाथ। पाण्डुमें गोमूत्र। मेदवृद्धिमें शहद। कुष्ठमें निम्ब पंचांगका क्वाथ या महामंजिष्ठादि अर्क। पीड़ितार्तवमें अशोकारिष्ट या महामंजिष्ठादि अर्क। पूयप्रधान रोगों पर नीमकी अन्तरछाल और निर्गुण्डीमूल या पान का क्वाथ। वातरक्तमें गिलोयका क्वाथ। शूल और शोथ पर पीपलका क्वाथ। चूहेके विष पर पाठेका क्वाथ। नेत्रपीड़ा पर त्रिफलाका क्वाथ। समस्त उदररोग में पुनर्नवादि क्वाथ। इसी तरह अन्य अनुपानों की योजना करें।

उपयोग—यह रसायन सम्पूर्ण वातव्याधि, आमवात, वातरक्त, अर्श, कुष्ठ, संग्रहणी, प्रमेह, नाभिशूल, भगन्दर, उदावर्त्त, क्षय, गुल्म, अपस्मार, श्वास, कास, मन्दाग्नि, अरुचि, उरोग्रह, पुरुषोंके धातुविकार और स्त्रियोंके गर्भाशयके सब दोषोंको दूर करता है। वन्ध्या स्त्रीको पुत्रकी प्राप्ति कराता है।

महायोगराजमें पाचक, अग्निदीपक, वातनाशक, आमदोषघ्न, रसायन, योगवाही और धातु परिपोषक क्रमको नियमित बनानेवाली औषधियाँ होनेसे यह उत्कृष्ट प्रयोग बना है। यह रसायन आमवात, वातरक्त और आमयुक्त रोगोंमें विशेष उपयोगी है। यह आमदोषघ्न औषधियोंमें उच्च कोटिकी औषधि है। जिस-जिस वातविकारमें आमानुबन्ध है उस-उस वातरोग और उससे उत्पन्न अन्य रोगों पर यह बहुत अच्छा कार्यकर है। आमविकारकी दो उपपत्ति आयुर्वेद ने

दी हैं। पहली पाचकाग्निके अबलत्वसे आद्य रस धातु अपक्व रहकर दुष्ट होजाती है। दूसरी अत्यन्त दुष्ट दोषोंके परस्पर मूर्च्छन होने पर भीतरमें जो विष तैयार होता है, उसे भी आम संज्ञा दी है। जिन-जिन रोगोंमें ये आम विष कारणभूत हैं, उन उन रोगोंको आम रोग—आमप्रधान रोग कहते हैं। इस तरह आमकी व्याख्या व्यापक की है। इस प्रकारके सामरोगोंमें यह उत्तम कार्य करता है। इसके सेवनसे पाचक अग्नि सम्यक् कार्य करती है, जिससे संचित आमका पचन और नया आम बननेमें प्रतिबन्ध होता है। इस रीतिसे रोगके मूलको ही यह नष्ट करता है; और दोषदुष्टि (वातादि धातुविकृति) को भी दूर करता है।

मूल संस्कृत ग्रन्थमें इस रसायनका उपयोग सब प्रकारके वातव्याधि पर लिखा है। किन्तु विशेषतः उपयोग जीर्ण आमवातमें ही अच्छा होता है। नूतन आमवातमें भी उपयोगी तो होता है, परन्तु तीक्ष्ण अवस्था निकल जानेके पश्चात् बार-बार संधियोंमें सूजन आना, या रोग बढ़ कर स्नायु मोटे और कमजोर होजाना, नाड़ियाँ आमयुक्त मोटी होजाना, सारे शरीरमें शूल निकलना इत्यादि लक्षण होने पर यह रसायन उत्तम कार्य करता है।

जीर्ण वातव्याधि, जिसमें रसादि धातुकी विकृतिसे उत्पन्न हुए आम सहित वातविकार हो, उसमें इससे अच्छा लाभ होता है। इसका कार्य जहाँ दोष धातुओंके भीतर लय भावको प्राप्त हुआ हो; ऐसे आमवात, पक्षाघात, बार-बार आयाम, आक्षेपक, खल्ली, गृध्रसी, इन सब की जीर्णावस्थामें ही विशेष कार्य होता है।

वातार्शमें शुष्क और रूक्ष मस्से हो, तो इस रसायनके सेवनसे पीड़ाका शमन होता है। सब प्रकारके वातज प्रमेह, जिनमें वातकार्यमें अनियमितता कारण हो, और आमज प्रमेह, जो अपचनके जीर्ण-विकारसे आमसंचय होकर होता है, इन दोनों प्रकारके विविध प्रमेहों के लिये यह गूगल अति हितकर है।

आमज प्रमेहोंका उल्लेख यद्यपि प्राचीन ग्रन्थोंमें नहीं है; तथापि अपचनके जीर्णविकारके पश्चात् आमसंचय होकर प्रमेह हो जानेके अनेक उदाहरण मिले हैं। अधिक शक्कर, अधिक द्विदल धान्य या मैदेका पदार्थ अधिक खानेवालोंको इस प्रकारका प्रमेह होता है। अन्नरसमें जो एक प्रकारकी शक्कर है, उसका परिमाण बढ़ जाने पर उसका संशोषण कर रूपान्तरित करनेका कार्य यकृत्‌का है। परन्तु यकृत्‌में आमविकारसे विकृति होजाने या स्रोतोरोध होजानेसे रूपान्तर

नहीं करा सकता । फिर वह अभिसरणमें मिश्र होनेसे प्रमेहकी उत्पत्ति होजाती है । इस पर यह रसायन अच्छा कार्य करता है ।

कुष्ठरोगमें आमानुबन्ध होने पर यह रसायन लाभदायक है । जीर्ण क्षुद्र कुष्ठ, पामा या कच्छू सदृश क्षुद्र कुष्ठ दबकर वातविकार उत्पन्न होने पर महायोगराज गूगल अति उपयोगी है ।

आमोत्पत्ति, आमसंचय और तज्जन्य वातप्रकोप होकर रक्तमें विकृति होना, यह वातरक्तका हेतु है । वातरक्तकी उत्पत्ति, बिना आमसंचय नहीं होसकती । विशेषतः इस रोगके प्रारम्भमें उदराध्मान, अपचन, आमाशय और अन्त्रमें शूल या वेदना, बारबार मलावरोध फिर अतिसार, मूत्रका परिमाण स्वल्प होजाना, मूत्रमें प्रचुर मात्रामें कठिन पदार्थ जाना, शारीरिक और मानसिक बलका ह्रास, स्वभावमें उग्रता आजाना आदि लक्षण होते हैं । सामान्यतः पचनेन्द्रिय को आमजननकी जीर्ण व्याधि लगी रहती है । इस हेतुसे वातरक्तका रोगी बहुधा सदाके लिये पीड़ित रहता है । वातरक्त और आमवात, दोनों भाई हैं । वातरक्तका प्रारम्भ हाथ या पैरके अँगूठेसे होता है । पहले अँगूठे सूजते हैं । फिर शूलके सदृश वेदना होती है, और सूजन आने लगती है । सब अँगुलियाँ मोटी-मोटी होजाती हैं, एवं क्षुधामान्द्य, अति पिपासा, मूत्र लाल, स्वच्छ और थोड़े परिमाणमें होना, शूल, स्फुरण, कम्प, रुक्षता, काले धब्बे, शोथ, न्यूनाधिक शोथ, वातवाहिनियों और संधिस्थानों का अकड़ना और खिंचना, अत्यंत पीड़ा, ठण्डी और शीतस्पर्श सहन न होना इत्यादि लक्षण होते हैं । इस रोग को महायोगराज गूगल नष्ट करता है । वातरक्तसे उत्पन्न विविध रोगसंकर—शीर्षशूल, मन्यास्तंभ, हनुस्तंभ, इनको भी यह दूर करता है । किन्तु वातरक्तमें जब निद्रा न आना, मांसकोथ (मांस सड़ना) आदि उपद्रव होने लगते हैं, तब इस रसायनका उपयोग नहीं होता । यद्यपि वातरक्तमें अमृता गूगल और कैशोर गूगलका उपयोग भी होता है; तथापि नूतन विकार और तीव्रावस्थामें ये उपयोगी हैं, और महायोगराज गूगल जीर्णावस्थामें विशेष उपयोगी है; यह इनके गुणोंमें अन्तर है ।

कोष्ठस्थ आमसंचयसे नाभिप्रदेशमें बार-बार शूल उत्पन्न होना, मलावरोध, मलसंचय, अरुचि, मल आममिश्रित होना आदि लक्षण होने पर यह रसायन उत्तम लाभदायक है । भगन्दर जो एकमार्गी हो, अधिक गहरा न हो, विशेषतः वातज अथवा आमवातज हो, उस पर गूगलवाली औषध लाभदायक है । नूतन विकार में सप्तविंशतिको

गूगल और जीर्णव्याधि में महायोगराज लाभदायक है। भगन्दरमें जो शतपोनक और शम्बूकावर्त है, वे कठिन हैं। ये बहुधा शस्त्रसाध्य हैं।

उदावर्त रोगमें यदि स्थूलान्त्रमें मलावरोध या अपक्व अन्न शेषसे अवरोध होकर पेटमें आफरा, अपानवायु और शौच-प्रवृत्तिका निरोध, हृदयके समीपमें शूल, मुँहमें पानी आना, बेचैनी, मूत्रप्रवृत्ति न्यून, वस्ति मूत्रसे भर जाना, परन्तु अवरोधक हेतुसे मूत्रोत्सर्ग न होना, श्वास, कास, दाह, प्यास, वमन, ज्वर, हिक्का, तन्द्रा, शिरदर्द, भ्रम, कर्णनाद, सर्वाङ्गमें पीड़ा इत्यादि लक्षण होने पर पहले तीक्ष्ण स्नेह बस्तिसे मलशुद्धि करके महायोगराज गूगल दिया जाय, अथवा एरंड तैलमें मिला कर दिया जाय तो उत्तम कार्य करता है।

वातगुल्ममें विशेषतः आमानुबंध हो, कंठ और मुँहमें शुष्कता, बार-बार शीतज्वर आता हो, अधोवायुकी मन्द प्रवृत्ति, मलसंचय, अन्न-पचन होजाने पर गुल्मके स्थान पर पीड़ा, चल गुल्म, घड़ीमें छोटा घड़ीमें बड़ा होना, रूक्ष, चरपरे और कड़वे पदार्थ सहन न होना, उदर आदिमें वेदना होना, मुँह और कण्ठमें शुष्कता, त्वचाका वर्ण बदल जाना, शीतसह ज्वर आना इत्यादि स्थितिमें महायोगराज गूगल घीके साथ देना चाहिये। इस रोगमें रूक्ष, चरपरे और कड़वे पदार्थ सहन नहीं होते, अतः इनका त्याग करना चाहिये।

मन्दाग्नि और बद्धकोष्टसे सेन्द्रिय विष सचित होकर अनेक व्याधियाँ उत्पन्न होती है। उदरमें विशेषतः बृहदन्त्रमें मल संगृहीत होता है। सेन्द्रिय विष उत्पन्न होकर शरीरमें शोषित होने लगता है। फिर विविध व्याधियाँ निर्माण होती है। इन सबमें कारण कोष्ठस्थ आम विष या घोर अन्न-विष है। इनका भी हेतु अग्निमान्द्य है। इस प्रकारके अग्निमान्द्य पर यह रसायन भाँगरेके रस (६ माशे) के साथ देनेसे अति उत्तम कार्य करता है।

आमवातसे हृदग्रह होता है; तब हृदय जकड़ा-सा भासता है; हृदयको किसीने दृढ बाँध दिया हो, ऐसा भान होता है। इस विकार पर यह रसायन उपयुक्त है।

पक्षाघात आदि जीर्ण विविध वात रोगो पर यह रसायन प्राचीन वृद्ध परम्परानुसार रास्नादि कषाय के साथ दिया जाता है। वात विकार में आमानुबन्ध होनेपर रास्नादि कषाय देने पर निःसंदेह उत्तम कार्य होता है।

आमवातज और वातरक्तज शीर्षशूल, दन्तशूल, कर्णशूल, पृष्ठ-

शूल, सन्धिशूल, अस्थिशूल, मूत्रमार्गमें शूल तथा आमवातज हृद्रोग, और उसमे उत्पन्न श्वास, कास, सब पर यह लाभदायक है।

स्त्रियोंके आर्त्तवशूल, अनार्त्तव, साथमें पाण्डुता, कथन मात्रका मासिक धर्म भयंकर त्रासके साथ आना, कमर, पीठ, पेटमें भयंकर वेदना, सबपर महायोगराज लाभदायक हैं। वातकी अधिकताके कारण गर्भधारणामें प्रतिबन्ध होता हो, तो इस के साथ वगभस्म देना चाहिये। स्त्रियोंके प्रसवकालमें अकस्मात् वदना, बन्द होकर गर्भके बाहर आनेकी क्रिया रुक जानेपर यह गूगल काम देता है। मात्र यह कार्य अप्रत्यक्ष है। अर्थात् किस नियमानुसार होता है, यह निर्णय नहीं होसका।

आन्त्रिक सन्निपातमें यदि सर्वाङ्गमें जड़पना, हाथ-पैरोंकी संधियोंमें शोथ समान भास होना और जड़ता, जीभ मोटी और जड़, कंठ जड़, नेत्रपर परदा-सा आजाना और जड़ होजाना, भाफणी खोलने और बन्द करनेमें परिश्रम, छाती भर जाना और होना, नाड़ीका वेग मन्द, मन्द-मन्द कोष्ठशूल, उदरमें जड़ताके समान लगना, उन्मादके सदृश थोड़ा प्रलाप, क्वचित बेहोशी, मनःस्थिति मन्द होना इत्यादि लक्षणोंकी उत्पत्ति होजाय, तो महायोगराज उत्तम कार्य करता है। (यह आमविप और वातप्रकोप को नष्टकर मधुरा को दूर करता है। इस रोगपर अनुपान रूपसे भांगरेका रस देना चाहिये।)

जहरी चूहेके काटनेसे उसके विषका असर शनैः-शनैः शरीर पर होता है। बहुधा काटनेके पश्चात् १५–१६ वे दिन दंशस्थान पर सूजन आती है। शरीर पर लाल-काले धब्बे, ज्वर, तृषा, उन्माक इत्यादि लक्षण होते हैं। उसमें इसे पाठे अथवा वंध्या कर्कोटकी (ककोड़ा) के मूलके क्वाथके साथ देना चाहिये। ततैया या मधुमक्खिकाके विष पर महायोगराज लगानेमें और खिलानेमें उपयुक्त है।

यह रसायन विशेषतः वातदोष, रस और आम इन दूष्य, तथा यकृत, प्लीहा, अन्त्र, हृदय और संधि स्थानों पर कार्य करता है।

(ओ० गु० ध० शा० के आधार से)

मस्तिष्कमें सेन्द्रियविष पहुँच जानेपर भ्रम (चक्कर) रोग उत्पन्न होता है। चक्कर आनेपर नेत्रके समक्ष अंधकार होजाता है। रोगी खड़ा रहे तो गिर जाता है। कितनेक रोगियों को यह चक्कर ५–१० मिनट तक रहजाता है। इस रोगपर महायोगराज गूगल प्रवालपिष्टी और अमृतासत्व मिलाकर शहदसे दे और ऊपर धमासेका क्वाथ पिलाते

रहने से लाभ हो जाता है।

(६३) एकांगवीर।

बनावट—रससिन्दूर, शुद्ध गन्धक, कांतलोह भस्म, वङ्ग भस्म, नाग भस्म, ताम्र भस्म, अभ्रक भस्म, लोह भस्म, सोंठ, मिर्च, पीपल, इन ११ औषधियोंको समभाग मिला त्रिफला, त्रिकटु, निर्गुण्डी, अदरख, चित्रकमूल, सुहिजनेकी छाल, कूठ, आँवला, कुचिला, आकका मूल, हारसिंगार और अदरख, इन १७ द्रव्योंके क्वाथ या रसकी पृथक्-पृथक् ३-३ भावना देकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बनावे। (नि० र०)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें ३ वार रास्नादि अर्कके साथ दें।

उपयोग—यह रसायन पक्षाघात, अर्दित, धनुर्वात, अर्धाङ्गवात, गृध्रसी विश्वाची, अपबाहुक आदि सब प्रकारके वातरोगोको निःसन्देह दूर करता है। यह रसायन अत्यन्त तीक्ष्ण होनेसे वातप्रधान और वातकफप्रधान विकृतिमें हितकर है। इसमें बृंहण, वातप्रशमन, जीवनीय, रसायन, विषघ्न और कीटाणुनाशक गुण अवस्थित है। वार-वार आक्षेप आता हो, ऐसे अर्धाङ्गवात, पक्षाघात, धनुर्वात, गृध्रसी आदि रोगोंको यह दूर करता है।

पक्षाघातका अर्थ साधारणतः ऐच्छिक मांसपेशियोंकी क्रिया अथवा क्षमताका लोप होना है। इसमें सर्वाङ्गिक या स्थानिक चेतना-शक्तिका लोप या ह्रास होजाता है। सचालन और चेतना, उभयका लोप होने पर पूर्ण पक्षाघात, और इन दोनोंमें से एकका लोप होने पर आंशिक या अपूर्ण पक्षाघात कहलाता है। इस पक्षाघातके अनेक विभागोंमें जो अर्धाङ्गवात (Hemiplegia) है, वह त्रासदायक, दीर्घ कालस्थायी और संतापकारक है। विशेषतः उपदंश आदि रोगों से जिनकी रक्तवाहिनियाँ और वातवाहिनियाँ दूषित होजाती हैं उनको होता है। क्वचित् विषप्रकोप और शीत आदि कारणोंसे भी होजाता है। निर्बल हृदयवाले असहनशील मनुष्यको मनके विरुद्ध कुछ बर्त्ताव या वार्त्तालाप होनेपर अकस्मात् संताप होकर तत्काल सारे शरीरमें विकृति होजाती है। फिर दूषित रक्तवाहिनियोंमें रक्त-संचय अधिक होता है। परिणाममें मस्तिष्क और वातवहा केन्द्रमें रक्तभारकी वृद्धि होकर पक्षाघात होजाता है, रक्तवाहिनियाँ फूटकर रक्तस्राव होजाता है। यदि रुधिरसंग्रह ज्ञान-केन्द्रके समीपमें होता है तो रोगीका ज्ञान सर्वांश या न्यूनांशमें नष्ट होजाता है। इस विकारमें शरीरकी संचालन क्रिया पर अधिकार नहीं रहता। स्नायुओं के बलसे

शारीरिक संचालन आदि व्यापार होता रहता है। परन्तु स्नायुओं पर अधिकार कम होजानेसे व्यापार शिथिल होजाता है और रोगी विगलित-सा होजाता है। चलने-फिरनेमें प्रतिबंध होता है, इसी हेतुसे आयुर्वेदने इस रोगकी गणना वातविकृतिमें की है।

इस व्याधिमें सामान्यतः अवस्थाभेदसे दो प्रकारकी चिकित्सा की जाती है। तीव्र अवस्थामें रक्तवाहिनी फूटकर रक्तस्राव होजाता है। अतः इसका प्रसादन और फूटी हुई रक्तवाहिनीके घटक नये तैयार होजायँ, ऐसी योजना करना, ये दो कार्य करने चाहिये। जीर्णावस्थामें रक्तवाहिनी फूलने या फूटनेकी आदतको नष्ट करनी चाहिये। आयुर्वेदमें रक्तप्रसादक ओषधियोंमें ताप्यादि लोह, सुवर्णमाक्षिकभस्म, शिलाजतु और गुग्गुलु मुख्य हैं। इनके योगसे रक्तवाहिनियोंकी टूटी हुई संधि मिल जाती है। फिर कुछ काल तक अच्छा रहता है। परन्तु फिर पहलेके समान कारण मिलने पर पक्षाघातका झटका आता है। इस झटकेको रोकने, आक्षेपक विष को नष्ट करने और रक्तवाहिनीकी फूटने की आदत को दूर करने के लिये कोई ओषधि देनी चाहिये। आयुर्वेद की उपपत्ति अनुसार रक्तका वहन-कार्य वायुके प्रेरकत्वके हेतुसे होता है। वायुका उद्रेक अधिक होनेपर रक्तका उद्वहन कार्य भी अधिक वेगसे होता है। इस वहन कार्यको मर्यादित करनेसे रक्तवाहिनी फूटनेकी आदत दूर होती है यह कार्य एकांगवीररससे उत्तम होता है। अर्धाङ्ग वायुके समान पक्षाघात कभी-कभी एक हाथ, एक पैर, कमरके नीचे का भाग, मुखकी एक ओर या अन्य किसी स्थान में होता है। इन सब पर भिन्न-भिन्न अनुपान के साथ इसका उपयोग होता है।

देहके किसी भी भागमें अभिघातज या अन्य व्रण होनेके पश्चात् व्रण चिकित्सा के अनुरोधसे उचित चिकित्सा न होने पर उसमें धनुर्वात उत्पादक विशिष्ट कीटाणुओंका प्रवेश होजाता है, जो वात प्रकोपका निमित्त कारण बनता है। फिर स्नायु और रक्तवाहिनियों में प्रवेशित वायु सारे शरीरको धनुष के सदृश मोड़ देती है, उसे धनुर्वात कहते हैं। इसको ही अपतानक, आयाम आदि संज्ञा, लक्षणानुरोधसे, दीजाती है। इस रोग की प्रथमावस्थामें बड़े-बड़े आक्षेप आकर सारा शरीर मुड़ जाता है, दाँत भिंचते है। शुद्धि होने पर कण्ठसे निगलनेकी शक्ति नहीं रहती। इस अवस्थामें कालकूट रस अच्छा उपयोगी है। परन्तु तीव्रावस्था शमन होजाने पर सर्वाङ्गमें पंगुता आई हो, और स्नायुओंकी शक्ति क्षीण होगई हो, तो एकांगवीरका उपयोग होता है।

गृध्रसी रोगमें नितम्ब से लेकर कमर, जंघा, टखने और पैर तक

वार-बार शूल निकलना, सारा पैर तंग होजाना, पैर पंगुसा होजाना, कचित् अति तीव्र वेदना होना, पैर जकड़ जाना और थोड़ा समय खड़े रहने पर उसमें स्पन्दन होना आदि लक्षण होते है इस रोग में वातप्रधान लक्षण अधिक होने पर एकांगवीर रस देना चाहिये।

हाथकी अँगुलियासे वेदना बढ़ते-बढ़ते हाथ बिल्कुल भारी होजाना अँगुलियोंसे कुछ कार्य न होना, थोड़ा सा कुछ उठाया या पकड़ा कि अँगुलियोंमें झनझनाहट होकर वस्तु गिर जाना, वस्तु कब गिरी यह भी बोध न रहना आदि अवस्था होने पर भी एकांगवीर का अच्छा उपयोग होता है। (ओ० गु० ध०शा० के आधार से)

सूचना—वात रोगमें जबोपित्तानुबंध हो तब इस औषधिका उपयोग नहीं करना चाहिये, अथवा सम्हालपूर्वक प्रवालपिष्टी या शिलाजीत आदि शीतल औषधिके साथ सेवन कराना चाहिये ।

(६४) मल्लसिंदूर वटी ।

बनावट—पहली विधिवाला मल्लसिंदूर, सोंठ, मिर्च, पीपलामूल, अकलकरा, जायफल, इलायची, लौंग और केशर, प्रत्येक १-१ तोला लेवें। काष्ठादिक औषधियोंको कूट, बारीक कपड़छन चूर्ण करें। फिर मल्लसिन्दूरको खरल कर थोड़ा-थोड़ा चूर्ण डाल धीरे-धीरे सब चूर्ण मिला देवें। पश्चात् नागरवेलके १०० पानोंका रस मिला खरल करके मोठके दानेके समान गोलियाँ बनावे। (आ० नि० मा०)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २ बार नागरवेलके पान, अदरखके रस, भांगरेके रस और कालीमिर्च या अन्य अनुपानके साथ दें।

उपयोग—इस वटीके सेवनसे सब प्रकारके वातरोग, उन्माद, कफदोष, श्वास, त्रिदोष आदि दूर होते है। जिनके शरीरमें कफ या मेद अधिक हो, थोड़ा चलनेसे ही श्वास भर जाता हो, पचनशक्ति मन्द हो, उदरमें वायुका गुड़गुड़ाहट होता रहता हो, हृदयकी गति और नाड़ी अति मन्द हो, निद्रा और आलस्य आते हो, स्मरणशक्ति बहुत निर्बल होगई हो, उनके लिये यह अत्यन्त लाभदायक है।

जीर्ण विषमज्वर, जो सूक्ष्मांशमें रहता हो, और किसी-किसी समय बढ़ जाता हो, वह इस रसायन से दूर होजाता है।

उन्माद, अपस्मार और हिस्टीरियाकी जीर्णावस्थामें यह मल्लसिंदूर वटी, ब्राह्मी और जटामांसीके क्वाथके साथ देनेसे अच्छा लाभ पहुँचता है।

यदि मल्लसिंदूर नं० २ मिलाकर इस रसायनको तैयार किया

हो, तो उपदंशज उपद्रव एवं सन्निपातके कफप्रकोप और बेहोशीमें भी अच्छा काम देता है, तथा वातप्रकोप, पक्षाघात कम्पवात, अर्धाङ्गवात, सर्वाङ्ग वात, वातवाहिनियोंकी निर्बलता आदिमें भी हितकर है।

सूचना—यदि मलावरोध रहता हो तो, सुबह १ दस्त साफ लाने वाला मृदु विरेचन रात्रि को आवश्यकता पर देते रहना चाहिये। ओषधिके साथमें रोगानुकूल पथ्यका पालन करें। अपथ्य सेवन करने पर यद्यपि ओषधिसे हानि नहीं होती, तथापि लाभ पूरा नहीं मिलता या अधिक समय लगता है।

(९५) लाङ्गल्यादि लोह।

बनावट—शुद्ध कलिहारीका मूल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, मुनक्का और शुद्ध गूगल, सब समभाग मिला बारीक चूर्ण कर सबके समान लोहभस्म मिलाले। पश्चात् बिजौरेके रस और त्रिफले के क्वाथकी ३-३ भावना देकर मटरके बराबर गोलियाँ बनावें। (रसे० सा० स०)

मात्रा—१ से २ गोली शहदके साथ दिनमें २ बार देवें और ऊपर नवकार्षिक क्वाथ पिलावे।

उपयोग—लाङ्गल्यादि लोह पैरोंके तलोंमें घाव होकर पीप निकलना, सारे शरीरमें स्थान-स्थान पर त्वचा फूट-फूट कर रक्त और पीप निकलना, तथा घुटनों तक वा सर्वाङ्गमें फूटे हुए साध्य और असाध्य सब प्रकारके वातरक्तको नष्ट करता है।

(९६) आमवातप्रमथिनी वटी।

बनावट—कलमी शोरा, आकको जड़की छाल, शुद्ध गन्धक, लोह भस्म, अभ्रक भस्म, इन ५ ओषधियोंको समभाग मिला ३ दिन अमलतासके क्वाथमें खरल करके २-२ रत्तीकी गोलियाँ बनावे। (र० यो० सा०)

मात्रा—१ से २ गोली सुबह ६ माशेसे १ तोले तक निसोत के क्वाथके साथ तथा शामको अदरखके रस और शहदके साथ देवें।

उपयोग—यह ओषधि आमवात, आमवातज रोग, कफवृद्धि, कफप्रकोपसे होनेवाले रोग, सबको शमन करता है। तीव्र आमवातमें जब तीव्र बिच्छू काटनेके समान दर्द होता हो तब, एवं जीर्ण अवस्थामें व्यथा उत्पन्न होने पर यह व्यवहृत होता है।

(९७) शूलवज्रिणी वटी।

बनावट—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और लोह भस्म २-२ तोले; ताम्र भस्म, सोहागेका फूला, भुनी हींग, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, शठी (कचूर), दालचीनी, इलायची, तेजपात, तालीस-

सपत्र, जायफल, लौंग, अजवायन, जीरा और धनिया; सब एक-एक तोला लेकर बारीक चूर्ण करें। पहले कज्जली और भस्म मिलाकर फिर उसके साथ चूर्ण मिलावें। पश्चात् बकरीके दूधसे १२ घण्टे खरल करके २-२ रत्तीकी गोलियाँ बनालें। (र० च०)

मात्रा—१ से ४ गोली दिनमें ३ बार बकरीके दूध या जलसे दें।

उपयोग—शूलवज्रिणी आठो प्रकार के शूल, गुल्म, यकृद्-वृद्धि, नया और पुराना आमवात, यकृत् या प्लीहावृद्धिसह पाण्डु रोग, कामला, कण्ठावरोध, दूषित जल भरनेसे होनेवाली वृषण-वृद्धि, श्लीपद रोग, कफप्रधान कास, श्वास, व्रण, रस, रक्त और मांसस्थित दोषयुक्त नये कुष्ठ, छोटे-छोटे उदरकृमि, त्वचामें उत्पन्न होनेवाले कृमि, हिचकी, अरुचि, अर्श, संग्रहणी, सब प्रकारके अतिसार, विसूचिका, खुजली, मन्दाग्नि, तृषारोग और पीनसको दूर करती है। रोग चाहे एकदोषज, द्विदोषज या त्रिदोषज हो, सबका नाश करती है। नित्य सेवन करनेसे बुद्धि, कान्ति और आयुकी वृद्धि होती है।

यह वटी बड़ी दिव्य है। वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक और कफ-पित्तजनित पंक्तिशूल (परिणामशूल), आमशूल, पार्श्वशूल, हृदयशूल, शिरःशूल और अन्य रोगोंके उपद्रवरूप शूलों को शमन करती है, तथा पाचनक्रियाको नियमित बनाती है। यह वातको शमन करती है तथा आम और कफका शोषण करती है, एवं पित्तशुद्धि करके रक्त-कणोंको बढ़ाती है। अधोवायु और मल-मूत्रावरोध को दूर करती है और अन्त्रक्रियाको नियमित बनाती है। इस रीतिसे मूल त्रिधातुओंको नियमित बनाकर रोगोत्पादक दोषको नष्ट करती है, जिससे अग्नि प्रदीप्त होकर शास्त्रकथित सब रोग नष्ट होते हैं, तथा शरीर नीरोग, बलवान और तेजस्वी बन जाता है।

(९८) हिंगुल रसायन।

प्रथम विधि—हिंगुलकी ५ तोलेकी डली को इन्द्रायणके फलके भीतर रख ऊपर कपड़मिट्टी करें। मिट्टीका लेप १-१ अंगुल मोटा करें, फिर अग्निमें डालकर पकावें। मिट्टी अच्छी तरह पक जानेपर गोलेको निकाल लेवें। स्वाग शीतल होनेपर हिंगुलको सम्हालपूर्वक निकाल इन्द्रायणके दूसरे फलमें बन्दकर पुनः पकावें। इस तरह २१ बार पकानेसे उत्तम प्रकार का हिंगुल रसायन बन जाता है।

मात्रा—२ से ४ चावल दिनमें २-३ बार नागरवेलके पानमें दें।

उपयोग—इस रसायन के सेवनसे प्रसूताके समस्त रोग दूर होते

हैं। गर्भाशयमें दूषित रक्त रह जाने या कीटाणु प्रवेश होजाने पर ज्वर, मक्कलशूल, धनुर्वात, संधिवात, अर्दित, शिरदर्द, अरुचि, अग्निमान्द्य, व्याकुलता आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उसपर इसका सेवन करानेसे गर्भाशयमें उत्तेजना आकर दूषित रक्त बाहर निकल जाता है, कीटाणु नष्ट होते हैं। जिससे ज्वर आदि लक्षण शमन होजाते हैं, तथा अग्नि, देहबल, कान्ति और उत्साहकी वृद्धि होती है।

कितने चिकित्सक इन्द्रायणके स्थान पर बैंगन लेते है। बैंगन वाला रसायन अग्निमान्द्य, अतिसार, ग्रहणी, अर्श और वातप्रकोपको दूर करता है, तथा इन्द्रायण वालेमें अन्त्रशोधन गुण विशेष होता है।

दूसरी विधि—लौंगके ४० तोले चूर्णको प्याजके रसके साथ चटनीकी तरह पीस, गिलास जैसा आकार बनाकर सुखा लेवें। पश्चात् प्याजका रस ५ सेर निकालें। फिर उस गिलासको एक कढ़ाहीमें रखें, और उसमें हिंगुल २० तोलेकी डली रखकर कढ़ाहीको चूल्हे पर चढ़ावें; ऊपर प्याजके रसका बर्तन लटका देवे। बर्तनके पैदेमें एक छोटासा छेद करें, जिससे धीरे-धीरे रसकी एक-एक बूँद हिंगुलके ऊपर टपकती रहे। अग्नि इस तरह दे कि रस गिरते ही सूख जाय। इस रीतिसे ५ सेर रस १२ घण्टोंमें पूरा होजायगा। बादमें लौंगका गिलास, हिंगुल और प्याजके रसका कीटा सबको मिला बारीक चूर्ण कर, प्याजके रसमें खरल करके मटर समान गोलियाँ बाँधें। (आ० नि० मा०)

मात्रा—१ से २ गोली तक दिनमें २ बार जलके साथ देवें।

उपयोग—इस रसायनके सेवनसे उदरशूल, मन्दाग्नि, अरुचि, वमन, जीर्णज्वर, विसूचिका, अतिसार, आमवृद्धि, कफवृद्धि, कृमि, वातदोष आदि दूर होकर शरीर लाल बन जाता है। प्रसूताके अतिसार, अरुचि और वातवृद्धिको भी यह नष्ट करता है।

सूचना—लौंगके गिलासमें जो भाग बिल्कुल जल गया हो, उसे निकाल कर ऊपरके अच्छे भागको मिलाना चाहिये।

तीसरी विधि—सिंगरफ अशुद्ध २० तोले, भिलावा ८० तोले, गोघृत, एरण्ड तैल और शहद ६०-६० तोले ले। सिंगरफके छोटे-छोटे टुकड़े करें एवं भिलावेको जौकुट करे। इस भिलावेके चूर्णमें से आधा चूर्ण एक मोटे पैदे की कढ़ाहीमें बिछा ऊपर सिंगरफ की डलियाँ अलग-अलग जमा उन्हे शेष भिलावेके चूर्णसे ढकदें, और ऊपरसे घृत, तैल तथा शहद डाल, चूल्हे पर चढ़ा, ४ घण्टे सामान्य अग्नि दे। जल आधा जल जाय, तब अर्धावशेष पर घासको जलाकर कढ़ाहीमें आग

लगादें, जिससे भिलावे जलकर भस्म होजायगी । स्वांग शीतल होने पर कढ़ाही उतार, ऊपर-ऊपरसे राख हटाकर पैंदेसे सावधानतापूर्वक सिंगरफ की डलियाँ निकाल लेवे । (श्री० पं० राधेश्यामजी गोस्वामी ।)

मात्रा—½ से ३ रत्ती जायफल, जावित्री, लौंग, तीनोंका कपड़छान चूर्ण समभाग और शहदके साथ दिनमें २ बार दें । अथवा २-३ बादाम की गिरीके साथ ½ से १ रत्ती हिंगुल रसायनको पीस, थोड़ा शहद मिलाकर दिनमें २ बार चटावें अथवा अदरखके रस और शहद के साथ अथवा रोगानुसार अनुपानके साथ देवें ।

सूचना—इस ओषधके सेवनकालमें मट्ठेका अधिक प्रयोग करना चाहिये । जब-जब प्यास लगे, तब-तब मट्ठेको ही उपयोगमें ले । ग्रीष्मकालमें दिनमें १-२ समय जल भी पी लेवें । भोजनमें मट्ठेके साथ ज्वार-बाजरे की थोड़ी रोटी ले सकते हैं । ग्रहणी रोगमें हितकर शाक भी ले सकते हैं ।

भिलावेको कूटनेके समय हाथ न लगावें । कढ़ाहीमें लोहे की कलछीसे हिलावे, और गोला बाधनेके समय हाथमें तेल लगाकर गोला बाधे । अन्यथा हाथ पर फाला होजाता है ।

भिलावेका धुआ शरीरको न लगे, इस बातका ध्यान रखे ।

उपयोग—इस रसायनके सेवनसे संग्रहणी, आमातिसार, शूल, जीर्णज्वर, सन्निपात, वातरोग, सन्धिवात, रक्तविकार, कृमिदोष आदि दूर होते है, अग्नि प्रदीप्त होती है, हृदय सबल होता है; शरीर लाल बनता है, और उत्साह की वृद्धि होती है । अनुपानभेदसे अनेक वातज और कफज रोगो पर उपयोगमें आता है ।

(६६) गुल्मकुठार रस ।

बनावट—शीशा भस्म, कलई भस्म, अभ्रक भस्म और लोह भस्म ५-५ तोले तथा ताम्र भस्म २० तोले मिला जम्भीरी नीबूके रसमें ३ दिन खरल कर ½-½ रत्ती की गोलियाँ बनावे । (यो० र०)

मात्रा—१ से २ गोली दिन में दो बार शहद, आमका मुरब्बा, अदरख का रस, जवाखार और सज्जीखार के साथ दें । रक्त गुल्म और पित्तज गुल्म में चातुर्जात के क्वाथ के साथ दे ।

उपयोग—यह रसायन सब प्रकार के गुल्म, अजीर्ण, आमविकार, पित्तज अम्लपित्त, हृदयशूल, पार्श्वशूल, उदरशूल आदि व्याधियोको दूर करता है । इस औषधमें पारद न होने पर भी संयोगजन्य गुण रसायन समान होने से इसे गुल्मकुठार रस संज्ञा दी है । इसका उपयोग जीर्ण रोग में और क्षीण रोगियो के लिये होता है ।

शोक या मानसिक आघात से अपचन होकर अग्निमान्द्य होता है। वह अति त्रासदायक और विलक्षण स्वरूप का होता है। ऐसे अग्निमान्द्य के अनेक दिनों तक रह जाने पर उससे वातक्षोभ होकर वातगुल्म की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार के गुल्म में अन्य लक्षणों के साथ दैन्य, मानसिक स्थिरता, किसी भी बात में प्रीति न होना, निराशा, निर्लज्जता, कृशता, मुखमण्डल की कान्ति अति बदली हुई भासना आदि होनेपर इस औषध का अच्छा उपयोग होता है।

मांसाश्रित गुल्म और साथमें ज्वर, अत्यन्त तृषा, जलपान करने पर भी तृषा बनी रहना, शीतल जल और शीतल पदार्थ की अति इच्छा, मुख और देह पर एक प्रकारकी लाली, भोजनकी पच्यमान अवस्था में तीव्र शूल, बार-बार अति प्रस्वेद आना, अन्नका विदाह, गुल्म अति कठिन न होना, गुल्म पर स्पर्श सहन न होना, व्रणशोथके समान स्पर्श करने पर वेदना-वृद्धि होना, गुल्म पर थोड़ा-सा आघात लगने पर भयंकर पीड़ा होना, क्वचित् अधिक पीड़ा से बेहोशी आजाना आदि लक्षणयुक्त पित्तप्रधान गुल्म पर इसका उपयोग चातुर्जात के क्वाथ के साथ करना चाहिये। दोष अति तीव्र होने पर मजिष्ठा, श्वेत सारिवा, कृष्ण सारिवा, रास्ना और मुनक्का के क्वाथ के साथ देना चाहिये।

स्त्रियों को होने वाले रक्तगुल्म और गर्भ, दोनोंके निर्णय होने में अनेक बार भ्रम होता है। कारण, रक्तगुल्म गर्भके समान शनैः-शनैः बढ़ता जाता है। गर्भ धारण होने पर जैसे लक्षण प्रतीत होते हैं, वैसे ही लक्षण—वमन होना, अग गलना, उदरमें जड़ता, मुख म्लान हो जाना और रजोदर्शन न होना आदि उपस्थित होते हैं। दोनोंमें अन्तर केवल इतना ही रहता है कि गर्भ के चौथे मास से गर्भ में एक प्रकार का स्पंदन-स्फुरण होता है और गुल्म में ऐसे स्पंदन या हलचल, कुछ भी नहीं होता। गुल्म बस्ति के समीप एक स्थानमें गाढ़ा चिपका हुआ वर्धिष्णु रहता है। इस भेद पर से कभी-कभी अनुमान होजाता है। यदि इसका सूक्ष्म निरीक्षण किया जाय, तो रक्तगुल्म और पित्तगुल्म के लक्षणों में अनेकांश में साम्य होने पर भी निर्णय होजाता है। ज्वर, तृषा, शरीर पर लाल धब्बे उठना, उदर-पीड़ा, दाह, कण्ठमें जलन, दूषित डकार, खट्टी वमन, प्रस्वेद में एक प्रकार की दुर्गन्ध आदि लक्षण गर्भ धारण में नहीं होते। ये लक्षण होने पर रक्तगुल्म मान कर गुल्मकुठार की योजना करनी चाहिये।

शास्त्रकारोंने गुल्म की चिकित्सा दस मास होजाने पर करनेंं

का दर्शाया है। इस तरह 'रक्तगुल्मे पुराणत्वं सुखसाध्यस्य लक्षणम्' इस वचन से रक्तगुल्म जितना जीर्ण उतना सुखसाध्य होता है; ऐसा भी कहा है। परन्तु ये दोनो सूचना विशेष सावधानता रखने के लिये है। यदि रक्तगुल्म का निःसन्देह निर्णय होजाय, तो तुरन्त चिकित्सा प्रारम्भ कर देने से रक्तगुल्म की आगे होने वाली वृद्धि रुक जाती है और चिकित्सा-पथ सुकर बन जाता है। किन्तु जब निर्णय न हो, तब आचार्यो की उक्त सूचना का अवलम्बन अवश्य लेना चाहिये।

क्वचित् रक्तगुल्म और गर्भ, दोनो एक साथ प्रतीत होते है। गर्भाशय में गर्भवृद्धि होती है और बीजाशय में रक्तगुल्म बढ़ता है। ऐसी स्थितिमें रक्तगुल्म अधिक बढने पर गर्भाशय को प्रतिबन्ध होता है, जिससे गर्भ-वृद्धि में बाधा पहुँचती है। रक्तगुल्म अधिक बढ़ने न देने का कार्य, जो अति महत्व का है, वह इससे, गर्भ को किसी भी प्रकार का त्रास न होकर, उत्तम प्रकार से होता है। इसके साथ अनुपान रूप से उशीरासव, सारिवासव, या अन्य सौम्य पित्तशामक औषध की योजना करनी चाहिये। गुल्मरोग या अन्यत्र पित्तजन्य विदग्धाजीर्ण बार बार होनेकी आदत वालो को यह रस देना चाहिये।

पित्तज अम्लपित्तमें कण्ठमें जलन, खट्टी डकार, उदरमें दाह और आफरा, बार-बार डकार आना, शौच शुद्ध न होना, उदरमें भारीपन, अन्त्रमें गुड़गुड़ाहट, बार-बार अम्लपित्त होनेकी आदत होकर बलहानि का भास होना आदि लक्षण होनेपर गुल्मकुठारकी योजना करनी चाहिये। इस अवस्थामें अदरखका रस और शहदके साथ या स्वल्प जवाखार और सज्जीखारके साथ देवें।

पित्तज परिणामशूलमें, हृदयके समीप, पार्श्वभाग और उदरमें अन्नपचन होनेके समय बार-बार शूल चलना, उदरमें आफरा आदि लक्षण होनेपर गुल्मकुठार देना चाहिये। (औ० गु० ध० शा०)

सूचना—इस रसायनमे ताम्रभस्मका परिमाण आधा होनेसे अधिक मात्रामें सेवन नहीं कराना चाहिये। जिन रोगियोको उबाक या बेचैनी हो, उनको आँवले, अनार या नीबूका रस अनुपान रूपसे देना चाहिये। ताम्रभस्म अच्छी होनेपर भी आमाशय की श्लैष्मिक कलामे अधिक उत्तेजना लाकर बेचैनी, उबाक, आदि लक्षणोको उत्पन्न करती है। अत. सम्हालपूर्वक उपयोग करे।

(१००) गुल्मकालानल रस।

बनावट—शुद्ध पारद, शुद्ध गंधक, शुद्ध हरताल, ताम्रभस्म और सोहागेका फूला प्रत्येक २-२ तोले; जवाखार १० तोले, नागर-

मोथा, पीपल, सोंठ, कालीमिर्च, गजपीपल, हरड़, बच और कूठ, ये ८ ओषधियें १-१ तोला लेवें। सबको विधिपूर्वक मिलाकर पित्तपापड़ा, अदरख, अपामार्ग (औंधीझाड़ा), नागरमोथा और पठाके क्वाथको क्रमशः ७-७ भावना देकर २-२ रत्तीकी गोलियाँ बनावे। (भै० र०)

मात्रा—१ से २ गोली हरड़के क्वाथके साथ दिनमें २ बार दे।

उपयोग—इस रसायनका विशेष उपयोग वातगुल्म, वातकफज गुल्म और कफपित्तज गुल्म पर होता है। पित्त गुल्ममें विशेषतः लाभदायक नहीं है।

अन्त्रके भीतर जो भिन्न-भिन्न प्रकारकी ग्रन्थि रूप रुग्णावस्था प्राप्त होती है, उसे आयुर्वेदमें गुल्म सज्ञा दी है। केवल मांसवृद्धि या अन्य कारणोंसे अन्तरमें गाँठ बढ़ना, केवल इसीको गुल्म संज्ञा नहीं है; अन्त्रमें बार-बार वायु संचित होकर उसके योगसे गाँठ सदृश आफरा आते रहना और कम होजाना, उसे भी गुल्म कहा है। मांसल, सौत्रिक तन्तु एक दूसरोंसे जालके सदृश संलग्न होकर उसमेंसे गाँठ उत्पन्न होना, भीतरकी ओर मेदके सदृश और बाहर श्लैष्मिक कला रूप गाँठ बढ़ना या केवल आफरा आकर गाँठकी उत्पत्ति होना, ये सब गुल्मके पृथक्-पृथक् विभाग है। एकको पित्तगुल्म, दूसरेको कफगुल्म और तीसरे को वातगुल्म सज्ञा दी है। द्वन्द्वज गुल्मोंमें दो दोषोंका संकर होता है। स्त्रियोंको होनेवाला रक्तगुल्म इन गुल्मोंसे पृथक् है। रक्तगुल्म बीजाशय (Ovary) या गर्भाशय (Uterus) में होता है। वह पित्तगुल्मकी जातिका है। इसके लक्षण और पित्तगुल्मके लक्षणमें सादृश्य है।

इस रसका उपयोग विशेषतः वातगुल्म पर होता है, ऐसा ग्रन्थकारने प्रतिपादन किया है। वातगुल्म अर्थात् अन्त्रमें उत्पन्न आफरा। यह गुल्म बहुत जल्दी कम ज्यादा होता रहता है। मलावरोध, अपान वायुका अवरोध, कण्ठ और मुखमें शुष्कता, बीच-बीचमें शीत लगना, सूक्ष्म ज्वर-सा भासना, छाती, उदर, पार्श्व और मस्तिष्क आदि भागमें कभी-कभी शूल निकलना, अन्नपचन होजाने पर उदर खिंचना, थोड़ा-सा खा लेनेपर अच्छा न लगना, श्रम सहन न होना, रूक्ष पदार्थ खानेपर त्रास अधिक होना, आदि लक्षण होने पर गुल्म कुठार रस घीके साथ देना चाहिये।

इस ओषधिका उपयोग पित्तज गुल्म पर कितने अंशमें होता है। इस विषयमें सशय है। पित्तज गुल्मकी बिल्कुल प्रथमावस्थामें

गुल्मका परिपाक न हुआ न हो, पित्तगुल्ममें होनेवाले ज्वर, पिपासा आदि लक्षण पूर्ण रूपसे उत्पन्न न हुए हो, ऐसे समय पर पित्तसंचय विरेचन द्वारा कम करानेके लिये इस औषधिका उपयोग मधुर और शामक अनुपानके साथ करना चाहिये।

कफज गुल्म, कफवातज गुल्म और कफपित्तात्मक गुल्म पर इसका उपयोग किया जाता है। विशेषतः इन गुल्मोमें स्तैमित्य, शीतपूर्वक ज्वर, अग टूटना, उबाक, अरुचि, खाँसी, अंगमें भारीपन, सर्वाङ्गमें शीत लगना, गुल्म और उसके चारो ओर बिल्कुल मंद वेदना, गुल्म कठिन उठा हुआ गोल, मोटा, समान किनारी वाला; विशेषतः यकृत्, प्लीहा, इन दो इन्द्रियोंको छोड़कर मध्य कोष्ठमें गुल्म उत्पन्न होना आदि लक्षण होते है। इन गुल्मो पर इस औषधमें रहे हुए यवक्षार, हरताल और ताम्रके क्षार गुणके योगसे कफज गुल्मके दृढ़ बने हुए घटक झरने लगते है, और गुल्म शनैः-शनैः कम होने लगता है। यदि गुल्म बहुत बढ़ गया हो, दीर्घकालका पुराना हो, तो ओषधियोसे लाभ नही होता। उस पर अस्त्र-चिकित्सा ही करनी चाहिये।

रक्तगुल्म बिल्कुल स्वतन्त्र व्याधि है। उसकी संप्राप्ति भी स्वतन्त्र होनेसे उस पर इस रसायनका उपयोग नही होता।

इस रसायनसे जीर्ण शीतज्वर (Malarial fever) और उससे उत्पन्न प्लीहावृद्धि, अग्निमान्द्य, यकृद्वृद्धि आदि पर भी लाभ पहुँचनेकी संभावना है। केवल इन विकारोंमें कफदोषकी प्रधानता होनी चाहिये। (औ० गु० ध० शा०)

(१०१) प्रवालपञ्चामृत रस।

बनावट—प्रवाल २ तोले तथा मोती, शंख, मोतीकी सीप और कौड़ी १–१ तोला मिला कूट-पीस कर बारीक चूर्ण करे। पश्चात् ६ तोले आकके दूधमें खरल करके गोला बनावें। फिर संपुट कर गज-पुट अग्नि देनेसे मुलायम भस्म तैयार होती है। (यो० र०)

कितनेक वैद्य आकके दूधके बदलेमें गोदुग्धका उपयोग करते है। यह विशेष सौम्य और विशेष पित्तशामक होता है। आकके दूधवाला योग थोड़ा उग्र रहता है। इस ओषधिमें पारद नही है; परन्तु रसायनके समान गुण होनेसे शास्त्रकारोने "प्रवालपञ्चामृत रस" नाम रक्खा है।

मात्रा—१ से २ रत्ती दिनमें २ बार शहद और पीपल, गुल-

कन्द, मात्र शहद, नीबूके रस अथवा अनारके रसके साथ देवें ।

उपयोग—यह रसायन आनाह, गुल्म, उदररोग, प्लीहा, बद्धोदर, कास, श्वास, मदाग्नि, कफवातप्रकोपसे होनेवाले रोग, अजीर्ण, उद्गार, हृद्रोग, ग्रहणी, अतिसार, बालकोंके ग्रह उपद्रव, प्रमेह, सब प्रकारके मूत्ररोग, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी इन सबको दूर करता है ।

प्रवालपचामृतका कार्य विशेषतः मध्यम कोष्ठ, यकृत, प्लीहा और ग्रहणी पर अच्छा होता है । पाचक पित्तके द्रवत्व धर्ममें कमी होनेसे पेटमें अन्नका बोझा होता हो, या आफरा आता हो, उसे यह रसायन दूर करता है ।

पाचक पित्तमें द्रवत्व धर्म बढ़नेपर अन्नपचन होनेका धर्म कम होजाता है । फिर अन्न-विदाह और अपचन होने लगते है । इस हेतुसे कभी-कभी उदरमें आफरा भी आता है । बार-बार दूषित खट्टी डकार, भोजन करनेके कुछ समय पश्चात् पेटमें भारीपन, उदर खिचना, उदर पर पत्थर बांधनेके सदृश जड़ता, शूल या वेदना बहुधा न होना, बेचैनी, मध्यम कोष्टमें आहार जैसाका वैसा पड़ा रहा हो ऐसा भासना आदि लक्षण होनेपर प्रवालपंचामृत नीबूके रसके साथ या अन्य अम्लवर्गके साथ देना चाहिये । जीर्णविकारमें मात्रा कम चाहिये और दीर्घकाल पर्यन्त देना चाहिये । कण्ठमें दाह, खट्टी डकार आदि पित्तके अम्लताके लक्षण अधिक हो, तो अनारके रस या दाडिमावलेहके साथ देना चाहिये ।

इसी तरह आनाह (मलावरोध) के हेतुसे मध्यम कोष्टमें वात-गुल्म समान न्यूनाधिक आफरा आता है । यह वायु बृहदन्त्रमें सग्रहीत होती है । इस पर इस रसायनका अच्छा उपयोग होता है ।

पित्तगुल्मके प्रारम्भमें थोड़ा ज्वर, तृषा, मुखमण्डल और समस्त शरीर लाल होजाना, भोजन करनेके दो घण्टे पश्चात् भयकर उदरशूल, प्रस्वेद आना, अन्नके विदाहके हेतुसे कण्ठमें जलन, उदरमें दर्द-स्थान पर स्पर्श भी सहन न होना आदि लक्षण होनेपर प्रवाल-पंचामृत घीके ऊपर रहे हुए प्रवाही सत्व या आँवलोके क्वाथ (या फॉट) के साथ देनेसे उत्तम उपयोग होता है ।

उदर रोगमें यकृत्वृद्धि हेतु हो, और पित्तप्रधान लक्षण—नेत्र, त्वचा, नाखून और मूत्रमें पीलापन, मुख, हाथ और पैर पर थोड़ी सूजन, उदरमें वायु भरा रहना, उदरवृद्धि, उदरमें किञ्चित् जलसंचय, यकृत् बढ़नेसे किनारी मोटी होजाना, बार-बार घबराहट, तृषा, हाथ, पैर, नेत्र और मस्तिष्क आदिका सतप्त सदृश भासना, मूत्र थोड़ा और अति पीला या लाल रंगका होजाना, मल कच्चा, सफेद और दुर्गन्धयुक्त-

होजाना, मलशुद्धि सम्यक् न होना, कभी-कभी कण्ठमें दाह और घबराहट होकर वमन होना आदि लक्षण मुख्य होनेपर प्रवालपचामृतका उपयोग अति हितावह है। अनुपान रूप से ताजे दही का जल देने से पित्तप्रकोप जल्दी शमन होता है। इस तरह प्लीहावृद्धि के पश्चात् उत्पन्न उदररोग में भी पित्तप्रधान लक्षण होने पर भी यह अच्छा उपयोगी है।

कास और श्वास रोग में अति घबराहट, अन्न का विदाह, बेचैनी, शीतल पदार्थ और शीतल वायु की इच्छा, शीतल पदार्थ और शीतल वायु अच्छा लगना, दूब, अनारदाने आदि पित्तशामक वस्तु अच्छी लगना, अग्नि सेवन या उष्ण उपचार से पीड़ा अधिक होना आदि लक्षण होने पर प्रवालपंचामृत का उपयोग करना चाहिये।

जीर्ण अग्निमान्द्य होने पर पचनेन्द्रिय संस्था अशक्त होजाती है; जिससे पाचक रस का व्यवस्थित निर्माण नहीं होता। अपचन, उदर में वायु भरा रहना, अफारा, दूषित डकार, रस की उत्पत्ति सम्यक् न होने से रक्त आदि धातुओं में क्षीणता आकर शरीर कृश और अशक्त होजाना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। उस पर प्रवालपंचामृत का उपयोग उत्तम होता है।

पित्त की विकृति से अतिसार उत्पन्न हुआ हो, फिर उसीसे संग्रहणी होगई हो, तो भी प्रवालपञ्चामृत का प्रयोग करना चाहिये। ऐसी स्थिति में पञ्चामृत पर्पटी और सुवर्ण पर्पटी भी दीजाती है। परन्तु उनमें पारद-मिश्रित कज्जली होने से पित्तदोष की तीव्रता और अम्लता बढ़ती है। इसके विरुद्ध इससे पित्त-प्रधान अतिसार और ग्रहणी में पित्तप्रकोप का शमन होकर सत्वर रोगनिवारण होता है।

प्रमेह के विकार में जीर्ण अपचन कारण हो या तीव्र पित्तदोष-की प्रधानता हो, तो प्रवाल पञ्चामृत उत्कृष्ट कार्य करता है। अतिशय तृषा, इस तरह मूत्र का परिमाण अधिक और बार-बार होना, मूत्र का वर्ण काला, नीला, अति पीला या अति लाल होना, चिपचिपा प्रस्वेद सर्वाङ्ग में और हाथ-पैरो के तलो में दाह, बार-बार कण्ठ सूखना, जलपान करने पर भी सन्तोष न होना आदि लक्षण होने पर प्रवाल-पंचामृत रस देना चाहिये। (औ० गु० ध० शा० के आधार से)

(१०२) प्रभाकर वटी।

बनावट—सुवर्णमाक्षिक भस्म, लोहभस्म, अभ्रक भस्म, वंशलोचन, शुद्ध शिलाजीत, सबको समभाग मिला अर्जुन की छाल के क्वाथ में ३ दिन तक खरल करके २-२ रत्ती की गोलियाँ बनावे। (भै० र०)

मात्रा—१ से २ गोली तक दिन में दो बार शहद के साथ लेवें। ऊपर दूध अथवा अर्जुनछाल का क्वाथ पीवें।

उपयोग—इस रसायन से हृदय-शूल, हृदय की धड़कन, हृदयावरोध, हृदय के आवरण का दाह आदि हृदय के सब दोष दूर होकर हृदय बलवान बनता है, एवं पित्तकास, दाह, खट्टी डकार, मन्दाग्नि, चक्कर आना, शरीर की निस्तेजता आदि विकार भी नष्ट होते है ।

अग्निमान्द्य, रक्त की न्यूनता, रक्तकी निर्बलता, वातवाहिनियों की विकृति, मानसिक आघात, वृक्कविकार वात या पित्त दोष प्रकुपित होना, विषम ज्वर या अन्य संक्रामक व्याधियों आदि कारणोंसे हृदय अशक्त होजाने पर इस वटी का अच्छा उपयोग होता है। इससे घबराहट, धड़कन, दाह आदि दूर होकर हृदय सबल बन जाता है। उत्साह, कान्ति, स्फूर्ति, बल और वीर्य की वृद्धि होती है।

(१०३) त्रिनेत्र रस।

बनावट—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक और अभ्रक भस्मको सम भाग मिलाकर खरल करे । फिर सूर्यके तापमें अर्जुनवृक्षकी छालके क्वाथकी २१ भावना देकर छोटे बेरके समान गोलियाँ बनाले। (यो०र०)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें ३ बार शहदके साथ लेवे।

उपयोग—त्रिनेत्र रस सब प्रकारके हृद्रोग (वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक और कृमिज) और फेफड़ेके दोषोंको दूर करता है।

हृदयमेंसे निकली हुई रक्तवाहिनियोंको यह रसायन संकुचित करके दृढ़ बनाता है। हृदयकी उष्णता, शूल और कृमिका नाश करता है। फुफ्फुस और मांसग्रन्थियोंको पुष्ट बनाता है, बल, कान्ति और स्मरणशक्तिको बढ़ाता है, एवं हृदयके वेगके बढनेसे होनेवाले मंदाग्नि, मेदवृद्धि, शूल, शोथ, प्रमेह, प्रदर, अपस्मार, कुष्ट, उदर रोग, दुष्ट व्रण, भगदर आदि व्याधियों को दूर करता है।

(१०४) हेमनाथ रस।

बनावट—शुद्ध पारद, शुद्ध आँवलासार गन्धक, सुवर्ण भस्म, सुवर्णमाक्षिक भस्म, प्रत्येक १-१ तोला तथा लोहभस्म, कपूर, प्रवाल भस्म और वङ्ग भस्म प्रत्येक ६-६ माशे लें। पहले पारद और गन्धक की कज्जली करें । फिर शेष ओषधियोंको मिला अफीमका रस (अफीमको १६ गुने जलमें मिलाकर एक उफान आवे तब तक गरम करें), केलेके खम्भेका रस और गूलरका रस (गूलरके वृक्षके मूलमें खड्डा करके एक घड़ा रखें, ऊपर ढक्कन ढककर मिट्टी दबा देना, घड़ा

भर जाने पर दूसरे रोज सुबह निकाल लेवे); इनकी क्रमशः ७-७ भावना देकर एक-एक रत्तीकी गोलियाँ बनाले। (भैं० र०)

इस रसायनमें पारे और गन्धकके बदलेमें षड्गुण गन्धक-जारित रससिंदूर मिलानेसे विशेष लाभ होता है, ऐसा मूलग्रन्थकारने लिखा है।

मात्रा—१ से २ रत्ती दूध-मिश्री या धात्रीघृतके साथ।

उपयोग—यह रसायन दारुण बहुमूत्र, सब प्रकारके प्रमेह, मधुमेह, सोम रोग, क्षय, उरःक्षत, स्वप्नदोष, श्वास, कास और संग्रहणी आदिको दूर करता है।

सूचना—अनेक निर्बल अन्त्रवालाको अफीमके हेतुसे बद्धकोष्ठ होजाता है। इसलिये ओषधिकी मात्रा प्रकृतिका विचार करके देनी चाहिये।

(१०५) मूत्रकृच्छ्रान्तक रस।

प्रथम विधि—शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक १-१ तोला, जवाखार ४ तोले ले। सबको यथाविधि मिलाकर खरल करे। (र० चं०)

मात्रा—१-१ माशा प्रातःकाल मिश्री और मट्ठा या लस्सीके साथ दे।

उपयोग—यह रसायन सब प्रकारके मूत्रकृच्छ्रोको दूर करता है, तथा पेशाब को साफ लाता है। मूत्राशयमें अश्मरीकी छोटी-छोटी कंकड़ियाँ (शर्करा या सिकता) होगई हो, वे भी निकल जाती है।

दूसरी विधि—आधी बटलोईको जलसे भर, उसके मुखको पतले कपड़ेसे ढककर डोरेसे बाँधदे। फिर कपड़े पर ३ छटांक गन्धाबिरोजा फैला बटलोई को चूल्हे पर चढ़ाकर मन्द आँचदे। जब पानीकी भापसे गन्धाबिरोजा तपकर और कपड़ेसे छनकर बटलोईके अन्दर गिर जाय, तब बटलोईको चूल्हेसे उतारलें। शीतल होने पर तलभागमें जमे हुए बिरोजेको निकाललें। फिर गन्धाबिरोजा ४ तोले और मकरध्वज या षड्गुणगन्धकजारित रससिंदूर ६ माशे मिलाकर खरल करे। (र० सा०)

मात्रा—२-२ माशे दिनमें दो बार ताजा दूध, जल या मिश्रीके साथ सेवन करे।

उपयोग—इस रसके सेवन करनेसे नूतन मूत्रकृच्छ्र (सुजाक) नष्ट होजाता है। ८-१० रोजमें मूत्रप्रसेक नलिकाके भीतरका घाव मिट जाता है। पीप आना बन्द होता है और मूत्रदाहका भी निवारण होता है। जीर्ण रोगमें ज्यादा दिन तक सेवन करना चाहिये।

सूचना—यदि मकरध्वज या रससिंदूर न मिले, तो केवल शुद्ध किया

हुआ गन्धाबिरोजा भी लाभ पहुंचा सकता है।

(१०६) वसन्तकुसुमाकर रस।

बनावट—प्रवाल पिष्टी, रससिन्दूर, मुक्ता पिष्टी, और अभ्रक भस्म ४-४ भाग, रौप्य भस्म और सुवर्ण भस्म २-२ भाग, लोह भस्म, नाग भस्म और बंग भस्म ३-३ भाग लेवें। सबको अच्छी तरह मिला अडूसेका रस, हल्दीका क्वाथ, ईखका रस, कमलके फूलोंका रस, मालती पुष्पका रस, गायका दूध, केलेके खम्भेका रस, कस्तूरी और चन्दनका फाण्ट, सबकी पृथक्-पृथक् ७-७ भावना देकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बनावें। इस रसायनको अनेक चिकित्सक खस और नेत्रबाला के क्वाथकी भावना भी देते हैं। (र० यो० सा०)

वक्तव्य—कस्तूरी की भावना के स्थानमें हम अन्तके दिन कस्तूरी २ तोले मिला ६ घण्टे खरल कर गोलियाँ बाँधते हैं।

मात्रा—१ से ३ रत्ती दूध-मिश्री, मलाई या मक्खन-मिश्रीके साथ।

विशेष अनुपान—(१) क्षयमें मिर्चका चूर्ण और शहद।

(२) प्रमेहमें हल्दी, शक्कर और शहद।

(३) रक्तपित्तमें चन्दनका चूर्ण और मिश्री या अडूसेका रस, मिश्री और शहद।

(४) पुष्टिके लिये चातुर्जात या अगर और सफेद चन्दनका चूर्ण १ माशेके साथ मिलाकर शहदके साथ लेवें।

(५) वमनमें शंखपुष्पीका रस।

(६) अम्लपित्तमें शतावरीका स्वरस, शक्कर और शहद।

(७) प्रमेह-पिटिकामें शिलाजीत।

(८) मानसिक निर्बलतामें त्रिजातका क्वाथ।

(९) प्राकृतिक रक्तपित्तमें मोगरा या शेवतीका रस।

(१०) मस्तिष्ककी निर्बलता पर कूष्माण्डावलेह।

(११) शुक्रवृद्धिके लिये शतावरी, असगंध और मिश्री।

उपयोग—वसन्तकुसुमाकर रस अंडकोष, हृदय, मस्तिष्क, पचनेन्द्रिय, जननेन्द्रिय और फुफ्फुसोंके लिये पौष्टिक, वीर्यवर्द्धक, कामोत्तेजक, मधुमेहघ्न और मानसिक निर्बलताको नाश करनेवाला है। जीर्ण मधुमेह और उसके उपद्रव रूप हृद्विकार, श्वास, कास, इन्द्रियदौर्बल्य आदि एवं प्रमेहपिटिका (अदीठ—Carbuncle), शुक्र-क्षयके पश्चात्की निर्बलता, जरा-सा विचार आते ही शुक्रपात होना, नपुंसकता, मूत्रपिण्डकी विकृति, स्मरणशक्ति मन्द होना, भ्रम, निद्रा-

नाश, जीर्ण रक्तपित्त, हृदयकी निर्बलता, शुष्क कास, थोड़ा परिश्रम होने पर श्वास भर जाना, वृद्धावस्थामें श्वास, कास, हृदय या यकृतकी विकृति, जीर्ण सर्वाङ्ग शोथ, स्त्रियोंके नूतन प्रदर, जीर्ण श्वेतप्रदर, सबको शमन करनेमें यह उपयोगी है।

यह रसायन मधुमेहमें अत्यंत हितकर है। अति व्यवाय (स्त्रीसेवन) और ओजक्षयसे होनेवाले जीर्ण मधुमेहमें निर्बलता, मानसिक दौर्बल्य, दिन-प्रतिदिन बढ़नेवाला शब्द-स्पर्श आदि गुणोंकी ग्राहक इन्द्रियशक्तिका क्षय, जोरकी आवाज और अधिक प्रकाशका सहन न होना, बात-बातमें क्रोध उत्पन्न होना, अनिश्चित वृत्ति, विचार करनेकी शक्ति कम होजाना, इन्द्रियशैथिल्य इत्यादि लक्षण प्रतीत होते हो, तो वसन्तकुसुमाकर अत्यन्त हितकर है। मधुमेहसे उत्पन्न उपद्रव—हृद्विकार, श्वास, कास, प्रमेहपिटिका, मूर्च्छा, सन्यास आदिको भी यह दूर करता है। प्रमेहपिटिका होने पर शिलाजतुके साथ देना चाहिये। मधुमेहके अन्तमें उत्पन्न संन्यास और शक्तिपातको दूर करने के लिये यह रसायन अमृत रूप है।

अति व्यवायशोषीके मनोदौर्बल्य, इन्द्रियशैथिल्य और शारीरिक निर्बलता बढ़ने पर स्त्रीदर्शन, या आवाज मात्रसे मनमें विकृति, शरीर निस्तेज होजाना, जिसमें जननेन्द्रिय बिल्कुल शिथिल होजाना आदि लक्षण होते है, उसमें यह अत्यन्त लाभदायक है।

अत्यन्त व्यवायसे हृदयदौर्बल्य, शुष्क त्रासदायक कास, श्वास, थोडे परिश्रमसे श्वास भर जाना, धमनी अथवा हृत्पटलका विकार-क्वचित् मूत्रपिण्डका विकार, इन सब पर यह उपयोगी है।

अधिक मगजके श्रमसे शिरदर्द और चक्कर आकर मानसिक निर्बलता बढ़ गई हो, तथा मस्तिष्क, वातवाहिनियाँ और इनके केन्द्रस्थानोंकी विकृतिके लक्षण—विचार करने पर मनका गुम हो जाना, बाहरकी आवाज सहन न होना, व्याकुलता बनी रहना, विचार करनेमें त्रास होना—आदि प्रतीत होते हो, परन्तु रक्तदबाव न बढ़ा हो, तो यह रसायन हितकारक है। अनुपान रूपसे त्रिजातका क्वाथ या पेठेका रस देना चाहिये। इन लक्षणोंके साथ निद्रानाश हो, और निद्रानाशका हेतु विविध विचार-कल्पना हो, तो उसे भी यह दूर करता है।

जब रक्तपित्त (नाक, मुँह, गुदा, मूत्रमार्ग आदिसे रक्तस्राव) अधिक बलपूर्वक होता हो, तब चन्द्रकला (या चन्द्रप्रभा), प्रवाल, मुक्ता मिश्रण दिया जाता है। परन्तु जब आरम्भिक वेग नष्ट होकर रोग जीर्ण होजाता है, या रक्तपित्तकी आदत होजाती है, अथवा

भोजनमें किंचित अन्तर होने या सूर्यका ताप लगने पर नाक फूटकर रक्तस्राव होने लगता है, ऐसे रक्तपित्तमें पित्तका विदग्धत्व अधिक होता है। इस आदतको मिटानेमें यह उत्तम औषधि है।

कितनीक स्त्रियोंको कहीं भी लगा कि रक्तस्राव होने लगता है, फिर वह जल्दी बन्द नहीं होता। मासिक धर्ममें जाने वाला रजःस्राव सत्वर नहीं रुकता। इतना ही नहीं, कभी सुई लग जाय, तो उतनेसे भी रुधिर-स्राव होना, फिर वह भी जल्दी बन्द नहीं होता। इस प्रकारके प्राकृतिक रक्तपित्त (Haemophilia) पर वसन्तकुसुमाकर अति उत्तम कार्य करता है। अनुपान रूपसे मोतियाके फूलोंका लेह देवें।

वसतकुसुमाकरका परिणाम अण्डकोष पर बल्य होता है, अतः यह उत्तम वृष्य औषध है। छोटी आयुसे दुष्ट आदत होजाने या युवावस्थामें अति व्यवाय आदि कारणोंसे उत्पन्न इन्द्रिय-शैथिल्य, मन में कामविकार उत्पन्न होनेके साथ वीर्य-स्खलन, स्त्री-सम्बन्धी विचार आने अथवा नूपुर या कंकणकी आवाज सुनने मात्रसे स्खलन आदि लक्षण हों, या नपुंसकता आई हो, तो यह अति उपयोगी है।

वृद्धावस्थामें उत्पन्न जराकासमें यह औषध उत्तम उपयोगी है। जरावस्थामें यह स्वाभाविक कालपरिणाम है, यह एक पक्ष है। वृद्धावस्थामें भी यह रोग ही है, यह दूसरा मत है। यह दूसरा मत आयुर्वेद को मान्य है। जरावस्थाके कारण अनेक है। इनमें सब अवयवसमूहों की विशेषतः अंतःस्रावक पिण्डोंकी शक्ति कम कम होती जाना, यह भी एक कारण है। फिर अन्तस्थ अवयव-समूह अशक्त होजाता है। इसका परिणाम हृदय और फुफ्फुसों पर होकर श्वास-कास होते हैं। इस पर वसंतकुसुमाकर उपयोगी है।

सर्वाङ्ग शोथ, वातज (हृदय-विकृतिजन्य), पित्तज (यकृद्-विकृतिजन्य), कफज (वृक्कविकारजन्य) और सर्वज (व्याधि संकर होकर तीनों स्थान दुष्ट होने), इस तरह ४ प्रकारके शोफ आयुर्वेदमें कहे है। इनमें पुनः तीव्र और जीर्ण, ऐसे दो भेद है। इनमेंसे तीव्र विकारमें इसका उपयोग नहीं होता। परन्तु जीर्ण विकारमें, विशेषतः वातज और पित्तज पर, इसका बहुत अच्छा उपयोग होता है।

स्त्रियोंके जननेन्द्रियके विकारमें इसका उपयोग होता है। यह औषधि छोटी आयुकी अपेक्षा बड़ी आयुमें विशेष लागू होती है। व्यवायके अतियोगसे उत्पन्न प्रदर, सर्वाङ्गशैथिल्य, हृदयकी अशक्तता, वातवाहिनियों और वातवहमण्डलकी शिथिलता, क्रोधी स्वभाव आदि

लक्षण होने पर यह अति उत्तम लाभ पहुँचाती है। प्रदर रोग दीर्घकाल-पर्यन्त चालू रहता है तब निरुत्साह, कृशता, निस्तेजता, शक्तिपात आदि होजाते हैं। इसपर यह अच्छा उपयोगी है।

सक्षेपमें यह रसायन बल्य, वृष्य, मधुमेहघ्न, मानसिक निर्बलता तथा वातवहमंडल, सहस्रार और वातवाहिनी केन्द्र की अशक्तिको दूर करनेवाला है। (आं० गु० ध० शा० के आधार से)

सूचना—वसतकुसुमाकर अत्यन्त कामोत्तेजक होनेसे बढी हुई कामोत्तेजना वाले को नहीं देना चाहिये, अन्यथा उसके मन पर बहुत खराब असर होकर शुक्रक्षय अधिक करनेके लिये प्रवृत्ति हो जायगी।

(१०७) त्रिविक्रम रस ।

बनावट—ताम्र भस्म १० तोलेको १० तोले बकरीके दूधमें मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावें। दूध सूख जाने पर १० तोले पारद और १० तोले गन्धककी कज्जली मिलाकर खरल करें। पश्चात् काले फूलो वाली निर्गुण्डीकी छालके क्वाथमें ३ दिन खरल करके गोला बनावे। फिर सुखा सराव-सम्पुटमें बन्द कर मजबूत ५-७ कपड़मिट्टी करें। सूखने पर वालुका यन्त्रमें रखकर १ प्रहर तीव्राग्नि देवें। स्वांग शीतल होने पर औषधको निकालकर खरल कर लेवें। (र० र० सा०)

मात्रा—२-२ रत्ती शहदके साथ दिनमें २ वार। ऊपर ६ माशे बिजौरेके मूलको जलमें घिसकर पिलावे, या हरड़, बहेड़ा, पाषाणभेद, धमासा, धनिया, गोखरू और ककड़ीके बीजके मगजका क्वाथ दें।

उपयोग—इस रसायनके सेवनसे सम्पूर्ण प्रकारके मूत्रपिण्ड और मूत्राशयमें स्थित अश्मरी, शर्करा, वृक्कशूल आदि रोग एक मासमें ही नष्ट होजाते है। पथरी कट-कट कर मूत्र द्वारा निकल जाती है।

(१०८) पाषाणवज्रक रस ।

बनावट—शुद्ध पारद १ भाग और शुद्ध गन्धक २ भाग लेकर कज्जली करें। पश्चात् सफेद पुनर्नवाके रसमें ३ दिन तक खरल कर गोला बाँध कर सुखावे। फिर सराव-सम्पुटमें बन्द कर भूधरयंत्रमें १२ घण्टे तक अग्नि दें। स्वांग शीतल होने पर गोलेको निकाल कर खरल करले ।

मात्रा—१-१ माशा रोज सुबह समभाग पाषाणभेदका चूर्ण मिलाकर लेवे। ऊपर गोपालककड़ी (एरंड ककड़ी—पपीता) के ४ तोले मूलका क्वाथ शहद मिलाकर पीवें। अथवा कुलथीका क्वाथ पीवें। रात्रि को गोखरू, वंशलोचन और नागरमोथेका क्वाथ ले।

उपयोग—इस रसायनके सेवनसे सब प्रकारकी अश्मरी एक सप्ताहमें कट-कट कर निकल जाती है। वृक्कस्थानमें शूल निकलता हो, वह भी इस औषधके सेवनसे शमन होजाता है।

(१०६) अश्विनीकुमार रस ।

बनावट—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हरताल, सोहागेका फूला, शुद्ध जमालगोटा, शुद्ध अफीम, शुद्ध वच्छनाग, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, पीपलामूल, लौंग, ये १५ ओषधियाँ १-१ तोला लेवे। पहले पारद-गन्धक को कज्जली कर, हरताल, वच्छनाग, अफीम, जमालगोटा और सोहागा क्रमसे मिलावे। बादमें और ओषधियों का कपडछान चूर्ण मिलाकर गायके ३२ तोले दूधके साथ खरल करें। फिर ३२ तोले गोमूत्रमें और ३२ तोले भाँगरेके रसमें खरल करके १-१ रत्तीकी गोलियाँ बनावे। (अनु० त०)

मात्रा—१ से २ गोली दिन में २ बार रोगानुसार अनुपान के साथ दे। पित्तमेहमें हल्दी, मूत्रकृच्छ्रमें जीरे, पुष्टिके लिये शहद और ज्वरमें अदरखके रस और शहद के साथ देवे।

उपयोग—इस रसायनके सेवनसे पित्तज मेह, मूत्रकृच्छ्र और पित्तप्रधान विषम ज्वरो का नाश होता है, तथा बलकी वृद्धि होती है। आमाशय (मेदा), पक्वाशय (छोटी आँत) और मलाशय(बड़ी आंत) में दोष संचय होनेसे भीतर अब्धातु (जल) की वृद्धि होकर होने वाला जुकाम, नजला, बहूमूत्र, प्रमेह, कोष्ठशूल, कोष्ठ शूलज अतिसार और ज्वर आदि रोग दूर होते हैं।

आमाशय, पक्वाशय और बृहदन्त्रमें दोषसंचय होने पर सेन्द्रिय विष सग्रहीत होता है। फिर विविध विकार उत्पन्न होते हैं। इन सब पर यह रसायन लाभदायक है। बद्धकोष्ठमें इसका उपयोग नहीं होता, परन्तु मल संग्रहीत होनेसे अब्धातु बढ़कर उत्पन्न होने वाले विकार इस औषधके योगसे निवृत्त होते हैं। कोष्ठस्थ सेन्द्रिय विषका परिणाम अन्य स्थानमें होकर उत्पन्न होने वाला प्रमेह और प्रतिश्यायको भी यह दूर करता है। इसके सेवन से कोष्ठस्थ सेन्द्रिय विषका शमन होता है। पचनक्रिया बढ़ जाती है, कोष्ठ सबल होता है, और उतान मलसंचय बाहर निकल कर कोष्ठशुद्धि होजाती है।

कोष्ठस्थ मलसंचय प्रमेहका प्रमुख कारण है। प्रमेहों में भी विशेषतः पित्तदोषके द्रवत्व धर्मकी वृद्धि होकर उत्पन्न होनेवाले प्रमेहोंमें अर्थात् कालमेह, नीलमेह, माञ्जिष्ठमेह और हारिद्रमेहमें मूत्रका वर्ण

काला, नीला, लाल या पीला होने पर इसका उपयोग होता है। मूत्रके रक्त रंग, बार बार मूत्रोत्सर्ग होने पर भी मूत्रशुद्धि न होने का भास होना, तृषा, विशेषतः शीतल जल अधिक पीनेकी इच्छा, हाथ-पैरोंके तलोंमें दाह, सर्वाङ्गमें जलन, सर्वाङ्गमें विशेषतः बगल आदि स्थानों में चिपचिपे दुर्गन्धमय प्रस्वेदमेंसे गन्धक जलनेके सदृश वास आना आदि लक्षण होने पर हल्दी के साथ अश्विनीकुमार देना चाहिये।

मूत्रकृच्छ्रमें बार-बार मूत्रोत्सर्ग की शंका होती है, बहुत पेशाब होगा, ऐसा लगता है, परन्तु पेशाब करनेके लिये वेग उत्पन्न होनेका प्रयत्न करने और बलपूर्वक किछने पर भी मूत्रप्रवृत्ति योग्य नहीं होती मूत्रप्रसेक नलिकामें दाह, क्षोभ या शोथ अधिक न होने पर भी उक्त लक्षण हो तो, अश्विनीकुमार अनेक उत्तम ओषधियोंमेंसे एक है।

कोष्ठमें मलसंचय होकर कोष्ठशूल, अतिसार और ज्वर होने पर अश्विनीकुमारका उत्तम उपयोग होता है। तीव्र त्रासदायक शूल-उदरमें छुरे मारनेके सदृश वेदना, उदरमें दर्द होकर मरोड़ा आना और बार-बार शौच जानेका भास होना, शौच जाने पर प्रवाहण करने पर थोड़े जलमय किञ्चित् मल निकलना, इस तरहके त्रासके हेतुसे ज्वर आना, ज्वर अधिक तीव्र नहीं होता, परन्तु मंदज्वरमें भी त्रास अधिक होना आदि लक्षण होनेपर अश्विनीकुमार उत्तम ओषधि है।

विषम ज्वरोंमें एकाहिक, अन्येद्यु, तृतीयक और चातुर्थिक ज्वरों में यदि पित्तदोषका प्राधान्य हो, तो भिन्न-भिन्न अनुपानके साथ अश्विनीकुमार रस देना चाहिये। (औ० गु० ध० शा० के आधार से)

(११०) हरिशंकर रस ।

बनावट—अभ्रक भस्म और रससिंदूर २-२ तोले और नीले थोथे का फूला १ तोला मिलावें। फिर आंवलेके स्वरस और हल्दीके क्काथमें ७-७ दिन तक खरल कर २-२ रत्तीकी गोलियाँ बनावे।

मात्रा—१ गोली से प्रारम्भ कर ३ गोली तक बढ़ावें। अनुपानमें जल, त्रिफला और शहद, अडूसेका रस, मिश्री और नागरवेलका पान अथवा तिलका तैल लें।

उपयोग—यह रसायन प्रमेह नाश करनेमें बहुत उपयोगी है। पूय प्रमेह (Gonorrhoea), प्रमेह की तीव्र वेदना, पेशाबमें आता हुआ रक्त और पीप, पेशाबमें जलन आदि लक्षणोंको दूर करता है। गोली देकर ऊपर ४ तोले तेल या आँवलोंका फाण्ट या नीबूका रस पिलानेसे वमन, घबराहट कुछ भी नहीं होती, और २-४ घंटेमें ही

तीव्र जलनकी शान्ति होती है । तेल पीनवाले को घी, शक्कर, हींग और बेसनकी वस्तुएँ नहीं देनी चाहिये ।

आँवलेके स्वरसकी अधिक भावनासे नीलेथोथेकी वमन करानेकी शक्ति का दमन होता है और ओषधि पूरा लाभ करती है। यदि आँवलेके स्वरसको भावना कम दीजायगी, तो ओषधि-सेवनसे बेचैनी उत्पन्न होगी ।

सूचना—इस ओषधिके सेवनके पश्चात् ३ घण्टे तक भोजन, दूध, चाय या काफी कुछ भी न लें । आवश्यकता हो, तो थोड़ा ठण्डा जल पीवें ।

(१११) बृहद् वंगेश्वर रस ।

बनावट—वङ्ग भस्म, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, रौप्य भस्म, कपूर और अभ्रक भस्म १-१ तोला; तथा सुवर्ण भस्म और मुक्ता पिष्टी ३-३ माशे लेकर यथाविधि मिलाले । फिर भाँगरेके रसमें ३ दिन खरल करके १-१ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें । (रसे० सा० सं०)

मात्रा—१ से २ रत्ती तक दिनमें २ बार गाय या बकरीके दूध अथवा दही या रोगानुसार अनुपानके साथ देवें ।

उपयोग—यह रसायन सब प्रकारके साध्य और असाध्य प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, पाण्डु, धातुगत ज्वर, हलीमक, रक्तपित्त, वातपित्त और कफप्रधान संग्रहणी, आमदोष, मन्दाग्नि, अरुचि, बहुमूत्र, मूत्रातिसार, स्तम्भनका अभाव और सोम रोग आदिको दूर करता है; शरीरको पुष्ट बनाता है, बल, ओज, तेज, वर्ण और रुचि उत्पन्न करता है । वीर्योत्पत्ति और वृद्धिके लिये यह अति लाभदायक है । शुक्र-स्थान और उससे सम्बन्धवाली वातवाहिनियोंको सुदृढ़ बनाता है, तथा शुक्रक्षयजन्य हृदयकी निर्बलताको दूरकर हृदयको पुष्ट बनाता है । यह रसायन बालक, युवा और वृद्ध, सबके लिये हितकारक है । अति व्यवायसे उत्पन्न शुक्रक्षयकी यह उत्तम ओषधि है ।

(११२) प्रमेहान्तक वटी ।

प्रथम विधि—वंशलोचन, शुद्ध शिलाजीत, रूमीमस्तंगी, ईसस (कुंदरू), राल, शीतल मिर्च, इलायची और हल्दी, सब ओषधियोंको समभाग मिलाकर बारीक चूर्ण करें । फिर चन्दनके तेलमें मर्दन कर मटरके समान गोलियाँ बना लेवें । (आ० नि० मा०)

वक्तव्य—इस वटी में तैलकी मात्रा अत्यधिक होती है । इस हेतुसे हम १६ तोले ओषधियों में २ तोले चन्दनका तैल मिलाते हैं । फिर २ तोले रसौतका जलकर उसमें ३ घंटे खरल करके गोलियाँ बाँधते हैं ।

मात्रा—२-२ गोली दिनमें ३ समय जलके साथ देवें। सुबहके समय २ माशे कतीला गोंद साथमें देनेसे सत्वर लाभ पहुँचता है।

उपयोग—यह वटी पूय प्रमेह, पेशाबमें जलन, पेशाबमें पीप आना, पेशाब बूँद-बूँद आना, मूत्रनलिकामें शोफ इत्यादि सब प्रकारके दोषों पर अति उपयोगी है। एक दो दिनमें जलन शान्त होती है और पीप तथा शोथ ६-७ दिनमें दूर होते हैं। नये सुजाककी वेदना इससे तत्काल दूर होती है। यदि रोग बढ गया हो, तो निर्मूल नहीं कर सकती परन्तु दर्दको शान्त कर देती है।

सूचना—औषधि लेनेके पीछे एक घण्टे तक भोजन नहीं करना चाहिये, और जल भी नहीं पीना चाहिये।

दूसरी विधि—वंग भस्म १ तोला, लोह भस्म १ तोला, शुद्ध शिलाजीत १॥ तोला, अकलकरा ३ माशे, नारियलकी गिरी १ तोला, छुआरा १ तोला, केशर ४ माशे, बादामकी गिरी ६ माशे, जायफल १ तोला और मिश्री ३ तोले लें। पहले वंगभस्म आदि तीन दवाइयोंको अलग रख शेष ७ द्रव्योंको कूटकर, कपड़छान चूर्ण करें। फिर चूर्णके साथ वंग और लोहभस्म खरलकर शिलाजीतके जलमें घोटकर मटरके समान गोलियाँ बना लेवे। (चि० च०)

मात्रा—२ से ४ गोली दिनमें २ बार जलके साथ देवें।

उपयोग—यह वटी सब प्रकारके प्रमेह रोगोंमें उपयोगी है। थोड़े दिन सेवन करनेसे प्रमेहके सब प्रकारके दोष निर्मूल होकर वीर्यकी शुद्धि होती है। बहुमूत्र, स्त्रियोंका सोमरोग, वृद्धावस्थामें मूत्राशयकी शिथिलताके कारणसे बार-बार पेशाब करना, मूत्रमें जलन, पीलापन और मूत्रदोषके कारणसे शिरदर्द, चक्कर आना, अरुचि, मन्दाग्नि, निर्बलता, सबको नष्ट कर शरीरको नीरोग और सुदृढ़ बनाती है।

तीसरी विधि—कच्चा बिरोजा १ सेर लेकर १०१ बार जल मिलाकर धोवे। फिर सगजराहतका कपड़छन चूर्ण १ सेर मिलाकर झाड़बेरके समान गोलियाँ बाँधे। (श्री० प० मगुलालजी)

मात्रा—१-१ गोली दिनमें २ बार दें। रात्रिको तुख्म मलंगा २ तोला कोरे मिट्टीके बरतनमें गुड़के शर्बतमें भिगो दें। गुड़का शर्बत इतना करें कि सुबह पेट भर जाय। सुबह छान कर टट्टी जानेके पहले पीलें। फिर १ घण्टे बाद ताजे जलके साथ १ गोली ले, और शामको टट्टी जानेके पीछे १ गोली जलके साथ ले। शामको गुड़का शर्बत न ले।

सूचना—सुबह औषधि लेने पर ३ घण्टे तक भोजन न करे।

उपयोग—सुजाक (Gonorrhoea), नये और पुराने रोग

इस गोलीके १७ दिन सेवनसे दूर होते हैं। भोजनमें बेसनकी रोटी, घी, चावल और बूरा मात्र लेवें। नमक और दूधका त्याग करें।

चौथी विधि—हीरादोखी गोंद १५ तोले, अफीम १ तोला, दालचीनी ४ तोले, जसद भस्म या सल्फेट आफ् जिंक (Zinc Sulphate) १० तोले और कपूर ६ तोले लेवें। सबको मिला जलके साथ खरल करके २-२ रत्तीकी गोलियाँ बनावें।

मात्रा—२-२ गोली दिनमें ३ बार जलके साथ देवें।

उपयोग—सुजाक रोग जीर्ण होने पर पीप आना, मूत्रप्रसेक-नलिकाशोथ, जलन, मन्दाग्नि, सन्धिवात, नेत्रकी कमजोरी आदि उपद्रव होते हैं। इन सबका शमन इस वटीके सेवनसे होजाता है, और रक्तमें रहे हुए कीटाणु भी नष्ट होते हैं। शान्तिपूर्वक पथ्य पालन-सह कुछ समय तक ओषधि लेनी चाहिये।

(११३) जातिफलादि वटी (मधुमेह)।

बनावट—जायफल, जावित्री, लौंग, केशर, शुद्ध धतूरेके बीज, शुद्ध अफीम, सब समभाग लें। शुद्ध शिलाजीत सबके समान और लोहभस्म शिलाजीतसे आधी ले। सबको यथाविधि मिला शिलाजीतके जलमें उडद प्रमाण गोलियाँ बनाले। (धन्वन्तरि)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २ बार गुडमारके अर्क या चूर्ण और गायके दूधके साथ देवें।

उपयोग—यह वटी मधुमेहमें प्यास और पेशावकी शक्कर कम करके दर्दको दूर करती है। अतिसार और मूत्रातिसारमें भी हितकर है। इसका कार्य बढी हुई तृषाका शमन करने, इक्षुमेह और मधुमेहमें मूत्रके साथ जानेवाली शर्कराको कम करने और मूत्रको नियमित बनानेका है। मूत्रातिसारमें बार-बार आध-आध घण्टे पर पेशाब आता है, उसे यह नियमित बनाती है। वृद्धावस्थामें मूत्राशयकी निर्बलताके कारण बार-बार थोड़ा-थोड़ा मूत्र आना, मधुमेह होना, ४० वर्ष से बड़ी आयु वालोंके मधुमेह जीर्ण होने पर बार-बार जलपान और बार-बार लघुशंका होना, शरीर निस्तेज, निर्बल और कृश होजाना, मानसिक उत्साह भी नष्ट होजाना आदि लक्षण होते हैं। उस पर यह अच्छा कार्य करती है। मधुमेह जीर्ण होने पर प्रमेहपिटिका (अदीठ—Carbuncle) उत्पन्न हुआ हो तो, उसे भी यह नष्ट करती है।

इस औषधसे हृदय, वातवाहिनी और मस्तिष्क पर उत्तेजक, शामक और पोषक असर होता है, यकृत्‌की शक्कर बनानेकी निरंकुश

क्रिया मर्यादित होती है; तथा शरीर, इन्द्रियें और मन, तीनों सबल होकर रोगको शनैः-शनैः नष्ट करते हैं।

इस ओषधिमें अफीम मिश्र, गर्भाशय रूपान्तर करने वाली सप्तधातुशोषक, उत्तेजक, बलदायक, मादक, स्वेदजनक, तृषाशामक स्तम्भक है। लोह भस्म मधुर कसैले गुणवाली, तथा शामक, स्तम्भक, यकृत् स्थान, रक्त और शुक्रको बल देने वाली है। शिलाजीत, तिक्त गुण वाला, कटुविपाकी, रसायन, रक्तसंग्राहक, मूत्र और धातुपरिपोषक क्रमको नियमित करनेवाला है। बकुलके बीज रूक्ष, पीड़ाशामक, नाडीशोधक, मादक और अफीमकी मलावरोध करनेकी शक्तिको कम करने वाले हैं। जायफल, जावित्री, लौंग और केशर उष्ण, वृष्य, तृषाशामक और स्निग्ध हैं।

(११४) चन्दनादि चूर्ण।

बनावट—सफेद चन्दन, सेमलके फूल, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, हल्दी, दारुहल्दी, श्वेत अनन्तमूल, कृष्ण अनन्तमूल, नागरमोथा, खस, मुलहठी, आँवला, सनाय, वंशलोचन, भारंगी, देवदारु, बड़ी हरड़का छिलका, इन १८ ओषधियोंको समभाग मिला कूटकर कपड़छान खूब महीन चूर्ण करें। फिर सबसे दुगुनी लोह भस्म मिलाकर खरल कर लेवें। (यो० र०)

मात्रा—२ से ३ रत्ती तक दिनमें २ बार शहदके साथ दें।

उपयोग—इस चूर्णके सेवनसे २० प्रकारके प्रमेह, श्वास, कास, जीर्णज्वर, अर्श और कामला आदि रोग नष्ट होते हैं। जब मस्तिष्कमें उष्णता, पेशाबमें पीलापन, निस्तेजता, गाढ़ निद्रा कम आना, आलस्य बना रहना, मन्द-मन्द ताप रहना, उत्साहका अभाव होना, पचनशक्ति मन्द होना, श्वास, कास आदि लक्षण उपस्थित हों, तब इस चूर्णके सेवनसे सत्वर लाभ होता है।

(११५) त्र्यूषणाद्य लोह।

बनावट—सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, चव्य, चित्रक, विड़नमक, बावची सैंधानमक, कालानमक और लोह भस्म, ये १३ ओषधियाँ समभाग लें। काष्ठादि ओषधियोंके कपड़छान चूर्णके साथ लोह भस्म मिला खरल कर बोतलमें भर लें। (यो० र०)

मात्रा—१-१ माशा दिनमें २ बार घी और शहदके साथ लें।

उपयोग—यह औषध मेद रोग (Obesity), प्रमेह, कफवृद्धि और इस कारणसे होनेवाले कुष्ट आदिको दूर करती है। आहार-विहार

में नियमका आग्रह नहीं है। फिर भी सुबह-शाम घूमनेको मिले तथा घृत, शक्कर और चावल कम खायें, तो लाभ जल्दी होता है। यह लोह अग्निको प्रदीप्त करा तथा मेदोवृद्धिका ह्रास करा (मेदोत्पत्ति को कम करा) शरीरको बलवान और तेजस्वी बनाता है।

(११६) प्लीहान्तक गुटिका।

बनावट—फिटकरीका फूला, सोहागेका फूला, गिलोय सत्व, लोह भस्म और शंख भस्म १-१ तोला तथा एलुआ और शुद्ध गन्धक २-२ तोले ले। सबको मिला घीकुँवारके रसमें १२ घण्टे खरल करके मटरके समान गोलियाँ बनावे।

मात्रा—२ से ३ गोली दिनमें २ बार निवाये जलके साथ दे।

उपयोग—यह वटी प्लीहावृद्धि में अति प्रभावशाली है। एवं यकृद्वृद्धि, उदरशूल, कामला, प्लीहा वृद्धिसे होनेवाला ज्वर और मलावरोधको दूर करती है। बालक और बड़े, सबको लाभदायक है। बहुत बढ़ी हुई तिल्ली भी थोड़े ही दिनों में कट जाती है, और पचन-क्रिया सुधर जाती है। इस वटी के सेवनकालमें गुड़ शक्कर वाले भोजन का त्याग करना चाहिये।

(११७) आरोग्यवर्द्धिनी वटिका।

प्रथम विधि—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोह भस्म, अभ्रक भस्म, ताम्र भस्म १-१ तोला, त्रिफला ६ तोले, शुद्ध शिलाजीत ३ तोले, शुद्ध गूगल ४ तोले, चित्रकमूलकी छाल ४ तोले और कुटकी २२ तोले ले। सबको यथाविधि मिला नीम के पत्तोंके रसमें ३ दिन खरल करके १-१ रत्ती की गोलियाँ बाँधें। * (र० र० स०)

मात्रा—१ से ४ गोली दिन में २ बार दूध, जल, त्रिफला के हिम। शोथ पर पुनर्नवाका क्वाथ, पुनर्नवादि क्वाथ, या मूत्रलकषाय, कब्जसह रक्तविकार में स्वादिष्ट विरेचन। इस तरह अन्य विकारों पर रोगानुसार अनुपानके साथ देवें।

---

* मूल ग्रन्थमें आरोग्यवर्द्धिनीका पाठ निम्नानुसार एक ही है। किन्तु वर्तमान मे वैद्यसमाज शब्दार्थभेद करके दो प्रयोग बनाते हैं।

"रसगन्धकलोहाभ्रशुल्बभस्मसमांशकम्।
त्रिफला द्विगुणा योज्या त्रिगुणं तु शिलाजतु ॥१॥
चतुर्गुणं पुरं शुद्धं चित्रमूलं च तत्समम्।
तिक्ता सर्वसमा ज्ञेया सर्वं सञ्चूर्ण्य यत्नतः ॥२॥
निम्बवृक्षदलाम्भोभिर्मर्दयेद्द्विदिनावधि।
ततश्च वटिकाः कार्या राजकोलफलोपमाः ॥३॥

उपयोग—यह वटी सम्पूर्ण प्रकारके कुष्ठ तथा वात, पित्त और कफोद्भूत विविध ज्वरोंका नाश करती है। यह गुटिका पाचन, दीपन, पथ्यकारक, हृद्य, मेदोहर, मलशुद्धिकर, अत्यन्त क्षुधावर्द्धक और सामान्यतः सब रोगोंमें हितकारक है। श्री नागार्जुन योगीने सब रोगो के प्रशमनके लिये यह तैयार की है।

इस गुटिकाका मुख्य उपयोग कुष्ठ रोगोंमें होता है। इसके गुणपाठके प्रारम्भमें ही 'हन्ति कुष्ठान्यशेषतः' कहा है। फिर विविध ज्वर आदि रोगों पर उपयोग होने का उल्लेख किया है। ऊपर-ऊपरसे विचार करने पर परस्पर एक दूसरेसे विरुद्ध आसमान व्याधियोंमें किस तरह आरोग्यवर्द्धिनी कार्य कर सकेगी, ऐसा प्रश्न उत्पन्न होता है। अतः इस विषयमें कुछ अधिक विस्तारपूर्वक स्पष्टीकरण करना चाहिये।

कुष्ठकी सम्प्राप्ति, आयुर्वेदके मतानुसार वात आदि तीनों दोष अत्यन्त दुष्ट होकर त्वचा, रक्त, मांस और अम्बुधातुके दुष्ट होने पर होती है। द्रव्य संग्रह सप्तकसे कुष्ठकी उत्पत्ति होती है। वात आदि दोष जो कहे है, उनमें भी वातविकृति पहले होनेसे 'वात आदि' लिखा है। फिर अन्य-अन्य दोष प्रकुपित होकर रक्त, मांस अम्बुधातु शनैः-शनैः दुष्ट होने पर कुष्ठ रोग निर्माण होता है।

७ महा कुष्ठ और ११ क्षुद्र कुष्ठ, सब बृहदन्त्रकी विकृति होने पर उत्पन्न होते हैं। बृहदन्त्रका कार्य सम्यक् न होनेसे उसमें मलावरोध उपस्थित होता है। फिर बृहदन्त्र और लघु अन्त्रमें वायु दुष्ट होता है। इस तरह पचनार्थ आवश्यक पित्त विकृत होता है। बृहदन्त्रमें पुरःसरण क्रिया व्यवस्थित होनेमें सहायक कफ द्रव्य भी दूषित होजाता है। फिर मल के आगे सरकनेमें देरी होती है। परिणाममें सेन्द्रिय विषकी उत्पत्ति होकर वह अन्तस्त्वचा और रक्त-मांस आदि धातुओंमें शोषण होजाता है, या सूक्ष्म परमाणुओंमें शोषित होकर धातुओं को दुष्ट बनाता है। फिर उस स्थानमें वातविकृति होती है, वह शनैः-शनैः समस्त शरीरमें व्याप्त होजाती है, और वह प्रकुपित दोष कुष्ठ को उत्पन्न करता है। लघु अन्त्र और बृहदन्त्र, ये वायुके प्रमुख स्थान हैं।

आरोग्यवर्द्धिनीकी रचना सामान्यतः लघु अन्त्र और बृहदन्त्र की विकृतिको नष्ट करने वाली है। बृहदन्त्र और पक्वाशयमें स्वयं दुष्टि से उत्पन्न सेन्द्रिय विषके हेतुसे कुष्ठ उत्पन्न होता है। इस हेतुसे आरोग्यवर्द्धिनी कुष्ट रोगमें लाभ पहुँचाती है। कुष्ठोंमेंसे जब गलत्कुष्ठावस्था

की प्राप्ति होती है, तब इसका उपयोग नहीं होता। बिल्कुल प्रथमावस्थामें इसकी योजना करनेसे अति जल्दी और निश्चित सफलता मिल जाती है। यह वटी देनेपर रोगीको केवल दुग्धाहार पर रखना चाहिये, (यह औ० गु० ध० शा० का मत है)। औषध देनेपर वस्ति का भी उपयोग करना चाहिये। प्रारम्भमें कुछ दिन केवल जलपान-लङ्घन करें, तो दुग्धाहारकी अपेक्षा भी अधिक लाभ होता है। आरोग्यवर्द्धिनीका उपयोग सब कुष्टों पर होता ही है, परन्तु विशेषतः वातप्रधान और वातकफप्रधान कुष्ट—कपाल, मण्डल, एककुष्ट, किटिभ, विपादिका, चर्मदल और अलसक पर अधिक लाभ पहुँचता है। कुष्टमें हरताल भस्म भी विशेष उपयोगी है। परन्तु बद्धकोष्ट, अग्निमान्द्य, मूत्रावरोध आदि लक्षण अधिक होनेपर हरताल का उपयोग नहीं होता।

शरीर पर विवर्ण, रूक्ष और कठोर धब्बे, त्वचाके स्पर्श-ज्ञानका लोप होना, बार-बार रोंगटे खडे होना, अति प्रस्वेद आना, ये त्वचा-विकृतिके लक्षण हैं। इस अवस्थामें धब्बे अतिशय लाल और पके हुए गूलरके फलके सदृश उठे हुए हों, तो आरोग्यवर्द्धिनीका कुछ भी उपयोग नहीं होसकेगा। ऐसे समय पर गन्धक रसायनका कुछ उपयोग होता है। भयंकर कण्डू खुजानेपर धब्बे होना, उनमें पूय पड़ना आदि लक्षण होनेपर आरोग्यवर्द्धिनी मञ्जिष्टादि कषायके साथ देनेसे उत्तम उपयोग होता है। धब्बे कठोर, मुँहमें भयंकर शुष्कता, धब्बेके स्थान पर कठोर त्वचा निकल आना, या फूटने के सदृश कठोर होजाना, उनपर छोटी-छोटी पिटिकाएँ होना, सुई चुभाने के सदृश या फूटनेके सदृश वेदना होना आदि लक्षण होनेपर हल्दीका क्वाथ या दूधके साथ आरोग्यवर्द्धिनी देनी चाहिये। ये सब लक्षण मांसाश्रित दोषके हैं। रोग इससे आगे बढ़ जानेपर इस औषधका उपयोग नहीं होता।

वातपित्त कफोद्भूत नाना प्रकारके ज्वर में इस गुटिकाका उपयोग होता है। इस स्थान पर प्रत्येक दोषसे उत्पन्न भिन्न-भिन्न ज्वर होना चाहिये। इस स्थानपर संक्रामक और सान्निपातिक ज्वर विवक्षित नहीं है। अर्थात् संतत आदि ज्वर और आन्त्रिक आदि सन्निपातोंमें इस रसायनका उपयोग नहीं होता। केवल वातविकृति, केवल पित्तविकृति अथवा केवल कफविकृति से उत्पन्न ज्वर पर इस वटी का प्रयोग करना चाहिये। यह दोष स्थूल धातुगत होनेपर जो विविध ज्वर उत्पन्न हुए हों उनपर इसका उपयोग होता है।

आरोग्यवर्द्धिनीका कार्य विशेषतः बृहदन्त्रशोधक और सेन्द्रिय विषनाशक होनेसे बृहदन्त्र या समस्त मध्यम कोष्ठमें स्थित दोषोंसे उत्पन्न अनियमित ज्वरोंपर इसका उपयोग होता है। बद्धकोष्ठ-जनित ज्वर, अपचन-जनित ज्वर, दीर्घकाल तक बार-बार उलटकर आनेवाला ज्वर और पित्तके वैषम्यसे उत्पन्न ज्वर, सब पर यह हितकर है।

बार-बार मुँहमें जल छूटना, झागयुक्त बड़ी-बड़ी वमन होना, उदरमें जड़ता, क्षुधामान्द्य, भोजन करनेपर तुरन्त वमन होना, खाँसी, सफेद चिपचिपा कफ गिरना आदि लक्षणोंके साथ मलमूत्रोत्सर्ग सम्यक् न होते हों, तो आरोग्यवर्द्धिनी देनी चाहिये।

यह गुटिका पाचनी अर्थात् मल आदिका पचन करान वाली है। मल आदिमें जितना अंश रूपान्तर योग्य हो, उतनेका रूपान्तर कराती है। इसका अर्थ यह है कि, बृहदन्त्र और लघु अन्त्रमें बहुत अन्नांश अपक्व रह जाता है, मध्यम अन्त्रमें कितनाक किट्ट और कुछ सारभाग शेष रह जाता है। इनमेंसे उपयोगी अंशका सम्यक् रूपान्तर करा संशोषण कराना चाहिये। शेष किट्ट भागको तुरन्त शरीरसे बाहर फेंक देना चाहिये। वर्त्तमानमें किट्टको सत्वर बाहर निकाल देनेके लिये स्निग्ध विरेचनका उपयोग होता है। परन्तु उसका इष्ट परिणाम तुरन्त नहीं आता। ऐसी परिस्थितिमें इसको त्रिफलाके हिमके साथ देना अधिक हितकारक है। अति जीर्ण बद्धकोष्ठमें मध्यम अन्त्रमें जड़ता आकर मलसंचय अति होनेपर उक्त कल्प उपयोगी है।

यह गुटिका दीपनी अर्थात् पाचक रसको उत्तम प्रकारसे और योग्य परिमाणमें उत्पन्न करने वाली है। पाचक आदि पित्तका परिमाण कम होने या पित्तमें पाचकांश कम होनेपर अपचन उत्पन्न होता है। यह विकार वर्त्तमानमें बहुत बढ़ गया है। इस विकारमें पाचक अर्थात् अम्ल ओषधिका उपयोग किया जाता है, परन्तु उसका परिणाम सामयिक होता है। यह व्याधि इस तरहकी ओषधिसे यथार्थमें दूर नहीं होती और सच्ची क्षुधा भी नहीं लगती। आरोग्यवर्द्धिनीका कार्य प्रसाद धातुओं पर उनके वैषम्यको नष्ट करनेके लिये होता है, इससे धातु सबल बनती है, उनको शक्तिकी प्राप्ति होती है, और वे अधिक कार्यक्षम होती हैं। इन प्रसाद धातुओंकी क्रिया पर भिन्न-भिन्न रसोंका परिणाम अवलम्बित है, उन-उन रसोंकी उत्तम उत्पत्ति सम्यक् धातुकार्यसे होती है, और कार्य भी उत्तम प्रकारसे होने लगता है। इस तरह इसका दीपन-कार्य स्थिर स्वरूपका होता है।

इस वटीका कार्य केवल पाचकाख्य रस उत्पत्ति करना ही नहीं है; अन्य स्थूल धातुओंके भीतर पूर्वधातुओंमेंसे परधातु-निर्माण या रूपान्तर होनेमें कारणभूत जो धात्वन्तर अग्नि है, उसे प्रदीप्त करनेका भी है।

आरोग्यवर्द्धिनी हृद्य है। हृद्यके दो अर्थ आयुर्वेदमें मिलते हैं; हृदयको हितकारक और मनको प्रिय (मनको हर्ष देनेवाला)। गुणधर्म-शास्त्रमें दूसरा अर्थ विवक्षित नहीं है, प्रथम अर्थ ही इष्ट है। इसका कार्य हृदयकी निर्बलतामें उत्तम प्रकारसे होता है। हृदयेन्द्रियमें स्पष्ट विकृति होनेपर इसका उपयोग हुआ हो, ऐसा प्रतीतिमें नहीं आया। परन्तु हृदयकी अशक्ति और उससे उत्पन्न शोथ पर उपयोग हुआ है। इस अवस्थामें आरोग्यवर्द्धिनी और पुनर्नवा, ये दो शोथघ्न औषध अति प्रशस्त है। इसका हृद्य परिणाम जीर्ण अवस्थामें प्रतीत होता है। अभ्रकमिश्रित लक्ष्मीविलास, समीरपन्नग और सूतशेखरके समान तीव्र विकारमें हृदयको उत्तेजना देकर हृद्यत्व उत्पन्न करना, यह कार्य इससे नहीं होता। परन्तु जीर्ण सर्वाङ्ग शोफके समान विकार पर इसका प्रयोग होता है। सर्वाङ्ग शोफमें हृदयको शक्ति देना (शक्तिका संरक्षण करना) और मूत्र-मार्गसे जलांशको निकाल देना, ये दोनों कार्य इससे होते हैं। इस तरह पाण्डुरोगमें हृद्य कार्य प्रतीत होता है। यकृद्वृद्धि में हृदय अशक्त होने पर आरोग्यवर्द्धिनी दीजाती है।

मेदोवृद्धि दो प्रकारसे होती है। रुधिरवाहिनियोंमें कठोरता आकर रक्तमें बल कम होने पर मेद अधिक उत्पन्न होता है, और निकण्ठमणि (बालग्रैवेयक ग्रन्थि–Thymus Gland) निर्बल बनने पर पचन-व्यापार मन्द होकर मेदोत्पत्ति होती है। आयुर्वेदकी उपपत्ति के अनुसार धातुक्रियाके योगसे मेद पर्यन्त धातुएँ बनती जाती हैं। उसमें मेद आवश्यकतासे अधिक बनता है। परिणाममें मनुष्य बिल्कुल निर्बल बन जाता है, उस पर आरोग्यवर्द्धिनीका कार्य मेदोविनाशक होता है। यह कार्य दीपन-पाचन आदि व्यापारको अच्छी तरह बढ़ा कर होता है। साथ-साथ इससे मेदका रूपान्तर होकर अन्य धातु भी उत्तम रूपसे बननेमें सहायता मिल जाती है।

मलशुद्धि और विरेचनमें महदन्तर है। विरेचन कर्मका परिणाम सामयिक और तीव्र स्वरूपका होता है। इस हेतुसे उदर आदि व्याधियों या शिरःशूल, जड़ता, स्पन्द आदि तीव्र रोगोंमें जब तत्काल मध्यम कोष्ठ को शुद्ध करने की आवश्यकता हो, तब विरेचनका प्रयोग करना पड़ता है। तीव्र विकार न होने पर निद्रानाश आदि चिरकारी

रोगोंमें तीव्र विरेचनका प्रयोग नहीं होता। कितनेक विकार ऐसे चमत्कारिक और दीर्घ-द्वेपी होते हैं कि, उनका कुछ वर्णन नहीं हो सकता। रोगीको भयंकर त्रास होता रहता है, परन्तु क्या होता है, यह स्पष्ट रूपसे बाहरसे नहीं जाना जाता। अंग टूटता है, परन्तु स्पष्ट ज्वर नहीं रहता। काम करना पड़ता है किन्तु उत्साह नहीं होता, भोजन करना पड़ता है, परन्तु क्षुधा लगकर रुचिपूर्वक नहीं खाया जाता। चाहे वैसा रुचिकर और स्वादिष्ट भोजन आगे आया, स्वाद नहीं आता। हँसना, विनोद करना, सब होते हैं, परन्तु मनमें प्रेम नहीं होता; केवल देहधर्म समझ कर सब क्रियाएँ होती रहती हैं। मुखमण्डल पाण्डुवर्णका निस्तेज, शुष्क सा और उत्साहहीन होजाता है, देह भारभूत-सी भासती है। ये सब लक्षण न्यूनाधिक परिमाणमें मलावरोध से होते हैं। इस मलावरोध के अनेक कारण हैं। ऐसे विकारमें विरेचन का उपयोग नहीं होता, बल्कि अपाय होता है। मल शोधन करने वाली सौम्य औषध देनी चाहिये। यह कार्य आरोग्यवर्द्धिनी से, होता है।

मलावरोधके अनेक प्रकारों में से एक प्रकारमें बृहदन्त्रके भीतर मल सचय होकर तह पर तह लग जाती है। फिर मलावरोधसे सेन्द्रिय विष उत्पन्न होकर शोषण होजाती है, जिससे बृहदन्त्र की दीवारें कठोर बन जाती हैं। दीवारोंकी मृदुता और कार्यकारित्व न्यून होता है। ये दोनों अति त्रासदायक हैं। ऐसी स्थिति में विरेचनका उपयोग नहीं होता। वस्ति देकर अन्त्र शोधन करना अति हितावह माना जाता है। एक ओर वस्तिसे तथा दूसरी ओर आरोग्यवर्द्धिनीसे शोधन करनेसे मल की तह पृथक् होने में सहायता मिल जाती है, एवं मल की शुष्क तहों के पीछे सचित विष निर्विष होने लगते हैं। फिर बृहदन्त्र मुलायम और कार्यक्षम होती है। आरोग्यवर्द्धिनी के साथ अनुपान रूपसे त्रिफला या अन्य सशोधक औषध देनी चाहिये।

मलावरोध की आदत नष्ट कर मलशुद्धि करना यह एक प्रकार है। दूसरे प्रकार का मलशोधन भी आरोग्यवर्द्धिनी से हो जाता है। दाँतों में संचित मल, नाक में संचित किट्ट और दुर्गन्ध, ये संगृहीत होने पर मुँह से दुर्गन्ध निकलना, नाक मे शुष्कता आना, दाँतो पर मलकी शुष्क तह होना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। इस विकार पर भी इसका अच्छा उपयोग होता है।

दतव्रण (Pyorrhoea) में वातकफप्रधान लक्षण प्रतीत होने पर आरोग्यवर्द्धिनी का उपयोग हुआ है।

पुरुष जननेन्द्रिय के चारो ओर मणिके ऊपर त्वचाके नीचे सर्वदा एक प्रकार का दुर्गन्धयुक्त मल सगृहीत होजाता है। कितनेक मनुष्योंमें यह मल अति सगृहीत होता है, और उसमेंसे अति दुर्गन्ध फैलती रहती है। पुरुषो के समान स्त्री-जननेन्द्रिय से भी ऐसी ही दुर्गन्ध निकलती है। एवं शरीर, बगल, जाँघ आदि स्थानोसे भी कितनेको में बहुत दुर्गन्ध निकलती है। ये सब लक्षण उन-उन स्थानो में विकृत मल-सचय से होते है। इन सब पर बाह्यशुद्धि के साथ आरोग्यवर्द्धिनी का बहुत अच्छा उपयोग होता है। इस तरह अन्य धातुओंमें मल सगृहीत होने पर इसका प्रयोग करना चाहिये।

अग्निमान्द्य में क्षुधा न लगने पर आरोग्यवर्द्धिनी उपयोगी है। प्रभावशाली कुशल चिकित्सक विविध रोगो में इसकी योजना करके निःसन्देह लाभ उठा सकता है।

यह गुटिका सर्व व्याधियो के मूल रूप त्रिदोष-विकृति और पचनेन्द्रिय संस्था की अशक्ति को दूर करती है। अतः मूलग्रन्थकार ने औषध के गुण पाठमें 'बहुनात्र किमुक्तेन सर्वरोगेषु शस्यते' और 'सर्व-रोग-प्रशमनी' कहा है। इस वटीका उपयोग सब रोगो में होता है। यह वचन शास्त्रदृष्टि से सुसंगत नही भासता, परन्तु ग्रन्थकार की भावनानुसार उनके वचन की व्यवस्था करने पर स्पष्टीकरण होजाता है।

निकण्ठमणि की विकृति होने पर देहकी वृद्धिमें प्रतिबंध होजाता है। समस्त शरीर गले हुए बैगनके सदृश शक्तिहीन और नरम-सा भासता है। अँगुलियाँ मोटी, पैर छोटे, बेडौल और भारी तथा शारी-रिक प्रगतिका अभाव होजानेसे स्त्री-पुरुषो को युवावस्था प्राप्त होने पर भी योग्य चिन्ह न दिखना आदि लक्षण भासते है। उस पर इस वटी का प्रयोग हुआ है।

सर्वाङ्ग शोफ विशेषतः निकण्ठमणिकी विकृतिसे उत्पन्न होने पर उसमें विशेष प्रकार के चिन्ह होते है। अति शोथ, मुख, कण्ठ और हाथ-पैरोके टखनो पर विशेष शोथ, अग्निमान्द्य, नाड़ीकी मन्द गति, सारे शरीरमें सब व्यापार मन्द होजाना आदि लक्षण भासते है। इस पर आरोग्यवर्द्धिनीका उपयोग होता है।

जलोदर के विकारमें इस वटी के मूत्रल और मल शुद्धिकर गुण का उपयोग होनेके अनेक उदाहरण मिले हैं।

वृक्क-विकृतिसे उत्पन्न सर्वाङ्ग शोफकी तीव्रावस्थामें पुनर्नवा कृष्ण सारिवा और रेचक क्षार (गोमूत्रक्षार या मेगनेशिया सल्फास

आदि) मिश्रण तथा तीव्र मूत्रल औषध आदि दिये जाते है। परन्तु तीव्रावस्था निकल जाने पर आगे चन्द्रप्रभा, ताप्यादि लोह और आरोग्यवर्द्धिनी देना हितकर होता है। यदि बद्धकोष्ट और अपचन, ये मुख्य लक्षण हो, तो आरोग्यवर्द्धिनी का प्रयोग करना चाहिये।

प्रमेहके विकारमें अपचन और बद्धकोष्ठ, ये मुख्य कारण या मुख्य लक्षण हो, तो उस पर इसका अवश्य उपयोग होता है।

बद्धकोष्ठका परिणाम आमाशय और पक्वाशय पर तो होता ही है, और अनेक समय फुफ्फुसों पर भी होता है। बद्धकोष्ठ से शौचशुद्धि न होने पर बृहदन्त्र फूलता है, तथा सेन्द्रिय विषकी उत्पत्ति होती है। फिर वातप्रकोप होकर श्वासक सदृश विकार होजाता है। ऐसे श्वास रोग पर आरोग्यवर्द्धिनी का उपयोग हुआ है। अत्यन्त त्रासदायक बद्धकोष्ठ और उसके साथ उतना ही त्रासदायक श्वास, इस युग्म पर यह उत्तम ओषधि है। श्वासकुठार या समीरपन्नगका ऐसे बद्धकोष्ठसह श्वास रोग पर उपयोग नहीं होता।

संक्षेप में आरोग्यवर्द्धिनी बद्धकोष्ठ और कोष्ठगत वातको नाशक, पाचक, दीपक, मूत्रल, आमपाचक, हृद्य, अन्त्रके सेन्द्रिय विष और कीटाणुओं की नाशक है। इन गुणोंके हेतुसे यह वटी मध्यम कोष्ठातगत वातप्रधान, कफभूयिष्ठ और क्षीणपित्त दोषो पर उपयोगी है। यह शोथघ्न, मूत्रल, वातानुलोमक, कोष्ठगत वातशामक, सम्यक् पित्तस्रावक, सेन्द्रिय विषघ्न और गरनाशक गुण दर्शाती है। कुष्ठ, विषमज्वर, अपचन, जीर्ण बद्धकोष्ठ, हृदय की अशक्तता, मेदोरोग, मलसंचय, देह में से दुर्गन्ध आना, अग्निमान्द्य, सर्वाङ्ग शोफ, प्रमेह और श्वास पर प्रयोजित होती है। (औ० गु० ध० शा० के आधार से)

श्री० वैद्यराज यादवजी त्रिकमजी आचार्य ने 'सिद्ध योगसग्रह' में लिखा है कि, आरोग्यवर्द्धिनी उत्तमपाचन, दीपन, शरीर के स्रोतों का शोधन करने वाली, हृदय को बल देनेवाली, मेद को कम करने वाली और मलो की शुद्धि करने वाली है। यकृत्, प्लीहा, वस्ति-वृक्क, गर्भाशय, अन्त्र, हृदय आदि शरीर के किसी अन्तरवयव के शोथ, जलोदर, जीर्णज्वर और पाण्डु रोग में इस योग से विशेष लाभ होता है।

वक्तव्य—पाण्डु रोग मे यदि दस्त पतले और अधिक होते हो तो इसका प्रयोग न करके पर्पटी योगो का प्रयोग करना चाहिये। सर्वांग (सर्वसर) शोथ में और उदर रोगों मे, विशेषतः जलोदर में रोगी को केवल गाय के दूध

के पथ्य पर रख कर इसका प्रयोग करना चाहिये।

यकृत् की वृद्धि के कारण शोथ हो, तो पुनर्नवाष्टक क्वाथ में रोहीड़ा की छाल और शरपुङ्खामूल १-१ भाग अधिक मिलाकर इसके अनुपानसे इसका प्रयोग करें। वृक्कशोथजन्य सर्वाङ्ग शोथ हो तो मूत्रलकषाय के साथ इसका प्रयोग करें। हृद्रोगजन्य शोथ हो, तो आरोग्यवर्द्धिनी के साथ डिजिटेलिस पत्र चूर्ण ½ से १ रत्ती और जंगली प्याज (वनपलाण्डु) का चूर्ण १-२ रत्ती मिलाकर पुनर्नवादि या दशमूल क्वाथके साथ इसका प्रयोग करें।

जीर्ण फुफ्फुसधरा कला (फुफ्फुसावरण) शोथ में इसके साथ शृङ्ग भस्म ४-८ रत्ती मिलाकर भारंगमूल, पुनर्नवा, देवदारु और अडूसेके क्वाथके साथ इसका प्रयोग करें।

मेद कम करने के लिये रोगी को केवल गाय के दूधपर रखकर शार्ङ्गधरोक्त महा मंजिष्ठादि क्वाथ के अनुपानमें इसका सेवन करावे।

पुनर्नवाष्टक कषाय—पुनर्नवा के मूल, हरड़, नीमकी अन्तर्छाल, दारुहल्दी, कुटकी, परवलपञ्चाङ्ग, गिलोय और सोंठ। इनको समभाग मिलाकर किया हुआ क्वाथ। (श्री० या० त्रि० आचार्य)

यकृद्विकार में आरोग्यवर्द्धिनी के साथ अपामार्ग भस्म और नौसादर मिला देने से विशेष लाभ पहुँचता है। मलावरोध, अग्निमान्द्य और मंद-मंद उदरशूल बना रहता हो, तो ऐसी अवस्था में आरोग्यवर्द्धिनी के साथ वज्रक्षार मिला दिया जाता है।

मेदोवृद्धि में देह मोटी हो जाती है, परन्तु बल नहीं होता। थोड़े परिश्रम में श्वास भर जाता है, क्षुधा और तृषा के वेग को रोकने में अति कष्ट होता है, समय पर भोजन न मिलने पर विविध प्रकार के वातप्रकोप के लक्षण उपस्थित होते है। ऐसी अवस्था में आरोग्यवर्द्धिनी शिलासिंदूर और बावची के चूर्ण के साथ दिन में दो बार देने और ऊपर त्रिफलेका फाण्ट पिलाते रहने से शनैः-शनैः मेद कम हो जाता है।

रक्तदबाव वृद्धि होने पर कितनेक रोगियो को नेत्र शूल उत्पन्न होता है। साथ-साथ नेत्र में लाली, शिर में दर्द, निद्रा बिल्कुल नहीं आना, मलावरोध और अति व्याकुलता आदि लक्षण उपस्थित होते है। ऐसे रोगियो को थोड़ी-थोड़ी मात्रा में आरोग्यवर्द्धिनी अमलतास के गूदा से सिद्ध किये हुए दूध के साथ दिन में ३-४ बार देते रहने से थोड़े ही दिनों में विकार शमन हो जाता है।

रक्तदबाव वृद्धि होने पर किसी-किसी स्त्री को मासिक धर्म के दिनों में अति रक्तस्राव होता है। यदि रक्तदबाव वृद्धि होने पर भी

रक्तस्तम्भन औषध देकर रक्तस्राव का रोध किया जाय, तो भयंकर शिरदर्द और हृद्स्फुटन उपस्थित होते हैं। अतः मूल कारण को दूर करना चाहिये। उसके लिये आरोग्यवर्द्धिनी तथा चन्द्रप्रभा मिलाकर अमलतास से सिद्ध किये हुए दूध के साथ दिन में दो बार देते रहने से रक्तस्रावसह रक्तदबाव निवृत्त हो जाता है। फिरंग (उपदंश) रोग दूर होजाने पर भी उसका विष रक्त आदि धातुओं में लीन होकर रह जाता है। वह मौका मिलने पर विविध प्रकार के उपद्रव उपस्थित करते हैं। इनमें से पचनेन्द्रिय संस्था में (अन्त्र में) व्रण की प्राप्ति हो जाय, तो संग्रहणी रोग हो जाता है। फिर अन्त्रक्षयके समान लक्षण प्रतीत होते हैं। पतला, सफेद दस्त दिन में २-३ होना, किन्तु मल अत्यधिक गिरना, फिर अति निर्बलता आना, शारीरिक कृशता, दस्त के समय उदर में पीड़ा होना, पेशाब में पीलापन आदि लक्षण भासते हैं। उस पर आरोग्यवर्द्धिनी दिन में दो बार चौलाई के मूल, वाकेरी मूल और दूर्वामूल का रस या क्वाथ अथवा अन्य रक्तशोधक क्वाथ के साथ देने और खदिरादि तेल का पान कराने से थोड़े ही दिनो में रोग निवृत्त हो जाता है।

यकृत् में से पित्तस्राव होनेवाली या पित्ताशयमें से निकलने वाली नलिकाके मार्गमें अवरोध होने पर कामला होता है। रोध अधिक न होने पर कामला धीरे-धीरे होता है। फिर नेत्र, पेशाब, त्वचा, नख और मुखमण्डल पीले होजाते हैं, तथा दाह, अन्नका अपचन, मलावरोध, तृषा, घबराहट आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उस रोगपर आरोग्यवर्द्धिनी २–२ रत्ती और कुटकी का चूर्ण ३–३ माशे मिलाकर मूलीके रसके साथ दिनमें ३ वार देनेसे विकार सत्वर शमन होजाता है।

यदि कामला रोगकी उत्पत्ति दही और घी के अत्यधिक सेवनसे हुई हो, अधिक अभिष्यन्दि पदार्थ के सेवनसे मार्गावरोध, यकृत्में मेदसंचय और यकृत् की अधिक वृद्धि होगई हो, फिर दस्त में तिलपिष्ट निभ मल गिरता हो, उदरमें आफरा रहता हो, तथा-मुख, नेत्र, मूत्र आदि पीले हों, तो आरोग्यवर्द्धिनी मूलीके रसके साथ दी जाती है। दही और घी जनित आफरा और मार्गावरोध होने पर रोगीको तक्र पर ही रखना चाहिये।

इस आरोग्यवर्द्धिनीका हिक्का रोग पर प्रयोग किया गया है और तत्काल लाभ होने के उदाहरण मिले हैं।

सूचना—सगर्भा स्त्री, एवं दाह, मोह, तृषा, भ्रम और पित्तप्रकोपयुक्त

रोगी को आरोग्यवर्द्धिनी नहीं देनी चाहिये।

दूसरी विधि—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोह भस्म, अभ्रक भस्म, ताम्र भस्म, सब १-१ तोला, त्रिफला १० तोले, चित्रकमूल २० तोले, शुद्ध गूगल २० तोले, शुद्ध शिलाजीत १५ तोले और कुटकी ७० तोले ले। शिलाजीत को थोड़े से जलमें घोल करके मिलावें, फिर तीन दिन तक नीम के पत्तों के रसमें घुटाई कर सुखा चूर्ण बनाकर बोतल में भर लेवें।

मात्रा—१ से ३ माशे दिन में २ बार दूध या जलके साथ दें।

उपयोग—इस दूसरी विधि में भी गुण पहली विधिके अनुरूप हैं। जब उदररोग, शोथ, रक्तविकार और कुष्ठ आदि रोगोंमें मूत्रल और विरेचन गुणकी ज्यादा आवश्यकता हो, तब पहली विधि की अपेक्षा इस दूसरी विधिसे सत्वर लाभ होता है।

(११८) जलोदरारि रस।

प्रथम विधि—शुद्ध पारद २ तोले, शुद्ध गन्धक ४ तोले, मैनसिल, हल्दी, शुद्ध जमालगोटा, त्रिफला, त्रिकटु और चित्रकमूल, ये १० ओषधियें २-२ तोले लेवे। पहले पारद-गन्धककी कज्जली करके मैनसिल मिलावे। फिर शेष ओषधियोंका बारीक चूर्ण मिला, दन्तीमूलके क्वाथ, सेहुड़ (थूहर) के दूध और भांगरेके रसकी सात-सात भावना देकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बनावे। (भै० र०)

मात्रा—एक-एक गोली दिनमें १ या २ बार दशमूल क्वाथ या ऊँटनीके दूधके साथ देनेसे जलके समान पतले जुलाब होकर तीव्र शूल और सर्वाङ्ग शोथयुक्त जलोदरका नाश होता है। इसके सेवनसे जलोदरके अनेक रोगी सुधर गये हैं। यह अति दिव्य औषध है।

दूसरी विधि—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, ताम्र भस्म, हरड़, बहेड़ा, आँवला, सज्जीखार, जवाखार, कालानमक, सैंधानमक, साँभरनमक, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, सोहागेका फूला, सब १-१ तोला और शुद्ध जमालगोटा २ तोले लें। सबको कूट-छानकर यथाविधि मिलाले, फिर नीबूके रसकी ३ भावना दे। बादमें चनेके बराबर गोलियाँ बनाले।

मात्रा—एक-एक गोली ऊँटनीके दूधके साथ देनेसे जलोदर और अन्य सब प्रकारके उदर रोग शमन होते हैं। आवश्यकतानुसार दिनमें १ या २ बार देते रहें। भोजनमें मात्र दूध-भात देनेसे थोड़े ही दिनोंमें यकृद्विकृतिसह जलोदर दूर होता है। यकृत-क्रिया नियमित होती है, कोष्ठाग्नि प्रदीप्त होती है, और आमवृद्धि र होती है।

सूचना—यदि वृक्क-विकारसे सर्वाङ्ग शोथ हो, तो दूसरी विधिका उपयोग न करे। पहली विधि या आरोग्यवर्द्धिनीका उपयोग करना चाहिये।

हृदयेन्द्रिय विकृति हो या जिस रोगीको पहले संग्रहणी रोग होगया हो, उसे जलोदरारि रस नहीं देना चाहिये।

(११६) लोकनाथ रस।

बनावट—शुद्ध बुभुक्षित पारद और शुद्ध गन्धक २-२ तोले लेकर कज्जली करे। पश्चात् शुद्ध पीली कौड़ियाँ ८ तोले लेकर उनमें कज्जली भरे, और १ तोला कच्चे सोहागेको गायके दूधमें खरल कर उससे कौड़ियोंके मुँह बन्द करे। फिर दो सरावके भीतर चूना पोतकर उनमें शंखके शोधन किये हुए छोटे-छोटे टुकड़े ८ तोलेके बीचमें कौड़ियोंको रख, मजबूत संपुट करे। सूखने पर एक हाथके खड्डेमें जङ्गली कण्डोंकी अग्नि दे। स्वांग शीतल होने पर शङ्ख और कौड़ियों सहित औषधको खरल कर लेवे। (शा० स०)

मात्रा—१ से २ रत्ती तक दिनमें २ बार देवे।

अनुपान—वातरोगमें कालीमिर्चका चूर्ण और घृत, पित्तविकृति पर मक्खन, कफरोगमें शहद या रोगानुसार अनुपान देवे।

उपयोग—यह रसायन अतिसार, क्षय, अरुचि, ग्रहणी, कृशता, मन्दाग्नि, कास, श्वास और गुल्मको नष्ट करता है। जब कफवृद्धि या कफप्रकोप होकर रोग उत्पन्न होता है, तब कफ निकालने, कफशोषण और रूपान्तर करानेके लिये लोकनाथ रस उपयोगी है।

लोकनाथ रसका क्षयरोगमें, उत्पन्न होने वाली गाँठ अथवा गाँठके क्षयमें अधिक प्रयोग होता है। यह रसायन गलेके पासमें होनेवाली गाँठकी अपेक्षा पेटमें होनेवाली गाँठ पर अधिक लाभदायक है। कोखमें होनेवाली गाँठमें भी हितावह है। इसके योगसे गाँठ धीरे-धीरे कम होजाती है। किसी-किसी समय पित्ताधिक रोग होने पर इस ओषधिके कारणसे ज्वर बढ़ जाता है। ऐसे समय पर पित्तघ्न अनुपान की योजना करनी चाहिये। जब गाँठ पककर फूट जाती है, तब इसका उपयोग कितना होता है, यह अनिश्चित है।

क्षयमें उरःक्षत न हुए हो, या अधिक बड़े न हो, फुफ्फुसोंमें मात्र मोटापन और जड़ता आई हो, कफदोषका प्राधान्य हो, एवं कास, अरुचि, मन्दाग्नि, मुँहसे लार गिरना, कण्ठ बैठ जाना, गला जड़ होना आदि लक्षण हो, तो लोकनाथ विशेष लाभदायक है।

कफप्रकोपसे अरुचि, मुँहमें पानी आना, भोजनकी बिल्कुल

इच्छा न होना, बार-बार सफेद रंगके आम और दुर्गन्धयुक्त दस्त होना, मुखमण्डल, नेत्र और त्वचा आदि सबमें निस्तेजता आदि लक्षणोंसह जीर्ण अतिसार हो, तो लोकनाथ उत्तम कार्य करता है।

आमज संग्रहणी, विशेषतः जीर्ण विकारमें बृहदन्त्रके तिर्यक् भागमें दुष्टता आकर कफके सदृश दुर्गन्धयुक्त मलिन सा आम गिरता है, शौच अधिक बार नहीं होता, थोड़े ही समय होता है, और मल पक आता है। उदरमें कुछ मरोड़ा आता है, और किछना पड़ता है। मलके साथ मलकी अपेक्षा आम अधिक होता है। अग्निमान्द्य, बेचैनी, किसी बात पर मन न लगना, भोजनकी इच्छा न होना, उदरमें जैसे कुछ चिपका हुआ हो या जड़ पदार्थ बँधा हुआ हो, ऐसा भासना, उदर की जड़ता दूर होने पर खूब खायेंगे ऐसी भावना बनी रहना, आदि लक्षण होने पर लोकनाथ रस उत्तम कार्य करता है।

लोकनाथ त्वचाके रोग पर उत्तम औषध है। विशेषत पिस्तीके समान शरीर पर मोटे-मोटे धब्बे, गाँठ या सफेद-काले दाग होना, सब को यह नष्ट करता है। किसी-किसी मांसवाले भागोंमें मांसवृद्धि हुई हो, वह भी इसके सेवन और लेपसे धीरे-धीरे नष्ट होती है।

यकृद्विद्रधि और वृक्कविद्रधिकी अपक्व या पच्यमान अवस्था एवं बाह्य विद्रधिकी पच्यमान अवस्थामें यह उत्तम कार्यकारी औषधि है।

कफज कास और श्वासमें कफकी गाँठ सफेद और दृढ़ निकलना, उसमें चिपचिपापन अधिक होना, मुँहके भीतर क्वचित् गोंद लगानेके समान चिपचिपापनका भास होना, खाँसीके साथ थकावट अधिकाधिक आना, मस्तिष्क में जड़ता और भारीपन होने पर भी वेदना कम होना, सर्वांङ्ग में जड़ता, देहमें भारीपन भासना, भोजनकी इच्छा कम होना, अधिक अरुचि, उदरमें जड़ता, त्वचा पर शोथ-सा भासना आदि लक्षण होने पर लोकनाथ अवश्य देना चाहिये।

कफज गुल्मके स्थान पर जड़ता, एक स्थान पर स्थिर भासना, गुल्म चिकना लगना, गुल्म के स्थान पर पीड़ा कम होना, गुल्मके स्थान पर शीतल पदार्थ बँधा हो ऐसा लगना, गुल्म कठिन, मोटा और ऊपर उठा हुआ भासना, अग गल जाना, बार-बार उबाक आना तथा खाँसी, अरुचि, जड़ता आदि लक्षण प्रतीत होते है। इस पर लोकनाथ रसका अच्छा उपयोग होता है।

वर्त्तमानमें कण्ठकी गाँठे बड़ी हो जानेका विकार अधिक प्रतीत होता है। इनमेंसे कितनेको की गाँठ खूब लाल दीखती है। उसके ऊपर सफेद दाग या सफेदी नहीं आती। एव कितनेको की गांठो पर सफेद

रङ्ग आजाता है, या सफेद दाग होजाते है। मुखमें चिपचिपापन, अधिक लार गिरना, आवाज भारी होजाना, कण्ठ में कुछ रुका-सा भासना आदि लक्षण होने पर लोकनाथ द्वारा उत्तम कार्य होता है।

सूतिका ज्वर में निमित्त कारण सूतिका विष है। इसके योगसे कफ धातु दुष्ट होकर कफ-स्थान विकृत होता है। फिर कास, प्रतिश्याय, श्वास, अग्निमांद्य और अरुचि आदि लक्षणोंके साथ ज्वर उपस्थित होता है। इस पर लोकनाथ अत्युत्तम कार्य करता है। इसके योगसे सूतिका विष शनैः-शनैः निर्विष होकर सब लक्षण शमन होजाते हैं।

सक्षपसे यह लोकनाथ रस अत्यन्त वीर्यवान् और तीव्र औषध है। इसका उपयोग श्लैष्मिक कला, कफ-स्थान और कफ-दोष पर होता है। कफ प्रकृतिवाले मनुष्यों पर यह विशेष कार्य करता है। क्षयमें कफभूयिष्ठ लक्षण होने पर इसका प्रयोग होता है। इसके योगसे कफके क्षरण और विलयन होते है, एवं कफ रूपान्तरित होनेमें सहायता मिल जाती है। इस तरह कफविकृति नष्ट होकर धातु-साम्य प्रस्थापित होता है। इस रसायनका कार्य यकृत्, वृक्क, श्लैष्मिक कला, फुफ्फुस, फुफ्फुसावरण, अन्य कफस्थान, मांसपेशियाँ और ग्रन्थियुक्त स्थानों पर विशेष रूपसे होता है। कफदोष में विशेषतः स्निग्धत्व और सान्द्रत्व गुणोंकी वृद्धि होने पर इसका उपयोग होता है। इसका प्रयोग विशेषतः रस, मांस और अस्थि, इन दूष्यों पर होता है।

(औ० गु० ध० शा० के आधार से)

यह रसायन अतिसारकी अमोघ औषधि है। ज्वर हो, तो ज्वरसह अतिसारको दूर करता है। २-२ रत्ती मात्रा दिनमें ३ बार शहदके साथ देवें। ऊपर सोंठ, बच, अतीस कड़वा, देवदारु और नागरमोथेका क्वाथ पिलावें।

धमनी या हृदयकी विकृतिसे होनेवाला अन्तर-अर्बुद (रक्तार्बुद), जो देहके किसी भी भागमें गाँठकी तरह बन जाता है, जिसका पाक नहीं होता, रोग अधिक बढ़ने पर हृदयको निर्बल बनाकर सारे शरीरको निस्तेज बना देता है, फिर धीरे-धीरे शरीरका क्षय होता है, उस पर लोकनाथ अच्छा लाभ पहुँचाता है।

रसधातुमें और मेदोधातुमें विकृति होने पर गण्डमाल रोग उत्पन्न होता है। तीव्र विकार होनेपर (अपथ्य सेवन करने पर) ज्वर भी आजाता है। रोग नया हो और गाँठ कच्ची हो तो उस पर लोकनाथ रस अच्छा लाभ पहुँचाता है। मंद-मंद ज्वर रहने पर

इन्द्रजौ, परवल के पान, कुटकी, चिरायता, गिलोय, रक्तचन्दन और सोंठ का क्वाथकर अनुपान रूपसे देते रहने से सत्वर लाभ पहुँचता है। इसके अतिरिक्त निर्गुण्डी तैलका नस्य देनेमें गांठको बिखेर देनेमें सहायता मिल जाती है।

पथ्यापथ्य—लोकनाथ रस लेनेके साथ तीन ग्रास घृत मिले भोजनके लेने चाहिये। भोजनके पश्चात् थोड़ी मिनटों तक पलंग पर सिराने निकालकर चित्त लेटे। अम्ल पदार्थोंका त्याग करे, मधुर दही ले सकते है। घृत अच्छी रीतिसे ले। जंगलके पशुओंका मांस घीमें भुना हुआ खायें। रात्रिकालको क्षुधा लगने पर दूध-भात खायें। मूँगकी बड़ियोंका शाक खा सकते है। तिल और आँवलोंको दूध, जल या मट्ठे में पीस कल्क बना शरीर पर मर्दन कर या घृतकी मालिश कर निवाये जलसे स्नान करे। तैलका उपयोग बिल्कुल न करे। बेलफल, करेला, बैंगन, मछली, स्त्री, परिश्रम, मैथुन, शराब, ताडी, हींग, सोंठ, उड़द, मसूर, कूष्माण्ड, राई, क्रोध, काँजी, असमय पर निद्रा, कांसीके पात्रमें भोजन और ककारादिवर्ग (ककडी, ककोडा, कैथ, कलिंग-तरबूज, कन्दूरी आदि) के शाक, फल आदिका त्याग करे। शास्त्रानुसार श्रद्धापूर्वक शुभ समयसे विधिपूर्वक इस रसायनके सेवन का प्रारम्भ करनेसे पूरा लाभ मिलता है। यह रसायन सूर्योदय होनेके पश्चात् २ घडी (४८ मिनट) के भीतर सेवन करना चाहिये।

सेवन करनेपर दाह हो, तो मिश्री, गिलोय सत्व और वंशलोचन मिलाकर शहदके साथ लेवे। एवं खजूर, अनार, अंगूर, ईख आदिका सेवन करें। अरुचि हो, तो साफ किये धनियेके मगजको घीमें भून मिश्री मिलाकर लेवें। ज्वर रहता हो, तो धनिया और गिलोय का क्वाथ ले। रक्तपित्त, कफ, श्वास और स्वरक्षय आदि उपद्रव हों, तो नेत्रबाला और अडूसेका क्वाथ शहद-मिश्री मिलाकर लेवे। यदि निद्रा न मिलती हो, और अतिसार, ग्रहणी, अरुचि आदि हो, तो भाँग को घीमें भूनकर रात्रिको शहदके साथ लेवे। उदरशूल और अजीर्ण हो, तो काला नमक, हरड और पीपलका चूर्ण निवाये जलसे लेवे। जीर्ण ज्वर रहता हो, तो पीपलका चूर्ण शहदके साथ लेवे। यदि प्लीहोदर, वातरक्त, वमन, अर्श और नाकमेंसे रक्त गिरना आदि विकार हो, तो अनारके फूल और दूबका रस निकाल मिश्री मिलाकर पीये या सूँघे। वमन और हिक्काके शमनके लिये बेरकी गुठलीका मगज, पीपल और मयूरपुच्छके चँदलोंकी भस्मको शहद के साथ लेवे। हेमगर्भपोटली रस, मृगाङ्क, मुक्ता आदि रसोंके लिये भी इसी अनुसार पथ्या-

पथ्य आचरणका पालन करना चाहिये ।

सूचना—इस रसायनका सेवन अधिक मात्रामें करनेपर और अनुचित प्रयोग करनेपर अंगसताप, ज्वर, रक्तपित्त, शुष्क कास, स्वरभंग, निद्रानाश, पित्तज अतिसार, शूल, प्लीहावृद्धि, पैरोंके अँगूठोंमें सूजन, वमन, अर्श, नाकमें-से रक्त गिरना और हिक्का आदि उपद्रवोंकी उत्पत्ति होजाती है । इनमेंसे किसी भी उपद्रवकी प्राप्ति होनेपर इसे बन्द कर तुरन्त गिलोयसत्व, नेत्रबालाका शर्बत, मिश्री मिले दूध आदिका सेवन करना चाहिये ।

(१२०) तक्रमंडूर ।

बनावट—गोमूत्रके पुट देकर वारितर बनाया हुआ मंडूर ४० तोले लेकर बेलपत्रका स्वरस, काले भाँगरे का स्वरस, सफेद भाँगरेका स्वरस, अरनीकी छालका क्वाथ, पुनर्नवाकी जड़का क्वाथ, तालमखानेका क्वाथ, इन ६ ओषधियोंकी ३-३ भावना देवें । पश्चात् एक सेर गोमूत्र मेंसे थोड़ा-थोड़ा मिला ८-१० भावना देकर २-२ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवे । (र० यो० सा०)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें ३ बार मट्ठेके साथ दें । रोगीको मात्र मट्ठेपर ही रक्खे । अन्य भोजन, नमक और जलपान भी छुड़ा-दे । क्षुधा और तृषा लगनेपर बिना नमक मिलाये मट्ठा पिलावे ।

उपयोग—इस मंडूरके सेवनसे अत्यन्त बढ़ी हुई शोथ और पाण्डुरोग नष्ट होजाते हैं । अरुचि, अर्श, मेदवृद्धि, हृदयका भारीपन, प्लीहावृद्धि, यकृद्वृद्धि, कृमि, थोड़ा-थोड़ा दस्त होना, अंतड़ीमें शूल चलना, मूत्रावरोध होना, इन लक्षणोंसह शोथ रोगपर इस मंडूरसे थोड़ेही दिनोंमें लाभ पहुँचता है । वृद्ध, छोटे बालक, स्त्रियाँ और नाजुक प्रकृतिवाले, सबके लिये बिल्कुल निर्भय उपाय है ।

सूचना—जिनको उपदंश, सुजाक या वृक्क-विकारजनित अन्य मूत्र रोग, तृषा, ज्वर, दाह, मूर्च्छा, दौर्बल्य, भ्रम, क्षय या रक्तपित्त प्रकोपयुक्त रोग हो, उनको तक्रमंडूर या तक्रका सेवन नहीं करना चाहिये । ऐसे लक्षणोंयुक्त शोथ रोगमें दुग्धवटीका उपयोग हितकर माना गया है ।

(१२१) पुनर्नवा मंडूर ।

बनावट—पुनर्नवा (साँठीकी जड़), निसोत, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, वायविडङ्ग, देवदारु, कूठ, हल्दी, चित्रकमूल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, दंतीमूल, चव्य, इन्द्रजव, कुटकी, पीपलामूल, मोथा, काकड़ासींगी, कालाजीरा, अजवायन और कायफल, सब ओषधियाँ समभाग लेकर चूर्ण करें । फिर चूर्णसे दूनी मंडूर भस्मको अठगुने गोमूत्रमें

पकावे। गोमूत्र चतुर्थांश शेष रहनेपर ओषधियोंका चूर्ण मिलाकर पकावे। जब गोली बाँधने लायक होजाय, तब उतार घाटकर मटरके समान गोलियाँ बनाले। मूल ग्रन्थमें गुड़ मिलानेको लिखा है, हमने सुविधाके लिये अनुपान रूपसे मिला लिया है। (भा० प्र०)

मात्रा—२ से ४ गोली दिनमें २ बार थोड़े गुड़के साथ दें। ऊपर मट्ठा अथवा जल पिलावें। आमप्रधान कब्जवाले रोगीको हरड़ का चूर्ण मिलाकर देना चाहिये। यदि इसमें योगराज गूगल मिलादें, तो सत्वर लाभ पहुँचता है।

उपयोग—यह ओषधि शोथ, पाण्डु, कामला, उदर रोग, आफरा, शूल, श्वास, खाँसी, क्षय, ज्वर, प्लीहा, बवासीर, संग्रहणी, कृमि, वातरक्त और कुष्टका नाश करती है।

यह मण्डूर पाण्डुरोग पर अति हितकारक है। पाण्डु अथवा कुम्भकामला रोग अधिक दिन रहनेसे सर्वाङ्ग शोथ आया हो, शोथ पर दबानेसे खड्डा होजाता हो, और जल्दी न भरता हो, तो पुनर्नवा मण्डूरके सेवनसे सत्वर लाभ पहुँचता है। शोथके साथ आफरा, मन्द-मन्द ज्वर, अरुचि, रक्तमें रक्ताणुओंकी कमी, निर्बलताके हेतुसे श्वास भर जाना, प्लीहावृद्धि आदि विकार हों, वे भी दूर होजाते हैं। एवं अन्त्रकी निर्बलता, अन्त्रमें मल शुष्क होजानेके पश्चात् वात-प्रकोप होकर निकलने वाला शूल और सूक्ष्म कृमि, ये सब नष्ट होते हैं। इस मण्डूरसे मल-मूत्रकी शुद्धि होती है और रक्ताभिसरण क्रिया नियमित बनती है। पक्वाशय, रक्त और रसधातुकी शुद्धि होनेसे रक्ताभिसरण क्रिया बलवान बनती है। एव वातदुष्टि नष्ट होनेसे दोष-प्रकोपजन्य नूतन कुष्ट और वातरक्तका भी शमन होता है। यह मण्डूर ग्रहणी और अन्त्रको बलवान बनाता है। इस हेतुसे नये संग्रहणी रोग और अर्श रोग पर भी हितावह है।

(१२२) वृद्धिबाधिका वटी।

बनावट—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोह भस्म, वंग भस्म, ताम्र भस्म, काँसी भस्म, हरताल भस्म, नीलेथोथेकी भस्म, शंख भस्म, कौड़ी भस्म, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, चव्य, कचूर, वायविडंग, विधारेके बीज, पीपलामूल, पाठा, हाऊबेर, वच, इलायची, देवदारु समुद्र नमक, सेंधानमक, साँभर नमक, विड़ नमक और काला नमक, सब समभाग लें। सबको यथाविधि मिला हरड़के काढ़ेमें १२ घण्टे खरल कर २-२ रत्तीकी गोलियाँ बनालें। (भा० प्रा०)

मात्रा—१ से २ गोली दिन में २ बार जलके साथ दें।

उपयोग—यह वटी असाध्य अण्डवृद्धिके सब दोषोंको थोड़े ही दिनोंमें दूर करती है, और अन्त्रवृद्धिमें भी लाभ पहुँचाती है। एवं अंडकोषमें वायु भरनेसे होनेवाला दर्द तथा दूषित रस उतरना, रक्त भरना और अन्य सभी प्रकारके दोषोंको निवृत्त करती है। जब अंडकोषमें बहुत ज्यादा जल भर जाता है, तब यह वटी काम नहीं देती। प्रथमावस्थाके लिये उपयोगी है।

(१२३) गण्डमालाकण्डन रस।

बनावट—शुद्ध पारद १ तोला, शुद्ध गन्धक ६ माशे, ताम्र भस्म १॥ तोले, मण्डूर भस्म ३ तोले, सोंठ, कालीमिर्च और पीपल २-२ तोले, सफेद सेंधा नमक ६ माशे, कचनारकी छाल और शुद्ध गूगल १२-१२ तोले लें। पहले पारद और गन्धककी कज्जली करके भस्म मिलावे। फिर शेष ओषधियोंका कपड़छन चूर्ण मिलावे। गूगलमें गोघृत मिला कूटकर पतला करें। फिर सब ओषधियोंको गूगलके साथ थोड़ी-थोड़ी मिला अच्छी रीतिसे कूट कर २-२ रत्तीकी गोलियाँ बनाले। (नि० र०)

मात्रा—१ से ४ गोली दिनमें २ बार कचनार, पियाबाँसा, करंज, कटेली और बड़ी कटेलीके क्वाथके साथ ३-४ मास पर्यन्त देते रहना चाहिये। एक गोलीसे आरम्भ करके मात्रा धीरे धीरे बढावें।

उपयोग—यह रसायन गलगण्ड और दारुण गण्डमालाको नष्ट करता है। यह रस विशेषतः स्थूल प्रकृतिके रोगीके लिये विशेष लाभदायक है। नयी और पुरानी गण्डमाला, दोनोंमें अच्छा काम देता है। गाँठ फूटकर अपची होती है, और उसके साथमें सूक्ष्म ज्वर रहता है, उस पर भी यह लाभदायक है। यह बद्धकोष्ठको दूर करता है, और पाचन-शक्तिको सुधारता है। उपदंश को छोड़कर जो मेद और कफ-विकृतिसे ग्रन्थि उत्पन्न होती है, उस पर भी यह लाभ पहुँचाता है।

आयुर्वेदमें गण्डमालाकी उत्पत्ति निम्नानुसार कही है। कण्ठ और काँख या कण्ठ और वंक्षण (ऊरु-संधि) में रही हुई गाँठोमें मेद और कफकी वृद्धि होने पर उसे गण्डमाला संज्ञा दी है। केवल वंक्षण या केवल उदरमें गाँठ होने पर उसे गण्डमाला नहीं कहते। पहले गण्डमालाका उद्भव कण्ठ पर होकर फिर अन्य स्थानोंमें प्रसार होताहै।

इस विकारमें विशेषतः मंद मंद ज्वर रहता है। सारा शरीर टूटना, हाथ-पैर गल जाना, शनैः-शनैः बलमांसविहीनत्व आना आदि लक्षण होते हैं। क्षुधामान्द्य तो प्रारम्भसे ही होता है। ये गाँठ शनैः-

शनैः बड़ी होने पर पककर फूटती है। गाँठ फूट कर व्रणरोपण होता है, परन्तु पुनः गाँठे बढ़ती है। गाँठ फूटनेके पश्चात् कितनीक नष्ट होती है, कितनीक पुनः भरती है। ऐसा क्रम वर्षो तक चलता रहता है। इस अवस्थाको अपची कहते हैं। गण्डमाला फूटने पर उसमेंसे सफेद क्लेदयुक्त पूयस्राव होता है, परन्तु पुनः भरती है और पुनः किञ्चित् रक्तयुक्त स्राव होने लगता है। इस तरह यह विकार भयंकर त्रासदायक है। इसकी चिकित्सा जल्दी न होने पर यह बहुधा दृढ़मूल होजाता है। फिर अस्त्र-चिकित्सा कराने पर भी समूल नष्ट नहीं होता।

इस रसायनके सेवनका प्रारम्भ होने पर शनैः-शनैः विकार कम होता है। विशेषतः निस्तेज और कुछ फूला हुआ-सा मुख जिनका होगया हो, हाथ-पैरमें निर्बलता और कुछ शोथ-सा प्रतीत होता हो; तथा अपचन, पचनेन्द्रिय की निर्बलताके हेतुसे कोष्ठबद्धता आदि लक्षण हो, तो इस रसका उपयोग करना चाहिये। (औ० गु० ध० शा०)

(१२४) शिलासिंदूर वटी।

बनावट—शिलासिंदूर ५ तोले, आँवला और बावची २॥-२॥ तोले लेवें। पहले शिलासिंदूर को ३ दिन भाँगरेके रसमें खरल करें। फिर आँवले और बावचीका बारीक चूर्ण मिलावें। पश्चात् आँवले और बावचीके चूर्ण १०-१० तोले मिला ८ गुन पानी में क्वाथ कर अष्टमाश जल शेष रहने पर उतार कर छान लें। इस क्वाथकी भावना देवें। इस तरह आँवले-बावचीके ताजे ताजे क्वाथकी ५ भावना देकर मटरके समान गोलियाँ बनावें। (आ० नि० मा०)

मात्रा—१-१ गोली दिनमें २ से ३ बार जलके साथ दें।

उपयोग—इस वटीके सेवनसे कंठमाला, गलगण्ड, अपची, अर्बुद, कुष्ठ, मेदरोग मेदरोगसे होने वाली घबराहट, पसीना और निर्बलता आदि विकार दूर होते हैं। मेद रोग पर देनेके समय शक्कर, दही, ज्यादा घी, विशेष भात खाना आदि मेदवर्द्धक आहारको छुड़ा देना चाहिये, तथा होसके उतना व्यायाम कराना चाहिये।

(१२५) नित्यानन्द रस।

बनावट—सिंगरफमें से निकाला हुआ पारा, शुद्ध गन्धक, ताम्र भस्म, वंग भस्म, शुद्ध हरताल, शुद्ध नीलाथोथा, शंख भस्म, काँसी भस्म, कौड़ी भस्म, लोह भस्म, हरड़, बहेडा, आँवला, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, बायविडंग, सैंधानमक, कालानमक, विड़नमक, काचनमक, समुद्रनमक, चव्य, पीपलामूल, हाऊबेर, बच, कचूर, पाठा, देवदारू,

छोटी इलायची, विधारा (अभाव में निसोत), ये ३१ ओषधियाँ सम-भाग लेकर विधिपूर्वक मिलावें । पश्चात् निसोत, चित्रकमूल, दन्तीमूल, और हरड़ के क्वाथ में क्रमशः १२-१२ घण्टे खरल करके २-२ रत्तीकी गोलियाँ बनावे । (र० र०)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २ बार ठण्डे पानीके साथ दें।

उपयोग—नित्यानन्द रस श्लीपद रोग पर दिव्य औषध है । कफजन्य और कफवातजन्य श्लीपद (हाथीपगा), जिसमें त्वचाका रंग काला, ऊपरमें चीरा होगया हो, वेदना तीव्र हो, ज्वर कम हो, कभी चढ जाता हो, पैर जड़, अति मोटा, फीका सफेद रङ्गका हो, खाज बहुत आती हो, क्लेद निकलता हो, ऐसे लक्षणयुक्त श्लीपद, जो रस, रक्त, मांस, मेद या शुक्रगत हो, इन सबको यह रसायन नष्ट करता है। अलावा अर्बुद, गण्डमाला, अति पुरानी अन्त्रवृद्धि, वातपित्तज और श्लेष्मपित्तज गुद रोग और कृमि रोगको दूर करके अग्निको प्रदीप्त करता है, तथा बल-वीर्यकी वृद्धि करता है ।

श्लीपद रोग अधिक जलयुक्त प्रदेश, शीतल सील वाले स्थानोंमें रहने वालोंको होता है । जिस जलमय स्थानमें पत्र-फूल-फल आदि कूड़ा-कचरा संचित होकर दुर्गन्ध उत्पन्न होती है, उस स्थान वासियोंके त्वचागत कफ दोष में विकृति होती है । प्रारम्भमें किसी स्थानमें त्वचा मोटी होती है, तथा हाथ-पैर, कानकी पाली, नेत्रकी भाँफणी, शिश्न, ओष्ठ और नाक आदि स्थानों में त्वचा मोटी होजाती है, एवं मंद-मंद ज्वर रहता है । ज्वर रहने पर शोथ अधिक होता है । कफ-प्रधान चिकित्सा करने पर ज्वरसह शोथ कम होजाता है ।

डाक्टरी मतानुसार यह व्याधि फाइलेरिया (Filaria) नामक कीटाणु जनित है । यह बंगाल, कोचीन, मलाबार आदि प्रदेशोंमें अधिक होता है । यह रोग पैरके अलावा वृषण, लिङ्ग, हस्त आदि स्थानोंमें भी होता है । रोगग्रस्त चर्म रूक्ष और विषम होजाता है । उस स्थानोंमें लोम रूक्ष होजाता है, और अधिक दूरी पर होजाता है । त्वचाके नीचे रही हुई संयोजक कला स्थूल हो जाती है, और उसमें लसीका संगृहीत होजाती है । मांशपेशी, अस्थि वा वातवाहिनियोंकी विकृति नहीं होती । रक्त-प्रणालियाँ सब बड़ी और रसायनियाँ प्रसारित होजाती है । कभी-कभी रोगग्रस्त स्थानके विपरीत दिशामें रही हुई रसायनियाँ सब कठिन होजाती हैं और बढ़ जाती है ।

इस व्याधि पर इस रसायनके दीर्घकाल सेवनसे ही लाभ होता

है। साथ-साथ गर्जन तैलकी मालिश भी कराते रहना चाहिये। रोग अति जीर्ण होजाने पर अस्त्रचिकित्साका आश्रय लेना चाहिये।

(१२६) केशरादि वटी।

बनावट—शुद्ध रसकपूर, केशर, मिश्री, सफेद चन्दनका चूर्ण, लौंग और जावित्रीको सम भाग मिला जलके साथ खरल कर मूंगके बराबर गोलियाँ बनावें। (आ० औ०)

मात्रा—२ से ४ गोली दिनमें २ बार घीमें लपेट कर निगल जायँ (दाँतको नहीं लगनी चाहिये)।

उपयोग—इस वटीके सेवनसे नया और पुराना उपदंश, विस्फोटक, रक्तविकार, उपदंशजन्य सधिवात, पक्षाघात आदि वात रोग, कुष्ठ, गंभीर व्रण, नाड़ीव्रण (नासूर), गलगण्ड, तालुव्रण, वातरक्त तथा त्वचाके नये और पुराने सब रोग थोड़े ही दिनोंमें दूर होते है।

इस रसायनसे मुँह नहीं आता और एक वर्षके जीर्ण रोगोंमें भी अच्छा लाभ पहुँचाता है। इस रसायनको महामंजिष्ठादि क्वाथ अथवा अन्य रक्तशोधक अनुपानके साथ देनेसे शीघ्र लाभ पहुँचता है।

सूचना—रसकपूरयुक्त ओषधि होनेसे पथ्यका आग्रहपूर्वक पालन करना चाहिये। तेल, मिर्च, खटाई न खायँ। सैंधानमक थोड़े परिमाणमें लें। घृत अधिक लें। यदि भोजनमें गेहूँकी रोटी, घी, शक्कर, दूध और भात ही लें, तो सत्वर लाभ होता है।

(१२७) उपदंशसूर्य।

बनावट—सफेद सोमल ६ माशे, छोटी कटेलीके पंचांगका स्वरस और नीबूका रस १२-१२ तोले ले। फिर लोहेकी कढाहीमें सब को मिलाकर लगभग ४२ दिन पर्यन्त कड़वे नीमके डंडेसे घुटाई करें। पश्चात् मूँगके समान गोलियाँ बनावें। रस कम होजाय, तो और मिला लेना चाहिये। (वृ० यो० त०)

मात्रा—१ से २ गोली सुबह घृतके साथ निगल जायँ। भोजन में गेहूँका फुलका, घी और मूँगकी दाल थोड़ा सैंधानमक वाली लेवें। तेल, मिर्च, खटाई, नमक आदि का त्याग करे। घी अधिक लें।

उपयोग—यह रसायन उपदंश रोगको जलानेमें सूर्यके समान तेजस्वी है। आयुर्वेदमें उपदंश रोगके दो प्रकार मिलते हैं—सामान्य उपदंश और फिरंगोपदंश। सामान्य उपदंश अधिक रतिसेवन, दाँत, नख, शस्त्र आदिका आघात, अधावन (अप्रक्षालन) और योनिप्रदोष (दीर्घ, कर्कश, रोम आदि युक्त दुष्टयोनि), इन कारणोंसे केवल पुरुष

जननेन्द्रियको ही होता है। फिरंगोपदंश (फिरंग रोग) का वर्णन प्राचीन आयुर्वेद संहिताओंमें नहीं मिलता। इसका उल्लेख केवल नव्य आयुर्वेद शास्त्रमें ही मिलता है। इस नामसे ही व्यक्त होता है कि, यह व्याधि विदेशी लोग इस देशमें आनेके पश्चात् उनके संसर्गसे ही उत्पन्न हुई है। यह फिरंग रोग स्थानिक हानिकर नहीं है, परन्तु सर्वाङ्गव्यापी और विविध अवयवगतरूपसे अनेक उपद्रवोंको उत्पन्न करनेवाला है। फिरंग रोगके विशिष्ट प्रकारके कीटाणु हैं। ये कीटाणु संसर्ग होनेपर शरीरमें प्रवेश करके आशुकारी और चिरकारी, ऐसी दो अवस्थाएँ निर्माण करते हैं। इस रोगकी तीव्रावस्थामें पारद कल्प अधिक उपयोगी होता है और जीर्णावस्था—चिरकारी विकार—विवक्षित संस्कारोंसे बने हुए पारदकल्प और मल्लकल्प लाभदायक होते हैं। इस रोगके और भी विभाग होसकते हैं। कीटाणु भिन्न-भिन्न अवयवोंमें प्रवेश करते हैं या जिन दोष दूष्य आदिके साथ जितने अंशमें मिल जाते हैं, उतने अंशमें विविध अवस्थाएँ उत्पन्न होती हैं। उपदंशका विष केवल रक्त और त्वचामें ही सञ्चित होकर रह जानेपर शारीरिक अनुभवन क्रिया (Anabolism) सम्यक् नहीं होती। ऐसा होनेपर पारद, सुवर्ण, रौप्य मल्ल सिद्ध अर्थात् रसमूर्त्ति रसायन उपयोगी होता है। परन्तु यही विष अधिक गहराई में जानेपर, मांस और अस्थिके आश्रित होजाने पर, उसमें विकृति उत्पन्न करता है। मांसगतव्रण, अस्थिगतव्रण, गण्ड, अर्बुद ग्रन्थि, अस्थिमें कीटाणु होजाने आदि विविध उपद्रव उत्पन्न होते हैं। यह विष जैसे-जैसे अधिक लीन होकर गहराईमें चला जाता है; वैसे-वैसे उस स्थानपर पारदकल्पकी अपेक्षा मल्लकल्प अधिक उपयोगी होता है। इन मल्लकल्पोंमें उपदंशसूर्य एक उत्कृष्ट मल्लकल्प है।

जीर्ण उपदंशज व्रण अन्य व्रणोंकी अपेक्षा विशिष्ट प्रकारका भासता है। कुछ दिनों तक व्रणका रोपण होजानेका भ्रम होता है। फिर कुछ दिनोंमें पुनः दुगुने बलसे बढ़ जाता है। इसकी किनारी मोटी और कठिन, व्रणसरक्षक कला (Scar tissue) ऊँची-नीची और विविध प्रकारका स्राव होना आदि लक्षण होते हैं। यह व्रण मांस का आश्रय कर कितनेक दिनों तक जड़ जमा स्थिर टिक कर रह जाता है। यह व्रण शरीरके बाह्यांग, मुख, ओष्ठ, श्लैष्मिक कला और जिह्वा पर भी होजाता है। यह विकार इतना पुराना और त्रासदायक है कि, आजन्म मनुष्योंको त्रास देता रहता है। मांसाश्रित व्रण अधिक काल तक रह जानेपर भी उसकी उपेक्षा होनेसे या अयोग्य उपचार करने

अथवा स्वाभाविक कीटाणु या विष गहराईमें चले जानेपर अस्थियोंमें विकृति होजाती है। फिर अस्थिगत व्रण होता है। कितनेक अस्थियोंमें कीटाणु गल जाते हैं। इसकी अपेक्षा ही विषका अन्तरमें प्रवेश होने पर अन्तरेन्द्रियोंमें छोटी छोटी ग्रन्थियाँ होजाती है। वातवाहिनियाँ, वातवह केन्द्र और मस्तिष्क तक विकृति पहुँच जाती है, तथा रोगी शक्तिरहित, विनष्टज्ञान होकर अनिच्छापूर्वक महा कष्टसे जीवित रहता है। उपदंशसूर्यका उपयोग ऐसे पोसाश्रित और अस्थिगत व्रण-पर अत्युत्तम हुआ है। इसके सेवन समयमें घी का उपयोग कुछ अधिक करना चाहिये।

गुदशूक (Condyloma) विकारमें गुदाके बाहर पुष्प-पल्लव के सदृश सफेद और पतली त्वचाओंकी वृद्धि होती है। यह वृद्धि एक दूसरे पर अधिक अधिक होकर फूलगोभीके सदृश गुच्छेदार बनता है। यह रोग उपदंशके विषसे निर्माण होता है। सामान्यतः रोगी इसे अर्श होना कहते हैं। परन्तु अर्शके मस्से और यह शूकवृद्धि दोनोंमें सादृश्यता कुछ भी नहीं है। संप्राप्ति और लक्षण दृष्टिसे भी महदन्तर है। इस गुदशूक विकारपर उपदंशसूर्यका उत्तम उपयोग होता है।

पुराना तालुव्रण उपदंशजन्य होनेपर उसपर उपदंशसूर्यका प्रयोग करनेसे व्रणशमन होनेमें सहायता मिलती है। उपदंशके योगसे उत्पन्न दृष्टिमान्द्य, अन्धता या नेत्र व्रण, नेत्रकी लाली, पक्ष्मव्रण आदि उपद्रव उत्पन्न होने पर त्रिफला और घीके साथ उपदंशसूर्यका प्रयोग करना चाहिये। एव त्रिफलाके क्वाथसे नेत्रोंको धोते रहना चाहिये। नेत्रकी भाँफणीके समीप उत्पन्न होनेवाला जीर्ण नाड़ीव्रण (नासूर) विविध कारणोंसे उत्पन्न होता है। इनमेंसे उपदंशज व्रणका रोपण उपदंशसूर्यके सेवनसे होजानेके उदाहरण मिले हैं।

उपदंशके विषका परिणाम वातवह मण्डल, वातचक्र और वातवाहिनियोंपर होकर वातप्रकोप होता है। फिर पक्षाघात या कलायखञ्ज के समान लक्षण होते हैं। कितनेक रोगियोंके सर्वाङ्गमें बिल्कुल शक्तिहीनता आजाती है। कफप्रकोप अधिक होने पर रोगीको घबराहट और अशान्ति बनी रहती है। रोगी एक स्थानमें पड़ा रहता है। तन्द्रा, जड़ता, विचार करनेकी शक्तिका ह्रास आदि लक्षण होते हैं। ऐसी परिस्थितिमें उपदंशसूर्यका प्रयोग सारिवादि शारकर या रक्तशोधकारिष्टके साथ करना चाहिये।

परिवर्तित ज्वर बार-बार आता रहता है। १-२ सप्ताह तक

ज्वर नहीं रहता, फिर आजाता है। इस तरह रोगीको त्रास देता रहता है। इस ज्वरमें कफप्रधान लक्षण होनेपर उपदंशसूर्यका उपयोग करना चाहिये। मात्रा अति कम देनी चाहिये।

पीतज्वर (Yellow fever) पर इस औषधका प्रयोग करना चाहिये। यह ज्वर सक्रामक है। विशेषतः बड़ी जातिके मच्छर (Aedes aegypti) के काटने पर होता है। इसमें सर्वाङ्गमें त्वचा पीले वर्णकी होजाती है, कामलाके लक्षण प्रकाशित होते हैं शीतसह ज्वर आता है, तथा मुख, नाक और आमाशयमेंसे काले रंगका रक्तस्राव (Black Vomit) होता है। इसकी उत्पत्ति अमेरिकाके उष्णता-प्रधान देशोंमें होती है। यह ज्वर विशेषतः भारत में नहीं होता। (औ० गु० ध० शा०

दूसरी विधि—सोमल ॥ तोले और भेड़का दूध ॥ सेर लेवें। थोड़ा-थोड़ा दूध मिलाकर खरल करते रहें। लगभग २०–२५ दिनमें सब दूध मिल जानेके पश्चात् जब रबड़ी जैसा गाढ़ा दूध होजाय, तब ५०० गुलाबके फूल मिलाकर खरल करें। फिर गोली बनाने लायक होने पर १–१ रत्तीकी गोलियाँ बनावें। (पं० लक्ष्मीनारायणजी आ० भू०)

मात्रा—२ से ४ गोली दिनमें २ बार दूधके साथ देवें।

उपयोग—यह रसायन जीर्ण उपदंशके उपद्रव, सन्धिवात, पक्षाघात, रक्तविकार, कुष्ठ, नेत्रोंमें लाली, तालुव्रण, गुदा पर पुष्प समान गुदशूक होजाना, दुष्टव्रण, विद्रधि, अन्तर्विद्रधि आदि संपूर्ण भयंकर उपद्रवोंको थोड़े ही दिनोंमें दूर करता है। पहली विधिके प्रयोग और इस प्रयोगमें गुण लगभग समान हैं। दाह, वृक्कविकृति, आमाशय रस में उग्रता आदि कारणोंसे कितनेक रोगियोंको पहली विधि वाली ओषधि अनुकूल नहीं रहती, तब यह निर्भयतापूर्वक दीजाती है।

सूचना—गरम-गरम भोजन, गरम चाय, मिर्च, खटाई और नमकका त्याग करें। भोजनमें थोड़ा सेंधानमक लें।

(१२८) उपदंशकुठार वटी।

बनावट—नीलेथोथेका फूला, छोटी हरड़, काबुली हरड़ और सोहागेका फूला १–१ तोला और कौड़ी भस्म ४ तोले मिला, ३ दिन नीबूके रसमें खरल कर १–१ रत्तीकी गोलियाँ बनावें।

मात्रा—१ से ४ गोली सुबह-शाम ७ दिन ठण्डे जलके साथ दें।

उपयोग—यह वटी नये और पुराने उपदंश रोगको दूर करती है। एवं पुराने उपदंश रोगके उपद्रव—दृष्टिमांद्य, नेत्रलाली, फोड़ा-फुन्सी, संधिवात, अतिसार, संग्रहणी, मूत्र पिंडकी विकृति, रक्तविकार आदिको

भी नष्ट करती है।

सूचना—नीलेथोथेमें वमन करानेका दोष है। वह नीबूके रसके संयोग से कम होजाता है, फिर भी किसीको उबाक हो, तो नीबू या तेलका सेवन करे। विशेष सूचना तुत्थ भस्म में देखे।

(१२६) रसकपूर।

प्रथम विधि—शुद्ध पारा, कच्ची फिटकरी, सेंधानमक और कसीस समभाग, और नौसादर २० वाँ हिस्सा मिलाकर घीकुंवारके रसमें ६ घण्टे खरल कर डमरूयन्त्र और वालुकायन्त्र द्वारा उड़ा लेवें।

(आ० नि० मा०)

सूचना—डमरू यन्त्रको केवल २-३ घण्टे अग्नि देकर रसकपूर उड़ा लेवे। फिर यन्त्रको खोल ऊपर लगे हुए रसकपूरको निकाल पुनः बन्द कर ३ घण्टे अग्नि देकर शेष रसकपूर को उड़ा लेवे। पश्चात् उस रसकपूर को कपड़मिट्टी लगी हुई बोतल में भर ईंटका मजबूत डाट लगा, वालुकायन्त्रमें रख १२ घण्टे मन्द और मध्यम अग्नि देकर उड़ा लेवे। इस तरह दूसरी वार उड़ाने पर रसकपूर उत्तम प्रकारका बनता है। तेज अग्नि न लग जाय, यह सम्हालें, अन्यथा पारद पृथक् होजायगा।

मात्रा—१/१६ से १/८ रत्ती तक दूसरी औषधिमें मिलाकर दें।

दूसरी विधि—डाक्टरीमें हाइड्रार्जिरी परक्लोराइडम् (Hydrargyri Perchloridum) नामकी औषधि आती है। उसका दूसरा नाम कारोसिव सब्लिमेट (Corrosive Sublimate) है, जिसे यूनानीमें दालचिकना कहते है। वह भी एक प्रकारका रसकपूर ही है। बनानेकी विधि निम्नानुसार है:—

शुद्ध पारद २० औंस और गन्धकके तेजाब १२ औंसको एनेमलके (लोहेकी सफेदी लगे) पात्रमें मिलाकर चूल्हे पर चढ़ावे। थोड़ी आँच लगने पर अपने आप अग्नि लग कर सफेद धुआँ निकलने लगेगा। तेजाब जल जाने पर नीचे उतार लेवे। इसे डाक्टरीमें परसल्फेट आफ् मरकरी (Persulphate of Mercury) कहते है।

इस परसल्फेट आफ मरकरी २० औंसको सेंधानमक Sodium Chloride) ६६ औंसके साथ मिलावे। फिर उसमें ब्लैक आक्साइड आफ मैंगेनीज (Black Oxide of Manganese पत्थरके कोयले) १ औंस मिला अच्छी तरह खरल कर हरी आतशी शीशीमें भर वालुकायन्त्रमें रखें। पश्चात् यथाविधि १२ घण्टे अग्नि देकर उड़ा लेनेसे रसकपूर तैयार होजाता है। इसे नीले कांचकी शीशीमें या नीला

कागज रक्खी हुई शीशीमें भर कर सम्हालपूर्वक रक्खे ।

स्व० प० हरिप्रपन्नजीने लिखा है कि, पारदकी ४ गुने गन्धक के तेजाब में ऊपरकी विधि से भस्म कर फिर भस्मके समान सेंधानमक मिला आतशी शीशीमें भर ६ घण्टे अग्नि देनेसे रसकपूर ऊपर लग जाता है।

उपयोग--यह रसकपूर रक्तविकार, कुष्ठ, उपदंश आदि रोगों में खाने तथा घाव को सुखानेवाले कीटाणुनाशक मलहम और घाव धोनेकी औषधिमें मिलानेके लिये उपयोगमें आता है। उपदंशको तो यह विशेष औषध है।

सूचना--रसकपूर वाली औषधके सेवनकालमें गेहूँका फुलका, घी, दूध, शक्कर और भात खायें। तेल, मिर्च, खटाई, नमक आदिका त्याग करें। थोड़ा सेंधा नमक मिलाना चाहे, तो गेहूँके आटेमें मिलावे।

रसकपूरका उपयोग बहुत कम मात्रा में करना चाहिये। मात्रा ज्यादा देनेसे मुँह आना, मसूड़ोंमें सूजन, दाँतोंमेंसे रक्त गिरना, जीभ मोटी होना, श्वासमें दुर्गन्ध, मुँह पर सूजन, कोष्ठ और मूत्रमें जलन, थूकमें रक्त आना, उदरमें तीक्ष्ण पीड़ा आदि विकार होजाते हैं। यदि बहुत ज्यादा परिमाणमें दिया जायगा, तो हृदयावरोध, होठ काले होना, शरीर पसीनेसे भीग जाना, पेशाब बन्द होना आदि उपद्रव उत्पन्न होकर रोगीकी मृत्यु होजाती है।

यदि रसकपूरका तीक्ष्ण असर होजाय--मुँह आजाय या अन्य उपद्रव उत्पन्न होजायँ, तो दूध, अंडेकी सफेदी आदि पौष्टिक पदार्थका सेवन करना चाहिये, तथा बबूल या बेरकी छालके क्वाथमें फिटकरी और नीलाथोथा मिलाकर कुल्ले करना चाहिये।

(१३०) अमीर रस।

बनावट--रसकपूर, सिंगरफ, दालचिकना और सुनहरी गोटा, चारों १-१ तोला ले। रसकपूर, सिंगरफ और दालचिकनेको कुछ कूट कर मूँग-मूँग जितने टुकड़े करे। गोटेमेंसे सूत निकालदे। फिर कतरकर सूक्ष्म-सूक्ष्म टुकड़े करे। पश्चात् लोहेके मोटे तवे पर ४ तोले सैंधानमक बिछाकर ऊपरसे रसकपूर वाले टुकडोंको फैलादें; उनको गोटे से ढक दे, और ८ तोले सैंधानमकसे चारों ओर किनारा इस तरह बाँधे कि इस घेरेको ऊपर रखी हुई प्याली लगती रहे। फिर चीनी मिट्टीकी प्याली ढक दे,। तत्पश्चात् ४-८ तोले या अधिक सैंधानमक और १-२ तोले कतीरा गोंदको जलमें भिगो तवा और प्यालीकी सन्धिको दृढ़

बन्द करे। (कितनेक चिकित्सक कतीरा नही मिलाते)। फिर यन्त्रको चूल्हे पर चढ़ा बेरकी लकड़ी (पैरके अंगूठे जैसा मोटा) को १२ घण्टे तक मन्द-मन्द अग्नि देवे। पश्चात् स्वांग शीतल होनेपर ऊपरकी प्याली में लगे हुए अमीर रसको निकाल लेवे। कितनेक चिकित्सक प्याली रखनेके समय उसके भीतर मट्ठा (तक्र) लगा लेते है। (सि० यो० म०)

वक्तव्य—मूल ग्रन्थकारने जो विधि लिखी है, उस तरह बनाने में बहुत कम तैयार होता है। एव अनेक बार पारद कुछ अशमें पृथक् होजाता है, इस तरह रसायनका वियोजन होने पर उसके सेवन से मुँह आ जाता है, अतः हम निम्नानुसार विधि से तैयार कराते हैं —

रसकपूर, दालचिकना, सिगरफ, १०-१० तोले, सोमल २॥ तोले और सैंधानमक ५ तोले। रसकपूर और दालचिकना को कल्याण रसायनशाला में तैयार कराते है। सैंधानमक भो दालचिकना के साथ मिलाया हुआ लेते हैं। सबको मिला बड़े उदर वाली कपड़मिट्टी की हुई आतशी शीशी में भर वालुकायन्त्र में रख कर तैयार करते हैं। धुआँ निकले तबतक डाट बिना चिपकाया हुआ रखते है। फिर डाट को दृढ़ करके ६ घण्टे मध्यमाग्नि देते हैं।

यह रसायन सुन्दर सफेद बनता है। दालचिकना के भीतर मिले हुए गन्धक के तेजाब में से कुछ अंश पीले गन्धक रूपसे पृथक् होजाता है।

सुनहरी गोटा मिलाने पर वह नीचे रह जाता है, उसका कोई विशेष गुण अमीर रसमें नही आता। सोमल के संयोग से गुण में अति वृद्धि होती है। इस हेतु से हम सोमल मिलाते है। फिर भी किसी को सुनहरी गोटे के तन्तु मिलाना हो, तो भी बन सकेगा।

मात्रा—½ से २ रत्ती मुनक्कामें रख सुबह १ बार निगल जायँ। दाँतोको न लगे, यह सम्हाले। ७ से १४ दिन तक सेवन करे।

उपयोग—इस रसायनके सेवन से उपदंश, सन्निपात और उपदंशजनित एक-दो वर्षके भीतर उत्पन्न हुए रक्त और मांस तक पहुँचे हुए उपद्रव थोड़े ही दिनोमें दूर होजाते हैं। उपदंशके लिये अति लाभदायक ओषधि है। भोजनमें गेहूँका फुलका, गायका दूध और मिश्रीके सिवा कुछ भी नही लेना चाहिये।

सूचना—पारद का वियोजन होने पर सेवन कराने से कदाच मुँह आजाय तो बबूल की छाल या बेर की छाल या चमेली के पान के क्वाथ से दिन में ३-४ बार कुल्ले करावे प्रत्येक वार २५-५० कुल्ले करावे।

(१३१) मल्लादि वटी ।

प्रथम विधि—पीला सोमल १ तोला और सफेद कत्था ३ तोले मिलाकर कज्जली करें। फिर नागरवेलके पान के रसमें ३ दिन खरल करके आध-आध रत्ती की गोलियाँ बनावे। (र० यो० ना०).

मात्रा—१-१ गोली दिनमें २ बार नागरवेलके पानके साथ दे।

उपयोग—यह वटी जीर्ण उपदंशके उपद्रव, सन्धिवात पक्षाघात, गुदशूक, तालुव्रण, वातविकार, कफवृद्धि, मन्दाग्नि, कुष्ठ, गलत्कुष्ठ, रक्तविकार नाडीव्रण, नेत्रव्रण दुष्टव्रण आदि सबको १ मासमें नष्ट करता है। उपदंशजनित ५-७ वर्षके जीर्ण उपद्रव भी इस औषधसे दूर होनेके अनेक उदाहरण मिले हैं।

सूचना—गोदुग्धके अलावा भोजनमें कुछ भी न लें।

(१३२) पंचनिम्ब चूर्ण ।

बनावट—निम्ब पञ्चाङ्ग (जड, पत्ती, फूल, फल और छाल) ६० तोले, लोह भस्म, छोटी हरड, पुवाडके बीज, चित्रकमूल, भिलावा, वायविडंग, मिश्री, आँवला, हल्दी, पीपल, कालीमिर्च, सोंठ, बावची, अमलतासका गूदा और गोखरू, ये १५ औषधियें ४-४ तोले मिला कर चूर्ण करें। फिर लोहभस्म मिला भाँगरेके रस और खैरकी छालके अष्टमांश काढ़ेकी १-१ भावना देकर सूखा चूर्ण बना लेवे। (शा० सं०)

मात्रा—६ माशेसे १ तोले तक खैरकी छालके काढ़ेके साथ दें।

उपयोग—इस चूर्णके सेवनसे सब प्रकारके कुष्ठरोगोंका एक मासमें शमन होता है, दर्पविषके उपद्रव रूप और पाचनक्रिया-विकृति से होनेवाले कुष्ठ, सब दूर होते हैं, एवं भगन्दर, श्लीपद, वातरक्त, नाड़ीव्रण, विषप्रकोप, सब प्रकारके प्रमेह, रक्तविकार, उपदंशके उपद्रवरूप कुष्ठ, प्रदर, शिरदर्द उदर पर मेदवृद्धि और कृशता आदि रोग भी नष्ट होते हैं। इस चूर्णके सेवन से रोगी सब प्रकारके रोग (पंचेन्द्रिय की विकृतिजनित और त्वचारोग) तथा जरावस्थाकी निर्बलता से मुक्त होकर चन्द्रके समान कान्तिवाला बनता है।

(१३३) हरताल रसायन (रस माणिक्य) ।

बनावट—बिना शोधी हुई तबकिया हरतालका चूर्ण करें। फिर अभ्रकके समान आकारके दो पतरे लें। इनके बीचमें मोटे कागज जितनी मुटाई हो उतना हरताल का चूर्ण फैला दोनों पतरोंको दबाकर गोबरकी निर्धूम अग्नि पर रखें। तीन तीन मिनट पर पलटते रहें। तीन बार पलटनेसे माणिकके समान हरतालका रंग होजाता है। साफ

रंग होने पर अग्नि परसे उतार लेवें। ठण्डा होने पर माणिक रस निकाल लेवे। (आ० नि० मा०)

मात्रा—१ से २ रत्ती कफज ज्वरमें नागरवेलके पान के साथ तथा कुष्ठ और रक्तविकार आदि में गोघृत और शहदके साथ दे। ऊपर खैर की छालका क्वाथ पिलावे।

उपयोग—इस रसायनके सेवनसे वातश्लेष्म ज्वर, विषम ज्वर, सन्निपात, श्वास, कास, हृदयावरोध, फूटा और गला हुआ कुष्ठ, वातरक्त, भगन्दर नाड़ीव्रण, दुष्टव्रण, उपदंश, विचर्चिका नाक और मुँह के रोग, भयङ्कर क्षत (घाव) और पुण्डरीक कुष्ठ, चर्मदल कुष्ठ, विस्फोटक और मण्डल कुष्ठ थोडेही दिनोंमें नाश होजाते हैं।

श्वेतकुष्ठ पर लेप करने के लिये—१ भाग हरताल रसायन और दो भाग बावची का चूर्ण मिला गोमूत्र में खरल कर वर्ति बनावे। फिर उसे गोमूत्रमें घिस कर लेप करते रहें। २-३ दिन में वहाँ पर फाले होजाते हैं। पश्चात् औषध का लेप बन्द करे और वहाँ पर मक्खन लगाते रहें। फाले मिटने पर पुनः लेप करे। इस तरह ३-४ बार करने पर सफेद दाग निर्मूल होजाते हैं।

सूचना—कुष्ठ और रक्तविकारमें रोगीको नमकरहित भोजन (दूधभात) देनेसे सत्वर लाभ होता है।

(१३४) मंजिष्ठादि तालसिन्दूर।

बनावट—तालसिन्दूर ४ तोले और बृहद् मंजिष्ठादि क्वाथका चूर्ण ४ तोले मिलावे। पश्चात् बृहद् मंजिष्ठादि चूर्ण ६-६ तोलेको अष्ट गुण जलमें मिला अष्टमांश क्वाथ कर ३ भावना देकर मूँगके समान गोलियाँ बनावे। (आ० नि० मा०)

मात्रा—१ से २ गोली दिन में ३ बार जलके साथ देवे।

उपयोग—यह रसायन कुष्ठ, उपदंश, रक्तविकार और त्वचाके रोगोंको दूर करता है। यह उपदंशके जीर्ण विकार रूप कुष्ठ और वात-कफ-प्रधान कुष्ठमें थोड़ेही दिनोंमें लाभ पहुँचाता है। विशेष गुण तालसिन्दूर में लिखे हैं।

(१३५) सूतशेखर रस।

बनावट—शुद्ध पारा शुद्ध गन्धक, सोहागेका फूला, शुद्ध बच्छनाग, सुवर्ण भस्म, ताम्र भस्म, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, शुद्ध धतूरेके बीज, दालचीनी, तेजपत्र, नागकेशर, इलायची, बेलगिरी, शंख भस्म, कचूर, इन १७ ओषधियोंको सम भाग मिला भाँगरेके रसमें १२ घण्टे

घोटकर एक-एक रत्तीकी गोलियाँ बनावें।

सूचना—भाँगरेके रसको निकाल कुछ समय तक स्थिर रहने देवें; जिससे स्थूल अंश तलमें बैठ जायगा। फिर कपडेसे छानकर मिलाना चाहिये।

वृद्ध परम्परा अनुसार सूतशेखरकी घोटाई २१ दिन तक करानेका रिवाज है। अधिक खरल होनेसे यह रसायन आशु फलप्रद बनता है।

मात्रा—१ से ३ गोली दिनमें २ से ३ बार दूध-मिश्री, घी और शहद अथवा रोगानुसार अनुपानके साथ देवें।

अम्लपित्तमें सूतशेखर, अपामार्ग क्षार, लोटिया सज्जी (सोडा बाई कार्ब) और गुलकन्दके साथ दिनमें ३ बार देवें। अथवा प्रवाल-पिष्टी, अमृतासत्व और द्राक्षावलेहके साथ मिलाकर प्रातः सायं देना चाहिये।

उपयोग—इस रसायनके सेवनसे अम्लपित्त, वमन, शूल, पाँचों प्रकारके गुल्म, पाँचो प्रकारकी खाँसी, संग्रहणी, दाह, त्रिदोषज अति-सार, श्वास, मन्दाग्नि, भयंकर हिचकी, उदावर्त, ज्वर, क्षय आदि रोग ४० दिनमें निःसंदेह मिटते हैं।

सूतशेखर पित्तकी अम्लता और तीक्ष्णताका शमन करता है, एवं वातप्रकोपको भी नष्ट करता है, जिससे वातपित्तात्मक विकारोंको दूर करनेमें यह अत्यन्त हितकर है। यह रसायन आमाशय और पित्ता-शयमें पित्तप्रकोपका शमन करके पित्तोत्पत्तिको नियमित बनाता है; जिससे अम्लपित्त, खट्टी वमन, पित्तवृद्धिसे उत्पन्न होनेवाला कोष्ठस्थ शूल, हिक्का, उदावर्त, पित्तज शिरःशूल, दाह, घबराहट, चक्कर आना, निद्रानाश, पित्तज उन्माद, नाकमें से होने वाला रक्तस्राव, मुँहमें छाले होना, शीतपित्त आदि रोग नष्ट होते है। एवं यह पित्तशामक, हृद्य और संग्राह्य होनेसे मधुरा, सूतिकारोग, क्षयकी प्रथमा और द्वितीया-वस्था, पित्तातिसार, रक्तातिसार, ज्वरातिसार, नया पित्तज ग्रहणी रोग आदिमें सेन्द्रिय विषको नष्ट करके दस्तको बाँधता है, दाहको कम करता है, और ज्वरका शमन करता है। वातपित्तात्मक सूखी खाँसी, जो घण्टा तक आती रहती है, जिसमें कफ नहीं निकलता, जो सोनेके समय अधिक त्रास पहुँचाती है, उसे और पित्तप्रधान श्वास रोगको भी यह दूर करता है। पित्ताशय कमजोर होजानेसे पित्तोत्पत्ति कम होती है। उस हेतुसे अरुचि, मन्दाग्नि, निर्बलता आदि रहते हों, तो वह भी इस रसायनके सेवनसे नियमित होती है।

समीरपन्नग, पंचसूत और मल्लसिंदूर, तीनों सिंदूर कल्पकी ओषधियाँ उत्तेजक है। कज्जली कल्पमेंसे महावातविध्वंसन, एकाङ्गवीर,

स्मृतिसार और सूतशेखर, चारों शामक है। वातविध्वंसनका शामक कार्य वातवाहिनियों और वातवहमण्डल पर होता है। एकाङ्गवीर वातवाहिनियों और मांस संस्थाके क्षोभ विकारमें लाभदायक है। स्मृतिसागर व कफमूयिष्ठ पक्षाघात, आक्षेपक, अपतानक आदि वातप्रकोपका शमन करता है, तथा सूतशेखर पित्त और वातपित्तात्मक व्याधियोंमें विशेषतः मध्यम कोष्ठ के भीतर पचनक्रिया करने वाले अवयव समूह पर शामक असर पहुँचाता है। इस शामक शब्दका तात्पर्यार्थ अधिक स्पष्ट करनेकी आवश्यकता है।

यह औषध अफीमके समान तीव्र शामक नहीं है, इसलिये इसके सेवनके पश्चात् तीव्र प्रतिक्रिया भी नहीं होती। अफीम तीव्रशामक होनेसे सेवन करने पर स्वल्प समय में ही शामक गुण प्रदर्शित करती है, और वेदनाका शमन करती है। परन्तु वेदना जितनी जल्दी कम होती है, उतनी ही जल्दी पुनः जाग्रत होजाती है, जिससे रोगीको पुनः संताप होने लगता है। इतना ही नहीं, क्वचित् वेदना अधिक तीव्र होजानेका भी अनुभवमें आया है। ऐसी शामक औषधका परिणाम वातवाहिनियोंकी संवेदना-शक्तिको कम करनेके लिये होता है। रोगके मूल कारण या वेदनाके मूल कारणका नाश इनसे नहीं होता। किञ्चित् कालपर्यन्त संवेदनाका ह्रास होजानेसे उस स्थानकी पीड़ाका रोगीको बोध नहीं होता। शामक औषधमें जितनी अधिक तीव्रता हो, प्रतिक्रिया भी उतनी ही तीव्र होती है। रबरकी गेंद जितने बलसे पटको उतने ही बलसे वह उछलती है। उस न्यायानुसार तीव्र शामक औषधकी तीव्र प्रतिफलित क्रिया होती है।

परन्तु सूतशेखर आदि शामक औषधियोंकी शामकता इस तरह की है कि इसके योगसे वेदनाके मूल कारण रूप जो विकार है वही दूर होता है, और वेदनाका निवारण होता है। उदाहरणार्थ सूतशेखर अम्लपित्तमें शामक है। इसमें उदरपीडा और उदरमें दर्द होकर वान्तिके साथ अम्लपित्त पडता है, यह लक्षण बहुधा मुख्य होता है। इस विकारमें उदरमें दर्द, यह लक्षण वात और पित्तके संयोगसे होता है। इस स्थानपर अनेक भिन्न-भिन्न प्रकारकी योजना शामक और संशोधक रूपसे की जाती है। इनमें तीव्र शामक या केवल पित्तकी अम्लता कम करनेवाले स्निग्ध द्रव्य आदिका परिणाम केवल कामचलाऊ होता है। यदि यथोचित सच्चा शुद्ध प्रयोग करना हो, तो दोषप्रत्यनीक चिकित्सा करनी चाहिये। वात और पित्त ये दो दोष आमाशयमें बढ़ने

पर अम्लता और वेदना ये दो प्रमुख लक्षण उपस्थित होते हैं। ये ही दोष पक्काशयमें बढ़ने पर लक्षण पृथक् होजाते है । वेदना तो होगी ही; परन्तु अम्लताके स्थानमें अच्छधातु-वृद्धि होगी, और अतिसार हो-जायगा । अथवा स्थूल वायु वृद्धि होकर आध्मान होजायगा । यहाँ पर पाचक पित्त और समान वायुका कार्यक्षेत्र होनेसे उनमें दुष्टि उत्पन्न होती है, तथा पाचक पित्त और समान वायु (धातु रूप जो हैं वे) अपने साम्यको स्थिर रखनेके लिये प्रयत्न करते हैं। विकारको निर्दलन करनेकी चेष्टा (लड़ाई) करने पर उस स्थान पर युद्धके आविष्करण होने पर ये लक्षण उपस्थित होते है । पाचक पित्तमें अम्लता बढना, यह पित्तविकारका लक्षण है, और अन्न ग्रहणकार्य विकृत होना, यह समान वायुका दोपलक्षण हैं। इस दुष्टावस्थाको दूर करनके लिये जीवनीय शक्तिका प्रयत्न चालू रहता है। इस हेतुसे अम्लता और वेदना उत्पन्न होती हैं । सूतशेखरके द्रव्य-समूहोंका परिमाण पित्तकी अम्लता और समान वायु, दोनों पर होता है । जो औपधि आमाशयस्थ पित्तवृद्धि पर उपयुक्त होती है, वही औषध पक्काशयगत वातपित्त-वृद्धि पर भी शामकता दर्शाती है । इन-इन स्थानोंमें मुख्य धातुओंकी साम्यावस्था स्थापित करना यह सूतशेखरका विशिष्ट कार्य है। इससे वातवाहिनियाँ बधिर नहीं होती, वातवाहिनियोंमें वातवहन कार्य व्यवस्थित होता है। जिस तरह लवणके योगसे पित्तस्रावकी अम्लता नष्ट होकर मधुरता आजाती है, उस तरह इस ओषधिसे रूपान्तर न होकर मूल पित्तधातु व्यवस्थित होती है। फिर अम्लपित्तमें अधिक बढ़ी हुई अम्लता स्वयमेव शमन होजाती है ।

बढे हुए दोपोंकी चिकित्सा करनेमें जो क्षणिक शामक औषध हो, जिसका प्रयोग दोपोंके वृद्धि ह्रास रूप वैषम्य (जिस तरह की विपमता हो उस मूल-विकृति) का शमन करने वाला हो, उससे चिकित्सा करनी चाहिये । दोषका शमन अर्थात् किसी एक स्थानमें उत्पन्न विकृत द्रव्यका शमन नहीं है, एवं विकृत हुए अवयवोंका शमन भी नहीं हैं, परन्तु जिसके योगसे अवयवोंमें विकृति होती है, और विकृत द्रव्य उत्पन्न होता है, जो सम स्थितिमें रहने पर देहका संधारण करते है, तथा जिनमें वैपस्य होने पर जो दोषरूप कहलाते है, उन मूल धातुओ के वैपम्यको नष्ट कर धातुओंको मूल स्थितिमें प्रस्थापित करना, वही सच्चा दोषशमन है। यह कार्य अत्यन्त सूक्ष्म परमाणुपर्यन्त होता है । अम्लपित्तमें वेदना और अम्लताका इतना गहराईमें सम्बन्ध होनेसे ऊपर-ऊपरसे कार्य करनेवाली तीव्र शामक ओषधिसे सूतशेखर

की समानता नहीं होसकती। सूतशेखरसे मूल धातुओंके वैषम्यका नाश होकर धातुसाम्य प्रस्थापित होता है। इस तरह यह मूल ग्राह्य चिकित्सा सूतशेखरसे साध्य होती है। यद्यपि सूतशेखरसे कार्य होनेमें कुछ विलम्ब लगता है, परन्तु कार्य होने लगता है। फिर प्रतिफलित क्रिया अधिक सबल नहीं होती। इस हेतुसे इस औषधिसे अधिक विपरीत परिमाणकी प्रतीति नहीं होती।

सूतशेखर शामक होनेसे हृद्य भी है। सूतशेखरका परिणाम वातवाहिनियाँ और रक्तवाहिनियाँ, दोनों पर शामक होता है। रक्त वाहिनियोंका कुछ आकुचन होता है। इस हेतुसे हृदयकी जवाबदारी कुछ कम होकर उसे कुछ विश्रान्ति मिलती है। इस तरह यह हृद्य है। इससे कुछ अधिक स्पष्टीकरणकी आवश्यकता है। किसी भी प्रकारके सान्निपातिक, सङ्क्रामक या सेन्द्रिय विषजन्य ज्वर में हृदयकी क्रिया अधिक वेगपूर्वक होने लगती है। इसका कारण रक्तमें प्रवेशित सेन्द्रिय विष या कीटाणुओंको नष्ट करने या इनका प्रतिरोध करनेके लिये रुधिराभिसरण क्रिया अधिक बलसे होती है। इस हेतुसे हृदयको अधिक काम करना पड़ता है। हृदय और नाड़ी, दोनों बलपूर्वक अधिक कार्य और अधिक स्पन्दन करते हैं। फिर अधिक व्यापारके हेतुसे आगे-आगे हृदयको थकावट आती है, रोगीभी क्लान्त होता है। फिर आगेकी स्थिति शक्तिपातकी है। बुद्धिमानों को चाहिये कि, इस अवस्था की प्राप्ति होने से पहले ही हृदयको सम्हालले। यह कार्य उत्तेजक औषधिसे नहीं होता। उत्तेजक औषधि देनेपर हृदयको उत्तेजना मिलनेसे हृदय-क्रिया अधिक वेगसे होने लगती है, परिणाम में हृदय जल्दी थक जाता है। फिर शक्तिपातावस्थाकी प्राप्ति होती है। हृदयके कार्यमें होनेवाली यह अवस्था वातपित्तात्मक है। ऐसे समय पर हृदय को उत्तेजक औषधि नहीं देनी चाहिये। यह एक प्रकारकी हृदय क्रिया ही है। सूतशेखरके सदृश औषधिसे हृदयकी क्रिया कम होजानेसे कुछ अंशमें विश्रान्ति मिलती है, और वह सबल बनता है। इस दृष्टि से हृद्य औषधियोंमें सूतशेखर सुउत्तम औषधि है।

सान्निपातिक ज्वरोंमें विशेषतः आन्त्रिक सन्निपात में सूतशेखर का महत्वका उपयोग होता है। वह यह है कि, इस रोगके निमित्त कारण रूप कीटाणुओंका प्रतिकार होता है। रक्तमें कीटाणुजन्य विषसे और दोषप्रकोपसे रक्ताभिसरण क्रिया वेगवती होती है। इस हेतुसे सान्निपातिक ज्वरोंपर सूतशेखरके शामक गुणका उपयोग होता है।

(जब आन्त्रिक सन्निपात—मधुरा में पित्तप्रकोपकी प्रधानता हो तब इसका उपयोग होता है। निद्रानाश, अति पीला जलता हुआ पतला दस्त, तृषा, चक्कर आना, शीर्षशूल, प्रलाप आदि लक्षण होनेपर सूतशेखर, प्रवालपिष्टी और अमृतासत्त्व मिलाकर दिये जाते हैं। इस तरह रक्त-पित्त के लक्षण उपस्थित हों, रक्तस्राव होने लगे, तो कामदुधा और रक्तकमलके फूलों के अवलेह के साथ सूतशेखर दिया जाता है।)

यदि आन्त्रिक ज्वरमें अधिक दाह और शुष्ककास हो, शौच-शुद्धि न होती हो, और पेशाबमें अधिक पीलापन या लाली हो तो सारिवा, नागरमोथा, हरड़की, चिरायता और धमासा ३-३ रत्ती मिला क्वाथकर फिर शक्कर मिलाकर सुबह शाम देते रहनेसे ज्वरविषको दूर करनेमें सहायता मिल जाती है।

सूतशेखरका कार्य सहस्रार और वातवाहिनियोंपर शामक होता है। इनमें भी हृदय, फुफ्फुस आमाशय और अन्त्रपर अधिकार रखने-वाली वातवाहिनियोंपर विशेष कार्य होता है।

सूतशेखर देने योग्य वातवाहिनियों और वातनाडीकेन्द्र विकृति के रोगीके मस्तिष्ककी स्थिति अति विलक्षण होती है। यह उन्माद-रोगीके सदृश भ्रमपीड़ित और जड़सा होता है। कुछ विलक्षण, असम्बद्ध और अस्पष्ट बोलता है। ऐसे रोगीके प्रलापमें एक विशेष विलक्षणता यह है कि, उसे सचेत करनेपर वह शुद्धिपर आजाता है; और नेत्र बन्द होने, तन्द्रा आने या निद्राके लक्षण प्रतीत होनेपर बड़-बड़ करने लग जाता है। वातविध्वंसन देने योग्य रोगीका प्रलाप सर्व अवस्थामें सम रहता है, रोगीको बिल्कुल शुद्धि नहीं रहती, बेशुद्धिमें निरन्तर बकवाद करता रहता है। कोई-कोई बार रोगी स्वच्छन्द, क्रुद्ध होकर मारना, काटना, जोरसे चिल्लाना, रोना, भागना आदि कार्य करने लगता है। यह अवस्था केवल वातवृद्धिसे होती है। इसपर रोगी-को महावातविध्वंसन देना चाहिये। सूतशेखरसे कार्य नहीं होता।

निद्रामें बोलते रहना, करवट लेकर शयन करनेपर प्रलाप, अर्द्धावभेदक, नेत्रमें दर्द आदि लक्षणोंके साथ आधी तन्द्रा होनेपर सूतशेखर अप्रतिम औषधि है।

भ्रम (चक्कर) रोग होनेपर भूमण्डल फिरनेका भास होता है; अथवा कुम्हार चाकको जैसे भ्रमण कराता है, या काटेमें डालकर वस्तु तोलनेके समय जैसे दण्ड ऊपर नीचे होता रहता है, उस तरह रोगीको भ्रमण या गतिका भास होता हो, इसपर सूतशेखर अति उत्तम कार्य

करता है। यह भ्रमणावस्था कभी-कभी इतनी बढ़ जाती है कि, शय्या पर पड़े रहने पर भी अपनेको कोई फेंक देता है, या चक्कर-चक्कर फिरा रहा है या बांध रहा है, ऐसा भ्रम हो जाता है। इस अवस्था पर सूतशेखर अमृत सदृश हितकारक ओषधि है।

कोई भी कार्य प्रारम्भ करने, पुस्तक पढ़ने और दूसरेके साथ वार्त्तालाप करनेपर मस्तिष्कको थकावट आजाना, शिरमें बारबार चक्कर आना, यह इतने तक कि चलते-चलते समतोलपनेका भंग होकर एक ओर गिर जायेंगे कि क्या, ऐसा लगना। यहाँपर समतोलपना चला जायगा, ऐसा भासता है, परन्तु नष्ट नहीं होता और रोगी गिर नहीं जाता। यदि समतोलपना नष्ट होकर बेहोशी आजाती है, तो स्मृतिसागर देना चाहिये; सूतशेखरसे पूर्ण लाभ नहीं होता। समतोलपना नष्ट होनेका भासना या भ्रमणावस्थाकी वृद्धि हो, नेत्रके समक्ष अंधकार छाजाता हो, सर्वत्र अंधकार फैल जाता हो, रोगी को ऐसा भास होता हो कि, मैं गाढ़ अँधेरेमें किसी कोने में पड़ा हूँ। यह स्थिति निमिषमात्र रहती है, फिर नेत्रके समीपका अन्धकार कम होजाता है; और रोगी पूर्ण शुद्धि पर आजाता है। इस पर सूतशेखरका उपयोग होता है। स्मृतिसागरके योग्य रोगीको पहले चक्कर आना, नेत्रके पास अन्धकार छाजाना, फिर पूर्ण होश होजाना आदि लक्षण होते हैं। यह दोनोंके कार्यमें अन्तर है।

आक्षेपक वातमें झटके अधिक आनेपर सूतशेखर उपयोगी होता है। इस रसायनसे झटके बन्द होते हैं। केवल ये वातपित्तात्मक होने चाहिये। छोटे बच्चेके बालग्रहमें आनेवाले झटकेमें सूतशेखरका उपयोग अधिक होनेका अनुभवमें नहीं आया। परन्तु बड़े मनुष्य, विशेषतः स्त्रियोंको होनेवाले उन्मादके सौम्य झटके या हिस्टीरियाके झटके सूतशेखरसे कम होनेके उदाहरण मिले हैं। उन्माद के झटके के वेगको कम करना और जिस दोषसे या दोष-दूष्य संयोगसे उन्माद रोग उत्पन्न हुआ हो, उसका भी शमन करना, ये दोनों कार्य (वातपित्तात्मक दोष का निवारण) सूतशेखरके योगसे होते हैं।

परन्तु सन्यास-रक्तज मूर्च्छामें झटके आने पर सूतशेखर नहीं देना चाहिये। कारण रक्तज मूर्च्छामें मस्तिष्कके भीतर सहस्रार या उसके समीप रक्तका संचय होजाता है। उस पर मस्तिष्कमें रक्तसंचय कम करने वाली रक्तशामक विरेचक और शीतल ओषधि देनी चाहिये। चिकित्सा भी इसी तत्वके अनुसार करनी चाहिये। सूतशेखर से

यह कार्य नहीं होता। उन्मादमें मनोवृत्तिके विभ्रमका कारण वातवाहिनियोंका क्षोभ है। उस पर क्षोभनाशक और वातशामक औषधि देनी चाहिये। सूतशेखरमें ये दोनों गुण अवस्थित हैं।

कितनेक स्त्रियोंको गर्भपातके पश्चात् या कष्टार्त्तवमें उन्मादके सदृश झटके आते हैं, रजःस्राव होनेमें पीड़ा होती है, गर्भाशय संकुचित होनेसे या गर्भकोष्ठमें से गये हुए रक्तके अति बड़े बड़े टुकड़े गिरनेसे वेदना होती है, तथा बीजकोषोंके भीतरसे शूल निकलता है। इस हेतुसे रुग्णा अतिशय क्लान्त और अस्वस्थ होजाती है। यह अस्वस्थता भी सब समय सर्वत्र एक समान नहीं होती। कुछ काल अस्वस्थता अधिक और कुछ समय कम होजाता है अर्थात् अस्वास्थ्य और वेदनाके दौरे आते रहते हैं। चक्कर आना, छाती बांध देनेके समान घबराहट, व्याकुलता बार-बार थोड़ी थोड़ी वमन, वमन होनेमें अतिशय त्रास, वमन होने पर उदरमें ऐंठन और वेदना होना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस पर सूतशेखर लाभ पहुंचाता है। इस तरह अन्य किसी भी कारणोंसे वातके आक्षेप आते हों, और रोगी पूर्णांशमें बेहोश न हो, तो सूतशेखर देना चाहिये।

शिर दर्द, यह लक्षण सामान्य जुकामसे लेकर सहस्रारके आवरणके शोथ पर्यन्त विविध छोटे-मोटे रोगोंमें प्रतीत होता है। सामान्यतः जनसमूहकी प्रवृत्ति शिर दर्द होने पर सूतशेखर लेलेनेकी बढ़ती जारही है। यदि जुकाम से शिर दर्द हो, तो सूतशेखरके सदृश बलवान औषधि न देकर दूसरी सौम्य औषधि या बाह्योपचारसे दर्दको शमन करना हितकारक माना जाता है। यदि मस्तिष्कके आवरण का ही कुछ विकार होनेसे शिर दर्द होता हो, तो भी उस स्थान पर सूतशेखरका कुछ भी विशेष उपयोग नहीं होता। इन दोनो स्थानो पर सूतशेखरका सदुपयोग नहीं होता।

पित्तप्रकोपसे उत्पन्न शिर दर्द पर सूतशेखरका विशेष उपयोग होता है। पित्तदोषका अधिक संचय होनेपर कण्ठमें जलन, वमन, वमन होनेपर शिरदर्द कम होजाना आदि लक्षण होनेपर सूतशेखरका अच्छा उपयोग होता है। यद्यपि वृद्ध पित्त या पित्तकी अम्लताकी वृद्धि होने पर उसे रूपान्तरित करा स्वादुता उत्पन्न करानेका धर्म सूतशेखरमें नहीं है, तथापि सूतशेखरके योगसे पित्तस्राव अधिक होनेकी और उदरमें संचित होनेकी प्रवृत्ति कम होजाती है।

कितनेक मनुष्योंमें शिरदर्दकी व्यथा आनुवंशिक होती है। इसमें

पित्तप्रकोप या संचयके लक्षण स्पष्ट प्रतीत नहीं होते। कुछ विकृति हुई या किसी स्थान पर दोषसंचय हुआ कि, तत्काल शिरदर्द होने लग जाता है। इस वंश-परम्परागत शिरदर्द विकार पर सूतशेखरका अच्छा उपयोग होनेके उदाहरण मिले है।

वातज शीर्षशूलमें वातप्रकोप कारण होता है। वातप्रकोपसे वेदना अति तीव्र होती है, रोगी अति व्याकुल होजाता है। इसमें शिर के भीतर बाहरसे कोई कील गाढ़ता है क्या, ऐसी वेदना सारे मस्तिष्कमें होती है। यह वेदना कोई-कोई बार इतनी असह्य होजाती है कि, रोगी मस्तकको पीटने लगता है और बड़े जोरसे चिल्लाने या रोने लगता है। यदि कचित् वान्ति होजाय, तो तत्काल रोगीको आराम होजाता है। वातज शीर्षशूलमें वान्ति बहुधा नहीं होती और जल्दी शान्ति भी नहीं होती। इस पर भी सूतशेखरका उत्तम उपयोग होता है।

भ्रम, चक्कर, प्रलाप, असम्बद्ध प्रलाप, मानसिक भ्रान्ति और उन्मादके सदृश स्थिति होना, कोई भी बात मनमें आई कि उसका ध्यान होता रहता है; उसका बार बार विचार आकर उसके लिये विचारणा, प्रश्न, या प्रलाप होने लगता है, इत्यादि लक्षण उन्माद या ज्वरमें होने पर सूतशेखरका उत्तम उपयोग होता है। इसमें विशेषतः कफका दबाव और पित्तवृद्धि होकर उक्त लक्षण उपस्थित होते है। जिन स्थानोमें ज्वरोष्मा अत्यन्त बढने पर प्रलाप आदि लक्षण होते है, उन स्थानो पर ज्वरघ्न ओषधिकी योजना करनी पडती है। परन्तु ज्वरोष्मा न्यून होने पर प्रलाप आदि लक्षण हो, तो रक्तमें हानिकर त्याज्य द्रव्यों का मिश्रण होता है। वह वातवह केन्द्रमें पहुँचनपर ऐसे लक्षण उपस्थित होते है, अर्थात् आन्त्रिक, श्वसनक, श्लैष्मिक आदि सान्निपातिक ज्वरोमें या इस तरहके अन्य ज्वरो में प्रलाप आदि लक्षण उत्पन्न होनेपर सूतशेखर अवश्य देना चाहिये।

आक्षेपके झटके बार-बार होनेपर हाथ पैर मुड जाना, अँगुलियाँ टेढ़ी होजाना, सेक करनेपर कुछ अच्छा मालूम पडना, झटकेका वेग अति त्वरित् होना, परन्तु झटका अति जोरदार न होना, हाथ-पैरोमें ऐंठन आना अर्थात् हाथ-पैरोके मास कठिन और संकुचित होने, एवं संक्रामक विसूचिका होने पर सर्वाङ्गमें होनेवाले ऐंठन, सब पर सूतशेखर तत्काल अच्छा लाभ दर्शाता है।

तीव्र अम्लपित्तके योगसे होनेवाली कण्ठकी जलन, खट्टी डकार, उदरमें दाह, दिन जैसा-जैसा बढ़ता है वैसा-वैसा उदरमें दर्द बढ़ना,

साथ-साथ कड़वी और खट्टी वमन होना, कै होनेपर कण्ठ, तालु, मुख, जिह्वा आदि पर दाह होना, कण्ठ और मुँहमें फोड़े होना, तथा उदरकी वेदनाके साथ-साथ शिरदर्दका भी प्रारम्भ होना और भयकर व्याकुलता आदि लक्षण प्रतीत होते है। इस रोगीको तीव्रावस्थामें पहले सुवर्ण-माक्षिक भस्म, प्रवालपिष्टी और अनार रस आदि तत्काल शामक गुण-दर्शक औषध देनी चाहिये। तीव्र लक्षण कम होनेपर उदरमें पित्तका अधिक स्राव होनेकी और पित्त तीव्र होनेकी जो आदत लग जाती है, उसे कम करनेके लिये सूतशेखरका उपयोग करना चाहिये।

आमाशयमें पित्तोत्पादक ग्रन्थियाँ विविध कारणोंसे अधिक पित्त (आमाशय रस) उत्पन्न करने लग जाती हैं और पित्तमें तीक्ष्णता भी अधिक उत्पन्न होती है। इस हेतुसे आमाशयकी श्लैष्मिक कलामें पहले संरम्भ होता है। पश्चात् शोथ और स्फोटके सदृश अवस्था होती है, अन्तमें उन स्थानोंमें पतले और सूक्ष्म व्रण होजाते हैं। फिर उन स्थानोंमें कठोर अन्न चुभते है, अन्न उसमें प्रवेशित होकर सड़ने लगने लगते है, उदरशूल उपस्थित होता है, फिर वान्ति होकर अन्न बाहर निकल जाता है। जब चुभनेवाले अन्नकी वमन होजाती है, तब कुछ शान्ति होती है। इसे आयुर्वेदमें अन्नद्रवशूल सज्ञा दी है। इस पर सच्ची मूलग्राही चिकित्सा उसे कहेंगे कि जिससे आमाशय व्रणका रोपण हो। सूतशेखरके योगसे पित्तका स्राव नियमित होता है और व्रण रोपणमें सहायता पहुँचती है। इसी न्यायानुसार अग्न्याशयके आग्नेय रसके विकारजनित शूल पर भी इसका अच्छा उपयोग होता है।

पित्ताशयमें से निकलनेवाला पित्त गाढ़ा होजाने पर उसमें से छोटे-छोटे पत्थर बन जाते है। फिर उससे एक प्रकारका तीव्र कोष्टशूल उत्पन्न होता है। ग्रहणीमें आनेवाले पित्तवह स्रोतसमें या पित्ताशयमें ही यह शूल चलने लगता है। पित्ताश्मरीके कण चुभने पर या क्वचित् पित्तके तीक्ष्ण ज्वरके हेतुसे शूलोत्पत्ति होती है। यह शूल प्रत्यक्षतः सूतशेखर के सेवन से कम नहीं होता, तो भी इससे पित्तमार्गमें अश्मरी उत्पन्न होने की आदत दूर होसकती है। पित्तकी अति तीक्ष्णता-वृद्धि भी नियमित होती है। अनुपान रूपसे धमासा, गिलोय, मुनक्का, मुलहठी और मिश्रीका क्वाथ देवें। इसके पहले पित्तःस्राव करानेवाली औषधि देनी चाहिये। इस तरह पित्ताश्मरी उत्पन्न होनेकी स्थिति दूर होजाती है।

वातातिसार और पित्तातिसार, दोनों पर सूतशेखरका अच्छा

उपयोग होता है। विदाही भोजन या आमसंचयसे अतिसारकी उत्पत्ति होती है। अन्नका पचन सम्यक् नहीं होता। उसमें यकृत्के पित्तका योग्य मिश्रण न होनेसे जो अन्न अन्त्रमें जाता है, उस अन्नका विदाह होता है, उसका सम्यक् वियोजन नहीं होता, और शोषण भी यथोचित नहीं होता। इस हेतुसे अन्त्रमें अन्नरसका संचय होकर अब्धातुकी वृद्धि होती है। फिर अतिसार होकर विदग्ध अन्नका स्राव होने लगता है। पित्तातिसार पित्तके सान्द्रत्व और द्रवत्व गुणकी वृद्धिके हेतुसे उत्पन्न हुआ हो, तो सूतशेखर विशेष उपयोगी होता है। इससे पित्तका नियमन होता है, अर्थात् पित्तोत्पत्ति अत्यधिक होती हो, वह रुक जाती है। फिर अतिसार स्वयमेव दूर हो जाता है।

क्वचित् पित्तका अतिरेक होने पर अतिसार होता है, तब उसमें वैषम्य और वैगुण्यके हेतुसे होता है। शरीर में धातु-द्रव्य विशिष्ट परिमाणमें और विशिष्ट गुण-वीर्ययुक्त होना, यह स्वास्थ्यकी दृष्टिसे आवश्यक है। इसमें विषमता होने पर व्याधि उत्पन्न होती है। कम परिमाण या गुणक्षयसे एक प्रकारका विकार और अधिक परिमाण और गुणवृद्धिसे दूसरे प्रकारका विकार होता है। तीक्ष्ण पित्त तथा सान्द्र और द्रव पित्त मर्यादासे अधिक अन्नमें मिल जाने पर अन्त्रमें विस्फोट और शोथ आकर अब्धातुकी वृद्धि होती है। फिर अतिसार हो-जाता है। पित्तकी अधिकतासे होने वाले विरेचन बडे-बड़े गरम-गरम पीले रङ्गके होते है। दस्त होनेके समय उदरमें दाह, घबराहट, व्याकुलता अति तृषा, क्वचित् भ्रम और प्रलाप आदि लक्षण होते हैं। सूतशेखरसे अतिसार तो कम होता ही है, साथ-साथ प्रलाप, घबराहट, तृषा, भ्रम, व्याकुलता आदि भी शमन होजाते है। ऐसी परिस्थितिमें सूतशेखर अति कम मात्रामें आध या एक-एक घण्टे पर देते रहे।

अन्त्रमें अनेक प्रकारके विविध विकारो पर सूतशेखरका अति उत्तम उपयोग होता है। सूतशेखरमें विशेष धर्म यह है कि, शारीरिक घटकोको बाधा न पहुँचाते हुए कीटाणुओंका नाश करना यह सौम्य गुण होनेसे कीटाणु नाश तो होते ही हैं, और शारीरिक घटको पर दुष्ट परिणाम भी बिल्कुल नहीं होता।

विसूचिकामें कीटाणुजन्य, और अपचनजन्य ऐसे दो प्रकार है। कीटाणुजन्य विसूचिका बिल्कुल प्रथमावस्थासे तृतीयावस्था तक प्रत्येक स्थिति और अवस्थान्तरमें सूतशेखरका अति उत्तम उपयोग होता है। विसूचिकामें अति जुलाब लगने पर शरीरमें से अब्धातु कम

होती है, अधिक वमन होनेसे यह स्थिति होती है। इसके पश्चात् उदर, पीठ, पैर और सर्वाङ्गमें ऐंठन होने लगती है। सब स्नायु निचोडनेके समान मुड जाते है, भयंकर वेदना होने लगती है। रोगी अति व्याकुल होजाता है। ऐसी त्रासदायक स्थितिमें सूतशेखर देनेसे १५–२० मिनट में ऐंठन रुक जाती है। इस तरह बड़ी-बडी खट्टी जलके सदृश वमन होने पर उदरमें तीव्र वेदना, मरोडा, उदरमें ऐंठन आदि लक्षण उपस्थित हो, तो सूतशेखर केवल अमृत ही है।

विसूचिकाकी प्रथमावस्थासे बिलकुल अन्तिम अवस्था तक सूतशेखरका उत्तम उपयोग होता है। अन्त्रशक्ति कम होने पर कितनेक बार रोगियोंको बिल्कुल बड़े-बडे जुलाब लगते रहते है। नलके डाट को हटानेके समान जलके सदृश दस्त होने लगता है। अन्त्रकी स्तम्भन शक्ति क्षीण होजानेसे गुदमार्गसे स्राव होता ही रहता है। सूतशेखरसे इस अवस्थामें अति उत्तम कार्य होता है।

आयुर्वेदमें उदरके भीतर होने वाले गोलेको गुल्म संज्ञा दी है। इनमेंसे कितनेक गुल्ममें माम और मेदका संचय होता है। यह संचय धातुपोषण-क्रममें कुछ विकृति होने पर होता है, सूतशेखरके योगसे पित्तज गुल्मकी यह विकृति नष्ट होती है। इस तरह गुल्मका मूल कारण नष्ट होनेसे गुल्मकी वृद्धि कम होजाती है।

कास अनेक कारणोंसे उत्पन्न होती है। इनमें पित्तज कास, विशेषतः यकृद्वृद्धिसे उत्पन्न कासमें सूतशेखरका अति उत्तम उपयोग होता है। अनुपान रूपसे आमका मुरब्बा देना चाहिये।

संग्रहणीमें तीव्र और जीर्ण, ऐसे दो भेद हैं। नूतन संग्रहणीमें भी सज्वर और विज्वर, ऐसे दो विभाग होते है। सज्वर संग्रहणीमें कुडा की छालका कुछभी उपयोग नहीं होता। उसमें ज्वर, रक्तयुक्त आम, विलक्षण प्रवाहण (किछना), दिनमें १००–२०० दस्त होने, प्रत्येक बार किछ किछ कर आम या रक्तके एक-दो बूँद गिरने, मल बिल्कुल न गिरना, जल और रक्तमिश्रित या लाल रंगकी बूँदे गिरना, साथ-साथ उदर और हाथ-पैरोंमें ऐंठन, नेत्रकी दृष्टि स्थिर न रहना, अधिक प्रस्वेद आना आदि लक्षण होनेपर सूतशेखर अति उत्तम औषधि है। सूतशेखर और सुवर्णमाक्षिकको मिलाकर बेलके मुरब्बेके साथ देवे ऐसा व्याधिमें मल गिरने लगता है कि, रोगीकी प्रकृति सुधरने लगती है। रोग जीर्ण हो, तो पर्पटी कल्प उपयोगी होता है।

शुष्क कासके साथ श्वासमें भी सूतशेखरका उत्तम उपयोग

होता है। सूतशेखर शामक और हृद्य होनेसे हृदय रोगमें उत्पन्न कास-श्वासपर अच्छा लाभदायक है।

हिक्का अनेक प्रकारके विकारोंमें एक लक्षण है। आमाशयमें आगन्तुक द्रव-संचय होकर हिक्का होती है, उसमें वमन करा, उस द्रव को दूर करने पर हिक्का का हेतु नष्ट होजाता है। परन्तु उदर और महाप्राचीरा पेशीको हिक-हिक करनेकी आदत होगई तो, वह जल्दी दूर नहीं होती। उस समय पर सूतशेखरका उत्तम उपयोग होता है। निज दोष कोष्टमें संचित होकर हिक्का होती है, उसमें पित्त और वात दोषसे उत्पन्न हिक्कामें यह उत्तम कार्य करता है। हिक्का उग्र स्वरूप की होती है। विसूचिकाकी अंतिमावस्था या मध्यावस्थामें भी हिक्का उत्पन्न होजाती है। उस पर भी सूतशेखर उत्तम उपयोगी औषधि है। चंचल, क्रोधी और स्वच्छंदी विचारवाली स्त्रियोंको अनेक बार हिक्का उत्पन्न होती है। वह किसी बाह्य उपचार या अन्य औषधसे नहीं रुकती। इस पर सूतशेखर प्रभावशाली औषध है।

गंभीरा और महती हिक्का अति त्रासदायक है। ५-७ दिन तक एक समान रह जाती है। उन पर सूतशेखर उपयुक्त है। आध्मान, आनाह, छिद्रोदर या बद्धोदर इन रोगोंमें हिक्का उपद्रव रूपसे होती है। यह मरणका निमन्त्रण माना जाता है। उस पर भी कुछ अंशमें सूत-शेखर लाभ पहुँचा ही देता है। उस हिक्काको उग्र हिक्का कहते हैं।

हिक्काके साथ अति शुष्कता, शुष्क उबाक, प्रस्वेद आना, नेत्र बार-बार फिरा देना, कण्ठमें दाह, शीतल जल या शीतल पेयसे किञ्चित् शान्ति लगना, फिर बलपूर्वक हिक्का होने लगना आदि लक्षण होते हैं। उस पर सूतशेखर अति उत्तम कार्य करता है।

उदावर्तकी उत्पत्ति वातविकृतिसे होती है। इस रोगमें विशेषतः अपान और समान वायुकी विकृति होती है। अपानके अवरोधसे अन्त्रकी क्रिया प्रतिलोम होती है, और अन्त्रकी पुरःसरण क्रिया विलोम होकर अन्त्र फूलने लगती है। आफरा आनेपर उदरमें पीड़ा होने लगती है। श्वासावरोध-सा भास होता है, व्याकुलता, मलावरोध और कभी मूत्रावरोध भी होते हैं। इस प्रकारमें सूतशेखर विशिष्ट कार्य करता है। इससे वायुका अनुलोमन होता है, पुरःसरण क्रिया व्यवस्थित होती है और बेचैनी दूर होती है। फिर शौच-शुद्धि होने लगती है। यह औषध रेचक नहीं है, किन्तु शामक होनेसे वायुका शमन करके उसे अनुलोमन करती है।

त्वचाके अन्तर्भागमें रही हुई वातवाहिनियाँ, विशेषतः संज्ञावाहिनियोंमें क्षोभ होकर दाह उत्पन्न होता है। शराबियोंको यह दाह अति उग्र होता है। अन्य कारणोंसे भी त्वचामें रही हुई संज्ञावाहिनियाँ दुष्ट होकर दाह उत्पन्न होजाता है। रक्तकी विकृतिमें दुष्टि होकर दाह होता है। इन सब पर सूतशेखरका उत्तम उपयोग होता है।

अन्नमें अग्निपचन योग्य न होने पर अन्न सड़ने लगता है। फिर उससे घोर आम-विषकी उत्पत्ति होती है। इस प्रकार ही स्वयं-दुष्टिसे उत्पन्न सेन्द्रिय विषमें से विविध व्याधियोंकी सृष्टि होती है। इस विषको नष्ट करनेमें सूतशेखर अत्युत्तम औषध है।

संक्षेपमें सूतशेखर कीटाणुनाशक, योगवाही, वातवाहिनियों पर शामक, हृद्य और सेन्द्रिय विषनाशक है। इसका कार्य आमाशय, पक्वाशय, बृहदन्त्र, यकृत्, अग्न्याशय, प्लीहा और वातवाहिनियों पर होता है, तथा वात और पित्तदोषका शामक है। (औ० गु० ध० शा०)

(१३६) लघु सूतशेखर रस।

बनावट—शुद्ध सोनागेरू २० तोले और सोंठका बारीक चूर्ण १० तोले मिला नागरवेलके पक्के पीले पानके रसके साथ ३ दिन तक खरल करके २-२ रत्तीकी गोलियाँ बनावे।

मात्रा—१ से २ गोली मिश्री मिलाये दूधके साथ दें।

उपयोग—इस रसायनके सेवनसे पित्तजन्य शीर्षशूल, अर्धाव-भेदक, सूर्यावर्त्त आदि मस्तकशूल, खट्टी वमन, निद्रानाश, पित्तज उन्माद, दाह, पसीनेमें दुर्गन्ध, ऊर्ध्व रक्तपित्त, नाकमें से रक्त गिरना, मुँहमें छाले होना इत्यादि रोग नष्ट होते हैं।

लघु सूतशेखर पित्तधातुकी अम्लता और तीक्ष्णताका नाशक, अवसादक और स्तम्भक है, एवं पित्तप्रकोपसे होनेवाले सब रोगोंमें लाभदायक है। सामान्य औषधि होनेपर भी इसमें दिव्य गुण रहे हैं।

पित्तज शीर्षशूल और उसके साथ चक्कर, उदरमें दर्द, व्याकुलता, वमन होनेपर शिरदर्दमें न्यूनता आदि लक्षण हो, तो लघु सूतशेखर देना चाहिये। अर्धावभेदक और सूर्यावर्त्त (अर्धशीशी) में जैसे उष्णताकी वृद्धि होती है, वैसे वैसे शिरदर्द भी बढ़ता जाता है; और वमन होजाने पर शिरदर्द शमन होजाता है। ऐसा लक्षण होनेपर लघु सूतशेखर देना चाहिये।

पित्तज उन्माद में बेबुद्धि कम परन्तु त्रास, प्रलाप, निद्रानाश, चक्कर, भ्रम और सारे शरीर और शिरमें भी प्रस्वेद आना, प्रस्वेदमें

एक प्रकारकी दुर्गन्ध आना आदि लक्षण उपस्थित होते है। उस पर लघु सूतशेखर और सुवर्णमाक्षिक भस्मको मिला पेठेके रसके साथ देनेसे उत्तम उपयोग होता है।

निद्रानाश पित्तप्रकोपसे होता है, तब सर्वाङ्गमें दाह होता है, और हाथ-पैर टूटते है एवं मस्तिष्कमें भ्रमके सदृश या उठा-उठाकर फेकने के सदृश भास होता हो, तथा उदर में दाह आदि लक्षण हो, तो लघु सूतशेखर दूधके साथ देना चाहिये।

नाकसे होनेवाले रक्तस्रावमें पत्ताधिक्य होनेपर इसका उपयोग होता है। रक्त गिरनेके समय या गिरनेके पश्चात् दाह, सारे शरीरमें जलन आदि लक्षण होनेपर लघु सूतशेखर उपयोगी होता है। वमन अति होनेके पश्चात् आगे-आगे थोड़ा-सा रक्त गिरनेपर इस लघु सूतशेखरका उपयोग हितकारक है। (औ० गु० ध० शा०)

(१३७) लीलाविलास रस।

बनावट—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, ताम्र भस्म, अभ्रक भस्म, लोह भस्म, ये सब समभाग लेकर आँवलोंके रस तथा बहेड़ेके रसमें ३-३ दिन तक खरल करें। पश्चात् भाँगरेके रसमें १ दिन खरल करके १-१ रत्तीकी गोलियाँ बाँधें। (भै० र०)

मात्रा—१ से ३ गोली दिनमें २ से ३ बार शहदके साथ दें। अथवा दूध और कूष्माण्डका रस या आँवलोंका रस मिला-पकाकर फट जानेपर जल छानेकर ऊपरसे पिलावे।

उपयोग—यह रसायन अम्लपित्त, तृषा, शूलसहित वमन, हृदयदाह, कृमि, पाण्डु आदि रोगोंका नाश करता है।

इस रसायनमें पारद और ताम्रभस्म तीक्ष्ण, उष्ण, व्यवायी और स्रोतोगामी हैं। साथमें अभ्रकभस्म और लोहभस्मका संमिश्रण करा उष्णता और तीक्ष्णताको कितनेक अंशमें दबा दिया है। फिर आँवले, बहेड़े और भाँगरेके रसकी भावना देकर इन सेन्द्रिय ओषधियोंके योग से गुणोंमें उत्कर्ष कराया है, एवं द्रव्य-संयोग और संस्कार द्वारा अम्लपित्तनाशक गुणकी वृद्धि कराई है।

आँवला उत्तम अम्लपित्त शामक ओषधि है, आमाशयके प्रकुपित पित्त को शान्त करता है, परन्तु केवल आँवलोंका सेवन करनेपर पित्तशामक गुणका शोषण होकर लाभ होनेमें दीर्घकाल लगता है, तथा यकृत् और रक्तमें रहे हुए मृत घटकों को जीवित घटकोंसे पृथक् कर बाहर निकाल देना

या जला देना, यह कार्य जितना जल्दी ताम्रभस्म द्वारा होता है; उतना केवल आँवलोंके सेवनसे सत्वर नहीं होसकता। इस हेतुसे शास्त्रकारने ताम्रभस्मका सम्मिश्रण किया है। पारद, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म आदि औषधियाँ योगवाही होनेसे अपने गुणोंका त्याग न करते हुए सम्मिश्रित सेन्द्रिय औषधियोंके गुणोंमें वृद्धि करा देते हैं। पित्तप्रधान मोतीझरा आदि ज्वर दीर्घकाल तक रहना, लवण का अति योग, विषप्रदान, कीटाणुप्रकोप या तमाखू का अति व्यसन आदि कारणोंसे आमाशय पित्त की वृद्धि और श्लैष्मिक त्वचामें उत्तेजना उपस्थित होती है, तथा यकृत् निर्बल होजानेसे योग्य पित्तस्राव नहीं कर सकता। फिर अम्लपित्तकी संप्राप्ति होने पर यदि कफका संसर्ग हो तो वमनमें चिपचिपापन आजाता है। एवं अन्य देह में भारीपन, शीतलता, अरुचि, निद्रा-वृद्धि आदि कफसूचिष्ठ लक्षण प्रतीत होते हैं। अथवा वातका संसर्ग होनेसे जब आमाशय, पित्ताशय, हृदय, अन्त्र, वस्ति, पार्श्व, इनमें शूल चलना, झागयुक्त वमन, वार-वार डकार आना, कम्प, प्रलाप, मूर्च्छा, भ्रम, अँधेरा आना आदि लक्षण प्रतीत होते है। अनेकों को मलावरोध भी रहता है, उन कफ और वातप्रधान लक्षणों पर लीलाविलास रस अच्छा काम देता है।

वार-वार अत्यधिक भोजन करते रहना, सूर्यके तापका अति सेवन, विषप्रकोप और किसी रोगके हेतुसे निर्बलता आजाने पर आमाशय अशक्त होजाता है। फिर भोजनको पचन करानेके लिये शक्तिसे अधिक पित्तस्राव कराते रहने या उग्र पित्तस्राव कराते रहने पर अम्लपित्त रोग उत्पन्न होजाता है। अपचन भोजनका विदाह होकर छातीमें जलन होना, उदरमें भारीपन बना रहना आदि लक्षण उपस्थित होते है। उनपर यह लीलाविलास रस दिया जाता है। भोजनमें मधुर फलों का रस या थोड़ा लघु अन्न देवे। यदि मुँहमें छाले, भयङ्कर तृषा, अति खट्टी और उष्ण वमन, वार-वार बड़ी-बड़ी वमन, नेत्रोंमें जलन, गरम-गरम पतले दस्त, भोजन कर लेने पर तुरन्त वमन होजाना, वार-वार वमन होना आदि पित्तप्रकोपजनित घोर लक्षण प्रतीत होते हो, तो विना शोधन किये लीलाविलास या अन्य अम्लपित्त नाशक औषधि नहीं देना चाहिये। पहले वमन करावें या आमाशय-नलिका (Stomach pipe) द्वारा आमाशयको शुद्ध करे। फिर प्रातःकालको अविपत्तिकर चूर्ण, सायंकालको लीलाविलास रस तथा दोपहरको पित्तके तीव्रत्व और अम्लत्वको कम कराने वाली सहायक औषधि प्रवाल, वराटिका,

शुक्ति, सूतशेखर या कान्तिहृद्रसमें से आवश्यकता अनुसार योजना करें। यदि आमाशयमें व्रण होकर वमन होती हो, तो लीलाविलास नहीं देना चाहिये, इस पर सुवर्णमालिनीका प्रयोग करना चाहिये।

(१३८) सारिवादि वटी।

बनावट—सारिवा (अनन्तमूल), मुलहठी, कूठ, दालचीनी, तेजपत्र, इलायची, नागकेशर, प्रियंगू, कमलके फूल, गिलोय, लौंग, हरड़, बहेड़ा, आँवला, सब द्रव्य १-१ माशा तथा अभ्रकभस्म और लोहभस्म १४-१४ माशे लेवें। काष्ठादि औषधियोंका कपड़छन चूर्ण कर भस्म मिलावे। फिर भाँगरेके रस, श्वेत अर्जुनकी छालके क्वाथ, जवके क्वाथ, मकोयके रस और गुञ्जामूलके क्वाथको १-१ भावना देकर २-२ रत्तीकी गोलियाँ बनावें। (र० यो० सा०)

मात्रा—१-१ गोली दिनमें २ बार धारोष्ण दूध, चन्दनके अर्क अथवा शतावरीके क्वाथके साथ दे।

उपयोग—यह वटी कानका बहना, कानका गूँजना, कम सुनना आदि कानके रोगोंमें लाभदायक है, और समस्त प्रमेह, रक्तपित्त, क्षय, श्वास, नपुंसकता, जीर्णज्वर, अपस्मार, मोह, अर्श, हृद्रोग मदात्यय, सबको दूर करती है। मस्तिष्कमें किसी उष्ण औषधिके योगसे या अन्य कारणसे उष्णता पहुँचनेके कारणसे कर्णमें बधिरता आई हो या वाहिनियोंमें विकृति होनेसे कर्णरोग हुए हों, या वातप्रकोपसे कानमें पीड़ा होती हो, इनपर यह हितावह है। इसके सेवनके साथ बाह्य उपचार भी करते रहना चाहिये। यदि रक्तमें मूत्रविष वृद्धि, उष्णता आम विष प्रवेश आदि कारणोंसे धमनी-विकार या हृदय की निर्बलता, कम सुनना और कान गूँजना आदि उपद्रव उत्पन्न हुए हों, तो यह रसायन हृदय और धमनीको सबल बनाकर कर्ण-रोगोंको दूर करता है।

(१३९) प्रदरांतक लोह।

प्रथम विधि—लोह भस्म, ताम्र भस्म, शुद्ध हरताल, वंग भस्म, अभ्रक भस्म, वराटिका भस्म, सोंठ, पीपल, कालीमिर्च, हरड़, बहेड़ा, आँवला, चित्रकमूल, वायविडंग, सैंधानमक, कालानमक, समुद्रनमक, विड़नमक, काचनमक, चव्य, पीपल, शंख भस्म, वच, हाऊबेर, कूठ, कचूर, पाढ़, देवदारु, छोटी इलायची और विधारा, इन ३० औषधियों को सम भाग लें। काष्ठादि औषधियोंका कपड़छन चूर्ण करें। पश्चात् भस्मोंको मिला ६ घण्टे खरल कर लेवें। (र० र०)

मात्रा—प्रदरान्तक लोह, मिश्री और घृत १-१ माशा और

३ माशे शहद मिलाकर लेवे, दिनमें २ बार।

उपयोग—इस रसायनके सेवनसे रक्तपित्त, नील और श्वेत-प्रदर, कुक्षिशूल, कटिशूल, योनिशूल, सब प्रकारके शूल, मन्दाग्नि, अरुचि, पाण्डु, मूत्रकृच्छ्र, श्वास और कास आदि रोग नष्ट होते हैं, तथा मासिक-धर्म साफ आता है। प्रदरांतक लोह समस्त जीर्ण प्रदरों के लिये बहुत लाभदायक ओषधि है। आमाशय, यकृत्, प्लीहा आदि अवयव कार्य करनेमें असमर्थ होगये हो, मांसग्रन्थियाँ, फुफ्फुस और वातवाहिनियाँ क्षीण होगये हो, गर्भाशय और बीजकोष (Ovaries) शिथिल होगये हो, अग्निमांद्य, अरुचि, शिरदर्द, कफयुक्त कास, थोड़े परिश्रमसे हृदय और श्वासका वेग बढ़ जाता हो, कटिशूल आदि लक्षण हो तथा समस्त अवयवोंमें भयंकर निर्बलता आकर चिपचिपा लाल, नीला आदि प्रदरका स्राव होता रहता हो ऐसे बढ़े हुए असाध्य प्रदरों को भी यह प्रदरांतक लोह दूर करता है।

दूसरी विधि—लोह भस्म २ तोले वङ्गभस्म, शुद्ध खर्पर या जसद भस्म, कहरवा, घीमें पकाया हुआ सोनागेरू, मोचरस, सफेद राल, ये ६ ओषधियाँ १-१ तोला ले। सबको मिला दूब, अनार और आँवलेके रसकी ७-७ भावना देकर सूखा चूर्ण बना लेवे। (र० यो० सा०)

मात्रा—३-३ रत्ती दिनमें २ बार पाषाणभेदके मूलके ३ माशे चूर्णके साथ देवें। ऊपर मिश्री मिला दूध पिलावें।

उपयोग—यह रसायन सब प्रकारके प्रदरोंका नाश करता है। जिस प्रदर रोगको असाध्य कहकर वैद्य या डाक्टरोंने छोड़ दिया हो वह भी इस रसायनके सेवनसे अच्छा होजाता है। ऐसा रसयोग-सागरकारका अनेक वर्षोंका अनुभव है।

यदि यह रस तैयार न हो, तो शुद्ध मुर्दासङ्ग ३ रत्तीको २ माशे मिश्री के साथ मिलाकर देवे। ऊपरसे पाषाणभेदके मूलका चूर्ण १॥ माशे समान मिश्री मिलाकर खिलावे, और थोडा दूध पिलावे। इस प्रयोगसे बहुत ही विलक्षण लाभ होता है। परन्तु कच्चा मुर्दासङ्ग अधिक दिन तक नहीं देना चाहिये, वरना वान्ति होने लगेगी, और शरीरमें एक तरहकी ऐंठन पैदा होगी। इसलिये शुद्ध करके ही देना चाहिये।

मुर्दासङ्ग शोधन-विधि—चतुर्थांश सैंधानमक मिला १ प्रहर खरल कर, ४ गुने जलमें मिलाकर रख देवे। दूसरे दिन जलको सम्हालकर निकाल दें। फिर नया सैंधानमक मिलाकर खरल करे और जल भरकर रख दें। इस रीतिसे २१ दिन शोधन करनेसे मुर्दासङ्ग सब दोषोंसे मुक्त होकर श्वेत होजाता

है। यह उपदंशकी भी परम औषधि है। (र० यो० सा०)

(१४०) प्रदरान्तक रस।

बनावट—शुद्ध पारा, शुद्ध आँवलासार गन्धक, रौप्य भस्म, बंग भस्म, कौड़ी भस्म, शंख भस्म, प्रवाल भस्म, सेलखड़ीकी भस्म और राल, सब समभाग और लोहभस्म सबके बराबर मिला दूब, अनार और आँवलोंके स्वरसमें ३-३ दिन और घीकुँवारके रसमें १ दिन खरल करके १-१ रत्तीकी गोलियाँ बाँधे।

मात्रा—२-२ गोली आँवलोंके स्वरस और शहदके साथ देवें।

उपयोग—इस रसायनसे सब प्रकारके नील, श्वेत, रक्त और शूलसह प्रदर तथा सोमरोग दूर होते हैं, मासिक-धर्म साफ आता है; अन्तर्दाह शमन होता है, तथा शरीर नीरोग और तेजस्वी बनता है।

जिन स्त्रियोंका शरीर निस्तेज पाण्डुवर्ण होगया हो, बार-बार चक्कर आना, सहनशक्ति का अभाव, नेत्रके चारों ओर कालापन, हृदय की अनियमित गति, थोड़ेसे परिश्रमसे हृदयके वेगकी वृद्धि होजाना, हाथ-पैर टूटना, मानसिक उदासीनता बनी रहना, दाह, अग्निमान्द्य, जड़ पदार्थका योग्य पचन न होना, उदरमें भारीपन और प्रदरका स्राव गरम-गरम पतले जल सदृश होना आदि लक्षण हों, उनको प्रदरान्तक रस अमृत सदृश लाभदायक है।

(१४१) प्रदरारि रस।

बनावट—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और नागभस्म १-१ तोला, रसोत ३ तोले, लोद ६ तोले ले। सबको मिला अडूसेके रसमें ६ घंटे घोटकर ३-३ रत्तीकी गोलियाँ बाँधे। (यो० र०)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें दो बार शहद अथवा चावलके धोये हुए जलके साथ देवें।

उपयोग—यह रसायन श्वेतप्रदर, रक्तप्रदर और गर्भाशयके दोषको दूर करता है, तथा पाचनशक्तिको बलवान बनाता है।

यदि शरीरमें आमसंचय अधिक हो, तो प्रदरकी औषधि कुमार्यासवके साथ देना विशेष लाभदायक है। एवं निद्रावस्थामें ही स्राव होजाता हो, स्राव होनेपर रुग्णा जाग्रत होजाती हो, तो उसे पाचक और मलनिःसारक कुमार्यासव अनुपान रूपसे देना चाहिये।

यदि गर्भाशय आदि अवयवोंकी निर्बलताके हेतुसे उत्तेजना आये बिना बार-बार स्राव होता रहता हो, तो मात्रा अधिक देनी चाहिये।

परन्तु अधिक मात्रासे मलावरोध होजाय, तो स्वतन्त्र रूपसे अधिक पुटवाली नागभस्म दें और इस रसायनका सेवन भी करावें ।

अनेक स्त्रियोंको अति व्यवाय, अनुचित व्यवाय, चरपरे पदार्थ, कामोत्तेजक पदार्थ और शराब आदिके अति सेवनसे अति त्रासदायक प्रदर रोग होजाता है । हाथ पैर टूटना, दाह, निस्तेजता, कमर जकड़ जाना, स्वभाव क्रोधी होजाना, मानसिक क्षोभ होनेपर प्रदरस्राव अधिक होना आदि लक्षण होते हैं, उनको प्रदरारि रस अति हितकारक है । मात्रा कम देनी चाहिये । यह रसायन बढ़े हुए रोगमें अधिक समय तक ब्रह्मचर्य और पथ्यपालनसह देते रहना चाहिये ।

(१४२) गर्भचिंतामणि रस ।

बनावट—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और लोह भस्म २-२ तोले, अभ्रक भस्म ४ तोले, कपूर, वङ्ग भस्म, ताम्र भस्म, जायफल, जावित्री, गोखरूके बीज, शतावर, खरैटी और गंगेरन २-२ तोले लें । प्रथम पारद-गंधककी कज्जली करके भस्म मिलावें । फिर काष्ठादि ओषधियोंका कपडछान चूर्ण मिला, शतावरके रस या क्वाथके साथ १ दिन खरल करके दो-दो रत्तीकी गोलियाँ बांधें ।

मात्रा—एक-एक गोली दिनमें २ बार दूध के साथ देवे ।

उपयोग—यह रसायन गर्भिणी के ज्वर, मन्दाग्नि, दाह, श्वास, कास, निर्बलता, वमन और प्रदर आदि रोगोंको दूर करके गर्भको बलवान बनाता है । सतत ३-४ मास तक सेवन करनेसे प्रसवके समय दुःख नहीं होता और बालक भी नीरोग और बलवान जन्मता है ।

अनेक ग्रन्थकारोंने पारद और गंधकके स्थानमें रससिंदूर और रौप्य भस्म मिलाये हैं, एवं कतिपय ग्रन्थकारोंने रससिंदूर और हरताल भस्म लिये हैं । हमने जिसका अनुभव किया है, वही पाठ दिया है ।

(१४३) गर्भपाल रस ।

बनावट—शुद्ध सिंगरफ, नाग भस्म, वङ्ग भस्म, त्रिजात (दालचीनी, तेजपात और इलायची), त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपल), धनिया, काला जीरा, चव्य, मुनक्का, देवदारु, ये १४ द्रव्य १-१ तोला, और लोह भस्म ६ माशे लें । सबको यथाविधि मिला सफेद अपराजिता (कोयल) के रसमें ७ दिन तक खरल करके मटरके समान गोलियाँ बनालें । (र० चं०)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २ बार मुनक्काके जलमें देवें । मुनक्काको जलमें भिगो २ तोले स्वरस निकालकर ऊपर पिलावें ।

उपयोग—यह रसायन गर्भस्राव और गर्भपात होनेसे बचाता है; तथा गर्भिणीके अतिसार, ज्वर, प्रदर, श्वास, कास, वमन, मन्दाग्नि, अरुचि, वातवृद्धि, शूल, मलावरोध शिरदर्द आदिको दूर करके गर्भ को बलवान् और नीरोग रखता है।

उपदंश अथवा सुजाकके कारण गर्भाशयमें विकृति होने पर गर्भपात होनेकी विशेष संभावना रहती है। उसपर पहले रक्तशोधक औषधके साथ गर्भपाल देनेसे गर्भिणी और गर्भ, दोनों की रक्षा होती है। यदि बीजकोषोंकी पूर्ण परिमाणमें वृद्धि न होनेसे गर्भस्राव या गर्भपात होता हो, तो वंग या त्रिवंग भस्म के साथ गर्भपाल देनेसे गर्भवृद्धि और रक्षणमें सहायता मिलती है। अनेक स्त्रियोंको गर्भधारण के पश्चात् भोजन कर लेने पर तत्काल वमन, चक्कर, घबराहट, ऐंठन, शिरदर्द, कमरमें शूल आदि लक्षण होते हैं। उस पर गर्भपाल रसके साथ कामदूधा, प्रवाल भस्म अथवा सुवर्णमाक्षिक भस्म देनेसे सब विकारोंका शमन होता है। किसी किसी स्त्रीके बच्चे जन्मके बाद थोड़े ही दिनोंमें अथवा थोड़े ही महीनोंमें बार-बार मर जाते हैं, उनमें प्रायः रजवीर्य या स्त्रीदुग्धमें दोष रहता है। यह दोष गर्भचिंतामणि या गर्भपालके सेवनसे दूर होता है।

(१४४) प्रतापलंकेश्वर रस।

बनावट—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाग, तीनों एक-एक तोला, कालीमिर्च (या चित्रकमूल) ३ तोले, अभ्रक भस्म १ तोला, लोह भस्म ४ तोले, शंख भस्म ८ तोले और आरने कंडोंको कपड़छान की हुई राख १६ तोले लें। फिर सबको यथाविधि मिला लेवें। (यो० र०)

कालीमिर्चके बदलेमें चित्रकमूल मिलाया जाय, तो प्रसूताके गर्भाशयमें रहे हुए दूषित रक्तको बाहर निकालनेका कार्य सत्वर हो सकता है।

मात्रा—३ से ६ रत्ती दिनमें २ से ३ बार अदरखके रस और शहद या तुलसीके रसके साथ देवें।

उपयोग—यह रसायन प्रसूताके ताप, उन्माद, खांसी, शिरदर्द, वमन, कफदोष, दांत भिचना, कांपना, गृध्रसी, धनुर्वात, जुकाम, शूल, त्रिदोष, अतिसार आदि रोगोंको दूर करनेमें अति लाभदायक है।

प्रतापलंकेश्वर सूतिका ज्वरमें उत्तम प्रकारसे कार्य करने वाली औषधि है। यह पर गर्भाशयमें संचित हुए रक्ताश्रित दोषको दूर करता है; वातवाहिनीका क्षोभ शीघ्र दबाता है, लसीका आदि स्रावकी विकृतिका नाश करता है; निद्रा लानेमें सहायता पहुँचाता है और

वातप्रकोपके कारणसे होनेवाले प्रलाप और भ्रान्तिको शीघ्र शान्त करता है। एवं सूतिका ज्वरसे उत्पन्न होनेवाले श्लैष्मिक अथवा श्वसनक सन्निपात को भी सत्वर दूर करता है।

सूतिका ज्वर अति दुष्ट और भयप्रद विकार है, इस हेतुसे प्रसूताका सम्हाल प्रसव होने पर पहले दिनसेही पूर्ण रूपसे रखना चाहिये। प्रसूताको पहनने योग्य वस्त्र, रजाई, शय्या, बाँधनेकी पट्टी आदि स्वच्छ और कीटाणु रहित होने चाहिये। मूर्ख अज्ञानी स्त्रियों द्वारा प्रसव-कार्य कराने पर स्वच्छता नहीं रहती और मलिनता उत्पन्न होती है। इस हेतुसे कीटाणुओं कागर्भाशयमें प्रवेश होकर सूतिका-ज्वर की उत्पत्ति होती है। अचानक प्रसव-कालमें पीड़ा, गर्भजल, लसीका और रक्तका स्राव होता है, एवं गर्भाशयकी पूर्व स्थिति प्राप्त कराने के लिये जीवनीय शक्तिका तीव्र प्रयत्न होने लगता है। ऐसे समय पर कीटाणु या गन्दे द्रव्यका गर्भाशयमें प्रवेश होजाय, तो वह भी अति तीव्र गति से बढ़कर सेन्द्रिय विषका निर्माण करता है। फिर उसका रक्तमें शोषण होने पर भयकर लक्षणात्मक सूतिका-ज्वरका जन्म होजाता है।

इस ज्वरका प्रारम्भ शीत लगकर होता है। मुखमें शुष्कता, व्याकुलता, भ्रम, प्रलाप, बेशुद्धि, तीव्र और भारी नाडी, जननेन्द्रियसें होने वाले स्रावमें एक प्रकारकी दुर्गन्ध आना और शिरदर्द आदि लक्षण प्रतीत होते है। कचित् दाँत भिचना और फिर धनुर्वात भी उपस्थित हो जाता है। इस विकार पर प्रतापलंकेश्वरसे कीटाणुजन्य विष कम होने में सहायता मिलती है। गर्भाशयको मूल स्थितिकी प्राप्ति करा देने में प्रतापलंकेश्वरके समान दूसरी कोई सबल औषध नहीं है। इस रसायन से ज्वर कम होता है। वातवाहिनियोंकी विकृति नष्ट होती है; निद्रा आनेमें सहायता मिलती है। वातप्रकोपजनित प्रलाप, भ्रम, खड़े हो-होकर भागना आदि लक्षणोंका प्रशमन होजाता है। सूतिका-ज्वरमें अन्य लक्षण अति तीव्र न हों, केवल निद्रानाश अधिक हो, तो प्रतापलंकेश्वर देनेसे निद्रा आने लगती है, ऐसा अनुभव है।

सूतिका-ज्वरमें या सद्योव्रण आदिके पश्चात् व्रण विकृति होकर हनुस्तम्भ (दाँत भिचना) लक्षण उत्पन्न होने पर वह धनुर्वातका पूर्व रूप है। फिर धीरे-धीरे धनुर्वातके झटके आने लगते हैं। अतः हनुस्तम्भका प्रारम्भ होने पर तुरन्त प्रतापलंकेश्वर देवे, तो धनुर्वातकी उत्पत्ति रुक कर अन्य लक्षण भी शनैः-शनैः कम होजाते है।

सूतिका का शिर दर्द अनेक वार वातवाहिनियोंके उद्रेकसे होता

है। उस पर इसका उपयोग करनेसे शिरदर्द त्वरित शमन होता है।

सूतिका-ज्वरमें लक्षण रूप या उपद्रव रूपसे उत्पन्न श्लैष्मिक (कफात्मक) सन्निपात, श्वसनक सन्निपात (न्युमोनिया) पर प्रतापलंकेश्वरका उपयोग अवश्य करना चाहिये। अन्य समयमें होने वाले श्वसनक या श्लैष्मिक सन्निपात और सूतिका-ज्वरमें उत्पन्न, इन दोनोंमें संप्राप्ति दृष्टिसे महदन्तर है। इसका कारण सूतिका विष होने पर उसे नष्ट करनेका उपक्रम करना, यही मुख्य चिकित्सा तत्व है।

सूतिका-ज्वर न आकर अर्थात् दोषोद्रेक अधिक तीव्र न होकर केवल पित्तोद्रेकके हेतुसे कितनीक स्त्रियोंको वमन होने लगती है। वान्तिमें जच्चाको अति त्रास होता है। कै करते-करते उदरमें ऐंठन आ जाती है। ऐसे समय पर प्रतापलंकेश्वरका अच्छा उपयोग होता है।

गृध्रसी, विश्वाची और खल्लीरोगमें वातका उद्वहन कार्य विकृत होता हैं, वातवाहिनियोंके कार्यमें प्रतिबन्ध उत्पन्न होता है। इस हेतुसे इन दोनों-तीनों विकारोंमें एक प्रकारका दर्द होता है। उसे प्रतापलंकेश्वर दूर कर वातविकारको सत्वर शमन कर देता है।

वातज श्वास रोगमें प्रतापलंकेश्वर अप्रतिम ओषधि है। यह औषध सगर्भा स्त्री को नहीं देना चाहिये, वर्ना गर्भपात होनेकी भीति रहती हैं। इससे गर्भाशयका संकोच भी होता है। अन्य रोगियोंके लिये इसका उपयोग श्वासनाशक और वातशामक होता है। यह श्वास बहुधा शोक, आदिसे वातवाहिनियोंमें क्षोभ होकर होता है।

सूतिका-ज्वरमें कफप्रधान दोष प्रकुपित होकर कास होने या कफभूयिष्ट सन्निपात, श्वसनक या श्लैष्मिक सन्निपात होने या कफप्रधान. तृषा, कफज अरुचि, कफज वमन आदि विकार तीव्र रूप में होने पर और उष्ण पेय आदिसे उपशम होते हों, तो उन पर प्रतापलंकेश्वरका उत्तम उपयोग होता है। (कफवृद्धि हो तो अभ्रकभस्म, अदरखका सत्व और सोहागेका फूला मिला देनेसे सत्वर लाभ पहुँचता है।)

सूतिका रोगके पश्चात उत्पन्न कफज गुल्म या कफप्रधान परिणामशूल पर प्रतापलंकेश्वरकी गणना उत्तम ओषधियोंमें होती है।

प्रसवके पश्चात् आवश्यक गर्भ,स्थानकी शुद्धि न होनेसे गर्भकोष्ठ शनैः-शनैः प्रदुष्ट होकर वह दुष्टि सर्वाङ्गमें फैल जाती है। उसका परिणाम पक्वाशय और बृहदन्त्र पर भी होता है। फिर उबासी आना सूक्ष्म ज्वर, कम्प, तृषा, अंग भारी पड़ना आदि आरम्भिक चिह्न होते हैं। यह अवस्था बढ़ने पर सर्वाङ्गमें शोथ, कोष्ठशूल और अतिसार,

बार-बार त्रासदायक पतले बड़े-बड़े जुलाब लगना, किसी-किसी रोगिणी को केवल आम और रक्तमिश्रित दस्त होना आदि लक्षण होते हैं। उस पर पर्पटीकी अपेक्षा प्रतापलंकेश्वर रसका अधिक उपयोग होता है। कारण, मूल कारण गर्भाशयस्थ सूतिका दोष है।

सूतिकावस्था में उत्पन्न उन्माद पर इस औषधिका अन्य मादक औषधियोंकी अपेक्षा अधिक अच्छा उपयोग होनेके उदाहरण मिले हैं। इस औषधिसे मादक निद्रा न आकर उन्मादके कारणभूत सूतिका विषयका प्रशमन होकर मनोविभ्रमकी निवृत्ति होती है। ऐसे विकारों पर प्रतापलंकेश्वरको धमासेके क्वाथ, पेठेके रस या सारिवाके लेहके साथ देना चाहिये। (औ० गु० ध० शा० के आधारसे)

(१४५) सूतिकारि रस ।

बनावट—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, अभ्रक भस्म और ताम्र भस्म सब समभाग मिला ब्राह्मीके रसमें ३ दिन तक खरल करके एक-एक रत्ती की गोलियाँ बना लेवें।

मात्रा—१ से २ गोली तक दिनमें २ बार त्रिकटु अथवा अदरखके रस और शहदके साथ देवें।

उपयोग—यह रसायन प्रसूताके ज्वर, तृषा, दाह, मन्दाग्नि, श्वास, निद्रानाश, शोथ, उदरशूल और अरुचि आदि विकारोंको सत्वर दूर करके शान्ति प्रदान करता है। यह रसायन गर्भाशयमें सञ्चित विष और दूषित रक्तको तत्काल बाहर निकाल डालता है, रक्तमें प्रवेशित कीटाणुओंको नष्ट करता है, और वातवाहिनियोंके क्षोभको शमन करता है· यकृत्, प्लीहा और मूत्रपिण्डोंकी विकृतिको दूर करता है, और मस्तिष्कको भी शान्त बनाता है। संक्षेपमें सूतकारि रस वातकफात्मक व्याधियोंका शमन करनेमें अति लाभदायक है।

(१४६) चन्द्रांशु रस ।

बनावट—शुद्ध पारद, अभ्रक भस्म, लोह भस्म, वंग भस्म और शुद्ध गन्धक, सबको समभाग मिला घीकुँवारके रसमें १२ घण्टे खरल करके २-२ रत्तीकी गोलियाँ बनावे। (र० चं०)

मात्रा—१-१ गोली दिनमें २ बार जीरेके क्वाथ, दूध अथवा रोगानुसार अनुपानके साथ देवे।

उपयोग—यह रस सब प्रकारके गर्भाशयके दोष, योनिशूल, योनिमें पीड़ा, योनिदाह, योनिकी स्थानभ्रष्टता, योनिखाज, स्मरोन्माद

(Hysteria) आदि विकारोंको शीघ्र दूर करता है, और गर्भाशयको बलवान बनाता है।

(१४७) कुमारकल्याण रस।

बनावट—रससिन्दूर, मोती पिष्टी, सुवर्ण भस्म अभ्रक भस्म, लोह भस्म, सुवर्णमाक्षिक भस्म. इन ६ औषधियोंको समभाग मिला १ दिन घीकुँवारके रसमें घोटकर मूँगके बराबर गोलियाँ बाँधे। (भै० र०)

मात्रा—आधीसे एक गोली तक दिनमें २ बार माताके दूध, बच और अदरखके स्वरस या शहद अथवा रोगानुसार अनुपानके साथ दें।

उपयोग—यह रसायन ज्वर, श्वास, कास, वमन, बालशोष, बालग्रह, कामला, पसली (डब्बा), दूषित ज्वर अतिसार, मन्दाग्नि, निर्बलता, कृशता, इन सबको दूर करता है; रोगकी भयंकर अवस्थामें शक्तिका रक्षण करता है और हृदय को उत्तेजना देता है। इस रसायन के नित्य सेवनसे बालक पुष्ट और उत्साही बनता है।

(१४८) बालसंजीवन रस।

बनावट—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, जायफल, जावित्री और लौंग, सबको सम भाग लें। प्रथम कज्जली करें। फिर जायफल आदिका महीन चूर्ण मिलाकर खरल करलें। (बा० चि०)

मात्रा—½ से १ रत्ती माताके दूध या शहदके साथ दें।

उपयोग—यह रसायन बालकोंके ज्वर, कास, अतिसार, वमन, जुकाम, अपचन, मन्दाग्नि आदि रोगोंमें अति लाभदायक है। कब्ज हो तो पहले उदरशुद्धि करके बालसंजीवन रस देना चाहिये।

(१४९) चन्द्रशेखर रस।

बनावट—रससिंदूर, अभ्रक भस्म, कांत लोह भस्म, मुंड लोह भस्म, मंडूर भस्म, गोरोचन और सोहागेका फूला, सबको सम भाग मिला गोकर्णी (कोयल) के रसमें १२ घण्टे खरल करके उड़द परिमाण गोलियाँ बनावें। (भै० र०)

मात्रा—½ से १ गोली तक माताके दूध, जल या रोगानुसार अनुपानके साथ दिनमें २ से ३ बार देवें।

उपयोग—इस रसायनके सेवनसे बालकोंके सब प्रकारके रोग, ज्वर, स्तन्यदोषसे उत्पन्न सन्निपात, खाँसी, श्वास, अजीर्ण, वमन, अतिसार, शूल, जुकाम, धनुर्वात, डब्बा आदि सब रोग दूर होते हैं, और बालक पुष्ट होते हैं।

(१५०) बालार्क गुटिका ।

बनावट—शुद्ध खर्पर, प्रवाल भस्म, शृंग भस्म शुद्ध सिंगरफ, सोहागेका फूला, सफेद मिर्च, कचूर और केशर, इन ८ ओषधियोंको समभाग मिला जलमें खरल कर ½-½ रत्तीकी गोलियाँ बनावे ।

मात्रा—१-१ गोली माताके दूध अथवा शहद और वायविडंग के चूर्णके साथ दिनमें दो बार देवे ।

उपयोग—यह वटी बालकोंके वातश्लेष्म-विकार, सूक्ष्म ज्वर, अस्थिमार्दव रोग, खाँसी, श्वास, कृमि, जुकाम, मन्दाग्नि, वमन, अतिसार आदिको दूरकरके बालकोंको प्रसन्न और पुष्ट बनाती है ।

(१५१) दन्तोद्भेदगदान्तक रस ।

बनावट—पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, अजमोद, अजवायन, हल्दी, मुलहठी, देवदारु, दारुहल्दी, वायविडंग, छोटी इलायची, नागकेशर, नागरमोथा, कचूर, काकड़ासींगी, बिड़नमक, अभ्रक-भस्म, शंख भस्म, लोह भस्म और सुवर्णमाक्षिक भस्म, सबको यथा विधि समभाग मिलाकर दूधके साथ ६ घण्टे खरल करके ½-½ रत्तीकी गोलियाँ बनावे । (भै० र०)

मात्रा—१-१ गोली दिनमें २ बार जल या माताके दूधके साथ दे, या गोलीका चूर्ण कर दिनमें ३ बार दन्तपाली पर घर्षण करे ।

उपयोग—इस रसके उपयोगसे बालकोंके दाँत आनेके समय होनेवाले अतिसार, ज्वर, धनुर्वात आदि विकार दूर होकर दाँत शीघ्र बिना कष्ट बाहर निकल आते है ।

(१५२) मृद्विरेचन रस ।

बनावट—छोटी इलायचीके दाने १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोले, शुद्ध मुर्दासंग २ तोले और सौंफ ३ तोले ले । सबको यथाविधि मिला बारीक चूर्ण करे । (र० चं०)

मात्रा—बालकोंको ½-½ रत्ती दिनमें ३ बार दूधके साथ ५ दिन तक रोज सुबह दे । बड़ी स्त्रियोको ४-४ रत्ती दिनमें ३ बार ।

उपयोग—मिट्टी खानेसे पाण्डु अथवा अन्य रोग हुआ हो तब जुलाबके लिये यह औषधि दीजाती है । इस औषधिसे मिट्टी दस्तमें निकलकर प्रकृति स्वस्थ बनजाती है । यह औषधि स्त्रियो और बालको के लिये अति हितकर है ।

मिट्टी खानेसे उत्पन्न पाण्डुरोग जीर्ण होने पर प्रायः उदरकृमि

होजाता है, अतः सेण्टोनाइन १-१ रत्ती और ६-६ रत्ती शक्कर मिलाकर दिनमें ३ वार देवे। फिर सुबह त्रिवृतमिश्रिता विरेचन देवे। अथवा कपिला, वायविडङ्ग, डिकामाली और कालानमक भोजन के प्रारम्भमें देकर कृमियों को निकाल देना चाहिये। रोग अति पुराना हो, तो मृदुविरेचन रस १ दिन दे, १ दिन न दें, इस तरह १ मास तक या पाण्डु दूर होकर उदर नरम होने तक प्रयोग करना चाहिये।

(१५३) सर्वाङ्गसुन्दर रस।

बनावट—समगुण गन्धकवाली रसपर्पटी २ तोले तथा जायफल, जावित्री, लौंग, निम्बपत्र, निर्गुण्डीके पत्ते और छोटी इलायचीके दाने १-१ तोला लें। काष्ठादि औषधियोंका महीन चूर्ण करे। फिर पर्पटी मिला जलके साथ १२ घण्टे खरल करे, पश्चात् जिसमें मोती होते हैं उस सीपमें भर ऊपर दूसरी सीप रखकर संपुट करे। ऊपर दो-दो अंगुल मिट्टी लगा पुटपाक विधि अनुसार आरने कंडोंमें पकालें। संपुट लाल होने पर निकालले। स्वांग शीतल होने पर औषधिको निकाल पीसकर शीशीमें भरले। यदि इस रसायनको पुटपाक विधिसे न पकावें, तो यह महागन्धक कहलाता है। (र० च०)

मात्रा—आधी से १ रत्ती माताके दूध या शहदके साथ देवें।

उपयोग—यह रसायन बालकोंके रक्षणके लिये महौषध है। ज्वरघ्न, दीपन, बल और कान्तिको बढानेवाला है। भयंकर संग्रहणी, प्रवाहिका (पेचिश), सूतिका रोग, रक्तार्श और अन्य रक्तज व्याधियों को नष्ट करता है। जहाँ इसका उपयोग होता है वहाँ पिशाच, दानव, दैत्य आदि, जो बच्चोंको पीड़ा देते है वे, प्रवेश ही नहीं करते। बालकों के समान स्त्रियोंको भी प्रदर आदि व्याधियोंमें हितकर है।

बाहरके दूषित दूधसे उत्पन्न अतिसार, मलमें जलही जल, या जलमिश्रित दूषित दूध, बार-बार जल समान जुलाब होते रहना, मल में खट्टी-सी दुर्गन्ध, मलका सफेद रंग या आटे में जल मिला हो ऐसा रंग, साथमें थोड़ी वमन, आफरा, बार-बार डकार, कण्ठमें काँटेसे परहोना आदि लक्षण होते हैं। इस यह रसायन उत्तम लाभदायक है। (उस अवस्थामें सर्वाङ्गसुन्दरके साथ लोहबान पुष्प और लहशुनादि वटी मिला देना विशेष लाभदायक है।)

गर्मीके दिनोंमें दूध फट जाने या कीटाणु-मिश्रित होजानेसे किसी-किसी बच्चे को भयंकर ज्वरातिसार होजाता है। ज्वर १०१ डिग्री से १०५°-६° तक बढ़ जाता है। प्रारम्भमें बार-बार हरे, पीले, गर्म-

गर्म जलके समान दस्त होते है, पश्चात् जुलाब बार-बार किन्तु मल या जल थोड़े थोड़े परिमाणमें आता है। साथ-साथ वमन, वेचैनी, प्यास आदि भयङ्कर लक्षण भी होते है। प्यासके हेतुसे बालक अति वेचैन होता है। यदि दूध अधिक दिया जाता है, तो अतिसार बढ़ जाता है, और तृषा भी अधिक लगती है। व्याकुलता इतनी अधिक होती है कि, बालक शय्या पर सो नही सकता। ऐसी स्थितिमें दूध बन्द कर देना चाहिये। (सन्तरा या मोसम्मी का रस, अथवा बकरीका दूध दे सकते है)। चावल की खील को उबाल छान कर जलको पिलाते रहना चाहिये और सर्वाङ्ग-सुन्दर रस बहुत थोड़े परिमाणमें बार-बार देते रहना चाहिये। यदि आफरा अधिक हो और जुलाब बार-बार थोड़े-थोड़े परिमाणमें किन्तु अधिक समय होते हो, और ज्वर भी अधिक हो तो, लक्ष्मीनारायण रसको प्रवालपिष्टी के साथ मिलाकर देना अधिक हितकर है। बड़े-बड़े जुलाब जल-समान प्रवाही पीले रंग वाले होते हो, तो सर्वाङ्गसुन्दर रस देना चाहिये। साथमें कम मात्रामें दूधकी शक्कर, सेंधा नमक अथवा सोहागे का फूला या सोडा बाई कार्ब देते रहनेसे सत्वर लाभ पहुँचता है। इस तरह दुग्ध-विकृति, अन्न-विष या अन्य कारणसे उत्पन्न ज्वरातिसार में भी यह रसायन अति हितकर है।

ग्रहणी रोगकी प्रथमावस्थामें जबतक आमानुबन्ध हो, बार-बार थोड़े-थोड़े आम और वेदनासह दस्त होते रहते हो, तबतक कुटजावलेह और कुटजादि वटी लाभदायक है। किन्तु तीव्रता कम होने पर आम कम होजाय, रक्त गिरने लगे, मल गोबर या काई के समान हो और बार-बार दस्त होता रहे, ऐसी परिस्थितिमें सर्वाङ्गसुन्दर का बहुत अच्छा उपयोग होता है। इस रोगकी जीर्णावस्था आजाने पर पर्पटी कल्प उपयोगी होता है।

यदि प्रवाहिका होती है, तो शौचकी मर्यादा नहीं रहती। किसी-किसीको बार-बार बूँद-बूँदके सदृश शौच होते रहते है। कितनेको को बहुत किंछना पड़ता है; बालक अति वेचैन होजाता है। गुदपाक होता है; शौचके समय कॉच बाहर निकलती है। इस विकार पर सर्वाङ्गसुन्दर रस अति प्रशस्त औषध है।

बालकका जन्म होनेके पश्चात् भूल होने पर स्त्रीको सूतिका रोग होजाता है। यह सचमुच दारुण व्याधि है। प्रसूताको क्षय, पाण्डु, अतिसार, ग्रहणी आदि रोग होते है, वे चिकित्सा करनेमें अति कठिन हैं। इनमेंसे अतिसार और ग्रहणी होनपर इसका उत्तम उपयोग होता

है। बड़े-बड़े गरम-गरम, पीले रंगके जुलाब होते हैं। ग्रहणी होने पर अग्निमान्द्य, बार-बार शौचकी शंका बनी रहना, बार-बार रक्त-मिश्रित थोड़ा-थोड़ा शौच होना आदि लक्षण होने पर सर्वाङ्गसुन्दर देना चाहिये। रुग्णा अति अशक्त और बल-मांसविहीन होगई हो, तो इसके साथ सुवर्णमालिनी बसन्त देने पर अधिक उपयोग होता है।

माताका दूध दूषित होजानेसे बच्चेको अतिसार या सग्रहणी रोग हुआ हो, तो बच्चा और माता, दोनोंको सर्वाङ्गसुन्दर देना चाहिये, जिससे साथ साथ दूधकी भी शुद्धि होजाय। सगर्भा माताका दूध पीते रहनेसे बालकको पारिगर्भिक रोग होजाता है, तब अतिसार, बड़े-बड़े जुलाब, वान्ति, बालकका शुष्क-निर्बल होजाना, हाथ पैर पतले और उदर घड़ेके सदृश होजाना, कुछभी खान पर न पचना, दिन भर खाते ही रहना, विशेषतः चरपरे, खट्टे आदि पदार्थ खानेकी अति वासना होना आदि लक्षण होने पर माताका दूध छुड़वाकर सर्वाङ्गसुन्दर रस देनेसे उत्तम कार्य होता है। (ऐसी अवस्थामें माता और बालक दोनोंको ओषधि देनी हो तो सर्वाङ्गसुन्दर रस, प्रवालपंचामृत और गोदन्ती भस्म मिलाकर देना चाहिये।)

अस्थिवक्रता (Rickets) रोगमें बालकोंकी हड्डीको योग्य परिमाण में चूना नहीं मिलता, जिससे व्याधिसकर या उपद्रव रूपसे अतिसार होता है। इस अतिसारकी सब अवस्थाओंमें सर्वाङ्गसुन्दर उपयोगी है। साथमें प्रवालपिष्टी और मण्डूर भस्म का भी उपयोग करना चाहिये।

इस सर्वाङ्गसुन्दर रसके साथ बकुल (मौलसरी) की छालका चूर्ण आधा तोला मिलाकर दिनमें ३ बार देनेसे रक्तप्रदरमें मात्र २-३ दिन के भीतर ही आश्चर्यकारक लाभ पहुँच जाता है। (औ० गु० ध० शा०)

(१५४) माणिक्यरसादि गुटिका।

बनावट—हरतालमें से बनाया हुआ माणिक्य रस, शुद्ध सिंगरफ, एलुवा, पीपल, सैंधानमक, कालानमक, इन्द्रजौ, कोयल (गोकर्णी) के बीज २-२ तोले; शुद्ध मैनसिल, सोहागेका फूला, जवाखार, लालबोल, सोंठ, मिर्च, अजवायन, अकलकरा, वायविडङ्ग, ये ९ ओषधियाँ १-१ तोला; केशर, जायफल, जावित्री, इलायची, तेजपात और उसारे-रेवन, ये ६ ओषधियाँ ६-६ माशे लेवें। पहले माणिक्य रस, सिंगरफ और मैनसिल मिलावें। फिर केशरको अलग रख शेष ओषधियोंका कपड़-छान चूर्ण मिलावे। ६ घण्टे खरल कर, फिर केशरका बारीक चूर्ण मिला,

नहीं देना चाहिये। शीताग सन्निपात, निमोनिया, श्लैष्मिक सन्निपात एवं अन्य सन्निपातमें जब बेहोशी, नाड़ी अत्यन्त मन्द होना, श्वास-वाहिनी कफसे भर जाना, हृदयका अवरोध होने लगना आदि लक्षण उपस्थित हों, उन पर यह हरताल पुष्प अच्छा काम देता है।

उपदंश रोग जीर्ण होने पर श्वास, कास, त्वचा पर काले-लाल धब्बे, कुष्ट, फोड़ा-फुन्सी, नेत्रोंमें कमजोरी, सन्धिवात आदि उपद्रव होते हैं। रक्त, मांस, अस्थि तक विकृति पहुँच जाती है। ऐसी अवस्था में यह रसायन रक्तशोधक अरिष्टके साथ देते रहनेसे सत्वर लाभ पहुँचता है। विषमज्वर, पालीके एकान्तरा, तिजारी आदि ज्वर, बार-बार अनियमित समय पर थोड़े-थोड़े दिन बाद आने वाले परिवर्तित ज्वर, सब पर तुलसीका रस या द्रोणपुष्पीके रस या त्रिकटु, शक्कर और घीके साथ देनेसे सबको दूर करता है।

(१५६) आखुविषान्तक रस।

बनावट—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाग, सोंठ, मिर्च, पीपल, सोहागेका फूला और कुटकीको समभाग ले। फिर यथाविधि मिला, पुनर्नवाके रस और गोमूत्रकी ३-३ भावना देकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवे। (यो० र०)

मात्रा—१ से २ गोली वन्ध्या कर्कोटकी (ककोड़ा) के मूलके चूर्णके साथ अथवा पाठाके क्वाथके साथ देवें।

उपयोग—यह रसायन जहरी चूहेका विष और अन्य विषैले जीवोंके विषप्रकोपको दूर करता है।

सूचना—इस औषधिके सेवनके साथ पारद, गन्धक, हल्दी, दुपहरिया (बाकुली फूल) के फूल, घरका धुआँसा और सिरसके बीज, सबको समभाग मिला, आकके दूधमें खरल करके दंशस्थान पर लेप करते रहना चाहिये।

(१५७) कामिनीविद्रावण रस।

बनावट—शुद्ध हिंगुल ६ माशे, शुद्ध गन्धक ६ माशे, शुद्ध अफीम ८ तोले, केशर, जायफल, अकलकरा, जावित्री, पीपल, लौंग, सोंठ और लाल चन्दन, ये आठ द्रव्य २-२ तोले लें। पहले हिंगुल, गन्धक और अफीमको मिलावें। फिर शेष वस्तुओंका चूर्ण मिला, जल या नागरवेलके पानके रसमें ६ घंटे घोलकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बना लें। (भै० र०)

मात्रा—१-१ गोली रोज शामको दूधके साथ लें।

उपयोग—इस रसायनके सेवनसे धातुका पतलापन, निर्बलता,

मन्दाग्नि और मस्तिष्ककी कमजोरी दूर होकर वीर्यस्तम्भन शक्तिकी वृद्धि होती है ।

सूचना—इस औषधिमें अफीम बहुत ज्यादा परिमाणमें है, अतः कम मात्रामें प्रकृति और ऋतुका विचार करके सेवन करना चाहिये । अधिक दिनों तक सेवन करनेसे प्रकृति औषधिवश बन जाती है, इसलिये थोड़े दिन सेवन करके औषधिको बन्द कर देना चाहिये ।

(१५८) शुक्रमातृका वटी ।

बनावट—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, अभ्रक भस्म और लोह भस्म प्रत्येक ४-४ तोले छोटी इलायचीके दाने, गोखरू, हरड़, बहेड़ा, आँवला, तेजपात, रसोत, धनियाँ, चव्य, जीरा, तालीसपत्र, सोहागेका फूला और मीठे अनारदाने, ये १३ औषधियाँ २-२ तोले तथा शुद्ध गूगल १ तोला ले । पहले पारद और गन्धककी कज्जली करके अभ्रक भस्म और लोह भस्म मिलावे । फिर अन्य औषधियोंका चूर्ण मिला, गोखरूके क्वाथ या मीठे अनारके रसमें १२ घण्टे घुटाई कर मटरके समान गोलियाँ बनावें । (भै० र०)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २ बार जल या बकरीके दूध अथवा मीठे अनारके रसके साथ देवे ।

उपयोग—इस रसायनके सेवनसे वीर्यस्राव, सब प्रकारके वातज, पित्तज, कफज प्रमेह तथा सब प्रकारके मूत्रकृच्छ्र आदि दोष दूर होकर वीर्य शुद्ध और गाढ़ा बनता है । यह बल, वर्ण और अग्निको प्रज्वलित करके जीर्णज्वर (अस्थिगत ज्वर) को नष्ट करता है । अश्मरी (पथरी) में भी लाभदायक है । इसके सेवनसे रक्तमें रक्ताणुओं की वृद्धि होती है, मांसग्रन्थियाँ सुदृढ़ बनती है, एव मानसिक शक्ति भी बढ़ती है ।

(१५९) पुष्पधन्वा रस ।

बनावट—रससिन्दूर द्विगुण गन्धक-जारित या पारद भस्म, नागभस्म, लोहभस्म, अभ्रकभस्म और वङ्गभस्म, ये ५ औषधियाँ सम भाग मिला, धतूरा, भाँग, मुलहठी, सेमलकी छाल और नागरवेलके पत्तोंके रसकी १-१ भावना देकर २-२ रत्तीकी गोलियाँ बनावे । (भै० र०)

मात्रा—१ से २ गोली तक दिनमें २ बार दूध, घी, मक्खन, मलाई अथवा शहदके साथ लेवें ।

उपयोग—यह रसायन अत्यन्त कामोत्तेजक और वीर्यवर्द्धक है । अण्डकोष, फलवाहिनी और शुक्रवाहिनीकी निर्बलतासे आई हुई नपुंसकता, मानसिक दोषसे होनेवाली नपुंसकता, स्मृतिनाश, निद्रानाश,

वीर्यका पतलापन, इन्द्रियकी शिथिलता, स्त्रियोंके बीजकोष (Ovaries) का विकास न होनेसे होनेवाला वन्ध्यात्व, उपदंश, अथवा सुजाकके विकारसे गर्भाशय दूषित होकर होनेवाला योनिस्राव, स्त्रियोंके नये अस्थिक्षय (हड्डी कमजोर होजाना), शुक्रमेह, लालामेह, अथवा और प्रमेहके कारणसे होनेवाली नपुंसकता आदि रोगोंको दूर करनेवाली ओषधियोंमें पुष्पधन्वा रस प्रथम श्रेणीका माना गया है।

नपुंसकत्व अनेक कारणोंसे आता है। इनमें अण्डकोष, फलवाहिनियाँ, शुक्राशय, शुक्रवाहिनियाँ आदिका योग्य विकास न होना, यह भी एक हेतु है। यदि इन अण्डकोषादिमें वैगुण्य होनेसे नपुंसकता आई हो, तो पुष्पधन्वाका उपयोग होता है। इससे पुरुषोंके अविकसित अण्डकोष और स्त्रियोंके अविकसित बीजाशयका योग्य विकास होता है। इस तरह फलवाहिनियाँ और शुक्रवाहिनियाँ मोटी और भारी होजानेसे शुक्रवहन कार्य या रजोवहन कार्य योग्य न होनेसे नपुंसकता आई हो, तो इस रसायनके सेवनसे इन वाहिनियोंका विकार कम होकर नपुंसकता दूर होती है।

अनेक व्यक्तियोंको मानसिक कारणोंसे कथन मात्रकी या कुछ अंशमें आई हुई नपुंसकता इस रसायनके सेवनसे दूर होजाती है। अन्य कारणोंसे बीच-बीचमें भासमान नपुंसकता और फिर चेतना आना, ऐसा संशय होने पर पुष्पधन्वाका उपयोग उत्तम होता है।

अति व्यवाय और उससे उत्पन्न स्मृतिनाश या निद्रानाश, स्त्री-समागमकी तीव्र इच्छा होनेपर उसका अकस्मात् भेद होजानेसे होनेवाला स्मृतिनाश या निद्रानाश, इस विकार पर पुष्पधन्वाका अच्छा उपयोग होता है। यदि अनिच्छासे ब्रह्मचर्य पालनका प्रयत्न करने पर निद्रानाश हुआ हो, तो उस पर इस रसायनका उपयोग बिल्कुल नहीं करना चाहिये, वरना विपरीत परिणाम आता है।

अति व्यवायी मनुष्यको व्यवाय विषयक या स्त्री-सम्बन्धी ...ार आने पर शीर्षशूल उत्पन्न होकर रेत स्खलन होजाता है फिर शीर्षशूलकी निवृत्ति होती है। यह स्खलन इन्द्रिय शैथिल्यावस्थामें ही होता हो, तो उस पर इस ओषधिका उत्तम उपयोग होता है। स्त्री-सम्बन्धी ध्यान होकर उन्माद या आक्षेपकी प्राप्ति हुई हो, तो इस रसायनको ब्राह्मीके सदृश शीतवीर्य अनुपानके साथ देना चाहिये।

स्त्रियोंके बीजाशयों (Ovaries) का योग्य विकास न होनेसे उत्पन्न होनेवाले वन्ध्यात्व पर यह औषध उत्तम प्रकारसे कार्य करती है।

इसी हेतुसे यदि जननेन्द्रियके अन्य अवयवका पूर्ण विकास न होनेसे ग्राम्य-धर्मके सुख-स्वादका अभाव रहता हो, तो उस पर भी पुष्पधन्वा का उत्तम उपयोग होता है। मनोव्याघातसे यह विकार उत्पन्न हुआ हो, तो उस पर भी यह लाभदायक है। सुजाक या उपदंशके हेतुसे गर्भाशय दुष्ट होकर योनिमुखमें स्राव होता हो और बीजकोषपर्यन्त दुष्टि फैल गई हो, और उसके विविध लक्षण प्रतीत होते हो, तो उस पर अनेक ओषधियोंमें पुष्पधन्वाको विशेष महत्व दिया जाता है।

स्त्रियोके उत्पन्न होनेवाले एक प्रकारके अस्थिक्षयमें पुष्पधन्वा उत्तम लाभदायक है। इसमें अस्थिमें मृदुता आती है। विशेषतः नितम्बास्थि मृदु होने पर चलनेमें विलक्षण गति होती है। मुड़कर चलना पड़ता है। पैरको उठाकर आगे बढ़ाना पड़ता है, परिश्रम मालूम पड़ता है, क्वचित् अन्य स्थानोकी हड्डियो पर भी गाँठ होजाती है। यह विकार अति जीर्ण हो, एवं अशक्त और निर्बल स्त्री, जो बार-बार सगर्भा होती रहती हो, उसे यह विकार हुआ हो, साथ-साथ अन्य इन्द्रियों भी अति क्षीण होगई हो, तो नागभस्मका उपयोग करना चाहिये। किन्तु विकार अति पुराना न हो, मनोव्याघात आदि कारण स्पष्ट हों, या मानसिक विकृतिके लक्षण अधिक हो, तो यह उत्तम कार्य करता है।

प्रमेह या मधुमेहके उपद्रव रूपसे या इन रोगोके लक्षणोमें एक व्यभिचारी लक्षण रूपसे नपुंसकता आई हो, तो पुष्पधन्वा उपयोगी है। शुक्रमेह और लालामेह पर यह अत्युत्तम है।

संक्षेपमें पुष्पधन्वा रस अण्डकोष आदि अवयवोको शक्तिदायक, उत्तेजक, वायुकी पूर्ति कम होनेसे उत्पन्न शिथिलताको नष्ट करनेवाला, अण्डकोषोमें अतःस्राव बढ़ानेवाला, किञ्चित् स्तम्भक शक्तिवर्द्धक और वृष्य ओषधि है। (औ० गु० ध० शा० के आधार से

(१६०) मृगनाभ्यादि वटी।

बनावट—सोनेके वर्क १॥ माशे, मोतीकी पिष्टी ६ माशे, चाँदीके वर्क ४॥ माशे, कस्तूरी ३ माशे, केशर ६ माशे, वंशलोचन १०॥ माशे, छोटी इलायचीके बीज ७॥ माशे, जायफल ६ माशे और जावित्री १ तोला ले। पहले मोती पिष्टीके साथ सोने और चाँदीके वर्क को मिलावे। बादमें अन्य दवाओका चूर्ण मिला नागरबेलके पानका रस डाल दो दिन खरल कर मटरके समान गोलियाँ बनावें। (स्वा० र०

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २ बार दूध या मलाईके साथ ले

उपयोग—इसके सेवनसे वीर्यस्राव, स्वप्नदोष, धातुविकार, प्रमेह

क्षय, श्वास, मदाग्नि, सब विकार दूर होते है, देह नीरोग बनती है, तथा बल, बुद्धि, स्मरणशक्ति, वीर्य और आयुकी वृद्धि होती है।

यह वटी वातवहा नाड़ियाँ और रक्तवाहिनियाँ, दोनोको लाभ पहुँचाती है। इस वटीमें सुवर्ण, मुक्ता आदि शीतवीर्य ओषधियोका प्राधान्य होनेसे यह उष्ण प्रकृति वालोको विशेष अनुकूल रहती है, एवं पुरुष और स्त्रियोको उष्ण ऋतुमें भी निर्भयतापूर्वक दीजाती है।

सुजाक, उपदंश या पित्तप्रकोप होनेपर पेशाब बार-बार पीले रंगका थोड़ा-थोड़ा होता रहता है। रक्तमें विष-वृद्धि होकर नेत्रमें दाह, मस्तिष्कमें भारीपन, चक्कर आना, तन्द्रा, आलस्य, मंदाग्नि और निस्तेजता आदि लक्षण उपस्थित होते है। उसपर इस वटीके सेवनसे सब लक्षणोका शमन होकर वीर्य शुद्ध, शीतल और गाढ़ा बन जाता है।

मानसिक आघात, चिन्ता, अधिक प्रवास, चाय, गाँजा, या तमाखूका अधिक सेवन आदि कारणोंसे मस्तिष्क जब निर्बल होजाता है, तब निद्रानाश, स्मरणशक्तिमें न्यूनता, निकम्मा-निकम्मा विचार आते रहना, उदासीनता, अरुचि, मलावरोध आदि विकार उत्पन्न होने लगते है, उनपर इस वटीका बहुत अच्छा उपयोग होता है।

गरम पदार्थोके अति सेवन या अधिक स्त्री-समागमसे वीर्य पतला और उष्ण होजाता है, फिर बार-बार पेशाबके साथ निकलते रहने या स्वप्नमें शुक्रपात होते रहनेसे निस्तेजता और उदासीनता प्रतीत होने लगती है, अन्य धातुओका क्षय होता है; तथा थोड़ा कार्य करने पर थकावट आती है, उस पर यह वटी अति हितकर है।

अधिक मानसिक परिश्रमसे वातवाहिनियाँ और वातवह केन्द्र निर्बल होजाते है। फिर सुस्ती बढ़ जाती है, स्मरणशक्ति घट जाती है, और मन चिन्तातुर रहता है, ऐसी परिस्थितिमें इस वटीके सेवनसे मस्तिष्क और वातवह यन्त्र सबल होकर सब विकार दूर होजाते है।

उपदंश, सुजाक या मधुमेह होने पर जब शरीरके घटक शनैः-शनैः गलते जाते हैं, रक्तमें उपदंश आदिके कीटाणु या विषका प्रवेश होता है, अथवा मधुमेहसे रक्तमें शर्करा वृद्धि, फिर मूत्रविष वृद्धि होती है, पश्चात् विष फैलनेसे विविध अवयवोमें दाह होता रहता है, या शूल निकलता रहता है, क्वचित् सूक्ष्म ज्वरके समान शरीर गरम रहता है, ऐसे कोथ रोगमें इस वटीक सेवन अति लाभदायक है।

इन रोगोंके हेतुसे अण्डकोष और शुक्राशयकी वातवाहिनियाँ

या सूक्ष्म रक्तवाहिनियाँ विकृत होकर यदि नपुंसकता आगई हो, तो वह भी इस औषधसे दूर होजाती है।

संक्षेपमें यह वटी रक्तमें रहे हुएविषको दूर करती है, वीर्यको शुद्ध, शीतल और गाढ़ा बनाती है, मस्तिष्कको सबल बनाती है, मनको प्रसन्न करती है, और शरीरको स्वस्थ बनाती है।

(१६१) वीर्यशोधक वटी ।

बनावट—चाँदीके वर्क, वंगभस्म, प्रवालपिष्टी, शुद्ध शिलाजीत और गिलोय सत्व, सब एक-एक तोला तथा कपूर ३ माशे ले। सबको यथाविधि मिला शिलाजीतके जलमें खरल करके मटरके समान गोलियाँ बना ले। (चि० च०)

सूचना—प्रवालपिष्टीके स्थान पर सुवर्णमाक्षिक भस्म मिलाने पर उष्णताको शान्त करनेमे विशेष गुण दर्शाती है।

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २ बार दूधके साथ दे।

उपयोग—यह वटी शुक्रमें रहे हुए दूषित घटकोका शोधन करती है, उष्णताका शमन करस्तम्भन शक्तिको बढाती है, तथा शुक्राशय और शुक्रवाहिनीके वातप्रकोप और शिथिलताको दूर करती है। एवं इस वटी से सब प्रकारके प्रमेह, धातुदोष, मूत्ररोग, निर्बलता आदि विकार दूर होकर शक्तिकी वृद्धि होती है।

(१६२) वीर्यस्तम्भन वटी ।

प्रथम विधि—अभ्रक भस्म, कस्तूरी, कपूर, केशर, जायफल, पीपल, लौंग, अकलकरा, सोंठ, सब समभाग ले और शुद्ध अफीम सबके बराबर ले। फिर सबको यथाविधि मिला नागरवेलके पानके रसमें १२ घण्टे घुटाई करके आध-आध रत्तीकी गोलियाँ बनावें।

मात्रा—½ से १ रत्ती शामको मिश्री मिले दूधसे लें।

उपयोग—यह वटी वीर्यस्राव, वीर्यका पतलापन आदि दोषोको दूर करके स्तम्भनशक्तिकी वृद्धि करती है, तथा मनको प्रफुल्लित और शरीरको सुदृढ़ बनाती है।

सूचना—अफीममें मादक गुण रहा है, और इस वटीमें आधे परिमाणमें अफीम है, अत सम्हालपूर्वक कम मात्रामें लेनी चाहिये।

दूसरी विधि—कस्तूरी और सोनेके वर्क १-१ माशा, चाँदीके वर्क, इलायची, जुदेबेदस्तर १-१ तोला, नरकचूर, दरूनज अकबरी; बहमन लाल, बहमन सफेद, जटामासी, लौंग, तेजपत्र ६-६ माशे;

पीपल और सोंठ ३-३ माशे लें। जुंदवेदस्तरको शहदमें घोटें। फिर क्रमशः वर्क, कस्तूरी और शेष वस्तुओंका कपड़छान चूर्ण मिला ३ घंटे शहदमें खरल करके १॥-१॥ माशेकी गोलियाँ बाँधे। (आ० नि० मा०)

मात्रा—१-१ गोली शहदमें मिलाकर सुबह-शाम लेवें। ऊपर मिश्री मिला दूध पीवे।

उपयोग—तीसरी विधिमें लिखा है।

तीसरी विधि—चन्द्रोदय १ माशा, कस्तूरी १ माशा, केशर २ माशे, जुन्दवेदस्तर ८ माशे, लोबानके फूल २ माशे, जावित्री २ माशे और अकलकरा २ माशे लें। प्रथम जुन्दवेदस्तरको शहदमें घोटे। फिर चन्द्रोदय और कस्तूरी मिलावें, बादमें शेष दवाइयोंका बारीक चूर्ण मिलाकर मटरके समान गोली बना लें।

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २ बार दूधके साथ लें।

उपयोग—इस वटीके सेवनसे शीघ्रपतन, स्वप्नदोष और प्रमेह आदि रोग दूर होकर स्तम्भनशक्ति और शरीर बलकी वृद्धि होती है।

चौथी विधि—जायफल, लौंग, जावित्री, केशर, छोटी इलायचीके दाने, शुद्ध अफीम और अकलकरा, ये सब १-१ तोला और भीमसेनी कपूर ३ माशे लें। इन सबको मिलाकर नागरवेलके पानके रसमें १२ घण्टे खरल करके १-१ रत्तीकी गोलियाँ बनावें। (यो० र०)

मात्रा—१-१ गोली रात्रिको सोनेके आध घण्टे पहले मिश्री मिलाये दूधके साथ लेवें। कब्ज न हो, तो सुबह भी ले सकते हैं।

उपयोग—इस वटीसे शीघ्रपतन दूर होता है, वीर्य शुद्ध और गाढ़ा बनता है; तथा पचनक्रिया बलवान और शरीर तेजस्वी बनता है।

सूचना—इस गुटिकामें १ तोला रससिंदूर या शुद्ध हिंगुल मिला लेने से यह वटी अधिक लाभ पहुँचाती है। हम रससिंदूर मिलाकर उपयोगमें लेते हैं।

(१६३) हिंगुलेश्वर रस।

बनावट—शुद्ध सिंगरफ, शुद्ध गन्धक १-१ तोला और ताम्र-भस्म २ माशे मिला, सेमलके पुष्पोंके रसमें १२ घण्टे खरल करके १-१ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें। (र० रा० सु०)

मात्रा—१ से २ रत्ती तक शहदके साथ दिनमें ३ बार देवें। पेचिशमें ऊपर धनिया और जीरेका क्काथ पिलावें।

उपयोग—यह रसायन कफज चिरकारी ग्रहणी (Chronic Diarrhoea), नयी संग्रहणी (Sprue), अपचन जनित अतिसार, प्रवाहिका और मन्दाग्निको नष्ट करता है। अन्त्रमें शोथ, कीटाणु-

प्रकोपज मुखपाक, उदरमें शूल, ज्वर, सूक्ष्म कृमि, कास और श्वास,- सब पर यह हितकारक है।

(१६४) महावातराज रस ।

बनावट---धतूरेके शुद्ध बीज, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म; प्रत्येक २-२ तोले, अभ्रक भस्म, दालचीनी, लौंग, जायपत्री, जायफल,- इलायचीके बीज, भीमसेनी कपूर, काली मिर्च, चन्द्रोदय या रससिंदूर प्रत्येक १-१ तोला और अफीम १२ तोले ले। पहले पारद-गन्धककी कज्जली कर लोहभस्म, अभ्रकभस्म और चन्द्रोदय मिलाकर खूब मर्दन करें। फिर शेष अन्य ओषधियोंका कपड़छान चूर्ण और अन्तमें अफीम मिलावे। पश्चात् सबको धतूरेके रसमें एक दिन खरल कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बनावे। यह प्रयोग सुजानगढ़के स्व० यतीजी महाराजका है। सिद्धभैषज्य मजूपाकारने भी इसे अपने ग्रन्थमें लेलिया है।

(श्री० पं० गोवर्द्धनजी छांगाणी, भिषक्केसरी)

मात्रा--½ से १ रत्ती जलके साथ या रोगानुसार अनुपानके साथ दिनमें २ बार दें। अतिसार आदिमें शहद और न्युमोनिया, कफ-ज्वर आदिमें अदरखके रसके साथ दें। इसी तरह अन्य रोगों पर उचित अनुपानोंकी योजना करे।

उपयोग---यह रसायन अनुपानभेद से कास, श्वास, हिक्का, अतिसार, संग्रहणी, मधुमेह, प्रमेहपिटिका आदि रोगोंमें बहुत उपयोगी है। कफज्वर, श्वसनक सन्निपात (Pneumonia), प्रवाहिका, जीर्ण पक्व आमातिसार और रक्तातिसार आदिमें रामबाणके समान काम करता है। श्वास-कास आदिमें कैसा भी पार्श्वशूल क्यों न हो, यह आध घण्टेमें प्रतिज्ञापूर्वक शमन करता है। मधुमेहमें कितनीही शक्कर जाती हो, चाहे जितने परिमाणमें रोग बढ़ गया हो, साथमें हृदय-विकृति, कम्प और प्रमेहपिटिका भी होगये हो, सब उपद्रवोंका शमन करनेके साथ मधुमेहको निश्चित दूर करता है।

इस रसायन में मुख्य औषध अहिफेन होने से इसका विविध अविराम ज्वर(न्युमोनिया, इन्फ्लुएन्जा आदि) तथा प्रादाहिक ज्वर में उपयोग होने पर अशेष उपकार होता है। प्रलाप, अस्थिरता, अनिद्रा, अतिसार, तीव्र वेदना और भ्रम आदिके निवारणमें यह अच्छा कार्य करता है, किन्तु कितनीक बातो को लक्ष्यमें रखकर इसका प्रयोग करना चाहिये। यथा अनिद्रा है किन्तु उसके साथ प्रलाप या अचेतना नहीं है; अथवा अस्थिरता और प्रलाप है, परन्तु उसके साथ नाड़ी

कोमल है, मुखमण्डल और नेत्र लाल नहीं है, तथा जिह्वा आदि आर्द्र और निर्मल है (शुष्क और गुलाबी नही है), तो इस रसायन को प्रयोजित करना चाहिये। उदरमें मल संगृहीत है, तो पहले बस्ति द्वारा कोष शुद्धि करके फिर इसका प्रयोग करना चाहिये। इन्फ्ल्युएन्ज़ा की प्रथमावस्था में इसका प्रयोग निषिद्ध है, किन्तु मल और कफ सरलतापूर्वक निकलने पर और फुस्फुसमें रक्त-सग्रह न होने पर आवश्यकता हुई, तो इसे प्रयोजित कर सकते है।

यदि दुर्बल रोगीके सन्निपातमें प्रलाप, खुजली, अस्थिरता, अनिद्रा और अधिक अतिसार आदि लक्षण उपस्थित हो, तो यह रसायन महोपकारक होता है। फिर भी दो बातो की ओर विशेष लक्ष्य रखना चाहिये—१ नाड़ी पुष्ट और कठिन हो, मुखमण्डल और नेत्र उज्वल और लाल हो, तो यह रसायन नही देना चाहिये। २. चक्षुकी पुतली कुछ आकुंचित हो, तो कदापि अफीमप्रधान औषध का उपयोग नही करना चाहिये, अन्यथा विपत्ति खड़ी होजायगी।

यदि अन्त्रावरण (उदर्य्याकला) प्रदाह, आमाशय-प्रदाह, अन्त्रप्रदाह आदि कारणो से रोगोत्पत्ति हुई हो, तो अफीम प्रधान औषध निर्भय होकर प्रयोजित की जाती है। प्रदाह की चिकित्सा में प्रधान उद्देश्य यह है कि, प्रादाहिक स्थान को शान्ति मिले, उस अवयव (इन्द्रिय) की कोई क्रिया न होनी चाहिये, उसे अधिक परिश्रम न होना चाहिये, अन्त्र और अन्त्रावरण-प्रदाह में अफीम द्वारा इस उद्देश्य की सहज सिद्धि होती है। अफीम-प्रधान औषध सेवन से अन्त्रस्थ श्लैष्मिक कला की वात नाड़ियो की उग्रता शमन होती है, आन्त्रिक पेशियो की क्रियामें स्थैर्यता आजाने से कोष्ठबद्धता होजाती है। इन सब प्रदाहोमें स्वभावतः इस उद्देश्य की सिद्धिके लिये चेष्टा होती है। उस कार्यमें अफीम सहायता पहुँचाती है। इस हेतुसे इस रसायन से सत्वर लाभ होजाता है।

अतिसार और प्रवाहिका के वेग, शूल, वेदना, कुंथन आदिके निवारणमें अफीम महौषध होनेसे यह रसायन सत्वर लाभ पहुँचा देता है। एक प्रकारके अजीर्ण रोगमें अतिसार होता है। उसमें बहुधा आमाशय और अन्त्र की मांसपेशियो की क्रिया अत्यन्त बढ़ जाती है। इसी हेतुसे आहार-द्रव्य उदरस्थ होने पर थोड़े ही समयमें अर्द्ध परिपक्व अवस्थामें ही आमाशयके मुद्रिका-द्वारमें से ग्रहणीके भीतर प्रवेश कर जाता है। फिर वह और उग्रता उत्पन्न कर अन्त्र की मल-

निर्गमन क्रिया को बढा देता है। सम्यक् जीर्ण होनेके पहले ही भेद होजाता है। रोगी उदरको खाली अनुभव करता है, और क्षुधा लगी है, ऐसी भावना होजाती है। एवं भोजन कर लेने पर क्षणिक शान्ति जानी जाती है, किन्तु आहार-द्रव्य शोषित होनेके पहले मलरूपमें निर्गत होजाता है। इस हेतुसे देह को योग्य पोषण नहीं मिलता और विविध वेदनाप्रद लक्षण प्रकाशित होते हैं। ये लक्षण चिरकारी अजीर्ण रोगमें सामान्यतः ६ से १२ वर्ष की आयु वाले बालकों को देखनेमें आते हैं। यदि इन लक्षणोंके साथ मुंहमें फाले, खट्टी डकार, आमाशयमें दाह, ये लक्षण न हो, तो भोजनके १५ मिनट पहले इस रसायन की एक मात्रा दे देनेसे आमाशय और अन्त्रकी मांसपेशियों की क्रिया दमित होती है, जिससे आहार-द्रव्य-निर्गमन में विलम्ब होता है और आहार पचन होनेके लिये समय मिलजाता है। यदि कीटाणु-प्रकोप हो, उबाक होती हो, ज्वर भी रहता हो, तो इस रसायन की अपेक्षा बातेभकेसरी विशेष हितावह माना जाता है, और आमाशयके रसस्राव में उग्रता और अम्लता अधिक हो, तो ग्रहणीकपाट रस देना चाहिये।

नाग-विषजशूल रोगमें शूल और आक्षेप-निवारणके लिये यह रसायन अति उपयोगी है। अनुपान रूपसे एरण्ड तैल देना चाहिये।

आमाशय की वातवाहिनियों की उग्रताके हेतुसे वमन और हिक्का होने पर यह रसायन तत्काल लाभ पहुँचाताहै। मात्रा बहुत कम देनी चाहिये, और २-२ घण्टे पर ३-४ बार देना चाहिये।

मूत्राश्मरी या पित्ताश्मरी का मूत्र-प्रणाली या पित्तप्रणाली में प्रवेश होने पर भयानक वेदना होती है। वह इस रसायन की पूर्ण मात्रा देनेसे निवृत्त होजाती है। यदि एक मात्रासे वेदना शमन न हो, तो आधसे एक घण्टा पश्चात् पुनः दूसरी बार एक मात्रा दें। साथ-साथ मूत्राश्मरीके रोगीको उष्ण जलपूर्ण टबमें बिठावे, जिससे सब यातना सहज दूर होजायगी। पित्ताश्मरी में रोगी को गरम जल (सहन होसके ऐसा) पिलाया जाता है, जिससे सत्वर वेदना शमन होजाती है।

सूचना—इस औषधिमें आधी मात्रामें अफीम मिलायी है, इसलिये सम्हालकर प्रकृतिका विचार करके उपयोग करना चाहिये।

(१६५) कालारि रस।

बनावट—शुद्ध पारा ३ तोले, शुद्ध गन्धक ५ तोले, शुद्ध बच्छनाग ३ तोले, कालीमिर्च ५ तोले, पीपल १० तोले, लौंग ४ तोले, धतूरे के शुद्ध बीज ३ तोले, सोहागेका फूला ५ तोले, जायफल ५ तोले और

अकरकरा ३ तोले लें। पहले पारद-गन्धकको कज्जली कर अन्य ओषधियोंका चूर्ण मिलावें। फिर करीर (कैर) के स्वरस (ताजे कैरकी बारीक शाखाओंको जलके साथ कूटकर रस निकाल ले) और अदरख के रसमें २-२ दिन खरल करके १-१ रत्ती की गोलियाँ बनावे। योगचिंतामणिकारने "करीरार्द्रक निम्बूकैः" कह कर नीबूके रसकी भावना भी बताई है। परन्तु हमारी गुरुपरम्परामें कैर और अदरख के रसकी ही भावना देनेका रिवाज है। (श्री० प० गोवर्द्धनजी शर्मा छागाणी)

मात्रा—१ से २ रत्ती दिनमें २ से ३ वार गरम जल अथवा रोगानुसार अनुपानके साथ दें। कतिपय चिकित्सक अदरखके रसके साथ भी देते है। सन्निपातोंमें प्रलाप आदि लक्षण होने पर वैद्यजीवनोक्त अर्कादि क्वाथ या योगरत्नाकरके तगरादि कषायके साथ दिया जाय, तो इन सब विकारो को दूर करनेमें अच्छा चमत्कार दिखाता है।

उपयोग—यह रसायन सन्निपातमें उत्पन्न श्वास, कास, हिक्का और प्रलाप आदि लक्षणोंका शमन करनेमें बहुत उपयोगी है। यह कफप्रधान और वातप्रधान सन्निपातमें विशेष हितकारी है। अन्त्र के शोधन और वातकफको शमन करनेके साथ सेन्द्रिय विषको सत्वर जला कर रोगको दूर करता है। इसके अतिरिक्त यह रस कफज्वर तथा शीतज्वर पर भी तत्काल गुण दर्शाता है।

(१६६) कफकर्त्तन रस।

बनावट—अपामार्ग पञ्चाङ्ग १ सेर, जायपत्री २ तोले, छोटी इलायची साबुत, जायफल, और लौंग १-१ तोला तथा कालीमिर्च ३ तोले लें। सबको कढ़ाहीमें डालकर जलावे। निर्धूम राख होजाने पर खरल कर पीस ले। फिर १ तोला चरस की भस्म मिलावे। अभाव में गाँजा और तम्बाकू के चिलममें रहे गुल की निर्धूम राख बनाकर मिलाले। बादमें सोहागेका फूला १ तोला और पारे-गन्धककी कज्जली ६ माशे मिला, अच्छी प्रकार मर्दन कर लेवे। (श्री० प० गोवर्द्धनजी छागाणी)

मात्रा—१ से २ रत्ती तक दिनमें ३-४ वार नागरवेल के पान के साथ चाबकर रस धीरे-धीरे निगलते रहे।

उपयोग—यह रसायन खाँसी और श्वास रोगका शमन करने में अच्छा उपयोगी है। वर्षोंके जमे हुए कफको बाहर निकाल देता है। सूखी और गीली, दोनों प्रकारकी खाँसियोंमें अच्छा उपयोगी है। इसका उपयोग श्रीधन्वन्तरि आयुर्वेद महाविद्यालयके धर्मार्थ औषधालय, नागपुर, में अनेक वर्षोंसे होता है। यह प्रयोग हमें एक संन्यासी

महाराज से मिला था। उनके हम आभारी हैं इसलिये कि, यह प्रयोग दीनदुखियोंके लिये महोपकारी सिद्ध हुआ है।

(१६७) वातेभकेसरी रस।

बनावट—शुद्ध सोमल, कालीमिर्च, लौंग, शुद्ध बच्छनाग, छुहारेकी गुठली, जायफल और करीरकी कोंपले १-१ तोला; अफीम और मिश्री २-२ तोले लें। सबको यथाविधि मिला बड़के दूधमें मर्दन कर सरसोंके बराबर गोलियाँ बनालें। (सि० भ० म०)

मात्रा—१ से ३ गोली दिनमें २ से ३ बार देवें।

अनुपान और उपयोग—इस रसायन को श्वसनक सन्निपात (Pneumonia) में मिश्रीके साथ देनेसे तत्काल लाभ प्रतीत होता है। श्वास, कास और कफप्रधान सन्निपातमें शहदके साथ और मरणासन्न बेहोशीकी अवस्थामें १-१ रत्ती सफेद कत्था और अकलकरेके साथ देनेसे सत्वर कफप्रकोप का शमन होकर बेहोशी और त्रिदोष निश्चयपूर्वक दूर होते हैं, एवं रोगीकी रुकी हुई जबान खुल जाती है। हिचकीमें मूलीके बीजके साथ, अतिसारमें छोटी हरड़, सौंफ और जीरेके साथ, रक्तप्रदरमें शहद या घीके साथ शिरदर्दमें नकछिकनी के साथ, नस्य रूपसे, आफरामें अदरखके रसके साथ सेवन और नाभि पर मूषककी मेंगनीका लेप करनेके लिये, एकाहिक, तृतीयक, चातुर्थिक आदि विषम ज्वरोंमें गुड़के साथ, पित्त-ज्वरमें शक्करके साथ, नपुंसकता में दूधकी मलाईके साथ, सुजाकमें गुलाबके गुलकन्द या शक्करके शर्बतके साथ; तथा वाजीकरणके लिये जायफल और कस्तूरीके साथ देने से यह रसायन अच्छा चमत्कार दिखाता है। हमने इसका उपयोग सन्निपात, शीतज्वर आदि रोगों पर अनेक बार किया है, और यह फलप्रद प्रतीत हुआ है। (श्री प० गोवर्द्धनजी शर्मा छांगाणी भिषक्केसरी)

(१६८) अर्द्धाङ्गवातारि रस।

बनावट—पारा २० तोले और ताम्रभस्म ४ तोलेको जम्भीरी नीबूके रसमें १ दिन खरल करें। सूख जाने पर शुद्ध गन्धक २० तोले मिला कज्जली कर नागरवेलके पानके रसमें १२ घण्टे खरल करें। पश्चात् गोला बाँधकर सुखालें। बादमें हाँडी वा सरावमें सपुट कर ३ कपड़मिट्टी करें। तत्पश्चात् जमीनमें खड्डाके भीतर संपुट रख उस पर ४ या ६ अंगुल मिट्टी दबा दें। फिर खड्डेमें २-३ गोबरीकी अग्नि जलावें। १२ घण्टे तक बराबर १-१ गोबरी डालते जायँ। स्वांग शीतल

होने पर सपुट खोल ओषधि निकाल, त्रिकटुके क्वाथकी ३ भावना देकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें। (र० र०)

मात्रा—१ से २ रत्ती त्रिकटुके चूर्ण और शाहदके साथ देवें।

उपयोग—इस रसायनके सेवनसे अर्द्धाङ्गवात तथा एकांगवात दूर होते हैं। अर्द्धाङ्गवातमें जो थोड़े-थोड़े दिनके पश्चात् बार-बार कम्प (झटका) आता रहता है, वहभी इसके सेवनसे शमन होजाता है।

(१६९) अचिन्त्यशक्ति रस।

बनावट—शुद्ध सोमल, शुद्ध हरताल और शुद्ध हिंगुल १-१ तोला मिला करेले के ।। सेर रसमें खरल कर सरसोंके बराबर गोलियाँ बनालें। करेलेका रस थोड़ा थोड़ा मिलाकर १।। सेर पचन कराना चाहिये।

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २ बार बलाबल देखकर देवें।

अनुपान और उपयोग—इस रसायनको श्वसनक सन्निपात (Pneumonia), फुफ्फुस-शोथ, श्वास, कास, कफज्वर और सन्निपात आदिमें शक्करके साथ देनेसे सत्वर चमत्कारिक लाभ दिखाता है। भोजनमें केवल दूध ही दें, अन्य भोजन नहीं देना चाहिये। रोगका वेग शान्त होने पर थोडे दिनों तक प्रातः सायं शृङ्ग भस्म और अभ्रक भस्म १-१ रत्ती मिला शहद, घृत-शक्कर या केवल घृतके साथ चटाना चाहिये। श्वसनक सन्निपातके समान यह रसायन विषम ज्वरोंमें अच्छा लाभ पहुँचाता है। सतत, एकाहिक, तृतीयक, चातुर्थिक इन सब पर सत्वर प्रभाव पड़ता है। पालीके ज्वर एक दिनमें ही ३ समय औषध सेवन करने पर बहुधा रुक जाते हैं। ज्वर रुकजाने पर भी ४-६ दिन तक इस रसायन सेवन करते रहना चाहिये। अनुभव करने पर यह रस वस्तुतः अचित्य शक्तिशाली ही सिद्ध हुआ है। यह रस हमें सुजानगढ़ के स्वर्गीय यतीजी महाराजके शिष्य पं० नारायणदत्तजी ज्योतिर्विद् कलकत्ता-निवासीसे प्राप्त हुआ है। हम उनके नितान्त कृतज्ञ है।

(श्री० पं० गोवर्द्धनजी छागाणी भिषक्केसरी)

(१७०) क्षुद्बोधक रस।

बनावट—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, सोहागेका फूला, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, सज्जीखार, जवाखार, हरड़, बहेड़ा, आँवला, चित्रकमूल, चव्य, पाँचों नमक, डाँसरिया (अभावमें खट्टे बेर), अनारदाना, लोह भस्म, भीमसेनी कपूर, सब सम भाग लेवें। पहले पारा-गन्धककी कज्जली करके लोहभस्म मिलावें। पश्चात् अन्य ओषधियोंका चूर्ण मिला अम्लवेंतके कषाय, अदरखके रस, नीबूके रस, और अज-

वायनके क्वाथकी क्रमशः ३-३ भावना देकर चनेके समान गोलियाँ बना लेवें। ([illegible])

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २ से ३ बार जलके साथ दें।

उपयोग—इस रसायनका उपयोग किसी भी रोगजनित अग्निमांद्य पर अच्छा होता है। भूख जल्दी खुल जाती है, ऐसा हमारा दीर्घ कालसे अनुभव है। वातज और कफज अग्निमांद्य, मलकोष्ठ, अरुचि, उदरशूल और अपचन आदि विकार इसके सेवनसे दूर होजाते हैं तथा मुखमण्डल पर लाली और स्फूर्ति आजाती है।

(१७१) रेतोरोधिनी गुटिका।

बनावट—जायफलमें छेद कर एक माशा अफीम डाल जल में गूँदे गेहूँके आटे के भीतर जायफल को बन्द करके बाटी जैसी आकृति बनावे। फिर उसे सेक ले। पश्चात् निकाल शीतल होने पर जायफल सहित अफीमके साथ इलायचीके दाने, कस्तूरी, लौंग, केशर और शुद्ध हिंगुल १-१ माशे मिलाकर १-१ रत्तीकी गोलियां बनालें। (सि० भे० म०)

मात्रा—१ से २ गोली तक मिश्री मिले दूधके साथ शामको एक बार या सुबह-शाम दो बार सेवन करें।

उपयोग—इस वटीके सेवनसे वीर्यका स्तम्भन होता है।

सूचना—अफीमवाली औषधि शीघ्रपतन पर या अधिक समय तक वीर्यस्तम्भन की आशा से दीर्घ काल तक सेवन नहीं करनी चाहिये, अन्यथा शुक्रवाहिनी और मूत्रेन्द्रिय से सम्बन्ध वाली नाड़ियाँ क्षीण होजाती हैं।

(१७२) प्रमेहगजकेसरी रस।

बनावट—लोहभस्म, नागभस्म, वङ्गभस्म, तीनों १-१ तोला, अभ्रक भस्म ४ तोले, शिलाजीत ५ तोले और खखसाके फूलोंकी केसर ६ तोले ले। सबको मिला नीबूके रसमें ७ दिन खरल कर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवे। (वै० सा० स०)

मात्रा—१ से ३ गोली दिनमें दो बार जल, गुड़मारके अर्क या रोगानुसार अनुपानके साथ। प्रमेह पर घी-मिश्री और शहद से।

उपयोग—यह रसायन मधुमेह, लालामेह, सान्द्रमेह, सब प्रकार के पित्तप्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी और दाह आदिको नष्ट करता है।

मधुमेहमें मधुकी मात्रा इस औषधके सेवनसे अति जल्दी कम होती है। नागभस्म और शिलाजतुके संयोगसे मधु सजनन कम होता है। मधुमेहकी उत्पत्तिमें शारीरिक कारणोंमें अग्न्याशयकी

विकृति, यह प्रमुख कारण है। इसमें उत्पन्न होने वाले आग्नेय रससे आहार रसमें शर्कराभूयिष्ट या पिष्ठमय पदार्थका योग्य पचन होता है। आग्नेय रसका यह धर्म न्यून होनेका अर्थ मधु पचनका धर्म न्यून होना है। इस तरह तीनो दोष, मज्जा, रस, ओज, मेद, रक्त, शुक्र, लसीका, वसा, मांस, रक्त, रस आदि दुष्ट होजाते है अर्थात् धातु-उपधातुओंकी दुष्टि होजाती है। प्रमेहगजकेसरीसे इन सबकी विकृति दूर होजाती है। अग्न्याशयके घटकोंकी विकृति दूर होकर वह सबल बन जाता है, और फिर आग्नेय रसका स्राव सम्यक् होने लगता है। परिणाममें मधुसजनन मर्यादित होकर मधुमेह शमन होजाता है।

मधुमेहमें वार-वार मूत्रोत्सर्ग, भयकर तृषा, मुखमें शुष्कता, क्षुधा अति प्रदीप्त होजाना, नेत्रके समक्ष अंधकार छाजाना, भ्रम, कानमें आवाज आना, कर्णनादक हेतुसे अति वेचैन होना, और शिर दर्द आदि लक्षण होने पर इस रसायनका उपयोग अति लाभदायक है।

मधुमेहमें अनेक उपद्रव होते हैं। इनमें मूत्राम्लुत (मूत्रमें एसिटोन यूरिया Aceton uria) जाना यह भयकर उपद्रव है। इसकी परीक्षा चिकित्सातत्त्वप्रदीप प्रथम खण्ड के पृष्ठ १२१ में दी है। इस पर प्रमेहगजकेसरी अच्छा फलप्रद जाना गया है।

सर्वाङ्गमें शूल, रक्तवाहिनियों गत वातप्रकोप, कलायखञ्ज सदृश कम्प, चलनेमें पैर विचलित होने, सांध-सांध शिथिल होने, वेदना इतनी तीव्र रहना कि, रात्रि दिनमें निद्रा न आना, गरम जलसे सेक करने या तैलमर्दन करने पर किञ्चित् काल अच्छा लगना, इसके विरुद्ध रोगीने हाथका स्पर्श भी सहन न होना, तब तैलमर्दनकी बात ही कैसे हो ? ऐसे लक्षण युक्तमधुमेहमें इसका अत्यन्त उपयोग हुआ है।

वार-वार चक्कर आना, शिर उठाने पर चक्कर आकर गिर जाने का भय लगना, वार-वार मूत्रोत्सर्ग होना, प्रत्येक वार लघुशंका करने पर अशक्ति बढ़नेका भास होना, मूत्रका रंग पीला या धूसर होना आदि लक्षण होने पर प्रमेहगजकेसरी देना चाहिये।

मूत्रकृच्छ्र पर इसका उत्तम उपयोग होता है। मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघातमें अन्तर है। मूत्राघातमें मूत्रोत्पत्ति ही कम होजाती है। मूत्रकृच्छ्रमें मूत्रोत्पत्तिके कार्यमें कुछ प्रतिबन्ध नहीं होता। परन्तु मूत्राशयसे लेकर मूत्रनलिकाके अन्त तकके मार्गमें कुछ रुकावट उत्पन्न होती है। इस हेतुसे मूत्रकी प्रवृत्ति कष्ट से होती है। इसके जीर्णविकारमें इसका उत्तम उपयोग होता है। पौरुषग्रन्थि (Prostate gland)

की अति वृद्धि न हुई हो, तो उसकी वृद्धिसे उत्पन्न मूत्रकृच्छ्रमें इसका उत्तम उपयोग होता है। जीर्ण सुजाकके रोगीके मूत्रकृच्छ्र पर तो इसकी अपेक्षा सुवर्णवंगका अधिक उपयोग होता है।

लालामेह और सान्द्रमेहमें यह रसायन अच्छा लाभ पहुँचाता है। संक्षेपमें प्रमेहगजकेसरी सर्व धातुके पोषणक्रमको व्यवस्थित करने वाला, शक्तिवर्द्धक, मधुसजनन कार्यको नियमित करने वाला, रसायन और मूत्रदोषनाशक है। यह वात, पित्त, कफ, तीनों दोष, रस रक्तसे शुक्र तक सब धातु, तथा अन्न्यशय, यकृत् और मूत्रमार्ग पर अधिक लाभ पहुँचाता है। (औ० गु० ध० शा० के आधार से)

(१७३) मेहान्तक रस ।

बनावट—अभ्रक भस्म १ तोला, लोह भस्म २ तोले, नाग भस्म ३ तोले और वंग भस्म ४ तोले लें। सबको मिला तालफल, वाराहीकंद, शतावर और सफेद चन्दनके क्वाथमें पृथक्-पृथक् ३-३ घण्टे खरलकर २-१ रत्ती की गोलियाँ बनावे। (यो० र०)

मात्रा—१ से २ गोली मक्खन-मिश्रीके साथ सेवन करें।

उपयोग—इस रसायनका दूसरा नाम पञ्चलोह रसायन भी है। यह रसायन प्रातःकाल यथाविधि सेवन करने पर सब प्रकारके प्रमेहोंका नाश करता है। शालि चावल, परवल, चौलाई, बथुआ, मत्स्याक्षी (मछेछी) आदि शाक, मूँगका यूष और कच्चे केलेका शाक, ये सब पथ्य है। प्रमेह के अतिरिक्त यह अर्श, ग्रहणी, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, कामला, पाण्डु, शोफ, अपस्मार, क्षतक्षय और रक्तकास आदि व्याधियोंका नाश करता है।

इस रसायनका उपयोग विशेषतः पित्तजप्रमेह—कालमेह, नीलमेह, हारिद्रमेह, मांजिष्ठमेह आदि पर विशेष होता है। इन मेहोंमें यकृत्के पित्तके कार्यमें विकृति होती है। इस हेतुसे मूत्रमें विविध वर्णोंकी छटा प्रतीत होती है। अभ्रक भस्मका कार्य धातुपोषण पर होकर परंपरागत वृक्कों पर भी होता है। फलतः मेह विकृतिका विनाश होता है। प्रमेहपिटिकामें इसका उपयोग होता है। परन्तु साथमें शिलाजीतका प्रयोग भी करते रहना चाहिये।

रक्तार्शके पश्चात् हृदयमें धड़कन बढ़ जाना, धमनीमें स्पन्दवृद्धि, चक्कर और पाण्डुता आदि विकारमें इसका उत्तम उपयोग होता है। ग्रहणीके रोगमें एक प्रकारकी पाण्डुता आती है; उसे यह दूर करता है।

अश्मरीसे मूत्रमार्गमें निर्बलता आजाने पर अश्मरीके सूक्ष्म-

सूक्ष्म कण किसी-किसी स्थानमें रुक जाते हैं। फिर भयंकर वेदना होती है, पेशाब अति कष्टसे होता है, क्वचित् उसमें अश्मरीके कण निकलते हैं, तथा मूत्र गँदला होजाता है, इसपर मेहान्तक रसका उत्तम उपयोग होता है। अनुपान गिलोयका स्वरस या तालमखाना हिम देवें।

कामलाकी उत्पत्ति पित्तस्रावमें रोध होने पर या यकृत्की विकृति होनेसे होती है। यदि यकृद्विकारसे मंद कामला हुआ हो, तो इस रसायनका उपयोग किया जाता है।

तरुण स्त्रियोंको होनेवाले हलीमक (हारिद्रक पाण्डु) पर यह ओषधि अच्छा लाभ पहुँचाती है। इसके सेवन-कालमें गेहूँके बिना छने आटे (चोकर वाले मोटे आटे) को रोटी, गो का मक्खन या ताजा घी और शाक-भाजीका अधिक उपयोग करना चाहिये।

पाण्डुरोगके पश्चात् आये हुए शोफ, वृक्कविकारसे उत्पन्न शोफ, हृद्रोगसे उत्पन्न शोफ आदि सर्वाङ्ग शोथ दूर होने पर आई हुई अशक्ति दूर करने और फिर अशक्तिमें पुनः शोथ न आनेके लिए इस रसायन का उत्कृष्ट उपयोग होता है।

उरःक्षतके पश्चात् होनेवाले क्षय रोग पर इस रसायनका अच्छा उपयोग होता है। उरःक्षतमें कासके साथ रक्त गिरने या अन्य प्रकार के क्षयमें कासके साथ रक्त गिरने पर यह रसायन लाभदायक है।

इस रसायनमें रहे हुए अभ्रक आदि भस्मोंके संयोगसे धातु-पोषण-क्रम व्यवस्थित होता है, मूत्रमें जानेवाले मधुकी मात्रा कम होजाती है। मूत्रपरीक्षा या रक्तपरीक्षा द्वारा बार-बार निर्णय करते रहना चाहिये। (औ० गु० ध० शा० के आधार से)

(१७४) सूतिकाभरण रस।

बनावट—सुवर्ण भस्म, रौप्यभस्म, ताम्र भस्म, प्रवाल भस्म, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, अभ्रक भस्म, शुद्ध हरताल, शुद्ध मैनसिल, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल और कुटकी, इन १३ ओषधियोंको समभाग लें। फिर यथाविधि मिलाकर आकके दूधमें खरल कर। पश्चात् चित्रक-मूलके क्वाथ और पुनर्नवाके रसकी १-१ भावना देकर गोली बनावें। सूखने पर सराव सपुट कर दृढ़ कपड़मिट्टी करे। फिर भूधरयन्त्रमें रखकर अग्नि देवें। स्वांग शीतल होनेपर खरल करलें। (र० यो० सा०)

मात्रा—⅛ से ¼ रत्ती तक रोगानुसार अनुपानके साथ दें।

उपयोग—यह रसायन सब प्रकारके सूतिका रोग, विशेषतः धनुर्वात और त्रिदोषज व्याधियोंका नाश करता है।

सूतिका ज्वरका कारण सूतिका विष है । प्रसवके समयमें आवश्यक स्वच्छता न रखने या मलिन वस्त्र या अन्य मलिन वस्तु अथवा मूर्ख दाईके गंदे हाथके संपर्क होनेपर बाहरका सेन्द्रिय विष योनिमार्गमें प्रवेश कर जाता है । एवं प्रसव-कालकी वेदना, प्रसव समयमें योनि मुख या गर्भाशय मुखमें व्रण होजाना, अमरा (ऑवल) के पतनसे गर्भाशयकी श्लैष्मिक कलामें क्षोभ हो जाना, शोथ और व्रणमें विषका प्रवेश होजाना आदि कारणोंसे दोषप्रकोप होता है । फिर उसका असर सर्वाङ्गमें होनेपर सूतिका ज्वर उपस्थित होता है । इसमें ज्वरके सामान्य लक्षण तो होते ही हैं, साथ-साथ योनिस्रावमें दुर्गन्ध, गर्भाशयपर स्पर्श करने पर वेदना, रक्तयुक्त या सफेद दुर्गन्धयुक्त स्राव होना आदि लक्षण होते है । इसपर सूतिकाभरण देना चाहिये तथा उत्तर बस्तिसे योनिमार्गका प्रक्षालन करना चाहिये । केवल योनिमार्ग ही नही गर्भाशयके मुखमें उत्तर-बस्ति-यन्त्रके नेत्रको प्रवेश करा गर्भाशयको भी साफ करना चाहिये । यह कार्य तज्ज्ञोसे ही कराना चाहिये । कारण प्रसव-वेदना, क्लेद-वहन, और अस्रवहन से गर्भाशय अत्यन्त नाजुक बन जाता है । अतः सब कार्य सम्हालपूर्वक करना चाहिये । पहले शोधन बस्ति दे । फिर आवश्यकता पर तैलकी शमन बस्ति दे । इस तरह प्रयोग करनेपर सूतिका ज्वरके सेन्द्रिय विषका नाश होता है । फिर दोषविकृति दूर होनेसे ज्वर भी शमन होजाता है ।

सूतिका विष और उससे उत्पन्न दोषप्रकोप का परिणाम वातवाहिनियो और स्नायु, विशेषतः शरीरके बहिर्भागमें रहे हुए स्नायुप्रतान पर होकर धनुर्वातकी उत्पत्ति होजाती है । वातवहमण्डलमें सुषुम्णा के अग्रभाग और त्रिकास्थिके अंतर्भागमें रहे हुए जलमें दोषदुष्टि अधिक होती है फिर प्रारम्भमें हनुग्रहकी उत्पत्ति होती है । यह धनुरायामके प्रथम और स्पष्ट लक्षण है । फिर सर्वाङ्गमें आक्षेप आने लगते है । झटकाके हेतुसे- समस्त शरीर धनुषके समान मुड़ जाता है । देह भीतर मुडता है, तो उसे अंतरायाम और बाहर की ओर मुड़ता है तो उसे बाह्यायाम कहते है । धनुष्कम्प आदि शब्द लक्षण-द्योतक है । इस तरह धनुर्वात सूतिकाके एवं अन्योको भी होता है । दूसरो को होनेमें सूतिका विष हेतु नही होता । सूतिका विषके समान चोट आदि कारणोंसे उत्पन्न आगन्तु व्रणमें भी सेन्द्रिय विषका प्रवेश होकर धनुर्वात होता है । दोनोपर सूतिकाभरणका अच्छा उपयोग होता है ।

कालकूट रस भी धनुर्वातमें उपयोगी है, परन्तु वह अति तीव्र

है और सूतिकाभरण अति सौम्य है। यह सूतिकाभरण ज्वर होनेपर भी दिया जाता है। कालकूट ज्वर होनेपर नहीं दिया जाता। कालकूटसे हृदय और नाड़ीका वेग बढ़ जाता है। रक्तस्राव होनेपर भी कालकूट नहीं देना चाहिये। यदि रक्तस्राव होता है, तो सूतिकाभरण और सुवर्णमाक्षिक भस्मको मिलाकर देनेसे तत्काल उपयोग होता है।

सूतिका विषसे उत्पन्न सन्निपात ज्वरमें यह रसायन उत्तम कार्य करता है। सान्निपातिक अवस्थामें जो-जो स्थान-विकृति हो, उसमें यदि वेदना अधिक हो, तो उसपर सूतिकाभरणका अच्छा उपयोग होता है।

श्लैष्मिक सन्निपातमें उरःशूल लक्षण विशेष हो, या सूतिका को श्लैष्मिक सन्निपात हुआ हो, तो इस रसका विशेष उपयोग होता है। हृदयमें शूल चलता हो, वह भी इससे शमन होता है। कुक्षिशूल और साथ-साथ किञ्चित् आक्षेप होनेपर यह अच्छा लाभ पहुँचाता है।

संक्षेपमें यह रस सूतिका-विषघ्न, आक्षेपहर, कीटाणुनाशक और ज्वरहर है। गर्भाशय, वातवाहिनियाँ, सुषुम्णाके मुख और अग्र भाग पर शामक प्रभाव पहुँचाता है। वातादि धातु और रस, रक्त, मांस, स्नायुकण्डरा आदि दूष्योपर हितकर है। (औ० गु० ध० शा०)

(१७५) स्मृतिसागर रस।

बनावट—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हरताल, शुद्ध मैनसिल, ताम्रभस्म, ये ५ ओषधियाँ समभाग मिला वच और ब्राह्मी (जलनीम) के क्वाथकी २१-२१ भावना और मालकाँगनीके तैलकी १ भावना देनेसे स्मृतिसागर तैयार होता है। यदि स्मृतिसागरको ब्राह्मीके क्वाथ की भावना देनके पहले मालकाँगनीके तैलकी भावना दीजाय, तो गोलियाँ बनानेमें सुविधा रहती है। कितनेक ग्रन्थकारोंने इस रसायन के पाठमें सुवर्णमाक्षिक भस्म भी मिलाई है। सुवर्णमाक्षिकके योगसे गुणमें वृद्धि होती है। (यो० र०)

मात्रा—आधसे १ रत्ती मक्खन या घी के साथ देवे।

उपयोग—यह रसायन अपस्मार पर अति उपयोगी है। यह सहस्रार और वातवाहिनियों पर शामक असर पहुँचाता है। विशेषतः आज्ञावाही (चेष्टावाही) नाड़ियोंका क्षोभ होने पर उत्तम कार्य करता है। महावातविध्वंसन, एकांगवीर और स्मृतिसागर, ये वातशामकत्रयी है। ये स्निग्धगणभूयिष्ठ रसायनोंमें गणना करने योग्य है।

स्मृतिसागरका उपयोग उन्मादमें अच्छा होता है। उन्माद-विकार केवल मनोवृत्तिके विभ्रमसे उत्पन्न होता है। यह अल्प सत्व

मनुष्यको होनेवाली मानसिक व्याधि है। अपस्मार केवल मानसिक व्याधि नहीं है। उन्माद कारण-भेदसे नाना लक्षणात्मक और विभिन्न प्रकार का होता है। सर्व कारणोंके मूलमें क्रोधी स्वभाव और असहन शीलतायुक्त मनोवृत्ति बहुधा मुख्य कारण है। कितनेक व्यक्तियोंमें स्वभाव ही ऐसा होता है कि, उनसे जरा भी कम-ज्यादा सहन नहीं होता। ऐसे मनुष्योंको यह विकार सहज होजाता है। इस तरह केवल मानसिक क्षोभसे इस व्याधिकी उत्पत्ति होती है। यह एक प्रकार है। दूसरे प्रकारमें शारीरिक दोषोंकी विकृति होनेसे मन पर परिणाम होकर उन्माद उत्पन्न होता है। स्त्रियोंके स्वभावमें सुकुमारता, गर्भावस्था और प्रसूतावस्था आदि कारणोंसे उन्मादकी उत्तम भूमिका तैयार होजाती है। फिर दोषप्रकोप होकर या मानसिक विकृति होकर उन्माद होजाता है। यह विकार स्त्रियोंको अधिक होता है।

गर्भाशयोन्माद (Hysteria) और भूतोन्माद तरुण युवतियों को अधिक होते हैं। बड़ी आयुवाली स्त्रियोंको कम होते हैं। इनमें भी अतिशय उतावले स्वभाव वाली, सकोचित मनकी, क्षुद्र कारणोंसे चिढ़ने वाली युवतियों पर इस रोगका आक्रमण अधिक होता है। जिस भूतोन्माद में अमर्त्य लक्षण अधिक हो, ऐसे उन्मादमें स्मृतिसागर अधिक उपयोगी नहीं होता। पिशाच, ब्रह्म, सर्प, यक्ष आदि ग्रह-पीड़ितोंके लक्षण शास्त्रमें दिये हैं, उनपर इस ओषधिकी अपेक्षा जटामांसी, माहेश्वरी (सर्पगन्धा) खस आदि ओषधियाँ, जो मानस-शास्त्र ने विधान की है, उनका उपयोग करना विशेष हितकारक माना जाता है।

गर्भाशयोन्मादमें ताप्यादि लोह अधिक उपयोगी है। वह पित्त-विशिष्ट लक्षणात्मक विकारमें अधिक उपयुक्त है। बार-बार चक्कर, नेत्रके समक्ष अन्धकार, घबराहट, दाह आदि लक्षण होकर वमन अधिक होती हो, तो ताप्यादि लोह अधिक उपयोगी है। परन्तु ये लक्षण न हो, बिल्कुल अंग जड़ होना, किसी भी गड्ढे या जलमें गिरने सदृश भासना, अङ्गोंमें झनझनाहट, कण्ठमें घर-घर आवाज, घुरघुराहट, दाँत भिचना, दांत चबाने पर लाला निकलना, मुँह पर जड़ता, हाथ-पैरके तलोंमें प्रस्वेद आना, प्रस्वेदके स्थान पर खुजली चलना, मोटे धब्बे पड़ना, उबाक, मुँहमें जल छूटना, उदरमें जड़ता भासना, पहले अङ्ग जड़ और शीतल होकर उन्मादके झटके आना, प्रकृति स्थूल और कफभूयिष्ठ होना, मासिकधर्ममें आर्त्तव बिल्कुल कम आना और उदरमें दर्द होना, उदरमें ऐंठन, गर्भाशयके चारों ओर जड़ता, झनझना-

हट और उबाक आकर वान्ति होना आदि लक्षण हो, तो ऐसे गर्भाशयोन्माद पर स्मृतिसागर केवल अमृत सदृश फलप्रद है। झटके के पश्चात् सर्वाङ्गमें जड़ता अतिशय आती हो, यह विशेष लक्षण होना चाहिये।

उन्मादका कारण क्रोध, शोक या भय, इनमेंसे कोई भी एक होने पर ताप्यादि लोह हितकारक है। परन्तु इनके अतिरिक्त कारण होने पर स्मृतिसागर का अच्छा उपयोग होता है। यह अफीमके व्यसनियोंके उन्माद पर भी अति उपयोगी है। परन्तु गाँजा, भाँग और शराबके व्यसनियोंके उन्माद पर ताप्यादि लोह अत्युत्तम है।

छोटे बालकके बालग्रहमें स्मृतिसागर उपयुक्त ओषधि है। बालग्रह स्वतन्त्र व्याधि नहीं है; परन्तु परतन्त्र लक्षण है। छोटे बालकके उदरमें कुछ विकृति होने पर इस व्याधिकी उत्पत्ति होती है। एवं सहस्रार आदि स्थानोंमें विकार होने पर भी इसका आक्रमण होजाता है। उदर विकृतिसे उत्पन्न बालग्रह होने पर पहले उदर-शुद्धि-कारक ओषधि देकर फिर शामक ओषधि देनी चाहिये। स्कंधग्रह, पूतना, अहिपूतना, शीतपूतना आदि बालग्रहोंमें दोष सहस्रार, सहस्रारावरण, सुषुम्णा और सुषुम्णाकंदमें होता है। इस विकारमें स्वस्थता, बेहोशी या तन्द्रा, हाथ-पैरों में बिल्कुल चलन का अभाव, मूँदे हुए नेत्र, केवल आक्षेप आने पर चेष्टा होना और अन्य समयमें शून्यता आदि लक्षण प्रतीत होते है। इस पर स्मृतिसागर विशेष उपयोगी है।

पक्षाघातकी तीव्र अवस्था कम होजाने पर पहलेकी अवस्थामें स्मृतिसागरका अति उत्तम उपयोग होनेके उदाहरण मिले है। इस विकारमें शीतल स्थानमें शयन, गीले वस्त्र पहनना, ठण्डे पत्थरो पर देर तक बैठे रहना, शीत लग जाना या शीतप्रायः अन्य कारण होते है। अन्य प्रकारके कारणोसे उत्पन्न पक्षाघातकी जीर्णावस्थामें इसका उत्तम उपयोग होता है। पक्षाघातकी जीर्णावस्थामें इसे स्वतन्त्र रूपसे या एकाङ्गवीर और स्मृतिसागर कुछ दिनो तक एक ही दिनमें पृथक्-पृथक् समय पर देते रहने से अति उत्तम परिणाम आते है। शरीरमें जड़ता, झनझनाहट, शोथ, बोलनेमें स्पष्ट उच्चारण न होना, जीभ रुकना, मुँहमें पानी छूटना, जिस भागमें विकार हुआ हो वह जड़ भासना आदि लक्षण होने पर स्मृतिसागर अति उपयोगी औषध है।

स्त्रियोको क्वचित् सगर्भावस्थामें तीव्र यकृत्-संकोच और गर्भपात, ये दो अति भयंकर विकार होजाते हैं। तीव्र यकृत्-संकोच होने

पर नेत्र पीले हो जाते हैं, सर्वाङ्ग पीला होजाता है, दस्त सफेद होता है, ज्वर वेगपूर्वक आता है, वमन होती है, और फिर ४-५ दिनों के बाद आक्षेप आने लगते हैं। इनमें पित्तसृष्टि लक्षण होने पर ताप्यादि लोह अधिक उपयोगी है। परन्तु जड़ता, मंदता, आलस्य, निद्रा, तन्द्रा, उबाक, वान्ति आदि लक्षण होने पर स्मृतिसागरका उपयोग होना है। गर्भवातके विकारसे पहलेसे जड़ता आदि लक्षण होने पर फिर बड़े-बड़े झटके आने, जड़ता, उबाक, तन्द्रा, अतिशय शिथिलता आदि लक्षण मुख्य हो, तो स्मृतिसागर का उपयोग कराना चाहिये। बेहोशी होने पर भी यह अति लाभदायक है।

संन्यास अति भयङ्कर व्याधि है। इस रोगके अनेक कारणोंमें एक कारण मस्तःक्षोभ है। इस हेतुसे रोगी अति बेचैन, थका हुआ, असावधान पड़ा रहता है। हाथ-पैर नहीं चलने, नेत्र भी बन्द रहते हैं। उस स्थितिमें रोगी पड़ा-पड़ा घोरता है, किसीने आवाज दी, तो भी प्रत्युत्तर नहीं देता, बिल्कुल बेहोश भासता है। केवल सुई चुभाने पर किञ्चित् मात्र वेदनाका भान होता है, फिर कुछ नहीं। इस रोगमें कितनेक रोगी जड़ बेहोश देखे हैं, और कितनकोंके मस्तिष्कमें रक्तके दबावकी वृद्धि होकर नेत्र लाल, भयङ्कर शिरदर्द और गरदन चलाते रहना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। इनमें नेत्रके लालीयुक्त लक्षणों वाले रोगी पर इस स्मृतिसागरका उपयोग नहीं होता। परन्तु जड़ता अधिक होनेसे निश्चेष्टता, शीतलता, लालास्राव आदि लक्षणोंमें इस रसायना का उत्तम उपयोग होता है।

अपतानक आदि जिन विकारोंमें झटके आते हैं, उनमें सुषुम्णा और मस्तिष्कावरणकी विकृति होती है। इनमें श्लेष्म-संसर्ग और जड़ता आदि लक्षण अधिक हो, तो स्मृतिसागर अत्युत्तम औषध है।

आक्षेपक वातमें झटके कम होकर फिर सर्वाङ्गमें जड़ता, गरदन शून्य-सी भासना; सर्वाङ्गमें झनझनाहट, मुँहमें बेस्वादुपन, उबाक, नेत्रोंमें धुन्ध आजाना आदि लक्षण प्रबल होने पर स्मृतिसागरका उत्तम उपयोग होता है।

(यदि आक्षेपक वातमें कमर और मेरुदण्ड में भयकर पीड़ा, निद्रानाश, ज्वर १०२-१०३ डिग्री रहना, अहोरात्र झटके आते रहना, हाथ-पैरो में शीतलता, शरीरमें जड़ता और झनझनाहट आना, आदि कफवातप्रधान लक्षण हो, तो स्मृतिसागर और सितोपलादि चूर्ण मिला;

कर तुलसीके रस और शहद के साथ दिनमें ४ वार देते रहने से आक्षेप सत्वर शमन होजाते हैं।

ग्रन्थिक, आन्त्रिक या आक्षेपक सन्निपात या ऐसे ही भयङ्कर सान्निपातिक ज्वरोंमें अकस्मात् स्मृतिभ्रंश—स्मृतिनाश होकर कोई अवयव निश्चेष्ट होजाना, कार्य करनेमें असमर्थ होजाना आदि लक्षण उपस्थित हुए हों, तो सान्निपातिक विकारका परिणाम मानस, सहस्रार, नाड़ीचक्र या आज्ञावाहिनियों पर हुआ है, ऐसा मानना चाहिये। ऐसे रोगको शमन कर मूल विषको नष्ट करनेमें यह अति उपयोगी है।

सन्निपात मूल कारण न होने पर भी अकस्मात् किसीका स्मृतिनाश होजाता है। वृद्धावस्थामें जरावस्थाके हेतुसे स्मृतिनाश होता है। वृद्धावस्थामें स्मृतिनाश मस्तिष्कको योग्य परिपोषण न मिलनेके हेतु से होता है। वातवाहिनियोंकी क्रिया उत्तम प्रकारसे नहीं होती। कफदोषका भी अधिक प्रादुर्भाव होजाता है। ऐसे स्मृतिभ्रंशमें आयुर्वेदीय ओषधियोंमें महावातविध्वंसन और स्मृतिसागर उत्तम कार्य करते हैं। झटके, शूल, तीव्र वेदना और मूर्च्छा आदि लक्षण होने पर महावातविध्वंसन देना चाहिये। परन्तु स्मृतिनाश और स्मृतिभ्रंशसे मनुष्य शून्य-सा जड़ होगया हो, तो स्मृतिसागर विशेष उपयोगी है।

सक्षेपमें इस रसकी मुख्य ओषधमें तीक्ष्ण, उष्ण और व्यवायी गुण होने पर भी उसे योगवाही बनाई है। इन निरिन्द्रिय द्रव्यों पर शुद्धि सस्करण करनेके हेतुसे गुणवीर्यका उत्कर्ष हुआ है। इस द्रव्यगुणोत्कर्षकी वृद्धि करानेके लिये ब्राह्मी आदि सेन्द्रिय और सचेतन द्रव्योंकी भावना दी हैं।

ब्राह्मी, वच और मालकाँगनी, तीनों शीतवीर्य, शामक, वातघ्न और आक्षेपहर हैं। इन ओषधियोंकी भावनाके हेतुसे स्मृतिसागरमें प्रभाव-द्रव्योंका शनैः-शनैः सम्मिश्रण होजाता है।

पारद आदि औषध तीक्ष्ण, उष्ण, व्यवायी और सूक्ष्म स्रोतोगामी होनेसे उनके साथ मिश्र हुए ब्राह्मी आदि ओषधियोंके शामकत्व आदि गुणोंका गुणपरिपोष होता है। परिणाममें स्मृतिसागर उत्कृष्ट वीर्यवान् बन गया है। ब्राह्मीमें अति मंद स्थिर गुण होनेसे उसके शामक गुणका सत्वर शोषण नहीं होता। अतः शरीरमें उसको शामकता फैलनेमें और भी समय लग जाता है। परन्तु पारद आदिका संयोग होनेसे ब्राह्मी आदिक गुणोंका उत्कर्ष होता है, और वे शरीरमें सर्वत्र सत्वर फैल जाते हैं। द्रव्य-संयोग और सस्कारसे द्रव्यान्तरो-

त्पत्ति होती है, द्रव्य द्रव्यान्तर प्राप्त होने पर भी मूल स्वभावका त्याग नहीं करता। योगवाही द्रव्योंका यह नियम है कि, अपने गुणों का त्याग न करते हुए अन्य मिश्रित औषधिके गुणोंकी वृद्धि करा देना। इस दृष्टि से यह कफसंसर्गयुक्त रोगों पर उत्तम कार्य करता है।

यह रसायन वात और कफ दोष, तथा रस, रक्त और मांस, इन दूष्यों पर कार्य करता है। इसका कार्य मनोदेश, सहस्रार, सुषुम्णा, आज्ञावाहिनियाँ और स्नायुओं पर शामक और प्रसादन होता है।

(आ० गु० ग० मा० के आधार से)

स्त्रियों के मासिकधर्म की निवृत्ति लगभग ५० वर्षकी आयुमें होती है। उस समय किसीको शिरदर्द, कमरमें जड़ता और किसीको मानसिक आघात पहुँच कर उन्माद के लक्षण प्रकाशित होते हैं। उस उन्माद पर स्मृतिसागर और महावातविध्वंसन रस मिला जटामांसीके चूर्ण और घीके साथ दिनमें ३ बार देने तथा भोजन कर लेने पर सारस्वतारिष्ट पिलाते रहने पर रोग दूर होजाता है।

(१७६) कुष्ठकुठार रस।

बनावट—पारद भस्म (रससिन्दूर), शुद्ध गन्धक, लोह भस्म, ताम्र भस्म, गूगल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, शुद्ध कुचिला, चित्रकमूल और शिलाजतु, इन ११ औषधियोंको ४-४ तोले तथा करंज बीज और अभ्रक भस्मको १६-१६ तोले लेवे। सबको यथाविधि मिलावें। शिलाजतु और गूगलको जलमें मिश्रित करके मिलावे। अच्छी तरह खरल होकर शुष्क और एकजीव होजाय, तब घी मिलावे। फिर शहद मिलाकर अमृतबानमें भर देवें। (र० यो० सा०)

मात्रा—२ रत्तीसे १ माशे तक दिनमें दो बार देवें। पथ्यमें शालिभात, दुग्ध, शहद, मिश्री और गुड़ देवे। दाह होने पर पाताल-गरुड़ीकी जड़, ओडहलके फूल और धनियाको समभाग मिलाकर सब के समान मिश्री मिला लगभग १-१ तोला सेवन करें। अथवा नाग-बलाकी जड़का चूर्ण घी और शहदमें मिलाकर चाटे।

उपयोग—गलत्कुष्ठके जिन रोगियोंके कान, नाक, अँगुलियाँ आदि गल गये हो, बिलकुल देह सड़ गया हो; देहमेंसे भयंकर दुर्गन्ध निकलती रहती हो, मक्खियाँ भिनभिनाती हो, उनको यह रसायन जीवन दान देता है, और देहको सुन्दर स्वरूपवान बना देता है।

यह औषधि गलत्कुष्ठावस्थामें अति उपयोगी है। इसमें सम्मि-श्रित अभ्रकका धर्म जो धातु-परिपोषण-क्रम व्यवस्थित करनेका है,

वह अति स्पष्ट रूपसे प्रतीत होता है। कुष्ट में त्वचा, रक्त, माँस और रक्तवारि आदिमें क्रमसे विकृति होती जाती है। गलत्कुष्ट होने पर त्वचा बिल्कुल शुष्क सड़ी हुई भासती है। इसमें ऊपरका भाग, विशेषतः अँगुलियोंके पर्वके पर्व गलने लग जाते हैं। त्वचाकी संवेदना कम होने पर या बिल्कुल नष्टप्राय होने पर हाथ या पैरके पर्व गिर जाते हैं, पर्व गिरने पर भी वेदना मर्यादामें ही होती है। जिस स्थान परसे पर्व टूट जाते हैं, उस स्थान पर मांसयुक्त भाग खुला होजाता है। फिर उस स्थानसे क्लेदयुक्त दुर्गन्धमय लसीका-स्राव होता है। ये सारा स्थान बिल्कुल पककर ऊँचा उठ जाता है। इतना होने पर भी जलन या पीड़ा अधिक नहीं होती। जड़ता, हाथ-पैर उठानेमें अशक्ति और आलस्य इतना बढ़ जाता है कि, पड़े हो तो पड़े ही रहनेकी इच्छा होना, अति निद्रा, त्वचाका रंग बदल जाना, सर्वाङ्गमें अति रूक्षता, त्वचा फूली हुई और फटी हुई होजाना, स्पर्शका बोध न होना, व्रण होने पर उसमेंसे दुर्गन्धमय स्राव, व्रण भाग जल्दी न भरना, अति प्रस्वेद, प्रस्वेदमें दुर्गन्ध आना आदि लक्षणयुक्त अवस्थामें इसका सेवन अति हितकारक है। भोजनमें मधुर रसका सेवन अधिक करना चाहिये। इस रसायन का कार्य संज्ञावाहिनियोंको पुनः संज्ञाकी प्राप्ति कराना है। इस हेतु से कितनेक रोगियोंको दाह होता है। (औ० गु० ध० शा०)

(१७७) पञ्चामृत रस।

बनावट—पारद भस्म, अभ्रक भस्म, लोह भस्म, शुद्ध शिलाजतु, शुद्ध वच्छनाग, गिलोय और त्रिफलाके क्वाथसे शुद्ध किया हुआ गूगल और ताम्र भस्म, इन ७ औषधियोंको समभाग मिला शहदके साथ खरल कर आध-आध रत्तीकी गोलियाँ बनावें, या चूर्ण ही रहने दे। गोलियाँ बनानेमें कुछ पारद पृथक् होजाता है। (र० र०)

मात्रा—१ से २ गोली वासावलेह, बकरीके दूध, शहद-पीपल, कालीमिर्च और घी अथवा जलके साथ दें।

उपयोग—इस रसायनके सेवनसे राजयक्ष्माके ज्वर आदि विविध लक्षणोंका निवारण होता है। इसका उपयोग कीटाणुजन्य क्षयमें ज्वर-वेग तीव्र होने पर किया जाता है। परन्तु क्षयकी प्रथमावस्थामें जब ज्वर अधिक न हो, तब इस तीव्र रसायनका प्रयोग न किया जाय तो अच्छा है। प्रथमावस्थामें अभ्रक भस्म, शृङ्गभस्म, प्रवालपिष्टी और गिलोय सत्वका मिश्रण देना विशेष हितावह माना जायगा। जब द्वितीया या तृतीयावस्थामें ज्वरका वेग तीव्र होजाता है, तब

आवश्यकता पर यह रसायन देते रहें। क्षयमें रस, रक्त आदि धातु क्षीण होकर आगेकी मांस आदि धातुओंकी क्षीणता होने लगती है; बल-मांसविहीनत्व आने लगता है, रोगी ज्वरसे ग्रस्तसा रहता है, तथा कफ अधिक मात्रामें निकलता है। तब इसका सेवन अति हितकर है।

शुक्रपात होनेकी आदत होजाने या अति व्यवायसे शुक्र धातु का क्षय होने पर अन्य धातु भी क्षीण होकर क्षय रोग होजाता है। एवं स्त्रिया को दीर्घकाल तक प्रदर आदि विकार दृढ़ होजाने पर अन्य धातु क्षीण होकर क्षय रोगकी संप्राप्ति होजाती है। इन दोनों प्रकारके क्षय पर इस पञ्चामृत रसका उपयोग हितकारक है।

पञ्चामृतका उपयोग प्रमेह में उत्तम होता है। मूत्रोत्सर्गकी शङ्का बनी रहना, बार-बार अति पेशाब होना, बार-बार मूत्रोत्सर्ग होने से निद्रानाश, कृशता और क्षीणता आजाना, मुँहमें शुष्कता, सर्वाङ्गमें चिपचिपा प्रस्वेद आना, सन्धिस्थानोंके प्रस्वेदमें दुर्गन्ध आना या पक जाने सदृश भासना आदि लक्षण होने पर इसका प्रयोग करें।

सक्षेपमें यह रस धातुओंकी क्षीणता कम करता है। एवं यह धातुओंकी साम्यावस्था स्थापित करनेवाला, ज्वरघ्न, क्षयघ्न, बल्य, रसायन और प्रमेह आदिका पचन करने वाला है। (औ० गु० ध० शा०)

(१७८) कामधेनु रस।

बनावट—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाग, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, लोह भस्म, अभ्रक भस्म, इन ८ ओषधियोंको सम-भाग मिला त्रिफलाके क्वाथमें एक दिन खरल करके १-१ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें। (र० यो सा०)

मात्रा—१ से २ रत्ती शहद-पीपलके साथ देवें।

उपयोग—यह रसायन धातुक्षय, पाण्डुरोग, जीर्ण विषमज्वर, प्रमेह, रक्तपित्त, अम्लपित्त, सन्निपात, घोर वातव्याधि, शूलगुल्म, कृमि, अर्श, ग्रहणी आदि रोगोंको नष्ट करता है।

यह रस बल्य, रसायन, पचनक्रिया-वर्द्धक तथा धातु-परिपोषण-क्रमको एक विवक्षित प्रकारसे सहायक है। रससे लेकर शुक्र पर्यन्त सर्वधातु क्षीण होते जाना, इस अवस्थाको धातुक्षय कहते हैं। इसमें अन्न रससे बनने वाली रस धातु योग्य और सकस नहीं बनती। परिणाममें रक्त आदि धातुएँ भी क्षीण होती जाती हैं। इस अवस्थामें पूर्व धातुमेंसे परधातुको आवश्यक द्रव्य परिपूर्ण मिलना चाहिये। एवं परधातुको चाहिये कि, पूर्व धातुमें से आवश्यक द्रव्य ले रूपान्तर करा

अपने स्वरूपमें मिला लेवे।

इनमेंसे रस और रक्त धातुमें क्रिया सम्यक् न होने पर रसक्षय और रक्तक्षय होता है। इन दोनोंपर कामधेनु अति उपयोगी है। इसके योगसे रसक्षयमें रसधातु बननेकी क्रिया सम्यक् होने लगती है। उदर में आफरा, बड़े-बड़े जलके सदृश पतले सफेद दस्त, उदरमें जड़ता, रात्रि-दिवस उबाक, तृप्तिका भास होना, मुँह और जीभ पर चिपचिपापन आदि लक्षण हो, तो इसकी योजना करनी चाहिये।

रक्तक्षयमें रक्तमेंसे रक्तकण कम होजाते है, फिर रक्त धातु कम होती है। रक्तकण कम होने पर निस्तेजता बढ़ती है, तथा रक्त धातु कम होने पर ज्वर, दाह, तृषा, चक्कर, घबराहट, नाड़ियोंमें वेगपूर्वक स्पन्दन, बार-बार श्वास भर जाना, जिह्वा शुष्क, फिकी और स्वादरहित, चाहे उतने जल पीने पर भी तृप्ति न होना, यकृत् और प्लीहाकी किञ्चित् वृद्धि, त्वचा और सर्वाङ्गमें विवर्णता, विशेषतः कालापन आदि लक्षण होते हैं, उस पर इसकी योजना की जाती है। इस व्याधि के हेतु चिन्ता, शोक, भय, मनोव्याघात, अतिचिन्तन, अभ्यास या मानसिक श्रम अधिक होना आदि हो तो यह उत्तम लाभ पहुँचाता है। इस विकारमें ज्वर और अपचन, ये लक्षण मुख्य होने चाहिये।

जीर्ण विषम ज्वरमें दोष-दूष्य-संयोग देकर विविध औषध-योजना की जाती है। सन्तत, सतत दोनो प्रकारके ज्वरोंकी तीव्रावस्थामें कामधेनुका उपयोग नहीं होता। परन्तु इनकी जीर्णावस्था में ज्वरविष रस और रक्त धातुमें प्रवेश कर उनको क्षीण बनाते रहते हैं, उस अवस्थामें कामधेनु प्रयोजित होता है। सन्तत अर्थात् एकसा बना रहने वाला ज्वर, इसके परिणाममें तीसरे या चौथे रोजसे इसके विषका रसधातु पर आक्रमण होता है। सर्वाङ्गमे जड़ता, विशेषतः उदरमें जड़ता, उबाक, मुखमे जल भर जाना, अंग गलना, विशेष ग्लानि, वमन, वमनमें मीठासा जल गिरना, अरुचि, मलिन, दीन मुखमुद्रा आदि लक्षण होने पर इसकी योजना करनी चाहिये।

जो सतत ज्वर अनेक मास तक आता रहता है; उसका असर रक्तधातु पर होता है। फिर दाह, निस्तेजता, बेचैनी, मनमें विविध विचार आकर मन शून्य-सा बनजाना, कड़वी और खट्टी वमन, विभ्रम, शरीरपर पिटिकाएँ होजाना, दाह, तृषा, कुछ-कुछ प्रलाप अर्थात् बड़-बड़ करते रहना, निस्तेजता, दीन वाणी, चिन्ताग्रस्त-सा बन जाना आदि लक्षण होने पर कामधेनु रसका उपयोग करना चाहिये।

बार-बार अधिक मात्रामें पीले रंगका पेशाब होना, तृषा, सर्वाङ्गमें दाह, अंग पर चिपचिपापन, चिपचिपा प्रस्वेद और बगल आदि स्थानोमेंसे दुर्गन्ध निकलना आदि पित्तभूयिष्ट प्रमेहोंमें कामधेनु रस जामुनके लेह या शिलाजतुके साथ देना चाहिये।

अधोग रक्तपित्त या रक्तार्श, दोनो विकारोंमें रक्तधातु क्षीण होकर दाह, दैन्यता, तृषा, भ्रम, घबराहट आदि लक्षण होने पर कामधेनु रसकी योजना करनी चाहिये।

आमाशयकी अशक्ति से आमाशय पित्तकी उत्पत्तिमें आवश्यक रक्तकी पूर्त्ति न होनेसे पित्तस्राव सम्यक् और सर्वगुणयुक्त नहीं होता। इस हेतुसे पित्तके कितनेक गुण बढ़कर अम्लपित्त व्याधि होजाती है। अन्नका विदाह, अन्नका पचन न होना, आमाशयमें अन्न दीर्घकाल तक पड़ा रहना, फिर उस हेतुसे उदरमें भारीपन, मुँहमें बार-बार जल भर जाना, मुँहका बेस्वादुपन, घबराहट, बेचैनी, मनकी स्थिरता, खाया हुआ अन्न कुछ समयमें जलमय, दुर्गन्धित और क्लेद-युक्त बनजाना और वान्ति होकर बाहर निकल जाना आदि लक्षण उपस्थित होते है। ऐसे अम्लपित्त पर इस कामधेनु रसको योजना करनी चाहिये। भोजनमें पथ्य हलका अन्न, फलरस आदि देना चाहिये।

(औ० गु० ध० शा० के आधार से)

(१७९) बालचन्द्र रस।

बनावट—सुवर्ण भस्म (अभावमें सुवर्णके वर्क) १ तोला, सोनागेरू ३ तोला और मुक्तापिष्टी १२ तोले ले। फिर तीनोको मिलाकर अच्छी तरह खरल कर लेवें। (र० यो० सा०)

मात्रा—१-१ रत्ती दिनमें २-४ बार मक्खन-मिश्री, गिलोय सत्व, अनार शर्बत, दाड़िमावलेह या वासावलेहके साथ देवें।

उपयोग—यह रसायन राजयक्ष्मा रोगमें होने वाले वान्ति, उबाक, अतिसार, अरुचि, श्वासोच्छ्वासमें कष्ट, पीनस, शुष्क कास, श्वास और रक्तपित्त आदि विकारोको दूर करता है, तथा कृत्रिम विष और दूषीविषजनित दाह आदिको शमन करता है।

यह रसायन रक्तमें रहे हुए कीटाणु और विषका संहार करता है; मस्तिष्क और वातवाहिनियो पर शामक असर पहुँचाता है, हृदय को सबल बनाता है, तथा आमाशय और अन्त्र आदि पचनेन्द्रिय संस्थामें सेन्द्रिय-विष-जनित विकृतिको नष्ट कर अतिसार, अरुचि, उबाक आदिको दूर करता है।

(१८०) योगेन्द्र रस ।

बनावट—रससिन्दूर २ तोले; सुवर्णभस्म, कान्त लोह भस्म, अभ्रक भस्म, मुक्तापिष्टी और वङ्गभस्म १-१ तोला लेवे । सबको यथाविधि मिला ३ दिन घीकुँवारके रसमें मर्दन कर गोला बनावे । फिर एरंडके पत्तोंमें लपेट कच्चे डोरेसे बाँध धन्यराशिमें तीन दिन तक दबा देवें । पश्चात् निकाल खरल कर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बना छायामें सुखा लेवें । (भै० र०)

मात्रा—१ से २ गोली रोगानुरूप अनुपानके साथ दे ।

उपयोग—इस रसायनके सेवनसे वात-पित्तज रोग—प्रमेह, बहुमूत्र, मूत्राघात, अपस्मार, भगन्दर, गुदरोग, उन्माद, मूर्च्छा, राजयक्ष्मा, पक्षाघात, इन्द्रियोंकी कमजोरी, शूल और अम्लपित्त आदि समस्त रोग नष्ट होते हैं । त्रिफलाके स्वरस अथवा शक्कर या च्यवनप्राशावलेहके साथ सेवन करानेसे स्वस्थ मनुष्य कामदेवके सदृश तेजस्वी होजाता है । निर्बलोंको एक-एक रत्ती गोदुग्धके साथ देवें । जीर्णवात, अपस्मार, उन्माद, हिस्टीरिया आदि रोगोंमें सारस्वतारिष्ट या वमासा, ब्राह्मी और जटामासीके क्वाथके साथ देना चाहिये ।

यह रसायन आयुर्वेदीय ओषधियोंमें एक उत्कृष्ट और वीर्यवान् वातशामक औषध है । यह विशेषतः हृदय, मस्तिष्क, वातवहा नाड़ियाँ, मन और रक्त पर अपना प्रभाव दर्शाता है । परम्परागत पचनसंस्था और मूत्रसंस्था पर भी असर पहुँचाता है । इसके सेवनसे वातवहा नाड़ियाँ सबल होती हैं, अतः जीर्ण वातविकारके साथ पित्तप्रकोपजन्य दाह, व्याकुलता, निद्रानाश, मुखपाक, अपचन आदि लक्षण हो, तब यह विशेष लाभदायक है । जीर्ण वातविकार, अपस्मार और उन्माद आदि रोगोंमें यह निर्भयतापूर्वक प्रयुक्त किया जाता है ।

इस रसायनमें हृद्य गुण होनेसे हृदय बलवान बनता है और हृदयकी सकोच-विकास क्रिया नियमित होनेसे स्पंदन संख्या कम हो जाती है । रक्तमें रहे विष और कीटाणुओंका नाश होकर रक्ताणुओं की वृद्धि होती है । इस हेतुसे इस रसायनसे रोग शमनके साथ शारीरिक शक्तिकी भी वृद्धि होती जाती है ।

इस रसायनके सेवनसे पचनेन्द्रिय सबल होने पर मूत्रसंस्थाके प्रमेह आदि रोगका भी निवारण होजाता है, शुक्र शुद्ध और गाढ़ा बनता है; कामोत्तेजना होती है और देह दिव्य और तेजस्वी बन जाती है । मूत्रसस्थाके रोगों पर इसे शिलाजीतके साथ देना चाहिये ।

अति व्यवायसे उत्पन्न क्षयरोगकी प्रथमा और द्वितीयावस्थामें दाह होता हो, वीर्य पतला होगया हो, स्वप्नदोष होता रहता हो, शिथिलता और व्याकुलता बनी रहती हो, तो इस रसका सेवन करनेसे क्षय-कीटाणुओंका नाश होता है, दाह शमन होता है, और वीर्य सुदृढ़ होता है। फिर निर्बलता और व्याकुलता भी दूर होती है।

पक्षाघातकी संप्राप्ति विशेषतः रक्तवाहिनियो और वातवाहिनियों की विकृति होनेपर होती है। इस रोगमें कारण रक्तभारवृद्धि, मस्तिष्क में रक्तवाहिनी फट जाना, धमनी या शिरामें शल्य आजाना, या शल्य की उत्पत्ति होजाना, सञ्ज्ञावाही वातवहा नाड़ियोंके केन्द्रस्थान पर आघात शीर्षास्थिभंग, आज्ञावाही वातवहा नाड़ियोंके व्यापारकी विकृति या इनके मार्गमें अर्बुद होजाना आदि अनेक है। उसकी तीव्रावस्थामें तो इस रसका उपयोग नहीं होता। परन्तु तीव्रावस्था शमन होनेपर पुनः दौरा न होजाय इसलिये वातशामक, बृंहण, जीवन और रसायन गुणयुक्त ओषधि देनी चाहिये। इसके लिये एकांगवीर और योगेन्द्र रस दोनो महत्वके है। इनमेंसे जो व्यक्ति अधिक तीक्ष्ण ओषधि सहन कर सकते है, ऐसे वातप्रधान और वातकफप्रधान प्रकृति वालोको एकांगवीर दिया जाता है, तथा पित्तप्रधान और वातपित्त-प्रधान प्रकृतिवालोंके लिये योगेन्द्र रसकी योजना करनी चाहिये। पक्षाघातपर यह अति दिव्य ओषधि है। अर्धाङ्ग वातके समान हाथ-पैर, कमरके नीचेके हिस्से या मुख-मण्डलके आधे भाग का वध होगया हो, तो उसपर भी इसका सेवन हितकारक है। इसके सेवनके साथ मांसपेशियोंको कार्यक्षम बनानेके लिये निवाये नारायण तैलकी मालिश धीरे हाथसे कराते रहना चाहिये। पक्षाघात रोग अति जीर्ण होनेपर बहुधा ओषधि प्रयोगसे लाभ नहीं होता।

अपस्मार और उन्मादकी उत्पत्ति रक्तमें विषवृद्धि होकर मस्तिष्क-विकृति होनेपर होती है। दोनो रोगोंपर स्मृतिसागर, उन्मादगज-केसरी और भूतभैरव रस लाभदायक है, परन्तु कितनेक पित्तप्रधान प्रकृतिवाले पुरुष रोगी तथा सगर्भा, प्रसूता, छोटे बच्चेकी माता आदि नाजुक स्वभाववाली स्त्री रुग्णाओंसे ताम्र भस्म, हरताल, मैनसिल आदि उग्र ओषधियाँ सहन नहीं होतीं। उनको रक्तप्रसादक, बृंहणीय और जीवनीय गुणयुक्त शीतल ओषधि देनी चाहिये। इन गुणोंका समन्वय योगेन्द्र रसमें होनेसे यह अच्छा लाभ पहुँचाता है।

संक्षेपमें यह रसायन अनेक महारोगोंकी अद्वितीय ओषधि है।

जो रोग अन्य ओषधियोंके दीर्घ काल सेवनसे भी निवृत्त हुए हों वे, इस ओषधिके सेवनसे थोड़े ही दिनोंमें निवृत्त होजाते है।

(१८१) चतुर्मुख रस।

बनावट—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, लोह भस्म और अभ्रक भस्म, चारो ४-४ तोले तथा सुवर्ण भस्म १ तोला ले। सबको यथा-विधि मिलाकर ७ दिन घीकुँवारके रसमें खरल करें। फिर सोंठ, हरड़ और पुनर्नवाका क्वाथ, कौंच बीज और लौंगका क्वाथ, तथा चित्रकमूल और पद्मकाष्ठका क्वाथ, इन तीनोंकी क्रमशः ३-३ भावना देकर खूब गाढ़ा करें, और एक गोला बना (एरंड पत्रमें लपेट कर) धान्यराशिमें ३ दिन दबा देवे। तत्पश्चात् निकाल (चित्रकमूल और पद्मकाष्ठके क्वाथ में ६ घण्टे खरल कर) आध-आध रत्तीकी गोलियाँ बनावें।

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें दो बार त्रिफला और शहदसे दें।

उपयोग—यह चतुर्मुख रस ब्रह्मदेवने राजयक्ष्मा को शमन करनेके लिये निर्माण किया है। इस रसायनको अग्निप्रदीपक, पाचक, बल्य, रसायन और पौष्टिक ओषधियोंकी भावना देनेसे यह प्रमेह और अग्निमान्द्यको दूर कर शरीरको सबल बनाता है।

चतुर्मुख रस और सुवर्ण-मिश्रित लक्ष्मीविलास रस, दोनों क्षय रोगमें उपयोगी होने वाली बल्य ओषधिकी जोड़ी है। इनमेंसे लक्ष्मी-विलास ज्वर मर्यादित होने पर ही दिया जाता है, परन्तु इस चतुर्मुख रसके देनेमें ज्वरोष्मा चाहे उतना बढा हो या चाहे उतना घटा हो, इस बातके विचारकी आवश्यकता नहीं है। दोनों औषधोंमें क्षयघ्न अर्थात् क्षयोत्पादक कीटाणुओंको मारनेवाली सुवर्ण और धातुपरिपोषक शक्तिको व्यवस्थित करनेवाली अभ्रक भस्म मुख्य है। एवं लोह आदि विशिष्ट धातुओंकी—बलदायक ओषधियोंकी—योजना भी की है। लक्ष्मी-विलास रसमें रससिंदूरका परिमाण अत्यधिक है, और चतुर्मुख रसमें कज्जली मर्यादित है। एवं चतुर्मुखमें सुवर्णका परिमाण भी लक्ष्मी-विलासकी अपेक्षा कुछ कम है। इस तरह कृति-भेद होनेसे लक्ष्मीविलास का कार्य कफस्थान अर्थात् उर और श्वासवाहिनियों आदि अवयवों पर अधिक होता है, तब चतुर्मुख रसका कार्य आमाशय, ग्रहणी, लघु अन्त्र और बृहदन्त्र आदि पचनेन्द्रिय संस्था पर अधिक होता है। इसलिये रोगारम्भ स्थान फुफ्फुस आदि होनेपर, लक्ष्मीविलास, और पचनेन्द्रिय संस्था होनेपर चतुर्मुख रस लाभदायक माना जाता है। अर्थात् जब क्षयके कीटाणुओंसे उत्पन्न सेन्द्रिय विष द्वारा लघु और

बृहदन्त्र दुष्ट होनेका प्रारम्भ हुआ हो, तब चतुर्मुख रस उत्तम कार्य करता है। इस रसायनका मुख्य गुण बलोत्पादक है। बाहरसे देखने पर रोगी हट्टा-कट्टा दीखता हो, निर्बलताका कोई भी लक्षण प्रतीत न होता हो, किन्तु भीतरसे शनैः-शनैः शक्तिहीन होता रहता हो, ऐसी परिस्थितिमें चतुर्मुख रस उत्तम प्रकारसे कार्य करता है।

अपचनकी जीर्ण आदत अर्थात् कुछ थोड़ा-सा खानेपर उदरमें आफरा आजाय, स्निग्ध, द्विदल या जड पदार्थ थोड़ा-सा खाने पर भी पचन न होना, भोजन कर लेनेपर उदरमें भारीपन आजाना, जैसे कोई वस्तु झूलेमें डालने पर नीचे बैठ जाती है, उस तरह भोजन आमाशयमें जानेपर तलमें बैठ जाना, भोजन उदरमें जानेपर इच्छा दूर हो-जाना, मुँहमें पानी आना, अरुचि, अन्नका स्पर्श उदरमें होनेपर मन्द-मन्द शूल चलना, भोजन दीर्घ काल तक जैसाका वैसा ही पड़ा रहना; किसी तरह २४ घण्टेमें एक बार कर्त्तव्य पूरा करने या बेगार टालनेके लिये थोड़ा-सा खालेना, दो ग्रास भी रुचिपूर्वक न लिया जाना, आदि परिस्थिति होनेपर मन अति निर्बल होजाता है। किञ्चित् भी मानसिक आघात सहन नहीं होता, सहनशीलता बिलकुल नहीं रहता। शरीरबल और अग्निबल भी धीरे-धीरे क्षीण होते जाते हैं। इन कारणों से रसोत्पत्ति सम्यक् नहीं होती। परिणाममें रक्त, मांस आदि धातुओं में भी क्षीणता होने लगती है। ऐसी परिस्थितिमें त्रिफलाचूर्ण और शहदके साथ इस रसायनकी योजना करनी चाहिये।

इस तरह अपचनका परिणाम पक्वाशय पर होकर उसमेंसे अन्न-रसका शोषण योग्य प्रकारसे नहीं होता। पक्वाशय शिथिल होजाता है। उसकी अन्तस्त्वचाके भीतर रक्तकी पूर्ति चाहिये उतने परिमाणमें नहीं होती। फिर इससे सारकिट्टको पृथक् करनेका कार्य सम्यक् प्रकारसे नहीं होता। एवं रसवहनका कार्य भी योग्य नहीं होता। परिणाममें पक्वाशयके समीपस्थ प्रदेश में रसवाहिनियाँ मोटी होजाती है, और उनसे सम्बन्ध वाली छोटी-छोटी ग्रन्थियाँ भी बड़ी होजाती है इस हेतुसे अग्निविद्रध उपस्थित होता है। सारा उदर भारी होजाता है सर्वदा उदरमें एक प्रकारकी तृप्ति होनेका भासता है। बार-बार उबाक, अरुचि, उदरमें व्यथा, मन्द ज्वर, कभी-कभी क्षुधाका भास होना, परन्तु भोजन करनेके साथ इच्छाका अभाव होजाना आदि लक्षण होते है भोजन नहीं किया जाता। ऐसी परिस्थितिमें आगे आगे कुछ कच्चे झागयुक्त सफेद दुर्गन्धमय दस्त होते है। कितनेकोको कुछ समय

जाने पर अतिसार होजाता है। यह विकृति पित्तधातुकी विकृतिसे उत्पन्न होती है। इस हेतुसे अतिसारका प्रारम्भ होता है। यकृत् अशक्त होजाती है जिससे पित्तोत्पत्ति पूरी नहीं होती। परिणाममें रोगी निस्तेज, क्षीन वाणीयुक्त, क्षीण ओजवाला और बलहीनसा प्रतीत होता है। इस पर चतुर्मुख रस उत्तम कार्य करता है।

बृहदन्त्रका उण्डुक (Coceum) भाग अशक्त होजाने पर अन्न पर पित्तका संस्कार होकर बना हुआ अन्नांश बृहदन्त्रके आरोही भाग (Ascending Colon) में योग्य रूपसे नहीं फेंका जाता। आरोही भागमें अन्नांशको ऊपर और नीचे फेंकनेकी क्रिया (दोनों क्रिया) होती रहती है। ये दोनों क्रिया मुख्यतः लघु अन्त्रकी क्रिया पर अवलम्बित हैं। ये दोनों कार्य मन्द होजानेसे और उस स्थानमें अन्नांशके शोषणमें न्यूनता आजानेसे अन्नांश जैसाका वैसा लघु अन्त्रमें दीर्घकाल पर्यन्त रह जाता है। इस तरह प्रतिदिन अन्नांश रह जाने और पक्काशयमें पाचक तत्त्व (अग्नि) कम होजानेसे अन्नका पचन योग्य प्रकारसे नहीं होता। फिर अन्न उसी स्थान पर विकृति होने लगता है, और उस हेतुसे विविध विकारोंकी उत्पत्ति होती है। यह जीर्ण बद्धकोष्ठका विकार अत्यन्त त्रासदायक है। इससे उदरमें वायु सर्वदा भरा रहता है; शौच शुद्धि नहीं होती, अपान वायुका कार्य सम्यक् न होनेसे किट्ट भाग पूर्ण रूपसे और योग्य समय पर बाहर नहीं निकलता; रोगी सर्वदा उदासीन और व्याकुल रहता है, तथा मन बिल्कुल निर्बल और उत्साह-रहित बन जाता है। ऐसी परिस्थितिमें लघु अन्त्रको शक्ति प्रदान कर अन्त्रकी उत्सर्ग-क्रिया, पाचन-क्रिया और संशोषण-क्रिया को सुधारने का कार्य इस रससे सहज होजाता है।

इस रसायनसे इन्द्रियसमूहको पुष्टि मिलती है, और निर्बलता नष्ट होती है। अन्न सड़नेकी क्रिया बन्द होजाती है। विशेषतः कफ-प्रधान और कफपित्तप्रधान लक्षण होने पर इसका विशेष उपयोग होता है। यदि वातप्रधान लक्षण हो, तो आरोग्यवर्द्धिनी देनी चाहिये।

धातुओंके विविध क्षयके हेतु से धातुपरिपोषण-क्रम क्षीण हो जाता है। इस क्षीणताको दूर करनेका कार्य इस रसायनसे सरलता-पूर्वक होजाता है। पचनेन्द्रिय क्षीण होनेसे पाचक पित्तमें क्षीणता आती है। फिर उससे अन्नरस योग्य नहीं बनता। रसधातुकी इस क्षीणता के हेतुसे रक्त भी जितने परिमाणमें सबल और पूर्णांशयुक्त चाहिये उतने परिमाणमें नहीं होता। परिणाममें आगे-आगेकी धातुएँ

और शरीरके अवयवोको एक प्रकारका उपवास करना पड़ता है जिससे क्षीणताकी प्राप्ति होती है । रोगी कृश, दीन और दुर्बल बन जाता है । इस अवस्थामें ज्वर रहता है, यह नियम नहीं है । इस प्रकारके धातु-क्षय पर चतुर्मुख रसका उत्तम उपयोग होता है ।

इस कारण परम्पराके हेतुसे अन्न-पचन योग्य न होनेसे उत्पन्न होनेवाले अतिसारमें इस रसायनका उपयोग होता है । इस अतिसारमें शौच सफेद और भागयुक्त होता है । कभी-कभी बिल्कुल कच्चा अन्न जाता है । इसके साथ खाये हुए अन्नकी वमन होजाती है । उस वान्ति में अम्लता या कड़ूवादन नहीं होता । जैसाका वैसा अन्न किञ्चित् मधुर-सा बनकर निकल जाता है ।

चतुर्मुख राजयक्ष्मा की उत्तम औषध है । इस रसायन में सुवर्णकी मात्रा मर्यादित है । फिर भी इसका आरम्भ करने पर क्वचित् तुरन्त ज्वरका परिमाण बढ़ने लगता है । ऐसी स्थितिमें इसे कुछ दिन के लिये बन्द कर देना चाहिये, या मात्रा अत्यन्त कम कर देनी चाहिये । क्षयका केवल सशय होनेपर एवं नेत्र, छाती, पसली तथा पैर आदिमें जलन, बेचैनी, अंग टूटना, कुछ ज्वर सदृश देह संतप्त हो जाना आदि लक्षण होनेपर इसे बिल्कुल कम मात्रामें प्रारम्भ करना चाहिये । ऐसी स्थितिमें प्रवालभस्मका भी उत्तम उपयोग होता है । परन्तु पित्ताधिक्य हो, तो प्रवाल और कफाधिक्य से स्रोतसोंका रोध हो, तो चतुर्मुख देवें । चतुर्मुख देनेमें दूसरा विशेप लक्षण क्षीणता होनी चाहिये । अंतरेन्द्रियकी क्षीणता, रोगीको अशक्ति लगना, यह लक्षण विशेप रूपसे होनेपर क्षयके प्रारम्भकालमें इसका प्रयोग करने से आगेकी सब अनर्थ-परम्पराकी प्राप्ति ही नहीं होती ।

राजयक्ष्माके आगेकी अवस्थामें क्षीणता रूप लक्षण प्रधान होने पर और इसी हेतुसे स्वरभेद (ज्वरका वेग तीव्र न होनेपर) सर्वगात्र क्षीणता, मर्यादित दाह होनेपर भी सहन न होना, दस्त पतला और अधिक होना, शौच दिनमें एक-दो बार होना और अधिक कष्ट न होकर होना, परन्तु प्रत्येक शौचके साथ क्षीणताकी वृद्धि होना, अन्नकी वाञ्छा न होना, विशेषतः जड़ और शीतगुणयुक्त अन्न, (भात-दाल) की इच्छा बिल्कुल न होना, भोजन बहुत थोड़ा करनेपर भी उदरमें जानेपर भारीपन होना, स्वल्प भोजन भी व्यथारूप भासना, खाँसी शुष्क या कफयुक्त होना परन्तु खाँसीके प्रत्येक वेगके साथ मानसिक व्याकुलता और कष्ट होना, खाँसीकी आवाज अति गहराईमेंसे निकलना, खाँसी

प्रत्येक वेगके साथ क्षीणताकी वृद्धि होनेका भास होना, बोलने पर कण्ठमें कफ चिपका हो ऐसा भासना, क्षीणताके हेतुसे एक भी शब्दका उच्चारण नहीं होसके ऐसी भावना होना, एकाध शब्द बोलनेमें भी अति कष्ट होना, हाथ-पैर चलाने की भी शक्ति न रहना और सारा शरीर शिथिल होजाना, आदि लक्षण भासते हैं। ऐसी परिस्थितिमें चतुर्मुखसे उत्तम कार्य होनेके अनेक उदाहरण मिले है।

रक्तमें रक्तकण कम होजानेसे और इसका कारण विशेषतः मानसिक श्रम होने पर चतुर्मुखका उपयोग उत्तम प्रकारसे होता है। इसमें भी क्षीणता रूप लक्षण तो होना ही चाहिये। उस पाण्डुतामें रोगी उतना क्षीण होजाता है कि, उसकी आवाज भी अतिशय कष्टसे ही बाहर निकलती है, स्वर साद होता है, तथा शेष इन्द्रियाँ क्षीण होजाती है। इस स्थितिमें ज्वर हो तो चतुर्मुखकी अपेक्षा प्रवाल, शृंग, शुक्ति, लोह भस्म या सुवर्णमाक्षिक भस्मका उपयोग विशेष होता है। परन्तु ज्वर न रहने पर और क्षीणता लक्षण प्रमुख होने पर चतुर्मुखका उपयोग उत्तम प्रकारसे होता है।

केवल एक स्थान पर बैठे-बैठे व्यवहार करनेवाले, विशेषतः कुछ भी उद्योग (परिश्रम) या व्यायाम न करते हुए स्निग्ध आहारका सेवन कर खूब सोने वाले, मासाहार या पक्काहार अपनी शक्तिसे अधिक खाकर पचन-शक्तिकी ओर दुर्लक्ष्य करनेवाले, मधुर रसका सेवन अत्यधिक करनेवाले, इसी तरह मत्स्य सेवन अत्यंत करनेवाले और जिनकी पचनशक्ति क्षीण होगई है, ऐसे अजीर्ण भोजी मनुष्योंको प्रमेह रोगकी संप्राप्ति होती हैं। इस मेह रोगके मूलमें अग्निमान्द्य और उस हेतुसे उत्पन्न अपचन ही विशेष रूपसे कारण होते है। इस विकारमें मूत्रोत्सर्ग बार-बार अधिक परिमाणमें होता है, तृषा अधिक लगती है; मिथ्या क्षुधा बनी रहती है, हाथ-पैरोंमें दाह होना, देह पर बार-बार प्रस्वेद आना, प्रस्वेदमें एक प्रकारकी दुर्गन्ध रहना, शौच मर्यादित होना आदि लक्षण होते है। इस पर प्रारभमें कुछ दिन लङ्घन करा फिर चतुर्मुख का उपयोग करना चाहिये। (औ० गु० ध० शा० के आधार से)

गुटिका प्रकरण।

एक या अनेक औषधियोंके महीन चूर्ण को जल, दूध, वनौषधियोंके स्वरस, क्वाथ, शहद, गुड़, या शक्करकी चाशनीमे मिला अच्छी रीतिसे खरल करके गोलियाँ बनाई जाती हैं, उन्हे गुटिका कहते हैं। गुटिकामे आकृति और

परिमाण-भेदसे गुटिका, वटिका, वटी (बडे), मोदक (लड्डू), पिण्डी (मुठियाँ), वर्त्ति (बत्तीके सदृश आकारवाली), गुड (गोला), सोगठी (शिखराकृति की गोली) अनेक प्रकार हैं ।

जल, दूध, स्वरस या क्वाथ आदिकी भावना देकर गोलियाँ बनानी हो, तो औषधि अच्छी तरह भीग जाय उतना द्रव पदार्थ मिला खरल करके गोलियाँ बना लेनी चाहिये । यदि गोलियाँ बनानेमें किसी औषधके क्वाथकी भावना देनी हो, तो मूल औषधियोंके चूर्णके बराबर क्वाथ करनेके द्रव्यको ले, आठ गुने जलमें औटा आठवाँ हिस्सा शेष रहने पर उतार छानकर भावना दे ।

शक्कर और गुड प्रायः चाशनी करके मिलाये जाते हैं शुद्ध गूगलको जलमें पका या घी मिला अन्य औषधियोंके साथ कूट करके गोलियाँ बनाई जाती हैं । शक्कर मिलानी हो तो चूर्णसे ४ गुनी, गुड दुगुना, शहद चूर्णके समान, और गूगल भी चूर्णके बराबर लेना चाहिये ।

यदि गूगलका पाक करना हो, तो गुडके पाकके समान करे । किन्तु गाढा बनावे । जो जलमें डालने पर डूब जाय, इधर-उधर फैल न जाय, ऐसा पाक होने पर औषधियों के चूर्णके साथ मिलावे । यदि पाक न करना हो, तो चूर्ण और शुद्ध गूगलको मिला थोड़ा-थोडा घी डाल इमामदस्ते में खूब कूटकर अच्छी तरह मिलाले, पश्चात् गोलियाँ बाँधे ।

गोलियोंके सेवनसे जो अधिक कठोर हो, उसे पीस अनुपानके साथ मिलाकर लेनी चाहिये, अन्यथा कठोर गोलियाँ मलके साथ ज्यों की त्यों बाहर निकल जाती हैं । एव गोली को पीसकर लेनेमें लाभ भी सत्वर होता है ।

भस्म और रसायनकी अपेक्षा काष्ठादि औषधियों से बनाई हुई गुटिका प्रायः सौम्य होती हैं । अत. अशक्त, नाजुक और उष्ण प्रकृतिवाले रोगियोंको और पुराने रोगोंमें लाभदायक है । यद्यपि चूर्ण आदिक अनेक कृति सौम्य हैं, यद्यपि उनकी मात्रा ज्यादा है । गुटिका की मात्रा कम है; और गुटिकाको निगलनेसे औषधिमें रहे हुए बेस्वादुपन या कडुवापनसे मनमें ग्लानि भी नहीं होती । इसलिये बालक, स्त्रियाँ और नाजुक प्रकृतिवाले पुरुषो को गोलियोंका सहज सेवन करा सकते हैं, एवं हानिकी संभावना न होनेसे साधारण बोधवाले चिकित्सक भी निर्भयतापूर्वक गुटिकाओंको उपयोगमें ले सकते हैं ।

गूगल और अन्य अनेक प्रकार की गुटिका शीघ्र लाभ न पहुँचाकर शनैः-शनैः स्थिर लाभ प्रदान करती हैं । इसलिये ऐसी औषधियोंका सेवन धैर्यपूर्वक पथ्यपालनके साथ विशेष समय तक करना चाहिये ।

कितनेक प्रकारकी गुटिकाओंमें बच्छनाग, जमालगोटा, कुचिला आदि विष मिलाये हैं । इन गुटिकाओंको तैयार करनेमें विषोंको "शोधन प्रकरण" में

लिखी विधिसे शुद्ध करके ही मिलाना चाहिये । जहरी ओषधियोंको बिना शुद्ध किये मिलानेसे ओषधि-प्रयोग अति उग्र बनता है, जिससे विषप्रकोपका असर ओषधि सेवन करनेवाले पर होता है।

बच्छनाग आदि विष मिश्रित गुटिकाएँ उग्र हैं। अतः इनको आवश्यकता पर सम्भाल कर बहुत थोड़ी मात्रा में उपयोगमें लेनी चाहिये । विषमिश्रित उग्र ओषधि रोग को दबानेमें तुरन्त लाभ पहुँचाती है । परन्तु वह जीवनीय शक्ति को निर्बल बनाती है, अथवा उत्तेजनाके पश्चात् अवसादक असर पहुँचाती हैं।

जिन गोलियोंको शास्त्रकारोंने सूर्यके तापमें सुखानेको लिखा है, उनको सूर्यके तापमें ही सुखाना चाहिये । शेष गुटिकाओंको छाया और खुली वायुमें पत्थर या एनेमलके पात्र या कलई लगी हुई थालीमें सुखाकर सावधानीसे काँचकी अच्छी डाटवाली शीशियोंमें भर लेना चाहिये ।

नीबू या अन्य खट्टे रसमें तैयार की हुई गोलियाँ कलई किये हुए बर्तनमें सुखाने पर भी दूषित होजाती है । अतः उनको मिट्टी या पत्थरके बर्तनों में ही सुखावे, और जब तक गोलिया अच्छी रीतिसे न सूख जाँय तब तक शीशोंमें न भरे । अन्यथा थोड़े ही दिनोंमें दुर्गन्ध आने लगेगी । गोलियाँ अच्छी सूख जाने पर खुली भी न रखनी चाहिये; वरना सत्व कम होता जायगा ।

अनेक गुटिकाओंमें अफीम आदि विष मिलाये हैं। उनके उपयोगके विषय में अधिकारी और समयके लिये संक्षेपमें सूचना "आवश्यक सूचना प्रकरण" में लिखी है, तथापि पुनः यहाँ संक्षेपमें लिखते हैं।

पेचिस अथवा अतिसारमें जब तक सफेद आम गिरता हो, अथवा भीतर का दूषित मल दूर न हुआ हो, तब तक अफीमवाली ओषध न दें।

जमालगोटा अनेक ओषधियों में आता है, उसका उपयोग करने के पहले अधिकारी, समय और मात्राका अच्छी रीतिसे विचार कर लेना चाहिये । जमालगोटा मिश्रित गुटिकाएँ बालक, सगर्भा स्त्री, वृद्ध, अति निर्बल, क्षय-रोगी, मुद्दती तापके रोगी, आदिको नहीं देनी चाहिये । या आवश्यकता पर अति कम मात्रामें सम्हाल कर देनी चाहिये ।

कुचिलामिश्रित गोलियाँ एक साथ १५ दिनसे अधिक काल तक न दें। अधिक समय तक देनी हो, तो बीच-बीच में ५-७ दिन छोड़-छोड़कर दें; कारण कुचिला, डिजीटेलिस (Digitalis), संखिया आदि अनेक जहरी ओषधियोंका अंश आमाशयमें संचित होता रहता है।

बच्छनाग-मिश्रित ओषधि जब मूत्रल असर पहुँचा रोगके कारण के निवृत्यर्थ दीजाय, तब तीन दिनसे अधिक नहीं देनी चाहिये । कारण, बच्छनाग आरम्भमें मूत्रको बढ़ाता है, जिससे संचित दोष मूत्र द्वारा निकल जाते

पर मूत्र साफ-कुएँ के जलके समान होजाता है । किन्तु तीन दिन पश्चात् पुनः शनैः शनैः मूत्रका रंग पीला होता जाता है । फिर भी वच्छनाग वाली औषध दी जायगी, तो लाभके बदलेमे हानि होगी ।

(१) संजीवनी वटी ।

बनावट—वायविडंग, सोंठ, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, वच, ताजी गिलोय, भिलावा और शुद्ध वच्छनाग, इन १० वस्तुओंको सम-भाग ले । पहले वच्छनाग, भिलावा और गिलोयको मिलावें । फिर शेष औषधियोका कपड़छान चूर्ण मिला गोमूत्रमें १२ घण्टे खरल करके एक-एक रत्तीकी गोलियाँ बनावे । (शा० स०)

सूचना—यदि इस वटी में वच्छनाग के समान शुद्ध हिंगुल भी मिला लिया जाय, तो वटी अधिक प्रभावशाली बनजाती है ।

मात्रा—१ से ३ गोली अदरखके रस या जल के साथ दे ।

उपयोग—यह वटी ज्वर, अजीर्ण, कृमि, वमन, उदरशूल, कफ-युक्त कास, गुल्म, विसूचिका (हैजा), सर्पदंश और सन्निपात आदि रोगो को दूर करती है ।

इस संजीवनी वटीमें वच्छनाग मिलाया है । वच्छनागमें उष्ण, स्वेदल और ज्वरघ्न गुण होनेसे इस वटीके सेवनसे भीतर बढ़ा हुआ दोप, पसीना और मूत्र द्वारा, बाहर निकल जाता है, तथा आमका शोषण होता है । इस कारणसे अजीर्ण, जुकाम, अजीर्णजन्य ज्वर आदि रोग दूर होते है । स्थावर और जंगम विष एक दूसरेके प्रतिद्वन्द्वी होनेसे वच्छनाग-प्रधान इस गुटिकासे सर्पविषका भी शमन होता है ।

कितनेक चिकित्सक संजीवनीका प्रयोग मोतीझरा पर सफलता-पूर्वक करते रहते है । मोतीझरा की प्रथमावस्थासे लेकर अन्तिमावस्था पर्यन्त यह दी जाती है । प्रातः साय संजीवनीके साथ प्रवालपिष्टी मिलाकर तथा दोपहर को केवल प्रवालपिष्टी देते रहनेसे २१ दिनमें ज्वरविषका परिपाक होकर मोतीझरा निवृत्त होजाता है । यदि बीचमें अपथ्य या अन्य किसी कारणवश उपद्रव उपस्थित हुआ हो तो उपद्रवके अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये ।

सन्निपातकी विविध अवस्थाओंमें लाभ पहुँचाने वाली अनेक ओषधि-योकाविवेचन आयुर्वेदमें मिलता है । इन ओषधियो मे संजीवनी को भी स्थान मिला है । यद्यपि यह साधारण ओषधि है तथापि ज्वर विष और आमको जलाने में अति उपयोगी सिद्ध हुई है । कफवृद्धि मन्द-मन्द प्रलाप, अति बेचैनी आदि लक्षणयुक्त सन्निपात पर व्यवहृत

होती है। अनुपान रूपसे तुलसी का रस दिया जाता है। यदि सन्निपातमें उदरमें भारीपन, कठोरता और मलावरोध हो, तो पहले वर्ति (सपोज़िटरी) या वस्ति अथवा विरेचन औषधि देकर उदर शुद्धि करा लेनी चाहिये। कीटाणु दूषित सड़े हुए फल अथवा बासी या सड़ा हुआ अन्न खाने से अपचन होता है। फिर पतले दस्त, उदरशूल, उदर में भारीपन आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। एव किसीको विसूचिका हो जाता है। फिर बार-बार पतले दस्त और वान्ति होती है। इन दोन प्रकारो पर सजीवनी व्यवहृत होती है। मद प्रकोपमे दिनमे ३ बार और विसूचिकाके तीव्र असरमें १-१ गोली एक-एक या २-२ घण्टे पर ४-५ बार देनेसे कीटाणुओं को नष्ट करती है, अतिसार और वमन को रोक देती है. वायु को शान्त करती है, तथा पचनशक्ति को सबल बनाकर आमविष को जला देती है। जिससे अपचन जनित अतिसार, विसूचिका आदि विकार दूर हो जाते है। अनुपान रूपसे प्याज का रस या अदरख का रस देना विशेष लाभदायक है।

अपचन जनित विसूचिकाके समान कीटाणु जनित विसूचिका पर भी इसका उपयोग होता है। यदि विसूचिकाकी प्रारम्भावस्थामें ही इसका प्रयोग किया जाय, तो लाभ पहुँच जाता है।

विसूचिकामें वान्ति और अतिसार द्वारा जलांश अधिक निकल जानेके अतिरिक्त (बाहर अंग शीतल होनेपर भी) कोष्ठके भीतर उष्णता बढ़ जानेसे भी प्रायः मूत्रोत्पत्ति नही होती। यदि पेशाब साफ आ-जाय, तो विसूचिका रोगमें बहुधा आराम होजाता है। भीतरकी उष्णता को शमन कर पेशाब लानेका कार्य इस संजीवनी वटीसे होता है। ये अन्तरकी उष्णता शामक और मूत्रल गुण वच्छनागके हेतुसे प्रतीत होते है।

वच्छनाग, भिलावा, वच और त्रिकटु मिले होनेसे इस औषधि में दीपन, पाचन और वातश्लेष्महर गुण प्रतीत होते है। इन गुणोके हेतुसे औषध दूषित कफ और आमका सशोषण करके शूल और अजीर्णको दूर करती है, तथा अग्निको प्रदीप्त करती है। एवं वात और कफोल्वण सन्निपात में दूषित कफका सशोधन करना और बाहर फेंकने के लिये उत्तेजना देना, दोनो कार्य कराती है, जिससे कफोल्वण और वातकफभूयिष्ठ सन्निपातकी निवृत्ति होती है। कफयुक्त कास और श्वास रोगमें भी लाभदायक है।

इस प्रयोगमें सहायक औषधियाँ त्रिफला, वायविडग, गिलोय और गोमूत्र हैं। त्रिफला रुचिकर और मलशोधक है। वायविडंग

जन्तुघ्न, और गिलोय तीनों दोषका संशमन करने वाली है। एवं गोमूत्र अग्निदीपक, मलमूत्रावरोधनाशक और कफघ्न है। इस रीतिसे साधारण द्रव्योंसे बनने पर भी संजीवनी दिव्य प्रभावशाली सिद्ध हुई है। इसलिये इसे "अमृत संजीवनी" भी कहते हैं।

सूचना—यह वटी रुखी खांसी वालेको नहीं देनी चाहिये, और हृदय की शिथिल गति वालोंको सम्हालकर देनी चाहिये।

(२) ज्वरारि वटी।

बनावट—मल्ल पुष्पके साथ बना हुआ गुलाबी फिटकरीका फूला १ भाग, पीपल और मिर्च २-२ भाग ले। सबको मिला घीकुँवार के रसमें ६ घण्टे खरल कर मूँगसमान गोलियाँ बनावे। (र० सा०)

मात्रा—१-१ गोली दिनमें २ से ३ बार जलके साथ देवे।

उपयोग—यह वटी सब प्रकारके नवीन ज्वर, जीर्णज्वर और विषमज्वरको दूर करती है। इस वटीके प्रभावसे नूतन ज्वर २-४ दिन में ही दूर होजाता है।

(३) पित्तज्वरांतक वटी।

बनावट—कड़वे अतीसका चूर्ण ५ तोले और फिटकरीका फूला ७॥ तोले ले। दोनोंको मिला शहदके साथ खरल कर मटरके समान गोलियाँ बना सोनागेरूके चूर्णमें डालते जायँ, और सूखने पर शीशी में भर ले। (आ० नि० मा०)

मात्रा—१ से २ गोली तक दिनमें ३ बार जलके साथ देवे।

उपयोग—यह वटी पित्तज्वरमें पसीना लाकर ज्वरको शीघ्र उतारती है, दस्तको बाँधती है, तथा पित्तप्रकोपका शमन करती है।

(४) विषमज्वरान्तक वटी।

बनावट—धतूरेके शुद्ध बीज, रेवाचीनी और बबूलका गोंद सम भाग ले। पहली और दूसरी औषधिका बारीक चूर्ण करे। फिर गोंदके जलमें मिलाकर मिर्चके बराबर गोली बनावे। (श्री रामस्वामीजी)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २ से ३ बार जलके साथ देवे।

उपयोग—सब प्रकारके विषमज्वरोंको दूर करती है। चातुर्थिक ज्वर (तिजारी) को २-३ बारके सेवनसे दूर करती है। पारीके दिन ४ घण्टे पहले एक बार, और २ घण्टे पहले दूसरी बार देवे। ज्वर न आवे, तो ज्वरके समयके १ घण्टे बाद तीसरी बार देवे।

दूसरी विधि—नीमके पत्ते, तुलसीके पत्ते, बेलके पत्ते और भाँग २-१ तोला तथा कालीमिर्च ३ माशे लें। सबको मिला जलके साथ

खरल करके चनेके समान गोलियाँ बना ले।

मात्रा—१ से २ गोली तक दिनमें ३ वार जलके साथ दे।

उपयोग—यह वटी सतत विषम ज्वर, एकाहिक और तृतीयक ज्वर (एकांतरा ताप) को एक ही दिनमें रोक देती है।

(५) त्रिवृदष्टक मोदक।

बनावट—सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागरमोथा, वायविडंग और आँवला, ये ६ ओषधियाँ १-१ छटाँक, निसोत ८ छटाँक और दन्तीमूल २ छटाँक लेवे। सबको मिला बारीक चूर्ण कर ६ गुनी शक्करकी चाशनीमें मिलावे। फिर १ छटाँक सैंधानमक और २ छटाँक शहद मिलाकर ३-३ माशेकी गोलियाँ बनावे। (सु० सं०)

मात्रा—१ से २ गोली सुबह शीतल जलके साथ देवें। यदि पित्तश्लेष्म दोष हो, तो दूधके साथ देवे।

उपयोग—यह ओषधि उत्तम विरेचक और विपघ्न है। मल-मूत्रावरोध, वस्तिमें शूल चलना, पित्तवृद्धिके कारणसे प्यास, वमन, दाह, शोष, ज्वर और पाण्डु आदि रोगोंको दूर करनेमें सहायक है।

(६) कस्तूर्यादि वटी।

बनावट—कस्तूरी ४ रत्ती, कपूर १ माशा, हींग भुनी १ माशे, शुद्ध अफीम १ माशा और खुरासानी अजवायन ४ माशे लें। सबको शहदके साथ खरलकर चनेके बराबर गोलियाँ बना ले। (धन्वतरि)

मात्रा—उन्माद और निद्रा-नाशमें १ गोली जलके साथ रात्रिको सोनेसे दो घण्टे पहले और सन्निपातमें आवश्यकता पर देवे।

उपयोग—यह वटी सन्निपात और उन्माद आदि रोगोंमें निद्रा लानेके लिये अति उपयोगी है। यह उन्मादके दोषको दबाती है, तथा सन्निपातमें जब रोगी बार-बार खड़ा होकर भागने लगता है, या लड़ाई करता है, तब इस के प्रयोगसे तुरन्त विष शान्त होजाता है।

(७) करंजादि वटी।

प्रथम विधि—भुनी हुई करंजगिरी, इन्द्रायणकी जड़, बनफशा, अतीस, फिटकरीका फूला, पीपल, बड़ी हरड़, सब समभाग लें। फिर कूट बारीक चूर्ण कर शहदमें मिला चनेके समान गोलियाँ बनालें।

मात्रा—२-२ गोली दिनमें ३ वार जलके साथ देवें।

उपयोग—यह वटी सब प्रकारके नवीन ज्वरोंको दूर करती है।

यह मलावरोध और प्लीहावृद्धिसह जीर्ण ज्वरमें हितकर है।

दूसरी विधि—करंजगिरी, पित्तपापड़ा, चिरायता, अतीस, गिलोय सत्व, कटु परवलके फल और कुटकी, ५-५ तोले लेकर बारीक चूर्ण करें। फिर भाँगरेके रसमें खरलकर ४-४ रत्तीकी गोलियाँ बनावें।

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें ३ वार जलके साथ देवें।

उपयोग—यह वटी पित्तश्लेष्म ज्वर, ठण्ड लगकर आनेवाला विषम ज्वर तथा प्लीहा (तिल्ली) और यकृत आदिके दोषोंको दूर करती है। ज्वरको रोकनेके लिये ६ घण्टे पहले दो दो घण्टेके अन्तर पर ३ वार औषधि देनेसे पालीका बुखार रुक जाता है।

तीसरी विधि—भुनी हुई करंजगिरी २ तोले और त्रिकटु २ तोले मिलाकर बारीक चूर्ण करे। फिर द्रोणपुष्पी (गोमा) का रस ४ तोले मिला खरलकर चनेके समान गोलियाँ बाँध ले। (धन्वन्तरि)

मात्रा—२-२ गोली दिनमें ३ वार जलसे देवे। एक बार ज्वरके आनेके ४ घण्टे पहले, दूसरी वार २ घण्टे बाद, और ज्वर न आवे तो तीसरी वार २ घण्टे बाद देवें।

उपयोग—इस वटीके सेवनसे सब प्रकारके विषमज्वर और नवीन ज्वर २-४ दिनमें ही दूर होते हैं। सामान्य औषधि होते हुए भी बहुत अच्छा लाभ पहुँचाती है।

(८) मधुरांतक वटी।

बनावट—तुलसीपत्र २ तोले, गिलोय सत्व १ तोला, लौंग, वंशलोचन, धनियाँ, कासनीके बीज और इलायची छः-छः माशे मिला तुलसीके रसमें खरलकर उड़दके बराबर गोलियाँ बनावे। (र० सा०)

मात्रा—२ से ४ गोली दिनमें ३ वार जलके साथ देवे।

उपयोग—यह औषधि मधुराके विषको बाहर निकालनेके लिये अति उपयोगी है। मधुरामें लक्ष्मीनारायण रसके साथ इस वटीका सेवन करानेसे सत्वर लाभ पहुँचता है। एवं सगर्भा स्त्रियो और बालकोंका ताप उतारनेके लिये निर्भयतापूर्वक दीजाती है।

(९) जया वटी।

बनावट—शुद्ध बच्छनाग, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हल्दी, नीम के पत्ते, नागरमोथा और वायविडंग, इन ८ औषधियोंको सम भाग ले। फिर कूट महीन चूर्ण कर, १२ घण्टे बकरेके मूत्रमें खरल करके चनेके समान गोलियाँ बना लेवे। (र० सं०)

जया और जयन्ती, दोनों प्रयोगोंमें रसयोगसागरकारने योग-

महार्णव ग्रन्थके आधारसे शुद्ध गन्धक को भी मिलानेका लिखा है। शुद्ध गन्धक मिलानेसे गुणमें वृद्धि होती है, ऐसा उनका अनुभव है।

मात्रा—१ से २ गोली तक दिनमें २ बार देवे।

उपयोग—यह वटी अनुपान-भेद से सब प्रकारके ज्वर, कास, बहुमूत्र, पाण्डु, शोष, कुष्ठ, प्रमेह, अतिसार, संग्रहणी, रक्तपित्त और नेत्ररोग आदिको दूर करती है। अनुपान जया और जयंतीका समान है। अनुपानका वर्णन जयन्तीमें लिखा है।

(१०) जयन्ती वटी।

बनावट—शुद्ध बच्छनाग, कालीमिर्च, पीपल, पाठा, असगन्ध, बच, तालीसपत्र और नीमके पत्ते, सबको समभाग मिला बारीक चूर्ण कर बकरेके मूत्रमें १२ घण्टे खरल करके चनेके समान गोलियाँ बनावें। (र० स०)

मात्रा—१ से २ गोली तक दिनमें देवे।

उपयोग—यह वटी अनुपान-भेदसे सब रोगोंको दूर करती है। जया और जयन्ती वटीके गुण और अनुपान सामान्यतः समान माने गये हैं। बहुधा इन दोमेंसे कोई भी एक दे सकते है। इन दोनों प्रयोगों में मुख्य ओषधि बच्छनाग है। अतः बच्छनागके गुणोंकी प्रधानता तो रहेगी ही। बच्छनाग स्वेदल, मूत्रल, पीड़ाशामक और वायुवेगनाशक है। नाड़ीका वेग, उष्णता और रक्तके दबाव को कम करता है; तथा ज्वर, सन्निपात, श्वास, कास, प्रमेह, शोथ, शूल, अभिष्यंद, उदररोग, प्लीहा, पाण्डु, व्रण, कण्ठमाल, विसर्प आदि रोगोंको नष्ट करता है। बच्छनागमें वातपित्तघ्न गुण होनेसे जीर्ण संधिवात और शूलपर अति हितकर है। लेप करनेसे संचित रक्तको बिखेरता है, जिससे बच्छनागमिश्रित लेप, गाँठ, बद, कण्ठमाल आदि रोगोंपर लाभदायक है। इन सब रोगो पर इसका असर होता है। जब पतले दस्त होते हो; तब जयाकी अपेक्षा जयन्तीका उपयोग विशेष हितकारक है।

अनुपान—(१) पित्तज्वरमें दूध। (२) सब प्रकारके ठण्डी रहित नये ज्वरमें त्रिकटु और शहद। (३) पित्तज्वरमें घृत। (४) शीतज्वरमें गोमूत्र। (५) सन्निपातमें अदरखका रस अथवा कालीमिर्च और शहद। (६) रक्तपित्तमें चन्दनका क्वाथ। (७) कफयुक्त खाँसीमें शहद। (८) शोथ और पाण्डुमें दूध। (९) मूत्रकृच्छ्र और पथरीमें चावलका धोवन। (१०) कोंकण कुष्ठमें गोमूत्रमें घिसकर लेप करें। (११) सुरामेहमें केतकीका मूल ८ माशे घिसकर उसीके

साथ देवे। (१२) मधुमेहमें लोद, नगरमोथा, हरड़ और कायफल का क्वाथ। (१३) त्रिदोषज गुल्ममें गुड़ और गरम जल। (१४) भगन्दरमें सोंठका चूर्ण। (१५) संग्रहणीमें मट्ठा। (१६) रतौंधीमें भाँगरेके रसमें घिसकर अंजन करें और भाँगरेके रसके साथ खिलावें। (१७) नेत्रस्राव, मांसवृद्धि और सब नेत्ररोगोंमें स्त्रीके दूधके साथ घिसकर अंजन करें। इन दोनों वटियोंको अनेक रोगों पर कितनेक चिकित्सक अनेक वर्षोंसे प्रयोगमें लाते हैं। इनसे मुसाफिरीमें बहुत काम निकल सकता है।

(११) मरिचादि गुटिका।

बनावट—कालीमिर्च १ तोला, छोटी पीपल ६ माशे, अनारका छिलका ४ तोले, गुड़ ८ तोले, और जवाखार ६ माशे लें। सबको कूट गुड़की चाशनी में मिलाकर ३-३ रत्तीकी गोलियाँ बना लें। (चक्रदत्त)

मात्रा—२-२ गोली दिनमें २-४ बार निवाये जलके साथ दें।

उपयोग—कफयुक्त कास, जो अन्य औषधियोंसे शान्त न हुई हो, जिसके मिटनेकी आशा छूट गई हो, कफमें दुर्गन्ध आती हो, कफ सफेद या पीला, चिकना बँधा हुआ हो, कफ अधिक गिरता हो, ऐसे जीर्ण असाध्य कास रोगमें भी इस औषधिसे लाभ होता है।

(१२) कर्पूरादि वटी।

बनावट—कपूर, अनार (दाड़म) के फलकी छाल और लौंग १-१ तोले, कालीमिर्च, पीपल, बहेड़ेकी छाल और कुलींजन २-२ तोले तथा सफेद कत्था ११ तोले लें। सबको मिला बबूलकी छालके क्वाथकी भावना देकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बना लें।

सूचना—क्वाथको जल उतना मिलाना चाहिये कि, ३ घण्टा खरल करने पर गोली बन सके। विशेष जल मिलाने पर कपूर उड कर कम होजाता है।

मात्रा—१-१ गोली दिनमें १०-१५ बार मुँहमें रख कर चूसें।

उपयोग—इस वटीके सेवनसे सब प्रकारकी खाँसी दूर होती है। विशेषतः वातप्रकोपसे उत्पन्न सूखी खाँसी, जिसमें कफ नहीं आता, और रात्रिको अति त्रास होता है, निद्रा भी पूरी नहीं आसकती, वह ५-७ रोजमें ही शान्त होजाती है।

यदि कण्ठमें रही हुई गिलायु (कागल्या Uvula) शिथिल होजानेसे बार-बार कासआती हो तो गलेके भीतर माजूफल चूर्णको शहदमें मिलाकर दिनमें २-३ बार लगा लेना चाहिये; तथा कर्पूरादि

वटी १-१ गोली मुँहमें रखकर रस निगलते रहना चाहिये। शौच शुद्धि न होती हो, तो अभयादि मोदक आवश्यकता पर देवें।

(१३) अतिविषादि वटी।

बनावट—कड़वा अतीस, काकड़ासींगी, कायफल, नागरमोथा, पीपलामूल, पीपल, बड़ा इलायची और मुलहठीका सत्व एक-एक तोला लेवें। सबको कूट महीन चूर्ण कर अदरखके रस अथवा शहदके साथ घोटकर मटरके समान गोलियाँ बना लेवें। (धन्वन्तरि)

मात्रा—एक-एक गोली मुँहमें रखकर धीरे-धीरे रस उतारे, दिन रातमें ७-८ गोली सेवन करें।

उपयोग—अदरखके रसवाली गोलीसे कफवाली खाँसी तुरन्त नष्ट होती है। शहद वाली गोली वातिक कासमें लाभदायक है।

(१४) लवंगादि वटी।

बनावट—लौंग, बहेड़ेकी छाल और कालीमिर्च १-१ तोला तथा कत्था ३ तोले मिला बबूलकी छालके क्वाथमें ६ घण्टे खरलकर मटरके समन गोलियाँ बनावे। (वै० जी०)

मात्रा—१-१ गोली दिनमें ५-७ वार मुँहमें रखकर चूसे।

उपयोग—यह वटी सब प्रकारकी खाँसीको दूर करती है, और श्वास रोगमें भी हितकर है। यह वटी सूखी खाँसीमें श्वासनलिकाकी उग्रताको दूर करके खाँसीको शमन करती है। एव कफयुक्त कासमें सरलतासे कफको बाहर निकालती है।

(१५) खदिरादि वटी।

बनावट—खैरसार १० तोले, कपूर, चिकनी सुपारी, जायफल, शीतलमिर्च और छोटी इलायची दो-दो तोले लें। सबको कूट, पीस छानकर जलमें चनेके समान गोलियाँ बनावे। (वृन्द)

मात्रा—एक-एक गोली करके दिनमें ५-७ गोली चूसें।

उपयोग—यह वटी मुँहके छाले, जिह्वा, दाँत, मसूढ़े और गले के रोग, खाँसी और स्वरभङ्गको दूर करती है, और दाँतोंको मजबूत बनाती है। यह उत्तम संशोधन और गुण दर्शाती है।

(१६) अर्दितरिपु वटी।

बनावट—कपूरका वरीका बारीक चूर्ण कर जल (चन्दनादि अर्क) के साथ खरल करके चनेके समान गोलियाँ बना लेवे। (आ० नि० मा०)

मात्रा—एक-एक गोली ५-१० वार आध-आध घंटे पर देवे।

उपयोग—यह वटी किसी भी कारणसे होनेवाले वमन, अरुचि आदि व्याधियोंको दूर करती है। छोटे बालकोंके लिये भी हितकर है। कीटाणुजनित तीव्र वान्ति होतो छर्दिरिपु के साथ मयूरपुच्छ भस्म और जहरमोहरापिष्टी १-२ रत्ती मिलाकर पोदीने के अर्क के साथ देना चाहिये। वान्तिके वेग को शान्त करनेके लिये यह उत्तम औषधि है।

(१७) हिंग्वादि वटी।

बनावट—सोंठ, सोहागेका फूला, बडी हरड़, सैंधानमक और भुनी हींग, सबको सम भाग ले। सबको यथाविधि मिला सुहिजनेकी छालके रसमें घोटकर झाडीबेरके बराबर गोलियाँ बना ले। सुहिजने की छालका रस पुटपाक रीतिसे निकाले।

मात्रा—१-१ गोली दिनमें २ बार जलके साथ देवे।

उपयोग—यह वटी उदरवात, आमवात, ताप, तिल्ली और घोर आफरेको दूर करके अग्निको प्रदीप्त करती है।

(१८) टंकणादि वटी।

बनावट—सोहागेका फूला १ तोला, अजवायन ३ तोले, कालीमिर्च ४ तोले और एलुवा ४ तोले लें। सबको कूट-छान घीकुँवार के रसमें घोटकर चनेके बराबर गोलियाँ बनालें।

मात्रा—२ से ३ गोली दिनमें दो बार जल के साथ दे।

उपयोग—यह वटी मन्दाग्नि, कब्ज, उदरवात, आमवात और अजीर्णको दूर करती है।

(१९) प्लीहांतक गुटिका।

प्रथम विधि—एलुवा, चित्रकमूल, भुनी हींग, सोहागेका फूला, नौसादर, सफेद सज्जी (सोडा बाई कार्ब) सबको समभाग मिला घीकुँवारके रसमें घोटकर मटरके बराबर गोलियाँ बना ले। (इ० गु०)

मात्रा—२-२ गोली दिनमें २ बार जलके साथ ले।

उपयोग—यह वटी प्लीहावृद्धि (तिल्ली), यकृद्विकार, अजीर्ण, उदरवात और कब्जको दूर करके अग्निको प्रदीप्त करती है।

दूसरी विधि—सोहागेका फूला, कलमीशोरा, फिटकरीका फूला, कालानमक, सैंधानमक, हरड़, अजवायन और आमाहल्दी, सबको समभाग मिला नीबू और अदरखके रसकी ३-३ भावना देकर मटरके बराबर गोलिया बनावे।

मात्रा—२-२ गोली दिनमें २ बार जलके साथ देवे।

उपयोग—यह वटी प्लीहावृद्धि, यकृतदोष, अजीर्ण, मन्दाग्नि

और मंदज्वरको दूर करती है ।

(२०) कृमिघ्न गुटिका ।

प्रथम विधि—शुद्ध कुचिला ५ तोले, वायविडग, अजमोद, अतीस, पीपल और इन्द्रजव, सबको १-१ तोला मिला गुवारपाठेके रसमें १२ घण्टे खरल कर मूँगके बराबर गोलियाँ बनावे ।

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें ३ बार ३ दिन जलके साथ दे । चौथे रोज सुबह जुलाब दे । आवश्यकता हो, तो ज्यादा दिन देते रहे ।

उपयोग—इस गुटिकाके सेवनसे उदरके सब प्रकारके सूक्ष्म जातिके कृमि दूर होते है । कृमिजन्य ज्वर, मंदाग्नि, उवाक, कण्डू, उदरवात, हृदयकी निर्बलता, सब शमन होते है ।

दूसरी विधि—वायविडग, केसूला, पलासके बीज और नीमकी निम्बोली, सबको सम भाग मिला मूसाकानीके रसमें ६ घण्टे खरल करके चार-चार रत्तीकी गोलियाँ बना लेवे ।

मात्रा—२ से ३ गोली दिनमें ३ बार जलके साथ देवे ।

उपयोग—इस कृमिघ्न गुटिकाके सेवनसे उदरके सब प्रकारके सूक्ष्म जातिके कृमि तीन-चार रोज में ही दूर होते है ।

(२१) व्योषादि वटी ।

बनावट—सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, अम्लवेत, चव्य, तालीस-पत्र, चित्रकमूल, जीरा और इमली एक-एक तोला, दालचीनी, छोटी इलायची और तेजपत्र ६-६ माशे और गुड़ २० तोले लेवें । इमलीको अलग कूटें । और वस्तुओंको अलग कूट, कपड़छान कर इमलीके साथ मिलावे । फिर गुड़की चाशनीमें मिलाकर मटरके समान गोलियाँ बनावें । (शा० स०)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें ३ बार निवाये जलके साथ दे ।

उपयोग—यह वटी जुकाम, खाँसी, श्वास, अरुचि, पीनस, स्वरभंग (गला बैठ जाना), आदि रोगोको दूर करती है ।

(२२) श्वासांतक वटी ।

बनावट—शुद्ध कुचिला, छोटी पीपल, लौंग और मुलहठी, सबको समभाग मिला बहेड़ेके काथमें १२ घण्टे खरल करके १-१ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें ।

मात्रा—१-१ गोली दिनमें दो बार । सुबह थोड़े दूध या १-२ तोले गोघृतके साथ और सायंकालको गोदुग्धके साथ देवे ।

उपयोग—इस वटीके सेवनसे अरुचि, मन्दाग्नि, पार्श्वशूल, उदरवात, बद्धकोष्ठ, आमवृद्धि आदि लक्षणोंसह कफयुक्त श्वास रोग थोड़े ही दिनोंमें दूर होता है।

(२३) नाग गुटिका।

बनावट—शुद्ध बच्छनाग, पीपल, लौंग, पीपलामूल, जायफल, दालचीनी, जावित्री, सोंठ, अकलकरा, कालीमिर्च, शुद्ध सिंगरफ और सोहागेका फूला, ये १२ ओषधियाँ १-१ तोला, केशर ३ माशे और कस्तूरी १ रत्ती ले। सबको कूट, कपड़छान कर अदरखके रस और नागरबेलके पानके रसमें अनुक्रमसे १२-१२ घण्टे खरल करके आध-आध रत्तीकी गोलियाँ बनावे। (औ० गु० ध० शा०)

मात्रा—१-१ गोली दिनमें २ बार नागरवेलके पान या जलसे दे।

उपयोग—यह गुटिका जुकाम, ज्वर, गला और छातीका दर्द, अरुचि, जुकामसे होनेवाले अतिसार, उबाक, शिरदर्द, अपचनके हेतु से उदरमें भारीपन आदि विकारों को दूर करती है।

इस गुटिकामें प्रधान औषध बच्छनाग होनेसे इसका प्रयोग अति सम्हालपूर्वक करना चाहिये। बच्छनाग शोथहर, ज्वरनाशक, अवसादक और पीड़ाहर है। इसके प्रयोगसे नासिका और कण्ठ की श्लैष्मिक त्वचामेंसे होनेवाले स्रावका शोषण होकर कम होजाता है। यह स्राव शरीरके किसी स्थानमेंसे बाहर निकलना चाहिये। अतः इस वटीके प्रभावसे प्रस्वेद अधिक होता है, एव मूत्रोत्पत्ति भी अधिक होती है। प्रतिश्यायमें जो श्लेष्मस्राव होता है, वह इस हेतुसे कम होजाता है। फिर विकार कम होने पर मूत्रकी मात्रा कम होजाती है।

मुँहमें पानी भर जाना, उबाक, अरुचि आदि अपचनसे होने पर झागयुक्त कफ गिरता हो, तो अग्निकुमार रस दिया जाता है। परन्तु शीतल स्थानमें शयन करने पर, वर्षाके जलसे भीगने पर या शीत लगजाने से क्षुधा नष्ट होना, उदरमें भारीपन, कब्ज, मस्तिष्कमें जड़ता, अंग अकड़जाना आदि लक्षणोंसह ज्वर होने पर नाग गुटिका अवश्य देनी चाहिये। फिर मूत्रका रंग पीला होने लगे या मूत्रस्राव कम होजाय, तब नागगुटिका बन्द कर देनी चाहिये। यदि ऐसी परिस्थिति में गुटिका दीजायगी, तो अपाय होता है। अर्द्धावभेदक या वृक्क-विकार होकर शोथ आदि उपद्रव उत्पन्न होजाते है।

ठण्ड लगकर जुकाम होना, फिर ज्वर, ज्वर होनेसे त्वचा पर चिपचिपापन, सर्वाङ्गमें जड़ता, आलस्य, जँभाई आना, मुँहमें मधु-

रता और चिपचिपापन, खाँसी आने पर छाती और कण्ठमें दर्द होना आदि लक्षण होने पर नाग गुटिका अति हितकर औषध है।

इस गुटिकामें सफेद वच्छनाग मिलाने पर मधुमेह, अच्छमेह, हस्तिमेह, इन प्रमेहों पर अच्छा लाभ पहुँचाती है। इसके योगसे मधु की उत्पत्ति कम नहीं होती, केवल बार-बार होनेवाली मूत्रकी शंका नष्ट होती है। मधुकी उत्पत्ति कम करानेके लिये नागभस्म, वसंत-कुसुमाकर, जातिफलादि वटी या प्रमेहगजकेसरीका प्रयोग करें।

नाग गुटिकाके योगसे रसका संशोषण होनेसे देहमें शीतलता आदि गुण कम होते हैं, तथा वच्छनागके योगसे त्वचामें रही हुई केशिकाओंमें रक्तका दबाव बढ़ता है, जिससे प्रस्वेद वृद्धि होकर सेन्द्रिय विष त्वचासे बाहर निकल जाता है। इस गुणके हेतुसे वच्छनाग-प्रधान औषधियाँ क्षोभजन्य ज्वर और क्षोभ युक्त अन्य रोगोंमें प्रयुक्त होती हैं। (आ० गु० ध० शा० के आधार से)

(२४) धनंजय वटी।

बनावट—जीरा, चव्य, सफेद चन्दन, वच, दालचीनी, छोटी इलायची, कचूर, हाऊबेर, कलौंजी, नागकेशर, प्रत्येक १-१ तोला, सौंफ ६ माशे, अजवायन, पीपलामूल, सज्जीखार, हरड़, जायफल, लौंग, सब २-२ तोले, धनिया ३ तोले, चित्रकमूल, पीपल और साँभर नमक ४-४ तोले, कालीमिर्च ७ तोले, निसोत ८ तोले, समुद्रनमक, सैंधानमक और सोंठ १०-१० तोले, चूका (खट्टी भाजी) ३२ तोले और इमली १६ तोले लें। सबको मिला कूट, कपड़छान कर चूकेके रसमें ६ घण्टे खरल कर २-२ रत्तीकी गोलियाँ बनावें। (आ० गु० ध० शा०)

मात्रा—१ से ३ गोली तक दिनमें ३ बार मट्ठा, नीबूका रस, अनारका रस अथवा जलके साथ देवें।

उपयोग—धनञ्जय वटी प्रभावशाली वीर्यवान् औषधि है। यह पाचक, अग्निप्रदीपक, विरेचक, सारक और रुचि-उत्पादक है, आमाशयसे बृहदन्त्र तकके विबंधको दूर करती है, पक्काशयमें पाचक रसका स्राव नियमित कराती है, तथा नजला, उदरशूल और मलावरोध को दूर कर लघु अन्त्र और बृहदन्त्रकी पुरःसरण-क्रिया को बढ़ाती है।

इस धनंजय वटीका कार्य तत्काल देखनेमें आता है। अतः अपचनके विकारमें विशेषतः आमाजीर्ण और विष्टब्धाजीर्ण पर इस का अच्छा उपयोग होता है। इस वटीमें वातनाशक औषधियोंका

सम्मिश्रण होनसे डकारें आकर आमाशयके विबंधका नाश होता है।

शक्तिकी अपेक्षा अधिक खा लेने पर ही केवल अपचन होता है, ऐसा नहीं। अप्रिय, विष्टम्भकारक, जले हुए, अधकच्चे, जड़, रूक्ष, शीतल, बासी, दुर्गन्धयुक्त और अपवित्र भोजन करने पर भी अपचन होजाता है। अर्थात् प्रत्येक प्रकारके अन्नके अलग-अलग प्रकारके अपचन होते हैं। गुरु अन्नसे उत्पन्न अजीर्णमें कफदोषका प्राधान्य और रूक्ष अन्नसे वातप्राधान्य होता है। इस तरह विविध प्रकारके भोजनोंसे उत्पन्न अजीर्णमें विविध दोषप्रकोप होते हैं। अतः औषध-योजना करने पर दोष-दूष्य विवेक अवश्य करना चाहिये। आँख मूँदकर दीपन-पाचन औषधि देते रहना, यह शास्त्रीय चिकित्सा नहीं है। इसका विशेष विचार वैज्ञानिक विचारणाके १४५ पृष्ठमें किया है।

केवल गुरु अन्नके सेवनसे आमाजीर्ण होता है, इस तरह स्निग्ध भोजनसे भी आमाजीर्ण होता है। परन्तु दोनोंकी दोषदुष्टिकी दृष्टिसे दोनोंमें अन्तर है। केवल गुरु स्वभाव वाले भोजन या गुरु मात्रा (अधिक भोजन) के सेवन करनेसे उत्पन्न अजीर्णमें क्रव्याद् रसका अच्छा उपयोग होता है। स्निग्ध अन्नसे उत्पन्न अजीर्णमें शंख वटी, गन्धक-वटी, लहशुन वटी आदि अधिक लाभदायक हैं। रूक्ष, निस्नेह, विष्टम्भकारक, कच्चा अन्न, शीत बासी अन्न और अपवित्र भोजनके सेवनसे विष्टब्धाजीर्ण होने पर उदरमें वायुकी उत्पत्ति, उदर पीड़ा, शूल आदि होते हैं। डकार साफ नहीं आती या अधोवायु नहीं सरता। उदरमें भारीपन और बेचैनी होती है। यदि वेदना अधिक हो, तो रोगी चिल्लाता है तृषा अधिक लगती है, उदरमें जलका स्थान नहीं रहता; फिर भी तृषा शमन नहीं होती। ऐसे अजीर्णमें धनंजय वटीका उत्तम उपयोग होता है। इससे विबंध दूर होता है, शूल शमन होता है, शौच शुद्धि होती है, और वायुका अनुलोमन होता है। पक्वाशयमें पाचक रसका योग्य स्राव होता है, और आँतोंकी पुरःसरण क्रिया व्यवस्थित होकर मलावरोध कम होजाता है। (औ० गु० ध० शा०)

(२५) चित्रकादि वटी।

बनावट—चित्रकमूल, पीपलामूल, जवाखार, कालानमक, सैंधानमक, साँभरनमक, बिड़नमक, समुद्रनमक, सोंठ, मिर्च, पीपल, सज्जीखार, भुनी हींग, अजमोद, चव्य, पाठा, जीरा, धनिया, कटेलीकी जड़, सबको समभाग लेकर चूर्ण करें। फिर बिजौरे या अनारके रसमें खरल करके मटरके समान गोलियाँ बनाले। (वृ० नि० र०)

मात्रा—२ से ३ गोली दिनमें ३ बार जलके साथ दें।

उपयोग—यह वटी आमशूल, उदरशूल, अरुचि, मन्दाग्नि और उदरगत वातप्रकोपको दूर करती है तथा आमको पाचन करके अग्निको प्रदीप्त करती है। दस्तको साफ लाती है।

यह वटी आमाशयके पित्त और यकृत्पित्तका स्राव बढ़ाती है। जिससे आमाशय और अन्त्रकी पचनशक्ति बढ़ जाती है। फिर उदरशूल, आफरा और आमवृद्धि दूर होती है। दस्तका रंग सफेद हो तो वह पीला बन जाता है। कफात्मक अग्निमान्द्यमें यह अच्छी गुणकारक है।

(२६) कुटजादि वटी।

बनावट—कुड़ाकी छाल ८० तोले, माजूफल, लौंग, मरोड़फली, बहेड़ा, वायविडंग, नागकेशर, सोंठ, मिर्च, पीपल, जायफल, जावित्री, बेलगिरी, प्रत्येक एक-एक तोला ले। पहले कुड़ेकी छालके जौकुट चूर्ण का ८०० तोले जलमें क्वाथ करे। २०० तोले जल शेष रहने पर उतार कपड़ेसे छानलें। फिर मन्दाग्निसे पाक करे। गाढ़ा होने पर शेष ओषधियोंका कपड-छान चूर्ण मिलाकर चनेके बराबर गोलियाँ बनाले। (आ० मि०)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें ३ बार जल या मट्ठेके साथ दे।

उपयोग—यह वटी संग्रहणी, आमातिसार, रक्तातिसार, पेचिश और ज्वरातिसारको दूर करती है, तथा रक्तार्शमें से रक्त गिरना बन्द करती है। बालकोंके लिये भी हितकर है।

(२७) अहिफेनादि वटी।

बनावट—अफीम, भुनी हींग, सफेद कत्था और सोहागे का फूला, चारों समभाग ले। पहले हींग आदि ३ ओषधियोंको मिलावे; फिर अफीम मिला, नीबूके रसमें खरल करके चनेके समान गोलियाँ बनावें। (श्री रामस्वामीजी)

मात्रा—१-१ गोली दिनमें २ बार मट्ठेके साथ दे।

उपयोग—यह वटी पीले पक्के आम, रक्त और पीप सहित प्रवाहिका (पेचिश) को २-३ रोजमें ही दूर करती है। उदरवात सहित ग्रहणी रोगमें भी सत्वर लाभ पहुँचाती है।

सूचना—इस वटीका सेवन कच्ची आम दूर होने पर किया जाता है। कच्ची आमको रोकनेसे अनेक प्रकारकी विक्रिया उत्पन्न होती है। इस वटीमें चौथा हिस्सा अफीम है। इसलिये मात्रा थोड़ी लेनी चाहिये।

(२८) तेजोवत्यादि गुटिका।

बनावट—बच, दारुहल्दी, पीपल, जवाखार, रसौंत और पाठा, इन ६ ओषधियोंको समभाग मिला कूट कपड़छान चूर्ण करें। फिर शहदमें ३ घण्टे घोट कर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बनालें। (बृ० यो० त०)

मात्रा—१-१ गोली करके दिनमें ५-७ गोलियोंका रस चूसें।

उपयोग—इस गुटिकाके सेवनसे सब प्रकारके गलेके रोग, आवाज बैठ जाना, श्वासनलिकामें कफ भर जाना, घंटिका (कागल्या) शिथिल होजाना, गलेमें फुन्सी होना इत्यादि दूर होते हैं।

(२९) कण्ठसुधारक वटी।

बनावट—सत मुलहठी ७ तोले, पीपरमेंटके फूल, कपूर, इलायची और लौंग १-१ तोला और जावित्री २ तोले लें। सबको मिला जलमें आध घण्टे खरल करके १-१ रत्तीकी गोलियाँ बाँधें। (धन्वन्तरि)

मात्रा—१-१ गोली मुँहमें रखकर दिनमें १०-१५ बार धीरे-धीरे रस चूसते रहें।

उपयोग—यह वटी अरुचि, मन्दाग्नि, गला बैठना, उबाक, बेचैनी, अजीर्ण, उदरवात, कफ, श्वास आदि रोगोंको दूर करके अग्निको प्रदीप्त करती है, और चित्तवृत्तिको प्रसन्न बनाती है।

(३०) एलादि वटी।

बनावट—इलायची, तेजपात और दालचीनी ६-६ माशे, पीपल, २ तोले, मिश्री, मुलहठी, गुठली रहित पिण्ड खजूर और बीज निकाली हुई मुनक्का, ४-४ तोले लें। सबको पीस शहदमें मिलाकर झाड़ी बेरके समान गोलियाँ बनालें। (च० स०)

मात्रा—२ से ३ गोली दिनमें ३ बार दूधके साथ दें। या १-१ गोली मुँहमें रखकर रस चूसते रहें।

उपयोग—इस वटीके सेवनसे उरःक्षत, शोष, ज्वर, खाँसी, श्वास, हिचकी, वमन, भ्रम, मूर्च्छा, मद, तृषा, थूकमें खून आना, पसलियोंकी पीड़ा, अरुचि, प्लीहा, ऊरुस्तम्भ, रक्तपित्त और स्वरभङ्ग आदि रोग नष्ट होते हैं, एवं पित्तप्रकोपका शमन होकर बेचैनी भी दूर होती है। शुष्ककासमें जब शान्ति नहीं मिलती, छातीमें दर्द बना रहता है, दाह होता है, ज्वर भी रहता है, उसपर यह वटी अति हितकारक है। क्षयकी प्रथमावस्थामें शुष्क कास होती है, उसपर भी यह लाभ पहुँचाती है।

(३१) चन्द्रप्रभा वटी।

बनावट—कपूर, वच, नागरमोथा, चिरायता, गिलोय, देवदारु, हल्दी, अतीस, दारुहल्दी, पीपलामूल, चित्रक, धनिया, हरड़, बहेड़ा, आँवला, चव्य, वायुविडङ्ग, गजपीपल, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, सुवर्णमाक्षिक भस्म, सज्जीखार, जवाखार, सैंधानमक, कालानमक, काँच नमक, ये सब तीन-तीन माशे, निसोत, दन्तीमूल, तेजपत्र, दालचीनी, छोटी इलायची के दाने, वंसलोचन एक-एक तोला, लोह भस्म २ तोले, मिश्री ४ तोले, शुद्ध शिलाजीत ८ तोले और शुद्ध गूगल ८ तोले लें। सबको बारीक कूट गूगलके जलमें मिला, घीमें हाथ करके चनेके समान गोलियाँ बांधे। गूगलको जलमें मिला, उबालकर एकरस बना लेना चाहिये, पश्चात् कपड़छान चूर्ण मिलावे। (शा० स०)

मात्रा—२ से ४ गोली दिनमें २ बार देवें।

अनुपान—१—सब प्रमेह पर १ तोला गिलोयका स्वरस और ६ माशे शहद या त्रिफला, दारुहल्दी, देवदारु और नागरमोथाका क्वाथ।

२—मधुमेहमें निम्बपत्र और बेलपत्र का स्वरस, जामुनका रस, या अरनीकी छालका क्वाथ।

३—लालामेहमें त्रिफला और अमलतासका क्वाथ।

४—मांजिष्ठ मेहमें नीमकी छाल, अर्जुन छाल और कमलगट्टे की गिरीका हिम।

५—मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, बहुमूत्र, शर्करा और सिकतामेहमें शीतलमिर्च और गोखरूका क्वाथ।

६—पुष्टिके लिये गोदुग्ध और मिश्री। एव रोगीकी प्रकृति, देश और काल का विचारकर अन्य अनुपानोंकी योजना करें।

उपयोग—यह वटी मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, पथरी, प्रमेह, भगन्दर, अण्डवृद्धि, पाण्डु, कामला, बवासीर, कमरका दर्द, नेत्ररोग, स्त्रियोंके गर्भाशयके विकार, पुरुषोंके धातु-सम्बन्धी विकार आदि सबको दूर करती है। जीर्णरोगमें इसका सेवन शान्तिपूर्वक ३–४ मास तक करना चाहिये। ज्यादा समय तक इसके सेवनसे असाध्य भगन्दर जैसा रोग भी दूर होजाता है। मानसिक श्रम करनेवाले विद्यार्थियोंके लिये यह अति लाभदायक है।

चन्द्रप्रभाका मुख्य कार्य मूत्रेन्द्रिय और शुक्रार्तवकी उत्पादक इन्द्रिय पर शामक, बल्य और रसायन असर पहुँचानेका है। शरीरके धातु-परिपोषण-क्रममें प्रतिबन्ध आकर जो व्यवस्था भंग होती है, उसे

यह व्यवस्थित बनाती है। अर्थात् पूर्वोक्तानुसार परमाणु-निर्माणक्रिया सम्यक् होने लगती है। सुजाक, उपदंश, शराबका सेवन, तीव्र रसायन आदि औषधि सेवन अथवा गरम मसालेका अधिक उपयोग करते रहना, तमाखू, गांजा, सूर्यके तापमें अधिक भ्रमण आदि कारणोंसे मूत्रेन्द्रिय संस्थानमें क्षोभ उत्पन्न होकर मूत्रेन्द्रियमें दाह आदि विकार उपस्थित होते हैं। इसका परिणाम वृक्कों पर होकर मूत्रकी मात्रा कम बनती है, कमरमें दर्द, मूत्रमें अधिक जलन, मूत्रमें सिकता (रेत), शर्करा (कंकड) जाना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। इसपर चन्द्रप्रभाका उत्तम उपयोग होता है।

भिन्न-भिन्न कारणोंसे, विशेषतः पित्तोत्पादक कारणोंसे, पित्त-विकृति होकर वृक्कों पर शोथ आजाता है। फिर सर्वाङ्ग शोफ उपस्थित होता है। मूत्र अति कम और अति लाल रंगका उतरता है। इसमें ओजस द्रव्य (Albumen) न्यूनाधिक अंश में जाता रहता है। कभी अधिक कभी कम ओजस द्रव्य जाता है। इस विकारमें आशुकारी तीव्र और मंद चिरकारी, ऐसी दो अवस्था होती हैं। इनमेंसे चिरकारी और जीर्णावस्थामें इसका उपयोग शहद-मिश्रित जल या शामक मूत्रल अनुपानके साथ करना चाहिये। मूत्रलके शामक और उत्तेजक भेदका विवेचन वैज्ञानिक विचारणा पृष्ठ १०२ में किया है।

मूत्रकृच्छ्र यह विकार मूत्रमार्गका है। इसमें मूत्रोत्पत्ति योग्य होती है, परन्तु गवनी, मूत्राशय, पौरुषग्रन्थि या मूत्रप्रसेकनलिका में जीर्णव्रण, व्रणशोथ या मूत्रप्रसेकनलिका का संकोच आदि इन्द्रिय-विकृति रूप कारणोंमें से कोई भी एक होने पर मूत्र दाहयुक्त, पीला-लाल और दुर्गन्धयुक्त आता है। कभी-कभी क्षार, सिकता, शर्करा या श्लेष्म आदि भी होते है। इस पर चन्द्रप्रभाका उत्तम उपयोग होता है। विशेषतः मूत्रेन्द्रियमें जीर्णव्रण होनेपर मूत्रकृच्छ्र हुआ हो, तो चन्द्र-प्रभाके साथ उशीरासव या सरिवासवकी योजना करें।

मूत्राघातमें कितनेक प्रकार मूत्रकृच्छ्रके समान इन्द्रियजन्य विकृतिके होते हैं। परन्तु मुख्यतः इस विकारमें मूत्रोत्पत्ति कम होती है। वृक्क की भिन्न-भिन्न कारणोंसे होनेवाली विकृति ही मूत्राघातका हेतु है, और इस विकृतिका परिणाम समस्त शरीर पर होकर वातवस्ति, वातकुण्डलिका आदि मूत्राघातके कष्टसाध्य प्रकार उत्पन्न होते हैं। इन सबके मूलमें अवस्थित वस्तुस्थिति यह है कि, मूत्र कम उत्पन्न होना और मूत्र द्वारा शरीरसे बाहर जानेवाले क्षार और विष शरीरमें ही

रह जाना। इस परिस्थिति पर चन्द्रप्रभाका उत्तम उपयोग होता है। यह शामक, बल्य और मूत्रल होनेसे इसका असर मूत्रपिण्डों पर होकर मूत्रपिण्डके दाह शोथ आदि विकार कम होजाते है। इस पर चन्द्रप्रभा पुनर्नवासव, पलाश पुष्पासव या गोक्षुरादि अवलेहके साथ देना विशेष हितकारक है। इसका कार्य अधिक गहराईमें होता है। इस हेतुसे जीर्ण विकार पर यह अच्छी उपयोगी है।

अश्मरी रोग जब अधिक बढ़ जाता है, तब शस्त्रचिकित्सा कराना ही इष्ट है; परन्तु अश्मरीकी अधिक वृद्धि न होने पर औषध-चिकित्सा द्वारा अश्मरी-भेदन होसकता है। इसके सूक्ष्म-सूक्ष्म कण मूत्र द्वारा बाहर निकल जाते हैं। इस कार्य के निमित्त चन्द्रप्रभाका उपयोग तृणपञ्चमूल काथके साथ करना चाहिये।

सुजाक (पूयशुक्र) की जीर्णावस्थामें विविध जीर्ण व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं। जितना रोग जीर्ण और जितना अधिक गहराईमें हो, उतना ही चन्द्रप्रभाका अधिक अच्छा उपयोग होता है। व्याधि नूतन हो, विष शाखागत और स्नायुगत हो, तो सुवर्ण वंग उपयोगी है। परन्तु विषका परिणाम रक्त आदि धातु पर होकर उससे विविध विकार उत्पन्न हुए हों, तो चन्द्रप्रभा उपयुक्त है। शीर्षशूल, जीर्ण संधि-शूल, स्नायुसंकोच, जीर्ण नेत्राभिष्यंद, अण्डकोष शोथ आदि उपद्रवोंमे और पूयशुक्रके पश्चात् हाथ-पैर टूटने, नेत्रका दाह, मूत्रमे दाह, वृषण और शिश्न पर विष फैल कर पिटिका होना, खुजली चलना और मांसार्बुदके सदृश उपद्रव होजानेका भय लगना आदि विकारों पर चन्द्रप्रभाने अप्रतिम काम किया है। जीर्ण रोगमें सेवन अधिक काल करना चाहिये। अनुपान रूपसे दारुहल्दी, गिलोय, गोखरू और आँवलेका क्वाथ देवें कब्ज अधिक हो तो कुटकी आवश्यकता पर मिला देनी चाहिये।

गर्भस्राव, गर्भपात, सुजाक, जीर्ण उपदंश, जल्दी-जल्दी गर्भ-धारण, अनेक सन्तान होजाने या अति व्यवाय आदि कारणोंसे गर्भाशय अशक्त होकर समस्त शरीर निर्बल होजाता है, फिर निस्तेज मुखमण्डल, उत्साहका अभाव, नेत्रोंमें दाह, हाथ-पैर टूटना, शिर, कमर और सर्वाङ्गमें दर्द, शूल निकलना, विशेषतः मासिक-धर्मके समय पर शूल या अति वेदना होना, रजोदर्शन होनेमें कष्ट होना, अनियमित रजोदर्शन, किसी-किसीका ३-४ मास तक रजोदर्शन न होना, रजो-दर्शन हो तो भी रजःस्राव बहुत कम होना, रजःस्रावका रंग नीला, काला, पीला या मलिन होना, योनिमुखमें से सफेद जलके सदृश चिप-

त्तिपा या गाढ़ा दुर्गन्धमय स्राव होते रहना आदि लक्षण होने पर चन्द्र-प्रभाका सेवन घीके साथ करना चाहिये। या वाग्भट शारीर स्थान में कहे हुए ६ मासमें देनेके ६ कषायोंके साथ चन्द्रप्रभा देनी चाहिये।

उक्त कारणोंसे गर्भाशय अशक्त होकर शिथिलता आने पर भीतर एक ओर गिर जाता है। फिर उस हेतुसे वन्ध्यत्व और अना-र्तव होते है। इस विकृतिमें भी चन्द्रप्रभा हितकर है। प्रसूतिके समय मूर्खतावश या अन्य समयमें गर्भाशय पर अधिक आघात पहुंच जाने पर यह अत्यंत शिथिल होकर बाहर निकल जाता है। ऐसी स्थितिमें तुरन्त गर्भाशयको स्निग्ध कर भीतर यथास्थान बैठा दिया जाय ऊपर से कौपिनके सदृश बन्धन बाँध दें, कुछ समय विश्रान्ति लें, और चन्द्रप्रभाका सेवन करें, तो गर्भाशय स्थिर होजाता है। रोग जीर्ण होने पर फिर लाभ नहीं होता।

गर्भाशयकी अशक्तिसे बीजका ग्रहण न होना, गर्भ न रहना, या रहने पर ३, ४ या ५ मास गर्भ धारण होकर गर्भपात होजाना, इस परिस्थिति में चन्द्रप्रभाका उत्तम उपयोग होता है।

पूयशुक्रके परिणाम से वध्यत्व आया हो, अथवा बीजाशय और गर्भाशयको सम्यक पोषण न मिलने या अकालमें दुरुपयोग होनेके हेतुसे वे विकृत होगये हो, तो गर्भधारणमें प्रतिबंध होता है। इस परि-स्थितिमें चन्द्रप्रभा लाभदायक है चन्द्रप्रभाके सेवनसे विष निर्मूल होकर गर्भाशय और बीजाशय सुदृढ़ बन जाते है।

आर्त्तवस्राव में अनियमितता, अत्यार्त्तव, पीड़ितार्त्तव, अनार्त्तव, इन सब विकारोंके मूलमें ऊपर कही हुई कारणपरम्परा हो, (गर्भाशय की शिथिलता हो), तो चद्रप्रभा स्त्रियोंका उत्तम मित्र है।

छोटी आयुमें हस्तमैथुनकी दुष्ट आदत पड़ जानेसे कितनेक व्यक्तियोंकी मूत्रेन्द्रिय शिथिल बन जाती है, और शुक्रस्राव बार-बार होता रहता है। फिर स्वप्नके भीतर अज्ञानावस्थामें शुक्रस्राव होजाना, मूत्रमें शुक्र निकलना, मूत्रके पश्चात् शुक्रस्राव होजाना, प्रत्येक स्रावके पश्चात् सारे शरीरमें अशक्ति आना, विशेषतः इन्द्रियाँ शिथिल हो जाना आदि लक्षण होते है। कितनेक मनुष्यो को स्त्री-सम्बन्धी विचार आने पर तत्काल शुक्र-स्खलन और कभी स्त्रीके दर्शन-मात्रसे शुक्रस्राव होजाता है। इस परिस्थितिमें चन्द्रप्रभा उत्तम लाभदायक है। योग्य आयु हो गई हो तो चन्द्रप्रभा की अपेक्षा वंगभस्म विशेष उपयोगी है। चन्द्रप्रभा धातुपरिपोषण क्रमको सुधार शुक्रपर्यन्त धातुओंको व्यव-

स्थित बनाती है। यदि शुक्रकी अशक्तिके हेतुसे गर्भधारण सम्यक् न हो, तो ब्रह्मचर्य के पालनके साथ चन्द्रप्रभाका सेवन करना चाहिये।

अति व्यवायसे स्त्री और पुरुष दोनोके शरीर निर्बल होजाते हैं। फिर चिरकाल स्थायी अजीर्ण और कोष्ठबद्धताके सदृश रोग उपस्थित होते है। परिणाममें सर्वधातु परिपोषण क्रम विकृत होता है। इस हेतुसे सर्वाङ्गमें पाण्डुता, कितनेकोंको कामलाके सदृश और कितनेकोंको हलीमक समान चिरकारी और त्रासदायक व्याधि होजाती हैं ये विकार हस्तमैथुनकी आदत से भी उत्पन्न होते है। किसी-किसी को इस विषयका सर्वदा निदिध्यास बना रहता है, परन्तु पूर्ति न होनेसे निराश होजाते है। इस वैषयिक सुख-लालसा का दुष्परिणाम अत्यन्त खराब होकर उक्त विकार होजाते हैं। सच्चे नैष्टिक ब्रह्मचर्य और बलात्कारसे जगद्भय मानकर सेवन किया हुआ ब्रह्मचर्य, इन दोनोमें मुख्य भेद भावनाका है। सच्चे नैष्टिक ब्रह्मचर्यमें विषय-सुखकी लालसा किञ्चित् भी नहीं होती। इस हेतुसे उनको दुष्ट विकार नहीं होता। कृत्रिम ब्रह्मचारीको विविध विकार होते है। इनके लिये चन्द्रप्रभा उत्तम काम करती है।

शुक्रक्षयकी आदतसे अपचन और कोष्ठबद्धता उत्पन्न होते है। फिर उदरमें वायु भरा रहना, शौचशुद्धि न होना, किसी-किसीको अर्श होजाना, रक्त गिरना, गुदद्वारमें जलन, अतिशय थकावट आजाना आदि लक्षण होने पर चन्द्रप्रभाका उत्तम उपयोग होता है। इसके साथ मल-वातानुलोमक ओषधि भी आवश्यकता पर देते रहना चाहिये।

अपचनकी आदत जीर्ण होजाने पर इसका परिणाम कोष्ठबद्धता होता है, और कोष्ठबद्धता जीर्ण होनेपर प्रमेहकी उत्पत्ति हो जाती है। इन सबके मूलमें अनेक दिनो तक शुक्रस्राव होते रहनेकी आदत होती है। इस तरह उत्पन्न लालामेह, हस्तिमेह, हारिद्रमेह, मांजिष्ठमेह आदि प्रमेह विकारोंमें वातपित्तका अनुबंध होता है। इन व्याधिमें शिथिलता और कृशता लक्षण हो, तो चन्द्रप्रभाका उत्तम उपयोग होता है। केवल मधुमेहमें चन्द्रप्रभाकी अपेक्षा नागभस्म, प्रमेहगजकेसरी, जातिफलादि वटी, वसंतकुसुमाकर आदि ओषधियाँ, विशेष हितकारक है। (ओ० गु० ध० शा० के आधार से)

रक्तदबाव वृद्धि (High blood pressure) के शराब आदि अनेक हेतु हैं। किन्तु विशेषतः इसकी उत्पत्ति बृहदन्त्र में आमविष संगृहीत होने पर होती है। जिन व्यक्तियो को बार बार भोजन करने या

अधिक भोजन करने की आदत होती है, उनके अन्त्रमें आमविष का संचय होता है, उस हेतु से फिर बार-बार अपचन होता रहता है। पश्चात् आहार रस दूषित होने से रक्तादि धातु दुष्ट होती हैं। परिणाम में रक्तदबाव वृद्धि होती है। इस विकार में यदि आमविष हेतु हो और रोगी दृढ़ पथ्य पालन करे, द्विदलधान्य, मांस, शराब, और भारी भोजन का त्याग करे, तो चन्द्रप्रभावटी के सेवन से रक्तदबाव कम हो जाता है। विशेषतः विरेचन देनेकी भी आवश्यकता नहीं रहती। यदि अधिक कब्ज हो, तो सुखविरेचन वटी से कोष्ठ शुद्धि करनी चाहिये।

(३२) कर्णिकार वटी।

बनावट—दूधमें शोधन की हुई सफेद करनेकी जड़की छाल, बड़ी कटेलीकी जडकी की छाल और ऊँटकटाराके मूलकी छाल, तीनो छाल सूखी समभाग मिला कूट कपड़छान चूर्ण करे। फिर धतूरेके रसमें ३ घण्टे खरल करके चनेके समान गोलियाँ बनावे। (र० त०)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २ बार दूधके साथ दे। ऊपर नागरवेल का पान खिलावे। भोजनमें घी-दूध अधिक दे।

उपयोग—ब्रह्मचर्य और पथ्यपालनसह इस औषधके २१ रोज सेवन करनेसे नपुंसकता दूर होकर शरीर बलवान बन जाता है।

० (३३) शुक्रस्तंभन गुटिका।

बनावट—लौंग, जायपत्री, दालचीनी, अकरकरा, समन्दरशोषके बीज और शुद्ध अफीम, सबको १-१ तोला लेकर महीन चूर्ण करे। फिर ६ तोले मिश्री मिला शहदके साथ खरल करके २-२ रत्ती की गोलियाँ बनावे। इन गोलियोंको ८-१० दिन खुली वायुमें रहने देने से अच्छी सूख जाती हैं। पश्चात् बोतलमें भरे। (आ० भि०)

मात्रा—१-१ गोली रोज सायकालको दूधके साथ लेवे।

उपयोग—यह गुटिका शुक्रका पतलापन और नपुंसकताको दूर करती है। शुक्रका स्तंभन अधिक समय होता है। अतिसार और प्रवाहिका में भी इससे लाभ पहुँचता है। यह निद्रा भी ला देती है।

सूचना—बद्धकोष्ठ होनेपर इस औषधि या अन्य अफीम वाली औषधि का सेवन नहीं करना चाहिये।

(३४) काकनुज वटी।

बनावट—गिले अरमनी, अरबी गोंद, कुंदरू, दमूल अखवैन, खसखस, बादामकी गिरी, निशास्ता, मुलहठीका सत्व, कतीरा गोंद और अजमोद एक-एक दिरम (३॥ माशे), शुद्ध अफीम आध दिरम

(१।।। माशे) और काकनुज ७ दिरम लेवे। सबको कूटकर विहदानेके लुआवमें एक-एक माशेकी गोलियाँ बनावे। (ति० अ०)

सूचना—मूल ग्रन्थमे अफीम १ दिरम है, यह मात्रा अधिक होनेसे उस स्थान पर आध दिरम किया है।

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २ बार शर्वत वनफशाके साथ देवे।

उपयोग—इस वटीके सेवनसे मूत्राशय (मसाना), मूत्रपिंड (गुर्दा) में घाव होना, पेशावमें पीप आना, जलन होना आदि दूर होकर संधिवात, रक्तविकार आदि विकारोंसह सुजाक दूर होजाता है।

(३५) मधुमेहान्तक वटी।

बनावट—वंशलोचन और मुलहठीका सत्व ५-५ माशे, धनिया, चूकेक बीज और गिले अरमनी ३-३ माशे, सेफेद चन्दन, गुलनार (अनारके फूल), सिमाक, अरबी गोंद २-२ माशे कुलफा और काहू के बीज १५-१५ माशे, तथा कपूर आधा माशा ले। सबको कूटकर खट्टे अनारके रसमें १-१ माशेकी गोलियाँ बाँधे। (ति० अ०)

मात्रा—१ से २ गोली जल या खट्टे अनारके रसके साथ दे।

उपयोग—इस वटीके सेवनसे मधुमेहमें प्यास अधिक लगना और पेशावमें शक्कर आना, दोनों विकार दूर होते हैं।

० (३६) कासमर्दन वटी।

बनावट—सफेद कत्था ४ तोले, सेलखड़ी २ तोले, कपूर १ तोला और छोटी इलायचीके बीज ६ माशे ले। सबको खरल करके बारीक चूर्ण करे। पश्चात् ३० तोले बबूलकी छालको २।। सेर जलमें मिलाकर मन्दाग्नि पर क्वाथ करे। जल चतुर्थांश रहने पर उतारकर छानले। फिर क्वाथ और चूर्णको मिला मन्द-मन्द अग्नि देकर पकावे, और चलाते रहे। जब गोली बाँधने लायक अवलेहके समान गाढ़ा पाक हो जाय, तब नीचे उतारे। शीतल होने पर चनेके समान गोलियाँ बनाकर छाया में सुखाले। यदि मसाला हाथसे चिपकता हो, तो थोड़ी-सी सेलखड़ी लगा-लगाकर गोलियाँ बना लेवे। (चि० चं०)

मात्रा—१-१ गोली मुँहमें रखकर रस चूसे। १ दिनमें १०-१५ गोली तक चूसे।

उपयोग—यह वटी वातिक और पैत्तिक नयी कास तथा जीर्ण कास को थोड़े ही दिनोंमें दूर करती है। इस गोलीके सेवनसे रोगीको पहले ही दिनसे अच्छी निद्रा आने लगती है, एवं मुँहके छाले, दाँतों की शिथिलता, घटिका (कव्वे) की शिथिलता, आवाज बैठ जाना,

उसमें भी लाभ पहुंचता है। [illegible]
[illegible] पर [illegible] लगाना चाहिये।

(३७) कांकायन वटी।

बनावट—[illegible] सोंठ, निशोथ, [illegible] प्रत्येक १-१ तोले, [illegible] ८ तोले, [illegible] ८ तोले [illegible] प्रत्येक १-१ तोले, [illegible] गुड़ [illegible] मिलाकर [illegible] समान गोलियां बनावें। [illegible]

मात्रा—१ से ३ गोली दिनमें २ से ३ बार दें।

अनुपान—वातज गुल्म पर—[illegible] के साथ।

पित्तज गुल्म पर—घी, [illegible] के साथ।

कफज गुल्म पर—गोमूत्रके साथ।

रक्तगुल्म पर—ऊंटनीके दूधके साथ।

त्रिदोषज गुल्म पर—त्रिफलाके क्वाथ या गोमूत्रके साथ।

उपयोग—यह वटी सब प्रकारके गुल्म—वातज गुल्म, पित्तज गुल्म, कफज गुल्म, त्रिदोषज गुल्म, रक्त गुल्म, अर्श, [illegible] और कृमि आदि रोगोंको दूर करती है।

(३८) अन्त्रवृद्धिहर गुटिका।

बनावट—शुद्ध सिंगरफ ५ तोले, एलुवा १० तोले, गुग्गल, लाल बोल, करंजके बीज, नौसादर, कालानमक, हींग, ये सब पांच-पांच तोले मिलाकर बारीक चूर्ण करें। फिर घीकुवारके रसमें खरल करके मटर समान गोलियाँ बनावें।

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २ बार जलके साथ दें।

उपयोग—इन गोलियोंके १ मास सेवनसे आंत उतरना (Hernia), उदरशूल, मलावरोध, उदरवात आदि दूर होते हैं।

(३९) जातिफलादि वटी।

प्रथम विधि—जायफल, छुआरा और अफीम, तीनोंको सम भाग मिला नागरवेलके पानके रसमें तीन घण्टे खरल करके मूंगके समान गोलियाँ बनावें। (वृ० नि० र०)

मात्रा—एक से दो गोली दिनमें २ से ३ बार जल, मट्ठे अथवा बकरीके दूधके साथ दें।

उपयोग—यह वटी सब प्रकारके रक्तातिसार और प्रवाहिकाको तुरन्त रोक देती है; प्रवाहिकाके कीटाणुओंको नष्ट करती है, आँतोंकी स्तम्भन शक्तिको बढ़ाती है, उदरपीड़ा शमन करती है, तथा आँतोंकी शिथिलता को दूर कर मलको बाँधती है।

इस वटीमें पारद गन्धक मिलाकर रसयोगसागरकारने 'गङ्गाधररस' नाम रक्खा है, और संग्रहणी आम, अतिसार पर हजारों बारका अनुभूत लिखते है। परन्तु जब तक कच्ची आम हो, तबतक इसका उपयोग नहीं करना चाहिये।

दूसरी विधि—जायफल, जावित्री केशर और अफीम समभाग मिला गूलरके दूधमें ३ घण्टे खरल करके कालीमिर्चके समान गोलियाँ बाँधे। (आ० मि०)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २ बार जलके साथ दें।

उपयोग—यह वटी अतिसार, पेचिश, रक्तातिसार, पीपसहित भयंकर अतिसार आदिको २-३ रोजमें ही दूर कर देती है।

सूचना—मलके साथ जब तक दुर्गन्ध वाली कच्ची आम जाती हो, तब तक अफीम वाली ओषधि का उपयोग नहीं करना चाहिये।

(४०) विषतिंदुकादि वटी।

प्रथम विधि—शुद्ध कुचिला १० तोले, सुपारी १ तोला, काली मिर्च ६ माशे, इसलीके बीज ८ नग ले। सबको मिला बारीक चूर्ण कर जलमें चनेके बराबर गोलियाँ बाँधे। (आ० मि०)

मात्रा—१-२ गोली दिनमें २ बार जल से दे।

उपयोग—यह वटी अतिसार, जुकाम, अजीर्ण, मन्दाग्नि, हृदयकी निर्बलता, पुराना वातरोग, धातुक्षीणता और उदरशूल आदि रोगोंको दूर करती है।

इस वटीका उपयोग विशेषतः हमने अफीमका व्यसन छुड़ानेमें किया है। अफीमके व्यसनीको अफीम छुड़ानेके लिये अफीमके समान वजनसे गोली देनेसे पूरा-पूरा नशा आता है, और ८-१० रोजमें अफीम छूट जाती है। अफीम छूटनेके बाद शरीरका कालापन दूर होकर लाल बन जाता है। अफीम और ओषधि, दोनों छूटने पर कुछ भी तकलीफ नहीं होती।

दूसरी विधि—शुद्ध कुचिला १० तोले, धायके फूल २ तोले; सोंठ, कालीमिर्च, धनियाँ, सैंधानमक, अतीस और आँवला १-१ तोला मिलाकर बारीक चूर्ण करे। फिर चूर्णसे तीन गुनी शक्करकी

चाशनी मिला बेरके समान गोलियाँ बनालें। (ग्रा० नि०)

मात्रा—एक-एक गोली दिनमें २ बार जलके साथ दें।

उपयोग—यह वटी संग्रहणी, मन्दाग्नि, मन्दज्वर, अतिसार, उदरशूल और जीर्ण वातको दूर करती है, और अन्त्रको सबल बनाती है।

तीसरी विधि—शुद्ध कुचिला और कालीमिर्च समभाग मिला कूट-छान नागरबेलके पानके रसमें १२ घण्टे खरल करके मूँगके समान गोलियाँ बनावें। ([illegible] परमानन्दजी)

सूचना—इस प्रयोग के लिये कुचिलेका शोधन दूधमें उबाल घृतमें भूनकर (शोधन प्रकरण में लिखे अनुसार) करना चाहिये।

सिद्धभेषज मणिमालाकारने इन्द्रायणके फलके रसमें खरल करके गोलियाँ बाँधने का विधान किया है। यह विषम ज्वर पर विशेष हितकारक है।

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २ बार जलके साथ देवें। वातरोग में नागरबेलके पानके साथ देवें।

उपयोग—यह वटी नवीन बुखार, विषमज्वर, मन्दाग्नि, अजीर्ण उदरवात, उदरशूल, पुराना वातरोग, पागल कुत्तेका विष आदि रोगोंको दूर करती है। पक्षाघात, अर्दित, कम्पवात, गृध्रसी, आमाशय और पक्वाशयमें वातप्रकोप तथा चेष्टा-तन्तुओंकी विकृतिको दूर करती है।

(४१) अर्शोहर वटी।

बनावट—नीमकी निम्बोली, बकायनकी निम्बोली, बीज निकाली हुई मुनक्का और छोटी हरड़ पाँच-पाँच तोले और हींग ३ तोले लें। मुनक्काको छोड़ शेष चार ओषधियोंको घीमें भूनकर कपड़छान चूर्ण करें। फिर मुनक्का मिला, पीसकर छोटे बेरके बराबर गोलियाँ बना लें।

मात्रा—१ या २ गोली सुबह खाकर ऊपर मिश्री मिला बकरी का दूध पी लें।

उपयोग—यह वटी सब प्रकारकी बवासीर में लाभदायक है। बवासीर में गिरता हुआ रक्त जल्दी बन्द करती है।

दूसरी विधि—छोटी हरड, काबुली हरड़, पीली हरड़, आँवले, बहेड़े और शुद्ध गूगल, ६ ओषधियोंको समभाग मिला कुकरोंधेके रसकी ३ भावना देकर झड़बेरके समान गोलियाँ बनावे। (पं० मगुलालजी)

मात्रा—३-३ गोली दिनमें २ बार ताजे जलके साथ देवें।

उपयोग—इस वटी के सेवनसे थोड़े ही दिनों में रक्तार्श और वातिक आदि सब प्रकारके बवासीर दूर होते है। गुदामें उत्पन्न सूजन दूर होती है, एवं रक्त गिरना भी बन्द होजाता है।

तीसरी विधि—रसोत ८ तोले, काबुली हरड़ ८ तोले तथा सोनागेरू, गिलोय सत्व और काली मिर्च २-२ तोले ले। सबको मिला कुकरोंधके रसकी ७ भावना देकर मटरके समान गोलियाँ बनावे। कितनेक चिकित्सकोने इसे (अर्शकुठार) नाम दिया है।

मात्रा—२-२ गोली दिनमें २ वार जलके साथ देवे।

उपयोग—इस वटीके सेवनसे रक्तार्श का रक्त गिरना बन्द होता है; गुदामें होनेवाला दाह और मलावरोध दूर होते है। शान्तिपूर्वक १-२ मास सेवन करनेसे सब प्रकारके अर्शका नाश होता है।

(४२) प्राणदा गुटिका।

बनावट—सोंठ १२ तोले, कालीमिर्च ४ तोले, पीपल ६ तोले, चव्य ४ तोले, तालीसपत्र ४ तोले, नागकेशर २ तोले, पीपलामूल ८ तोले, तेजपात ६ माशे, छोटी इलायची १ तोला, दालचीनी ६ माशे और खस ६ माशे लें। सबको कूट-पीस छान कर पुराना गुड़ १॥ सेर मिला २-२ माशे की गोलियाँ बनावें।

सूचना—यदि अर्श के साथ मलावरोध हो, तो इस गुटिकामें सोंठके स्थानमें हरड मिला लेनी चाहिये।यदि अम्लपित्त या पित्तार्शमें सेवन करना हो, तो गुडके स्थानमें चूर्णसे ४ गुनी शक्करकी चाशनी मिला लेनी चाहिये। गुड भी चाशनी करके मिला लेनेसे पाकमें लघु गुण वाला होता है। (व० से०)

मात्रा—१ से २ गोली भोजनके पहले या पीछे शराब, मांस-रस, यूप, दूध या जलके साथ देनी चाहिये।

उपयोग—इस वटीके सेवनसे वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, रक्तज और सहजार्श, सब प्रकारके बवासीर नष्ट होते हैं। एवं मदात्यय, मूत्रकृच्छ्र, वातरोग, गलग्रह, विषम ज्वर, मन्दाग्नि, पाण्डु, कृमि, हृद्रोग, गुल्म, शूल, श्वास, कास आदिके रोगियोंको भी यह गुटिका प्राण देने वाली होनेसे इस गुटिका को प्राणदा गुटका कहा है।

(४३) काँकायन वटी।

बनावट—हरड़ २० तोले, जीरा, पीपलामूल, चव्य, चित्रकमूल, सोंठ, कालीमिर्च और छोटी पीपल ४-४ तोले, जवाखार ८ तोले, भिलावा ३२ तोले तथा सूरण ६४ तोले ले। सबको कूट दुगुना गुड़

मिलाकर १-१ माशेकी गोलियाँ बना लें। (वृन्द)

मात्रा—एकसे दो गोली तक दिनमें २ बार मट्ठे अथवा जलके साथ दें। पहले और पीछे एक-एक मात्रा ना. पाट लें।

उपयोग—यह वटी विशेषतः वातकफज अर्शको नाश करनेमें अति लाभदायक है, और मन्दाग्नि, मलावरोध तथा पाण्डु रोगको भी दूर करती है।

(४४) दुर्नामकुठार वटी।

वक्तव्य—कालीमिर्च, छोटी पीपल, कूठ, सेंधानमक, जीरा, सोंठ, वच, भुनी हींग, वायविडंग, हरड़, चित्रकमूल और अजमोद, सबको समभाग मिला सब ओषधियोंसे दुगुने गुड़की चाशनीमें डाल-कर १-१ माशेकी गोलियां बनावें। (र० नि०)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २ बार गरम जलके साथ दें।

उपयोग—इस वटीके सेवन से सब प्रकारके वातज अर्शका नाश होता है, पचनक्रिया सुधरती है तथा कोष्ठबद्धता दूर होती है।

(४५) योगराज गुग्गुलु।

वक्तव्य—सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, चव्य, पीपलामूल, चीतेकी छाल, भुनी हींग, अजमोद, पीली सरसों, जीरा, कालाजीरा, रेणुक बीज (समालूके बीज), इन्द्रजौ, पाठा, वायविडङ्ग, गजपीपल, कुटकी, अतीस, भारङ्गी, वच, मूर्वा, तेजपात, देवदारु, कूठ, रास्ना, नागरमोथा, सेंधानमक, छोटी इलायची, गोखरू, धनिया, हरड़, बहेड़ा, आँवला, दालचीनी, खस और जवाखार, सबको समभाग मिला कूटकर बारीक चूर्ण करें। फिर चूर्णके बराबर शुद्ध गूगल मिला घी दे-देकर ३ दिन खूब कूटकर मटरके समान गोलियाँ बनालें। (आ० नि० मा०)

मात्रा—२ से ४ गोली तक दिनमें २ बार देवें।

अनुपान—सब प्रकारके वातरोगमें रास्नादि क्वाथ। उदररोगमें पुनर्नवादि क्वाथ। मेदवृद्धिमें शहद। प्रमेहमें दारुहल्दीका क्वाथ। वात-रक्तमें गिलोयका क्वाथ। नेत्ररोगमें त्रिफलाका क्वाथ। कामलामें गोमूत्र। शोथमें पुनर्नवादि क्वाथ या गोमूत्र। श्वेतकुष्ठमें नीमका क्वाथ। शूलमें मूलीका स्वरस। चूहेके विषमें पाढलमूलका क्वाथ।

उपयोग—यह गूगल सब प्रकारके वातरोग, आमवात, मृगी, वातरक्त, कुष्ठ, दुष्टव्रण, बवासीर, उदररोग प्रमेह, शुक्रदोष, नाभिशूल, कृमि, हृद्रोग, क्षय, भगदर और उदावर्त आदि रोगोंको अनुपान-भेद से नाश करता है। पुराने रोगमें मात्रा हर आठवें दिन बढ़ाकर तीन

-माशे तक पहुँचा देनी चाहिये। २ से ३ मास सेवन करनेसे सब पुराने रोग भी निवृत्त होजाते है।

सूचना—जिनके मुँहमें छाले, नेत्रोंमें दाह और मलावरोध रहता हो, उन्हें योगराज गूगल नहीं देना चाहिये।

दूसरी विधि—रसायन प्रकरणमें लिखे हुए बृहद् योगराज गूगलमें सात प्रकारकी भस्में मिलाई हे, उनको कम कर शेष सब वस्तुएँ मिलाकर योगराज गूगल तैयार करें।

मात्रा, अनुपान और उपयोग—पहली विधिके अनुसार। इस विधिमें त्रिफलाका परिमाण अधिक होनेसे बद्धकोष्टको दूर करता है। इस औषधिका गुण बृहद् योगराज गूगलमें लिखे अनुसार है। इसमें भस्म न होनेसे बृहद् योगराजकी अपेक्षा यह अधिक सौम्य है। नाजुक प्रकृति वालो और बालकों को निर्भयतापूर्वक दिया जाता है।

(४६) गोक्षुरादि गुग्गुलु।

बनावट—गोखरू ११२ तोलेको ६ गुने पानीमें क्वाथ करें। आधा जल बाकी रहे तब उतार ले। फिर छानकर पुनः उबाले; लगभग आधा जल शेष रहने पर २८ तोले गूगल मिलाकर पकावे। जब गुड़ पाकसे समान होजाय, तब सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, नागरमोथा, सबको समभाग मिला, कूट महीन चूर्ण कर, २८ तोले चूर्ण गूगलकी चाशनीमें मिलाले। फिर मटरके समान गोलियाँ बनाले।

(शा० स०)

मात्रा—१ से ३ गोली दिनमें २ से ३ बार दूध या जलके साथ दें।

उपयोग—यह गूगल प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, प्रदर, वात-रोग, वातरक्त, शुक्रदोष और पथरी आदि रोगोंका नाश करता है।

कभी-कभी रक्तप्रदरका योग्य उपचार न करने और दुर्लक्ष्य करने पर बहुत बढ़ जाता है। भारतीय स्त्री समाजमें लज्जावश रोगको छिपाते हैं, जिससे रक्तप्रदर और रक्तगुल्म दोनो बहुत बढ़ जाते हैं। फिर अशक्ति अधिक आजाती है। उस अवस्था में गोक्षुरादि गूगल, वङ्ग-भस्म, मूत्र दाहान्तक चूर्ण और अमृतासत्व मिलाकर दिनमें ४ बार द्राडिमावलेहके साथ देते रहने और अशोकारिष्ट प्रातः सायं देते रहने से दो मास में दोनों विकार नष्ट होजाते है।

मूत्राशयमें अश्मरीकण (शर्करा और सिकता) उपस्थित होने पर मानसिक अस्वस्थता, सांधोसांधोमें पीड़ा, अपान वायुकी शुद्धि न होनेसे उदरमें आफरा आना, कम्प आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। उसपर

यह गोक्षुरादि गूगल गोखरूके क्वाथ और दशमूलारिष्ट के साथ दिनमें ३ समय देते रहने और भोजन के प्रारम्भमें हिंग्वष्टक चूर्ण सेवन कराने से छोटे-छोटे पत्थर और रेती निकलकर रोग दूर होजाता है।

(४७) काँचनार गुग्गुलु।

बनावट—कचनारकी छाल १२० तोले को जौकुट कर ८ गुने जलमें मिलाकर क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर छान शुद्ध गूगल ८० तोले मिलाकर पुनः मन्दाग्नि पर पाक करें। गाढा होनेपर त्रिफला २४ तोले, त्रिकटु १२ तोले, वरनाकी छाल ४ तोले, और इलायची, दालचीनी, तेजपात १-१ तोलेका चूर्ण मिला मटरके समान गोलियाँ बाँधें। (शा० सं०)

मात्रा—२ से ३ गोली तक त्रिफलाके क्वाथके साथ देवें।

उपयोग—यह गूगल कण्ठमाला, अपची, अर्बुद, कर्कस्फोट (Cancer), ग्रन्थि व्रण, गुल्म, कुष्ट और भगंदर आदि उग्र रोगोंमें अति लाभदायक है। औषधि ३-४ मास तक सेवन करनेसे ये सब रोग समूल नष्ट होजाते हैं।

(४८) लाक्षादि गुग्गुलु।

बनावट—हडसधारी, लाख, अर्जुन वृक्षकी छाल, असगंध, नागवला (गंगरेण), ये सब समभाग लें, और सबके बराबर शुद्ध गूगल लें। सबको मिला घीके साथ १ दिन कूटकर मटर समान गोलियाँ बनावें। (चक्रदत्त)

मात्रा—२ से ४ गोली दिनमें २ बार घी-शहद मिलाकर चाटें।

उपयोग—यह गूगल मूढमार, चोट, रक्तका जमाव, हड्डी टूटना, हड्डी मुड़ना आदि दोषोंको दूर करता है। अस्थिसंधानक लेप लगाने के साथ इस औषधिका सेवन करनेसे शीघ्र आराम होता है।

(४९) आभा गुग्गुलु।

बनावट—बबूलकी छाल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, सोंठ, काली मिर्च और पीपल, सबको समभाग मिलाकर बारीक चूर्ण करें। फिर चूर्णके बराबर शुद्ध गूगल ले। फिर, गोघृत मिला १२ घण्टे कूटकर मटरके समान गोलियाँ बनावें। (चक्रदत्त)

मात्रा—२ से ४ गोली दिनमें २ बार घीशहदके साथ दें।

उपयोग—इस औषधके सेवनसे हड्डी मुड़ना, हड्डी टूटना, आमाशय या अन्त्रमें रक्त जम जाना, आँत पर चोट लगना, और

मूढ़मार आदि दोष दूर होते हैं ।

(५०) कैशोर गुग्गुलु ।

बनावट—भैसके नेत्रके समान चमक वाला उत्तम भैसागूगल ६४ तोले नाविशुद्ध किये पोटलीमें बाँधकर लटका देवे । हरड, वहेड़ा और आँवला प्रत्येक ६४-६४-तोले, और जौकुट ताजी गिलोय १२८ तोले मिलाकर कढ़ाहीमें ४ गुने जलमें पकावें । वार-बार कलछीसे चलाते रहे । जल चतुर्थांश शेष रहने पर गूगलकी पोटलीमें रहे हुए कचरेको फैंक देवे, और जलको छानकर पुनः कढ़ाहीमें पकावें । गाढ़ा होने पर और गूगलकी सुगन्ध आने पर नीचे उतारले । शीतल होने पर उसमें हरड़, वहेडा, ओवला, सोंठ, मिर्च, पीपल और वायविड़ङ्ग २-२ तोले, निसोत और दन्तीमूल १-१ तोला, सूखी गिलोय ४ तोलेका चूर्ण मिलावे । फिर गोघृत ३२ तोले मिलाकर ४-४ रत्तीकी गोलियाँ बनावें । (चक्रदत्त)

मात्रा—१ से ४ गोली तक दिनमें २ वार यूप, दूध या अन्य रोगानुसार अनुपानके साथ देवें ।

उपयोग—इस गूगलके सेवनसे नये वातरक्त, समस्त शरीरमें फैले हुए एक दोषज, द्विदोषज, पीपके स्रावयुक्त और जीर्ण शुष्क, सव प्रकारके वातरक्त दूर होते है । यह गूगल व्रण, कास, सव प्रकारके कुष्ठ, समस्त गुल्म, शोथ, उदर रोग, पाण्डु, प्रमेह, मन्दाग्नि, मलमूत्रावरोध और प्रमेहपिटिका (अदीठ Carbuncle) आदि सव रोगोको नष्ट करता है । नित्य सेवनसे जरा और समस्त रोग नष्ट होकर किशोरावस्थाकी प्राप्ति होती है । इसके सेवनमें वातरक्तके रोगी को आहार-विहारका अधिक बन्धन नहीं है, ऐसा मूल ग्रन्थकारने लिखा है, फिर भी रोगको बढ़ाने वाले आहार-विहारका त्याग करना ही हितकर माना जायगा ।

[५१] सप्तविंशतिको गुग्गुलु ।

बनावट—सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड़, वहेड़ा, आँवला, नागरमोथा, वायविड़ङ्ग, गिलोय, चित्रकमूल, कचूर, छोटी इलायची, पीपलामूल हाऊवेर, देवदारु तुम्बरु (नेपाली धनिया), पुष्करमूल, चव्य, इन्द्रायणकी जड़, हल्दी, दारुहल्दी, विड़नमक, कालानमक, जवाखार, सज्जीखार, सैंधानमक, गजपीपल, इन २७ ओषधियोको समभाग मिला कर बारीक चूर्ण करे । पश्चात् चूर्णसे द्विगुण शुद्ध गूगल मिला, घी डाल, कूटकर १-१ माशेकी गोलियाँ बनावे । (चक्रदत्त)

मात्रा—१ से २ गोली शहदके साथ दिनमें २ बार दें।

उपयोग—यह गूगल भगन्दर, अर्श, कास, श्वास, शोथ, हृदय-शूल, पार्श्वशूल कुक्षिशूल, वृक्कशूल, गुदामें पीड़ा, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, अन्त्रवृद्धि और कृमिरोगको नष्ट करता है, जीर्णज्वर और क्षय रोगोंके लिये हितकर है, तथा इस गूगलका दीर्घकाल तक सेवन करने पर आनाह, उन्माद, कुष्ठ, समस्त प्रकारके उदररोग, नाडीव्रण, दुष्ट व्रण, सब प्रकारके प्रमेह, श्लीपद आदि समस्त रोग नष्ट होते हैं।

[५२] विरेचन वटी।

बनावट—एलुवा ४ तोले, उसारेरेवन २ तोले, भुनी हींग और सोहागेका फूला ६-६ माशे मिलावें। फिर अमलताशकी फलीके गर्भको जलमें मसलकर छानलें। इस जलके साथ घोटकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बनाकर सेलखड़ीके चूर्णमें डालते जायँ।

मात्रा—१ से ४ गोली रात्रिको सोनेके समय जलके साथ देवें।

उपयोग—इन गोलियोंसे सुबह एक या दो जुलाब लगकर पेट साफ होता है। उदररोग बवासीर और दूसरे रोगोंमें पेट साफ रखने की जरूरत हो, तब इसका उपयोग होता है। एक गोली लेनेसे एक ही दस्त होता है। इसके सेवनसे उदरमें बिल्कुल तकलीफ नहीं होती।

दूसरी विधि—अशुद्ध जमालगोटाके छिलके और जीभी निकाल, द्विगुण कलमीशोरेके साथ नीबूके रसमें १२ घण्टे खरल करके चनेके समान गोलियाँ बनाले। (स्वा० जगदानन्दजी)

मात्रा—आवश्यकता पर १ गोली सुबह गुलाबके अर्कके साथ दें। २ घण्टे बाद सोफका थोड़ा अर्क पिलावें।

उपयोग—यह वटी कब्ज, उदररोग, त्वचादोष, रक्तविकार आदिमें उदर शुद्धिके लिये लाभदायक है। गोलीसे ४-६ दस्त लगते हैं।

जमालगोटा अशुद्ध लेने पर भी कलमीशोरा साथमें होनेसे तीव्रता और दाह करनेका दोष शमन होजाता है। आमाशयमें पित्त संचित हो, तो कभी एक-दो वमन करा देता है। इस वटीमें अशुद्ध जमालगोटा होनेसे नाजुक प्रकृतिवालोंको नहीं देनी चाहिये।

(५३) मृदुविरेचन वटी।

बनावट—एलुवा २॥ तोले, सोंठ २॥ तोले शुद्ध देशी साबुन (स्नान करनेका) २ तोले और भुनी हींग ६ माशे लेकर थोड़े जलमें खरल करके मटरके समान गोलियाँ बनावें। (अ० प्र०)

मात्रा और उपयोग--१ से २ गोली रात्रिको सोनेके समय जल के साथ लेनेसे सुबह कब्ज दूर होकर पेट साफ होता है ।

(५४) हिस्टीरियानाशक वटी ।

बनावट--गाँजा, कपूर, वच १-१ तोला, जटामासी २ तोले, खुरासानी अजवायन ४ तोले और केशर ३ माशे ले । सबको मिला, कूट करके बारीक चूर्ण करे । फिर ६ घण्टे तक अदरखके रसमें खरल करके चनेके समान गोलियाँ बना लेवे ।

मात्रा--२-२ गोली दिनमें ३ बार जलके साथ दे ।

उपयोग--इस वटीके सेवनसे हिस्टीरिया रोग २१ रोजमें दूर होता है । यह मगजको शान्त बनाती है । निकम्मा विचार दूर करती है । पुरुषोंको शक्ति प्रदान करती है, एवं पचनक्रिया सुधारती है ।

(५५) वातहर गुटिका ।

बनावट--भिलावा ८ तोले, पीपलामूल, पीपल, अकरकरा, सोंठ और मालकाँगनी प्रत्येक १-१ तोला ले । सबको बारीक पीसकर ५ तोले गुड़ मिलाकर बेरके समान गोलियाँ बनावे । (आ० नि० मा०)

मात्रा--१ से २ गोली दिनमें २ बार घीके साथ दे । ६ माशे घी चाटकर गोली निगले, फिर ६ माशे घी और चाट ले ।

उपयोग--यह गुटिका संधिवात, अर्दित, आमवात, ऊरुस्तंभ (आढ्यवात), कटिग्रह, पक्षाघात आदि वात रोगोंका नाश करती है ।

सूचना--तेलमें बने हुए पदार्थ ज्यादा खानेसे जल्दी लाभ होता है । दूध और मीठा पदार्थ उपयोगमें नहीं लेना चाहिये ।

(५६) चींचाभल्लातक वटी ।

बनावट--इमली और भिलावा सम भाग मिला कूट कर झाड़ी-बेरके समान गोलियाँ बाँधे । इमली नई लें, नमक मिली हुई नहीं लेनी चाहिये । दोनों वस्तुओंको कूटनेसे गोली बन जाती है । जल मिलानेकी जरूरत नहीं है । (आ० नि० मा०)

मात्रा--१ से २ गोली दिनमें २-३ बार मट्ठे या जलके साथ दे ।

उपयोग--इस वटीके सेवनसे विसूचिका (कॉलेरा), संग्रहणी, अतिसार, उदरशूल, उपदंशके हेतुसे होनेवाले संधिवात, पक्षाघात, अर्दितवायु, मन्यास्तम्भ, कटिग्रह, गृध्रसी, शिरागतवायु आदि दोष दूर होते है । इसके साथ पथ्यापथ्यका विशेष बन्धन नहीं है । यह विसूचिकाकी अक्सीर औषधि समझी गई है, एवं और रोगोंमें भी अच्छा

प्रभाव दिखाती है ।

अतिसार और ग्रहणी रोगमें मट्ठेके साथ इस वटीका सेवन करानेसे सत्वर लाभ पहुँचता है । दस्त कम होते हैं, वेदनाका शमन होता है; और उदरमें आफरा नहीं आता ।

उपदंशके हेतुसे संधिवात हुआ हो, या अर्दित पक्षाघात, कटिग्रह, गृध्रसी आदि वात हुए हों, अथवा शिरागत वातविकार हुआ हो, तो २-२ गोली जलके साथ देते रहनेसे अच्छा लाभ पहुँचता है ।

(५७) धात्रीभल्लातक वटी ।

बनावट—भिलावा १ सेर, हरड़, बहेड़ा, आँवला प्रत्येक ४०-४० तोले, सोंठ, कालीमिर्च और पीपल ३०-३० तोले, काले तिल एक सेर और गुड़ पुराना १ सेर लें । सबको बारीक कूट, गुड़ मिलाकर छोटे बेरके समान गोलियाँ बाँधें । (आ० नि० मा०)

सूचना—भिलावा कूटने समय हाथको तेल लगालें: लोहेकी कलछी से चलावे और निकाले । दूसरी ओषधियोंको चूर्ण मिलाकर कूटने पर भिलावेके तेलका भय कम होजाता है ।

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २ बार जलके साथ देवें ।

उपयोग—यह वटी आमाशय और उदरके सब विकार, शूल, आमवात, सब प्रकारके वातरोग, उपदंश अथवा किसी हेतुसे होने वाला संधिवात, अर्धाङ्गवात, ऊरुस्तम्भ (आढ्यवात) और सुजाकके उपद्रव आदिको दूर करती है ।

(५८) गन्धक वटी ।

बनावट—शुद्ध गन्धक २ तोले, चित्रकमूल, पीपल, कालीमिर्च, सब १-१ तोला, सोंठ २ तोले, जवाखार, सैंधानमक, कालानमक और साँभरनमक आधा-आधा तोला लें । सबको मिला नीबूके रसकी ७ भावना देकर २-२ रत्तीकी गोलियाँ बनावें । (र० रा० सु०)

मात्रा—१ से ४ गोली दिनमें २ बार भोजनके दो घण्टे बाद ।

उपयोग—यह वटी मन्दाग्नि, अरुचि, अजीर्ण, शूल, सूक्ष्म कृमि, ग्रहणी दोष, आमवृद्धि, गुल्म और उदावर्त्तका नाश कर अग्नि को प्रदीप्त करती है । नीबूके रसकी ७ भावना देने पर यह तत्काल अपना प्रभाव दर्शाती है । उदावर्त—उदरमें उत्पन्न दूषित वायु के ऊपर चढ़नेको तुरन्त दबाती है; एवं शूल, बेचैनी आदिको दूर करती है ।

(५९) कन्यालोहादि गुटिका।

बनावट—एलुवा १० तोले, कसीस ७॥ तोले, दालचीनी ५ तोले, इलायची ५ तोले, सोंठ ५ तोले, गुलकन्द २० तोले लें। सबको मिलाकर मटरके समान गोलियाँ बाँधले। (आ० ओ०)

मात्रा—२ से ३ गोली दिनमें २ बार जलके साथ दें।

उपयोग—यह गुटिका अति सौम्य है। स्त्रियोको मासिक धर्म ज्यादा होता हो, या अनियमित आता हो, ऋतु ज्यादा दिनोसे बन्द हो, सबको यह सुधारती है। मासिकधर्म आने पर १० दिन तक यह ओषधि बन्द रखे, पश्चात् पुनः प्रारम्भ करें।

(६०) कासीसादि वटी।

बनावट—कसीस, सोहागेका फूला, भुनी हींग और एलुवा, सबको समभाग मिला घीकुँवारके रसमें ६ घण्टे खरल करके एक-एक रत्तीकी गोलियाँ बनावे। इस वटीका नाम भैषज्यरत्नावली और आयुर्वेद संग्रहकारने रजःप्रवर्त्तनी वटी रक्खा है।

मात्रा—२ से ४ गोली दिनमें २ बार जलके साथ दें।

उपयोग—यह वटी स्त्रियोंके मासिकधर्म कम होना, मासिकधर्मके समय दुःख होना, अनियमित ऋतु आना, इन सब दोषोंको दूर करके गर्भाशयको शुद्ध बनाती है। मासिकधर्म आने पर १० दिन तक ओषधि सेवन बन्द करे। यह वटी कन्यालोहादि वटी की अपेक्षा उष्ण है।

दूसरी विधि—कसीस, भुनी हींग, सोहागेका फूला, सोंठ, चित्रकमूल, इन्द्रायनकी मूल, इन्द्रायनके फल, जवाखार, सज्जीखार, सैंधानमक, हल्दी, दारुहल्दी, कपूर और समुद्रफाग, इन १४ ओषधियोंको समभाग मिला कूटकर कपड़छान चूर्ण करे। पश्चात् घीकुँवारके रसमें खरल कर चनेके समान गोलियाँ और सोगठियाँ (शिखरके आकारवाली गोलियाँ) बना लेवें। (र० त०)

मात्रा—२ से ४ गोली तक दिनमें २ बार जलके साथ देवें, और आवश्यकता पर सोगठीको जननेन्द्रियमें रखे।

उपयोग—यह वटी स्त्रियोंके नष्टार्त्तव और पीड़ितार्त्तव आदि मासिकधर्मके दोषोंको दूर करके ऋतुको साफ और समय पर लाती है। पहली विधिकी अपेक्षा यह विशेष तीव्र है, अतः नाजुक प्रकृतिवालोंको नहीं देनी चाहिये।

(६१) प्रदरान्तक वटी ।

बनावट—अकीक पिष्टी और कहरवा पिष्टी एक-एक तोला, हीरा-दोखी गोंद (दमुल अखवैन) २ तोले, रसोत २ तोले, सबको मिला जलसे मटरके समान गोलियाँ बाँधें । (वै० चि० सा०)

मात्रा—२-२ गोली दिनमें ३ बार चावलोंके धोवनके साथ लें ।

उपयोग—रक्तप्रदर तथा अर्शका खून बन्द करनेके लिये यह निर्भय और अति हितकर औषध है । रक्तको बहुत जल्दी बन्द करती है, एवं उष्णता, बेचैनी और कब्जको भी दूर करती है ।

(६२) स्नुहीक्षीर गुटिका ।

बनावट—एक बोतल पर तीन कपड़मिट्टी कर उसमें भुनी हुई चनेकी दाल भरें, ऊपरसे थूहरका दूध भरकर डाट लगादे । फिर बोतल को जमीनमें गाड़कर ऊपर ६ अंगुल मिट्टी दबादे । ५ दिन तक रोज २॥-२॥ सेर गोबरीकी अग्नि ऊपर जलावे । फिर निकालकर पुनः बोतलको आधी जमीनमें दबाकर ५ दिन तक रोज २॥-२॥ सेर गोबरी की अग्नि दें । पश्चात् बोतलको निकालले । बोतल प्रायः फूट जाती है, इसलिये सम्हाल करके निकालें । फिर दालको खरल कर मटरके समान गोलियाँ बाँधकर धूपमें सुखाले । (आ० नि० मा०)

मात्रा—एक-एक गोली दिनमें ३ बार जलके साथ निगलें, और ऊपरसे तीनों बार थोड़ी-थोड़ी पक्की अरण्डककड़ी खायें ।

उपयोग—इस गुटिकाके उपयोगसे रक्तगुल्म बिना आपरेशन नष्ट होजाता है । रुग्णाको रोज एक-एक पक्का पपीता (वजन लगभग १ सेर या अधिक) खिला देना चाहिये । प्रातःकाल पपीता खिलाकर औषधिका सेवन करावे । एक पपीतेको २-३ समयमें एक ही दिनमें खिला देवें । मधुर पदार्थ बिल्कुल खानेको न देवें । इस तरह ४-६ मास तक औषधिका नियमपूर्वक सेवन करानेसे स्नेहन, स्वेदन, छेदन, भेदन, आदि क्रिया किये बिना रक्तगुल्म गल जाता है । योनिद्वारसे रक्त या पूय का स्राव भी नहीं होता । एवं वमन, विरेचन, व्याकुलता, उदरशूल आदि लक्षण भी उपस्थित नहीं होते । मासिक-धर्म अधिक आता हो, अनियमित आता हो, रक्तगुल्मके हेतुसे निरोध हो गया हो, या मासिकधर्ममें कष्ट होता हो, सब विकारोंको दूर कर मासिकधर्मको नियमित और रोगिणीको नीरोग बनाती है । रक्तगुल्मके शमनार्थ यह गुटिका निर्भय और उत्तम उपाय है ।

(६३) बालरक्षक सोगठी।

बनावट—वायविडङ्ग, वायपुंवा, कालानमक, चिरायता, इन्द्रजौ, सोंठ, हरड़, डिकामाली, वच, जायफल, जायपत्री, करंजके भुने बीज, पित्तपापड़ा, कुटकी, कालीजीरी, कोलम्बो, अतीस, एलुवा, उसारेरेवन, मरोड़फली सब समभाग लेकर बारीक चूर्ण करे। फिर ६ घण्टे जलके साथ घुटाई करके सोगठियाँ बना ले। (वै० चि० सा०)

उपयोग—यह सोगठी छोटे बालकोंके सूक्ष्म ज्वर, खाँसी, कब्जियत और पेटका दर्द आदि रोगोंमें पत्थर पर जलमें थोड़ी घिस-कर पिला देनेसे तुरन्त उदर शुद्धि होजाती है। आवश्यकता पर एक दो घण्टे बाद दूसरी बार देवे।

(६४) बालरक्षक गुटिका।

बनावट—जायफल, जावित्री, दालचीनी, लौंग, इलायची, अज-मोद, सफेद मिर्च, वायपुंवा, वायविडङ्ग, सोवा, कालानमक, हरड़, चिरायता, करंजके भुने बीज, अतीस, अनारका छिलका, पीपलामूल, वंशलोचन, एलुवा, बीजाबोल, खसखस, लोवान और केशर, सब समभाग मिलाकर बारीक चूर्ण करे। फिर शहदमें घुटाई करके मूँगके समान गोलियाँ बना लेवें। (वै० चि० सा०)

एलुवा मिलानेसे गुटिका बहुत कड़वी होजाती है। इस हेतुसे हम एलुवाके स्थान पर छोटी हरड़ मिलाते हैं।

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २ बार १ माससे ६ मास तकके बच्चोंके लिये माताके दूधके साथ दें। ६ माससे १२ मास तकके बच्चेको २ से ४ गोली देवे। बड़े बच्चेको अधिक मात्रा देवे।

उपयोग—बालकोंके पतले दस्त, वमन, अजीर्ण, वायु, मंदाग्नि, निर्बलता और कब्ज आदि दोष दूर होकर, दूध अच्छी रीतिसे पचन होता है। शरीर मजबूत और नीरोग बन जाता है। यह गुटिका नीरोगी और रोगी, सब बालकोंके लिये अति उपयोगी है।

(६५) डब्बानाशक गुटिका।

बनावट—सत्यानाशीके बीज और उसारेरेवन, दोनोंको सम-भाग मिला सत्यानाशीके रसमें घोटकर उड़दके समान गोलियाँ बनाले।

मात्रा—१ से २ गोली एक या दो बार जरूरत पड़े तब जल या माताके दूधके साथ देवे।

उपयोग—यह गुटिका बालकोंके डब्बारोग (Broncho Pneumonia) को दूर करनेमें अति उपयोगी है। एक दस्त और

एक वमन कराकर रोगको सत्वर शान्त करती है।

(६६) बालजीवन वटी।

बनावट—गोरोचन ३ माशे, एलुवा ६ माशे, ङसारेरेवन, केशर, कटेलीका जीरा, जवाखार और सत्यानाशीके बीज, प्रत्येक १-१ तोला लेवे। सबको कूट-पीस छानकर अदरखके रसमें ३ घण्टे घोट मूँगके समान गोलियाँ बनाकर छायामें सुखाले। (धन्वन्तरि

मात्रा—१ गोली आवश्यकता पर माताके दूध या शहदसे दें।

उपयोग—इस वटीके सेवनसे बच्चोंके पसली (डब्बा) रोग, कब्जियत, मूत्रावरोध, आफरा, श्वास, कास आदि रोग दूर होते है, और बच्चे नीरोग होजाते है।

(६७) तृष्णाग्नि गुटिका।

बनावट—नीलकमल, कूठ, धानकी खील और बड़के अंकुर, सबको समभाग मिला, महीन चूर्ण कर शहदके साथ २-२ रत्तीकी गोलियाँ बनावे। (चक्रदत्त)

मात्रा—१-१ गोली मुँहमें रखकर एक दिनमें १५-२० गोलियों का रस चूसते रहे।

उपयोग—यह वटी भयंकर बढो हुई तृषा और वमनको तत्काल नष्ट करती है। किसी भी रोगमें तृषाकी वृद्धि होने पर इस गुटिकाका उपयोग सकतहोा है।

(६८) चतुःसमो मोदक।

बनावट—सोठ ५ तोले, शुद्ध भिलावा ५ तोले, विधारा ५ तोले और पुराना गुड़ १५ तोले लेवे। सोठ आदि ओषधियोंको कूट, गुड़ की चाशनीमें मिलाकर ३-३ माशेके मोदक बना लेवे। (व० से०)

मात्रा—१ से २ मोदक दिनमें २ बार लेवें। मोदक-सेवनके पहले और पीछे ३-३ माशे गोघृत चाट लेवें।

उपयोग—यह मोदक सब प्रकारके अर्शका नाश करनेमें अति उपयोगी है। यह पाचनक्रिया सुधारता है; दूषित आमदोषको नष्ट करता है, और वृद्ध मनुष्योंको भी तरुण बना देता है।

(६९) अग्निप्रदीपक गुटिका।

बनावट—हरड़, आंवला, बहेड़ा, जवा हरड़, चित्रकमूल, अजमोद, कालाजीरा, सफेद जीरा, सैंधानमक प्रत्येक ४-४ तोले मिलाकर जौकुट चूर्ण करें। पश्चात् १० सेर अमरवेल के रसमें ७ दिन भिगोदें।

ओषधिके १ इंच ऊपर रहे, उतना रस भरे। ८ वें दिन कढ़ाहीमें डाल चूल्हे पर चढ़ा मन्दाग्नि देकर रस सुखा देवें। कढ़ाही शीतल होने पर ८ माशे शुक्ति भस्म मिला खरल कर छोटे बेरके समान गोलियाँ बनावें।

(साईं जी गुढाग्राम वाले)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें २ बार जलके साथ लेवें। औषध लेने के पहले पहले १ मूली खालेवें।

उपयोग—यह गुटिका मन्दाग्नि, पुराना अजीर्ण रोग, मलावरोध, अरुचि, उदरशूल, मूत्रविकार, रक्तदोष, खट्टी डकार आना आदि दोषोंको दूर कर जठराग्नि को प्रदीप्त करती है।

जब पित्तप्रकोप होकर विदग्धाजीर्ण रोग उत्पन्न होता है, फिर रोग पुराना होने पर कफ और आमकी वृद्धि होती है, हृदयकी गति मन्द होती है, और शरीर बहुत अशक्त होजाता है, ऐसी स्थितिमें यह गुटिका अच्छा प्रभाव दिखाती है।

पथ्य—मूली अथवा चौलाई का शाक और बाजरे तथा गेहूँ की रोटी। खट्टा पदार्थ और पक्का भोजन छोड़ देना चाहिये।

(७०) कस्तूर्यादि स्तम्भन।

बनावट—कस्तूरी १ भाग, केशर, जायफल और लौंग २-२ भाग; शुद्ध अफीम ३ भाग और शुद्ध भाँग ७ भाग ले। सबको मिला शहदमें खरल कर ½-१ रत्तीकी गोलियाँ बना ले। (र० यो० सा०)

मात्रा—१ से २ गोली शामको मिश्री मिले दूधके साथ दे।

उपयोग—यह गोली अत्यन्त कामोत्तेजक और शुक्रका स्तम्भन करानेवाली है। कफ, श्वास, मन्दाग्नि, निद्रानाश, अतिसार और पेचिश आदि रोगोंको भी दूर करती है।

(७१) लहशुनादि वटिका।

बनावट—लहशुन, जीरा, भुनी हींग, सोंठ मिर्च, पीपल, शुद्ध गन्धक और सैंधानमक, इन ८ औषधियों को समभाग मिला नीबूके रसमें ३ दिन खरल कर मटरके समान गोलियाँ बनाले। (वै० जी०)

मात्रा—२ से ४ गोली दिनमें ३ बार जल या मट्ठेके साथ दे। विसूचिकामें ३-३ गोलियाँ आध-आध घण्टे पर देते रहे।

उपयोग—यह वटी अजीर्ण, कृमि, उदरशूल, आफरा और विसूचिकाको दूर करके अग्निको प्रदीप्त करती है। यह ओषधि अपचन और विसूचिकाके लिये अत्यन्त लाभदायक है।

रसयोगसागर में इस वटी का नाम 'गंधक वटी', 'विसूचिका विध्वंसिनी' और 'त्रिकटुरसायन' लिखे है। यह वटी विसूचिकाके लिये अति हितकर है। नीबू और अदरखके रसमें सैंधानमक और कालानमक १-१ रत्ती मिलाकर, रसके साथ यह वटी देनेसे शूल, वमन, विसूचिका और कृमि-आदि रोगों को नष्ट करती है।

७२ विसूचिकाहर वटिका।

बनावट---अफीम १ तोला, कपूर, भुनी हींग, सोहागेका फूला, कालीमिर्च, सोंठ, और शुद्ध गन्धक २-२ तोले लेवे। सबको मिला नीबूके रसमें खरल करके १-१ रत्ती की गोलिया बनावे।

मात्रा--१-१ गोली १-१ घण्टे पर ५-७ बार दे।

उपयोग---विसूचिकामें वमन और दस्तको बन्द करती है, कीटाणुओंका नाश करती है और पेशावको साफ लाकर सत्वर रोग को शमन करती है।

सूचना--पिलानेके लिये १ सेर जलमें १ तोला लौंग या जायफल मिलाकर उबाल ले। शीतल होने पर छानकर आवश्यकतानुसार बार-बार १-१ तोला जल पिलाते रहे।

दूसरी विधि---भुनी हींग ३ तोले; आमकी गुठलीकी गिरी और लालमिर्चके छिलके २-२ तोले, अफीम, जायफल, जापत्री और शुद्ध सिगरफ १-१ तोला और पिपरमेन्टके फूल ६ माशे ले। इन आठ औषधियोको मिलाकर ६-६ घण्टे नीबू और लहशुनके रसमें खरल करके आध-आध रत्तीकी गोलियाँ बनावे।

मात्रा---१ से दो गोली १-१ घण्टे पर रोग कावूमें आवे तब तक १ तोला जलके साथ या शक्कर के साथ देते रहे। रोग कम होनेपर औषधिकी मात्रा कम करे। वमन, अतिसार या पेचिशमें दिनमें ३ बार जलके साथ देवे।

उपयोग---विसूचिका (कालेरा) के लिये यह औषधि अत्यन्त लाभदायक है। अनेक मरणोन्मुख रोगी इससे थोड़े ही घण्टों में स्वस्थ होगये है। इसके प्रयोगसे कालेरा के वमन और दस्त, दोनो सत्वर रुक जाते है, तृषा कम होती है, कीटाणु नाश होते है, अन्तर्दाह शमन होता है। हाथ-पैरमें ऐंठन आना रुक जाता है। नाड़ियोंमें रही हुई शीतलता सत्वर दूर होती है, तथा पचनक्रिया प्रदीप्त होकर रोगी सत्वर नीरोगी बन जाता है। ऐसे ही यह वटी पेचिश, अतिसार, अजीर्णजन्य अतिसार, अरुचि, वमन आदि रोगोको भी दूर करती है। यह छोटे

बालकोंको थोड़े परिमाणमें दीजाती है। बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री-पुरुष आदि सबके लिये यह लाभदायक है।

(७३) हिंग्वादि वटी।

बनावट—भुनी हींग, अम्लवेत, सोंठ, कालीमिर्च पीपल, अजवायन, सैंधानमक, विडनमक और कालानमक, इन ९ ओषधियोंको समभाग मिलाकर बिजोरे नीबूके रसमें ३ दिन खरल करके २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लेवे। (च० द०)

मात्रा—१ से ४ गोली दिनमें २-३ बार मट्ठे के साथ सेवन करे, अथवा १-१ गोली करके रस चूसते रहे।

उपयोग—इस गोलीके उपयोगसे वातशूल कैसा ही हो, तत्काल बन्द होजाता है। आफरा दूर होता है, तथा पचन क्रिया प्रबल बनती है।

(७४) त्र्यूषणादि गुग्गुलु।

बनावट—सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेडा, आँवला, १०-१० तोले और शुद्ध गूगल ६० तोले लेवे। सबको मिला गोखरूके क्वाथमें ३ दिन खरल करके २ २ रत्तीकी गोलियाँ बनालें। (च० द०)

मात्रा—इस गूगलके सेवनसे वायुका अनुलोमन होता है; संचित आमविष जल जाता है, नये आमकी उत्पत्ति में प्रतिबन्ध होता है, पचनक्रिया सबल बनती है, और कोष्ठ-शुद्धि नियमित होती रहती है। इन हेतुओंसे उदरमें वायु भरा रहना, बेचैनी, शिरदर्द, पचनशक्तिके विकार-जनित प्रमेह, मूत्रविकार और नया उदररोग नष्ट होकर शरीर सुदृढ़ और उत्साही बनजाता है।

(७५) हरीतक्यादि गुटिका।

बनावट—हरड़, बहेड़ा, सोंठ और नागरमोथा ५-५ तोले मिला कर कपड़छान चूर्ण करें। फिर शहदमें खरल कर मटरके समान गोलियाँ बना लेवें। (राजवैद्य अमरदत्तजी मिश्र)

मात्रा—१-१ गोली करके दिनमें ८-१० गोलियाँ चूसें।

उपयोग—यह सामान्य ओषधि होते हुए भी नये कास रोग पर अद्भुत लाभ पहुँचाती है। इसे कितनेक चिकित्सकोंने 'कफकृपाण' संज्ञा दी है। नूतन वातज कास, जिसमें शुष्क कास चलती रहती है और बड़ी कठिनाईसे झागके सदृश कफ निकलता है; तथा कफज, कास, जिसमें बार-बार कफ गिरता रहता है, मुँह मीठा और चिपचिपा बना रहता है, दोनोंको यह दूर करती है। एवं अपचन-जनित घबराहट, श्वास,

कास, उबाक, मुँहसे पानी आते रहना आदि विकारों को भी दूर करती है।

(७६) स्वादिष्ट पाचनवटी ।

बनावट—सोंठ, पीपल, लौंग और दालचीनी २-२ तोले; अकलकरा, चित्रकमूल, कालीमिर्च, ४-४ तोले; कालाजीरा, सेंधा नमक, कालानमक ८-८ तोले, भुना जीरा १६ तोले और अनार की खटाई ८० तोले मिला घोटकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवे।

मात्रा—२ से ६ गोली दिनमें ३ बार लेवें, या १-१ गोली मुँह में रखकर रस चूसते रहे।

उपयोग—इस गोलीका रस चूसते रहने से लालास्राव बढ़ता है, फिर उसके अनुरूप पाचक पित्तके स्राव की वृद्धि होती है। इस हेतुसे अपचन, आमवृद्धि, अरुचि, अग्निमान्द्य, उदरमें भारीपन, उदर में वायु भरा रहना, उदरशूल, अपानवायुका अवरोध, कब्ज, उबाक, बेचैनी, शिरदर्द आदि विकार पर इस वटीसे सत्वर लाभ पहुँच जाता है।

रुचि उत्पादक मुख्य ओषधियोंके भीतर यह उत्तम समझी जाती है। आमाशयसे लेकर बृहदन्त्र तकके दोषोंको हटाती है, और मनको प्रफुल्लित बनाती है।

(७७) सर्पगन्धादि गुटिका ।

प्रथम विधि—५ सेर सर्पगन्धाके चूर्णको ८ गुने जलमें मिलाकर क्वाथ करें। अष्टमांश जल शेष रहने पर वस्त्रसे छान लेवें। फिर उसमें चतुर्गुण जल डालकर दूसरी बार क्वाथ करें। चतुर्थांश शेष रहने पर छानकर दोनो क्वाथोंको एकत्र करें। फिर उसे मन्दाग्नि पर पकाकर घन करें। घन लगभग ४० तोले होगा। इस घनके अनुसार खुरासानी अजवायनके पत्रका घन बना लेवें। फिर सर्पगन्धा घन ४० तोले, खुरासानी अजवायन घन ५ तोले, पीपलामूलका चूर्ण ५ तोले और चरस २॥ तोले मिलाकर दो-दो रत्तीकी गोली बनावें। (श्री यादवजी त्रिकमजी आचार्य)

मात्रा—१ से २ गोली सोनेके समय जल या दूधसे दें।

उपयोग—इस औषधमें निद्राप्रद और रक्तदबावशामक गुण है। जब किसी रोग विशेषसे वेदना हो रही है, या शराब, उन्माद या मस्तिष्कमें अधिक उत्तेजना पहुँचनेसे निद्रा न आती हो, तब निद्रा लाने के लिये इस गुटिकाका प्रयोग किया जाता है। इसके सेवनसे शान्त निद्रा आजाती है, तथा मस्तिष्कमेंसे रक्तका दबाव कम होजाता है।

द्वितीय विधि—सर्पगन्धा १० सेर, खुरासानी अजवायन २ सेर, जटामांसी और भांग १-१ मासे मिला जौकुट चूर्ण करें। उसे अठगुने जलमें रात्रिको भिगो सुबह मन्दाग्नि पर पकावें और कड़छीसे हिलाते रहें। अष्टमांश जल शेष रहने पर नीचे उतार मसल कर कपड़ेसे छान लेवें। फिर दूसरी वार छान मन्दाग्नि पर पकावें। जब क्वाथ कुड़छीसे लगने लगे ऐसा गाढ़ा हो, तब उसे नीचे उतार धूपमें सुखावें। गोली बनने योग्य होजाय तब उसमें पीपलामूलका चूर्ण २० तोले मिलाकर २-२ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें। (श्री० पं० यादवजी त्रिकम जी)

मात्रा—२ से ३ गोली रात्रिको सोते समय जल या दूध से दें।

उपयोग—इस वटीके प्रयोगसे शान्त निद्रा आजाती है, तथा रक्त दबाव कम हो जाता है।

वृक्क प्रदाह होने पर मूत्रमें ओज-धातु (एल्ब्युमिन) जाती है; तथा रक्तमें मूत्र विषका संचय होता रहता है। फिर मस्तिष्कमें विष पहुँचकर रक्तदबाव वृद्धि करता है, निद्रा नहीं आती, शिरमें भारीपन बना रहता है। चक्कर आता है, तथा सर्वाङ्गमें शोथ प्रतीत होता है। उस पर इस वटी को सेवन करानेसे शान्त निद्रा आने लगती है। साथ में वृक्क विकार और मूत्रविष शमनार्थ योग्य उपचार करना चाहिये।

हिस्टीरिया रोगमें विविध लक्षण प्रकाशित होते हैं। अनेकोंको मस्तिष्कमें रक्तदबाव वृद्धि होकर मुखमण्डल पर लाली शिरमें भारीपन, चक्कर आना, निद्रा नहीं आना, मनमें विविध कल्पना आती रहती है, उसपर रक्तदबावकम करके निद्रा लाने के लिये यह वटी प्रयोजित होती है मानसिक उद्वेग अधिक रहता हो, तो साथमें कस्तूरी भी दीजाती है।

क्विनाइन आदि उग्र ओषधियोंकी मात्रा अधिक होजाने पर निद्रानाश, रक्तदबाव वृद्धि, शोथ, धड़कन, अरुचि, बेचैनी, मूत्रावरोध, मलावरोध आदि अनेक उपद्रव प्रकाशित होते हैं। इनमें रक्तदबाव वृद्धि को शमन करा शान्त निद्रा लानेके लिये शामको सर्पगन्धादि वटी दी जाती है।

[७८] ज्वरमुरारि गुटिका।

बनावट—क्विनाइन सल्फास और शुद्ध रसोतको समभाग मिला जलके साथ खरलकर १॥-१॥ रत्तीकी गोलियाँ बनावें। गोलियोंको बना-बनाकर मेगनेशिया कार्बमें डालते जायें। (श्री० डा० कर्पूरसिंहजी)

मात्रा—१ से २ गोली दिनमें ३ बार दूध या जलके साथ देवें।

उपयोग—यह गुटिका सब प्रकारके विषमज्वरोंका नाश करती

है। सतत, एकांतरा, तिजारी आदि बुखारोंको एक ही दिनमें रोक देती है। तापकी पाली हो उस दिन ६ घण्टे पहले १ मात्रा दें। फिर २ घण्टे बाद दूसरी बार दें। फिर ताप न आया हो, तो २ घण्टे बाद तीसरी बार देनेसे ताप नहीं आसकता है।

जीर्णज्वरमें आधी मात्रा सुबह-शाम देनेसे जीर्णज्वर, प्लीहा-वृद्धि, निर्बलता, अग्निमान्द्य, निस्तेजता आदि दूर होते हैं। इन्फ्लुएन्ज़ा, आमवातिक ज्वर और क्षयज्वरमें भी यह वटी लाभदायक है।

अपचन, कफप्रकोप या ऋतुपरिवर्त्तनसे उत्पन्न ज्वर तथा शीत लगकर आने वाले सब प्रकारके ज्वरों पर यह वटी तत्काल गुण दर्शाती है। कब्जको भी दूर करती है। जिनको अधिक कब्ज हो, उनको पहले कब्ज दूर करनेके लिये अश्वकंचुकी रस या ज्वरकेसरी वटी देकर कोष्ठशुद्धि कर लेनी चाहिये।

सूचना—(१) चढ़े हुए ज्वरमें और बुखार बढ़नेके समय इस वटीका उपयोग नहीं करना चाहिये। ज्वर उतर जानेपर रोकनेके लिये देवे। (२) जो ज्वर उतरकर फिर तुरन्त बढ़ने लगता है, ऐसे ज्वरमें ताप उतरने लगे, तब यह वटी दीजाती है। जब तक शरीरमें ज्वर तीव्र हो, तब तक भोजन नहीं देना चाहिये। क्षुधा लगनेपर दूध, चाय, काफी या मोसम्बीके रसका सेवन कराना चाहिये। (४) जल गरम करके शीतल किया हुआ पिलाना चाहिये।

चूर्ण प्रकरण ।

एक अथवा अनेक वनौषधियोंको मिला कूट कर चूर्ण तैयार किया जाता है। यदि सब औषधियोंको अलग अलग कूट कपड्छन करके मिलाया जाय, तो ठीक शास्त्रोक्त मात्रा अनुसार चूर्ण तैयार होता है। मुनक्का, अनारदाना, इमली आदि औषधियाँ मिलाना हो, तो उनको पृथक् कूट करके ही मिलाना चाहिये। चूर्ण अति सौम्य होनेसे विशेष परिमाणमें सेवन करना पड़ता है। चूर्णसे हानि होनेकी प्राय सम्भावना नहीं है। अनेक प्रकारके रसायन और भस्म, वर्षो पर्यन्त सेवन करके जिन्होंने अपनी प्रकृतिको परावलम्बी बनादी हो, उनके लिये चूर्णोंकी कृति अति शान्तिदायक मानी जाती है।

चूर्ण बनानेके लिये औषधियाँ शुद्ध, नयी और अच्छी देखकर लानी चाहिये। पुरानी और दूषित औषधियाँ त्याग दें। शास्त्रकारोंने औषधियोंका संग्रह करनेका कार्य वैद्य पर ही रक्खा है। भिन्न-भिन्न औषधियोंके वीर्यका परिपाक-काल शरद, शिशिर और वसन्त ऋतु हैं। इनमेंसे जिस ऋतुमें औषधिका पाक होता हो, उस समय पर जङ्गलोंके शुद्ध स्थानोंमें उत्पन्न हुई औषधियोंको विधिपूर्वक ला छायामें सुखाकर सम्हालपूर्वक रखना चाहिये।

अग्नि, मकड़ीकी जाल लगी हुई, कीटाणुओंसे दूषित, अशुद्ध स्थानमें और असमय पर उत्पन्न हुई हो, ऐसी औषधियोंको नहीं लेना चाहिये। किंतु इस नियमका पालन वर्तमानमें बहुत कम अंशमें होता है।

वर्तमानमें प्राय पसारियोंके पाससे ही औषधियाँ लीजाती हैं। औषधि नयी-पुरानी, अच्छी-बुरी, शुद्ध-अशुद्ध कैसी हैं, इस बातका निर्णय करना दुष्कर होगया है। कितनेक वैद्य भी औषधियोंको नहीं पहचानते, और पंसारी अज्ञान, प्रमाद या स्वार्थवश गलती ही औषधि दे देते हैं। फिर इच्छित लाभ कैसे हो सकेगा? चिकित्सकोंको चाहिये कि, अच्छी रीतिसे जाँच किये बिना औषधियोंको प्रयोगमें न लें।

चूर्णोंको आवश्यक परिमाणमें तैयार करके काँचकी अच्छे डाटवाली शीशियोंमें सम्हालपूर्वक रखना चाहिये। बिना सम्हाल खुले रहे हुए चूर्ण थोड़े समयमें ही हीनवीर्य होजाते हैं। क्षार-मिश्रित चूर्णोंको लोहपात्रमें नहीं रखना चाहिये, अन्यथा दूषित होजाते हैं।

इस प्रकरणमें कतिपय क्षारयुक्त चूर्ण भी लिखे हैं। क्षारको अस्थि-पोषणार्थ हितावह माना है, परन्तु धमनियोंकी दिवालोंको हानि पहुँचाता है।

क्षारमें साधारणतः पाचक, तीक्ष्ण, पित्तवृद्धिकर और शुक्रनाशक गुण हैं। इस-लिये पाचन क्रियामें हितावह होनेपर भी क्षारयुक्त औषधि क्षय, प्रमेह, व्रण, नेत्र-रोग और पित्ताधिक रोगोंमें, सगर्भा स्त्रियों, बालक और वृद्धोंको तथा उष्ण ऋतुमें सब रोगियोंके लिये विचार करके देना चाहिये। दुरुपयोग होनेसे दांतोंमें दर्द, मुखमें छाले, आमाशयमें दाह, धातुक्षीणता, मगजमें उष्णता, सन्धि स्थानोंमें पीड़ा आदि विकार उत्पन्न होकर शरीर निस्तेज बनता जायगा।

कितनेक चूर्णोंमें अफीम आदि विष मिलाया है। वे चूर्ण जहां बनते हैं। अतः आवश्यक सूचना प्रकरण और गुटिका प्रकरणके प्रारम्भमें सूचना लिखी है, उसे लक्ष्यमें रखकर उपयोग करना चाहिये।

(१) महासुदर्शन चूर्ण।

बनावट—हरड़, बहेड़ा, आँवला, हल्दी, दारुहल्दी, बड़ी कटेली, छोटी कटेली, कचूर, सोंठ, मिर्च, पीपल, पीपलामूल, मूर्वा (मोरवेल), गिलोय, धमासा, कुटकी, पित्तपापड़ा, कुड़ाकी छाल, मुलहठी, नागर-मोथा, त्रायमाण, नेत्रवाला, पुष्करमूल, नीमकी छाल, अजवायन, इन्द्र-जव, भारङ्गी, सुहिजनेके बीज, फिटकरीका फूला, बच, दालचीनी, पद्माख, सफेद चन्दन, अतीस, खरेटी, शालपर्णी, पृष्टपर्णी, वायविड़ङ्ग तगर, चित्रकमूल, देवदारु, चव्य, पटोलपत्र, कमलगट्टा, असगन्ध, विदारीकन्द, खस (वीरण), लौंग, वंशलोचन, तेजपात, जावित्री और तालीसपत्र, इन ५२ ओषधियोंको समभाग लें, और सबसे आधा चिरायता मिलाकर बारीक कपड़छान चूर्ण करें। (शा० सं०)

मात्रा—२ से ४ माशे दिनमें ३ बार जलके साथ दें। अथवा ४ से ६ माशे चूर्णका फाँट बनाकर पिलावें।

उपयोग—यह चूर्ण सब प्रकारके पुराने और नये ताप, एक दोषज, त्रिदोषज, द्विदोषज, सन्निपात, शीतज्वर, विषम ज्वर, धातुगत ज्वर, मन्दाग्नि, अजीर्ण, निर्बलता, शिरदर्द और ज्वरके साथ श्वास, कास, पाडु, हृद्रोग, कामला, कटिशूल, पार्श्वशूल आदि सब विकारोंका नाश करता है। ज्वर हो तब उतारनेके लिये और न हो तब रोकनेके लिये दिया जाता है। इस चूर्ण के उपयोगमें, किस जातिका ज्वर है, इस बातके निर्णयकी विशेष आवश्यकता नही है।

ज्वरोंकी उत्पत्ति विशेषतः आमप्रकोप होनेके पश्चात् प्रस्वेद द्वारा विष बाहर न निकलने पर होती है। इस चूर्णसे आमका पचन, कोष्ठशुद्धि, विषको निर्विष बनाना और प्रस्वेद ग्रन्थियोंको बन्धनमुक्त

बनाना, ये चारों कार्य सरलतापूर्वक होजाते हैं। इस हेतुसे यह चूर्ण सब प्रकारके ज्वरों पर उपयोगी होता है।

यह महा सुदर्शन चूर्ण जिस तरह नूतन ज्वरमें उपयोगी है उसी तरह जीर्ण ज्वरपर भी लाभदायक है। कभी कभी मधुरा (आन्त्रिक ज्वर) उतर जानेपर रोगी आहार विहारमें भूल कर देता है। जिससे ज्वर पुनः प्रकुपित होकर आजाता है। मधुराके पहले आक्रमण में रोगी बहुधा क्षीण होजाता है, उसपर पुनः आक्रमण होनेसे रोगी अधिक कृश और दीन बन जाता है। उसपर महा सुदर्शन चूर्ण मिला, सिद्ध दूध बनाकर देते रहनेसे सरलतापूर्वक कीटाणु विष और आम जल कर ज्वर शमन होजाता है, क्षुधा प्रदीप्त होकर शरीरमें बल आने लगता है।

(२) लघुसुदर्शन चूर्ण।

बनावट—गिलोय, छोटी पीपल, हरड़, बहेडा, सफेद चन्दन, कुटकी, नीमकी अन्तरछाल, सोठ और देवदारु, सब समभाग और सबके वजनसे आधा चिरायता मिलाकर बारीक चूर्ण करें। (आ०भि०)

मात्रा—३ से ४ माशे दिनमें ३ बार जलके साथ दें।

उपयोग—यह चूर्ण सब प्रकारके नये और पुराने बुखार, मंदाग्नि और शिरदर्दको दूर करता है। अर्क बनाकर देनेसे कड़वापन चला जाता है, जिससे सब कोई लेसकते है, और गुण भी पूरा करता है।

किसी-किसी की देहमें मद अत्यधिक बढ़ जानेसे भयंकर प्रस्वेद आता रहता है। शीतकालमें भी प्रस्वेद से कपड़े भीग जाते हैं। उनको यह चूर्ण भोजनके बीचमें शहद या शक्करके साथ देते रहनेसे प्रस्वेद कम होजाता है। मात्रा ४-६ रत्ती।

सगर्भा स्त्रीको मलेरिया आनेपर उसे शीत कम्प अधिक त्रास पहुँचाता है, तृषा, शिर दर्द, फिर अति प्रस्वेद आना, थकावट, घबराहट आदि लक्षण प्रतीत होते है। उसपर इस लघुसुदर्शन चूर्ण का फाण्ट बनाकर देनेसे ज्वर निवृत्त होजाता है।

(३) अमृत चूर्ण।

बनावट—नौसादर और फिटकरी समभाग मिलाकर डमरूयन्त्र द्वारा पुष्प उड़ा ले। फिर अपामार्गक्षार और आकका क्षार आठवाँ-आठवाँ हिस्सा मिला, काली तुलसी और आकके पत्तोंके रसकी एक-एक भावना देकर चूर्ण बनाले।

(धन्वन्तरि)

सूचना—सफेद फिटकरीकी अपेक्षा लाल फिटकरी मिलाने पर विशेष लाभ पहुँचता है ।

मात्रा—२ से ३ रत्ती दिनमें ३ वार दूध, चाय या निवाये जलसे ।

उपयोग—यह चूर्ण नये बुखार, जीर्णज्वर, ठण्डीसहित या ठण्डीरहित विषम ज्वर (सतत, चातुर्थिक आदि) को दूर करता है । केवल फिटकरी और नौसादरके पुष्प को ही ३-३ रत्ती मिश्रीके साथ मिलाकर देवे, तो भी अपना प्रभाव दिखा देता है । यह चूर्ण दोषोंको पचन करा प्रस्वेद लाकर ज्वरको उतार देता है ।

सूचना—मलावरोध हो, तो पहले ज्वरकेसरी, अश्वकञ्चुकी रस, पञ्चसकार अथवा अन्य ओषधिसे कोष्ठ शुद्धि कर लेनी चाहिये ।

(४) सितोपलादि चूर्ण ।

बनावट—मिश्री १६ तोले, वंशलोचन ८ तोले, पीपल ४ तोले, छोटी इलायचीके बीज २ तोले और दालचीनी १ तोला लें । सबको कूटकर कपड़छान चूर्ण बनावें । (च० सं०)

सूचना—मिश्री, वंशलोचन और अन्य ओषधियोंको अलग-अलग कूट-कपड़छन करें । कपड़छन वंशलोचनको ६ घण्टे खरल करे । फिर शेष ओषधियाँ मिला ६ घण्टे तक और खरल कर लेवे ।

मात्रा—२ से ४ माशे दिनमें २ वार घी और शहदके साथ । कफ प्रधान रोगोंमें घी से शहद दूना लें । वात और पित्तप्रधान रोगोंमें घी से शहद आधा मिलावे । घी पहले मिलावे फिर शहद मिलावें । कफ सरलतासे निकलता हो ऐसी खाँसीमें केवल शहदके साथ ।

उपयोग—यह चूर्ण क्षय, खाँसी, जीर्णज्वर, धातुगतज्वर, मन्दाग्नि, अरुचि, प्रमेह, छातीमें जलन, पित्तविकार, खाँसीमें कफके साथ खून आना, बालकोंकी निर्बलता, रात्रिमें ज्वर आना, नेत्रमें उष्णता तथा गलेमें जलन आदि विकारोंको दूर करता है । सगर्भा स्त्रियोंको ३-४ मास तक सेवन करानेसे गर्भ पुष्ट और तेजस्वी बनता है ।

(५) बृहत् सितोपलादि चूर्ण ।

बनावट—दालचीनी १ तोला, छोटी इलायची २ तोले, छोटी पीपल, मुलहठी, बनफशाके फूल, गोजिह्वा (गाजवाँ) और तालीसपत्र चार-चार तोले, वंशलोचन ८ तोले और मिश्री १६ तोले लें । सबको कूट-पीस-छानकर चूर्ण करे ।

मात्रा—२ से ४ माशे दिनमें ३ वार घी और शहदके साथ ।

उपयोग—यह चूर्ण सब प्रकारकी खाँसी, श्वास, जुकाम, मंद

ज्वर, दाह और मन्दाग्निको दूर करता है, निमोनियामें भी अति हितकर है। यह चूर्ण श्वासवाहिनियोंको श्लैष्मिक कलाके दोषको दूर करता है, जिससे शुष्क कास ज्वरसह सरलता पूर्वक शमन होजाता है।

(६) लवणभास्कर चूर्ण।

बनावट—समुद्रनमक ८ तोले, कालानमक ५ तोले, काँच लवण, सैंधानमक, धनिया, पीपल, पीपलामूल, कालाजीरा, तेजपात, नागकेशर, तालीसपत्र, अम्लवेत सब २-२ तोले, कालीमिर्च, जीरा, सोंठ, तीनों १-१ तोला, अनारदाना ४ तोले, इलायची और दालचीनी आधा-आधा तोला ले। सबको मिला कूट करके बारीक चूर्ण करे। (शा० सं०)

मात्रा—२ से ३ माशे दिनमें २ बार मट्ठे या जलके साथ ले।

उपयोग—यह चूर्ण उदररोग, वात और कफसे उत्पन्न गुल्म रोग, प्लीहावृद्धि, बवासीर, संग्रहणी, अजीर्ण, मन्दाग्नि, कब्ज, शूल, शोथ, आमवात आदि दोषोंको दूर कर अग्निको प्रदीप्त करता है।

अग्निमान्द्य और निर्बलतामें लवणभास्करके साथ १-१ रत्ती शुद्ध कुचिले का चूर्ण और १-१ माशा सोडा बाईकार्ब मिला देनेसे विशेष लाभ पहुँचता है। एवं मलावरोध होनेसे लवणभास्कर और पंचसकार मिलाकर सेवन करानेपर मलावरोध, उदरपीड़ा, अग्निमान्द्य आदि विकार दूर होते है। यदि अपचनसह उदरवात रहता हो, तो शुद्ध कुचिला, लहशुनादि वटी और सोडा बाईकार्ब मिला देना चाहिये। लहशुनादि वटी मिलाने पर अपचन रूप विकार सरलतासे दूर होता है।

कभी कोष्ठबद्धता होनेपर अपानवायु दूषित होजाती है। फिर सरलतासे बाहर नहीं सरती। परिणाम में आफरा रहना और किसीको हृदयशूल उपस्थित होता है। उसपर यह चूर्ण अच्छा लाभ पहुँचाता है। दिनमें ३ समय देना चाहिये। सुबह निवाये जलसे, दोपहर और रात्रिको घीके साथ देकर ऊपर निवाया जल पिलावे। इस तरह योजना करने पर अग्निमान्द्य, आफरा, शूल आदि दूर होजाते हैं। आवश्यकता होनेपर उदर पर एरण्ड तैल और कालानमक की मालिश कर सेक भी करना चाहिये।

सूचना—इस चूर्णको अच्छे डाटवाली शीशीमे रखे। खराब डाटवाली शीशी या टीनके डिब्बेमे रखनेसे वर्षाऋतु मे दूषित होजाता है

(७) हिंग्वष्टक चूर्ण॥

बनावट—सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, अजमोद (या अजवायन),

सैंधानमक, जीरा, कालाजीरा और भुनी हींग इन ८ औषधोंको समभाग मिलाकर बारीक चूर्ण करें। (अ० हृ०)

मात्रा—२ से ४ माशे भोजनके समय घीके साथ लेवें।

उपयोग—यह चूर्ण अजीर्ण रोग, अपचन, मन्दाग्नि, हैजा, पतला दस्त, वातसंग्रहणी, वातगुल्म, वातशूल, आफरा आदि दोषोंको दूर करके पाचनशक्ति को सुधारता है। कफज और वातज विकारमें लाभदायक है। पित्तविकार में और पित्तप्रधान प्रकृति वालों के लिये इसका उपयोग नहीं करना चाहिये।

(८) शिवाक्षारपाचन चूर्ण।

बनावट—हिंग्वष्टक चूर्ण, छोटी हरड़का चूर्ण और सज्जीखार, तीनों समभाग ले। सबको मिला बोतलमें भरें। (आ० नि० मा०)

मात्रा—३ से ४ माशे दिनमें २ बार निवाये जलके साथ लें।

उपयोग—यह चूर्ण वायु, अजीर्ण, कब्ज, आफरा, हिचकी, वमन, अरुचि, शूल, हैजा और कृमि आदि रोग नष्ट करता है। इस चूर्णसे अग्नि प्रदीप्त होती है, आमपाचन होता है; अपानवायु शुद्ध होती है तथा मलावरोध दूर होता है।

(९) स्वादिष्टपाचन चूर्ण।

प्रथम विधि—नीबूका सत्व (Citric Acid) १॥ तोले, मिश्री २६ तोले, त्रिजात इलायची, दालचीनी, तेजपात ६ तोले, सोंठ ४ तोले कालीमिर्च २ तोले, पीपल २ तोले, सफेद जीरा १२ तोले, धनिया ८ तोले और सैंधानमक १० तोले ले। पहले पत्थरकी खरलमें नीबूके सत्वमें लगभग ६ माशे जल मिलावे। पश्चात् उसके साथ काष्ठादि औषधियों का कपड़छान चूर्ण मिलाकर ३ घण्टे खरल करें। बादमें मिश्री मिलाकर १ घण्टे तक खरल करे। फिर सैंधानमक मिला ३ घण्टे खरल करनेसे कटु, अम्ल, मधुर और लवण, इन सब रसोंका स्वाद एक होजाता है।

मात्रा—३ से ४ माशे दिनमें २ बार जलके साथ ले।

उपयोग—यह चूर्ण, अरुचि मन्दाग्नि, उदरवात, अजीर्ण, कब्ज अरुचि, आदि दोषोंको दूर करता है।

सूचना—मिश्रीके स्थानमें शक्कर मिलाने पर चूर्णमे कुछ चिपचिपापन होजाता है। अत मिश्री या बूरा मिलाना चाहिये।

दूसरी विधि—सफेद जीरा ८ तोले, काला जीरा, सोंठ, काली-

मिर्च, पीपल, दालचीनी, तेजपात, लौंग, पीपलामूल, अजवायन, धनिया, सौंफ, काला नमक, नौसादर २॥-२॥ तोले, सैंधानमक ५ तोले; सूखा पोदीना, बड़ी इलायची, टारटरिक एसिड १-१ तोला, भुनी हींग और पीपरमेंटके फूल ३-३ माशे ले। सबको कूटपीस छानकर चूर्ण बना लेवें। केवल पीपरमेंट पीछे मिलावे। (श्री वैद्य परमानन्द जी)

मात्रा—१-१ माशा भोजनके बादमें सेवन करे।

उपयोग—यह चूर्ण अति स्वादिष्ट और पाचक है। मन्दाग्नि, उदरवात, मलावरोध और अजीर्णको दूर करता है।

तीसरी विधि—भुना जीरा, समुद्र नमक और सैंधानमक ८-८ तोले, काला नमक और कालीमिर्च ५-५ तोले, सोंठ, पीपल, दालचीनी और नौसादर २॥-२॥ तोले, भुनी हींग ६ माशे और पीपरमेंटके फूल ३ माशे ले। सबको कूट कपड़छान कर मिला लेवे।

मात्रा—२ से ४ रत्ती जल या मट्ठेके साथ लेवें।

उपयोग—यह चूर्ण उग्र है, यकृतके पित्तका स्राव अधिक कराता है। इसके सेवनसे उदरका भारीपन तत्काल दूर होता है, आमाशय और अन्त्रकी क्रिया बढ़ जाती है, तथा पाचक रसका स्राव अधिक होकर भोजनका परिपाक सत्वर होता है। इसका सेवन करके तुरन्त चूना लगा पान नहीं खाना चाहिये, अन्यथा जीभ फट जाती है।

(१०) चन्दनादि चूर्ण।

बनावट—सफेद चन्दन, नेत्रबाला, अगर, तगर और वंशलोचन सबको समभाग और सबके बराबर मिश्री मिलाकर महीन चूर्ण करें।

मात्रा—३ से ६ माशे दिनमें २ बार दूधके साथ ले।

उपयोग—यह चूर्ण दाह, पित्त, शिरदर्द, तृषा और मूत्रकृच्छ्र को दूर करता है, तथा मस्तिष्कको शान्त बनाता है।

(११) पाठादि चूर्ण।

बनावट—पाठा, बेल की गिरी, चित्रकमूल, सोंठ, मिर्च, पीपल, जामुनकी गुठली, अनारदाना, धायके फूल, कुटकी, अतीस, मोथा, दारुहल्दी, चिरायता, कुड़ेकी छाल, ये १५ ओषधियाँ समभाग और सबके बराबर इन्द्रजौ मिला कूट-कपड़छानकर चूर्ण करे। (च० द०)

मात्रा—३ से ४ माशे शहदमें मिलाकर दिनमें ३ बार दें ऊपर चावलोंका धोवन पिलावे।

उपयोग—यह चूर्ण वमन, ज्वरातिसार, शूल, तृषा, दाह, ग्रहणी

रोग, अरुचि और मन्दाग्निको नष्ट करता है।

(१२) यवानीखांडव चूर्ण ।

बनावट—अजमोद, अनारदाने, सोंठ, इमली, अम्लबेत और सुखाये हुए बेरका गूदा, प्रत्येक ४-४ तोले, कालीमिर्च २॥ तोले पीपल १० तोले; दालचीनी, कालानमक, धनिया और जीरा २-२ तोले और मिश्री ६४ तोले ले। सबको एकत्र मिला, कूटकर चूर्ण करे। (शा० सं०)

मात्रा—४ से ६ माशे दिनमें २ बार जलके साथ दे।

उपयोग—यह चूर्ण पांडुरोग, हृदयरोग, संग्रहणी, ज्वर, वमन, शोष, अतिसार, प्लीहा, आफरा, मल-मूत्रावरोध, अरुचि, शूल, मदाग्नि, बवासीर, जिह्वा और कण्ठके रोग को नष्ट करता है; तथा पचनक्रिया को सुधारता है। पित्तप्रधान प्रकृति वालो के लिये हितकर है।

(१३) प्लीहांतकक्षार चूर्ण ।

बनावट—सैंधानमक, बिड़नमक और कसीस प्रत्येक ८-८ तोले मिला गोमूत्रमें पीस, १०० पक्के पीले आकके पत्तो पर लेप करे। फिर हॉडीमें सपुट करके गजपुटमें भस्म करे। भस्म (क्षार) निकाल पीस कर रख ले। भस्म अपक्व हो, तो फिरसे संपुट करके पकाले।

मात्रा—½ से १ माशा दिनमें २ बार शहदके साथ दे।

उपयोग—यह चूर्ण प्लीहावृद्धि, वातरोग, वातगुल्म, शूल, आमवृद्धि, पचन, पुराना अजीर्ण रोग, पांडु और उदरवात आदि रोगोंको नष्ट करता है। चूर्ण अपक्व होगा, तो ज्वाक लाता है।

(१४) प्लीहांतक चूर्ण ।

बनावट—शुद्ध नौसादर ८ तोले, काला नमक और सोनागेरू १-१ तोला मिलाकर बारीक चूर्ण करे। (ब्र० स्वा० सदानन्द गिरिजी)

मात्रा—४ से ८ रत्ती दिनमें २ बार जलके साथ देवे।

उपयोग—यह चूर्ण यकृत्का पित्तस्राव अधिक कराता है, यकृत और प्लीहा (तिल्ली) की वृद्धि, उदररोग, शोथ, मूत्रदोष और मंदज्वर दूर करता है; तथा पचन क्रिया को बढ़ाता है।

सूचना—यह औषध खाकर तुरन्त चूना लगा हुआ पान और तमाखू नीं खाना चाहिये, नही तो जिह्वा पर घाव होजायगा।

(१५) एलादि चूर्ण ।

बनावट—छोटी इलायची, लौंग, नागकेशर, बेरके बीजकी गिरी, मुरमुरे (लाही), प्रियंगु, नागरमोथा, सफेद चन्दन और पीपल,

सबको समभाग मिला कर बारीक चूर्ण करें। (वै० जी०)

मात्रा—२ से ४ माशे समभाग मिश्री मिलाकर शहदमें देवे।

उपयोग—यह चूर्ण आमाशयकी उग्रताको शमन करता है, जिससे सब प्रकारकी वातज, पित्तज और कफज वमन दूर होते है। एवं यह पित्तदोष और अरुचिको भी दूर करता है।

कभी कभी वान्ति इतनी त्रासदायक होती है, कि जल तक भी पचन नहीं होसकता। थोड़े थोड़े समय वान्ति होजाती है। वान्तिमें पिया हुआ जल और आमाशयका पित्त निकलता है। इसपर यह चूर्ण दिनमें ५-७ बार देनेसे वान्ति दूर होजाती है। यदि वान्ति पित्ताशय-शूल वृक्षशूल अथवा उपान्त्रशूल आदि कारणोंसे होती हो, तो इस चूर्णका उपयोग नहीं होता। यह चूर्ण केवल आमाशयिक विकार पर व्यवहृत होता है।

(१६) नारायण चूर्ण।

बनावट—अजवायन, हाऊबेर, धनिया, हरड़, बहेड़ा, आँवला, कलोंजी, जीरा, सौंफ, पीपलामूल, अजमोद, कचूर, वच जंगली तुलसीके पत्ते, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, सत्यानाशीकी जड़, चीतामूल, जवाखार, सज्जीखार, पुष्करमूल, कूठ, सैंधानमक, कालानमक साँभर-नमक, समुद्रनमक, बिढनमक और वायविडङ्ग प्रत्येक एक-एक भाग; निसोत ३ भाग, दन्तीमूल ३ भाग, इन्द्रायणकी जड़ २ भाग और थूहरके पत्ते ४ भाग ले। सबको मिला चूर्ण कर थूहरके दूधकी भावना दे सुखाकर बोतलमें भरले (शा० सं०)

मात्रा—१ से २ माशे सुबह जलके साथ देवे।

अनुपान—अजीर्णमें गरम जल। उदरके रोगोंमें मट्ठा। जलोद-रमें ऊँटनीका दूध। बवासीरमें अनारदानोंका रस। स्थावर जंगम विषो में घृत। गुल्मरोगमें बेरका क्वाथ। कब्ज में दहीका पानी। वातरोगमें सुराका मण्ड। आफरामें शराब। परिकर्त्तिका (गुदामें कैंचीसे काटनेके समान पीड़ा होना) में कोकम आमचूर (वृक्षाम्ल) का क्वाथ।

उपयोग—नारायण चूर्णका उपयोग विशेषतः उदरशोधनके लिये होता है। मलसंग्रहजनित उदर रोग, संग्रहणी, बवासीर विष-विकार, हृद्रोग, पाण्डु, कास, श्वास, भगन्दर, मन्दाग्नि, ज्वर, कुष्ट, गुल्म, गलग्रह और वातरोग आदि पर इस चूर्णका उपयोग किया जाता है। इसके प्रभावसे मूलभूत वात, पित्त या कफकी विकृतिसे उत्पन्न सेन्द्रिय विष और मलसचय, दोनो दूर होते है, जिससे रोग

से शमन होकर अग्नि प्रदीप्त होती है।

सर्वाङ्ग शोथ और जलोदरमें अन्तर त्वचा और उदर्य्याकलामें जलसंचित होता है उस पर ऊँटनीके दूधके साथ इसका सेवन कराने से जलके सदृश पतले जुलाब लगकर जलका बहुत अंश निकल जाता है; फिर शेष जल रक्तमें आकर्षित होनेसे शोथ और उदर रोग नष्ट हो-जाते है।

वक्तव्य—मूल ग्रन्थमें थूहरके दूधकी भावना नहीं लिखी। हमने मल-शुद्धिमें हितकर समझकर बढाई है। नाजुक प्रकृति वालोंको मात्रा कम देनी चाहिये। इस चूर्णका उपयोग करनेके पहले स्नेहपान करा कोठे को स्निग्ध कर लेनेसे अच्छा लाभ पहुँचता है।

(१७) स्वादिष्टविरेचन चूर्ण।

बनावट—शुद्ध गन्धक, मुलहठी, सौंफ ५-५ तोले, सनाय १५ तोले और मिश्री २० तोले ले। सबको मिला कूटकर कपड़छन चूर्ण करे। (आ० नि० मा०)

मात्रा—३ से ६ माशे रात्रिको सोनेके समय निवाये जलसे दे।

उपयोग—यह चूर्ण कब्ज, आमवृद्धि, सिरदर्द, बवासीर, रक्त-विकार, पामा, खुजली आदिमें कोष्ठशुद्धिके लिये उपयोगी है। सुबह एक या दो दस्त आते है। इस चूर्णके सेवनसे उदरमें किसी भी प्रकार का दर्द नहीं होता और अन्त्रकी श्लैष्मिक कलामें उग्रता भी नहीं आती।

अपचन और आमातिसार में इस चूर्णके साथ हरड़ और सोंठ का चूर्ण मिला लेने से विशेष लाभ पहुँचता है। दस्तमें दुर्गन्ध, वमन उदरशूल और वातावरोध होनेपर यवक्षार ४ रत्ती मिला देना चाहिये।

(१८) त्रिफला चूर्ण।

विधि—बड़ी नयी रसदार हरड़, उत्तम बहेड़ा और नया आँवला, तीनोंके छिलकोंको समभाग मिलाकर चूर्ण करे। (च० स०)

पुराने, नीरस और सदोष हरड़ आदिसे या पुराने चूर्ण से योग्य लाभ नहीं मिलता।

मात्रा—२ से ६ माशे दिनमें १ या २ वार देवें।

अनुपान—(१) नये ज्वरमें पीपल और शहद।

(२) चातुर्थिक ज्वरमें दूध।

(३) खाँसीमें शहद और गोघृत।

(४) मेद रोगमें शहद या शहदमिश्रित जल।

(५) रसायन गुणके लिये २-२ माशे त्रिफलाको पीपल, वंशलोचन और शहदसे देवे। या रात्रिको कांतलोहके पात्रमें त्रिफलाके कल्कका लेप कर दूसरे दिन सुबह शहद और जल मिलाकर पिलावे। पचन होने पर गोघृत पिलावें।

(६) ऊरुस्तम्भमें कुटकीका चूर्ण मिलाकर निवाये जलसे दें।

(७) नेत्ररोगोंमें घी और शहदके साथ सेवन करते रहनेसे बढ़ता हुआ मोतियाबिन्दु आदि रोग रुक जाते हैं।

(८) शनैर्मेह पर गिलोयके स्वरसके साथ।

(९) सब प्रकारके प्रमेह पर त्रिफला चूर्णके समान हल्दी और दुगुनी मिश्री के साथ।

(१०) फेनमेह (थोड़ा-थोड़ा झागसह मूत्र आने) पर त्रिफला, अमलतासके गूदे तथा शहदके साथ दे। ऊपर मुनक्काक क्वाथ पिलावें।

(११) वृषणशोथमें गोमूत्रके साथ।

(१२) भगन्दर में खदिरछाल के क्वाथके साथ।

(१३) मूर्च्छा रोगीको शहदके साथ।

(१४) पित्तज विद्रधि पर त्रिफलाके क्वाथमें निसोतका चूर्ण और घी मिलाकर पिलावें।

(१५) संधिस्थानोंमें शूल होनेसे निद्रा न आती हो, तो त्रिफला क क्वाथमें शहद मिलाकर पिलावे।

उपयोग—यह चूर्ण प्रमेह, शोथ, कब्ज, विषमज्वर, रक्तविकार, वीर्यदोष, कफ, पित्त और कुष्ठरोगमें अति उपयोगी है। इसके सेवनसे अग्नि प्रदीप्त और मलशुद्धि होती है। घी-शहदके साथ खानेसे सेन्द्रिय विषप्रकोप और पित्तविकारजनित नेत्ररोग दूर होते हैं। पुराने रोगोंमें कम मात्रा में दीर्घकाल पर्यन्त सेवन करना चाहिये।

इस त्रिफला चूर्णमें अनेक अद्भुत गुण अवस्थित हैं। यह दीपन, रुचिकर, चक्षुष्य, रसायन, आयुस्थापक, वृष्य, सारक, हृद्य और बृंहण है। शास्त्रीय अनेक ग्रन्थोंमें इसका वर्णन मिलता है। चरक संहितामें त्रिफलाको रसायन कहा है, और लिखा है कि "जो मनुष्य त्रिफलाको घृत और शहदके साथ नित्य सेवन करता है, वह नीरोग रह कर पूरी १०० वर्षकी आयुको भोगता है।"

(१६) पंचसम चूर्ण।

बनावट—सोंठ, छोटी हरड़, पीपल, निसोत और कालानमक,

इन सबको समभाग लेकर बारीक चूर्ण करे। (शा० स०)

सूचना—कितनेक चिकित्सक इस चूर्णको नीबूके रसकी भावना देते हैं।

मात्रा—३ से ६ माशे तक निवाये जलके साथ ले।

उपयोग—यह चूर्ण शूल, आफरा, कब्ज, आमवात आदि रोगोंमें मलशुद्धि करके रोगोंको दूर करता है। इस चूर्णके सेवनसे कोष्ठ-शुद्धि होकर अग्नि प्रदीप्त होती है। कितनेक व्यक्तिको बार-बार मलावरोध होजाता है, और शारीरिक उत्ताप कुछ अंशमें बढ़ जाता है। उनके लिये यह चूर्ण हितावह है।

(२०) विरेचन चूर्ण।

प्रथम विधि—सनाय, गुलाबके फूल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, ३-३ तोले, बादामकी गिरी और कुलफाके बीज १-१ तोला तथा शुद्ध जमालगोटा ३ माशे ले। सबको कूटकर बारीक चूर्ण करे।

मात्रा—१॥ से २ माशे चूर्णको ३ माशे मिश्रीमें मिलाकर रात्रिको सोते समय ले। ऊपर गरम दूध अथवा गरम जल पीवे।

उपयोग—यह चूर्ण नवीन और पुराने कब्जको दूर करता है; जिससे आँते तथा आमाशय शुद्ध बन जाते हैं। इसके दस्तोंसे कमजोरी नहो आती, कोमल चित्तवाला भी ले सकता है। एक या दो दस्त सुबह खुलकर होजाते है।

दूसरी विधि—सौंफ २ तोले, भुना कालादाना ४ तोले, सनाय ४ तोले, कालानमक २ तोले, शुद्ध गन्धक १ तोला और सोंठ ३ तोले लेकर चूर्ण बनाले।

मात्रा—३ से ६ माशे तक गरम जलके साथ रात्रिको सोते वक्त लेनेसे सुबह एक-दो दस्त साफ आते है। आँतोंमें रहे हुए दूषित आमको दूर करनेके लिये यह चूर्ण अच्छा काम देता है।

(२१) पंचसकार चूर्ण।

बनावट—सोंठ, सौंफ, सनाय, सैंधानमक और बड़ी हरड़, सबको समभाग मिला कूट-छानकर चूर्ण बनाले। (सि० भे० म०)

मात्रा—३ से ६ माशे तक रात्रिको निवाये जलके साथ लें।

उपयोग—यह चूर्ण सौम्य विरेचन है। कब्ज, आमवृद्धि, शिर-दर्द, अजीर्ण, उदरवात, आफरा, उदरशूल, दन्तशूल आदि दोषोंको दूर कर पाचनक्रियाको सुधारता है।

(२२) हिंग्वादि चूर्ण।

बनावट—भुनी हींग, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, पाठा, हाऊबेर,

हरड़, कचूर, अजमोद, अजगंधा (वनतुलसी), इमली, अम्लबेंत, अनारदाना, पुष्करमूल, धनिया, जीरा, चित्रकमूल, वच, जवाखार, सज्जीखार, सैंधानमक, कालानमक और चव्य, इन २३ ओषधियोंको समभाग मिला कूटकर महीन चूर्ण करे। (च० सं०)

मात्रा—२ से ३ माशे भोजनके पहले निवाये जल या शरावसे।

उपयोग—यह चूर्ण वातप्रकोपसे उत्पन्न व्याधियाँ—पार्श्वशूल, हृदयशूल, वस्तिशूल, वातज और कफज गुल्म, आफरा, मूत्रकृच्छ्र, गुदा और योनिमें पीडा, ग्रहणी, वातज अर्श, सोहा, पाण्डु, अरुचि, फेफड़ोका जकड़ना, हिक्का, श्वास, कफ कास और गलेकी जकड़ाहट आदिको दूर करता है।

वक्तव्य—इस चूर्णको बिजोरेके रसकी ७ भावना दे गोलियाँ बना कर चूसने से विशेष लाभ होता है।

(२३) तालीसादि चूर्ण।

बनावट—तालीसपत्र, वच, वंशलोचन, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, पीपलामूल, चित्रकमूल, चव्य, हल्दी, बेलकी गिरी, अजमोद, कचूर, दालचीनी, तेजपत्र, इलायची, नागकेशर, लौंग, धायके फूल, अतीस, जायफल, अजवायन, पाठा, मोचरस, इमली, समुद्रनमक, विड़नमक, सैंधानमक, कालानमक, साँभरनमक, जीरा, काला जीरा, वायविड़ङ्ग, अम्लबेंत, अमचूर, हरड़, बहेड़ा, आँवला, पलाशक्षार, हुलहुल, जटामाँसी, नागरमोथा, नेत्रवाला, इलायची, ब्राह्मी, भुइँ आँवला और कूठ, सब १-१ तोला, असगंध ४७ तोले, शोधन की हुई भाँग ९४ तोले, और मिश्री १८८ तोले मिलावे। भाँगके स्थान पर हरड़का चूर्ण लेनेका भी रिवाज है। जब मादक गुण और पित्तवृद्धि कराना इष्ट हो, तब भाँग मिलानी चाहिये, और जब मल शोधनकी आवश्यकता हो, तब हरड़ मिलानी चाहिये। (यो० र०)

मात्रा—३ से ४ माशे तक दिनमें २ बार जलके साथ। भाँगमिश्रित चूर्णकी मात्रा १ से २ माशे।

उपयोग—यह चूर्ण अति दिव्य है। अरुचि और मलावरोध सह अग्निमान्द्यको दूर करता है। पित्तज, कफज, वातज, तीनो दोषप्रकोप से उत्पन्न विकारो को दूर करता है। संग्रहणी, क्षय, खांसी, दमा, अरुचि, प्लीहा, अर्श, अतिसार, ताप, वायु, स्थूलता, प्रमेह, मृगी, पाण्डु, गोला, उदररोग, कफज व्याधि, पित्तज, व्याधि चित्त-

श्रम, आफरा, विसूचिका मन्दाग्नि इत्यादि रोगो का नाश करता है। यह चूर्ण बालको के लिये भी अति हितकर है। वाणीकी स्पष्टता, पुष्टि, आयुष्य, बल, कान्ति, बुद्धि, स्मृति और धारणशक्तिको देनेवाला है।

(२४) प्रवाहिकारिपु चूर्ण ।

बनावट—शीशियोको बन्द करनेके लकड़ीके डाट पुराने अथवा नयोको हॉडीमें भर जलाकर कोयला करे। निर्धूम होनेपर बरतन ढक देवे, जिससे सफेद राख न होजाय। एक सेर डाटमेंसे ६ तोले भस्म मिलती है। (आ० नि० मा०)

सूचना—जो डाट साफ हो, अन्य दूषित ओषधियोंके संयोग से खराब न हुए हो, ऐसे डाटोको उपयोगमे ले। अथवा कारखाने वालो से डाटके नये टुकडे लेकर उनकी भस्म बना लेवे।

मात्रा—२ से ३ रत्ती दिनमें ३ बार दहीके साथ देवे।

उपयोग—यह चूर्ण ग्राही, स्तम्भक, शूलघ्न, कीटाणुनाशक और पाचक है। घोर रक्तातिसार, पेचिश, दस्तमें पीप और रक्तका जाना इत्यादि दोषोको दूर करता है। प्रवाहिकाके समान रक्तप्रदरमें भी तत्काल लाभ पहुँचाता है।

(२५) वज्रक्षार चूर्ण ।

बनावट—समुद्रनमक, सैंधानमक, विड़नमक, जवाखार, कालानमक, सोहागेका फूला और सज्जीखार, सबको समभाग मिलाकर बारीक चूर्ण करे। फिर थूहरके दूधकी तीन दिन तक भावना देकर धूप में सुखावे। पश्चात् गोला बना आकके पत्तोमें लपेट हाडीमें रख, कपड़मिट्टी करके गजपुट दे। स्वॉग शीतल होनेपर क्षारको निकालकर चूर्ण करे। फिर सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, ऑवला, अजवायन, जीरा और चित्रकमूल, सबको समभाग लेकर चूर्ण करें। पश्चात् क्षार और चूर्णको समान मात्रामें मिलाले। (नि० र०)

मात्रा—३-३ माशे दिनमें २ बार देवें।

अनुपान—वायु अधिक होने पर निवाया जल। पित्त अधिक हो तो घी कफकी अधिकता में गोमूत्र। तीनो दोषो के प्रकोपमें कॉजी।

उपयोग—यह चूर्ण गुल्म, शूल, अजीर्ण, शोथ, सब प्रकारके उदर रोग, अग्निमान्द्य उदावर्त और प्लीहा आदि रोगोको थोड़े ही दिनोंमें नष्ट करता है।

(२६) लघुगंगाधर चूर्ण ।

बनावट—नागरमोथा, इन्द्रजव, बेलगिरी, लोद, मोचरस और

धायके फूल सबको समभाग लेकर चूर्ण करे। (शा० स०)

मात्रा—२ से ४ माशे सट्ठे या चावलों के धोवन के साथ दिनमें ३-४ बार। तीव्र रोगमें कम मात्रामें अधिक बार देवें।

उपयोग—यह चूर्ण अतिसार और पेचिशमें लाभदायक है। रक्तातिसार वाले बालकोंको भी दिया जाता है। और ग्रन्थकारों ने इसमें सोंठ मिलाकर 'अतिसार-गजकेशरी', नाम दिया है।

यह चूर्ण सामान्य ओषधियों से बना है, परन्तु नूतन तीव्र अतिसार जिसमें दिनमें २५-५० दस्त होते हों, रोगी बिलकुल गल गया हो, ऐसी अवस्थामें भी इसने अनेकों को बचाया है।

सूचना—ज्वर हो, तो जलके साथ दे।

(२७) जातिफलादि चूर्ण

बनावट—जायफल, लौंग, इलायची, तेजपात, दालचीनी, नागकेशर, कपूर, सफेद चन्दन, तिल, वंशलोचन, तगर, आँवले, पीपल, हरड़, कलौंजी, चित्रकमूल, सोंठ, बायविडंग, तालीसपत्र और कालीमिर्च, सबको समभाग ले। सबकी बराबर शुद्ध भाँगको मिलाकर बारीक चूर्ण करे। फिर सब चूर्णकी बराबर मिश्री मिला ले। (यो० र०)

मात्रा—२ से ४ माशे दिनमें २ बार शहदके साथ दे।

उपयोग—यह चूर्ण संग्रहणी, श्वास, क्षय, खाँसी और अरुचि को दूर करता है। इस चूर्णमें मुख्य ओषधि भाँग है, उसमें उत्तेजक, मादक, निद्राप्रद, वेदनानिवारक, आक्षेपहर और गर्भाशय-संकोचक गुण हैं। यह व्यवायी, आमपाचक, ग्राही, तीक्ष्ण, उष्ण, पित्तवर्द्धक और अग्निप्रदीपक भी है। इन सबके साथ मादक गुण होनेसे इसका उपयोग सम्हालपूर्वक करना चाहिये।

(२८) अविपत्तिकर चूर्ण।

बनावट—सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, नागरमोथा, विड़लवण, बायविड़ग, छोटी इलायचीके दाने और तेजपात, सब एक-एक तोला, लौंग १० तोले, निसोत ४० तोले और मिश्री ६० तोले ले। इन सबको मिला कूटकर बारीक चूर्ण करे। (भै० र०)

मात्रा—४ से ६ माशे भोजनके पहले ठण्डे जलके साथ देवे।

उपयोग—इस चूर्णके सेवनसे अम्लपित्त, शूल, अर्श, प्रमेह, मूत्राघात और मूत्राश्मरीका नाश होता है। केवल दूध और भातका भोजन करनेसे जल्दी लाभ होता है।

(२९) लवंगादि चूर्ण।

बनावट—लौंग, कपूर, इलायची, दालचीनी, नागकेशर, जायफल, खस (वीरण), सोंठ, कालाजीरा, पीपल, अगर, वंशलोचन, जटामांसी, नीलाकमल, सफेद चन्दन, तगर, नेत्रबाला और शीतलमिर्च, सब समभाग लेकर बारीक चूर्ण करें। फिर सबके वजनसे आधी मिश्री मिलावें। (शा० सं०)

मात्रा—२ से ४ माशे दिनमें दो बार शहद या जलके साथ दें।

उपयोग—यह चूर्ण शामक और शीतल है। पित्तप्रकोपसे उत्पन्न रोग—हृदय रोग, कण्ठ रोग, खाँसी, हिचकी, पीनस, क्षय, उरःक्षत, प्रतमक श्वास, अतिसार, अरुचि, प्रमेह, गुल्म, सग्रहणी आदिका नाश करता है। इसके सेवनसे अग्नि प्रदीप्त होती है, वातपित्त और कफकी विकृति दूर होती है।

(३०) गोमूत्रक्षार चूर्ण।

बनावट—१० सेर गोमूत्रको एक कढ़ाहीमें डालकर औटावें। चौथा हिस्सा शेष रहनेपर सोंठ ऽ।, जवाहरड़ ऽ।, सैंधानमक २॥ तोले और लौंग १। तोले कूट-पीसकर डाल दें। फिर खुरपेसे हिला-हिलाकर अग्नि पर भस्म बनालें। शीतल होनेपर बारीक चूर्ण करलें।

मात्रा—१ से २ माशे दिनमें २ बार निवाया जल, नागरबेलके पान या तुलसीके पत्तेके साथ साथ देवें।

उपयोग—यह चूर्ण कफ सहित श्वास, कास, उदररोग, मलावरोध आदि रोगोंको दूर करता है। साधारण औषध होनेपर भी श्वासरोगियो के लिये बहुत लाभदायक है। तमाखूके व्यसनियोंके श्वासरोगमें सत्वर लाभ पहुँचाता है। आमाशयमें रहे हुए कफ और आमको दस्तके साथ बाहर निकाल देता है तथा श्वासवाहिनियो में रहे हुए कफ को पिघलाकर प्रणालियोंको कफमुक्त कराता है।

(३१) कर्पूराद्य चूर्ण।

बनावट—कपूर, खस, शीतलमिर्च, जायफल, तेजपात और लौंग १-१ तोला, नागकेशर २ तोले, मिर्च ३ तोले, पीपल ४ तोले, और सोंठ ५ तोले लें। सबको कूटकर कपड़छान चूर्ण करें। फिर चूर्ण के समान मिश्री मिलाकर खरल करें। (यो० र०)

मात्रा—१ से २ माशे तक दिनमें ३ बार जल, बकरीके दूध, शहद अथवा घृतके साथ देवें।

उपयोग--यह चूर्ण राजयक्ष्मा रोगमें अरुचि, कास, स्वरभंग, श्वास, गुल्म, अर्श, वमन और कण्ठ रोगको नष्ट करता है ।

(३२) वृद्धदारुकादि चूर्ण ।

बनावट--सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, चव्य, दारुहल्दी, वरनाकी छाल, गोखरू, गोरखमुण्डी और गिलोय, इन १२ ओषधियोंको १-१ तोला और वृद्धदारुको १२ तोले लेवे । सबको मिलाकर बारीक चूर्ण करे । (वृन्द)

मात्रा--६-६ माशे दिनमें २ बार जल या काँजीके साथ दे ।

उपयोग--यह चूर्ण श्लीपद, स्थूलता, दारुण आमावात, कुष्ट, गुल्म, अरुचि और वातकफजन्य विकारको दूर करता है ।

(३३) विषहर चूर्ण ।

बनावट--पलाशकी जड़की छाल, आककी जड़की छाल, रीठे की छाल, सिरसके बीज, इन्द्रायणकी जड़, मैनफल वच, नीले-थोथेका फूला सब एक-एक तोला और मिश्री २० तोले लें । सबको मिलाकर बारीक चूर्ण करे ।

मात्रा--६ माशे से १ तोला दूध २० तोलेके साथ देवे ।

उपयोग--इस चूर्णके सेवनसे सब प्रकारके विष वमन और विरेचन होकर निकल जाते है । अच्छी तरह वान्ति होजाने पर १० तोले घी पिलानेसे शेष अंश बाधा नहीं पहुँचाता और पचनेन्द्रिय -संस्था में उत्पन्न उग्रता भी शमन होजाती है ।

(३४) अर्शोघ्न चूर्ण ।

बनावट--जहरी सूरण (जमीकन्द) २॥ सेर लेकर मोटा-मोटा कूटें । फिर ४० तोले लाल फिटकरीका फूला मिला हाँडीमें भर मुखमुद्रा करके १० सेर आरने कण्डोमें फूँकदें । शीतल होने पर सफेद रंगकी भस्म हो जाती है । उसे कपड़छान करके भरलें ।

मात्रा--१ से २ माशे दहीकी मलाई के साथ दिनमें २ बार ।

उपयोग--यह चूर्ण मस्सोंमेंसे खून गिरता हो, उसे थोड़े ही दिनोंमें बन्द करता है । शुष्क वातज अर्शमें भी यह लाभदायक है ।

भस्म तैयार न हो, तो सूरणका चूर्ण विलायती कैपसूल (एक प्रकारकी छोटी डिब्बी) में भर कर निगल जाने से भी पूरा लाभ मिलता है । जिलेटीनकी बनी हुई जीरो (शून्य) अथवा एक नम्बरकी कैप-सूल लेनी चाहिये ।

(३५) पुनर्नवादि चूर्ण ।

प्रथम विधि—पुनर्नवाकी जड़, देवदारु, गिलोय पाठा, सोंठ, गोखरू, हल्दी, दारुहल्दी, पीपल, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, चित्रकमूल, वासाके पत्ते, सबको समभाग लेकर बारीक चूर्ण करें। विरेचन की आवश्यकता हो, तो कुटकी और निसोत भी मिलालें। (यो० र०)

मात्रा—३ से ६ माशे दिनमें २ बार गोमूत्रके साथ अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ देवे।

उपयोग—यह चूर्ण सर्वाङ्ग शोथ (सारे शरीरमें फैली हुई सूजन); आठो उदर रोग और भयंकर व्रण आदिको दूर करता है।

दूसरी विधि—पुनर्नवाकी जड़, पीपल, सोंठ, चित्रक, दारुहल्दी, हल्दी गिलोय, निसोत, कुटकी, मकोय, हरड, नीमकी अन्तर छाल, भारङ्गी, सनाय, रेवतचीनी और देवदारु, इन १६ वस्तुओंको समभाग मिला कर चूर्ण बना लेवें। (धन्वन्तरि)

मात्रा—३ से ६ माशे दिनमें २ बार गोमूत्रके साथ दे।

उपयोग—यह चूर्ण सब प्रकारके शोथ रोगको थोड़े ही दिनोंमें दूर करता है, एवं उदररोगको भी नष्ट करता है।

(३६) अन्त्रवृद्धिहर चूर्ण ।

बनावट—भुनी हींग, छुआरा, सोवा, अजवायन, वायविडंग, सौंफ, पोदीना, इन्द्रजव, सफेद मिर्च, बड़ी इलायची और छोटी हरड़, १-१ तोला, बड़ी हरड़ और सनाय १॥-१॥ तोले तथा कारंज की गिरी और कालानमक २-२ तोले ले। इनमेंसे सनायको छोड़कर शेष औषधियोंको अलग-अलग तवे पर भूने। फिर सबको मिला कूट कपड़छान चूर्ण बनावे। (वै० स० वि०)

मात्रा—४ से ६ माशे दिनमें बार २ मिश्री, इलायची, दालचीनी और लौंगका चूर्ण मिलाये हुए आधसेर गरम दूधके साथ दे।

उपयोग—यह चूर्ण उदरमें वायुकी उत्पत्तिको रोकता है, संगृहीत पुराने मलको निकालता है, तथा अन्त्र आदि अवयवो को सबल बनाता है। इससे आँत उतरना (Hernia), उदरशूल, मन्दाग्नि, मलावरोध और उदारवात आदि विकार १ से १॥ मासमें दूर होते है।

(३७) मंजिष्ठादि चूर्ण ।

बनावट—मजीठ, हरड़, गुलाबके फूल और निसोत २॥-२॥ तोले, सनाय १० तोले और मिश्री ४० तोले मिलाकर बारीक चूर्ण

करें।

(वै० चि० सा०)

मात्रा—४ से ६ माशे रात्रिको सोनेके समय निवाये जलसे।

उपयोग—यह चूर्ण उदरविकार और रक्तमें रहे हुए विषको नष्ट करता है, जिससे रक्तविकार, पामा, त्वचा रोग और कब्ज दूर होते हैं। भोजन हलका पथ्य लेवे। अति खट्टे, अति नमकीन और अतिचरपरे पदार्थोंका सेवन न करे। शक्कर वाले मधुर पदार्थभी कम लें।

(३८) दन्तप्रभाकर मंजन।

बनावट—शुद्ध चाक मिट्टी ४० तोले, सेलखड़ीकी भस्म* ४० तोले, माजूफल, शीतलचीनी और लोद ५-५ तोले, कपूर, लोंग और छोटी इलायचीके दाने २॥-२॥ तोले, फिटकरीका फूला १। तोले, एसिड कारबोलिक २॥ तोले और पीपरमेंटका तेल १। तोले लें। पहले कारबोलिक एसिड और कपूर को मिलावे। जल होजानेपर चाक मिलालें। बादमें अन्य ओषधियोंका कपड़छान चूर्ण मिलावें। अन्तमें पीपरमेंटका तेल मिलाकर मजबूत डाटवाली शीशी में भरे। डिब्बेमें भरने से थोड़ेही दिनोंमें मंजन कमजोर और दूषित हो जाता है। इस चूर्ण में ४ तोले बोरिक एसिड मिलाने से गुणमें वृद्धि होती है। रंग और मधुरता लाना हो, तो १॥ १॥ माशे रेड कारमाइन और सैकरीन मिलावें सुगन्धके लिये आइल जिरेनियम १ ड्राम १०० तोले मंजनमें डाले।

उपयोग—यह दन्त मंजन दाँत और दाढ़के सब प्रकारके दर्द, पीप आना, रक्त गिरना, चीस चलना, दाँत हिलना, मसूढ़े फूलना, मैल लगना, दुर्गन्ध आना इत्यादि सब विकारोंको दूर करके दाँतोंको सफेद और मजबूत बनाता है। साथमें गले और जीभ पर लगे हुए कफ और मुँहके बेस्वादुपनको भी दूर करता है।

इस मंजनमें कपूर, कार्बोलिकएसिड, बोरिक एसिड पीपरमेण्ट तेल आदि कीटाणुनाशक ओषधि मिलायी है। कपूर, लौंग, इलायची आदि कण्ठसे नीचे रहे हुए कफ और मलको खेंच लेते है। सेलखड़ी और खड़िया दाँतोंको स्वच्छ और उज्ज्वल बनाते है, तथा माजूफल,

* १-१सेर सेलखडीको ४-६ हाडियोमें भरकर ऊपर ढक्कन ढके। फिर किसी ओषधिकी भस्म बनानेके लिये अग्नि देनेके समय गजपुट पर लोहे के दो डण्डे रखकर उसपर सेलखड़ीकी हाडियोंको रखें। स्वाग शीतल होने पर भस्मको निकाल कर उपयोगमें लेवें। कदाच भस्म मुलायम न बनी हो, तो सेलखड़ीको पुनः दूसरी बार अग्नि पर रख कर पक्का लेनी चाहिये।

लोद, फिटकरी आदि मसूढोंको सबल बनाते हैं।

(३९) दन्तदोषहर मंजन ।

बनावट—नीलेथोथेका फूला १ तोला, कपूर १ तोला, लौंग २ तोले, दालचीनी २ तोले, फिटकरीका फूला ४ तोले, समुद्रफाग ८ तोले, सोनागेरू ६ तोले और शुद्ध चाकमिट्टी १६ तोले लेवें। सबको कूटकर बारीक चूर्ण करें। (आ० नि० मा०)

उपयोग—यह मंजन दाँतो पर रगड़नेसे दाँत स्वच्छ और मजबूत होते है। दन्तशूल, कृमि, मसूढ़े फूलना, पीप, रक्त निकलना आदि दूर होते है। अधिक दर्द होने पर दिनमें २-३ बार उपयोग करें।

सूचना—दर्दके समय इस दतमंजनको लगाकर थोडी देर मुँह नीचा रखकर लार टपकावें। फिर निवाये जलसे कुल्ले करें। गलेके नीचे मजनके रसको न उतरने दें, अन्यथा नीलेथोथेके हेतुसे उबाक आने लगती है।

द्वितीय विधि—कासीस, नीलाथोथेका फूला, मीठा कूठ, पाठा, कत्था, माजूफल, कालीमिर्च, दालचीनी, लौंग और सैंधानमक, सोहागेका फूला और सॉभर नमक इन १२ ओषधियोंको समभाग मिला बारीक कपड़छान चूर्ण करें।

उपयोग—यह मंजन दाँतोका हिलना, तीव्र दन्तशूल, मसूढ़ेकी सूजन, दन्तकृमि, आदिको तत्काल मिटाता है। मंजन लगाकर लार टपकाते रहनेसे कीटाणु बाहर निकल जाते हैं, फिर शूल शमन हो-जाता है। कासीसके हेतुसे दाँतो पर कुछ कालापन आजाता है, परन्तु वह थोड़ेही दिनोंमें दूर होजाता है।

(४०) पाठादि चूर्ण ।

बनावट—पाठा, दारुहल्दी, दालचीनी, कूठ, मोथा, मजीठ, कुटकी, हल्दी, लोद और तेजनी (चव्य अथवा तेजबल), इन १० ओषधियोंको समभाग मिला, कूटकर कपड़छान चूर्ण करें। (अ० हृ०

वक्तव्य—यह पाठ चरक संहिताके तेजोह्वादि चूर्णके आधार पर बना है। जिसमें तेजोह्वा (तेजबल), हरड, छोटी इलायचीके दाने, मजीठ, कुटकी, नागरमोथा, पाठा, मालकागनी, लोध, दारुहल्दी और कूठ ये ११ ओषधियाँ हैं। चरक संहितामे लिखित चूर्ण उक्त चूर्णकी अपेक्षा अधिक लाभदायक प्रतीत होता है।

उपयोग—इस चूर्णको शहदमें मिलाकर मसूढ़ो पर मलनेसे तीक्ष्ण दर्द, खुजली, पीप निकलना (Pyorrhoea) आदि दूर होते हैं।

(४१) जातीपत्रादि चूर्ण।

बनावट—चमेलीके पत्ते, सोंठीकी जड़, गजपीपल, पियावाँसा, कूठ, वच, सोंठ, अजवायन, हरड़ और तिल, इन १० ओषधियोंको समभाग लेकर महीन चूर्ण करें।

(यो० र०)

उपयोग—इस चूर्णसे दाँतोंको नित्यप्रति घिसनेसे दुर्गन्ध, दाँतोंकी पीड़ा, दाँतोंका हिलना, पीप निकलना, मसूढ़ेकी सूजन, चीस चलना, खुजली, दाँतोंमें कीटाणु होना आदि रोग नष्ट होते है।

(४२) उष्णवातघ्न चूर्ण।

प्रथम विधि—फिटकरीका फूला, कलमीशोरा, छोटी इलायची, संगजराहत, सफेद चन्दन, रेवतचीनी, शीतलचीनी और सफेद जीरा एक-एक तोला, गन्धे बिरोजेका सत्व २ तोले, सफेद राल ३ माशे और मिश्री सबके बराबर मिला कूट-पीस कर छानलें।

मात्रा—३ से १ तोले प्रातःकाल दूधकी लस्सीके साथ दें।

उपयोग—इस चूर्णके सेवनसे नया सुजाक (पूयमेह-उष्णवात) ३–४ दिनमें ही दूर होते हैं।

सूचना—संगजराहतको कूट कपड़छान करनेके पश्चात् ३ घण्टे तक खरल करके मिलाना चाहिये।

दूसरी विधि—कपूर, गिलोयका सत्व, वंशलोचन, शीतलचीनी, छोटी इलायची, नागकेशर, हरड़, बहेड़ा, आँवला, नागरमोथा, बड़ा गोखरू, सतावर, सफेदचन्दन, तगर, पीपल लौंग, जटामासी, जायफल, सब ओषधियोंको समभाग लें, और मिश्री सबके बराबर मिला-कूटकर कपड़छान चूर्ण बनालें।

(धन्वन्तरि)

मात्रा—३ से ६ माशे दिनमें २ बार मिश्री मिले दूधके साथ दें।

उपयोग—यह चूर्ण सुजाककी तीक्ष्ण अवस्था दूर होने पर लाभदायक है। सुजाककी जड़ रक्तमें लीन विष, मूत्रप्रसेकनलिका में क्षत होना और मूत्रविकारको थोड़े ही दिनोंमें नष्ट करता है।

(४३) मूत्रविरेचन चूर्ण।

बनावट—शीतलचीनी, रेवतचीनी, छोटी इलायची और जीरा १–१ तोला, कलमी शोरा २ तोले और मिश्री ४ तोले मिला कूटकर कपड़छान चूर्ण बनावें।

मात्रा—तीन माशे, दूध-जलकी लस्सी के साथ दिनमें ३ से ६

उपयोग—यह चूर्ण मूत्रोत्पत्तिको खूब बढ़ाता है। सुजाकमें पीप दूर करने और मूत्रमार्ग साफ करनेके लिये उपयोगी है। भोजनमें केवल दूध-भात खानेसे इन्द्रिय-जुलाब अच्छा लगता है। इस चूर्णको ३ दिन सेवन करनेसे मूत्रमार्ग साफ होजाता है, और सुजाककी तीव्रावस्था शमन होती है।

(४४) हजरुलयहूद चूर्ण।

बनावट—खूब बारीक खरल किया हुआ हजरुलयहूद २० तोले, खरबूजेके बीजकी मींगी, खीरा ककड़ीके बीजकी मींगी, गोखरू, कालीमिर्च, सोंफ, अजवायन, जीरा, कुलथी और बबूलका गोंद, सब २-२ तोले लें, कूट छानकर चूर्ण बना लेवें।

मात्रा—१ से १॥ माशे चनेके काढेके साथ सुबह ७ दिन तक दें।

उपयोग—यह चूर्ण वृक्कस्थान (गुरदा) और मूत्राशय, दोनों की पित्त और कफप्रधान पथरियोंको तोड-तोड़कर निकाल देता है।

(४५) चोपचिन्यादि चूर्ण।

बनावट—चोपचीनी १६ तोले, मिश्री ४ तोले, पीपल, पीपलामूल, मिर्च, लोंग, अकरकरा, खुरासानी अजवायन, सोंठ, वायविड़ङ्ग और दालचीनी १-१ तोला लेकर बारीक चूर्ण करें। (आ० भि०)

मात्रा—३ से ६ माशे निवाये जल, घी या शहदके साथ दें।

उपयोग—यह चूर्ण उपदंश, सुजाक, व्रण, कोढ़, संधिवात, रक्तविकार और क्षीणताको नाश करता है, तथा वीर्यकी शुद्धि करता है।

(४६) वृद्धदंड चूर्ण।

बनावट—सफेद मूसली, गिलोयका सत्व, कोचके बीज, गोखरू, सेमलके जड़की छाल और आँवला, सबको समभाग लेकर चूर्ण करें। फिर सबके बराबर मिश्री मिलावें। (आ०ओ०)

मात्रा—६ माशेसे १ तोला दिनमें २ बार दूधके साथ दें।

उपयोग—यह चूर्ण सब प्रकारकी धातुक्षीणता, स्वप्नदोष, वृद्धावस्थामें होने वाले वातज प्रमेह आदि रोगोंको दूर करता है, और थोड़ेही दिनोंके सेवनसे कमरमें बहुत बल आजाता है।

(४७) शतावर्य्यादि चूर्ण।

बनावट—शतावरी, गोखरू, कोचके बीज, गँगेरनकी छाल, खरैंटीकी छाल और तालमखाना, सबको समभाग लेकर बारीक चूर्ण करें। (शा० सं०)

मात्रा—३ से ६ माशे तक रोज प्रातःकाल या रात्रिको समभाग मिश्री मिलाकर दूधके साथ देवे।

उपयोग—यह चूर्ण मूत्रविकार और वीर्यदोषको दूर करके वीर्यकी वृद्धि करता है; तथा रतिशक्तिको बढाता है।

(४८) वीर्यशोधक चूर्ण।

बनावट—बबूलकी बिना बीज वाली कच्ची फली, बबूलकी कोपल और बबूलका गोंद, तीनोंको समभाग लेकर चूर्ण करें।

मात्रा—४ से ६ माशे मिश्री मिलाकर लें। ऊपर से दूध पीवे।

उपयोग—यह चूर्ण वीर्यका पतलापन, स्वप्नदोष, शुक्रमेह (पेशाबके साथ वीर्यका जाना) इत्यादि धातुदोषको दूर कर वीर्यको शुद्ध, गाढा और श्वेत बनाता है। यह औषध सामान्य होने पर भी काम अच्छा देती है।

(४९) न्यग्रोधादि चूर्ण।

बनावट—बड, गूलर, पीपल, अरलू, अमलतास और असन (विजयसार), सब वृक्षोंकी छाल, आम और जामुनकी गुठली, कैथ, चिरोंजी, अर्जुन छाल, धायकी छाल, महुएकी छाल, मुलहठी, लोद, वरनाकी छाल, नीमकी अन्तर छाल, कडवे परवलके पत्ते, मेंढासींगी, दन्तीमूल, चित्रकमूल, अरहरकी मूल, करंजके बीज, हरड़, बहेडा, आंवला, इन्द्रजा, भिलावेकी गिरी (गोडंबी), सबको समभाग लेकर बारीक चूर्ण करें। (वृन्द)

मात्रा—३ से ६ माशे दिनमें २ बार शहदके साथ लें, और ऊपर त्रिफलेका क्वाथ पीवें।

उपयोग—इस चूर्णके सेवनसे सब प्रकारके वातज, पित्तज और कफज प्रमेह, मधुमेह, प्रमेहपिटिका और सब प्रकारके मूत्रकृच्छ्र शमन होते हैं। शान्तिपूर्वक ३–४ मास तक सेवन करना चाहिये।

(५०) नारसिंह चूर्ण।

बनावट—शतावरी, गोखरू, छिलके निकाले हुए तिल और बिदारीकन्द ६४–६४ तोले, वाराहीकन्द १ सेर, गिलोय १। सेर, शुद्ध भिलावे १२८ तोले, चित्रकमूलकी छाल आध सेर, त्रिकटु ३२ तोले, मिश्री ३॥ सेर, शहद १॥। सेर और घृत ७० तोले लेवे। इनमेंसे सूखी औषधियोंको कूट-छान, महीन चूर्ण करके मिश्री मिलावें। पश्चात् घृत और फिर शहद मिलावें। बादमें अमृतबानमें भरे। (वृन्द)

वक्तव्य—हम घी और शहद नहीं मिलाते। सेवन समय में ६ माशे घी और १ तोला शहद मिला लेना विशेष हितकर माना है।

रसायन और वाजीकरण गुणके लिये चूर्ण बनाना हो, तो गिलोयके स्थानमें गिलोय सत्व, भिलावेके स्थानमें भिलावेका मगज (गोडम्बी) और त्रिकटुके स्थानमें त्रिजात लेना विशेष लाभदायक है।

मात्रा—४-८ माशे चूर्ण या घी शहद मिलाहो तो ६ माशे से १ तोला दिनमें २ बार दूधके साथ लेवें।

उपयोग—इस चूर्णका १ मास तक सेवन करनेसे क्षय, कास, वृद्धावस्थाकी निर्बलता, गंज, फोड़ा, पीनस, भगन्दर, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, १८ प्रकारके कुष्ठ, ८ प्रकारके उदररोग, आदि दुस्तर प्रमेह, कष्टसाध्य पांच प्रकारकी कास, ८० प्रकारके वातरोग, ४० प्रकारके पित्तरोग, २० प्रकारके कफरोग, द्वन्द्वज रोग, त्रिदोषज रोग, सब जाति के अर्श, ये समस्त रोग दूर होकर पुरुष कंचनके सदृश तेजवाला, सिंह के समान पराक्रमी, घोड़ेके समान वेग और गम्भीर स्वर वाला बन जाता है। १०० स्त्रियोंके साथ रमण कर सकता है, और भगवान् नारसिंहके समान कान्तिमान् और पराक्रमी पुत्रोंको उत्पन्न करता है।

भिलावे मिलानेसे चूर्ण अधिक उग्र बनता है। वातप्रधान और कफप्रधान प्रकृति वालोंके लिये यह हितकर है। पित्तप्रकृति वालोंसे सहन नहीं होता एवं इसमें कामोत्तेजक गुण होने से बालकोंको भी न दें। यह चूर्ण सब प्रकारके वातरोगमें अच्छा लाभ पहुँचाता है।

(५१) वैश्वानर चूर्ण।

बनावट—सैंधानमक और अजवायन २-२ भाग, अजमोद ३ भाग, सोंठ ५ भाग और बड़ी हरड़के छिलके १२ भाग लें। सबको मिला, कूटकर बारीक चूर्ण करें। (वृन्द)

मात्रा—४-६ माशे दिनमें २ बार दहीका तोड़, काँजी, मट्ठा, घृत या निवाये जलके साथ देवें।

उपयोग—यह चूर्ण उत्तम दीपन पाचन और सारक है। आमवात, गुल्म, हृदयका भारीपन, वस्तिपीड़ा, प्लीहा, सारे शरीरमें बिच्छू के काटनेके समान पीड़ा होना, आफरा, अर्श आदि गुदाके रोग, मल, मूत्रावरोध, उदररोग, हाथ-पैरोंकी नसें खिचना इत्यादि रोगोंको नष्ट करता है, और वात की गतिको अनुलोम कराता है।

(५२) अजमोदादि चूर्ण।

बनावट—अजमोद, वायविडङ्ग, सैंधानमक, देवदारु, चित्रकमूल,

पीपलामूल, सौंफ, पीपल और कालीमिर्च १-१ तोला, छोटी हरड़ ५ तोले, विधारा १० तोले और सोंठ १० तोले लें। सबको मिला, कूटकर कपड़छान चूर्ण करें। (शा० स०)

मात्रा--२ से ४ माशे दिनमें २ वार गरम जलके साथ दे।

उपयोग—यह चूर्ण आमवात, सन्धिवात, गृध्रसीवात, कमर, गुदा, पीठ और पेटके शूल, उदरवात, वातविकार, शोथ और कफ-दोष को दूर करता है।

(५३) कृमिघ्न चूर्ण।

बनावट—करंजकी गिरी, पलासके बीज, किरमाणी (देशी), अजवायन, कपीला और वायविडंग सबको सम भाग लेकर बारीक चूर्ण करे।

मात्रा और उपयोग--२ से ३ माशे दिनमें ३ वार गुड़ मिलाकर निवाये जलसे लेवे। फिर दूसरे दिन सुवह अरंडीके तैलका जुलाव लेनेसे सब प्रकारके उदरकृमियोंका नाश होता है।

(५४) हिस्टीरियानाशक चूर्ण ।

बनावट--भुनी हींग २ तोले, वच २ तोले, जटामांसी २ तोले, कूठ ४ तोले, कालानमक ४ तोले और वायविडङ्ग १६ तोले ले। सबको मिलाकर कपड़छान चूर्ण करें।

मात्रा--१ से ३ माशे दिनमें ३ वार निवाये जलके साथ दे।

उपयोग—इस चूर्णका धैर्यपूर्वक एक-दो मास तक सेवन करने से हिस्टीरिया रोग दूर होता है, और उदरवात, कृमि, निद्रा न आना इत्यादि विकार भी शमन होजाते हैं।

इस चूर्णमें मुख्य ओषधि हींग है। हींग हिस्टीरिया और इतर समस्त आक्षेपजनक रोगोंमें अति उपकारक है। इसे हिस्टीरियाकी सब अवस्थाओंमें प्रयोजित कर सकते है। गर्भाशयके विकार-जनित कम्प वात और अपस्मार पर भी लाभ पहुँचाती है।

वच और जटामासी वातशामक और मस्तिष्कके लिये अति लाभदायक हैं। इन ओषधियोंके हेतुसे हिस्टीरिया रोगिणीकी अशान्ति कम होती है, और निद्रा भी आजाती है। कूठ आमाशय आदि स्थानोंके दोषको दूर करता है, तथा आक्षेप-निवारक है। कालानमक अग्निप्रदीपक और दोषपाचक है। वायविडङ्ग उदरशोधक है।

(५५) प्रदरान्तक चूर्ण।

बनावट—चिकनी सुपारी, माजूफल, चौलाईकी जड़, धायके

फूल, सोनागेरू, मोचरस, पठानीलोद और राल, सबको समभाग लेकर बारीक चूर्ण करे । फिर सबके बराबर मिश्री मिलावे ।

मात्रा—६ माशेसे १ तोला चावलोंके धोवनके साथ दें ।

उपयोग—यह चूर्ण गर्भाशय आदि प्रजननयन्त्र पर शामक असर पहुँचाता है । इसके सेवनसे सब प्रकारके रक्तप्रदर और श्वेतप्रदर दूर होते हैं, तथा गर्भाशय और बीजाशय सुदृढ़ बनते हैं ।

(५६) चन्दनादि चूर्ण ।

बनावट—सफेद चन्दन, जटामाँसी, लोद, खस, कमलकेशर, मिश्री, नागकेसर, बेलगिरी, मोथा, सोंठ, नेत्रवाला, पाठा, कुड़ाकी छाल, धायके फूल, इन्द्रजौ, अतीस, रसोत, आमकी गुठलीकी गिरी, जामुनकी गुठलीकी गिरी, मोचरस, कमलगट्टाकी गिरी, मजीठ, छोटी इलायची और अनारके फलकी छाल, सबको समभाग मिला कूट कपड़छान चूर्ण बना लेवें । (भै० र०)

मात्रा—४ से ६ माशे दिनमें २ बार लेवे । ऊपर ५–१० तोले चावलो के भिगोये जलमें ३ माशे शहद मिलाकर पीवे ।

उपयोग—यह चूर्ण सब प्रकारके घोर प्रदर, रक्तातिसार, रक्तार्श और रक्तपित्त रोगको १५-२० रोजमें दूर करता है ।

(५७) पुष्यानुग चूर्ण ।

बनावट—पाठा २ भाग तथा जामुनकी गुठलीकी गिरी, आमकी गुठली की गिरी, पाषाणभेद, रसोत, मोचरस, मजीठ, कुड़ेकी छाल, केशर, अतीस, नागरमोथा, बेलगिरी, लोद, गेरू, कायफल, मिर्च, सोंठ, मुनक्का, लालचन्दन, श्योनाक (अरलू) छाल, इन्द्रजौ, अनन्तमूल, धायके फूल, मुलहठी, अर्जुनछाल, सब समभाग मिलाकर चूर्ण करे । (च० सं०)

मात्रा—१॥ से ३ माशे दिनमें २ बार ले । ऊपर चावलोका भिगोया जल शहद मिलाकर पीवे अथवा लोदका चूर्ण दूधमें मिलाकर उसके साथ सेवन करे ।

उपयोग—इस चूर्णके सेवनसे सब प्रकारके श्वेत, नील, पीत और रक्त प्रदर, योनिदोष, रजोदोष, रक्तातिसार और अर्श रोग आराम होते हैं । इस चूर्णकी ओषधियोको पुष्य नक्षत्रमें लाकर तैयार करने का चरक संहिताकारने लिखा है ।

(५८) रजःप्रवर्तक चूर्ण ।

बनावट—भारंगी, कालीमिर्च, पीपल और सोंठ, ये सब ८-८

माशे और भुनी हींग ३ माशे ले । सबको पीसकर चूर्ण करें ।

मात्रा—२ से ३ माशे, ब्राह्मी १ तोला और काले तिल ५ तोलेके क्वाथके साथ दें । मासिकधर्म आनेके समयसे १० दिन पहलेसे रोज सुबह देवें ।

उपयोग—इस चूर्णके सेवन से मासिकधर्म नियमित रूपसे आने लगता है, और कष्ट नहीं होता । मासिकधर्म आने पर चूर्ण देना बन्द करे । इस रीतिसे ४-६ मास तक देते रहनेसे मासिकधर्मकी रुकावट, शूल, कमरमें दर्द, अरुचि, बेचैनी आदि दूषित रक्तकी विकृतिसे होनेवाली पीड़ा दूर होती है ।

(५९) रक्तप्रदररिपु चूर्ण ।

बनावट—पुराना ऊनी वस्त्र या ऊनको जलाकर काली राख करें, सफेद राख नहीं होनी चाहिये । खुले मैदानमें जलावो, निर्धूम होने पर ढक देनेसे राख काली होजाती है ।

मात्रा—१ से २ माशे तक दिनमें २ बार ठण्डे जलके साथ दें ।

बनावट—इस चूर्ण के सेवनसे घोर रक्तप्रदर आराम होता है । बड़ी-बड़ी ओषधियों से अच्छी न हुई अनेक रुग्णाएँ इस ओषधिसे अच्छी हो गई हैं । यह चूर्ण ६ माशे निवाये जलमें घोलकर पिला देनेसे उदरशूल पर भी तत्काल लाभ पहुँचाता है ।

(६०) शृंग्यादि चूर्ण ।

बनावट—काकड़ासींगी, अतीस, नागरमोथा, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, बड़ी कटेली, पुष्करमूल, समुद्रनमक, कालानमक, सैंधानमक, बिडनमक, जवाखार, सबको बराबर मिला कूटकर छान ले । (धन्वन्तरि)

मात्रा—बालकों को १ से ३ रत्ती दिनमें २ बार गरम जल या शहदके साथ । बड़े मनुष्यको १ से २ माशे दें ।

उपयोग—यह चूर्ण बालकोंकी छाती में कफ जमना, कफयुक्त कास, कब्ज, दाँत निकलनेके समयकी पीड़ा, पसली रोग (Broncho) (Pneumonea), हरे-पीले दस्त और ज्वर आदि रोगोंको दूर करता है । बच्चोंके लिये बड़ा लाभदायक है । वैसे बड़ोंके लिये भी हिक्का, श्वास, ऊर्ध्ववात, कास, अरुचि, जुखाम आदिमें अति उपयोगी है ।

(६१) पिप्पल्यादि चूर्ण ।

बनावट—पीपल, नागरमोथा, अतीस कड़वा और काकड़ासींगी सब समभाग मिलाकर बारीक चूर्ण करे । (र० र०)

मात्रा—१ से २ रत्ती २ से ३ वार बालकोंके लिये माताके दूध अथवा शहदके साथ चटावे।

उपयोग—यह चूर्ण बालकोंके ज्वर, अतिसार, जुकाम, वमन, श्वास, कास इत्यादि रोगोंको दूर करता है। इस चूर्णको 'मुस्तादिचूर्ण' 'घनादिचूर्ण' और 'बाल चातुर्भद्रिका' भी कहते हैं। यह बालकोंके लिये अति हितकर ओषधि है।

(६२) केशरादि चूर्ण।

बनावट—केशर १ तोला, जायफल १ तोला, दालचीनी २ तोले, लौंग ६ माशे, इलायची ३ माशे, शुद्ध चाक ४ तोले और मिश्री १६ तोले ले। सबको मिलाकर कपडछान चूर्ण करें।

मात्रा—२ से ४ रत्ती दिनमें ३ वार शहद या माताके दूधमें।

उपयोग—यह चूर्ण बालकोंके अतिसार, पेचिश और उदरपीड़ा को दूर करना है। बड़े मनुष्योंको भी लाभदायक है।

(६३) बालघोरकासघ्न चूर्ण (खोखली)।

बनावट—काली तमाखूके पत्तेका डठल २० तोले साफ करके ले। शाखाका कोई भाग आगया हो, निकाल डाले। फिर एक-एक इञ्चके टुकडे कर मिट्टीके बरतनमें रखकर जलावे। निर्धूम होनेपर ऊपर ढक्कन लगा देवे, जिससे कोयले होजायँ। राख न होनी चाहिये। फिर सैंधानमक २० तोले मिलावें। दोनोंको कूट कपडछान कर मजबूत डाट वाली शीशीमें भरें। जलाने, कूटने और शीशीमें भरनेकी क्रिया एक दिनमें ही कर लेनी चाहिये, अन्यथा सर्दी पाकर ओषधि निर्बल होजायगी। (आ० नि० मा०)

मात्रा–१ से ३ रत्ती तक दिनमें ३ वार देवे।

अनुपान—बालकोंके श्वास, ज्वर और अतिसार आदि व्याधियों में नागरवेलके पक्के १ पान और १ से २ रत्ती अजवायनके चूर्णको ३–४ माशे जलमें मिलाकर बारीक पीसे। फिर छान जलको निवाया कर ओषधि मिलाकर पिलादे।

काली खाँसीमें नागरवेलके १ पके पान और २ इलायची (छिलका सहित) को साथमें मिला जल डालकर पीसे। फिर छान जलको निवाया कर ओषधि मिलाकर दिनमें २–३ बार पिलावे।

सामान्य खाँसी पर शहदमें चटावे।

उपयोग—इस चूर्णके सेवनसे बालकोंकी काली खाँसी (Whoop-

ing Cough), सादी खाँसी, श्वास, ज्वर, अतिसार, हरे रगके दस्त आदि रोग बहुत जल्द दूर होते है ।

(६४) बाल-अतिसारहर चूर्ण (गुलाबी) ।

बनावट—आमकी गुठलीकी गिरी, जामुनकी गुठलीकी गिरी, मोचरस और खस १०-१० तोले तथा शुद्ध सिगरफ १ तोला ले । सबको कूट कपड़छान चूर्ण बनालें । आमकी ऋतुमें बनानेसे चूर्ण अच्छा बनता है, फिर विशेष गुणकारी नहीं बनता । (आ० नि० मा०)

मात्रा—१ से ३ रत्ती दिनमें ३ बार जलके साथ देवें ।

उपयोग—इस चूर्णके सेवनसे बालकोंके अतिसार, पेचिश और ज्वर आदि रोग दूर होकर बालक पुष्ट बनते हैं ।

) बा   (६५लमित्र चूर्ण ।

प्रथम विधि—कमलकी केशर, लजालू, धायके फूल और मोचरसको समभाग मिलाकर चूर्ण करें ।   (वृन्द)

मात्रा—१ से ३ रत्ती दिनमें ३ बार जल या शहदसे दे, अथवा जलमें उबाल छानकर पिलावें ।

उपयोग—वह चूर्ण वालकोंके अन्त्रकी उग्रताको शमन कर रक्तातिसारको तुरन्त दूर करता है ।

दूसरी विधि—लोद, इन्द्रजव, धनिया, आँवला, नागरमोथा और नेत्रवाला सबको समभाग मिलाकर बारीक चूर्ण करे ।

मात्रा—१ से ३ रत्ती दिनमें ३ बार शहदमें चटावे ।

उपयोग—यह चूर्ण बच्चोंके प्रवाहिका, उदर पीड़ा और ज्वरको दूर करता है ।

तीसरी विधि—१० तोले कुटकीके छोटे-छोटे टुकड़े कर तवे पर मन्दाग्निसे भूने, और कलछीसे बराबर चलाते रहे । जल न जाय, यह सम्हाले । अच्छी रीतिसे भुन जाने पर उतारले । शीतल होने पर बारीक चूर्ण करे । इस चूर्णका मूलग्रन्थकर्त्ताने "कटुभर्जित चूर्ण" नाम रक्खा है ।

मात्रा—१ से ६ रत्ती दिनमें ३ बार निवाये जलके साथ, अथवा मंडूर मिलाकर गुड़के साथ दे ।

उपयोग—यह चूर्ण बच्चोंके यकृत्‌की वृद्धि, मलावरोध, ज्वर, सुस्ती, उदरविकार, सूजन आदिको ४-६ रोजमें ही दूर करता है । बड़े मनुष्योंको १ से २ माशे तक देना चाहिये ।

बालकोको शीत लग जाने या माताके आहार-विहारमें भूल होने अथवा भैंस आदिका दूध पिलानेमे यकृत्की वृद्धि होकर बुखार आजाता है। फिर उदरमें कुछ भारीपना मालूम पड़ता है; तथा मलावरोध, उत्साहका अभाव और निस्तेजता आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। उस पर इस चूर्णका प्रयोग दिन में ३ बार करते रहनेसे एक दो दिनमें उदर-शुद्धि होकर ज्वर शमन होजाता है, और यकृत्में लाभ होने लगता है। फिर ५-७ दिनमें यकृत् मूल स्थितिमें आजाता है।

वक्तव्य—यदि यकृद् वृद्धि अत्यधिक होगई हो, तो बालको को उबले हुए दूधमें नीबूका रस डाल फाड फिर जल छानकर पिलाते रहना चाहिये। दूध, अन्न आदि सब आहार बन्द कर देना चाहिये।

चौथी विधि—सोंठ, नागरमोथा, बेलकी गिरी, चित्रकमूल, पीपलामूल और बड़ी हरड़का छिलका, इन ६ औषधियोंको समभाग मिलाकर बारीक चूर्ण करे। (वृ० नि० र०)

मात्रा—१ से ४ रत्ती दिनमें २ बार शहदके साथ चटावें।

उपयोग—यह चूर्ण बालकोंकी कफज ग्रहणीको दूर करता है।

पाँचवीं विधि—हरड़, वच और कूठको समभाग मिला कर बारीक चूर्ण करे।

मात्रा—आध-आध रत्ती दिनमें २ बार शहद मिलाकर माताके दूधके साथ दे।

उपयोग—इस चूर्ण के सेवन से बालकोका तालुपातन (गाला पड़ना) रोग नष्ट होता है।

(६६) भस्मकनाशक चूर्ण।

बनावट—हरड़, बहेड़ा, आँवला, नागरमोथा, वायविडङ्ग, पीपल, मिश्री और अपामार्गके बीज, इन ८ औषधियोंको समभाग मिलाकर बारीक चूर्ण करे। (आ० भि०)

मात्रा—६ माशेसे १ तोले तक शहद और घृतके साथ दिनमें ३ बार चटावे।

उपयोग—यह चूर्ण आमाशय पर अवसादक असर पहुँचाता है, जिससे बढ़ी हुई अग्नि सम होकर भस्मक रोग शान्त होजाता है।

(६७) निम्बादि चूर्ण।

बनावट—कड़वे नीमके पत्ते ४० तोले, सोंठ, कालीमिर्च, छोटी पीपल, जवाखार और सज्जीखार, सब ४-४ तोले और अजवायन २० तोले लेकर बारीक चूर्ण करें। (आ० भि०)

मूल गुजराती ग्रन्थमें नीमके पत्ते ४ तोले लिखे हैं, छापनेमें भूल मानकर हमने ४० तोले सुधार लिया है।

मात्रा—२-३ माशे दिनमें २ वार गिलोयके क्राथके साथ दे।

उपयोग—यह चूर्ण संतत (मुद्दती ताप), सतत (रोज दो वार ताप आना), अन्येद्यु (रोज १ समय ताप आना), तृतीयक (एकांतरा), चातुर्थिक (तिजारी) आदि सर्व प्रकारके विषमज्वरोंको दूर करता है।

(६८) नाराच चूर्ण।

बनावट—मिश्री ४ तोले, निसोत ४ तोले और छोटी पीपल १ तोला लेकर बारीक चूर्ण करें। (व० से०)

मात्रा—६ माशे सुबह भोजनके पहले एक वार शहदके साथ दे।

उपयोग—यह चूर्ण कब्ज, आमवृद्धि, शिरदर्द, उदरमें भारीपन, वातरोग और पित्तरोगमें उपयोगी है। इसके सेवनसे विना तकलीफके दस्त साफ आता है, तथा आध्मान भी दूर होता है।

(६९) चिंतामणि चूर्ण।

बनावट—रास्ना, खरैंटी, पद्मकाष्ठ, देवदारु, हरड़, बहेड़ा, आँवला, सोंठ, मिर्च, पीपल और वायविडङ्ग, इन सब ओषधियोंको समभाग मिला कूटकर कपड़छान चूर्ण करें। (वै० जी०)

मात्रा—२ से ३ माशे शहद और घीके साथ मिलाकर दिनमें २ वार चाटें। घी १ से २ माशे तक पहले मिलावें। फिर चाटने लायक शहद मिला लेवें।

उपयोग—यह चूर्ण वातप्रकोप और पचनेन्द्रिय संस्थाकी विकृति को सुधार कर सब प्रकारके श्वास और कास रोगोंको दूर करता है।

(७०) वासादि चूर्ण।

बनावट—अडूसेके ५ सेर पत्ते लेकर उनके बीचमें रही हुई नस निकाल डालें। फिर २० सेर जलमें मिलाकर गरम करें। पश्चात् काला नमक और सैंधानमक ४०-४० तोले तथा जवाखार और पापड़ाखार (लौटिया सज्जी) २०-२० तोले डालें। पत्ते पक जायँ और पानी जल जाय; तब कढाहीको उतारलें। फिर पत्तोंको सुखाकर कपड़छान चूर्ण करें। (आ० नि० मा०)

मात्रा—२ से ८ रत्ती दिनमें ३ वार शहद या नागरवेलके पान अथवा घीमें मिलाकर देवें। जलमें देना हो, तो भी चल सकेगा।

उपयोग—इस चूर्णके—उपयोगसे नई और पुरानी खाँसी, सूखी खाँसी, कफ वाली खाँसी, सब दूर होती हैं। सामान्य औषध होने पर भी अच्छा लाभ पहुँचाती है।

कषाय प्रकरण।

स्वरस, कल्क, क्वाथ, हिम और फांट, ये कषायके ५ भेद हैं। ये उत्तरोत्तर लघु गुण वाले हैं। अर्थात् स्वरससे कल्क हल्का, कल्कसे क्वाथ, क्वाथसे हिम और हिमसे फांट लघु है।

स्वरस—ताजी ओषधियोंको कूट निचोड़कर रस निकाला जाता है, उसे स्वरस कहते हैं। कितनेक ओषधियोंका रस स्वरस यन्त्र द्वारा निकाला जाता है। अर्द्ध सूखी ओषधियोंको कुचल या कूट, द्विगुण जलमें २४ घण्टे भिगा, छानकर रस निकाल लेनेको भी स्वरस कहते हैं। एवं सूखी ओषधियों को ८ गुने जलमें पका चतुर्थांश जल शेष रहने पर छान लेनेसे भी स्वरसका काम निकलता है।

कल्क—ताजी ओषधियोंको बिना जल मिलाये और सूखी ओषधियोंमें जल मिलाकर चटनी (लुगदी) तैयार करनेको कल्क कहते हैं। यदि कल्कमें प्रक्षेप शहद, घृत, या तैल मिलाना हो तो कल्कसे द्विगुण, शक्कर या गुड़ मिलाना हो तो कल्कके समान, और कांजी आदि द्रव पदार्थ मिलाना हो, तो कल्कसे चतुर्गुण मिलाना चाहिये।

क्वाथ—ताजी या सूखी एक या अनेक ओषधियोंको मोटी-मोटी कूट-कर औषध-कृत विधिमें लिखे अनुसार उबाल लेनेसे क्वाथ तैयार होता है।

क्वाथ द्रव्योंको कूटकर रखनेसे ६-७ मास बाद या वर्षा ऋतुके पश्चात् हीनवीर्य होजाते हैं। अतः आवश्यक्तानुसार थोड़े-थोड़े परिमाणमें तैयार कर कॉचकी शीशियों या चीनीमिट्टीके बर्तनमें सम्हालकर बन्द रखें, जिससे ओषधियाँ अधिक समय तक अच्छी रहें।

क्वाथ करनेकी ओषधियोंको रात्रिको मिट्टी अथवा कॉचके पात्रमें भिगो सुबह चूल्हे पर चढ़ा मन्दाग्निसे उबालकर क्वाथ करें। मोटे चूर्ण को १६ गुने जलमें भिगो—उबालकर चतुर्थांश जल शेष रहने पर उतार कर छान लेना चाहिये। बारीक कूटे हुए चूर्ण अथवा तैलयुक्त मृदु ओषधियों का क्वाथ करना हो, तो ४ या ८ गुना जल मिला पौना या आधा जल शेष रहने पर्यन्त उबाल कर छान लेना चाहिये।

शास्त्राज्ञा अनुसार कुटजारिष्टके लिये या अन्य कार्य के लिये कुटज-त्वक् ताजी लेनी चाहिये। परन्तु सर्वत्र ताजीछाल नहीं मिल सकती। अतः सूखी छालही लेनी पड़ती है। उसका क्वाथ करनेके लिये १६ गुने जलमें उबालकर चतुर्थांश शेष रखना चाहिये। यदि जल दुगुना या ४ गुना लिया जायगा, तो पूरा सत्व निस्काशन नहीं होता। जलमें आये हुए सत्वमेंसे कितनेक अंशका

पुन: छालमें संशोषण (पात्र को चूल्हे पर से नीचे उतारनेके समय) होजाता है। अत: शुष्क द्रव्यों में १६ गुना जल मिलानेका नियम बनाया है।

क्वाथ करनेके लिये बर्तन मिट्टीका लेना चाहिये, और उबालनेके समय बर्त्तनका मुँह खुला रखना चाहिये, ऐसा शार्ङ्गधर संहितामें कहा है। किन्तु ढक्कन ढक कर क्वाथ करनेसे अनेक सूक्ष्म परमाणुओंका संरक्षण होता है; जिससे क्वाथ अधिक गुणदायी होता है, ऐसा कतिपय विद्वान् चिकित्सकोंका अनुभव है, और वही ग्राह्य करने योग्य है। यदि तैली ओषधियों और मृदु ओषधियोंको क्वाथ करनेके बदले नलिका यन्त्र द्वारा अर्क निकालें, तो विशेष लाभ होता है, और बार-बार क्वाथ करनेका श्रम भी मिट जाता है।

क्वाथ रोज नया नया बनाकर उपयोगमें लेना चाहिये। क्वाथ २४ घण्टे से ज्यादा समय तक गुणदायक नहीं रह सकता। अधिक समय तक गुणयुक्त रखने के लिये अनेक ओषधालयोंमें १२ वाँ हिस्सा रेक्टीफाइड स्पिरिट (या शराब) और चौथा हिस्सा शहद मिला लेते हैं, परन्तु उसमें क्वाथके गुणके साथ रेक्टीफाइड स्पिरिटका गुण सम्मिलित होकर मूल गुणमें थोड़ा रूपांतर कर देता है। मात्र ताजा क्वाथ करनेके लिये समयाभाव होने पर काम चल सकता है।

हिम—ओषधियोंके चूर्णको रात्रिको ६ गुने जलमें भिगो देवें। सुबह मसलकर छान लेनेसे शीत कषाय—हिम तैयार होजाता है।

फाण्ट—ओषधियोंके महीन चूर्णको किसी पात्रमें गरम उबलते हुए १६ गुने जलमें डालकर ढक्कन लगादें। आध या एक घण्टे बाद छान लेने से फाण्ट होजाता है।

कषाय सरलतापूर्वक रस आदि धातुओंमें मिश्रित होकर तत्काल अपना गुण प्रदर्शित करता है, और कषायसे प्राय: अपाय होनेकी संभावना भी नहीं है। इसलिये रोगोंकी तीव्रावस्थामें, एवं जिनके वात आदि धातु बहुत निर्बल होगये हों, उनके लिये गुटिका, चूर्ण आदि ओषधियोंकी अपेक्षा कषाय विशेष हितकर है।

क्वाथमें प्रक्षेप रूपसे मिश्री मिलानी हो, तो वातज रोगमें चतुर्थांश, पित्तज रोगमें अष्टमांश और कफप्रधान रोगमें षोडशांश मिलानी चाहिये। शहद मिलाना हो, तो इसके विपरीत अर्थात् वातज रोगमें $\frac{1}{16}$, पित्तजमें $\frac{1}{8}$ और कफजमें $\frac{1}{4}$ हिस्सा मिलाना चाहिये। जीरा, गूगल, क्षार, नमक या त्रिकटु मिलाना हो तो १ से ३ माशे तक, भुनी हींग २ रत्ती और शिलाजीत भी २ रत्ती डालना चाहिये। दूध, घी, गुड़, तेल, गोमूत्र या अन्य कोई द्रव पदार्थ, कल्क या चूर्ण प्रक्षेप रूपसे मिलाना हो, तो १ तोला तक मिलावे।

चिरस्थायी कषाय—वर्त्तमानमें आयुर्वेदिक ओषधियाँ बनाने वाली कितनीक फार्मेसियोंने क्वाथ-अर्क-स्वरस, शर्बत, मुरब्बा आदिको चिरस्थायी (Durable) तैयार किये हैं। इनका उपयोग दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। क्वाथ आदिको दीर्घ समय तक मूल स्थितिमें रखनेके लिये निम्न विधि अनुसार एसिड सेलिसिलिक (Acid Salicylic) मिलाया जाता है।

चिरस्थायी कषाय विधि—जिस क्वाथ आदिको टिकाऊ बनाना हो; उनमेंसे किसी एकको चीना या एनेमलके पात्रमें ६ पौण्ड डालकर गर्म करें। स्नान करनेके अधिक गरम जलके समान गरम होने पर १ ड्राम ऐसिड सिलसिलकको मिलाकर तुरन्त बिक्रीके डब्बो या बोतलोंमें भरकर मजबूत डाट लगा देवें। फिर यह प्रवाही वर्षों तक मूल स्थितिमें रह जाता है।

इस तरह कषाय आदिको चिरस्थायी बनानेके लिये फार्मेसी वालोंने डाक्टरी ओषधिकी शरण ली है। इस कषायके साथ जो ऐसिड सम्मिलित किया जाता है, वह एक प्रकारका मन्द विष है। अतः परिणाममें कितनेक व्यक्तियोंके लिये हानि भी पहुँचा देता है। अतः दीर्घकाल तक उपयोग करने वालोंको विचारपूर्वक लेना चाहिये।

एसिड सैलिसिलिक के सम्मिलनसे, क्षुधानाश, मलावरोध और अतिसार क्रमशः होते रहना, त्वचापर रक्तविकारके धब्बे होना, वृक्क विकृति (मूत्रोत्पत्तिका ह्रास) और मानसिक निर्बलता की संप्राप्ति होती है। अधिक विकार होनेपर श्लैष्मिक त्वचामें प्रदाह, शिरदर्द, रक्तदबावको ह्रास और रक्तसञ्चालन में क्षीणता आदि लक्षण उपस्थित होते हैं।

कितनेक फार्मेसी वाले लोहबान अम्ल (बेन्झोइक एसिड) फार्मील्डी हाइड, सल्फाइट या क्लोरोफार्म का उपयोग करते हैं। किन्तु ये सभी रासायनिक द्रव्य स्वास्थ्य के लिये हितकर नहीं माने जायँगे।

इनके अतिरिक्त क्वाथ आदिकी ओषधि और ऐसिड सेलिसिलिक, दोनों के मिश्रणमें रासायनिक गुण क्या होता है? इस बातका भी विचार करना चाहिये। कहीं दोनोंमें विरोध होकर रोगीको विपरीत असर तो नहीं पहुँचाता? जैसे दूध और दही, दोनो हितकर वस्तु होने पर भी दोनोको मिलाकर सेवन नहीं किया जाता। सेवन करनेमें विविध दोष शास्त्रकारोंने दर्शाये हैं।

(१) दशमूल क्वाथ।

बनावट—बेलछाल, गंभारी छाल, पाढल छाल, अरलू छाल, अरणीकी छाल, गोखरूका पंचांग, छोटी कटेलीका पंचांग, बड़ी कटेली का पंचांग, पृष्ठपर्णीका पंचांग और शालपर्णीका पचांग, ये सब सम भाग मिलाकर जौकुट चूर्ण कर लेवें। (शा० सं०)

मात्रा---२ से ४ तोलेका क्वाथ कर दो हिस्से करके दिनमें २ बार पीपलका चूर्ण अथवा घी मिलाकर पिलावे, या रोगानुसार अनुपानके साथ देवे।

उपयोग---इस क्वाथका सेवन विविध अनुपानोंके साथ करनेसे यह वातश्लेष्मज्वर, सन्निपातके लक्षण-कण्ठावरोध, हृदयावरोध, तन्द्रा, वातप्रकोप, कफवृद्धि, श्वास, पसलियोंकी पीड़ा आदि तथा प्रसूताके मुखशोप, शीत, भ्रम, स्वेद, कास, श्वास आदिको दूर करता है।

अनुपान---(१) वातश्लेष्मज्वर में---पीपलका चूर्ण।

(२) सन्निपात पर---दशमूल, शठी, काकड़ासींगी और त्रिकटु मिला क्वाथ करके पिलावे।

(३) ज्वर और कासमें---दशमूल, पीपल, धनिया और सोंठ मिला क्वाथ करें। फिर चातुर्जात मिलाकर पिलावे।

(४) वातकफोल्वण सन्निपात में---दशमूल, चिरायता, सोंठ, नागरमोथा और गिलोय मिलाकर क्वाथ करें। शोधन करना हो, तो निसोतके चूर्णका प्रक्षेप मिला देवे।

(५) वातकफज्वर, अपचन, अतिनिद्रा, पार्श्वशूल, श्वास, कास, तन्द्रा, कण्ठावरोध और हृदयावरोधमें---पीपलका चूर्ण।

(६) सन्निपात, श्वास, कास और पार्श्वशूल पर---क्वाथके साथ पीपल और पुष्करमूलका चूर्ण मिलावे।

(७) कफज पाण्डु, ज्वरातिसार, शोथ, संग्रहणी, कास, अरुचि, कण्ठावरोध और हृदयावरोध पर---सोंठ।

(८) हृदयावरोध पर---जवाखार और सैंधानमक।

(९) सूतिका रोग पर---[१] निवाये क्वाथमें घी मिलाले। [२] क्वाथमें लोहेको गर्म करके बुझावे। (३) शराब मिलाकर पिलावे। [४] दशमूलमें १६ गुना जल और ४ गुना दूध मिला सिद्ध कर शक्कर मिला कर पिलावे।

(१०) जलोदर पर---दशमूल, देवदारु, सोंठ, गिलोय, सफेद पुनर्नवा और हरड़का काथ कर पिलानेसे जलोदर, शोथ, श्लीपद, गलगण्ड और वातरोग नष्ट होते है।

(११) मुखरोगमें---दशमूल, मूँग और कुलथीको उबाल कर निवाया-निवाया पिलावें।

(१२) बाधिर्य (बहरापन) में---[१] इस क्वाथमें चतुर्थांश तिलके तेलको सिद्ध करके कानमें डाले। [२] दशमूल,

त्रिफला, कायफल और भारंगीका क्वाथ कर त्रिकटु और हींग मिलाकर पिलावें ।

(१३) वातरक्तमें गुल्ममें—इस क्वाथके साथ गूगल मिला करके पिलावे और दशमूलसे सिद्ध किये हुए दूधसे परिषेक करें ।

(१४) अपस्मार (हृदयकंप सहित) में—कल्याण घृतके साथ ।

(१५) गृध्रसी वात पर—भुनी हींग १ रत्ती और पुष्करमूल का चूर्ण २ मासे मिलाकर देवे ।

(१६) गृध्रसी और आमवृद्धि (त्रिक, वस्ति और कटि स्थानके शूलसह) पर—दशमूल, गिलोय, अरंडीकी जड़, रास्ना, सोंठ और देवदारुको मिला क्वाथ कर अरंडीका तैल मिलाकर देवे ।

(१७) वातज मूत्राघात पर—शिलाजीत और मिश्री पिलावे ।

(१८) विस्फोटकमें—दशमूल, त्रिफला, चिरायता और धमासे का क्वाथ कर पीपलका चूर्ण मिलाकर पिलावें ।

(२) अष्टादशांग क्वाथ ।

बनावट—बेलछाल, गम्भारी, अरलू, पाटल, अरनी, गोखरू, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, शालपर्णी, पृष्टपर्णी, काकड़ासींगी, पुष्करमूल, कचूर, धमासा, भारङ्गी, इन्द्रजव, पटोलपत्र और कुटकी, इन १८ ओषधियोंको समभाग लेकर जौकुट कर । (वृन्द)

मात्रा—२ से ४ तोलेका क्वाथ कर दो हिस्से कर दिनमें दो बार दें ।

उपयोग—यह क्वाथ सन्निपात ज्वरको दूर करनेमें अति उपयोगी है । इसके सेवनसे सन्निपातमें खाँसी, हृदयावरोध, पसलियों की पीड़ा, श्वास, हिचकी और वमन आदि लक्षण दूर होजाते हैं ।

दूसरी विधि—दशमूल, देवदारु, चिरायता, सोंठ, नागरमोथा, कुटकी, इन्द्रजौ, धनिया और गजपीपल, इन १८ ओषधियोंको सम भाग मिलाकर क्वाथ करे ।

मात्रा—२ से ४ तोले दिनमें दो बार दो हिस्से करके देवे ।

उपयोग—यह क्वाथ तन्द्रा, प्रलाप, खाँसी, अरुचि, दाह, मूर्च्छा और श्वास आदि लक्षणोंसहित सन्निपातको दूर करता है ।

(३) लघुमंजिष्ठादि क्वाथ ।

बनावट—मजीठ, हरड़, बहेड़ा, आवला, कुटकी, बच, दारुहल्दी, गिलोय और नीमकी अंतरछाल, इन ९ ओषधियोंको समभाग मिलाले । (शा० सं०)

मात्रा—२ से ४ तोलेका क्वाथ वना दो हिस्से करके पिलावें।

उपयोग—यह क्वाथ रक्त और उदरकी शुद्धिकारक है, वातरक्त, पामा (पाँव)-कुष्ठ और रक्तविकारको नाश करता है।

वृन्दने इस क्वाथका नाम 'वकानपर्कि क्वाथ' रक्खा है। और वातरक्त कुष्ठ, पामा, कपाल कुष्ठ आदि पर लाभदायक कहा है।

(४) बृहद् मंजिष्ठादि क्वाथ।

वनावट—मजीठ, नागरमोथा, कुडेकी छाल, गिलोय, कूठ, सोंठ, भारङ्गी, कटेली पञ्चांग, वच, नीमकी अन्तर छाल, हल्दी, दारुहल्दी, हरड़, वहेड़ा, आँवला, पटोलपत्र, कुटकी, मूर्वा, वायविड़ङ्ग, विजयसार, चित्रकमूल, शतावर, त्रायमाण, पीपल, इन्द्रजौ, अड़ूसेके पत्ते, भाँगरा, देवदारु, पाढ़, खैरसार, लालचन्दन, निसोत, वरनेकी छाल, चिरायता, वावची, अमलतासका गूदा, सहोढेकी छाल, वकायन, करंजकी छाल, अतीस, नेत्रवाला, इन्द्रायनकी जड़, धमासा, अनन्तमूल, पित्तपापड़ा, सव समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण तैयार करें। (शा० सं०)

मात्रा—१। सेर २॥ तोलेका क्वाथ कर सुवह पीपलका चूर्ण और गूगल मिलाकर पीवें। शामको पुनः नया वनाकर पीवें।

उपयोग—यह क्वाथ १८ प्रकारके कुष्ठरोग, वातरक्त, उपदंश, श्लीपद, अंगशून्य, पक्षाघात, मेद रोग और नेत्ररोगका नाश करता है। रक्तशुद्धिके लिये अति उपयोगी है। विशेषतः यह क्वाथ गन्धक रसायन या हरतालमें से वनाये हुए माणिक्य रसके साथ कुष्ठादि रोगो पर प्रयुक्त किया जाता है। मेदोवृद्धिमें महायोगराज गूगल के साथ दिया जाता है।

(५) आरग्वधादि क्वाथ।

प्रथम विधि—अमलतासका गूदा, कुटकी, निसोत, वीज निकाली हुई मुनक्का, सनाय, वड़ी हरड़ और सूखे गुलावके फूल २-२ तोले और गुलकन्द ७ तोले लेवें। सवको जौकुट कर फिर गुलकन्द मिला लेवें। (र० सा०)

मात्रा—२ से २॥ तोले द्रव्यमें २० तोले जल मिलाकर क्वाथ करें। आधा जल शेष रहने पर उतार छानकर सुवह एक वार पीवें।

उपयोग—यह क्वाथ उदरविकार और कब्जियतको दूर करता है। इस क्वाथके सेवनसे पेटमें दर्द भी नहीं होता। जीर्णज्वरके दोषपाचन के लिये अत्यन्त हितकर है। उदर-शुद्धि होजाने पर क्षुधा प्रदीप्त

होती है, और मन प्रफुल्लित होता है।

दूसरी विधि—अमलतासकी फलीका गूदा, पीपलामूल, नागरमोथा, कुटकी और हरड़, सबको समभाग मिला २ से ३ तोलेका क्वाथ करके दिनमें २ बार पिलावे। पिलानेके समय थोड़ा निसोतका चूर्ण मिलावे। इस क्वाथको "गिरिमाला पंचक" और "आरोग्य पंचक" भी कहते हैं। (वृन्द)

उपयोग—यह क्वाथ वातकफज्वर, आमशूल और कब्जको दूर कर अग्निको प्रदीप्त करता है। कच्चे आमको पाचन करता है, और पक्के दोषको निकालता है।

(६) अमृताष्टक क्वाथ ।

बनावट—नीमगिलोय, नीमकी अंतरछाल, कुटकी, नागरमोथा, इन्द्रजौ, सोंठ, पटोलपत्र और लालचन्दन, ये आठ वस्तुएँ समभाग लेकर २ से ३ तोले तकका क्वाथ करें। दिनमें २ बार पीपलका चूर्ण मिलाकर पिलावे। (शा० सं०)

उपयोग—यह क्वाथ पित्तकफज्वर, वमन, अरुचि, दाह, तृषा आदि विकारोंको दूर करता है।

(७) कंटकार्यादि क्वाथ ।

बनावट—छोटी कटेली, बड़ी कटेली, सोंठ, धनिया और देवदारु, पाँचोंको समभाग मिला २ से ४ तोले तकका क्वाथ करे। दिनमें २ बार पिलावें। (शा० सं०)

उपयोग—यह क्वाथ सब प्रकारके नूतन ज्वरोंमें कच्चे दोषको पकानेमें उपयोगी है। इसको "नागरादि पाचन" भी कहते हैं।

दूसरी विधि—छोटी कटेली, गिलोय, भारंगी, सोंठ, इन्द्रजौ, वासाके पत्ते, चिरायता, रक्तचन्दन, नागरमोथा, परवलके पत्ते और कुटकी, इन ११ ओषधियोंको समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण करें। २ से ४ तोलेका क्वाथ करके दिनमें २ बार पिलावे। (भा० प्र०)

उपयोग—यह क्वाथ पित्तश्लेष्मज्वरको दाह, तृषा, अरुचि, वमन, कास और शूल आदि लक्षणोंसह नष्ट करता है।

(८) गुडूच्यादि क्वाथ ।

बनावट—नीमगिलोय, नीमकी अंतरछाल, पद्माख, लालचन्दन और धनिया, इन पाँचों ओषधियोंको समभाग लेकर २ से ४ तोलेका क्वाथ करके दिनमें २ बार दे। (वै० जी०)

उपयोग—इस काथका उपयोग सामान्य रीतिसे सम्पूर्ण जाति के नये ज्वरों पर होता है। विशेपतः पित्तकफ ज्वरके शमनके लिये मूल ग्रन्थकारने लिखा है। यह काथ अग्निप्रदीपक है, एवं दाह, उवाक, तृषा, वमन और अरुचिको भी दूर करता है।

(९) नागरादि क्वाथ।

पहली विधि—सोंठ, छोटी कटेलीका मूल, पुष्करमूल और गिलोय, सबको मिला २ से ४ तोलेका काथ करके दो विभाग करे। दिनमें २ वार १-१ तोला शहद मिलाकर पिलावे। (अ० हृ०)

उपयोग—यह काथ वातकफज्वर, श्वास, कास, अरुचि, पार्श्व-शूल आदिको दूर करता है।

दूसरी विधि—सोंठ, नागरमोथा, गिलोय, आँवले, पाठा, कमल-नाल और नेत्रवाला १-१ तोला लेकर काथ करे। २ हिस्सा कर सुबह-शाम ३ माशे मिश्री और ६ माशे शहद मिलाकर पिलावे। (हा० स०)

उपयोग—यह काथ पित्तकफज्वर और रक्तदोषको दूर करता है, और पाचन क्रियाको सुधारता है।

तीसरी विधि—सोंठ, गिलोय, कटेलीकी जड़, नागरमोथा और आँवले प्रत्येक १-१ तोले मिलाकर क्वाथ करे। २ हिस्सा करके शहद-पीपल मिलाकर सुबह-शाम पिलावे।

उपयोग—सब प्रकारके विषम ज्वरोंको रोकता है, और पाचन क्रियाको सुधारता है।

चौथी विधि—सोंठ, गिलोय, चिरायता, वेलगिरी, आँवला, इन्द्रजौ, अतीस और खस, इन ८ ओषधियोंको समभाग लेकर जौकुट चूर्ण करे। फिर ३ से ६ तोलेका क्वाथ कर ३ हिस्से करके दिनमें ३ वार पिलावे। (न० से०)

उपयोग—यह क्वाथ ज्वरातिसार, मन्दाग्नि, अरुचि, शिरदर्द और दाहको दूर करनेमें अति लाभदायक है। यदि यह क्वाथ सर्वाङ्ग सुन्दर रसके साथ ज्वरातिसार में दिया जाय तो सत्वर लाभ पहुँचाता है।

(१०) पंचमूलादि कषाय।

बनावट—शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, छोटी कटेली, वड़ी कटेली, गोखरू, गिलोय, नागरमोथा, सोंठ और चिरायता, इन ९ ओषधियों को समभाग लेकर जौकुट चूर्ण करें। (वै० जी०)

मात्रा—४ से ६ तोले का क्वाथ कर २ हिस्से करके पिलावें।

उपयोग—यह कषाय वातपित्त-ज्वरमें कच्चे दोषोंको पका ज्वरको संपूर्ण लक्षणों सहित बहुत जल्दी नष्ट करता है।

(११) पटोलादि क्वाथ।

बनावट—कड़ुवे परवलके पत्ते, हरड़, बहेड़ा, आँवला, नीम की अन्तर छाल, गिलोय, नागरमोथा, सफेद चन्दन, मूर्वा (मोरवेल), कुटकी, पाठा, हल्दी और धमासा, सबको समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण करे (वृन्द)

मात्रा—२ से ४ तोलेका क्वाथ कर २ हिस्सा करके पिलावे।

उपयोग—यह क्वाथ वातपित्तज्वर, त्वचारोग, विस्फोटक और विषजन्य विसर्प आदि रोगोंका नाश करता है।

(१२) मधुरज्वरांतक क्वाथ।

बनावट—रक्तचन्दन, नेत्रबाला, खस, धनिया, पित्तपापड़ा, नागरमोथा और सोंठ, इन सब औषधोंको समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण करें। (यो० र०)

मात्रा—२ से ४ तोलेका क्वाथ कर २ हिस्से करके पिलावे।

उपयोग—यह क्वाथ मधुरा (मोतीझरा) में पिलाते रहनेसे दाने जल्दी निकलकर बिना त्रास दिये ज्वर दूर होजाता है।

(१३) अर्कादि क्वाथ।

बनावट—आकका मूल, धमासा, देवदारु, चिरायता, रास्ना, निर्गुण्डीके पत्ते, वच, अरनीकी छाल, सुहिजनेकी छाल, चित्रकमूल, पीपल, पीपलामूल, चव्य, सोंठ, अतिविष और भाँगरा, इन १६ औषधियोंको समभाग लेकर जौकुट चूर्ण करे। (वै० जी०)

मात्रा—२॥ तोलेका क्वाथ कर, दो हिस्से करके सुबह-शाम पिलावे। आवश्यकता पर एक बार ज्यादा भी पिला सकते हैं।

उपयोग—यह क्वाथ वातप्रधान सन्निपातमें अति प्रभावशाली है। सन्निपातमें तन्द्रा, शीत, धनुर्वात, श्वास, दाँत भिचजाना, पसीना ज्यादा आना आदि तथा सूतिका ज्वरमें वात प्रकोप के लक्षणों को दूर करता है, तथा छातीमें कफ संगृहीत हुआ हो तो उसे भी सरलता-पूर्वक बाहर निकालता है।

(१४) देवदार्वादि क्वाथ।

प्रथम विधि—देवदारु, वच, कूठ, पीपल, सोंठ, कायफल, नागर-

मोथा, चिरायता, कुटकी, धनिया, छोटी हरड़, गजपीपल, छोटी कटेली, गोखरू, धमासा, बड़ी कटेली, अतीस, गिलोय, काकड़ासींगी और काला जीरा, इन २० द्रव्योंको समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण करे। (नि० र०)

मात्रा—२ से ४ तोलेका क्वाथ कर दिनमें २ बार आधा-आधा पिलावे। क्वाथसे जल १६ गुना ले। अष्टमांश रहने पर उतारकर छानले। १ रत्ती भुनी हींग और ४ रत्ती सैंधानमक मिलाकर पिलावे।

उपयोग—प्रसूता स्त्री के सब रोग, विशेषतः वातप्रधान और पित्तवृद्धिसह उदररोग, खाँसी, ज्वर, प्रलाप, दाह, तृषा, श्वास, मूर्च्छा, अतिसार, वमन, मस्तकशूल, धनुर्वात आदि तुरन्त दूर होते है। यह क्वाथ सूतिका रोगकी तीव्रावस्थामें अति उपकारक है।

तीसरी विधि—देवदारु, दारुहल्दी, पीपल, चिरायता, इन्द्रजौ, मजीठ, अमलतासका गूदा, पाठा, पद्माख, कुडेकी छाल, धनिया, सोंठ, नागरमोथा, नेत्रवाला, कालीमिर्च, पियावाँसाकी छाल, कुटकी, धमासा, गिलोय, एरंडकी जड़, छोटी कटेली, हरड और पित्तपापड़ा, इन २३ औषधियोंको समभाग लेकर जौकुट चूर्ण करे। (वै० सा० स०)

मात्रा—२ से ४ तोलेका क्वाथ कर २ हिस्से करके सुबह-शाम शहद-पीपल मिलाकर पिलाते रहें।

उपयोग—यह क्वाथ ज्वरकी जीर्णावस्थामें अमृत सदृश उपकारक है। सब प्रकारके धातुगतज्वर, सब प्रकारके विषमज्वर, जीर्णज्वर, त्रिदोषज्वर, भूतज्वर आदि सब ज्वरोंको थोड़ेही दिनोंमें दूर करता है। आमाशय और अन्त्रका शोधन करता है, यकृत् और प्लीहा-वृद्धिको दूर करता है, तथा पाचन-क्रियाको प्रबल बनाता है।

(१५) त्रिवृतादि कषाय।

बनावट—निसोत, इन्द्रायनका मूल, कुटकी, हरड़, बहेड़ा, आँवला और अमलतासका गूदा, सबको समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण करे। (वृन्द)

मात्रा—२ से ४ तोलेका क्वाथ करके प्रातःकाल पिलावें।

उपयोग—यह कषाय अंतड़ीमें रहे हुए दोषको निकालकर सब प्रकारके ज्वरको दूर करता है। विशेषतः जीर्णज्वर और सन्निपातके दोषोंका शमन करता है।

(१३) कटफलादि क्वाथ।

बनावट—कायफल, नागरमोथा, वच, पाठा, पुष्करमूल, जीरा,

पित्तपापड़ा, देवदारु, छोटी हरड, ककड़ासींगी, पीपल, चिरायता, सोंठ, भारंगी, इन्द्रजौ, कुटकी, कचूर, रोहिष घास और धनिया सबको सम-भाग लेकर जौकुट चूर्ण करें। (वृन्द)

मात्रा—२ से ४ तोलेका क्वाथ करके १ रत्ती हींग, ६ माशे शहद और ६ माशे अदरखका रस डालकर पिलावे।

उपयोग—इस क्वाथसे सन्निपात और गलेके सब रोगोंका शमन होता है। यह क्वाथ कफप्रकोप, स्वरभेद, हिक्का, कर्णमूल-शोथ, गले की सूजन, हनुग्रह, कफवातज्वर, सन्निपात, खाँसी और गलेके सब विकारोंको नष्ट करता है।

(१७) उशीरादि क्वाथ।

बनावट—नेत्रबाला, खस, नागरमोथा, धनिया, कच्चे बेलफल, मजीठ, धायके फूल, लोध और सोंठ; इन ९ ओषधियोंको समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण करें। (भै० र०)

मात्रा—४ से ६ तोलेका क्वाथ कर ३ हिस्से कर दिनमें ३ बार दें।

उपयोग—यह क्वाथ दीपन-पाचन है, अरुचि, आम, शूलसहित रक्तातिसार और ज्वरसहित अतिसारको नष्ट करता है।

(१८) कुटजादि कषाय।

बनावट—कुड़ेकी छाल, अतीस, नागरमोथा, हल्दी, दारुहल्दी, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, इन ७ ओषधियोंको समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण करें। (वृन्द)

मात्रा—४ से ६ तोलेका क्वाथकर ३ हिस्से करके दिनमें ३ बार मिश्री और शहद मिलाकर पिलावे।

उपयोग—यह कषाय मलको बांधता है, तथा पित्तकफज अति-सारको शीघ्र शमन करता है।

(१९) खदिराष्टक क्वाथ।

बनावट—खैरकी छाल, त्रिफला, नीमकी छाल, कड़ुवे परवलके पत्ते, गिलोय, अडूसा (वासा) के पत्ते, इन आठ ओषधियोंको समभाग लेकर जौकुट चूर्ण करे। (वृन्द)

मात्रा—२ से ४ तोलेका क्वाथ करके दिनमें २ बार पिलावे।

उपयोग—यह क्वाथ रक्त आदि धातुओंमें रहे हुए कीटाणु और विषको नष्ट करता है, शीतला और रोमान्तिक (कसूमी माता) को शीघ्र शमन करता है; तथा कुष्ठ, विसर्प, विस्फोटक और खुजलीको

-दूर करता है।

(२०) त्रिकंटकादि क्वाथ।

बनावट—गोखरू, अमलतासका गूदा, दर्भमूल, कासमूल, धमासा, पाषाणभेद और हरड़, सबको समभाग मिलाकर ४ तोलेका क्वाथ करे। (भै० र०)

उपयोग—यह क्वाथ अश्मरी (पथरी) और भयंकर मूत्रकृच्छ्र रोगको दूर करता है। तीव्रावस्थामें आवश्यकता पर दो घण्टे बाद दूसरी बार पिलावे।

(२१) जातीपत्रादि क्वाथ।

बनावट—चमेलीके पत्ते, गिलोय, मुनक्का, धमासा, दारुहल्दी, हरड़, बहेड़ा और आंवला को बराबर लेकर जौकुट चूर्ण करे। (वं० से०)

उपयोग—इस चूर्णका क्वाथ बना शीतल करके, कुल्ला करनेसे मुँहके छाले, दाह, मसूढ़ेका शोथ और कण्ठदोष दूर होते हैं।

(२२) महारास्नादि क्वाथ।

बनावट—रास्ना ५० तोले मतान्तरमें २ तोले, धमासा, खरैटी, अरंडीकी जड़, देवदारु, कचूर, वच, अड़ूसेके पत्ते, सौंठ, हरड़, चव्य, नागरमोथा, सोंठीकी जड़, गिलोय, विधारा, सौंफ, गोखरू, असगन्ध, अतीस, अमलतासका गूदा, शतावर, पीपल, पियावाँसा, धनियाँ, छोटी कटेली और बड़ी कटेली, ये सब १-१ तोला मिलाकर जौकुट चूर्ण करें। (शा० सं०)

महारास्नादि क्वाथके पाठके आरम्भ में 'रास्नाद्विगुणभागास्यादेकभागास्ततः परे' यह वचन शारङ्गधरसंहिता में है। वङ्गसेनने 'समभागान्वितैरेतै रास्नात्रिगुणभागिकैः' यह वचन लिखा है। इन वचनों पर से टीकाकारों में मतभेद होता है। किसीने २ या ३ तोला रास्ना ली है, तो किसीने ५० या ७५ तोले रास्ना लेना हितावह माना है। रास्ना वातशामक है। रास्ना प्रधान औषध है, वह अधिक मात्रा में हो तो वातरोगोंके लिये हितावह है।

मात्रा—२॥ तोले चूर्णका क्वाथ करके दिनमें दो बार पिलावे। इस क्वाथके साथ सोंठ अथवा पीपलका चूर्ण अथवा अरंडीका तेल मिला लेवें या योगराज गूगलके साथ दे।

उपयोग—यह क्वाथ वातरोगकी तीव्रावस्था में विशेष उपकारक है। सब प्रकारके वातरोग—सर्वाङ्गवात, कम्पवात, अर्धाङ्गवात, गृध्रसी, कमर, जंघा आदि स्थानोंमें फिरतो वात, आमवात, अन्त्रवृद्धि, पक्षा-

घात, अपतानक, कुब्जवात, मूत्राशय और वीर्याशयमें रही हुई वायु, आफरा, स्त्रियोके योनिदोप, वन्ध्यादोप आदिको नाश करता है।

(२३) लघुरास्नादि क्वाथ।

बनावट—रास्ना, सोठ, गिलोय, देवदारु और एरंडमूल, सबको समभाग लेकर २ से ४ तोलेका क्वाथ करके पिलावें। (शा० सं०)

उपयोग—यह क्वाथ सब प्रकारके नये वातरोगको दूर करता है। आमवात पर एरंडतैलमें देनेसे तीव्र वेदना और शूल नष्ट होते हैं।

(२४) पर्पटादि क्वाथ।

प्रथम विधि—पित्तपापड़ा अड़ूसा, कुटकी, चिरायता, धमासा और प्रियंगुको समभाग लेकर जौकुट चूर्ण करें। (शा० सं०)

मात्रा—२ से ४ तोलेका क्वाथ कर आधा सुबह और आधा शामको थोड़ी मिश्री मिलाकर पिलावे।

उपयोग—यह क्वाथ प्यास, दाह और रक्तपित्त आदि लक्षणों सहित पित्त ज्वरको नाश करता है। इस क्वाथका अर्क निकालकर देनेसे बेस्वादपन दूर होजाता है, और गुण भी विशेष दर्शाता है।

दूसरी विधि—पित्तपापड़ा, नागरमोथा, गिलोय, सोंठ और चिरायता, सबको समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण करे। ४ तोले का क्वाथ कर २ हिस्से करके सुबह-शाम पिलावे। इसे "पंचभद्रादि कषाय" भी कहते है। (वृ० मा०)

उपयोग—यह क्वाथ उदरस्थित दोपका पचन करा वातपित्त-ज्वरको समस्त लक्षणोंसह दूर करता है।

(२५) पिप्पल्यादि क्वाथ।

बनावट—पीपल, पीपलामूल, कालीमिर्च, गजपीपल, सोंठ, चित्रकमूल, चव्य, निर्गुण्डीके बीज, इलायची, अजमोद, सरसों, हींग, भारङ्गी, पाठा, इन्द्रजौ, जीरा, बकायनके फल, मूर्वा, अतीस, कुटकी और बायविडङ्ग, सबको सम भाग लेकर जौकुट चूर्ण करे। फिर २ से ४ तोलेका क्वाथ कर दो हिस्से करके दिनमें २ वार पिलावें। (भा० प्र०)

उपयोग—यह कफज्वरमें आमपचनार्थ अति हितकर औषध है। कफ और वातनाशक है। गुल्म, जुकाम, शूल और ज्वरको दूर करता है, और आमका पाचन करके अग्निको प्रदीप्त करता है।

(२६) वासादि क्वाथ।

बनावट—अड़ूसा (वासा) के पत्ते, हल्दी, धनिया (मतान्तर

में रुद्रजटा), गिलोय, भारङ्गी, पीपल, सोंठ और छोटी कटेलीकी जड़, सब समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण करें। (वै० जी०)

वैद्यजीवन में धनियाके स्थानमें घना अर्थात् रुद्रजटा लिखा है। वैद्यजीवन परसे लिखे हुए योगरत्नाकरके पाठमें धनिका (धनिया) है।

मात्रा—४ तोलेका क्वाथ बना, २ हिस्से करके दिनमें २ वार काली मिर्चका चूर्ण मिलाकर पिलावे।

उपयोग—यह क्वाथ श्वास, कास और क्षयमें लाभदायक है। कण्ठ और हृदयावरोध तथा श्वासके तीव्रवेगको शीघ्र शमन करता है। कठिनतासे छूटने वाले कफको विना तकलीफ वाहर निकालता है।

(२७) दार्व्यादि क्वाथ।

बनावट—दारुहल्दी, रसौत, नागरमोथा, भिलावा, वेलगिरी, अडूसे के पत्ते और चिरायता, सबको समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण करें। इसमेंसे २॥ तोलेका क्वाथ कर दिनमें २ वार शहद मिलाकर पिलावें। भिलावे के स्थानमें अनेक चिकित्सक रक्त चन्दन लेते हैं। (शा० सं०)

उपयोग—इस क्वाथके एक मास सेवनसे स्त्रियोंके सब प्रकारके प्रदररोग शूलसहित नाश होते हैं। फिर गर्भाशय सुदृढ़ बनकर मासिक धर्म साफ नियमित समय पर आता है।

(२८) स्तन्यशोधक क्वाथ।

बनावट—अनन्तमूल, पाढ, देवदारु, चिरायता, मोरवेल, कुटकी, गिलोय, तगर, सोंठ, नगरमोथा और इन्द्रजौ, सबको समभाग लेकर जौकुट चूर्ण करें। (यो० र०)

मात्रा—२-२ तोले चूर्णका क्वाथ दिन में २ वार माताको पिलाते रहने से दूध शुद्ध होता है, और वालक की प्रकृति स्वस्थ रहती है।

(२९) रजःप्रवर्तक क्वाथ।

बनावट—चौलाईकी जड, गुलाव के पत्ते और तेलियागेरू ६-६ माशे, कपास की जड़ १॥ तोला और ३ वर्ष का पुराना गुड २ तोले लेवें। सबको ३ पाव जल में मिलाकर क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहनेपर छान लेवें। (श्री प० मंगुलालजी)

उपयोग—इस क्वाथको ३ दिन तक रोज सुबह पिलानेसे मासिकधर्म साफ खुलकर आजाता है। रुका हुआ दोष दूर होकर गर्भाशय शुद्ध हो जाता है।

(३०) रक्तशोधक क्वाथ ।

बनावट—अनन्तमूल, उशवा, मुलहठी, सफेद मूसली, गोरखमुण्डी, रक्तचन्दन, सनाय और असगन्ध, ५-५ आठों तोले तथा सोंफ, पीपल इलायची और गुलाब के फूल चारों २॥-२॥ तोले ले। सबको मिलाकर जौकुट चूर्ण करे।

मात्रा—१-१ तोले का क्वाथ कर दिन में २ बार पिलावे।

उपयोग—यह क्वाथ सब प्रकार के रक्तविकार, उपदंश और सुजाक के उपद्रव, वातरक्त और कुष्ठ को एक मास में दूर करता है।

(३१) उपदंशहर क्वाथ ।

प्रथम विधि—कटेली पंचांग २० तोले, बबूलकी कच्ची फली सूखी २० तोले, इन्द्रायनके फल, इन्द्रायन की जड़, बड़ी हरड़, सौंफ, कचनार की छाल, नीमकी अंतरछाल, छोटे बेरकी जड़की छाल और १० वर्षका पुराना गुड़, ये ८ औषधियाँ १०-१० तोले, दन्तीमूल ५ तोले और नेवल जुलाब (कालेदाने की जड़) १ तोला ले। सबको जौकुट कर ३२ सेर जलमें मिलाकर मिट्टीके घड़े में उबाले। लगभग ४ सेर जल शेष रहने पर उतार, मलकर छानलें। इस तरह ४ बार छाननेसे अति स्वच्छ जल हो जाने पर बोतलों में भर लेवे। (स्वामी जगदानन्द गिरिजी)

मात्रा—पहले दिन २॥ तोले एक बार। दूसरे दिन २॥ २॥ तोले दो बार। तीसरे दिन सुबह १ छटाँक, शाम को आधी छटांक,। चौथे दिन दोनों समय १-१ छटाँक। पाँचवे दिन सुबह १॥ छटाँक, शाम को १ छटाँक। छठे दिन दोनों समय १॥-१॥ छटाँक। इस रीतिसे २ बोतल समाप्त होवे तब तक बढ़ाते जायँ, पश्चात् मात्रा घटाते जायँ।

उपयोग—इस क्वाथके सेवनसे घोर उपदंश और सुजाक २१ दिनमें दूर होते हैं। उपदंशजनित कुष्ठ में भी लाभदायक है। रक्तशोधन की आवश्यकता होने पर इस क्वाथ का उपयोग किया जाता है।

सूचना—पहले उष्णवातघ्न क्वाथ मे लिखे हुए मु जिस का ४ दिन सेवन करे। बाद में इसका आरम्भ करे। इसके सेवन के समय मे भोजन के साथ घृत पचन हो सके, उतनी मात्रा मे अवश्य लेते रहे।

दूसरी विधि—नीमकी अन्तरछाल, बकायनकी छाल, कचनारकी छाल, बबूलकी कच्ची फली, इन्द्रायनकी जड़, छोटी कटेली का पंचाँग, ये ६ ओषधियाँ २०-२० तोले और पुराना गुड़ १॥ सेर लेवे। सबको मिला जौकुट कर १० गुने पानी में मिट्टी के घड़े में क्वाथ करे। चतुर्थांश शेष

रहने पर उतार मलकर छान लेवे। (श्री० प० मंगुलालजी)

मात्रा—१० तोले रोज सुबह ४० दिन तक पिलावे।

उपयोग—उपदंश और सुजाकमें दूषित हानिकारक ओषधियोंके सेवन अथवा अपथ्य पालन से विष या कीटाणु शेष रह जाते हैं; उन सबका इस ओषधि के सेवन से जुलाव लगकर जड़मूलसे नाश हो जाता है। भोजन हलका और सादा लेना चाहिये।

(३२) उष्णवातघ्न क्वाथ।

बनावट—रेवतचीनी ६ माशे, काँटेवाली चौलाई की सूखी जड़ २ तोले, सूखा भृंगराज पंचांग १ तोला, काकमाची (मकोय) १ तोला और १० साल का पुराना गुड़ ६ माशे ले। सबको मिला जौकुट कर मिट्टीके बरतन में ३ पाव जल के साथ उबाले। चौथा हिस्सा जल शेष रहने पर उतार छानकर पिला देवें। शामको पुनः उसी ओषधि के कचरे को आध सेर जलमें उबाल चौथा हिस्सा जल शेष रहने पर छानकर पिला देवें। (स्वा० जगदानन्द गिरिजी)

उपयोग—इस रीति से ७ से १४ दिन तक इस ओषधिका सेवन कराने से नये और पुराने सुजाक दूर होते हैं, तथा विपरीत ओषधियों से उत्पन्न हुए दोष भी साथ-साथ दूर हो जाते हैं। इस ओषधिके सेवन के पहले नीचे लिखा मुंजिस ४ दिन तक सेवन कराना चाहिये।

मुंजिस विधि—गावजवाँ, गुलबनफशा, जौकुट की हुई सौंफ, सनाय, गुलाब के फूल, हंसराज, ये ६ ओषधियाँ ६-६ माशे, उन्नाव ६ नग, अमलतासका गूदा २ तोले और तुरंजबीन ६ माशे लेवें। पहली ७ ओषधियों को ३ पाव जल में मिलाकर मिट्टी के बरतन में उबाले। तीसरा हिस्सा जल शेष रहने पर उतारकर छान लेवें। फिर अमलतास के गूदे और तुरंजबीन को २० तोले गरम दूध में मसलकर ऊपर-ऊपर से अमलतासके कचरेको निकाल देवें। पश्चात् क्वाथमें ४ तोले शक्कर मिलाकर पी लेवें। पुनः शाम को उक्त ७ ओषधियोंके कचरेमें आध सेर जल मिला क्वाथ कर तीसरा हिस्सा जल शेष रहने पर उतार, ३ तोले शक्कर मिला, मलकर छान लेवें। बाद में १० तोले गरम दूध मिलाकर पी लेवें। इस रीतिसे पेट नरम हो, तबतक, लगभग ३-४ या ५ दिन, मुंजिस सेवन करानी चाहिये।

(३३) कृमिघ्न क्वाथ।

बनावट—अनारकी जड़की ताजी छाल ५ तोले, पलासके बीज ६ माशे, वायविडंग १ तोला और जल ५० तोले मिलाकर चतुर्थांश

क्वाथ करके शीशीमें भर लेवें। (धन्वन्तरि)

मात्रा—दो-दो तोले क्वाथमें थोड़ा शहद मिलाकर दिनमें तीन बार देवे, और रातको सोते समय १ मात्रा पंचमकार चूर्ण की देवें।

उपयोग—इस क्वाथके सेवनसे पेटके सूती, गोल और चिपटे, सब प्रकारके कृमि निकल जाते हैं।

(३४) मूत्रशोधक क्वाथ।

प्रथम विधि—सोनागेरू, मेहदीके पत्ते, रसोत और सफेद सुरमा, सब दो-दो तोले लेकर जौकुट करें। फिर १॥ सेर पानीमें क्वाथ करें; आधा जल शेष रहने पर उतार लेवें। शीतल होने पर छानकर एक बोतलमें भर लेवें।

उपयोग—पेशाबमें पीप जाता हो, तो सुबह-शाम दिनमें दो वार इस क्वाथकी तीन-तीन पिचकारी देनेसे ७ दिनमें घाव मिट जाता है; और पीप निकलना बन्द हो जाता है।

सूचना—पिचकारी लगानेके पहले पेशाब कर लेना चाहिये। फिर उकड़ू बैठकर लिंग मार्गमें पिचकारी द्वारा क्वाथ डालें, और ३-४ मिनट लिंग का मुँह बन्द रक्खें। इस तरह ३ पिचकारी देवें। पिचकारीका उपयोग करने के बाद आधे घण्टे तक पेशाब नहीं करना चाहिये।

दूसरी विधि—सफेद कत्था, मुर्दासींगी और रसोंत ८-८ माशे और भुना नीलाथोथा ४ रत्ती लेकर १ सेर जलमें औटाकर आधा जल रहने पर उतार कर छान लेवें।

उपयोग—इस क्वाथकी पिचकारी देनेसे सुजाकमें पीप आना, जलन होना, मूत्र रुकना आदि दोष दूर होते हैं।

तीसरी विधि—मुर्दासींगी, फिटकरी, रसोत, सुरमा, सफेद कत्था प्रत्येक १०-१० तोले, नीलेथोथेका फूला १। तोले, रसकपूर १। तोले और पानी १। सेर लें। सबको बारीक पीसकर जलमें मिलावें। इसमेंसे ३-३ माशे जल लेकर १०-१० तोले पानीमें मिलाले। फिर, तीन-तीन पिचकारी दिनमें ३ वार दें। (धन्वन्तरि)

उपयोग—इस औषधिसे सुजाकका पीप और जलन दूर होते हैं। यह नये और पुराने सुजाकको नष्ट करनेमें अति उपयोगी है।

(३५) मुंजिस [मल फुलानेवाली औषध]।

बनावट—गुल बनफशा, बर्ग गावजबाँ, गुले गावजबाँ, खुब्बाजी, बर्गे अशना, पाचों ३-३ माशे, तुख्म खतमी, तुख्म कासनी, बेख

वादीआन, वेख कासनी, मकोय, वादीआन, असलुसूल, सातो ओषधियाँ ५-५ माशे, उन्नाव ६ नग और मुनक्का ६ नग लेवें। सबको जौकुट कर रात्रिको ४० तोले जलमें भिगो देवे। सुबह चूल्हे पर चढ़ा २० तोले जल शेष रहने पर उतार छान २ तोले मिश्री मिलाकर पिला देवे। इस रीति से रोज सुबह ५ दिन पिलाने से आँतो में जमा हुआ मल पककर फूल जाता है। फिर छठे दिन जुलाब देवें। (चि० चं०)

(३६) जुलाब की ओषधि।

बनावट—गुलाबके फूल, बनफशाके फूल, तुरबत सफेद, बादीआन (सौंफ), मकोय, जुफा, ताजी गिलोय, ये ७ औषधियाँ ५-५ माशे, सनायके पत्ते ६ माशे, बेल हंजल (इन्द्रायणकी जड़), तुख्म हंजल (इन्द्रायणके बीज), काबुली पीली हरड़का बक्कल और गाजीफून, ये ४ ओषधियाँ, ६-६ माशे लेवें। असबन्द २ माशे, अंजीर ८ नग और मुनक्का १३ नग लें। सबको जौकुट कर रात्रिको ४० तोले जल में भिगो दें। सुबह क्वाथ कर १५ तोले जल शेष रहने पर छान २ तोले गुलकन्द मिलाकर पिला देवें। एक घण्टे बाद सौंफका अर्क १० तोले या निवाया जल पिलावे। इस ओषधिसे २-३ घण्टे बाद ५-६ दस्त साफ आकर पेट स्वच्छ होजाता है। ऊपर वाला मुंजिस और जुलाब प्रायः सब प्रकृतिवालोको अनुकूल रहता है। (चि० चं०)

सूचना—जुलाब लेनेके बाद, सोना नहीं चाहिये और निवाये जलसे हाथ-पैर धोना चाहिये। चिकित्सातत्वप्रदीपके प्रथम खण्डके भीतर विरेचन विधिमें जुलाबके विशेष नियम लिखे हैं, उनको देख लेवें।

(३७) बृहत्यादि क्वाथ।

प्रथम विधि—बड़ी और छोटी कटेलीके फल, भूमिकन्द (गोरखमुण्डी), अरण्डीकी जड़, इन ४ ओषधियोको २-२ तोले मिलाकर क्वाथ करें। (वं० से०)

उपयोग—इस क्वाथमें तिलका तेल मिलाकर कुल्ले करनेसे दाँतोंमें रहे हुए कृमि निकल जाते है।

दूसरी विधि—छोटी और बड़ी कटेलीके मूल, गोखरू, अरण्डी की जड़, कुश, कास और ईखकी जड़, इन ७ ओषधियोंको समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण करे। (वृ० मा०)

उपयोग—४ तोलेका क्काथ करके पिलानेसे पित्तप्रकोप जनित शूल नष्ट होता है। शूल वातपित्तज हो, तो शहद मिलाकर पिलावें।

(३८) बिल्वादि क्वाथ ।

बनावट—बेलकी छाल, अरण्डीकी जड़, चित्रकमूल और सोंठ को समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण करें । (वृन्द)

उपयोग—४ तोलेका क्वाथ कर १ रत्ती भुनी हींग और १ माशा सैंधानमक मिलाकर पिलानेसे कफप्रकोपज शूल तत्काल नष्ट होता है ।

(३९) दुरालभादि क्वाथ ।

प्रथम विधि—धमासा, पित्तपापड़ा, परवलके पत्ते और कुटकी को समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण करें । (व० से०)

मात्रा—३ से ६ तोलेका क्वाथ करके दिनमें ३ बार पिलावें । विस्फोटक पर निवाये क्वाथमें कालीमिर्च और गूगल मिला लेवे ।

उपयोग—इस क्वाथसे पित्त और कफपित्तप्रधान मसूरिकामें संताप नष्ट होता है, एवं विस्फोटक रोग भी शमन होता है ।

दूसरी विधि—धमासा, पाषाणभेद, हरड़, छोटी कटेली, मुलहठी और धनिया, सबको समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण करें । (ग० नि०)

मात्रा—४ से ८ तोलेका क्वाथ करके दिनमें ३ बार ६-६ माशे मिश्री मिलाकर पिलावे ।

उपयोग—यह क्वाथ मूत्रसंस्थाके रोग—मूत्रकृच्छ्र, मूत्रावरोध, मूत्रदाह, बस्तिशूल, वृक्कशूल आदिको दूर करता है ।

(४०) पटोलादि क्वाथ ।

बनावट—परवलके पत्ते, गिलोय, नागरमोथा, वासाके पत्ते, धमासा, चिरायता, नीमकी अंतरछाल, कुटकी और पित्तपापड़ा, इन ६ ओषधियोंको समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण करें । (र० र०)

मात्रा—३ से ६ तोलेका क्वाथ करके दिनमें ३ बार पिलावें ।

उपयोग—यह क्वाथ अपक्व मसूरिकाको शान्त करता है, और पक्व मसूरिकाका शोधन करके सत्वर घावको सुखा देता है । विस्फोटक और शीतलाके तापको शमन करनेके लिये यह उत्तम ओषधि है ।

(४१) कपित्थादि यवागू ।

बनावट—कैथ, कच्चे बेलफलकी गिरी, अम्लोनिया (चूकेके पत्ते) और अनारदाने १-१ तोला लेकर ६४ तोले मट्ठेमें मिलावे । उसमें चावलका आटा मिला पकाकर पतली यवागू बनाले । (च० स०)

उपयोग—इस यवागूके पीनेसे आमका पचन होता है, और मल गाढ़ा होता है । पुराने अतिसार और सग्रहणीके रोगीके लिये अति

हितकर है। यदि अतिसार या संग्रहणीमें वायुका भी प्रकोप हो, तो इस यवागूमें वृहत् पंचमूलका क्वाथ मिला लेना चाहिये।

(४२) षडंग यूष।

बनावट—पीपल, जौका सत्तू, कुल्थी, सोंठ, अनारदान और आँवला १-१ तोले और वकरेका मांस १२ तोले लेवे। सबको ८ गुने जलमें उबालें। चतुर्थांश शेष रहने पर उतार कर छानले। फिर घीका छोंक देकर पिलावें।

(च० चि०)

उपयोग—इस यूषके सेवनसे क्षयरोगमें उत्पन्न पीनस, शिरदर्द, कास, श्वास, स्वरभेद और पार्श्वशूल दूर होते है, एवं क्षयरोगीकी शक्तिका संरक्षण होता है।

(४३) षडंग पानीय।

बनावट—नागरमोथा, पित्तपापड़ा, खस, लालचन्दन, नेत्रवाला और सोंठ, इन ६ ओषधियों को समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण करे। फिर १ तोले चूर्णको १२८ तोले जलमें मिलाकर औटावे। आधा जल शेष रहने पर उतारले। शीतल होनेपर छान लेवे। (च० स०)

उपयोग—इस जलका उपयोग विशेषतः सब प्रकारके पित्तज्वर में पिलानेके लिये किया जाता है। इसके सेवनसे रक्तमें संगृहीत विष सरलता से मूत्रके साथ बाहर निकल जाता है। सुबह औटाये हुए जल को शाम तक और शामको औटाये हुए जलको सुबह तक काममें लें। उबाले हुए जलको अपने आप शीतल होने दें, पंखादिसे ठंडा न करे।

(४४) आरग्वधादि कल्क।

बनावट—अमलतासका गूदा ४० तोलेको ८२ सेर नीबूके रसमें २४ घण्टे तक भिगोवे। फिर मसल छान ४० तोले मिश्री मिलाकर शर्बत जैसा बनाले। बादमें दालचीनी, तेजपात, इलायची, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, धनिया, भुनी हींग, इन ८ ओषधियोको २-२ तोले; सैंधानमक १० तोले, बड़ी हरड़, भुना जीरा और मुनक्का ५-५ तोले ले। सबको कूट शर्बतमें मिला थोड़ा समय अग्नि पर रख, चटनी के समान बना लेवे।

मात्रा—३ माशे से १ तोला दिन में १ या दो वार ले। भोजनके साथ भी लिया जाता है।

उपयोग—यह कल्क अपचन, अपचन से होने वाला ज्वर, शिरदर्द, उदरशूल, आम, उदरवात, जुकाम, अरुचि आदि को दूर करके

अग्नि को प्रदीप्त करता है ।

(४५) प्रतिश्यायहर कषाय ।

बनावट—उन्नाब ७ नग, सिपिस्ताँ (लिहसोड़े) ७ नग; वनफशा, खसखस, मुलहठी, गावजवाँ और सौंफ ६-६ माशे, तुरंजबीन १ तोला और मिश्री २ तोले लेवे। सबको कूटकर आध सेर जल में उबाले। आधा जल शेष रहने पर उतार कर छान ले। इसमें से आधा सुबह और आधा शाम को पीवे।

उपयोग—इस क्वाथ के सेवन से नया जुकाम, मन्दज्वर, मलावरोध, हृदय का भारीपन और सिरदर्द आदि २-३ दिनमें दूर होते है ।

(४६) शुष्क कासहर क्वाथ ।

प्रथम विधि—जूफा, परशीआवसान (हंसराज) बेख सौसन (केवड़ेका मूल), मुलहठी, बहेड़ा और अड़ूसेके पत्ते ६-६ माशे, मिश्री २ तोले और अंजीर ४ नग लेकर ४ गुने जलमें मिलाकर क्वाथ करे। आधा शेष रहने पर उतार कर छान ले।

उपयोग—आधा आधा सुबह-शाम ५-७ रोज लेने से पित्तज और वातज सूखी खाँसीका शमन होता है; एवं मलावरोध, शिरदर्द, उबाक, वमन आदि विकार भी दूर होते है।

दूसरी विधि—गुलबनफशा, हंसराज, छिली हुई मुलहठी, तीनों ६-६ माशे, खतमीके बीज और अलसी ३-३ माशे और उन्नाब ६दाने लें। सबको कुचलकर डेढ़ पाव जलमें क्वाथ करे। चतुर्थांश जल शेष रहने पर उतार मलकर छान ले। शीतल होने पर ३ माशे शहद और ३ माशे मिश्री मिलाकर पिला देवे। (चि० च०)

उपयोग—इस क्वाथ को दिन में २ वार पिलाते रहनेसे १०-१५ दिनमें सूखी खाँसी (वातज कास) जड़ से चली जाती है।

(४७) मधुकादि शीतकषाय ।

बनावट—मुलहठी, सफेद सारिवा, काली सारिवा, मुनक्का, महुआ, रक्तचन्दन, नीलोफर, काश्मरीका फल, पद्माख, लोध, आँवला, बहेड़ा, हरड़, कमलकेशर, फालसा और कमल की नाल इन १६ ओषधियों को समभाग लेकर जौकुट चूर्ण करे।

मात्रा—३ से ६ तोले रात्रि को षड्गुण गरम जल के साथ मिट्टी के बरतनमें भिगो देवें। सुबह मल-छान कर मिश्री, शहद और खीलों का सत्तू मिलाकर पिला देवे।

उपयोग—यह कषाय वातपित्तज्वर, दाह, प्यास, मूर्च्छा, वमन, चक्कर और रक्तपित्त को शमन करता है ।

(४८) सप्तमुष्टिक यूष ।

बनावट—जौका सत्तू, बेर, कुलथी, मूँग, मूली के टुकड़े, धनिया और सोंठ, इन ७ ओषधियोंको एक-एक मूठी (४-४ तोले) मिलाकर अठगुने जलमें पकावे । चतुर्थांश जल शेष रहने पर उतार, मसलकर छान लेवे ।

उपयोग—सन्निपातमें भोजन देने की आवश्यकता हो, तब इस यूषका उपयोग करना चाहिये । तयह यूष वात, पित्त, कफ तीनो दोषो को हरनेवाला, गुल्म, शूल, श्वास,कास, धातुक्षय और ज्वरका नाशक आमदोषन्न, हृद्य, एवं कण्ठसे मुँह कके दोषोको नष्ट करनेवाला है ।

(४९) द्वात्रिंशदाख्य क्वाथ ।

बनावट—भारंगी, चिरायता, नीमकी अन्तरछाल, नागरमोथा कुटकी, वच, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, बासापत्र, इन्द्रायनकी जड़, रास्ना, अनन्तमूल, परवलके पत्ते, देवदारु, हल्दी, पाठा, अरलूकी छाल, ब्राह्मी, दारुहल्दी, गिलोय, निसोत, अतीस, पुष्करमूल, त्रायमाण, छोटी कटेली की जड़, बड़ी कटेली की जड़, इन्द्रजौ, हरड़, बहेड़ा, आँवला और कचूर इन ३२ ओषधियोंको समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण करे । (यो० र०)

मात्रा—३ से ८ तोले का क्वाथ कर २ हिस्सा करके ४-४ घण्टे पर पिलावे । आवश्यकता पर २४ घण्टे में ४ बार दें ।

उपयोग—इस क्वाथके सेवनसे १३ प्रकार के सन्निपातोंके शूल, कास, हिक्का, श्वास, अर्श, आफरा, सन्धि-सन्धिमें पीड़ा, अरुचि, ऊरुस्तम्भ, अन्त्रवृद्धि, कंठके रोग आदि सब विकार शमन होजाते है ।

कफज्वर, कफप्रधान सन्निपात, श्वसनकज्वर (न्यूमोनिय), फुफ्फुसावरण पदाह (प्लूरिसी), पार्श्वशूल आदि में नौसादर और यवक्षार ४-४ रत्ती मिलाकर के देवें तो सत्वर लाभ होता है । यह क्वाथ अभ्रकभस्म + शृंगभस्म या मल्लभस्मके साथ भी दिया जाता है ।

(५०) मधुकादि हिम ।

बनावट—मुलहठी, बिहदाना, गावजवाँ, गुलबनफशा, रेशाखतमी, मुनक्का और ल्हिसोड़ा, सबको १-१ तोला ले, जौकुट करके ७ पड़ियाँ बनावें । (र० यो० स०)

उपयोग—१-१ पुड़ियाको १० तोले जलमें मिट्टी या काँचके पात्रमें रात्रिको भिगो दें। सुबह मसल-छान, मिश्री मिलाकर पी लेवें। ऐसे ही सुबह १ पुड़िया भिगोकर शामको पी लेवें। इस तरह ७ पुड़ियों के उपयोग से अर्द्धावभेदक, पित्तवृद्धिजनित शिरदर्द, लू लगनेसे होने वाले मन्द ज्वर, जुकाम, शिरदर्द आदि विकार दूर होते हैं।

सूचना—जिनको श्वास, कास या कफवृद्धि स्वाभाविक रहते हों, उनको हिमके स्थानमें क्वाथ करके पिलाना चाहिये।

(५१) मुस्तादि क्वाथ।

बनावट—नागरमोथा, मूसाकानी, हरड़, बहेड़ा, आँवला, देवदारु, सुहिंजनेके बीज, सब समभाग लेकर जौकुट चूर्ण करें। (वृन्द)

मात्रा—२ से ४ तोलेका काथ कर छोटी पीपल और वायविड़ंग का चूर्ण मिलाकर दिनमें दो बार पिलावें।

उपयोग—यह क्वाथ सब प्रकारके उदरकृमि और कृमिजन्य रोगोंका नाश करता है।

(५२) ह्रीवेरादि क्वाथ।

बनावट—नेत्रबाला, धनिया, सोंठ, रक्तचंदन, मुलहठी, अड़से के पत्ते, खसकी जड़, इन ७ ओषधियोंको समभाग मिलाकर २ तोले लें। फिर क्वाथ कर शहद-मिश्री मिलाकर पिलावें। (यो० र०)

उपयोग—यह क्वाथ तीव्र रक्तपित्त (दाह और ज्वर आदि लक्षणोंसह) को दूर करता है। ऊर्ध्व और अधो दोनों प्रकारके रक्त-पित्तके शमनमें लाभदायक है।

(५३) वीरतर्वादि क्वाथ।

बनावट—वीरतरु (बेलतरु), नीले फूल का पियाबाँसा, पीला पियाबाँसा, दर्भमूल, वांदा, नागरमोथा, नरसल, कुशकी जड़, कांस की जड़, पाषाणभेद, अनारकी छाल, ईखकी जड़, सफेद आकके फूल, अपामार्गकी जड़, श्योनाक (सोनापाठा), लाल फूलका पियाबांसा, स्थलपद्म, ब्राह्मी और गोखरू, इनका जौकुट चूर्ण करें। (सु० सं०)

मात्रा—४-४ तोलेका क्वाथ कर दिनमें २ बार २ से ४ रत्ती शिलाजीत मिलाकर पिलावें।

उपयोग—यह काथ वातविकार, वृक्क और मूत्राशयकी अश्मरी, मूत्रपिण्डमें शर्करा, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, वृक्क शूल, वृक्कदाह, मूत्राशय-दाह, मूत्रेन्द्रियमें दाह इन मूत्र-रोगोंका नाश करता है, और पथरीको तोड़कर निकालनेमें अच्छा लाभ पहुँचाता है।

(५४) तगरादि कषाय ।

बनावट—तगर, असगन्ध, पित्तपापड़ा, शखपुष्पी, देवदारु, कुटकी, ब्राह्मी (जलनीम), जटामाँसी, नागरमोथा, अमलतासका गूदा, छोटी हरड़ और मुनक्का, इन १२ औषधियोंको समभाग मिला ४ से ८ तोलेका क्काथ करे । फिर चार हिस्सा कर १-२-३ या ४ बार तीन-तीन घण्टे पर आवश्यकतानुसार पिलावे । (यो० र०)

उपयोग—यह कषाय सन्निपातमें उत्पन्न वातप्रधान, पित्तप्रधान और वातपित्तप्रधान प्रलापोंको तत्काल शमन कर देता है । यह मस्तिष्क को शान्त बनाता है, अन्त्रके दोषोंका शोधन करता है, पचनयोग्य दोषोंको पचन कराता है, निकालने योग्य दोषोंको बाहर निकालता है, तथा वात-संस्था पर शामक असर पहुँचाकर रोगीको निद्रा ला देता है ।

आसवादि प्रकरण ।

काष्ठादि ओषधियाँ पुरानी होने पर न्यून गुणवाली होकर नष्ट हो जाती हैं । एवं वनौषधियो के रस और क्वाथ भी थोड़े ही समय मे बिगड़ जाते हैं । अत- इनके गुणो को दीर्घकाल तक अवस्थित रखने के लिये आसव-अरिष्ट बनाये जाते हैं । आसुतत्वादासव संज्ञा अर्थात् आसुत पद्धति (संयोगज मूर्च्छा प्रक्रिया) से तैयार हो, उसे आसव कहते हैं । ये आसव-अरिष्ट वर्षों तक खराब नहीं होते, बल्कि गुण मे वृद्धि हो जाती है । अतः ओषधियो के गुणों के संरक्षणार्थ आसव-अरिष्ट विधि व्यवहार में आई है ।

आसव-अरिष्ट दीर्घकाल तक अवस्थित रहनेका कारण, उसमे रहा हुआ मद्यार्क (Absolute alcohol) है । इस मद्यार्क की उत्पत्ति आसुत प्रक्रिया से होती है । ये आसव-अरिष्ट मद्य के भेद हैं । यथार्थमे मद्यके आसव अरिष्ट, सीधु, वारुणी, सुरा और मैरेय ६ भेद हैं ।

(१) *आसव*—यदपक्वौषधाम्बुभ्यां सिद्धं मद्यं स आसवः । अर्थात् अपक्व ओषधियो को मधुर द्रव्य और धायके फूल आदिके साथ जलमें मिला बिना क्वाथ किये पात्रमे भर मुखमुद्रा कर कुछ काल तक बन्द रखकर जो मद्य सिद्ध किया जाय, उसे आसव कहते हैं ।

(२) *अरिष्ट*—अरिष्टः क्वाथसिद्धः स्यात् सम्पक्वो मधुर द्रव्यैः । अर्थात् ओषधियो का क्वाथ कर फिर मधुर द्रव्य और धायके फूल आदि मिला कर मद्य तैयार किया जाय वह अरिष्ट कहलाता है ।

(३) सीधु—सीधुः इक्षुरसैः पक्वैः । अर्थात् ईख के रसको उबाल कुछ काल बन्द रखकर जो द्रव्य सिद्ध किया जाता है; उसे सीधु—सिरका कहते हैं । वर्तमान में रसको बिना पकाये ही सिरका बनाते हैं । गन्ने (ईख) के समान द्राक्षा या जामुन के रसको किसी बरतन में भरकर संधान उठाने पर भी सीधु तैयार होता है । इसमें पक्वरस, शीतरस, गुड़, शर्करा, आक्षिक और जाम्बव भेद माने गये हैं ।

(४) वारुणी—यत्तालखर्जूररसैरासुतं सैव वारुणी । अर्थात् ताल या खर्जूरके शिखर-प्रदेश पर कुल्हाडी से तिरछे घाव करने से काटे हुए भाग में जो रसस्राव होता है, उसे बरतन में भरकर रख देनेसे थोड़े ही समयमें खमीर आकर मद्योत्पत्ति होजाती है, वह वारुणी (ताड़ी) कहलाती है । इस तरह पुनर्नवा मूल और चावलों को पीस पिट्ठी बना जलमें घोल देनेसे खमीर आकर मद्य बन जाता है, उसे भी वारुणी संज्ञा दी है ।

(५) सुरा—परिपक्वान्न संधानसमुद्भूता सुरामता । अर्थात् चावल आदि को पका, मीठा मिला खमीर उठाकर तैयार की जाय, उसे सुरा (शराब) कहते हैं । इसके गौडी (गुड़ मिलाकर बनाई हुई), माध्वी (महुआके फूल मिलाकर तैयार की हुई),पैष्टी (चावल आदि अन्नके संधान-जन्य) और निर्यास (ईखके रस और फलोंके रसमेंसे तैयार की हुई), ये चार भेद हैं । ये सब नालिकायन्त्र द्वारा वाष्पको खेंचकर तैयार की जाती हैं । ये सब स्वच्छ वर्णरहित और एक प्रकार की गन्धयुक्त होती हैं ।

(६) मैरेय—आसवस्य सुरायाश्च द्वयोरेकत्र भाजने ।
संधानं तद्विजानीयात् मैरेयमुभयात्मकम् ॥

अर्थात् आसव द्रव्य और सुरा (अन्न या फलरस आदि) मिलाकर संधान कराया जाय, उसे मैरेय कहते हैं । एवं बबूल या बेरकी छाल और गुड़-शक्कर आदि को जलमें मिलाकर मद्य बनाया जाय, वह भी मैरेय कहलाती है ।

मद्य और आसव, दोनों की प्रक्रियामें भेद है । घटक अवयव और गुण में भी भेद है । 'मद्यमम्लेषु च श्रेष्ठम्' तथा आसव-'विनष्ट अम्लता यातम्' इस प्रकार से भेद शास्त्रकारों ने दर्शाया है, तथापि सारग्राही दृष्टिसे मद्यार्क पन की दृष्टि से शराब और आसवारिष्टकी एक ही जाति है । शराब में मद्यार्क और जल रहते हैं; तथा आसवारिष्टमें मद्यार्क और जलके अतिरिक्त विविध औषध-द्रव्योंका सत्व भी रहता है, एवं मद्यार्ककी मात्रा अतिन्यून होती है । शराब में मादक गुण प्रधान है, और आसवारिष्टमें औषध गुणों का ही प्राधान्य है; यह इन दोनोंमें अन्तर है । आसवारिष्टोंमें औषधगुणोंका प्राधान्य होनेसे मर्यादित मात्रामें ही सेवन किया जाता है ।

बिना क्वाथ किये हुए मद्यको आसव और क्वाथ कर बनाये हुए मद्य को अरिष्ट कहते हैं, ऐसा अनेक आचार्योंका मत है। किंतु कितनेक विद्वान् चरक-सुश्रुत आदि आचार्यों के वचनोंके आधारसे इस व्याख्याको निर्मूल दिखाते हैं। लोध्रासव, दुरालभासव, द्राक्षासव आदि अनेक आसवोंकी मुख्य ओषधियोंका क्वाथ करने की आज्ञा शास्त्रकारों ने की है। एवं चरक संहिताके चिकित्सा स्थानमे तक्रारिष्ट, अष्ट शतारिष्ट, त्रिफलारिष्ट और अन्य अनेक अरिष्टोंमें क्वाथ करनेका विधान नहीं है। इनके अतिरिक्त सुश्रुत संहितामें भी अनेक अरिष्टोंमें क्वाथविधि नहीं कही। अतः आसव और अरिष्ट, दोनों पर्याय शब्द हैं, ऐसा अनेक विशेषज्ञोंका मत है।

आसव-अरिष्ट के द्रव्यो में (कार्य दृष्टि से) ३ विभाग होते हैं— १-मधुसजनन, २-कोहल (alcohol) सजनन, ३ कार्मुक तत्व (active principles) निष्कासन। इनमें से पहला और दूसरा कार्य मधुर पदार्थो द्वारा होता है। धात की पुष्प, सुराबीज, महुए के फूल, सुपारी, बबूल छाल, नागकेशर आदि द्रव्य दूसरा कार्य निश्चयपूर्वक मर्यादित समयमे कर देते हैं। तीसरा कार्य औषध द्रव्यों मे रहे हुए सत्व द्वारा होता है। कार्मुक तत्व जल (प्रवाही द्रव्य) मे उतरना, फिर अवस्थित रहना और उसके सामर्थ्य को बढाना, ये तीन कार्य संधान विधिद्वारा सिद्ध होते हैं। इस हेतुसे जल, औषधद्रव्य, मधुर द्रव्य आदि को मिला अमृतबान आदि पात्र मे भर, मुख पर ढक्कन लगा संधि स्थान पर लेपन (संधान) करते हैं। इस विधि में संधान क्रिया अत्यन्त आवश्यक मानी है, इस हेतु से इस क्रिया के अनुरूप आसवारिष्ट निर्माण विधि को संधान विधि संज्ञा दी है।

अनुमान होता है कि, आसवो के रूप, गुण, स्वाद और स्वभाव चिर-काल तक न्यून नहीं होते। इसी हेतुसे आसव को गुणात्मक नाम अरिष्ट दिया गया है। इन ६ प्रकारके मद्योंमेसे आचार्योने विशेषतः आसव अरिष्टको ही ओषधि रूप से प्रयोगमें लिया है। इसी हेतु से आसव अरिष्ट रोगनाशक ओषधियोंमेसे ही तैयार किये हैं। सीधु, वारुणी, सुरा और मैरेयको ओषधियों से नहीं बनाया। विशेषतः वारुणी, सुरा आदि का उपयोग मादकताके लिये ही होता रहता है, औषध रूप से उपयोग बहुत कम अंश मे किया है।

आसव तैयार होजाने पर जितनी मादकता ऊपरके भाग मे होती है उतनी नीचे के भागमें नहीं होती। यह मादकता अधिक उष्णता पहुँचने और पात्र खुला रह जाने पर उड़ती जाती है। अधिक काल तक पात्र खुला रह जाय, तो आसव खट्टा हो जाता है; और मादकता बिलकुल नष्ट होजाती है।

जो ओषधि कठोर हो, उसमे से उबाल करके अरिष्ट और सौम्य, तैल

और सुगन्धयुक्त हो, उसमे से आसव बनाना चाहिये । क्योंकि तैल ओषधि उबालने पर तैल सत्व उड जाता है, और ओषध हीनगुण होजाती है ।

आसव मे निवाया जल मिलाने से खमीर जल्दी उठता है, तथा ठंडा जल मिलाने से खमीर उठने मे २-४ दिन ज्यादा लगते हैं ।

आसवीभवन-परिवर्तन विपाक--Fermentation—इसमें २ प्रकार हैं । १-अम्ल (acid) २-कोहल (alcohol) । इस परिवर्तन के लिये शक्कर, गुड़, शहद, मुनक्का, गभारीफल, महुए के फूल और धायके फूल आदि द्रव्यों का उपयोग होता है । कितनेक चिकित्सक धायके फूल के स्थान पर धायके फूलका कषाय करके मिलाते हैं । क्वाथ मिलाने से परिवर्तन रूप कोहल क्रिया अति सरलतासे और उत्तम प्रकारसे होती है ।

परिवर्तन क्रियामे अम्ल परिवर्तन इष्ट नहीं है । कोहल परिवर्तन अपेक्षित है । किन्तु जैसा अम्ल परिवर्तन प्रतीत होता है, वैसा कोहल परिवर्तन प्रतीत नही होता । कुछ-न-कुछ अशमे अम्ल रूपान्तर होता ही है। यदि अम्ल रूपान्तर अधिक होजाय, तो आसव बिगड़ जाता है । अम्लत्व यह मद्य का सहज रस है और मधुर यह आसवका रस है ।

धातकी कषाय विधि—धायके फूलोंके चूर्णको १० गुने जलमे २४ घण्टे तक भिगो उबालकर कपडे से छान लेवे । फूलोंके चूर्ण को अच्छी तरह दबाकर निचोड लेवे । फिर १ सेर मधुर पदार्थ युक्त मिश्रण मे २॥ तोले धातकी पुष्प कषाय मिलावे । इस जलके मिलाने से (१) फफूँदी कम आती है, (२) कोहल क्रिया सरलतापूर्वक सत्वर और इष्ट परिमाणमे होती है, (३) आसव छाननेके समय त्रास कम होता है । यदि आवाप (प्रक्षेप) द्रव्य को पोटलीमे बाँधकर डाले तो छाननेकी आवश्यकता ही नहीं रहती ।

आसव-अरिष्टके पात्र—प्राचीन कालमे घी से रमा हुआ मिट्टीका पात्र लेनेका रिवाज था । परन्तु ऐसे पात्रो को यदि धूपमे रख कर घीको न पोंछ लिया जाय, तो आसवमे घीका अ श आजाता है, एव पात्र घी से रमा हुआ न होने पर आसव बाहर निकलते रहनेसे कम होता जाता है ।

इनके अतिरिक्त मिट्टीके वर्त्तनमे उत्तापवाहक गुण होनेसे भीतरकी उष्णता को बाहर फेंकता रहता है । एवं शीतकालमे बाहरकी शीतल वायुका सम्बन्ध होता रहे तो भी भीतर रहा हुआ आसव शीतल होजानेसे उसका यथोचित पाक नहो होता । इस हेतुसे भूतकालमें जमीनमे या धान्यराशिमें दबाते थे । परन्तु वर्त्तमानमे मृत्पात्रके स्थान पर चीनी मिट्टीके अमृतबान, लकडीके ढोल, या सीमेण्टके हौजका उपयोग करना विशेष हितकर माना जाता है ।

यदि मिट्टीके ही पात्रोंको उपयोगमे लेना हो, तो घडेके भीतर निम्न

रालमिश्रणका लेप कर लेना चाहिये, जिससे आसवका शोषण न हो, एवं भीतरकी उष्णता बाहर निकल जाय।

रालमिश्रण--१० तोले रालको १ बोतल (२४ औंस) मैथीलेटेड स्पिरिटमें मिलाकर लेप करें। एक लेप सूखने पर दूसरी बार, फिर तीसरी बार लेप करें। इस तरह ७ बार लेप करनेसे घडेके सूक्ष्मातिसूक्ष्म छिद्र बन्द हो जाते हैं। फिर उसके भीतर भरे हुए आसवमेंसे जल बाहर नहीं निकल सकता। भीतरकी उष्णता जैसीकी वैसी बनी रहती है, और आसव यथासमय सिद्ध हो जाता है।

विदेशी शराबके लिये लकडी के ढोल आते हैं, उनका उपयोग करना हो, तो पहले गरम जल और सोडा आदिसे या चूनेके जलसे उनको भलीभांति साफ कर लेना चाहिये, जिससे उनमेंसे शराबका अंश निकल जाय। ये ढोल शीशम, सागवान आदि दृढ़ लकड़ीके आते हैं, जो वर्षो तक खराब नहीं होते। उनमें भरे हुए आसव-अरिष्ट मूल स्थिति में कायम रह सकते हैं। इस ढोलकी लकड़ी उत्तापरोधक होनेसे भीतरकी उष्णता का वहन नहीं होने देती। अतः मिट्टीके पात्रोंकी अपेक्षा ये अच्छे माने जाते हैं।

पहले आसव अथवा अरिष्टकी वस्तुओंके क्वाथ अथवा स्वरसको तैयार करें। फिर शक्कर, गुड़ अथवा शहद मिलाकर चीनी मिट्टीके अमृतबानमें भरें। पश्चात् मुँहका थोडा भाग खुला रख, ऊपर कपडा बाँधकर एकान्त स्थानमें १०-१५ दिन तक खमीर आकर शान्त होजाने तक रहने दें। प्रारम्भ में कार्बोनिक गैस उत्पन्न होकर बाहर निकलती रहती है। इस गैसको यदि अरिष्टके पात्रपर मुखमुद्रा करके रोक दी जाय, तो आसवमें अम्लता बढ़ने लगेगी, और आसव के स्थान पर शुक्त बन जायगा। खमीर उठने के समय 'सूँसूँ' जैसी आवाज अमृतबानके पास कान लगानेसे सुननेमें आती है। खमीर शान्त होने पर आवाज सुनने में नहीं आती। विशेष निश्चय करनेके लिये अमृतबानके मुँहपर जलती दियासलाई रखें। यदि खमीर बैठ गया होगा, तो दियासलाई जलती रहेगी, और जो खमीर बनता होगा तो दियासलाई बुझ जायगी। इस तरह परीक्षा करके खमीर शान्त होने पर प्रक्षेप (धायके फूल, जायफल, जावित्रीका चूर्ण अथवा कल्क) डालना चाहिये, ऐसा कितनेक विद्वानोंका मत है। इसके विरुद्ध अनेक चिकित्सक प्राचीन पद्धति अनुसार प्रक्षेप को तुरन्त मिला देते हैं। हमने इस ग्रन्थमें प्राचीन मत अनुसार विधि लिखी है। नव्यमत अनुसार प्रक्षेप मिलाने वालोंके लिये खमीर आजानेके बाद कदाचित् आसव-अरिष्टोंके ऊपर पुड़ी जैसी पपड़ी आगई हो तो फेंक दें, और आसव-अरिष्टको छान करके प्रक्षेप मिलावें। प्रक्षेप मिलाकर अमृतबान

का पौन हिस्सा भरे। चौथाई हिस्सा खाली रखना चाहिये, जिससे अमृतबान न फूटे। खमीर शान्त हुए बिना पहलेसे एक साथमें प्रक्षेप मिला देनेसे अमृतबान फूटनेका और उफान आकर ओषधि निकल जानेका डर रहता है। प्रक्षेप मिलाकर अमृतबानका मुँह बन्द करे। फिर मुँह पर अच्छी रीतिसे कपड़-मिट्टी कर एकान्त स्थान या धूपमें रखे, अथवा जमीनमे दबादे। इस तरह १ से ३ मास तक रहने देवे। धूपमे रखनेसे ओषधियोंमेसे जलका अंश बहुत जल जाता है। जमीनमें दबानेसे वर्तन फूट जानेका भय रहता है। परन्तु मकानमें एक तरफ सम्हाल पूर्वक रखनेसे उफानका या फूटनेका भय नहीं रहता और कच्चे पक्केकी परीक्षाका लक्ष्य भी रह सकता है।

बड़ी-बड़ी फार्मेसियों मे वर्तमानमें आसवारिष्ट विशेषत लकड़ी के ढोल और टाकीमे बनाये जाते हैं। उनको जमीनमे दबानेकी आवश्यकता नहीं है। एवं मुखमुद्राभी नहीं करते। मुँहपर ढक्कन लगा कर ऊपर कपड़ा बाँध देते हैं, जिससे कूड़ा-कचरा या जन्तु बाहरसे प्रवेश न करे।

द्राक्षासव बनाने के समय जो गाढा भाग तले में रह जाता है, उसे किण्व (सुराबीज) कहते हे। उसे तेज धूपमे सुखाकर सुरक्षित रख लेवे और आवश्यकतानुसार आसव-अरिष्ट बनाने पर दूधमें दहीके जामनके सदृश मिलाते रहें। दो द्रोण (२०४८ तोले) द्रवमे १ सेर किण्व मिला लेने से आसव-अरिष्टकी सधान-क्रिया सत्वर होती है और आसव बिगड़नेका भय दूर होता है।

यदि उक्त किण्वको न मिलावे तो भी आसव-अरिष्टका खमीर तो उठता ही है। कारण, धायके फूल आदिमे किण्व रहते ही हैं। परन्तु किण्व मिलानेसे सत्वर सधान होता है और आसव अच्छा बनता है। सुराबीज विरोधी कीटाणुओं को नष्ट कर डालते हैं, और आसवकी रक्षा करते हैं।

आसव-अरिष्टो के पाठ में कषाय-रस प्रधान धातकी पुष्प, बबूल छाल, बेर छाल, महुआका फूल, सुपारी, नागकेशर आदि द्रव्य मिलाये हैं; वे भी सुराबीज हैं। परन्तु इनकी अपेक्षा द्राक्षासव के तलभागमेसे मिले किण्वमे सुरा-कीटाणुओंकी सख्या अत्यधिक होती है, और वे सब सबल होनेसे सफलतापूर्वक सत्वर कार्य कर सकते हैं।

किण्व कीटाणु (Yeast) लम्बे और अति सूक्ष्म होते हैं। ये अणु-वीक्षण यन्त्र द्वारा प्रतीत होते हैं। ताड़ वृक्षकी मंजरी, ईखका रस, विविध पुष्प आदिमे भी ये कीटाणु प्रतीत होते हैं। धायके फूलों मे बहुत रहते हैं। इन किण्व कीटाणुओं को शर्कराभूयिष्ठ और पिष्टमय पदार्थको आहार मिलने पर ओषधि द्रव्यका मद्यमय रूपान्तर होने लगता है।

शीतकालमे आसव निश्चित समयसे ४-८ रोज पीछे तैयार होता है,

और उष्ण ऋतुमें ४-८ रोज पहले ही तैयार होजाता है। इसलिये ओषधि की जाति और ऋतुभेदसे तैयार होजानेका अनुमान हो, तब अमृतबानको खोलकर परीक्षा कर लेनी चाहिये। परीक्षाके लिये थोडे आसव-अरिष्टको एक बोतलमें भर डाट लगाकर जोरसे हिलावें। कच्चा होनेपर खूब झाग आयेंगे, और डाट उड़ जायगा। अथवा डाट खोलनेके समय एकदम बलपूर्वक वायु निकलेगी। आसव-अरिष्ट पक गया होगा, तो झाग नहीं आयेंगे। झाग ज्यादा समय तक रहें, तो आसव कच्चा समझकर फिरसे बन्द करके पाँच-दस रोज रख देना चाहिये; बादमें पुन: परीक्षा करनी चाहिये।

मधुर पदार्थ-मिश्रण—आसवोंमें गुड़, शक्कर, शहद आदि मिलानेके लिये प्राचीन आचर्योने सामान्य परिमाण लिखा है कि—

अनुक्तमानारिष्टेषु द्रवद्रोणे तुलागुड़म् ।
क्षौद्रं क्षिपेद्गुड़ादर्धं प्रक्षेपं दशमांशिकम् ॥

जहाँ गुड़ आदि परिमाण शास्त्रमें न दिये हों, वहाँपर १ द्रोण (१०२४ तोले) द्रवमें १ तुला (४०० तोले) गुड, शहद गुड़से आधा और प्रक्षेप दशमांश मिलाना चाहिये।

मधुर द्रव्योंकी आसुत क्रिया द्वारा आसव या मद्यकी उत्पत्ति होती है। मधुर गुणयुक्त अणुओंको किण्व कीटाणु भक्षणकर आसवके अणुओंमें रूपान्तरित कराते है, मधुर द्रव्य न मिलाया जाय, तो आसव या मद्य बन ही नहीं सकता। फिर भी जलकी दृष्टिसे मधुरद्रव्य अत्यधिक होजाने पर आसव अति गाढ़ा रहता है, जिसमे आसुत क्रिया योग्य रूपसे नहीं बन सकती। अतः क्वाथ के शेष रहे हुए जलकी अपेक्षा लगभग आधा मीठा (गुड़ आदि) हो, तो संधान क्रिया सम्यक् प्रकारसे होती है। गुड़, शक्कर आदिकी मात्रा अधिक कम होजाती है, तो भी आसवारिष्ट अच्छा नहीं बनता। अतः मधुर द्रव्यका परिमाण मर्यादामें मिलाना चाहिये।

आसव बननेकी क्रिया निश्चित् उष्णता मिलाने पर ही होती है; अर्थात् ३० से ३५ सेन्टिग्रेड (८६ से ९५ फेरनहीट) उष्णतामें यह क्रिया अच्छी होती है। अधिक उष्णता बढनेपर या अधिक शीतलता आजाने पर आसव क्रिया बन्द होजाती है। आसव क्रिया प्रारम्भमें प्रबल होती है। फिर जैसे-जैसे मद्यार्क अधिकाधिक तैयार होता जाता है वैसे-वैसे यह क्रिया मन्द होती जाती है। १५ प्रतिशत मद्यार्क बन जानेपर उसमें कीटाणु जीवित नहीं रह सकते। इस हेतुसे क्रिया बन्द होजाती है। ऐसे समय जलकी मात्रा और मिलाई जाय, तो पुनः क्रिया प्रारम्भ होसकती है। अतः शर्करा, गुड़ आदिका परिमाण शास्त्रकथित परिमाणसे अत्यधिक भी नहीं मिलाना चाहिये।

यद्यपि पाश्चात्य रसायन शास्त्रकी दृष्टिसे गुड़, शक्कर आदि सब प्रकार के द्रव्याणुओंकी रासायनिक प्रक्रिया सामान्य रूपसे समान मानी है। सब प्रकार के मीठेमेंसे बने हुए आसवको समान गुणवाला माना गया है, तथापि इस विचारके साथ आयुर्वेद सम्मत नहीं होगा। गुड़की अपेक्षा शक्करवाले आसव का स्वाद और रस प्रकृत्या भिन्न होता है और गुण सबोंके पृथक् पृथक् ही अनुभवमें आते हैं।

वर्तमानमें आधुनिक रसायन शास्त्रकी दृष्टिसे अभ्रक भस्म और गोबर की राखमें अधिक अन्तर नहीं माना जाता। परन्तु आयुर्वेदरसायन शास्त्रकी दृष्टि से अभ्रक भस्म और गोबरकी राखमें आकाश-पातालका अन्तर है; वैसे ही गुड़, शक्कर और फलोंके रस आदिके मद्यमें जो अन्तर है वह मानव शरीर पर वस्तुके प्रयोगसे स्पष्ट प्रतीत होता है। इसे आधुनिक शास्त्र चाहे अभी न मान सके तथापि प्रयोगसिद्ध सत्य मिथ्या नहीं हो सकेगा।

कभी कभी आसव-अरिष्टोंमें सुवर्ण या लोह आदि धातु मिलाई जाती है। इन धातुओंका लवण बनाकर मिलानेपर ये अच्छी तरह मिल जाती हैं। भस्म रूपमें धातुएँ पूर्णांशमें नहीं मिल सकती। सब धातुओंमें सुवर्ण अधिक मूल्यवान होनेसे इसके लिये विशेष सम्हालना चाहिये। सुवर्णका लवण निम्न पाश्चात्य विधि अनुसार बनाकर मिला सकते हैं।

सुवर्ण-लवण—शुद्ध सुवर्ण ३ तोलेको आतशी शीशीमें डाल स्पिरिट लेम्प पर रखकर गरम करें। इसमें नमक और शोरेका मिश्रित तेजाब १/२ हिस्सा मिलावें।

नमकका तेजाब (Acid Hydrochloric) ३ औंस ३ ड्राम तथा कलमी शोरेका तेजाब (Acid Nitric) ४ औंस मिश्रितकर इसमेंसे उपयोगमें लें। इस तेजाबमें से थोड़ा-थोड़ा सम्हालपूर्वक डालते रहें।

सुवर्णका रस बन जाने पर १० तोले सेंधानमक डालें। जब जल उड़ जाय और सुवर्णका रंग नारंगीके सदृश प्रतीत होने लगे तब शीशीको उतार कर सुवर्ण-लवणको निकाल लेवें। इस लवणको डाक्टरीमें ऑरम क्लोराइड (Aurum chloride) संज्ञा दी है।

ऑरम क्लोराइडकी मात्रा डाक्टरीमें १/६० से १/१० ग्रेन है। क्रमशः मात्रा बढ़ाकर १/२ ग्रेन तक देसकते हैं। इसकी १५-१५ ग्रेनकी ट्यूब डाक्टरी ओषधि बेचनेवालोंके पास तैयार मिलती है। इसमें रक्तशोधक, उत्तेजक, बल्य, कामोद्दीपक और रसायन गुण हैं। यह डाक्टरीमें वातवहा नाड़ियोंकी निर्बलता, चिरकारी वृक्कदाह, शिर:शूल, कष्टार्त्तव, गर्भाशयका चिरकारी प्रदाह, बीजाशय में वातजशूल, राजयक्ष्मा, श्वासरोग, मृगी, हिस्टीरिया, आक्षेपकवात, नपुंसकता आदि पर प्रयोजित होता है।

यदि सुवर्ण लवणका सेवन अधिक मात्रामें किया जाता है, तो पारदके समान मुँह आजाता है, तथा आमाशय और अन्त्रमें उग्रताकी उत्पत्ति हो जाती है। फिर क्षुधाका लोप, उदरमें पीडा, जुकाम, हाथ-पैर टूटना, व्याकुलता तथा हाथ-पैरोंमें पक्षाघात और श्वासावरोध होकर मृत्यु होजाती है। इस लवणका सेवन करनेपर यह मूत्र द्वारा देहसे निर्गत होजाता है।

लोह आदि धातु मिश्रण—जहाँ लोह, ताम्र या अन्य धातु मिलानी हो, वहाँ पर भस्म ही मिलानी चाहिये। कच्ची धातु मिलानेसे आसवोंमें उचित गुण नहीं आसकते।

लोहभस्म मिलानेके लिये लोहभस्म और हरडके चूर्णको जलमें मिलाकर ३ दिन खरल करें। फिर आँवले और बहेड़ेका चूर्ण मिला खरल करें। पश्चात् और जल मिलाकर एक सप्ताह तक रहने देवें ताकि लोहभस्म त्रिफलाके जलमें विलीन होजाय। तत्पश्चात् इस जलको क्वाथ आदिमें मिलाकर आसवको सिद्ध करें।

लोहासव में लोह परिमाण अत्यधिक मिलाने का शास्त्रविधान है। उसमें लोहे का बुरादा, मण्डूर-भस्म या कासीस में से कौनसा विशेष हितकर है, यह प्रश्न विचारणीय है। यद्यपि विलायती कासीस मिलाने पर आसव में लोह परिमाण अधिक आता है, तथा उनमें से लोह का शोषण कितना होता है, यह अभी निश्चित नहीं हुआ।

कस्तूरी, केशर आदि मिश्रण—आसव-अरिष्ट तैयार होजानेपर उनको बोतलोंमें भर लेवें। फिर कस्तूरी, केशर, कपूर आदि सुगन्धवाली औषधियोंको आसव या मद्यार्क (Alcohol) में घोल, बोतलो में यथा विभाग थोड़ी थोड़ी बूँद डालें, फिर मजबूत डाट लगादें।

आसव तैयार करने में तिक्त आदि रसका परिवर्तन हो जाता है। कड़वापन, चरपरापन, मधुरता और कषायत्व बहुत कम हो जाते हैं। अम्लरस और लवण रस, दोनो विरोधी हैं। अम्लरस होनेपर आसवमें अम्लता आजाती है, एवं लवण रससे भी आसव क्रिया उचित रूपमें नहीं होती।

प्राय. सभी आसव-अरिष्ट भोजन के पश्चात् पिये जाते हैं, किन्तु रोग और रोगीकी परिस्थिति अनुसार समयमें अन्तर किया जाता है, आसव-अरिष्ट के लिये क्वाथ करनेकी औषधियोंको रात्रिको जलमें भिगोकर सुबह उबालें। आसव-अरिष्टमें गुड मिलाना हो, तो १ से ३ वर्षका पुराना लेना चाहिये।

सामान्य रीतिसे आसव-अरिष्ट एक समयमें १। से २।। तोले तक समान भाग जल मिलाकर सेवन करना चाहिये। जलके साथ लेनेसे आसव नाड़ियों

में शोषित होकर शरीर पर तत्काल असर पहुँचाता है; और बिना जल मिलाये लेनेसे गलेमें खरखरी और आमाशयमें दाह हो जाता है।

आसव-अरिष्ट साधारणतः दीपन, पाचक, मलशोधक और पौष्टिक हैं। आसव-अरिष्टके सेवनसे शीघ्र गुण प्रतीत होता है। अनेक प्रकारके आसव-अरिष्ट पुराने रोगोंमें बहुत हितकर हैं, और कोई-कोई तीव्र प्रकोपके समय भी लाभदायक हैं। आसव-अरिष्ट जितने पुराने होते हैं; उतने ही विशेष गुणयुक्त और दोष रहित बनते हैं। अगर आसव अरिष्ट कच्चे रह जायँगे, तो थोड़े समयमें ही दुर्गन्धयुक्त होकर खराब होजायँगे। इसलिये ऊपर लिखी विधिसे सम्हालपूर्वक बनाना चाहिये। आसव-अरिष्ट तैयार होने पर भी उग्रता रहती है, वह धीरे-धीरे शान्त होती है। इसलिये ३-४ मास तक तो नवीन आसव-अरिष्टका सेवन नहीं करना चाहिये।

नये आसव-अरिष्ट या शराब विशेषतः गुरु और वातुल होते हैं; और जीर्ण होने पर (कमसे कम ४ मासके पश्चात्) तेजीका शमन होकर स्रोत-शोधक, लघु, दीपन और रुचिकर होजाते हैं। यदि आसव-अरिष्टोंको सम्हालपूर्वक बोतलोंमें बन्द रक्खा जाय, तो जितने पुराने होते हैं, उतने ही विशेष गुणकारी होते हैं।

सूचना—(१) आसव-अरिष्ट वर्षाऋतुमें नहीं बनाने चाहिये। थोड़ी-सी असावधानी होजाने पर दूषित होजाते हैं, एवं शीतल वायु वाले स्थानमें भी आसव-पात्रको नहीं रखना चाहिये।

(२) जल अत्यन्त स्वच्छ मिलावे। जलको गरम कर फिर छानकर मिलावें, या बाष्प-जल मिलावे। दूषित जल होने पर आसव क्रिया सम्यक् नहीं होसकती। जिस जलमें खारापन हो, ऐसे जलको उपयोगमें न लेवे।

(३) आसव अरिष्टकी औषधियोंका मोटा चूर्ण लेवे। सूक्ष्म चूर्ण मिल गया हो, तो उसे निकाल डाले। कारण, गाढ़ापन आसव प्रक्रियामें अति बाधक होता है। क्वाथ करनेके लिये पहले दिन शामको ही जोकुट चूर्णको जल में भिगो देवे. फिर दूसरे रोज क्वाथ करो।

(४) क्वाथ मन्दाग्नि पर करना चाहिये, और तैयार होने पर गरमा-गरमको ही छान लेना चाहिये। शेष रही हुई औषधिको अच्छी तरह दबाकर जल निकाल लेना चाहिये।

(५) आसव-अरिष्ट बनानेके लिये पात्र साफ लेना चाहिये। पहले जटामांसी, चन्दन, अगर, गूगल, कपूर, कालीमिर्च, शक्कर आदिकी धूप देकर कीटाणु और दुर्गंधको दूर करें, फिर आसव-अरिष्ट का द्रव भरें।

(६) मधुर द्रव्य क्वाथ शीतल होने पर मिलावे। अच्छी तरह मिल

जाने पर शेष चूर्णादि मिलावें, फिर डण्डेसे चलाकर अच्छी तरह मिश्रण करदें।

(७) धायके फूल ताजे नये लेना चाहिये। मुनक्का भी नयी लें, और जलमें अच्छी तरह भोकर उपयोगमें लेना चाहिये।

(८) गुड़ और शहद पुराना हितकर है। परन्तु गुड़ दुर्गन्धयुक्त, काला, खट्टा या खारा नहीं लेना चाहिये। एवं शहद भी खट्टा, काला या दुर्गन्धयुक्त न होना चाहिये।

(९) गुड़ आदि मधुर द्रव्यमें अम्ल गुणका संयोग हुआ हो, किसी प्रकारकी दुर्गन्ध हो या तिजाबका असर हो, तो आसव तैयार होने के पश्चात् वे अधिक काल तक नहीं टिक सकेंगे।

(१०) अनेक बार गुड़ और शहद खट्टे और दुर्गन्धयुक्त हो जाते हैं; एवं फलोंका स्वरस निकालनेके पश्चात् कुछ समय तक पड़ा रहने पर वह भी दूषित हो जाता है। ऐसे सदोष पदार्थोंको आसव-अरिष्ट बनाने के लिये उपयोग में नहीं लेना चाहिये।

(११) आसव प्रक्रिया समाप्त होने पर अम्ल द्रव्य की क्रिया होने लगती है। जबतक आसव क्रिया विद्यमान् होगी तब तक अम्लक्रिया निष्क्रिय रहती है। फिर अम्लक्रिया द्वारा आसवका सिरकामें रूपांतर होजाता है।

(१२) आसव अरिष्ट तैयार होने पर पहले मोटे कपड़े से छान लेना चाहिये। फिर दूसरे अमृतबानमें भर बंद कर १०-१५ दिन रहने दें। फिर ऊपर-ऊपरसे साफ प्रवाही नितरा हुआ हो, उसे सम्हालपूर्वक बोतलोंमें भरकर मजबूत बंद करें। गाढ़ा द्रव नीचे पेंदेमें हो, उसे निकाल डालें।

(१३) आसव-अरिष्ट बोतलोंमें मुँह तक लबालब नहीं भरना चाहिये मुँहतक भर देनेसे आसव-अरिष्टमें जोश आकर बाहर निकल जानेका बोतलके फट जानेका भय रहता है। अतः कुछ स्थान खाली छोड़ देना चाहिये।

(१४) आसव बोतलोंमें भरनेके समय यदि उसमें जलकी कुछ बूँदें रह गई होंगी, तो आसव दूषित होजाता है।

(१५) आसवोंको बोतलोंमें भरनेके समय तलस्थ गाढ़े भागको भीतर नहीं जाने देना चाहिये।

(१६) जो मद्य या आसव-अरिष्ट आदि बहुत गाढ़े, पचनकालमें दाह उत्पन्न करनेवाले, दुर्गन्धयुक्त, बिगड़ा हुआ, बेस्वादु, कृमियुक्त, गुरुपाकी, हृदय को अप्रिय, नया बना हुआ, तीक्ष्ण, उष्ण (स्पर्श करने में गरम), मैले या दूषित पात्रमें रखा हुआ, ओषधियोंकी बहुत कम मात्रा मिलाकर तैयार किया हुआ, बिगड़ जानेपर पुनः पकाया हुआ या किसी खुले मुखपात्रमें रहा हुआ,

अति पतला या अति भारी और पात्र के तलभागमे रहा हुआ किञ्चित् अवशेष भाग, इन सबका त्याग कर देना चाहिये ।

(१७) उष्ण उपचारके साथ, क्षुधा लगने पर और विरेचन लेने पर मद्य या आसव अरिष्टका सेवन नही करना चाहिये ।

अर्क—अनेक ओषधियोका क्राथ नित्यप्रति बनानेमे श्रम पड़ता है, और समय भी जाता है । इनके अतिरिक्त क्राथमे बेस्वादुपन रहता है, जिससे सब कोई नही पी सकते । यदि उसी ओषधिका अर्क निकाल लिया जाय, तो नाजुक प्रकृतिवाले रोगी भी सहज ले सकते हैं, और लाभ पूर्णरूपसे होता है।

अनेक कठोर ओषधियोका मात्र क्राथ ही लाभदायक रहता है, कारण, घनतत्व अर्करूप होकर नही चढ़ता । किन्तु अनेक तैली ओषधियों और मृदु औषधियो के क्राथ की अपेक्षा अर्क विशेष लाभदायक रहता है । कारण, तैली द्रव्योमेसे तेलका विशेष अंश क्राथ करने से उड जाता है । अतः क्राथ अथवा अर्क तैयार करने के पहले ओषधिके स्वरूपपर लक्ष्य देना चाहिये ।

अर्क ६ मास तक प्रायः गुणयुक्त रहते हैं । नलिका यन्त्र द्वारा निकाले हुए अर्कमे जलकी एक बूँद गिर जायगी, अथवा गीली शीशियोमे अर्क भरनेमे आवेगा, तो थोडे समयमे ही अर्क पर फफूंदी आकर वह बिगड़ जायगा । रेक्टीफाइड स्पिरिटसे बने हुये अर्क ५-७ वर्ष तक गुणयुक्त रहते हैं । रेक्टीफाइड स्पिरिटमे बने हुए अर्को को मजबूत डाटवाली शीशीमे बन्द रखना चाहिये, अन्यथा उड़कर कम होजाता है ।

(१) दशमूलारिष्ट ।

बनावट—दशमूल सब मिलाकर २०० तोले, चित्रक छाल १०० तोले, पुष्करमूल १०० तोले, लोद ८० तोले, गिलोय ८० तोले, आँवला ६४ तोले, धमासा ४८ तोले, खैरकी छाल, विजयसारकी छाल, हरड़ की छाल, सब ३२-३२ तोले, कूठ, मजीठ, देवदारु, वायविडङ्ग, मुहलठी, भारङ्गी, कवीठ, बहेड़ा, सोंठीकी जड़, चव्य, जटामाँसी, गऊँला, अनन्तमूल, स्याह् जीरा, निसोत, रेणुक बीज, रास्ना, पीपल, सुपारी, कचूर, हल्दी, सुवा, पद्मकाष्ठ, नागकेशर, नागरमोथा, इन्द्रजौ, काकड़ासींगी प्रत्येक ८-८ तोले, विदारीकन्द, असगन्ध, मुलहठी और बाराहीकन्द १६-१६ तोले ले । सबको कूटकर आठगुने जलमें क्राथ करे । चौथे भाग का जल बाकी रहे तब उतार ले । पश्चात् २५६ तोले मुनक्काको १०२४ तोले जलमें उबालें । पौना जल शेष रहने पर उतार लेवे । फिर दोनों क्राथोको मल-छानकर शहद १२८ तोले, गुड़ १६० तोले, धायके फूल

१२० तोले, शीतलमिर्च, नेत्रवाला, सफेदचन्दन, जायफल, लौंग, दालचीनी, इलायची, तेजपात, पीपल, नागकेशर प्रत्येक ८-८ तोले लेकर जौकुट चूर्ण करें। यह चूर्ण और कस्तूरी ३ माशे मिला मुखमुद्रा कर १॥ मास रख दें। परिपक्व होने पर छान लें। फिर निर्मलीके थोड़े बीज मिलाकर अरिष्टको स्वच्छ बना लेवें। (भैं० र०)

सूचना—कस्तूरी पहले मिलाने की अपेक्षा आसव तैयार होने पर मिलानेमें सुगन्ध बनी रहती है, और लाभ भी अधिक पहुंचाता है।

मात्रा—१। से २॥ तोले तक दिनमें २ बार भोजनके बाद समान जलके साथ दें।

उपयोग—दशमूलारिष्टके सेवनसे संग्रहणी, अरुचि, श्वास, कास, गुल्म, भगन्दर, वातरोग, क्षय, वमन, पाण्डु, कामला, कुष्ट, अर्श, प्रमेह, मन्दाग्नि, उदररोग, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, धातुक्षय आदि दोष दूर होते हैं। दुर्बलोंको पुष्ट बनाता है। स्त्रियोंके गर्भाशयकी शुद्धि करता है। वन्ध्या स्त्रीको संतान देता है। एवं तेज, वीर्य और बलको बढ़ाता है। यह ओषधि विशेषतः वातविकार, मूत्ररोग और उदररोगकी नाशक है, और उदरके अवयवोंके लिये बल्य है।

यह ओषधि प्रसूता स्त्रीके लिये अत्यन्त हितकर है। पहले १० दिनमें प्रसूताको देते रहनेसे मन्दाग्नि, जीर्णज्वर, कास, श्वास, वातविकृति आदि रोगोंके उत्पन्न होनेका भय दूर होता है, और प्रकृति स्वस्थ रहती है। इस अरिष्टमें थोड़ा स्तम्भक गुण होनेसे प्रसूताके अतिसार रक्तातिसार, संग्रहणी आदि विकारोंमें भी उपकारक है।

गर्भाशयकी शिथिलता या अन्य रोग विकृतिसे कारण वार-वार गर्भपात या गर्भस्राव होजाना, या गर्भ-धारण ही न होना, यदि संतान हुई तो भी रोगी कृश होना, ऐसे विकारोंमें, दशमूलारिष्ट उत्तम औषध है। जिन स्त्रियोंको गर्भाशयकी अशक्तिके हेतुसे गर्भ धारण नहीं होता, उनके गर्भाशयको पुष्ट बनाकर सन्तान प्राप्ति कराता है; एवं पुरुषोंके लिये भी शुक्रशुद्धिकर और वृद्धिकर है।

जीर्ण संग्रहणी रोगमें मन्दाग्नि होकर शरीर कृश होजाता है। ऐसे समय भोजन कर लेने पर दशमूलारिष्ट देना अति लाभदायक है।

सूतिका ज्वरकी तीव्रावस्थामें प्रतापलंकेश्वर और दशमूलारिष्ट उत्तम कार्य करनेवाली ओषधियों हैं। प्रसूतावस्थामें पवित्रता और सावधानता न रखने पर सूतिका ज्वरकी उत्पत्ति होती है। यह ज्वर अति भयंकर है। इसमें एक प्रकारके कीटाणुका अनुबंध होता है।

प्रसवके १-२ दिनमें ही यह ज्वर उत्पन्न होजाता है। प्रसव क्लेश, फिर होनेवाला रक्तस्राव और क्लेदस्रावके हेतुसे जीवनीय शक्ति अत्यन्त क्षीण होजाती है। इस हेतुसे कीटाणुओंको अपना प्रभाव पहुँचानेका समय मिल जाता है। इस ज्वरमें शारीरिक उत्ताप १०३ से १०५ डिग्री तक बढ़ जाता है। भयंकर तृषा, अत्यंत व्याकुलता, भयंकर शिरदर्द, योनिस्रावमें दो-तीन दिन बाद दुर्गन्ध आना, योग्य उपचार न होने पर सान्निपातिक लक्षणोंकी उत्पत्ति बेसुधी, प्रलाप तथा किसी-किसी रुग्णाको धनुर्वात, दाँत भिचना और हनुग्रह आदि लक्षण होते हैं। इस ज्वरपर दशमूलारिष्ट उत्तम उपयोगी है। इससे दोषप्रत्यनीक शक्ति रोगप्रतिकार शक्ति की वृद्धि होती है। इस हेतु से गर्भाशय में से स्राव अधिक या कभी अत्यधिक होता है। रक्तका दबाव गर्भाशय की ओर अधिक होनेसे रक्त और क्लेदका स्राव ज्यादा होता है। परिणाममें कीटाणु और विष देहमें नहीं रह सकते, एवं गर्भाशय का आकुंचन अच्छी तरह होता है, इसका नियमन होता है, इस हेतुसे गर्भाशयके आकुंचन होने पर उत्पन्न होनेवाला मक्कलशूल भी शमन होजाता है।

दशमूलारिष्टमें रहे हुए अनेक जीवनीय द्रव्योंके हेतुसे प्रत्यनीक शक्ति प्रबल होती है। इस हेतुसे प्रसव होने पर तुरन्त इस ओषधिके सेवनका प्रारंभ कराया जाय, तो रोगप्रतिरोधक शक्तिकी उत्पत्ति हो जाती है, जिससे सूतिका ज्वरकी संप्राप्ति ही नहीं होती। इस उद्देश्यको लेकर अपने देशमें प्रसव होने पर दशमूल क्वाथ या अन्य क्वाथ देनेकी प्राचीन परम्परा है। यदि सूतिका ज्वर होने पर भी तुरन्त इस अरिष्ट या क्वाथका उपयोग किया जाय, तो भी जल्दी लाभ पहुँच जाता है।

प्रसव होना, यह नैसर्गिक कार्य है। उसमें किसीकी आवश्यकता न रहे, यह स्थिति उत्तम मानी जायगी। जंगलोंमें रहनेवाले पशुओंके लिये प्रसवका प्रश्न ही नहीं आता। बिना कष्ट प्रसव होता रहता है। इस तरह नैसर्गिक नियमानुकूल रहनेवाले मानवों (ग्रामवासियों) के लिये भी ऐसा ही प्रतीत होता है। प्रसव होने पर अनेक शरीर और बच्चेको नदीमें बहते हुए शीतल जलसे धो अपनी गोदमें सुलाकर फिरने वाली स्त्रियाँ इस ब्रिटिश युगमें भी प्रतीत होती हैं। इनको प्रसूति ज्वर और तदनुपगिक विकार नहीं होते। कारण, इनकी प्रतिकार शक्ति बलवत्तर है। ऐसे स्थानमें कीटाणुओंका प्रवेश नहीं होसकता, और प्रवेश हुआ, तो भी वे जीवित नहीं रह सकते। कीटाणुओंकी वृद्धिके

लिये उनका शरीर अनुकूल नहीं है। नगर निवासियोंमें प्रतिकार शक्ति निर्बल रहती है; अतः इनके लिये दशमूलारिष्ट सूतिका रोगकी उत्पत्तिमें प्रतिबन्धक रूपसे उपयोगी है।

सूतिकावस्थामें या प्रसवके पश्चात् उत्पन्न होने वाले संग्रहणीया अतिसारमें दशमूलारिष्ट अत्यन्त उपयोगी है। अन्य समयमें सूतिका ज्वरके निमित्त कारण (पुराने) कीटाणु मलमें प्रतीत होने पर उनसे उत्पन्न संग्रहणीमें भी दशमूलारिष्ट उत्तम उपयोगी औषधि है।

यह औषधि वातशामक होनेसे मक्कलशूलको तो शमन करती ही है। इनके अतिरिक्त कुक्षिशूल, कक्षाशूल, वातज परिणामशूल, तीव्र शिरःशूल, कोष्ठशूल आदि पर भी अच्छी उपयोगी है। इन रोगोंमें मात्रा कम देनी चाहिये।

वातज श्वासरोगमें इसका अच्छा उपयोग होता है। श्वासके साथ शुष्क कास होने पर वह भी शान्त होजाती है। कास और श्वास, दोनोंमें प्राण और उदान वायुकी प्रदुष्टि होती है। वातज कास और श्वासमें शुष्क कास बहुत आती है। फिर ऐसे ही शुष्क कासका वेग आता है, जिसमें कफ अधिक नहीं गिरता। शुष्क वेगवती कास और हाँफाके हेतुसे रोगी व्याकुल होजाता है। कितनक रोगी बेहोश होजाते हैं, या कुछ अंशमें मूर्च्छा आजाती है और नाड़ीका वेग प्रबल होजाता है। इस अवस्थामें दशमूलारिष्ट जलमें मिलाकर थोड़ा-थोड़ा २-२ घण्टे पर देना चाहिये। सान्निपातिक ज्वरमें भी ऐसी अवस्था होने पर यह दिया जाता है।

जब भगंदर बार-बार शस्त्र-चिकित्सा कराने पर भी नहीं भरता, बार-बार पूय भरते हैं, फूटते हैं, और अन्य और मुख उत्पन्न होते हैं, ऐसे लक्षण युक्तको शतपोनक कहते हैं। उस स्थानमें व्रण भरने की क्रिया करनेवाली शक्ति क्षीण होजाती है। इस तरह कितनेक जीर्ण नाड़ीव्रणोंमें भी ऐसा ही होता है। बार-बार शस्त्र-क्रिया करानी पड़ती है। फिर भी व्रण नहीं भरता, कितनेक रोगियोंका नाड़ीव्रण सर्वदा बहता रहता है। यह स्थिति मधुमेह, जीर्ण सुजाक, उपदंश और क्षय रोगमें होती है, या अन्य ही अज्ञात कारणोंसे ऐसा व्रण होता है। रक्तादि धातुओंकी रोग निरोधक शक्ति कम होनेके अन्य भी अनेक हेतु है। इन प्रकारों पर दशमूलारिष्ट अत्युत्तम औषधि है।

आयुर्वेदने अनेक विकारोंकी विविध परिस्थितियोंका अन्तर्भाव वातव्याधिमें किया है। वातवाहिनियों और स्नायुओंमें प्रेरण, प्रस्पन्दन

और उद्वहन कार्य, रक्तवाहिनियो और रसवाहिनियोंमें पूर्ति और उद्वहन आदि कार्य तथा सचेतन परमाणु, घटक (कोषाणु) और मानस क्षेत्र में विवेक कार्य, इन सबकी दुष्टि वातरोगमें समाविष्टकी है। वातरोगमें वातस्थान दुष्ट होनेसे अनेक विकार उत्पन्न होते हैं, एवं भय, शोक, काम आदि मानस विकृतिसे उत्पन्न होनेवाले रोगोंका भी वातरोगमें समावेश किया है। अकस्मात् उत्पन्न मानस आघातज विकारसृष्टिको वातरोगके भीतर स्थान दिया है। इन सब वातव्याधियोंमें दशमूलारिष्ट उत्तम कार्यकर है। इससे वातका शमन होता है। वातस्थान जीवनतत्व मिलने पर बृंहण होते हैं। एवं इस अरिष्टमें वातशामक गुण होनेसे संकोच, भेद, स्तम्भ, कलायखञ्ज, खल्ली, विश्वाची, गृध्रसी आदि वातरोगो पर अति लाभप्रद माना गया है।

अस्थि और वायुका आश्रय-आश्रयी भाव है। इस हेतुसे अस्थिक्षयके विकारमें दशमूलारिष्ट उत्तम ओषधि मानी जाती है। विशेषतः प्रसवके पश्चात् यह विकार हुआ हो, तो इसका अवश्य उपयोग करना चाहिये। अस्थिमार्दव होकर कमरमें दर्द होना, चलनेमें दोनो पैरो पर खूब भार देकर चलना, पैर कठिनतासे उठाकर चलना, अस्थिसंधि पर गाँठ उत्पन्न होने सदृश भासना, मंद-मंद ज्वर रहना, आदि लक्षण होने पर दशमूलारिष्ट अति प्रशस्त ओषधि है। (औ० गु० ध० शा०)

सूचना—जिस प्रसूताके मुँहमें छाले, दाह, गरम-गरम जलसदृश पतले दस्त, प्यास आदि लक्षण हों, ऐसी पित्तप्रधान विकृतिमें दशमूलारिष्ट न दें।

(२) लोध्रासव।

बनावट—पठानी लोद, कचूर, पोहकरसूल, छोटी इलायची, मूर्वा, वायविडंग, हरड़, बहेड़ा, आँवला, अजवायन, चव्य, प्रियंगू, चिकनी सुपारी, इन्द्रवारुणीका मूल, चिरायता, कुटकी, भारंगी, तगर, चित्रकमूल, पीपलामूल, कूठ, अतीस, पाठा, इन्द्रजौ, नागकेशर, कुड़ेकी छाल, नख, तेजपात, कालीमिर्च और नागरमोथा, इन ३० ओषधियोको १-१ तोला मिला जौकुट चूर्ण कर १०२४ तोले जलमें मिलाकर क्वाथ करे। चतुर्थांश जल शेष रहने पर मलकर छान लेवे। शीतल होने पर १२८ तोले शहद मिला अमृतबानमें भर मुखमुद्राकर १५ दिन रख दें। पक जाने पर छानकर बोतलोंमें भर लेवे। (च० सं०)

मात्रा—१। तोलासे २॥ तोले तक समान जलके साथ देवे।

उपयोग—यह आसव पित्तज प्रमेह (क्षारमेह, कालामेह, नीलमेह, हारिद्रमेह, मांजिष्ठमेह) और कफजमेह (उदकमेह, सान्द्रमेह,

पिष्टमेह, शीतमेह, आदि) को नष्ट करता है। एव पाण्डु, अर्श, अरुचि, ग्रहणी, किलास आदि विविध क्षुद्रकुष्ठोको भी दूर करता है। लोध्रासव यकृत्बल्य होनेसे यकृत्पित्तके विकारसे उत्पन्न व्याधियोंका नाशक है। यह आसव रक्तप्रदर, रक्तपित्त, बालकोंके मसूरिका और रोमान्तिका होजानेके पश्चात् रक्तमें रहे हुए शेष विष और मूत्रावरोध आदि रोगोंमें उपकारक है। रक्तप्रदर पर लोध्रासवके साथ अरविंदासव और सारस्वतारिष्ट मिलाकर देनेपर सत्वर लाभ पहुंचता है।

(३) कुमार्यासव।

बनावट---घीकुँवारका रस १०२४ तोले और गुड़ ४०० तोले लेवें। फिर हरड़ अथवा भाँग १०० तोलेको १०२४ तोले जलमें मिला, उबालकर क्वाथ करें। पानी चौथा हिस्सा रहने पर उतारकर छान लें। फिर घीकुँवारके रस, गुड़ और क्वाथ, तीनोको मिलाकर अमृतवानमें भरें। उसमें शहद २५६ तोले, धायके फूल ६४ तोले, जायफल, लौंग, शीतलमिर्च, जटामासी, चव्य, चित्रक, जावित्री, काकड़ासींगी, बहेड़े की छाल, पुष्करमूल ४-४ तोलेका जौकुट चूर्ण तथा लोहभस्म और ताम्रभस्म २-२ तोले डालकर २० दिन बन्द करके रक्खें। पक्व होने पर छानकर बोतलोंमें भरलें। (यो० र०)

सूचना---भस्म मिलानेकी विधि प्रकरणके प्रारम्भमें लिखी है। उस तरह मिलाना विशेष लाभदायक है। घीकुँवारका रस निकालनेके लिये छोटे छोटे टुकडेकर कढ़ाहीमें डाल गरम करनेसे सरलतापूर्वक रस निकलता है।

मात्रा---१।से २॥ तोले दिनमें २ वार भोजनके बाद जल से।

उपयोग---इस आसवसे स्त्रियोंके ऋतुदोष, गुल्म, रक्तगुल्म, प्लीहा खाँसी, श्वास, क्षय, उदररोग, अर्श, वातरोग, अपस्मार, मन्दाग्नि, उदरशूल आदि मिटते है, और पचनशक्ति प्रबल बनती है।

मूल संस्कृत ग्रन्थोंमें विजया शब्द है। विजया भाँग और हरड़ दोनोंके नाम हैं। हमने दोनों प्रकारके आसव बनाकर उपयोगमें लिये हैं।

कितनेक चिकित्सक छोटे बालकोंको देनेके लिये ताम्रलोहरहित कुमार्यासव बनवाते हैं। इस तरह भाँगमिश्रित, हरडमिश्रित और ताम्रलोहरहित ऐसे तीन प्रकारके आसव एक ही पाठमेंसे बनते हैं।

घीकुँवारके रसमें कडवापन है, यह आसव क्रिया द्वारा रूपान्तरित हो जाता है। घीकुँवारका रस स्पर्शमें शीतल और वीर्यमें भी शीतल है। परन्तु कुमार्यासवमें ये गुण नहीं हैं। आसवक्रियाके योगसे परिवर्तन होजाता है।

हरडयुक्त कुमार्यासव---कुमार्यासव दीपन-पाचन, किञ्चित् स्रंसन

गुणयुक्त (दस्तावर), मूत्रल, कुछ बल्य, शोथहर, रक्तप्रसादक और दाहनाशक है। इसका कार्य विशेषतः पचनेन्द्रिय पर होता है। आमाशय, ग्रहणी, अग्न्याशय, यकृत, लघु अन्त्र, बृहदन्त्र, गुदनलिका और गुदत्रिवली सबपर प्रभाव पड़ता है। इसके योगसे इन सब अवयव समूहोंमेंसे पित्तविरेचन होता है। इसका परिणाम गर्भाशय, बीजाशय, बीजवाहिनियाँ आदिपर भी होता है। इन स्थानोंमें किंचित् संरंभ होकर आर्तव प्रवृत्ति होती है। कुमार्यासव अधिक दिनों तक बड़ी मात्रामें देते रहनेसे बृहदन्त्र, गुदकाण्ड और गुदत्रिवलीकी शिराएँ रक्त-पूर्ण होकर रक्तार्शकी उत्पत्ति होती है या रक्तस्राव होने लगता है। कुमार्यासवके सेवनसे मलशुद्धि होती है; मलका वर्ण हरा-सा होता है। शौचके समय उदरमें कुछ दर्द होता है, परन्तु सबको नहीं।

कुमार्यासव कभी सतत और अधिक मात्रामें नहीं देना चाहिये। इसका परिणाम मूत्रपिण्ड, नलिकाओं और मूत्राशय पर भी होता है। कभी-कभी इससे मूत्रमार्गमें खलबली मच जाती है। कितनेकोंको वृक्क-प्रदाहकी प्राप्ति होती है। अतः कुमार्यासवके इस दोषको लक्ष्यमें रख कर योग्य मात्रामें, योग्य समय पर, योग्य रोग पर, अधिकारी व्यक्तियों को देना चाहिये। मूत्ररोगी, प्रवाहिका या अन्त्रमें प्रदाहयुक्त रोगीको नहीं देना चाहिये। इन बातोंको सम्हाल कर इस आसवका उपयोग किया जाय, तो यह उत्तम औषध है। छोटे बालकोंके लिये यह अमृत है। इस आसवसे पचनक्रिया सुधरती है, अन्त्र सबल बनते हैं; शौच-शुद्धि होती है; पाचक पित्तका स्राव अधिक होता है, आहार रस अच्छा बनता है। फिर इसकी शोषण-क्रिया उत्तम होती है; रक्त सबल बनता है, शारीरिक बलकी वृद्धि होती है तथा गुदत्रिवलीमें अवस्थित सूक्ष्म कृमि नष्ट होते है। इनके अतिरिक्त इसका कार्य श्वासवाहिनियो पर भी होता है, और उसमेंसे कफ पृथक् होने लगता है।

कुमार्यासव छोटे बच्चोंके बार-बार उत्पन्न होने वाले कासरोगमें अति उपयुक्त औषधि है। इससे श्वास-नलिकामेंसे स्राव उत्तम प्रकार से होकर संचित कफ जल्दी गिरने लगता है। इसका कार्य प्राण और उदान, दोनों पर होकर कास कम होती है। श्वासोंमें कफ और वात-दोषकी दुष्टिसे उत्पन्न श्वास भी इसके सेवनसे कम होजाता है। हृदय के विकारमें विषमासन (भोजनमें नियमका अभाव) कारण होने पर कुमार्यासव थोड़ी-थोड़ी मात्रामें देनेसे कुछ सहायता मिल जाती है।

अग्निमान्द्य और अरुचिमें आमाशयस्थ अम्लपित्तका स्राव

अधिक नहीं होता, जिससे बिल्कुल थोड़ा खाने पर भी पचन नहीं होता। मीठी-सी या फीकी-सी डकार आती रहती है। मुँहमें पानी छूटता है, एवं उदरमें भारीपन, भोजनमें रुचि न होना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इन विकारोंमें कुमार्यासवका सेवन करनेसे आमाशयमेंसे योग्य पित्तस्राव होने लगता है। इन विकारो पर भोजनके आध या एक घण्टे पहले आसव लेना चाहिये।

भोजन ग्रहणीमेंसे लघु अन्त्रमें जाने पर यदि ग्रहणी सबल है तो कुछ भी त्रास नहीं होता, अन्यथा उसमें खलबली होकर अन्नकी गतिके साथ शूलोत्पत्ति होती है। यह भोजनके २-३ घण्टे पर होता। है शूल अधिक बलपूर्वक नहीं होता, सामान्य होता है, मुँहमें पानी भर जाता है, तथा वमन होगी, ऐसा भासता है। ऐसे शूल पर कुमार्यासव उत्कृष्ट कार्य करता है।

अग्न्याशयमेंसे आग्नेय रसका स्राव उचित न होता हो, तो कुमार्यासवके सेवनसे योग्य स्राव होने लगता है। यह कार्य कालमेह और नीलमेहमें प्रतीत होता है।

कुमार्यासव यकृद्‌बल्य होने से यकृद्‌वृद्धिमें अत्यन्त उपयुक्त ओषधि है। यकृत् निर्बल होने पर यकृत् पित्तका स्राव सम्यक् नहीं होता। उस पर कुमार्यासव देना चाहिये। यत्कृत्‌की अशक्तिसे उत्पन्न अतिसारमें कुमार्यासव अमृत के सदृश कार्य करता है। इस विकारमें विशेषतः दस्त श्वेत वर्णके दुर्गन्धयुक्त होते है।

पित्ताशय विकृत होकर पित्तकी घनता और तीव्रता बढ़कर उत्पन्न शूल और पित्ताश्मरीसे उत्पन्न पित्तज शूलमें कुमार्यासवका उत्तम उपयोग होनेके उदाहरण मिले है।

यकृद्‌वृद्धिसे उत्पन्न शुष्क कास इस आसवसे बहुत जल्दी शमन होजाती है। छोटे बालकोंके यकृद्विकारमें यह अत्यन्त उपयुक्त ओषधि है। यकृद्दाल्युदरमें जलसचय होनेके पहले या जलसंचयका प्रारम्भ होतेही कुमार्यासव दिया जाता है। इसके साथ मूत्रल-क्षार या ताम्रभस्मके समान संघातभेदी ओषधि देनेसे सत्वर लाभ पहुँचता है। इनके अतिरिक्त बीच बीचमें तीव्र विरेचन भी देते रहना चाहिये।

प्लीहावृद्धिमें इसका उत्कृष्ट उपयोग होता है। अतिजीर्ण व्याधि होने पर इसके साथ ताप्यादि लोह देनेसे अति उत्तम कार्य होता है। प्लीहावृद्धि अधिक होने पर लोहप्रधान प्लीहान्तक वटी और पारिजातक (रोहितक) का चूर्ण या काथ देना विशेष हितावह है।

जीर्ण कोष्ठबद्धतामें कुमार्यासवका उत्तम उपयोग होता है। इससे अन्त्रकी पुरःसरण क्रिया बढती है और मलशुद्धि होती है। परन्तु इसका सेवन अधिक काल तक नहीं करना चाहिये अन्यथा अन्त्रमें प्रदाह उत्पन्न होनेकी सम्भावना है।

कुमार्यासवका उपयोग अर्श रोग पर होता है। इससे अर्श निर्मूल नहीं होते, परन्तु मस्से मुलायम और निर्बल होते हैं। फिर शनैः-शनैः इनका बल घटता जाता है। रक्तार्शके विकारमें इसका उपयोग होता है। इससे अन्त्रमें आमविषोत्पत्तिका विनाश होता है। परिणाममें अर्शरोगमें लाभ होजाता है।

सर्व प्रकारके उदर रोगों पर इस आसवका उपयोग होता है। इससे अग्निमान्द्य दूर होता है। संचित मलमेंसे थोडा-थोड़ा शनैः-शनैः टूट-टूट कर बाहर निकलता रहता है। इस हेतुसे उदर रोगों पर इसका उत्तम उपयोग होता है। जलोदरमें भी यह उपयोगी है। परन्तु जलोदर में इसके साथ क्षार मूत्रल ओषधि और विरेचन ओषधि देनी चाहिये। यह आसव यकृतके विकारसे उत्पन्न जलोदरमें तो दिया जाता ही है, यह ऊपर कहा है। प्लीहोदरमें भी इस आसवका अच्छा उपयोग होता है। हृदयके विकारसे उत्पन्न जलोदरमें इसका अधिक उपयोग नहीं होता, परम्परागत कुछ सहायता मिलती है। मूत्रपिण्डकी विकृतिसे उत्पन्न होने वाले जलोदरमें इसका उपयोग न करना ही अच्छा माना जायगा। वृक्कविकारज जलोदरमें चन्द्रप्रभा वटी, पलाशपुष्पासव, ताप्यादि लोह आदि औषधियों का उपयोग करना चाहिये। इस उदर-रोग में वातपित्त कफात्मक लक्षण होते है। अतः लक्षण अनुरोध से औषधोपचार करना चाहिये।

विशेषतः अग्निमान्द्य रोग अनेक दिनों तक रह जाने पर आम-दोष सचित होने लगता है। विशेषतः आमविषके बृहदन्त्रमें संचय होने पर वातविकार उपस्थित होतो है, इस पर कुमार्यासव लाभदायक है। इस प्रकारके विषसे आमवातकी भी उत्पत्ति हो जाती है। आमवातसे संधियोंमें शोथ, स्नायु जकड़जाना, शिर दर्द, कमरमें पीड़ा आदि लक्षण होने पर कुमार्यासवका उत्तम प्रयोग होता है।

कक्षाशूल, कुक्षिशूल, पृष्ठशूल आदि जीर्ण व्याधि जीर्ण आम-विषमें उत्पन्न हुई हो, तो कुमार्यासव से उत्तम लाभ होता है। इस तरह आमविषसे उत्पन्न अन्य रोगोमें भी यह अच्छा उपयोगी है।

जीर्ण-अजीर्ण रोगसे उत्पन्न शूल और गुल्म पर कुमार्यासव

प्रयोजित होता है। गुल्मका अर्थ होता है गोला। उदरमें उत्पन्न होने वाले छोटे-छोटे गुल्मोंकी प्रथमावस्था में कुमार्यासव से लाभ पहुँचता है। वातज गुल्ममें केवल अन्त्रमें वातसचय होता है, अन्य मांस आदि की वृद्धि नहीं होती। कुमार्यासव के योगसे इस वातज गुल्मकी सब विकृतियोंके नष्ट होने में सहायता मिल जाती है।

स्त्रियोंके बीजाशय विकृतिसे उत्पन्न नष्टार्तव पर यह उत्तम उपयुक्त औषध है। कन्यालोहादि वटी या महायोगराज गूगलके साथ देना चाहिये। आयुमें आई हुई लड़कीको होने वाला हारिद्रक पाण्डुमें इसका अच्छा उपयोग होता है। यदि कुमार्यासवके साथ लोहभस्म या मण्डूर भस्मका सेवन कराया जाय, तो उत्तम कार्य होता है।

(औ० गु० ध० शा० के आधार के)

भांगयुक्त कुमार्यासव—भाँगयुक्त आसव अन्त्र और गर्भाशय के विकारों पर अधिक असर पहुँचाता है, अतः विसूचिका (cholera), पुराना संग्रहणी रोग, आफरा, आमातिसार, अजीर्ण, उदरशूल आदि रोगोंको दूर करने में विशेष हितकर है। यह अन्त्रको सुदृढ़बनाता है। स्त्रियों के मासिकधर्म में अधिक रक्त जाने को और रक्तार्शके रक्त को बन्द करता है। मासिकधर्म में होने वाले कष्टको दूर करता है। नष्टार्तव-मासिकधर्म न आता हो, तो गर्भाशय को संकुचित और उत्तेजित करके मासिकधर्म लादेता है। निद्रा लानेमें सहायता पहुँचाता है, और धनुर्वात आदि वातरोगों के आक्षेपोंको भी दबाता है। भांग मिलाने से हरड़ की अपेक्षा अधिक तीक्ष्ण, उष्ण, दीपक और पाचक बनता है।

(४) उशीरासव।

बनावट—खस, नेत्रवाला, नीलोफर, लालकमल, सफेद कमल, प्रियंगु, गभारी, पद्मकाष्ठ, लोद, मजिष्ठा धमासा, कचूर, पाठा, चिरायता, बड़की छाल, गूलरकी छाल, जामुन की छाल, कचनार की छाल, मोचरस, पित्तपापड़ा और परवल के पत्ते, सब ४-४ तोले, मुनक्का ८० तोले और धायके फूल ६४ तोले लेकर जोकुट करें। फिर निवाया जल २०४८ तोले, मिश्री ५ सेर और शहद ७॥ सेर मिला, अमृतवान में भर मुखमुद्रा करके एक मास तक रखदें; बाद में छानलें। (भै० र०)

मात्रा—१। से २॥ तोले भोजनके पश्चात् दिनमें २ बार समान जल के साथ मिलाकर देवें।

उपयोग—यह आसव रक्तपित्त, पांडु, कुष्ठ, प्रमेह, अर्श, कृमि,

रक्तविकार, शोपरोग आदिको नाश करता है। यह उशीरासव शामक, मूत्रल, पित्तशामक, दाहनाशक और प्रसादक है। यह प्रयोग रक्तपित्त में विशेषतः मूत्रमार्ग से रक्त जाने पर अति उपयुक्त है। रक्तपित्त में रक्त निर्बल और उष्ण होजाता है; पित्तके संयोगसे विदग्ध होजाता है। पित्तमें विदग्धत्व बढ़ने पर यह रक्त को विदग्ध कर देता है। फिर रक्तवाहिनियोंकी दीवार पतली होजाती है, पश्चात् रक्तवाहिनियाँ फूटकर रक्तस्राव होने लगता है। क्वचित रक्त का दबाव बढ़ जाने पर भी रक्त गिरने लग जाता है। यदि रक्त विदग्ध होकर रक्तपित्त की संप्राप्ति हुई हो, तो उशीरासवका अति उत्तम उपयोग होता है।

ग्रीष्म ऋतु में कितनेक व्यक्तियोंमें रक्तपित्तकी अधिक प्रवृत्ति होती है। इनको नाकमें से बार-बार रक्त गिरता है। जैसे-जैसे गरमी बढ़ती जाती है; वैसे वैसे नाकमें से रक्त गिरने का त्रास बढ़ता जाता है, और मूत्रमें दाह भी होता है। ऐसी प्रकृति वालों के लिये उशीरासव अति उपयोगी होता है।

अत्यार्त्तव, रक्तातिसार, अर्श, इन व्याधियो में अधिक रक्तस्राव होने पर इस आसवका उत्तम लाभ पहुँचता है। विशेषतः पित्तप्रकृति वालो को उष्णवीर्य पदार्थ खानेमें आने, जागरण होने, सूर्यके तापमें घूमने, अथवा अग्नि के पास बैठने पर रक्तस्रावकी प्रवृत्ति अधिक बढ़ जाती है। इन पर उशीरासव उत्तम कार्यकारी है।

कितनेक लोगो को किसी भी स्थानमें छोटासा जखम होने पर या सुई लग जाने पर खूब रक्तस्राव होजाता है। पुरुषोंकी अपेक्षा ऐसी प्रकृति वाली स्त्रियाँ विशेष देखने में आती हैं। इनके लिए यह उशीरासव अधिक हितकर है।

रक्तस्राव अधिक होने से उत्पन्न पाण्डु रोगमें हृदयमें धड़कन, धमनियोंमें स्फुरण, आदि लक्षण होने पर उशीरासव सुवर्णमाक्षिक भस्म के साथ देना चाहिये।

सुजाक या उपदंश विकार शमन होजाने पर रक्तमें कुछ विष अवशिष्ट रह जाता है। उसका निवारण उशीराशवके सेवनसे होजाता है। मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघातमें मूत्र की उत्पत्ति बढ़ाना और मूत्र में होनेवाले दाहको दूर करना, ये दोनो कार्य इस उशीरासवसे सिद्ध होते हैं। इस तरह अश्मरी या मूत्रशर्कराके चुभने पर उसे शमन करने का महत्वका कार्य भी इस आसवसे होता है। कालमेह, नीलमेह, मांजिष्ठमेह आदि पित्तज प्रमेहो पर यह विशेष उपकारक है। एवं यह

-शोथकी तीव्रावस्थामें रक्तसंचयकी प्रवृत्ति नष्ट कर रक्तप्रसादनका महत्व -का कार्य भी करता है। (औ० गु० ध० शा० के आधार से)

(५) खदिरारिष्ट ।

बनावट—काले खैरकी अंतरछाल या लकड़ीका बुरादा २०० तोले, देवदारु २०० तोले, बावची ४८ तोले, दारुहल्दी ८० तोले और त्रिफला ८० तोले लेकर सबको जौकुट करे। फिर जल ८१९२ तोले मिलाकर अष्टमांश क्वाथ करे। १०२४ तोले जल शेप रहने पर उतार कर छानलें। फिर शीतल होने पर मिश्री ५ सेर, शहद १० सेर, धायके फूल ८० तोले, पीपल १६ तोले, जायफल, लौंग, शीतलमिर्च, नागकेशर, इलायची, दालचीनी और तेजपात प्रत्येक ४-४ तोले डाले। १ मास तक बन्द रखे, फिर छानले। (भै० र०)

मात्रा--१। से २॥ तोले दिनमें २ या ३ वार जलके साथ दे।

उपयोग—इस अरिष्टके सेवनसे सब प्रकारके कुष्ठ, पाडु, हृदय-रोग, अर्बुदरोग, कृमि, श्वास, कास, रक्तविकार, प्लीहोदर, गुल्म आदि मिटते है। यह रक्तशोधक, किञ्चित् सारक और पाचक है।

इस खदिरारिष्टका विशेष परिणाम रक्त, त्वचा और अन्त्र पर होता है। अन्त्रस्थ सेन्द्रिय विष इस अरिष्टके सेवनसे निष्क्रिय होता है। छोटे रेंगनेवाले सूक्ष्म कृमि अन्त्रमें होनेपर उन पर भी इस अरिष्ट का परिणाम होता है। ये कृमि इस आसवके योगसे मूर्च्छित होजाते है। उनके अण्डे नष्ट होते हैं। इस तरह अन्त्र स्वच्छ और कृमिविकार से अलिप्त होजाता है। अन्त्रव्रण है, तो उसमें अवस्थित कीटाणु खदिरारिष्टसे नष्ट होते हैं। एवं वह भी सरलता से भर जाता है।

इस तरह चर्मरोगके कारणभूत होने वाले कीटाणुओंको भी यह आसव नष्ट कर देता है। इसी हेतुसे इस अरिष्टको कुष्ठनाशक कहा है। क्षुद्र कुष्ठ अर्थात् पामा, दद्रु, व्युची आदि त्वचा रोगोंमें अणु-वीक्षण यन्त्रकी सहायतासे देखने पर विविध कृमि प्रतीत होते है। ये कृमि विशिष्ट स्थूल धातु या उसके अंग प्रत्यंग विभागोंमें बढ़ सकते हैं। उसमें परिवर्त्तन करानेको चरक विमानके ५ वे अध्यायमें "ततो-विघातः प्रकृतेः"--इस वचनसे प्रकृतिविघात कहा है। इन कृमियोंकी वृद्धिमें धातुओंके भीतर विशिष्ट द्रव्य परिस्थिति कारणभूत होती है। इस परिस्थितिका परिवर्त्तन करा उससे प्रतिकूल परिस्थिति उत्पन्न करा देनेपर धातुओंमें कीटाणुओंका प्रतिकार करनेवाला प्रतिविष तैयार

होता है। फिर वहाँ पर कृमियोंका रहना अशक्य होजाता है। उनका जीवन-व्यापार ही नहीं चल सकता। यह कार्य (प्रतिविषोत्पत्ति) खदिरारिष्टके योगसे सहज होजाता है। बावची और देवदारूमेंसे कार्यकारी द्रव्य त्वचा द्वारा देहसे बाहर निकलता रहता है, एवं खदिर रक्तमें मिश्रित होकर रक्तकृमियोंको निरुपयोगी बनाता है। इस तरह यह अरिष्ट कुष्टकृमि या कृमिज कुष्टका नाश करता है।

महाकुष्टमें भी खदिरारिष्ट उत्कृष्ट कार्य करता है। महाकुष्टकी उत्पत्ति भी कीटाणुओंसे होती है। इन कीटाणुओं की और राजयक्ष्मा के कीटाणुओंकी आकृतिमें सादृश्यता है। इन कुष्टोंमें रक्त, लसीका, त्वचा, मांस आदि दूष्यें दूषित होजाते है। ये कीटाणु लसीकामें बढ़ते हैं। फिर सर्वत्र फैल जाते है, और अन्य दूष्योंको दुष्ट कर देते है। खदिरारिष्टका परिणाम लसीका पर विशेष होता है। इससे कुष्ठोत्पादक जीवाणु बढ़ नहीं सकते। फिर शनैः-शनैः आगेकी धातुओंकी दुष्टि भी निवृत्त होजाती है।

अन्त्रमें आमदोष संचित होकर उसका परिणाम रक्त और हृदय पर होता है। परिणाममें हृत्स्पंदकी वृद्धि होकर बार-बार घबराहट होजाती है, और प्रस्वेद आजाता है। इन लक्षणो पर खदिरारिष्ट उत्तम उपयोगी होता है।

पाण्डुरोग, अर्बुद, गुल्म या अन्त्रमें गाँठ, कास, श्वास, प्लीहोदर, इन रोगो पर खदिरारिष्ट उपयोगी है। इसके योगसे जीर्ण आमविषका शनैः-शनैः रूपान्तर होता जाता है; रक्तप्रसादन होता है, लसीका और त्वचा शुद्धि होती है। (औ० गु० ध० शा०)

(६) कनकासव।

बनावट—धतूरेका पञ्चाङ्ग और वासामूल ३२-३२ तोले; मुलहठी, पीपल, कटेली, नागकेशर, सोंठ, भारंगी, तालीसपत्र प्रत्येकका चूर्ण १६-१६ तोले, धायके फूल १२८ तोले, द्राक्षा १६० तोले, शक्कर ८०० तोले, शहद ४०० तोले और जल ४०९६ तोले ले। सब औषधियोंको चीनी मिट्टीके पात्रमें डाल, मुँह बन्द कर, एक मास तक रख दे। बादमें निकालकर छानले। (भै० र०)

सूचना—यह आसव कुछ समयमे अम्ल बन जाता है। इस हेतुसे उसे 'कनकासव' संज्ञा दी है, वह अनेक विद्वानो की दृष्टिमे अनुचित भासती है।

मात्रा—½ से १ तोला तक दिनमें २ बार जल मिलाकर पिलावें।

उपयोग—कनकासव सब प्रकारके श्वास, कास, राजयक्ष्मा,

क्षतक्षीण, जीर्णज्वर, रक्तपित्त और उरःक्षतका नाश करता है।

यह आसव उष्ण, कफस्राव कराने वाला, शोथघ्न, किञ्चित् मादक, वेदनाशामक और बल्य है। इस आसवसे फुफ्फुस और श्वासवाहिनीके प्रदाह दूर होकर निर्दोष बनते है, जिससे श्वास, कास, यक्ष्मा आदि रोगोंका शमन होता है, और क्षीणता दूर होती है।

कनकासव कास और श्वासरोगकी उपयुक्त ओषधि है। श्वास-वाहिनियोंके प्रदाहके हेतुसे कास, श्वास होने पर इसका अच्छा उपयोग होता है। कनकासवसे श्वासवाहिनियोंकी संकुचित होनेकी प्रकृति नष्ट होती है, कफ पृथक् होकर बाहर निकलने लगता है, तथा श्वासके हेतुसे होनेवाले घबराहट और बेचैनी तत्काल दूर होते है। कभी-कभी इस आसवके योगसे कितनेक व्यक्तियोंको वान्ति होजाती है, परन्तु उससे हानि नही होती; प्रत्युत लाभ ही होता है। श्वास-वाहिनियोंमें से श्लेष्मस्राव होजानेमें सहायता मिल जाती है।

शरीरमें उदीरत होने वाले स्राव कनकासवके योगसे कम हो जाते है, अर्थात् स्तन्य (दूध), प्रस्वेद, उदरमें पित्तस्राव, अतिसारमें अब्धातुका स्राव आदि कम होजाते है। क्षयकी अंतिमावस्थामें होने वाला अत्यधिक प्रस्वेद कनकासवके योगसे कम होजाता है।

कोष्ठशूल, विशेषतः पित्तप्रधान शूल, पर इस आसवका अच्छा उपयोग होता है। पित्ताशयमें पित्ताश्मरी बनने पर उत्पन्न शूल के शमनार्थ इसका अच्छा उपयोग होता है। परिणामशूल और अन्नद्रवशूल, दोनों प्रकारके शूलो पर इस आसवका वेदनाशामक रूपसे अच्छा उपयोग होता है।

मूत्रशर्करा या अश्मरीके सूक्ष्म-सूक्ष्म कण गविनीमेंसे मूत्राशयकी ओर जानेके समय शूलोत्पत्ति होती है। इस पर भी कनकासवके शूलघ्न धर्मका अनुभव होता है।

शीतपूर्वक ज्वरमें शीत लगने पर अंग टूटना, शिरदर्द, कम्प आदि जो त्रास होता है, वह कनकासवके योगसे कम होजाता है। मात्रा कम देनी चाहिये। (औ० गु० ध० शा० के आधारसे)

अनेक बार हिक्का किसी भी ओषधिके सेवनसे शमन नहीं होती, बारबार वेगपूर्वक आती रहती है। उत्तेजक औषध सेवन से हिक्काका वेग बढ़ जाता है। ऐसे समय पर कनकासवके प्रयोगसे तत्काल लाभ पहुँच जाता है।

यदि श्वास और कासरोगमें कफ अत्यधिक संगृहीत होगया

हो, तो कनकासव के साथ अपामार्ग क्षार मिलाकर देनेपर सत्वर लाभ पहुँचता है।

सूचना—कनकासवका उपयोग कम मात्रामें करना चाहिये, अन्यथा विषप्रकोप होता है। विषलक्षण होने पर मट्ठा अथवा नीबू या इमलीके शर्बतमें जल मिलाकर पिलाना चाहिये।

(७) अश्वगंधारिष्ट।

बनावट—असगन्ध २०० तोले, सफेद मूसली ८० तोले; मजीठ, हरड़, हल्दी, दारुहल्दी, मुलहठी, रास्ना, विदारीकन्द, अर्जुनकी छाल, नागरमोथा और निसोत, सब ४०-४० तोले और अनन्तमूल सफेद, अनन्तमूल काला, सफेद चन्दन, लाल चन्दन, वच, चीतेकी छाल, प्रत्येक ३२-३२ तोले लें। सबको जौकुट कर ८१९२ तोले जलमें पकावें। अष्टमांश जल शेष रहने पर उतार कर छानलें। शीतल होने पर चीनी या मिट्टीके पात्रमें भर कर धायके फूल ६४ तोले, शहद १० सेर, त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपल) ८ तोले, त्रिजात (दालचीनी, तेजपात, इलायची) १६ तोले, नागकेशर ८ तोले और प्रियंगु १६ तोले मिलालें। फिर मुँह बन्द कर २ मास रहने दें। बाद में छान लेवें। (भै० र०)

मात्रा—१। से २॥ तोले दिनमें २ बार जलके साथ दें।

उपयोग—यह अरिष्ट दीपक, पाचक, वृष्य और वातनाशक है। २० प्रकारके प्रमेह, ध्वजभंगता, नामर्दी, उन्माद, शोष, बवासीर, मूर्च्छा, मस्तिष्ककी निर्बलता, भ्रम, मृगी, वातव्याधि, हृदयरोग इत्यादि को दूर करके शरीरमें स्फूर्ति, वीर्यकी शुद्धि और वृद्धि करता है।

यह अरिष्ट हिस्टीरिया, मूर्च्छा और उन्मादके लिये उत्तम ओषधि है। यह कोष्ठस्थ आमविषको नष्ट करता है। अतः आमवातके मंद वेग होने पर इसका अच्छा उपयोग होता है। यह अग्निप्रदीपक होनेसे पचन-विकृतिको दूर करता है, वातवाहिनियों और रस, रक्त, आदि धातुओंको सबल बनाता है। प्रसूताकी निर्बलताको दूर करनेमें हितावह है। नपुंसकता, जो शारीरिक निर्बलताके हेतुसे आई है, उसे दूर कर उत्साहकी वृद्धि कराता है।

(८) त्रिफलारिष्ट।

बनावट—हरड़, बहेड़ा, आँवला, पीपल, चित्रकमूल, अजवायन, बायविडङ्ग सब १६-१६ तोले लेकर २००० तोले जलमें क्वाथ करे। चतुर्थांश जल शेष रहे तब उतार छानकर लोहभस्म १६ तोले, गुड़

४०० तोले, शहद ३२ तोले मिलावे। फिर पात्रमें भर मुखमुद्रा कर १ मास बन्द रखनेसे अरिष्ट पक जाता है। (ग० नि०)

मात्रा—१। से २॥ तोले तक दिनमें २ बार जलमें मिलाकर भोजनके बाद लें।

उपयोग—इस अरिष्टमें त्रिफलाके अतिरिक्त लोहभस्मका भी प्राधान्य है। यह हृद्य, दीपक और पाचक है। इस आसवसे रक्तकी सत्वर वृद्धि होती है; एवं हृदयरोग, घबराहट, फेफड़ेकी कमजोरी, पाण्डु, शोथ प्रमेह, भगन्दर, अर्श, गुल्म, तिल्ली, सग्रहणी, कास, श्वास आदि रोगोंका नाश होता है।

सूचना—लोहभस्म मिलानेके लिये प्रकरणके प्रारम्भमें सूचना की गई है; उस तरह मिलानी चाहिये।

(९) अर्जुनारिष्ट

बनावट—अर्जुनकी छाल ४०० तोले, द्राक्षा २०० तोले और महुवेके फूल ८० तोले मिला जौकुट कर, ४०९६ तोले जल मिलाकर क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहे, तब उतार कर, छान ले। फिर शीतल होने पर गुड़ ४०० तोले और धाय के फूल ८० तोले मिला मुखमुद्रा करके १ मास तक रख देवें, फिर छानकर भर लेवें। (भै० र०)

इस अरिष्टमें हम गुड़के साथ शहद १०० तोले मिलाते हैं। मूल ग्रन्थमें पार्थाद्यरिष्ट नाम लिखा है।

मात्रा—१। से २॥ तोले तक दिनमें २ बार जलके साथ देवे।

उपयोग—यह अरिष्ट उत्तम हृद्य है। पित्तप्रधान हृद्रोग और फेफड़ोंकी सूजनसे फूली हुई। शिथिल नाड़ियोंको सकुचित और दृढ़ बनाकर निर्बलताको दूर करता है, तथा शरीरमें बल लाता है।

(१०) अमृतारिष्ट।

बनावट—गिलोय ४०० तोले और दशमूल ४०० तोलेको जौकुट करके ४०९६ तोले जलमें क्वाथ करें। चौथा भाग जल शेष रहने पर उतार मलकर छान ले। शीतल होने पर गुड़ १२०० तोले मिलावे। जीरा ६४ तोले, पित्तपापड़ा ८ तोले, और सतौना, सोंठ, मिर्च, पीपल, मोथा, नागकेशर, कुटकी, अतीस, इन्द्रजौ, प्रत्येक ४-४ तोले मिला, यथाविधि चीनी मिट्टीके पात्रमें मुखमुद्रा करके १ मास तक रख दे। परिपक्व होनेपर छान लें। हम गुड़ १५ सेर के स्थान पर ७॥ सेर मिलाते है। (भा० भै० र०)

मात्रा—१। से २॥ तोले तक दिनमें २ बार जल मिलाकर देवे।

उपयोग—अमृतारिष्ट जीर्णज्वर, मुदती ज्वर और निर्बलताको दूर करता है। जीर्ण विषम ज्वर, शीत ज्वर और अन्य ज्वरोंमें भी हितकर है।

अमृतारिष्ट सतत, अन्येद्युष्क, तृतीयक आदि विषमज्वरोंमें अति उत्तम कार्य करता है। इसके योगसे रसरक्तगत दोषोंका निर्हरण उत्तम रूपसे होता है। ज्वर तीव्र होनेपर भी यह दिया जाता है। कुछ दिनों तक बन्द रहकर पुनः-पुनः उलटकर आनेवाला परिवर्त्तित ज्वर इस औषधिके सेवनसे शमन होजाता है। कितनेक दृढ़मूल ज्वरों पर सौम्य सोमल कल्पके साथ इस अमृतारिष्टका उत्तम उपयोग होता है

जीर्णज्वरमें प्लीहावृद्धि और अग्निमान्द्य होने और ज्वर अति कम परिमाणमें होने पर यह अरिष्ट अति उत्तम कार्य करता है। अन्य हेतुओंसे अर्थात् जीर्ण विषमज्वर, काला आजार, मेदक्षय आदि से प्लीहावृद्धि होने पर अमृतारिष्टका अत्यन्त उत्तम उपयोग होता है। यकृद्दाल्युदर और प्लीहोदर होजाने पर मूत्रल अनुपानके साथ अमृतारिष्ट प्रयोग करनेसे अच्छा लाभ होता है।

अमृतारिष्टका उपयोग प्रमेह पर उत्तम होता है। इससे मूत्रदोष नष्ट होते हैं। फिर बार-बार मूत्रोत्सर्ग नहीं करना पड़ता। सुजाक के जीर्ण विकारमें यह अति उपयोगी है। सुजाक या उपदंशके हेतुसे संधिवात उत्पन्न हुआ हो तो उसपर इस अरिष्टका उपयोग होता है। इस तरह आमवात जीर्ण होने पर यह लाभ पहुँचाता है।

अग्निमान्द्यमें अमृतारिष्ट हितकारक है। इसके सेवनसे आमाशय रसका स्राव योग्य होने लगता है। फिर आहार पचन होने लगता है और उत्तम क्षुधा लगती है, एव रंजक पित्तका स्राव अच्छा होता है, जिससे रक्तकणोंकी योग्य वृद्धि होने लगती है, तथा मुखमण्डल परसे निस्तेजता दूर होकर लाली आजाती है।

सक्रामक ज्वर अनेक दिनों तक रहजाने पर निर्बलता आती है और बलक्षय होता है, उसपर अमृतारिष्ट अत्यन्त उपयुक्त है। इससे निस्तेजता का नाश होकर शक्ति और बल मांसकी वृद्धि होती है।

अमृतारिष्टसे यकृत् सबल बनता है, उसमेंसे पित्तस्राव उत्तम प्रकारसे होने लगता है। यकृत्में पित्तोत्पादक घटकोंको बलकी प्राप्ति होती है। फिर उनका कार्य सम्यक् प्रकारसे होने लगता है। इस हेतु से यह अरिष्ट पित्तजशूल, उदरशूल और अपचन पर अच्छा लाभ पहुँचाता है। कामलेके कितनेक प्रकारमें यह उत्तम कार्य करता है।

विशेषतः शीतल वायु या शीतल स्थानोमें फिरने या रहने पर कामला की उत्पत्ति हुई हो, तो उस पर यह लाभदायक है। अतिसार या जीर्ण संग्रहणीमें यकृत् कार्य सम्यक् न होता हो, तो यह अरिष्ट देना चाहिये। अतिसार में इसके योग से अबूधातुकी प्रवृत्ति कम होजाती है और यकृत्पित्तका स्राव योग्य मात्रामें होने लगता है।

अमृतारिष्ट त्वचाके कितनेक विकारो में अति उपयोगी है। यकृत्के विकारसे त्वचा पर काले धब्बे या सूक्ष्म पिटिका उत्पन्न होने पर अमृतारिष्ट देवे। जीर्ण कण्डू पर भी यह उत्तम उपयोगी है।

अमृतारिष्टका उपयोग सूतिका ज्वरमें अच्छा होता है। रक्तमेंसे सूतिका विष कम करनेके लिये इसके साथ प्रतापलंकेश्वर देना चाहिये। दशमूलारिष्ट भी सूतिका ज्वरमें दिया जाता है, परन्तु पित्तप्रधान पतले गरम-गरम दस्त लगने पर जब वह न दिया जाय तब ज्वरावस्थामें इसका उपयोग किया जाता है। (औ० गु० ध० शा०)

(११) सारस्वतारिष्ट।

बनावट—ताजी ब्राह्मी (जल नीम) ८० तोले, शतावरी, विदारीकंद, हरड़, नेत्रबाला, अदरख, सौंफ, सब २०-२० तोले लेकर जौकुट करे। जल १०२४ तोले मिलाकर क्वाथ करे। चतुर्थांश जल शेप रहनेसे उतार कर छान ले। फिर शीतल होने पर शहद ४० तोले और शक्कर १०० तोले मिलावे। धायके फूल २० तोले, रेणुकबीज, पीपल, बच, असगन्ध, गिलोय, वायविड़ङ्ग, निसोत, लौंग, कूट, बहेड़ा, इलायची, दालचीनी और सोनेके वर्क, प्रत्येक १-१ तोला डाले। मुखमुद्रा करके एक मास तक रखें; फिर छानकर भरले।

(भै० र०)

मात्रा—१। से २॥ तोले तक दिनमें २ बार जलके साथ दे।

सूचना—सुवर्णका वर्क, पीपल, लौंग, इलायची और दालचीनीके साथ खरल कर नये पतले कपड़ेकी बड़ी थैलीमें भरकर अरिष्टमे लटका देवे। अरिष्ट तैयार होनेपर छानकर उसमे थैलीकी ओषधिको मसलकर मिला लेवे। फिर अरिष्टको १ मास तक अमृतबानमें बन्द करके रखे। पश्चात् ऊपर-ऊपरसें नितरे भागको बोतलोमें भर लेवे।

अथवा सुवर्णके वर्क मिलानेकी अपेक्षा आसव प्रकरणके प्रारम्भमें लिखी विधि अनुसोर सुवर्ण-लवण बनाकर मिलावे।

उपयोग—यह अरिष्ट आयु, वीर्य, धृति, मेधा, बल और कान्तिको बढ़ाता है, तथा वाणीकी शुद्धि करता है। यह उत्तम हृद्य रसायन है। बालक, युवा और वृद्ध, पुरुष और स्त्री सबके लिये

हितकारक है।

यह स्वरकी कर्कशता और अस्पष्टताका निवारण करके स्वरको कोयलके समान मधुर बनाता है। स्त्रियोंके रजोदोष और पुरुषोंके शुक्रदोपको नष्ट करता है। अति अध्ययन, अति गाना आदि कारणों से स्मरणशक्ति शिथिल होगई हो, तो उसे सबल बनाता है, एवं चित्त को प्रसन्न और सन्तोषी बनाता है। यह अरिष्ट एक मासमें हृद्रोग का नाश करता है, और एक वर्षके सेवनसे शारीरिक सिद्धि देता है।

सारस्वतारिष्ट उत्तम बल्य, हृद्य, रसायन, वातवाहिनियों और वातकेन्द्र पर शामक, चित्तप्रसादक, बुद्धिप्रद और स्मृतिवर्द्धक है। वातवाहिनियोंके क्षोभसे उत्पन्न व्याधियों पर अप्रतिम कार्यकारी औषध है।

छोटे बालकोंके बालग्रहमें कोष्ठशुद्धि कराकर सारस्वतारिष्ट देनेसे लाभ पहुँच जाता है। तोतलापन, बुद्धिमान्द्य, श्रवणशक्ति और स्मरणशक्तिमें न्यूनता, विचाररहित बोलना आदि विकारों पर यह अच्छा उपयोगी है; एवं उन्माद, अपस्मार, उत्साहका अभाव, उतावलापन आदि व्याधियोंमें सारस्वतारिष्ट लाभदायक है।

स्त्रियोंके मासिकधर्म बन्द होने पर होनेवाले अनेक विकार—घबराहट, चक्कर, हाथ-पैरमें शून्यता आजाना, बेचैनी, कहीं भी चित्त न लगना, निद्रानाश आदि होते हैं। उनपर यह सारस्वतारिष्ट अति उत्तम कार्य करता है। इन विकारोंमें कितनीक स्त्रियोंको चक्कर बहुत आते हैं; वह इतने तक कि ऊँची दृष्टि भी नहीं कर सकतीं। सोते-सोते मोटर गाड़ी चलनेके सदृश मस्तिष्क फिरता है, सर्वदा कानमें नाद गूँजता रहता है। ऐसे समयपर सारस्वतारिष्ट सुवर्णमाक्षिक भस्मके साथ देनेसे उत्तम कार्य करता है।

स्त्रियोंके बीजाशय या पुरुषोंके अण्डकोषकी वृद्धि योग्य रूपसे न होनेसे स्त्री-पुरुषोंके शरीर आयुवृद्धि होनेपर भी उचित अंशमें नहीं बढ़ते। युवावस्थाकी भावना भी नहीं होती। ऐसी स्थितिमें मकरध्वज और वङ्गभस्मके साथ सारस्वतारिष्ट देना चाहिये।

(औ० गु० ध० शा०)

(१२) द्राक्षासव।

प्रथम विधि—५ सेर मुनक्काको धो कुचल कर ४०९६ तोले जलमें उबालें। चतुर्थांश जल शेष रहे तब उतार मलकर छान लें। फिर ५ सेर मिश्री और ५ सेर शहद मिलावें। धायके फूल ६४ तोले, शीतलमिर्च, तेजपात, दालचीनी, इलायची, नागकेशर, लौंग, जायफल, कालीमिर्च,

पीपल, चित्रकमूल, चव्य, पीपलामूल और निगुण्डीके बीज, प्रत्येक चार-चार तोले ले जौकुट कर मिला देवें। फिर पात्रमें कपूर, अगर और चन्दन का धुआँ देकर आसव भरे और मुखमुद्रा करके १॥ मास तक रख देवे। परिपक्क होने पर निकाल कर छान ले। (यो० र०)

जो मुनक्का दूषित होगई हो या शुष्क हो, उसको उपयोगमे न लेवे।

मात्रा—१। से २॥ तोले समभाग जल मिलाकर दिनमें २ से ३ बार लेवे।

उपयोग—यह द्राक्षासव ग्रहणी, अर्श, उदावर्त, रक्तगुल्म, उदररोग, कृमि, कुष्ठ, विविध प्रकार के व्रणरोग, नेत्ररोग, शिरोरोग, गलरोग, ज्वर, आम, पाण्डु और कामला रोग को नाश करने में श्रेष्ठ है। यह बृंहण, बलवर्णकारक और अग्नि प्रदीपक है।

किसी भी रोगमें शक्तिके संरक्षणार्थ और निर्बलताको दूर करने के लिये यह उपयोगी है। अरुचि, आलस्य, थकावट और बेचैनी को दूर कर शारीरिक उत्साह बढ़ाता है। इसके सेवनसे शान्त निद्रा आ जाती है। मलशुद्धि होती है और मन प्रफुल्लित बनता है।

यह आसव पाचक पित्तका स्राव बढ़ाता है, इस हेतुसे अग्निमान्द्य और उससे उत्पन्न विविध व्याधियोंमें यह लाभदायक है।

रक्तार्श या पित्तार्श पर इसका सेवन हितकारक है। यदि उदावर्त रोग प्रबल न होगया हो, तो इसका प्रयोग अच्छा माना गया है। पित्तज गुल्म में ज्वर, तृषा, समस्त देह लाल हो जाना, मुखमण्डल लाल हो जाना, भोजनके ३-४ घण्टे पर मंद-मंद उदरशूल, गुल्म पर स्पर्श करने पर वेदना, जिस तरह व्रण पर हाथ लगाने से वेदना होती है उस तरह गुल्म पर स्पर्श करने से तीव्र वेदना का भान होना आदि लक्षणों वाले गुल्ममें यह अच्छा उपयोगी है।

नवप्रसूता स्त्रीको अपथ्य सेवन करने पर या बार-बार गर्भपात होनेवाली स्त्रीको रक्तगुल्म हुआ हो; गर्भधारण के सदृश लक्षण प्रतीत हो; साथमें अग्निमान्द्य, बारबार वमन आदि चिह्न हो, तो द्राक्षारिष्ट अधिक उपयुक्त होता है। इससे रक्तगुल्म शमन तो नहीं होता, परन्तु अधिक सन्ताप दूर होता है, और वमन आदि लक्षणोंका नाश होता है।

पित्तभूयिष्ठ उदररोगमें सहायक ओषधि रूपसे द्राक्षासव का उपयोग किया जाता है।

आमज्वरकी प्रथमावस्थामें ज्वर पाचन रूपसे इसका प्रयोग हितकारक है। ज्वरमें कास होने पर यह उपयोगी है। पाण्डु और

कामला पर यह सहायक रूपसे प्रयोजित होता है। (औ० गु० ध० शा०)

द्वितीय विधि—शुद्ध जलसे धोई हुई नयी मुनक्का २०० तोलेको २०४८ तोले जलमें मिलाकर चतुर्थांश क्वाथ करे। शीतल होने पर मसलकर छान लेवे। फिर ८०० तोले गुड़, धायक फूल ३२ तोले, वायविडङ्ग, प्रियंगू, पीपल, दालचीनी, छोटी इलायचीके दाने, तेजपात, नागकेशर, कालीमिर्च और सोंठ, प्रत्येक ४-४ तोले मिलाकर अमृतबानमें भरें। मुखमुद्रा कर १ मास रख दे। मूलग्रन्थमें सूर्य के तापमें रखनेको लिखा है। परन्तु सुरक्षित मकानमें रखना विशेष हितकर है। फिर आसव परिपक्व होने पर · न लेवे। (यो० र०)

हम इस आसव में गुड़ ५ सेर मिलाते हैं, गुड़ मर्यादासे अधिक होजाने पर मद्यार्क कम हो जाता है।

मात्रा—१। से २॥ तोले तक समान जल मिलाकर सेवन करे।

उपयोग—यह आसव कास, श्वास, गलरोग और उग्र राजयक्ष्मा आदि रोगोको नष्ट करता है। यह उरःसन्धानकारक होने से उरःक्षत को भी दूर करता है।

छोटे बच्चोके कफविकारमें यह उत्तम उपयुक्त है। श्लैष्मिक और श्वसनक सन्निपातोके शमन होजाने पर शेष रहने वाले कासरोग को नष्ट करनेमें द्राक्षारिष्ट उत्तम कार्य करता है। इसके सेवन से हृदय सबल बनता है। फुफ्फुसोका क्षोभ शनैः-शनैः शमन होता है। श्लैष्मिक और श्वसनक सन्निपातोमें इसके सेवनसे कफविकार कम होता है। शनैः-शनैः कफ छूटकर स्राव होने लगता है। कफ से होने वाली घबराहट दूर होती है। छोटे बालकोके श्वसनक सन्निपात (पसली रोग) में ३० से ६० बूंद तक बार-बार गरम जलमें मिलाकर देते रहे।

अन्य प्रकारके कासरोगमें भी इसका अच्छा उपयोग होता है। विशेषतः काली खांसी पर मृगश्रृङ्गभस्म और प्रवालपिष्टी के साथ द्राक्षारिष्ट देने से उत्तम उपयोग होता है। इससे खाँसी के वेग और त्रासका शमन होता है।

पित्तज श्वासके विकारमें घबराहट अति होती है। सारा शरीर प्रस्वेदसे भीग जाता है, और मस्तिष्क फिरने लगता है। ऐसे समय पर इस द्राक्षासवका उत्तम उपयोग होता है।

क्षयरोगकी कासमें अति त्रास होने पर इसके सेवनसे त्रास कम हो जाता है। यह आसव क्षय कीटाणुओको नष्ट नही करता, फिर भी द्राक्षासव और च्यवनप्राशावलेह के सेवन से क्षयपीड़ित व्यक्तिका

बल बढ़ जाता है, अग्नि प्रदीप्त होती है; कास कम होती है; मांस बढ़ता है, और रोगीकी मुखमुद्रा अच्छी दीखने लगती है। इसके साथ सुवर्ण कल्प देने पर क्षयरोगके निवारणमें अच्छी सहायता मिल जाती है। जब राजयक्ष्मामें बड़े-बड़े उरःक्षत होजाते है, तब तो किसी ओषधि का उपयोग नहीं होता। परन्तु उस अवस्था में भी द्राक्षासव देते रहने से कुछ शान्ति रहती है। इस आसवमें उरः संधानकारकता कितने अंशमें है, यह अभी निर्णीत नहीं हुआ। शान्त रहना एक बात है, और उरःसंधान होना दूसरी बात है। (औ० गु० ध० शा०)

(१३) कुटजारिष्ट ।

बनावट—काले कुड़ेकी छाल ५ सेर, मुनक्का २॥ सेर, महुवेके फूल ४० तोले और गम्भारीकी छाल ४० तोले ले, जौकुट कर जल ४०९६ तोले मिलाकर उबाले। चतुर्थांश जल रहने पर उतार, मल कर छान ले। शीतल होने पर गुड़ ५ सेर और धायके फूल १ सेर मिला, मुखमुद्रा कर १ मास रख दे। परिपक्व होने पर छान ले। (शा० सं०)

मात्रा--१। से २॥ तोले दिनमें ३ या ४ बार समभाग जल मिलाकर पिलावे।

उपयोग—यह अरिष्ट सब प्रकारकी संग्रहणी, अतिसार, रक्तातिसार, पेचिश, मन्दाग्नि, ज्वर आदि रोगोंको दूर करता है; एवं बालकोंकी संग्रहणी, रक्तातिसार और ज्वरमें भी हितकर है।

कुटजारिष्ट किञ्चित् वामक और कफस्रावक है। इस हेतुसे जीर्ण कास और छोटे बच्चोंके नूतन कासमें कफस्रावी रूपसे उपयोगी है। इतना ही नहीं, श्लैष्मिक सन्निपात और श्वसनक सन्निपातमें पुनर्नवा और मुलहठीके क्वाथके साथ कुटजारिष्ट देनेसे श्लेष्मस्राव होकर खाँसीका त्रास कम हो जाता है। इसके योगसे श्वासवाहिनियोंका क्षोभ और प्रदाह नष्ट होता है। छोटे बच्चोंके श्वसनक ज्वर (डब्बा) में कुटजारिष्ट और द्राक्षारिष्ट मिलाकर देनेसे सत्वर लाभ होता है।

यह औषध संग्रहणीके विकारमें अति उत्कृष्ट है। संग्रहणीमें भी कालज अर्थात् वर्षाऋतुके प्रारम्भमें होनेवाली और अन्य समयमें होनेवाली, ऐसे दो विभाग होते हैं। कीटाणुओंसे उत्पन्न संग्रहणी इस अरिष्टके योगसे सत्वर शमन होती है। बार-बार अति कम मल, कुछ आम और रक्त गिरना, ज्वर हो, तो अति कम वमन होना, उदरमें

भयंकर मरोड़ा आना, शौचके समय किछतेही रहना, किछनेसे कुछ, ठीक लगना आदि लक्षण होनेपर कुटजारिष्ट अति उपयुक्त है।

संग्रहणीके दूसरे प्रकारमें ज्वर अधिक रहता है। शौचमें केवल रक्तमिश्रित आम गिरता है। मल पहले प्रकार समान नहीं गिरता, तथा उदरमें मरोड़ा अति प्रबल होता है। इस विकार पर कुटजारिष्टका उपयोग नही होता। इस प्रकारमें गुद-नलिका में मल होता है; परन्तु गुदत्रिवली में शोथ होने या व्रण होने पर उसके बलसे मल-प्रवृत्ति बिल्कुल नहीं होसकती। इस प्रकारमें सर्वाङ्गसुन्दर, कनकसुन्दर, रस-पर्पटी आदि ओषधियोंका विशेष उपयोग होता है।

यदि ज्वररहित ग्रहणी रोग तीव्र हो, तो कुटजारिष्ट अधिक मात्रा में (१ से २ औंस तक) समान जल मिलाकर या बिना जल मिलाये दिनमें ४ समय देते रहनेसे लाभ हो जाता है। उदरमें मरोड़ा बलपूर्वक आता रहता हो, तो कुटजारिष्ट के साथ वेदनाशामक गुणके लिये अमृत वटी, कनकसुन्दर या सूतशेखर जैसी ओषधि देनी चाहिये। इनमें अमृत वटी विशेष हितावह है। शुद्ध बच्छनाग ६ भाग, वराटिका भस्म ५ भाग और कालीमिर्च ६ भाग मिलानेसे अमृत वटी तैयार होती है। मात्रा—आध-आध रत्ती।

दुर्निवार सग्रहणीका बल कम होकर जैसे-जैसे शौचवेग कम-कम होता जाय, वैसे-वैसे कुटजारिष्टकी मात्रा भी कम-कम करते जाना चाहिये। जितनी व्याधि जीर्ण हो, उतनी ही मात्रा कम देनी चाहिये। कभी-कभी रोगी संग्रहणीका वेग कम होने पर ओषधि और पथ्यका त्याग कर देता है, जिससे पुनः रोगका आक्रमण हो जाता है। इस तरह बार-बार होने पर रोग पुराना हो जाता है। ऐसे अनेक रोगी २-२ या ४-४ वर्षसे पीड़ित देखनेमें आते हैं। ऐसे रोगीको नीरोगी बनानेके लिये आग्रहपूर्वक पथ्यपालनसह कुटजारिष्ट अति कम मात्रा में दीर्घ काल तक देते रहना चाहिये। कभी-कभी यह क्रम एक-एक वर्ष तक कायम रखनेका है। संग्रहणी रोग पुराना होने पर कभी-कभी यकृद्विद्रधिके सदृश अनेक भयंकर उपद्रव होनेका भय रहता है, अतः इसे होसके उतना सत्वर दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये।

यकृद्विद्रधि, अग्निमान्द्य, कोष्ठशूल, ये उपद्रव संग्रहणीके तीव्र विकारके पश्चात् उत्पन्न होनेपर इन पर कुटजारिष्ट का अच्छा उपयोग होता है। यकृद्विद्रधि पर शिलाजीत आदि शोथघ्न और कीटाणु-विष-नाशक ओषधिके साथ कुटजारिष्टका देना अति हितकारक है।

संग्रहणीके विकारके पश्चात् या स्वतन्त्र दोषदुष्टिसे अग्निमान्द्य उत्पन्न होनेपर कुटजारिष्टका अच्छा उपयोग होता है। इसके योगसे पित्तस्राव योग्य परिमाणमें होने लगता है, तथा अग्निबलकी वृद्धि होकर आहार पचन और शोषण होनेमें अच्छी सहायता मिल जाती है।

ग्रहणीकी विकृति होनेपर अग्निमान्द्य, अग्निमान्द्यसे अपचन, अपचनसे बार-बार आमदोष सचित होकर ज्वर आते रहना, फिर ज्वर अति त्रासदायक बन जाना, ज्वर संतत ज्वरके सदृश होजाना, ज्वरका वेग तीव्र न होने पर भी व्याकुलता अधिक रहना, उबाक, क्षुधा न लगना, अरुचि, मुँह फीका रहना, जिह्वापर मैलकी तह आजाना, भोजन बेस्वादु लगना आदि लक्षणयुक्त सतत और संतत ज्वरमें कुटजारिष्ट अति उत्तम कार्य करता है।

अन्त्रकी संग्राहक शक्ति कम होनेपर अन्त्र शिथिल होजाते हैं। बार-बार शौच होना, कितनेक बार रक्तातिसार होजाना, गुदभ्रंश होना, आदि लक्षण होते हैं। इस पर कुटजारिष्ट अति उत्तम कार्य करता है। (औ० गु० ध० शा०)

(१४) अभयारिष्ट।

प्रथम विधि—हरड़ ५ सेर, मुनक्का २॥ सेर, वायविड़ङ्ग ४० तोले और महुवेके फूल ४० तोले लें। सबको जौकुट कर जल ४०९६ तोले मिलाकर क्वाथ करे। चतुर्थांश जल शेष रहने पर उतारकर छान लें। शीतल होने पर गुड़ ५ सेर, गोखरू, निसोत, धनिया, धायके फूल, इन्द्रायणकी जड़, चव्य, सौंफ, सोंठ, दन्तीमूल, मोचरस, प्रत्येक ८-८ तोले ले जौकुट चूर्ण कर मिला लें। फिर अमृतबानमें भर मुखमुद्रा करके १ मास रख दें, पश्चात् छान लें। (भै० र०)

मात्रा—१। से २॥ तोले समभाग जल मिलाकर लें।

उपयोग—यह अरिष्ट सब प्रकारके अर्श, आठों प्रकारके उदर रोग, मलावरोध और मूत्रावरोधको दूर करता है, तथा अग्नि को प्रदीप्त करता है।

अभयारिष्ट उत्तम सारक, मूत्रल और पाचक है। इसका उपयोग कोष्ठबद्धता पर अत्युत्तम होता है। बद्धकोष्ठमें जमालगोटाके सदृश तीव्र विरेचक औषधि उपयोगी नहीं होती। उससे अन्त्र की श्लैष्मिक कलामें प्रदाह होता है, और अन्त्र निर्बल बनता है। फिर रूक्षता आकर अन्त्र की पुरःसरण क्रिया मन्द होजाती है फलतः बद्धकोष्ठ

व्याधि कम होने के स्थानमें और बढ़ जाती है। बद्धकोष्ठमें मल संगृहीत होकर सड़ने लगता है। फिर उसमेंसे सेन्द्रिय विष उत्पन्न होता है; वह रक्तमें शोषित होकर विविध व्याधियोंके निर्माणमें कारणभूत बनता है।

अभयारिष्टके सेवनसे अन्त्रकी पुरःसरण क्रिया सम्यक् प्रकार से होकर मलनिःसरण-कार्य योग्य होता है। सेन्द्रिय विषकी उत्पत्ति नहीं होती। यदि अभयारिष्टके साथ थ ड़ा घी सेवन किया जाय, तो स्नेहन होनेमें सहायता मिल जाता है। घी पहले दें और रात्रिको निवाये जलके साथ अभयारिष्ट दें, तो भी लाभ होता है।

अर्श रोगमें शौचशुद्धि न होना, यह प्रमुख लक्षण होता है। शौचशुद्धि न होनेसे अधिक किंछना पड़ता है। गुदात्रिवली पर दबाव पड़-पड़ कर क्षोभ उत्पन्न होता है, फिर शोथ आ जाता है। शोथके पश्चात् शिराजालमें नीलताकी वृद्धि होती है। इन शिराओंको मस्सेके रूपकी प्राप्ति होती है, इन सबका मूल है शौचशुद्धि न होना। यकृत्के कार्यमें शैथिल्य उत्पन्न होकर ही रक्तार्शके विकारकी उत्पत्ति हो सकती है। यह यकृत्शैथिल्य अभयारिष्टके योगसे नष्ट होता है।

जिस तरह उदररोग की उत्पत्ति अजीर्ण, मलिन अन्न और मलसंचयके योगसे होती है, उस तरह दोषसंघात भी उदररोग का हेतु है। दोषसंघातसे पचनसंस्थामें शोषण कार्य विकृत होता है। उत्तरा महाशिरा और अधरा महाशिरा आदि पर दबाव आता है, और रसवहन कार्यमें प्रतिबंध होता है। कोष्टस्थ कफवृद्धि होती है। समान वायु, अपान वायु, पाचक पित्त, तीनों दोष, यकृत्, प्लीहा आदि इन्द्रियाँ सब विकृत होते है। शनैः-शनैः हृदय और वृक्क भी दूषित होते हैं। फिर उदर्याकलाके भीतर जलसचय होता है, उसे जलोदर कहते हैं। अभयारिष्ट जलसंचयसे उत्पन्न उदररोगमें उत्कृष्ट कार्य करता है। इस तरह पित्तोदर, यकृतोदर और प्लीहोदरमें भी इसका उत्तम उपयोग होता है। कफोदरमें इसके साथ अन्य क्षारकी योजना करनी चाहिये, अथवा हरीतकी रसायनका उपयोग करना चाहिये।

इस ओषधिसे मलमूत्रशुद्धि योग्यरूपसे होती है। पेशाब अधिक बार और अधिक परिमाणमें होता है, अग्निमान्द्य दूर होता है। अन्त्रमें विस्फोट और जलवृद्धि नहीं होती। इस हेतुसे कोष्ठबलकी वृद्धि होती है। अन्त्रमें स्निग्धता बढ़ती है। फिर अन्त्रकी पुरःसरण क्रिया सम्यक् होकर मल सरलतासे बाहर निकलता रहता है।

बृहदन्त्रमें जीर्ण आमविष होने पर इस अरिष्टके योगसे शनैः-

शनैः नष्ट होता है। पक्काशयमें आहार रसका संशोषण सम्यक् होने लगता है। रसाजीर्णकी आदतका नाश होता है। इस तरह यह आमाशय, पक्काशय, बृहदन्त्र आदि कोष्ठावयवों पर अति उत्तम प्रकार से बल्य और दोषनाशक असर पहुँचाता है। (औ० गु० ध० शा०)

दूसरी विधि—हरड़ ३२ तोले, आँवला ६४ तोले, कैथका गर्भ ४० तोले, इन्द्रायन फल २० तोले; वायविड़ङ्ग, पीपल, लोद, कालीमिर्च, एलवालुक (अभावमें नेत्रवाला), ये ५ ओषधियाँ ८-८ तोले ले। सबको ४०९६ तोले जलमें मिला, उबालकर चतुर्थांश जल शेष रहने पर उतारले। फिर छान ८०० तोले गुड़ मिला १५ दिन तक जमीनमें दबादे। बादमें निकालकर छान ले। इस अरिष्ट में हम गुड़ ७॥ सेर मिलाते हैं।

मात्रा—१। तोले दिनमें २ बार भोजनके पश्चात् समभाग जल मिलाकर लेवें।

उपयोग—इस अरिष्टके सेवन से सब प्रकार के गुदा-सम्बन्धी रोग, अर्श, संग्रहणी, पाण्डु, हृद्रोग, प्लीहा, गुल्म, उदर रोग, आठ प्रकार के शोथ रोग और अरुचि आदि नष्ट होते है। बल, काति और जठराग्निकी वृद्धि होती है। कामला, सफेद कोढ़, कृमि, ग्रन्थि, अर्बुद, मुँह पर दाग, क्षय और ज्वर रोग भी शमन हो जाते है। यह अरिष्ट यकृत्, अन्त्र और कफस्थानके शोधनके लिये उपयोगी है। पुराने चिपके हुए मलको शनैः-शनैः तोड़कर नष्ट कर देता है, तथा अन्त्र में रहे हुए सूक्ष्म कृमियों को दूर करता है।

(१५) अशोकारिष्ट।

बनावट—अशोकछाल ५ सेर जौकुट करके ४०९६ तोले जल में क्वाथ करे। चतुर्थांश शेष रहने पर उतारकर छान ले। शीतल होने पर गुड़ १० सेर, धायके फूल ६४ तोले; काला जीरा, नागरमोथा, सोंठ, दारुहल्दी, कमल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, आमकी गुठलीकी गिरी, जीरा, अड़ूसाकी छाल, रक्त चन्दन प्रत्येक ४-४ तोले मिलाव। फिर अमृतबानमें भर, मुखमुद्रा करके १ मास रखदे। पश्चात् छानकर उपयोग में लेवें। इस प्रयोगमें हम गुड़ ७॥ सेर मिलाते हैं। (भै० र०)

मात्रा—१। से २॥ तोले दिनमें २ बार समान जलके साथ दे। रक्तप्रदरमें चन्द्रकला रसके साथ और पीड़ितार्तवमें बृहद् योगराज गूगलके साथ विशेष लाभ पहुँचाता है।

उपयोग—यह अरिष्ट स्त्रियोंके रक्तप्रदर, मंदज्वर, रक्तपित्त, अर्श, अग्निमान्द्य, अरुचि आदि विकारों तथा पुरुषोंके प्रमेह, शोक और अरुचिको दूर करता है।

अशोकारिष्ट स्त्रियोंका परम मित्र है। इसका कार्य गर्भाशय पर बल्य होता है। गर्भाशयकी शिथिलता से उत्पन्न होनेवाले अत्यार्त्तव विकारमें इसका उत्तम उपयोग होता है। अत्यार्त्तव विकार अनेक कारणोंसे होता है। गर्भाशयके भीतरके आवरणमें विकृति, बीज-वाहिनियोंकी विकृति, गर्भाशयके मुख पर, योनिमार्ग में या गर्भाशयके भीतरकी ओर कर्कस्फोट होना और प्रसवके पश्चात् गर्भाशयके भीतर या बाहर व्रण होजाना, आदि कारणों से अत्यार्त्त व व्याधिकी प्राप्ति होती है। इनमेंसे कर्कस्फोटके अतिरिक्त कारणोंसे उत्पन्न अत्यार्त्तव पर इस अरिष्ट का अच्छा उपयोग होता है। (मासिक धर्म में अति रक्तस्राव होता हो तथा साथ में मलावरोध रहता हो तो अशोकारिष्ट के साथ दन्त्यरिष्ट भी मिला देना चाहिये। एवं रक्तस्रावमें दुर्गन्ध आता हो तो गर्भाशय और योनिमार्गकी शुद्धिके लिये निम्बपत्र को ४० गुने जलमें मिलाकर उत्तर वस्ति भी देते रहने से लाभ सत्वर मिलता है।

कितनीक स्त्रियोंको मासिकधर्म आने पर उदरपीड़ा की आदत पड़ जाती है; उसे पीड़ितार्त्तव और कष्टार्त्तव कहते हैं। इसमें मुख्यतः बीजवाहिनी और बीजाशयकी विकृति कारण है। कितनीक रुग्णा को पीड़ा अत्यधिक तीव्र होती है। कमरमें भयंकर दर्द, शिरदर्द, वमन आदि लक्षण होते हैं। इस पर अशोकारिष्ट अत्युत्तम कार्य करता है।

पीड़ितार्त्तवमें मन्द ज्वर होता है। ज्वरोष्मा ९९।-९९॥ डिग्री होती है। परन्तु ज्वर दिनों तक रहता है। उस पर यह उपकारक है।

ऊर्ध्वग रक्तपित्त में अशोकारिष्ट उपयुक्त औषधि है। एवं रक्तार्शमें भी विशेषतः वेदना या जलन न होने पर और बिना ज्ञान रक्त-स्राव होते रहने पर अशोकारिष्ट अति उपयोगी है। (औ० गु० ध० शा०)

(१६) कार्पासारिष्ट।

बनावट—कपासके मूलकी छाल ३ सेर, बाँस की जड़ २ सेर; सुहिंजनेकी छाल, रक्त चित्रकमूल, अशोक छाल और दशमूल, चारों १॥-१॥ सेर ले। सबका जौकुट चूर्ण कर ८८ सेर जल में मिलाकर चतुर्थांश क्वाथ करें। फिर बाबूनाके फूल १ सेर, धायके फूल ४० तोले; लोद, गूगल, एलुवा, देवदारु, पुनर्नवा मूल, जटामांसी, दारुहल्दी;

-शीतलमिर्च, बेलकी छाल, रक्तचन्दन, श्वेत चन्दन, ये ११ ओषधियाँ १०-१० तोले, धोई हुई मुनक्का १। सेर, शहद २॥ सेर और गुड़ १० सेर मिलाकर पात्रमें भरें। मुखमुद्राकर १ मास बन्द रखें। फिर छान लेवे।

(श्री० प० घनानन्दजी पन्त विद्यार्णव)

मात्रा—२ से ४ तोले तक दिनमें २ बार देवे।

उपयोग—यह अरिष्ट गर्भाशयको सकुचित करता है। अतः प्रसवकालमें गर्भाशयकी निर्बलता पर इसका सेवन अति लाभप्रद है। एवं यह गर्भाशयमें से संचित रक्त, गर्भ या झेर को बाहर निकालने में सहायक है। रक्त संचित होने पर मासिकधर्ममें कष्ट होता हो, तो वह इसके सेवन से दूर होता है।

(१७) चन्दनासव।

बनावट—सफेद चन्दन, नेत्रवाला, नागरमोथा, गम्भारीके मूल, नीलकमल, फूलप्रियगू, पद्माख, लोद, मजीठ, लाल चन्दन, पाठा, चिरायता, बड़की छाल, पीपल वृक्षकी छाल, कचूर, पित्तपापड़ा, मुलहठी, रास्ना, पटोलपत्र, कचनारकी छाल, आमवृक्षकी छाल और मोचरस इन २२ ओषधियोका जौकुट चूर्ण ४-४ तोले, धायके फूल ६४ तोले, मुनक्का ८० तोले, शक्कर ४०० तोले और गुड़ २०० तोले लेवे। सबको २०४८ तोले जलमें मिला मिट्टीके पात्रमें भर यथाविधि संधान कर तैयार करें। लगभग १। मासमें यह आसव तैयार होजाता है। (भै० र०)

मात्रा—१। से २॥ तोले दिनमें २ बार समान जल सुबह और रातको मिलाकर ले। रोग जीर्ण रोने पर मात्रा कम लेवें।

गुण—यह चन्दनासव शुक्रमेहनाशक, बलकारक, पौष्टिक, हृद्य और अत्यन्त अग्निवर्द्धक है। जीर्ण सुजाकके रोगियोके लिये हितकारक है। इसके सेवनसे रक्तमें उत्पन्न मूत्रविष, मूत्राशयदाह, मूत्रावरोध और मूत्रकृच्छ्र आदि विकार शमन होजाते है।

पथ्य—लघु (शीघ्र पचनेवाला) और पौष्टिक अन्नपान, सत्संग, शास्त्रश्रवण, शान्ति और स्वाध्याय आदि हितकारक हैं।

अपथ्य—शुक्रमेह रोगमें अभिष्यंदी (दही आदि), तीक्ष्ण अन्नपान (लालमिर्च, तैल, शराब आदि), सूर्यका ताप, अग्निसेवन, स्त्रीप्रसंग, मलमूत्र आदि वेगोका धारण, रात्रिका जागरण, क्रोध, शोक, दिनमें शयन उपवास, अत्यन्त, चिन्ता, आलस्य और दुष्टोका सहवास आदिका परित्याग करना चाहिये।

चन्दनासव शीतवीर्य, बल्य, मूत्रल, दाहशामक और पित्तशामक

है, तथा मूत्रमार्गकी दोषदुष्टिको नष्ट करता है। इसका उपयोग पुराने और नये सुजाकमें उत्तम होता है। इसके योगसे बार-बार मूत्रोत्सर्ग होते रहनेसे सुजाकके पूयका शोधन होता रहता है। सुजाक की प्रथमावस्थामें मूत्रप्रसेक नलिकाकी श्लैष्मिक कलामें प्रदाह होता है वह इस आसवके सेवनसे कम होता है। फिर दाहसह वेदना भी कम होजाती है, तथा निमित्त कारण जो कीटाणु (Gonococcus) है, उनका बल कम होता जाता है। यद्यपि कीटाणु नष्ट होते है या नहीं, यह अभी निश्चित नहीं हुआ, तथापि इस आसवके योगसे सुजाककी तीव्रावस्था और चिरकारी अवस्थामें लक्षण कम-कम होते जाते हैं, यह निःसन्देह है।

चन्दनासवसे सुजाक समूल नष्ट होनेके उदाहरण नहीं मिले। इसके रोगीको तीव्रावस्था, मन्दावस्था और जीर्णावस्थाकी प्राप्ति होती रहती है, तथा रोगी सर्वदा इनसे पीड़ित हो रहता है। इन सब अवस्थाओंमें चन्दनासव शामक रूपसे प्रयोजित होता है। इससे मूत्रोत्पत्तिकी वृद्धि होकर पूयका स्राव होता रहता है, मूत्रमार्गमें जीर्ण व्रण हो, तो उसका त्रास कम होजाता है, क्षोभ हो, तो कम होजाता है, और कुछ समयके लिये पीड़ा उपशम होती है। यदि मूत्रमार्ग संकुचित होगया हो, तो चन्दनासवका अधिक उपयोग नहीं होता। इस आकुंचनको उत्तर बस्ति द्वारा या उत्तर बस्तिकी नलीको मूत्रमार्गमें प्रवेश करा शनैः-शनैः कम कराना चाहिये। आकुंचन अत्यधिक है, तो चन्दनासव या अन्य मूत्रल औषधि नहीं देनी चाहिये, अन्यथा मूत्राशयमें मूत्रसंचय अधिक होकर आपत्ति बढ़ जायगी।

मूत्रमें सिकता और शर्करा (अश्मरीकण) जाने पर चन्दनासव का उत्तम उपयोग होता है। इस आसवसे अश्मरीके छोटे-छोटे अणु द्रवीभूत होकर बाहर निकल जाते है। अश्मरीजन्य शूलमें भी इसका उपयोग होता है।

मूत्राघातमें शामक मूत्रल रूपसे इस औषधिका प्रयोग किया जाता है। एवं मूत्रपिण्डोके प्रदाहमें प्रदाहघ्न और ज्वरघ्न रूपसे यह अच्छा कार्य करता है। (औ० गु० ध० शा०)

(१८) जीरकाद्यरिष्ट।

बनावट—जीरा ८०० तोलेको ४०९६ तोले जलमें मिलाकर चतुर्थांश क्वाथ करे। फ़िर मसलकर छान लेवें। शीतल होनेपर गुड़ १२०० तोले, धायके फूल ६४ तोले, सोंठ ८ तोले; जायफल, नागरमोथ

दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायचीके दाने, नागकेशर, अजवायन, शीतलमिर्च और लौंग प्रत्येक ४-४ तोले मिला अमृतवानमें भर मुखमुद्रा कर १ मास रहने देवें। परिपक्व होनेपर छान ले। (भै० र०)

सूचना—जीरेका क्काथ करनेके पात्रपर ढक्कन ढक देना चाहिये, अन्यथा तैल उड जाता है। छानने को मोटा वस्त्र ले। वस्त्रको जलसे धो गीला करके छाने, तथा जीरेको अच्छी तरह मसलकर निचोड़ लेवे। क्काथका जल मन्दाग्नि पर अर्द्धावशेष अर्थात् २०४८ तोले शेष रखे या फाण्ट बना ले।

नव्य प्रयोग—जीरकाद्यरिष्ट मे चतुर्थांश क्काथ करने पर जीरेमें अवस्थित उड़नशील तेल, जो कार्यकारी द्रव्य है, वह उड़ जाता है। फिर क्काथ रूक्ष और उष्ण होता है। इससे स्तन्य की वृद्धि होती है किन्तु माता को निर्बलता आती है। यदि फाण्ट बनाकर जीरे का तेल कायम रक्खा जाय तो मद्यार्क की उत्पत्ति कम होती है। किन्तु फाण्ट बनाकर सिद्ध किया हुआ जीरकाद्यरिष्ट स्तन्यवर्द्धक, माता के लिये बल्य, दीपन-पाचन और बालक के लिये हितावह है। सामान्यतः ८०० तोले जीरे के लिये १६०० तोले जल मे फाण्ट कर लेने पर शेष १०२४ तोले जल मिला जायगा।

मात्रा—१। से ५ तोले दिनमें दो या तीन बार देवें।

उपयोग—जीरकाद्यरिष्ट सूतिका रोगमें उत्पन्न ग्रहणी और अतिसारको नष्ट करता है, और पाचनक्रियाको सुधारता है।

यह अरिष्ट जीर्ण सूतिका रोगमें अच्छा लाभदायक है। तीव्रावस्थामें ज्वर अधिक होनेपर प्रतालकेश्वर, लक्ष्मीनारायण, सूतिकारि रस, सूतिकाभरण रस और दशमूलारिष्ट आदि हितावह है। परन्तु रोग जीर्ण होकर ज्वरवेग मन्द होनेपर यदि पित्तानुबंधके लक्षण—मन्दज्वर, अङ्ग टूटना, आलस्य, उबासी, तृषा, जड़ता, उदरशूल, अतिसार, शोथ आदि हो, तो जीरकाद्यरिष्ट हितकर है।

प्रसवके पश्चात् उत्पन्न क्षयरोगमें इसका उपयोग होता है। क्षयमें सुवर्ण कल्पके साथ देना चाहिये, जिससे क्षय कीटाणुके साथ सूतिका विप भी नष्ट होकर रुग्णाको सच्चा लाभ पहुँच सके। बार-बार पतले, पीले, गरम-गरम दस्त लगते हो, और जिह्वा फटी हो या मुँहमें छाले हों, तो जीरकाद्यरिष्ट फलप्रद है।

संग्रहणी में पित्तानुबध होनेपर यह विशेप उपयोगी है। बार-बार शौच होना, किछना, रक्त गिरना, रक्तके साथ कुछ आग पड़ना, मन्द ज्वर, तृषा, निद्रानाश आदि लक्षण होनेपर यह

दिया जाता है ।

प्रसवके पश्चात् संग्रहणी होनेपर भी इसका उपयोग किया जाता है । विदग्धाजीर्ण, पित्तज परिणामशूल और पित्तज अम्लपित्त रोगमें भी जीरकाद्यरिष्ट अच्छा कार्य करता है ।

इस अरिष्टके योगसे नवप्रसूताके स्तन्यकी वृद्धि होती है । मंद ज्वर, हाथ-पैरका दाह, त्वचामें जलन आदिका निवारण होता है । इस अरिष्ट में कुछ मूत्रल गुण होनेसे मूत्रकी भी शुद्धि होती है, तथा त्वचा पर कण्डू, पिटिका, धब्बे आदि हो तो ये सब विकार निवृत्त होते है । (औं० गु० ध० शा०)

(१६) चविकासव ।

बनावट—चव्य २०० तोले, चित्रकमूल १०० तोले, हिंगुपत्री (डीकामाली), पुष्करमूल, वच, हाऊबेर, कचूर, कड़वे परवलके मूल, हरड़, बहेड़ा आंवला, अजवायन, कुड़ेकी छाल, इन्द्रायणके मूल, धनिया, रास्ना और दन्तीमूल ये १५ ओषधियाँ ४०-४० तोले; बायविडङ्ग, नागरमोथा, मजीठ, देवदारु, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, ये ७ ओषधियाँ २०-२० तोले लें । सबको ८१९२ तोलेमें मिलाकर क्वाथ करें । १०२४ तोले जल शेष रहने पर १२०० तोले गुड़ । धायके फूल ८० तोले; दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची और नागकेशर ८-८ तोले, लौंग, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल और शीतलमिर्च ४-४ तोलेका जौकुट चूर्ण मिला अमृतबानमें भरें । मुखमुद्रा कर १ मास रहने दें । हम गुड़ १५ सेरके स्थान पर ७॥ सेर मिलाते हैं । (ग० नि०)

मात्रा—१। से २॥ तोले दिनमें दो वार समान जल मिलाकर देवें ।

उपयोग—चविकासव समस्त प्रकारके गुल्म, २० प्रकारके प्रमेह, प्रतिश्याय, क्षय, कास, अष्ठीला, वातरक्त, उदर रोग और अन्त्रवृद्धि आदिको नष्ट करता है ।

इस आसवमें मुख्य ओषधियाँ पाचक, दीपक, सारक, उष्णवीर्य और कटु रसात्मक है । आमाजीर्ण और विष्टब्धाजीर्णमें पचन व्यापार करनेवाले अवयवसमूहोंमें से पाचकरस का स्राव सम्यक् नहीं होता । अंतःस्रावके उदीरणके लिये वायुकी पूर्त्ति और रक्तके दबावकी आवश्यकता रहती है अत्यन्त सूक्ष्म स्रोतसे रुद्ध होजानेसे सम्यक् स्राव नहीं होता । ऐसी परिस्थितिमें चविकासवके सेवनसे वायुकी प्रेरणा और रक्तकी पूर्ति होती है और स्रोतोरोध नष्ट होकर

पाचक पित्तस्रावकी वृद्धि होती है। इस तरह इन दोनों अजीर्णोंमें इस आसवका उत्तम उपयोग होता है।

आमाजीर्णमें क्लेदक कफकी वृद्धि होती है। आमाशयमें आहार जाने पर उसमें पाचक पित्त योग्य परिमाणमें मिश्रित होना चाहिये; परन्तु क्लेदक कफकी अधिकताके हेतुसे पाचक पित्त(आमाशय रस) का योग्य मात्रामें स्राव नहीं होता, एवं आहारके साथ अच्छी तरह मिश्र नहीं होता। इसके विपरीत क्लेदक कफकी मात्रा बढ़ जाती है; वही भोजनमें मिश्र होजाता है। प्रारम्भमें ऐसी परिस्थिति होने पर आगे-आगेके अन्य पाचक रस (यकृत पित्त, आन्त्रिक रस, आग्नेय रस) भी निर्बल होजाते है। योग्य रूपमें नहीं स्रवते, एव अन्नके साथ) मिश्र भी नहीं होते। इस हेतुसे आहार, पचन नहीं होता, फिर वह सड़ने लगता है। इसका परिणाम समस्त शरीर पर होता है। उदर और कोष्ठके बीचका स्थान जड़ हो जाता है। आलस्य, निद्रावृद्धि, निरुत्साह, हाथ-पैर टूटना, मुखमण्डल पर निस्तेजता, मुँहमें बेस्वादुपन, या मीठापन, मुँहमें बार-बार जल भर जाना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस पर चविकासव अति उत्तम कार्य करता है।

वायु विशेषतः समानवायुकी प्रेरणाकी न्यूनता होने पर पाचक पित्तका स्राव योग्य मात्रामें और योग्य रूपमें नहीं होता। पाचक पित्त थोड़ा निकलता है और पाचन करनेका गुण भी न्यून होता है। आमाशय और अन्त्रकी गति मन्द होनेसे आहार जितने समयमें आगे चढ़ना चाहिये, उतने समयमें नहीं बढ सकता। इस हेतुसे उदर खिंचता है, मंद-मंद शूल चलता है, शौचशुद्धि नहीं होती, सर्वाङ्ग में मंद-मंद वेदना होती है, तथा उदरमें आफरा आजाता है। इस प्रकारके विकार में चविकासव उत्तम उपयोगी होता है।

इसका प्रयोग वातज गुल्म, कफज गुल्म और वातकफज गुल्म पर अच्छा होता है, रक्तगुल्म और पित्तज गुल्म पर नहीं होता।

प्रमेहोंके विकारोंमें हस्तिमेह, लालामेह और इक्षुमेहकी उत्पत्ति यकृत् और अग्न्याशयकी विकृति से होती है। विशेषतः पित्तका कार्य क्षीण होने पर कोष्ठमें दोषोत्पत्ति और कफाधिक्य की प्राप्ति होती है। फिर आहारमें से रस और रक्तकी उत्पत्ति सम्यक् नहीं होती। इस हेतुसे यह दोषदुष्टि मूत्रमार्गसे बाहर निकलती है। बार-बार विशेष मात्रामें मूत्रोत्सर्ग होता है। मूत्रकी मात्रा और संख्या, दोनों बढ़ जाते हैं। मूत्रमें मधु नहीं जाता। किसी-किसीको लालातन्तुसह मूत्रोत्पत्ति

होती है, मूत्र आज्ञानावस्थामें हो जाता है या अनिच्छा वश निकल जाता है। ऐसे विकारोंमें चविकासव देना चाहिये।

इक्षुमेहके भीतर मर्यादामें मधु हो, तथा अपचन अधिक, वार-वार दुष्ट डकार, कब्ज, क्षुधा न लगना, चरपरे पदार्थोंकी अधिक इच्छा होना आदि लक्षण हो तो चविकासव उपयुक्त ओपधि है।

प्रतिश्याय और प्रतिश्याय जनित कास, वार-वार छींकें आना, नाक बिल्कुल पका-सा होजाना, श्वासोच्छ्वास में कुछ त्रास होना, नाक और कण्ठ में दर्द, समस्त शरीर में दर्द (अंगमर्द) यह एक प्रकार है। दूसरे प्रकारमें नाकमें से जल गिरते ही रहना, और खाँसीसे कफ गिरना आदि लक्षण होते हैं। दोनो पर यह हितकारक है।

यकृतोदर और प्लीहोदरमें अग्निमाद्य अधिक होने पर चविकासव दे, एवं क्षय, अष्ठीला, वातरक्त और अन्त्रवृद्धिमें भी अग्निमान्द्य होने पर इसका उपयोग होता है। (औ० गु० ध० शा०)

(२०) रोहितारिष्ट।

बनावट—रोहिड़ा की छाल ४०० तोलेको जौकुट कर ४०९६ तोले जलमें मिला चतुर्थांश क्काथ करे। फिर छानकर शीतल होने पर ८०० तोले गुड़, धायके फूल ६४ तोले, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, दालचीनी, इलायची, तेजपात, हरड़, बहेड़ा, आँवला, इन ११ ओपधियोका जौकुट चूर्ण ४-४ तोले मिलाकर अमृतवान में भरे। मुखमुद्रा कर १ मास रखे, परिपक होने पर छान लेवें। (भै० र०)

मात्रा—१। से २॥ तोले समान जलके साथ दिनमें २ बार दें।

उपयोग—रोहितारिष्ट प्लीहावृद्धि, गुल्म, उदररोग, अष्ठीला, ग्रहणी, अर्श, कामला, कुष्ट, शोथ और अरुचि आदिको नष्ट करता है।

यह यकृत् और प्लीहावृद्धिमें अत्यन्त उपयुक्त ओषधि है। यह अरिष्ट जीर्ण अग्निमान्द्यको दूर कर पाचक पित्तोके स्रावकी वृद्धि कराता है। पाचक पित्तस्रावक सूक्ष्म कोषोको रक्तकी मात्रा पूर्णरूपसे मिलती है। इस हेतुसे पाचक पित्तस्राव योग्य होता है।

विषमज्वर जीर्ण होने पर प्लीहावृद्धि होजाती है। उस पर यह रोहितारिष्ट उत्तम कार्य करता है।

मध्यमकोष्ट (उदर गुहा) में रही हुई रसग्रंथियोके आकारकी वृद्धि होने पर उदरमें गाँठ होनेका भास होता है। यह वृद्धि क्षय

रोगमें होनेपर सुवर्ण कल्पका सेवन कराना चाहिये। परन्तु क्षय और उपदंशके अतिरिक्त कारणोंसे होनेपर रोहितारिष्ट देना चाहिये।

गुल्म (पित्तज या वातज) में रोहितारिष्ट हितकर है। अष्ठीला में इसके सेवनसे रोगशमनमें सहायता मिलती है। एवं वातार्शमें और पित्तार्शमें भी यह उपयोगी है। (औ० गु० ध० शा०)

(२१) पुनर्नवासव।

बनावट—सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, दारुहल्दी, गोखरू, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, अड़ूसाके पत्ते, एरंडकी जड़, कुटकी, गजपीपल, पुनर्नवा, नीमकी अंतरछाल, गिलोय, सूखी मूली, धमासा, पटोलपत्र, इन २० ओषधियोंको ४-४ तोले, धायके फूल ६४ तोले, मुनक्का ८० तोले, मिश्री ४०० तोले और शहद २०० तोले लें। काष्ठादि ओषधियोंको जौकुट करें। फिर सबको २०४८ तोले जलमें मिला अमृतबानमें भर १ मास रहने दें। परिपक होने पर वस्त्र से छान लेवें। (भै० र०)

मात्रा—१। से २॥ तोले समान जल मिलाकर देवें।

उपयोग—पुनर्नवासव शोथ, उदररोग, प्लीहावृद्धि, अम्लपित्त यकृद्वृद्धि, गुल्म, ज्वर आदि कष्टसाध्य रोगोंको दूर करता है।

यह औषध उत्तम मूत्रल और हृद्य है। इस हेतुसे हृदय, यकृत्, प्लीहा और वृक्को पर लाभ पहुँचाता है। इनमेंसे किसीके भी विकारसे शोथ आने पर उसे दूर करता है। एव हृदयको सबल तथा यकृत् और वृक्कोंको कार्यक्षम बनाता है। अतः सर्वाङ्ग शोफ पर यह आसव अति कार्यकारी ओषधि है।

शोथ तीव्र होने पर पुनर्नवासवके साथ सारिवासव मिला देना चाहिये; जिससे रक्तप्रसादन होकर शोथकी सत्वर निवृत्ति हो जाय। अन्तर्विद्रधि या अन्तर अवयवोंके शोथ पर भी यह हितकर है।

यकृद्वृद्धि, प्लीहावृद्धि, वातज गुल्म और कफज गुल्मके विकार में यह आसव अच्छा सहायक होता है। (औ० गु० ध० शा०)

(२२) सारिवासव।

बनावट—काली अनतमूल, नागरमोथा, लोद, बड़की छाल, पीपलकी छाल, कचूर, सफेद अनंतमूल, पद्माख, नेत्रवाला, पाठा, आँवला, गिलोय, खस, सफेदचन्दन, रक्तचन्दन, अजवायन और कुटकी, १७ ओषधियाँ ४-४ तोले तथा छोटी इलायची, बड़ी इलायची, कूठ,

सनाय और हरड़ १६-१६ तोला लें। सबको जौकुट कर जल २०४८ तोले, गुड़ १२०० तोले, धायके फूल ४० तोले और मुनक्का २४० तोले मिला अमृतबानमें भर मुखमुद्रा कर एक मास रहने देवें। परिपक्व होने पर छानलें। इस आसवमें हम काली अनन्तमूल का परिमाण ४ गुना अर्थात् १६ तोले लेते हैं। (भै० र०)

मात्रा—१। से २॥ तोले तक द्विगुण जल मिलाकर देवें।

उपयोग—सारिवासव २० प्रकारके प्रमेह, प्रमेहजनित शराविका आदि पिडिका, उपदंशके उपद्रव, वातरक्त और भगन्दर आदि रोगोंको निःसंदेह नष्ट करता है।

यह आसव अत्यन्त शामक, मूत्रल, दाहशामक और उत्तम रसायन है। इसका कार्य वातवाहिनियों, वातवाहिनियोंके मूल, वातवहानाड़ी केन्द्र, नाडीचक्र, मूत्रेन्द्रिय, जननेन्द्रिय और अन्तःस्रावक ग्रन्थियों पर शामक होता है। इस आसवका अधिक समय तक सेवन करने पर उपदंशका विष नष्ट होजाता है, वातरक्त आदि विकारका शमन होता है। प्रमेहोंमें पित्तज प्रमेहों पर इसका कार्य अच्छा होता है।

स्मृतिनाश और बुद्धिमान्द्य जन्मसे न हो, किसी हेतुसे बीचमें उत्पन्न हुए हो, तो सारिवासवका अच्छा उपयोग होता है। यदि रक्त का दबाव बढकर बार-बार चक्कर आता हो, तो सर्पगन्धाके सेवनके साथ सारिवासवका सेवन कराना चाहिये।

मूत्राघातमें मूत्रोत्पत्ति कम होती है। मूत्रकृच्छ्रमें मूत्रोत्पत्ति तो होती है, परन्तु बस्तिके आगेके अवयवोंमें प्रतिबंध होने से मूत्र को बाहर निकलनेमें बाधा पहुंचती है। इन पर सारिवासवके सेवन से मूत्रोत्पत्ति अधिक होकर मूत्राघात और मूत्रकृच्छ्र में लाभ पहुंचता है।

मूत्राश्मरी, मूत्रशर्करा और सिकता आदि पर यह आसव अच्छा कार्य करता है। इसके योगसे अश्मरीका क्षरण होकर मूत्र के साथ अणु बाहर निकलते रहते हैं। अश्मरी पर सारिवासवके साथ तिलक्षार, केलेका क्षार,या इमलीका क्षार देवें। पौरुष-ग्रन्थि पर शोथ आनेसे उत्पन्न मूत्रकृच्छ्रमें भी यह आसव लाभदायक है। वातभूयिष्ठ मूत्रकृच्छ्र पर चन्द्रप्रभाके साथ इसका सेवन कराना चाहिये।

पुराने सुजाक रोगसे उत्पन्न मूत्रकृच्छ्रमें यह आसव अति लाभ पहुँचाता है। इसके सेवनसे पूय बाहर निकलता रहता है, जिससे प्रदाह कम होकर मूत्रकृच्छ्र दूर होता है। नये सुजाकमें प्रमेहान्तक वटी प्रथम विधिके साथ सारिवासव देनेसे सत्वर लाभ पहुंचता है।

ज्वरदाह या धातुक्षयसे उत्पन्न दाह पर यह आसव उपयोगी है।

उपदंश और सुजाकके पश्चात् जननेन्द्रियकी चिरकारी अनेक विकृतियाँ उत्पन्न होती है। स्त्रियोके लिये इन रोगोकी जड़ जाना अति कठिन है। इस पर सारिवासव उत्तम उपयुक्त ओषधि है। इससे विष-निवृत्ति होनेमें अच्छी सहायता मिल जाती है।

अन्तःस्रावक ग्रन्थियोकी विकृतिसे उत्पन्न विकार सारिवासवसे शमन होजाते है। मधुमेहमें इस आसवका योगवाही रूपसे उपयोग होता है। प्रमेहपिड़िका होने पर सारिवासव उपयुक्त ओषधि है।

आमवात, वातरक्त और आढ्यवातमें सारिवासव उपयोगी होता है। (औ० गु० ध० शा०)

(२३) भृंगराजासव।

बनावट—भाँगरेका रस १०२४ तोले, गुड़ ८०० तोले और हरड़ ३२ तोले मिला अमृतवानमें भरकर १५ दिन रहने देवे। फिर पीपल, जायफल, लौंग, छोटी इलायची, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर प्रत्येक ८-८ तोलेका जौकुट चूर्ण मिला १५ दिन रहने दें। बादमें छान लेवे।

मात्रा—१ से २॥ तोले तक समान जल मिलाकर सेवन करे।

उपयोग—यह आसव धातुक्षय और पाँचो प्रकारकी कासको दूर करता है। कृश मनुष्योको पुष्ट बनाता है। यह आसव बलकारक वाजीकरण और वन्ध्या स्त्रियोको सन्तानोत्पादक है।

इस आसव का उपयोग बद्धकोष्ठमें बहुत अच्छा होता है। बद्ध-कोष्ठ होनेपर अन्त्रके भीतर मलका संचय अधिक होता है। मल सड़ता रहता है। फिर उसमेंसे दुर्गन्ध और सेन्द्रिय विषकी उत्पत्ति होती है। यह विष श्लैष्मिक कला द्वारा शोषित होकर रक्त आदि धातुओंमें प्रवेश करता है। इस विषके हेतुसे विविध व्याधियोकी सृष्टि निर्माण होती है। बार-बार बिना हेतु थकावट, पित्तविकार होकर बार-बार वमन, मलसचयसे अन्त्र चौड़े और शिथिल होजाने, उनमें वायु भरा रहना, क्षुधा, तृषानाश, जिह्वा पर मैल जमना, श्वासोच्छ्वास और मुँहमेंसे दुर्गन्ध निकलना, बार-बार ज्वर होते रहना, शिरःशूल, निद्रानाश, कमरमें दर्द होना, बार-बार ज्वर आते रहना, हृदयकी शिथिलता, मानसिक अक्षमता, मूत्राघात, यकृद्वृद्धि, प्लीहावृद्धि, गलग्रन्थियोकी वृद्धि, सर्वाङ्ग शोफ, मधुमेह, अन्य प्रकारके मेह, पाण्डुता, अन्त्रक्षय, कर्क-स्फोट, आमवात, संधिवात, आढ्यवात, वातरक्त, धातुक्षय (धातुवृद्धि होनेके बदले क्षीण होते जाना), क्षुद्रकुष्ठ, दन्तव्रण, नेत्र रोग, बाधिर्य,

अकालमें वार्धक्य आदि रोग उत्पन्न होते हैं। इन सबकी उत्पत्तिको यह भृंगराजासव रोक देता है। इसके योगसे कोठस्थ सेन्द्रिय विष निर्विष होजाता है, या हानि पहुँचानेके लिये समर्थ नहीं रहता। भृंगराजासवके साथ सिद्ध घृत या एरंड तैलके सदृश स्नेह-विरेचन देनेसे विशेष लाभ होता है। (औ० गु० ध० शा०)

(२४) पर्पटाद्यरिष्ट।

बनावट--पित्तपापड़ा ४०० तोलेको ४०९६ तोले जलमें मिलाकर क्वाथ करें। १०२४ तोले जल शेष रहने पर उतार मसलकर छान लेवें। शीतल होनेपर गुड़ ८०० तोले, धायके फूल ६४ तोले; गिलोय, नागरमोथा, दारुहल्दी, छोटी कटेली, धमासा, चव्य, चित्रकमूल, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, वायविडङ्ग, इन ११ औषधियोंके ४-४ तोलेका जौकुट चूर्ण मिला १ मास तक आसवको बन्द रक्खें; फिर छान लेवें। इस अरिष्टमें हम १० सेरके बदलेमें ७॥ सेर गुड़ मिलाते हैं। (भै० र०)

मात्रा--१। से २॥ तोले समान जल मिलाकर देवें।

उपयोग—पर्पटाद्यरिष्ट पाण्डु, गुल्म, उदररोग, अष्ठीला, कामला, हलीमक, प्लीहावृद्धि, यकृत्‌का शोथ और सब प्रकारके विषम ज्वरको नष्ट करता है।

इस अरिष्टमें मुख्य औषधि पर्पट है। उसमें शामक, हृद्य, पित्तशामक और वातवाहिनियोंके क्षोभको नष्ट करनेका गुण है। अतः इस अरिष्टमें अम्लपित्तके विकारमें पित्तकी अम्लता और तीक्ष्णताको नष्ट करनेका उत्तम गुण है। यह अरिष्ट पित्तकी विषमता नष्ट कर उसमें साम्य प्रस्थापित करता है, जिससे पाण्डु रोगमें इसका अच्छा उपयोग होता है। विशेषतः पाण्डु रोगमें हृदयकी धड़कन और स्पदकी वृद्धि होनेपर यह उपयोगी है। पाण्डुता रंजक-पित्त के नष्ट होनेसे उत्पन्न होती है। रजक-पित्तका स्राव आमाशय, यकृत् और प्लीहामेंसे होता है; उसे इस औषधिसे सहायता मिल जाती है।

पित्तस्राव यकृत्‌मेंसे अच्छा न होने या साक्षात् पित्तांशका रक्तमें शोषण होनेपर उत्पन्न होनेवाले कामला और हलीमकमें इसका उत्तम उपयोग होता है। इनपर विरेचन औषधि भी साथमें देनी चाहिये।

यकृद्‌वृद्धिमें कामला या प्लीहावृद्धिमें शरीर पीला बन जानेपर पर्पटाद्यरिष्टका उपयोग होता है। यकृत् और प्लीहाकी वृद्धि से शोथ आने या अन्य कारणोंसे शोथ होनेपर भी यह प्रयोजित होता है।

विषम ज्वरकी तीव्रावस्थामें तिक्त रसात्मक औषधि, किनाइन

आदि ओषधियों, का उपयोग करने पर लाभ हो जाता है। परन्तु तीव्रता शमन होनेपर और जीर्णावस्थाकी प्राप्ति होनेपर इन ओषधियोंका अधिक उपयोग नही होता। ऐसी परिस्थितिमें तीव्र कड़वी ओषधिका उपयोग किया जाय, तो घबराहट, ज्वर, पाण्डुता, विशेषतः पीली और चिकनी वमन, अन्न पर इच्छा न होना आदि लक्षण होते है। इस अवस्थामें विष धातुओंमें लीन रहता है। इस लीन हुए विषको नष्ट कर धातुसाम्य प्रस्थापित करनेका कार्य इस ओषधि द्वारा होता है।

पारदके अधिक मात्रामें सेवनसे उत्पन्न विकारो पर यह अरिष्ट उपयोगी है। जिनसे पारदकी तीक्ष्णता और उष्णता सहन नहीं होती, उनके लिये इसका अच्छा उपयोग है। (ओ० गु० ध० शा०)

(२५) अरविंदासव।

बनावट—सफेद कमल, खस, गंभारीकी छाल, नीलकमल, मजीठ, छोटी इलायची, खरैटीमूल, जटामाँसी, नागरमोथा, काली अनंतमूल, हरड़, बहेड़ा, वच, आँवला, कचूर, काली निसोत, नीलके बीज, पटोलपत्र, पित्तपापड़ा, अर्जुनकी छाल, मुलहठी, महुआके फूल, मुरा (अभावमें जटामाँसी), इन २३ ओषधियाँ ४-४ तोलेका जौकुट चूर्ण, मुनक्का ८० तोले, धायके फूल ६४ तोले, जल २०४८ तोले शक्कर ४०० तोले और शहद २०० तोले लें। सबको मिला अमृतबानमें भर १ मास रहने देवे। परिपक्व होनेपर छान लेवें। (भै० र०)

मात्रा—बालकोको ३ माशेसे ६ माशे और बड़े मनुष्यको १। से २॥ तोले दिनमें २ बार जलके साथ देवें।

उपयोग—यह आसव बालकोके सर्व रोगोका नाशक है, बच्चो को पुष्ट बनाता है, अग्निको बढाता है, तथा ग्रहदोषको दूर करता है।

यह आसव बच्चोके सब रोगो पर उपयोगी है, ऐसा गुणपाठ है। छोटे बच्चोको होनेवाले अस्थिवक्रता रोगपर इस ओषधिका अच्छा उपयोग होता है। इस रोगमें अस्थियोंमें विकार होता है। वह नरम बन जाती है, जिससे बालकोंके हाथ-पैर मुड़जाते है, पतले होजाते है और उनपर सलवट होजाते है। नितम्ब प्रदेश बैठ जाता है। इस विकारमें जीवनीय द्रव्योकी कमी होती है। फिर धातुपोषण सम्यक नही होता। इस हेतुसे अन्तर अवयवोको भी योग्य पोषण नही मिलता; उनका व्यापार ठीक नही चलता। खाँसी, अपचन, पतले दस्त, उदरमें आफरा, सारे दिन रोते ही रहना आदि लक्षण होते हैं। इस विकार पर यह आसव जीवनीय द्रव्यकी पूर्ति कर अग्निबल बढ़ानेका कार्य करता है।

सुजाक रोगके पश्चात् शेष विष धातुओंमें लीन रह जाता है; जिससे मूत्रमें बार-बार जलन, मूत्र गाढ़ा होजाना, मूत्रमें पूय या पिष्ट होना आदि लक्षण होने पर अरविन्दासव लाभदायक है। स्त्रियों के प्रदर विशेषतः रक्तप्रदरमें यह उपयुक्त ओषधि है। (औ० गु० ध० शा०)

(२६) कर्पूरासव ।

पहली विधि—उत्तम पुरानी देशी शराब अथवा रेक्टीफाइड स्पिरिट १। सेर, कपूर ८ तोले, छोटी इलायची, नागरमोथा, सोंठ, अजवायन और बायविडङ्ग प्रत्येक १-१ तोला लेकर चूर्ण करके मिलादें। अमृतबान अथवा काचकी बोतलोंमें १ मास बन्द रखें; बादमें छानकर भर लेवें। (भै० र०)

मात्रा—१० से २० बूँद बताशेमें अथवा मिश्रीके साथ दें। कालरामें आध-आध घण्टे पर। शेष रोगोंमें दिनमें ३ बार।

उपयोग—यह विसूचिका (Cholera) की परम ओषधि है। इसके अलावा अतिसार, वमन, दाँतके दर्द आदिको भी दूर करता है।

दूसरी विधि—रेक्टीफाइड स्पिरिट १२ औंस, कर्पूर २ औंस और ऑइल पीपरमेंट २ औंस लेवें। पहले स्पिरिट में कपूरका चूर्ण मिलाकर रखदें। २-४ घण्टेमें कपूर गल जाने पर पीपरमेंटका तेल डाल अच्छी रीतिसे मिला मजबूत डाट वाली बोतलें भरलें।

मात्रा—३ से १० बूँद बताशे अथवा मिश्रीके साथ दें। कालेरा में १-१ घण्टेके बाद देते रहें। अतिसार, पेचिश, वमन आदि रोगोंमें दिनमें २ से ४ बार दें। दाँतके दर्दमें फोहा रखें।

उपयोग—यह अर्क हैजा, अतिसार, वमन, दाँत और डाढ़का दर्द, सबको दूर करता है। यह कोलरामें आशुफलप्रद है। कॉलरा के अनेक रोगियोंके प्राण इस अर्क ने बचाये हैं।

सूचना—पेशाब बन्द हो, तो मूत्रेन्द्रियमें कपूर रखे। कलमीशोरा और केसूला को जलमें पीस कर नाभिके नीचेके भागपर लेप करे। सौंफका अर्क मिला जल १-१ चम्मच पिलाते रहें या बर्फका जल १-१ चम्मच पिलावे। ज्यादा जल पिलानेसे वमन नहीं रुकेगी। दस्त बन्द होने पर भी वमन न रुके, तो २-२ तोले घी या तेल २-३ बार पिलावे।

(२७) देवदार्वाद्यरिष्ट ।

बनावट—देवदारु २०० तोले, अडूसेके पत्ते ८० तोले; मंजिष्ठा, दन्तीमूल, इन्द्रजौ, तगर, दारुहल्दी, हल्दी, रास्ना, बायविडंग, नागरमोथा, सिरसकी छाल, खैरछाल, अर्जुनछाल, प्रत्येक ४०-४० तोले;

गिलोय, चित्रकमूल, अजवायन, रक्तचन्दन, कुटकी, कुड़ेकी छाल, प्रत्येक ३२-३२ तोले ले। सबको जौकुट कर जल ८१६२ तोले मिलाकर क्वाथ करें। अष्टमांश जल शेष रहने पर उतार कर छानलें। शीतल होने पर शहद १२०० तोले, धायके फूल ६४ तोले, दालचीनी, तेजपात, इलायची, तीनो मिलाकर १६ तोले, सोंठ, मिर्च, पीपल, तीनों मिलाकर ८ तोले; नागकेशर ८ तोले और प्रियंगु १६ तोले लेकर मोटा मोटा चूर्ण कर मिला, अमृतबानमें भर मुखमुद्रा करके १ मास रख दे, फिर छानलें। हम शहद १५ सेरके स्थान में ११। सेर मिलाते हैं। (शा० स०)

मात्रा—१। से २॥ तोले दिनमें ३ बार समभाग निवाया जल मिलाकर भोजनसे पहले पिलावें।

उपयोग—देवदार्वाद्यरिष्ट सेवनसे दुस्तर वातज प्रमेह उपदंश, पूयमेह, उपदंश आदि जन्य मूत्रकृच्छ्र, वातरोग, संग्रहणी, अर्श, प्रदर, गर्भाशय दोष, कंडू, कुष्ट इत्यादि रोग नष्ट होते है। यह अरिष्ट रक्त-शोधक है। जीर्ण उपदंश और सुजाक के उपद्रवोको दूर करता है। मलशुद्धि करता है, और पचनक्रिया को सुधारता है।

यह अरिष्ट स्त्रियोंके गर्भाशय विकार पर अधिक हितावह है। कुमारियोको इसका सेवन नहीं करना चाहिये। तरुण स्त्रियोको सगर्भावस्थामें या प्रसवके पश्चात् यह उपयुक्त होता है। पीड़ितार्त्तव, नष्टार्त्तव, अनार्त्तव, इन रोगोंमें यह हितावह है। प्रसवके पश्चात् मक्कलशूलमें इसका उत्तम उपयोग होता है। प्रसूताके ज्वरको भी दूर करता है। ज्वरके साथ गर्भाशयमें से स्राव बन्द होगया हो, अथवा थोड़ा-थोड़ा स्राव दुर्गन्धरहित होता हो, गर्भाशयके चारो ओर वेदना हो, तो उसकी प्रारम्भिकावस्थामें देवदार्वाद्यरिष्ट देना चाहिये। इस अवस्था में स्रोतोरोध हो, तो ही इसका उपयोग करे। वातज या सान्निपातिक लक्षण होने पर दशमूलारिष्ट देना चाहिये।

जीर्ण सूतिकारोगमें इसका उपयोग होता है। प्रसवके पश्चात् १० दिनमें ज्वर आने और सूतिकारोगके लक्षण उपस्थित होकर अधिक दिनों तक रह जायँ, तो देवदार्वाद्यरिष्ट देना चाहिये। गर्भाशय अशक्त और शिथिल होनेसे उत्पन्न सूतिका रोगमें इसका अधिक उपयोगी है। कीटाणुजन्य विषप्रकोप और व्रण आदिसे उत्पन्न तीव्र विकारोंमें दश-मूलारिष्ट हितकारक है। (औ० गु० ध० शा०)

(२८) रक्तशोधकारिष्ट।

बनावट—अनन्तमूल ४० तोले, मुनक्का ४० तोले, उशवा, कच-

नारकी छाल, खैरकी छाल और चोपचीनी २०-२० तोले; छोटी कटेली, इन्द्रायणकी जड़, सिरसकी छाल, मंजिष्ठा, चिरायता, पित्तपापड़ा, गिलोय, मुंडी, सरफोंका, उन्नाव, शतावरी, बबूलकी छाल, जवासेकी जड़, देवदारु, तथा नीम और बकायनकी अन्तरछाल १०-१० तोले लेवें। सबको मिला जौकुट कर २५६० तोले जल मिलाकर क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर उतार मलकर छानले। शीतल होने पर गुड़ २॥ सेर शहद १। सेर, धायके फूल २४ तोले, रक्तचन्दनका चूर्ण १२ तोले तथा पीपल, दालचीनी, तेजपात, इलायची और नागकेशर २-२ तोले मिला मुखमुद्रा करके १ मास रख देवें, फिर छान लेवें।

मात्रा—२ से ४ तोले दिनमें २ बार समान जल मिलाकर ले।

उपयोग—यह अरिष्ट रक्तमें लीन कीटाणु और विषको जला कर शुद्ध बनाता है। उपदंशके उपद्रव—लाल काले धब्बे, सन्धिवात, कुष्ठ, वातरक्त, रक्तविकार, फोड़ा-फुन्सी आदि को १ मास में दूर करता है।

(२९) चन्दनादि अर्क।

बनावट—सफेद चन्दन १० तोले, लाल चन्दन, नेत्रबाला, खस, कमलके पुष्प, गुलाब के पुष्प, नागरमोथा, गिलोय, नीमकी अन्तर छाल, धनिया, सोंफ, छोटी इलायची, शीतलमिर्च, पित्तपापड़ा, दारुहल्दी, देवदारु, धमासा की जड़, गन्नेकी जड़, काँसकी जड़, दर्भ की जड़, कुशकी जड, गोखरू, सहदेवी, ब्राह्मी, शंखपुष्पी, जटामाँसी, गोरखमुण्डी, गावज़बाँ, बनफशा, हरड़, बहेड़ा, आँवला, पोस्तडोडे, शतावर, कौंचके बीजकी गिरी और तालमखाना, इन ३५ ओषधियोंको २-२ तोले ले। सबको जौकुट करके ८ सेर जलमें भिगोदे। २४ घण्टे बाद नलिकायन्त्रमें भरें। फिर ६ माशे केशर और १ तोला कपूरको एक पतले कपड़ेकी पोटलीमें बाँध यन्त्रके मुँह पर बाहर लटका कर मन्दाग्निसे अर्क निकाल लेवें।

मात्रा—२॥ से ५ तोले दिनमें ३ बार पिलावें।

उपयोग—यह अर्क पेशाबमें जलन, पेशाबका बूँद-बूँद गिरना, पेशाबमें रक्त आना, वीर्यकी उष्णता, पित्तज प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राशय का दाह, जीर्णज्वर, क्षय रोगमें पेशाबका पीलापन, एवं सूर्यके तापमें भ्रमणसे होनेवाले दाह इत्यादिको दूर करता है। रक्तमें संचित विषको मूत्र द्वारा बाहर निकालकर प्रकृतिको स्वस्थ बनाता है।

(३०) महा द्राक्षासव।

बनावट—मुनक्का १। सेर, मिश्री ५ सेर, झड़बेरीकी जड़की छाल

५० तोले, धायके फूल २५ तोले, चिकनी सुपारी, लौंग, जावित्री, जायफल, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, सोंठ, मिर्च पीपल, नागकेशर, रूमीमस्तंगी, कमलकंद, अकलकरा और मीठा कूट, ये १५ ओपधियाँ १०-१० तोले ले। सवक गुने (१६। सेर) जलमें मिला कर अमृतवानमें भरें। मुँह पर कपड़मिट्टी करके १४ दिन रहने दे। शीतकालमें २-४ रोज अधिक रखना पडेगा। फिर परीक्षा करके निकाले। यदि कच्चा हो, तो पुनः मुखमुद्रा करके ३ दिन रहने दे। अपक्क आसवको निकाल लिया जायगा, तो अर्क बहुत खट्टा बन जायगा। पश्चात् कच्छपयन्त्र (वारुणीयन्त्र) या नलिकायन्त्रमें डाल कर अर्क निकाल लेवे। फिर निकले हुए अर्कमेंसे दूसरी बार अर्क निकाले, और इस समय २ तोले केशर और ३ माशे कस्तूरी मिला एक कपड़े की पोटलीमें बाँधकर यन्त्रके मुँह पर बाहर लटका दे। पश्चात् अर्कको काँच के बरतनोंमें ३ दिन बन्द रखें। बाद में सेवन करें। (यो० चि०)

सूचना—शराब निकालनेके पुराने घडेमें पाक जल्दी होता है; अमृतबान और नये घडेमें लगभग १ मास लग जाता है।

मात्रा—२॥ से ५ तोले तक दिनमें ३ वार लेवें। ऊपरसे स्निग्ध मधुर पदार्थका भोजन करना चाहिये।

उपयोग—यह आसव कास, श्वास, राजयक्ष्मा, निर्बलता, निद्रानाश, मानसिक भ्रम, अरुचि, मलावरोध, मन्दाग्नि, शिरदर्द आदि रोगोंको दूर करता है, तथा बलवीर्यकी वृद्धि कर बलीपलितका नाश करता है। अधिक मात्रा होने पर नशा लाता है, अतः मात्रा कम देवे।

(३१) बालबन्धु अर्क (लाइम वाटर)।

बनावट—कलीचूना २ तोले, मिश्री ४ तोले और जल ३० तोले मिलाकर घोल दे। चूना नीचे बैठ जाने पर साफ जलको नितारले। (धन्वन्तरि)

मात्रा—३ मासके बच्चेको ५ से १० बूँद। १ वर्ष तक २० से २५ बूँद। ३ वर्ष तक ४० से ५० बूँद दूध मिलाकर पिलावे।

उपयोग—इस अर्कके सेवनसे आमाशय रसकी विकृतिसे उत्पन्न बालकोंके अपचन, दूध फेंकना, उदरपीड़ा, जुकाम, मन्दाग्नि, कब्ज आदि रोग दूर होकर वे नीरोग और बलवान बन जाते है।

(३२) नीबूद्राव।

बनावट—नौसादर, कलमीशोरा, सोहागेका फूला, फिटकरीका

फूला, सज्जीखार और जवाखार २०-२० तोले मिला कूटकर चूर्ण करें। फिर नीबूका रस २ सेर मिला अमृतवानमें भर मुखमुद्रा कर एक मास रक्खे, पश्चात् छानकर बोतलमें भरले। (र० त०)

मात्रा–५ से १० बूँद मिश्रीमें मिलाकर पिलावें, अथवा २॥ तोले जलमें मिलाकर पिलावे।

उपयोग—यह द्राव गुल्मरोगको थोड़े ही दिनोंमें दूर करता है। प्लीहावृद्धि, यकृद्विकार, उदररोग और शूलको भी नष्ट करता है।

(३३) उदरामृत योग।

बनावट—घीकुँवारका रस, मूलीका रस, नीबूका रस २०-२० तोले, अदरखका रस ५ तोले, सोहागेका फूला, नौसादर, चित्रकमूल, पीपलामूल, भुनी हींग, सोंठ, मिर्च, पीपल, भुना जीरा, अजवायन, लोह भस्म प्रत्येक एक-एक तोला, इन सबको बोतलमें डालकर ७ दिन धूपमें रक्खें, बादमें छानकर बोतलमें भरे। (धन्वन्तरि)

मात्रा—३ माशेसे १ तोला दिनमें २ बार भोजनके बाद २॥ तोले जल मिलाकर पिलावें।

उपयोग—यह अर्क उदररोग, प्लीहा, यकृद्दोष, पाण्डु, स्त्रियोंके गर्भाशयके दोष, मन्दाग्नि, कब्ज और शूल आदि रोगोंको थोड़े ही दिनोंमें दूर करता है।

(३४) लघु शंखद्राव।

बनावट—नौसादर, कलमीशोरा, फिटकरी और जवाखार, चारोंको सम भाग लेकर नीबूके रसमें खरल करे। फिर गेहूँके आटेकी दो मोटी रोटी बना, एकके ऊपर उपरोक्त कल्क रख-कर उसकी किनारी मोड़ दे। ऊपर दूसरी रोटी ढक सन्धिको जल लगाकर बन्द करे। फिर तवे पर दोनों ओर पका कर लाल करें। पश्चात् हिलाकर देखे। जल हिलने पर रोटीमें एक ओर सलाईसे छेद कर रसको चीनीके प्यालेमें सम्हालपूर्वक निकाल ले।

मात्रा—५ से १० बूँद तक २॥ से ५ तोले जलमें मिलाकर दिनमें २ बार पिलावे। यह शंखद्राव थोड़े दिनों तक अच्छा रहता है।

उपयोग—यह द्राव गुल्म, आफरा, शूल, यकृद्दोष, प्लीहा, अश्मरी इत्यादिको दूर करनेमें अति लाभदायक है। पथरीको गलाकर निकाल देता है, और तकलीफ भी नहीं होती।

(३५) शंखद्राव।

प्रथम विधि—आक, थूहर, तिल-पञ्चाङ्ग, पीपल (अश्वत्थ),

इमली, अपामार्ग और चित्रक, इन सबका क्षार, सज्जीखार, जवाखार, सोहागा, समुद्रफेन, गोदन्ती, कसीस, कलमीशोरा, इन १४ ओषधियों को १०-१० तोले और पाँचों नमक २०-२० तोले लेवे। सबको चीनी मिट्टीके पात्र, जिसमें तेजाब रख सके, उसमें १२ सेर जम्भीरी नीबूके रसके साथ डालकर कड़क धूपमें ७ दिन तक रख दें। प्रति दिन ३-४ चार लकड़ीके डण्डेसे चला देव। पश्चात् मिट्टी या चीनी मिट्टीके वारुणी-यन्त्र द्वारा तेजाब खींचले। (र० क०)

मात्रा—५ से १० बूँद, २॥ तोले जलके साथ दिनमें दो बार दे।

उपयोग—इस द्रावके सेवनसे अजीर्ण, मन्दाग्नि, गुल्म, प्लीहा-वृद्धि, उदररोग, आठ प्रकारके शूल, ये सब दूर होते है।

दूसरी विधि—सेधानमक, कालानमक, विड़नमक, समुद्र-नमक ५-५ तोले, साँभरनमक १८ तोले, सज्जीखार १६ तोले, कलमी-शोरा २० तोले, फिटकरी ६ तोले, नौसादर ४॥ तोले, कसीस २॥ तोले और सोहागा २॥ तोले, सबको एकत्र कर चौगुने नीबूके रसमें मिला, चीनी मिट्टीके तेजाब रखने लायक पात्रमें डालकर धूपमें रख दें और प्रतिदिन लकड़ीसे चला दिया करे। ७ दिनके पश्चात् मिट्टी या चीनी मिट्टीके वारुणी-यंत्रसे अर्क निकाल ले।

मात्रा—३ से ६ रत्ती दिनमें २ बार २॥ तोले जलके साथ दें।

उपयोग—यह द्राव गुल्म, शूल, उदररोग, पथरी, मूत्रकृच्छ्र, अग्निमांद्य, संग्रहणी आदि रोगोको दूर करता है।

सूचना—यह एक प्रकारका तेजाब है। सम्हालकर उपयोग करें। केवल तेजाब पिलानेसे दांतोमें लगेगा तो दांत गिर जायँगे। अतः जल मिला-कर उपयोग करना चाहिये। इस अर्कको धातुके यन्त्रमें नहीं निकालना चाहिये।

(३६) जम्भीरी द्राव।

बनावट—जम्भीरी नीबूका रस २॥ सेर, भुनी हींग २ तोले; अजवायन, सोंठ, पीपल, मिर्च, वायविड़ङ्ग, लौंग, शोरा और छोटी हरड़ ५-५ तोले, सैंधानमक २५ तोले और राई १० तोले ले। सबको कूट जम्भीरीके रसमें डालकर १ मास रक्खे। फिर छानकर काममें ले। (आ० मि०)

मात्रा—१ से २॥ तोले भोजनके १॥-२ घण्टे बाद दिनमें २ बार जल मिलाकर पीवे। अधिक वेदना होती हो, तो शंख भस्म १ माशा मिलाकर पिलावे।

उपयोग—इस द्रावके सेवनसे यकृत, प्लीहा, गुल्म, शूल,

आफरा, अजीर्ण और मलावरोध दूर होता है तथा अग्नि प्रदीप्त होती है।

(३७) गाजर का अर्क ।

बनावट—गाजर १ सेर, गावजवाँ १० तोले, गावजवां के फूल, सफेद चन्दन, तोदरी लाल और बहमन सफेद ५-५ तोले लें। सबको ८ सेर जलमें मिलाकर नलिकायन्त्र द्वारा ४ बोतल अर्क खींचले।

मात्रा—१ से २ छटाँक दिनमें ३ बार पिलावें।

उपयोग—यह अर्क हृदयकी धड़कन, शारीरिक निर्बलता और मंदाग्निको दूर करता है। वातवाहिनियोंको सबल बनाता है। मूत्रको साफ लाता है। एवं हिक्का, श्वास, अर्श, शोथ, अतिसार और कामला रोगियोंके लिये हितकर है। सगर्भा स्त्रीको इस अर्कका सेवन नहीं कराना चाहिये। कारण, गाजर गर्भाशयको उत्तेजित करता है।

(३८) किरातादि अर्क ।

बनावट—चिरायता, कुटकी, नीमकी अंतरछाल, सोंठ, हरड़, धमासा, पटोलपत्र, लाल चन्दन, नागरमोथा और खस, इन १० ओषधियोंको समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण करें। फिर ८ गुने जलमें रात्रिको भिगोकर सुबह नलिका-यन्त्र द्वारा अर्क खींचले।

मात्रा—२॥-२॥ तोले अर्क ३-३ घण्टे बाद ३ बार पिलावें।

उपयोग—यह अर्क विषमज्वर-सतत, अन्येद्यु, तृतीयक, चातुर्थिक आदि चढ़े हुए तापमें दिया जाता है। प्रवालपिष्टीके साथ देनेसे ज्वरके विषको जल्दी जला देता है, और तत्काल वेगका शमन करके तापको उतार देता है। प्राय. एक ही दिनमें दोषका पचन करा देता है, जिससे पारी छूट जाती है। इस ओषधिसे रोगीके हृदय आदि अवयवोंको नुकसान नहीं पहुँचता, एवं निर्बलता नहीं आती। इनके अतिरिक्त अन्य सब प्रकारके ज्वरोंमें भी यह लाभ पहुँचाता है।

(३९) मेदोहर अर्क ।

बनावट—गोमूत्रको मिट्टीके नलिका-यन्त्रमें भरकर अर्क खींचले।

(श्री वैद्य वंशीधरजी आयुर्वेदाचार्य)

मात्रा—१ से २ औंस अर्क दिनमें २ या ३ बार १-२ तोला शहद मिलाकर लेवें।

उपयोग—यह अर्क मेदवृद्धि, दुर्गंधयुक्त पसीना आना, हृदयमें पीड़ा, शोथ, उदरशूल, यकृत्में शूल, रक्तविकार, मन्द-मन्द ज्वर, थोड़े परिश्रमसे श्वास बढ़ जाना, बेचैनी, प्रमेह आदि दोषोंको दूर करता है। मेदवृद्धिमें अभ्रकप्रधान लक्ष्मीविलास रस या चन्द्रप्रभावटीके साथ

इस अर्कका सेवन करनेसे सत्वर लाभ होता है।

सूचना—यदि इस अर्कको मात्रा अधिक ली जायगी, या शहद कम मिलाया जायगा, तो व्याकुलता होने लगती है। फिर एकाध दस्त लग जाता है, पसीना आजाता है, और कुछ मिनटोंके लिये निर्बलता आजाती है।

(४०) जीवनरसायन अर्क।

बनावट—कपूर १० तोले, पीपरमेंटके फूल ५ तोले, थाईमोल (अजवायनके फूल) ५ तोले, बेंजोइक एसिड (लोबानके फूल) २॥ तोले ले। पहले कपूर, पीपरमेंट और थाईमोलको मिलावें। जल हो जाने पर एसिड मिलादें।

मात्रा—२ से ५ बूँद तक दिनमें ३ से ४ वार बताशेमें या शक्करके साथ अथवा जलसे देवें।

अनुपान—हैजेमें आध-आध घण्टे पर बताशेमें देते रहें। जल बहुत थोड़ा-थोड़ा (चम्मचसे) पिलावें। और रोगोंमें दिनमें २ से ३ वार दें। दाँत और डाढ़के दर्दमें फोहा रखें और २ से ५ बूँद तक जल के साथ पिलावें। त्वचा रोगमें ८ गुना तिलका तेल मिलाकर मालिश करें, और दिनमें ३ वार २-४ बूँद जलमें मिलाकर पिलावें। कर्णरोगमें १ माशा तिलका तेल गरम करें, निवाया रहे, तब उसमें चौथा हिस्सा अर्क मिलाकर २-२ बूँद कानमें डालें।

उपयोग—यह अर्क हैजा, अतिसार, मन्दाग्नि, खाँसी, अरुचि, उदरशूल, वमन, रक्तविकार, आमवात, अजीर्ण, कर्णपीड़ा, शिरदर्द, ज्वर, कफविकार, जुकाम, डाढ़में चीस चलना, दाँतोंकी पीड़ा, कण्डू आदिको दूर करता है।

(४१) ज्वरहर अर्क।

बनावट—नौसादर और चूना १०-१० तोले लेकर एक चीनी मिट्टीके बरतनमें डालें। ऊपरसे ईखका सिरका २० तोले डालें। झाग उतर जायँ तब जल २ सेर मिलाकर रहने दें। जल ऊपरमें स्वच्छ हो जाय तब बोतलमें भर लेवें। (आ० नि० मा०)

मात्रा—१ से २ तोले तीन-तीन घण्टेके बाद ३ वार सौंफ का अर्क अथवा जल मिलाकर पिलावें।

उपयोग—इस अर्कके सेवनसे नवीन ज्वर पसीना आकर सत्वर उतर जाता है। पेशाब साफ आता है। कफप्रधान ज्वर, अजीर्ण ज्वर और इन्फ्लुएञ्जामें यह उपयोगी है।

(४२) वातशूलान्तक अर्क।

बनावट—खखसा (रग) के मूलकी सूखी ताजी छाल १ तोला, मैदा लकड़ी १ तोला, कलमीशोरा ३ माशे और आमाहल्दी ६ माशे ले। सबको मिला-कूटकर मेथीलेटेड स्पिरिट १० तोलेमें भिगो दें। ७ दिन पीछे छानकर उपयोगमें लेवे।

चमार लोग खखसा की छालमें से लाल रंग चमड़े को रँगनेके लिये निकालते हैं। यह वृक्ष लगभग २–३ हाथ ऊँचा होता है। इसमें पीले रंगके फूलोंका गुच्छा आता है। फली चपटी और ४–५ इंच लम्बी होती है।

उपयोग—यह अर्क वायुकी सूजन, रक्तकी गाँठकी जमना, जलन और वातशूल पर लगानेके लिये अति उपयोगी है। यह औषधि टिंक्चर आयोडीनका काम करती है।

दूसरी विधि—(शोथनाशक अर्क)—सोंठ १ तोला, हीराबोल २ तोले, आमाहल्दी ५ तोले, मैदा लकड़ी ५ तोले; उसारेरेवन, सज्जीखार, लोद, कपूर और फिटकरी, ये ५ औषधियाँ २॥-२॥ तोले लें। सबको जौकुट कर २४ औंस मेथीलेटेड स्पिरिटमें डाल दें। रोज बोतल को ३–४ बार चला देवें। तथा रोज बोतल को १–२ घण्टे सूर्यके तापमें रक्खे। एक सप्ताह पश्चात् वस्त्रसे छानकर बोतलमें भरें।

(श्री० गोपालजी कुँवरजी ठक्कुर आयुर्वेदाचार्य)

उपयोग—इस अर्कको सूजन, वेदना, चोट लगना, रक्त जम-जाना आदि पर रुईके फोहेसे दिनमें एक या दो बार लगा लेनेसे बहुत जल्दी आराम होजाता है।

(४३) लाक्षा अर्क।

बनावट—१० तोले लाख को २० औंस मेथीलेटेड स्पिरिटमें मिलावे। आध घण्टे में रस होकर अर्क बन जाता है।

उपयोग—शस्त्र लगने अथवा चोटसे रक्त निकलनेके स्थान पर इस अर्कको रुईके फोहेसे लगा देनेसे तुरन्त रक्तस्राव बन्द होजाता है।

४४ स्त्रीगदांतक अर्क।

बनावट—अशोकारिष्ट ६ औंस, आइल कोपायबा १॥ ड्राम, आइल सेन्डलवुड (चन्दनका तेल) ३० बूँद, टिंचर केथारोडीस १५ बूँद, लाईकर फैरी ४ ड्राम और एका केम्फर कन्सटेड १॥ ड्राम लें। अशोकारिष्टमें तेल को छोड़कर अन्य औषधि पहले मिलावे। बादमें तेल मिला १२ औंसमें कम हो, उतना वाष्प जल डाल लेवे।

मात्रा—१-१ ड्राम दिनमें ३ बार २॥-२॥ तोले जलके साथ दें।

उपयोग—इस अर्कके उपयोगसे स्त्रियोंके गर्भाशयके दोष, रक्त-प्रदर, श्वेतप्रदर, नीलप्रदर, गर्भाशयमें दाह, मासिक-धर्ममें अनियमितता, मासिक-धर्मके समय गर्भाशयमें शूल चलना, गर्भाशय-विकृति-जनित मलावरोध, बेचैनी, अरुचि, नेत्रदाह, शिरदर्द, हाथ-पैर टूटना, अपचन आदि, ये सब विकार दूर होते है। जीर्ण रोगमें अर्क २-३ मास तक पथ्यपालनसह लेना चाहिये।

यह अर्क मूल सुजाकके उपद्रवोंमे पीड़ित रुग्णा के लिये तैयार किया था। फिर इसका उपयोग सुजाक रहित रोगियों पर भी किया गया। अनेकों को लाभ होनेसे पाठ जैसाका वैसा दे दिया है।

(४५) ज्वरमुरारि अर्क।

बनावट—क्विनाईन सल्फास (हावर्ड) २ औंस, एसिड सल्फ्युरिक डाइल्युट ४ औंस, टिंक्चर नक्सवॉमिका १। औंस, टिंचर डिजिटेलिस ४ औंस, ऑइल पीपरमेंट ३० मिनिम, मेगनेशिया कार्ब २ ड्राम और डिस्टिल्ड वॉटर (वाष्प जल) २० औंस ले। किनाइन को थोड़े वाष्प जलमें मिला, फिर एसिडके साथ मिलावे, तथा ऑइल पीपरमेंट को मेगनेशिया कार्बके साथ मिलाकर उसमें वाष्प-जल मिला दें। पश्चात् सबको मिला लेवें। रंग मिलाना हो, तो १ औंस अर्कमें ३० बूंदके हिसाबसे रासबरी कलर मिला लेवें।

एसिड सल्फ्यूरिक डिल्युट बनानेके लिये १ औंस वजन किये गंधकके तेजाब को ६ औंस जलमें मिलाना चाहिये। जलको तेजाब पर न डाले। तेजाब को जल पर डालदें, फिर चलाकर रहने दें। जल शीतल होजाने पर काममें लावें १० औंस जलमें जितना कम रहा हो उतना (३ ड्राम) जल मिला लेवें। अथवा एक औंस नापसे लिये हुए गन्धकके तेजाब को १४॥ औंस जलमें मिला लेनेसे डिल्युट होजाता है।

सूचना—अर्क तैयार होनेपर उतना वाष्प जल मिला लेवे कि, एक मात्रामें क्विनाइन ४ ग्रेन और एक पौण्ड क्विनाइनमेंसे २० पौण्ड अर्क बन जाय।

मात्रा—½ से १ ड्राम तक १-१ औंस जलके साथ दिनमें ३ बार दें। बालको को मात्रा कम दें। पित्तप्रधान प्रकृतिवालोंको पहले दूध पिलाकर ऊपरसे अर्क पिलावे।

उपयोग—ठण्डी लगकर आनवाले ज्वर, सब प्रकारके विषम ज्वर—एकाहिक, तृतीयक, चातुर्थिक आदि एक दिनमें ही चले जाते

हैं। पालीके बुखारमें जिस दिनकी पाली हो, उस दिन रोगीको खाने को कुछ भी न दे। अति निर्बल रोगी हो या बालक हो, तो थोड़ा दूध पिलावे, और बुखार आनेके ६ घण्टे पहले ओपधिकी १ मात्रा देदें। फिर २-२ घण्टे पर दो बार ओपधि देनेसे एक ही दिनमें ज्वर रुक जाता है। ज्वरका समय चला जाने पर रोगीको क्षुधा लगने पर दूध दे। भोजन दूसरे दिन करावें। उस दिन स्नान भी नहीं कराना चाहिये। पालीके दिनसे अन्य दिनोंमें ओपधि दिनमें ३ बार देते रहें।

(४६) चाँदीका खिजाब।

बनावट—रौप्यक्षार (सिल्वर नाइट्रास) १ तोले और गन्धक का तेजाब १ तोले को चीनी मिट्टीकी प्यालीमें भरकर कोयलों की जलती हुई सिगड़ी पर रखें। १५-२० मिनटमें तेजाब जलकर चाँदीकी भस्म तैयार होजायगी। फिर गन्धक आँवलासार २० तोलेको ३ दिन खरल करें। चौथे रोज थोड़ा-थोड़ा गुलावजल मिलाकर खरल करें। ३-४ रोज खरल करनेसे गुलावजलमें मिल जाता है। अच्छी रीतिसे मिल-जाने पर बोतलमें भरे। ६० तोले गुलाबजलमेंसे घट गया हो, उतना और गुलावजल मिलावे। फिर चाँदीकी भस्म मिलालें।

(श्री० ठा० रघुरामसिंहजी)

उपयोग—पहले बालोंको साबुनसे धोकर ब्रुशसे थोड़ा खिजाब लगावे। सूखनेके बाद बाल धो दे। और जगह खिजाब लगाकर काला दाग हो जाय, तो तेल अथवा घी का हाथ लगाकर साफ करलें। पहले रोज रंग थोड़ा कम आवेगा। तीसरे समय लगानेसे कुदरती बालोंका रंग आजाता है।

पाक-अवलेहादि प्रकरण।

नाजुक प्रकृतिवाले, बालक, स्त्री, वृद्ध, पुराने रोगी अथवा जो कड़वे चूर्ण आदि सेवन न कर सके और जो भस्म आदि ओपधियो के अनधिकारी हों उनके लिये पाक, अवलेह आदि ओपधियाँ विशेष अनुकूल रहती हैं। पाक आदि ओपधि स्वादिष्ट होनेसे सब कोई सप्रेम ग्रहण कर सकते हैं। ये ओषधियां शीघ्र पचन हो, रस-रक्तमे मिलकर रोगोको दूर करती हैं, और शरीरको सुदृढ़ बनाती हैं। भस्में जिनको लाभ नही पहुँचाती, उनको यदि पाक अथवा अवलेह में मिलाकर दी जायँ, तो वे अपना लाभ अवश्य पहुँचाती हैं।

पाक और अवलेह बनानेकी विधि औषधिकृति-प्रकरणमें लिखी है। माजून यूनानी हिकमतवालोंका है। वे लोग शहद को उबाल कर ऊपर आनेवाले मैलको निकाल देते हैं। शेष रहे हुये शुद्ध शहदको माजूनके चूर्णके साथ मिला लेते हैं। किन्तु आयुर्वेदने शहद को विष माना है, जिससे शहदको तपाना आयुर्वेदके नियमके विरुद्ध है। इसलिये शहदको बिना गरम किये मिलाया जाय, तो भी औषधि प्रोयग न्यून गुण वाला नहीं होता।

कुछ शर्बत इस प्रकरणके अन्तमें दिये हैं। अनेक समय पर शर्बत रूप से ओषधियाँ देनी पड़ती हैं, अथवा अन्य ओषधिके साथ अनुपान रूपमें शर्बत मिलाना पड़ता है। शर्बत स्वादिष्ट होनेसे सब कोई ग्रहण कर सकते हैं, जिससे स्वादके साथ-साथ ओषधिका लाभ भी पहुँच जाता है।

पाक-सेवन प्राय दिनमें १ बार प्रातःकाल होता है। अनेक पाकोंमें भस्म मिलानेको लिखा है। उनको यदि न मिलावें या न्यूनांशमें मिलावें, तो कोई दोष नहीं होता, पाक विशेष सौम्य बनता है। मात्र भस्मोंका लाभ नहीं मिलता। अवलेह और माजूनका सेवन दिनमें २ बार किया जाता है। भस्म मिले पाक, अवलेह और माजून, सबकी मात्रा नियमित न होनेसे सबके साथ दी है।

(१) सौभाग्यसुंठी पाक।

प्रथम विधि—सोंठके ३२ तोले चूर्णको घीकी भावना (मोण) देकर ४ सेर गायके दूधमें मिलाकर खोवा बनावें। फिर खोवेमें थोड़ा-थोड़ा घी डालते जायँ और हिलाते जायँ। १ सेर घी डालनेसे दाना अलग-अलग पड़ेगा। बादमें ४ सेर मिश्रीकी चाशनी कर उसमें खोवा डालदें। फिर धनिया ३ माशे, सौंफ १ तोले, वायविडङ्ग, सोंठ, नागकेशर, कालीमिर्च, पीपल और मोथा ४-४ तोलेका चूर्ण तथा थोड़े-थोड़े बादाम, पिस्ता, चिरोंजी मिलाकर पाक तैयार करें। (ध० वै०)

वक्तव्य—इस पाठ में मूल ग्रन्थकार ने धनिया ३ माशे और सौंफ १ तोला लिया है। उनके स्थानपर हम ४-४ तोले मिलाते हैं।

मात्रा—५-५ तोले रोज सुबह खिलाकर ऊपर दूध पिलावें।

उपयोग—इस पाकके सेवनसे स्त्रियोंके प्रसूति (सुवा) रोग, वातरोग, प्यास, वमन, ज्वर, दाह, शोष, श्वास, खाँसी, तिल्ली, कृमि इत्यादि विकार नाश होते हैं।

दूसरी विधि—१९२ तोले सोंठके चूर्णको समभाग घृत मिलाकर भूनें। फिर ७६८ तोले दूध मिलाकर उबालें। आधा दूध शेष रहे, तब १९२ तोले मिश्री डालकर पाक करें। पाक तैयार होने पर जायफल, त्रिफला, जीरा, कालाजीरा, धनिया, सौंफ, इलायची, पीपल, नागर-

मोथा, नेत्रवाला, मुनक्का, विदारीकन्द, सफेद चन्दन और छुहारा, सब २-२ तोले, ताजी नारियलकी गिरी ३२ तोले, शिलाजीत और लोह भस्म ८-८ तोले, सोवा १६ तोले, चिरौंजी १६ तोले और निसोत ३२ तोलेका वारीक चूर्ण डालें, और केशर आदि सुगन्धित पदार्थ इच्छानुकूल मिलावे। मिश्री १९२ तोले मिलाने पर पाक अधिक चरपरा रहता है, इस हेतुसे हम ३८४ तोले मिलाते है। (आ० भि०)

शिलाजीतको ४ गुनी मिश्रीके साथ खरल करके पाक तैयार होने पर मिला लेवे। पहले मिलानेसे पाक ढीला होजाता है, और शिलाजीतसे पाकका रंग भी श्याम होजाता है। यदि शिलाजीत पाकमें न मिलावे, वल्कि पाक सेवन के साथ रोज २-२ रत्ती दूधके साथ लेते रहे, तो भी पूरा लाभ मिल सकता है।

मात्रा—२ से ४ तोले तक सुवह खाकर दूध पीवे।

उपयोग—इस पाकके सेवनसे वल, कान्ति, सौभाग्य, वुद्धि, स्मृति, वाणी, सौदर्य और सुकुमारताकी प्राप्ति होकर योनिशिथिलता दूर होती है। स्त्रियोके स्तन घट्ट होते है और ८० प्रकारके वातरोग, २० प्रकारके कफरोग, ४० जातिके पित्तरोग, ८ प्रकारके ज्वर, १८ जाति के मूत्ररोग, एवं नासा, नेत्र, कर्ण, मुख, मस्तिष्कके रोग, विस्तशूल, योनिशूल और अन्य सब प्रकारके रोग नष्ट होते है।

(२) सुंठ्यादि पाक।

वनावट—सोंठ, वादामकी गिरी और पिस्ता ५-५ तोले, मेथी, चास्को (वनकुलथी), खसखस, सौंफ, सोवा पोपल, गोखरू, सफेद मूसली, काली मूसली, कौंच, मिर्च, धनिया, तालमखाना, वायपुंवा, हालो (आहलिव) प्रत्येक १-१ तोला, शतावरी, जायफल, जावित्री, नागकेशर, दालचीनी, तेजपात, पीपलामूल, वायविड्ङ्ग, कुलींजन, जीरा, हल्दी ६-६ माशे, खरेंटीके वीज २ तोले, नारियलकी गिरी १० तोले और ववूलका गोंद २० तोले लें। गेहूँका आटा सव चूर्णसे ड्योढ़ा तथा घी और गुड़ चूर्णसे २।।-२।। गुना ले। ववूलके गोंद और दूसरी ओषधियोको अलग-अलग कूटकर मोटा चूर्ण वनावें। ववूलके गोंद, चूर्ण और आटेको घीमें अलग-अलग भूने। फिर तीनोको मिला लेवे। वादमें गुड़ मिलाकर पाक सिद्ध करे। (वै० चि० सा०)

उपयोग—यह पाक प्रसूता स्त्रियोंकी निर्वलताको दूर करता है, और जठराग्निको प्रदीप्त करता है। निर्वल मनुष्योके लिये भी पौष्टिक रूपमें अच्छा काम देता है। रोज सुवह १० से २० तोले अनुकूल परि-

मात्रमें खाकर ऊपर दूध पीवें। पाक पचन होने पर भोजन करे।

(३) कौंच पाक।

बनावट—कौंच १२८ तोलेको गरम जलमें १२ घण्टे भिगो दे। फिर निकाल खादीके कपड़ेसे घिस ऊपरके छिलके अलग करे। पश्चात् छायामें सुखा कूटकर बारीक चूर्ण करे। इस चूर्णको १६ गुने दूधमें मिलाकर उबालें। जब दूध मावा जैसा गाढ़ा होजाय, तब चूर्णसे दुगुना घी मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। फिर चूर्णसे चार गुनी शकर की चाशनी करे। पश्चात् कौंच वाला खोवा मिलाले। अगर,जायफल, जावित्री, सोंठ, लौंग, अकलकरा, जीरा, पीपल, दालचीनी, तेजपात,इलायची, नागकेशर, कपूर, शीतलमिर्च, समुद्र-शोष, भिलावा, केशर, करंजके बीजकी गिरी, खुरासानी अजवायन, तालमखाना और दूधमें शोधन किया हुआ वच्छनाग २-२ तोले, काली मूसली और शुद्ध अफीम ४-४ तोले ले बारीक चूर्ण करके मिला दे। रससिंदूर, नागभस्म, वंग भस्म २-२ तोले और लोहभस्म ४ तोले डालें। ठंडा होने पर ६४ तोले शहद मिलावे। सुगन्धित द्रव्य केशर, कस्तूरी इच्छानुकूल मिला, पाक बनाकर कलई किये हुए बरतन में भरदे।

मात्रा—२ से ४ तोले रोज सुबह खाकर ऊपर दूध पीवे।

उपयोग—यह पाक धातुवृद्धि और पुष्टिके लिये अति उपयोगी है। यह अत्यन्त कामोत्तेजक है। श्वास, पाडु, क्षय, खाँसी, सूजन, मेद और सब प्रकारके वातरोगोंका नाश करता है। क्षीणवीर्य, नष्ट-वीर्य, और खंजवातसे पीड़ित मनुष्योंके लिये अमृतरूप है। इस पाक के सेवनसे बुद्धिकी वृद्धि होती है, और शरीर पुष्ट होता है।

इस पाकके सेवन-कालमें अंगूर, मुनक्का, केला, चिरौंजी, मिश्री, दूध, घृत, और तिल पथ्य हैं और खट्टे पदार्थ अपथ्य हैं।

सूचना—इस पाकमें अफीमका परिमाण बहुत ज्यादा है। अफीमके व्यसनीसे इतनी अफीम सहन होती है, अन्य लोगोंसे नहीं। अतः अफीम आधा से १ तोला मिलावे। ४ तोले अफीम मिलानेसे ४ तोले पाकमें १ रत्ती अफीम आती है। इसके अतिरिक्त वच्छनागका परिमाण अफीमसे आधा है। यह भी अत्यधिक है। वच्छनाग आध तोलेसे अधिक नहीं चाहिये।

(४) जीरकादि मोदक।

बनावट—जीरा ३२ तोले, भाँग भुनी हुई १६ तोले, लोहभस्म,

वंगभस्म, अभ्रकभस्म, सौंफ, तालीसपत्र, जावित्री, जायफल, धनिया, हरड़, बहेड़ा, आँवला, दालचीनी, नागकेशर, इलायची, तेजपात, लौंग, छरीला, सफेद चन्दन, रक्तचन्दन, जटामांसी, मुनक्का, कचूर, सोहागे का फूला, कुँदरू, मुलहठी, वंशलोचन, शीतलमिर्च, नेत्रवाला, सोंठ, मिर्च, पीपल, धायके फूल, वेलगिरी, अर्जुनछाल, सोवा, देवदारु, कपूर, गँगेरनकी छाल, प्रियंगु, कुटकी, जीरा, मोचरस, कमलकी नाल, सब १-१ तोला ले। भस्मको छोड़ शेष सबको कूटकर बारीक चूर्ण करे। ८० तोले मिश्री मिलावे और गोली बँध सके उतना शहद मिलाकर आधे-आधे तोलेकी गोलियाँ बनावे। कितनेक चिकित्सक इस मोदकमें आध सेर गोघृत मिला पश्चात् शहदके साथ गोलियाँ बनाते है। (भै० र०)

मात्रा—१ से २ गोली रोज सुवह जल या मट्ठेके साथ दे।

उपयोग—इस मोदकके सेवनसे सब प्रकारकी संग्रहणी, आमदोष, पित्तदोष, मन्दाग्नि, रक्तातिसार, अतिसार, विषमज्वर, शब्द सहित अतिसार, घोर अम्लपित्त, सब प्रकारके उदररोग, शूल, अरुचि, आदि रोग दूर होते हैं।

(५) नेत्रशूलान्तक मोदक।

बनावट—पका नारियल, जिसमेंसे तेल निकलता है, उसकी गिरी २० तोले, गुड़ १० तोले और आनन्दभैरव रस ४ रत्ती मिलाकर ५ अथवा ७ लड्डू बनावे। (श्री० वैद्य परमानदजी)

मात्रा—एक-एक मोदक रोज सुवह बकरीके दूधके साथ दें।

उपयोग—इस मोदकके सेवनसे नेत्रशूल, (अधिमन्थ Glan coma), शिरागत वातविकार, शिरदर्द, शिरशूल आदि रोग दूर होते हैं।

नेत्रशूल तीव्र होनेपर १-१ तोला कलौंजी भी गुड़के साथ मिलाकर दिनमें दो समय देते रहना चाहिये। जिससे वह मस्तिष्क में से प्रस्वेद कोअधिक बाहर निकाल कर नेत्रान्तर दबाव को कम कर देता है। फिर नेत्र शूल शमन हो जाता है।

(६) च्यवनप्राशावलेह।

बनावट—पाटला, अरणी, गंभारी, वेल और श्योनाक (अरलु), सबकी छाल, गोखरू, शालपर्णी, पृष्टपर्णी, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, पीपल, काकड़ासींगी, मुनक्का, गिलोय, हरड, खरेटी, भूमि-आँवला, अडूसा, जीवंती, कचूर, नागरमोथा, पुष्करमूल, कौआठोडी, मूँग-

पर्णी, मासपर्णी, विदारीकन्द, सोंठी, कमलगट्टा, छोटी इलायची, अगर, चन्दन और अष्टवर्ग (अभावमें प्रतिनिधि द्रव्य) की आठों ओषधियाँ, सब चार-चार तोले लेकर जौकुट चूर्ण करें। फिर इस चूर्ण, बड़े-बड़े ताजे ५०० आँवले (६। सेर आँवले ताजे, सूखे हो तो आधे वजन में और २०४८ तोले पानीको एक घड़े में डालकर पकावें। आठवाँ हिस्सा पानी शेष रहने पर छान लेवें, और आँवलोंको निकाल लेवे। फिर कलई किये हुए बरतन पर मजबूत खादी को बांधकर उस पर आँवलोंको मसलनेसे आँवलोंका मगज छन जाता है। इस मगज को २८ तोले घृतमें (मतान्तरमें घी तैल १४-१४ तोले) मिलाकर मन्दाग्निसे लाल होने तक भूने। (आँवले भुन जानेपर घृत अलग निकल आता है) फिर क्राथके छाने हुए जलको पुनः उबाले, आधेसे अधिक अंश जल जाय, तब ५ सेर शक्कर मिलाकर पाक करें। कुछ गाढ़ा होने पर आवलों वाला पाक मिलाकर पकावें। फिर पीपल ८ तोले, वंशलोचन १६ तोले और दालचीनी, इलायची, नागकेशर तथा तेजपात १-१ तोलेका बारीक चूर्ण करके मिलावें। अवलेह ठण्डा होने पर ४८ तोले शहद मिलावें। शहद और शक्करका परिमाण अधिक लिया है। शेष पाठ शास्त्रानुसार। (शा० सं०)

सूचना—क्वाथका जल अधिक रहने पर शक्कर मिलादी जायगी तो अवलेह छिद्दा पड़ जाता है, दांतों को लगता रहता है। कितनेक चिकित्सक शक्कर १० सेर मिलाते हैं।

आवलोंको कलई लगी हुई पीतलकी कढाईमे भूनना चाहिये। लोहेकी कढ़ाई या खुरपी के स्पर्श से अवलेह का रंग काला होजाता है।

मात्रा—१। से २॥ तोले दिनमें २ बार १० से २० तोले दूधके साथ २० तोले दूध के साथ। उदरमें वायु उत्पन्न हो, तो आधा घण्टे बाद दूध पीवें।

उपयोग—यह अवलेह उत्तम शक्तिप्रद है। क्षय, उरःक्षत, शोष, हृद्रोग, स्वरभंग, निर्बलता, कास, श्वास, प्यास, वातरक्त, नेत्ररोग, मूत्रदोष, वीर्यके दोष तथा वात, पित्त और कफके सब रोगोंमें हितकर हैं। बालक, सगर्भा स्त्री, वृद्ध, क्षतक्षीण, सबके लिये लाभदायक है। बल, वीर्य, मेधा, स्मृति और कान्तिको बढ़ाता है। यह किसी भी रोग से उत्पन्न निर्बलताको दूर कर जीवनीय शक्तिको बहुत जल्दी बढ़ा देता है, इस हेतुसे इस अवलेहको 'जीवन' भी कहते हैं। च्यवनप्राशावलेह का मूलपाठ चरक-संहिता का है। उसमें आँवलोंको घृतमें और तेलमें

भूनने को लिखा है; और शार्ङ्गधर-संहिताकारने मात्र घृत में पकानेका विधान किया है। केवल इतना ही दोनोंमें अन्तर है।

यह अवलेह रसायन, उत्तम शक्तिप्रद, कान्तिवर्द्धक, वाजीकर, दीपन-पाचन, पित्तप्रकोप शामक, सारक, मूत्रजनन, रुचिकर और चर्मरोग नाशक है। यह अवलेह बड़ी आयुवाले नीरोगी मनुष्योंको रसायन गुण दर्शाता है, अर्थात् शारीरिक सब यन्त्रों की क्रिया को सुधार तथा दोष को जलाकर कम हुई शक्तिको फिरसे वृद्धि कराता है। इसकी मात्रा अधिक दी जाय, तो पित्तका स्राव कराता है और सारक गुण दर्शाता है। (मात्रा अधिक होने पर शक्ति वृद्धि नहीं कर सकता)।

पित्तधातुकी वृद्धि होने पर उष्णता उत्पन्न होती है। फिर वह कफको पतला बनाना, नासिकामेंसे श्लेष्मस्राव होना अथवा प्रमेह या श्वेतप्रदर की उत्पत्ति होना अथवा मासिक धर्ममें अति रजःस्राव होना आदि विकार उपस्थित करती है। यह अवलेह उन सब विकारों का मूल धातु वैषम्यको दूर कर साम्यावस्था ला देता है।

कोष्ठमें दुष्ट मल संगृहीत होने पर विविध रोगोंकी सृष्टिका आविर्भाव होता है। रक्तविकार, कुष्ठ, त्वचा शुष्क और काली होजाना, शिरदर्द, नेत्ररोग, नासारोग, उदरकृमि, अरुचि, अग्निमान्द्य, ज्वर आते रहना, प्रतिश्याय, श्वास, कास, शूल, उदरवात, पाण्डु, शोथ आदि अनेक रोगोंका मूल हेतु मलसंग्रह है। इस जीर्ण मल-संग्रहको दूर करनेमें च्यवनप्राशावलेह उत्तम सहायक होता है।

इस अवलेहके साथ स्थानिक विकृति अनुरूप भस्म या रसादि मिला दिया जाय तो लाभ सत्वर और अधिक मिलता है। यकृत् पित्तस्राव कम हो, तो ताम्रभस्म १/२ रत्ती और रससिंदूर १/४ रत्ती। प्लीहा-वृद्धि और रक्तकी न्यूनतामें ताम्रभस्म १/२ रत्ती और लोहभस्म १/४ रत्ती। फुप्फुस की शिथिलतामें अभ्रकभस्म १/४ रत्ती। विविध प्रकारके कीटाणु विकार पर रससिंदूर १/४ रत्ती। अस्थिसंस्थाकी निर्बलतामें प्रवाल-पिष्टी १ रत्ती और गोदंती भस्म १ रत्ती राजयक्ष्मामें शक्ति संरक्षणको सुवर्णभस्म १/१०० रत्ती, अभ्रक भस्म १/२ रत्ती, शृंग भस्म १ रत्ती और प्रवालपिष्टी १ रत्ती। हृदयकी निर्बलता पर अकीक भस्म १ रत्ती। हृदयशूलमें शृंगभस्म। ज्वर पीछे की निर्बलता पर सुवर्णमालिनीवसंत १ रत्ती और प्रवालपिष्टी १ रत्ती। मस्तिष्क की निर्बलता पर ब्रहद् ब्राह्मीवटी। वातसंस्था की निर्बलता पर नवजीवनरस। शुक्र की

उष्णता पर रौप्यभस्म और प्रवालपिष्टी। नाड़ीसंकोच और खिंचाव पर रौप्यभस्म, शतावरी और अमृतासत्व। शुक्रस्थान की शिथिलता पर वङ्ग भस्म। गर्भस्थान और बीजाशय की निर्बलतापर त्रिवंगभस्म। व्रण, भगंदर, विद्रधि आदि पर वङ्गभस्म $\frac{1}{2}$ रत्ती और जसद भस्म $\frac{1}{2}$ रत्ती। पित्तज प्रमेह पर जसदभस्म $\frac{1}{2}$ रत्ती। सुजाकके लीन विष पर रौप्यभस्म और गोक्षुरादि गूगलं।

इस तरह योजना करने पर यह अवलेह अनेक कष्टसाध्य जीर्ण-रोगोको दूर कर स्वास्थ्य और वलकी प्राप्ति कराता है।

अकालमें वृद्धावस्था, मानसवृत्तियोका ह्रास और नपुंसकता आने पर च्यवनप्राशावलेहका कल्प कराना चाहिये। यह कल्प एक वर्ष पर्यन्त चालू रखना चाहिये। रोज सुबह १-१। तोले तक च्यवन-प्राशका सेवन करे। एक घण्टे वाद दुग्ध पान करे। पश्चात् क्षुधा लगने पर भोजन करे। भोजन सत्वर पचन हो तथा प्रकृतिको अपथ्य न हो ऐसा करे। फिर रात्रिको च्यवनप्राशावलेहका सेवन करे और सोनेके आध घण्टे पहले दूध पीते रहे, तो सव विकार निवृत्त होकर वल, वुद्धि, इन्द्रियोंकी शक्ति, अग्नि और आयुकी वृद्धि होती है तथा गई हुई युवावस्थाकी पुनः प्राप्ति होती है और स्त्री समागममें उत्साह आता है।

(७) गोक्षुरादि अवलेह।

बनावट—५ सेर गोखरू जड़-सह उखाड़ थोड़ा कूट २० सेर पानीमें पकावे। पानी चौथा हिस्सा रहने पर उतार मल कर छानले। फिर चूल्हे पर चढ़ाकर उवाले। शेष जल १। सेर रहने पर २॥ सेर मिश्री मिला, मन्दाग्नि पर पाक कर अवलेह सिद्ध करें। नीचे उतारने पर सोंठ, मिर्च, पीपल, नागकेशर, दालचीनी, इलायची, जायफल, अर्जुन वृक्षकी छाल और ककड़ीके वीजका मगज, प्रत्येक, ८-८ तोले और वंशलोचन ३२ तोलेका वारीक चूर्ण मिलादे। (आ० भि०)।

मात्रा—२ से ४ तोले रोज सुवह खाकर ऊपरसे दूध पीवे।

उपयोग—इस अवलेहके सेवनसे मूत्रकृच्छ्र, रक्तप्रमेह, पेशाव की जलन, पेशावमें रक्त, अश्मरी (पथरी) या रेती जाना और धातु-दोष आदि दूर होते हैं। मूत्र रोगके नाशके लिये यह उत्तम औषधि है।

(८) सितोपलादि अवलेह।

बनावट--शुद्ध सिंगरफ, अभ्रकभस्म, शृङ्ग भस्म, गिलोय सत्व,

और लौंग १-१ तोला और सितोपलादि चूर्ण ५ तोले को खरलमें मिलालें। फिर शहद १० तोले मिला कर लेह बनालें। (आ० नि० मा०)

मात्रा—१-१ माशा दिनमें ३ वार चटाकर ऊपर अडूसे का क्वाथ पिलावे। या ५-१० मिनट वाद बकरीका थोड़ा दूध पिलावे।

उपयोग—इस अवलेहके सेवनसे क्षय, खाँसी, उरःक्षत, हृदय-शूल, ज्वर, मन्दाग्नि, निर्बलता आदि रोग दूर होते हैं। क्षयके लिये सरल और लाभदायक ओषधि है। इस अवलेहसे क्षय-कीटाणुओंकी वृद्धिमें प्रतिबन्ध होता है और शक्तिका संरक्षण होता है।

(९) कासकण्डनोवलेह।

बनावट—बकरीका मूत्र ५ सेर लेकर मन्दाग्निसे पकावे। रबड़ी के समान गाढ़ा होने पर नीचे उतार कर छोटी कटेलीके फलोंका चूर्ण और बहेड़ेका चूर्ण ८-८ तोले तथा पीपल और लोह भस्म ४-४ तोले मिलावे। शीतल होने पर समभाग शहद मिलावे। (वृ० यो० त०)

मात्रा—२ से ४ माशे निवाये जलके साथ दिनमें २ वार दें।

उपयोग—यह अवलेह असाध्य कास जिसमें पीला दुर्गन्धमय कफ वार-वार निकलता रहता हो तथा मन्द-मन्द ज्वर, अग्निमान्द्य, अति निर्बलता, छातीमें भारीपन, उत्साहका अभाव और पाण्डुता आदि लक्षण प्रतीत हो, जिन रोगियोंको वैद्योंने रजा देदी हो, तथा जीर्ण कफ कास, पथ्यके अपालनसे कुपित हुई कास, इन सबको सत्वर नष्ट करता है। कफको सरलतासे बाहर निकालता रहता है; तथा नयी उत्पत्तिमें प्रतिबन्ध करता है। क्षयरोगीके लिये भी यह अति हितकारक प्रयोग है।

(१०) वासावलेह।

प्रथम विधि—अडूसेका रस ६४ तोले और शक्कर १२८ तोले मिलाकर पाक करे। फिर पीपल और घी ८-८ तोले मिलाकर मन्द अग्निसे पकावे। चाटने योग्य हो तब उतार लेवें। ठण्डा होने पर ३२ तोले शहद मिला देवे।

मात्रा—१ तोला तक दिनमें २ वार चटाकर दूध पिलावे।

उपयोग—वासावलेह क्षय, दारुण खाँसी, श्वास, पार्श्वशूल, हृदयशूल, उरःक्षत, रक्तपित्त और ज्वरको दूर करता है।

दूसरी विधि—अडूसेके पत्ते ४०० तोले लेकर अठगुने पानीमें उबाले। चतुर्थांश पानी शेष रहे तब उतारकर छान ले। फिर हरड़का

चूर्ण २५६ तोले और शक्कर ४०० तोले मिलाकर मन्दाग्नि पर उबालकर अवलेह तैयार करे। नीचे उतार वंशलोचन १६ तोले, पीपल ८ तोले दालचीनी, तेजपात, इलायची और नागकेशर ४-४ तोलेका चूर्ण मिलावे। फिर ठण्डा होने पर शहद ३२ तोले मिलालें। (यो० र०)

मात्रा—१ से २ तोले दिनमें २ बार चटाकर दूध पिलावें।

उपयोग—यह अवलेह रक्तपित्त, कास, श्वास, क्षय, विद्रधि, उदररोग, गुल्म, तृषारोग, पीनस, हृद्रोग, मलावरोध आदि दोषोंको दूर करता है। बालकोंकी काली खाँसीमें भी अच्छा लाभ पहुँचाता है।

तीसरी विधि—वासा (अडूसे) के पत्तोंका रस (स्वरसयन्त्रसे निकाला हुआ) ६४ तोलेमें १२८ तोले मिश्री मिलाकर शहद समान पाक करें। पश्चात् बहेड़े और हल्दीका चूर्ण ४-४ तोले डालकर अवलेह सिद्ध करें।

मात्रा—६ माशेसे १ तोला दिनमें ३ बार गोदुग्ध अथवा बकरीके दूधके साथ देवे।

उपयोग—यह अवलेह कफ और रक्तयुक्त दारुण कास, रक्तयुक्त कास, कंठके दर्द, उरःक्षत, श्वास, रक्तपित्त, क्षय, तृषा और हृदयावरोधको दूर करता है।

(११) अष्टांगावलेह।

बनावट—कायफल, पुष्करमूल, काकड़ासींगी, धमासा, काला जीरा, सोंठ, मिर्च और पीपल, सब समभाग लेकर चूर्ण करें। फिर समान शहद मिलालें। इसे 'अवलेहिका' भी कहते हैं। (वृन्द)

मात्रा—४ से ६ माशे दिनमें ३ बार चाटकर दूध पीवें। सन्निपातके रोगीको मुँहमें रखकर रस निगलवावे। अधिक कफवृद्धिमें अदरखके रसके साथ दे।

उपयोग—इस अवलेहके सेवनसे कफज्वर रोगीके खाँसी, श्वास, अरुचि, वमन, हिचकी, कफ और वात तथा सन्निपातके रोगीके गलेका रोध, कफ और कास दूर होते हैं, एवं न्यूमोनिया आदि रोगोंमें इसके सेवन से कफ सरलतासे बाहर आ जाता है।

(१२) कुटजावलेह।

प्रथम विधि—कुडे की छाल ४०० तोलेको जौकुट कर १०२४ तोले पानीमें डालकर काढ़ा करे। पानी चतुर्थांश शेष रहे, तब उतारकर कपड़ेसे छान लेवें। इसमें गुड़ १२० तोले डालकर फिर औटावे।

गाढ़ा होनेपर रसोत, सोचरस, सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, लजालू, चीतेकी छाल, पाढ़, कच्चा बेलफल, इन्द्रजौ, बच, भिलावा, अतीस, वायविड़ङ्ग, नेत्राबाला, इन १८ औषधियोंके ४-४ तोले का चूर्ण मिलावें और घी १६ तोले डाले। अवलेह ठण्डा होनेपर शहद १६ तोले मिलावे। (शा० सं०)

मात्रा—१ से २ तोले दिनमें २ बार बकरीके दूध, मट्ठा, दही अथवा घीके साथ देवे।

उपयोग—यह अवलेह बवासीर, अतिसार, अरुचि, संग्रहणी, पाण्डुरोग, रक्तपित्त, कामला, अम्लपित्त, सूजन, कृशता और पेचिश आदि रोगोंको दूर करता है। भगन्दरमें हितकर है। नलाश्रित वायु और गुदपाकको भी शमन करता है।

दूसरी विधि—कुड़ेकी छालको १६ गुने जलमें उबाल कर ८वां हिस्सा जल शेष रहने पर हांडीको उतार क्वाथको वस्त्रसे छान ले। फिर पानीको कढ़ाहीमें डाल पुनः चूल्हेपर चढ़ाकर गाढ़ा करे। पश्चात् कुड़ेकी छालका चौथा हिस्सा गुड़ और ८वाँ हिस्सा अतीसका चूर्ण मिलाकर अवलेह बना लेवें। (च० द०)

मात्रा—आधा-आधा तोला दिनमें ३ बार चटावे।

उपयोग—इस अवलेहके सेवनसे सब प्रकारके अतिसार (आम-अतिसार, त्रिदोषज अतिसार, रक्तातिसार, ज्वरातिसार), अरुचि, संग्रहणी, पेचिश, अम्लपित्त आदि रोग शमन होते हैं।

(१३) गुलाब का गुलकन्द।

बनावट—मौसमी गुलाबके ताजे फूलोंकी डीटें निकाल पंखड़ियोंको अलग-अलग करके उनके १६ गुनी पिसी हुई मिश्री मिलावे। कलई अथवा काँचके तसलेमें थोड़ी पंखड़िये और थोड़ी मिश्रीको हाथसे मसलकर अमृतवानमें डालते जायँ। प्रथम अमृतबानके नीचे थोड़ी मिश्री की तह बिछावें; उसपर पंखड़ियोंकी मिश्री मिली तह लगावें। फिर केवल मिश्री, ऊपर पंखड़ियाँ और मिश्री मिली हुई तह रक्खे। इसी रीतिसे तहोंको लगा सबके ऊपर मिश्रीकी तह डालें। फिर अमृतवानका मुँह बन्दकर कपड़मिट्टी करके रख दे। एक मास बाद गुलकन्द तैयार हो जाता है।

सूचना—डीट या पखड़ियोंके भीतर रही हुई केसर मिल न जाय, इस बातको सम्हालें। अन्यथा गुलकंद कसैला या कुछ कड़वा स्वादवाला हो जायगा।

मात्रा—आवश्यकता होने पर १ से २॥ तोले तक लेवें ।

उपयोग—गुलकन्द दाह, पित्तदोष और कब्जको दूर करता है, तथा मस्तिष्क को शान्ति पहुँचाता है। इससे स्त्रियोंके गर्भाशयकी गरमी शमन होकर अत्यार्त्तव (मासिकधर्म में ज्यादा रक्त जाना) रोग शान्त होता है ।

(१४) कूष्मांडावलेह ।

प्रथम विधि—पेठेका स्वरस ४०० तोले, गायका दूध ४०० तोले और आँवलोंका चूर्ण ३२ तोलेको एकत्र मिलाकर धीरे-धीरे मन्दाग्निसे पकावें। पिण्ड बँधने लगे तब ३२० तोले बूरा मिलाकर अवलेह बना लेवे । (आ० भि०)

मात्रा—२-२ तोले रोज दो बार दूध के साथ देवें।

उपयोग—यह अवलेह रक्तपित्त, अम्लपित्त, दाह, तृषा और कामला रोगको नष्ट करता है, मगज शान्त बनाता है; तथा आमाशय रसकी उग्रता को दमन कर अग्निको प्रदीप्त करता है।

दूसरी विधि—पक्के पेठे को बारीक कसकर जल निचोड़ लेवें। फिर कसे हुए पेठेको सुखा, ताँबेके पात्रमें डाल घीमें भूनकर लाल बना लेवें। पश्चात् पेठेके सूखे चूर्णके परिमाणमें बादामके मगजको जल में भिगो, ऊपरसे पतले छिलके निकाल, पीसकर घीमें भून लें। एवं पेठेके समान खोवाको घी में अलग भून ले। तत्पश्चात् जायफल, लौंग, जावित्री, छोटी इलायची के दाने, वंशलोचन, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर और कमलगट्टे का मगज (भीतरसे हरी पत्ती निकाले हुए) १ सेर पेठेमें २-२ तोलेके हिसाबसे ले बारीक चूर्ण कर पेठा, बादाम, खोवा और चूर्ण सबको मिला लें। फिर इन सबके वजनसे दुगुनी शक्कर की चाशनी और १ तोला केशर मिला अवलेह बना लेवे। (आ० भि०)

मात्रा—१ से २ तोले दिनमें २ बार गोदुग्धके साथ लेवे।

उपयोग—यह अवलेह अम्लपित्त, दाह, तृषा, भ्रम, शोष, धातुक्षय और कामला आदि रोगको नष्ट करता है, तथा अग्निको प्रदीप्त करके शरीरको पुष्ट बनाता है।

(१५) मधुकाद्यवलेह ।

प्रथम विधि—मुलहठी, रक्तचन्दन, रसौत, पीपलकी लाख, लाल कमलके पुष्प, कुशाकी जड़, वीरण (खस) की जड़, खरैंटी की जड़, वासे (अडूसे) की जड़, बेरकी गुठलीकी मींगी, मोथा, मोचरस,

बेलगिरी, दारुहल्दी, धायके फूल, अशोककी छाल, मुनक्का, जपाकुसुम (गुड़हर) की कली, कमलके पत्ते, आमकी कोपल, जामुनकी कोपल, शतावर, विदारीकंद, रौप्य भस्म, लोह भस्म और अभ्रक भस्म, ये २६ चीजे २-२ तोले लें। मिश्री १०४ तोले, शतावरका स्वरस ६४ तोले और शहद ८ तोले ले। प्रथम मुलहठीसे लेकर विदारीकंद तक सब औषधियोंको अलग-अलग कूटकर कपडेमें छान ले। तीनों भस्में खरल कर मिला ले। फिर शतावरके स्वरस को कढ़ाही में डालकर पकावे। उसमें मिश्री मिलाकर चाशनी करे। फिर भस्ममिश्रित चूर्ण मिलाले। शीतल होने पर शहद मिलाकर काँचके बरतनमें रखदें। (आयुर्वेद संग्रह)

मात्रा—६-६ माशे दिनमें २ वार खिलाकर अशोकारिष्ट पिलावें।

उपयोग—यह अवलेह सब प्रकारके घोर प्रदर, वेदनायुक्त कुक्षि-शूल, दुःसहबस्तिशूल और योनिशूल आदि रोगों को दूर करता है। स्त्रियोंके लिये यह अमृत के सदृश हितकारी है। जीर्ण रक्तपित्त, रक्तातिसार, रक्तार्श सब प्रकारके मूत्ररोग, दाह, वमन, भ्रम (चक्कर आना) आदि इस अवलेह के सेवन से दूर हो जाते हैं।

दूसरी विधि—मुलहठी, पीपल, मुनक्का, लाख, काकड़ासींगी और शतावर १-१ तोला, वंशलोचन २ तोले और मिश्री ३२ तोले मिलाकर बारीक चूर्ण करे। बादमें १६ तोले घृत मिलावें। पश्चात् चाटने लायक हो जाय उतना शहद मिला ले। (वृन्द)

मात्रा—१-१ तोला दिनमें ३ वार चाटे।

उपयोग—यह अवलेह उरःक्षत, कास, दाह और रक्तपित्त का शमन करता है।

(१६) द्राक्षावलेह।

बनावट—१ सेर मुनक्काको जलमें १ घंटा भिगो मसलकर धो ले। फिर दूध मिला चटनीकी तरह पीसकर कल्क तैयार करे। पश्चात् २० तोले गोघृतमें मन्दाग्नि पर भूने। बादमें २ सेर शक्करकी चाशनी करके मुनक्का मिला देवें। साथमें जायफल, जावित्री, छोटी इलायची, वंशलोचन, लौंग, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, छिलके तथा जीभी निकाली हुई कमलगट्टे की गिरी १।-१। तोलेका बारीक चूर्ण और केशर ३ माशे मिलावें। (वै० सा० सं०)

मात्रा—१ से २ तोले दिनमें २ वार दूध के साथ देवें।

उपयोग—यह अवलेह अम्लपित्त, रक्तपित्त, दाह, पाण्डु,

कामला, क्षय, भ्रम, शोथ, शिरदर्द, बद्धकोष्ठ, अतिसार, अरुचि, मंदाग्नि और रक्तार्शमें जलन इत्यादिको दूर करता है।

(१७) आर्द्रकावलेह।

बनावट—बारीक कतरे हुए अदरखके टुकड़े १ सेर, गुड़ पुराना १ सेर और घृत ४० तोले ले। पहले अदरख के टुकड़ोको घीमें लाल भूने। पश्चात् गुडका थोड़े जलमें पाक करें। फिर अदरखके टुकडोंको मिला ले। और दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर, सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड, बहेडा, आँवला, लौंग, बहेड़ा (दूसरी बार), भारंगमूल, अडूसेके पत्ते, चिरायता, पुष्करमूल, देवदारु, असगन्ध, जायफल, जावित्री, अगर, कत्था, मुनक्का, ये २३ ओषधियां १-१ तोला और लोहभस्म २ तोले मिलाकर अवलेह सिद्ध करें। (आ० भि०)

यह प्रयोग मुक्तावली (उपाध्याय माधव) का है। मूलग्रन्थमें अद्रक ६४ तोले में घी १६ तोले, २३ ओषधिया ४-४ तोले और लोहभस्म ८ तोले लिखी है। आर्यभिषक् कारने समयानुसार प्रक्षेप ओषधिकी मात्रा कम की है।

मात्रा—१-१ तोला दिनमें २ बार देवें।

उपयोग—यह अवलेह कफयुक्त कास, श्वास, धातुक्षय, शोष, कफप्रकोप, मन्दाग्नि, उदररोग, आमवृद्धि, हृदयरोग, रक्तदोष और ११ प्रकारके क्षयका नाश करके अग्निको प्रदीप्त करता है, तथा कांति, बल और शुक्रकी वृद्धि करके शरीरको पुष्ट बनाता है।

(१८) एरंड पाक।

बनावट—१ सेर अरंडीके अंतर्जिह्वा निकाले हुए मगजको पीस ४ सेर गोदुग्धमें मिलाकर मावा करें। पश्चात् ४० तोले घृत मिलाकर भूनें। फिर २॥ सेर शक्करकी चाशनी कर खोवेको मिलादे, और सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, इलायची, पीपलामूल, चित्रकमूल, चव्य, गिलोय सत्व, शठी, अजवायन, अजमोद, हल्दी, दारुहल्दी, असगन्ध, खरेंटीके बीज, पाठा, हाऊबेर, वायविडङ्ग, गोखरू, कुड़ेकी छाल, देवदारु, वृद्धदारु, विदारीकंद, सब १-१ तोले का कपड़छान चूर्ण मिलाकर लड्डू बनाले। (आ० भि०)

मात्रा—४ से ८ तोले सुबह खाकर ऊपरसे दूध पीवे।

उपयोग—यह पाक वातव्याधि, शूल, शोथ, अंडवृद्धि, उदररोग, बद्धकोष्ट, आफरा, गुल्म, आमवात, कटिग्रह, हिक्का, श्वास,

कास, पक्षाघात, पांगुल्य, अर्दित और वातरोग, अश्मरी और अर्श रोग आदिको दूर कर बल, वीर्य और कान्तिकी वृद्धि कराता है; तथा अग्निको प्रदीप्त कराता है।

(१६) बादाम पाक ।

प्रथम विधि—बादामका मगज ४० तोले, खोवा २० तोले, बिहदाना ४॥ तोले; लौंग, जायफल, जावित्री, केशर, वंशलोचन, ये सब ६-६ माशे; कमलगट्टे, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर १-१ तोले, अभ्रक भस्म, वंग भस्म, सुवर्णमाक्षिक भस्म, प्रत्येक ६-६ माशे और प्रवालपिष्टी ३ माशे ले। पहले बादामके कल्कको ३० तोले घी में भूनें। फिर मावाको १० तोले घीमें भूनकर मिला लेवें । पश्चात् २॥ सेर शक्करकी चाशनी कर उसमें केशर और पाक मिलावें । फिर काष्ठादि ओषधियोंका कपड़छान चूर्ण और उसमें भस्में मिलाकर ४-४ तोले के लड्डू बाँधे । (वै० सा० सं०)

मात्रा और उपभोग—दूसरी विधिके साथ लिखा है ।

दूसरी विधि—बादामके मगज १ सेर जलमें भिगो छिलका निकालकर कल्क करें। पश्चात् ४ गुने गोदुग्धमें मिलाकर मावा करें। फिर १ सेर घी मिलाकर भूनें। पश्चात् ४ सेर मिश्रीकी चाशनी कर २ तोला केशर और मावाको मिला दें, तथा जावित्री, जायफल, सोंठ, मिर्च, पीपल, लौंग, दालचीनी, तेजपात, इलायची, विदारीकन्द, सब को १-१ तोला ले कूट कपड़छान चूर्ण करके मिलादें । एवं रससिंदूर अभ्रक भस्म, लोहभस्म और वंगभस्म १-१ तोला मिलावें।

मात्रा—२ से ४ तोले खाकर ऊपर २० तोले गोदुग्ध पीवें।

उपयोग—बादाम पाक मस्तिष्क और हृदयको लाभदायक है। मानसिक श्रम और वृद्धावस्थाकी निर्बलता, वातवृद्धि और शुक्रक्षय आदिको दूर करके अग्निको प्रदीप्त करता है। बल, वीर्य, स्मृति, आयु और कान्तिको बढ़ाता है ।

(२०) सालब पाक ।

बनावट—पंजासालब ४० तोले, पिस्ता २० तोले, बादाम २० तोले, चिरौंजी ६ तोले, अखरोट १ तोला, सफेद मूसली ६ तोले, गोखरू ४ तोले, असगंध, तालमखाना, शतावर, रूमीमस्तङ्गी, कौंच बीज २-२ तोले, केशर, जायफल, जावित्री, लौंग, शीतल मिर्च, वंशलोचन, दालचीनी और बिहदाना १-१ तोले, मिश्री १२८ तोले,

और घी ४० तोले लें। पहले सालबके बारीक चूर्णको २० तोले घी में भून ले। पश्चात् पिस्ता, बादाम, चिरौंजी और अखरोट के कल्क को २० तोले घी में भूने। फिर मिश्री की चाशनी कर केशर, सालब-मिश्रित भुने हुए चूर्णको मिलावें। अन्तमें शेष ओषधियोंका कपड़छान चूर्ण मिलाकर ४-४ तोलेके लड्डू बांधे।

मात्रा—१ से २ लड्डू खाकर ऊपर २० तोले दूध पीवे।

उपयोग—यह पाक अत्यन्त वीर्यवर्द्धक और पौष्टिक है। अंड-कोषकी नसोंके दोषसे वीर्यके पतलापन, नपुंसकता, शारीरिक निर्बलता, मस्तिष्ककी निर्बलता, अधिक निद्रा, आलस्य और मन्दाग्नि आदि सब दोषों को दूर करता है।

क्षीण शुक्रवालों के लिये यदि भस्म मिलाना हो, तो रससिन्दूर १ तोला, सुवर्ण भस्म १ तोला, अभ्रक भस्म २ तोले और वङ्गभस्म २ तोले मिला लेने से पाक विशेष लाभदायक बनता है। भस्म मिलाने पर पाक की मात्रा कम लेनी चाहिये। शीतकालमें सेवन करने से विशेष लाभ पहुँचाता है।

(२१) मदनमोदक।

बनावट—सुवर्ण सिन्दूर (पूर्णचन्द्रोदय रस अथवा षड्गुण-जारित रससिंदूर), लोहभस्म, अभ्रक भस्म, वंग भस्म, जलवेत के बीज, चोपचीनी, सेमलका कंद, धामनकी छाल, केशर, जीरा, जायफल, लौंग, समुद्रशोष, सोंठ, मिर्च, पीपल और वंशलोचन, ये १७ ओषधियाँ ६-६ माशे तथा जावित्री, शतावरी, मुनक्का, खरैटीकी जड़, काकड़ासींगी, छोटी इलायचीके बीज, कौंचके बीज, मीठा कूठ, नागरमोथा, विदारीकंद, पेठा, नागकेशर, जटामांसी, शुद्ध कपूर, शीतलचीनी और गोखरू, ये १६ ओषधियाँ २-२ तोले लें। सबसे आधी (२०। तोले) भुनी भाँग और सबसे दूनी (१२१॥ तोले) मिश्री लें। मिश्रीकी चाशनी लेकर क्रमशः सब ओषधियोंके कपड़छान चूर्णको मिला ३-३ माशे की गोलियाँ बनालें। (र० यो० सा०)

मात्रा—१ से २ गोली सुबह शाम मिश्री मिले निवाये दूध के साथ सेवन करें। मात्रा धीरे-धीरे बढ़ावें।

उपयोग—इस मोदक सेवन से नष्टेन्द्रिय, नष्ट शुक्र और वलीपलित व्याप्त जर्जरित वृद्ध भी युवाके समान हर्षयुक्त होकर मदोन्मत्त स्त्रियोंके प्रीति-पात्र बन जाते है, और ग्रहणी, श्वास, कास,

अर्श, प्रमेह, मधुमेह, सब रोग दूर होकर शरीर हृष्ट-पुष्ट और तेजस्वी बन जाता है। यह मोदक परम रसायन है।

(२२) भल्लातक पाक।

बनावट—पके अच्छे भिलावे (जो जलमें डालनेसे डूब जायँ) १२८ तोले लेकर २-२ टुकडे करें। फिर १०२४ तोले दूधमें मिलाकर मंदाग्निसे पचन करें। खोवा बन जाने पर भिलावे को निकाल डालें। पश्चात् खोवेमें १२८ तोले घृत मिलाकर पकावें। बादमें उनके साथ शक्कर २५६ तोले की चाशनी तथा त्रिफला १२ तोले, नागरमोथा, मजीठ, धनिया, जीरा, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, छोटी इलायची के दाने, हाऊबेर, मुलहठी, तेजपात, लौंग, नागकेशर, जायफल शीतलमिर्च विदारीकन्द कमल, वंशलोचन, लोह भस्म ताम्रभस्म, भीमसेनी कपूर और कत्था इन २२ औषधियों के १॥-१॥ तोले चूर्णको मिलाकर पाक बनालें। (र० यो० सा०)

इस पाक में भिलावे जो निकाल दिये हैं, उनको भी चटनी की तरह पीस घी में भूनकर पाक बनालें, तो वह भी अच्छा काम देता है।

मात्रा—१ से २ तोले दिनमें दो बार सेवन करें।

उपयोग—इस पाकके सेवनसे रक्तपित्त, कुष्ठ, दाद, पामा, विचर्चिका, वातरक्त, शून्यवात, वंशपरम्पराप्राप्त व्याधियों और सब प्रकार के वातरोग नष्ट होते हैं। गलत्कुष्ठमें भी इस पाकके सेवनसे रोगका बढ़ना रुक जाता है। पक्षाघातमें अच्छा लाभ पहुंचाता है।

सूचना—यह पाक पित्तप्रधान प्रकृतिवालेको नहीं देना चाहिये।

इस पाक के सेवनकाल में गरम-गरम भोजन, अधिक गरम जलसे स्नान, सूर्यके ताप में भ्रमण और अग्निसेवन निषिद्ध है।

इस पाक के सेवनसे कदाच खुजली हो जाय, तो पाक बन्द करें, और नारियलके तैलकी मालिश करें, तथा भोजनमें बादाम, पिस्ता, काजू, नारियल की गिरी, चिरोंजी आदि तैलीफलों का सेवन करें।

भिलावों के टुकडे करते समय हाथों को भिलावेका तैल न लगने दें। कदाच लग जाय, तो तुरन्त घी या तेल लगा लेना चाहिये।

(२३) विजयापुष्पाद्यलेह।

बनावट—शुद्ध गांजा १४ तोले, जायफल, जावित्री, लौंग, दालचीनी, इलायचीके दाने, अकलकरा और केशर २-२ तोले तथा बादाम की गिरी ४ तोले लें। सबको मिला कूटकर कपड़छान चूर्ण करें। फिर १ सेर मिश्रीकी अवलेह लायक चाशनी कर चूर्ण मिलावें तथा कस्तूरी और अम्बर ६-६ माशे डालें।

गाँजे की शुद्धि—गाँजा में से शाखा और बीजोंको निकालकर केवल दलपत्र ले। उसे जलमें १ घण्टे भिगो देवे। फिर मलकर जल निकाल डाले। फिर बार-बार जल डाल-डाल कर धोवे। जबतक हरा जल निकले तब तक धोवे। पश्चात् छायामें सुखा देवे।

मात्रा—१ से ३ माशे प्रातःकाल या रात्रिको चाटकर ऊपर मिश्री मिला दूध पीवे।

उपयोग—इस अवलेहके सेवनसे थोड़े ही दिनों में नपुंसकता, शीघ्रपतन, शारीरिक निर्बलता और निद्रानाश आदि दूर होकर शारीरिक उत्साह की वृद्धि होती है, मन प्रफुल्लित बनता है; पचनक्रिया सबल बनती है तथा शरीर पुष्ट होता है।

यदि केवल शुद्ध गाँजा के साथ समभाग गुड़ मिला मटर के समान गोली बनाकर हिक्का रोगीको दी जाय तो तत्काल हिक्का शान्त हो जाती है। आवश्यकता पर आध या एक घण्टे पर दूसरी बार गोली दीजाती है। इस गोली से कुछ नशा आता है।

(२४) दिवालमुश्क।

प्रथम विधि—नरकचूर, दरूनज अकरबी, मोतीपिष्टी, कहरवा, प्रवालपिष्टी प्रत्येक ३५-३५ माशे, आब रेशम, बहमन सफेद, बहमनलाल, जटामांसी, इलायची १७।।-१७।। माशे, पत्थरफूल (छरीला) पीपल और सोंठ १४-१४ माशे तथा कस्तूरी ७ माशे ले। सबको कपड़छान करके मिलाले। पश्चात् चाटने योग्य तैयार होसके उतना शहद मिलाकर माजून बनाले।

आब रेशम को कैंचीसे कतर कृमिको निकाल देनेके पश्चात् प्रयोगमें मिलाना चाहिये।

मात्रा—१ से ३ माशे दिनमें २ बार चाटकर दूध पीवे।

उपयोग—दिवालमुश्क मस्तिष्क के लिये शामक है। मस्तिष्ककी निर्बलता, उष्णता, उन्माद और हृदयकी कमजोरीको दूर करता है। सन्निपातमें मस्तिष्कको शान्त बनाने के लिये यह दिया जाता है।

दूसरी विधि—नरकचूर ७ माशे, दरूनज अकरबी ७ माशे, मोती पिष्टी, कहरवा, प्रवालपिष्टी, आब रेशम प्रत्येक ५।-५। माशे, बहमन लाल, बहमन सफेद, तेजपात, छोटी इलायची, लोंग, जुंदेबेदस्तर, पत्थरफूल २-२ माशे, सोंठ १ माशा, पीपल १ माशा और कस्तूरी ६ रत्ती लें। सबको खरल कर बारीक चूर्ण करके मिलालें। फिर चाटने

योग्य शहद मिलाकर माजून बनालें। (ति० अ०)

मात्रा—१ से ३ माशे दिनमें २ बार दूधके साथ देवें।

उपयोग—दिवालमुश्क हृद्रोग, धातुनिर्बलता, फेफड़ोका दोष, मस्तिष्ककी कमजोरी आदिको दूर करता है। सन्निपात और श्वासके तीक्ष्ण वेगको दूर करनेमें अति उपयोगी है। सन्निपात और अन्य बड़े रोगोंमें मगजको शान्त रखता है, तथा हृदयका रक्षण करता है।

(२५) माजून हजरुलयहूद।

बनावट—कद्दू, ककड़ी, खीरे और खरबूजेके बीजों का मगज और काकनुज ५-५ माशे और हजरुलयहूद ५० माशे ले। सबको कूट कपड़छान कर खरलमें बारीक करे। फिर चाटने लायक शहद मिलाकर माजून बनाले (ति० अ०)

मात्रा—१ से २ माशे सुबह जलके अथवा गोखरूके क्वाथ या चनेके क्वाथके साथ दे।

उपयोग—यह माजून मूत्राशयकी शर्करा (कंकड़ी) को निकालनेमें उपयोगी है। अश्मरीको तोड़-तोड़ कर निकाल देती है।

(२६) माजून फलासफा।

बनावट—सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, दालचीनी, आँवला, बहेड़ा, चित्रकमूलकी छाल, फरावंद मदहर्ज, पंजा सालब, मगज चिलगोजा, बेखबाबूना (बाबूनाका मूल) और जटामांसी, ये १२ ओषधियाँ ६-६ माशे, बाबूनाके बीज १५ माशे, मुनक्का बीज निकाली हुई ३ तोले ले। मुनक्काके अतिरिक्त अन्य ओषधियोंका कपड़छान चूर्ण करे। चूर्णसे दूना शहद और मुनक्काका कल्क मिलाकर बोतलमें भरले। (घ० वै०)

मात्रा—६ माशे से २ तोले दिनमें २ बार अर्क मकोय या अर्क सौंफके साथ दें।

उपयोग—यह माजून अग्नि को प्रदीप्त करती है, वीर्य वृद्धि करती है, एवं स्मरण-शक्ति को बढ़ाती है। ज्यादा मूत्र होता हो, उसे कम करती है। कमर की पीड़ा, कफवृद्धि, वृक्क स्थानका शूल, और संधिवातको दूर करती है। बहुमूत्र, मूत्रातिसार, सोमरोग और मधुमेहमें अत्यंत हितकर है।

(२७) माजून चोपचीनी।

बनावट—चोपचीनी २० तोले, असगन्ध १० तोले और मीठी सुरंजान ५ तोले लेकर बारीक चूर्ण करें। बादमें ४ सेर शक्करकी अव-

लेहके समान चाशनी बना चूर्ण मिलाकर माजून बनाले ।

मात्रा—१ से २ तोले दिनमें २ बार दूधके साथ दें ।

उपयोग—इस माजूनके सेवनसे उपदंश और सुजाकसे होने वाला रक्तविकार, संधिवात और कुष्ट आदि रोग दूर होते हैं ।

(२८) माजून उशवा ।

बनावट—सौंफ, चन्दन, गिलोय, अमरबेल, हरड़, बहेड़ा, बड़ी हरड़, जवा हरड़ पित्तपापड़ा और कस्तूरी १-१ तोला, सनाय ४ तोले, उशवा मगरबी १२ तोले, चोपचीनी ८ तोले और मिश्री १०० तोले लें । काष्ठादि ओषधियोंका कपड़छान चूर्ण करे । फिर चूर्ण और कस्तूरीको मिश्रीकी चाशनीमें मिलाकर माजून बनालें । (ध० वै०)

मात्रा—१-१ तोला दिनमें २ बार गोदुग्धके साथ देवें ।

उपयोग—यह माजून उपदंश, विस्फोटक और सुजाकके उपद्रव और रक्तविकारको दूर करती है ।

(२९) माजून कचूर ।

बनावट—कचूर, दरूनज, जायफल, लौंग, अकाकिया, अजवायन, अजमोद और सोंठ, १-१ तोला, सिरके में भिगोया हुआ जीरा २॥ तोले और जुंदेबेदस्तर ३ माशे लें । पहले जुंदेबेदस्तर को १ तोले शहदमें मिला लें, पश्चात् शेष ओषधियोंका कपड़छान चूर्ण और ९ तोले शहद मिलाकर माजून बना लेवे । (ति अ०)

मात्रा—२ से ३ माशे निवाये जल या अशोकारिष्टके साथ दें ।

उपयोग—यह माजून गर्भाशयमें उत्पन्न वायु, मासिकधर्ममें रक्त की गाँठ, और काले रंगका रक्त शूल और आवाजसहित गिरना, मर और शिरमें दर्द रहना आदिको दूर करती है ।

(३०) खमीरे गावजबाँ ।

प्रथम विधि—गावजबाँ १० तोले, बादरंजबोया ५ तोले, जटामाँसी १ तोला, गुलाबके फूल १ तोला, सफेद चन्दनका चूर्ण १ तोला, जल ५४ तोले और गुलाबजल ३६ तोले ले । सब ओषधियोंको कूट कपड़छान कर गुलाबजलमें रात्रिको भिगो दे । सुबह जल मिलाकर उबालें । चतुर्थांश जल शेष रहनेपर उतारकर छानलें । फिर १०८ तोले शक्कर मिलाकर मन्दाग्नि पर पुनः पकावे । खमीरा गुलकन्द जैसा होने पर नीचे उतार १ तोला केशर मिलाले । (ध० वै०)

सूचना—इस क्वाथको अधिक दबाकर नहीं निचोड़ना चाहिये । कपड़े

में वाध दे। जितना जल टपककर निकल आवे उतनेको ही प्रयोगमें लावे।

मात्रा—१ से २ तोले रोज सुबह दूधके साथ लेवें।

उपयोग—खमीरे गावजवाँ हृदय और मस्तकको पुष्ट बनाता है। उन्माद, मूर्च्छा और अपस्मारमें लाभदायक है। बद्धकोष्ठको दूर करता है।

दूसरी विधि—गावजवाँ २० तोले, गुले गावजवाँ, धनिया, वादरंजवोया, पेक्षामुश्क, तुख्म वालुंगा, आवरेशम कतरा हुआ, ये ६ ओषधियाँ ४-४ तोले ले। रात्रिको ४ सेर जलमें भिगोकर सुवह क्वाथ करे। चतुर्थांश जल शेष रहनेपर नीचे उतारें। शीतल होनेपर जलको छान ४ सेर शक्कर मिलाकर चाशनी करें। पश्चात् वंशलोचन २ तोले, छोटी इलायची २ तोले, बहमन लाल ८ तोले, बहमन सफेद ८ तोले, केशर १ तोला और चाँदीके वर्क १ तोला मिलाकर खमीरा बना लेवें।

मात्रा—१-१ तोला सुवह-शाम लेवे।

उपयोग—यह खमीरा हृदय और मगजको पुष्ट तथा वातवाहिनियोंको दृढ़ बनाता है। स्मरणशक्ति बढ़ाता है। अग्निको प्रदीप्त करता है, तथा उदरशुद्धिमें सहायता पहुँचाता है।

(३१) खमीरे गावजवाँ अम्बरी।

बनावट—गावजवाँ ३ तोले, गावजवाँके फूल, कतरा हुआ आबरेशम, धनिया, सफेद चन्दन, बहमन सफेद, बहमन लाल, वादरंजवोया, उस्तेखद्दूस, तुख्म वालुंगा तुख्म फरञ्ज मुश्क, तोदरी लाल, तोदरी सफेद, जदवार और अगर, ये १४ ओषधियाँ १-१ तोला ले। अम्बर १॥ माशे, चाँदीके वर्क ६ माशे, मिश्री १ सेर और शहद २० तोले लेकर यथाविधि खमीरा बनाले। (चा० चि०)

सूचना—गावजवाँ आदिका क्वाथ किया जाता है। रात्रिको १ सेर गुलाव जल मे भिगोदे। सुबह मदाग्निपर उबालकर तीसरा हिस्सा शेष रखे। उनको अधिक निचोड़ना नहीं चाहिये। कपड़ेमें बाँध देनेसे जितना जल टपककर निकल आवे उतनेको ही लिया जाता है।

मात्रा—५-५ माशे दिनमें २ वार दूधके साथ दें।

उपयोग—यह खमीरा हृदय और मगजको पुष्ट बनाता है, तथा नेत्रज्योति और स्मरणशक्तिकी वृद्धि करता है। प्रतिश्यायमें हितावह है।

इस खमीरेमें सुवर्णके वर्क ६ माशे, मोती, माणिक्य, पन्ना, पुखराज और कहरवा पिष्टी ३-३ माशे मिला लेनेसे "खमीरे गावजवाँ अम्बरी जवाहर वाला" तैयार होजाता है।

(३२) खमीरे सन्दल।

बनावट—सफेद चन्दनके १० तोले चूर्णको ४० तोले गुलाबजल में शिला पर पीस कर २४ घण्टे भिगो देवे। फिर मन्दाग्नि पर पकावे। चतुर्थांश शेष रहनेपर शक्कर ६० तोले मिलाकर पुनः पकावे। गुलकन्द जैसा खमीरा बने तब उतारलें।

मात्रा—१ से २ तोले सुबह-शाम लेकर ऊपर दूध पीवें।

उपयोग—यह खमीरा मस्तिष्क के लिये शामक और मूत्रसंशोधक है; मूत्रमें दाह, सारे शरीरमें दाह, घबराहट, तृषा आदिको नष्ट करता है। मस्तिष्ककी उष्णता, पित्तविकार, नेत्रोंकी जलनको दूर करता है। सुजाक रोगीके लिये हितकर है।

(३३) इत्रीफल कश्नीजी।

बनावट—चार जातिकी हरड़ (बडी हरड़, काबुली हरड़, सादी हरड़ और जवा हरड़) ४ तोले चारों मिला कूट छानकर चूर्ण बनावे। फिर २ तोले बादामके तेलका मोण देकर १ तोले धनियेका बारीक चूर्ण मिलावें। बादमें २० तोले शहद मिला चीनी मिट्टीके बरतनमें भरकर जौंकी कोठीमें ३ मास दबादें।

मात्रा—६ माशेसे १ तोले दिनमें २ बार दूधके साथ लें।

(घ० वै०)

उपयोग—यह औषध नेत्र रोगियोंके लिये हितकारक है। इससे नेत्रोंकी जलन, शिरदर्द, कब्ज, रक्तविकार, आदि रोग दूर होते हैं। बवासीरमें लाभदायक है। मोतियाबिन्दुके रोगीको देते रहनेसे रोगको बढ़ने नहीं देता।

(३४) इत्रीफल मुलय्यन।

बनावट—काबुली हरड़, पीली हरड़, काली हरड़, आँवले, बहेड़ा १-१ छटाक; गुलाबके फूल, सनाय, तुरबुदकी छाल और सोंठ २०-२० माशे लें। सबको कूट बारीक चूर्ण कर बादामके तेलमें भून लें। बादमें ३ गुने शहदमें मिलाकर अवलेहके समान बना लेवें।

मात्रा—३ से ६ माशे दिनमें २ बार लें।

उपयोग—इस अवलेहके सेवनसे मस्तिष्कमें उष्णता, चक्कर आना, नेत्रोंकी कमजोरी, मोतियाबिन्दुकी वृद्धि, कफवृद्धि, कानमें शब्द होना, बहरापन, तन्द्रा, मलावरोध, दाह आदि दूर होते हैं।

(३५) सारिवादि शारकर।

बनावट—श्वेतसारिवा, मुलहठी, सनाय, श्वेतमूसली, असगन्ध,

उशवा और हरड़, ७ ओषधियें १०-१० तोले, जवासा ५ तोले, लौंग, गोरखमुण्डी, उन्नाव, सौंफ, श्वेतचन्दन, रक्तचन्दन, गुलाबका फूल, छोटी इलायची, मजीठ और दालचीनी, १० ओषधियें २॥-२॥ तोले ले। सबको जौकुट कर १६ गुने जलमें उबालकर क्वाथ करें। चतुर्थांश शेष रहने पर उतार-छानकर ५ सेर शक्कर मिलाकर शर्बत जैसी चाशनी बनाले। (श्री० प० लक्ष्मीनारायणजी वैद्यभूषण)

मात्रा—१। से २॥ तोले दिनमें २ बार जलके साथ दें।

उपयोग—इस शर्बतके सेवनसे उपदंश, सुजाक अथवा अन्य कारणोंसे बिगड़ा हुआ रक्त थोड़े ही दिनोंमें शुद्ध होजाता है।

(३६) लऊक सपिस्तॉ।

प्रथम विधि—लिहसोड़े २॥ सेर, मुनक्का १। सेर और अमलतास का गूदा ६० तोले मिलाकर १६ गुने जलमें क्वाथ बनावे। चतुर्थांश जल शेष रहने पर उतार मल छानकर ८ सेर शक्कर मिला, अवलेह जैसी चाशनी बनाले। (श्री० प० लक्ष्मीनारायणजी वैद्यभूषण)

मात्रा—१। से २॥ तोले दिनमें २ बार चटावें।

उपयोग—इस चाटणसे श्वासनलिकामें रहा हुआ कफ बिना तकलीफ बाहर आजाता है। फेफड़ोंकी उष्णता दूर होकर सूखी खाँसी दूर होती है, तथा फेफड़े बलवान बनते हैं

दूसरी विधि—लिहसोड़े ५०, उन्नाव २०, मुलहठी १ तोला, तुख्म खतमी १ तोला, पोस्तके छिलके २ तोले और बिहीदाना ६ माशे ले। सबको २ सेर जलमें मिलाकर क्वाथ करे। चतुर्थांश जल शेष रहने पर मलकर छान ले। फिर क्वाथमें ४० तोले शक्कर मिलाकर पकावे, और बादामकी गिरी ६ तोले, पोस्तदाना १ तोला, जवाखार १ तोला, कतीरा ६ माशे, गोंद ६ माशे और मुलहठी ६ माशेका बारीक चूर्ण मिलाकर चाटने योग्य बना लेवें। (चि० चं०)

मात्रा और उपयोग—ऊपरकी विधि-अनुसार।

(३७) आँवलेका मुरब्बा।

बनावट—ताजे पक्के बड़े-बड़े आँवलोंको बांसकी शलाका या जर्मनसिल्वर, अथवा पीतलके कलई किये हुये काँटेसे चारों ओर अच्छी तरहसे टोचे। फिर कली चूनेके नितरे हुए जलमें २४ घण्टे भिगो दे। चूनेसे ३२ गुना जल मिलाकर १ घण्टे बाद ऊपर-ऊपरसे स्वच्छ जल नितार कर उपयोगमें लें। पश्चात् आँवलोंको हलका-सा

जोश देकर छायामें सुखा दे। १२ घण्टे बाद आँवलोंके वजनसे दूनी शक्करकी चाशनी बनाकर आँवले मिलादे। ८-१० दिन बाद मुरब्बेमें आँवलेका स्वरस मिल जानेसे ऊपर झाग आने पर उस चाशनीको निकाल पुनः नयी दूनी शक्करकी चाशनी बनाकर मिला देने से मुरब्बेमें से अम्लता दूर होजाती है, तथा दो-तीन वर्ष तक मुरब्बा अच्छा रह सकता है। १ सेर आँवलोंमें ६ माशेके हिसाबसे केशर दूसरी बार की चाशनीमें मिला लेवें।

अनेक दूकानदार आँवलोंको नहीं गोदते। मात्र चूनेके पानीमे फिटकरी मिलाकर उबाल लेते हैं। ५ सेर आँवलोंमे २ तोले फिटकरी मिलाते हैं। कितनेक लोग पहली बार की हुई चाशनीको पुनः पकाकर मिला लेते हैं। नई शक्कर नहीं मिलाते। परन्तु नई शक्करकी चाशनी मिला लेनेसे मुरब्बा विशेष गुणकारी होता है। दूकानदार पहली समय की चाशनीको हरड़के मुरब्बेमे मिला लेते हैं। इस हेतुसे वह शक्कर भी निकम्मी नहीं होती।

मात्रा—१ से २ आँवले चाँदीके वर्कके साथ लें।

उपयोग—यह मुरब्बा दाह, शिरदर्द, पित्तप्रकोप, चक्कर, नेत्र-जलन, बद्धकोष्ट, अर्श, रक्तविकार, त्वचादोष, प्रमेह और वीर्यदोषको नष्ट करता है, पित्तवृद्धिका शमन करता है, और शरीरको बलवान् बनाता है।

(३८) शुण्ठ्यादि पायस।

बनावट—सोंठ और अरंडीके मगज अन्तर्जिह्वा निकाले हुए १-१ तोलाके बारीक चूर्णको १६ गुने दूधमें मिलाकर पायस (खीर) बनावे। आवश्यकतानुसार शक्कर मिलालें।

उपयोग—इस खीरसे आमप्रकोपसह वातविकार, कटिशूल और गृध्रसी आदि रोगोंका नाश होता है।

(३९) एलादि मंथ।

बनावट—छोटी इलायचीके दाने, अजमोद, आँवला, हरड़, बहेड़ा, खैरकी छाल, नीमकी अन्तरछाल, असन (पीतसार) की छाल, शालकी छाल (अभावमें अर्जुनछाल), वायविडंग, भिलावे की गिरी (गोडंबी), चित्रकमूल, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, नागरमोथा, गोपी-चन्दन (अभावमें फिटकरीका फूला), ये सब समभाग लेकर जौकुट चूर्ण करें। फिर १६ गुना जल मिलाकर क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर उतारकर छानलें। क्वाथमें चौथा हिस्सा गोघृत मिला मंदाग्नि

पर घृत सिद्ध करे। घृतमें मिश्री १२० तोले, वंशलोचन २४ तोले और शहद १२८ तोले मिलाकर रई से मंथन कर लेवें।

मात्रा—½ से १। तोले दिनमें २ बार दूधके साथ दे।

उपयोग—यह रसायन क्षयमें शक्ति देनेके लिये अति उपयोग है। क्षय, पाण्डु, भगन्दर, श्वास, कास, शूल, स्वरभेद, हृदयरोग, प्लीहा, गुल्म, सग्रहणी आदि रोगोंका नाश करता है, और बुद्धि तथा आयु बढ़ाता है। नेत्रों के लिये हितकर है।

(४०) बालामृत।

बनावट—बायविड़ंग, अतीस, पीपल, दूधियाबच, हरड़ और सनाय, सब ३-३ माशे, काकड़ासींगी, नागरमोथा और सोंठ १॥-१॥ माशे तथा समुद्रफल २ नग ले। सबको जौकुट कर ४० तोले जलमें मिलाकर क्वाथ करे। आधा जल रहने पर छान २० तोले मिश्री मिला कर चाशनी करे। फिर चौकिया सुहागे का फूला ६ माशे और रूमी-मस्तंगी ३ माशे बारीक पीसकर मिलादे। बादमें ४ रत्ती रतनजोतिका चूर्ण मिला देने से उत्तम लाल रंगका बालामृत बन जाता है। (धन्वन्तरि)

मात्रा—३ मासके बालकको १-१ माशा दिनमें २ बार और अन्योंको बलाबल अनुसार मात्रा योजित करे।

उपयोग—बालकोंके सूक्ष्म ज्वर, अतिसार, कृमि, वमन, मलावरोध, जुकाम, श्वास, कास आदि रोगोंको दूर कर शरीरको पुष्ट बनाता है।

(४१) रक्तशोधक शर्बत।

बनावट—उशबा ८ तोले, मजिष्ठा ४ तोले, सौंफ २ तोले, उन्नाब २५ नग, सीपस्तान २५ नग, हंसराज १ तोला और गावजबॉ १ तोला लेकर जौकुट चूर्ण करें। रात्रिको ८ गुने जलमें भिगो दे, सुबह क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर उतारकर छानले। फिर २० तोले मिश्री मिलाकर शर्बत बनाले।

मात्रा—१। से २॥ तोले दिनमें २ बार जलके साथ ले।

उपयोग—यह शर्बत उपदंशविकार, सुजाक, कुष्ठ, वातरक्त, फोड़ा-फुन्सी आदि रोगोंमें रक्तको शुद्ध करता है।

(४२) बनफशा का शर्बत।

बनावट—बनफशा १० तोले को उबलते हुए २५ तोले जलमें २४ घण्टे भिगोदें, फिर छानलें छाननेके समय दबाकर न निचोड़ें। पश्चात् ४० तोले शक्कर मिलाकर शर्बत बनाले।

सिद्ध-भेषज-मणिमालाकारने ८ गुने जलमें भिगो अष्टमांश क्वाथ कर गाढ़े कपड़ेसे युक्तिपूर्वक छान (अर्थात् पोटलीको लटकाकर जल टपका) लेवें । फिर ४ गुनी शक्कर मिलाकर शर्वत बनानेका लिखा है, और इसे पित्तज्वर पर प्रयुक्त किया है ।

मात्रा—१। से २॥ तोले तक जल मिलाकर पीवें ।

उपयोग—यह शर्वत ज्वरके पीछेका निर्बलता, स्त्रियोंके गर्भाशय की गर्मी, नेत्रकी उष्णता, शिरदर्द, मलावरोध, पसलीकी पीड़ा और मूत्राशयके दर्दको दूर करता है, तथा निद्रा अच्छी लाता है । बढ़े हुए पित्तको बाहर निकाल देता है; मलमूत्र साफ लाता है ।

(४३) चन्दन का शर्बत ।

बनावट—आध पाव श्वेत चन्दनके चूरेको आध सेर गुलावजल में रातको भिगोदे, सवेरे हल्का-सा जोश दे । डेढ़ पाव जल शेष रहने पर मलकर छानले । फिर आधसेर मिश्री मिलाकर शर्वत बनालें । उबालने पर ढक्कन ढक देना चाहिये, अन्यथा तैल उड़ जाता है ।

मात्रा—२-२ तोले दिनमें २ बार जलके साथ देवें ।

उपयोग—यह शर्वत तृषा, दाह, बहुमूत्र, पेशाब का पीलापन, जलन होना, नाक मुखमें खुश्की रहना, नकसीर फूटना तथा गर्मीके दिनों में होनेवाले पित्तके विकारोंको नष्ट करता है । गर्मी, प्यास, लू, बेचैनी सबसे रक्षा करता है । सुजाक रोगमें पेशाब साफ ला देता है ।

(४४) स्वादिष्ट शर्बत (स्वदेशी पेनकिलर)

बनावट—नीबूका रस १ सेर, अदरखका रस ४० तोले, सैंधा-नमक २ तोले, कालानमक २ तोले, हींग ६ माशे और मिश्री १ सेर मिला कलई वाली कढ़ाहीमें ३ उफान आवें तब तक उबालें । फिर नीचे उतारकर तुरन्त छानलें । शीतल होने पर ऊपर-ऊपरसे अलग निकाल लें । पैंदेमें कचरे वाला भाग होवे, उसे अलग रखे । (आ० नि० मा०)

मात्रा—६ माशेसे २ तोले तक आधी रत्ती कपूर मिलाकर दें । अथवा जलके साथ दें ।

उपयोग—इस शर्वतके सेवनसे अपचन, अपचन-जनित अतिसार, हैजा, पेचिश, अरुचि, मन्दाग्नि, मलावरोध, उदरशूल, वमन, आदि रोग दूर होकर क्षुधाकी उत्पत्ति होती है ।

(४५) गुलाब का शर्वत ।

बनावट—गुलाबजलमें १॥ गुनी शक्कर मिलाकर चाशनी करें ।

फिर नीचे उताकर तुरन्त छान लें।

मात्रा—१ से ४ तोले तक जल मिला कर पीवें।

उपयोग—इस शर्वतसे मगजकी उष्णता, पित्तविकार, तृषा और दाह शान्त होते हैं, तथा मलावरोध दूर होता है। स्त्रियोंके गर्भाशयकी गरमी भी कम होती है।

/ (४६) नीबू का शर्वत ।

बनावट—नीबूके रसमें २॥ गुनी शक्कर मिलाकर चाशनी बना लें; फिर गरम-गरमको छान ले। शीतल होनेके बाद नहीं छनता।

मात्रा—१ से २ तोले तक जल मिलाकर पीवें।

उपयोग—इस शर्वतसे पित्तविकार, मन्दाग्नि, अरुचि, तृषा, उबाक, अजीर्ण, मलावरोध और रक्तदोष आदि सब दूर होते हैं, तथा अग्नि प्रदीप्त होती है। सूर्यके तापमें भ्रमणसे उत्पन्न हुई व्याकुलता और पित्तप्रकोप सत्वर दूर होते हैं।

/ (४७) अदरख का शर्वत ।

बनावट—अदरखका रस निकालकर २ घण्टे रहने दे। रस स्थिर होनेपर सम्हालकर ऊपर-ऊपरसे निकाल ले। नीचे अदरखका सत्व रहे उसे सुखाकर अलग उपयोगमें ले। नितरा हुआ रस ६४ तोले लेकर १२८ तोले शक्कर मिलाकर चाशनी बना ले। उसमें केशर १ माशे, इलायची, जायफल, जावित्री और लौंग ३-३ माशेका चूर्ण मिलावें। इसे विशेष गाढ़ा बनाले, तो अवलेह बन जाता है।

मात्रा—६ माशेसे १ तोला तक दिनमें २ बार पीवें।

उपयोग—इस शर्वतके सेवनसे अपचन, अरुचि, मन्दाग्नि, अजीर्ण, आमवात, श्वास, कास, अतिसार, उदरशूल आदि दूर होते हैं।

(४८) प्रतिश्यायहर शर्वत ।

बनावट—तुलसीपत्र, मरवा (सब्जा) के पत्ते, गावजबाँ, अफ्तीमून विलायती, उस्तखद्दूस और बसफायद १-१ छटाँक लेकर १ सेर गुलाबजल और आध सेर अंगूरी सिरकामें रात्रिको भिगोदें; सुबह उबाले। चतुर्थांश जल शेष रहने पर उतारकर छानलें। पश्चात् १॥ सेर शक्कर मिलाकर शर्वत बना ले। (श्री० पं० गुरुशरणदासजी)

मात्रा—२ से ४ तोले जल मे मिलाकर पिलावें।

उपयोग—यह शर्वत जुकाम, कण्ठदाह, निद्रानाश, नाकमे से खून गिरना, हृदय की निर्बलता, मगजकी कमजोरी, सूक्ष्मज्वर, मलावरोध आदिको दूर करता है।

घृत-तैल प्रकरण।

घृतसिद्धि—सिद्ध घृत बनाने के लिये गोघृतको ही श्रेष्ठ माना है। गोघृतको पहले मूर्च्छित करे। मूर्च्छित करने के लिये ३४ तोले घृतको पीतल की कलई की हुई कढ़ाहीमें डालकर मन्दाग्नि पर गरम करें। झाग दूर होनेपर नीचे उतारलें। उष्णता थोड़ी कम होने पर हरड़, बहेड़ा, आंवला, हल्दी और नागरमोथा इन ५ ओषधियों को ४ तोले लेकर बिजौरे नीबूके रसमें कल्क बनाकर डालदें। पश्चात् २५६ तोले जल मिलाकर पाक करें। थोड़ा जल शेष रहने पर उतारकर ७ दिन तक रहने दें। इससे घृत साफ, आमदोष-रहित और वीर्यवान बन जाता है। इसमें घृत के साथ क्वाथ, दूध, दही आदि द्रव पदार्थ और अन्य ओषधियों के कल्कको मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें।

घृतपाकके लिये गिलोय आदि मृदु क्वाथद्रव्योंमें चार गुना जल, सोंठ अमलतास आदि मध्यम द्रव्योंमें ८ गुना जल, और देवदारु, पद्माख आदि कठिन द्रव्योंमें १६ गुना जल मिलाना चाहिये। घृत पाकके लिये जिन ओषधियोंका क्वाथ बनाना हो, उन सबको मिलाकर घृतसे द्विगुण परिमाण में लें, सामान्यतः आठ गुने जलमें मिलाकर क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर उतारकर छानलें। किन्तु क्वाथ करने की ओषधियों का परिमाण अत्यधिक हो, तो ५-५ सेर ओषधियों का क्वाथ अलग-अलग करके सबको मिला लें, तथा १। सेर ओषधिके लिये जल १०२४ तोले लें। इस रीतिसे जलके परिमाणमें थोड़ी ओषधि और अधिक ओषधिके लिये अन्तर है।

यदि केवल दूधसे ही घृतपाक करना हो, अन्य क्वाथ आदि द्रव पदार्थ न मिलाना हो, तो घृतसे आठगुना दूध लेना चाहिये, और क्वाथ आदि द्रव मिलाना हो, तो दूध घृतके समान लेना चाहिये। यदि २ या ३ प्रकारके द्रवसे घृत को सिद्ध करना हो, तो सबको सम परिमाणमें मिलाकर घृतसे चार गुना लेना चाहिये। (किन्तु सुश्रुत-संहिताके टीकाकार डल्हणाचार्यके मतानुसार सब द्रवोंको ४ ४ गुना मिलाना चाहिये।) यदि ४ या ४ से अधिक प्रकार के द्रव पदार्थों को मिलाना हो, तो सबको घृतके समान लेना चाहिये, और केवल स्वरस, दूध या दहीसे घृतको सिद्ध करनेका लिखा हो, तो भी घृतसे ४ गुने जलको अवश्य साथमें मिलाना चाहिये। कारण, केवल स्वरस, दूध या दहीसे घृतका पाक अच्छी रीतिसे नहीं होसकता।

स्नेहमें प्रायः चतुर्थांश कल्क डाला जाता है । किन्तु केशर, नागकेशर, लोंग, चम्पा, कमल आदि पुष्पोंका कल्क हो, तो घृतमें अष्टमांश ले। सर्पविष, वत्सनाग आदि तीक्ष्ण विषके संयोगसे स्नेह सिद्ध करना हो, वहाँ पर इस नियमका पालन नहीं होसकेगा। यदि घृतमें क्वाथ या स्वरस न मिलाना हो, मात्र जल मिलाना हो, तो कल्क चौथा भाग क्वाथसे घृत सिद्ध करना हो, तो कल्क छठा भाग, और केवल स्वरससे सिद्ध करना हो, तो स्नेहसे कल्कको आठवा भाग लेना चाहिये। किन्तु अन्य आचार्यों का मत है कि, दूध, दही, स्वरस या तक्र में से किसी एकको मिलाया हो, तो कल्क अष्टमांश मिलाना चाहिये। यदि द्रव इनसे भिन्न प्रकारका हो, तो कल्क चतुर्थांश ले।

जहाँ द्रव्योंका परिमाण न लिखा हो, वहाँके लिये यह नियम है। जैसे सुश्रुत संहितामें "सौवर्चल यवक्षारकटुका व्योषचित्रकं । वचाऽभया विडङ्गैश्च साधितं श्वासशान्तये ॥" इन औषधियोंसे घृत सिद्ध करना हो, तब ऊपर लिखी परिभाषानुसार कल्क-क्वाथ आदिको मिलावें। एवं अन्य किसी भी प्रकारके घृत-तैल आदि बनाना हो, तभी उक्त विधि अनुसार बनावें। किन्तु जहां शास्त्रने परिमाण निश्चित किया है, वहाँ पर शास्त्राज्ञानुसार पदार्थ लें। उसमें परिभाषा से अन्तर होनेपर भी परिवर्तन न करे।

स्नेहपाकके तीन प्रकार हैं—मृदु, मध्यम और खर। कल्क किंचित् रसयुक्त हो, तो मृदुपाक, रसरहित किन्तु मुलायम हो तो मध्यम पाक, और कल्क जलकर कठिन होगया हो तो खरपाक समझना चाहिये। इसमेंसे नस्यार्थ मृदुपाक, सभी कार्यके लिये मध्यमपाक और मालिशके लिये खरपाक उत्तम है।

स्नेह-सिद्धिकी परीक्षा—घृत और तैल सिद्ध होने पर उसमें से थोडा कल्क निकालकर अग्निमें डाले। किसी प्रकार की आवाज न हो, तो उसे सिद्ध समझे। घृत सिद्ध होनेपर बिल्कुल झाग नहीं रहते, और तैलकी सिद्धि के समय खूब झाग उठते हैं। इनके अतिरिक्त स्नेह परिपक्व होने पर कल्क को अँगुलीसे मर्दन करने पर गोली अथवा वर्ति (बत्ती) हो जाती है। एवं वर्ण और सुगन्धसे भी परिपाक का निश्चय हो जाता है।

जिस प्रयोग में जितने घृतका पाक करने का विधान किया है, उतना ही ले। न्यूनाधिक परिमाण (आधे अथवा दूने) में घृतका पाक ठीक नहीं होता।

घृतको दूधसे सिद्ध करना हो तो दो दिनमें सिद्ध करे। स्वरस से सिद्ध करनेमें तीन दिन और कांजी, मट्ठा आदि से सिद्ध करनेमें पाँच दिन तक पकावे। अधिक दिन लगानेमें रोज थोडे-थोडे समय तक पाक करके छोड़ देवे।

घृत सिद्ध होने पर कढ़ाही नीचे उतार तुरन्त छान लेना चाहिये। शीतल होने तक कढ़ाहीमें रह जानेसे घृत कुछ उड़ जाता है।

घृत पुराना होने से भी गुणयुक्त रहता है। घृत शीतवीर्य होनेसे सिद्ध घृतमें भी प्राय वही गुण रहता है। इसके अतिरिक्त जिन जिन ओषधियो से सिद्ध घृत तैयार किया जाता है, उन उन ओषधियोके गुण, वीर्य, विपाक आदि घृतमें सम्मिलित होते हैं। प्राचीन आचार्यों ने सिद्ध घृतोका विशेष उपयोग किया है। घृतसे रोग शीघ्र दूर होकर शरीर स्वस्थ, बलवान और कान्तिवान बनता है। जो रोगी अनेक प्रकार की ओषधियाँ अनेक वर्षो पर्यन्त सेवन करके निराश होगये हों, जिनकी पाचन-शक्ति अति मन्द होगई हो; जिन्होंने अपने शरीरको सदाके लिये मलावरोध, आफरा, बेचैनी, अरुचि, शिरदर्द आदि विकारोंके घर रूप बना लिये हों, उनको सिद्ध घृत के सेवन से थोड़े ही दिनो मे आशातीत लाभ प्राप्त होजाता है। वात, पित्त अथवा कफ प्रकृतिवाले पुरुष, स्त्री, बालक वृद्ध आदि सब मनुष्य सिद्ध घृतको सुबह शाम अथवा भोजनके साथ सेवन कर सकते हैं।

घृत-सेवनसे विना कष्ट अन्नपचन और मलशुद्धि नियमपूर्वक होती हैं; रोगी की मनोवृत्ति प्रसन्न रहती है, और श्रद्धापूर्वक सप्रेम नियमित सेवन कर सकता हैं। किसीको सिद्ध घृतोंसे हानि होनेकी लेशमात्र संभावना नही है।

घृत शास्त्रोक्त विधिसे सिद्ध कर लेने पर सुगन्धयुक्त बन जाता है। घृत को सम्हालपूर्वक काच की खुले मुँहवाली शीशियोंमें अथवा चीनी मिट्टी के अमृतबानमे रखनेसे खराब होने की सभावना नहीं रहती। वृन्द माधवकारने तो लिखा है कि—"एक वर्ष पश्चात् सिद्ध घृत हीनवीर्य होजाता है, और तैल हीनवीर्य नहीं होता"। परन्तु पुराना सिद्ध घृत गुणवाला ही रहता है, और पुराना तेल दोषयुक्त होजाता है, ऐसा अनुभव मे आया है।

तैलसिद्धि—तैल को सिद्ध करनेके पहले दुर्गन्ध और अन्य दोष की निवृत्तिके लिये मूर्च्छित करें। पश्चात् तेलका पाक घृतके पाकके समान करे; किन्तु मूर्च्छा विधिमें अन्तर है। तिलके तेल, सरसोंके तेल, अरण्डीके तेल, तीनों की मूर्च्छा की ओषधियाँ पृथक् पृथक् हैं। तिलके तेलके लिये मजीठ, हल्दी, लोद, नागरमोथा, दालचीनी, आंवला, बहेड़ा, हरड, केवडेका फूल और बड़ की जटा ले। सरसोंके तेलमें मजीठ, हल्दी, आवला, नागरमोथा, बेल की छाल, अनार की छाल, नागकेशर, कालाजीरा, सुगन्धवाला, दालचीनी और बहेड़ा मिलावे। एवं एरड तेल की मूर्च्छाके लिये मजीठ, नागरमोथा, धनिया, त्रिफला, चमेली के पत्ते, सुगंधवाला, खजूर, बडकी जटा, हल्द, दारुहल्दी, दालचीनी, केवड़ेका फूल, दही और काजी ले।

मूर्च्छाके लिये ४ सेर तैल हो तो मजीठ ४ छटांक और सब द्रव्य एक-एक छटाक लेना चाहिये। उनमेसे हल्दी और मजीठका कल्क अलग

अलग करें, और शेष औषधियोंको मिलाकर कल्क करें। तैलको मूर्च्छित करने के लिये पीतलकी कलई की हुई कढ़ाईमें डाल कर चूल्हे पर चढ़ावें। जब तैल गरम होकर झागरहित होजाय, तब नीचे उतारें। उष्णता थोड़ी कम होने पर उसमें क्वाथका जल फिर मंजीठका कल्क डालकर और औषधियोंका कल्क डाल तैलसे चौगुना पानी मिलाकर पुनः अग्नि पर चढ़ाकर मन्दाग्निसे पाक करें। थोड़ा जल शेष रहने पर उतार कर ५ दिन तक रहने दें। पश्चात् तलको छानकर बरतनमें भरें। इसी तैलमेंसे सिद्ध करें।

यदि वातनाशक तैल बनाना हो तो आक, धतूरा, कैर और बड़े नीबूके पत्ते को डालने ८—१० मिनिट होकर तैलमें डालकर औटावें। जब जलांश शेष रहने पर छान, मूर्च्छित तैलमें मिला कर पाक करें। थोड़ा जल शेष रहने पर उतारकर छान लेवें।

सिद्ध-तैल तैयार करनेके लिये तिल, सरसों या एरंडीका ताजा तैल रोगी की प्रकृति, देश, ऋतु और रोगका विचार करके लेना चाहिये। तैल सिद्ध होनेपर चिपचिपापन, मूलकी गन्ध और तैलका मूल दोष, तीनों दूर होते हैं, तथा गुण की वृद्धि होती है। तैल स्निग्ध और उष्णवीर्य है। सिद्ध-तैलोंमें भी प्रायः वही गुण रहता है। तैलका मुख्य उपयोग वातजन्य रोगों पर है। सिद्ध तैल शरीरके बाह्य भागमें मर्दन करने तथा पीनेके लिये उपयोगमें आता है। मर्दन करनेके समय त्वचाके रोम टूट न जायँ, यह सम्हालना चाहिये। नीचेसे ऊपर की तरफ तथा आड़ी बाजूमें मर्दन करनेमें हानि होने की सम्भावना है। अनुलोम (ऊपरसे नीचे की ओर) धीरे हाथसे शान्तिपूर्वक मर्दन करनेसे वेदना नहीं होती, और हानि होनेका भय भी नहीं रहता। तैलमर्दनसे स्नायु और शिरा-बन्धन नरम होते हैं तथा रक्ताभिसरण क्रिया की वृद्धि होती है; अथवा रक्तमें रहे हुए दूषित परमाणु प्रस्वेद द्वारा बाहर निकल जाते हैं।

पक्षाघात (Paralysis) आदि वातरोगोंमें मर्दनके पश्चात् गर्म जल से, निर्गुण्डीके पत्तेसे अथवा अन्य वातनाशक औषधियोंके क्वाथसे सेक करना अति हितकर है। मात्र पित्ताधिक्य विकारमें विशेष तैलमर्दन अथवा सेक नहीं करना चाहिये। तैलमर्दन अथवा सेक करनेके बाद तुरन्त ठण्डी वायु न लगे इस बात को भी लक्ष्यमें रखना चाहिये।

तैलपान की प्रथा प्रायः वर्त्तमान समयमें लोप होगई है। फिर भी आवश्यकता पर पिलानेमें कोई हानि नहीं है। मात्र नये ताजे तैलमेंसे सिद्ध तैल बना, प्रकृति और ऋतुका विचार करके पिलाना चाहिये। तैलपानके पश्चात् तुरन्त ठण्डा जल नहीं पिलाना चाहिये।

सूचना—घृत तैल बनानेके लिये पीतलका कलई किया हुआ बरतन

लें। लोहपात्रमें घृत-तैलका रंग काला होजाता है।

गोमूत्र आदि अधिक उफान लानेवाले पदार्थ मिलाना हो, तो कढ़ाही आठगुनी बड़ी चाहिये। कारण, गोमूत्रमें उफान बहुत आता है। घृत-तैलका पाक होने पर कढ़ाहीको नीचे उतार तुरन्त छान लेना चाहिये। देर होनेसे घृत या तेल जलकर परिमाणमें कम होजाता है।

घृत और तैलमें कोई पानेका और कोई लगानेका है। उपयोग औषधि के साथ स्पष्ट लिखा है।

(१) त्रिफलादि घृत।

बनावट—त्रिफला ६४ तोले का आठ-गुने जलमें क्वाथ करें। अष्टमांश जल शेष रहने पर छानकर उपयोगमें लें। यह क्वाथ, भाँगरे का रस, अडूसेका रस, आँवलेका रस, शतावरका रस अथवा क्वाथ, गिलोयका रस और बकरीका दूध, प्रत्येक ६४-६४ तोले लेवें। सबको एकत्र करें। इनमें पीपल, मिश्री, मुनक्का, हरड़, बहेड़ा, आँवला, नीले कमल, क्षीरकाकोली (अभावमें मुलहठी), असगन्धकी जड़ और कटेली, सबको समभाग मिलाकर १६ तोले कल्क डाल घी ६४ तोले मिलाकर पकावें। फिर उतार कर तुरन्त छान लें। (व० से०)

मात्रा—१ से २ तोले तक दिनमें २ बार भोजनके साथ।

उपयोग—इस घृतके सेवनसे सब प्रकारके नेत्ररोग दूर होजाते हैं। यह घृत रुधिरके बढ़ने या दूषित होनेसे नेत्रमें जो दोष उत्पन्न हुआ हो; रतौंधी, तिमिर, मोतियाबिन्दु, मांस बढ़ना, नेत्रकी लाली, तीव्र जलन सहित नेत्रकी लाली, आँखोंके बाल गिरना, वातज, पित्तज और कफज नेत्ररोग, अन्धता, मन्द दृष्टि, कफवातसे दूषित दृष्टि, वात और पित्तप्रकोपसे नेत्रस्राव, खुजली, आसन्नदृष्टि (दूरकी वस्तु स्पष्ट न दीखना (Short sight), दूरदृष्टि (दूरकी वस्तु अच्छी दीखना किन्तु समीपकी वस्तु या छोटे अक्षर स्पष्ट न दीखना (Long sight) आदि समस्त नेत्ररोगोंको नष्ट करके गृध्रके समान प्रबल दृष्टि बनाता है। शरीरबल, पचनशक्ति और शारीरिक कान्तिको बढ़ाता है। इस त्रिफलादि घृतका ४-६ मास तक श्रद्धापूर्वक पथ्यसहित सेवन करनेसे लाभ मिलता है। जीर्ण बद्धकोष्ठके रोगियोंके अन्तड़ी, मेदा और यकृत्की शुद्धि होजाती है।

मोतियाबिन्दुका विष रक्तमें से शनैः-शनैः दृष्टिमणि (lens) में पहुँचता है। फिर दृष्टिमणिके तन्तु दूर-दूर होते जाते हैं, जिससे

वीचमें दूषित रस भरकर अपारदर्शकता आने लगती है। यदि इस रोगकी प्रारम्भावस्थामें ही इस घृतका सेवन कराया जाय, नेत्रमें नेत्रसुदर्शन अर्क डाला जाय तथा विषवर्द्धक तमाखू आदि द्रव्योंका त्याग किया जाय तो मोतियाविन्दुकी वृद्धि रुक जाती है, इतना ही नहीं अनेकों की दृष्टिमणि पारदर्शक होकर मोतियाविन्दु नष्ट होजाता है।

(२) फल घृत ।

बनावट—मुलहठी, हरड़, वहेड़ा, आँवला, कूठ, हल्दी, दारुहल्दी, कुटकी, वायविड़ङ्ग, पीपल, नागरमोथा, इन्द्रायणकी जड़, कायफल, काकोली और क्षीरकाकोली (अभावमें असगन्ध और शतावर), मेदा और महामेदा (दोनोंके अभावमें शतावर), वच, सफेद अनन्तमूल, काली अनन्तमूल, फूल प्रियंगु, सौंफ, भुनी हींग, रास्ना, सफेद चन्दन, लालचन्दन, चमेलीके फूल, कमल, वंशलोचन, मिश्री, अजमोद, दन्तीमूल, इन ३२ ओषधियोंको एक-एक तोला लेकर कल्क करें। फिर कल्क, गोघृत ६४ तोले, गायका दूध २५६ तोले और जल २५६ तोले मिलाकर पाक करें। पश्चात् उतार कर तुरन्त छान लेवें। इस घृत पाकमें लक्ष्मणा (अभाव में सफेद कटेली) का पञ्चांग डालना विशेष लाभदायक है। (शा० सं)

मात्रा—१ से २ तोले रोज सुबह सेवन करें।

उपयोग—यह घृत स्त्री और पुरुष, दोनोंके लिये हितकर है। धातुदोष, रजदोष और गर्भाशयके दोषोंको दूर करता है। वंध्याको पुत्रकी प्राप्ति होती है, और जिसके बच्चा होकर मर जाता हो उसकी संतति नीरोग होती है। जिसको बार-बार कन्या ही जन्मती हो, जिसको गर्भ रहकर बार-बार नष्ट होजाता हो, जो स्त्री मृतसंतान या अल्पायु संततिको उत्पन्न करती हो, वह यदि इस घृतका सेवन करे, तो दीर्घायु और नीरोग पुत्रको जन्म देनेमें समर्थ होती है। सत्तेपमें गर्भाशयदोष की निवृत्त्यर्थ यह घृत अत्युत्तम है।

शास्त्रकारोंने १ वर्षकी जीवद्वत्सा (बछड़ा जीता हो ऐसी) बलवान गौका घृत लेनेका लिखा है; एवं पुष्यनक्षत्रमें गौके जगली अरनोकी अग्नि पर शास्त्रोक्त विधिसे पाक करनेकी आज्ञा की है।

(३) नाराच घृत ।

बनावट—लोद, चित्रकमूल, चव्य, बायविड़ङ्ग, हरड़, बहेड़ा, आँवला, निसोत, शंखिनी (ओंघाफूली), अतीस, सोंठ, कालीमिर्च,

पीपल, अजमोद, हल्दी, दारुहल्दी और दन्तीमूल १-१ तोला ले। थूहर का दूध १६ तोले, अमलतासका गूदा १६ तोले और गोमूत्र ३२ तोले ले। गोमूत्रको छोड़, शेष सबको पीसकर कल्क करे। पश्चात् कल्क, गोमूत्र, गोघृत ६४ तोले और घृतसे ४ गुना जल मिलाकर यथाविधि मन्दाग्नि पर घृतको सिद्ध करे।

(भै० र०)

मात्रा—½ से १ तोला सुबह निवाये दूधके साथ लेवे।

उपयोग—यह घृत उदररोग, गुल्म, आफरा, प्लीहावृद्धि, आमवात, भगन्दर, गृध्रसी, ऊरुस्तम्भ आदि रोगोंको शमन करता है। कोष्टस्थ दोषोंको बाहर निकालनेके लिये उत्तम ओषधि है।

(४) षट्पल घृत।

बनावट—पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रकमूल, सोंठ और सैंधानमक, सब समभाग मिलाकर कल्क करे। फिर कल्क १६ तोले, गोघृत ६४ तोले, दूध २५६ तोले और जल २५६ तोले मिलाकर मन्दाग्नि पर घृत सिद्ध करे।

(वृन्द)

मात्रा—६ माशे से १ तोला दिनमें २ बार दे।

उपयोग—यह घृत विषमज्वर, जीर्णज्वर, मन्दाग्नि, प्लीहावृद्धि और गुल्मका नाश करता है, एवं भोजनमें रुचि उत्पन्न करता है।

(५) दशमूलाद्य घृत।

प्रथम विधि—दशमूल (शालपर्णी, पृष्टपर्णी, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, गोखरू, बेलछाल, गम्भारी, पाढ़ल, अरलु और अरणी की छाल) १२८ तोले लेकर १६ गुने जलमें चतुर्थांश क्वाथ करे। पश्चात् रास्ना, सोंठ, देवदारु, लाल पुनर्नवा और श्वेत पुनर्नवा समभाग मिला जलमें पीसकर १० तोले कल्क करे। बादमें छाना हुआ दशमूल क्वाथ, उपरोक्त कल्क और १२८ तोले गोघृत मिलाकर मन्दाग्नि पर घृत सिद्ध करें।

(व० से०)

मात्रा—½ से १ तोला दिनमें २ बार ले।

उपयोग—यह घृत वातोदर, मन्दाग्नि, अरुचि, शूल, श्वास, कास, हिक्का, वातविकारको शमन करके प्राणवायुको बलवान बनाता है। प्रसूता स्त्रियोंके लिये विशेष लाभदायक है।

दूसरी विधि—दशमूल क्वाथ और दधिमण्ड (दहीका पानी) २-२ सेर लेवे। पीपल, कालानमक, जवाखार, आँवला, हींग, बिजौरे की छाल और हरड़, सबको समभाग मिला जलमें पीसकर कल्क १२॥ तोले बनावे। फिर कल्क, क्वाथ, दधिमण्ड और १ सेर गोघृत मिलाकर

मन्दाग्नि पर घृत सिद्ध करें। (च० सं०)

मात्रा—½ से १ तोला दिनमें २ से ३ बार देवे।

उपयोग—यह घृत हिक्का और शुष्क कासको नष्ट करता है। श्वास और कास रोगमें कफको विना कष्ट बाहर निकालता है। मन्दाग्नि, वातविकार, प्रसूतिरोग, उदररोग, इत्यादिमें लाभदायक है। शुष्क शरीर वालेके लिये अति हितकर है।

(६) पञ्चगव्य घृत।

बनावट—दशमूल, त्रिफला, हल्दी, दारुहल्दी, कुड़ेकी छाल, सतौना की छाल, अपामार्ग, नील, कुटकी, अमलतास, कठगूलरके मूल, पुष्करमूल और धमासा, ये २४ ओषधियाँ १०-१० तोले लेकर ३२ सेर जलमें मिलाकर क्वाथ करे। चतुर्थांश जल शेष रहने पर उतारकर छान ले। फिर भारंगी, पाठा, सोंठ, मिर्च, पीपल, निसोत, समुद्रफल, गजपीपल, पीपल, मूर्वा, दन्तीमूल, चिरायता, चित्रकमूल, काला सरिवा (अनन्तमूल), सफेद सारिवा, रोहिष घास, गन्धतृण, चमेलीके पत्ते, सब १।-१। तोले मिला जलमें पीसकर कल्क करें। फिर क्वाथ, कल्कके साथ गायके गोबरका रस, दही, दूध, गोमूत्र और गोघृत २-२ सेर मिलाकर मन्दाग्नि पर घृत सिद्ध करे। (च० स०)

मात्रा—½ से १ तोला दिनमें २ बार ले।

उपयोग—पञ्चगव्य घृत अपस्मार, उन्माद, सूजन, उदररोग, गुल्म, बवासीर, पाण्डु, कामला, भगन्दर इत्यादि रोगोंमें अमृतके समान लाभदायक है, चातुर्थिक ज्वरको नष्ट करता है।

(७) जीवन्त्यादि घृत।

बनावट—जीवंती (डोडी), मुलहठी, मुनक्का, इन्द्रजौ, शठी (कचूर), पुष्करमूल, छोटी कटेली, गोखरू, खरेटी, नीला कमल, भोय आँवला, त्रायमाण, धमासा और पीपल १-१ तोला मिला जलमें पीसकर कल्क करे। फिर कढ़ाहीमें कल्कके साथ १॥ सेर गोघृत, बकरी या गायका दूध और जल ६-६ सेर मिला मन्दाग्नि पर सिद्ध करें। (च० सं०)

मात्रा—½ से १ तोला दिनमें २ बार सेवन करें।

उपयोग—यह घृत ११ जातिके राजयक्ष्मा (क्षय), जीर्णज्वर, धातुक्षीणता आदि दोषोंको दूर करता है। क्षयके तीसरे वर्षमें भी इससे बहुत लाभ होता है।

(८) अशोक घृत।

बनावट—अशोककी छाल २ सेरका चौगुने जलमें क्वाथ करें।

चतुर्थांश जल शेष रहने पर नीचे उतार कर छान लेवें। पश्चात् १ सेर जीरेका ४ गुने जलमें (ढक्कन ढक कर) पका आधा जल शेष रहने पर उतारकर छानले। फिर जीवनीय गणकी ओषधियों (जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मुद्गपर्णी, माषपर्णी जीवन्ती और मुलहठी), चिरौंजी, फालसा, रसौत, मुलहठी, अशोक की छाल, मुनक्का, शतावर, चौलाईकी जड़, प्रत्येक २॥-२॥ तोले लेकर कल्क करें। तत्पश्चात् कल्क, अशोकका क्वाथ, जीराका क्वाथ, चावलोंका धोवन २ सेर, बकरीका दूध २ सेर, भागरेका स्वरस २ सेर और गोघृत २ सेर ले। सबको कढ़ाहीमें डाल शास्त्रोक्त विधि अनुसार पाक करे। घृत छान लेने पर १ सेर मिश्री मिला लेवें। (भै० र०)

मात्रा—१-१ तोला दिनमें २ बार दें।

उपयोग—यह घृत स्त्रियोंके सब प्रकारके रोगोंका नाशक है। श्वेत, नील और कृष्ण वर्णके भयङ्कर प्रदर, गर्भाशयमें शूल, कटिशूल, मन्दाग्नि, अरुचि, पाण्डु, कृशता, श्वास, कामला आदिको नष्ट करता है। शरीरबल, कान्ति और आयुकी वृद्धि करता है।

(९) वृहद्धात्री घृत।

बनावट—आंवलोंका स्वरस, विदारीकन्दका रस, दूध, शतावर का रस, पञ्चतृण (कुश, कास, ईख, मूँज और नरसल) का रस और गोघृत २-२ सेर लें। छोटी इलायची, लौंग, हरड़, बहेड़ा, आँवला, कैथ, नेत्रवाला, सरलकी छाल, जटामाँसी, केलेका कन्द, कमलकी जड़, सबको समभाग मिला जलके साथ २० तोले कल्क करे। सबको लोह की कढ़ाही में मिला मन्दाग्नि पर घृत सिद्ध करे। घृतमें मिश्री और शहद ४०-४० तोले, मुलहठी, निसोत, जवाखार और विधारेका चूर्ण ५-५ तोले मिला मन्थन कर एकजीव बनाले। (भै० र०)

मात्रा—½ से १ तोला दिनमें २ बार चाटें।

उपयोग—यह घृत बहुमूत्र, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, प्रमेह, तृषा, दाह, अरुचि, सोमरोग, पित्तवृद्धिजन्य विकार, वातिक भयंकर रोग, सबको दूर करके बलवीर्यकी वृद्धि करता है। इस ओषधिसे सोमरोग और बहुमूत्रमें तुरन्त लाभ होने लगता है।

(१०) अष्टमङ्गल घृत।

बनावट—बच, कूठ, ब्राह्मी, सफेद सरसों, अनन्तमूल, सैंधा नमक और पीपल, इन ७ ओषधियोंको समभाग मिला जलके साथ

पीसकर कल्क करें। बादमें कल्क, ४ गुना गोघृत और १६ गुना जल मिलाकर यथाविधि घृत सिद्ध करें। (भै० र०)

उपयोग—यह घृत बालकोंको रोज चटानेसे बुद्धि बढ़ती है और धारणाशक्ति तीव्र होती है, तथा पिशाच, राक्षस-भूत आदिकी बाधा नहीं होती, एवं बालक स्वस्थ और पुष्ट बनता है।

(११) वाजीकरण घृत।

बनावट—सफेद कनेरकी जड़ २ सेर को ८ सेर जलमें क्वाथ करें। २ सेर जल रहने पर उतार, मसलकर छानलें। जलमें काली भैंसका २ सेर दूध तथा सफेद सोमल, जायफल, जावित्री और केशर २-२ तोले मिलाकर उबालें। पानी जलकर दूध मात्र शेष रहे, तब उतारलें। शीतल होने पर दही मिलाकर जमा देवें। बादमें दहीका मन्थन कर मक्खन निकाल कर घृत सिद्ध करें। इस घृतमें ३ माशे कस्तूरी मिलाकर चीनी मिट्टी या काचके पात्रमें भरें। सोमल छाडके नीचे बरतनमें कुछ बैठ जायगा, उसे अलग निकाल लेवें। (बं० गा० मं०)

सूचना—मूल ग्रन्थकारने दो तोले कस्तूरी दूधमें मिला देनेको लिखा है। यह परिमाण अत्यधिक और सदोष होनेसे सुधार किया है।

मात्रा—½ से १ रत्ती पान पर लगाकर खायें, ऊपर दूध पीवें।

उपयोग—यह घृत धातुक्षीणता और नपुंसकताको दूर करके वीर्यका स्तम्भन करता है, तथा शारीरिक बल की वृद्धि करता है।

(१२) ब्राह्मी घृत।

प्रथम विधि—ब्राह्मीका स्वरस ४ सेर और गोघृत २ सेर लेवें। सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, काली निसोत, सफेद निसोत, दन्तीमूल, शंखाहुली, अमलतासकी फलीका गूदा, सातलाकी छाल और वायविडंग १।-१। तोला मिला जलमें पीसकर कल्क करें। फिर सबको ८ सेर जलमें मिला मन्दाग्नि पर पचन कर घृत सिद्ध करें। (अ० हृ०)

मात्रा—½ से १ तोला दिनमें २ वार दें।

उपयोग—यह घृत उन्माद, कुष्ठ, अपस्मार, मगजकी निर्बलता और मन्दाग्नि आदिको दूर करता है। वाणी, स्वर और स्मृतिको बढ़ाता है। वन्ध्या स्त्रीको संतानकी प्राप्ति कराता है।

दूसरी विधि—ब्राह्मीका स्वरस या क्वाथ ४ सेर, गोघृत १ सेर तथा बच, कुष्ठ और शंखपुष्पी, तीनोको समभाग मिला कल्क २० तोले करें। फिर सबको मिला मन्दाग्नि पर घी सिद्ध करें। (च० स०)

मात्रा—½ से १ तोला दिनमें २ वार लेवे।

उपयोग—यह घृत उन्माद, अपस्मार और वालकोंके बालग्रह को नष्ट कर स्मरणशक्ति, बुद्धि और कान्तिकी वृद्धि कराता है।

(१३) गन्धक घृत।

बनावट—गोदुग्ध ८ सेरको गरम करें। उफान आने पर आध सेर शुद्ध आँवलासार गन्धकका चूर्ण डालें। ३-४ उफान आजाने पर दूधको नीचे उतारें। शीतल होने पर दही मिलाकर जमा देवे। दूसरे दिन मन्थन कर मक्खन निकाल घी बना लेवे। छाछमें शुद्ध गन्धक रह जाय उसे अलग निकाल कर उपयोग में ले।

उपयोग—इस घृतमें से ६ माशे से १ तोला दिनमें २ वार दूधके साथ सेवन करनेसे रक्तविकार, दाह, प्रमेह, दृष्टिमान्द्य, शिरदर्द, मन्दाग्नि, कब्ज, फोडा-फुन्सी और कुष्ठ आदि रोग दूर होते हैं। मालिश करनेसे सूखी खाज और त्वचा रोग नष्ट होते हैं। वातरक्त और गलत्-कुष्ठ रोग में भी यह घृत हितकारक है।

(१४) चाँगेरी घृत।

बनावट—चाँगेरी (चूका) का रस, बेलफलकी छालका क्वाथ और खट्टा दही ३-३ सेर, घी गायका १ सेर, और सोंठ तथा जवाखार ५-५ तोले लें। सोंठ और क्षारका कल्क करे। फिर सबको मिला मन्दाग्नि पर घृत सिद्ध करे। (च० सं०)

उपयोग—इस घृतके पिलानेसे गुद्भ्रंश रोग दूर होता है। आवश्यकता पर चूहेकी चरबी गुद्भ्रंश पर लगाते रहे। वंगसेनने इस घृतको शूलयुक्त अतिसारनाशक कहा है। आमातिसार, अग्निमान्द्य, अरुचि और उदरपीड़ा को दूर करता है।

(१५) दूर्वादि घृत।

बनावट—दूबका मूल, नीलकमल, कमलकी केशर, मजीठ, एलवालुक (अभावमें नेत्रवाला), मूर्वा, लोद, खस, नागरमोथा, रक्त-चन्दन, पद्मकाष्ठ, मुनक्का, मुलहठी, हरड़, गम्भारीकी छाल और सफेद चन्दन, प्रत्येक १।-१। तोले मिला जलके साथ पीसकर कल्क करे। पश्चात् बकरी अथवा गायका घी १ सेर, बकरीका दूध और चावलोंका धोवन ४-४ सेर मिलाकर मन्दाग्नि पर घृत सिद्ध करें। (यो० त०)

मात्रा—१ से २ तोले दिनमें ३ वार चाटे और जहाँसे रक्त निक-लता हो वहाँ पर अंजन, नस्य अथवा पिचकारी दे, या मालिश करे।

उपयोग—यह घृत ऊर्ध्व रक्तपित्त, अधो रक्तपित्त और रक्तार्शमें

गिरने वाले रक्तको शीघ्र बन्द करता है। स्त्रियोंके रक्तप्रदर और अत्यार्त्तव रोगको भी दूर करके गर्भाशयको शुद्ध बनाता है। भयंकर बढ़े हुए रक्त-पित्तका भी इस घृतके सेवनसे शमन होता है।

इस घृतका सेवन करानेसे सब प्रकारके रक्तपित्त दूर होते हैं यदि वमन होती हो, तो घृतपान कराना चाहिये। नाकसे रक्त गिरते है, तो नस्य कराना चाहिये। कानोंसे रक्त आता हो, तो कानोंमें डालना चाहिये। नेत्रसे रक्त आता हो, तो नेत्रको घृतपूरित कराना चाहिये गुदा या मूत्रेन्द्रियसे रक्तस्राव होता हो, तो वस्ति या उत्तर-वस्ति करानी चाहिये। एवं रोमकूपोंसे रक्तस्राव होता हो, तो समस्त शरीर पर मालिश करानी चाहिये। इस तरह इस घृतको विविध प्रकारके उपयोग में लिया जाता है। यदि बाह्य-स्थानिक प्रयोग कराना हो, तो भी घृतपान तो कराना ही चाहिये। घृतपान कराते रहनेसे आभ्यन्तरिक दोषकी निवृत्ति सत्वर होती है।

(१६) कल्याण घृत।

बनावट—इन्द्रायनकी जड़, हरड़, बहेड़ा, आँवला, सम्हालू के बीज, देवदारु, एलवालुक (अभावमें नेत्रवाला), शालपर्णी, धमासा, हल्दी, दारुहल्दी, श्वेत सारिवा, कृष्ण सारिवा, प्रियंगु, नीलोफर, छोटी इलायची, मजीठ, दन्तीमूल, अनारदाना, नागकेशर, तालीसपत्र, बड़ी कटेली, चमेलीके ताजे फूल, वायविडंग, पृष्टपर्णी, कूठ, चंदन, पद्माख, इन २८ ओषधियोंको १।-१। तोले लेकर कल्क करें। पश्चात् कल्क, गोघृत १ सेर और ४ सेर जल मिलाकर यथाविधि पाक करें। (च० स०)

चक्रदत्तने इस घृतापाकमें दूध द्विगुण और जल चतुर्गुण मिलाकर नाम 'क्षीरकल्याण' घृत रक्खा है।

मात्रा—½ से २ तोले दिनमें २ बार चाटें।

उपयोग—कल्याण घृत अपस्मार, चातुर्थिक ज्वर, तृतीयक ज्वर, जीर्णज्वर, हृदयका कम्प, कास, श्वास, मन्दाग्नि, प्रतिश्याय, वातरोग वमन, अर्श, मूत्रकृच्छ्र, विसर्प, खुजली, पाण्डु, उन्माद, दूषी विष, प्रमेह, भूतबाधा, हिस्टीरिया, बालग्रह, स्वरभेद और स्त्रियोंके वंध्यापन को नष्ट करता है, तथा आयु, बल, बुद्धिको बढ़ाता है। निस्तेजता, पाप रोग, राक्षस और ग्रहोंकी बाधाका विनाश करता है। यह घृत सन्तानोत्पत्त्यर्थ उत्तम वृष्य है।

(१७) जात्यादि घृत।

बनावट—चमेलीके पत्ते, नीमके पत्ते, पटोलपत्र, मैनफल, हल्दी

दारुहल्दी, कुटकी, मजीठ, मुलहठी, करंजके पत्ते, नत्रवाला और अनन्तमूल; प्रत्येक १-१ तोला मिला पानीमें घोट लुगदी बनाले। फिर लुगदी से चार गुना गायका घी और १६ गुना जल मिला मन्द आँच से पकाकर घृत सिद्ध करे। (शा० स०)

अनेक चिकित्सक पक जाने पर छान, मोम और नीलेथोथेका फूला १-१ तोला मिलाकर मलहम जैसा घृत बना लेते हैं।

उपयोग—पुराना नाड़ीव्रण (नासूर), व्रण, गम्भीर व्रण, दुष्टव्रण आदि पर इस घीकी पट्टी बाँधनेसे बहुत जल्दी आराम होता है।

(१८) नासाकृमिहर घृत ।

बनावट—हींग, आँवलासार गन्धक, मैनसिल, कुड़ाछाल, बच्छनाग, आमाहल्दी, दारुहल्दी, सुहिंजनेके बीज और बायबिड़ङ्ग १०-१० माशे, नीमकी निम्बोलीकी गिरी २ तोले और कालीमिर्च ५ माशे लें। सबको गोमूत्रमें खरल कर छोटी-छोटी टिकियाँ बाँधे। बादमें ३ पाव गोघृतको कढ़ाहीमें डाल चूल्हे पर चढाकर मन्दाग्नि दे। घी पकने पर टिकिया डाले। टिकिया काली होजाने पर कढ़ाही उतार लें। थोड़ा गरम रहने पर घृतको छानलें। (पं० धूलजी शर्मा वैद्य)

उपयोग—यह घृत दोनो नथनोंमें ५-५ बूँद रोज सुबह चढ़ाने से थोड़ेही दिनोंमें नाकमेंसे सब कृमि मरे हुए गिर जाते है, फिर शिरदर्द तथा नेत्रोंकी कमजोरी दूर होजाती है। जली हुई टिकियाओं को पीसकर व्रण आदि नाड़ीव्रणमें डालनसे जल्दी भर जाते है।

(१९) मल्ल तैल ।

प्रथम विधि—सफेद संखिया ५ तोले और कागजी बादामकी गिरी ४० तोले लेवे। बादाम को गरम पानीमें भिगोकर छिलका दूर करें। फिर थोड़ा पानी डालकर चटनी की भाँति बारीक पीसे। पश्चात् संखिया मिला ३ घण्टे खरल कर छोटी-छोटी गोली बाँधकर तापमें सुखा दे। बादमें कपड़मिट्टी की हुई आतशी शीशीमें गोलियोको डाल, मुँह पर लोहेके तार की गोलीका डाट लगाकर पातालयन्त्रसे तैल निकाल लेवे। (श्री० स्वा० गणेशानन्दजी)

मात्रा—१ सींक भरके पानमें खायँ और रात्रिको एक अँगुली पर लगा इन्द्रियके सुपारी और सीवन को छोड़कर मालिश करे। फिर नागरवेलका पान बाँध दे।

उपयोग—इस तैलके सेवनसे थोड़े दिनोंमें शारीरिक निर्बलता दूर होती है। थोड़े सरसोंके तैलमें मिलाकर मालिश करनेसे संधिवात

दूर होता है। कफप्रधान श्वासके रोगी को खिलानेसे फायदा होता है। घी खूब खाना चाहिये।

सूचना—तैल खुले स्थानमें निकाले। शीशीमेंसे बहुत दुर्गन्धयुक्त धुआँ निकलता है। ऊपर अग्नि मन्द देनी चाहिये।

(२०) व्याघ्री तैल।

बनावट—छोटी कटेली का पञ्चाङ्ग, दन्तीमूल, वच, सुहिंजनेकी छाल, तुलसीके पत्ते, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल और सैंधानमक, सब समभाग ले। सबको कूट जल मिला पीसकर कल्क करें। फिर कल्क से ४ गुना तिलका तैल और तैलसे ४ गुना छोटी कटेलीके पञ्चाङ्गका क्वाथ मिलाकर मन्दाग्निसे तैल सिद्ध करें। (शा० सं०)

उपयोग—इस तैलको सूँघनेसे पीनस (नाकमें से निकलने वाले पीप और दुर्गन्ध), नाकमें से श्लेष्म आना, मस्तिष्कमें कृमि होना, आदि रोग दूर होते हैं; तथा इस तैलको पीनेसे कफ दूर होकर खाँसी और श्वासका जल्दी नाश होता है।

सूचना—पीनेके लिये ताजे तिलके तेलको और सूँघनेके लिये सरसोंके तेल को सिद्ध करना चाहिये।

(२१) चन्दन-बला-लाक्षादि तैल।

बनावट—सफेद चन्दन, खरेंटीके मूल, लाख और लामज्जक (खस), चारोंको ६४-६४ तोले लेकर १०२४-१०२४ तोले जल मिलाकर क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर उतार छानकर सबको मिला ले। फिर सफेद चन्दन, खस, मुलहठी, सोंवा, कुटकी, देवदारु, हल्दी, कूठ, मजीठ, अगर, नेत्रवाला, असगन्ध, खरैंटी, दारुहल्दी, मरोरफली, नागरमोथा, मूली, छोटी इलायची, दालचीनी, नागकेसर, रास्ना, लाख, अजमोद, चम्पाके फूल, सफेद अनन्तमूल, पीला चन्दन (पीतसार), सैंधानमक और बिडलवण, सब समभाग मिलाकर ३२ तोले कल्क करे। तिल तैल १२८ तोले और दूध २५६ तोले ले। सबको कढ़ाहीमें डाल मन्दाग्नि पर तैल सिद्ध करें। (यो० र०)

उपयोग—इस तैलकी मालिश करनेसे कास, श्वास, क्षय, सब प्रकारके वमन, ज्वर, कामला, रक्तप्रदर, रक्तपित्त, पाण्डु, पित्त और कफके प्रकोप आदि रोग दूर होकर सातों धातुएँ बलवान बनती हैं। मस्तिष्ककी उष्णता, नेत्रदाह और शरीर-दाहका नाश होकर कान्तिकी वृद्धि होती है। खुजली, सूजन, फोड़ा-फुन्सी आदि रक्त और त्वचाके दोष दूर होते हैं। बालक, युवा, वृद्ध, सगर्भा स्त्री सबके लिये हितकर

है। जीर्णज्वर और पाण्डु रोगमें यह तैल विशेष उपयोगी है। प्रसूता स्त्रियों और बालकोंको मालिश करते रहनेसे रोग होनेका भय दूर होकर शरीर बलवान बनता है।

(२२) चंदनादि तैल।

बनावट—सफेद चंदन, मुलहठी, मूर्वा, हरड़, बहेड़ा, आँवला, नीलोफर, प्रियंगु, बड़के अंकुर, गिलोय, कमलकेशर, लोहका चूरा, जटामांसी, सफेद सारिवा, काली सारिवा, सबको समभाग मिला जल में पीसकर कल्क करें। पश्चात् ४० तोले कल्क, तिलका मूर्च्छित किया हुआ तैल २ सेर और भाँगरेका स्वरस ८ सेर मिलाकर यथाविधि पाक करें। (च० द०)

उपयोग—इसकी नस्य लेने तथा शिरमें मालिश करनेसे गिरे हुए केश नये उत्पन्न होते हैं। सफेद बाल काले होते है। बाल स्निग्ध, दृढ़मूल वाले और भ्रमरके समान काले होजाते हैं।

दूसरी विधि—सफेद चन्दन, नेत्रवाला, नख, कूठ, मुलहठी, छारछरीला, पद्माख, मजीठ, सरल (चीड़), देवदारु, कचूर, छोटी इलायची, जायफल, नागकेशर, तेजपात, बेलकी छाल, शीतल मिर्च, रक्तचन्दन, नागरमोथा, हल्दी, दारुहल्दी, श्वेत अनंतमूल, कृष्ण अनंतमूल, कुटकी, लौंग, अगर, केशर, दालचीनी, निर्गुण्डीके बीज और नलिका, इन ३२ ओषधियोंको २-२ तोले मिला मस्तुके साथ पीसकर कल्क तैयार करे, और पीपलकी लाखका (लाक्षारसमें कही विधिसे) क्वाथ करें। फिर एक पीतलकी कलई की हुई कढ़ाहीमें कल्क, ३॥ सेर लाक्षारस, १० सेर मस्तु (दहीका तोड़) और ३॥ सेर तिलीका तैल। मिला मन्दाग्निसे यथाविधि पाक करें। (यो० र०)

उपयोग—इस तैलकी मालिशसे विशेषतः जीर्णज्वर, राजयक्ष्मा और रक्तपित्त दूर होते हैं। यह उन्माद, अपस्मार, दाह, शिरदर्द, धातुविकृति आदि रोगोंको दूर करके आयु और कान्तिको बढ़ाता है।

(२३) चक्रमर्दादि तैल।

बनावट—पँवाड़के मूलका कल्क १६ तोले, भाँगरेका स्वरस २५६ तोले और सरसोंका तैल ६४ तोले मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करे। पाक होनेके ५-७ मिनट पहले १६ तोले सिंदूर मिलावें, फिर उतारले। शीतल होने पर तैल निकालले। (व० से०)

उपयोग—इस तैलकी पट्टी लगाते रहनेसे भयकर गण्डमाला नष्ट होजाती है, एवं नाड़ीव्रण, दुष्टव्रण आदिमें भी लाभ पहुँचता है।

(२४) वातहर तैल ।

बनावट—अरण्डीके बीज, मालकाँगनी और एकपोथिया लहसुन १-१ छटाँक, थेड़का दूध २ छटाँक और तिलोंका अथवा सरसोंका तैल १२ छटाँक लें। ३ औषधियोंको पीसकर दूधमें मिलालें। बादमें पीतलकी कलई लगी हुई कढाहीमें तैल डाल चूल्हे पर चढ़ावे। फिर औषधिकी छोटी-छोटी पकोड़ी डालते जायँ और अच्छी रीतिसे लाल होने पर निकालते जायँ। अन्तमें तैल नीचे उतार शीतल होने पर छान-कर बोतलमें भरले। (श्री० प० मंगुलालजी)

उपयोग—इस तैलकी मालिश करनेसे सब प्रकारके वातरोग दूर होते है। न्युमोनियामें फेफड़ो पर मालिश करनेसे फेफड़ेके दोष होते है। कानमें डालनेसे फून्सी दूर होती है। उपयोग करनेके समय एक कटोरीमें निकाल निवाया करले। पैरोंके तले और गलेके ऊपरके भागमें नहीं लगाना चाहिये।

इस तैलका लगभग १०० से अधिक वर्षोंसे श्री मंगुलालजीके पितामह आदि उपयोग करते आये है। साधारण औषधि होने पर भी बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ है।

(२५) अपूर्व तिला ।

बनावट—सफेद सोमलके १० तोले चूर्णको ७ दिन तक आकके दूधमें भिगोदे। पश्चात् सोमलको २० तोले गायके घीके साथ ३ दिन घुटाई करे। फिर छोटी कढ़ाहीमें डाल चूल्हे पर चढ़ाकर मन्द अग्नि दे। जब घी बिल्कुल नितर कर ऊपर आजाय और सोमल नीचे बैठ जाय, तब कढ़ाही नीचे उतारलें। कढ़ाही किञ्चित् गरम रहने पर सम्हाल कर ऊपर-ऊपरसे स्वच्छ घी दूसरी कटोरीमें ले ले। जो सोमल वाला घी शेष रहे उसे जमीनमें गाढ़ दे। फिर स्वच्छ घी ५ तोले, केशर और कस्तूरी १०-१० रत्ती, जायफल, जावित्री, लौंग और बीरबहूटी ५-५ माशे मिलाकर १ दिन घुटाई करे। (धन्वन्तरि)

उपयोग—इस घृतमें से एक चनेके बराबर लेकर रातको सोते समय इन्द्रिय पर सुपारी तथा सीवनके भागको छोड़कर सम्हालपूर्वक मालिश करें। फिर नागरवेलके पानको थोड़ा गरम कर लपेटलें। ऊपर कपड़ा बांधे। इस तरह थोड़े दिन मालिश करनेसे हस्तमैथुन या गुदा मैथुनसे उत्पन्न नपुंसकता और इन्द्रियका टेढ़ापन दूर होते है। ४-६ रोज बाद इन्द्रिय पर छोटी-छोटी फुन्सियाँ होजायँ तो ३-४ दिन मालिश बन्द करे और धोये घी की मालिश दिनमें ३-४ बार करें।

फुन्सी मिटे तब फिर तिलेकी मालिश करें । इस रीतिसे १५-२० रोज मालिश करनेसे आशाहीन रोगियोंको भी लाभ होता है ।

दूसरी विधि—सफेद सोमल १ तोलेको ३ दिन आकके दूधमें खरल करें । फिर मुर्गीके २५ अण्डोंकी जर्दी मिला छोटी कढाहीमें डाल तेज अग्नि पर रक्खें । कलछीसे सम्हालपूर्वक चलाते रहें । जर्दी जलकर काली होजाय और धुआँ निकलने लगे, तब उसमेंसे तैल अलग होजाता है । इस तैलको अलग निकाल शीशीमें भरले । दूसरे दिन धूपमें रख देनेसे साफ होजाता है । (श्री० स्वा० हरिशरणानन्दजी)

उपयोग—इस तैलकी इन्द्रिय पर मालिश कर नागरवेलका पान बाँध देवें । एवं ४-६ बूँद बताशे या केपसूलमें डालकर निगल जायँ, ऊपर मिश्री मिला दूध पीवें । विशेष सूचना पहली विधिमें लिखी है ।

(२६) मल्लसर्पि ।

बनावट—शुद्ध मल्ल ४ माशे, कनेरकी जड़की छाल २ तोले, सफेद चिरमी ३ तोले और दूध ४ सेर ले । सबको दूधमें ओटाकर दही जमा देवें । दूसरे दिन मथकर घृत निकाल लेवें । (अ० यो० मा०)

उपयोग—इस घृतकी मालिश करनेसे हस्तमैथुनजनित शिथिलता थोड़ेही दिनमें दूर होती है । इस घृतको सुपारी छोड़ लिङ्ग पर मर्दन कर ऊपरसे नागरवेलका पान बाँध देना चाहिये । विशेष सूचना अपूर्व तिलामें लिखी है ।

(२७) लिङ्ग तैल ।

बनावट—कस्तूरी ७ रत्ती, कालीमिर्च, जुन्दबेदस्तर, हींग बढ़िया और बीरबहूटी ५-५ माशे, केशर १ माशा और बिनौलेकी गिरी ७ माशे ले । सबको खरल कर चमेलीके ५ तोले तैलमें मिला लेवें । (अ० यो० मा०)

उपयोग—यह तैल लिङ्गकी शिथिलताको दूर करनेमें अति लाभदायक है । हस्तमैथुन और शारीरिक निर्बलतासे उत्पन्न नपुंसकताको दूर करता है ।

(२८) ज्वरेभमृगराट् तैल ।

बनावट—सरसोंका तैल ६ सेर, तिलका तैल ६ सेर, नीमका स्वरस १२ सेर, मजीठ २५ तोले, हल्दी २५ तोले, देवदारु १२ तोले, सोयेके बीज १२ तोले, पीपलकी लाख ४० तोले और कपूर ५ तोले ले । मजीठसे लाख तकको पीसकर कल्क करें । फिर कढ़ाहीमें कपूरके सिवाय सबको डालकर पाक करें । फिर उतार तुरन्त छानले । उसमें से थोड़े

तैलको गरम करके कपूर मिलाले। उसे सब तैलमें मिलाले। (धन्वन्तरि)

उपयोग—इस तैलकी मालिश करनेसे जीर्ण और विषम ज्वर की उष्णता दूर होकर शरीर पुष्ट, रोगहीन और कान्तिवान बनता है।

(२९) चर्मरोगनाशक तैल।

बनावट—नीम की छाल, चिरायता, हल्दी, दारुहल्दी, लाल चन्दन, हरड़, बहेड़ा, आँवला और अड़ूसे के पत्ते, सबको समभाग लेकर कल्क करे। कल्कसे चौगुना तिलोंका तैल, और तैलसे चौगुना जल मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावें। पानी जल जाने पर उतार कर तुरन्त छान लेवें। (स्वा० र०)

उपयोग—इस तैल की मालिश करनेसे सब प्रकारके त्वचारोग, व्यूची, खुजली, खाज, चमड़ी फटना, शुष्क होना, फुन्सी आदि दूर होते हैं। साधारण ओषधियोंमें से यह तैल बनता है। फिर भी बड़े-बड़े दृढ़ रोगोंको भी थोड़े ही दिनोंमें दूर करता है।

(३०) बिल्वादि तैल।

बनावट—कच्चे बेल की गिरी ४० तोले, सरसोंका तैल २ सेर, जल और बकरीका दूध ८-८ सेर लेवे। प्रथम बेलगिरीको गोमूत्र में पीसकर लुगदी बना लेवें। फिर एक पीतलकी कलईदार कढ़ाहीमें सबको मिलाकर धीमी आंचसे पकावे। जब लुगदी लाल होने लगे, तब उतारकर तुरन्त छानले। (शा० सं०)

मात्रा—२ से ४ बूंद ड्रापरसे कानमें डाले।

उपयोग—कानका शूल, कर्णस्राव, बधिरता आदि कानके रोग मिटते हैं। लोहे की कढ़ाहीमें तैलका रंग काला होजाता है, इसलिये पीतल का बरतन लेना चाहिये।

(३१) क्षार तैल।

बनावट—कोमल मूलियोंका खार, सज्जीखार, जवाखार, सैंधा नमक, कालानमक, समुद्रनमक, विड़नमक, सोंचरनमक, हींग, सुहिञ्जनेकी छाल, सोंठ, देवदारु, कूठ, सौंफ, बच, रसौंत, पीपलामूल और नागरमोथा, सब १-१ तोला लेकर कल्क करे। सरसोंका तैल ६४ तोले; केले के खम्भे का रस, बिजौरे का रस और मधुशुक्त २५६-२५६ तोले ले। फिर सबको मिला चूल्हे पर चढ़ाकर पाक करे। तैल मात्र शेष रहे तब उतारकर छान लेवे। (शा० सं०)

मधुशुक्त विधि—नींबूका रस ६४ तोले, शहद १६ तोले और पीपलका चूर्ण ४ तोले मिला एक बोतलमें बन्द कर अनाज की कोठीमें

३ दिन दवा देनसे मधुशुक्त तैयार होता है।

उपयोग--इस तैलको कानमें डालनेसे सब प्रकारके कर्णरोग-पीप बहना, कर्णनाद, कर्णशूल और बधिरता, आदि दूर होते हैं। इनके अतिरिक्त मुख रोग भी नष्ट होते हैं।

यह तेल कर्णार्शजनित बधिरता पर उपयोगी है। इस तेल के प्रयोग से कर्णार्श का क्षरण होता है। फिर बधिरता दूर होती है। इस तरह दोष को निकालनेके लिये इसका उपयोग कर्णपाक पर भी होता है। कभी देह के अन्य भाग में व्रण भरने लगे तब मासवृद्धि अधिक होती है, उस मासवृद्धिको कमी कराने के लिये क्षारतैल का उपयोग होता है।

(३२) निम्ब तैल।

बनावट--निम्बोलीका तैल २॥ सेर, हरताल २॥ तोले, मैनसिल २॥ तोले, चमेलीके पत्ते, मजीठ, मुलहठी, भिलावा, अगर, चन्दनका चूरा, इलायची, प्रत्येक ५-५ तोले ले कल्क करके तैलमें मिलावे और ५ सेर छाछ डालकर तैल सिद्ध करें।

उपयोग--इस तैलमें बत्ती भिगोकर भगन्दरके छेदमें रोज रखने से थोड़ेही दिनोंमें आराम होता है। दूसरी जगहके सड़े घाव भी मिटते है। इस तैलको योगतरंगिणीकारने वल्मीकनाशक लिखा है।

(३३) चक्रमर्द तैल।

बनावट--पुंवाड़के बीज, आहलिव (हालो), राई, सरसों, मालकांगनी, तिल और नारियल की गिरी समभाग लें। नारियल को छोड़ और वस्तुओंको मिलाकर चूर्ण करें। फिर नारियल मिलाकर कोल्हूमें तैल निकलवाले। (आ० नि० मा०)

उपयोग--इस तैलको किञ्चित् निवाया कर मालिश करने से वातरोगसे जकड़े हुए कमर, जाँघ, पिण्डी आदि अंग अच्छे होजाते हैं। पुराने रोगियोंको भी लाभ पहुँचाता है।

(३४) नारायण तैल।

बनावट--असगन्ध, खरैटी, बेलकी छाल, पाढ़, कटेली, बड़ी कटेली, गोखरू, अतिबला (कंघी), नीमकी अन्तरछाल, अरलु, पुनर्नवा, प्रसारणी और अरनी, ये १३ वस्तुएँ ४०-४० तोले लेंवे। सबको जौकुट कर ४०९६ तोले पानीमें डालकर काढ़ा करे। चतुर्थांश जल अवशेष रहने पर उतारकर छान लेवे। इसमें तिल तैल २५६ तोले, शतावरीका रस या क्वाथ २५६ तोले तथा गौका दूध १०२४ तोले

मिलावे। फिर कूठ, इलायची, सफेद चन्दन, खरेटी, वच, जटामाँसी, सैंधानमक, असगन्ध, शैलेय (पत्थरफूल), रास्ना, सोया, देवदारु, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, मुद्गपर्णी, मापपर्णी और तगर ४-४ तोले ले कल्क करके मिलावें। फिर कढाही को चूल्हे पर चढ़ाकर मन्द ताप पर पाक करे। पश्चात् उतार कर तुरन्त छान लेवे। (भा० प्र०)

उपयोग--इस तैलका वातशमनार्थ पीने, नस्य, वस्तिकर्म और मर्दनमें उपयोग होता है। सब प्रकारके वातरोग-पक्षाघात, मन्यास्तंभ, हनुस्तम्भ, ऊरुस्तम्भ, कटिग्रहवायु, गलग्रह, गंज, चलते समय पैर टेढ़े पड़ना, अंग सूखना, इन्द्रियोंकी शक्ति नष्ट होना, वीर्यके साथ रक्त जाना, ज्वर, राजयक्ष्मा, अंडवृद्धि, अंडकोषमें शूल चलना, दन्तरोग, शिरोग्रह, पंगुता, स्मृतिनाश, कष्टसाध्य किसी भी प्रकारके वातरोग, सर्वाङ्गवात, बहरापन, पसलियोंका शूल, ज्वर, क्षय, धातुक्षीणता, रक्तविकार आदि रोगोंमें अति लाभदायक है। इसके प्रभावसे वंध्याको पुत्र होता है। इसकी मालिश हाथी और घोड़ो के लिये भी हितकर है।

यह तैल वातवहा नाड़ियोंके क्षोभ को दूर कर वातवाहिनियोंको सबल बनाता है। वातके साथ पित्तविकार हो, तो भी इस तैलकी मालिश हितावह है। यदि आमदोष हो, तो इस तैल की अपेक्षा विषगर्भ तैल की मालिश विशेष अनुकूल मानी जायगी।

(३५) कासीसादि तैल।

बनावट--कसीस, लाँगली (कलिहारी), कूठ, सोंठ, पीपल, सैंधानमक, मैनसिल, कनेर की छाल, वायविड़ङ्ग, चित्रकमूल, अड़ूसे के पत्ते, दन्तीमूल, कड़वी तोरई के बीज, सत्यानाशी की जड़, हरताल, सबको १-१ तोला जलमें पीसकर लुगदी बनावे। फिर तिलोंका तैल ६४ तोले, थूहरका दूध ८ तोले, आक का दूध ८ तोले और गोमूत्र २५६ तोले ले। सबको बड़ी कड़ाहीमें मिलाकर मन्दाग्निसे पकावे। फिर उतारकर तुरन्त छान लेवे। (शा० सं०)

उपयोग--यह तैल अर्श पर लगानेसे मस्से मुरझा जाते हैं। यह तैल गुदाकी वली को नुकसान नहीं पहुँचाता। इस तैल की धैर्यपूर्वक ३-४ मास तक लगाते रहना चाहिये।

(३६) लाक्षादि तैल।

बनावट--पीपल की लाख ४ सेर, सोया, असगन्ध, हल्दी, देवदारु, रेणुक बीज, कुटकी, मूर्वा, कूठ, मुलहठी, नागरमोथा, लाल चन्दन, रास्ना, पद्माख, खस, सफेद चन्दन, जटामांसी और मजीठ

१।-१। तोला ले। तिलका तैल १ सेर और दहीका पानी अथवा मट्ठा ४ सेर ले। पहले लाखको १६ सेर जलमें मिलाकर औषधिकृति प्रकरणमें लिखे अनुसार क्वाथ (रस) करे। ४ सेर जल शेष रहे तब उतार कर छानले। फिर और वस्तुओं को जलमें पीसकर कल्क करे। पश्चात् पीतल की कलई की हुई कढ़ाईमें सबको मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। तैल शेष रहे तब उतारकर तुरन्त छानले। (शा० स०)

सूचना—तेल पाक होने पर छरीला नखी, कपूर, कूठ और सफेद चन्दन आदि सुगन्ध द्रव्य १।-१। तोला मिला लेनेसे तैल सुगन्धित बनता है। यह तैल एक साथ ४ गुना बनानेसे अच्छा बनता है और पूरा मिलता है, कम बनाने पर कुछ जल जाता है, तथा कुछ लाखके रसमें मिल जाता है, जिससे कम हो जाता है। इस पाठमें लाख १ सेर, तैल ४ सेर मट्ठा १६ सेर लें, तो तैल योग्य बनता है।

उपयोग—इस तैल की मालिशसे जीर्णज्वर, सब प्रकारके विषम ज्वर, कास, श्वास, प्रतिश्याय, कटिवात, पीठमें कफपित्तसे होनेवाला दर्द. वात-पित्त प्रकोप, अपस्मार, उन्माद, खुजली, शूल, यक्ष राक्षसका प्रकोप (कीटाणुजन्य ज्वर, धनुर्वात आदि) प्रस्वेदमें दुर्गन्ध आना, गात्र-स्फुरण और क्षयरोगमें अति हितकर है। इस तैलकी मालिशसे गर्भिणी स्त्री और गर्भ पुष्ट होते है, हाथ-पैरो की जलन दूर होती है। क्षयरोगमें इस तैलकी मालिश करते रहनेसे शक्तिका रक्षण होता है। क्षय रोगमें जब ज्वर मर्यादित (९९ डिग्रीसे कम) हो, तब मालिश करें। ज्वर बढ़ जाने पर मालिश न करे।

(३७) घाव तैल।

बनावट—भिलावा, लहसुन, प्याज और अजवायन ५-५ तोलेको मिलाकर ४० तोले तिलके तैलमें भूनें। ठण्डा होनेपर छान लें।

उपयोग—यह तैल आगन्तुक जख्म (छुरी, चक्कू, पत्थर, आदिसे चोट लगने पर खून निकलना) दूर करनेमें अति उपयोगी है। यह तैल साधारण वस्तुसे बना है, परन्तु अति लाभदायक है। इस तैलमें हाथ-पैरका भाग डुबो देनेसे रक्तस्राव तत्काल रुक जाता है, और घाव भर जाता है। इस तैलका फोहा बाँधनेसे घाव नहीं पकता।

दूसरी विधि—हरड़, बहेड़ा, आँवला तीनों ५-५ तोले, नीम के पत्ते ३० तोले और निर्गुण्डीके पत्ते १५ तोले ले। सबको ४०० तोले जलमें मिलाकर क्वाथ करे। चतुर्थांश जल शेष रहने पर छानले। फिर इस जलमें तिल-तैल ८० तोले तथा गूगल, राल, शिलारस, गंधा-

बिरोजा और मोम ४-४ तोले मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। तैल सिद्ध होने पर उतारकर तुरन्त छानलें। पश्चात कार्बोलिक एसिड ५। तोले और कपूर ४ तोलेको एक बोतलमें भरें। जल सदृश प्रवाही हो जाने पर तैलमें मिला लें। (श्री गोपालजी कुँवरजी ठक्कुर आयुर्वेदाचार्य

यह तैल शीतल होने पर मलहम सदृश गाढ़ा बन जाता है, पतले प्रवाही तैलकी आवश्यकता होने पर अग्नि पर या धूपमें रखकर किञ्चित् गरम कर लेना चाहिये।

उपयोग—यह तैल चोट लगने पर मांस कुचल जाना, चोट लगकर रक्तस्राव होना, मांस फटकर घाव होजाना, पूय निकलना, व्रणरोपण न होना, जले हुए भागमें पूयोत्पत्ति होजाना, छुरी, तलवार, कील, भाला आदि लगकर रक्तस्राव होना, आदि आगन्तुक व्याधियों पर आश्चर्यजनक लाभ पहुँचाता है। यह तैल रक्तप्रवाहको तत्काल बन्द करता है। व्रणको शुद्ध बनाता है; सड़ते हुए मांसको रोकता है, नया मांस लाता है, और व्रणको भर देता है।

अकस्मात् जल जाने पर इस तैलका प्रयोग करनेसे और शीतल जलका स्पर्श न करानेसे उस स्थान पर त्वचा मांस सड़कर पूयकी उत्पत्ति नहीं होती, इतना ही नहीं, लगानेके साथ बर्फके समान शीतलता पहुँचाकर वेदनाको १५ मिनटमें शान्त कर देता है।

ग्रीष्म ऋतुमें छोटे बच्चोंके शिर या देहमें छोटे-छोटे फोड़े होकर पक जाते हैं। फिर पूयस्राव होता रहता है। उस रोग पर दो चार दिन तक लगाते रहनेसे फोड़े सूख जाते हैं; नये उत्पन्न नहीं होते और त्वचा स्वच्छ होजाती है।

कर्णपाक होकर पूयस्राव होने पर इसकी बूँद दिनमें १-२ बार डालते रहनेसे पूयस्राव बन्द होता है, और घाव भर जाता है।

यह तैल ड्रेसिंगके लिये अति हितावह होनेसे विविध रोगोंके ड्रेसिंगमें अनेक औषधियोंका कार्य कर देता है। यह डाक्टरी आइडोफार्म, टिंचर आयोडीन, जिंक मलहम, बोरिक मलहम, कार्बोलिक एसिड, हाइड्राजिरी लोशन आदि औषधियोंके स्थान पर काम देता है। यह उत्तम कीटाणुनाशक और व्रणरोपण है। लेखकका अनेक वर्षोंका अनुभव है। लेखकने नाम "ड्रेसिंग का तैल" दिया है।

सूचना—इस तैलका प्रयोग करनेके पहले घावको नीम जल मिलाकर उबाले हुए जल या कार्बोलिक लोशनसे धो लेना चाहिये।

(३८) नाड़ीव्रणहर तैल।

बनावट—भिलावा और कौंच बीज २-२ तोले, खुरासारी अजवायन, मुर्दासींग, नीलेथोथेका फूला ३-३ तोले और तिलका तैल १॥ सेर ले। पहले तैलको चूल्हे पर चढ़ावे। उफान आने पर भिलावा डालकर जलावें। फिर कौंचका चूर्ण और अजवायनका चूर्ण डालें। पश्चात् कढ़ाहीको नीचे उतार मुर्दासंग और नीलाथोथा मिलाकर अच्छी रीतिसे घोटे। फिर छानकर बोतल में भरले।

उपयोग—इस तैल सब प्रकारके नासूरोंको भरनेमें अकसीर है। साधारण फोड़ोंके लिये छाननेकी जरूरत नहीं। अनेक नाड़ीव्रणके रोगियोंको इस तैलके उपयोगसे लाभ होगया है, जो अनेक वर्षोंसे पीड़ित रहते थे। बड़े-बड़े शहरोंके डाक्टरोंकी ओषधियाँ करके निराश होगये थे, ऐसे रोगियोंका रोग निर्मूल हुआ है।

सूचना—भिलावेके धुएँ से शरीरको बचाना चाहिये।

(३९) भृङ्गराज तैल।

बनावट—भाँगरेका रस ४ सेर, मंडूर, त्रिफला और अनंतमूल, इन पाँच ओषधियोंको समभाग मिलाकर २० तोले कल्क और तिलका तैल १ सेर ले। सबको ४ सेर जलके साथ मिलाकर मंदाग्निसे तैल सिद्ध करें।

(शा० स०)

उपयोग—दारुणक (सिर पर छोटी-छोटी फुन्सी होना, केशभूमि कठोर होना, खुजली चलना), अरुंषिका (छोटे-छोटे फोड़े शिर पर होना, पीप निकलना), बाल सफेद होजाना, इन्द्रलुप्त (बाल झड़ जाना) इत्यादि दोष इस तैलकी मालिश से दूर होजाते हैं। इसका अनेक समय हमने अनुभव किया है। यह सत्वर लाभ पहुँचाता है।

(४०) करवीर तैल।

बनावट—सफेद कनेरका मूल, दन्तीमूल, हल्दी, कलिहारी, चित्रकमूल, सैंधानमक ३-३ तोले, बिजौरेका रस ४ सेर और आकका दूध २० तोले लें। पहली ६ वस्तुओंको जलमें पीसकर चटनी बनालें। फिर एक कढ़ाहीमें सबके साथ सरसोंका तैल १ सेर मिलाकर मन्दाग्नि पर सिद्ध करें।

(यो० र०)

उपयोग—भगन्दर और नासूरमें इस तैलका बत्ती द्वारा प्रयोग करनेसे थोड़े ही दिनोंमें वे भर जाते हैं।

(४१) कोशातक्यादि तैल।

बनावट—कड़वी तोरईका रस २ सेर, तिलका तैल ४० तोले

तथा कड़वी तुम्बीके बीज और सोठ ४-५ तोले लें। पहले तुम्बीके बीज और सोठका कल्क करें। फिर सबको पीतलकी कलई वाली कढ़ाहीमें भर कर मन्दाग्नि पर तैल सिद्ध करें। (आ० मि०)

उपयोग—इस तैलकी पट्टी बाँधनेसे सड़ा मांस, उपदंशके घाव में कीड़े पड़ गये हो, दुष्टव्रण, भगन्दर आदि रोग दूर होते हैं।

सूचना—इस तैलमे मोम, सिंदूर, करीला और मुर्दासींग मिलानेसे मलहम बनता है जो घावोंको सत्वर भर देता है।

(४२) कुष्ठराक्षस तैल।

बनावट—पारद, गन्धक, कूठ, सतौनेकी छाल, चित्रकमूल, सिंदूर, लहसुन, हरताल, बावची, अमलतासके बीज, ताम्रभस्म, मैनसिल, ये १२ ओषधियाँ १-१ तोला और सरसोंका तैल ३२ तोले ले। सब ओषधियोंके कपड़छान चूर्णको तैलमें मिला बोतलमें भर ग्रीष्म ऋतुके तीव्र तापमें रखे। दिनमें ३-४ समय बोतलको चलाते रहे। २१ दिन सूर्यके तापमें रखनेसे तैल सिद्ध होजाता है। (भै० र०)

उपयोग—इस तैलके प्रयोगसे सब प्रकारके कुष्ट नष्ट होते है। चित्र, उदुम्बर कुष्ट, कच्छू, मांसवृद्धि, भगंदर, विचर्चिका, पामा, दारुण वातरक्त, गम्भीर और फूटा हुआ वातरक्त आदि दूर होते है।

(४३) षड्बिन्दु तैल।

बनावट—अरंडी की जड़, तगर, सोवा, जीवन्ती (डोडी), रास्ना, सैंधानमक, भाँगरा, वायविड़ङ्ग, मुलहठी और सोठको समभाग मिला भाँगरेके रसमें पीसकर कल्क करें। बादमें कल्कसे ४ गुना काले तिलका तैल और उतना ही बकरीका दूध तथा तैलसे ४ गुना भाँगरेका रस मिलाकर यथाविधि तैल सिद्ध करें। (ग० नि०)

उपयोग—इस तैलके नस्यसे सब प्रकारके शिरोरोगका शीघ्र नाश होता है, और बाल गिरना, दाँत हिलना, प्रतिश्याय, नाकमें सूजन आदि दोष दूर होकर दृष्टि गरुड़ समान तीव्र होती है, एवं पलित रोग दूर होकर बाल काले होजाते हैं।

(४४) सिद्धार्थादि तैल।

बनावट—सफेद सरसों, पीपल, कूठ, गोभी और जटामाँसीको समभाग मिला जलमें पीसकर कल्क करे। कल्क से चार गुना सरसों का तैल और १६ गुना जल मिलाकर तैल सिद्ध करे। (र० चं०)

उपयोग—गुदा अथवा योनिमें बस्ति द्वारा इस तैलका प्रवेश करानेसे प्रसूता स्त्रीका रुका हुआ जेर शीघ्र गिर जाता है।

(४५) मूलकादि तैल।

बनावट—सूखी मूली, साँठीकी जड, देवदारु, रास्ना और सोंठ को जलमें पीसकर कल्क करे। बादमें कल्कसे ४ गुना सरसोंका तैल और १६ गुना जल मिलाकर तैल सिद्ध करे। (वृन्द)

उपयोग—इस तैलकी मालिश करनेसे सब प्रकारके सूजन रोग मूलसहित दूर होते हैं।

(४६) कटुतुम्बी तैल।

बनावट—वायविडङ्ग, जवाखार, सैंधानमक, वच, रास्ना, चित्रक-मूल, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल और देवदारु, सबको समभाग मिला कड़वी तुम्बीके रसमें पीसकर कल्क करे। बादमें कल्कसे ४ गुना सरसों का तैल और १६ गुना कड़वी तुम्बीका स्वरस मिलाकर मन्दाग्नि पर तैल सिद्ध करें। (वृन्द)

उपयोग—इस तैलके नस्यसे गलगण्ड रोग शमन होता है।

(४७) मनःशिलादि तैल।

बनावट—मैनसिल, हरताल, भिलावा, छोटी इलायची, अगर, रक्तचन्दन, चमेलीके पत्ते और तगर, सबको जलके साथ पीसकर कल्क करें। बादमें नीमके बीज (निबोली) का तैल कल्कसे ४ गुना और १६ गुना जल मिलाकर तैल सिद्ध करें। (वृन्द)

उपयोग—वल्मीक (सूजन होकर छोटे-छोटे अनेक छिद्र होना) रोग पर इस तैलको पट्टी लगानेसे शीघ्र लाभ होता है।

(४८) गन्धकादि तैल।

बनावट—गन्धक और हल्दी ४-४ तोले मिलाकर कल्क करे। फिर कल्क, सरसोंका तैल ३२ तोले और धतूरेके पत्तोंका रस ३२ तोले मिलाकर मन्दाग्नि पर सिद्ध करें। (र० र०)

उपयोग—इस तैलके डालनेसे कानका पुराना नाड़ी-व्रण (पीप आना) दूर होता है।

(४९) बालकरक्षक तैल।

बनावट—मकोयके पत्ते, पियावाँसा, करेला, भाँगरा, छोटी दूधी पञ्चांग और नागरबेलके पान, सबका रस ४०-४० तोले ले। हल्दी, जटामाँसी, अगर, कूठ, सुगन्धवाला, असगन्ध, मुलहठी, रक्तचन्दन, जायफल, लौंग, सबको समभाग लेकर २० तोले कल्क करें। रस, कल्क और तिलका तैल १ सेर मिलाकर मन्दाग्नि पर तैल सिद्ध करें।

फिर १ छटॉक तैल गरम कर १ तोला कपूर डाल सब तैलमें मिलालें ।

उपयोग—इस तैल की मालिशसे बालकोंके जीर्णज्वर, तालुकण्टक (बालशोष), निर्बलता, मृद्धस्थि, कण्डु आदि रोग दूर होते हैं ।

(५०) धातक्यादि तैल ।

बनावट—धायके फूल, आँवले, तेजपात, जलबेंत, मुलहठी, कमलके फूल, जामुनकी गुठली, आमकी गुठली, कसीस, लोद, कायफल, तेंदूकी छाल, कच्ची फिटकरी, अनारकी छाल, गूलरकी छाल और कच्चे बेल फल, इन १६ ओषधियोको १।-१। तोले मिला कूट चूर्ण कर बकरीके मूत्रसे पीसकर लुगदी बनावे। पश्चात् कढ़ाहीमें २ सेर तिलका तैल, ४-४ सेर बकरीका मूत्र और बकरीका दूध मिलाकर मन्दाग्नि पर यथाविधि पाक करे । (च० सं०)

उपयोग—इस तैलका फोहा योनिमें रखने या उत्तर वस्ति (पिचकारी) देनेसे विप्लुता, परिप्लुता, वातला आदि वातज योनि रोग, योनिके भीतरका शोथ, योनि बाहर उभर आना, योनिशूल, घाव होना, पीप बहना एवं योनिकन्द आदि रोग दूर होते हैं। योनिशूलमें पेड़ू, कमर, पीठ आदि पर मालिश भी करनी चाहिये ।

(५१) नतादि तैल ।

बनावट—तगर, बड़ी कटेलीका पञ्चांग, कूठ, सैंधानमक और देवदारु, सबको समभाग मिला जलमें पीसकर ४० तोले कल्क करे । एक कढ़ाहीमें कल्क, २ सेर तिलका तैल और कल्कमें कही हुई ओषधियोका क्वाथ ८ सेर मिलाकर मन्दाग्नि पर तैल सिद्ध करें। (अ० हृ०)

उपयोग—इस तैल की पिचकारी लगाने या फोहाको योनिमें रखनेसे विप्लुता योनि (योनिके भीतर पीड़ा बनी रहना), उदावृता योनि, वातला योनि, योनिशोथ, योनिशूल आदि दूर होते हैं।

गर्भाशय शिथिल होनेपर मासिक धर्म अनियमित आता है, एवं मासिक धर्म के समय शूल निकलना, कमर में वेदना, चारों ओर दबानेमें पीड़ा होना आदि लक्षण प्रतीत होते है, ऐसी अवस्थामें इस तैलकी उत्तर वस्ति दिनमें १-२ वार देने (१-२ औंस तेल चढाने तथा कमर, गर्भाशय, पैर आदि भाग पर मालिश करने पर योनि शूल निवृत्त होता है, गर्भाशय सबल होता है, और मुखमण्डल तेजस्वी बनता है । यदि योनिमार्ग में ही बस्ति देना हो, तो रुग्णाको बॉयी करवट लेटा, बॉया हाथ पीठकी ओर करा, पैर मुड़वावें, अर्थात् सिम्स पोजिशन ('Sims' Position) में लेटाकर पिचकारी देवे और आध घण्टे तक

खे ही रहने देवे। योनि मुख पर रुईका फोहा लगा देवे। बस्ति गर्भाशयमें देना हो तो पलंग पर चित लेटा, गर्भाशय और योनि मुख ऊँचा रखवाकर रबरके निर्जन्तुक किये हुए केथोर द्वारा तैल प्रवेश करावे। इस बस्तिके प्रयोगसे अच्छा लाभ पहुँच जाता है।

(५२) बला तैल।

बनावट—बला (खरेंटी) के मूल, दशमूल, जौ, बेर, कुलथी, पाँचोका अलग-अलग क्वाथ ८-८ सेर, गोदुग्ध ८ सेर, तिलका तैल १ सेर और निम्न ओषधियोका कल्क २० तोले मिला यथाविधि पाक कर तैलको सिद्ध करे। कल्कके लिये मधुरादि गण (काकोली, क्षीर-काकोली, मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, ऋद्धि, वृद्धि, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, गिलोय, काकड़ासींगी, वंशलोचन, पद्माख, मुनक्का, जीवन्ती, मुलहठी और पुण्डरिया, इनमें जो मिल सके), सैधानमक, अगर, राल, सरलका गोंद, देवदारु, मजीठ, सफेद चन्दन, कूठ, छोटी इला-यची, कृष्णसारिवा, जटामाँसी, छरीला, तेजपात, तगर, श्वेत सारिवा, वच, शतावर, असगन्ध, सोया, पुनर्नवाकी जड़, सबको समभाग मिला जलमें पीसकर कल्क करे। (सु० सं०)

उपयोग—इस तैल की मालिश या योनिमें संतर्पण करने और पिलानेसे प्रसूताके संपूर्ण वातप्रकोप शमन होते है। यह तैल गर्भ धारण की इच्छा रखने वाली स्त्री और क्षीणशुक्र पुरुषके लिये हितकर है। इसके प्रयोगसे धातुक्षीणता, मर्मस्थान पर चोट लगना, टूटे हुए तथा निर्बल हुए अवयव, आक्षेप आदि वातव्याधि, सब नष्ट होते है। इसके सेवनसे धातु और यौवन स्थिर रहते है।

(५३) महाविषगर्भ तैल।

बनावट—धतूरेके बीज, निर्गुण्डीके बीज, कड़वी तुम्बीके बीज, पुनर्नवाके मूल, अरंडीके बीज, असगन्ध, पुंवाड़, चित्रकमूल, सुहिजने की छाल, काकमाची, कलिहारीके मूल, नीमकी अन्तर छाल, बकायन की छाल, दशमूल (शालपर्णी आदि १० ओषधियाँ), शतावर, छोटे करेले, सारिवा, गोरखमुण्डी, विदाराकन्द, सेहुँड, आक, मेढासिंगी, सफेद कनेरके मूल, पीली कनेरके मूल, काकजंघाके मूल, अपामार्गके मूल, बला, अतिबला, नागबला, महाबला, छोटी कटेली, अड़ूसे के पत्ते, गिलोय और प्रसारणी, इन ४२ ओषधियोंको ४-४ तोले लेकर १०२४ तोले जलमें मिलाकर चतुर्थांश क्वाथ करे। पश्चात् त्रिकुट, कुचिला, रास्ना, कूठ, पीला सोमल, नागरमोथा, देवदारु, काला बच्छ-

नाग, जवाखार, सज्जीखार, पंचलवण, नीलाथोथा, कायफल, पाठा, भारंगी, नौसादर, त्रायमाण, जवासा, जीरा, इन्द्रायण फल, इन २६ ओषधियोको १-१ तोले लेकर जलके साथ पीसकर कल्क करें। पश्चात् कल्क, क्वाथ और काले तिलके ४ सेर तैल को मिलाकर यथा विधि सिद्ध करें। (यो० र०)

वक्तव्य—तेल तैयार होनेपर थोड़ा गरम रहने पर उसमें हम कपूरका चूर्ण १० तोले मिलाते हैं।

उपयोग—इस तैलकी मालिशसे सब प्रकारके आम और शूलसह वातरोग, सन्धिवात, कटिवात, अर्धाङ्गवात, गृध्रसी, दण्डापतानक आदि वातरोग तथा कर्णनाद, कानसे कम सुनना आदि दूर होते है। वेदना शमनार्थ यह उत्तम प्रयोग है।

(५४) लघु विषगर्भ तैल ।

बनावट—काले तिलका तैल, भूसीका क्वाथ, कनेरकी जड़का क्वाथ, धतूरेका स्वरस, निर्गुण्डीके पत्तोका स्वरस, आकके पत्तोका स्वरस, जटामांसीका क्वाथ, सबको २५६-२५६ तोले मिलाकर तैल सिद्ध करें। पश्चात् धतूरेके बीज, कूठ, फूल प्रयगु, वच्छनाग, सत्यानाशीकी जड़, रास्ना, सफेद कनेरकी जड़, मालकांगनी, कालीमिर्च दन्तीकी जड़, जटामांसी, बच, चित्रकमूल, पीली सरसों, देवदारु, दारुहल्दी, हल्दी, अरंडीकी जड़, लाख, त्रिफला, मजीठ, इन २३ ओषधियोके ४-४ तोले के बारीक चूर्णको तेलमें मिलाकर ७ दिन धूप में रखकर छान लेवे। २१ दिन धूपमें रखना चाहिये। (यो० र०)

उपयोग—इस तैलकी मालिशसे महाविषगर्भमें लिखे हुए सब प्रकारके वातरोग नष्ट हो जाते हैं।

(५५) चन्दनादि यमक ।

बनावट—रक्तचन्दन, बड़की जटाके अंकुर, मजीठ, मुलहठी, नीले कमल, दूब, पतंग और धायके फूल, सबको समभाग मिला दूधमें पीस ४० तोले कल्क करें। फिर तिलका तैल और गोघृत १-१ सेर तथा गोदुग्ध ४ सेर मिलाकर यमक करें। (वृन्द)

उपयोग—इस यमकके लेपसे अग्निदग्ध व्रण जल्दी भर जाता है। लगानेके साथ तीव्र व्यथा शमन होती है, और थोड़े ही दिनोंमें घाव भर जाता है।

सूचना—अग्निदग्धव्रणको ठंडे जलसे नहीं धोना चाहिये।

(५६) पीड़ाशामक तैल ।

बनावट—सिरस, धतूरा, निर्गुण्डी और सिताब (सर्पदंष्ट्रा)

इन चारोंके पान, मैदालकड़ी, सोंठ, अजवायन, बच, सैंधानमक और कपूर, ये १० औषधियाँ ५-५ तोले, वच्छनाग और कुचिला २॥ २॥ तोले और तिलका तैल १२० तोले लेवे। कपूरको छोड़ शेष सब औष-धियोंको मिला कूट जलमें पीसकर कल्क करें। फिर कढ़ाहीमें तैल डालकर गरम करें। इसमें सब कल्ककी पकौड़ी तल-तल कर निकाल लेनेसे तैलमें गुण और सुगन्ध आजाते है। तैलका रंग हरा होजाता है। फिर कढ़ाही को नीचे उतार तैलको तुरन्त छान लेवे, और उसमें कपूर का चूर्ण मिलाकर ढकदे। शीतल होने पर बोतलोंमें भर लेवे।

(श्री गोपालजी कुँवरजी ठक्कुर आयुर्वेदाचार्य)

उपयोग—इस तैलका उपयोग वातरोगमें तात्कालिक वेदना शमनार्थ किया जाता है। कभी-कभी चोट लगनेके पश्चात् कुछ कसर रह जाती है। फिर मंद-मंद वेदना होती रहती है, कभी-कभी शूल निकलता है, और दीर्घकाल तक त्रास पहुँचता रहता है। इन सब पर इस तैलकी मालिश और थोड़े सेकसे अत्यंत लाभ पहुँचता है। सांधे छूटे होते हैं, हड्डियोंमें होनेवाली वेदना दूर होती है, और ये सब अवयव पहलेके समान दृढ़ बन जाते है।

चोट लगकर रक्त जम जाता है। फिर रक्ताभिसरण क्रिया योग्य नहीं होती, और वायु प्रकुपित होकर वेदना होने लगती है। ऐसी परिस्थितिमें इस तैलकी मालिश अति हितकर है।

सूचना—जहरी होनेसे इस तैलके मालिश करनेके पश्चात् हाथोंको अच्छी तरह साबुनसे धो लेना चाहिये।

अंजन प्रकरण।

जीवनका आधार प्राणिमात्रके लिये नेत्र हैं। नेत्र निर्दोष होनेसे जीवन सुखमय रहता है। इसलिये नेत्रौषधियां बनानेमें अति सम्हाल रखना चाहिये, और परीक्षा कर रोगका निश्चय करके औषधि प्रयोग करना चाहिये। एवं हो सके तब तक तीक्ष्ण औषधियोंका उपयोग न करें।

वर्षाऋतु में वायुमण्डल के भीतर विविध प्रकारके कीटाणु फैल जाते हैं। एवं बड़े शहरों के वायुमण्डल में तो रोगोत्पादक कीटाणु बारहों मास वर्तमान रहते हैं। वे कीटाणु वायुके संस्पर्श के साथ नेत्रकी श्लैष्मिक त्वचा—बाह्य पटल को लगते रहते हैं। इनमें से कितनेक कीटाणु नेत्रवारि द्वारा नष्ट हो जाते हैं, दिनमें पलक के खुलने बन्द होने की क्रिया सतत चलती

रहती है। इस हेतु से आवश्यक नेत्रवारि बाहर निकल कर सतह को सम्हालता रहता है। किन्तु रात्रिके समय पलकों की क्रिया स्थगित हो जाती है। इस हेतु से नेत्रकोण या नासारन्ध्र में प्रवेशित कीटाणुओं को समय मिल जाता है। जिससे कितनेक कीटाणु वहां दृढ हो जाते हैं। जो शनैः-शनैः आबादी बढाकर कुछ दिनों में विविध रोगों की संप्राप्ति कराते हैं। इस उद्देश्य को लक्ष्य मे रखकर। शास्त्राचार्योंने सौवीराजन (सुरमा) का नित्य प्रति अंजन और ५ या ८ दिन होने पर रसांजनका अंजन करने की आज्ञा की है (च० स० सू० ५। १२)। तथापि आधुनिक विद्वानों की दृष्टिसे निर्दोप नीरोग नेत्रोंमें सुन्दरता दिखानेके लिये अथवा तेजवृद्धि निमित्त नित्य प्रति विविध तीक्ष्ण ओपधमिश्रित नेत्राञ्जन डालते रहने की प्रथाको लाभदायक नहीं कह सकेंगे। मात्र बालकोंके निर्बल नेत्रोंको सबल बनाने के लिये काजल डालने मे विरोध नहीं है। नेत्रोंमें अवस्थित अन्तर शक्ति सबल होने पर यदि बाह्य सहायता बिना नेत्र रोगोंकी उत्पत्ति से संरक्षण कर सकती है, तो विविध ओपधमिश्रित नेत्रांजन का उपयोग न करना यही श्रेयस्कर माना जायगा। अन्यथा वह शक्ति शनैः-शनैः पराधीन और निर्बल हो जायगी। इसके अतिरिक्त जो नेत्रोंकी अच्छी स्थिति में तीक्ष्ण नेत्रांजन डालकर ज्यादा अश्रु-बिन्दु निकालनेका प्रयत्न करते हैं, वे तो नेत्रोंको निःसदेह हानि ही पहुँचाते हैं।

आहार विहारके दोषोंसे नेत्रोंमें उष्णता बढकर रोग उत्पन्न हुआ हो, तो कारणभूत मूलदोप का (अपथ्य आहार-विहार का) त्याग करे। पश्चात् मस्तिष्क और नेत्रोंको शान्ति पहुँचानेके लिये खाने की ओपधि और अनुकूल पथ्य भोजनके साथ नेत्रौषधिका उपयोग किया जाय, तो लाभ शीघ्र पहुँचता है।

उपदंश, सुजाक आदि रोगोंसे रक्त दूषित होकर नेत्ररोग हुआ हो, तो साथमें रक्तशोधक औषधका सेवन करना चाहिये। रक्त की शुद्धि हुये बिना मात्र नेत्रौपधि से कदापि नेत्र रोग दूर नहीं हो सकेगा।

नेत्र-रोगों की चिकित्सामें निम्न सेक आदि ७ कर्म कहे हैं—

सेक आश्चोतनं पिण्डी बिडालस्तर्पणं तथा।
पुटपाकोऽञ्जनं चैभिः कल्पैर्नेत्रमुपाचरेत्॥

(१) सेक—जल आदि की धारासे नेत्रोंको स्वेद देना।

(२) *आश्चोतन*—नेत्रोंमें ड्रापर आदि से अर्क, तैल आदि ओष-धिकी बूँद डालना।

(३) *पिण्डी*—नेत्रो पर लूपड़ी बाँधना।

(४) विडालक—नेत्रोंके ऊपरके भागमें लेप करना।

(५) तर्पण—नेत्रोंको बन्द रखकर दुग्ध आदि नेत्रतृप्तिकर औषधि भरना। विशेष विधि चिकित्सा तत्वप्रदीप प्रथम खण्ड में है।

(६) पुटपाक—पुटपाक कृतिसे निकाला हुआ स्वरस आश्चोतन या तर्पणरूपसे नेत्रोंमें डालना।

(७) अंजन—परिपक्व दोष होने पर औषधिको आँखोंमें डालना।

इन सबमें अनेक उपविभाग हैं। इन सबको शास्त्रीय ग्रन्थोंसे समझ करके ही नेत्र-रोगका उपचार करना चाहिये। बिना समझे उपचार करने पर अनेक समय हानि होने की समावना है।

अञ्जनमें लेखन, रोपण और स्नेहन ऐसे ३ भेद हैं कलमी शोरा आदि क्षारयुक्त, तीक्ष्ण मरिच आदि और अम्ल नीबू रस आदि युक्त अजनको लेखन अजन, हरीतकी आदि कसैले और निम्ब आदि कडवे रस वाले स्निग्ध अञ्जनको रोपण अंजन, एवं घी, शहद आदि मधुर रसयुक्त स्निग्ध अञ्जन को स्नेहन अञ्जन कहते हैं।

सामान्यतः वातज रोगमें स्निग्ध और उष्ण औषधि, पित्तज व्याधिमें शीतल और मधुर औषधि, कफजमें तीक्ष्ण, रूक्ष, उष्ण और विशद औषधि; एवं सन्निपातज रोगमें तीक्ष्ण, उष्ण, मृदु और शीतल नेत्रौषधियोंके संमिश्रण का उपयोग करना चाहिये।

अञ्जनके लिये सलाई काँच, स्फटिक आदि धातु या बारहसींगेमें से बनी हुई चिक्नी, दोनों मुँहकी ओरसे सकुची हुई आठ अंगुल लम्बी बनानी चाहिये। लेखन औषधिके लिये ताम्रा, पत्थर, काँच या बारहसींगेकी सलाई ले। रोपण औषधिके लिये अँगुलीसे अञ्जन करे। अथवा शीशे, लोहे या जस्ते की सलाई तथा स्नेहनके लिये सोने या चाँदीकी सलाई लेनी चाहिये।

नेत्रौषधिको सुबह-शाम अञ्जन करें। मध्याह्नके समय नेत्रोंमें औषधि न डाले। अञ्जन काले भागके नीचे करे। पहले बाँयी आँखमें और फिर दाहिनी आँखमें अञ्जन करे। वर्षाऋतुके समय बादल न हो तब अञ्जन करे।

कच्चे दोषमें अञ्जन, घृतपान, स्नान, गुरु भोजन, क्वाथ आदि औषधि के प्रयोगका निषेध किया है। उपवास करना हितकर है। किन्तु बालक और नाजुक प्रकृति वालोंके लिये मधुर भोजन, भाफसे सेक और नेत्रों पर लेप आदिका उपचार करना चाहिये।

जब अन्तर-दोष वृद्धिके हेतुसे नेत्रपीड़ा बहुत बढ रही हो, तब नेत्रोंमें दोषघ्न अञ्जनका प्रयोग नहीं करना चाहिये। कचा दोष बाहर आजानेके पश्चात् दोषघ्न औषधिका अंजन करनेसे सब दोष नष्ट होकर नेत्र निर्दोष बन

दूसरी विधि—शुद्ध काला सुरमा (या सफेद सुरमा) ४ तोले, कपूर १ तोला, इलायचीके दान ३ माशे, शीतलचीनी ३ माशे, सफेद मिर्च ३ माशे, और मोतीकी पिष्टी १ माशा लें। कपूरको छोड़ शेष सब को गुलावजलसे ३ दिन खरल करें। फिर कपूर मिला १ दिन खरल करके शीशीमें भर लेव।

उपयोग—इस नेत्राञ्जनका दिनमें दो वार अञ्जन करनेसे उष्णता, पानी गिरना, कमजोरी आदि दोष दूर होकर नेत्रोंकी ज्योति बढ़ती है।

(२) श्वेत नेत्रांजन।

बनावट—जसदका फूल (कांसाञ्जन) ८ तोले, देशी मिश्री कुञ्जाकी ८ तोले, फिटकरीका फूला २ तोले और नीलेथोथे का फूला ४ माशे मिला खरल करके शीशीमें भर ले।

उपयोग—इस अञ्जनसे नेत्रोंकी लाली, पानी गिरना और दृष्टिमांद्य आदि रोग दूर होते हैं।

(३) कृष्ण नेत्रांजन (नयनामृतांजन)।

प्रथम विधि—शुद्ध शीशा ५ तोले लेकर रस करें। रस होने पर कढ़ाई नीचे उतार पारा ५ तोले मिलाकर खरल करें। पारा मिल जाने पर शुद्ध काला सुरमा २० तोले मिलावे। फिर कपूर १। तोले डाल ६ घण्टा खरल करके शीशीमें भर लेवे। (यो० त०)

उपयोग—इस नेत्राञ्जनका दिनमें २ वार उपयोग करनेसे जलन, तिमिर, धुन्ध, फूला, काचबिन्दु, मासवृद्धि आदि नेत्ररोग दूर होते हैं, और नेत्रोंकी ज्योति बढ़ती है।

द्वितीय विधि—काला सुरमा ६० तोले, बहेडेकी मींगी ४ तोले; सफेदमिर्च, फिटकरीका फूला, शखकी नाभि, सोरा और मैनसिल २-२ तोले लें। इन सबको मिला कूट कर कपड़छान चूर्ण करें। फिर नीलेथोथे ८ तोलेको २ सेर जलमें मिलावे। इस जलमें से थोड़ा-थोड़ा मिलाकर नेत्राञ्जनको खरल करें। सब जलका शोषण होजानेपर २ सेर गुलाबजलका शोषण करावें। (आ० नि० मा०)

उपयोग—इस नेत्राञ्जनके उपयोगसे फूला, दृष्टिमान्द्य, नेत्र से जल गिरना, मांसवृद्धि आदि सब रोग दूर होते हैं। केवल मोतियाविन्दु और वाल आना, ये दो रोगो पर लाभ नही पहुँचता।

(४) रक्त नेत्राञ्जन।

बनावट—सिंदूर ८ तोले, शोरा १ तोला और सफेदमिर्चका

चूर्ण ३ तोले ले। सबको मिला ३ दिन खरल करें। (आ० नि० मा०)

उपयोग—बबूलादि स्वरसवाली सलाई पर रक्तनेत्राञ्जन लगा कर नेत्रोंमें आँजनेसे नेत्र-शोथ, फूला, लाली, जलन, कुकूणक, मांस-वृद्धि, तिमिर आदि दोष दूर होते हैं। बालको तथा बड़े मनुष्यों, सबके लिये हितकर है। नेत्रोंके ऊपर की सूजन २-४ रोजमें ही दूर होजाती है। मांसवृद्धिको थोड़े दिनमें कम कर देता है।

(५) बबूलादि स्वरस।

बनावट—बबूलकी हरी पत्ती काँटा-कचरा रहित १ सेर, जल १० सेर, पापड़खार (लोटिया सज्जी) और सैंधानमक १०-१० तोले मिलाकर गरम करें। पानी ४ सेर रहे तब उतार मल कर छान ले। फिर जल को पीतल के कलईदार बरतन में डालकर पकावे। आधेसे अधिक पानी कम होने पर शहद १ सेर डालकर मन्दाग्नि से पाक करें। शहद जैसी चाशनी बनाले। चाशनी पतली रहने से सड़ जाती है; कड़ी होजाने पर अञ्जनमें उपयोगी नहीं होती। नेत्रोंमें स्वरसवाली सलाई फिरानेसे ओषधि फैल जाय ऐसी चाशनी चाहिये। (आ० नि० मा०)

उपयोग—इस स्वरसके अञ्जनसे नेत्रोंकी लाली, पानी गिरना, मल आना, खड्डा होनेसे पीप बहना, कुकूणक, शोथ, सब दूर होते हैं। छोटे-छोटे (१ मासके) बालक और बड़े मनुष्य, सबके लिये हितकर है। विशेष बढ़े हुए रोगमें रक्तनेत्रांजन के साथमें प्रयोग करें, और नेत्रके ऊपर रसाजनादि लेप लगावे, तो जल्दी आराम होता है।

(६) नेत्रबिन्दु।

बनावट—अनारदाना ४ तोले लेकर गुलाबजल २० तोलेमें शाम को भिगो दे। सुबह मलकर छानले। फिर फिटकरीका फूला ६ माशे, नीलेथोथेका फूला ४ रत्ती, रसोत ६ माशे, शुद्ध अफीम १ माशा, कपूर देशी १ माशा लें। सबको पीस उपरोक्त गुलाबजलमें मिलाकर दिनमें २ या ३ बार हिला देवे। तीन दिन बाद फिल्टर पेपरसे छान लेवे।

उपयोग—इस अर्कको २-३ बूँद दिनमें दो बार डालते रहनेसे नेत्रोंकी लाली, खुजली, पानीगिरना, जलन होना इत्यादि रोग २-३ दिनमें दूर होते हैं।

(७) रसकेश्वर गुटिका।

बनावट—शुद्ध खर्पर या जसद भस्म, सैंधानमक, नीलेथोथेका

फूला, सोहागेका फूला, सोंठ, मिर्च, पीपल, सबको समभाग मिला नीबूके रसमें ७ दिन खरल करके वर्ति बनाले। फिर शहदमें घिसकर अंजन करे। (वैद्यामृत)

उपयोग—यह गुटिका फूला, धुन्ध, जाला, नये मोतियाबिन्दु और नेत्रवायु आदि सब पर लाभकारी है। इसके अतिरिक्त इस अञ्जन से सन्निपातकी बेहोशी दूर होकर रोगी जल्दी होशमें आजाता है।

(८) चन्द्रोदया वर्त्ति।

बनावट—हरड़, वच, कूठ, पीपल, कालीमिर्च, बहेड़ेकी सींगी, शङ्खनाभि और मैनसिल, सबको समभाग मिला कपड़छान चूर्ण करे। फिर दो दिन खरल करे। पश्चात् बकरीके दूधमें ६ घण्टे खरल कर वर्त्ति बनालें। शङ्खनाभिको अलग खरल कर बारीक होने पर मिलानी चाहिये। (वृन्द)

उपयोग—यह उत्तम लेखन अञ्जन है। मांसवृद्धि और कफ-वृद्धिको दूरकर दृष्टिको स्वच्छ बनाता है। इस वर्तिको शहदमें घिसकर आँखोंमें लगानेसे ३ वर्षका फूला मिटता है। सब प्रकारके मासवृद्धि और रतौंधेको एक महीने में नष्ट करती है। तिमिरमें भी लाभदायक है।

मस्तिष्क और नेत्रमें उष्णता हो, तो सप्तामृत लोहका सेवन कराना चाहिये या सुवर्णमाक्षिक भस्म, वशलोचन, त्रिफला और मुलहठी मिला घृत और शहदके साथ देते रहनेसे सत्वर लाभ पहुँचता है।

(९) तुत्थादि वर्ति।

बनावट—नीलेथोथेका फूला, शङ्खनाभि, मैनसिल, मोरके अण्डे के छिलके, मुर्गीके अण्डेके छिलके, समुद्रफेन, निर्मली चीनीमिट्टी (टेलीग्रामके खभे पर चीनीकी गोल शीशी लगाते है। वह या खिलौने का टुकड़ा), सुवर्णमाक्षिक, मनुष्यकी खोपरी, सबको समभाग मिला कूट-कपड़छान कर दो दिन खरल करे। फिर सुहिजनेके पत्तोंके रसकी ३ भावना देकर वर्ति बनाले।

उपयोग—इसे वर्तिको सुहिजनेके रस अथवा शहदमें घिसकर लगानेसे अति पुराना फूला भी मिट जाता है। अर्बुद, मासवृद्धि और तिमिररोगमें भी लाभदायक है।

(१०) लहसुनादि अञ्जन।

प्रथम विधि—लहसुन, पीपल, राई, वच और हरड़को गोमूत्रमें खरल कर गोलियाँ बनालें।

उपयोग—इस गुटिकाको जलमें घिसकर अञ्जन करनेसे भूत-

जनित ज्वर और विषम ज्वर दूर होते हैं।

(११) अञ्जन रस (सन्निपातहर अञ्जन)।

बनावट—ताम्र भस्म, हींग, खर्पर (कारवेल्लक) और कपूर, इन ४ ओषधियोंको समभाग लेकर कसौंदीके रसमें १२ घण्टे खरल करके सोगठी (शिखराकार गोलियाँ) बनालें। (र० सा० सं०)

उपयोग—इस सोगठीको जलमें घिसकर अञ्जन करनेसे ज्वर, दाह और त्रिदोषके तन्द्रा आदि विकारोंका शमन होता है।

दूसरी विधि—पारद, गन्धक, लोहभस्म और पीपल १-१ तोला, तथा शुद्ध जमालगोटा १२ तोले लेकर २१ दिन तक जम्भीरी नीबूके रसमें खरल करके सोगठी बनाले।

उपयोग—यह अञ्जन सन्निपातके तन्द्रा आदि विकार और सर्प विषमें निद्रा आना आदि दोषको दूर करता है। रोगी सचेत रहता है।

(१२) दार्व्यादि रसक्रिया।

बनावट—दारुहल्दी, परवलके पत्ते, मुलहठी, नीमकी अन्तर छाल, पद्माख, नीलोफर, पुण्डरिया, इन ७ ओषधियोंको समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण करें। रात्रिको ४ गुने जलमें भिगो सुबह मन्दाग्नि पर बरतनके मुँहको ढककर क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहे तब नीचे उतार र छानले। पुनः रसका पाक करें और सम्हालपूर्वक चलाते रहें। रबड़ी जैसा गाढ़ा होजाय तब नीचे उतारलें। शीतल होने पर चतुर्थांश शहद मिलाकर खुले मुँहकी शीशी या अमृतबानमें भरलें। शहदके स्थानमें वंगसेनने शहद और मिश्री ८-८ वाँ हिस्सा मिलाने को लिखा है।

उपयोग—इस रसांजनके अञ्जनसे दाह, जल गिरना, रक्तप्रकोप-जनित पीड़ा (नेत्रों की लाली) आदि रोग दूर होते हैं।

(१३) नेत्ररोगान्तक अंजन।

बनावट—नोसादर, फिटकरीका फूला, समुद्रफाग, सैंधानमक, प्रत्येक ४-४ तोले और नीलाथोथा भुना ३ माशे लें। सबको मिलाकर नीमके पत्तोंके स्वरसके साथ ३ दिन खरल करके सुखालें।

उपयोग—इस नेत्राञ्जनको दिनमें २ बार अञ्जन करनेसे फूला, धुन्ध, कुकूणक आदि नेत्ररोग दूर होते हैं।

(१४) नेत्रसुदर्शन अर्क (पलासांजन)।

बनावट—पलास की ताजी जड़ ५ सेर सुबह मँगाकर ऊपरसे मिट्टी लगी हो उसे साफ कर लेवें। जलसे धोवें नहीं। फिर एक-एक

इंचके टुकड़े करा नलिकायन्त्र अथवा आकाशपातन यन्त्र द्वारा अर्क निकाललें। जड़ लाने और अर्क निकालने की क्रिया एक ही दिन में होनी चाहिये। दूसरे दिन पर रखनेसे अर्क बहुत कम निकलता है। नलिकायन्त्र द्वारा अर्क अच्छा निकलता है। आकाशपातन यन्त्रसे अर्क थोड़ा निकलता है, और किसी-किसी समय जल भी जाता है। अर्क यदि जला हुआ निकलेगा, तो नेत्रोंमें जलन ज्यादा करेगा और फायदा कम होगा। (स्वा० अखण्डानन्दजी)

सूचना—वर्षाऋतुमें अर्क निकालना हो, तो पलासके मूलको १ दिन रहने दें। फिर दूसरे दिन अर्क निकालना चाहिये। अन्यथा अर्क बहुत कमजोर निकलता है और खराब हो जाता है। शीतकालमें अर्क निकाला जाय, तो पूरा निकलता है और दीर्घकाल तक टिकता है।

उपयोग—इस अर्क की २-३ बूँद दिनमें २ बार नेत्रोंमें डालने से नेत्रोंके सब प्रकारके रोग—लाली, तिमिर, वाल आना, कमजोरी दाह, रतौंधी आदि दूर होते है। इस अर्कसे हजारो मनुष्योंके चश्मे उतर गये हैं। इस अर्क की ३-४ बूँद नागरवेल के पानमें डालकर दिन में २ बार खानेसे धातुविकार दूर होता है और पाचन-शक्ति बढ़ती है।

मोतियाबिन्दु का प्रारम्भ हुआ हो और शनैः-शनैः बढने वाला हो तो इस अर्क के ४-६ मास तक उपयोग करने पर दृष्टिमणि की अपार दर्शकता दूर होकर मोतियाबिन्दु नष्ट हो जाता है।

(१५) शंखादि नेत्रांजन।

बनावट—शखनाभि ४ भाग, मैनसिल २ भाग, सफेद मिर्च १ भाग और सैंधानमक आधा भाग ले सबको मिलाकर ५-७ दिन खरल करके नेत्रांजन तैयार करें। (वृन्द)

उपयोग—यह शुक्र (फूला) का नाश करनेमें उत्तम ओषधि है। नेत्रोंमें मल आता हो, तो शहदके साथ अञ्जन करे। नेत्रार्बुद रोग पर कांजीसे अञ्जन करे।

(६१) उन्मादभंजनी वर्ति (अंजन)।

बनावट—शुद्ध मैनसिल, सैंधानमक, कुटकी, बच, सिरसके बीज, हींग, सफेद सरसों, करंजनके बीज, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल और जंगली कबूतरकी विष्टा, इन १२ ओषधियोंको समभाग मिला गोमूत्रमें खरल करके सोगठियाँ बना ले। (र० सा० सं०)

उपयोग—इस ओषधि को दिनमें शहदके साथ और रात्रिमें

जलके साथ घिसकर अञ्जन करनेसे चातुर्थिक ज्वर, अपस्मार और उन्माद रोग दूर होते हैं।

(१७) नयनशाणाञ्जन।

वनावट—पीपल, सैंधानमक, सफेदमिर्च, रसौत, शुद्ध सुरमा नीलेथोतेका, फूला हरड़, मैनसिल, नीमके पत्ते, लोद, फिटकरीका फूला, शंखनाभि और कपूर, इन १२ ओषधियोंको समभाग लें। शंखनाभि को खूब महीन कर लेने पर सुरमा, मैनसिल, नीलाथोथा और फिटकरीका फूला मिलावें। पश्चात् कपूर को छोड़कर अन्य ओषधियोंका कपड़छान चूर्ण मिलाकर ३ दिन खरल करें। फिर कपूर मिलाकर ३ घण्टे खरल करें। अन्तमें शहद मिलाकर ३ घण्टे खरल करके खुले मुँह की शीशीमें भर लेवें। इस नेत्रांजन को लोहे के खरलमें तावेके मूसलसे खरल करनेको मूलग्रन्थमें लिखा है। (भा० प्र०)

उपयोग—यह अञ्जन २ मास उपयोग करने पर तिमिर, पटल और फूलाका नाश करता है।

(१८) पथ्यादि अंजन।

वनावट—हरड़की मींगी ३ भाग, वहेड़ेकी मींगी २ भाग और आंवलोंकी गुठली मींगी १ भाग लें। सबको मिला जलमें ६ घण्टे खरल करके वत्तियाँ बनाले। (यो० र०)

उपयोग—इस वत्तीको जलके साथ घिसकर नेत्रोंमें अञ्जन करनेसे नेत्रोंकी लाली, भयङ्कर अश्रुस्राव, कष्टसाध्य नेत्रपाक इत्यादि रोग दूर होकर नेत्र स्वच्छ होते हैं।

(१९) प्रचेतानाम गुटिका।

वनावट—सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, वहेड़ा, आँवला, सैंधानमक, कुटकी, वच, करञ्जके वीज और सफेद सरसों, सबको सम भाग मिला भेड़के मूत्रमें १२ घण्टे खरल कर गोलियाँ वनाकर छायामें सुखावें। (यो० चि०)

उपयोग—इस गुटिकाको जलमें घिसकर अञ्जन करनेसे भूतोन्माद, हिस्टीरिया, सन्निपात और एकाहिक आदि विषमज्वरमें तन्द्रा नष्ट होती है।

(२०) चन्दनादि वर्ति।

प्रथम विधि—रक्तचन्दन, सोनागेरु, लाख, चमेलीकी कली,

चारोंको समभाग मिलाकर महीन पीसे। फिर गुलाबजलके साथ ६ घण्टे खरल करके वत्तियाँ बनाले। (वं० से०)

उपयोग—इस वत्तीको जलमें घिसकर अञ्जन करनेसे व्रणशुक्र (घावयुक्त फूला), नेत्रोंमें घाव होकर पीप आना, नेत्रोंकी लाली, खुजली आदि रोग नष्ट होते है।

दूसरी विधि—रक्तचन्दन, हरड़, बहेड़ा, आँवला, सुपारी, इन ५ ओषधियोंको समभाग मिलाकर बारीक चूर्ण करें। पश्चात् पलाश के पुष्पोंके स्वरसमें १२ घण्टे खरल करके वत्तियाँ बनालें। (व० से०)

उपयोग—इस वत्तीको जलमें घिसकर अञ्जन करनेसे सब प्रकारके तिमिर रोग नष्ट होते है।

(२१) चन्द्रप्रभा वर्ति।

बनावट—रसौत, सुहिजनेके बीज, पीपल, मुलहटी, बहेड़ेकी गिरी, शङ्खनाभि और मैनसिल, सबको समभाग मिला बकरीके दूधमें १२ घण्टे खरल करके वत्तियाँ बनाले। (वृन्द)

उपयोग—इस वर्तिको जल या शहदमें घिसकर अञ्जन करनेसे नेत्रार्बुद (कोयेके नीचे छोटी-सी फुन्सी—गाँठ होना), पटलदोष, तिमिर, काँच, शिरा लाल होजाना, अधिमांस (सफेद भागमें मांस बढ़ना), मल आना, रतौंधी, सब नष्ट होते है। शास्त्रमें लिखा है कि, यह वर्त्ति जन्मान्धताका भी नाश करती है।

(२२) पुष्पहर अञ्जन।

बनावट—कलमीशोरा ४० तोलेको पत्थरकी खरलमें शुद्ध शीशा धातुके बत्तेसे ४० दिन तक गुलाबजलके साथ खरल करे। फिर २॥ तोले कपूर मिलाकर ६ घण्टे खरल करके नेत्राञ्जनको शीशी में भरलें।

कितनेक चिकित्सक गुलाब जल और कपूर नहीं मिलाते। समुद्रफाग १६वाँ हिस्सा मिलाकर ७ दिन घोट लेते है। यह नेत्राञ्जन तेज होता है, परन्तु लाभ अधिक करता है।

उपयोग—यह अञ्जन फूला, कुकूणक, लाली, तिमिर, खुजली, अर्म (नेत्रके सफेद भागमें मांसवृद्धि), अजकाजात (नेत्रके काले भागमें मांसवृद्धि), जाला, रतौंधी, अश्रुस्राव, शूल, नेत्रार्बुद, दृष्टि-मन्दता सबको थोड़े ही दिनोंमें दूर करता है।

लेपादि प्रकरण।

व्रण, विद्रधि, शोथ, अस्थि-भंग, चोट, शूल आदि में लेप, मलहम आदि औषधियोंका उपयोग होता है। व्रण चिकित्साका क्रम निम्नानुसार शास्त्रकारोंने दिखाया है:—

आदौ शोथहरो लेपो द्वितीयो रक्तसेचनः।
तृतीयश्चोपनाहः स्याच्चतुर्थः पाटनक्रमः॥
पञ्चमः शोधनो भूयात्षष्ठो रोपण इष्यते।
सप्तमो वर्णकरणो व्रणस्यैते क्रमान्मताः॥

पहला शोथहर लेप, दूसरा जौंक आदिसे रक्त निकालना, तीसरा पकानेके लिये पुल्टिस आदि उपचार, चौथा शस्त्रसे चीरकर पीप और दूषित रक्त आदिको निकाल देना, पाँचवाँ घावका शोधन, छठवाँ घाव भरना और सातवाँ पूर्ववत् त्वचाका रंग लानेका प्रयत्न करना, ये क्रमशः चिकित्सा हैं।

इस नियमानुसार पहले अपक्व शोथ या गाँठको बैठानेके लिये लेप, सेक और औषधियोंके क्वाथोंके तरडे देना चाहिये। इनमें भी पित्तज व्याधि हो तो सेंक न करे। जो रक्त निकालने योग्य हो, उसमें से दूषित रक्तको जोंकें लगवाकर निकाल देना चाहिये। जो बैठानेके अयोग्य हो, उसे पकानेके लिये लेप करना चाहिये या पुल्टिस बाँधना चाहिये। पकने पर पीप और दूषित रक्त को निकालकर घावको निर्दोष करने वाले तथा सुखाने वाले मलहम आदि को लगाना चाहिये। फिर घावको भर कर त्वचाको पूर्ववत् रंग लाने वाले मलहम या घृत तैल आदि का प्रयोग करना चाहिये।

लेपके चूर्ण अथवा गोलीको गरम जलके साथ पीस लेप कर ऊपरसे रुई लगा दे, जिससे लेप जल्दी सूखकर फट न जाय। लेप वाला भाग खुला रहनेसे पूरा लाभ नहीं मिलता।

पहले समयका लेप सूखने पर नया लेप लगाना चाहिये। परन्तु नये लेप लगानेके पहले विशेष सावधानी से पुराने लेपको गरम जलसे धोकर सूजन वाले भागको साफ कर लेना चाहिये; अन्यथा नये लेप का असर शीघ्र नहीं होगा। कारण, पहले वाले लेपने जो दूषित परमाणु रोगमें से खींचे हैं, वे सब पहले वाले लेपके साथ मिले हुए बाह्य त्वचा पर ही लगे रहते हैं।

वायु की सूजन पर रात्रिको लेप नहीं लगाना चाहिये, और किया हुआ

लेप गिर जाय, तो उसे उठाकर फिरसे नहीं लगाना चाहिये। दिनमें लेप को सूखने पर बार-बार हटादे। किन्तु गाठ पर बैठानेका गाढा लेप किया हो, उसे रात्रिमें ही रहने दें। पकानेकी गाठ पर रात्रिको भी अवश्य लेप करे। फोडा पकानेके लिये बाँधी हुई पुल्टिस २-३ घण्टे पर बदलते रहे, तो फोडा जल्दी पकता है। अधिक समय पुल्टिस रहनेसे फोड़ा जल्दी नहीं पकता। अस्थि-भंगका लेप २-३ दिन अथवा अधिक दिनके बाद खोलकर बदलना चाहिये।

वातज शोथमें स्निग्ध, अम्ल और नमक मिश्रित लेप, पित्तजमें स्निग्ध शीतल और दूध मिश्रित लेप, तथा कफज व्याधियोंमें गोमूत्र और अन्य क्षार मिश्रित निवाया लेप करना चाहिये।

वायुकी खेंचन पर गरम जलकी भाफ देकर फिर लेप लगानेसे शीघ्र आराम होता है। कफप्रकोपके शमनके लिये लेप लगाकर ऊनी वस्त्र लपेट देना चाहिये, और ठण्डी वायुसे भी रक्षण करना चाहिये।

(१) दोषघ्न लेप।

बनावट—सुहिंजनेकी छाल, सोंठ, सरसों, पुनर्नवाकी जड़ और देवदारु, सबको समभाग मिलाकर चूर्ण करें। फिर काँजी या खट्टी छाछ मिलाकर चटनी जैसा पीसकर मोटा लेप करें। (शा० सं०)

उपयोग—यह लेप वात और कफसे उत्पन्न होनेवाले सब प्रकार के शोथ और गाँठ को दूर करनेके लिये उत्तम है। विष शोथ पर गोमूत्रमें मिलाकर लेप करना चाहिये।

(२) दशांग लेप।

बनावट—सिरसकी छाल, मुलहठी, तगर, लालचन्दन, इला-यची, जटामाँसी, हल्दी, दारुहल्दी, कूठ और खस, इन दस ओषधियों को समभाग मिलाकर बारीक चूर्ण करे। (शा० सं०)

उपयोग—इस लेपको जलमें पीस चूर्णसे ¼ हिस्सा घी मिला-कर मोटा लेप करे। ऊपर रुई चिपकादे। यह लेप उग्र विस्फोटक, विसर्प, दाह, विषदोष, शोथ सर्वाङ्ग शोथ-व्रण शोथ, दोनों, शिरका दर्द, दुष्ट व्रण आदिको दूर करता है।

पामा और व्युची पर दशांग लेप हितकारक है। इन रोगोंमें दशांग लेपके साथ समान सोनागेरू मिला गुलाब जलमें चटनी के समान पीसकर लेप लगाते रहनेसे दाह, कण्डूसह विकार शमन हो जाता है। दो-चार रोजमें विषका आकर्षण होकर पामाव्रण और व्युची सूख जाते है।

यह लेप पैत्तिक शोथ और रक्तज शोथ पर सत्वर लाभ पहुँचाता है। वृषण पर शोथ आनेपर दशांग लेप के साथ निर्गुण्डीके पान मिला पीस कर लेप करने से शोथ शमन होजाता है।

ज्वर में १ तोला दशांग लेप को १०-१५ तोले शीतल जल में मिला, उसमें कपड़े को भिगो उसकी पट्टी कपाल पर रखने से शिरदर्द और ज्वर वेग कम होजाता है. यू० डी० कोलनके बदले इसका प्रयोग करना अच्छा है। ऐसा पं० यादवजी त्रिकमजी आचार्यका अनुभव है।

(३) बीजपूर जटादि लेप।

बनावट—बिजौरे की जड़, जटामांसी, देवदारु, सोंठ, रास्ना और अरनी को समभाग मिला काँजीमें पीसलें। (शा० सं०)

उपयोग—यह लेप वातज शोथ को दूर करनेमें उत्तम । गले की सूजन को भी शमन करता है।

(४) मधुकादि लेप।

बनावट—मुलहठी, रक्तचन्दन, मूर्वा, नरसल, पद्मकाठ, नेत्रबाला, खस और कमलको समभाग लेकर दूधमें पीसलें। (शा० सं०)

उपयोग—इस लेपसे दाह सह पित्तज शोथ शमन होता है।

दूसरी विधि—मुलहठी, त्रिफला, सोरवेल, दारुहल्दीकी छाल, नीला कमल, नेत्रबाला, लोद और मजीठ, इन १० ओषधियोंको समभाग लेकर बारीक चूर्ण करें। (वृन्द)

उपयोग—यह लेप पित्तप्रकोपज दोषों पर हितकारक है। इसे बकरीके दूधमें पीसकर लेप करें। मसूरिका (शीतला) के फोड़े आँखमें होने पर नेत्रोंके ऊपर लेप करे, और दूधमें पतला प्रवाही बनाकर नेत्रोंमें थोड़े-थोड़े बूँद डालनेसे फोड़े अच्छे होजाते हैं। ऐसे ही शरीरके किसीभी भागमें उत्पन्न पित्तज शोथ पर यह उपयोगी है।

(५) कृष्णादि लेप।

बनावट—पीपल, पुरानी खली, सुहिंजनेकी छाल, नदीकी रेत और हरड़को समभाग मिला गोमूत्रमें पीसकर कल्क करें। पश्चात् थोड़ा गरम करके बाँध देवें।

उपयोग—इस लेपके लगानेसे कफज शोथ नष्ट होता है।

(६) द्विनिशादि लेप।

बनावट—हल्दी, दारुहल्दी, सफेद चन्दन, लाल चन्दन, हरड़,

दूबका मूल, सोंठीकी जड़, खस, पद्मकाष्ठ, लोद, सोनागेरू और रसौंत, सबको समभाग मिला जलमें पीसले।

उपयोग—यह लेप चोट लगजानेसे आये हुए नये शोथ और रक्तज शोथको शमन करता है।

अभिष्यन्दी गुरुभोजन अत्यधिक कर लेने पर अपचन होता है; एवं मल अन्त्रसे चिपक भी जाता है। फिर उदरमें वेदना होने लगती है। उसपर मालिश करने और शुष्क सेक करने पर अन्त्रके भीतर शोथ आजाता है। फिर जुलाब और वस्ति देने पर भी उदर शुद्धि नहीं होती। बार-बार वमन होती रहती है। जल पीने पर भी वान्ति हो जान्ती है। उदर अति कठोर बना रहता है। इस प्रकारके उदावर्त (Intertinal Olrtsuction) में डाक्टरी मत अनुसार शस्त्र चिकित्सा ही एक मार्ग है। उसके लिये द्विनिशादिलेपको जलमें पीसकर उदर पर लेप करने और सूखने पर उसे हटाकर पुनः नया लेप करते रहने से एक ही दिनमें उदर नरम होकर मलमूत्र आदिकी योग्य प्रवृत्ति होने लगती है।

(७) ग्रन्थिभेदन लेप।

बनावट—दन्तीमूल, चित्रकमूलकी छाल, त्रिधारा थूहरका दूध, आकका दूध, भिलावेके बीज (गोडंबी), कसीस और गुड़, सबको समभाग मिला थूहरके पत्तोंके रसमें खरल करे। (वृन्द)

उपयोग—इस ग्रन्थिभेदन लेपसे गलगण्ड, प्लेग और अन्य जहरी गांठ शीघ्र फूट जाती हैं। मर्म स्थानकी गाँठ और अवक गाँठ पर यह लेप नहीं लगाना चाहिये।

वैद्यजीवनकारने इसे गलगण्ड और गण्डमाला पर प्रयुक्त किया है। इसका प्रयोग सम्हालपूर्वक करना चाहिये।

(८) कुष्ठहर लेप।

प्रथम विधि—हरड, करजके बीज, सरसो, हल्दी, सफेद गुंजा (चीरमी), सैंधानमक और वायविडङ्ग, सबको समभाग मिला गोमूत्रमें खरल करके लेप करें। (यो० र०)

उपयोग—इस लेपके लगानेसे कुष्ठके सफेद दाग, व्युची, दद्रु, खाज आदि रोग दूर होते हैं।

दूसरी विधि—आँवलासार गन्धक, कसीस, हरताल, हरड़, बहेड़ा और आंवला, सबको समभाग मिला गोमूत्रमें खरल करके

गोलियाँ बनावे। (र० चं०)

उपयोग---उस लेपको गोमूत्र अथवा जलमें घिसकर लगानेसे मुँह परके कुष्ठके सफेद दाग दूर होते है।

तीसरी विधि---सफेद कनेरके मूल, कुटकी, बच और बच्छनाग २-२ तोले और कालीमिर्च १ तोला मिलाकर बारीक चूर्ण करे।

उपयोग---इस चूर्णको गोमूत्रके साथ पीसकर लेप करनेसे मण्डलकुष्ठ, दद्रु, सफेद कुष्ठके दाग और प्रसुप्त कुष्ठका नाश होता है।

(९) विपाद लेप।

बनावट---बच्छनाग, भिलावा, रसोईघरका धुआँ, हल्दी, दारुहल्दी, बरनाकी छाल, चित्रकमूल, कालीमिर्च और दूबके मूल, सबको ५-५ तोले मिलाकर बारीक चूर्ण करे। फिर त्रिधारा थूहरका दूध २७ तोले मिलाकर सुखा देवे। आवश्यकता पर आकके दूधमें मिलाकर लेप करे। (वृन्द)

उपयोग---इस लेपसे सब प्रकार कुष्ठका नाश होता है। कुष्ठस्थानमें घाव होजाता है; फिर दोष बाहर निकल जाता है।

(१०) व्रणशोधक लेप।

प्रथम विधि---सिरसके बीज, मैनफल, जंगाल, रेवाचीनी, प्याज और नीमके पत्ते, प्रत्येक एक-एक तोला और एलुवा, गूगल, अलसी और मेथी ६-६ माशे लें। सबको मिलाकर बारीक चूर्ण करें। फिर तेज शराब अथवा पानीमें मिला गरम कर लेप करनेसे भयङ्कर पीड़ा और शोथयुक्त कठिन फोड़ा पक कर जल्दी फूट जाता है।

दूसरी विधि---साबुन, रेवाचीनी, गूगल और मैनफलको पीस कपड़ेकी पट्टी पर लगा गरम कर बाँधनेसे फोड़ा जल्दी फूट जाता है।

तीसरी विधि---नीम, करज, अरंडी और तुलसी, सबके पत्तों को जलमें उबालकर भाप देनेसे पीड़ा दूर होती है, सूजन उतर जाती है और गाँठ नरम होजाती है।

चौथी विधि---नीलेथोथेका फूला, पत्थरका कोयला, सज्जीखार, हल्दी, सैंधानमक एक-एक तोला और साबुन २ तोले लेवे। सबको घीकुँवारके रसमें मिला गरम करके लेप करे। केवल पीले मुँह पर लगानेसे जल्दी फूट जाता है। लेप लगाकर ऊपर पट्टी बाँधें।

(११) प्रतिसारणीय क्षार

बनावट---एक सेर लोटिया सज्जी और दो सेर चूना बिना बुझा

मिलाकर १ हांडीमें भरें । फिर पानी १ मन मिला लकड़ीके डण्डेसे खूब चला हांडीको ५ दिन तक खुले मैदानमें रहने दें । दिनमें एक दो वार रोज डण्डेसे चलादें । फिर छठे दिन ऊपरसे स्वच्छ पानी लोहेकी कढ़ाहीमें निकाल कर चूल्हे पर चढ़ावे । आध सेर जल शेष रहे तव लहसुनका रस ४ तोले मिलाकर मन्दाग्निसे पकावे । आधा जल (२० तोले) शेष रहने पर कढ़ाहीको नीचे उतार फिर क्षारको शीशीमें भरलें । (र० सा०)

उपयोग—यह क्षार पके फोड़े और प्लेगकी गॉंठ पर लगानेसे गॉंठोंको फोड़कर वैठा देता है । सड़े हुए घाव पर लगानेसे तत्काल दोषको जला देता है । ववासीरके मस्से अथवा कुष्टके दाग पर लगानेसे तुरन्त उतनी जगह उपड़ जाती है, और घाव होजाता है । इस घाव पर गरम घी लगानेसे पीड़ा शान्त होजाती है । दोषोंको जलानेके लिये यह उत्तम ओषधि है ।

सूचना—यह क्षार तेजाव जैसा है । इसलिये हाथ नहीं लगाना चाहिये, और जहॉं लगता है वहॉं वहुत जलन होती है । जलन दूर करनेके लिये धोया हुआ घृत लगावें । देश, काल और रोगीकी प्रकृतिका विचार करके उपयोग करें । इस क्षार से सूजन आजाती है, कभी कभी बुखार भी आजाता है ।

(१२) अंगुलीपाकहर लेप ।

वनावट—सोमल, सोहागेका फूला और नीलेथोथेका फूला एक-एक तोलेका वारीक चूर्णकर गीला गन्धाविरोजा ६ तोले मिलालें ।

उपयोग—अंगुलीपाक (Whitlow) जो कीलकी तरह गड़ता रहता है, उस पर इस लेपकी पट्टी लगाने से दर्द दूर होता है, और पक कर कील निकल आती है । कील भीतरसे निकली हुई देखनेमें आवे उसे कैंचीसे काट देनी चाहिये । कील काटनेके वाद सादा मलहम लगानेसे घाव भर जाता है ।

(१३) अंजननामिकाहर लेप ।

वनावट—रसौत, सोंठ, कालीमिर्च और पीपलको समभाग मिला जलमें खरल करके सोगठियॉं वना लेवें ।

उपयोग—ऑंखकी भॉंफणी पर होनेवाली फुन्सी पर जलमें घिसकर लगानेसे फुन्सी दूर होती है ।

(१४) तुत्थादि लेप ।

बनावट—नीलेथोथेका फूला १ तोला, कावुली हरड़का छिलका,

भाँग, चूना और सफेद कत्था दो-दो तोले मिलाकर जलमें सोगठी बनावे, या सबसे चौगुना धोया घी मिलाकर मलहम बनाले।

उपयोग--इस सोगठीको धोए घीमें घिसकर लगानेसे मुँह पर तथा दूसरे भागोंमें होनेवाली सब प्रकारकी फुन्सियाँ दूर होती है।

(१५) कंकुष्ठादि लेप।

बनावट--मुर्दासंग नीलाथोथेका फूला, सफेद कत्था, जली सुपारी, हरड़ और उसारे रेवनको समभाग लेकर कपड़छान चूर्ण करें।

उपयोग--यह लेप पिटिकाएँ और फोड़े पर हितकारक है। इस चूर्णको सब प्रकारकी फुन्सियोंपर धोये हुए घीके साथ अथवा पानीमें मिलाकर लगावे। फूटे हुए फोड़ो पर सूखा चूर्ण डाले।

(१६) अस्थिसंधानक लेप।

बनावट--एलुवा, हीराबोल, गूगल, कुँदरू, गूजर (अञ्जरूत, गुजद), उसारेरेवन, मैदालकड़ी, आमाहल्दी, सज्जीखार, लोद और सरेस, सबको समभाग लेकर बारीक चूर्ण करे। (आ० नि० मा०)

उपयोग--यह लेप मूढमार, शूल, शोथ, हड्डी टूटना अथवा हड्डी उतर जाना, रक्त इकट्ठा होना आदि दोष दूर करनेमें बड़ा उपयोगी है। टूटी हुई हड्डीको जोड़ देता है। मांसमें होने वाली वेदनाको दूर करता है। हमने इसका हजारो बार उपयोग किया है।

विधि—थोड़ेसे चूर्णको गरम जलमें मिला लेप कर ऊपर रुई लगाकर कपड़ा लपेटे। जरूरत हो तो लकड़ीकी पट्टी रखकर ऊपर कपड़ा बाँधे। आवश्यकता पर ३ दिन बाद दूसरा लेप करे। ३ दिन पहले पट्टीको नही खोलना चाहिये।

द्वितीय विधि--(मूढमारका लेप)—एलुवा, फिटकरी, हीराबोल, गूगल, कुँदरू, मैदा लकड़ी, उसारेरेवन, सज्जीखार, माजूफल और पठानी लोद, ये १० ओषधियाँ ५-५ तोले और आमाहल्दी १० तोले लेवे। इन सबको मिला कूटकर कपड़छान चूर्ण करे।

(श्री गोपालजी कुँवरजी ठक्कुर आयुर्वेदाचार्य)

उपयोग--आवश्यकता पर थोड़े या ज्यादा चूर्णको गरम जलमें मिला लेप कर ऊपर रुई चिपका कर पट्टी बाँध देवे। गरम जलके स्थान पर धतूराके पानका रस निकाल गरम कर उसमें लेप बना हलवा के सदृश बनाकर लगानेसे सत्वर फल दर्शाता है।

इस ओषधिके प्रयोगसे एक, दो या तीन लेपसे चाहे जैसी

चोट आई हो या हड्डी टूटी हो, वह दोष निवृत्त होजाता है, और तीव्र वेदना सत्वर शमन होजाती है। अनेकोको केवल एक ही लेपसे आराम होगया है। इस लेपको ४८ घण्टे तक रहने देना चाहिये। फिर निकाल, सम्हालपूर्वक धोकर नया लेप लगाना चाहिये।

डाक्टरी प्लास्टर वेलाडोना, एक्स्ट्रेक्ट वेलाडोना आदि-आदि ओषधियोंकी अपेक्षा इस ओषधिसे सत्वर लाभ होता है।

लाठीके मारसे गाँठा होजाना, वेदना होना, सूजन आजाना, या किसी स्थानमें मांस कुचल जाना, इन सब पर यह लेप रामबाणके सदृश फलप्रद है।

सूचना—यदि लेप खोलने पर त्वचा लाल होगई हो, तो दूसरा लेप १२ घण्टे बाद लगाना चाहिये। तब तक उस भागको खुला रखना चाहिये।

(१७) रामबाण लेप (ससई)।

बनावट—तिलका तैल १० तोले, राल १० तोले, कुचिला १० तोले, गूगल २० तोले, भिलावा ४० तोले तथा सोंठ, मिर्च, पीपल, लौंग, असगन्ध और सिगरफ दो-दो तोले लें। सब ओषधियोंको कूट तैल मिला घड़ेमें भरकर पातालयन्त्रसे तैल निकाले। फिर तैल (अर्क) को कढ़ाहीमें डालकर मन्दाग्निसे गाढ़ा करें। गुड़ जैसा होने पर उतार लें। ठण्डा होने पर जम जाता है।

उपयोग—इस लेपको लगाना हो, तब थोड़ा तैल मिलाकर लगानेसे रक्तका जमाव, मूढमार, वायुसे शरीर जकड़ना, शूल, कमर का दर्द आदि रोग दूर होते है। साथमें इस ओषधिकी दो-दो रत्ती मात्रा घी मिलाकर खिलानेसे जल्दी लाभ होता है।

(१८) पार्श्वशूलनाशक-लेप।

बनावट—सोंठ, कुचिला और बारहसींगेको जलके साथ घिस उसमें २ से ४ रत्ती अफीम मिला लें। फिर थोड़ा गरम कर लेप करने से पसलियोंका शूल तुरन्त मिटता है।

उपयोग—न्यूमोनियाँमें पसली और छाती पर लेप करनेसे फुफ्फुस-दोष सत्वर दूर होता है।

(२०) मल्लादि लेप।

बनावट—संखिया, कुचिला बच्छनाग, सरसों और कबूतर की बीटको समभाग लें। कुचिलेको पानीमें पत्थर पर पीसें। शेष ओषधियोंको मिलाकर अलग पीसें। बादमें सबको मिला थोड़ा गर

कर दर्दकी जगह पर बार-बार नया लेप करें। फिर अधजले कंडेसे सेके। पुराना लेप सूखने पर बार-बार छुड़ा देवे।

उपयोग—यह लेप प्लेगकी गोठको तुरन्त बैठा देता है। पसली और छातीके शूल पर लेप करनेमें भी उपयोगी है।

(२१) रसांजनादि लेप।

बनावट—रसौत, मिश्री, बबूलका गोंद, समुद्रफाग, फिटकरी का फूला, सब दो-दो तोले और अफीम १ तोला लें। फिर सबको मिलाकर ३ दिन जलमें घोटें। जल उतना मिलावे कि अच्छी रीतिसे पतला हो जाय। रसौत और अफीमको शुद्ध करके डाले। ३ दिन बाद अवलेह जैसा गाढ़ा कर खुले मुँहकी शीशीमें भर लेवे। अथवा सुखा कर सोगठियाँ बाँध लेवे। (ब्र० स्वा० सदानन्दगिरिजी)

मात्रा—यह लेप जरूरत पडे तब १-२ रत्ती सीप अथवा कटोरी में निकाल जल मिला पतला दहीके घोल जैसा करके नेत्रोंके ऊपर और नीचे लगावें, तथा नेत्रोंमें भी अंजन करे।

उपयोग—यह लेप नेत्रोंकी लाली, दाह, खाज, भयङ्कर सूजन, चोट लगना, घाव होना, पीप आना, नेत्रशूल (धोत्रा) चलना, नासूर आदि दोषोंको जल्दी दूर करता है। १ मासके छोटे बच्चे और बड़े मनुष्य, सबके लिये हितकर है। यह निर्भय रूपसे नेत्रोंमें अंजन किया जाता है। इस लेपके अंजनसे लाली, दाह और शूल बहुत जल्दी दूर होते है। हजारों बच्चोंको इस अंजनसे लाभ पहुँचा है।

सूचना—तीक्ष्ण नेत्ररोगमे नेत्रोंको ठण्डे जल और वायुसे बचाना चाहिये। गरम जलमे कपड़ा भिगोकर उससे आंखोंको धोवे। शूल निकलता हो, तो सोनेके समय रुईका फोहा फिटकरीके जलमे भिगो घीमें तल कर आंख पर बांध करके सोना चाहिये।

तीव्र प्रकोप बढ़ रहा हो, उस समय इस अंजनका या दूसरे रोग-शामक अंजनका उपयोग नहीं करना चाहिये।

(२२) प्रलापहर लेप।

बनावट—तम्बाखू, कायफल, कौड़िया लोबान और हींगको पीसकर गुड़में मिलावे। फिर जल मिला गरम कर कपड़ेकी पट्टी पर लगाकर बाँधे। कनपटी, कपाल और मस्तक पर लेप लगे इस रीतिसे कपड़ा बाँधना चाहिये। लेप भी मोटा लगाना चाहिये। (धन्वन्तरि)

उपयोग—इस लेपसे सन्निपातकी बकवाद तुरन्त शान्त होजाती।

है, और रोगीको निद्रा आने लगती है।

(२३) दद्रुहर लेप।

प्रथम विधि—पारा १ तोला, गन्धक, नीलेथोथेका फूला, कच्चा सोहागा और मिश्री २-२ तोले तथा पुंवाड़के बीज ४ तोले लें। सबको बारीक चूर्ण कर ६ घण्टे नीबूके रसमें घुटाई कर सोगठी बना लेवें। गोमूत्र, दही अथवा नीबूके रसमें घिसकर लगानेसे सब प्रकारके दाद थोड़े ही दिनोंमें दूर होजाते हैं।

दूसरी विधि—आँवलासार गन्धक, कच्चा सोहागा, सफेद कत्था और राल ५-५ तोले मिला कूटकर कपड़छान चूर्ण करें। फिर ६ तोले गूगलका बारीक चूर्ण मिला नीबूके रसमें तीन घण्टे खरल करके सोगठी बनाले। इसे गोमूत्र अथवा नीबूके रसमें घिसकर लगानेसे लाल, काला, नया और पुराना, सब प्रकार का दाद चला जाता है।

(२४) कासीसादि लेप।

बनावट—कसीस, गोरोचन, नीलेथोथेका फूला और वर्की हरताल १-१ तोला तथा रसोत २ तोलेको कॉंजी अथवा नीबूके रसमें पीसकर सोगठियाँ बनावें (वृ० नि० र०)

उपयोग—इस लेपको नीबूके रस अथवा जलमें घिसकर लगाने से खाज, योनि पर खुजली, अण्डकोषकी खुजली, बालकोंको अहिपूतना रोग (गुदा पकना) और बवासीरके मस्सेकी सूजन, सब दूर होते हैं। खुजलीके स्थानको पहले २-४ रत्ती नौसादर या फिटकरीको २० तोले जलमें मिलाकर धो लेना चाहिये। बादमें लेप करें। हमने इसका उपयोग बिना गोरोचन मिलाये किया है।

(२५) मांस्यादि लेप।

बनावट—जटामाँसी, राल, लोद, मुलहठी, निर्गुण्डीके बीज, मूर्वा, नीलकमल, लालकमल, सिरसके फूल, सबको समभाग मिला चूर्ण कर धोये हुए घृतके साथ मिलाकर लेप करें। (शा० सं०)

उपयोग—इस लेपको वातरक्तज या पित्तरक्तज विसर्प पर लगाने से तत्काल दाहका शमन होकर रोग दूर होता है।

(२६) कर्णशोथहर लेप।

प्रथम विधि—बारहसींगा, वच, सोंठ, हींग और सुहिंजनेकी जड़, सबको थोड़े-थोड़े पानीके साथ घिस गरम कर कानकी जूवा में

सूजनके ऊपर लेप करने से सूजन मिट जाती है, और कानके शूल, पीप निकलना आदि रोगोंमें भी बहुत लाभ होता है।

दूसरी विधि--गिले अरमानी, लोद, आँवला और आमाहल्दीको समभाग लेकर बारीक चूर्ण करें।

उपयोग--गुलाबजलमें मिला गरम कर दिनमें ३-४ बार पतला-पतला लेप करनेसे कानकी जड़में आया हुआ शोथ दूर होता है। केवल गिले अरमानी भी गुलाबजलमें पीसकर लगाई जाती है।

(२७) श्लीपदहर लेप ।

प्रथम विधि--हल्दी, आँवला, अमरवेल, सरसो, अपामार्ग, रसोईघरका धुँआ, सबको समभाग मिला पानीमें पीसकर श्लीपद पर करें। (श्री० डा० रामरत्नपालजी)

उपयोग--इस लेपके लगानेसे वातज, पित्तज, कफज सन्निपातज, सब प्रकारके श्लीपद (फीलपांव) की सूजन नष्ट हो जाती है। डाक्टर साहबने इस प्रयोग द्वारा अनेक रोगियोंको लाभ पहुँचाया है। सामान्य ओषधियोंसे बनने पर भी श्लीपदके लिये अत्युत्तम प्रयोग है।

दूसरी विधि--कनेरकी छाल, बच्छनाग, धतूरेके बीज, कलिहारी, सरसो, अपामार्गमूलकी छाल, करंजकी छाल, सैंधानमक, कूठ, हरड़ सांठीकी जड़, आककी जड़ और सुहिंजनेकी जड़, सबको समभाग लेकर चूर्ण करें। आवश्यकता पर गोमूत्र के साथ पीसकर लेप करनेसे श्लीपदका प्रकोप शमन हो जाता है।

(२८) वृद्धिदमन लेप ।

प्रथम विधि--गूगल, एलुवा, कुंदरू, लोद, फिटकरी और गन्धाबिरोजा, सबको समभाग मिला पानीमें पीसकर लेप करें।

उपयोग--वृषण परसे बाल दूर करके इस लेपको लगाते रहने से सब प्रकारकी अण्डवृद्धि दूर होती है।

दूसरी विधि--तम्बाखू, कसूम, केसूला, सोंठ, कुंदरू, एलुवा, आमाहल्दी, रूमीमस्तंगी, वच, बच्छनाग, खसखसके डोडे, सबको समभाग मिला बारीक चूर्ण कर मकोयके रसमें गोली बांधे।

उपयोग--इस गोलीको पानीमें घिस अण्डकोष पर लेप कर गोबरीसे थोड़ा सेक करनेसे थोड़े ही दिनोंमें अण्डवृद्धि दूर होती है। साथमें खानेके लिये वृद्धिबाधिका वटी चालू रखनी चाहिये।

तीसरी विधि--साँभर नमक १ तोला और कपूरहल्दी २ तोले

लेकर दोनो का कपड़छान चूर्ण करे। फिर मोम २० तोले और घी तोलेको गरम कर मिलादे, और आकार जल पीनेवाले मिट्टीके सकोरेकी तरह बनाले। रात्रिको अण्डकोप पर पहनाकर ऊपरसे लंगोट बाँधले और सुवह खोलदे। इस प्रकार केवल रात्रिको बाँधा करे इस रीतिसे प्रयोग करने पर १५-२० रोजमें नयी अण्डवृद्धि दूर होती है। साथमें खानेके लिये वृद्धियाधिका वटी अथवा दूसरी ओपधिका उपयोग करना चाहिये।

(२६) अर्शोहर लेप।

वनावट—सोमल, नीलाथोथा और सिंदूर १-१ तोला मिला वारीक खरल करके एक शीशीमें भरले, तथा सफेद कत्था १ तोला, कपूर १ तोला और सोनागेरू २ तोले, १०० वार जलसे धोये हुए गोघृत में मिलाकर मलहम वनाले।

उपयोग—निर्मलीको थोड़ा घिस सोमलवाला चूर्ण मिला मस्सो के ऊपर लगाकर पौन घण्टे मरीजको उल्टा सुलावें। लेटे रहनेसे ओपधि दूसरी जगह लगकर हानि नहीं पहुँचाती। ओषधिसे जलन हो, तब उपरोक्त मलहम लगादे। २-२ रोज ऐसा करनेसे मस्से गिर जाते हैं। जो मस्सेकी वाजूमें क्षत होजाय, तो सफेदेका मलहम वना कर लगानेसे आराम होजाता है।

सूचना—इस ओपधिसे जलन वहुत होती है। अत. प्रकृतिका विचार करके लेप करना चाहिये। अधिक कब्ज करने वाला भोजन और अधिक मिर्च आदि तीक्ष्ण पदार्थका सेवन नहीं करना चाहिये। कदाचि कब्ज होजाय, तो स्वादिष्ट विरेचन चूर्ण या अन्य सौम्य ओषधिसे मलावरोधको दूर करे।

(३०) निशादि लेप।

वनावट—हल्दी, दारुहल्दी, खस, सिरसकी छाल, नागरमोथा, लोद, सफेद चन्दन और नागकेशर, इन ८ ओषधियोको सम भाग मिला जलके साथ पीसकर लेप तैयार करें। (व० से०)

उपयोग—इस लेपके लगानेसे विस्फोटक, मसूरिका (शीतला) के व्रण, विसर्प, दाह, पसीना, शरीरकी दुर्गन्ध, रोमातिका और कुष्ट रोगका शमन होता है।

(३१) धतूरादि लेप।

वनावट—धतूरेके पत्ते, अरंडीकी जड़, निगुण्डी के पत्ते, पुन-

नेवा के मूल, सुहिजने के वीज और सरसोंको समभाग जलमें पीसकर लेप तैयार करें। (वृन्द)

उपयोग--यह लेप जीर्ण असाध्य श्लीपदको भी शमन करता है।

(३२) कर्पूरादि मलहम ।

बनावट--पारा, गन्धक, कुंदरू, गूजर (गुजद), गूगल, लोवान सब सम भाग और सबके समान कपूर लें। पहले कपूर को खरलमें डाल सख्त धूपमें घुटाई करें। थोड़े समय बाद कुंदरू, गूजर, गूगल, लोवान क्रमसे मिलाते जायँ, अन्तमें कज्जली मिलावें। जब खरल करते-करते नरम होकर मलहम बन जाय तब चीनी मिट्टीकी डिबियामें भरलें। (आ० नि० मा०)

इस मलहमको कड़क होजाने पर तिलके तेलके साथ मिला गरम कर ले जिससे लगाने लायक मुलायम बन जाता है मूल ग्रन्थकारने इस मलहम का नाम" तडकानो मलम " अर्थात् सूर्य के तापका मलहम रखा है।

उपयोग—विद्रधि, गलगण्ड, नासूर आदि रोगो पर यह अच्छा काम देता है। इस मलहम से गांठ पिघलती है, पकती है और फूटकर भर भी जाती है। नासूरमें पहले निम्बतैलकी पिचकारी लगावें। फिर इस मलहमकी पट्टी बाँधनी चाहिये।

निम्ब तेल—नीमके सूखे पत्तोसे चौगुने तिल्लीके तैलको कढ़ाही में डालकर चूल्हे पर चढ़ावें। तैल गरम होने पर थोड़े-थोड़े नीमके पत्तो का चूर्ण डालते जायँ। सब पत्ते डालनेके बाद भुन जाने पर कढ़ाही को नीचे उतारले। ठंडा होने पर छान कर शीशीमें भरले।

(३३) सिंदूर का मलहम ।

बनावट--सिंदूर १२ तोले, तिलका तैल १८ तोले और मोम ६ माशे लें। पहले तैलको कढ़ाहीमें डाल चूल्हे पर चढ़ा मन्दाग्नि दें। तैल गरम होने पर थोड़ा-थोड़ा सिंदूर डालते जायँ, और चलाते रहे। सिंदूर काला होजाय तब मोम डाले। एक दो उफान आनेसे उतार लें।

सूचना—मन्दाग्नि पर पाक करे। उफान आवे तब लकड़ी खेंच लेवे और पंखेसे हवा डाले। कढ़ाही बड़ीही ले। मलहम तैयार होने पर पानीमे बूँद डाले। पानीमे से निकाल अंगुलीसे गोली बांधकर परीक्षा करे। कडक होजाय, तो उपयोग मे नहीं आवेगा। कढ़ाही में पानी की बूँद न गिरे सो सम्हाले, नहीं आग लग जायगी। मलहम तैयार होने पर नीचे उतार कर चलाते रहे और पखेसे वायु करते रहें। शीतल होने पर कपड़ेमे लपेट कर एक पैसे जितनी

गोलाई वाली ८-१० इंच लम्बी सलाई बांध लेवें।

कितनेक चिकित्सक इस मलहममें ६ तोले गंधाबिरोजा और २ तोले कपूर मिलाकर छोटी-छोटी डिबियों भर लेते हैं।

उपयोग—यह मलहम सब प्रकारके फोड़े-फुन्सी पर घावमें से पीप खेंचने तथा घाव भरने के लिये अति उपयोगी है। मलहमको पट्टी भर जरा गरम करके चिपका देवे। पट्टीको पीप लग जाने पर बदल देनी चाहिये।

(३४) रालका मरहम।

प्रथम विधि—राल १० तोले, सफेद कत्था ४ तोले और मुर्दासंग २ तोले लेकर सबको अलग-अलग पीसे। फिर २॥ तोले सरसो का तैल और राल मिला शिला पर रगड़े। चेप छोड़दे, तब पानी मिलाकर धोवें। मक्खन जैसा हो जाय तब शेष औषध मिलाकर खूब रगड़े। एक जीव होने पर चीनीके बरतन में भरलें। (धन्वतरि)

उपयोग—यह मलहम फुन्सा, फोड़ा, प्रैत्तिक फोड़ा, चूतड़ वा अंडकोष की खाज, शिरके फोड़ा आदि नये और अति पुराने रोगों को जड से निकाल देता है। शिर पर जलन करने वाले हर प्रकार के फोड़ों को शीघ्र मिटाता है। इस मलहमसे घाव जल्दी भरता है।

व्रण के शोधन और रोपण दोनो कार्यों के लिये यह उपयोगी है। यदि फोड़ा फूट गया हो, तो एक कपड़े का फोहा बना बीच में छेद कर, उस मलहम लगाकर, घाव पर लगादें; और फोड़ा न फूटा हो तो कपड़े फोहेमें छेद नहीं करना चाहिये। इस तरह उपयोग करने से सब प्रकार के नये और पुराने व्रण मिट जाते हैं।

दूसरी विधि—राल ५ तोले, तिलका तैल १० तोले, मोम २ तोले और भिलावा २० तोले ले। पहले भिलावे को तैलमें भूनकर तैल को छानले। फिर तैलको कड़ाही में डालकर मन्दाग्नि पर रखे। तैल गरम होने से मोम डाले। मोम पिघल जाने पर राल का चूर्ण डाल कर हिलाने से मलहम बन जाता है।

उपयोग—सब प्रकार के व्रण और भगंदर मिटानेमें यह मलहम उपयोगी है।

तीसरी विधि—तिल तैल १६ तोले, राल ४ तोले और नीला थोथा ३ माशे लें। पहले तैल को कढ़ाही में डाल मंदाग्नि पर गरम

करे । धुआँ निकलने पर राल और नीलाथोथा डालकर कढाही को उतार तैल को तुरन्त एक थालीमें छानलें। शीतल होने पर जल मिला-मिला कर धोवे । वार-वार मलकर जलको निकाल डालें । इस तरह १०-२० वार धोनेसे मलहम मक्खन के सदृश कठिन और सफेद वन जाता है। इसे कॉच के अमृतवान में भर ऊपर जल भरे । रोज सुवह पुराना जल निकाल डालें और ताजा भर दें । जव तक मलहम जल में डूवा रहेगा, और जल वदलते रहेंगे, तव तक मलहम अच्छ रहेगा । मूल ग्रन्थकारने इसे जलका मलहम और सफेद मलहम संज्ञा दी है । (आ० नि० मा०

वक्तव्य—जल न वदलने से जल का रंग काला होजाता है; और मलहम पर फफूंदी आजाती है, एवं जल में न रखने पर भी मलहम चिपचिप होकर विगड जाता है।

उपयोग—इस मलहम की पट्टी लगानेसे अग्निदग्ध व्रण, वालकों की गुदा पक जाना, सड़े हुए फाले और व्रण रोग तथा मूत्रेन्द्रियके पासमें उत्पन्न शोथ, अर्शके मस्से का शोथ और पाक होना, ये अच्छे होजाते हैं। सामान्य फोड़ा-फुन्सियों पर यह वहुत अच्छा कार्य करता है।

पैरो के तलकी शिरा पर चोट लग जानेसे दासह शोथ उपस्थित होता है। उसपर इस मलहमकी पट्टी लगाने पर ५-१० मिनिट में मलहमका शोषण होजाता है और पट्टी शुष्क होजाती है। फिर तुरन्त दूसरी पट्टी लगावें। इस तरह ३-४ वार पट्टी वदल देवें। जैसे-जैसे पट्टी वदल दी जायगी, वैसे वैसे शीतलता आती जायगी, वेदना कम हो जायगी और विकार दूर होजायगा।

(३५) व्रणामृत मलहम ।

प्रथम विधि—गन्धाविरोजा, देशी मोम, राल का चूर्ण, प्रत्येक १०-१० तोले और अलसी का तैल २० तोले लें। चारो चीजे कड़ाही में डाल ढककर अत्यन्त मन्द अग्निसे गलावें। जव पिघल कर एक रस होजाय, तव नीचे उतार तुरन्त वस्त्र से छानले शीतल होने पर खरल में घोटकर रखले।

उपयोग—यह मलहम हर प्रकारके खुले घाव सुखानेमें श्रेष्ठ है। इससे उपदंश का घाव भी शीघ्र आराम होजाता है।

दूसरी विधि—मुर्दासंग, कपीला, रेवाचीनी, सिंदूर, पपड़िया कत्था, नीलेथोथे का फूला, मेंहदी के सूखे पत्ते, ये ७ ओषधियाँ २-२ तोले तथा रसकपूर १ तोला ले। सबको कूट, कपड़-छान चूर्ण कर सम-भाग धोया हुआ गोघृत अथवा वैसलीन मिलाकर मलहम बनालें।

(श्री० वैद्यराज नौनसिहजी)

उपयोग—सब जातिके व्रणो को सुखाकर सत्वर भर देता है। दुष्ट व्रण, जिसका जहर चारो ओर फैल गया हो, जो अनेक प्रकारके मलहमोसे अच्छा न हुआ हो, ऐसे अनेक रोगी भी इस मलहम से अच्छे हो गये है। यह उपदंशके घाव को भी मिटा देता है।

सूचना—घाव को पहले नीमके पत्तोंके उबाले हुए जलसे धोकर फिर मलहम लगाना चाहिये।

(३६) व्रणामृत श्वेत मलहम।

बनावट—कपूर १ तोला, सफेद मोम ५ तोले, सफेदा १० तोले और मीठा तैल १० तोले ले। पहले तैल और मोम गरम करे। थोड़ा ठंडा होने पर सफेदा मिलाले। फिर कपूर मिलाकर मलहम बना लेवें। यह मलहम सब प्रकारके घावो को बहुत जल्दी भर देता है।

(३७) व्रणहर मलहम।

बनावट—गूगल, पीली कौड़ीकी भस्म, गली सुपारीकी काली भस्म, छोटी इलायचीके दाने और पपड़िया कत्था, १-१ तोला और शतधौत गोघृत ५ तोले मिला कर मलहम बनाले। (पं० मगुलालजी)

उपयोग—यह मलहम सब प्रकारके व्रणोको भर देता है। पुराने भयंकर व्रणोमेंसे भी पीला-पीला पानी निकाल कर थोड़े ही दिनोमें भर देता है। अग्निदग्ध व्रण (जले हुए घाव) पर भी लाभदायक है।

(३८) गुलाबी मलहम।

बनावट—कोकम अमचूरका तैल (Theobromatis) और अरंडीका तैल १०-१० तोलेको कढ़ाही में डाल चूल्हे पर चढ़ाकर गरम करे। फिर छानकर १ तोला सफेदा और १ तोला सिंदूर मिलाकर मलहम बनालें।

उपयोग—इस मलहमके लगानेसे विपादिका (हाथ-पैर फटना), होठ फटना आदि रोग दूर होते है, और त्वचा मुलायम बनती है।

(३९) चूने का मलहम।

बनावट—चूना ५ तोले, अरंडीका तैल ३ तोले और रुई ६ रत्ती।

मिलाकर मलहम बना लें।

उपयोग—यह मलहम व्रण शोधन करके घाव भर देता है। सड़े हुए घावोंके दोषोंको निकालकर व्रणको साफ कर देता है।

(४०) दारुणक नाशक मलहम।

बनावट—नीलेथोथेकाका फूला, कपीला, सफेद कत्था, गेरू और शोरा १-१ तोला; मुर्दासङ्ग, कालीमिर्च और मेंहदीके पत्ते २-२ तोले, सरसोंका तैल १८ तोले और देशी मोम २ तोले ले। पहले तैलमें मेंहदी के पत्ते पकावें। जल जाने पर नीचे उतार कर मोम डाले ठण्डा होने लगे तब और वस्तुओंका कपड़छान चूर्ण मिलाकर मलहम बनाले।

उपयोग—इस मलहमके उपयोगसे दारुणक (केश-भूमिखुश्क होकर खुजली आना), अरुंचिका (शिर पर छोटी-छोटी फुन्सी होना), बाल गिरना आदि विकार दूर होते हैं।

(४१) कुष्ठहर मलहम।

बनावट—पारद, गन्धक, हरताल, नीलाथोथा, और बावची १-१ तोला, मोम ६ माशे और सरसोंका तेल २॥ तोले ले। पहले पारद-गन्धककी कज्जली कर, फिर अनुक्रमसे और ओषधियोंको मिलाकर खरल करे। पश्चात् तैल और मोमको मिलाकर गरम करे। कुछ शीतल होने पर ओषधि मिलाकर मलहम बनाले।

लगाने की विधि—दिनमें एक बार सुबह दाग पर इस मलहमकी मालिश कर ३ घण्टे बाद गरम पानीसे स्नान करे।

उपयोग—यह मलहम सफेद कुष्ठके दाग पर लगानेमें अति उपयोगी है। सफेद दागमें दोषका स्राव करा रोगको दूर करता है।

(४२) पामाहर मलहम।

बनावट—पारा, गन्धक, कालीमिर्च, नीलाथोथा, सिंदूर, काला-जीरा, सफेद जीरा प्रत्येक समभाग ले। पहले पारद और गन्धककी कज्जली करें। फिर सब ओषधियोंका बारीक चूर्ण मिला फिर सबके समान धोया गोघृत डाल कर चीनीके बरतनमें भरले।

उपयोग—इस मलहमको पामा (खुजली) और छूकछ पर लगानेसे ५-७ रोजमें जड़से दर्द दूर होता है। पानीमें नीमके पत्ते डाल गरम करके रोज स्नान करना चाहिये।

(४३) स्नायुहर मलहम।

बनावट—तिलका तैल ५ तोले, मोम १ तोला, नीलाथोथा ३ माशे और कपड़े धोनेका साबुन ३ तोले ले। तैलको गरम करे। पकने पर मोम डाले। फिर साबुनका चूर्ण और अन्तमें नीलाथोथा मिलाकर तुरन्त उतार लें।

उपयोग—नारु निकला हो वहाँ पर इस मलहमको बाँध देनेसे दूसरे रोज नारु गल जाता है।

(४४) व्युचीहर मलहम।

प्रथम विधि—पारा, गन्धक, मैनसिल, सफेद कत्था, पाषाण भेद पत्थर, मुर्दासंग, नीलाथोथा, सब १-१ तोला और पुंवाड़के बीज ७ तोले लें। पारा-गन्धककी कज्जली कर अन्य वस्तुओंका कपड़छान चूर्ण मिलादें। फिर सब औषधियोंको चौगुने गोघृतके साथ ताँबेके बरतनमें ताँबेके दस्तेसे (या नीमके डण्डेके नीचे ताँबेका पतरा लगाये हुए दस्तेसे) ६ घण्टे खरल करके मलहम बनाले।

उपयोग—इस मलहमसे सूखा और गीला व्युची (एकवत ezema), पामा, दाद, खाज इत्यादि दूर होते है। विस्फोटक और चाँदीके घाव पर लगानेमें भी यह उपयोगी है।

दूसरी विधि—गन्धक, सिंदूर, मैनसिल, कालीमिर्च, हल्दी, दारुहल्दी, जीरा, सेलखड़ी, केशर, इलायची और कत्था, सबको सम-भाग मिला कपड़छान चूर्ण कर २१ बार पानी से धोये हुए दूने गोघृत या वैसलीन के साथ मिलाकर मलहम बनाले। (आ० नि० मा०)

उपयोग—नये और पुराने व्युची रोग इस मलहमके लगानेसे थोड़े ही दिनोंमें दूर होते हैं।

सूचना—व्युचीको रोज सुबह शाम तमाखूके जलसे धोना चाहिए। तमाखू १ तोले को आध सेर जलमें भिगो दे। फिर छानकर उपयोग में लेवें। सुबह भिगोया जल शामको ले। शामको भिगोया जल सुबह ले। शीतकालमें जलको गरम कर लेवें।

(४५) दद्रुदमन मलहम।

प्रथम विधि—अरंडीका तैल २० तोले, देशी मोम ५ तोले, कत्था, नौनिया गन्धक, माजूफल, मुर्दासंग, ढाकका गोंद, नौसादर, कालीमिर्च और कच्चा सोहागा १-१ तोला मिला कूट-पीसकर छानले। तैल गरम कर उस में मोम डालकर पिघलावें। फिर चूर्ण मिलाकर मलहम बनाले। (धन्वतरि)

उपयोग—इस मलहमसे सब प्रकारके नये और पुराने दाद शीघ्र दूर होते है। दादको आरन कपडेसे खुजला कर मलहम लगावें।

दूसरी विधि—पुंवाड़ (चक्रमर्द) के बीज १ सेरको कढ़ाहीमें मंदाग्नि पर थोडा लाल हो तबतक सेके। फिर कपड़छान चूर्ण कर गन्धक १० तोले, मैनसिल १० तोले, रसकपूर ६ तोले और सिंदूर ५ तोले मिलावे। फिर पीली वैसलीन सब चूर्णसे चौगुनी मिलाकर मलहम बनालें। (आ० नि० मा०)

उपयोग—इस मलहमके लगानेसे नये पुराने सब प्रकारके दाद थोड़े ही दिनोमें दूर होजाते हैं। इस चूर्णमें वैसलीनके बदले नीबूका रस मिलाकर लेप कर लेनेसे भी लाभ होता है।

तीसरी विधि—पुंवाड़के बीज २ तोले, सोहागेका फूला १ तोला फिटकरीका फूला १ तोला, गन्धक २ तोले और नीलाथोथा १ तोला मिलाकर बारीक चूर्ण करें। फिर १५ तोले पीली वैसलीन मिलाकर मलहम बना ले।

उपयोग—दिनमें २-३ बार लगानेसे ५-७ रोजमें नया दाद दूर होजाता है। मलहम न बनावे, तो चूर्णसे दिनमें ३-४ बार मालिश करे या नीबूके रसमें मिलाकर लेप करे।

चौथी विधि—ऐसिड क्राईसोफेनिक २ ड्राम, ऐसिड बोरिक २ औंस, ऑवलासार गन्धक १ औंस और पीली वैसलीन १० औंस ले। सूखी औषधियोको मिला कर वैसलीनके साथ मलहम बनाले।

उपयोग—इस मलहमके लगानेसे सब प्रकारके नये और पुराने दाद थोड़े ही दिनोमें चले जाते है। लगाते ही खुजलीको शमन करता है। इस मलहमसे कपड़े पर नीलेसे दाग होजाते है।

सूचना—मलहम नेत्रोंको न लग जाय इस बातका ध्यान रखे।

पाँचवीं विधि—ऐसिड क्रोईसोफेनिक ४ ड्राम, ऐसिड कार्बोलिक ४ ड्राम, ऐसिड सेलीसिलिक २ ड्राम और पीली-वैसलीन १६ औंसलें। सूखी औषधियोको मिला वैसलीनमें डालकर मलहम बनाले।

उपयोग—यह मलहम सब प्रकारके दादको जड़मूलसे २-४ दिन में ही नष्ट कर देता है। मलहम वाला हाथ नेत्रोको न लगना चाहिये।

(४६) अदीठ (कारबंकल) का मलहम।

प्रथम विधि—पारा २ तोले, गन्धक २ तोले, मुर्दासंग ४ तोले,

कपीला ८ तोले, नीलेथोथेका फूला २ माशे। पहले पारे और गन्धक की कज्जली करे। फिर सबको मिलाकर ६ घण्टे खरल करें। बादमें धोया हुआ चौगुना गोघृत मिलाकर मलहम बनाले। (धन्वन्तरि)

उपयोग—मलहम लगाते ही अदीठकी जलन और पीड़ा दूर होती है। व्रणको पकाकर अन्दरसे पोप, रुधिर, गले-सड़े मांसको अलग करता है। बार-बार मृत मांस काट करके अलग करना चाहिये। साथमें खानेके लिये रक्तशोधक ओषधि देते रहनेसे थोड़े ही दिनोंमें अदीठ रोग दूर होता है।

दूसरी विधि—सिंदूर, मुर्दासङ्ग, सफेदा, रूमीमस्तङ्गी, बबूलका गोंद १-१ तोला, मोम ४ तोले और तिलका तैल ३० तोले लें। पहले तैल और मोम गरम करे, फिर और वस्तुओंका कपड़छान चूर्ण डालकर मलहम बनाले।

उपयोग—ऊपर लिखे अनुसार।

(४७) भगंदरनाशक मलहम।

प्रथम विधि—रसकपूर, सिंदूर, सेलखड़ी, मुर्दासंग, सफेदा, सफेद कत्था, कपूर, चिकनी सुपारीकी राख, प्रत्येक १-१ तोला और सत्यानाशीके बीज ८ तोले मिलाकर कपड़छान चूर्ण करे। फिर चार गुना धोया गोघृत मिलाकर मलहम तैयार करे। (आ० नि० मा०)

उपयोग—इस मलहमके लगानेसे भगन्दर, कठमाल, उपदंश, नासूर, गंभीरव्रण, बवासीर, पामा, फोड़ा-फुन्सी, दाद इत्यादि रोग दूर होते हैं। छोटा छिद्र हो, तो मलहमकी बत्ती बनाकर भरदे।

दूसरी विधि—बिलावके पैर और कुत्तेके पैरकी हड्डी ५-५ तोलेको एक करवेमें सपुट कर जलाकर कोयला करें। फिर राखके समान वजनमें धोया घी मिलाकर मलहम बनाले।

उपयोग—भगन्दर, नासूर और भयङ्कर व्रणमें इस मलहमको भर देनेसे तुरन्त आराम होता है। त्रिफलेके क्वाथ अथवा नीमके क्वाथ में घिसकर भी लगाया जाता है। दो प्रकारकी हड्डियोंमें से किसी की भी हड्डी मिल जाय, तो भी लगानेके काममें आसकती है। ऊँटकी हड्डी घिसकर लगानेसे भी भगन्दर दूर होता है।

(४८) कंठमालका मलहम।

प्रथम विधि—दालचिकना, पारा, गन्धक, मुर्दासंग, सफेदा, सफेद कत्था, सोहागेका फूला, कुंदरू, भिलावा (ऊपर की टोपी

निकाला हुआ), कालीमिर्च, नीमके पत्ते और मोम २-२ तोले तथा सरसोंका तैल ४० तोले ले। पहले दालचिकना और पारागन्धककी कज्जली मिलावे। फिर मुर्दासंग और सफेदा, पश्चात और वस्तुओंका चूर्ण मिलावें। नीमके पत्ते बाकी रखें। सरसोंके तैल और नीमके पत्तों को मिलाकर मन्दाग्नि पर गरम करे। पत्ते जल जायँ, तब मोम मिलावे। फिर कढ़ाहीको नीचे उतार अन्य वस्तुओंका चूर्ण मिलाकर पतला मलहम तैयार करलें। (आ० नि० मा०)

उपयोग—इस मलहममें कपड़ेकी पट्टी डुबोकर कण्ठमाल पर लगाते रहनेसे थोड़े ही दिनोंमें रोग निर्मूल होजाता है।

दूसरी *विधि*—मनुष्यकी खोपड़ी अथवा हड्डीका बारीक चूर्ण और मक्खीकी विष्टा समभाग मिलावे। मक्खी रातको डोरी पर बैठती है; उस डोरी पर विष्टा लगी रहती है, वह डोरी लेवें। इसे मनुष्यके मूत्र (या गोमूत्र) में पीसकर लेप तैयार करें। फिर कपड़े पर लगाकर कंठमाल पर बाँध देवे। (धन्वन्तरि)

उपयोग—यह लेप थोड़े दिन तक लगाने से कंठमाल और गलगण्ड दूर होते हैं, तथा अन्य प्रकारकी गाँठ भी बैठ जाती है।

(४९) उपदंशरिपु मलहम।

प्रथम विधि—पारा २ तोले, आँवलासार गन्धक २ तोले, सुपारी की राख, आँवलेकी राख, माजूफलकी राख और मुर्दासंग १-१ तोला ले। सबको १०० बार धोये हुए गायके घी १५ तोले में मिलाकर काँसी के पात्र में नीमके डंडेसे खूब घोट कर मलहम बनाले।

उपयोग—इस मलहमसे उपदंशके घाव जल्दी भर जाते हैं।

दूसरी *विधि*—रसकपूर ६ माशे, कपूर ६ माशे, मुर्दासंग १ तोला, सफेद कत्था ६ तोले, हीरादोखी गोंद (दमुल अखवैन) २ तोले, नीलाथोथेका फूला ३ माशे और पीली वैसलीन २० तोले लें। वैसलीनको गरम कर अन्य वस्तुओंका चूर्ण मिलाकर मलहम बनालें।

उपयोग—नीमके पत्तों के क्वाथसे उपदंशके घावको धोकर मलहम लगाते रहने से थोड़े ही दिनोंमें घाव भर जाता है।

(५०) अर्शोहर मलहम।

उपयोग—वर्की हरताल और सफेद कत्था २-२ तोले लेकर खरल करे। फिर १०० बार पानीमें धोया हुआ ८ तोले गोघृत मिलाकर मलहम बनालें। (आ० नि० मा०)

उपयोग—इस मलहमको दिनमें २ वार लगानेसे खून गिरना बन्द होजाता है, जलन और वेदना दूर होती है, तथा शुष्क मस्से मुरझा जाते हैं।

दूसरी विधि—सिन्दूर ४ तोले और गोघृत २० तोले मिला कॉसीकी थालीमें डालकर नीमके डण्डेसे रगड़ें। डण्डे पर ५ तोले सीसेका पतरा लगालें और घृतको १०० वार पानीसे धो लेवें। रगड़ने से मलहम वन जाता है। (इलाजुलगुरबा)

उपयोग—दिनमें दो-तीन वार मलहम लगाते रहनेसे जलन मिट जाती है, और मस्से थोड़े ही दिनोंमें मुरझा जाते हैं।

तीसरी विधि—अफीम ३ माशे, आकका दूध १ माशा, जायफल १ तोला और धोया हुआ गोघृत १ तोला ले। सबको मिला खरल कर मलहम वनाले।

उपयोग—शौच (जङ्गल जाने) के वाद दिनमें २-३ वार मस्सो पर इस मलहमका लेप करनेसे मस्से नष्ट होते हैं।

चौथी विधि—सेलखड़ी, कली का चूना, सोनागेरू, फिटकरीका फूला, मरोड़फली, आमाहल्दी, इन ६ ओपधियोंको समभाग लेकर कपड़छान चूर्ण करे। पश्चात् ४ गुने गायके मक्खन में मिलाकर मलहम वनाले। (स्वामी कृष्णानन्दजी चक्रवर्ती)

उपयोग—शुष्क और रक्त निकलने वाले, दोनो प्रकारके मस्सो पर यह ओपधि लाभदायक है। पहले ही दिन वेदना और जलन शमन होजाती है, शोथ दूर होती है, और शनैः शनैः मस्से मुरझा जाते है। रोज शौच जानेके वाद २-३ वार मलहम लगाते रहे।

सूचना—अधिक बद्धकोष्ठ करनेवाले पदार्थका सेवन और अधिक मिर्च-का उपयोग नहीं करना चाहिये। कदाच मलावरोध होजाय, तो स्वादिष्ट विरे-चन चूर्ण अथवा सौम्य ओपधिका सेवन करके उदरको साफ कर लेना चाहिये।

(५१) वातशूलहर मलहम।

बनावट—कपूर ५ तोले, सावुन १ तोला और तारपीन तैल २० तोले ले। पहले कपूर और सावुनको खरल करके मिलाले। फिर तारपीन तैल मिलाने पर कपूर मिल जाता है।

उपयोग—इस मलहमकी मालिश करनेसे वातशूल और उदर-शूल दूर होते हैं। जिस स्थान पर वायुकी पीड़ा होती हो, उस स्थान पर इस मलहमकी मालिश करनेसे तत्काल लाभ पहुँचता है।

(५२) शिरःशूलान्तक मलहम (बाम)।

प्रथम विधि–सफेद वैसलीन ३ पौण्ड, पेरेफीन (विलायती मोम) १ पौण्ड, लोहवान पुष्प २ औंस, कपूर २ औंस, पीपरमेंटके फूल १ औंस, अजवायनके फूल २ औंस, नीलगिरी तैल ६ औंस, दालचीनीका तैल २ औंस पहले(लोहेके सफेदी लगे हुए) वर्तनमें वैसलीन और मोमको गरम करके छानले। कपूर, पीपरमेंट और अजवानके फूलोंको मिलाकर प्रवाही अर्क बनालें। पश्चात् तैल और लोहवान पुष्पको वैसलीन वाले प्रवाहीमें मिलाले। फिर जब थोड़ा गरम रहे, तब अर्कको डाल, कॉच या लोहेकी शालाकासे चलाकर सबको भली भाँति मिलालें और शीशियोंमें तुरन्त भरले।

उपयोग—इस मलहमको मालिश करनेसे शिरदर्द, सूजन, साँधोमें दर्द होना, चोट लगनेसे रक्त जम जाना, अग्नि, तैल, घी अथवा तेजाबसे जलना, शूल, वायुका दर्द, स्त्रियोंके स्तन फटना, होठ फटना, जहरी जन्तुका काटना आदि दर्द तुरन्त दूर होते हैं। एवं बिच्छूका जहर जब डंकमें रह जाता है, तब डंक-भाग पर मालिश करनेसे जलन शान्त होती है।

दूसरी विधि—नीलगिरी तैल ८ भाग, लोहवान पुष्प ४ भाग, कठिन मोम (पैरेफिन हार्ड) ३८ भाग। मृदु मोम (पैरेफिन सोफ्ट) ५० भाग। पहले मोमको गरम करें। फिर तैल और पुष्प मिला लेवें। शीतल हो तब तक चलाते रहें।

उपयोग—पहली विधिके अनुसार।

(५३) अग्निदग्धव्रणहर मलहम।

प्रथम विधि—राल ४ तोले और अलसीका तैल ४० तोले लेकर दोनोंको कढाहीमें डालकर पकावें। फिर उतार तुरन्त ही वस्त्रसे छानलें। शीतल होने पर कॉसी की थाली में चूनेके पानीसे २१ बार धोवें। धोने के लिये कलई चूना १ तोला लेकर १ बोतलमें डालें। ऊपर १। पौंड जल डालें। फिर डाट लगा २-३ मिनट चलाकर १-२ घंटे रहने दें। चूना नीचे बैठ जाने पर ऊपरसे साफ जलको निकालकर उपयोगमें लें। इस हिसाबसे अधिक जल बनालें।

उपयोग—इस मलहमको आगसे दग्ध स्थान पर लगाते ही जलन तत्काल शान्त होजाती है, घाव जल्द भरता है और खूबी यह है कि वहाँ सफेद दाग भी नहीं पड़ता।

दूसरी विधि—शुद्ध चूना ४ तोले, मोम २ तोले और नारियल

का तैल १६ तोले लें। प्रथम मोम और तैल को आग्न पर गला लें। फिर चूना मिलाकर मलहम तय्यार करे। अग्निदग्ध व्रणमें, जहाँ चमड़ी जलकर बिलकुल उतर गई हो, वहाँ पर भी इस मलहमके लगाने से आराम होजाता है। चूना भिगोकर ऊपरका जल फेक करके पुनः सुखा लेनेसे शुद्ध होता है।

(५४) मनःशिलादि मलहम।

बनावट—मैनसिल, छोटी इलायची, मजीठ, लाख, हल्दी और दारुहल्दी को २-२ तोले मिलाकर वारीक चूर्ण करें। पश्चात् ६ तोले शहद और ६ तोले घी मिलाकर मलहम बनाले।

उपयोग—व्रण अच्छा हो जानेके बाद दाग रह जाता है, और चमड़ी खराब हो जाती है; यह दोष इस मलहमके लेपसे दूर होता है।

(५५) पारदादि मलहम।

प्रथम विधि—पारद और गन्धक १-१ तोला, मुर्दासंग २ तोले, कपीला ४ तोले और नीलेथोथेका फूला ३ माशे लें। सबको खरल कर ३२ तोले धोये हुए गोघृतमें मिलाकर मलहम बनाले। (यो० र०)

उपयोग—इस मलहमका फोहा लगानेसे सपूर्ण प्रकारके दुष्ट-व्रण और नाड़ी-व्रण शुद्ध होकर भर जाते है। जो व्रण सैकड़ो ओषधियोंसे न भरे हो, वे भी इस मलहमके प्रयोगसे स्वल्पकालमें ही अच्छे होजाते हैं। नाड़ी-व्रणमें वत्ती बनाकर रखनी चाहिये।

यह मलहम प्रभावशाली अधिक है। इसके प्रयोगसे व्रणो का शोधन होकर रोपण भी होता है। सब प्रकारक दुष्टव्रण त्वरित भर जाते हैं। ४-६ इंच लम्बे चौड़े और १-१ इञ्च गहरे घाव भी इससे भरजाने के अनेक उदाहरण मिले है।

दूसरी विधि—पारद, गन्धक, हरताल, हिंगुल और मैनसिल १-१ तोला, मुर्दासङ्ग और सेलखड़ी २-२ तोले ले। पारद-गन्धककी कज्जली कर अन्य ओषधियोका चूर्ण मिला तुलसीक रसमें १ दिन खरल कर छायामें सुखाले। फिर धतूरेके पत्तोके रसमें १ दिन खरल करके गोलियाँ बनाले। (यो० र०)

उपयोग—इस गोलीको गायके धोये हुए घीमें घिस कर लेप करनेसे उपदशका घाव जल्दी भर जाता है।

तीसरी विधि—पारद, गन्धक, सिन्दूर, राल, कपीला, मुर्दासंग, नीलेथोथेका फूला और सफेद कत्था, इन ८ ओषधियोंको १-१ तोला तथा गोघृत (वेसलीन) ३२ तोले लेवें। पहले पारद-गन्धक मिलाकर

कज्जली करें। फिर शेष ओषधियाँ मिलाकर खरल कर लेवें। पश्चात् गोघृत या वेसलीन मिलाकर मलहम बना लेवें।

उपयोग—यह मलहम सब प्रकार के व्रणों पर व्यवहृत होता है। यह व्रणों का शोधन करके उनको भर देता है। दुष्ट व्रण जिसमें अति दुर्गन्ध वाला पूय स्राव होता है; मांस सड़ गया हो, खूब फैल गया हो और गहरा भी होगया हो, ऐसे गंभीरव्रण भी इसके योगसे थोड़े ही दिनोंमें भर जाते है। मस्तिष्क, जाँघ और सब स्थानोंके दुष्ट व्रण, पर इसका प्रयोग होता है।

इसके लगानेसे उपदंशज व्रणका रोपण भी त्वरित होजाता है। शीतलके टीका लगाने पर कभी कीटाणु प्रवेश होकर अन्य व्रण होजाता है। जिसमेंसे अत्यन्त दुर्गन्ध निकलती रहती है और पूयस्राव होता रहता है। इस पर भी यह लाभदायक है।

कितनेक रोगियोंके रक्त और त्वचाकी रचनामें विकृति आजाती है। फिर थोड़ासा घाव लगने पर वहाँ व्रण रहकर महीनो तक नहीं भरता। ऐसे व्रणोंका भी यह मलहम सत्वर शोधन और रोपण कर देता है।

कितनेक व्रण ओषधि लगाने पर भर जाते है। किन्तु थोड़े ही दिनोंमें उस स्थानमें या उसके समीपमें पुनः उत्पन्न होजाता है। इस तरह बार-बार दुःख पहुँचाता रहता है। ऐसे दुष्ट व्रणोंका यह मलहम सम्यक प्रकार से शोधन करके फिर रोपण कर देता है। इस मलहममें रहे हुए नीलाथोथाके और कीटाणुके प्रभावसे भीतर रहे हुए विष और कीटाणु नष्ट होजाते है। मुर्दासंग के योग से घावमें सत्वर शुष्कता आजाती है। कपीला घावमें सुखाने और भरनेमें सहायक है। पारद-गन्धक गहराई में रहे हुए कीटाणुओं और विष को नष्ट करने का कार्य करते हैं। सिंदूर घावको शुद्ध करने और भरने में उपयोगी है। राल घावको जल्दी भर देती है। कत्था घावको भरता है और उस स्थानको सबल बनाता है।

(५६) निम्बादि मलहम।

बनावट—निम्बके पत्तोंका स्वरस ४० तोले, गोघृत १० तोले, रसकपूर १ तोला और मोम २ तोले ले। पहले निम्बके पत्तोंके रसको घीमें मन्दाग्निसे जलावें। पश्चात् मोम मिलाकर घीको छान ले। निवाया रहने पर रसकपूर मिलाकर मलहम बनाले।

उपयोग—यह मलहम सब प्रकारके नये और पुराने घावोंको

शुद्ध करके भर देता है। जिन घावोंमें से जहरी पानी निकलता रहता हो; जहाँ-जहाँ लगे वहाँ पर नया व्रण होजाता हो; उनके विषको नष्ट करके सत्वर भर देता है।

(५७) माहेश्वर धूप ।

प्रथम विधि—राई, सरसो, नमक, गूगल, कुंदरू, वच, वाय-विड़ङ्ग और नीमके पत्तेको समभाग मिलाकर चूर्ण करें।

उपयोग—छोटे बालकोंके ज्वरमें माहेश्वर धूपका चूर्ण १ २ तोला लेकर वालकसे थोड़ी दूर अग्नि पर डालें। जिससे वातावरणमें धूपके अणु मिलकर वालकके श्वासोच्छ्वास द्वारा शरीरमें प्रवेश करके ज्वरको उतारनेमें सहायता पहुँचाते है। वड़ोंके लिये भी हितकर है।

(५८) अपराजित धूप ।

वनावट—गूगल, अगर, रोहिस घास, नीमके पत्ते, आकके पत्ते, वच, राल, और दारुहल्दीको समभाग मिला लें।

उपयोग—इसका धुआँ देनेसे सब प्रकारके ज्वर नष्ट होते हैं।

(५९) सहदेव्यादि धूप ।

वनावट—सहदेवी, वच, हल्दी और रास्नाको समभाग मिलाकर धूनी दें और इन ओषधियोंका चूर्ण वनाकर मालिश करे। (नि० र०)

उपयोग—इस धूपसे सब प्रकारके ज्वर दूर होते है। विषम-ज्वरमें अति उपयोगी है।

(६०) जन्तुघ्न धूप ।

वनावट—नमक ३० तोले, कसीस १० तोले और नौसादर २० तोले मिलालें। (वै० स० वि०)

उपयोग—प्लेगके मरीज जहाँ रहते हो वहाँ कोयलोंकी जलती हुई अँगीठीके ऊपरमें तवा रखकर नमकवाली धूप रखदे, जिससे वातावरणमें धूपका असर फैल प्लेगके मरीजके श्वासोच्छ्वासमें मिला कर रोग दूर करनेमें सहायता पहुँचाती है। शेष अंश (लाल राख) तवे पर रहे, उसे गरम जलमें मिलाकर प्लेगकी गाँठ पर लगानेसे जल्दी लाभ पहुँचता है

(६१) दशांग धूप ।

वनावट—वच, हींग, वायविड़ङ्ग, सैंधानमक, गजपीपल, पाठा, अतीस, सोंठ, कालीमिर्च और पीपल, इन १० ओषधियोंको समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण करें। (वा० म०)

उपयोग--इस चूर्णकी धूप देनेसे बालकोंके सब प्रकारके ग्रह-दोष नष्ट होते हैं।

(६२) जात्यादि धूप

बनावट—चमेलीके पत्ते, मैनसिल, राल और गूगलको समभाग मिलाकर बकरीके मूत्रमें पीस कर गोलियां बनालें। (यो० र०)

उपयोग—इस गोलीको चिलममें रख कर धूम्रपान करनेसे कफ निकल जाता है, हृदयावरोध और कण्ठावरोध दूर होते हैं, तथा कास, श्वासका शमन होता है।

(६३) अर्शोघ्न धूम्र।

प्रथम विधि—कचूर (शठी) १० तोले, वायविडङ्ग १० तोले और भाँग ५ तोले लेकर चूर्ण करें। फिर एकाध तोलेका धुआँ दें।

धुआँ देनेकी विधि—एक बर्तनमें निर्धूम कोयला रख ऊपर चूर्ण डाल तुरन्त हुक्का पीनेकी चिलमसे ढक दें। चिलमके छिद्रमें से धुआँ निकलता रहे; उसे मस्से पर लगाते रहें। कमर तक कपड़ा ओढ़ करके धुआँ देनी चाहिये।

उपयोग—इस धूम्रसे मस्से नरम होकर मुरझा जाते हैं। जो मस्से भीतरके हैं वे नरम होकर ऊपर चढ़ जाते हैं।

दूसरी विधि—कुचिला, कपूर, शमी (छोंकर) के पत्ते, हल्दी, छोटी कटेलीके फल, सबको समभाग लेकर चूर्ण करें।

उपयोग—कमर तक कपड़ा ओढ़ा ईंटों पर उकड़ूँ बैठा गोबरी की निर्धूम अग्नि पर एक तोला डाल चिलम की नली द्वारा अर्शके मस्से को धुआँ देनेसे भयंकर दर्द भी तुरन्त शान्त होता है।

(६४) कृमिघ्न धूम्र।

बनावट—छोटी कटेलीके सूखे फलको एक कलछीमें रख कर कोयलोंकी सिगड़ी पर रखे और कलछी पर एक नली रखकर, दाँत, अथवा कानमें जहाँ कृमि हों, वहाँ पर धुआँ देनेसे तुरन्त कृमि बाहर निकल जाते हैं। एवं एक-एक फल चिलममें रखकर धूम्रपान करनेसे तम्बाखूके व्यसनीकी खांसी, भयंकर कफप्रकोप, हृदयावरोध आदि उसी क्षण दूर होजाते हैं।

(६५) देवदार्वादि धूम्र।

बनावट—देवदारु, खरेटीकी जड़ और जटामाँसीको समभाग मिला बकरीके मूत्रमें पीसकर वर्त्ति बना लें। (मा० प्र०)

उपयोग—इस वत्तीको घी चुपड़ कर धूम्रपान करनेसे श्वासकी भयंकर पीड़ा तुरन्त नष्ट हो जाती है।

(६६) मनःशिलादि धूम्रपान।

बनावट—मैनसिल, हरताल, कालीमिर्च, जटामांसी, नागरमोथा और हिंगोटके फलकी छालको समभाग लेकर चूर्ण करें। (वृन्द)

उपयोग—२ से ४ रत्ती चिलममें डालकर धूआँ लेनेसे शीघ्र कफ निकलकर एकदोषज, द्विदोषज और त्रिदोषज कास और श्वासावरोध दूर होते हैं। विशेषतः तमाखू पीने वालोंके वातकफजनित श्वास और भयकर कफयुक्त कासमें लाभदायक है। धुआं लेकर ऊपर गुड़ या मिश्री मिला निवाया दूध पीवें। जो सैकड़ो औषधियोंसे अच्छे न हुए हो, ऐसे रोगी भी इस प्रयोगसे त्वरित् अच्छे हो जाते है।

सूचना—रक्तपित्त, उदररोग, तिमिर दोष और प्रमेहके उपद्रव वालोंको धूम्रपान नहीं करना चाहिये। धूम्रपान करने पर उनको धुआँ मुँहसे निकालना चाहिये। धुँएको नाकसे न निकाले।

(६७) अस्थिदोपहर सेक।

प्रथम विधि—गेहूँका मैदा, मैदालकड़ी और हल्दी १०-१० तोले, सज्जीखार २ तोले और तिलका तैल २० तोले ले। पहले तैलको गरम कर मैदा भूनें। फिर सज्जीखार, मैदा लकड़ी और हल्दी क्रमसे डाल, थोड़ा पानी मिलाकर हलवेके समान पकावें। फिर वार-वार गरम कर आध घण्टे तक चोट पर सेक करें। पश्चात् औषधि बाँध देवे। चोटके कारण हड्डी पर आघात, शोथ, रक्त इकट्ठा होना, वेदना होना, आदि दोष दूर होते है।

दूसरी विधि—मैदा लकड़ी ३ तोले, सोठ और कुचिला १-१ तोला ले। सबको हाडीमें एक सेर पानी के साथ डाल ढक्कन ढककर औटावे। जब तक तीसरा भाग पानी रहे, तब तक बफारा देवें। फिर पानी छानकर चोटवाले भागको धोवे, और दवाका बुगदर पीस निवाया करके बाँध देवे। इस तरह प्रयोग करनेसे ३ दिनमें आराम होता है। इससे नई और पुरानी चोटके सब दोष दूर होते है।

(३८) कलिङ्गाद्य नस्य।

बनावट—इन्द्रजौ, कच्ची हींग, कालीमिर्च, लाक्षा, कायफल, कूठ, बच, सुहिजनाके बीज और वायविडङ्ग, इन ६ औषधियोको समभाग मिला कूट-कपड़छान चूर्ण कर बोतलमें भरले इस नस्यमें थोड़ा

कपूर भी मिला लिया जाय तो विशेष हितकर है। (सो० र०)

उपयोग—इस नस्यके सूँघनेसे जुकाम, शिरदर्द, श्वासकी रुकावट और सब प्रकारके नासिका-रोग दूर होते हैं।

(६९) नजलानाशक नस्य।

बनावट—कश्मीरी पाठा और उस्तखद्दूस दोनों २-२ भाग तथा बालछड़(जटामाँसी) और गुलबनफशा १-१ भाग लें। सबको मिलाकर कपड़छान चूर्ण करें। (स्वा० कृष्णानन्दजी चक्रवर्ती)

उपयोग—इस नस्य के सूँघनेसे कपालमें संग्रहीत कफ दूर होता है। श्वासनली साफ होती है, जिससे नजलेका पानी आँखोंमें उतर कर नुकसान पहुँचाता हो, वह बन्द होजाता है। शिरदर्द शमन होकर मस्तष्क हलका और शान्त बन जाता है। जुकाम वालोंके लिये अति लाभदायक है। सन्निपात और उदावर्त रोगमें शिरोविरेचन की जहाँ आवश्यकता हो वहाँ पर यह लाभ पहुँचाता है।

० (७०) शिरशूलान्तक नस्य।

प्रथम विधि—कायफल ५ तोले, नकछीकनी २ तोले; छोटी पीपल, तुलसीपत्र, वायविडङ्ग, छोटी इलायचीके बीज, कपूर, सब १-१ तोला और देवदाली ६ माशे लें। सबको कूट कपड़छान चूर्ण बनाले। इसमेंसे १-१ रत्ती आवश्यकता पर सुँघावें।

उपयोग—इस नस्यसे शिरदर्द, जुकाम, तन्द्रा, श्वासावरोध आदि दोष दूर होते है।

तीसरी विधि—हरड़, सोंठ, कालीमिर्च और पीपल ६-६ माशे, बच्छनाग ३ माशे तथा पीपल (अश्वत्थ) की छालकी राख १॥ तोले ले। सबको अच्छी रीतिसे खरल करके नस्य तैयार करलें।

उपयोग—इस नस्यमेंसे आध रत्ती सुँघानेसे कफ, कृमि आदि दोष निकलकर शिरदर्द शमन होता है।

० (७१) मूर्च्छान्तक नस्य।

बनावट—नौसादर, चूना और कलमीशोरा प्रत्येक १-१ तोला ले। फिर अलग-अलग पीस स्टोफर्ड बोतलमें भरकर मिलाले। पश्चात् कपूर ३ माशे मिलाकर अच्छी रीतिसे हिलालें।

उपयोग—बेहोशीके समय सुंघानेमें अति उपयोगी है। सन्निपात, हिस्टीरिया और सर्प आदि जानवरोंके जहरकी मूर्च्छा दूर कर देता है। दाँत भिंचे हुए हो, औषध खा न सके; उसी समय इस

नस्यको सुँघानसे दाँत खुल जाते हैं, और रोगी होशमें आजाता है। यदि रोगी सूँघ न सके तो उसकी नाकके पास बोतलको खोलनेसे गैस तत्काल प्रवेश कर जाती है।

(७२) विषादि उद्धूलन।

बनावट—अशुद्ध बच्छनाग १ तोला, कालीमिर्चका चूर्ण ३ तोले और जंगली अरनीकी राख १६ तोले मिला धतूरेके पत्तोंके रसकी भावना देकर सूर्यके तापमें सुखाले।

उपयोग—यह उद्धूलन सन्निपातमें शीत और पसीना दूर करनेके लिये सारे शरीर पर मालिश करनेमें उपयोगी है।

(७३) भूनिम्बादि उद्धूलन।

बनावट—चिरायता, कुटकी, कूठ, सौंफ, इन्द्रजौ और कचूर को समभाग मिलाकर बारीक चूर्ण करें।

उपयोग—सन्निपातमें अत्यन्त पसीना आता हो और कंठावरोध हो; तब शरीरके प्रत्येक सांधो पर इसकी मालिश करनेसे सन्निपात के विकार शांत हो जाते है।

(७४) त्वक्पत्रादि उद्वर्तन।

बनावट—दालचीनी, तेजपात, रास्ना, अगर, सुहिंजनेकी छाल, कूठ, बच और सौंफ सबको समभाग मिलाकर चूर्ण करे। (वृन्द)

उपयोग—इस चूर्ण को नीबूके रस या काजीमें पीस, गरम कर लेप करनेसे हैजेमें हाथ पैरकी नसोंका खिचना तुरन्त बन्द होजाता है। यदि इस चूर्णका कल्क बना कांजी मिला सरसोंका तैल सिद्ध करें और इस तैलकी मालिश करे, तो भी शीघ्र लाभ होता है।

(७५) चन्द्रप्रभा उबटन।

बनावट—पीली सरसों, चिरोंजी और मसूरकी दालको समभाग मिला गोदुग्धमें पीस रात्रिको सोनेके समय मुँह पर लेप करे।
(श्री रामस्वामीजी)

उपयोग—तारुण्य पिटिका (मुँहासे) और मुँह परके काले दाग थोड़े ही दिनोंमें दूर होते हैं। सारे शरीरमें मालिश करनेसे दुर्गन्ध, फुन्सी और खाज दूर होकर शरीरकी त्वचा सुन्दर बन जाती है।

(७६) हरीतक्यादि उबटन।

बनावट—हरड़, लोद, नीमके पत्ते, आमकी छाल और अनार बृक्षकी छालको समभाग मिलाकर बारीक चूर्ण करे। (वृन्द)

उपयोग—इस चूर्णको जलमें मिलाकर मालिश करने से शरीर की दुर्गन्ध और श्यामता दूर होकर त्वचा उज्ज्वल रङ्गकी होजाती है ।

(७७) रजःप्रवर्तनी वर्ति ।

बनावट—एलुवा और कड़वे बिदाल (देवदाली) के फल ६-६ माशे ले तेज शराबमें पीस पतले साफ कपड़े पर लेप करें । फिर वस्त्र को गुण्डाल कर वर्ति बनाले । (श्री पं० मंगुलालजी)

उपयोग—इस वर्तिको भगमें धारण करानेसे मासिकधर्म आने लगता है । साथमें चोख (सत्यानाशीकी जड़) को जलमें घिसकर नाभि पर लेप करें ।

(७८) फलवर्ति ।

बनावट—मैनफल, पीपल, कूठ, वच, सफेद सरसों और जवाखार १-१ तोला लेकर बारीक चूर्ण करें । बादमें ६ तोले गुड़को थोड़ा जल मिला गरम करके चाशनी करें । फिर चूर्ण मिलाकर चलाते रहें । जब वर्ति बाँधने लायक हो जाय, तब कनिष्ठाकासे कुछ पतली और नोक वाली वर्ति (बत्तियाँ) बनाले । (वृन्द)

उपयोग—इस वर्ति पर थोड़ा घीवाला हाथ लगाकर गुदामें चढ़ानेसे मलावरोध जनित उदावर्त रोगका शमन होता है, उसी समय रुकी हुई अधोवायु निकलकर आफरा दूर होता है ।

(७९) त्रिकट्वादि वर्ति ।

बनावट— सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, सैंधानमक, सरसों, रसोई घरका धुवाँ, कूठ, और मैनफल १-१ तोला लेकर बारीक चूर्ण करें । पश्चात् गुड़ ८ तोले को जलमें मिला चाशनी करें । फिर चूर्ण मिला कर वर्ति बनालें । (वृन्द)

उपयोग—घीवाला हाथ लगाकर वर्तिको गुदामें धीरे-धीरे प्रवेश करावें । इस वर्तिसे गुल्म, मलावरोध, कृमि आदि से उत्पन्न आ और उदावर्तका शमन होता है ।

❀ समाप्त ❀

रोगानुसार औषध-सूची

इस सूची मे किस रोगपर कौन-कोन-सी औषध दीजाती है, यह दिखाया है। एक ही रोग पर अनेक औषधि काम देती हैं। परन्तु इनमें से देश, काल, दोष-दूष्य आदि भेद से कोई विशेष अनुकूल रहती है, कोई कम। कोई सत्वर लाभ पहुंचाती है, कोई चिरकाल में। एव समान औषधियों में से अनेक लाभ नहीं पहुंचा सकतीं। अतः विवेक पूर्वक उपयोग करना चाहिये। यथाहि—निद्रा-नाश पर मुक्तापिष्टी, सूतशेखर, निद्रोदय रस आदि औषध उपयोगमे आती हैं। इनमें से पित्त-प्रकोप या रक्त की उष्णता हेतु हो, तो मुक्तापिष्टी, वात-पित्तात्मक दोष हो, तो सूतशेखर, और तीव्र वेदना होने पर वातकेन्द्र को बला-त्कार से सुप्त बनाकर निद्रा लाना हो, तो निद्रोदय रस देना चाहिये। पृष्ठ ४१६-में हेमगर्भपोटली रस की दो विधि लिखी हैं। दोनों क्षय और संग्रहणी पर उपकारक हैं। इनमें प्रथम विधिसे जब यकृत्पित्तका स्राव कम होता हो, तब चढ़ाकर नियमित कराने तथा कफस्राव और अनेक पिण्डोको सुदृढ़ बनानेकी जहाँ आवश्यकता हो, वहाँ पर हितकारक है। द्वितीय विधि उदरवात तथा पित्त की अम्लता और उष्णता को शमन करने, अन्त्रकी सग्राहक शक्तिको चढाने तथा अस्थिसस्थाको दृढ बनाने के लिये लाभदायक मानी गई है। इस रीतिसे सब औषधियो में सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर विभिन्नता जानी जाती है। हमने कुछ अंशमे दोष आदि भेद से औषध की पृथक्ता का यहाँ दिग्दर्शन कराया है। अधिक विस्तार 'चिकित्सा तत्त्वप्रदीप' मे यथा-स्थान किया है।

पाठकोंसे प्रार्थना है कि इस संक्षेप मे लिखी हुई चिकित्सा पद्धति के अनुसार रोगी, रोग, रोगबल, हेतु, दोष दूष्य, लक्षण, आयु, औषधिबल, आहार-विहार, परिस्थिति, सब बातो का विचार करके चिकित्सा करे। रोगोंके नाम प्रान्तभेद से भिन्न होने से किसी एक प्रान्त मे प्रचलित नाम अन्यत्र उप-योग में नहीं आते। अनेक नाम अन्य प्रान्तवासी नहीं जानते अत. यहाँ माधवनिदान मे लिखे सस्कृत नाम ही प्रायः अकारान्त क्रम से लिखे हैं।

पाठकों की सुविधा के लिये रोगों के नामों की यादी यहाँ दी है, जिससे सब कोई इच्छित रोग-वर्णन तुरन्त निकाल कर देख सके। उदाहरणार्थ—कब्ज,

कब्जियत, मलावरोध, बद्धकोष्ठ और आनाह, इन शब्दोंमें से वर्णन आनाह के साथ लिखा है। इस रीतिसे अनेक पर्याय नाम वाले रोगोंके लिये समझें।

१ अग्निदग्धव्रण।
२ अग्निमान्द्य।
३ अजीर्ण।
४ अतिसार—दस्त।
५ अन्तर्विद्रधि।
६ अन्त्रवृद्धि।
७ अन्तःस्रावक-ग्रन्थिविकृति।
८ अन्त्रपुच्छ प्रदाह
९ अपस्मार-मृगी।
१० अम्लपित्त।
११ अरोचक।
१२ अर्बुद।
१३ अर्श—बवासीर।
१४ अश्मरी—पथरी।
१५ अष्ठीला।
१६ अस्थि-भग्न।
१७ अस्थि क्षय।
१८ अहिफेन व्यसन।
१९ आध्मान—आफरा।
२० आनाह-बद्धकोष्ठ।
२१ आमवात।
२२ आमाशय व्रण।
२३ उदर रोग।
२४ उदावर्त्त।
२५ उन्माद।
२६ उपदंश-गर्मी।
२७ उरस्तोय-कुद्युदर।
२८ ऊरुस्तंभ।
२९ कण्ठमाला।
३० कण्ठरोग।
३१ कब्ज।
३२ कर्कस्फोट
३३ कर्णरोग।
३४ कृमि।
३५ कामला।
३६ कास—खाँसी।
३७ कुष्ठ—कोढ़।
३८ गुल्म।
३९ ग्रहणी—संग्रहणी।
४० ज्वर—बुखार।
४१ ज्वरातिसार।
४२ तृषा।
४३ त्वचारोग।
४४ दन्तरोग।
४५ दद्रु—दाद।
४६ दाह।
४७ धातुक्षीणता।
४८ निद्रानाश।
४९ नासारोग।
५० नेत्ररोग।
५१ पलित-सफेद बाल
५२ प्रतिश्याय-जुकाम।
५३ प्रभापात-लूलगना।
५४ प्रमेह।
५५ प्रमेहपिटिका।
५६ प्रवाहिका—पेचिश
५७ पाण्डु।
५८ पामा-खुजली।
५९ पित्तवृद्धि।
६० प्लीहा-वृद्धि।
६१ बद्धकोष्ठ।
६२ बहुमूत्र।
६३ बालरोग।
६४ बुद्धिमान्द्य, स्मृतिनाश।
६५ भगंदर।
६६ भस्मक।
६७ भ्रम—चक्कर।
६८ मदात्यय।
६९ मसूरिका, रोमांतिका
७० मुखरोग।
७१ मूर्च्छा।
७२ मूत्रकृच्छ्र मूत्राघात
७३ मूत्रवाहिनीमेंव्रण।
७४ मेदोवृद्धि।
७५ यकृद्वृद्धि।
७६ रक्तदबाववृद्धि।
७७ रक्तपित्त।
७८ रक्तविकार।
७९ रक्तस्राव।
८० वमन—कै।
८१ वमन कराना।
८२ वातरोग।
८३ वातरक्त।
८४ विचर्चिका-च्युची।
८५ विद्रधि।
८६ विरेचन देना।
८७ विषविकार।
८८ विसूचिका—हैजा।
८९ विसर्प, विस्फोटक।
९० वृक्कविकार।
९१ विविध व्रण।
९२ वृषण वृद्धि।

(१) अग्निदग्धव्रण-आग से जलना।

वराटिका भस्म १८६। चन्दनादिवमक ७९२। अग्निदग्धहर मलहम, ८२६। शिर शूलान्तक मलहम ८२६। दाग रह जाने पर-मनःशिलादि मलहम ८२७।

(२) अग्निमान्द्य-मन्दाग्नि (Dyspepsid)।

वातप्रधान—अग्नितुण्डी वटी ३९४। चित्रकादि वटी ५९४। हिंग्वादि वटी ५९०, ६२१। हिंग्वष्टक चूर्ण ६२६। धनंजय वटी ५९३। शिवाक्षार पाचन चूर्ण ६३०। विषतिन्दुकादि वटी ६०५। गंधक वटी ६१४। आर्द्रकावलेह ७५१। क्षुद्बोधक रस ५५७।

पित्तप्रधान—वैडूर्यभस्म १७०। प्रवालभस्म १७६। शुक्तिभस्म १८७। शंख भस्म १९२। वराटिका भस्म १८६। लवणादि चूर्ण ६४०। नीबूका शर्बत ७६४। स्वादिष्ट शर्बत ७६३। प्राणदा गुटिका ६०७। स्वादिष्ट-पाचन वटी ६२२। सितोपलादि चूर्ण ६२८।

कफप्रधान—अग्निकुमार रस ३८६। धनंजयवटी ५९३। लोकनाथ रस ४९८। चित्रकादि वटी ५९४। गंधक वटी ६१४। आर्द्रकावलेह ७५१। क्षुद्बोधक रस ५५७।

जलवायु दोष जनित—दुर्जलजेता रस ३२२। आर्द्रकावलेह ७५१।

धातुकी निर्बलतासे—सुवर्ण भूपति २९८। अभ्रक भस्म १५१। ताम्र भस्म ९६। लोह भस्म १०३। वंगभस्म ११२। लक्ष्मीविलास ३३९, ४२०। सुवर्णमालिनी वसन्त ३५०। हिंगुलरसायन ४६६। द्राक्षारिष्ट ७०८। अश्वगंधारिष्ट ७०४। त्रैलोक्यचिन्तामणि ३१६। वसंतकुसुमाकर ४७७।

विष्टब्ध या आमाजीर्ण से जीर्ण मन्दाग्नि—रससिंदूर २४४। प्राणदापर्पटी २९३। अग्नितुण्डी ३९४। द्राक्षासव ७०८। महाद्राक्षासव७२०। क्षुद्बोधक रस ५५७। हिंग्वष्टक ६२६। शिवाक्षार पाचन ६३०।

ज्वरके पश्चात् अग्निमान्द्य—सुवर्णमालिनी ३५०। लघुमालिनी ३५८।

(३) अजीर्ण—अपचन (Indigestion)

(४) अतिसार–दस्त (Diarrhoea)

स्थादि यवागू ६७४। जीवन रसायन अर्क ७३५। जातिफलादि वटी ३८२। हिंगुल वटी ३८३। अगस्तिसूतराज रस ३७०। शुभ्रा भस्म २१६।

कफ-पित्तात्मक—कुटजादिकषाय ६६६। कुटजारिष्ट ७११। कुटजावलेह ७४७। कुटजादि वटी ५६५।

रक्तातिसार—महावातराज ५५२। लक्ष्मीनारायण ३३४। संगजराहत भस्म २११। शम्बुक भस्म २१७। बोलपर्पटी २८६। कर्पूर रस ३६८। शंखोदर ३८०। सूतशेखर ५१५। कुटजाद्य वटी ५६५। जातिफलादि वटी ३८२। उशीरादि क्वाथ ६६६। कुटजारिष्ट ७११। उशीरासव ६९६।

मानसिक आघातजन्य—द्राक्षासव ७०८। अभ्रक भस्म १५१ और वराटिका भस्म १८६ (शहद और सोंठके चूर्ण के साथ)।

प्रसूता के अतिसार—जीरकाद्यरिष्ट ७१८। लवुगंगाधर चूर्ण ६३८। सूतशेखर रस ५१५।

अन्त्रशोथज अतिसार—जसद भस्म १२७। भृङ्गराजासव ७२५। रसपर्पटी २८१।

गुदभ्रंश—क्षुद्ररोगमे देखे।

अँतड़ीकी सधारण-शक्तिकी वृद्धि अर्थ—अभ्रक भस्म, नाग भस्म और रससिंदूर (कुटजारिष्टके साथ)। पंचामृत पर्पटी २९०।

(५) अन्तर्विद्रधि—(विद्रधि रोगमे देखें)

(६) अन्त्रवृद्धि—आँत उतरना (Inguinal Hernia)

नूतन—अंत्र वृद्धिहर गुटिका ६०४। अन्त्रवृद्धिहर चूर्ण ६४२। वृद्धिवाधिका वटी ५०३।

जीर्ण—नित्यानन्द रस ५०५।

(७) अन्त्रपुच्छ प्रदाह (Appendicitis उदररोगमें देखे)

८ अन्तःस्रावक ग्रन्थियोंकी विकृति।

सारिवासव ७२३। नाग भस्म १३१। जसद भस्म १२७। जातफलादि वटी (मधुमेह) ४८५। आरोग्य वर्द्धिनी ४८७।

(९) अपस्मार—मृगी (Epilepsy)

नया—ताप्यादि लोह ४०१। योगराज रस ४११। अमरसुन्दरी ४५० रौप्य भस्म ८६। वातकुलान्तक ४४६। भूतभैरव रस ४४६। उन्मादगज-केसरी ४४८। स्मृतिसागर ५६३। योगेन्द्र रस ५७३।

जीर्णावस्था—अभ्रकभस्म १५१। अष्टमूर्तिरस २७१। मल्ला-

सिंदूर२४६ सूतराज २६६ । मल्लसिंदूर वटी ५६४ । नारसिंहारिष्ट ७०७ । पंचगव्यघृत ७७२ । ब्राह्मीघृत ७७४ । कल्याणघृत । स्मृति सागर ५६३ ।

वेहोशी शमनार्थ—श्वासकुठार ४२८ । मूर्च्छान्तक तन्त्र ८२२ ।

अर्शरोग-सह अपस्मार—गन्धक रसायन ४४० ।

उपदंश रोग के उपद्रव रूप अपस्मार—अष्टमूर्ति रसायन २७१ । मल्लसिंदूर २४६ । उपदंशारि ५०७ ।

हिस्टीरिया सह अपस्मार का दौरा—मलेरिया वटी (नं० २) ३४३ ।

(१०) अम्लपित्त (Acidity)

सब पर हितावह—जीरकादि मोदक ७४१ । कूष्माण्डावलेह ७४६ । द्राक्षावलेह ७५० । सूतशेखर ५१५ ।

वातप्रकोप सह—रौप्य भस्म ८६ । अविपत्तिकर चूर्ण ६३६ ।

आमाशयवृद्धिज—रौप्य भस्म ८६ । नागभस्म १३१ । सुवर्ण-माक्षिक भस्म १३८ । वंगभस्म ११२ । ताप्यादि लोह ४०१ । कामधेनु रस ५७० ।

कीटाणुप्रकोपज—लीलाविलास ५२६ ।

उदर में व्रण होकर जीर्ण अम्लपित—नाग भस्म १३१ । सुवर्णमाक्षिक भस्म १३८ । ताप्यादि लोह ४०१ ।

यकृत् की निर्बलता सह—लीलाविलास ५२६ ।

भोजन के बाद हृदय शूल—शीतल पर्पटी २६४ ।

उदर में भारीपन—शंखभस्म १६२ ।

कफप्रधान अम्लपित्त—लीलाविलास ५२६ ।

पित्त की तीक्ष्णता और अम्लता कम कराना—मुक्ताभस्म १७२ । प्रवाल पिष्टी १७८ । कामदूधा रस ४३६ । सुवर्णमाक्षिकभस्म १३८ ताप्यादि लोह ४०१ । सूतशेखर ५१५ । शख भस्म १६२ ।

शरीर शोधनार्थ—तत्थभस्म २१४ । नीलकण्ठ रस ३३४ ।

(११) अरोचक--अरुचि (Anorexia)

सब पर हितावह—अदरख का शर्बत ७६४ । धनंजय वटी ५६३ । शख वटी ३७६ । आर्द्रकावलेह ७५१ । आरग्वधादि कल्क ६६१ । कंठ सुधारक वटी ५६६ । गन्धक वटी ६१४ । स्वादिष्ट पाचन वटी ६२२ । स्वादिष्ट पाचन चूर्ण ६३० । यवानी खाण्डव चूर्ण ६३२ । जातिफलादि चूर्ण ६३६ । द्राक्षारिष्ट ७०८ ।

वातिक-मानसिक चिन्ता-जन्य—रौप्यभस्म ८६ । (फिरंग-

सुजाक-वाद-रौप्यभस्म ८८)। (ज्वरादि पश्चात्-अभ्रकभस्म १५१)।

पित्त-विकार जन्य--प्रवाल पिष्टी १७८। कामदूधारस ४३६। प्रवालपञ्चामृत ४७२। नीबू का शर्बत ७६४। सितोपलादि चूर्ण ६२८।

कफ-दुष्टीजन्य--अग्नि कुमार ३८६। लघुक्रव्याद् ३६४ हिंग्वादि-चूर्ण ६३६। अग्नितुण्डी वटी ३६४। हिंगुल रसायन ४६६।

ज्वरके पश्चात्--आरग्वधादि कल्क ६६१, ६७५। सुवर्ण मालिनी वसन्त ३५०। लघुमालिनी वसन्त ३५८। पीपल ६४ प्रहरी ४५।

(१२) अर्बुद (Cancer)।

सब प्रकार पर--कांचनार गूगल ६१०। खदिरारिष्ट ७०१।

वात या कफ प्रधान—ताम्रभस्म ६६।

पित्त प्रधान--वंगभस्म ११२। नागभस्म १३१।

यकृद् पर मांसार्बुद--ताप्यादि लोह ४०१।

(१३) अर्श—बवासीर (Piles)।

सब प्रकार पर हितकर--ताप्यादि लोह ४०१। योगराज रस ४११। प्राणदा गुटिका ६०७। चतुसमो मोदक ६१८। नित्योदित रस ३८६। अर्श-कुठार रस ३८६। अर्शोहर वटी ६०६। अभयारिष्ट ७१३।

वातार्श--रौप्यभस्म ८६। लोहभस्म १०३। नागभस्म १३१। वंग-भस्म ११२। बृहद् योगराजगूगल ४५६। अश्वगंधारिष्ट ७०४। दुर्नामकुठार वटी ६०८। सप्तविंशतिको गुग्गुल ६११।

पित्तज--रौप्यभस्म ८६। गन्धक रसायन ४४०। मुक्तापिष्ठी १७२। लोहासव ६६४। अभयारिष्ट ७१३। द्राक्षासव ७०८।

कफज—क्रव्याद रस ३६१। नवायस चूर्ण ४०६।

रक्तार्श—नागभस्म १३१। पित्तल भस्म २१२। सुवर्ण माक्षिक भस्म १३८। द्राक्षासव ७०८।

रक्त बन्द करनेके लिये—बोल पर्पटी २८६। शखोदर रस ३८०। जातिफलादि वटी ३८७। बालबद्ध रस ३८७। लोहभस्म १०३। उशीरासव ६६६। अर्शोघ्न चूर्ण ६४१। तृणकान्तमणि १६५। बोलपर्पटी २८६।

शक्तिसंरक्षणार्थ--अभ्रक भस्म १५१। लक्ष्मी विलास रस ३३६।

लगाने के लिये--प्रतिसारणीय क्षार ८०८। कासीसादि लेप ८१३। अर्शोहर मलहम ८२४। कासीसादि तेल ७८४। अर्शोहर लेप ८१५।

मल-शुद्धि-अर्थ—द्राक्षासव ७०८। अभयारिष्ट ७१३। तालीसादि चूर्ण ६३७। नाराच घृत ७७०। त्रिफला चूर्ण ६३४। स्वादिष्ट विरेचन ६३४।

ग्म ६३५। नाराच चूर्ण ६५५। विरेचन चूर्ण ६३६। पंचसकार चूर्ण ६३६। भृङ्गराजासव ७२५। लवण भास्कर + पंचसकार ६३६।

अपान वायु अवरोध—लवण भास्कर ६२६।

जीर्ण रोग—अभ्रक भस्म १५१। शंखवटी ३७६। द्राक्षासव ७०८। कुमार्यासव ६६५। अभयारिष्ट ७१२। नाराचघृत ७७०। जातिफलादि चूर्ण ६३६। अग्नि- तुण्डी वटी ३६४। भृङ्गराजासव ७२५। ताप्यादि लोह ४०१। नाग भस्म १३१।

शुक्रक्षीणताके पश्चात्—नाग भस्म १३१। ताप्यादि लोह ४०१। वंग भस्म ११२। सुवर्णवङ्ग २५८। चन्द्रप्रभा वटी ५६७।

उपदंश-जन्य—बोलपर्पटी द्वितीय विधि २८६। गन्धक रसायन ४४०।

(२१) आमवात (Rheumatism)।

नया तीव्र—महावातविध्वंसन ४५१। आमवातप्रमथिनी वटी ४६५। ज्वरकेसरी ३०२। जयमंगल ३२०। लक्ष्मीविलास ३३६। मृत्युंजय ३२६।

सामान्य प्रकोप—हिंग्वादिवटी ५६०। टकणादिवटी ५६०। महारास्नादि क्वाथ ६६७। वृद्धदारुकादि चूर्ण ६४१। वैश्वानरचूर्ण ६४८। अजमोदादि चूर्ण ६४८।

जीर्ण—लोहभस्म १०३। मल्लसिंदूर २४६। सुवर्णभूपति २६८। ताप्यादिलोह ४०१। वृहद् योगराजगूगल ४५६। समीरगज केसरी ४५५। महारास्नादिक्वाथ ६६७। चोचा भल्लातक वटी ६१३। वात्रीभल्लातक वटी ६१४।

हृदय-रक्षणार्थ—लक्ष्मीविलासरस ३३६। पूर्णचन्द्रोदयरस २४०।

सूतिका को आमवात—अश्वगंधारिष्ट ७०४।

कोष्ठदोष-शोधनार्थ—नाराचघृत ७७०। नारायणचूर्ण ६३३।

२२ आमाशय व्रण।

पित्तज—कामदूधारस ४३६। सूत शेखर ५१५।

वात प्रकोप-सह—रौप्य भस्म ८६।

वातवाहिनियों की विकृति से—अभ्रक भस्म और नाग भस्म।

२३ उदर रोग।

वातोदर—दशमूलाद्यघृत ७७१। दशमूल क्वाथ ६५८। हिंगुलरसायन ४६६ अग्नि तुण्डी वटी ३६४।

पित्तप्रधान—रौप्यभस्म ८६।

आफरा-सह—प्रवाल पचामृत ४७२।

कफोदर—ताम्र भस्म ६६। अग्नितुण्डी वटी ३६४। तालसिंदूर २५३।

अन्त्रपुच्छ प्रदाह—अग्नितुण्डी वटी ३६४।

(२४) उदावर्त्त ।

मानसिक आघात जन्य—स्मृतिसागर ५६३ । अभ्रकभस्म १५१ (विजय पुष्पाद्यवलेह ७५४ के साथ)।

गर्भाशय विकार और मासिक धर्म विकृति—स्मृतिसागर ५६३ । ब्राह्मी वटी ३४६ । लक्ष्मी विलास रस ३३६ ।

शुक्रक्षयज उन्माद—पूर्ण चन्द्रोदय रस २४० । (च्यवनप्राशावलेह-के साथ)। वंगभस्म ११२ ।

भूतोन्माद—पुन पुनः प्रकुपित होने वाला जीर्ण—अभ्रकभस्म १५१ । शिलासिन्दूर २५५ । भूतराज रस २६६ । स्मृतिसागर ५६३ । पंचगव्यघृत ७७२ । कल्याण घृत ७७६ ।

फिरंग अनुबन्ध-सह—अष्टमूर्ति रसायन २७१ । मल्लसिंदूर २४६ ।

निद्रानाश पर—सर्पगन्धादि वटी ६२२ । विजय पुष्पाद्यवलेह ७५४ ।

बाह्योपचार—उन्मादभंजनी वटी ८०१ । चेतानाम गुटिका ८०२ । दशांग धूप ८२६ ।

२६ उपदंश–फिरंग–गरमी (Syphilis)।

नया रोग—पारद भस्म १३७ । व्याधिहरण २७३ । सत्यानाशी का तैल ५२ । अमीर रस ५१२ । उपदंश कुठार रस ५१० ।

जीर्ण रोग—तुत्थभस्म २१४ । मल्लसिंदूर २४६ । अष्टमूर्ति रसायन २७१ । व्याधिहरण रस २७३ । हरताल भस्म १६६ । उपदंश कुठार रस ५१० । उपदंश सूर्य ५०७ । मल्लादि वटी ५१४ । कज्जली ५० । त्रिपुर भैरव २७७ । केशरादि वटी ५०७ । रसकर्पूर ५११ । अमीर रस ५१२ । गन्धक रसायन ४४० ।

सन्धिवात, रक्तविकार, कुष्ठ, गुदशूक, नासाव्रण, नाड़ीव्रण आदि उपद्रव—हरताल भस्म १६६ । हरतालपुष्प २०२ । मल्लभस्म २०२ । मल्लसिंदूर २४६ । अष्टमूर्ति रसायन २७१ । उपदंशसूर्य ५०७ । मल्लादि वटी ५१४ । बृहद्मजिष्ठादि क्वाथ ६६१ । रक्तशोधक क्वाथ ६७० । उपदंशहर क्वाथ ६७० । देवदार्वाद्यरिष्ट ७२८ । रक्तशोधकारिष्ट ७२६ । माजून चोपचीनी ७५६ । माजून उशवा ७५७ । सारिवासव ७२३ । सुवर्ण वंग २५८ ।

मूत्रदाह—प्रवालपिष्टी १७८ । गन्धकरसायन ४४० ।

लगाने के लिये—उपदंश-रिपु मलहम ८२४ । पारदादि मलहम ८२७ । कोशातक्यादि तैल ७८७ ।

(२७) उरस्तोय-कुक्ष्युदर–फुफ्फुसावरणशोथ ।

(फुफ्फुस आवरण में जल-संचय Pleurisy)

थोड़ा जल-संचय—रससिंदूर २४४ । माणिक्यरस २५६ । लघुवसंत ३५८ । कल्याण सुन्दरोरस ४२५ । श्वासकुठार रस ४२८ ।

फुफ्फुसावरण शोथ—आरोग्यवर्द्धनी ४८७ ।

फुफ्फुस और हृदयमें वातजन्य व्यथा—महावात विध्वसन ४५१।
अधिक जल सचय—पचसूत ७७५।

(२८) ऊरुस्तंभ-आढचवात-जंघाकी वायु।

सुवर्ण भूपति २६८। वातगजाकुशरस ४५५। महायोगराज गूगल ४५६। सारिवासव ७२३।
कोष्ठदोपशोधनार्थ—नाराचघृत ७७०। नारायण चूर्ण ६३३।

(२६) कण्ठमाल, गलगण्ड और अपची।

नूतन रोग—नित्यानन्द रस ५०५। काचनार गूगल ६१०। लोकनाथ ४६८।
जीर्ण—जसदभस्म १२७। गण्डमाला कण्डन रस ५०४। नागभस्म १३१। गन्धक रसायन ४४०। मल्लभस्म २०२। शिलासिदूरवटी ५०५। शिलासिदूर २५५।
मन्दज्वर हो, तो—सुवर्ण मालिनी वसत ३५०। लोकनाथ ४६८।
लगाने के लिये—चक्रमर्दादि सिन्दूर तैल ७७६। कटुतम्बी तैल ७६१। ग्रन्थिभेदन लेप ८०७। प्रतिसारणीयक्षार ८०८। मल्ललेप ८११। कण्ठमालहर मलहम ८२३।

(३०) कण्ठरोग-गले के रोग।

स्वरघ्न, विदारी, गलायु, अधिजिह्वाका उपजिह्विका पर—प्रवालपिष्टी १७८। जसदभस्म १२७। कज्जली ५०। गन्धकरसायन ४४०।
स्वरसाद, स्वरभंग—जसदभस्म १२७। तेजोवत्यादि गुटिका ५६६। कण्ठसुधारवटी ५६६।
उपजिह्वाप्रदाह—शुभ्राभस्म २१६।
गलौघ—(गाँठो का जीर्ण शोथ)—जसदभस्म १२७। सुवर्ण-माक्षिक भस्म १३८। बीजपुर जटादि लेप ८०६।

(३१) कब्ज—(आनाह में देखे)।

(३२) कर्कस्फोट—Coincar-विद्रधिमें देखे।

(३३) कर्णरोग—कान के रोग।

बाधिर्य, कर्णशूल, पूय आदि—जीवन रसायन अर्क ७३५। बिल्वादि तैल ७८२। वराटिका भस्म १८६। दशमूल क्वाथ ६५८। कर्ण शोथहर लेप ८१३।
कर्णार्श जनित बधिरता—क्षार तैल ७८२।
खाने के लिये—सारिवादिवटी ५३१। शृंगभस्म २०५। वङ्गभस्म ११२।
कर्ण पाक में दोष निकालना—क्षार तैल ७८२।

(३४) कृमि (Worms) ।

उदर-कृमि और पुरीषज--कृमि कुठार रस ३६६ । कृमिघ्न क्वाथ ६७१ ।

आमाशयस्थ, कफज और पुरीषज--कृमिमुद्गर रस ३६८ । कृमिघ्न चूर्ण, ६४६ ।

सूक्ष्म पुरीषज कृमि पर--वंगभस्म ११२ । सजीवनी वटी ५८२ कृमिघ्न गुटिका ५६१ । पित्तलभस्म २१२ । कांस्यभस्म २१३ । वर्त्तलोहभस्म २१४ । खदिरारिष्ट ७०१ । मुस्तादि क्वाथ ६७८ ।

कृमि-जन्य ज्वर--लघुमालिनी वसन्त ३५८ । वंगभस्म ११२ ।

३५ कामला–पीलिया (Jaundice)

सब प्रकार पर--ताप्यादि लोह ४०१ । योगराज रस ४११ । महामृगांक रस ४१८ । लोहभस्म १०३ । सुवर्ण माक्षिक भस्म १३८ । मंडूर भस्म १४५ । सुवर्ण भूपति २६८ । पर्पटाद्यरिष्ट ७२६ । आरोग्यवर्द्धिनी ४८७ ।

जीर्ण कामला--मण्डूर भस्म १४५ और शिलाजीत ६४ । लक्ष्मीविलास ३३६ । नवायस चूर्ण ४०६ । चन्दनादि चूर्ण ६३१ । पुनर्नवा मण्डूर ५०७ । अमृतारिष्ट ७०५ । मेहान्तक रसायन ५६० ।

कुम्भ कामला--मण्डूरभस्म १४५ ।

यकृद् के मांसार्बुद जन्य--ताम्रभस्म ६६ । वंगभस्म ११२ । ताप्यादि लोह ४०१ ।

(३६) कास–खाँसी (Cough) ।

सब प्रकार का कास--चन्द्रामृत रस ४२५ । अभ्रकभस्म १५१ । अतिविषादि वटी ५८६ । कफकर्त्तन रस ५५५ । वासादि चूर्ण ६५५ ।

शुक्रक्षयजन्य--वंगभस्म ११२ ।

वातिक--रौप्यभस्म ८६ । नाग भस्म १३१ । लघु मालिनी वसन्त ३५८ । ताप्यादि लोह ४०१ । मृतशेखर ५१५ । कर्पूरादि वटी ५८८ । शुष्ककासहर क्वाथ ६७६ । दशमूलाद्य घृत ७७१ । कासमर्दन वटी ६०३ । लऊक सिपिस्ताँ ७६० । हरीतक्यादि गुटिका ६२१ । एलादि वटी ५६६ ।

पैत्तिक--सुवर्ण भस्म ८३ । महामृगाङ्क ४१८ । गोदन्ती भस्म १६६ । प्रवालपिष्टी १७८ । वासादि क्वाथ ६६८ । महाद्राक्षासव७३० । सितोपलादि चूर्ण ६२८ । बृहत् सितोपलादि चूर्ण ६२८ । लवंगादि चूर्ण ६४० लऊक सपिस्ता ७६० । एलादिवटी ५६६ ।

कफ-कास--अभ्रक भस्म १५१ । लोहबान पुष्प ४२ । अग्नि रस ४२७ । सुवर्णवङ्ग २५८ । मल्लभस्म २०२ । बोलबद्ध रस ३८७ । महावातराज

५५२। शृङ्ग भस्म २०५। रससिंदूर २४४। आनन्दभैरव ३६६। लोकनाथ ४६८। संजीवनी वटी ५८२। त्रैलोक्यचिन्तामणि ३१६। कफकुठार रस ४२६। मारिचादि वटी ५८८। लवंगादि वटी ५८६। कनकासव ७०२। वासादि चूर्ण ६५५। शुभ्राभस्म २१६। समीर पन्नग (शूल सह) २६२।

कफसंग्रह—कफकुठार ४२६। समीरपन्नग २६२। कनकासव। कासकण्ड-नोवलेह ७४६। सुवर्ण वङ्ग २५८। शृंगभस्म (फुफ्फुसोंकी निर्बलता पर २०५)।

वातपित्तात्मक—रत्नशेखर ५१५।

वातकफात्मक—समीरपन्नग २६२।

कफपित्तज—मल्लभस्म २०२। अग्निरस ४२७। लवंगादि ताल-सिंदूर ४२८। अष्टांगावलेह ७४७। आर्द्रकावलेह ७५१।

उरःक्षत जन्य—द्राक्षासव ७०८। महाद्राक्षासव७३०। प्रवालपिष्टी १७८ मुक्तापिष्टी १७३। सितोपलादि चूर्ण ६२८। ताप्यादि लोह ४०१।

हृदय-फुफ्फुस को सबल बनाने के लिये—अभ्रकभस्म १५१। वज्रभस्म १६७। नीलमणि भस्म १७१। वैक्रान्त भस्म १७२। शृङ्गभस्म २०५ लक्ष्मीविलास रस ४२०। अभ्रपर्पटी २६५। महाद्राक्षासव ७३०।

सगर्भावस्था में शुष्ककास—प्रवालपिष्टी १७८। कामदूधारस ४३६। सितोपलादि चूर्ण ६२८।

जीर्णकास—लक्ष्मीविलास ३३६। समीरपन्नग २६२। शुभ्राभस्म २१६। वासादि चूर्ण ६५५।

वृद्धावस्थामें कास—वसन्तकुसुमाकर ४७७। लवंगादि वटी ५८६।

अतिसार जन्य कास—सुवर्ण पर्पटी २८३।

गिलायुकी शिथिलता—कर्पूरादि वटी ५८८।

(३७) कुष्ठ–कोढ़ (Leprosy)

सब पर लाभदायक—शुद्ध गन्धक ६०। गन्धक रसायन ४४०। नारसिंह चूर्ण ६४७। लक्ष्मीविलास रस ३३६। रक्तशोधकारिष्ट ७२६। मंजिष्ठादि चूर्ण ६४२। खदिरारिष्ट ७०१। बृहद्मंजिष्ठादि क्वाथ ६६१।

वातप्रधान—वातकफप्रधान और अन्य द्वन्द्वज—आरोग्यवर्द्धिनी ४८७। हरताल रसायन ५१४। मजिष्ठादि तालसिंदूर ५१५। हरतालभस्म १६६। योगराजरस ४११। हरतालपुष्प ५४४। पित्तलभस्म २१२।

पित्तप्रधान—लोहभस्म १०३। लोहपर्पटी २८८। गन्धक रसायन ४४०। निम्बादिचूर्ण ६५४।

कफप्रधान—शिलासिंदूर २५५। त्रैलोक्यचिन्तामणि ३१६।

उपदंशज कुष्ठ—हरताल भस्म १६६। मल्लभस्म २०२। तालसिंदूर

२५३ । मल्लसिंदूर २४९ । मल्लपुष्प ३४६ । मल्लादि वटी ५१४ । उपदंशसूर्य ५०७ । रक्तशोधकारिष्ट ७२९ ।

आमानुबंधयुक्त कुष्ठ—महायोगराजगूगल ४५६ ।

गलत्कुष्ठ—गलत्कुष्ठादि (कुष्ठ-कुठार) रस ५६८ ।

क्षुद्र कुष्ठ—अश्वकञ्चुकीरस ३०७ । आरोग्यवर्द्धिनी ४८७ ।

श्वेत कुष्ठ—हरताल रसायन ५१४ । आरोग्यवर्द्धिनी ४८७ ।

किलास कुष्ठ—लोध्रासव ६६४ ।

दूषीविष के उपद्रवरूप—आरोग्यवर्द्धिनी ४८७ ।

लगानेके लिये—कुष्ठराक्षस तैल ७८८ । कुष्ठहर लेप ८०७ । विषादि लेप ८०८ । प्रतिसारणीय क्षार ८०८ । कुष्टहर मलहम ८२० ।

शरीर शोधनार्थ—तुत्थभस्म २१४ । नारायण चूर्ण ६३३ । इच्छाभेदी रस ३६५ । अश्वकचुकी रस ३०७ ।

ब्युची—फिटकरी २१९ । ब्युचीहर मलहम ८२१ । गन्धक रसायन । ४४० । दशागलेप ८०५ ।

(३८) गुल्म—गोला (Abdominal Tumour)

सब प्रकार के गुल्म पर —काकायनवटी ६०४ । लवणभास्कर चूर्ण ६२९ । वज्रक्षार चूर्ण ६३८ । कुमार्यासव ६९५ । चविकासव ७१० ।

वातज—कासीभस्म १६३ । शूलवज्रिणी ४६५ । बृहद्योगराजगूगल ४५६ । गुल्मकालानलरस ६७० । अग्निकुमार ३८९ । क्रव्याद ३९१ । हिंगवष्ट ६२९ । पुनर्नवासव ७२३ ।

पित्तज—नागभस्म १३१ । गुल्म कुठार ४६८ । प्रवालपञ्चामृत ४७२ । कुमार्यासव ६९५ । रोहितारिष्ट ७२१ ।

कफज—ताम्रभस्म ९६ । लोहभस्म १०३ । कुमार्यासव । ६९५ । लघुशंख द्राव ७३२ । शंखद्राव७३१ । जम्भीरीद्राव ७३३ । पुनर्नवासव ७२३ ।

रक्त गुल्म—नागभस्म १३१ । गुल्म कुठार ४६८ । कुमार्यासव ६९५ । स्नुहीक्षीर गुटिका ६१६ । गोक्षरादि गुग्गुलु ६०९ ।

सूतिका रोग से उत्पन्न गुल्म—प्रतापलंकेश्वर रस ५३५ ।

कोष्ठदोष शोधनार्थ—नाराचघृत ७५० । नारायण चूर्ण ६३३ ।

(३७) ग्रहणी—संग्रहणी (Chronic Diarrhoea)

सब प्रकार पर हितकर—जीरकादि मोदक ७४१ । जातिफलादि चूर्ण ६३९ । एलादिमन्थ ।

वात-प्रधान नया-(निराम है, तो अगस्ति सूतराज ३७० । कनक-

सुन्दर रस ३७२) । हेमगर्भ पोटली ४१६ । दशमूलारिष्ट ६६० । हिंग्वष्टक ६२६। हिंग्वादि चूर्ण ६३६ । पंचामृत पर्पटी २६०

पित्त प्रधान--मण्डूर मात्तिक भस्म १५१ । प्रवाल पंचामृत ४७२ । सूतशेखर ५१५ । महावात राज ५५२ । लोध्रासव ६६४ ।

पेचिश, पान्डु, शोथसह—दुग्ध वटी ३७७ । महावातराज रस ५५२ ।

शीत ज्वर सग्रहणी--पंचामृत पर्पटी व अभ्रकभस्म २६०,१५० ।

अम्लपित्त स ग्रहणी--पंचामृत पर्पटी २६२।

कफ-प्रधान नया--निराम है तो अगस्ति राज रस ३७० जातिफलादि वटी ३८२ ।

शूलसह—शंखवटी ३७६ ।

आमसग्रहणी (नया)--ग्रहणीकपाट ३७५ लाही चूर्ण ३७७ । लघुलाही ३७८ । प्राणदा पर्पटी २६३ । सूतराज ३६६ । आनन्दभैरव ३६६ । क्रव्याद रस ३६१ ; रामबाणरस ३८४ । कपित्थादि यवागू ६७४ । दशमूलारिष्ट ६६० । चींचाभल्लातक वटी ६१२ । लवणभास्कर चूर्ण ६२६ तालीसादि चूर्ण ६३७ । जातिफलादि चूर्ण ६३६ ।

आम संग्रहणी (जीर्ण)--प्राणदा पर्पटी २६३ । रस सिंदूर २४४ । कुटजारिष्टके साथ । लोकनाथ रस ४६८ । त्रिफल्यादिक्वाथ ६६८ ।

आम और रक्तसह (जीर्ण)-महावातराज रस ५५२ । पंचामृत पर्पटी २६० ।

पित्त प्रकोप शमनार्थ—वैडूर्यभस्म १७० । उशीरासव ६६६ । बोल पर्पटी २८६ ।

पित्तोत्पत्ति वृद्धि अर्थ--ताम्रभस्म ६६ । पित्तल भस्म २१२ । हेमगर्भ पोटली ४१६ । रसपर्पटी २८१ । ताम्रपर्पटी २८६ ।

अन्त्रशोथ-सह संग्रहणी–आंत्र-क्षय--सुवर्ण भूपति २६८ । सुवर्ण पर्पटी २८३ । हिंगुलेश्वर रस ५५१ । हेमगर्भ पोटली ४१६ ।

यकृत्प्लीहा विकृतिसह (जीर्ण)--ताम्रपर्पटी २८६ (ज्वर है, तो विजय पर्पटी २८७ । पंचामृत पर्पटी २६० ।

प्रसव होनेकेपश्चात् ग्रहणी--सर्वाङ्ग सुन्दर रस ५५१ ।

प्रसव होने के पश्चात् ग्रहणी—सर्वांग सुन्दर रस ५४१ ।

आन्त्रिक सन्निपात के पश्चात्ग्रहणी—लक्ष्मीनारायण रस ३३४ । लक्ष्मीविलास रस (अभ्रक वाला) ३३६ । सूतशेखर ५१५ ।

जीर्ण रोग में शक्ति-रक्षणार्थ—लोहभस्म १०३ । अभ्रकभस्म १५१ । नागभस्म १३१ ।

फिरंग विषज ग्रहणी—आरोग्यवर्धनी ४८७ ।

(४०) ज्वर—ताप—बुखार (Fever) ।

सामान्य नया ज्वर—ज्वरकेशरी ३०२ । मृत्युञ्जय ३२६ । कासीस-गोदन्तीभस्म १६५ । गोदन्तीभस्म १६६ । महासुदर्शन चूर्ण ६२६ । लघुसुदर्शन-चूर्ण ६२७ । विषतिन्दुकादि वटी ६०५ ।

दुष्ट जलवायु-जनित—दुर्जलजेता रस ३२२ । जयमंगल रस ३२० । त्रैलोक्य-चिन्तामणि ३१६ । गदमुरारि ३२६ । अमरसुन्दरी ४५० । आरोग्य-वर्द्धिनी ४८७ । सजीवनी वटी ५८२ । ज्वरारि वटी ५८४ । जया-जयन्ती वटी ५८७ । किरातादि अर्क ७२८ ।

दोष पाचनार्थ—प्रवालपिष्टी १७८ । रत्नगिरि रस ३०६ । गदमुरारि रस ३२६ । कंटकार्यादि क्वाथ ६६२ । ज्वरहर अर्क ७३५ । किरातादि अर्क ७३४ । अमृत चूर्ण ६२७ ।

वात-ज्वर—विश्वतापहरण २६७ । सूतराज २६६ । त्रिभुवनकीर्ति ३१२ । मृत्युञ्जय ३२६ । जयन्ती वटी ५८७ । महाज्वराकुश ३०३ ।

आक्षेपवातसह ज्वर—स्मृति सागर ५६३ ।

पित्त-ज्वर—गोदन्तीभस्म १६६ । प्रवालपिष्टी १७८ । पित्तज्वरातक वटी ५८४ । जया वटी ५८६ । ताप्यादि लोह ४०१ । षडग पानीय ६७५ । शुभ्राभस्म २१६ ।

कफ-ज्वर—अभ्रक भस्म (काससह ज्वर १५१) हरतालभस्म १६६ । मल्लभस्म २०२ ।
शम्बुकभस्म २१७ । मल्ल पर्पटी २६५ । जयन्ती वटी ५८७ । शीतभंजी रस २६८ । अश्वकचुकी रस ३०७ । आनन्दभैरव रस ३६६ । सूतराज रस २६६ । मृत्युञ्जय रस ३२६ । नागगुटिका ५६२ । महाज्वराकुश ३०३ । त्रिभुवन-कीर्ति + सुवर्णवङ्ग + अर्कमूल त्वक् ३१२ । संजीवनी वटी ५८२ ।

द्वन्द्वज—ज्वरकेसरी ३०२ । त्रिभुवनकीर्ति ३१२ । लक्ष्मीविलास ३३६ । अश्वकंचुकी ३०७ । महाज्वराकुश ३०३ । (वातपित्तज—पंचमूलादि क्वाथ ६६३, मधुकादि शीतकषाय ६७६, पटोलादि क्वाथ ६६४ ।) (वात-कफज—आरग्वधादि क्वाथ ६६१ । नागरादि क्वाथ ६६३, पिप्पल्यादि क्वाथ ६६८,

द्वात्रिंशदाख्य ६७७। पञ्चवक्त्र ३२५। मृत्युञ्जय रस ३३६। कालकूट रस ३३१। मल्लसिंदूर द्वितीय विधि २५०। तगरादि कषाय ६७६।

हृदय रक्षणार्थ—लक्ष्मीविलासरस ३३६। ब्राह्मीवटी ३४६। पूर्णचन्द्रोदय रस २४०। हेमगर्भ पोटली रस ३२३।

आंत्रिक सन्निपात—मधुरा (२१ दिन का मुद्दती ताप Typhoid) लक्ष्मीनारायण रस ३३४। कस्तूरीभैरवरस ३००। सूतशेखररस ५१५ (पित्तविकृतिपर)। सजीवनी वटी ५८२। पुनः प्रकुपित—महा सुदर्शन ६२६।

मधुरा का विष बाहर निकालना—मधुरान्तकवटी ५८६। मधुरज्वरान्तक क्वाथ ६६४। प्रवालपिष्टी १७८। शुभ्राभस्म २१६।

शुष्क कास—प्रवालपिष्टी १७८। कर्पूरादिवटी ५८८। कासमर्दन वटी ६०३। एलादि वटी ५६६। सूतशेखर ५१५।

दुष्ट-रक्त-जन्य वात प्रकोप—ताप्यादिलोह ४०१।

कफ-प्रकोप हो, तो—हरताल गोदन्तीभस्म २१६।

वात-प्रधान हो, तो—अष्टमूर्त्तिरसायन २७१।

हृदय रक्षणार्थ—ब्राह्मी वटी ३४६। अभ्रकभस्म १५१। प्रवाल और रससिंदूर २४४। लक्ष्मीविलास ३३६।

निद्रानाश—सूतशेखर ५१५।

अतिसार और बहुमूत्र—रौप्यभस्म ८६।

मधुरामें प्रलाप—चन्द्रकला रस ४१२।

चित्तविभ्रम और भयंकर प्रलाप—महावात विध्वंसन ४५१। प्रवालपिष्टी १७८। तगरादि कषाय ६७६।

कोष्ठ-शूल, संधिवात, मद प्रलाप—महायोगराज गूगल ४५६। सूतशेखर ५१५।

श्वसनक सन्निपात—फुफ्फुस सन्निपात (Pneumonia)—अभ्रकभस्म १५१। मल्ल भस्म २०२। हरताल गोदन्तीभस्म २१६। शृङ्गभस्म और रस सिन्दूर। कफ बाहर निकालनेके लिये—समीरपन्नग २६२। कफरूपान्तरार्थ—पञ्चसूत रस २७५। कफशोषणार्थ—मल्ल सिन्दूर २४६। त्रैलोक्यचिन्तामणि ३१६। वातेभकेसरी रस ५५६। महावातविध्वंसन ४५१। शीतभंजी २६८। सूतराज २६६। महावातराज ५५४। मल्लपुष्प ३४६। कालारि रस ५५४। अचिन्त्यशक्ति रस ५५७। शुभ्राभस्म २१६। त्रिभुवनकीर्त्ति रस + अभ्रकभस्म + शृङ्ग भस्म। पञ्चवक्त्र रस ३२५। कुटजारिष्ट ७०५।

फुफ्फुसदाह शमनार्थ—लक्ष्मीविलास रस अभ्रकयुक्त ३३६।

लगानेके लिये—पार्श्वशूलान्तक लेप ८११।

जीर्ण सन्निपात—गदमुरारि ३२६ ।

जीर्ण ज्वर—शिलाजीत ६४ । सुवर्णभस्म ८३ । कासीस गोदन्तीभस्म १६५ । तार्क्ष्य (पन्ना) भस्म १६६ । वैक्रान्तभस्म १७२ । मल्लभस्म २०२ । रस सिन्दूर २४४ । अभ्रक १५१ और शृंगभस्म २०५ । माणिक्य रस २५६ । सुवर्णमालिनी ३५० । लघुमालिनी वसत ३५८ । मधुमालिनी वसंत ३५६ । कामदूधारस ४३६ । पडगपानीय ६७५ । सशमनी वटी ३६४ । कनकासव ७०२ । जीवन्त्यादि घृत ७७२ । पर्पटाद्यरिष्ट ७२६ । अमृतारिष्ट ७०५ ।

राजयक्ष्मा में ज्वर—पंचामृत रस ५६६ । कामधेनु रस ५७० । जयमंगल रस ३२० । चतुर्मुख रस ५७५ । सितोपलादि अवलेह ७४५ ।

जीर्णज्वर शीतसह—मल्लभस्म २०२ । हरतालभस्म १९६ । तालसिन्दूर २५३ । विश्वतापहरण २९७ । शीतभंजी २९८ । नारायण ज्वरांकुश ३०२ । त्रैलोक्यचिन्तामणि ३१६ । जयमगल ३२० । मलेरिया वटी ३५७ ।

मालिशके लिये—लाक्षादि तैल ७८४ ।

धातुगत ज्वर—सितोपलादि ६२८ । बृहत्सितोपलादि ६२८ । अमृतारिष्ट ७०५ । संशमनी ३६४ । चन्दनादिलोह ३४९ । गिलोयसत्व ४६ ।

मज्जागत ज्वर—प्रवालपिष्टी १७८ ।

(४१) ज्वरातिसार—ज्वर और दस्त ।

सब प्रकार पर हितकर—प्राणदापर्पटी २८३ । सूतराज २९९ । कर्पूर रस ३६८ । नागरादिक्वाथ ६६३ ।

अन्त्रशोथज—रसपर्पटी २८१ । जसदभस्म १२७ ।

वात-प्रधान—कनकसुन्दर ३७२ ।

वात-पित्तात्मक—सूतशेखर ५१५ ।

वमन-सह—पाठादि चूर्ण ६३१ । कुटजादि वटी ५९५ ।

सूतिका को ज्वरातिसार—लक्ष्मीनारायण रस ३३४ । जीरकाद्यरिष्ट ७१८ । सर्वाङ्गसुन्दर रस ५४१ । सूतशेखर ५१५ ।

(४२) तृषा—प्यास (Thirst)

पन्नाभस्म १६६ । रसादिचूर्ण ४३४ । कुमुदेश्वर ४३४ । पर्पटादिक्वाथ ६६८ । तृष्णाग्नि गुटिका ६१८ । गिलोयसत्व ४६ ।

आमज तृषा—कुमुदेश्वर रस ४३४ ।

मधुमहेज तृषा—जातिफलादि वटी ४८५ । कुमुदेश्वर रस ४३४ ।

(४३) त्वचारोग—खुजली आदि ।

वंगभस्म ११२ । वर्त्तलोहभस्म २१४ । सुवर्णमाक्षिकभस्म १३८ ।

ताप्यादि लोह ४०१ । गन्धक रसायन ४४० । जीवन रसायन ७३५ । स्वादिष्ट-विरेचन चूर्ण ६३४ । गन्धक घृत ७७५ । चर्मरोगनाशक तैल ७८२ । आरोग्य-वर्द्धिनी ४८७ । समीर पन्नग २६२ । अमृतारिष्ट ७०५ । खदिरारिष्ट ७०१ ।

उपदंश-जनित—व्याधिहरण रस २७३ । अष्टमूर्तिरसायन २७१ ।

अण्डकोप की खाज—चर्म-रोग नाशक तैल ७८२ । कासीसादि लेप ८१३ ।

गुदद्वारकण्डू—गन्धक ६० ।

सुजाक-जनित—सुवर्ण वंग २५८ ।

दुर्गन्ध दूर करने के लिये—हरीतक्यादि उबटन ८३३ ।

(४४) दन्तरोग—दाँत के रोग ।

मसूढ़ेकी निर्वलता—दन्तप्रभाकर मंजन ६४२ ।

पारदविपज मसूढ़े की निर्वलता—शुभ्राभस्म २१६ ।

दन्तकृमि—बृहत्यादि क्वाथ ६७३ । जीवन रसायन अर्क ७३५ । कर्पूरासव ७२८ । कृमिघ्नधूम्र ८३० । दन्तदोपहर मंजन ६४४ । फिटकरी २२३ ।

दन्तवेष्ट—(Pyorrhoea) गन्धक रसायन ४४० । आरोग्य-वर्द्धिनी ४८७ । पाठादि चूर्ण ६३१ । जातिपत्रादि चूर्ण ६४५ ।

(४५) दद्रु—दाद (Ringworm)

दद्रुहर लेप—दद्रुदमन मलहम ८२१ । गन्धक रसायन ४४० । जीवन रसायन अर्क ७३५ । नारसिंह चूर्ण ६४७ । खदिरारिष्ट ७०१ । समीर पन्नग २६२ । भृङ्गराजासव ७२५ । आरोग्यवर्धिनी ४८७ ।

(४६) दाह ।

गिलोय सत्व ४६ । गन्धक रसायन ४४० । राजावर्त्तभस्म १७१ । सितोपलादि चूर्ण ६२८ । बृहद् सितोपलादि चूर्ण ६२८ । चन्दनादि चूर्ण ६३१ । सूतशेखर ५१५ । सुवर्ण माक्षिक भस्म १३८ ।

ज्वरमें दाह—जसद भस्म १२७ । प्रवाल पिष्टी १७८ । सूतशेखर ५१५ । अमृताष्टक क्वाथ ६६२ । गुडूच्यादि क्वाथ ६६२ ।

शराबी को दाह—सूतशेखर ५१५ । राजावर्त्तरस ४३५ । मुक्ता-पिष्टी १७३ । राजावर्त्तपिष्टी १७१ । दुर्वाद्य घृत ७७५ ।

सर्वाङ्ग में दाह-कण्ठुसह—चंद्रकलारस ४१२ । उशीरासव ६६६ ।

सेन्द्रिय विपजन्य दाह और उदर वात—कासीसभस्म १६३ ।

उष्णकाल में दाह—मुक्तापिष्टी १७२ । प्रवालपिष्टी १७८ । काम-दुधा रस ४३६ । रत्नादि चूर्ण ४३४ । पर्पटादि क्वाथ ६६८ । चन्दनादि शर्बत

७६२ । गुलाब का शर्बत ७६३ । आँवलेका मुरब्बा ७६० । चन्दनादि अर्क ७३० । गुलकन्द ७४८ ।

(४७) धातुक्षीणता—निर्बलता—नपुंसकता ।

शुक्राशय की निर्बलता—प्रवालपिष्टी १७८ और वगभस्म ११२ । सुवर्ण वग २५८ । वंगभस्म ११२ । त्रिवंगभस्म १८३ । नागभस्म १३१ । मृगनाभ्यादि वटी ५४८ । शुक्रमातृका ५४६ । वीर्यशोधक वटी ५५० । वृद्धदण्ड चूर्ण ६४१ । शतावर्य्यादि चूर्ण ६४१ । वीर्यशोधक चूर्ण ६४२ । विजयपुष्पाद्यवलेह ७४६ । कुक्कुटाण्डत्वक्भस्म २१८ ।

सप्तधातु की क्षीणता और शारीरिक निर्बलता—सुवर्ण मालिनी ३५० । शिलाजीत ६४ । नागभस्म १३१ । लक्ष्मी विलास ४२० । रससिंदूर २४४ । अभ्रकभस्म १५१ । नारसिंह चूर्ण ६४२ । कासीस और लोह भस्म १०३ । च्यवनप्राशावलेह ७३६ । बादामपाक ७५२ । ब्राह्मीवटी ३४६ । संशमनी वटी ३६४ । मधुमालिनी ३५६ । लघुमालिनी वसत ३५८ । सुवर्ण माक्षिकभस्म १३८ । कामधेनु रस ५७० । भृङ्गराजासव ७१८ । अश्वगन्धारिष्ट ६६७ । त्रिफलारिष्ट ६६८ ।

अण्डकोष की निर्बलता से नपुंसकता—सुवर्णभस्म, नागभस्म और शिलाजीत । रौप्यभस्म ८६ । वंग ११२ । अभ्रक १५१ । लोह १०३ । वज्रभस्म १६७ । वैक्रान्तभस्म १७२ । लक्ष्मी विलास ४२० । पूर्णचन्द्रोदय २४० । हरगौरी २४८ । पुष्पधन्वा ५४६ । वसन्तकुसुमाकर ४७७ । बृहद् वंगेश्वर ४८३ । अश्वगन्धारिष्ट ७०४ । वाजीकरणघृत ७७४ । मल्लतैल ७७७ । अपूर्वतिला ७८० । मल्लसर्पि ७८१ । लिङ्गतैल ७८१ । कौंचपाक ७४१ । सालमपाक ७५२ । कर्णिकार वटी ६०२ । कुक्कुटाण्डत्वक्भस्म २१८ ।

सुजाक-जन्यनपुंसकता—सुवर्णवंग २५८ ।

मधुमेहादि से कोथ और निर्बलता—नागभस्म १३१ । ताप्यादिलोह ४०१ । शिलाजीत ६४ । महावातराज रस ५५२ । पूर्णचन्द्रोदय रस २४० । प्रमेहगजकेसरी ५५८ । माणिक्यपिष्टी १६८ ।

रक्तस्राव से निर्बलता—लोहभस्म १०३ ।

चक्कर आना—महायोगराज गूगल ४५६ ।

मस्तिष्क की निर्बलता—पित्तप्रधान—मुक्तापिष्टी १७३ । कामदूधा ४३६ । वसन्तकुसुमाकर ४७७ । खमीरा संदल ७५६ । इत्रीफल मुलय्यन७५६ । सुवर्णमाक्षिकभस्म १३८ । प्रवालपिष्टी १७८ ।

मस्तिष्क की निर्बलता—वातप्रधान—रौप्यभस्म ८६ । ज्वरआदि

रोग के पश्चात्—सुवर्णमालिनी वसन्त ३५० । रक्त की कमी से हो तो मण्डूर-भस्म १४५ । अथवा लोहभस्म १०३ ।

शारीरिक कृशता, धातुक्षय—अभ्रकभस्म १५१ । भृङ्गराजासव ७२५ । आरोग्यवर्द्धिनी ४१७ । लक्ष्मीविलास रस स्वर्णयुक्त ४२० । वसंतकुसुमाकर रस ४७७ । सुवर्णमालिनी ३५० । च्यवनप्राशावलेह ७४२ ।

वातवाहिनी की विकृति और मानसिक निर्वलता—अभ्रकभस्म १५१ । बादामपाक ७५२ । दिवालमुश्क ७५५ । खमीरे गावजवॉं अम्बरी ७५८ । च्यवनप्राशावलेह ७४२ ।

स्तम्भनार्थ—कामिनीविद्रावण ५४५ । वीर्यस्तभन वटी ५५० । शुक्र-स्तंभनगुटिका ६०२ । कस्तूर्यादि स्तम्भन ६१६ । रेतीरोधिनी गुटिका ५५८ । विजयापुष्पाद्यवलेह ७५४ ।

(४८) निद्रानाश—नींद न आना ।

राजावर्त्तभस्म १७१ । मुक्तापिष्टी १७३ । निद्रोदय रस ४५० । सूतशेखर ५१५ । कस्तूर्यादि वटी ५८५ । द्राक्षासव ७०८ । महाद्राक्षासव ७३० । विजयापुष्पाद्यवलेह ७५४ ।

मानसिक निर्वलता से—वसन्तकुसुमाकर ४७७ । द्राक्षारिष्ट ७०८ ।

वृक्कविकारजनित—सर्पगन्धादि गुटिका ६२२ ।

किनाइन से निद्रानाश—सर्पगन्धादि वटी ६२२ ।

(४९) नासारोग—नाक के रोग ।

रक्त गिरना—सुवर्ण माक्षिक भस्म १३८ । चन्द्रकला रस ४१२ । कामदूधा रस ४३६ । सूतशेखर ५१५ । मुक्ताभस्म १७३ । प्रवालपिष्टी १७८ । लघुसूतशेखर ५२८ ।

नासाव्रण—गन्धकरसायन ४४० ।

पीनस—व्याघ्री तैल ७७८ । नासाक्रमिहर घृत ७७७ ।

(५०) नेत्र रोग—आँख के रोग ।

नेत्रोंके सब रोगो पर—इत्रीफल कश्नीजी ७५९ । त्रिफला चूर्ण ६३४ । त्रिफलादिघृत ७६९ । सुवर्ण माक्षिकभस्म १३८ ।

दृष्टि की निर्वलता—नेत्रसुदर्शन अर्क ८०० । शुद्धगन्धक ६० । माक्षिकभस्म १४५ । गन्धकरसायन ४४० । नेत्रप्रभाकर अञ्जन ७९६ । अश्वकंचुकी ३०७ ।

नेत्रशूल—रौप्यभस्म ८९ । शम्बुकभस्म २१७ । अश्वकंचुकी ३०७ । नेत्रशूलान्तकमोदक ७१२ । रक्त दवाव वृद्धिजन्य-आरोग्यवर्धनी ४८७ ।

पित्त प्रधान रोगो पर—सुवर्णमाक्षिक १३८। जसदभस्म १२७। कास्यभस्म २१३। वर्त्तलोहभस्म २१४। कासीसभस्म १६३। मुक्तापिष्टी १७२।

उपदंशज पूयाभिष्यद–आँख में से पीप आना—गन्धकरसायन ४४०। उपदंश सूर्य ५०७। लगानेके लिये रसाजनादि लेप ८१२।

पूयमेहज दृष्टिनाश—गन्धक रसायन ४४०।

नेत्रदाह, लाली और अभिष्यद (Ophthalmia)—कासीसभस्म १६३। शुभ्राभस्म २१६। श्वेतनेत्राञ्जन ७६७। नेत्रविन्दु ७६८। दार्व्यादि-रसक्रिया ८००। पथ्यादि अञ्जन ८०१। रसाजनादि लेप ८१२। बबूलादि-स्वरस ७६८। सुवर्णभस्म ८३। मुक्तापिष्टी १७३। शुभ्राभस्म २१६, प्रवाल पिष्टी १७८ और सुवर्णमाक्षिकभस्म १३८।

तिमिर, धुंध आदि—कृष्ण नेत्राञ्जन ७६७। चन्दनादिवर्ति ८०२। नयनशाणाजन ८०२।

नेत्र की पुतली खिचना—रौप्यभस्म ८६।

नेत्रशोथ, लाली, मासवृद्धि—रक्तनेत्राञ्जन ७६७। माक्षिक प्रवाल मिश्रण १४०।

जीर्णपोथकी—लघुमालिनी वसंत ३५८। कृष्ण नेत्राजन ७६७।

पारद-विषज नेत्रदाह—गन्धक रसायन ४४०।

पूयशुक्रज अभिष्यन्द—गन्धक रसायन ४४०।

कुकूणक—नेत्ररोगान्तक अञ्जन ८००। रक्तनेत्राञ्जन ७६७। पुष्पहर अञ्जन ८०३।

शुक्र-फूला, जाला, मांसवृद्धि, अर्बुद (Corneal ulcer)—शंखभस्म १६२। रसकेश्वर गुटिका ७६८। चन्द्रोदयवर्त्ति ७६६। रक्तनेत्राञ्जन ७६६। तुत्थादिवर्त्ति ७६६। शखादि नेत्राञ्जन ८०१। चन्द्रप्रभावर्त्ति ८०३। कृष्ण नेत्राञ्जन ७६७। पुष्पहर अञ्जन ८०३।

नूतन कॉचविन्दु—रसकेश्वर गुटिका ७६८। चन्द्रोदयवर्त्ति ७६६। चन्द्रप्रभावर्त्ति ८०३। इत्रीफल कश्नीजी ७५६। त्रिफलाघृत ७६६। नेत्र सुदर्शन अर्क ८००।

नेत्रमें शीतला—मधुकादि लेप ८०६।

(५१) पलित–बाल सफेद होजाना।

चाँदी का खिजाब ७३८। चन्दनादि तैल७७६। नारसिंह चूर्ण ६४७। अश्वगन्धारिष्ट ७०४। पूर्ण चन्द्रोदय रस २४०। वसन्तकुसुमाकर रस ४७७। भृङ्गराजासव ७१८।

(५२) प्रतिश्याय-जुकाम-नजला (Catarrh) ।

नया—अग्निकुमार रस ३८६ । कज्जली ५० (नागरवेल के पानमें), अश्विनीकुमार रस ४८१ । व्योषादि वटी ५६१ । नागगुटिका ५६२ । आनन्द-भैरव रस ३६६ । प्रतिश्यायहर क्वाथ ६७६ । मधुकादि हिम ६७७ । लक्ष्मी-विलास अभ्रकयुक्त ३३६ ।

अजीर्ण-जन्य—धनञ्जय वटी ५६३ । आरोग्यवर्द्धिनी ४८७ ।

जीर्ण—लक्ष्मीविलास ३३६ । समीरगजकेसरी ४५५ । विषतिन्दुकादि वटी ६०५ । **बारबार प्रतिश्याय**—रससिंदूर और अभ्रक १५१ ।

सूँघने के लिये—नजलानाशक नस्य ८३२ । कलिंगादिनस्य ८३१ ।

(५३) प्रभापात—लू लगना ।

मधुकादि हिम ६७७ । प्रवालपिष्टी १७८ । मुक्तापिष्टी १७३ । मधु-कादिशीत कषाय ६७६ । चन्दन का शर्बत ७६३ ।

(५४) प्रमेह ।

सब प्रकार के प्रमेह—त्रिफला ६३४ । न्यग्रोधादिचूर्ण ६४७ । चन्द्र-प्रभा ५६७ । लोध्रासव ६६४ । वसन्तकुसुमाकर ४७७ । बृहद्वंगेश्वर ४८३ ।

वात-प्रधान—रौप्यभस्म ८६ । शिलाजीत ६४ । ताप्यादिलोह ४०१ । बृहद् योगराज गूगल ४५६ । अश्वगन्धारिष्ट ७०४ ।

वृद्धावस्था में हो, तो—वंगभस्म ११२ । कांस्यभस्म २१३ । हेमनाथ रस ४७५ । प्रमेहान्तक वटी नं० १, ४८३ ।

शुक्रक्षय-जन्य—वंगभस्म ११२ । सुवर्णवंग २५८ । बृहद् वंगेश्वर ४८३ । सुवर्ण भूपति २६८ । लक्ष्मीविलास रस ४२० । शुक्रमातृका वटी ५४६ । पुष्पधन्वा रस ५४६ । पञ्चामृत रस ५६६ ।

शुक्रमेह—चन्दनासव ७१७ । प्रमेहान्तक वटी नं० २, ४८३ । शिला-जीत ६८ ।

लालामेह—प्रमेह गज-केसरी ५५८ ।

इक्षुमेह—चविकासव ७२० । जातिफलादि वटी ४८५ । मधुमेहान्तक वटी ६०३ । वङ्गभस्म ११२ ।

वातपित्त-प्रकोपसह जीर्णप्रमेह—योगेन्द्र रस ५७३ ।

आमप्रकोपसह—महायोगराज गूगल ४५६ ।

पित्तप्रधान—गन्धक ६० । सुवर्णभस्म ८३ । रौप्यभस्म ८६ । लोहभस्म १०३ । जसदभस्म १२७ । ताप्यादिलोह ४०१ । सुवर्णमाक्षिक १३८ । राजावर्त्तभस्म १७१ । प्रमेहान्तक वटी ४८३ । मेहान्तक रसायन ५६० । पञ्चामृत

रस ४६६ । अश्विनीकुमार रस ४८१ । कामधेनु रस ५७० । चन्द्रकला रस ४१२ । प्रवालपञ्चामृत रस ४७२ । उशीरासव ६६३ ।

कफप्रधान—शिलाजीत ६४ । लोहभस्म १०३ । नवायस चूर्ण ४०६ । योगराज रस ४११ । आनन्दभैरव रस ३६६ । बोल बद्धरस ३८७ । त्रैलोक्य-चिन्तामणि रस ३१६ । प्रमेहान्तक वटी ४८३ । आरोग्यवर्द्धिनी ४८७ । प्राणदा पर्पटी २९३ । चन्द्रप्रभावटी ५९७ ।

मास खाने वाले को—ताम्रभस्म ९६ । पित्तलभस्म २१२ । विजयपर्पटी २८७ ।

मधुमेह—शिलाजीत ६४ । नागभस्म १३१ । जसद भस्म १२७ । सुवर्ण वग २५८ । अभ्रकभस्म १५१ । हेमनाथ रस ४७५ । वसन्त कुसुमाकर ४७७ । जातिफलादि वटी ४८५ । मधुमेहान्तक वटी ६०३ । न्यग्रोधादि चूर्ण ६४७ । महा वातराज रस ५५२ । प्रमेह गजकेसरी ५५८ । चविकासव ७२० ।

पूयमेह (सूज़ाक Gonorrhoea) (नया)—संगजराहतभस्म २११ । शुभ्राभस्म २१९ । मूत्रकृच्छ्रान्तक ४७६ । प्रमेहान्तक वटी ४८३ । प्रमेहान्तक अर्क । उष्णवातघ्न चूर्ण ६४५ । अरविन्दासव ७२७ ।

पूयमेह (जीर्ण)—रौप्यभस्म ८९ । नागभस्म १३१ । सुवर्णवंग २५८ । गन्धक रसायन ४४० । हरिशंकर रस ४८२ । धात्री भल्लातक वटी ६१४ । देवदार्वाद्यरिष्ट ७२८ । रक्तशोधकारिष्ट ७२९ । सारिवासव ७२३ । चंदनासव ७१७ । अमृतारिष्ट ७०५ । अरविन्दासव ७२७ ।

मूत्रविरेचन—मूत्रशोधक क्वाथ ६७२ । मूत्रविरेचन चूर्ण ६४५ ।

पूय प्रमेह-जन्य संधिवात, शोथ, पूयाभिष्यंद आदि—सुवर्ण वंग २५८ । धात्री मल्लातक वटी ६१४ ।

(५५) प्रमेह-पिटिका (Carbuncle)

जातिफलादि ४८५ । हेमनाथ ४७५ । वसन्तकुसुमाकर ४७७ । अदीठहर मलहम ८२२ । कैशोर गूगल ६११ । महावात राज रस ५५२ । मेहान्तक रसायन ५६० । सारिवासव ७२३ ।

(५६) प्रवाहिका—पेचिस (Dysentry)

आम-सह—प्राणदा पर्पटी २९३ । जातिफलादि वटी ६०५ । कुटजादि वटी ५९५ । कुटजारिष्ट ७०५ ।

रक्त और आम-सह—जातिफलादि वटी ६०५ । कर्पूररस ३६८ । कुटजादि वटी ५९५ । शंखोदर रस ३८० ।

रक्त, पूय सह—अहिफेनादि वटी ५९५ । जातिफलादि वटी ४८५ । प्रवाहिकारिपु चूर्ण ६३८ ।

जीर्ण ज्वर, आम और रक्त-सह—पचामृत पर्पटी २६० ।

निराम प्रवाहिका—अगस्ति सूतराज रस ३७० । जातिफलादि वटी ६०५ । कुटजावलेह ७४७ ।

(५७) पाण्डु (Anæmia)

वातज—मानसिक चिन्ता जन्य—रौप्यभस्म ८६ । अभ्रक १५१ । नागभस्म १३१ । अभ्रपर्पटी २६५ । सुवर्णभूपति २६८ । कामधेनु ५७० ।

पित्तज पाण्डु और हलीमक—लोहभस्म १०३ । ताप्यभस्म १६६ । जसदभस्म १२७ । मण्डूरभस्म १४५ । त्रिफलारिष्ट ७०४ । एलादिमन्थ ७६१ । ताप्यादि लोह ४०१ । बोल पर्पटी द्वितीय विधि २८६ ।

कफ-प्रधान—यकृत्प्लीहावृद्धिजन्य—ताम्रभस्म ९६ । पित्तलभस्म २१२ । त्रैलोक्यचिन्तामणि रस ३१६ । नवायस चूर्ण ४०६ । दशमूल क्वाथ ६५८ । लक्ष्मीविलास ४२० ।

यकृत्-क्षीणताजन्य पाण्डु—लक्ष्मीविलास स्वर्णयुक्त ४२० । पूर्ण चन्द्रोदय रस २४० ।

निर्बलता या शुक्रक्षयजन्यपाण्डु—वंगभस्म ११२ । नागभस्म १३१ और लोहभस्म १०३ । वज्रभस्म १६७ । वैक्रान्तभस्म १७२ । महामृगांक ४१८ । लक्ष्मीविलास ४२० । त्रिफलारिष्ट ७०४ । द्राक्षासव ७०८ ।

मृद्भक्षणजन्य—लोहभस्म १०३ । ताप्यादिलोह ४०१ । योगराज रस ४११ । मण्डूरभस्म और लघुमालिनी वसन्त ३५८ । मृद्विरेचन रस ५४० ।

कृमिजपाण्डु—ताप्यादिलोह ४०१ । मृद्विरेचन ५४० ।

हारिद्रक (स्त्रियों के पाण्डु Chlorosis)—मण्डूरभस्म १४५ । लोहभस्म १०३ । ताप्यादिलोह ४०१ । योगराज रस ४११ । अभ्रक १५० और लोहभस्म १०३ । बोलपर्पटी द्वितीयावधि २८६ । लघुमालिनी वसन्त ३५८ । मेहान्तक रसायन ५६० ।

रक्तस्राव, रजःस्राव या रक्ताणु की कमी से पाण्डु—कासीस १६३ और लोहभस्म १०३ । गोमेदमणि १६६ । मेहान्तक रसायन ५६० । त्रिफलारिष्ट ७०४ ।

गर्भाशय दोष से पाण्डु—बोलपर्पटी २८६ । सुवर्णमालिनी ३५० । प्रदरान्तकलोह ५३१ । ताप्यादिलोह ४०१ ।

सेन्द्रियविष और विष्टब्धा जीर्ण जन्य पाण्डु—आरोग्यवर्द्धिनी ४८७ । चविकासव ७२० । अभयारिष्ट ७१३ ।

ज्वर के पश्चात् पाण्डु—लघुवसन्त ३५८ । ताप्यादिलोह ४०१ । नवायसलोह ४०६ । सुवर्णमालिनी ३५० । सुवर्णमाक्षिकभस्म १३८ ।

शोथ-सह पाण्डु—तक्रमण्डूर ५०२। पुनर्नवामण्डूर ५०५। दुग्धवटी ३७७। मेहान्तक रसायन ५६०।

अतिसारजन्य पाण्डु—लोहपर्पटी २८८। सुवर्ण पर्पटी २८३।

(५८) पामा—कच्छू—खुजली (Itch)।

लघुमंजिष्ठादि क्वाथ ६६०। गन्धकरसायन ४४०। वृहद् मंजिष्ठादि-क्वाथ ६६१। खदिरारिष्ट ७०१। अमृतारिष्ट ७०५।

लगाने के लिये—कंकुष्ठादि लेप ८१०। पामाहर मलहम ८२०। दशाग लेप ८०५।

(५९) पित्तवृद्धि।

गिलोयसत्व ४६। मुक्तापिष्टी १७३। प्रवालपिष्टी १७८। लोहभस्म १०३। सुवर्णमाक्षिकभस्म १३८। मण्डूरभस्म १४५। गुलकंद ७४०। सूतशेखर ५१५। च्यवनप्राशावलेह ७४२। पर्पटाद्यरिष्ट ७२६।

(६०) प्लीहावृद्धि (उदररोग में देखें)।

(६१) बद्धकोष्ठ (आनाह में देखें)।

(६२) बहुमूत्र—मूत्रातिसार।

थोड़ा-थोड़ा पेशाब अनेक बार होना—जसदभस्म १२७। सुवर्ण-माक्षिकभस्म १३८। अभ्रकभस्म १५१। हेमनाथ रस ४७५। पंचामृत रस ५६६। वृहद्वंगेश्वर रस ४८३। अश्विनीकुमार रस ४८१। वृहद्धात्रीघृत ७७३। माजूनफलाशका ७५६। शिलाजीत ६४। चन्द्रप्रभावटी ५९७।

वृद्धावस्था की निर्बलता पर—माणिक्य रस ५४३।

मूत्रोत्पत्ति अधिक होती हो तो—वंगभस्म ११२। नागभस्म २३१। सुवर्णवंग २५८। जातिफलादि वटी मधुमेह ४८५।

(६३) बालरोग—बालकों के रोग।

ज्वर—ताप—गोदन्तीभस्म १६६। ज्वरकेसरी ३०२। रत्नगिरि ३०६। चन्द्रशेखर ५३९। प्रवालपिष्टी १७८। बालसंजीवन ५३९। बालरक्षक-सोगटी ६१७। शृंग्यादिचूर्ण ६५१।

जीर्ण ज्वर—सुवर्ण मालिनी ३५०। लघुमालिनी वसन्त ३५८। बालार्कगुटिका ५४०। बालरक्षक तैल ७८९।

दाँत आने पर अतिसार—कनकसुन्दर ३७२। दन्तोद्भेद गदान्तक ५४०। प्रवालपिष्टी १७८।

अतिसार और प्रवाहिका—पचसूत २७५। सर्वाङ्गसुन्दर ५४१।

अस्थिमार्दव—[Rickets] । प्रवालपिष्टी १७८ । गिलोयसत्व और मण्डूरभस्म १४५ । शृंगभस्म २०५ और प्रवालपिष्टी १७८ । मधुमालिनी वसन्त ३५६ । सर्वांगसुन्दर रस ५४१ । अरविन्दासव ७२७ ।

क्षीरालसक-बालशोष और पारिगर्भिक—शृङ्ग २०५ और प्रवालपिष्टी १७८ । लघुवसन्त ३५८ । कुमार कल्याण ५३६ । प्रवाल १७८ और मण्डूरभस्म १४५ । प्रवालपिष्टी १७८ । मधुमालिनी वसन्त ३५६ । सर्वाङ्ग सुन्दर रस ५४१ । गन्धक रसायन ४४० । बालरक्षक तैल ७८६ ।

डब्बा-पसली—(Broncho Pneumonia) मल्लसिंदूर २४६ । चन्द्रशेखर रस ५३६ । माणिक्य रसादि वटी ५४३ । डब्बानाशक गुटिका ६१७ । बालजीवन वटी ६१८ । शृंग्यादि चूर्ण ६५१ । अश्वकचुकी रस ३०७ ।

धनुर्वात—कालकूट ३३१ । लक्ष्मीनारायण रस ३३४ । चन्द्रशेखर ५३६ । कृमिकुठार रस ३६६ ।

पाण्डु—मण्डूरभस्म १४५ । लघुवसन्त ३५८ । ताप्यादि लोह ४०१ । मृद्विरेचन रस ५४० ।

बुद्धिमन्दता—अभ्रकभस्म १४५ । ब्राह्मीघृत ७७४ । सारस्वतारिष्ट ७०७ । प्रवालपिष्टी १७८ । कुमार कल्याण ५३६ ।

उपदंश अनुबन्ध से निर्बलता—अभ्रकभस्म १५१ और गन्धक-रसायन ४४० । अभ्रक १५१ और प्रवाल, बालामृत ७६२ ।

रुक-रुककर बोलना—सारस्वतारिष्ट ७०७ । ब्राह्मीघृत ७७४ ।

बालग्रह—पंचसूत २७५ । कुमारकल्याण ५३६ । स्मृतिसागर ५६३ । अष्टमंगलघृत ७७३ । ब्राह्मीघृत ७७४ । कल्याणघृत ७७६ । जीर्ण हो, तो—ताप्यादिलोह ४०१ । सारस्वतारिष्ट ७०७ ।

रसस्रावमय ग्रन्थियाँ—जसदभस्म १२७ ।

पूयवृक्क—कालकूट रस ३३१ ।

(६४) बुद्धिमान्द्य और स्मृतिनाश ।

अभ्रकभस्म १५१ । वंगभस्म ११२ । सुवर्णभस्म ८३ । सारिवासव ७२३ । सारस्वतारिष्ट ७०७ । च्यवनप्राशावलेह ७४२ । पुष्पधन्वा रस ५४६ ।

अधिक मानसिक श्रम जन्य—ब्राह्मीघृत ७७४ । मुक्तापिष्टी १७३ । प्रवालपिष्टी १७८ । अभ्रकभस्म १५१ ।

(६५) भगंदर (Fistula in Ano) ।

वृहद् योगराजगूगल ४५६ । नारसिंह चूर्ण ६४७ । सप्तविंशतिको-गुग्गुलु ६११ । योगेन्द्र रस ५७३ । दशमूलारिष्ट ६६० । त्रिफलारिष्ट ७०४ ।

अभ्रकभस्म १५१ । जसदभस्म १७७ । लक्ष्मीविलास रस अभ्रमिश्रित ३३९ ।

बाह्योपचारार्थ—निम्बतैल ७८३ । करवीरतैल ७८७ । कोशातक्यादि-तैल ७८७ । भगन्दर हर मलहम ८२३ ।

(६६) भस्मक ।

भस्मकनाशक चूर्ण ६५४। सुवर्णमाक्षिक १३८ । वराटिकाभस्म १८६। और शंखभस्म १६२ । [गिलोयसत्व के साथ]।

(६७) भ्रम—चक्कर (Vertigo) ।

प्रमेहगजकेसरी ५५८ । लक्ष्मीविलास ४२०, ३३९ । सुवर्णमाक्षिक १३८ । अभ्रक १५१ और लोहभस्म १०३ । सूतशेखर ५१५ ।मुक्तापिष्टी १७३ । च्यवनप्राशावलेह ७४२ । सारस्वतारिष्ट ७०७ । वसन्तकुसुमाकर ४७७ ।

(६८) मदात्यय—शराब जन्य विकार (Alcoholism)

सुवर्णमाक्षिक १३८ । कज्जली ५० । राजावर्त्तभस्म १७१ । राजावर्त्तरस ४३५ । रसादिचूर्ण ४३४ । मुक्तापिष्टी १७३ । कूष्माण्डावलेह ७४० ।

(६९) मसूरिका (शीतला), रोमान्तिका ।

प्रवालपिष्टी १७८। त्रिभुवनकीर्ति ३१२ । लक्ष्मीनारायण, गोरोचन प्रवालपिष्टी ३३४ । खदिराष्टक ६६६। दुरालभादि क्वाथ ६७४ । पटोलादि क्वाथ ६६४, ६७४ । दशांग लेप ८०४ । निशादि लेप ८१५ ।

नेत्र पर बाँधने के लिये—मधुकादिलेप ८०६ ।

(७०) मुखरोग ।

कण्ठरोग—(पृथक लिखे हैं ।)

मुखपाक—मुँह में छाले—खदिरादि वटी ५८६ जातिपत्रादि क्वाथ ६६७ ।

मुँह चिकना रहना—लक्ष्मीविलास रस ३३९ । स्वादिष्ट पाचन वटी ६२२ । आरोग्यवर्द्धनी ४८७ ।

(७१) मूर्च्छा और संन्यास (Apoplexy) ।

वातप्रधान—कस्तूरी भैरवरस ३०० ।

पित्तज—कामदूधा रस ४३६ । मुक्तापिष्टी १७३ ।

रक्तदबाववृद्धि से—मूर्च्छा—अश्वकंचुकी ३०७ । आरोग्यवर्द्धिनी ४८७ चन्द्रप्रभा ५९७ ।

कफाधिक्य से मूर्च्छा—पञ्चसूत रस २७५ ।

सुँघानेके लिये—श्वासकुठार रस ४२८ ।

हिस्टीरिया या उन्मादजन्य मूर्च्छा—अश्वगन्धारिष्ट ७०४।

जीर्ण-रक्तज-मूर्च्छा—ताप्यादिलोह ४०१। चन्द्रकला ४१२।

फिरंग अनुबन्ध से हो, तो—अष्टमूर्त्ति रसायन २७१।

मधुमेह की अन्तिम अवस्था में—नागभस्म १३१। वसन्त कुसुमाकर ४७७। प्रमेहगजकेसरी ५५८।

अंजन के लिये—प्रचेतानामगुटिका ८०२। उन्मादभंजनी वटी ८०१।

सुंघाने के लिये—मूर्च्छान्तक नस्य ८३२। श्वास कुठार रस ४२८।

सर्पविष जन्यमूर्च्छा—लघुसूचिका भरण ३०१। अञ्जन रस द्वितीय।

(७२) मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात।

शिलाजीत ६४। मूत्र कृच्छ्रान्तक ४७६। सारिवासव ७२३। उशीरासव ६९९। चन्दनादि अर्क ७३०। जवाखार ४२। देवदार्वाद्यरिष्ट ७२८। चन्द्रप्रभावटी ५९७। लोहभस्म १०३। प्रमेह गजकेसरी ५५८। प्रवालपिष्टी १७८। न्यग्रोधादि चूर्ण ६४७।

मूत्रावरोध—संगयहूद २११। शीतलपर्पटी २९४। त्रिकण्टकादि क्वाथ ६६७। वीरतर्वादि क्वाथ ६७८। गोक्षुराद्यवलेह ७४५। महायोगराज गूगल ४५६। गोक्षुरादि गूगल ६०९।

फिरंगज वातबस्ति—वात कुण्डली—अष्टमूर्त्ति रसायन २७१।

सुजाक जन्य मूत्रवाहिनी शोथ—चन्दनासव ७१७। प्रमेहान्तक वटी ४८३। सारिवासव ७२३।

मूत्राशय की निर्बलता—अभ्रकभस्म १५१। कांस्यभस्म २१३। बृहद् वंगेश्वर ४८२। शिलाजीत ६८।

मूत्रमें दाह और रक्तजाना—कामदूधा ४३६। मुक्ता पिष्टी १७३। प्रवालपिष्टी १७८। चन्द्रकला ४१२। चन्दनादि अर्क ७३०। उशीरासव ६९९। सुवर्णमाक्षिकभस्म १३८।

(७३) मूत्रवाहिनी में व्रण।

काकनुज वटी ६०२। चन्द्रप्रभा वटी ५९७। उष्णवातघ्न चूर्ण ६४५। प्रमेहान्तक वटी ४८३। मूत्रकृच्छ्रान्तक रस ४७६।

(७४) मेदो वृद्धि (Obesity)।

शिलासिन्दूर २५५। आरोग्यवर्द्धिनी ४९५। शिलासिंदूर वटी ५०५। शिलाजीत ६४। चन्द्रप्रभा वटी ५९७। मेदोहर अर्क ७३४। महायोगराज गूगल ४५६। लक्ष्मीविलास रस अभ्रकप्रधान ३३९। लघुसुदर्शन ६२७।

जीर्णरोग, हृदय और नाड़ियों में मेदसंचय--लक्ष्मीविलास २३९। त्र्यूषणाद्यलोह ४८६।

(७५) यकृद्वृद्धि (उदररोग में देखें।)

(७६) रक्तदबाववृद्धि (High arterial blood Pressure)

सर्पगन्धादि गुटिका ६२२। अश्वकचुकी रस ३०७। इच्छाभेदी रस ३६५। चन्द्रप्रभा वटी ५६७। आरोग्यवर्द्धिनी ४८७। सारिवासव ७२३। शुद्ध शिलाजीत ६४। चंद्रकला रस ४१२। ताप्यादिलोह ४०१। जहरमोहरा पिष्टी १६५। योगराज रस ४११।

मासिक धर्म के बदले में रक्त दबाव वृद्धि—आरोग्यवर्धनी + चंद्र प्रभा ४६५।

शराबजनित रक्तदबाव वृद्धि--चन्द्रप्रभा ६०१। शिलाजीत ६४।

(७७) रक्तपित्त (Haemorrhagie Diseases)

शुद्ध गेरू ६३। चद्रकला रस ४१२। सारिवादि वटी ५३१। लोह भस्म १०३। सुवर्णमाक्षिकभस्म १३८। वैडूर्यभस्म १७०। पित्तलभस्म २१२। वासावलेह ७३८। प्रवाल और माक्षिकभस्म १३८। पर्पटादि क्वाथ ६६८। ह्रीबेरादिक्वाथ ६७८। वसन्तकुसुमाकर रस ४७७।

रक्त बन्द करने के लिये—वराटिका १८६। प्रवालपिष्टी और सुवर्ण गैरिक १७८। कामदूधा ४३६। मुक्तापिष्टी १७२। शुक्तिभस्म १८७। बोलबद्ध ३८७। बोलपर्पटी ३८६। तृणकान्तमणिपिष्टी १६५। उशीरासव ६६६। अशोकारिष्ट ७१५। दुर्वादिघृत ७७५। कुष्माण्डावलेह ७४६। अरविन्दासव ७२७।

रक्तदबाव वृद्धि जन्य—पुनर्नवासव ७२३। इच्छाभेदी ३६५।

जीर्णरोग में—अभ्रकभस्म १५१। प्रवालपिष्टी १७८। सगजराहत-भस्म २१०। द्राक्षासव ७०८। वसन्तकुसुमाकर ४७७। उशीरासव ६६६। कनकासव ७०२।

शक्ति संरक्षणार्थ—कामधेनु रस ५७०।

(७८) रक्तविकार।

मंजिष्ठादि चूर्ण ६४२। पित्तलभस्म २१२। कांस्यभस्म २१३। लोकनाथ रस ४९८। लघुमंजिष्ठादिक्वाथ ६६०। बृहद् मंजिष्ठादिक्वाथ ६६१।

दाहसह—गन्धक ६०। गन्धकघृत ७७५। गन्धकरसायन ४४०। सुवर्ण माक्षिकभस्म १३८।

सुजाक जन्य—सारिवासव ७०३। अरविंदासव ७२७। सुवर्णवंग २५८। माजून उशबा ७५७।

उपदंश जन्य—वंगभस्म ११२। मल्लभस्म २०२। मल्लसिंदूर २४६। व्याधिहरण रस २७३। मंजिष्ठादि तालसिंदूर ५१५। उपदंशसूर्य ५०७। चोपचिन्यादिचूर्ण ६४६। रक्तशोधककाथ ६७०। रक्तशोधकारिष्ट ७२६। तुत्थभस्म २१४।

कोष्ठशोधनार्थ—नारायणचूर्ण ६३३। मुंजिस और जुलाब ६७२।

(७६) रक्तस्राव।

पित्तप्रकोपज—मुक्तापिष्टी १७२। प्रवाल १७६। उशीरासव ६६६।

छुरी-चाकू लगने से—संगजराहत भस्म २११। घाव तैल ७८५। लाक्षाअर्क ७३६।

व्रणशोथ में से स्राव—(व्रणशोथ में देखें।)

(८०) वमन—छर्दि—कै (Vomiting)।

पित्तप्रकोप जन्य—वान्तिहृद्रस ४३२। कुमुदेश्वर ४३४। छर्दिरिपु-वटी ५८६। शुक्तिभस्म १८७। सुवर्ण माक्षिकभस्म १३८। सूतशेखर ५१५। पुष्परागभस्म १७०। चन्द्रकला रस ४१२। एलादिचूर्ण ६३२। एलादिवटी ५६६। तृष्णाग्नि गुटिका ६१८। यवानीखाण्डव चूर्ण ६३२।

गर्भपात के पश्चात् वान्ति—सूतशेखर ५१५।

अजीर्ण जन्य—पोदीने का फूल ५१। संजीवनीवटी ५८२। कर्पूरासव ७२८। जीवन रसायन अर्क ७३५। द्राक्षासव ७०८। अग्निकुमार रस ३८६। आरोग्यवर्द्धिनी ४८७। जहरमोहरा पिष्टी १६५।

कर्कस्फोट जन्यवान्ति—वंगभस्म ११२।

आक्षेपक वात के पश्चात् वमन—सुवर्णभस्म ८३। माक्षिकभस्म १४५।

जलसदृश वमन—एलादि चूर्ण ६३२।

(८१) वमन कराना

नीलकण्ठरस ३६४। तुत्थभस्म २१४।

(८२) वात रोग।

तीव्र अर्धाङ्ग वात (Hemiplegia)—ताप्यादि लोह ४०१। महावातविध्वंसन रस ४५१। एकांगवीर ४६२। अर्धाङ्गवातारि ५५६।

वातश्लेष्मात्मक हो, तो—वातगजांकुश ४५५। महारास्नादि क्वाथ ६६७।

जीर्ण पक्षवध—पंचसूत रस २७५। अभ्रक भस्म १५१। अग्नितुण्डी वटी ३६४। लक्ष्मीविलास ३३६। स्मृतिसागर ५६६। ताप्यादि लोह ४०१ महायोगराज गूगल ४५६। महारास्नादि क्वाथ ६६७। मल्लसिन्दूर २४६।

उपदंश जन्य पक्षाघात—मल्ल सिंदूर २४६। समीरपन्नग २६२। अष्टमूर्ति रसायन २७१। मल्लसिंदूर वटी ४६४। बृहद मंजिष्ठादि क्वाथ ६६१ उपदंश सूर्य ५०७।

शिरा विकृति जन्य कम्पवात—त्रिवंगभस्म १२३। सुवर्णभूपति २६८। ताप्यादि लोह ४०१। एकाङ्गवीर ४६२। अर्धाङ्गवातारि रस ५५६।

वातवाहिनी दोष और आमप्रकोप—वातहर गुटिका ६१३। सूतराज रस २६६। मल्लभस्म २०२। महारास्नादि क्वाथ ६६७। अजमोदादि चूर्ण ६४८। कुमार्यासव ६६५।

शुक्रक्षय से वात प्रकोप—रौप्यभस्म ८६। वङ्गभस्म ११२।

अर्दित (Facial Paralysis), अववाहुक, हनुग्रह, मन्याग्रह, जिह्वास्तम्भ, शिराग्रह, विश्वाची, खञ्ज, कलाय खञ्ज, कटिवात आदि—समीरपन्नग रस २६२। सुवर्णभूपति २६८। शुण्ठ्यादिपायस ७६१। वातगजांकुश रस ४५५। महायोगराजगूगल ४५६। एरण्ड पाक ७२१। धात्रीमल्लातक वटी ६१४। रौप्यभस्म ८६। शिलाजीत ६४। महावात विध्वंसन ४५१।

कम्पवात—सुवर्णभूपति २६८

विश्वाची—लक्ष्मीविलास रस ३१६। प्रतापलंकेश्वर रस ५३५।

सर्वाङ्ग वात (Diplegia) और अन्य जीर्ण वात—रौप्यभस्म ८६। वज्रभस्म १६७। लक्ष्मीविलास रस ३३६-४२०। समीरपन्नग २६२। समीरगजकेसरी ४५५। मल्लसिंदूर २४६। अश्वगंधारिष्ट ७०४। विषतिंदुकादि वटी ६०५। दशमूलारिष्ट ६६०

आमाधिक जीर्ण वात—महायोगराज गूगल ४५६। योगराज गूगल ६०८। अजमोदादि चूर्ण ६४८।

पित्तप्रकोप सहवात—योगेन्द्र रस ५७३। सूतशेखर रस ५१५। धात्रीमल्लातक वटी ६१४।

कीटाणुप्रकोपज आक्षेप—चन्द्रकला ४१२। संचेतनी वटी ३३८

मलावरोधज आक्षेप—समीरपन्नग २६२।

तीव्र पीड़ा सह आक्षेप—स्मृतिसागर ५६६।

आक्षेपक (Convulsions) अपतानक, धनुस्तंभ आदि—वङ्गभस्म ११२। अश्वकंचुकी रस २०७। समीरपन्नग २६२। लक्ष्मीनारायण

रस २३४ । संचेतनी गुटिका ३३८ । महावात विध्वंसन रस ४५१ । सुवर्ण भूपति २६८ ।

अपतन्त्रक (Hysteria)—मल्लसिंदूर २४६ । कस्तूरी भैरव रस ३०० । पूर्ण चन्द्रोदय रस २४० । मल्लसिंदूर वटी ४६४ । सारस्वतारिष्ट ७०७ । हिस्टीरिया नाशक वटी ६१३ । हिस्टीरिया नाशक चूर्ण ६४६ । संचेतनी गुटिका ३३८ । वातकुलान्तक रस ४४६ । सर्पगन्धादि वटी ६२२ ।

जीर्ण आक्षेपक—अष्टमूर्ति रसायन २७१ । मल्लसिंदूर २४६ । समीरपन्नग २६२ ।

बारम्बार उत्पन्न होनेवाला वात—नागभस्म १३१ ।

गर्भपात और कष्टार्त्तव से वातप्रकोप—सूतशेखर ५१५ ।

कलाय खञ्ज—लक्ष्मीविलास सुवर्णयुक्त ४२० । अष्टमूर्ति रसायन २७१ । उपदंश सूर्य ५०७ । रौप्यभस्म ८६ ।

खल्ली—प्रतापलंकेश्वर रस ५३५ । लक्ष्मीविलास सुवर्णयुक्त ४२० ।

सूतिका का वातप्रकोप—हेमगर्भपोटलीरस ४१६ ।

पूय और व्रणसे धनुर्वात—एकांगवीर ४६२ । ताप्यादि लोह ४०१ ।

उपदंशज सधिवात—मल्लभस्म २०२ । मल्लसिंदूर २४६ । अष्टमूर्ति रसायन २७१ । तालसिंदूर २५३ । चीचाभल्लातक वटी ६१३ । धात्रीभल्लातक वटी ६१४ । रक्तशोधकारिष्ट ७२६ । उपदंश सूर्य ५०७ । गन्धक रसायन ४४० । सारिवासव ७२३ ।

वातज और वात-कफात्मक ग्रधृसी (Sciatica)—अजमोदादि चूर्ण ६४८ । दशमूल क्वाथ ६५८ । नाराच घृत ७७० । शुण्ठ्यादि पायस

बृहद् योगराज गूगल ४५६ । महावात विध्वसन ४५१ ।

मालिशार्थ—मल्ल तैल ७७७ । वातहर तैल ७८० । चक्रमर्द तैल ७८३ । नारायण तैल ७८३ । (आमसह-महाविषगर्भ तैल ७६० । लघु विष-गर्भ तैल ७६२ । प्रस्वेद लाकर रोग शमनार्थ—शिर:शूलान्तक मलहम ८२६ ।

शक्ति रक्षणार्थ—त्रैलोक्य चिन्तामणि रस ३१६ । लक्ष्मीविलास ३३६ । पूर्ण चन्द्रोदय २४० । अश्वगंधारिष्ट ७०४ । नागभस्म १३१ ।

निर्बलता जनित कुब्जता—त्रिवंगभस्म १२३ ।

(८३) वातरक्त (Gout)

सब प्रकार पर—लघुमंजिष्ठादि क्वाथ ६६० । बृहद्मंजिष्ठादि ६६१ ।

जीर्ण रोग—लांगुल्यादि लोह ४६५ । दशमूल क्वाथ ६५३ ।

वात और कफ प्रधान—हरतालभस्म १६६ । तालसिंदूर २५६ । हरताल रसायन ५१४ ।

पित्त प्रधान--गन्धक रसायन ४४० । पंचनिम्ब चूर्ण ५१४ ।

जीर्ण मूत्रविकृति सह--ताप्यादि लोह ४०१ । सारिवासव ७२३ ।

आम और कफ प्रधान--कैशोर गूगल ६११ । महायोगराज गूगल ४५६ । चविकासव ७२० ।

आमप्रधान जीर्ण--बृहद्योगराज गूगल ४५६ । योगराज गूगल ६०८ ।

(८४) विचर्चिका--खर्जू--व्युची (Eczema) ।

वङ्गभस्म ११२ । गन्धक रसायन ४४० । माजून उशवा ७६७ ।

लगाने के लिये--व्युचीहर मलहम ८२१ ।

(८५) विद्रधि (Abscess) ।

कज्जली ५० । त्रैलोक्य चिन्तामणि ३१६ । त्रिफला चूर्ण ६३४ । नागभस्म १३१ । वङ्गभस्म ११२ । जसदभस्म १२७ । महामृगाङ्क ४१८ ।

अंतिविद्रधि--लोकनाथ रस ४६८ । अश्वकंचुकी ३०७ । ताम्रभस्म ९६ । अग्नितुण्डी वटी ३६४ । शृङ्ग भस्म २०५ । पुनर्नवासव ७२३ ।

लगाने के लिये--कर्पूरादि मलहम ८१६ । व्रणामृत मलहम ८१८ । रालका मलहम ८१७ । कोशातक्यादि तैल ७८६ । घाव तैल ७८५ ।

मांसार्बुद--(Cancer)--वङ्गभस्म ११२ । ताम्र भस्म ९६ ।

(८६) विरेचन--जुलाब देना ।

इच्छाभेदी ३६५ । नारायण चूर्ण ६३३ । विरेचन चूर्ण ६३६ । पंचसकार चूर्ण ६२६ । शेष औपधि "आनाह" रोग मे लिखी हैं ।

(८७) विषविकार

मूषक (चूहे) का विष--अश्वकंचुकी रस ३०७ । बृहद् योगराज गूगल ४५६ । आखुविषान्तक रस ५४५ ।

सर्प विष--तुत्थ भस्म २१४ । संजीवनी वटी ५५२ । बेहोशी होगई हो, तो--लघुसूचिकाभरण ३०१ । हरताल पुष्प ५४४ । अंजनार्थ अंजन रस ।

श्वान-विष--विपत्ति-दुकादि वटी ६०५ । अग्नितुण्डीवटी ३६४ । कस्तूर्यादि वटी ५८१ ।

लूता-मकड़ी का विष--त्रैलोक्यचिन्तामणि रस ३१६ । सुवर्णभूपति रस २६८ । गन्धकरसायन ४४० । अश्वकंचुकी रस ३०७ ।

मधुमक्खिका विष--बृहद् योगराज गूगल ४५६ । वातशूलान्तक अर्क ७३६ । शिर शूलान्तक बाम ८०६ ।

दूषी विष--तुत्थभस्म २१४ । कल्याणघृत ७३७ । गन्धकरसायन ४४० ।

अजीर्ण-सेन्द्रियविष—योगराज रस ४११। ताप्यादिलोह ४०१। आरोग्यवर्द्धिनी ४८७। रक्तशोधक शर्बत ७६१।

पारदविष—पर्पटाद्यरिष्ट ७२६। गन्धकरसायन ४४०।

नाग (शीशा) विष—गन्धक ६०। शुभ्राभस्म २१६।

जीर्ण विष प्रकोप—सुवर्ण भस्म ८३। सुवर्णमाक्षिक भस्म १३८। तार्क्ष्यभस्म १६६। पुष्परागभस्म १७०। प्रवालपिष्टी १७८। रसादिचूर्ण ४३४ योगराज रस ४११। फिरोजाभस्म १६६। ताप्यादिलोह ४०१।

कोष्ठशोधनार्थ—नारायण चूर्ण ६३३। विषहर चूर्ण ६४१। तुत्थ-भस्म २१४। इच्छाभेदी रस ३६५।

क्विनाइन जनितविष—सुवर्णमाक्षिकभस्म १३८। प्रवालपिष्टी १७८। पर्पटाद्यरिष्ट ७२६।

(८८) विसूचिका—हैजा (Cholera)।

जन्तुजन्य—कर्पूरासव ७२८। जीवन रसायन ७३५। संजीवनी वटी ५८२। विसूचिकाहर वटी ६२०। लहशुनादि वटी ६१६। सूतशेखर ५१५।

अजीर्ण जन्य—पित्ताधिक—जातिफलादिवटी ६०५। सूतशेखर ५१५। शंखभस्म १६२। संजीवनी ५८२।

अजीर्ण जन्य कफाधिक—अग्निकुमार रस ३८६। क्रव्याद् रस ३६१। चीचाभल्लातक वटी ६१३। हिंग्वष्टकचूर्ण ६२६। शिवाक्षार पाचन चूर्ण ६३०। लहशुनादि वटी ६१६।

नाड़ियों का खिंचाव शमनार्थ—ताम्रभस्म ६६। सूतशेखर ५१५। त्वक्पत्रादि उद्वर्त्तन ८३१।

रोग के अन्त में वमन हो-तो—सुवर्णमाक्षिक भस्म १३८।

शक्तिरक्षणार्थ—मल्लसिन्दूर २४६। लक्ष्मीविलास रस ३३६। हेम-गर्भपोटली रस ४१६। समीर पन्नग २६२।

(८९) विसर्प और विस्फोटक।

मुक्तापिष्टी १७२। प्रवालपिष्टी और गिलोयसत्व १७८। खदिरारिष्ट ७०१। खादिराष्टक क्वाथ ६६६। गन्धक रसायन ४४०। फिरोजाभस्म १६६।

बाह्योपचारार्थ—मास्यादि लेप ८१३। निशादिलेप ८१५।

(९०) वृक्क विकार।

वृक्कशोथ (Bright Disease) ताम्रपर्पटी २८३। चन्द्रप्रभा-वटी ५६७। देवदार्वाद्यरिष्ट ७२८। सर्पगन्धादि गुटिका ६२२।

वृक्कव्रण—काकनुजवटी ६०२। देवदार्व्याद्यरिष्ट ७२८। वङ्गभस्म ११२।

वृक्क विद्रधि—लोकनाथ रस ४६८।

वृक्कशूल—त्रिविक्रम ४८०। पाषाणवज्रक ४८०। अगस्तिसूतराज २७०। शीतल पर्पटी २६४। माजून फलासफा ७५६। महावातराज ५५२।

(६१) व्रणशोथ, अन्तरव्रण, सद्योव्रण, नारीव्रण।

शुद्धगन्धक ६०। वङ्गभस्म ११२। जसदभस्म १८७। कासीसभस्म १६३। गन्धक रसायन ४४०।

अन्तर व्रण—नागभस्म १३१ कामदूधा ४२६। कुटजारिष्ट ७११।

व्रण पर लेपार्थ—सिंदूर का मलहम ८१६। दशाग लेप ८०५। व्रणामृत मलहम ८१८। श्वेत व्रणामृत मलहम ८१८। व्रणशोधन लेप ८०८। चूनेका मलहम ८१६। निम्बपत्रादि मलहम ८२८।

अस्थिव्रण—नागभस्म १३१।

नाड़ीव्रणादि गंभीर व्रण—गन्धक रसायन ४४०। दशमूलारिष्ट ६६०। जात्यादि घृत ७७६। चक्रमर्दादि ७७६। निम्ब तैल ७८२। नाड़ीव्रण-हर तैल ८८७। करवीर तैल ७८७। कोशातक्यादि तैल ७८७। कर्पूरादि मलहम ७८७। भगंदर नाशक मलहम ८२३। पारदादि मलहम ८२७।

नेत्रगत व्रण—कासीसभस्म १६३।

रक्तज शोथ और मूढमार—रामबाण लेप ८११। निशादि लेप ८१५। अस्थिसधानक लेप ८१०।

उपदंशज व्रण—उपदंश सूर्य ५०७। अष्टमूर्ति रसायन २७१। व्याधि-हरण रस २७३।

(६२) वृषण वृद्धि।

वृद्धिबाधिका वटी ५०३। वृद्धिदमन लेप ८१४।

वृषणशोथ—त्रिफला चूर्ण ६३४।

(६३) शिरः शूल (Headache)

तीक्ष्ण शूल—महावात विध्वंसन रस ४५१। दशमूलारिष्ट ६६०।

सामान्य शूल—अभ्रकभस्म १५१। शूलवज्रिणी ४६५। सुवर्ण-मालिनीवसन्त ३५०। गोदन्ती भस्म १६६।

कृमिजन्य शूल, नासिका से रक्तस्राव—तृणकातमणि पिष्टी १६५

अर्द्धावभेदक—लघु सूतशेखर ५२८। सूतशेखर ५१५।

शिर दर्द का बारबार दौरा होना—शिलाजीत ६४। सूतशेखर ५१५।

वातज शीर्ष शूल—महावात विध्वंसन ४५१ । लक्ष्मीविलास अभ्रक-युक्त ३२६ । सूतशेखर ५१५ । अगस्ति सूतराज रस ३७० ।

वातरक्त से शूल—बृहद् योगराज गूगल ४५६ ।

पित्तप्रधान दर्द—गिलोयसत्व ४६ । गोदन्ती भस्म १६६ । कामदूधा रस ४३६ । सूतशेखर ५१५ । प्रवालपिष्टी १७८ । लघु सूतशेखर ५२८ । च्यवन-प्राशावलेह ७४२ । सुवर्णमाक्षिक भस्म १३८ । सितोपलादि चूर्ण ६२८ । चन्दनादि चूर्ण ६३१ । शुक्ति भस्म १८७ ।

पित्त प्रधान जीर्ण व्यथा—सुवर्ण माक्षिक १३८ । मण्डूरमाक्षिक १५१ ।

पित्त प्रधान अर्द्धावभेदक—मधुकादि हिम ६७७ ।

वातपित्तात्मक शूल—सूतशेखर ५१५ । सुवर्णभूपति २६८ । सुवर्ण-माक्षिकभस्म १३८ ।

वातकफात्मक सूर्यावर्त्त—श्वासकुठार रस ४२८ ।

पित्तज—लघु सूतशेखर ५२८ ।

मलावरोध से भारीपन—आरोग्यवर्धिनी ४८७ । अश्वकंचुकी रस ३०७ । सुवर्णभूपति २६८ । आवलो का मुरब्बा ७६० । भृङ्गराजासव ७२५ ।

वाह्योपचार—शिरः शूलान्तक मलहम ८२६ । षड्बिन्दु तैल ७८८ ।

सूति का शिर दर्द—प्रतापलंकेश्वर रस ५३५ । दशमूलारिष्ट ६९० । सूतशेखर ५१५ ।

(९४) शीतपित्त-पित्ती—उदर्द—कोठ ।

सूतशेखर ५१५ । आरोग्यवर्द्धिनी ४८७ । अश्वकचुकी रस ३०७ । गंधक रसायन ४४० । मल्ल सिंदूर २४९ । प्रवालपिष्टी १७८ ।

अपचनजनित—सुवर्ण भस्म ८३ । गन्धक रसायन ४४० ।

(९५) शूल (Colic) ।

सब प्रकार के शूल पर—शूलवज्रिणी ४६५ । सुवर्णभूपति २६८ ।

अजीर्णजन्य नया—शख वटी ३७९ । मल्लादि वटी दूसरी विधि ४३१ । हिंगुल वटी ३८३ । जातिफलादि वटी ६०५ । हिंगुल रसायन ४६६ । नीबूद्राव ७३१ । उदरामृत योग ७३२ । लघुशंखद्राव ७३२ । जम्भीरीद्राव ७३३ । स्वादिष्ट शर्बत ७६३ । अदरख का शर्बत ७६४ । चित्रकादि वटी ५९४ । हिंग्वष्टक चूर्ण ६२६ । गन्धक वटी६१४ । कुमार्यासव ६६५ शीतल-पर्पटी २६४ ।

वात-प्रधान—नागभस्म १३१ । तीव्र हो, तो—महावात विध्वंसन ४५१ । दशमूलारिष्ट ६९० । हिग्वादि वटी ६२१ ।

पित्त-प्रधान—ताप्यादि लोह ४०१ । शंखवटी ३७६ । शुक्ति भस्म १८८ । शंख भस्म १९२ । कनकासव ७०२ । जीरकारिष्ट ७१८ । वान्तिहृद्रस ४३२ । प्रवालपिष्टी १७८ ।

कफप्रकोप-जन्य—ताम्रभस्म ९६ । क्रव्याद ३९१ । त्रित्तलभस्म २१२ । अश्वकंचुकी ३०७ । लक्ष्मीविलास ३३९ । हिंगुल रसायन ४६६ । नाग गुटिका ५९२ । अश्विनीकुमार ४८१ । लक्ष्मीनारायण ३३४ । बिल्वादि क्वाथ ६७४ ।

आम शूल—अग्निकुमार ३८९ । क्रव्याद् रस ३९१ । महायोगराज गूगल ४५६ । कासीसभस्म १६३ । आनन्दभैरव रस ३६६ । लोहभस्म १०२ । शंख वटी ३७६ ।

वात-पित्त प्रधान—सूतशेखर ५१५ । सुवर्णभूपति २६८ । नागभस्म १३१ । बृहत्यादि क्वाथ ६७३ । कपर्दिकाभस्म १८६ ।

परिणाम शूल—ताम्रभस्म ९६ । मण्डूरमाक्षिक १५१ । शंखभस्म १९२ । कनकासव ७०२ । कुमार्यासव ६९५ । लक्ष्मीविलास ४२० । गंधक वटी ६१४ । कपर्दिका भस्म १८६ । सुवर्णमाक्षिक १३८ । गुल्मकुठार ४६८ । दशमूलारिष्ट ६९० । सुवर्ण पर्पटी + कामदूधा + सगजराहत भस्म २११ ।

नाग विपज्ज शूल—नागभस्म १३१ । शुभ्राभस्म २१९ । शम्बुकभस्म २७७ । शंख वटी ३७६ । शंखद्राव ७३२ । जम्भीरी द्राव ७३३ ।

शीतोपचार जन्य शूल—आनन्दभैरव रस ३६६ । कस्तूरीभैरव ३०० ।

कृमिजन्य शूल—कृमिकुठार रस २९९ ।

अन्नद्रव शूल—ताम्रभस्म ९६ । सुवर्णभूपति रस २६८ । शुक्तिभस्म १८७ । वान्ति हृद्रस ४३२ । सूतशेखर ५१५ । कनकासव ७०२ ।

अष्ठीलादि ग्रन्थि जन्य—ताम्रभस्म ९६ ।

वातज गुल्म और शूल—कासीसभस्म १६३ ।

वातरक्त जन्य—महायोगराज गूगल ४५६ । दशमूल क्वाथ ६५८ ।

बद्धकोष्ठ जन्य शूल—चविकासव ७२० ।

रक्तवाहिनियों के संकोच से—लोहभस्म १०३ ।

सन्धिगत और अस्थिगत शूल—नागभस्म १३१ ।

पार्श्वशूल—लक्ष्मीविलास (दोनोंप्रकार के ३३९, ४२०) । शुभ्रा भस्म २१९ । गुल्मकुठार ४६८ । महावातराज रस ५५२ । शृङ्गभस्म २०५ पंचसूत रस २७५ । दशमूलारिष्ट ६९० । लक्ष्मीनारायण रस ३३४ ।

रक्तातिसार में शूल—शंखोदर रस ३८० ।

हृदय शूल—(वातज नागभस्म १३१), (पित्तज-गुल्म कुठार ४६८

(कफज—त्रैलोक्य चिन्तामणि ३१६ । शृङ्गभस्म २०५ । पूर्णचन्द्रोदय रस २४० । रससिन्दूर २४४ । लक्ष्मीविलास रस ३३६) ।

अर्दित शूल—महावात विध्वंसन ४५१ ।

शुष्क कफज शूल—समीरपन्नग २६२ ।

मस्तिष्क शूल—रौप्यभस्म ८६ । गोदन्तीभस्म (कफाधिक्य पर१६६) ।

लेपार्थ—वातशूलहरमलहम ८२५ । शिरःशूलान्तक मलहम ८२६ । वातशूलान्तक अर्क ७३६ ।

आमवातज शूल—महायोगराज गूगल ४५६ ।

(९६) शोथ—सूजन ।

नया शोथ—लोहभस्म १०३ । लोह और ताम्रभस्म ९६ । तक्रमण्डूर ५०२ । पुनर्नवा मण्डूर ५०२ । आरोग्यवर्द्धिनी ४८७ । लोहपर्पटी २८८ । ताप्यादिलोह ४०१ । त्रिफलारिष्ट ७०४ । अभयारिष्ट ७१३ । पुनर्नवादि चूर्ण ६४२ । उशीरासव ६९३ । पुनर्नवासव ७१६ और सारिवासव ७२३ ।

हृदय विकृति जन्य जीर्ण—सुवर्णमाक्षिक १३८ । लक्ष्मीविलास ३३९, ४२० । अभ्रकभस्म १५१ । वसन्त कुसुमाकर ४७७ । आरोग्यवर्धनी ४८७ ।

यकृद्दाल्युदरसह शोथ—योगराज ४११ । आरोग्यवर्धनी ४९५ ।

फुफ्फुसावरण में शोथ—आरोग्यवर्धनी ४९५ ।

कफ प्रधान—तालसिंदूर २५२ । दुग्धवटी ३७७ । (मूत्रपिण्ड विकृति जन्य—आरोग्यवर्द्धिनी ४८७) ।

मूत्रपिण्ड विकृति पित्तप्रधान सर्वाङ्गशोथ—कामदूधा रस ४४० ।

त्रिदोपज—शिलाजतु ६८ ।

रक्तक्षय, रक्तस्राव या प्लीहावृद्धिजन्य शोथ—ताप्यादिलोह ४०१ । लोहभस्म १०३ ।

चिरकारी मंद शोफ—गदमुरारि रस ३२९ ।

दाह, वमन, शिरदर्द, हा, तो—कामदूधारस ४३६ ।

शोथ-(Inflammation) पर (बाह्योपचार—मूलकादि तैल ७८९ । शिरःशूलान्तक मलहम ८२६ ।

वातज—वातशूलान्तक अर्क ७३६ । बीजपुरजटादि लेप ८०६ ।

पित्तज—दशाग लेप ८०५ । मधुकादि लेप ८०६ ।

कफज—कृष्णादि लेप ८०६ ।

वातकफज—दोषघ्न लेप ८०५ ।

रक्तज शोथ—दशाग लेप ८९५ ।

(६७) श्लीपद—हाथीपगा (Elephantiasis) ।

गंधक रसायन ४४० । नित्यानन्द रस ५०५ । वृद्धदारुकादि चूर्ण ६४१ । लक्ष्मीविलास रस अभ्रकप्रधान ३३६ । महायोगराज गूगल ४५६ ।

लगाने के लिये—श्लीपदहर लेप ८१४ । धतूरादि लेप ८१५ ।

(६८) श्वास—दमा (Dyspnoea) ।

तमकश्वास (Asthma)—श्वासान्तक वटी ५६१ । मल्लभस्म २०२ । अभ्रकभस्म १५१ । मल्लसिंदूर २४६ । शिलासिंदूर २५५ । मल्लपुष्प ३४६ । हेमगर्भ पोटली रस ४१६ । श्वासरोगान्तक ४३० । श्वास कुठार ४२८ । श्वासदमन ४३२ । श्रृङ्गभस्म २०५ । रससिंदूर २४४ । मल्लादि वटी ४३१ । समीरपन्न २६२ । हरताल रसायन ५१४ । पंचसूत २७५ । मल्लसिंदूरवटी ४६४ । वासादि क्वाथ ६६८ । कनकासव ७०१ । महाद्राक्षासव ७३० । महावातराज रस ५५२ । आनन्दभैरव रस ३६६ ।

प्रतमक—पित्तज श्वास—सुवर्णभस्म ८३ । पन्नाभस्म १६६ । मुक्तापिष्टी १७२ । जसदभस्म १२७ लोहभस्म १०३ और अभ्रकभस्म १५१ । नीलमणिभस्म १७१ । वैक्रान्तभस्म १७२ । लक्ष्मीविलास ४२० । मल्लभस्म २०२ । हरताल गोदंतीभस्म २१६ । प्रवाल पंचामृत ४७२ ।

जीर्ण रोग—सुवर्णभस्म ८३ । लक्ष्मीविलास सुवर्णयुक्त ४२० ।

काकसह श्वास—श्रृंगभस्म २०५ ।

वातज श्वास—दशमूलारिष्ट ६८४ प्रतापलंकेश्वर रस ५३५ ।

अपचनजनित श्वास—क्रव्याद् रस ३६० ।

हृदयावरोध दूर करने के लिये—महावातराज रस ५५२ । पूर्णचन्द्रोदय २४० । पंचसूत २७५ । जात्यादिधूम्र ८३० । देवदार्वादिधूम्र ८३० । मनःशलादिधूम्र ८३१ ।

क्षुद्रश्वास—(Breathlessness)—चिन्तामणि चूर्ण ६५५ । लोहभस्म १०३ । आनन्दभैरव रस ३६६ । अभ्रकभस्म १५१ । द्राक्षासव ७०८ ।

छिन्नश्वास—लक्ष्मीविलास अभ्रकप्रधान ३३६ । हेमगर्भपोटली ३२३ ।

वृद्धावस्था में श्वास—रससिंदूर २४४ । लक्ष्मीविलास ३३६ । वसन्तकुसुमाकर ४७७ । पूर्णचन्द्रोदय २४० । अश्वगंधारिष्ट ७०४ । श्वासकुठार ४२८ ।

वातरक्त में श्वास—हरतालभस्म १६६ ।

तमाखु के व्यसनियो को—श्वासरोगान्तक वटी ४३० । गोमूत्र क्षार चूर्ण ६४० ।

वीम्र वेग हो, तो—रस कर्पूर ५११। मल्लसिंदूर (नं० २) २५०।

मलावरोध-जनित श्वास—आरोग्यवर्धिनी ४८७। अश्वकंचुकी ३०७।

आमवात जन्य श्वास—महायोगराज गूगल ४५६।

कोष्ठगत वात वृद्धि से—शुक्तिभस्म १८७। प्रवालपंचामृत ४७२।

मानसिक आवात जनित श्वास—अभ्रकभस्म १५१। द्राक्षारिष्ट ७०८। लक्ष्मीविलास अभ्रक प्रधान ३३६।

हृदोग में श्वास—सूतशेखर ५१५। अर्जुनारिष्ट ७०५।

कफप्रकोप शमनार्थ—अश्वकंचुकी रस ३०७। आनन्दभैरव रस ३६६। अभ्रक और शृङ्गभस्म २०५। कफकुठार रस ४२६। समीरपन्नग २६२। त्रैलोक्यचिन्तामणि ३१६। नागगुटिका ५६२। लोकनाथ ४६८। कनकासव ७०२।

अंतर्दाह शमनार्थ—मुक्तापिष्टी १७३। सूतशेखर ५१५।

पार्श्व शूल—महावातराज रस ५५२। महावात विध्वंसन ४५१। शूलवज्रिणी वटी ४६५।

शुक्रक्षय से श्वास—पूर्ण चन्द्रोदय २४०। वसन्तकुसुमाकर ४७०। बृहद् वंगेश्वर ४८३।

मलशुद्धि अर्थ—आरोग्यवर्द्धिनी ४८७। गोमूत्र क्षार चूर्ण ६४०।

विष को मूत्र द्वारा निकालने के लिये—शिलाजीत ६४।

अतिसार में श्वास—सुवर्ण पर्पटी २८३। पंचामृत पर्पटी २६०।

(९९) सन्निपात (ज्वर में देखें)

(१००) संग्रहणी—(ग्रहणी में देखे)।

(१०१) सुजाक–प्रमेह (पूयमेह देखे)।

(१०२) सेन्द्रिय विष वृद्धि।

सूतशेखर ५१५। कामदूधा रस ४३६। आरोग्यवर्द्धिनी ४८७। भृङ्गराजासव ७२५। सारिवासव ७२३। चन्द्रप्रभा वटी ५६७। शुद्ध शिलाजीत ६४। नागभस्म १३१।

(१०३) स्नायु विकृति।

स्नायु संकोच—लोहभस्म १०३। ताप्यादि लोह ४०१। प्रवालपिष्टी १७८।

स्नायुओं की निर्बलता—मधुमण्डूर १५०। लोहभस्म १०३। कुक्कुटाण्डत्वक्भस्म २१८। महायोगराज गूगल ४५६। त्रैलोक्यचिन्तामणि रस ३१६

(१०४) स्नायु-नारु (Guinea Worny) ।

मल्लभस्म २०२ । शखभस्म १६२ । स्नायुहर मलहम ८२१ ।

(१०३) स्त्री रोग ।

श्वेत प्रदर—वङ्गभस्म ११२ । त्रिवगभस्म १२३ । नागभस्म १३१ । सुवर्णवङ्ग २५८ । सुवर्णमाक्षिकभस्म १३८ । प्रवाल १७६ । संगजराहत २११ सुवर्णमालिनीवसत ३५० । मधुमालिनी ३५६ । लघुमालिनी ३५८ । बोलबद्ध रस ३८७ । प्रदरान्तक लोह ५३१ । प्रदान्तक रस ५३३ । प्रदरारि रस ५३३ दार्व्यादि क्वाथ ६६६ । स्त्रीगदान्तक अर्क ७३६ । मधुकाद्यवलेह ७४६ । पुष्यानुग चूर्ण ६४२ ।

वातपित्तज श्वेतप्रदर—वङ्गभस्म ११२ ।

पित्तज श्वेतप्रदर—गोदंती भस्म १६६ ।

रक्तप्रदर—गोदतीभस्म १६६ । प्रवालपिष्टी १७८ । वङ्गभस्म ११२ । शुभ्राभस्म २१६ । बोलपर्पटी २८६ । बोलबद्ध २८७ । चन्द्रकला ४१२ । कामदूधा ४३६ । प्रदरान्तक लोह ५३१ सर्वाङ्गसुन्दर ५४१ । प्रदरान्तक वटी ६१६ । प्रदरान्तक चूर्ण ६४६ । चन्दनादि चूर्ण ६५० । पुष्यानुग ६५० । रक्तप्रदररिपु ६५१ । दार्व्यादि क्वाथ ६६६ । स्त्रीगदान्तक अर्क ७३६ । अशोकारिष्ट ७१५ । दुर्वाद्यघृत ७७५ । मधुकाद्यवलेह ७४६ । गोक्षुराद्यगुग्गुलु + वङ्गभस्म + प्रवालपिष्टी ६०६ । लोध्रासव + अरविन्दासव + सारस्वतारिष्ट । चंद्रकला + अशोकारिष्ट ५१५ ।

मासिकधर्म में अति रक्तस्राव—चन्द्रकला + अशोकारिष्ट ५७५ । जहरमोहरा १६५ ।

मानसिक लाल-सा जनित प्रदर—प्रदरारि रस ५३३ ।

सोम रोग—हेमनाथ रस ४७५ । वृहद् वगेश्वर ४८३ । जातिफलादि वटी ४८५ । महावातराज रस ५५२ । बृहद्धातृ घृत ७६४ ।

जीर्ण प्रदर—प्रदरान्तक लोह ५३१ । प्रदरान्तक रस ५३३ । वसन्तकुसुमाकर रस ४७७ । कुक्कुटाण्डत्वक्भस्म २१८ ।

निर्बलता—मण्डूरभस्म १४५ । वसन्तकुसुमाकर ४७७ । सुवर्णमालिनी वसन्त ३५० । लोहभस्म १०३ । (बालक के स्तनपानसे-सुवर्ण मालिनी और प्रवाल पिष्टी) । कुक्कुटाण्डत्वक्भस्म २१८ ।

श्वेत प्रदर जनित—सुवर्णवङ्ग + सुवर्णमाक्षिक + गोदन्तीभस्म २६१ ।

जीर्ण अपचनसह प्रदर—बोलबद्ध ३८७ । प्रदरारि रस ५३३ । सुवर्णमालिनी वसत ३५० । लघुमालिनी वसन्त ३५८ ।

बहुमूत्र, मूत्रदाह और प्रदर—बोलबद्धरस ३८७। चन्द्रप्रभा ५६७।

शूलसह प्रदर—प्रदरान्तक लोह ५३१। प्रदरान्तक रस ५३३।

सुजाकजनित दाहयुक्त प्रदर—गन्धक रसायन ४४०। सारिवासव ७२३।

सगर्भा के गर्भाशय में वातप्रकोप—ताप्यादि लोह ४०१। स्मृतिसागर ५६३।

सुजाक जनित गर्भाशय शोथ—प्रवालपिष्टी १७८। वनफशाशर्बत ७५४। चन्द्रांशु रस ५३८। प्रदरान्तक रस ५३३। चन्द्रप्रभावटी ५६७।

गर्भाशय की शिथिलता—चन्द्रप्रभावटी ५६७। अभ्रकभस्म १५१ और नागभस्म १३१। नतादि तैल ७६०।

बीजाशय की वृद्धि न होना—पुष्पधन्वा रस ५४६। पूर्णचन्द्रोदय रस २४०। *सारस्वतारिष्ट ७०७। त्रिवंगभस्म १२३।*

गर्भाशय विकृति—वंगभस्म ११२। त्रिवंगभस्म ११३। प्रदरान्तक लोह ५३१। लघुवसन्त २५८। चन्द्रप्रभा वटी, (उष्णता हो, तो—वनफशा शर्बत ७६२। स्त्री गदान्तक अर्क ७३६), माजून कचूर ७५७।

अनार्त्तव, नष्टार्त्तव और पीडितार्त्तव—मण्डूरभस्म १४५। वंगभस्म ११२। बोलपर्पटी २८६। वृहद् योगराज गूगल ४५६। रजःप्रवर्त्तक क्वाथ ६६६। कुमार्यासव ६६५। रजःप्रवर्त्तनी वर्त्ति ८३४। कन्यालोहादि वटी ६१५। कासीसादि वटी ६१५। रजःप्रवर्त्तक चूर्ण ६५०। प्रदरान्तक रस ५३३। देवदार्वाद्यरिष्ट ७२८। सारस्वतारिष्ट ७०७।

अत्यार्त्तव (मासिकधर्म ज्यादा आना)—मुक्तापिष्टी १७३। बोलपर्पटी २८६। तृणकान्तमणि पिष्टी १६५। उशीरासव ६६६। बोलबद्ध रस ३८७। अशोकारिष्ट ७१५।

अनियमित रजोदर्शन—ताप्यादिलोह ४०१। फलघृत ७७०।

गर्भाशय और वस्ति में शूल—वंगभस्म ११२। प्रदरान्तकलोह ५३१। वृहद्योगराज गूगल ४२६। अशोकारिष्ट ७१५। देवदार्वाद्यरिष्ट ७२८। चन्द्रांशु रस ५३८। अशोक घृत ७७२। फलघृत ७७०। मधुकावलेह ७४६। बोलबद्ध रस ३८७।

वंध्यत्व—वंगभस्म ११२। त्रिवंगभस्म १२३। फलघृत ७७०। पुष्पधन्वा रस ५४६। दशमूलारिष्ट ६६०।

योनिदाह मैथुनासहत्व—मुक्तापिष्टी १७३। प्रवालपिष्टी १७८।

सूतिका रोगः—

सामान्य ज्वर—धनुर्वात—रौप्यभस्म ८६। ताप्यादिलोह ४०१।

हिंगुल ४६६ । सूतिकाभरण रस ५६१ ।

तीव्रकफात्मक ज्वर—कालकूट रस ३३१ । प्रतापलंकेश्वर ५३५ । दशमूलारिष्ट ६६० ।

कफात्मक सामान्य ज्वर—अमरसुन्दरी ४५० ।

प्रसव होते समय वेगशमन हो जाना—बृहद्योगराजगूगल ४५६ ।

सन्निपात—हेमगर्भपोटली रस ३२३ ।

हृदयशूल—लक्ष्मीविलास रस अभ्रकप्रधान ३३६ ।

अतिसारसह मक्कलशूल—जीरकाद्यरिष्ट ७१८ । लक्ष्मीनारायण ३३४ । सूतशेखर ५१५ ।

कफवृद्धि—प्रतापलंकेश्वर रस ५३५ ।

मक्कल शूलसह ज्वर—महावात विध्वंसन ४५१ । अर्कादि क्वाथ ६६४ । दशमूलक्वाथ ६५८ । देवदार्वाद्यरिष्ट ७२८ । महायोगराजगूगल ४५६ । प्रतापलंकेश्वर रस ५३५ ।

धनुर्वात, कम्प, श्वास, कास, दाँत भिच जाना—कस्तूरीभैरव ३०० । कालकूट रस ३३१ । प्रतापलंकेश्वर ५३५ । देवदार्वादि क्वाथ ६६४ ।

धनुर्वात आदि लक्षण सौम्य हो, तो—सूतिकाभरण ५६१ ।

आक्षेप और पित्तप्रधानता हो, तो—ताप्यादि लोह ४०१ ।

वातकफप्रधान लक्षण हो, तो—सूतिकारि रस ५३८ ।

कफप्रधान जड़ता बेहोशीसह धनुर्वात पर—कालकूट ३३३ ।

दाह, तृषा, धनुर्वात, प्रलाप आदि—लक्ष्मीनारायण रस ३३४ । सूतशेखर रस ५१५ ।

मानस उन्माद—रौप्यभस्म ६५ ।

जीर्णज्वर, उदरशूल, शोथ, तृषा—सूतिकारि रस ५३८ । प्रतापलंकेश्वर रस ५३५ । लक्ष्मीविलास रस ३३६ ।

दूषित रक्त का स्राव कराना—बोलपर्पटी द्वितीय विधि २८६ । कुमार्यासव ६६५ । प्रतापलंकेश्वर रस ५३५ ।

शीर्षशूल—प्रतापलंकेश्वर रस ५३५ । महावात विध्वंसन ४५१ । दशमूलारिष्ट ६६० ।

फिरंग अनुबंध से बालक मर जाना—अष्टमूर्त्ति रसायन २७१ । गन्धक रसायन ४४० । प्रवालपिष्टी १७८ ।

वातप्रकोप—सौभाग्य सुण्ठीपाक ७३६ । सुण्ठ्यादि पाक ७४० । दशमूलक्वाथ ६५८ । दशमूलारिष्ट ६६० ।

पाण्डुता और शोथपर—मण्डूरभस्म १४५ । पुनर्नवामण्डूर ५०२ ।

आमशूल, सीहावृद्धि, ज्वरातिसार—लोहपर्पटी २८८ । पंचामृत-पर्पटी २६० । दशमूलारिष्ट ६६० ।

स्तन्यविकृति—स्तन्यशोधक क्वाथ ६६६ । सौभाग्यशुण्ठी पाक ७३६ ।

स्तन्यवृद्धि—जीरकाद्यरिष्ट ७१८ ।

रुकी हुई जेर गिराना—सिद्धार्थादि तैल ७८८ ।

जीर्ण अतिसार और ग्रहणी—सर्वाङ्गसुन्दर रस ५४१ । पंचामृत पर्पटी २६० । जीरकाद्यरिष्ट ७१८ ।

गर्भस्राव और गर्भपात—गर्भपाल रस ५३४ । वंग और गर्भपाल ५३४ । प्रवालपिष्टी १७८ । त्रिवगभस्म १२३ ।

गर्भपात के पश्चात् पीडितार्त्तव—सूतशेखर ५१५ ।

योनिरोग (विप्लुता, परिप्लुता, वातुलादि)—धातक्यादि तैल ७६० । नतादि तैल ७६० ।

कमल और योनि की शिथिलता—शुभ्राभस्म २१६ ।

योनिकण्डू—फिटकरी ७४ ।

सगर्भा के रोगः—

ज्वर—मधुरान्तक वटी ५८६ । गिलोयसत्व ४६ । गोदन्तीभस्म १६६ । प्रवालपिष्टी १५८ । किरातादिअर्क ७२८ । लघु सुदर्शनचूर्ण ६२७ ।

जीर्णज्वर—सुवर्ण मालिनी ३५० । लघुमालिनी ३५८ ।

पाण्डु और निर्बलता—मण्डूर मात्त्विक १५१ । गर्भचिन्तामणि ५३४ । सितोपलादि + अभ्रक + प्रवालपिष्टी १७८ । मधुमालिनी ३५६ ।

अस्थिक्षीणता—प्रवालपिष्टी १७८ । गिलोयसत्व ४६ और सितोपलादि ६२८ । मधुमालिनी ३५६ ।

गर्भ का शोषण—उपविष्टक—नागोदर—मधुमालिनी ३५६ ।

वमन और कास—प्रवालपिष्टी १७८ । गर्भपाल रस ५३४ । गर्भचिन्तामणि रस ५३४ । कामदूधा रस ४२६ ।

अतिसार—अभ्रपर्पटी २६५ । लघुगंगाधरचूर्ण ६३८ ।

वालक जल्दी कमजोर होना या जल्दी मर जाना—गर्भचिन्तामणि रस ५३५ । गर्भपालरस ४३६ ।

(१०६) स्वेद वृद्धि ।

मेदोवृद्धिजनित—लघुसुदर्शन चूर्ण ६२७ ।

उष्णपेयादि से स्वेदवृद्धि—प्रवालपिष्टी + सितोपलादि चूर्ण ।

(१०७) हलीमक (पाण्डुरोग में देखें) ।

(१०८) हारिद्रक (पाण्डुरोग में देखे) ।

(१०९) हिक्का—हिचकी (Hiccup)।

हिक्कान्तक रस ४३२ । आरोग्यवर्द्धिनी ४८७ । ताम्रभस्म ९६। सूतशेखर ५१५। विजयापुष्पाद्यवलेह ७५४ । कनकासव ७०२ ।

(११०) हिस्टीरिया (वातरोग के भीतर अपतन्त्रक में देखें)।

(१११) हृद्रोग (Diseases of the heart) ।

हृदयेन्द्रिय की निर्बलता—अभ्रकभस्म १५१ । अर्जुनारिष्ट ७०५ । माणिक्यभस्म १६८ । संगयसवपिष्टी २१० । लक्ष्मीविलासरस ३३६ । सुवर्णभस्म ८३ । अकीकभस्म १६४ । मुक्तापिष्टी १७३ ।

रक्त की निर्बलता से—सुवर्ण माक्षिकभस्म १३८ । लोहभस्म १०३ । मण्डूरभस्म १४५ । वसंत कुसुमाकर रस ४७७ । त्रिफलारिष्ट ७०४ । गाजर का अर्क ७३४ । लक्ष्मीविलास स्वर्णयुक्त ४२० । आरोग्यवर्द्धिनी ४८७ ।

हृदावरण शोथ—प्रभाकर वटी ४७४ । लक्ष्मीलिास ३३६ । आरोग्यवर्द्धिनी ४८७ । त्रिनेत्र रस ४७५ ।

फुफ्फुसशोथसह—अर्जुनारिष्ट ७०५ । शृङ्ग और माक्षिकभस्म २०५ ।

पित्तप्रकोपजन्य घबराहट—सगयसवपिष्टी २१० । दिवालमुश्क ७५५ । खमीरे गावजवाँ ७५७ । खमीरे गावजवाँ अम्बरी ७५८ । मुक्तापिष्टी १७३ । प्रवालपिष्टी १७८ । कामदूधारस ४२६ । प्रभाकरवटी ४७४ । त्रिनेत्ररस ४७५ । लवगादिचूर्ण ६४० ।

पाण्डु से निर्बलता—लोहभस्म १०३ । त्रिफलारिष्ट ७०४ । ताप्यादि लोह ४०१ ।

हृदय का वेग बढ़ना—मधुमेहादि से हो, तो महावातराज ५५२ । जातिफलादि वटी ४८५ । वसन्तकुसुमाकर ४७७ । शिलाजीत ६४ । नागभस्म । संग यक्रुत पिष्टी २१० । मुक्तापिष्टी १७३ । अकीकपिष्टी १६४ ।

अनेक रोगो से वातकफ प्रकोपज निर्बलता—पूर्णचन्द्रोदय २४० । रससिन्दूर २४४ । त्रैलोक्यचिन्तामणि ३१६ । वसतकुसुमाकर ४७७ ।

रक्तवाहिनियो को विकसित करना—भीमसेनी कपूर ¼ रत्ती ४२ ।

आमवात हृद्ग्रह—महायोगराज गूगल ४३६ ।

वातवाहिनियोंकी निर्बलता—अग्नितुण्डी वटी ३६४ ।

हृदय से रक्त गिरना—कल्याणसुन्दरी रस ४२५ ।

हृदय शूल—शृंगभस्म २०५ । महावात विध्वंसन रस ४५१ । त्रैलोक्यचिन्तामणि ३१६ ।

शुक्रक्षयजन्य हृदयसंकोच—वगभस्म ११२ । च्यवनप्राशावलेह ७४२ । वसन्तकुसुमाकर ४७७ । अश्वगन्धारिष्ट ७०४ ।

(११२) क्षय—राजयक्ष्मा—तपेदिक (Phthisis)।

सब समय पर हितकर—सुवर्णभस्म ८३। अभ्रक १५१ और सुवर्णभस्म ८३। वज्रभस्म १६७। माणिक्यभस्म १६८। गोमेदमणि १६६। पुष्पराग पिष्टी १७०। प्रवालपिष्टी १७८। मुक्तापिष्टी १७३। शृंगभस्म २०४। पूर्णचन्द्रोदय २४०। शुद्ध शिलाजीत ६४। वैक्रान्तभस्म १७२। तालसिन्दूर २५३। सुवर्णभूपति रस २६८। सुवर्ण मालिनी वसन्त ३५०। लक्ष्मीविलास सुवर्णयुक्त ४२०। अभ्रक १५१। रससिन्दूर और सुवर्णभस्म ८३।

निर्जन्तुक अनुलोमक्षय और प्रतिलोमक्षय—अभ्रक । शृङ्ग और प्रवालपिष्टी १७८। कासीस और लोह १०३। पुष्परागपिष्टी १७०।

अनुलोमरसक्षय—मुक्तापिष्टी १७२। प्रवालपिष्टी १७८। अभ्रक भस्म १५१। सुवर्णभस्म ८३। पंचामृत पर्पटी २६०। सुवर्ण पर्पटी २८३।

शुक्रक्षय और रजःक्षय—वगभस्म ११२। रौप्यभस्म ८६। वंग और सुवर्ण माक्षिक भस्म १३८। वसन्त कुसुमाकर रस ४७७। पचामृत ५६६। सुवर्ण पर्पटी २८३। वङ्गभस्म ११२। शृङ्गभस्म और रस सिन्दूर मधुमालिनी वसंत ३५६।

मज्जाक्षय—मधुमालिनी वसत ३५६।

ओजक्षय—मधुमालिनी वसन्त ३५६। जीवन्त्यादि घृत ७७२। समीरे गावजवा अम्बरी ७५८। च्यवनप्राशावलेह ७४२।

सुजाक के हेतु से मांसक्षय—रौप्यभस्म ८६।

फिरंग अनुबन्ध से क्षय—अष्टमूर्तिरसायन २७१।

उरोग्रह और उरःक्षत—पीला दुर्गन्धयुक्त कफ निकलना—रससिंदूर २४४। ताप्यादिलोह ४०१। सुवर्ण और प्रवाल ८३। अग्निरस ४२७। लवंगादितालसिंदूर ४२८।

प्रसूता को क्षय—जीरकाद्यरिष्ट ७१८। सूतशेखर ५१५।

रक्तगिरना बन्द करने के लिये—सगजराहतभस्म २११। शुभ्राभस्म २१६। बोलपर्पटी २८६। कनकासव ७०२। द्राक्षासव ७०८। महाद्राक्षासव ७३०। एलादिवटी ५९६। लवंगादि चूर्ण ६४०। च्यवनप्राशावलेह ७४२। चन्द्रकलारस ४१२। बालचन्द्र रस ५७२।

ज्वर और कफकास—शृंगभस्म २०५। द्राक्षारिष्ट ७०८। प्रवाल, शृंग और गिलोयसत्व २०५। सदैव उदर में गाँठ और अतिसार हो तो—लोकनाथ रस ४१८।

तीव्रज्वर—त्रैलोक्यचिन्तामणि ३१६। गदमुरारि ३२१। पञ्चामृत रस ५६६।

जन्तुओं की वृद्धि रोकने के लिये—शृंगभस्म २०५। सुवर्ण-अभ्रक और शृंगभस्म २०५।

शुष्क कास—सुवर्णभस्म ८३। प्रवालपिष्टी १७८। सुवर्ण भूपति २६८। वालचन्द्र ५७२। सितोपलादि चूर्ण ६२८। एलादि वटी ५६६।

तीव्र ज्वर सह अतिसार—गदमुरारि रस ३२६। वालचन्द्र रस ५७२।

स्वरभंग—जसदभस्म १२७। (वमनसह—कर्पूराद्य चूर्ण ६४०)।

स्वरभेद, पार्श्वशूल, पीनस, शिरदर्दादि उपद्रव—षडंग यूष ६७५। च्यवनप्राशावलेह ७४२। सितोपलादि अवलेह ७४५।

अग्निमान्द्य—चविकासव ७२०।

अधिक प्रस्वेद को घटाने के लिये—कनकासव ७०२। शिलाजीत मिश्रित जसदभस्म १२७। शुभ्राभस्म २१६।

वमन—शुभ्राभस्म २१६। वालचन्द्र रस ५७२।

उपद्रव रूप वातप्रकोप, मूर्च्छा या उन्माद—योगेन्द्र रस ५७३। सूतशेखर ५१५।

दाह—रौप्यभस्म ८६। जसदभस्म १२७। तार्क्ष्यभस्म १६६। मुक्तापिष्टी १७३। प्रवालपिष्टी १७८। महा मृगांक रस ४१८।

स्नायु और मांस की निर्बलता—नागभस्म १३१।

पेशाब में पीलापन—चन्दनादि अर्क ७७८। शिलाजतु ६८।

मालिश के लिये—चन्दन बला लाक्षादि तैल ७७८। चन्दनादि तैल ७७९। नारायण तैल ७८३। लाक्षादि तैल ७८४।

शक्तिसंरक्षणार्थ—च्यवनप्राशावलेह ७४२। वालचन्द्र ५७२। हेमगर्भ-पोटली (द्वितीयविधि) ४१६।

वातप्रकोप—शिलाजतु ६८।

(११३) क्षुद्र रोग।

वल्मीक—निम्ब तैल ७८३। मन शिलादि तैल ७८६।

दारुणक, अरुंषिका और इन्द्रलुप्त—भृङ्गराज तैल ७८७। दारुणक-नाशक मलहम ८२०।

गुदभ्रंश—चांगेरी घृत ७७५। कनक सुन्दर + पंचामृतपर्पटी २६०। फिटकरी २२३।

गुदद्वारकण्डू—गन्धक ६२।

गुदद्वारविदारण—गन्धक ६२।

गुदनलिकासंकोच—गन्धक ६२।

———

रसतंत्रसार व सिद्ध प्रयोग संग्रह

द्वितीय खण्ड

इस ग्रन्थमें पहले खण्डमें लिखे हुए प्रयोगोके समान ही अनुभूत शास्त्रीय प्रयोग तथा सत्वर फलदायक सरल प्रयोग सरल भाषामें दिये गये हैं। ज्वर, अतिसार, ग्रहणी, अर्श, अग्निमांद्य, विशूचिका कृमि, पाण्डु, कामला, रक्तपित्त, कास-श्वास, राजयक्ष्मा, उरःक्षत वातरोग, त्वचारोग, नेत्ररोग, कुष्ठ उपदंश, सुजाक आदि आदि रोग नाशक प्रयोग, ओषधियोके गुण धर्म, एवं औषध सेवन विधि स्पष्ट समझाये गये हैं। २० × ३० = १६ पेजी पृष्ठ संख्या ६५० मूल्य अजिल्द का ५) रु० सजिल्दका ६) पोस्टेज ।।=) पृथक्

चिकित्सा तत्त्वप्रदीप (द्वितीयखण्ड)

इस ग्रन्थ में पचनेन्द्रिय संस्था, सार्वाङ्गिक व्याधियो में से शोथरोग रक्तरचनाधिकारमें विविध प्रकारके पाण्डु, रक्तपित्त आदि तथा श्वासोच्छ्वास संस्थाकी व्याधियोंके निदान, चिकित्सा, पथ्यापथ्य आदिका विवेचन आयुर्वेदिक और डाक्टर शैली के अनुसार किया है। प्रथम खण्डकी अपेक्षा इस द्वितीय खण्डमें डाक्टरी निदानको विशेष विस्तार से समझाकर लिखा गया है।

पचनेन्द्रिय संस्था व्याधि प्रकरणमें अरोचक, छर्दि, रक्तछर्दि, तृषा, दाह, शूल, परिणामशूल, नागविषजशूल, पित्ताश्मरीजशूल, अम्लपित्त, गुल्म, विविध, उदररोग, अन्त्र पुच्छप्रदाह, उदावर्त, पाशित अन्त्रविकार, अन्त्र विवर्त्तन, अन्त्र आवर्त्तन, अन्त्रान्त्रप्रवेश, कामला, यकृत्में कृमिकोपज ग्रन्थि, हिक्का, उदर्य्यकलाप्रदाह, अग्न्याशय-विकार आदि रोगोका समावेश किया गया है।

श्वासोच्छ्वास संस्था में अनेक प्रकार के श्वास रोग, स्वरभंग, विविधकासरोग, राजयक्ष्मा, उरस्तोय आदि लिखे है।

प्रथमखण्डके समान इस खण्डमें भी रोग–विवेचन के साथ सम्बन्धवाले शारीरिक अवयवो की रचना, कार्य आदिका वर्णन किया है। एवं शारीरिक अवयवोके और रक्तके रक्ताणु, मज्जाणु आदिके

चित्र भी दिये हैं। १४ चित्र आर्ट पेपर पर और १४ चित्र ग्रन्थके लेख के साथ छपे हैं। सक्षेपमें इस ग्रन्थ को होसके उतना अधिक उपयोगी बनाया गया है।

मूल्य २०×३० साइज का १६ पेजी आकार, ग्लेज कागज; पृष्ठ संख्या ११२० होने पर भी सजिल्दका रु० ६।।) पोस्टेज ।।=) अलग।

वैज्ञानिक विचारणा

(वैज्ञानिक विचारणा) आयुर्वेदके हिन्दी पाठकोंके लिये एक अपूर्व और अत्युपयोगी पुस्तक है। इस पुस्तकमें औषध गुण, औषध परिणाम, व्याधिप्रतिकार तीन विषयों को मुख्य रूपसे और इतर सहायक विषयोंकी गौण रूपसे विचारणा की है।

(१) *औषधि गुण*—किन-किन रोगों में किन-किन औषधियों का प्रयोग किस हेतु से और कैसे करना चाहिये।

(२) *औषधि परिणाम*—औषधिसे साक्षात्-परम्परा परिणाम, स्थानिक-दूरवर्त्ती परिणाम, भौतिक, रासायनिक और जीवनीय परिणाम, भौतिक परिणामके शोषण, आवरण, तलकरण ये भेद; परम्परागत परिणामके त्रिविध भेद आदि बातों का विचार किया है।

(३) *व्याधि प्रतिकार*—औषधिसेवन से देह में होने वाले अपतर्पण, संतर्पण, संशोधन, दमन, परिवर्त्तन, उत्तेजना, रासायनिक, प्रभाव आदि विविध परिणामों की प्राप्ति सम्बन्धी नियम दर्शाये हैं।

संक्षेपमें इस पुस्तकमें चिकित्सा-सहायक बातों का युक्ति पूर्वक वैज्ञानिक शैली में शास्त्र मर्यादा के अनुकूल ही विचार किया है। अतः यह पुस्तक आयुर्वेदके विद्यार्थीवर्ग के लिये शिक्षाप्रद, नव्य चिकित्सकों के लिये चिकित्सा पथ-प्रदर्शक, आयुर्वेदानुरागियों के लिये ज्ञानवर्द्धक और रोगियोंके लिये आरोग्यप्राप्ति की कुञ्जीरूप है। अनेक विद्वान् चिकित्सकोंने इस पुस्तक की मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की है। संस्कृत, हिन्दी, गुजराती, मराठी, उर्दू आदि भाषाओंमें इस शैली का एक भी ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ।

मूल्य—डबल क्राउन साइजके १६ पेजी, २८ पौंड का मोटा ग्लेज पेपर। पृष्ठ संख्या ३२०। मूल्य १।।) रु० पोस्टेज ।=) अलग।

रुग्ण-परिचर्या

लेखक—डा० कृ० श्री० म्हसकर M. D. M. A., B. Sc, D. P. H.

यह ग्रंथ परिचारक और परिचारिकाओं (nurses) को परिचर्या शिक्षा देने के लिये लिखा गया है। विविध प्रकार के रोगियों की सेवा-शुश्रूषा किस प्रकार से करनी चाहिये ? किन-किन नियमो को सम्हालना चाहिये ? कितनेक आगन्तुक रोग चोट लगना, जल में डूबना अग्नि में जल जाना, बिजली का धक्का लगना, विष सेवन आदि में तात्कालिक चिकित्सा किस प्रकार करनी चाहिये ? और विविध रोगो के उपचारार्थ किस किस वस्तु तथा शस्त्र आदि साधनों की आवश्यकता पड़ती है इत्यादि बातें विस्तारपूर्वक लिखी गई हैं। इनके अतिरिक्त नाड़ी परीक्षा, मल, मूत्र, कफ आदि के निरक्षण और परिक्षण, विविध प्रकार के पट्टीबन्ध (Bandage), वैयक्तिक और सामाजिक स्वास्थ्य-विज्ञान, निसर्गोपचार, स्त्रियो और बालकों की परिचर्या, मरणोन्मुखी और मृत व्यक्तियों की परिचर्या आदि विषयो का वर्णन तथा ३०० से अधिक चित्र भी दिये गये है। यह वैद्य और विद्यार्थियों के लिये एक अपूर्व सहायक ग्रन्थ है।

साइज २०×३० सोलह पेजी २६ पौण्ड कागज। पृष्ठ संख्या ५००। मूल्य ३॥) पोस्टेज।≡)।

चिकित्सातत्त्वप्रदीप प्रथम खण्ड

(द्वितीय संस्करण)

इस ग्रन्थ में आयुर्वेदिक और डाक्टरी ढंग से रोगोका निदान और चिकित्सा लिखी गई है। डाक्टरी निदान १९४५ ई० में प्रकाशित डाक्टरी ग्रन्थो के आधार से सरल भाषा में समझा समझा कर दिया गया है। जिससे आयुर्वेद के साधारण बोध वाले विद्यार्थी भी इसे अच्छी तरह समझ सकते हैं। इस ग्रन्थ में ५ प्रकरण हैं। १ उपोद्‌घात। २ शरीर शुद्धि प्रकरण। ३ चिकित्सा सहायक प्रकरण। ४ ज्वर प्रकरण और ५ पचनेन्द्रियसंस्था-व्याधि प्रकरण।

उपोद्‌घात प्रकरण में रोगविनिर्णयार्थ, नदान पञ्चक, वातादि दोषो के गुण और चिकित्सा सम्बन्धी महत्वके विचार दिये हैं।

द्वितीय प्रकरण में सब प्रकारके नये और पुराने रोगो को जड़ मूल से नष्ट करने के लिए स्वेदन, वमन, विरेचन, वस्ति आदि शोधन विधियाँ दी हैं।

तृतीय प्रकरण में अनुपान, पथ्यापथ्य, षड्रस-गुण दोष विचार, परस्पर प्रतिकूल पदार्थ, औषध-मात्रा आदि चिकित्सा में सहायक सभी आवश्यक बातों का संग्रह किया गया है।

चतुर्थ प्रकरण में प्राचीन आचार्यों द्वारा दिये हुए और वर्तमान में संक्रामक रूप से उत्पन्न हुए सब प्रकार के ज्वर रोगों के आयुर्वेदिक और डाक्टरी निदान तथा अनुभूत चिकित्सा लिखी गई है।

पहले संस्करण की अपेक्षा २५० पृष्ठों का लेख तथा कितनेक चित्र भी बढ़ गये हैं। अमेरिकन उत्तम डिमाई १८×२२ आठ पेजी कागज पृष्ठ संख्या ६५० ग्रन्थ छप रहा है। लगभग ४ मास में छप कर तैयार हो जायगा। फेब्रुअरी के अन्त तक मूल्य भेजने वालों को अजिल्द रु० ७) तथा सजिल्द रु० ८) में दिया जायगा। पोस्टेज औषधालय की ओर से दिया जायगा। छपजाने पर मूल्य अजिल्द का रु० ८) और सजिल्दका रु० ९) पोस्टेज ।॥=) पृथक्।

पुस्तकें मिलने के पते

१—कृष्ण-गोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय पो० कालेड़ा-बोगला (अजमेर)
२—श्री० प० श्रीगोवर्धनजी शर्मा छांगाणी सीतावर्डी—नागपुर
३—श्री० प० राधाकृष्णजी द्विवेदी उर्दू बाजार—हैद्राबाद-दक्षिण
४—भारत सेवक औषधालय नई सड़क—देहली
५—धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)
६—प्राणाचार्य भवन विजयगढ़ (अलीगढ़)
७—भारद्वाज आयुर्वेदिक फार्मसी विजयगढ़ (अलीगढ़)
८—श्री० मेहरचन्द जी लक्ष्मणदासजी सैद मिट्ठा बाजार—लाहौर
९—श्री० मोतीलालजी बनारसीदासजी सैद मिट्ठा बाजार—लाहौर
१०—देशरक्षक औषधालय मलियार—कोटला (पंजाब)
११—पाठक फार्मसी कचौरा—(अलीगढ़)
१२—श्री श्यामलालजी कन्हैयालालजी आकोला
१३—श्री० रतनसिंहजी चौहान शेगांव (जि० बुलडाना)
१४—श्री० गणेशदासजी धूलचंदजी चाण्डक सौसर (छिंदवाड़ा)
१५—हिन्दी पुस्तक भण्डार हीराबाग—बम्बई।
१६—श्री० वैद्यराज हरिप्रसादजी सी० भट्ट रावपुरा (बड़ौदा)
१७—श्री० पं० लक्ष्मीनारायण जी व्यास गंगरार (मेवाड़)
१८—श्री० धन्नालालजी शर्मा चांदपोल—उदयपुर
१९—श्री० श्यामलाल जी बुकसेलर, दौलत मारकीट आगरा
२०—श्री० पं० विश्वनाथ जी वाजपेयी औरैया (इटावा)
२१—श्री० जयकृष्णदासजी हरिदासजी गुप्ता बनारस
२२—मास्टर खेलाड़ीलाल एण्ड-सन्स बनारस
२३—श्री० प० शान्तिस्वरूप जी श्रीराम रोड—लखनऊ
२४—श्री० पं० रामगोपालजी शर्मा मास्टर संस्कृत हितैषी पाठशाला गंज—अजमेर
२५—श्री० रामकृष्णजी कलन्त्री असलगांव (बुलडाना)
